दुर्गतिनाशिनि दुर्गा जय जय, काल-विनाशिनि काली जय जय।
उमा-रमा-ब्रह्माणी जय जय, राधा-सीता-रुक्मिणि जय जय॥
साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शंकर।
हर हर शंकर दुखहर सुखकर अघ-तम-हर हर हर शंकर॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
जय-जय दुर्गा, जय माँ तारा। जय गणेश जय शुभ-आगारा॥
जयति शिवा-शिव जानकिराम। गौरीशंकर सीताराम॥
जय रघुनन्दन जय सियाराम। व्रजगोपी-प्रिय राधेश्याम॥
रघुपति राघव राजाराम। पतितपावन सीताराम॥

[संस्करण १,६४,०००]

जो भक्तिभावसे भगवान् श्रीकृष्णका प्रसाद और चरणोदक लेते हैं, वे इस पृथ्वीको पावन करनेवाले बन जाते हैं—इसमें संशय नहीं है। गङ्गा पापका, चन्द्रमा तापका और कल्पवृक्ष दीनताके अभिशापका अपहरण करता है, परंतु सत्सङ्ग पाप, ताप और दैन्य—तीनोंका तत्काल नाश कर देता है। मनुष्योंके पितृगण पिण्ड पानेकी इच्छासे तभीतक संसारमें चक्कर लगाते हैं, जबतक कि उनके कुलमें कृष्णभक्त पुत्र जन्म नहीं लेता। वह कैसा गुरु, कैसा पिता, कैसा बेटा, कैसा मित्र, कैसा राजा और कैसा बन्धु है, जो श्रीहरिमें मन नहीं लगा देता? जो विद्या, धन, देह और कुलका अभिमान रखनेवाले हैं तथा रूप आदि विषय एवं स्त्री-पुत्रोंमें नित्यबुद्धि रखते हैं और जो फलकी कामनासे अन्य देवताओंकी ओर देखते रहते हैं, भगवान् केशवका भजन नहीं करते, वे जीते जी मरे हुएके समान हैं।

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

[illegible]

नित्यलीलालीन श्रीपोद्दारजीके प्रति भक्तिपूर्ण श्रद्धाञ्जलि

'कल्याण'के श्रद्धालु एव भगवत्प्रेमी पाठक-पाठिकाओंको यह जानकर दु ख होगा कि उन सबके एव हमारे परम श्रद्धास्पद एव प्रीतिभाजन, 'कल्याण'के माध्यमसे लाखो नर-नारियोंको कल्याणका पथ दिखानेवाले, जनता-जनार्दनके परम सेवक, सौजन्य, विनय, निरहकारता आदि दुर्लभ गुणोंकी खान, स्नेहमूर्ति, दयामूर्ति, मानवताके सच्चे पुजारी, सर्वभूतसुहृद, आर्त-त्राणपरायण, परदु खकातर, अर्थियोंको अपने पूर्वजन्मका ऋणी मानकर उनकी आवश्यकताओं-को पूर्ण करनेमें सदा सचेष्ट रहनेवाले विश्वबन्धु, सभी धर्मोंका आदर करते हुए तथा किसीको भी हीन न मानते हुए भी आर्य वैदिक सनातनधर्मके कट्टर उपासक एव पोषक, 'वसुधैव कुटुम्बकम्'के सिद्धान्तको अपने जीवनमें उतारनेवाले आदर्श भगवद्भक्त एव भगवत्प्रेमी, सर्वत्र अपने इष्टदेवको देखनेवाले, सबके भाईजी, स्वनामधन्य भागवत्स्वरूप श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार श्रीकृष्ण-सवत ५१९६ की चैत्र कृष्णा १०, चन्द्रवार, २२ मार्च सन् १९७१ ई० को प्रात काल सात बजकर पचपन मिनटपर ७९ वर्षकी आयुमें अपने बृहत्परिवारको बिलखता छोड़कर यहाँसे चल बसे। यों तो वे सालभरसे अधिक समयसे अस्वस्थ थे, परतु लगभग एक मासमे उनका स्वास्थ्य अधिक चिन्ताजनक हो गया था। उनके पेटमें पथरी, कैन्सर आदि असाध्य रोगोंके लक्षण प्रकट हो रहे थे, जिनके कारण उदरमे अन्तिम दिनोंमे भयानक वेदना तथा सारे शरीरमें जलन रहती थी। परतु व्याधिमें भी भगवान्‌का दर्शन करते रहनेके कारण वे उस असह्य वेदना एव शारीरिक कष्टको आदर्श धैर्यके साथ सहन करते रहे। अन्ततक उन्होंने किसी ऐसी औषधका सेवन नहीं किया, जिसमें जीवहिंसा होती हो। कई दिनोसे आहारके नामपर उनके पेटमें कुछ भी नहीं जा पा रहा था। किंतु अन्त तक उनकी चेतना अक्षुण्ण बनी रही और वे सबको आश्वासन एव शिक्षा देते रहे। सेवा करनेवाले आत्मीय जनोंके प्रति भी कृतज्ञता प्रकाश करते रहे। शारीरिक सेवा वे प्राय. किसीसे भी नहीं कराते थे। केवल अन्तिम दिनोंमें बहुत अधिक अशक्त हो जानेके कारण अपने परिवारके अत्यन्त निकटवर्ती आत्मीय जनोंसे ही उन्होंने सेवा लेना स्वीकार किया।

श्रीपोद्दारजी आधुनिक जगत्‌के बहुत उच्च कोटिके गृहस्थ सत थे। परतु वे आत्म ख्यापनसे कोसों दूर रहते थे। अपने मुखसे अथवा लेखनीसे कभी उन्होंने अपने उत्कर्षको व्यक्त नहीं होने दिया। अपनी लोकोत्तर महानता एव पारमार्थिक परमोच्च स्थितिको उन्होंने सदा ही गुप्त रखा और अपने लोगोंपर भी बहुत कम व्यक्त होने दिया। वे जगत्‌में एक महान् उद्देश्यको लेकर आये थे और भगवान्‌की ओरसे आह्वान होते ही आसक्तिशून्य हो, सब कुछ छोड़कर यहाँसे चल दिये। 'कल्याण' एव 'कल्याण-कल्पतरु'के माध्यमसे, अनेकों बहुमूल्य पुस्तकोंद्वारा तथा दैनिक प्रवचन और स्वर्गाश्रम आदि स्थानोंमें एव

विशेष अवसरोंपर व्याख्यान देकर उन्होंने भगवद्भक्ति, भगवत्प्रेम एवं भगवत्तत्त्व तथा लौकिक व्यवहार, राजनीति आदि विषयोंपर जो अद्भुत प्रकाश डाला है, वह जगत्के लिये एक अमूल्य सम्पत्ति बन गयी है और शताब्दियोंतक भावी पीढ़ियोंका उससे कल्याण होता रहेगा। 'कल्याण'के विशेषाङ्कोंके रूपमें ही—जिन्हें अपने अपने विषयके विश्वकोश कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी—वे इतने अमूल्य साहित्यका संग्रह कर गये हैं, जिनसे भारतीय आर्य संस्कृतिके अद्वितीय महत्त्वको हृदयंगम करनेमें बड़ी सहायता मिलेगी। इस नास्तिकताके युगमें, जब कि भौतिकवादका सर्वत्र बोलबाला है, 'कल्याण'-जैसा पत्र निकालकर, जिसके आज पौने दो लाखके लगभग ग्राहक हैं, उन्होंने पत्रकारिताके क्षेत्रमें अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की, परंतु यह सब हुआ भगवत्कृपासे ही। हमारे भाईजी तो भगवान्‌के एक यन्त्र थे। उनके माध्यमसे सब कुछ किया-कराया स्वयं भगवान्‌ने ही। उनके एक अत्यन्त निकटस्थ सतके शब्दोंमें 'श्रीपोद्दारजीके चले जानेसे गगनमार्गका सूर्य अस्त हो गया।' वे तो जगत्का अशेष मङ्गल करके चले गये। उन्होंने जीवनका ध्येय प्राप्त कर लिया था और भगवत्कृपासे अर्जित अपनी दीर्घकालीन आध्यात्मिक अनुभूतियों एवं ज्ञानकी ज्योतिका जगत्‌में विस्तार करके चले दिये। दुःख हमलोगोंके लिये है, जो सदाके लिये उनके सत्परामर्श एवं सदुपदेशसे वञ्चित हो गये। हम विलखते हुए हृदयसे उस महान् भगवद्विभूतिके प्रति अपनी क्षुद्र श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं और भगवान्‌से प्रार्थना करते हैं कि वे हमें इन नित्यलीलालीन महापुरुषके पदचिह्नोंका अनुसरण करनेकी क्षमता प्रदान करें। 'कल्याण' तो उनके न रहनेसे मानो निष्प्राण सा हो गया है। परम श्रद्धेय ब्रह्मलीन प्रातःस्मरणीय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके वियोगका घाव तो अभी भरा ही न था कि श्रीपोद्दारजी भी हमें अनाथ छोड़कर चल पड़े। दैवकी इस निष्ठुर दुरभिसन्धिके लिये हम क्या करें।

श्रीपोद्दारजीकी भगवन्मयी दृष्टिमें कोई अपना और पराया नहीं था। सारा विश्व उनका परिवार था। परंतु लौकिक दृष्टिसे वे अपने पीछे अपनी वृद्धा परम सती धर्मपत्नी, एक भक्तिमती एवं उन्हींके पदचिह्नोंपर चलनेवाली सौभाग्यवती पुत्री, उनके भाग्यवान पति दो दौहित्र तथा दो दौहित्रियाँ छोड़ गये हैं। उन सबके प्रति, जो उनके वियोगसे अत्यन्त दुःखी हैं—हम अपनी हार्दिक सहानुभूति एवं समवेदना प्रकट किये बिना नहीं रह सकते। भगवान् उन सबको, विशेषकर उनकी धर्मपत्नी एवं स्नेहिनी एकमात्र पुत्रीको—इस महान् दुःखको सहन करनेकी क्षमता प्रदान करें।

इनका समादर एवं प्यार पाया हुआ श्रद्धा एवं शोकसे युक्त मैं—

चिम्मनलाल गोस्वामी

'कल्याण'के प्रेमी पाठकों और ग्राहकोंसे नम्र निवेदन

(१) यह 'अग्निपुराण गर्गसंहिता-नरसिंहपुराणाङ्क' नामक विशेषाङ्क प्रस्तुत है । इसमें अग्निपुराणके माहात्म्यसहित २०१ से ३८३ तक अन्तिम १८३ अध्यायों, श्रीगर्गसंहिताके दशम एवं अन्तिम अश्वमेधखण्डके ६२ अध्यायों एवं माहात्म्यके चार अध्यायोंका अनुवाद एवं श्रीनरसिंह पुराणके ६८ अध्यायोंमेंसे ५७ का मूलसहित अनुवाद है। शेष अध्याय परिशिष्टाङ्कके रूपमें फरवरीके अङ्कमें दिये गये हैं । अग्निपुराणमें राजधर्म, राजनीति, धनुर्वेद, युद्धविद्या, अर्थशास्त्र एवं आयुर्वेद आदि लौकिक विषयोंके साथ-साथ धर्मशास्त्र, मन्त्रशास्त्र, देवपूजा एवं योग आदि पारमार्थिक विषयोंका भी बड़ा ही सुन्दर एवं संक्षिप्त किन्तु प्रामाणिक विवेचन है, जिसे पढ़कर हृदयंगम करनेसे मनुष्य जागतिक एवं पारमार्थिक उभयविध कल्याणकी ओर अग्रसर हो सकता है । गर्गसंहिता तो भगवान् श्रीकृष्णकी रसमयी लीलासे ओतप्रोत है ही । नरसिंहपुराणमें भी सृष्टि, प्रलय, युगों एवं मन्वन्तरोंका निरूपण एवं प्रख्यात राजवंशोंका वर्णन आदि अन्य पौराणिक विषयोंके साथ-साथ चिरजीवी मार्कण्डेय मुनिका इतिहास तथा विभिन्न अवतार-चरित्रोंका बड़ा ही सरस वर्णन है, जिसे पढ़नेसे हृदयमें भक्ति रसकी धारा फूट पड़ती है । भोगबहुल पाश्चात्त्य सभ्यताकी चकाचौंधमें पड़े हुए हमारे देशवासियोंकी आँखें खोलने तथा उन्हें भोगपरायणताकी अन्धपरम्परासे लौटाकर धर्म-मर्यादित भोग एवं परमार्थकी ओर मोड़नेके लिये पुराण-साहित्यके प्रसार प्रचारकी बड़ी आवश्यकता है । इसी दृष्टिको सामने रखकर उक्त तीनों ग्रन्थोंका प्रकाशन 'कल्याण'के विशेषाङ्कके रूपमें किया जा रहा है । आशा है, प्रेमी पाठक हमारे इस पुनीत उद्देश्यको हृदयंगम कर इसे आगे बढ़ानेमें सहायक बनेंगे और इस प्रकार भगवत्प्रीतिका अर्जन करेंगे ।

(२) इस विशेषाङ्कमें ७०६ से कुछ अधिक पृष्ठोंकी पाठ्य सामग्री है । सूची आदि अलग हैं। बहुत-से बहुरंगे चित्र भी हैं । अवश्य ही हम जितने और जैसे चित्र देना चाहते थे, उतने और वैसे परिस्थितिवश नहीं दिये जा सके । पर जो दिये गये हैं, वे सुन्दर तथा उपयोगी हैं। अग्निपुराणके अन्तिम अध्यायोंमें कथाभाग बहुत कम रहनेसे चित्र बहुत कम दिये जा सके हैं । नरसिंहपुराणका समावेश पीछे होनेके कारण उसके चित्र भी तैयार नहीं हो सके। अधिकांश चित्र गर्गसंहितासे सम्बन्धित होनेके कारण उसीमें दिये गये हैं । परिस्थिति समझकर पाठक महोदय क्षमा करें ।

(३) कागज, डाक-महसूल, वेतन आदिका व्यय बढ़ जानेके कारण गत वर्ष 'कल्याण' में बहुत घाटा रहा । इस वर्ष कागजोंका मूल्य और बढ़ गया है । वी० पी०, रजिस्ट्री, लिफाफे आदिमें भी डाकमहसूल बढ़ रहा है । कर्मचारियोंका वेतन-व्यय भी बहुत बढ़ा है । कम वजनके छपाईके कागज बहुत कम बनने लगे हैं और अधिक वजनके लेनेपर खर्च और भी बढ जायगा । इन सब खर्चोंकी बड़ी रकमोंको जोड़नेपर तो 'कल्याण' का वर्तमान १०.०० रुपया वार्षिक मूल्य लगभग पौनी कीमतके बराबर होगा । इस अवस्थामें 'कल्याण' के प्रेमी ग्राहकों तथा पाठकोंको चाहिये कि वे प्रयत्न करके अधिक-से-अधिक ग्राहक बनाकर रुपये भिजवानेकी कृपा करें ।

(४) इस बार भी विशेषाङ्क इतनी अधिक देरसे जा रहा है, जिसकी कल्पना भी नहीं थी । अनिवार्य परिस्थितिके कारण ही ऐसा हुआ है । ग्राहक महानुभावोंको व्यर्थ ही बहुत परेशान होना पड़ा, हमें इस बातका बड़ा खेद है । ग्राहकोंकी सहज प्रीति तथा आत्मीयताके भरोसे ही हमारी

अग्निपुराणकी विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या

चित्र-सूची

बहुरंगा चित्र

दुरंगा चित्र

श्रीगरुडवाहन भगवान् विष्णु

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

अधश्चोर्ध्वं हरिश्चाग्रे देहेन्द्रियमनोमुखे । इत्येवं संस्मरन् प्राणान् यस्त्यजेत्स हरिर्भवेत् ॥
(अग्निपुराण)

वर्ष ४५ } गोरखपुर, सौर माघ, श्रीकृष्ण-संवत् ५१९६, जनवरी १९७१ { संख्या १ पूर्ण संख्या ५३०

यमराजका नचिकेताको उपदेश

नास्ति विष्णुसमं ध्येयं तपो नानशनात्परम् । नास्त्यारोग्यसमं धन्यं नास्ति गङ्गासमा सरित् ॥
न सोऽस्ति बान्धवः कश्चिद्विष्णुं मुक्त्वा जगद्गुरुम् । अधश्चोर्ध्वं हरिश्चाग्रे देहेन्द्रियमनोमुखे ॥
इत्येवं संस्मरन् प्राणान् यस्त्यजेत्स हरिर्भवेत् ।

(अग्निपुराण, ३८२ । १४-१५½)

विष्णुके समान कोई ध्येय नहीं है, निराहार रहनेसे बढ़कर कोई तपस्या नहीं है, आरोग्यके समान कोई बहुमूल्य वस्तु नहीं है और गङ्गाजीके तुल्य दूसरी कोई नदी नहीं है । जगद्गुरु भगवान् विष्णुको छोड़कर दूसरा कोई बान्धव नहीं है । नीचे-ऊपर, आगे, देह, इन्द्रिय, मन तथा मुख—सबमें और सर्वत्र भगवान् श्रीहरि विराजमान हैं—इस प्रकार भगवान्का चिन्तन करते हुए जो प्राणोंका परित्याग करता है, वह साक्षात् श्रीहरिके स्वरूपमें मिल जाता है ।

दो सौ एकवाँ अध्याय

नवव्यूहार्चन

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं नवव्यूहार्चनकी विधि बताऊँगा, जिसका उपदेश भगवान् श्रीहरिने नारदजीके प्रति किया था। पद्ममय मण्डलके बीचमें 'अ' बीजसे युक्त वासुदेवकी पूजा करे (यथा—अं वासुदेवाय नमः)। 'आ' बीजसे युक्त संकर्षणका अग्निकोणमें, 'अं' बीजसे युक्त प्रद्युम्न का दक्षिणमें, 'अः' बीजवाले अनिरुद्धका नैर्ऋत्यकोणमें, प्रणवयुक्त नारायणका पश्चिममें, तत्सद् ब्रह्मका वायव्यकोणमें, 'हूं' बीजसे युक्त विष्णुका और 'क्ष्रौं' बीजसे युक्त नृसिंहका उत्तर दिशामें, पृथ्वी और वराहका ईशानकोणमें तथा पश्चिम द्वारमें पूजन करे ॥ १-३ ॥

'क ट प सं'—इन बीजोंसे युक्त पूर्वाभिमुख गरुड़का दक्षिण दिशामें पूजन करे। 'ख छ व हुं फट्' तथा 'ख ठ फ शं'—इन बीजोंसे युक्त गदाकी चन्द्रमण्डलमें पूजा करे। 'घ ण मं क्ष' तथा 'धं ब द म ह'—इन बीजोंसे युक्त श्रीदेवीका कोणभागमें पूजन करे। दक्षिण तथा उत्तर दिशामें 'ग ड व शं'—इन बीजोंसे युक्त पुष्टिदेवीकी अर्चना करे। पीठके पश्चिम भागमें 'ध व'—इन बीजोंसे युक्त वनमालाका पूजन करे। 'स ह ल'—इन बीजोंसे युक्त श्रीवत्सकी पश्चिम दिशामें पूजा करे और 'छ त य'—इन बीजोंसे युक्त कौस्तुभ का जलमें पूजन करे ॥ ४-६ ॥

फिर दशमाङ्ग-क्रमसे विष्णुका और उनके अधोभागमें भगवान् अनन्तका उनके नामके साथ 'नमः' पद जोड़कर पूजन करे। दस* अङ्गादिका तथा महेन्द्र आदि दस दिक्पालोंका पूर्वादि दिशाओंमें पूजन करे। पूर्वादि दिशाओंमें चार कलशोंका भी पूजन करे। तोरण, वितान (चँदोवा) तथा अग्नि, वायु और चन्द्रमाके बीजोंसे युक्त मण्डलोंका क्रमशः ध्यान करके अपने शरीरको वन्दनापूर्वक अमृतसे प्लावित करे। आकाशमें स्थित आत्माके सूक्ष्मरूपका ध्यान करके यह भावना करे कि वह चन्द्रमण्डलसे झरे हुए श्वेत अमृतकी धारामें निमग्न है। प्लवनसे जिसका संस्कार किया गया है, यह अमृत ही आत्माका बीज है। उस अमृतसे उत्पन्न होनेवाले पुरुषको आत्मा (अपना स्वरूप) माने। यह भावना करे कि 'मैं स्वयं ही विष्णुरूपसे प्रकट हुआ हूँ।' इसके बाद द्वादश बीजोंका न्यास करे। क्रमशः वक्षःस्थल, मस्तक, शिखा, पृष्ठभाग, नेत्र तथा दोनों हाथोंमें हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्रत्रय और अस्त्र—इन अङ्गोंका न्यास करे। दोनों हाथोंमें अस्त्रका न्यास करनेके पश्चात् साधकके शरीरमें दिव्यता आ जाती है ॥ ७-१२ ॥

जैसे अपने शरीरमें न्यास करे, वैसे ही देवताके विग्रहमें भी करे तथा शिष्यके शरीरमें भी उसी तरह न्यास करे। हृदयमें जो श्रीहरिका पूजन किया जाता है, उसे 'निर्माल्यरहित पूजा' कहा गया है। मण्डल आदिमें निर्माल्यसहित पूजा की जाती है। दीक्षाकालमें शिष्योंके नेत्र बँधे रहते हैं। उस अवस्थामें इष्टदेवके विग्रहपर वे जिस फूलको फेंकें, तदनुसार ही उनका नामकरण करना चाहिये। शिष्योंको वामभागमें बैठाकर अग्निमें तिल, चावल और घीकी आहुति दे। एक सौ आठ आहुतियाँ देनेके पश्चात् कायशुद्धिके लिये एक सहस्र आहुतियों का हवन करे। नवव्यूहकी मूर्तियों तथा अङ्गोंके लिये सौसे अधिक आहुतियाँ देनी चाहिये। तदनन्तर पूर्णाहुति देकर गुरु उन शिष्योंको दीक्षा दे तथा शिष्योंको चाहिये कि वे धनसे गुरुकी पूजा करें ॥ १३-१६ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'नवव्यूहार्चनवर्णन' नामक दो सौ एकवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २०१ ॥

दो सौ दोवाँ अध्याय

देवपूजाके योग्य और अयोग्य पुष्प

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! भगवान् श्रीहरि पुष्प, गन्ध, धूप, दीप और नैवेद्यके समर्पणसे ही प्रसन्न हो जाते हैं। मैं तुम्हारे सम्मुख देवताओंके योग्य एवं अयोग्य पुष्पोंका वर्णन करता हूँ। पूजनमें मालती पुष्प उत्तम है। तमाल-पुष्प भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है। मल्लिका (मोतिया) समस्त पापोंका नाश करती है तथा यूथिका (जूही) विष्णुलोक—

* पाँच अङ्गन्यास तथा पाँच करन्यास।

प्रदान करनेवाली है । अतिमुक्तक (मोगरा) और लोध्रपुष्प विष्णुलोककी प्राप्ति करानेवाले हैं । करवीर-कुसुमोंसे पूजन करनेवाला वैकुण्ठको प्राप्त होता है तथा जपा पुष्पोंसे मनुष्य पुण्य उपलब्ध करता है । पाटली, कुब्जक और तगर पुष्पोंसे पूजन करनेवाला विष्णुलोकका अधिकारी होता है । कर्णिकार (कनेर)द्वारा पूजन करनेसे वैकुण्ठकी प्राप्ति होती है एवं कुरण्ट (पीली कटसरैया)के पुष्पोंसे किया हुआ पूजन पापोंका नाश करनेवाला होता है । कमल, कुन्द एवं केतकीके पुष्पोंसे परमगतिकी प्राप्ति होती है । बाणपुष्प, बर्बर पुष्प और कृष्ण तुलसीके पत्तोंसे पूजन करनेवाला श्रीहरिके लोकमें जाता है । अशोक, तिलक तथा आटरूष (अडूसे)के फूलोंका पूजनमें उपयोग करनेसे मनुष्य मोक्षका भागी होता है । बिल्वपत्रों एवं शमीपत्रोंसे परमगति सुलभ होती है । तमालदल तथा भृङ्गराज-कुसुमोंसे पूजन करनेवाला विष्णुलोकमें निवास करता है । कृष्ण तुलसी, शुक्ल तुलसी, कल्हार, उत्पल, पद्म एवं कोकनद—ये पुष्प पुण्यप्रद माने गये हैं ॥ १—७ ॥

भगवान् श्रीहरि सौ कमलोंकी माला समर्पण करनेसे परम प्रसन्न होते हैं । नीप, अर्जुन, कदम्ब, सुगन्धित बकुल (मौलसिरी), किंशुक (पलाश), मुनि (अगस्त्यपुष्प), गोकर्ण, नागकर्ण (रक्त एरण्ड), संध्यापुष्पी (चमेली), बिल्वातक, रञ्जनी एवं केतकी तथा कूष्माण्ड, ग्रामकर्कटी, कुश, काश, सरपत, विभीतक, मरुआ तथा अन्य सुगन्धित पत्तोंद्वारा भक्तिपूर्वक पूजन करनेसे भगवान् श्रीहरि प्रसन्न हो जाते हैं । इनसे पूजा करनेवालेके पाप नष्ट होकर उसको भोग-मोक्षकी प्राप्ति होती है । लक्ष स्वर्णभारसे पुष्प उत्तम है, पुष्पमाला उससे भी करोड़गुनी श्रेष्ठ है, अपने तथा दूसरों के उद्यानके पुष्पोंकी अपेक्षा वन्य पुष्पोंका तिगुना फल माना गया है ॥ ८—११ ½ ॥

झड़कर गिरे, अधिकाङ्ग एवं मसले हुए पुष्पोंसे श्रीहरि का पूजन न करे । इसी प्रकार कचनार, धतूर, गिरिकर्णिका (सफेद किणही), कुटज, शाल्मलि (सेमर) एवं शिरीष (सिरस) वृक्षके पुष्पोंसे भी श्रीविष्णुकी अर्चना न करे । इससे पूजा करनेवालेका नरक आदिमें पतन होता है । विष्णु भगवान्का सुगन्धित रक्तकमल तथा नीलकमल-कुसुमों से पूजन होता है । भगवान् शिवका आक, मदार, धतूर पुष्पोंसे पूजन किया जाता है, किंतु कुटज, ककटी एवं केतकी (केवड़े)के फूल शिवके ऊपर नहीं चढ़ाने चाहिये । कूष्माण्ड एवं निम्बके पुष्प तथा अन्य गन्धहीन पुष्प 'पैशाच' माने गये हैं ॥ १२—१५ ॥

अहिंसा, इन्द्रियसंयम, क्षमा, ज्ञान, दया एवं स्वाध्याय आदि आठ भावपुष्पोंसे देवताओंका पूजन करके मनुष्य भोग मोक्षका भागी होता है । इनमें अहिंसा प्रथम पुष्प है, इन्द्रिय निग्रह द्वितीय पुष्प है, सम्पूर्ण भूत प्राणियोंपर दया तृतीय पुष्प है, क्षमा चौथा विशिष्ट पुष्प है । इसी प्रकार क्रमशः शम, तप एवं ध्यान पाँचवें, छठे और सातवें पुष्प हैं । सत्य आठवाँ पुष्प है । इनसे पूजित होनेपर भगवान् केशव प्रसन्न हो जाते हैं । इन आठ भावपुष्पोंसे पूजा करनेपर ही भगवान् केशव संतुष्ट होते हैं । नरश्रेष्ठ ! अन्य पुष्प तो पूजाके बाह्य उपकरण हैं, श्रीविष्णु तो भक्ति एवं दयासे समन्वित भाव पुष्पोंद्वारा पूजित होनेपर परितुष्ट होते हैं ॥ १६—१९ ॥

जल वारुण पुष्प है । घृत, दुग्ध, दधि सौम्य पुष्प हैं । अन्नादि प्राजापत्य पुष्प हैं, धूप-दीप आग्नेय पुष्प हैं, फल-पुष्पादि पञ्चम वानस्पत्य पुष्प हैं, कुशमूल आदि पार्थिव पुष्प हैं, गन्ध-चन्दन वायव्य कुसुम हैं, श्रद्धादि भाव वैष्णव प्रसून हैं । ये आठ पुष्पिकाएँ हैं, जो सब कुछ देनेवाली हैं । आसन (योगपीठ), मूर्ति-निर्माण, पञ्चाङ्गन्यास तथा अष्टपुष्पिकाएँ—ये विष्णुरूप हैं । भगवान् श्रीहरि पूर्वोक्त अष्टपुष्पिकाद्वारा पूजन करनेसे प्रसन्न होते हैं । इसके अतिरिक्त भगवान् श्रीविष्णुका 'वासुदेव' आदि नामोंसे एवं श्रीशिवका 'ईशान' आदि नाम पुष्पोंसे भी पूजन किया जाता है ॥ २०—२३ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'पुष्पाध्याय' नामक दो सौ दोवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २०२ ॥

दो सौ तीनवाँ अध्याय

नरकोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ ! अब मैं नरकोंका वर्णन करता हूँ । भगवान् श्रीविष्णुका पुष्पादि उपचारोंसे पूजन करनेवाले नरकमें नहीं प्राप्त होते । आयुके समाप्त होनेपर मनुष्य न चाहता हुआ भी प्राणोंसे वियुक्त होता है । देहधारी जीव जल, अग्नि, विष, शस्त्राघात, भूख, व्याधि या पर्वतसे पतन—किसी-न-किसी निमित्तको पाकर प्राणोंसे हाथ धो

बैठता है। वह अपने कर्मोंके अनुसार यातनाएँ भोगनेके लिये दूसरा शरीर ग्रहण करता है। इस प्रकार पापकर्म करनेवाला दुःख भोगता है, परंतु धर्मात्मा पुरुष सुखका भोग करता है। मृत्युके पश्चात् पापी जीवको यमदूत बड़े दुर्गम मार्गसे ले जाते हैं और वह यमपुरीके दक्षिण द्वारसे यमराजके पास पहुँचाया जाता है। वे यमदूत बड़े डरावने होते हैं। परंतु धर्मात्मा मनुष्य पश्चिम आदि द्वारोंसे ले जाये जाते हैं। वहाँ पापी जीव यमराजकी आज्ञासे यमदूतोंद्वारा नरकोंमें गिराये जाते हैं, किंतु वसिष्ठ आदि ऋषियोंद्वारा प्रतिपादित धर्मका आचरण करनेवाले स्वर्गमें ले जाये जाते हैं। गोहत्यारा 'महावीचि' नामक नरकमें एक लाख वर्षतक पीड़ित किया जाता है। ब्रह्मघाती अत्यन्त दहकते हुए 'ताम्रकुम्भ' नामक नरकमें गिराये जाते हैं और भूमिका अपहरण करनेवाले पापीको महाप्रलय कालतक 'रौरव-नरक'में धीरे धीरे दुःसह पीड़ा दी जाती है। स्त्री, बालक अथवा वृद्धोंका वध करनेवाले पापी चौदह इन्द्रोंके राज्यकालपर्यन्त 'महारौरव'नामक रौद्र नरकमें क्लेश भोगते हैं। दूसरोंके घर और खेतको जलानेवाले अत्यन्त भयंकर 'महारौरव' नरकमें एक कल्पपर्यन्त पकाये जाते हैं। चोरी करनेवालेको 'तामिस्र' नामक नरकमें गिराया जाता है। इसके बाद उसे अनेक कल्पोंतक यमराजके अनुचर भालोंसे बींधते रहते हैं और फिर 'महातामिस्र' नरकमें जाकर वह पापी सर्पों और जोंकों द्वारा पीड़ित किया जाता है। मातृघाती आदि मनुष्य 'असिपत्रवन' नामक नरकमें गिराये जाते हैं। वहाँ तलवारोंसे उनके अङ्ग तबतक काटे जाते हैं, जबतक यह पृथ्वी स्थित रहती है। जो इस लोकमें दूसरे प्राणियोंके हृदयको जलाते हैं, वे अनेक कल्पोंतक 'करम्भवालुका' नरकमें जलती हुई रेतमें भुने जाते हैं। दूसरोंको बिना दिये अकेले मिष्टान्न भोजन करनेवाला 'काकोल' नामक नरकमें कीड़ा और विष्टाका भक्षण करता है। पञ्चमहायज्ञ और नित्यकर्मका परित्याग करनेवाला 'कुट्टल' नामक नरकमें जाकर मूत्र और रक्तका पान करता है। अभक्ष्य वस्तुका भक्षण करनेवालेको महादुर्गन्धमय नरकमें गिरकर रक्तका आहार करना पड़ता है॥ १—१२॥

दूसरोंको कष्ट देनेवाला 'तैलपाक' नामक नरकमें तिलोंकी भाँति पेरा जाता है। शरणागतका वध करनेवालेको भी 'तैलपाक'में पकाया जाता है। यज्ञमें कोई चीज देनेकी प्रतिज्ञा करके न देनेवाला 'निरुच्छ्वास'में, रस विक्रय करनेवाला 'वज्रकटाह' नामक नरकमें और असत्यभाषण करनेवाला 'महापात' नामक नरकमें गिराया जाता है॥१३-१४॥

पापपूर्ण विचार रखनेवाला 'महाज्वाल'में, अगम्या स्त्रीके साथ गमन करनेवाला 'क्रकच'में, वर्णसंकर संतान उत्पन्न करनेवाला 'गुडपाक'में, दूसरोंके मर्मस्थानोंमें पीड़ा पहुँचानेवाला 'प्रतुद'में, प्राणिहिंसा करनेवाला 'क्षारहृद'में, भूमिका अपहरण करनेवाला 'क्षुरधार'में, गौ और स्वर्णकी चोरी करनेवाला 'अम्बरीष'में, वृक्ष काटनेवाला 'वज्रशस्त्र'में, मधु चुरानेवाला 'परीताप'में, दूसरोंका धन अपहरण करनेवाला 'कालसूत्र'में, अधिक मांस खानेवाला 'कश्मल'में और पितरोंको पिण्ड न देनेवाला 'उग्रगन्ध' नामक नरकमें यमदूतोंद्वारा ले जाया जाता है। घूस खानेवाले 'दुर्धर' नामक नरकमें और निरपराध मनुष्योंको कैद करनेवाले 'लौहमय मञ्जूष' नामक नरकमें यमदूतोंद्वारा ले जाकर कैद किये जाते हैं। वेदनिन्दक मनुष्य 'अप्रतिष्ठ' नामक नरकमें गिराया जाता है। झूठी गवाही देनेवाला 'पूतिवक्त्र'में, धनका अपहरण करनेवाला 'परिलुण्ठ'में, बालक, स्त्री और वृद्धकी हत्या करनेवाला तथा ब्राह्मणको पीड़ा देनेवाला 'कराल'में, मद्यपान करनेवाला ब्राह्मण 'विलेप'में और मित्रोंमें परस्पर भेदभाव करानेवाला 'महाप्रेत' नरकको प्राप्त होता है। परायी स्त्रीका उपभोग करनेवाले पुरुष और अनेक पुरुषोंसे सम्भोग करनेवाली नारीको 'शाल्मल' नामक नरकमें जलती हुई लोहमयी शिलाके रूपमें अपनी उस प्रिया अथवा प्रियका आलिङ्गन करना पड़ता है॥ १५—२१॥

नरकोंमें चुगली करनेवालोंकी जीभ खींचकर निकाल ली जाती है, परायी स्त्रियोंको कुदृष्टिसे देखनेवालोंकी आँखें फोड़ी जाती हैं, माता और पुत्रीके साथ व्यभिचार करनेवाले धधकते हुए अंगारोंपर फेंक दिये जाते हैं, चोरोंको छुरोंसे काटा जाता है और मांस भक्षण करनेवाले नरपिशाचोंको उन्हींका मांस काटकर खिलाया जाता है। मासोपवास, एकादशीव्रत अथवा भीष्मपञ्चकव्रत करनेवाला मनुष्य नरकोंमें नहीं जाता॥ २२—२३॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'एक सौ चवालीस नरकोंके स्वरूपका वर्णन' नामक दो सौ तीनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २०३॥

दो सौ चारवाँ अध्याय

मासोपवास-व्रत

अग्निदेव कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ ! अब मैं तुम्हारे सम्मुख सबसे उत्तम मासोपवास-व्रतका वर्णन करता हूँ। वैष्णव-यज्ञका अनुष्ठान करके, आचार्यकी आज्ञा लेकर, कृच्छ्र आदि व्रतोंसे अपनी शक्तिका अनुमान करके मासोपवास व्रत करना चाहिये। वानप्रस्थ, संन्यासी एवं विधवा स्त्री—इनके लिये मासोपवास-व्रतका विधान है ॥ १-२ ॥

आश्विनके शुक्ल पक्षकी एकादशीको उपवास रखकर तीस दिनोंके लिये निम्नलिखित संकल्प करके मासोपवास-व्रत ग्रहण करे—'श्रीविष्णो ! मैं आजसे लेकर तीस दिनतक आपके उत्थानकालपर्यन्त निराहार रहकर आपका पूजन करूँगा। सर्वव्यापी श्रीहरे ! आश्विन शुक्ल एकादशीसे आपके उत्थानकाल कार्तिक शुक्ल एकादशीके मध्यमें यदि मेरी मृत्यु हो जाय तो (आपकी कृपासे) मेरा व्रत भङ्ग न हो*।' व्रत करनेवाला दिनमें तीन बार स्नान करके सुगन्धित द्रव्य और पुष्पोंद्वारा प्रातः, मध्याह्न एवं सायंकाल श्रीविष्णुका पूजन करे तथा विष्णु-सम्बन्धी गान, जप और ध्यान करे। व्रती पुरुष वक्वादका परित्याग करे और धनकी इच्छा भी न करे। वह किसी भी व्रतहीन मनुष्यका स्पर्श न करे और शास्त्रनिषिद्ध कर्मोंमें लगे हुए लोगोंका चालक—प्रेरक न बने। उसे तीस दिनतक देवमन्दिरमें ही निवास करना चाहिये। व्रत करनेवाला मनुष्य कार्तिकके शुक्लपक्षकी द्वादशीको भगवान् श्रीविष्णुकी पूजा करके ब्राह्मणोंको भोजन करावे। तदनन्तर उन्हें दक्षिणा देकर और स्वयं पारण करके व्रतका विसर्जन करे। इस प्रकार तेरह पूर्ण मासोपवास-व्रतोंका अनुष्ठान करनेवाला भोग और मोक्ष—दोनोंको प्राप्त कर लेता है ॥ ३-९ ॥

(उपर्युक्त विधिसे तेरह मासोपवास-व्रतोंका अनुष्ठान करनेके बाद व्रत करनेवाला व्रतका उद्यापन करे।) वह वैष्णव-यज्ञ कराये, अर्थात् तेरह ब्राह्मणोंका पूजन करे। तदनन्तर उनसे आज्ञा लेकर किसी ब्राह्मणको तेरह ऊर्ध्ववस्त्र, अधोवस्त्र, पात्र, आसन, छत्र, पवित्री, पादुका, योगपट्ट और यज्ञोपवीतों का दान करे ॥ १०-१२ ॥

तत्पश्चात् शय्यापर अपनी और श्रीविष्णुकी स्वर्णमयी प्रतिमाका पूजन करके उसे किसी दूसरे ब्राह्मणको दान करे एवं उस ब्राह्मणका वस्त्र आदिसे सत्कार करे। तदनन्तर व्रत करनेवाला यह कहे—'मैं सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर ब्राह्मणों और श्रीविष्णु भगवान्‌के कृपा-प्रसादसे विष्णुलोकको जाऊँगा। अब मैं विष्णुस्वरूप होता हूँ।' इसके उत्तरमें ब्राह्मणोंको कहना चाहिये—'देवात्मन् ! तुम विष्णुके उस रोग-शोक रहित परमपदको जाओ-जाओ और वहाँ विष्णुका स्वरूप धारण करके विमानमें प्रकाशित होते हुए स्थित होओ।' फिर व्रत करनेवाला द्विजोंको प्रणाम करके वह शय्या आचार्यको दान करे। इस विधिसे व्रत करनेवाला अपने सौ कुलोंका उद्धार करके उन्हें विष्णुलोकमें ले जाता है। जिस देशमें मासोपवास-व्रत करनेवाला रहता है, वह देश पापरहित हो जाता है। फिर उस सम्पूर्ण कुलकी तो बात ही क्या है, जिसमें मासोपवास-व्रतका अनुष्ठान करनेवाला उत्पन्न हुआ होता है। व्रतयुक्त मनुष्यको मूर्च्छित देखकर उसे घृतमिश्रित दुग्धका पान कराये। निम्नलिखित वस्तुएँ व्रतको नष्ट नहीं करतीं—ब्राह्मणकी अनुमतिसे ग्रहण किया हुआ हविष्य, दुग्ध, आचार्यकी आज्ञासे ली हुई ओषधि, जल, मूल और फल। 'इस व्रतमें भगवान् श्रीविष्णु ही महान् ओषधिरूप हैं'—इसी विश्वाससे व्रत करनेवाला इस व्रतसे उद्धार पाता है ॥ १३-१८ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'मासोपवास-व्रतका वर्णन' नामक दो सौ चारवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २०४ ॥

---

* अद्यप्रभृत्यहं विष्णो यावदुत्थानकं तव। अर्चये त्वामनश्नन् हि यावत्त्रिंशद्दिनानि तु॥
कार्त्तिकाश्विनयोर्विष्णो यावदुत्थानकं तव। म्रिये यद्यन्तरालेऽहं व्रतभङ्गो न मे भवेत्॥
(अग्नि० २०४।४-५)

दो सौ पाँचवाँ अध्याय

भीष्मपञ्चकव्रत

अग्निदेव कहते हैं—अब मैं सब कुछ देनेवाले व्रतराज 'भीष्मपञ्चक'के विषयमें कहता हूँ। कार्तिकके शुक्लपक्षकी एकादशीको यह व्रत ग्रहण करे। पाँच दिनोंतक तीनों समय स्नान करके पाँच तिल और यवोंके द्वारा देवता तथा पितरोंका तर्पण करे। फिर मौन रहकर भगवान् श्रीहरिका पूजन करे। देवाधिदेव श्रीविष्णुको पञ्चगव्य और पञ्चामृतसे स्नान करावे और उनके श्रीअङ्गोंमें चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्योंका आलेपन करके उनके सम्मुख घृतयुक्त गुग्गुल जलावे॥ १—३॥

प्रातःकाल और रात्रिके समय भगवान् श्रीविष्णुको दीप दान करे और उत्तम भोज्य-पदार्थका नैवेद्य समर्पित करे। व्रती पुरुष 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' इस द्वादशाक्षरमन्त्रका एक सौ आठ बार जप करे। तदनन्तर घृतसिक्त तिल और जौका अन्तमें 'स्वाहा'से संयुक्त 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'—इस द्वादशाक्षर मन्त्रसे हवन करे। पहले दिन भगवान्‌के चरणोंका कमलके पुष्पोंसे, दूसरे दिन घुटनों और सक्थिभाग (दोनों ऊरुओं)का बिल्वपत्रोंसे, तीसरे दिन नाभिका भृङ्गराजसे, चौथे दिन बाणपुष्प, बिल्वपत्र और जपापुष्पोंद्वारा एवं पाँचवें दिन मालती पुष्पोंसे सर्वाङ्गका पूजन करे। व्रत करनेवालेको भूमिपर शयन करना चाहिये। एकादशीको गोमय, द्वादशीको गोमूत्र, त्रयोदशीको दधि, चतुर्दशीको दुग्ध और अन्तिम दिन पञ्चगव्यका आहार करे। पौर्णमासीको 'नक्तव्रत' करना चाहिये। इस प्रकार व्रत करनेवाला भोग और मोक्ष—दोनोंको प्राप्त कर लेता है। भीष्मपितामह इसी व्रतका अनुष्ठान करके भगवान् श्रीहरिको प्राप्त हुए थे, इसीसे यह 'भीष्मपञ्चक'के नामसे प्रसिद्ध है। ब्रह्माजीने भी इस व्रतका अनुष्ठान करके श्रीहरिका पूजन किया था। इसलिये यह व्रत पाँच उपवास आदिसे युक्त है॥ ४—९॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'भीष्मपञ्चक-व्रतका कथन' नामक दो सौ पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २०५॥

दो सौ छठा अध्याय

अगस्त्यके उद्देश्यसे अर्घ्यदान एवं उनके पूजनका कथन

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! महर्षि अगस्त्य साक्षात् भगवान् विष्णुके स्वरूप हैं। उनका पूजन करके मनुष्य श्रीहरिको प्राप्त कर लेता है। जब सूर्य कन्या-राशिको प्राप्त न हुए हों (किंतु उसके निकट हों) तब ३½ दिनतक उपवास रखकर अगस्त्यका पूजन करके उन्हें अर्घ्यदान दे। पहले दिन जब चार घड़ी दिन बाकी रहे, तब व्रत आरम्भ करके प्रदोषकालमें अगस्त्य मुनिकी काशपुष्पमयी मूर्तिको कलशपर स्थापित करे और उस कलशस्थित मूर्तिका पूजन करे। अर्घ्य देनेवालेको रात्रिमें जागरण भी करना चाहिये॥ १-२½॥ (अगस्त्यके आवाहनका मन्त्र यह है—)

> अगस्त्य मुनिशार्दूल तेजोराशे महामते॥
> इमां मम कृतां पूजां गृह्णीष्व प्रियया सह।

मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य! आप तेजःपुञ्जमय और महाबुद्धिमान् हैं। अपनी प्रियतमा पत्नी लोपामुद्राके साथ मेरे द्वारा की गयी इस पूजाको ग्रहण कीजिये॥ ३½॥

इस प्रकार अगस्त्यका आवाहन करे और उन्हें गन्ध, पुष्प, फल, जल आदिसे अर्घ्यदान दे। तदनन्तर मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यकी ओर मुख करके चन्दनादि उपचारोंद्वारा उनका पूजन करे। दूसरे दिन प्रातःकाल कलशस्थित अगस्त्यकी मूर्तिको किसी जलाशयके समीप ले जाकर निम्नलिखित मन्त्रसे उन्हें अर्घ्य समर्पित करे॥ ४½॥

> काशपुष्पप्रतीकाश अग्निमारुतसम्भव॥
> मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते।
> आतापिर्भक्षितो येन वातापिश्च महासुरः॥
> समुद्रः शोषितो येन सोऽगस्त्यः सम्मुखोऽस्तु मे।
> अगस्तिं प्रार्थयिष्यामि कर्मणा मनसा गिरा॥
> अर्चयिष्याम्यहं मैत्रं परलोकाभिकाङ्क्षया।

काशपुष्पके समान उज्ज्वल, अग्नि और वायुसे प्रादुर्भूत, मित्रावरुणके पुत्र, कुम्भसे प्रकट होनेवाले अगस्त्य! आपको नमस्कार है। जिन्होंने राक्षसराज आतापी और वातापीका

भक्षण कर लिया था तथा समुद्रको सुखा डाला था, वे अगस्त्य मेरे सम्मुख प्रकट हों। मैं मन, कर्म और वचनसे अगस्त्यकी प्रार्थना करता हूँ। मैं उत्तम लोकोंकी आकाङ्क्षासे अगस्त्यका पूजन करता हूँ ॥ ५-७½ ॥

चन्दन-दान मन्त्र

द्वीपान्तरसमुत्पन्नं देवानां परमं प्रियम् ॥
राजानं सर्ववृक्षाणां चन्दनं प्रतिगृह्यताम् ।

जम्बूद्वीपके बाहर उत्पन्न, देवताओंके परमप्रिय, समस्त वृक्षोंके राजा चन्दनको ग्रहण कीजिये ॥ ८½ ॥

पुष्पमाला अर्पण

धर्मार्थकाममोक्षाणां भाजनी पापनाशनी ॥
सौभाग्यारोग्यलक्ष्मीदा पुष्पमाला प्रगृह्यताम् ।

महर्षि अगस्त्य ! यह पुष्पमाला धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंको देनेवाली एवं पापोंका नाश करनेवाली है। सौभाग्य, आरोग्य और लक्ष्मीकी प्राप्ति करानेवाली इस पुष्पमालाको आप ग्रहण कीजिये ॥ ९½ ॥

धूपदान मन्त्र

धूपोऽयं गृह्यतां देव ! भक्तिं मे ह्यचलां कुरु ॥
ईप्सितं मे वरं देहि परत्र च शुभां गतिम् ।

भगवन् ! आप यह धूप ग्रहण कीजिये और आपमें मेरी भक्तिको अविचल कीजिये। मुझे इस लोकमें मनोवाञ्छित वस्तुएँ और परलोकमें शुभगति प्रदान कीजिये ॥ १०½ ॥

वस्त्र, धान्य, फल, सुवर्णसे युक्त अर्घ्य-दान-मन्त्र

सुरासुरैर्मुनिश्रेष्ठ सर्वकामफलप्रद ॥
वस्त्रधान्यफलैर्हेम्ना दत्तमर्घ्यो ग्रह मया ।

देवताओं तथा असुरोंसे भी समादृत मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य ! आप सम्पूर्ण अभीष्ट फल प्रदान करनेवाले हैं। मैं आपको वस्त्र, धान्य, फल और सुवर्णसे युक्त यह अर्घ्य प्रदान करता हूँ ॥ ११½ ॥

फलार्घ्यदान मन्त्र

अगस्त्यं बोधयिष्यामि यन्मया मनसा कृतम् ।
फलैरर्घ्यं प्रदास्यामि गृहाणार्घ्यं महामुने ॥

महामुने ! मैंने मनमें जो अभिलाषा कर रखी थी, तदनुसार मैं अगस्त्यजीको जगाऊँगा। आपको फलार्घ्य अर्पित करता हूँ, इसे ग्रहण कीजिये ॥ १२ ॥

(केवल द्विजोंके लिये उच्चारणीय अर्घ्यदानका वैदिक मन्त्र)

अगस्त्य एव खनमानः खनित्रैः प्रजामपत्यं बलमीहमानः ।
उभौ वर्णावृषिरुग्रतेजाः पुपोष सत्या देवेष्वाशिषो जगाम ॥

महर्षि अगस्त्य इस प्रकार प्रजा, संतति तथा बल एवं पुष्टिके लिये सचेष्ट हो कुदाल या खनित्रसे धरतीको खोदते थे। उन उग्रतेजस्वी ऋषिने दोनों वर्णों (सम्पूर्ण इन्द्रियोंकी शक्ति) का पोषण किया। देवताओंके प्रति उनकी सारी आशी प्रार्थना सत्य हुई ॥ १३ ॥

(तदनन्तर निम्नलिखित मन्त्रसे लोपामुद्राको अर्घ्यदान दे)

राजपुत्रि नमस्तुभ्यं मुनिपत्नि महाव्रते ।
अर्घ्यं गृहाण देवेशि लोपामुद्रे यशस्विनि ॥

महान् व्रतका पालन करनेवाली राजपुत्री अगस्त्यपत्नी देवेश्वरी लोपामुद्रे ! आपको नमस्कार है। यशस्विनि ! इस अर्घ्यको ग्रहण कीजिये ॥ १४ ॥

अगस्त्यके लिये पञ्चरत्न, सुवर्ण और रजतसे युक्त एवं सप्तधान्यसे पूर्ण पात्र तथा दधि-चन्दनसे समन्वित अर्घ्य प्रदान करे। स्त्रियों और शूद्रोंको 'काशपुष्पप्रतीकाश' आदि पौराणिक मन्त्रसे अर्घ्य देना चाहिये ॥ १५½ ॥

विसर्जन मन्त्र

अगस्त्य मुनिशार्दूल तेजोराशे च सर्वद ॥
इमां मम कृतां पूजां गृहीत्वा व्रज शान्तये ।

मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य ! आप तेजःपुञ्जसे प्रकाशित और सब कुछ देनेवाले हैं। मेरे द्वारा की गयी इस पूजाको ग्रहणकर शान्तिपूर्वक पधारिये ॥ १६½ ॥

इस प्रकार अगस्त्यका विसर्जन करके उनके उद्देश्यसे किसी एक धान्य, फल और रसका त्याग करे। तदनन्तर ब्राह्मणोंको घृतमिश्रित खीर और लड्डू आदि पदार्थोंका भोजन कराये और उन्हें गौ, वस्त्र, सुवर्ण एवं दक्षिणा दे। इसके बाद उस कुम्भका मुख घृतमिश्रित खीरयुक्त पात्रसे ढककर, उसमें सुवर्ण रखकर यह कलश ब्राह्मणको दान दे। इस प्रकार सात वर्षोंतक अगस्त्यको अर्घ्य देकर सभी लोग सब कुछ प्राप्त कर सकते हैं। इससे स्त्री सौभाग्य और पुत्रोंको, कन्या पतिको और राजा पृथ्वीको प्राप्त करता है ॥ १७-२० ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'अगस्त्यके लिये अर्घ्यदानका वर्णन' नामक दो सौ छठा अध्याय पूरा हुआ ॥ २०६ ॥

दो सौ सातवाँ अध्याय

कौमुद व्रत

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ ! अब मैं 'कौमुद'व्रतके विषयमें कहता हूँ। इसे आश्विनके शुक्लपक्षमें आरम्भ करना चाहिये। व्रत करनेवाला एकादशीको उपवास करके एकमास पर्यन्त भगवान् श्रीहरिका पूजन करे ॥ १ ॥

व्रती निम्नलिखित मन्त्रसे संकल्प करे—

आश्विने शुक्लपक्षेऽहमेकाहारो हरिं जपन्।
मासमेकं भुक्तिमुक्त्यर्थं करिष्ये कौमुदं व्रतम् ॥

मैं आश्विनके शुक्ल पक्षमें एक समय भोजन करके भगवान् श्रीहरिके मन्त्रका जप करता हुआ भोग और मोक्षकी प्राप्तिके लिये एक मासपर्यन्त कौमुद-व्रतका अनुष्ठान करूँगा॥२॥

तदनन्तर व्रतके समाप्त होनेपर एकादशीको उपवास करे और द्वादशीको भगवान् श्रीविष्णुका पूजन करे। उनके श्रीविग्रहमें चन्दन, अगर और केसरका अनुलेपन करके कमल, उत्पल, कह्लार एवं मालती पुष्पोंसे विष्णुकी पूजा करे। व्रत करनेवाला वाणीको संयममें रखकर तैलपूर्ण दीपक प्रज्वलित करे और दोनों समय खीर, मालपूए तथा लड्डुओंका नैवेद्य समर्पित करे। व्रती पुरुष 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'—इस द्वादशाक्षर मन्त्रका निरन्तर जप करे। अन्तमें ब्राह्मण भोजन कराके क्षमा प्रार्थनापूर्वक व्रतका विसर्जन करे। 'देवजागरणी' या 'हरिप्रबोधिनी' एकादशीतक एक मास पर्यन्त उपवास करनेसे 'कौमुदव्रत' पूर्ण होता है। इतने ही दिनोंका पूर्वोक्त मासोपवास भी होता है। किंतु इस कौमुद व्रतसे उसकी अपेक्षा अधिक फल भी प्राप्त होता है ॥ ३—६ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'कौमुद व्रतका वर्णन' नामक दो सौ सातवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २०७ ॥

दो सौ आठवाँ अध्याय

व्रतदानसमुच्चय

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ ! अब मैं सामान्य व्रतों और दानोंके विषयमें संक्षेपपूर्वक कहता हूँ। प्रतिपदा आदि तिथियों, सूर्य आदि वारों, कृत्तिका आदि नक्षत्रों, विष्कम्भ आदि योगों, मेष आदि राशियों और ग्रहण आदिके समय उस कालमें जो व्रत, दान एवं तत्सम्बन्धी द्रव्य एवं नियमादि आवश्यक हैं, उनका भी वर्णन करूँगा। व्रतदानोपयोगी द्रव्य और काल सबके अधिष्ठातृ देवता भगवान् श्रीविष्णु हैं। सूर्य, शिव, ब्रह्मा, लक्ष्मी आदि सभी देव-देवियाँ श्रीहरिकी ही विभूति हैं। इसलिये उनके उद्देश्यसे किया गया व्रत, दान और पूजन आदि सब कुछ देनेवाला होता है ॥ १—३ ॥

श्रीविष्णु-पूजन मन्त्र

जगत्पते समागच्छ आसनं पाद्यमर्घ्यकम् ॥
मधुपर्कं तथाऽऽचामं स्नानं वस्त्रं च गन्धकम्।
पुष्पं धूपं च दीपं च नैवेद्यादि नमोऽस्तु ते ॥

जगत्पते ! आपको नमस्कार है। आइये और आसन, पाद्य, अर्घ्य, मधुपर्क, आचमन, स्नान, वस्त्र, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप एवं नैवेद्य ग्रहण कीजिये ॥ ४—५ ॥

पूजा, व्रत और दानमें उपर्युक्त मन्त्रसे श्रीविष्णुकी अर्चना करनी चाहिये। अब दानका सामान्य संकल्प भी सुनो—'आज मैं अमुक गोत्रवाले अमुक शर्मा आप ब्राह्मण देवताको समस्त पापोंकी शान्ति, आयु और आरोग्यकी वृद्धि, सौभाग्यके उदय, गोत्र और संततिके विस्तार, विजय एवं धनकी प्राप्ति, धर्म, अर्थ और कामके सम्पादन तथा पापनाशपूर्वक संसारसे मोक्ष पानेके लिये विष्णुदेवता सम्बन्धी इस द्रव्यका दान करता हूँ। मैं इस दानकी प्रतिष्ठा (स्थिरता) के लिये आपको यह अतिरिक्त सुवर्णादि द्रव्य समर्पित करता हूँ। मेरे इस दानसे सर्वलोकेश्वर भगवान् श्रीहरि सदा प्रसन्न हों। यज्ञ, दान और व्रतके स्वामी ! मुझे विद्या तथा यश आदि प्रदान कीजिये। मुझे धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप चारों पुरुषार्थ तथा मनोऽभिलषित वस्तुसे सम्पन्न कीजिये' ॥ ६—१०३ ॥

जो मनुष्य प्रतिदिन इस व्रत-दान-समुच्चयका पठन अथवा श्रवण करता है, वह अभीष्ट वस्तुसे युक्त एवं पापरहित होकर भोग और मोक्ष दोनोंको प्राप्त करता है। इस प्रकार भगवान् वासुदेव आदिसे सम्बन्धित नियम और पूजनसे अनेक प्रकारके तिथि, वार, नक्षत्र, संक्रान्ति, योग और मन्वादि सम्बन्धी व्रतोंका अनुष्ठान सिद्ध होता है॥ ११-१२॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'व्रतदानसमुच्चयका वर्णन' नामक दो सौ आठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २०८॥

दो सौ नवाँ अध्याय

धनके प्रकार, देश-काल और पात्रका विचार, पात्रभेदसे दानके फल भेद, द्रव्य-देवताओं तथा दान विधिका कथन

अग्निदेव कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ! अब मैं भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले दानधर्मोंका वर्णन करता हूँ, सुनो। दानके 'इष्ट' और 'पूर्त' दो भेद हैं। दानधर्मका आचरण करनेवाला सब कुछ प्राप्त कर लेता है। बावड़ी, कुआँ, तालाब, देवमन्दिर, अन्नका सदाव्रत तथा बगीचे आदि बनवाना 'पूर्तधर्म' कहा गया है, जो मुक्ति प्रदान करनेवाला है। अग्निहोत्र तथा सत्यभाषण, वेदोंका स्वाध्याय, अतिथिसत्कार और बलिवैश्वदेव—इन्हें 'इष्टधर्म' कहा गया है। यह स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला है। ग्रहणकालमें, सूर्यकी संक्रान्तिमें और द्वादशी आदि तिथियोंमें जो दान दिया जाता है, वह 'पूर्त' है। वह भी स्वर्ग प्रदान करनेवाला है। देश, काल और पात्रमें दिया हुआ दान करोड़गुना फल देता है। सूर्यके उत्तरायण और दक्षिणायन प्रवेशके समय, पुण्यमय विषुवकालमें, व्यतीपात, तिथिक्षय, युगारम्भ, संक्रान्ति, चतुर्दशी, अष्टमी, पूर्णिमा, द्वादशी, अष्टकाश्राद्ध, यज्ञ, उत्सव, विवाह, मन्वन्तरारम्भ, वैधृतियोग, दुःस्वप्नदर्शन, धन एवं ब्राह्मणकी प्राप्तिमें दान दिया जाता है। अथवा जिस दिन श्रद्धा हो उस दिन या सदैव दान दिया जा सकता है। दोनों अयन और दोनों विषुव—ये चार संक्रान्तियाँ, 'षडशीतिमुखा' नामसे प्रसिद्ध चार संक्रान्तियाँ तथा 'विष्णुपदा' नामसे विख्यात चार संक्रान्तियाँ—ये बारहों संक्रान्तियाँ ही दानके लिये उत्तम मानी गयी हैं। कन्या, मिथुन, मीन और धनु राशियोंमें जो सूर्यकी संक्रान्तियाँ होती हैं वे 'षडशीतिमुखा' कही जाती हैं, वे छियासीगुना फल देनेवाली हैं। उत्तरायण और दक्षिणायन सम्बन्धिनी (मकर एवं कर्ककी) संक्रान्तियोंके अतीत और अनागत (पूर्व तथा पर) घटिकाएँ पुण्य मानी गयी हैं। कर्क संक्रान्तिकी तीस तीन घड़ी और मकर संक्रान्तिकी बीस-बीस घड़ी पूर्व और परकी भी पुण्यकार्यके लिये विहित हैं। तुला और मेषकी संक्रान्ति वर्तमान होनेपर उसके पूर्वापरकी दस-दस घड़ीका समय पुण्यकाल है। 'षडशीतिमुखा' संक्रान्तियोंके व्यतीत होनेपर साठ घड़ीका समय पुण्यकालमें प्राप्त है। 'विष्णुपदा' नामसे प्रसिद्ध संक्रान्तियोंके पूर्वापरकी सोलह-सोलह घड़ियोंको पुण्यकाल माना गया है। श्रवण, अश्विनी और धनिष्ठाको एवं आश्लेषाके मस्तकभाग अर्थात् प्रथम चरणमें जब रविवारका योग हो, तब वह 'व्यतीपातयोग' कहलाता है॥ १—१३॥

कार्तिकके शुक्लपक्षकी नवमीको कृतयुग और वैशाखके शुक्लपक्षकी तृतीयाको त्रेता प्रारम्भ हुआ। अब द्वापरके विषयमें सुनो—माघमासकी पूर्णिमाको द्वापरयुग और भाद्रपदके कृष्णपक्षकी त्रयोदशीको कलियुगकी उत्पत्ति जाननी चाहिये। मन्वन्तरोंका आरम्भकाल या मन्वादि तिथियाँ इस प्रकार जाननी चाहिये—आश्विनके शुक्लपक्षकी नवमी, कार्तिककी द्वादशी, माघ एवं भाद्रपदकी तृतीया, फाल्गुनकी अमावास्या, पौषकी एकादशी, आषाढ़की दशमी, माघमासकी सप्तमी, श्रावणके कृष्णपक्षकी अष्टमी, आषाढ़की पूर्णिमा, कार्तिक, फाल्गुन एवं ज्येष्ठकी पूर्णिमा॥ १४-१८॥

मार्गशीर्षमासकी पूर्णिमाके बाद जो तीन अष्टमी तिथियाँ आती हैं, उन्हें तीन 'अष्टका' कहा गया है। अष्टमीका 'अष्टका' नाम है। इन अष्टकाओंमें दिया हुआ दान अक्षय होता है। गया, गङ्गा और प्रयाग आदि तीर्थोंमें तथा मन्दिरोंमें किसीके बिना माँगे दिया हुआ दान उत्तम माने। किंतु कन्यादानके लिये यह नियम लागू नहीं है। दाता पूर्वाभिमुख होकर दान दे और लेनेवाला उत्तराभिमुख होकर उसे ग्रहण करे। दान देनेवालेकी आयु बढ़ती है, किंतु लेनेवालेकी भी आयु क्षीण नहीं होती। अयन और प्रतिग्रहके

वे नाम एवं गोत्रका उच्चारण करके देय वस्तुका दान किया जाता है। कन्यादानमें इसकी तीन आवृत्तियाँ की जाती हैं। स्नान और पूजन करके हाथमें जल लेकर उपर्युक्त सकल्पपूर्वक दान दे। सुवर्ण, अश्व, तिल, हाथी, दासी, रथ, भूमि, गृह, कन्या और कपिला गौका दान—ये दस 'महादान' हैं। विद्या, पराक्रम, तपस्या, कन्या, यजमान और शिष्यसे मिला हुआ सम्पूर्ण धन दान नहीं, शुल्करूप है। शिल्पकलासे प्राप्त धन भी शुल्क ही है। ब्याज, खेती, वाणिज्य और दूसरेका उपकार करके प्राप्त किया हुआ धन, पासे, जुए, चोरी आदि प्रतिरूपक (स्वाँग बनाने) और साहसपूर्ण कर्मसे उपार्जित किया हुआ धन तथा छल कपटसे पाया हुआ धन—ये तीन प्रकारके धन क्रमशः सात्त्विक, राजस एवं तामस—तीन प्रकारके फल देते हैं। विवाहके समय मिला हुआ, ससुरालसे विदा होते समय प्रीतिके निमित्त प्राप्त हुआ, पतिद्वारा दिया गया, भाईसे मिला हुआ, मातासे प्राप्त हुआ तथा पितासे मिला हुआ—ये छः प्रकारके धन 'स्त्री धन' माने गये हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके अनुग्रहसे प्राप्त हुआ धन शूद्रका होता है। गौ, गृह, शय्या और स्त्री—ये अनेक व्यक्तियोंको नहीं दी जानी चाहिये। इनको अनेक व्यक्तियोंके साझेमें देना पाप है। प्रतिज्ञा करके फिर न देनेसे प्रतिज्ञाकर्ताके सौ कुलोंका विनाश हो जाता है। किसी भी स्थानपर उपार्जित किया हुआ पुण्य देवता, आचार्य एवं माता पिताको प्रयत्नपूर्वक समर्पित करना चाहिये। दूसरेसे लाभकी इच्छा रखकर दिया हुआ धन निष्फल होता है। धर्मकी सिद्धि श्रद्धासे होती है; श्रद्धापूर्वक दिया हुआ जल भी अक्षय होता है। जो ज्ञान, शील और सद्गुणोंसे सम्पन्न हो एवं दूसरोंको कभी पीड़ा न पहुँचाता हो, वह दानका उत्तम पात्र माना गया है। अज्ञानी मनुष्योंका पालन एवं त्राण करनेसे वह 'पात्र' कहलाता है। माताको दिया गया दान सौगुना और पिताको दिया हुआ हजार गुना होता है। पुत्री और सहोदर भाइको दिया हुआ दान अनन्त एवं अक्षय होता है। मनुष्येतर प्राणियोंको दिया गया दान सम होता है, न्यून या अधिक नहीं। पापात्मा मनुष्यको दिया गया दान अत्यन्त निष्फल जानना चाहिये। वर्णसंकरको दिया हुआ दान दुगुना, शूद्रको दिया हुआ दान चौगुना, वैश्य अथवा क्षत्रियको दिया हुआ आठगुना, ब्राह्मणब्रुव* (नाममात्रके ब्राह्मण) को दिया हुआ दान सोलहगुना और वेदपाठी ब्राह्मणको दिया हुआ दान सौगुना फल देता है। वेदोंके अभिप्रायका बोध करानेवाले आचार्यको दिया हुआ दान अनन्त होता है। पुरोहित एवं याजक आदिको दिया हुआ दान अक्षय कहा गया है। धनहीन ब्राह्मणोंको और यज्ञकर्ता ब्राह्मणको दिया हुआ दान अनन्त फलदायक होता है। तपोहीन, स्वाध्यायरहित और प्रतिग्रहमें रुचि रखनेवाला ब्राह्मण जलमें पत्थरकी नौकापर बैठे हुएके समान है, वह उस प्रस्तरमयी नौकाके साथ ही डूब जाता है। ब्राह्मणको स्नान एवं जलका उपस्पर्शन करके प्रयत्नपूर्वक पवित्र हो दान ग्रहण करना चाहिये। प्रतिग्रह लेनेवालेको सदैव गायत्रीका जप करना चाहिये एवं उसके साथ ही-साथ प्रतिगृहीत द्रव्य और देवताका उच्चारण करना चाहिये। प्रतिग्रह लेनेवाले श्रेष्ठ ब्राह्मणसे दान ग्रहण करके उच्चस्वरमें, क्षत्रियसे दान लेकर मन्दस्वरमें तथा वैश्यका प्रतिग्रह स्वीकार करके उपांशु (ओठोंको बिना हिलाये) जप करे। शूद्रसे प्रतिग्रह लेकर मानसिक जप और स्वस्तिवाचन करे ॥ १९–३९½ ॥

मुनिश्रेष्ठ! अभयके सर्वदेवगण देवता हैं, भूमिके विष्णु देवता हैं, कन्या और दास-दासीके देवता प्रजापति कहे गये हैं, गजके देवता भी प्रजापति ही हैं। अश्वके यम, एक खुरवाले पशुओंके सर्वदेवगण, महिषके यम, उष्ट्रके निर्ऋति, धेनुके रुद्र, बकरेके अग्नि, मेष, सिंह एवं वराहके जलदेवता, वन्य-पशुओंके वायु, जलपात्र और कलश आदि जलाशयोंके वरुण, समुद्रसे उत्पन्न होनेवाले रत्नों तथा स्वर्ण-लौहादि धातुओंके अग्नि, पक्वान्न और धान्योंके प्रजापति, सुगन्धके गन्धर्व, वस्त्रके बृहस्पति, सभी पक्षियोंके वायु, विद्या एवं विद्याङ्गोंके ब्रह्मा, पुस्तक आदिकी सरस्वती देवी, शिल्पके विश्वकर्मा एवं वृक्षोंके वनस्पति देवता हैं। ये समस्त द्रव्य देवता भगवान् श्रीहरिके अङ्गभूत हैं ॥ ४०–४६ ॥

छत्र, कृष्णमृगचर्म, शय्या, रथ, आसन, पादुका तथा वाहन—इनके देवता 'ऊर्ध्वाङ्गिरा' (उत्तानाङ्गिरा) कहे गये हैं। युद्धोपयोगी सामग्री, शस्त्र और ध्वज आदिके सर्वदेवगण देवता हैं। गृहके भी देवता सर्वदेवगण ही हैं। सम्पूर्ण पदार्थोंके देवता विष्णु अथवा शिव हैं, क्योंकि कोई

---

* गर्भाधानादिभिर्मन्त्रैर्वेदोपनयनेन च। नाध्यापयति नाधीते स भवेद्ब्राह्मणब्रुवः ॥ (व्यासस्मृति ४। ४२)

'जिसके गर्भाधानके संस्कार और वेदोक्त यज्ञोपवीत-संस्कार हुए हैं परंतु जो अध्ययन-अध्यापनका कार्य नहीं करता वह ब्राह्मणब्रुव कहलाता है।'

भी वस्तु उनसे भिन्न नहीं है। दान देते समय पहले द्रव्यका नाम ले। फिर 'ददामि' (देता हूँ) ऐसा कहे। फिर संकल्पका जल दान लेनेवालेके हाथमें दे। दानमें यही विधि बतलायी गयी है। प्रतिग्रह लेनेवाला यह कहे—'विष्णु दाता हैं, विष्णु ही द्रव्य हैं और मैं इस दानको ग्रहण करता हूँ, यह धर्मानुकूल प्रतिग्रह कल्याणकारी हो। दाताको इससे भोग और मोक्षरूप फलकी प्राप्ति हो।' गुरुजनों (माता पिता) और भरणीय व्यक्तियोंके उद्धारके लिये, देवताओं और पितरोंका पूजन करना हो तो उसके लिये सबसे प्रतिग्रह ले; परंतु उसे अपने उपयोगमें न लगावे। शूद्रका धन यज्ञकार्यमें ग्रहण न करे; क्योंकि उसका फल शूद्रको ही प्राप्त होता है॥ ४७—५२॥

वृत्तिरहित ब्राह्मण शूद्रसे गुड़, तक्र, रस आदि पदार्थ ग्रहण कर सकता है। जीविकाविहीन द्विज सबका दान ले सकता है; क्योंकि ब्राह्मण स्वभावसे ही अग्नि और सूर्यके समान पवित्र है। इसलिये आपत्तिकालमें निन्दित पुरुषोंको पढ़ाने, यज्ञ कराने और उनका दान लेनेसे उसको पाप नहीं लगता। कृतयुगमें ब्राह्मणके घर जाकर दान दिया जाता है, त्रेतामें अपने घर बुलाकर, द्वापरमें माँगनेपर और कलियुगमें अनुगमन करनेपर दिया जाता है। समुद्रका पार मिल सकता है, किंतु दानका अन्त नहीं मिल सकता। दाता मन-ही-मन उत्तम उद्देश्यसे निम्नलिखित संकल्प करके भूमिपर जल छोड़े—'आज मैं चन्द्रमा अथवा सूर्यके ग्रहण या संक्रान्तिके समय गङ्गा, गया अथवा प्रयाग आदि अनन्तगुणसम्पन्न तीर्थदेशमें अमुक गोत्रवाले वेद-वेदाङ्गवेत्ता महात्मा एवं सत्पात्र अमुक शर्माको विष्णु, रुद्र अथवा जो देवता हों, उन देवता सम्बन्धी अमुक महाद्रव्य कीर्ति, विद्या, महती कामना, सौभाग्य और आरोग्यके उदयके लिये, समस्त पापोंकी शान्ति एवं स्वर्गके लिये, भोग और मोक्षकी प्राप्त्यर्थ आपको दान करता हूँ। इससे देवलोक, अन्तरिक्ष और भूमि सम्बन्धी समस्त उत्पातोंका विनाश करनेवाले मङ्गलमय श्रीहरि मुझपर प्रसन्न हों और मुझे धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षकी प्राप्ति कराकर ब्रह्मलोक प्रदान करें।'

(तदनन्तर यह संकल्प करे) 'अमुक नाम और गोत्रवाले ब्राह्मण अमुक शर्मा हो मैं इस दानकी प्रतिष्ठाके निमित्त सुवर्णकी दक्षिणा देता हूँ।' इस दान-वाक्यसे समस्त दान दे॥ ५३—६२॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'दान-परिभाषा आदिका वर्णन' नामक दो सौ नवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २०९॥

दो सौ दसवाँ अध्याय

सोलह महादानोंके नाम, दस मेरुदान, दस धेनुदान और विविध गोदानोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं सभी प्रकारके दानोंका वर्णन करता हूँ। सोलह महादान होते हैं। सर्वप्रथम तुलापुरुषदान, फिर हिरण्यगर्भदान, ब्रह्माण्डदान, कल्पवृक्ष दान, पाँचवाँ सहस्र गोदान, स्वर्णमयी कामधेनुका दान, सातवाँ स्वर्णनिर्मित अश्वका दान, स्वर्णमय अश्वयुक्त रथका दान, स्वर्णनिर्मित हस्तिरथका दान, पाँच हलोंका दान, भूमि दान, विश्वचक्रदान, कल्पलतादान, उत्तम सप्तसमुद्रदान, रत्नधेनुदान और जलपूर्ण कुम्भदान। ये दान शुभ दिनमें मण्डलाकार मण्डपमें देवताओंका पूजन करके ब्राह्मणोंको देने चाहिये। मेरुदान भी पुण्यप्रद है। मेरु दस कहे गये हैं, उन्हें सुनो—धान्यमेरु एक हजार द्रोण धान्यका उत्तम माना गया है, पाँच सौ द्रोणका मध्यम और ढाई सौ द्रोणका अधम माना गया है। लवणाचल सोलह द्रोणका बनाना चाहिये, वही उत्तम माना गया है। गुडपर्वत दस भारका उत्तम माना गया है, पाँच भारका मध्यम और ढाई भारका निकृष्ट कहा जाता है। स्वर्णमेरु सहस्र पलका उत्तम, पाँच सौ पलका मध्यम और ढाई सौ पलका निकृष्ट माना गया है। तिलपर्वत क्रमशः दस द्रोणका उत्तम, पाँच द्रोणका मध्यम और तीन द्रोणका निकृष्ट कहा गया है। कार्पास (रूई)-पर्वत बीस भारका उत्तम, दस भारका मध्यम तथा पाँच भारका निकृष्ट है। बीस घृतपूर्ण कुम्भोंका उत्तम घृताचल होता है। रजतपर्वत दस हजार पलका उत्तम माना गया है। शर्कराचल आठ भारका उत्तम, चार भारका मध्यम और दो भारका मन्द माना गया है॥ १—१६॥

अब मैं दस धेनुओंका वर्णन करता हूँ, जिनका दान करके मनुष्य भोग और मोक्ष प्राप्त कर लेता है। पहली गुडधेनु होती है, दूसरी घृतधेनु, तीसरी तिलधेनु, चौथी जलधेनु, पाँचवीं क्षीरधेनु, छठी मधुधेनु, सातवीं शर्कराधेनु, आठवीं दधिधेनु, नवीं रसधेनु और दसवीं गोरूपेण कल्पित कृष्णाजिनधेनु। इनके दानकी विधि यह बतलायी जाती है

कि तरल पदार्थ सम्बन्धी धेनुओंके प्रतिनिधिरूपसे घड़ोंमें उन पदार्थोंको भरकर कुम्भदान करने चाहिये और अन्य धातुओंके रूपमें उन-उन द्रव्योंकी राशिका दान करना चाहिये ॥ १०—१२½ ॥

(कृष्णाजिनधेनुके दानकी विधि यह है—) गोबरसे लिपी पुती भूमिपर सब ओर दर्भ बिछाकर उसके ऊपर चार हाथका कृष्णमृगचर्म रक्खे। उसकी ग्रीवा पूर्व दिशाकी ओर होनी चाहिये। इसी प्रकार गोवत्सके स्थानपर छोटे आकारका कृष्णमृगचर्म स्थापित करे। वत्ससहित धेनुका मुख पूर्वकी ओर और पैर उत्तर दिशाकी ओर समझे। चार भार गुड़की गुड़धेनु सदा ही उत्तम मानी गयी है। एक भार गुड़का गोवत्स बनावे। दो भारकी गौ मध्यम होती है। उसके साथ आधे भारका बछड़ा होना चाहिये। एक भारकी गौ कनिष्ठ कही जाती है। इसके चतुर्थांशका वत्स इसके साथ देना चाहिये। गुड़धेनु अपने गुड़समूहके अनुसार बना लेनी चाहिये ॥ १३—१६½ ॥

पाँच गुञ्जाका एक 'माशा' होता है, सोलह माशेका एक 'सुवर्ण' होता है, चार सुवर्णका 'पल' और सौ पलकी 'तुला' मानी गयी है। बीस तुलका एक 'भार' होता है एवं चार आढक (चौंसठ पल) का एक 'द्रोण' होता है ॥ १७-१८ ॥

गुड़निर्मित धेनु और वत्सको वस्त्र एवं सूक्ष्म वस्त्रसे ढकना चाहिये। उनके कानोंके स्थानमें सीप, चरणस्थानमें ईख, नेत्रस्थानमें पवित्र मौक्तिक, अलकोंके स्थानपर श्वेतसूत्र, गलकम्बलके स्थानपर सफेद कम्बल, पृष्ठभागके स्थानपर ताम्र, रोमस्थानपर श्वेत चँवर, भौंहोंके स्थानपर विद्रुममणि, स्तनोंके स्थानपर नवनीत, पुच्छस्थानपर रेशमी वस्त्र, अक्षि गोलकोंके स्थानपर नीलमणि, शृङ्ग और शृङ्गाभरणोंके स्थानपर सुवर्ण एवं खुरोंकी जगह चाँदी रक्खे। दन्तस्थानपर विविध फल और नासिका-स्थानपर सुगन्धित द्रव्य स्थापित करे—साथमें काँसेकी दोहनी भी रक्खे। द्विजश्रेष्ठ! इस प्रकार धेनुकी रचना करके निम्नलिखित मन्त्रोंसे उसकी पूजा करे—"जो समस्त भूतप्राणियोंकी लक्ष्मी हैं, जो देवताओंमें भी स्थित हैं, वे धेनुरूपिणी देवी मुझे शान्ति प्रदान करें। जो अपने शरीरमें स्थित होकर 'रुद्राणी'के नामसे प्रसिद्ध हैं और शंकरकी सदा प्रियतमा पत्नी हैं, वे धेनुरूपधारिणी देवी मेरे पापोंका विनाश करें। जो विष्णुके वक्षःस्थलपर लक्ष्मीके रूपसे सुशोभित होती हैं, जो अग्निकी स्वाहा और चन्द्रमा, सूर्य एवं नक्षत्र देवताओंकी शक्तिके रूपमें स्थित हैं, वे धेनुरूपिणी देवी मुझे लक्ष्मी प्रदान करें। जो चतुर्मुख ब्रह्माकी सावित्री, धनाध्यक्ष कुबेरकी निधि और लोकपालोंकी लक्ष्मी हैं, वे धेनुदेवी मुझे अभीष्ट वस्तु प्रदान करें। देवि! आप पितरोंकी 'स्वधा' एवं यज्ञभोक्ता अग्निकी 'स्वाहा' हैं। आप समस्त पापोंका हरण करनेवाली एवं धेनुरूपसे स्थित हैं, इसलिये मुझे शान्ति प्रदान करें।" इस प्रकार अभिमन्त्रित की हुई धेनु ब्राह्मणको दान दे। अन्य सब धेनुदानोंकी भी साधारणतया यही विधि है। इससे मनुष्य सम्पूर्ण यज्ञोंका फल प्राप्त कर पापरहित हुआ भोग और मोक्ष—दोनोंको सिद्ध कर लेता है ॥ १९—२९ ॥

सोनेके सींगोंसे युक्त चाँदीके खुरोंवाली सीधी सादी दुधारू गौ, काँसेकी दोहनी, वस्त्र एवं दक्षिणाके साथ देनी चाहिये। ऐसी गौका दान करनेवाला उस गौके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने वर्षोंतक स्वर्गमें निवास करता है। यदि कपिलाका दान किया जाय तो वह सात पीढ़ियोंका उद्धार कर देती है ॥ ३०-३१ ॥

स्वर्णमय शृङ्गोंसे युक्त, रजतमण्डित खुरोंवाली कपिला गौका काँसेके दोहनपात्र और यथाशक्ति दक्षिणाके साथ दान करके मनुष्य भोग और मोक्ष प्राप्त कर लेता है। 'उभयतोमुखी' * गौका दान करके दाता बछड़ेसहित गौके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने युगोंतक स्वर्गमें जाकर सुख भोगता है। उभयतोमुखी गौका भी दान पूर्वोक्त विधिसे ही करना चाहिये ॥ ३२-३३ ॥

मरणासन्न मनुष्यको भी पूर्वोक्त विधिसे ही बछड़ेसहित गौका दान करना चाहिये। (और यह संकल्प करना चाहिये—) 'अत्यन्त भयंकर यमलोकके प्रवेशद्वारपर तप्तजलसे युक्त वैतरणी नदी प्रवाहित होती है। उसको पार करनेके लिये मैं इस कृष्णवर्णा वैतरणी गौका दान करता हूँ' ॥ ३४ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'महादानोंका वर्णन' नामक दो सौ दसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २१० ॥

---

* पादौ यस्या मुखं योन्यां प्रसवन्त्याः प्रदृश्यते। तदा च द्विमुखी गौः स्याद्देया यावन्न सूयते ॥ (हारीतसंहिता १। ८४)

'जब प्रसव करती हुई गौकी योनिमें प्रसव होते हुए बछड़ेके दो पैर और मुख दिखायी देते हैं, उस समय वह उभयतोमुखी कही जाती है; उसका तभीतक दान करना चाहिये, जबतक पूर्ण प्रसव नहीं हो जाता।'

चाँदीके दाँत और सोनेकी आँखें हों। वह मालाधारी दीर्घाकार पुरुष दाहिने हाथमें खड्ग उठाये हुए हो। लाल रंगके वस्त्र धारण किये जपापुष्पोंसे अलङ्कृत एवं शङ्खकी मालासे विभूषित हो। उसके दोनों चरणोंमें पादुकाएँ हों और पार्श्वभागमें काला कम्बल हो। वह कालपुरुष बायें हाथमें मांस-पिण्ड लिये हो। इस प्रकार कालपुरुषका निर्माण कर गन्धादि द्रव्योंसे उसकी पूजा करके ब्राह्मणको दान करे। इससे दाता मानव मृत्यु और व्याधिसे रहित होकर राजराजेश्वर होता है। ब्राह्मणको दो बैलोंका दान देकर मनुष्य भोग और मोक्षको प्राप्त कर लेता है॥२२–२८½॥

जो मनुष्य सुवर्णदान करता है, वह सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको प्राप्त कर लेता है। सुवर्णके दानमें उसकी प्रतिष्ठाके लिये चाँदीकी दक्षिणा विहित है। अन्य दानोंकी प्रतिष्ठाके लिये सुवर्णकी दक्षिणा प्रशस्त मानी गयी है। सुवर्णके सिवा, रजत, ताम्र, तण्डुल और धान्य भी दक्षिणाके लिये विहित हैं। नित्य श्राद्ध और नित्य देवपूजन–इन सबमें दक्षिणाकी आवश्यकता नहीं है। पितृकार्यमें रजतकी दक्षिणा धर्म, काम और अर्थको सिद्ध करनेवाली है। भूमिका दान देनेवाला महाबुद्धिमान् मनुष्य सुवर्ण, रजत, ताम्र, मणि और मुक्ता—इन सबका दान कर लेता है, अर्थात् इन सभी दानोंका पुण्यफल पा लेता है। जो पृथ्वीदान करता है, वह शान्त अन्तःकरणवाला पुरुष पितृलोकमें स्थित पितरोंको और देवलोकमें निवास करनेवाले देवताओंको पूर्णरूपसे तृप्त कर देता है। शस्यशाली खर्वट, ग्राम और खेटक (छोटा गाँव), सौ निवर्तनसे अधिक या उसके आधे विस्तारमें बने हुए गृह आदि अथवा गोचर्म (दस निवर्तन) के मापकी भूमिका दान करके मनुष्य सब कुछ पा लेता है। जिस प्रकार तैल-बिन्दु जल या भूमिपर गिरकर फैल जाता है, उसी प्रकार सभी दानोंका फल एक जन्मतक रहता है। स्वर्ण, भूमि और गौरी कन्याके दानका फल सात जन्मोंतक स्थिर रहता है। कन्यादान करनेवाला अपनी इक्कीस पीढ़ियोंका नरकसे उद्धार करके ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है।* दक्षिणासहित हाथीका दान करनेवाला निष्पाप होकर स्वर्गलोकमें जाता है। अश्वका दान देकर मनुष्य दीर्घ आयु, आरोग्य, सौभाग्य और स्वर्गको प्राप्त कर लेता है। श्रेष्ठ ब्राह्मणको दासीदान करनेवाला अप्सराओंके लोकमें जाकर सुखोपभोग करता है। जो पाँच सौ पल ताँबेकी थाली या ढाई सौ पल, सवा सौ पल अथवा उससे भी आधे (६२½) पलोंकी बनी थाली देता है, वह भोग तथा मोक्षका भागी होता है॥ २९–३९½॥

बैलोंसे युक्त शकटदान करनेसे मनुष्य विमानद्वारा स्वर्गलोकको जाता है। वस्त्रदानसे आयु, आरोग्य और अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति होती है। धान, गेहूँ, अगहनीका चावल और जौ आदिका दान करनेवाला स्वर्गलोकको प्राप्त होता है। आसन, धातुनिर्मित पात्र, लवण, सुगन्धियुक्त चन्दन, धूप-दीप, ताम्बूल, लोहा, चाँदी, रत्न और विविध दिव्य पदार्थोंका दान देकर मनुष्य भोग और मोक्ष भी प्राप्त करता है। तिल और तिलपात्रका दान देकर मनुष्य स्वर्ग-सुखका भागी होता है। अन्नदानसे बढ़कर कोई दान न तो है, न था और न होगा ही। हाथी, अश्व, रथ, दास-दासी और गृहादिके दान—ये सब अन्नदानकी सोलहवीं कलाके समान भी नहीं हैं। जो पहले बड़ा-से-बड़ा पाप करके फिर अन्नदान कर देता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे छूटकर अक्षय लोकोंको पा लेता है। जल और प्याऊका दान देकर मनुष्य भोग और मोक्ष—दोनोंको सिद्ध कर लेता है। (शीतकालमें) मार्ग आदिमें अग्नि और काष्ठका दान करनेसे मनुष्य तेजोयुक्त होता है और स्वर्गलोकमें देवताओं, गन्धर्वों तथा अप्सराओं द्वारा विमानमें सेवित होता है॥ ४०—४७॥

घृत, तैल और लवणका दान देनेसे सब कुछ मिल जाता है। छत्र, पादुका और काष्ठ आदिका दान करके स्वर्गमें सुखपूर्वक निवास करता है। प्रतिपदा आदि पुण्यमयी तिथियोंमें, विष्कम्भ आदि योगोंमें, चैत्र आदि मासोंमें, संवत्सरारम्भमें और अश्विनी आदि नक्षत्रोंमें विष्णु, शिव, ब्रह्मा तथा लोकपाल आदिकी अर्चना करके दिया गया दान महान् फलप्रद है। वृक्ष, उद्यान, भोजन, वाहन आदि तथा पैरोंमें मालिशके लिये तेल आदि देकर मनुष्य भोग और मोक्षको प्राप्त कर लेता है॥ ४८–५०॥

इस लोकमें गौ, पृथ्वी और विद्याका दान—ये तीनों समान फल देनेवाले हैं। वेद विद्याका दान देकर मनुष्य पापरहित हो ब्रह्मलोकमें प्रवेश करता है। जो

* त्रि:सप्तकुलमुद्धृत्य कन्यादो ब्रह्मलोकभाक्॥ (२११।१७)

(योग्य शिष्यको) ब्रह्मज्ञान प्रदान करता है, उसने तो मानो सात द्वीपवाली पृथ्वीका दान कर दिया। जो समस्त प्राणियोंको अभयदान देता है, वह मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर लेता है। पुराण, महाभारत अथवा रामायणका लेखन करके उस पुस्तकका दान करनेसे मनुष्य भोग और मोक्षकी प्राप्ति कर लेता है। जो वेद आदि शास्त्र और नृत्य-गीतका अध्यापन करता है, वह स्वर्गगामी होता है। जो उपाध्यायको वृत्ति और छात्रोंको भोजन आदि देता है, उस धर्म एवं कामादि पुरुषार्थोंके रहस्यदर्शी मनुष्यने क्या नहीं दे दिया* ॥ ५१–५५ ॥

सहस्र वाजपेय यज्ञोंमें विधिपूर्वक दान देनेसे जो फल होता है, विद्यादानसे मनुष्य वह सम्पूर्ण फल प्राप्त कर लेता है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। जो शिवालय, विष्णुमन्दिर तथा सूर्यमन्दिरमें ग्रन्थ-वाचन करता है, वह सभी दानोंका फल प्राप्त करता है†। त्रैलोक्यमें जो ब्राह्मणादि चार वर्ण और ब्रह्मचर्यादि चार आश्रम हैं, वे तथा ब्रह्मा आदि समस्त देवगण विद्यादानमें प्रतिष्ठित हैं। विद्या कामधेनु है और विद्या उत्तम नेत्र है। गान्धर्व आदि उपवेदोंका दान करनेसे मनुष्य गन्धर्वोंके साथ प्रमुदित होता है, वेदाङ्गोंके दानसे स्वर्गलोकको प्राप्त करता है और धर्मशास्त्रके दानसे धर्मके सांनिध्यको प्राप्त होकर दाता प्रमुदित होता है। सिद्धान्तोंके दानसे मनुष्य निःसंदेह मोक्ष प्राप्त करता है। पुस्तक प्रदानसे विद्यादानके फलकी प्राप्ति होती है। इसलिये शास्त्रों और पुराणोंका दान करनेवाला सब कुछ प्राप्त कर लेता है। जो शिष्योंको शिक्षा प्रदान करता है, वह पुण्डरीकयागका फल प्राप्त करता है ॥ ५६–६२ ॥

जीविका-दानसे तो फलका अन्त ही नहीं है। जो अपने पितरोंको अक्षय लोकोंकी प्राप्ति कराना चाहे, उसे इस लोकमें सर्वश्रेष्ठ एवं अपनेको प्रिय लगनेवाले समस्त पदार्थोंका पितरोंके उद्देश्यसे दान करना चाहिये। जो विष्णु, शिव, ब्रह्मा, देवी और गणेश आदि देवताओंकी पूजा करके पूजा-द्रव्यका ब्राह्मणको दान करता है, वह सब कुछ प्राप्त करता है। देवमन्दिर एवं देवप्रतिमाका निर्माण करानेवाला समस्त अभिलषित वस्तुओंको प्राप्त करता है। मन्दिरमें झाड़ू-बुहारी और प्रक्षालन करनेवाला पुरुष पापरहित हो जाता है। देवप्रतिमाके सम्मुख विविध मण्डलोंका निर्माण करनेवाला मण्डलाधिपति होता है। देवताको गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, प्रदक्षिणा, घण्टा, चामर, चँदोवा और वस्त्र आदि समर्पित करनेसे एवं उनके दर्शन और उनके सम्मुख गाने-बजानेसे मनुष्य भोग और मोक्ष—दोनोंको प्राप्त करता है। भगवान्‌को कस्तूरी, सिह्लक, श्वेत चन्दन, अगुरु, कपूर तथा मुस्ता आदि सुगन्धि-द्रव्य और सितगुग्गुल समर्पित कर और [illegible] अग्निमें दिन एक प्रस्थ घृतसे स्नान कराके मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर लेता है। 'स्नान' सौ पलका और पचीस पलका 'अभ्यङ्ग' मानना चाहिये। 'महास्नान' हजार पलका कहा गया है। भगवान्‌को जलस्नान करानेसे दस अपराध, दुग्धस्नान करानेसे सौ अपराध, दुग्ध एवं दधि दोनोंसे स्नान करानेसे सहस्र अपराध और घृतस्नान करानेसे दस हजार अपराध विनष्ट हो जाते हैं। देवताके उद्देश्यसे दास-दासी, अलंकार, गौ, भूमि, हाथी-घोड़े और सौभाग्य-द्रव्य देकर मनुष्य धन और दीर्घायुसे युक्त होकर स्वर्गलोकको प्राप्त होता है ॥ ६३–७२ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'नाना प्रकारके दानोंकी महिमाका वर्णन' नामक दो सौ ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २११ ॥

दो सौ बारहवाँ अध्याय

विविध काम्य-दान एवं मेरुदानोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं आपके सम्मुख काम्य दानोंका वर्णन करता हूँ, जो समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं। प्रत्येक मासमें प्रतिदिन पूजन करते हुए एक दिन विशेषरूपसे पूजन किया जाता है। इसे 'काम्य-पूजा' कहते हैं। वर्षके समाप्त होनेपर गुरुपूजन एवं महापूजनके साथ व्रतका विसर्जन किया जाता है ॥ १ ॥

* वृत्तिं [illegible] भोजनादिकम्। किं [illegible] धर्मकामादिदर्शिना ॥ (२११।५५)

† शिवालये विष्णुगृहे सूर्यस्य भवने तथा। सर्वदानप्रदः [illegible] पुस्तकं वाचयेत्तु यः ॥ (२११।५७)

जो मार्गशीर्ष मासमें शिवका पूजन करके पिष्ट (आटा) निर्मित अश्व एवं कमलका दान करता है, वह चिरकालतक सूर्यलोकमें निवास करता है। पौष मासमें पिष्टमय हाथीका दान देकर मनुष्य अपनी इक्कीस पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। माघमें पिष्टमय अश्वयुक्त रथका दान देनेवाला नरकमें नहीं जाता। फाल्गुनमें पिष्टनिर्मित बैलका दान देकर मनुष्य स्वर्गको प्राप्त होता है तथा दूसरे जन्ममें राज्य प्राप्त करता है। चैत्र मासमें दास दासियोंसे युक्त एवं इक्षु (गुड़)से भरा हुआ घर देकर मनुष्य चिरकालतक स्वर्गलोकमें निवास करता है और उसके बाद राजा होता है। वैशाखमें सप्तधान्यका दान देकर मनुष्य शिवके सायुज्यको प्राप्त कर लेता है। ज्येष्ठ तथा आषाढ़में अन्नकी बलि देनेवाला शिवस्वरूप हो जाता है। श्रावणमें पुष्परथका दान देकर मनुष्य स्वर्गके सुखोंका उपभोग करनेके पश्चात् दूसरे जन्ममें राज्यलाभ करता है और दो सौ फलोंका दान देनेवाला अपने सम्पूर्ण कुलका उद्धार करके राजपदको प्राप्त होता है। भाद्रपदमें धूपदान करनेवाला स्वर्गको प्राप्त होकर दूसरे जन्ममें राज्यका उपभोग करता है। आश्विनमें दुग्ध और घृतसे परिपूर्ण पात्रका दान स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला है। कार्तिकमें गुड़, शक्कर और घृतका दान देकर मनुष्य स्वर्गलोकमें निवास करता है और दूसरे जन्ममें राजा होता है ॥ २—८½ ॥

अब मैं बारह प्रकारके मेरुदानोंके विषयमें कहूँगा, जो भोग और मोक्षकी प्राप्ति करानेवाले हैं। कार्तिककी पूर्णिमाको मेरुव्रत करके ब्राह्मणको 'रत्नमेरु'का दान करना चाहिये। अब क्रमशः सब मेरुओंका प्रमाण सुनिये। हीरे, माणिक्य, नीलमणि, वैदूर्यमणि, स्फटिकमणि, पुखराज, मरकतमणि और मोती—इनका एक प्रस्थका मेरु उत्तम माना गया है। इससे आधे परिमाणका मेरु मध्यम और मध्यमसे आधा निकृष्ट होता है। रत्नमेरुका दान करनेवाला धनकी कंजूसीका परित्याग कर दे। द्वादशदल कमलका निर्माण करके उसकी कर्णिकापर मेरुकी स्थापना करे। इसके ब्रह्मा, विष्णु और शिव देवता हैं। मेरुसे पूर्व दिशामें तीन दल हैं, उनमें क्रमशः माल्यवान्, भद्राश्व तथा ऋक्ष पर्वतोंका पूजन करे। मेरुसे दक्षिणवाले दलोंमें निषध, हेमकूट और हिमवान्‌की पूजा करे। मेरुसे उत्तरवाले तीन दलोंमें क्रमशः नील, श्वेत और शृङ्गीका पूजन करे तथा पश्चिमवाले दलोंमें गन्धमादन, वैकङ्क एवं केतुमालकी पूजा करे। इस प्रकार बारह पर्वतोंसे युक्त मेरु पर्वतका पूजन करना चाहिये ॥९—१४½॥

उपवासपूर्वक रहकर स्नानके पश्चात् भगवान् विष्णु अथवा शिवका पूजन करे। भगवान्‌के सम्मुख मेरुका पूजन करके मन्त्रोच्चारणपूर्वक उसका ब्राह्मणको दान कर दे ॥ १५½ ॥

दानका सङ्कल्प करते समय देश कालके उच्चारणके पश्चात् कहे—'मैं इस द्रव्यनिर्मित उत्तम मेरु पर्वतका, जिसके देवता भगवान् विष्णु हैं, अमुक गोत्रवाले ब्राह्मणको दान करता हूँ। इस दानसे मेरा अन्तःकरण शुद्ध हो जाय और मुझे उत्तम भोग एवं मोक्षकी प्राप्ति हो' ॥ १६½ ॥

इस प्रकार दान करनेवाला मनुष्य अपने समस्त कुलका उद्धार करके देवताओंद्वारा सम्मानित हो विमानपर बैठकर इन्द्रलोक, ब्रह्मलोक, शिवलोक तथा श्रीवैकुण्ठधाममें क्रीडा करता है। सङ्क्रान्ति आदि अन्य पुण्यकालमें मेरुका दान करना-कराना चाहिये ॥ १७—१८ ॥

एक सहस्र पल सुवर्णके द्वारा महामेरुका निर्माण कराये। वह तीन शिखरोंसे युक्त होना चाहिये और उन शिखरोंपर ब्रह्मा, विष्णु और शिवकी स्थापना करनी चाहिये। मेरुके साथवाला प्रत्येक पर्वत सौ-सौ पल सुवर्णका बनवाये। मेरुको लेकर उसके सहवर्ती पर्वत तेरह माने गये हैं। उत्तरायण अथवा दक्षिणायनकी सङ्क्रान्तिमें या सूर्य-चन्द्रके ग्रहणकालमें विष्णुकी प्रतिमाके सम्मुख 'स्वर्णमेरु'की स्थापना करे। तदनन्तर श्रीहरि और स्वर्णमेरुकी पूजा कर उसे ब्राह्मणको समर्पित करे। ऐसा करनेसे मनुष्य चिरकालतक विष्णुलोकमें निवास करता है। जो बारह पर्वतोंसे युक्त 'रजतमेरु'का सङ्कल्पपूर्वक दान करता है, वह उतने वर्षोंतक राज्यका उपभोग करता है, जितने कि इस पृथ्वीपर परमाणु हैं। इसके सिवा वह पूर्वोक्त फलको भी प्राप्त कर लेता है। 'भूमिमेरु'का दान विष्णु एवं ब्राह्मणकी पूजा करके करना चाहिये। एक नगर, जनपद अथवा ग्रामके आठवें अंशसे 'भूमिमेरु'की कल्पना करके अवशिष्ट अंशसे शेष बारह अंशोंकी कल्पना करनी चाहिये। भूमिमेरुके दानका भी फल पूर्ववत् होता है ॥ १९—२३½ ॥

बारह पर्वतोंसे युक्त मेरुका हाथियोंद्वारा निर्माण करके तीन पुरुषोंसहित उस 'हस्तिमेरु'का दान करे। वह दान देकर मनुष्य अक्षय फलका भागी होता है ॥ २४½ ॥

पंद्रह अश्वोंका 'अश्वमेरु' होता है। इसके साथ बारह पर्वतोंके स्थान बारह घोड़े होने चाहिये। श्रीविष्णु आदि

दो सौ चौदहवाँ अध्याय

नाड़ीचक्रका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ ! अब मैं नाड़ीचक्रके विषयमें कहता हूँ, जिसके जाननेसे श्रीहरिका ज्ञान हो जाता है। नाभिके अधोभागमें कन्द (मूलाधार) है, उससे अङ्कुरों की भाँति नाड़ियाँ निकली हुई हैं। नाभिके मध्यमें बहत्तर हजार नाड़ियाँ स्थित हैं। इन नाड़ियोंने शरीरको ऊपर-नीचे, दायें-बायें सब ओरसे व्याप्त कर रक्खा है और ये चक्राकार होकर स्थित हैं। इनमें प्रधान दस नाड़ियाँ हैं—इड़ा, पिङ्गला, सुषुम्णा, गान्धारी, हस्तिजिह्वा, पृथा, यशा, अलम्बुषा, कुहू और दसवीं शङ्खिनी। ये दस प्राणोंका वहन करनेवाली प्रमुख नाड़ियाँ बतलायी गयीं। प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनंजय—ये दस 'प्राणवायु' हैं। इनमें प्रथम वायु प्राण दसोंका स्वामी है। यह प्राण—रिक्तताकी पूर्ति प्रति प्राणोंको प्राणयन (प्रेरण) करता है और सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयदेशमें स्थित रहकर अपान-वायुद्वारा मल-मूत्रादिके त्यागसे होनेवाली रिक्तताको नित्य पूर्ण करता है। जीवमें आश्रित यह प्राण श्वासोच्छ्वास और कास आदिद्वारा प्रयाण (गमनागमन) करता है, इसलिये इसे 'प्राण' कहा गया है। अपानवायु मनुष्योंके आहारको नीचेकी ओर ले जाता है और मूत्र एवं शुक्र आदिको भी नीचेकी ओर वहन करता है, इस अपानयनके कारण इसे 'अपान' कहा जाता है। समानवायु मनुष्योंके खाये-पीये और सूँघे हुए पदार्थोंको एवं रक्त, पित्त, कफ तथा वातको सारे अङ्गोंमें समानभावसे ले जाता है, इस कारण उसे 'समान' कहा गया है। उदान नामक वायु मुख और अधरोंको स्पन्दित करता है, नेत्रोंकी अरुणिमाको बढ़ाता है और मर्मस्थानोंको उद्विग्न करता है, इसीलिये उसका नाम 'उदान' है। 'व्यान' अङ्गोंको पीड़ित करता है। यही व्याधिको कुपित करता है और कण्ठको अवरुद्ध कर देता है। व्यापनशील होनेसे इसे 'व्यान' कहा गया है। 'नागवायु' उद्गार (डकार-वमन आदि)में और 'कूर्मवायु' नयनोंके उन्मीलन (खोलने)में प्रवृत्त होता है। 'कृकर' भक्षणमें और 'देवदत्त' वायु जँभाईमें अधिष्ठित है। 'धनंजय' पवनका स्थान घोष है। यह मृत शरीरका भी परित्याग नहीं करता। इन दसोंद्वारा जीव प्रयाण करता है, इसलिये प्राणभेदसे नाड़ीचक्रके भी दस भेद हैं॥ १—१४॥

सङ्क्रान्ति, विषुव, दिन, रात, अयन, अधिमास, ऋण, ऊनरात्र एवं धन—ये सूर्यकी गतिसे होनेवाली दस दशाएँ शरीरमें भी होती हैं। इस शरीरमें हिक्का (हिचकी) ऊनरात्र, विजृम्भिका (जँभाई) अधिमास, कास (खाँसी) ऋण और निःश्वास 'धन' कहा जाता है। शरीरगत वामनाड़ी 'उत्तरायण' और दक्षिणनाड़ी 'दक्षिणायन' है। दोनोंके मध्यमें नासिकाके दोनों छिद्रोंसे निर्गत होनेवाली श्वासवायु 'विषुव' कहलाती है। इस विषुववायुका ही अपने स्थानसे चलकर दूसरे स्थानसे युक्त होना 'सङ्क्रान्ति' है। द्विजश्रेष्ठ वसिष्ठ ! शरीरके मध्यभागमें 'सुषुम्णा' स्थित है, वामभागमें 'इड़ा' और दक्षिणभागमें 'पिङ्गला' है। ऊर्ध्वगतिवाला प्राण 'दिन' माना गया है और अधोगामी अपानको 'रात्रि' कहा गया है। एक प्राणवायु ही दस वायुके रूपमें विभाजित है। देहके भीतर जो प्राणवायुका आयाम (बढ़ना) है, उसे 'चन्द्रग्रहण' कहते हैं। वही जब देहसे ऊपरतक बढ़ जाता है, तब उसे 'सूर्यग्रहण' मानते हैं॥ १५—२०॥

साधक अपने उदरमें जितनी वायु भरी जा सके, भर ले। यह देहको पूर्ण करनेवाला 'पूरक' प्राणायाम है। श्वास निकलनेके सभी द्वारोंको रोककर, श्वासोच्छ्वासकी क्रियासे शून्य हो परिपूर्ण कुम्भकी भाँति स्थित हो जाय—इसे 'कुम्भक' प्राणायाम कहा जाता है। तदनन्तर मन्त्रवेत्ता साधक ऊपरकी ओर एक ही नासारन्ध्रसे वायुको निकाले। इस प्रकार उच्छ्वास योगसे युक्त हो वायुका ऊपरकी ओर विरेचन (निःसारण) करे (यह 'रेचक' प्राणायाम है)। यह श्वासोच्छ्वासकी क्रियाद्वारा अपने शरीरमें विराजमान शिवस्वरूप ब्रह्मका ही ('सोऽहं' 'हंस'के रूपमें) उच्चारण होता है, अतः तत्त्ववेत्ताओंके मतमें वही 'जप' कहा गया है। इस प्रकार एक तत्त्ववेत्ता योगीन्द्र श्वास प्रश्वासद्वारा दिन-रातमें इक्कीस हजार छः सौकी संख्यामें मन्त्र-जप करता है। यह ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरसे सम्बन्ध रखनेवाली 'अजपा' नामक गायत्री है। जो इस अजपाका जप करता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता। चन्द्रमा, अग्नि तथा सूर्यसे युक्त मूलाधार निवासिनी आद्या कुण्डलिनी-शक्ति हृदयप्रदेशमें अङ्कुरके आकारमें स्थित है। सात्त्विक पुरुषोंमें उत्तम वह योगी सृष्टिक्रमका अवलम्बन करके सृष्टिन्यास करे

व्याहृति होमके समान कोई होम नहीं है। गायत्रीके एक चरण, आधा चरण, सम्पूर्ण ऋचा अथवा आधी ऋचाका भी जप करनेमात्रसे गायत्री देवी साधकको ब्रह्महत्या, सुरापान, सुवर्णकी चोरी एवं गुरुपत्नीगमन आदि महापातकोंसे मुक्त कर देती है ॥ ६–९ ॥

कोई भी पाप करनेपर उसके प्रायश्चित्तस्वरूप तिलोंका हवन और गायत्रीका जप बताया गया है। उपवासपूर्वक एक सहस्र गायत्री मन्त्रका जप करनेवाला अपने पापोंको नष्ट कर देता है। गो-वध, पितृवध, मातृवध, ब्रह्महत्या अथवा गुरुपत्नीगमन करनेवाला, ब्राह्मणकी जीविकाका अपहरण करनेवाला, सुवर्णकी चोरी करनेवाला और सुरापान करनेवाला महापातकी भी गायत्रीका एक लाख जप करनेसे शुद्ध हो जाता है। अथवा स्नान करके जलके भीतर गायत्रीका सौ बार जप करे। तदनन्तर गायत्रीसे अभिमन्त्रित जलके सौ आचमन करे। इससे भी मनुष्य पापरहित हो जाता है। गायत्रीका सौ बार जप करनेपर वह समस्त पापोंका उपशमन करनेवाली मानी गयी है और एक सहस्र जप करनेपर उपपातकोंका भी नाश करती है। एक करोड़ जप करनेपर गायत्री देवी अभीष्ट फल प्रदान करती है। जपकर्ता देवत्व और देवराजत्वको भी प्राप्त कर लेता है ॥ १०–१३½ ॥

आदिमें ॐकार, तदनन्तर 'भूर्भुवः स्वः' का उच्चारण करना चाहिये। उसके बाद गायत्री-मन्त्रका एवं अन्तमें पुनः ॐकारका प्रयोग करना चाहिये। जपमें मन्त्रका यही स्वरूप बताया गया है।* गायत्री-मन्त्रके विश्वामित्र ऋषि, गायत्री छन्द और सविता देवता हैं। उपनयन, जप एवं होममें इनका विनियोग करना चाहिये †। गायत्री मन्त्रके चौबीस अक्षरोंके अधिष्ठातृदेवता क्रमशः ये हैं—अग्नि, वायु, रवि, विद्युत्, यम, जलपति, गुरु, पर्जन्य, इन्द्र, गन्धर्व, पूषा, मित्र, वरुण, त्वष्टा, वसुगण, मरुद्गण, चन्द्रमा, अङ्गिरा, विश्वेदेव, अश्विनीकुमार, प्रजापतिसहित समस्त देवगण, रुद्र, ब्रह्मा और विष्णु। गायत्री-जपके समय उपर्युक्त देवताओंका उच्चारण किया जाय तो वे जपकर्ताके पापोंका विनाश करते हैं ॥ १४–१८½ ॥

गायत्री-मन्त्रके एक-एक अक्षरका अपने निम्नलिखित अङ्गोंमें क्रमशः न्यास करे। पैरोंके दोनों अङ्गुष्ठ, गुल्फद्वय, नलक (दोनों पिण्डलियाँ), घुटने, दोनों जाँघें, उपस्थ, वृषण, कटिभाग, नाभि, उदर, स्तनमण्डल, हृदय, ग्रीवा, मुख (अधरोष्ठ), तालु, नासिका, नेत्रद्वय, भ्रूमध्य, ललाट, पूर्व आनन (उत्तरोष्ठ), दक्षिण पार्श्व, उत्तर पार्श्व, सिर और सम्पूर्ण मुखमण्डल। गायत्रीके चौबीस अक्षरोंके वर्ण क्रमशः इस प्रकार हैं—पीत, श्याम, कपिल, मरकतमणिसदृश, अग्नितुल्य, रुक्मसदृश, विद्युत्प्रभ, धूम्र, कृष्ण, रक्त, गौर, इन्द्रनीलमणिसदृश, स्फटिकमणितुल्य, स्वर्णिम, पाण्डु, पुखराजतुल्य, अखिलद्युति, हेमाभधूम्र, रक्तनील, रक्तकृष्ण, सुवर्णाभ, शुक्ल, कृष्ण और पलाशवर्ण। गायत्री ध्यान करनेपर पापोंका अपहरण करती और हवन करनेपर सम्पूर्ण अभीष्ट कामनाओंको प्रदान करती है। गायत्री-मन्त्रसे तिलोंका होम सम्पूर्ण पापोंका विनाश करनेवाला है। शान्तिकी इच्छा रखनेवाला जौका और दीर्घायु चाहनेवाला घृतका हवन करे। कर्मकी सिद्धिके लिये सरसोंका, ब्रह्मतेजकी प्राप्तिके लिये दुग्धका, पुत्रकी कामना करनेवाला दधिका और अधिक धान्य चाहनेवाला अगहनीके चावलका हवन करे। ग्रहपीड़ाकी शान्तिके लिये खैर वृक्षकी समिधाओंका, धनकी कामना करनेवाला बिल्वपत्रोंका, लक्ष्मी चाहनेवाला कमल-पुष्पोंका, आरोग्यका इच्छुक और महान् उत्पातसे आतङ्कित मनुष्य दूर्वाका, सौभाग्याभिलाषी गुग्गुलका और विद्याकामी खीरका हवन करे। दस हजार आहुतियोंसे उपर्युक्त कामनाओंकी सिद्धि होती है और एक लाख आहुतियोंसे साधक मनोऽभिलषित वस्तुको प्राप्त करता है। एक करोड़ आहुतियोंसे होता ब्रह्महत्याके महापातकसे मुक्त हो अपने कुलका उद्धार करके श्रीहरिस्वरूप हो जाता है। ग्रह-यज्ञ प्रधान होम हो, अर्थात् ग्रहोंकी शान्तिके लिये हवन किया जा रहा हो तो उसमें भी गायत्री मन्त्रसे दस हजार आहुतियाँ देनेपर अभीष्ट फलकी सिद्धि होती है ॥ १९–३० ॥

सध्या विधि

गायत्रीका आवाहन करके ॐकारका उच्चारण करना चाहिये। गायत्री मन्त्रसहित ॐकारका उच्चारण करके शिखा

---

* ॐकारं पूर्वमुच्चार्य भूर्भुवः स्वस्तथैव च।
गायत्री प्रणवश्चान्ते जपे चैव मुदाहृतम्।
(२१५।१४।१५)

—इसके अनुसार जपनीय मन्त्रका पाठ यों होगा—ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ।

† गायत्र्या विश्वामित्र ऋषिर्गायत्री छन्दः सविता देवताग्निर्मुखमुपनयने जपे होमे वा विनियोगः।

'उदुत्यं जातवेदस०'—इस मन्त्रके प्रस्कण्व ऋषि कहे गये हैं। इसका गायत्री छन्द और सूर्य देवता हैं। इसका अतिरात्र और अग्निष्टोम-यागमें विनियोग होता है (परंतु सन्ध्योपासनामें इसका सूर्योपस्थान-कर्ममें विनियोग किया जाता है।) 'चित्रं देवानां०'—इस ऋचाके कौत्स ऋषि कहे गये हैं। इसका छन्द त्रिष्टुप् और देवता सूर्य माने गये हैं। यहाँ इसका भी विनियोग सूर्योपस्थानमें ही है॥ ४२—५०॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'सन्ध्याविधिका वर्णन' नामक दो सौ पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २१५॥

दो सौ सोलहवाँ अध्याय

गायत्री-मन्त्रके तात्पर्यार्थका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! इस प्रकार सन्ध्याका विधान करके गायत्रीका जप और स्मरण करे। यह अपना गान करनेवाले साधकोंके शरीर और प्राणोंका त्राण करती है, इसलिये इसे 'गायत्री' कहा गया है। सविता (सूर्य) से इसका प्रकाशन—प्राकट्य हुआ है, इसलिये यह 'सावित्री' कहलाती है। वाक्स्वरूपा होनेसे 'सरस्वती' नामसे भी प्रसिद्ध है॥ १-२॥

'तत्' पदसे ज्योतिःस्वरूप परब्रह्म परमात्मा अभिहित है। 'भर्ग' पद तेजका वाचक है; क्योंकि 'भा' धातु दीप्त्यर्थक है और उसीसे 'भर्ग' शब्द सिद्ध है। 'भातीति भर्गः'—इस प्रकार इसकी व्युत्पत्ति है। अथवा 'भ्रस्ज पाके'—इस धातुसूत्रके अनुसार पाकार्थक 'भ्रस्ज' धातुसे भी 'भर्ग' शब्द निष्पन्न होता है; क्योंकि सूर्यदेवका तेज ओषधि आदिको पकाता है। 'भ्राज्' धातु भी दीप्त्यर्थक होता है। 'भ्राजते इति भर्गः'—इस व्युत्पत्तिके अनुसार 'भ्राज' धातुसे भी 'भर्ग' शब्द बनता है। 'बहुलं छन्दसि'—इस वैदिक व्याकरणसूत्रके अनुसार उक्त सभी धातुओंसे आवश्यक प्रत्यय, आगम एवं विकारकी ऊहा करनेसे 'भर्ग' शब्द बन सकता है। 'वरेण्य'का अर्थ है—'सम्पूर्ण तेजोंसे श्रेष्ठ परमपदस्वरूप'। अथवा स्वर्ग एवं मोक्षकी कामना करनेवालोंके द्वारा सदा ही वरणीय होनेके कारण भी यह 'वरेण्य' कहलाता है, क्योंकि 'वृञ्' धातु वरणार्थक है। 'धीमहि' पदका यह अभिप्राय है कि 'हम जाग्रत् और सुषुप्ति आदि अवस्थाओंसे अतीत नित्य शुद्ध, बुद्ध, एकमात्र सत्य एवं ज्योतिःस्वरूप परब्रह्म परमेश्वरका मुक्तिके लिये ध्यान करते हैं'॥ ३—६½॥

जगत्‌की सृष्टि आदिके कारण भगवान् श्रीविष्णु ही यह ज्योति हैं। कुछ लोग शिवको वह ज्योति मानते हैं, कुछ लोग शक्तिको मानते हैं और कोई सूर्यको तथा कुछ अग्निहोत्री वेदज्ञ अग्निको वह ज्योति मानते हैं। वस्तुतः अग्नि आदि रूपोंमें स्थित विष्णु ही वेद-वेदाङ्गोंमें 'ब्रह्म' माने गये हैं। इसलिये 'देवस्य सवितुः'—अर्थात् जगत्‌के उत्पादक श्रीविष्णुदेवका ही वह परमपद माना गया है, क्योंकि वे स्वयं ज्योतिःस्वरूप भगवान् श्रीहरि महत्तत्त्व आदिका प्रसव (उत्पत्ति) करते हैं। वे ही पर्जन्य, वायु, आदित्य एवं शीत-ग्रीष्म आदि ऋतुओंद्वारा अन्नका पोषण करते हैं। अग्निमें विधिपूर्वक दी हुई आहुति सूर्यको प्राप्त होती है और सूर्यसे वृष्टि, वृष्टिसे अन्न और अन्नसे प्रजाओंकी उत्पत्ति होती है। 'धीमहि' पद धारणार्थक 'डुधाञ्' धातुसे भी सिद्ध होता है। इसलिये हम उस तेजका मनसे धारण-चिन्तन करते हैं—यह भी अर्थ होगा। (यः) परमात्मा श्रीविष्णुका वह तेज (नः) हम सब प्राणियोंकी (धियः) बुद्धि-वृत्तियोंको (प्रचोदयात्) प्रेरित करे। वे ईश्वर ही कर्मफलका भोग करनेवाले समस्त प्राणियोंके प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष परिणामोंसे युक्त समस्त कर्मोंमें विष्णु, सूर्य और अग्निरूपसे स्थित हैं। यह प्राणी ईश्वरकी प्रेरणासे ही शुभाशुभ कर्मानुसार स्वर्ग अथवा नरकको प्राप्त होता है। श्रीहरि द्वारा महत्तत्त्व आदि रूपसे निर्मित यह सम्पूर्ण जगत् ईश्वरका आवासस्थान है। वे सर्वसमर्थ हंसस्वरूप परम पुरुष स्वर्गादि लोकोंसे क्रीड़ा करते हैं, इसलिये वे 'देव' कहलाते हैं। आदित्यमें जो 'भर्ग' नामसे प्रसिद्ध दिव्य तेज है, वह उन्हींका स्वरूप है। मोक्ष चाहनेवाले

---

८ उदुत्यमिति प्रस्कण्व ऋषिर्गायत्री छन्दः सूर्यो देवता सूर्योपस्थाने विनियोगः।
चित्रमित्यस्य कौत्स ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः सूर्यो देवता सूर्योपस्थाने विनियोगः।

१ 'देव' शब्द क्रीडार्थक 'दिवु' धातुसे बनता है।

सामग्रियोंका उपयोग करते हुए राजा स्नान करे तथा भद्रासनपर विराजमान होकर समूचे राज्यमें राजाकी विजय घोषित करे। फिर अभयकी घोषणा कराकर राज्यके समस्त कैदियोंको बन्धनसे मुक्त कर दे। पुरोहितके द्वारा अभिषेक होनेसे पहले इन्द्र देवताकी शान्ति करानी चाहिये। अभिषेकके दिन राजा उपवास करके वेदीपर स्थापित की हुई अग्निमें मन्त्रपाठपूर्वक हवन करे। विष्णु, इन्द्र, सविता, विश्वेदेव और सोम-देवतासम्बन्धी वैदिक ऋचाओंका तथा स्वस्त्ययन, शान्ति, आयुष्य तथा अभय देनेवाले मन्त्रोंका पाठ करे॥ २—८॥

तत्पश्चात् अग्निके दक्षिण किनारे अपराजिता देवी तथा सुवर्णमय कलशकी, जिसमें जल गिरानेके लिये अनेकों छिद्र बने हुए हों, स्थापना करके चन्दन और फूलोंके द्वारा उनका पूजन करे। यदि अग्निकी शिखा दक्षिणावर्त हो, तपाये हुए सोनेके समान उसकी उत्तम कान्ति हो, रथ और मेघके समान उससे ध्वनि निकलती हो, धुआँ बिल्कुल नहीं दिखायी देता हो, अग्निदेव अनुकूल होकर हविष्य ग्रहण करते हों, होमाग्निसे उत्तम गन्ध फैल रही हो, अग्निसे स्वस्तिकके आकारकी लपटें निकलती हों, उसकी शिखा स्वच्छ हो और ऊँचेतक उठती हो तथा उसके भीतरसे चिनगारियाँ नहीं छूटती हों तो ऐसी अग्नि-ज्वाला श्रेष्ठ एवं हितकर मानी गयी है॥ ९—११॥

राजा और आगके मध्यसे बिल्ली, मृग तथा पक्षी नहीं जाने चाहिये। राजा पहले पर्वतशिखरकी मृत्तिकासे अपने मस्तककी शुद्धि करे। फिर बाँबीकी मिट्टीसे दोनों कान, भगवान् विष्णुके मन्दिरकी धूलिसे मुख, इन्द्रके मन्दिरकी मिट्टीसे ग्रीवा, राजाके आँगनकी मृत्तिकासे हृदय, हाथीके दाँतोंद्वारा खोदी हुई मिट्टीसे दाहिनी बाँह, बैलके सींगसे उठायी हुई मृत्तिकाद्वारा बायीं भुजा, पोखरेकी मिट्टीसे पीठ, दो नदियोंके सङ्गमकी मृत्तिकासे पेट तथा नदीके दोनों किनारोंकी मिट्टीसे अपनी दोनों पसलियोंका शोधन करे। वेश्याके दरवाजेकी मिट्टीसे राजाके कटिभागकी शुद्धि की जाती है, यज्ञशालाकी मृत्तिकासे वह दोनों ऊरु, गोशालाकी मिट्टीसे दोनों घुटनों, घुड़सारकी मिट्टीसे दोनों जाँघ तथा रथके पहियेकी मृत्तिकासे दोनों चरणोंकी शुद्धि करे। इसके बाद पञ्चगव्यके द्वारा राजाके मस्तककी शुद्धि करनी चाहिये। तदनन्तर चार अमात्य भद्रासनपर बैठे हुए राजाका कलशोंद्वारा अभिषेक करें। ब्राह्मणजातीय सचिव पूर्व दिशाकी ओरसे घृतपूर्ण सुवर्णकलशद्वारा अभिषेक आरम्भ करे। क्षत्रिय दक्षिणकी ओर खड़ा होकर दूधसे भरे हुए चाँदीके कलशसे, वैश्य पश्चिम दिशामें स्थित हो ताम्र कलश एवं दहीसे तथा शूद्र उत्तरकी ओरसे मिट्टीके घड़ेके जलसे राजाका अभिषेक करे॥ १२—१९॥

तदनन्तर बह्वृचों (ऋग्वेदी विद्वानों) में श्रेष्ठ ब्राह्मण मधुसे और 'छन्दोग' अर्थात् सामवेदी विप्र कुशके जलसे नरपतिका अभिषेक करे। इसके बाद पुरोहित जल गिरानेके अनेकों छिद्रोंसे युक्त (सुवर्णमय) कलशके पास जा, सदस्योंके बीच विधिवत् अग्निरक्षाका कार्य सम्पादन करके, राज्याभिषेकके लिये जो मन्त्र बताये गये हैं, उनके द्वारा अभिषेक करे। उस समय ब्राह्मणोंको वेद मन्त्रोच्चारण करते रहना चाहिये। तत्पश्चात् पुरोहित वेदीके निकट जाय और सुवर्णके बने हुए सौ छिद्रोंवाले कलशसे अभिषेक आरम्भ करे। 'या ओषधी०'—इत्यादि मन्त्रसे ओषधियोंद्वारा, 'अथेत्युक्त्वा०'—इत्यादि मन्त्रोंसे गन्धोंद्वारा, 'पुष्पवती०'—आदि मन्त्रसे फूलोंद्वारा, 'ब्राह्मण०'—इत्यादि मन्त्रसे बीजोंद्वारा, 'आशुः शिशान०' आदि मन्त्रसे रत्नोंद्वारा तथा 'ये देवाः०'—इत्यादि मन्त्रसे कुशयुक्त जलोंद्वारा अभिषेक करे। यजुर्वेदी और अथर्ववेदी ब्राह्मण 'गन्धद्वारां दुराधर्षां'—इत्यादि मन्त्रसे गोरोचनद्वारा मस्तक तथा कण्ठमें तिलक करे। इसके बाद अन्यान्य ब्राह्मण सब तीर्थोंके जलसे अभिषेक करें॥ २०—२६॥

उस समय कुछ लोग गीत और बाजे आदिके शब्दोंके साथ चँवर और व्यजन धारण करें। राजाके सामने सर्वौषधि युक्त कलश लेकर खड़े हों। राजा पहले उस कलशको देखें, फिर दर्पण तथा घृत आदि माङ्गलिक वस्तुओंका दर्शन करें। इसके बाद विष्णु, ब्रह्मा और इन्द्र आदि देवताओं तथा ग्रहपतियोंका पूजन करके राजा व्याघ्रचर्मयुक्त आसनपर बैठे। उस समय पुरोहित मधुपर्क आदि देकर राजाके मस्तकपर मुकुट बाँधे। पाँच प्रकारके चमड़ोंके आसनपर बैठकर राजाको मुकुट बँधाना चाहिये। 'ध्रुवाद्यौः०'—इत्यादि मन्त्रके द्वारा उन आसनोंपर बैठे। वृष, वृषदंश, वृक, व्याघ्र और सिंह—इन्हीं पाँचोंके चमड़ा उस समय आसनके लिये उपयोग किया जाता है। अभिषेकके बाद प्रतीहार अमात्य और सचिव आदिको दिखाये—प्रजाजनोंसे उनका परिचय दे। तदनन्तर राजा गौ, बकरी, भेड़ तथा गृह आदि

सामग्रियोंका उपयोग करते हुए राजा स्नान करे तथा भद्रासनपर विराजमान होकर समूचे राज्यमें राजाकी विजय घोषित करे। फिर अभयकी घोषणा कराकर राज्यके समस्त कैदियोंको बन्धनसे मुक्त कर दे। पुरोहितके द्वारा अभिषेक होनेसे पहले इन्द्र देवताकी शान्ति करानी चाहिये। अभिषेकके दिन राजा उपवास करके वेदीपर स्थापित की हुई अग्निमें मन्त्रपाठपूर्वक हवन करे। विष्णु, इन्द्र, सविता, विश्वेदेव और सोम-देवतासम्बन्धी वैदिक ऋचाओंका तथा स्वस्त्ययन, शान्ति, आयुष्य तथा अभय देनेवाले मन्त्रोंका पाठ करे॥ २-८॥

तत्पश्चात् अग्निके दक्षिण किनारे अपराजिता देवी तथा सुवर्णमय कलशकी, जिसमें जल गिरानेके लिये अनेकों छिद्र बने हुए हों, स्थापना करके चन्दन और फूलोंके द्वारा उनका पूजन करे। यदि अग्निकी शिखा दक्षिणावर्त हो, तपाये हुए सोनेके समान उसकी उत्तम कान्ति हो, रथ और मेघके समान उससे ध्वनि निकलती हो, धुआँ बिल्कुल नहीं दिखायी देता हो, अग्निदेव अनुकूल होकर हविष्य ग्रहण करते हों, होमाग्निसे उत्तम गन्ध फैल रही हो, अग्निसे स्वस्तिकके आकारकी लपटें निकलती हों, उसकी शिखा स्वच्छ हो और ऊँचेतक उठती हो तथा उसके भीतरसे चिनगारियाँ नहीं छूटती हों तो ऐसी अग्नि-ज्वाला श्रेष्ठ एवं हितकर मानी गयी है॥ ९-११॥

राजा और आगके मध्यसे बिल्ली, मृग तथा पक्षी नहीं जाने चाहिये। राजा पहले पर्वतशिखरकी मृत्तिकासे अपने मस्तककी शुद्धि करे। फिर बाँबीकी मिट्टीसे दोनों कान, भगवान् विष्णुके मन्दिरकी धूलिसे मुख, इन्द्रके मन्दिरकी मिट्टीसे ग्रीवा, राजाके आँगनकी मृत्तिकासे हृदय, हाथीके दाँतोंद्वारा खोदी हुई मिट्टीसे दाहिनी बाँह, बैलके सींगसे उठायी हुई मृत्तिकाद्वारा बायीं भुजा, पोखरेकी मिट्टीसे पीठ, दो नदियोंके संगमकी मृत्तिकासे पेट तथा नदीके दोनों किनारोंकी मिट्टीसे अपनी दोनों पसलियोंका शोधन करे। वेश्याके दरवाजेकी मिट्टीसे राजाके कटिभागकी शुद्धि की जाती है, यज्ञशालाकी मृत्तिकासे वह दोनों ऊरु, गोशालाकी मिट्टीसे दोनों घुटनों, घुड़सारकी मिट्टीसे दोनों जाँघ तथा रथके पहियेकी मृत्तिकासे दोनों चरणोंकी शुद्धि करे। इसके बाद पञ्चगव्यके द्वारा राजाके मस्तककी शुद्धि करनी चाहिये। तदनन्तर चार अमात्य भद्रासनपर बैठे हुए राजाका कलशोंद्वारा अभिषेक करें। ब्राह्मणजातीय सचिव पूर्व दिशाकी ओरसे घृतपूर्ण सुवर्णकलशद्वारा अभिषेक आरम्भ करे। क्षत्रिय दक्षिणकी ओर खड़ा होकर दूधसे भरे हुए चाँदीके कलशसे, वैश्य पश्चिम दिशामें स्थित हो ताम्र कलश एवं दहीसे तथा शूद्र उत्तरकी ओरसे मिट्टीके घड़ेके जलसे राजाका अभिषेक करे॥ १२—१९॥

तदनन्तर बह्वृचों (ऋग्वेदी विद्वानों) में श्रेष्ठ ब्राह्मण मधुसे और 'छन्दोग' अर्थात् सामवेदी विप्र कुशके जलसे नरपतिका अभिषेक करे। इसके बाद पुरोहित जल गिरानेके अनेकों छिद्रोंसे युक्त (सुवर्णमय) कलशके पास जा, सदस्योंके बीच विधिवत् अग्निरक्षाका कार्य सम्पादन करके, राज्याभिषेकके लिये जो मन्त्र बताये गये हैं, उनके द्वारा अभिषेक करे। उस समय ब्राह्मणोंको वेद मन्त्रोच्चारण करते रहना चाहिये। तत्पश्चात् पुरोहित वेदीके निकट जाय और सुवर्णके बने हुए सौ छिद्रोंवाले कलशसे अभिषेक आरम्भ करे। 'या ओषधी०'—इत्यादि मन्त्रसे ओषधियोंद्वारा, 'अथेत्युक्त्वा०'—इत्यादि मन्त्रोंसे गन्धोंद्वारा, 'पुष्पवती०'—आदि मन्त्रसे फूलोंद्वारा, 'ब्राह्मण०'—इत्यादि मन्त्रसे बीजोंद्वारा, 'आशुः शिशान०' आदि मन्त्रसे रत्नोंद्वारा तथा 'ये देवा०'—इत्यादि मन्त्रसे कुशयुक्त जलोंद्वारा अभिषेक करे। यजुर्वेदी और अथर्ववेदी ब्राह्मण 'गन्धद्वारां दुराधर्षां'—इत्यादि मन्त्रसे गोरोचनद्वारा मस्तक तथा कण्ठमें तिलक करे। इसके बाद अन्यान्य ब्राह्मण सब तीर्थोंके जलसे अभिषेक करें॥ २०—२६॥

उस समय कुछ लोग गीत और बाजे आदिके शब्दोंके साथ चँवर और व्यजन धारण करें। राजाके सामने सर्वौषधियुक्त कलश लेकर खड़े हों। राजा पहले उस कलशको देखें, फिर दर्पण तथा घृत आदि माङ्गलिक वस्तुओंका दर्शन करें। इसके बाद विष्णु, ब्रह्मा और इन्द्र आदि देवताओं तथा ग्रहपतियोंका पूजन करके राजा व्याघ्रचर्मयुक्त आसनपर बैठे। उस समय पुरोहित मधुपर्क आदि देकर राजाके मस्तकपर मुकुट बाँधे। पाँच प्रकारके चर्मोंके आसनपर बैठकर राजाको मुकुट बँधाना चाहिये। 'ध्रुवाद्यौ०'—इत्यादि मन्त्रके द्वारा उन आसनोंपर बैठे। वृष, वृषदंश, वृक, व्याघ्र और सिंह—इन्हीं पाँचोंके चर्मका उस समय आसनके लिये उपयोग किया जाता है। अभिषेकके बाद प्रतीहार अमात्य और सचिव आदिको दिखाये—प्रजाजनोंसे उनका परिचय दे। तदनन्तर राजा गौ, बकरी, भेड़ तथा गृह आदि

चतुर्ज्योति, एकशन, द्विशक्र, महाबली त्रिशक्र, इन्द्र, परिकृत्, मित, सम्मित, महाबली अमित, ऋतजित्, सत्यजित्, सुषेण, सेनजित्, अतिमित्र, अनुमित्र, पुरुमित्र, अपराजित, ऋत, ऋतवाक्, धाता, विधाता, धारण, ध्रुव, इन्द्रके परम मित्र महातेजस्वी विधारण, इदृक्ष, अदृक्ष, एतादृक्, अमिताशन, क्रीडित, सदृक्ष, सरभ, महातपा, धर्ता, धुर्य्य, धुरि, भीम, अभिमुक्त, अक्षपात, सह, धृति, वसु, अनाधृष्य, राम, काम, जय और विराट्—ये उन्चास मरुत् नामक देवता तुम्हारा अभिषेक करें तथा तुम्हें लक्ष्मी प्रदान करें। चित्राङ्गद, चित्ररथ, चित्रसेन, कलि, ऊर्णायु, उग्रसेन, धृतराष्ट्र, नन्दक, हाहा, हूहू, नारद, विश्वावसु और तुम्बुरु—ये गन्धर्व तुम्हारे अभिषेकका कार्य सम्पन्न करें और तुम्हें विजयी बनावें। प्रधान प्रधान मुनि तथा अनवद्या, सुकेशी, मेनका, सहजन्या, क्रतुस्थला, घृताची, विश्वाची, पुञ्जिकस्थला, प्रम्लोचा, उर्वशी, रम्भा, पञ्चचूड़ा, तिलोत्तमा, चित्रलेखा, लक्ष्मणा, पुण्डरीका और वारुणी—ये दिव्य अप्सराएँ तुम्हारी रक्षा करें ॥ १२–३८ ॥

"प्रह्लाद, विरोचन, बलि, बाण और उसका पुत्र—ये तथा दूसरे-दूसरे दानव और राक्षस तुम्हारे अभिषेकका कार्य सिद्ध करें। हेति, प्रहेति, विद्युत्, स्फूर्जथु, अग्रक, यक्ष, सिद्ध, मणिभद्र और नन्द—ये सब तुम्हारी रक्षा करें। पिङ्गाक्ष, द्युतिमान्, पुष्पवन्त, जयावह, शङ्ख, पद्म, मकर और कच्छप—ये निधियाँ तुम्हें विजय प्रदान करें। ऊर्ध्वकेश आदि पिशाच, भूमि आदिके निवासी भूत और माताएँ, महाकाल एवं नृसिंहको आगे करके तुम्हारा पालन करें। गुह, स्कन्द, विशाख, नैगमेय—ये तुम्हारा अभिषेक करें। भूतल एवं आकाशमें विचरनेवाली डाकिनी तथा योगिनियाँ, गरुड, अरुण तथा सम्पाति आदि पक्षी तुम्हारा पालन करें। अनन्त आदि बड़े-बड़े नाग, शेष, वासुकि, तक्षक, ऐरावत, महापद्म, कम्बल, अश्वतर, शङ्ख, कर्कोटक, धृतराष्ट्र, धनंजय, कुमुद, ऐरावत, पद्म, पुष्पदन्त, वामन, सुप्रतीक तथा अञ्जन नामक नाग सदा और सब ओरसे तुम्हारी रक्षा करें। ब्रह्माजीका वाहन हंस, भगवान् शंकरका वृषभ, भगवती दुर्गाका सिंह और यमराजका भैंसा—ये सभी वाहन तुम्हारा पालन करें। अश्वराज उच्चैःश्रवा, धन्वन्तरि वैद्य, कौस्तुभमणि, शङ्खराज पाञ्चजन्य, वज्र, शूल, चक्र और नन्दक खड्ग आदि अस्त्र तुम्हारी रक्षा करें। दृढ़ निश्चय रखनेवाले धर्म, चित्रगुप्त, दण्ड, पिङ्गल, मृत्यु, काल, बालखिल्य आदि मुनि, व्यास और वाल्मीकि आदि महर्षि, पृथु, दिलीप, भरत, दुष्यन्त, अत्यन्त बलवान् शत्रुजित्, मनु, ककुत्स्थ, अनेना, युवनाश्व, जयद्रथ, मान्धाता, मुचुकुन्द और पृथ्वीपति पुरूरवा—ये सब राजा तुम्हारे रक्षक हों। वास्तुदेवता और पचीस तत्त्व तुम्हारी विजयके साधक हों। रुक्मभौम, शिलाभौम, पाताल, नीलमृत्ति, पीतरक्त, क्षिति, श्वेतभौम, रसातल, भूर्लोक, भुवर् आदि लोक तथा जम्बूद्वीप आदि द्वीप तुम्हें राज्यलक्ष्मी प्रदान करें। उत्तरकुरु, रम्य, हिरण्यक, भद्राश्व, केतुमाल, बलाहक, हरिवर्ष, किंपुरुष, इन्द्रद्वीप, कशेरुमान्, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्यक, गान्धर्व, वारुण और नवम आदि वर्ष तुम्हारी रक्षा करें और तुम्हें राज्य प्रदान करनेवाले हों। हिमवान्, हेमकूट, निषध, नील, श्वेत, शृङ्गवान्, मेरु, माल्यवान्, गन्धमादन, महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्षवान् गिरि, विन्ध्य और पारियात्र—ये सभी पर्वत तुम्हें शान्ति प्रदान करें। ऋक् आदि चारों वेद, छहों अङ्ग, इतिहास, पुराण, आयुर्वेद, गान्धर्ववेद और धनुर्वेद आदि उपवेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, छन्द—ये छः अङ्ग, चार वेद, मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र और पुराण—ये चौदह विद्याएँ तुम्हारी रक्षा करें ॥ ३९–६० ॥

"सांख्य, योग, पाशुपत, वेद, पाञ्चरात्र—ये 'सिद्धान्त पञ्चक' कहलाते हैं। इन पाँचोंके अतिरिक्त गायत्री, शिवा, दुर्गा, विद्या तथा गान्धारी नामवाली देवियाँ तुम्हारी रक्षा करें और लवण, इक्षुरस, सुरा, घृत, दधि, दुग्ध तथा जलसे भरे हुए समुद्र तुम्हें शान्ति प्रदान करें। चारों समुद्र और नाना प्रकारके तीर्थ तुम्हारी रक्षा करें। पुष्कर, प्रयाग, प्रभास, नैमिषारण्य, गयाशीर्ष, ब्रह्मशिरतीर्थ, उत्तरमानस, कालोदक, नन्दिकुण्ड, पञ्चनदतीर्थ, भृगुतीर्थ, अमरकण्टक, जम्बूमार्ग, विमल, कपिलाश्रम, गङ्गाद्वार, कुशावर्त, विन्ध्य, नीलगिरि, वराह पर्वत, कनखल तीर्थ, कालञ्जर, केदार, रुद्रकोटि, महातीर्थ वाराणसी, बदरिकाश्रम, द्वारका, श्रीशैल, पुरुषोत्तमतीर्थ, शालग्राम, वाराह, सिंधु और समुद्रके संगमका तीर्थ, फल्गुतीर्थ, बिन्दुसर, करवीराश्रम, गङ्गानदी, सरस्वती, शतद्रु, गण्डकी, अच्छोदा, विपाशा, वितस्ता, देविका नदी, कावेरी, वरुणा, निश्चिरा, गोमती नदी, पारा, चर्मण्वती, रूपा, महानदी, मन्दाकिनी, तापी, पयोष्णी, वेणा, वैतरणी, गोदावरी, भीमरथी, तुङ्गभद्रा, अरणी, चन्द्रभागा, शिप्रा तथा गौरी आदि पवित्र नदियाँ तुम्हारा अभिषेक और पालन करें" ॥ ६१–७२ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'अभिषेक-सम्बन्धी मन्त्रोंका वर्णन' नामक दो सौ उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २१९ ॥

उचित है। अर्थात् उसे गुप्तचरोंद्वारा सभी बातें देखनी— उनकी जानकारी प्राप्त करनी चाहिये। इसलिये वह हमेशा सबकी देखभालके लिये गुप्तचर तैनात किये रहे। गुप्तचर ऐसे हों, जिन्हें दूसरे लोग पहचानते न हों, जिनका स्वभाव शान्त एवं कोमल हो तथा जो परस्पर एक दूसरेसे भी अपरिचित हों। उनमें कोई वैश्यके रूपमें हो, कोई मन्त्र तन्त्रमें कुशल, कोई ज्योतिषी, कोई वैद्य, कोई संन्यास वेषधारी और कोई बलाबलका विचार करनेवाले व्यक्तिके रूपमें हो। राजाको चाहिये कि किसी एक गुप्तचरकी बातपर विश्वास न करे। जब बहुतोंके मुखसे एक तरहकी बात सुने, तभी उसे विश्वसनीय समझे। भृत्योंके हृदयमें राजाके प्रति अनुराग है या विरक्ति, किस मनुष्यमें कौन-से गुण तथा अवगुण हैं, कौन शुभचिन्तक हैं और कौन अशुभ चाहने वाले—अपने भृत्यवर्गको वशमें रखनेके लिये राजाको ये सभी बातें जाननी चाहिये। वह ऐसा कर्म करे, जो प्रजाका अनुराग बढ़ानेवाला हो। जिससे लोगोंके मनमें विरक्ति हो, ऐसा कोई काम न करे। प्रजाका अनुराग बढ़ानेवाली लक्ष्मीसे युक्त राजा ही वास्तवमें राजा है। वह सब लोगोंका रञ्जन करने—उनकी प्रसन्नता बढ़ानेके कारण ही 'राजा' कहलाता है॥ १३—२४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'राजाकी सहायसम्पत्तिका वर्णन' नामक दो सौ बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २२०॥

दो सौ इक्कीसवाँ अध्याय

अनुजीवियोंका राजाके प्रति कर्तव्यका वर्णन

पुष्कर कहते हैं—भृत्यको राजाकी आज्ञाका उसी प्रकार पालन करना चाहिये, जैसे शिष्य गुरुकी और साध्वी स्त्रियाँ अपने पतिकी आज्ञाका पालन करती हैं। राजाकी बातपर कभी आक्षेप न करे, सदा ही उसके अनुकूल और प्रिय वचन बोले। यदि कोई हितकी बात बतानी हो और वह सुननेमें अप्रिय हो तो उसे एकान्तमें राजासे कहना चाहिये। किसी आयके काममें नियुक्त होनेपर राजकीय धनका अपहरण न करे, राजाके सम्मानकी उपेक्षा न करे। उसकी वेशभूषा और बोलचालकी नकल करना उचित नहीं है। अन्तःपुरके सेवकोंके अध्यक्षका कर्तव्य है कि वह ऐसे पुरुषोंके साथ न बैठे, जिनका राजाके साथ वैर हो तथा जो राजदरबारसे अपमानपूर्वक निकाले गये हों। भृत्यको राजाकी गुप्त बातोंको दूसरोंपर प्रकट नहीं करना चाहिये। अपनी कोई कुशलता दिखाकर राजाको विशेष सम्मानित एवं प्रसन्न करना चाहिये। यदि राजा कोई गुप्त बात सुनावे तो उसे लोगोंमें प्रकाशित न करे। यदि वे दूसरेको किसी कामके लिये आज्ञा दे रहे हों तो स्वयं ही उठकर कहे— 'महाराज! मुझे आदेश दिया जाय, कौन-सा काम करना है, मैं उसे करूँगा।' राजाके दिये हुए वस्त्र आभूषण तथा रत्न आदिको सदा धारण किये रहे। बिना आज्ञाके दरवाजे पर अथवा और किसी अयोग्य स्थानपर, जहाँ राजाकी दृष्टि पड़ती हो, न बैठे। जँभाई लेना, थूकना, खाँसना, क्रोध प्रकट करना, खाटपर बैठना, भौंहें टेढ़ी करना, अधोवायु छोड़ना तथा डकार लेना आदि काम राजाके निकट रहनेपर न करे। उनके सामने अपना गुण प्रकट करनेके लिये दूसरोंको ही युक्तिपूर्वक नियुक्त करे। शठता, लोलुपता, चुगली, नास्तिकता, नीचता तथा चपलता—इन दोषोंका राजसेवकोंको सदा त्याग करना चाहिये। पहले स्वयं प्रयत्न करके अपनेमें वेदविद्या एवं शिल्पकलाकी योग्यताका सम्पादन करे। उसके बाद अपना धन बढ़ानेकी चेष्टा करनेवाले पुरुष को अभ्युदयके लिये राजाकी सेवामें प्रवृत्त होना चाहिये। उनके प्रिय पुत्र एवं मन्त्रियोंको सदा नमस्कार करना उचित है। केवल मन्त्रियोंके साथ रहनेसे राजाका अपने ऊपर विश्वास नहीं होता, अतः उनके हार्दिक अभिप्रायके अनुकूल सदा प्रिय कार्य करे। राजाके स्वभावको समझनेवाले पुरुषके लिये उचित है कि वह विरक्त राजाको त्याग दे और अनुरक्त राजासे ही आजीविका प्राप्त करनेकी चेष्टा करे। बिना पूछे राजाके सामने कोई बात न कहे; किंतु आपत्तिके समय ऐसा करनेमें कोई हर्ज नहीं है। राजा प्रसन्न हो तो वह सेवकके विनययुक्त वचनको मानता है, उसकी प्रार्थनाको स्वीकार करता है। प्रेमी सेवकको किसी रहस्य-स्थान (अन्तःपुर) आदि में देख ले तो भी उसपर शङ्का संदेह नहीं करता है। वह दरबारमें आये तो राजा उसकी कुशल पूछता है, उसे बैठनेके लिये आसन देता है। उसकी चर्चा सुनकर वह प्रसन्न होता है। वह कोई अप्रिय बात भी कह दे तो वह बुरा नहीं मानता, उलटे प्रसन्न होता है। उसकी दी हुई छोटी-मोटी

राजाको वास्तुके लक्षणोंसे युक्त दुर्गमें रहकर देवताओंका पूजन, प्रजाका पालन, दुष्टोंका दमन तथा दान करना चाहिये। देवताके धन आदिका अपहरण करनेसे राजाको एक कल्पतक नरकमें रहना पड़ता है। उसे देवपूजामें तत्पर रहकर देवमन्दिरोंका निर्माण कराना चाहिये। देवालयोंकी रक्षा और देवताओंकी स्थापना भी राजाका कर्तव्य है। देवविग्रह मिट्टीका भी बनाया जाता है। मिट्टीसे काठका, काठसे ईंटका, ईंटसे पत्थरका और पत्थरसे सोने तथा रत्नका बना हुआ विग्रह पवित्र माना गया है। प्रसन्नतापूर्वक देवमन्दिर बनवानेवाले पुरुषको भोग और मोक्षकी प्राप्ति होती है। देवमन्दिरमें चित्र बनवावे, गाने बजाने आदिका प्रबन्ध करे, दर्शनीय वस्तुओंका दान दे तथा तेल, घी, मधु और दूध आदिसे देवताको नहलावे तो मनुष्य स्वर्गलोकमें जाता है। ब्राह्मणोंका पालन और सम्मान करे; उनका धन न छीने। यदि राजा ब्राह्मणका एक सोना, एक गौ अथवा एक अङ्गुल जमीन भी छीन ले, तो उसे महाप्रलय होनेतक नरकमें डूबे रहना पड़ता है। ब्राह्मण सब प्रकारके पापोंमें प्रवृत्त तथा दुराचारी हो तो भी उससे द्वेष नहीं करना चाहिये। ब्राह्मणकी हत्यासे बढ़कर भारी पाप दूसरा कोई नहीं है। महाभाग ब्राह्मण चाहें तो जो देवता नहीं हैं, उन्हें भी देवता बना दें और देवताको भी देवपदसे नीचे उतार दें; अतः सदा ही उनको नमस्कार करना चाहिये ॥ ११–१७½ ॥

यदि राजाके अत्याचारसे ब्राह्मणीका कलाइ आ जाय तो वह उसके कुल, राज्य तथा प्रजा—सबका नाश कर डालती है। इसलिये धर्मपरायण राजाको उचित है कि वह साध्वी स्त्रियोंका पालन करे। स्त्रीको घरके काम-काजमें चतुर और प्रसन्न होना चाहिये। वह घरके प्रत्येक सामानको साफ-सुथरा रक्खे, खर्च करनेमें खुले हाथवाली न हो। कन्याको उसका पिता जिसे दान कर दे, वही उसका पति है। अपने पतिकी उसे सदा सेवा करनी चाहिये। स्वामीकी मृत्यु हो जानेपर ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाली स्त्री स्वर्गलोकमें जाती है। वह दूसरेके घरमें रहना पसंद न करे और लड़ाई झगड़ेसे दूर रहे। जिसका पति परदेशमें हो, वह स्त्री शृङ्गार न करे, सदा अपने स्वामीके हितचिन्तनमें लगी रहकर देवताओंकी आराधना करे। केवल मङ्गलके लिये सौभाग्यचिह्नके रूपमें दो एक आभूषण धारण किये रहे। जो स्त्री स्वामीके मरनेपर उनके साथ ही चिताकी आगमें प्रवेश कर जाती है, उसे भी स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है। लक्ष्मीकी पूजा और घरकी सफाई आदि रखना गृहिणीका मुख्य कार्य है। कार्तिककी द्वादशीको विष्णुकी पूजा करके बछड़ेसहित गौका दान करना चाहिये। सावित्रीने अपने सदाचार और व्रतके प्रभावसे पतिकी मृत्युसे रक्षा की थी। मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमीको सूर्यकी पूजा करनेसे स्त्रीको पुत्रोंकी प्राप्ति होती है, इसमें तनिक भी अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ १८–२६ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'दुर्ग-सम्पत्ति वर्णन तथा नारीधर्मका कथन' नामक दो सौ बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २२२ ॥

दो सौ तेईसवाँ अध्याय

राष्ट्रकी रक्षा तथा प्रजासे कर लेने आदिके विषयमें विचार

पुष्कर कहते हैं—(राज्यका प्रबन्ध इस प्रकार करना चाहिये—) राजाको प्रत्येक गाँवका एक-एक अधिपति नियुक्त करना चाहिये। फिर दस-दस गाँवोंका तथा सौ-सौ गाँवोंका अध्यक्ष नियुक्त करे। सबके ऊपर एक ऐसे पुरुषको नियुक्त करे, जो समूचे राष्ट्रका शासन कर सके। उन सबके कार्योंके अनुसार उनके लिये पृथक्-पृथक् भोग (भरण-पोषणके लिये वेतन आदि)का विभाजन करना चाहिये तथा प्रतिदिन गुप्तचरोंके द्वारा उनके कार्योंकी देख-भाल एवं परीक्षण करते रहना चाहिये। यदि गाँवमें कोई दोष उत्पन्न हो—कोई मामला खड़ा हो तो ग्रामाधिपतिको उसे शान्त करना चाहिये। यदि वह उस दोषको दूर करनेमें असमर्थ हो जाय तो दस गाँवोंके अधिपतिके पास जाकर उनसे सब बातें बतावे। पूरी रिपोर्ट सुनकर वह दस गाँवका स्वामी उस दोषको मिटानेका उपाय करे ॥ १—३½ ॥

जब राष्ट्र भलीभाँति सुरक्षित होता है, तभी राजाको उससे धन आदिकी प्राप्ति होती है। धनवान् धर्मका उपार्जन करता है, धनवान् ही कामसुखका उपभोग करता है। जैसे गर्मीमें नदीका पानी सूख जाता है, उसी प्रकार धनके बिना सब कार्य चौपट हो जाते हैं। संसारमें पतित और निर्धन कोई विशेष अन्तर नहीं है। लोग पतित मनुष्यके द्वा

ब्राह्मणसे कोई प्रिय वस्तु अथवा कर नहीं लेना चाहिये। जिस राजाके राज्यमें श्रोत्रिय ब्राह्मण भूखसे कष्ट पाता है, उसका राज्य बीमारी, अकाल और लुटेरोंसे पीड़ित होता रहता है। अतः ब्राह्मणकी विद्या और आचरणको जानकर उसके लिये अनुकूल जीविकाका प्रबन्ध करे तथा जैसे पिता अपने औरस पुत्रका पालन करता है, उसी प्रकार राजा विद्वान् और सदाचारी ब्राह्मणकी सर्वथा रक्षा करे। जो राजासे सुरक्षित होकर प्रतिदिन धर्मका अनुष्ठान करता है, उस ब्राह्मणके धर्मसे राजाकी आयु बढ़ती है तथा उसके राष्ट्र एवं खजानेकी भी उन्नति होती है। शिल्पकारोंको चाहिये कि महीनेमें एक दिन बिना पारिश्रमिक लिये केवल भोजन स्वीकार करके राजाका काम करें। इसी प्रकार दूसरे लोगोंको भी, जो राज्यमें रहकर अपने शरीरके परिश्रमसे जीविका चलाते हैं, महीनेमें एक दिन राजाका काम करना चाहिये ॥ ३०—३४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'राजधर्मका कथन' नामक दो सौ तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २२३ ॥

दो सौ चौबीसवाँ अध्याय

अन्तःपुरके सम्बन्धमें राजाके कर्तव्य; स्त्रीकी विरक्ति और अनुरक्तिकी परीक्षा तथा सुगन्धित पदार्थोंके सेवनका प्रकार

पुष्कर कहते हैं—अब मैं अन्तःपुरके विषयमें विचार करूँगा। धर्म, अर्थ और काम—ये तीन पुरुषार्थ 'त्रिवर्ग' कहलाते हैं। इनकी एक-दूसरेके द्वारा रक्षा करते हुए स्त्रीसहित राजाओंको इनका सेवन करना चाहिये। 'त्रिवर्ग' एक महान् वृक्षके समान है। 'धर्म' उसकी जड़, 'अर्थ' उसकी शाखाएँ और 'काम' उसका फल है। मूलसहित उस वृक्षकी रक्षा करनेसे ही राजा फलका भागी हो सकता है। राम! स्त्रियाँ कामके अधीन होती हैं, उन्हींके लिये रत्नोंका संग्रह होता है। विषयसुखकी इच्छा रखनेवाले राजाको स्त्रियोंका सेवन करना चाहिये, परंतु अधिक मात्रामें नहीं। आहार, मैथुन और निद्रा—इनका अधिक सेवन निषिद्ध है, क्योंकि इनसे रोग उत्पन्न होता है। उन्हीं स्त्रियोंका सेवन करे अथवा पलंगपर बैठावे, जो अपनेमें अनुराग रखनेवाली हों। परंतु जिस स्त्रीका आचरण दुष्ट हो, जो अपने स्वामीकी चर्चा भी पसंद नहीं करती, बल्कि उनके शत्रुओंसे एकता स्थापित करती है, उद्दण्डतापूर्वक गर्व धारण किये रहती है, चुम्बन करनेपर अपना मुँह पोंछती या धोती है, स्वामीकी दी हुई वस्तुका अधिक आदर नहीं करती, पतिके पहले सोती है, पहले सोकर भी उनके जागनेके बाद ही जागती है, जो स्पर्श करनेपर अपने शरीरको कँपाने लगती है, एक-एक अङ्गपर अवरोध उपस्थित करती है, उनके प्रिय वचनको भी बहुत कम सुनती है और सदा उनसे पराङ्मुख रहती है, सामने जाकर कोई वस्तु दी जाय, तो उसपर दृष्टि नहीं डालती, अपने जघन (कटिके अग्रभाग) को अत्यन्त छिपाने—पतिके सहवाससे बचानेकी चेष्टा करती है, स्वामीको देखते ही जिसका मुँह उतर जाता है, जो उनके मित्रोंसे भी विमुख रहती है, वे जिन-जिन स्त्रियोंके प्रति अनुराग रखते हैं, उन सबकी ओरसे जो मध्यस्थ (न अनुरक्त न विरक्त) दिखायी देती है तथा जो शृङ्गारका समय उपस्थित जानकर भी शृङ्गार धारण नहीं करती, वह स्त्री 'विरक्त' है। उसका परित्याग करके अनुरागिणी स्त्रीका सेवन करना चाहिये। अनुरागवती स्त्री स्वामीको देखते ही प्रसन्नतासे खिल उठती है, दूसरी ओर मुख किये होनेपर भी कनखियोंसे उनकी ओर देखा करती है, स्वामीको निहारते देख अपनी चञ्चल दृष्टि अन्यत्र हटा ले जाती है, परंतु पूरी तरह हटा नहीं पाती तथा रघुनन्दन! अपने गुप्त अङ्गोंको भी वह कभी-कभी व्यक्त कर देती है और शरीरका जो अंग सुन्दर नहीं है, उसे प्रयत्नपूर्वक छिपाया करती है, स्वामीके देखते-देखते छोटे बच्चेका आलिङ्गन और चुम्बन करने लगती है, बात-चीतमें भाग लेती और सत्य बोलती है, स्वामीका स्पर्श पाकर जिसके अङ्गोंमें रोमाञ्च और स्वेद प्रकट हो जाते हैं, जो उनसे अत्यन्त सुलभ वस्तु ही माँगती है और स्वामीसे थोड़ा पाकर भी अधिक प्रसन्नता प्रकट करती है, उनका नाम लेते ही आनन्दविभोर हो जाती तथा विशेष आदर करती है, स्वामीके पास अपनी अङ्गुलियोंके चिह्नसे युक्त फल भेजा करती है तथा स्वामीकी भेजी हुई कोई वस्तु पाकर उसे आदरपूर्वक छातीसे लगा लेती है, अपने आलिङ्गनोंद्वारा मानो स्वामीके शरीरपर अमृतका लेप कर देती है, स्वामीके

दो सौ पचीसवाँ अध्याय

राज धर्म—राजपुत्र-रक्षण आदि

पुष्कर कहते हैं—राजाको अपने पुत्रकी रक्षा करनी चाहिये तथा उसे धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र और धनुर्वेदकी शिक्षा देनी चाहिये । साथ ही अनेक प्रकारके शिल्पोंकी शिक्षा देनी भी आवश्यक है । शिक्षक विश्वसनीय और प्रिय वचन बोलनेवाले होने चाहिये । राजकुमारकी शरीर-रक्षाके लिये कुछ रक्षकोंको नियुक्त करना भी आवश्यक है । क्रोधी, लोभी तथा अपमानित पुरुषोंसे सदा उसको दूर रखना चाहिये । गुणोंका आधान करना सहज नहीं होता, अतः इसके लिये राजकुमारको सुयोग्य बाँधना चाहिये । जब पुत्र शिक्षित हो जाय तो उसे सभी अधिकारोंमें नियुक्त करे । मृगया, मद्यपान और जुआ—ये राज्यका नाश करनेवाले दोष हैं । राजा इनका परित्याग करे ॥ १–४ ॥

दिनका सोना, व्यर्थ घूमना और कटुभाषण करना छोड़ दे । परायी निन्दा, कठोर दण्ड और अर्थदूषणका भी परित्याग करे । सुवर्ण आदिकी खानोंका विनाश और दुर्ग आदिकी मरम्मत न कराना—ये अर्थके दूषण कहे गये हैं । धनको थोड़ा थोड़ा करके अनेकों स्थानोंपर रखना, अयोग्य देश और अयोग्य कालमें अपात्रको दान देना तथा बुरे कामोंमें धन लगाना—यह सब भी अर्थका दूषण (धनका दुरुपयोग) है । काम, क्रोध, मद, मान, लोभ और दर्पका त्याग करे । तत्पश्चात् भृत्योंको जीतकर नगर और देशके लोगोंको वशमें करे । इसके बाद बाह्यशत्रुओंको जीतनेका प्रयत्न करे । बाह्यशत्रु भी तीन प्रकारके होते हैं—एक तो वे हैं, जिनके साथ पुश्तैनी दुश्मनी हो, दूसरे प्रकारके शत्रु हैं—अपने राज्यकी सीमापर रहनेवाले सामन्त तथा तीसरे हैं—कृत्रिम—अपने बनाये हुए शत्रु । इनमें पूर्व पूर्व शत्रु गुरु (भारी या अधिक भयानक) हैं । महाभाग ! मित्र भी तीन प्रकारके बतलाये जाते हैं—बाप दादाके समयके मित्र, शत्रुके सामन्त तथा कृत्रिम ॥ ५–१० ॥

धर्मज्ञ परशुरामजी ! राजा, मन्त्री, जनपद, दुर्ग, दण्ड (सेना), कोष और मित्र—ये राज्यके सात अङ्ग कहलाते हैं । राज्यकी जड़ है—स्वामी (राजा), अतः उसकी विशेषरूपसे रक्षा होनी चाहिये । राज्याङ्गके विद्रोहीको मार डालना उचित है । राजाको समयानुसार कठोर भी होना चाहिये और कोमल भी । ऐसा करनेसे राजाके दोनों लोक सुधरते हैं । राजा अपने भृत्योंके साथ हँसी परिहास न करे, क्योंकि सबके साथ हँस हँसकर बात करनेवाले राजाको उसके सेवक अपमानित कर बैठते हैं । लोगोंको मिलाये रखनेके लिये राजाको बनावटी व्यसन भी रखना चाहिये । वह मुसकाकर बोले और ऐसा बर्ताव करे, जिससे सब लोग प्रसन्न रहें । दीर्घसूत्री (कार्यारम्भमें विलम्ब करनेवाले) राजाके कार्यकी अवश्य हानि होती है, परंतु राग, दर्प, अभिमान, द्रोह, पापकर्म तथा अप्रिय भाषणमें दीर्घसूत्री (विलम्ब लगानेवाले) राजाकी प्रशंसा होती है । राजाको अपनी मन्त्रणा गुप्त रखनी चाहिये । उसके गुप्त रखनेसे राजापर कोई आपत्ति नहीं आती ॥ ११–१६ ॥

राजाका राज्य-सम्बन्धी कोई कार्य पूरा हो जानेपर ही दूसरोंको मालूम होना चाहिये । उसका प्रारम्भ कोई भी जानने न पावे । मनुष्यके आकार, इशारे, चाल-ढाल, चेष्टा, बातचीत तथा नेत्र और मुखके विकारोंसे उसके भीतरकी बात पकड़में आ जाती है । राजा न तो अकेले ही किसी गुप्त विषयपर विचार करे और न अधिक मनुष्योंको ही साथ रक्खे । बहुतोंसे सलाह अवश्य ले, किंतु अलग अलग । [सबको एक साथ बुलाकर नहीं ।] मन्त्रीको चाहिये कि राजाके गुप्त विचारको दूसरे मन्त्रियोंपर भी न प्रकट करे । मनुष्योंका सदा कहीं, किसी एकपर ही विश्वास जमता है, इसलिये एक ही विद्वान् मन्त्रीके साथ बैठकर राजाको गुप्त मन्त्रका निश्चय करना चाहिये । विनयका त्याग करनेसे राजाका नाश हो जाता है और विनयकी रक्षासे उसे राज्यकी प्राप्ति होती है । तीनों वेदोंके विद्वानोंसे त्रयीविद्या, सनातन दण्डनीति, आन्वीक्षिकी (अध्यात्मविद्या) तथा अर्थशास्त्रका ज्ञान प्राप्त करे । साथ ही वार्ता (कृषि, गोरक्षा एवं वाणिज्य आदि) के प्रारम्भ करनेका ज्ञान लोकसे प्राप्त करे । अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाला राजा ही प्रजाको अधीन रखनेमें समर्थ होता है । देवताओं और समस्त ब्राह्मणोंकी पूजा करनी चाहिये तथा उन्हें दान भी देना चाहिये । ब्राह्मणको दिया हुआ दान अक्षय निधि है, उसे कोई भी नष्ट नहीं कर सकता । संग्राममें पीठ न दिखाना, प्रजाका पालन करना

ऐसा न करे तो देवता, दैत्य, नाग, मनुष्य, सिद्ध, भूत और पक्षी—ये सभी अपनी मर्यादाका उल्लङ्घन कर जायँ। चूँकि यह उद्दण्ड पुरुषोंका दमन करता और अदण्डनीय पुरुषोंको दण्ड देता है, इसलिये दमन और दण्डके कारण विद्वान् पुरुष इसे 'दण्ड' कहते हैं ॥ १२–१६ ॥

जब राजा अपने तेजसे इस प्रकार तप रहा हो कि उसकी ओर देखना कठिन हो जाय, तब वह 'सूर्यवत्' होता है। जब वह दर्शन देनेमात्रसे जगत्‌को प्रसन्न करता है, तब 'चन्द्रतुल्य' माना जाता है। राजा अपने गुप्तचरोंद्वारा समस्त संसारमें व्याप्त रहता है, इसलिये वह 'वायुरूप' है तथा दोष देखकर दण्ड देनेके कारण 'सर्वसमर्थ यमराज'के समान माना गया है। जिस समय वह खोटी बुद्धिवाले दुर्जनको अपने कोपसे दग्ध करता है, उस समय साक्षात् 'अग्निदेव'का रूप होता है तथा जब ब्राह्मणोंको दान देता है, उस समय उस दानके कारण वह धनाध्यक्ष 'कुबेर-तुल्य' हो जाता है। देवता आदिके निमित्त घृत आदि हविष्यकी घनी धारा बरसानेके कारण वह 'वरुण' माना गया है। भूपाल अपने 'क्षमा' नामक गुणसे जब सम्पूर्ण जगत्‌को धारण करता है, उस समय 'पृथ्वीका स्वरूप' जान पड़ता है तथा उत्साह, मन्त्र और प्रभुशक्ति आदिके द्वारा वह सबका पालन करता है, इसलिये साक्षात् 'भगवान् विष्णु'का स्वरूप है ॥ १७–२० ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'सामादि उपायोंका कथन' नामक दो सौ छब्बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २२६ ॥

दो सौ सत्ताईसवाँ अध्याय

अपराधोंके अनुसार दण्डके प्रयोग

पुष्कर कहते हैं—राम! अब मैं दण्डनीतिका प्रयोग बतलाऊँगा, जिससे राजाको उत्तम गति प्राप्त होती है। तीन जौका एक 'कृष्णल' समझना चाहिये, पाँच कृष्णलका एक 'माष' होता है; साठ कृष्णल [अथवा बारह माष] 'आधे कर्ष'के बराबर बताये गये हैं। सोलह माषका एक 'सुवर्ण' माना गया है। चार सुवर्णका एक 'निष्क' और दस निष्कका एक 'धरण' होता है। यह ताँबे, चाँदी और सोनेका मान बताया गया है ॥ १–३ ॥

परशुरामजी! ताँबेका जो 'कर्ष' होता है, उसे विद्वानोंने 'कार्षिक' और 'कार्षापण' नाम दिया है। ढाई सौ पण (पैसे) 'प्रथम साहस' दण्ड माना गया है, पाँच सौ पण 'मध्यम साहस' और एक हजार पण 'उत्तम साहस' दण्ड बताया गया है। चोरोंके द्वारा जिसके धनकी चोरी नहीं हुई है तो भी जो चोरीका धन वापस देनेवाले राजाके पास जाकर झूठ ही यह कहता है कि 'मेरा इतना धन चुराया गया है', उसके कथनकी असत्यता सिद्ध होनेपर उससे उतना ही धन दण्डके रूपमें वसूल करना चाहिये। जो मनुष्य चोरीमें गये हुए धनके विपरीत जितना धन बतलाता है, अथवा जो जितना झूठ बोलता है—उन दोनोंसे राजाको दण्डके रूपमें दूना धन वसूल करना चाहिये; क्योंकि वे दोनों ही धर्मको नहीं मानते। झूठी गवाही देनेवाले क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन तीनों वर्णोंको कठोर दण्ड देना चाहिये, किंतु ब्राह्मणको केवल राज्यसे बाहर कर देना उचित है। उसके लिये दूसरा किसी दण्डका विधान नहीं है। धर्मज्ञ! जिसने धरोहर हड़प ली हो, उसपर धरोहरके रूपमें रक्खे हुए वस्त्र आदिकी कीमतके बराबर दण्ड लगाना चाहिये, ऐसा करनेसे धर्मकी हानि नहीं होती। जो धरोहरको नष्ट करा देता है, अथवा जो धरोहर रक्खे बिना ही किसीसे कोई वस्तु माँगता है—उन दोनोंको चोरके समान दण्ड देना चाहिये, या उनसे दूना जुर्माना वसूल करना चाहिये। यदि कोई पुरुष अनजानमें दूसरेका धन बेच देता है तो वह [भूल स्वीकार करनेपर] निर्दोष माना गया है, परंतु जो जान-बूझकर अपना बताते हुए दूसरेका सामान बेचता है, वह चोरके समान दण्ड पानेका अधिकारी है। जो अग्रिम मूल्य लेकर भी अपने हाथका काम बनाकर न दे, वह भी दण्ड देनेके ही योग्य है। जो देनेकी प्रतिज्ञा करके न दे, उसपर राजाको सुवर्ण (सोलह माष) का दण्ड लगाना चाहिये। जो मजदूरी लेकर काम न करे, उसपर आठ कृष्णल जुर्माना लगाना चाहिये। जो असमयमें भृत्यका त्याग करता है, उसपर भी उतना ही दण्ड लगाना चाहिये। कोई वस्तु खरीदने या बेचनेके बाद जिसको कुछ पश्चात्ताप हो, वह धनका स्वामी दस दिनके भीतर दाम लौटाकर माल ले सकता है। [अथवा

खरीददारको ही यदि माल पसंद न आवे तो वह दस दिनके भीतर उसे लौटाकर दाम ले सकता है ।] दस दिनसे अधिक हो जानेपर यह आदान-प्रदान नहीं हो सकता । अनुचित आदान-प्रदान करनेवालेपर राजाको छः सौका दण्ड लगाना चाहिये ॥ ४—१४ ॥

जो वरको दोषोंको न बताकर किसी कन्याका वरण करता है, उसको वचनद्वारा दी हुई कन्या भी नहीं दी हुईके ही समान है । राजाको चाहिये कि उस व्यक्तिपर दो सौका दण्ड लगावे । जो एकको कन्या देनेकी बात कहकर फिर दूसरेको दे डालता है, उसपर राजाको उत्तम साहस (एक हजार पण) का दण्ड लगाना चाहिये । वाणीद्वारा कहकर उसे कार्य रूपमें सत्य करनेसे निस्संदेह पुण्यकी प्राप्ति होती है । जो किसी वस्तुको एक जगह देनेकी प्रतिज्ञा करके उसे लोभवश दूसरेके हाथ बेच देता है, उसपर छः सौका दण्ड लगाना चाहिये । जो ग्वाला मालिकसे भोजन-खर्च और वेतन लेकर भी उसकी गाय उसे नहीं लौटाता, अथवा अच्छी तरह उसका पालन-पोषण नहीं करता, उसपर राजा सौ सुवर्णका दण्ड लगावे । गाँवके चारों ओर सौ धनुषके घेरेमें तथा नगरके चारों ओर दो सौ या तीन सौ धनुषके घेरेमें खेती करनी चाहिये, जिसे खड़ा हुआ ऊँट न देख सके । जो खेत चारों ओरसे घेरा न गया हो, उसकी फसलको किसीके द्वारा नुकसान पहुँचनेपर दण्ड नहीं दिया जा सकता । जो भय दिखाकर दूसरोंके घर, पोखरे, बगीचे अथवा खेतको हड़पनेकी चेष्टा करता है, उसके ऊपर राजाको पाँच सौका दण्ड लगाना चाहिये । यदि उसने अनजानमें ऐसा किया हो तो दो सौका ही दण्ड लगाना उचित है । सीमाका भेदन करनेवाले सभी लोगोंको प्रथम श्रेणीके साहस (ढाई सौ पण) का दण्ड देना चाहिये ॥ १५—२२ ॥

परशुरामजी ! ब्राह्मणको नीचा दिखानेवाले क्षत्रियपर सौका दण्ड लगाना उचित है । इसी अपराधके लिये वैश्यसे दो सौ सुवर्ण वसूल करे और शूद्रको कैदमें डाल दे । क्षत्रियको कलङ्कित करनेपर ब्राह्मणको पचासका दण्ड, वैश्यपर दोषारोपण करनेसे पचीसका और शूद्रको कलङ्क लगानेपर उसे बारहका दण्ड देना उचित है । यदि वैश्य क्षत्रियका अपमान करे तो उसपर प्रथम साहस (ढाई सौ पण) का दण्ड लगाना चाहिये और शूद्र यदि क्षत्रियको गाली दे तो उसकी जीभ कटवा देनी चाहिये । ब्राह्मणोंको उपदेश करनेवाला शूद्र भी दण्डका भागी होता है । जो अपने शास्त्रज्ञान और देश आदिका झूठा परिचय दे, उसे दूने साहसका दण्ड देना उचित है । जो श्रेष्ठ पुरुषोंको पापाचारी कहकर उनके ऊपर आक्षेप करे, वह उत्तम साहसका दण्ड पानेके योग्य है । यदि वह यह कहकर कि 'मेरे मुँहसे प्रमादवश ऐसी बात निकल गयी है', अपना प्रेम प्रकट करे तो उसके लिये दण्ड घटाकर आधा कर देना चाहिये । माता, पिता, ज्येष्ठ भ्राता, श्वशुर तथा गुरुपर आक्षेप करनेवाला और गुरुजनोंको रास्ता न देनेवाला पुरुष भी सौका दण्ड पानेके योग्य है । जो मनुष्य अपने जिस अङ्गसे दूसरे ऊँचे लोगोंका अपराध करे, उसके उसी अङ्गको बिना विचारे शीघ्र ही काट डालना चाहिये । जो घमंडमें आकर किसी उच्च पुरुषकी ओर थूके, राजाको उसके ओठ काट लेना उचित है । इसी प्रकार यदि वह उसकी ओर मुँह करके पेशाब करे तो उसका लिङ्ग और उधर पीठ करके अपशब्द करे तो उसकी गुदा काट लेनेके योग्य है । इतना ही नहीं, यदि वह ऊँचे आसनपर बैठा हो तो उसके नीचेके शरीरके निचले भागको दण्ड देना उचित है । जो मनुष्य दूसरेके जिस किसी अङ्गको घायल करे, उसके भी उसी अङ्गको कुतर डालना चाहिये । गौ, हाथी, घोड़े और ऊँटको हानि पहुँचानेवाले मनुष्योंके आधे हाथ और पैर काट लेने चाहिये । जो किसी (पराये) वृक्षके फल तोड़े, उसपर सुवर्णका दण्ड लगाना उचित है । जो रास्ता, खेतकी सीमा अथवा जलाशय आदिको काटकर नष्ट करे, उससे नुकसानका दूना दण्ड दिलाना चाहिये । जो जान-बूझकर या अनजानमें जिसके धनका अपहरण करे, वह पहले उसके धनको लौटाकर उसे संतुष्ट करे । उसके बाद राजाको भी जुर्माना दे । जो कुएँपरसे दूसरेकी रस्सी और घड़ा चुरा लेता तथा पौसले नष्ट कर देता है, उसे एक मासतक कैदकी सजा देनी चाहिये । प्राणियोंको मारनेपर भी यही दण्ड देना उचित है । जो दस घड़ेसे अधिक अनाजकी चोरी करता है, वह प्राणदण्ड देनेके योग्य है । बाकीमें भी अर्थात् दस घड़ेसे कम अनाजकी चोरी करनेपर भी, जितने घड़े अन्नकी चोरी करे, उससे ग्यारह गुना अधिक उसपर दण्ड लगाना चाहिये । सोने-चाँदी आदि द्रव्यों, पुरुषों तथा स्त्रियोंका अपहरण करनेपर अपराधीको वधका दण्ड देना चाहिये । चोर जिस-जिस अङ्गसे जिस प्रकार मनुष्योंके प्रतिकूल चेष्टा करता है, उसके उसी-उसी अङ्गको वैसा ही निग्रहसार पायकरता

डालना राजाका कर्तव्य है। इससे चोरोंको चेतावनी मिलती है। यदि ब्राह्मण बहुत थोड़ी मात्रामें शाक और धान्य आदि ग्रहण करता है तो वह दोषका भागी नहीं होता। गो-सेवा तथा देव-पूजाके लिये भी कोई वस्तु लेनेवाला ब्राह्मण दण्डके योग्य नहीं है। जो दुष्ट पुरुष किसीका प्राण लेनेके लिये उद्यत हो, उसका वध कर डालना चाहिये। दूसरोंके घर और क्षेत्रका अपहरण करनेवाले, परस्त्रीके साथ व्यभिचार करनेवाले, आग लगानेवाले, जहर देनेवाले तथा हथियार उठाकर मारनेको उद्यत हुए पुरुषको प्राणदण्ड देना ही उचित है॥ २३—३९॥

राजा गौओंको मारनेवाले तथा आततायी पुरुषोंका वध करे। परायी स्त्रीसे बातचीत न करे और मना करनेपर किसीके घरमें न घुसे। स्वेच्छासे पतिका वरण करनेवाली स्त्री राजाके द्वारा दण्ड पानेके योग्य नहीं है; किंतु यदि नीच वर्णका पुरुष ऊँचे वर्णकी स्त्रीके साथ समागम करे तो वह वधके योग्य है। जो स्त्री अपने स्वामीका उल्लङ्घन [करके दूसरेके साथ व्यभिचार] करे, उसको कुत्तोंसे नोचवा देना चाहिये। जो सजातीय परपुरुषके सम्पर्कसे दूषित हो चुकी हो, उसे [सम्पत्तिके अधिकारसे वञ्चित करके] शरीर निर्वाहमात्रके लिये अन्न देना चाहिये। पतिके ज्येष्ठ भ्रातासे व्यभिचार करके दूषित हुई नारीके मस्तकका बाल मुँड़वा देना चाहिये। यदि ब्राह्मण वैश्यजातिकी स्त्रीसे और क्षत्रिय नीच जातिकी स्त्रीके साथ समागम करें तो उनके लिये भी यही दण्ड है। शूद्राके साथ व्यभिचार करनेवाले क्षत्रिय और वैश्यको प्रथम साहस (ढाई सौ पण) का दण्ड देना उचित है। यदि वेश्या एक पुरुषसे वेतन लेकर लोभवश दूसरेके पास चली जाय तो वह दूना वेतन वापस करे और दण्ड भी दूना दे। स्त्री, पुत्र, दास, शिष्य तथा सहोदर भाई यदि अपराध करें तो उन्हें रस्सी अथवा बाँसकी छड़ीसे पीट देना चाहिये। प्रहार पीठपर ही करना उचित है, मस्तकपर नहीं। मस्तकपर प्रहार करनेवालेको चोरका दण्ड मिलता है॥ ४०—४६॥

जो रक्षाके कामपर नियुक्त होकर प्रजासे रुपये ऐंठते हों, उनका सर्वस्व छीनकर राजा उन्हें अपने राज्यसे बाहर कर दे। जो लोग किसी कार्यार्थीके द्वारा उसके निजी कार्यमें नियुक्त होकर वह कार्य चौपट कर डालते हैं, राजाको उचित है कि उन क्रूर और निर्दयी पुरुषोंका सारा धन छीन ले। यदि कोई मन्त्री अथवा प्राड्विवाक (न्यायाधीश) विपरीत कार्य करे तो राजा उसका सर्वस्व लेकर उसे अपने राज्यसे बाहर निकाल दे। गुरुपत्नीगामीके शरीरपर भगका चिह्न अङ्कित करा दे। सुरापान करनेवाले महापातकीके ऊपर शराबखानेके झंडेका चिह्न दगवा दे। चोरी करनेवालेपर कुत्तेका नाखून गोदवा दे और ब्रह्महत्या करनेवालेके भालपर नरमुण्डका चिह्न अङ्कित कराना चाहिये। पापाचारी नीचोंको राजा मरवा डाले और ब्राह्मणोंको देश निकाला दे दे तथा महापातकी पुरुषोंका धन वरुण देवताको अर्पण कर दे (जलमें डाल दे)। गाँवमें भी जो लोग चोरोंको भोजन देते हों तथा चोरीका माल रखनेके लिये घर और खजानेका प्रबन्ध करते हों, उन सबका भी वध करा देना उचित है। अपने राज्यके भीतर अधिकारके कार्यपर नियुक्त हुए सामन्त नरेश भी यदि पापमें प्रवृत्त हों तो उनका अधिकार छीन लेना चाहिये। जो चोर रातमें सेंध लगाकर चोरी करते हैं, राजाको उचित है कि उनके दोनों हाथ काटकर उन्हें तीखी शूलीपर चढ़ा दे। इसी प्रकार पोखरा तथा देवमन्दिर नष्ट करनेवाले पुरुषोंको भी प्राणदण्ड दे। जो बिना किसी आपत्तिके सड़कपर पेशाब, पाखाना आदि अपवित्र वस्तु छोड़ता है, उसपर कार्षापणोंका दण्ड लगाना चाहिये तथा उसीसे वह अपवित्र वस्तु फेंकवाकर वह जगह साफ करानी चाहिये। प्रतिमा तथा सीढ़ीको तोड़नेवाले मनुष्योंपर पाँच सौ पणका दण्ड लगाना चाहिये। जो अपने प्रति समान बर्ताव करनेवालोंके साथ विषमताका बर्ताव करता है, अथवा किसी वस्तुकी कीमत लगानेमें बेईमानी करता है, उसपर मध्यम साहस (पाँच सौ पण) का दण्ड लगाना चाहिये। जो लोग बनियोंसे बहुमूल्य पदार्थ लेकर उसकी कीमत रोक लें, राजा उनपर पृथक् पृथक् उत्तम साहस (एक हजार पण) का दण्ड लगावे। जो वैश्य अपने सामानोंको खराब करके, अर्थात् बढ़िया चीजोंमें घटिया चीजें मिलाकर उन्हें मनमाने दामपर बेचे, वह मध्यम साहस (पाँच सौ पण) का दण्ड पानेके योग्य है। जालसाजको उत्तम साहस (एक हजार पण) का और बलपूर्वक अपकार करनेवालेको उससे दूना दण्ड देना उचित है। अभक्ष्य भक्षण करनेवाले ब्राह्मण अथवा शूद्रपर कृष्णलका दण्ड लगाना चाहिये। जो तराजूपर धाँधली करता है, अर्थात् डंडी मारकर कम तौल देता है, जालसाजी करता है तथा ग्राहकोंको हानि पहुँचाता है—इन सबको—और जो इनके साथ व्यवहार करता है, उसको भी उत्तम साहसका दण्ड दिलाना चाहिये। जो स्त्री जहर देनेवाली, आग लगानेवाली तथा पति, गुरु, ब्राह्मण और संतानकी

चतुरङ्गिणी सेनाको युद्धके लिये नियुक्त करे। जिसमें पैदलोंकी संख्या अधिक हो, वही सेना सदा शत्रुओंपर विजय पाती है। यदि शरीरके दाहिने भागमें कोई अङ्ग फड़क रहा हो तो उत्तम है। बायें अङ्ग, पीठ तथा हृदयका फड़कना अच्छा नहीं है। इस प्रकार शरीरके चिह्नों, फोड़े-फुंसियों तथा फड़कने आदिके शुभाशुभ फलोंको अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। स्त्रियोंके लिये इससे विपरीत फल बताया गया है। उनके बायें अङ्गका फड़कना शुभ होता है॥ १-८॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'युद्धयात्राका वर्णन' नामक दो सौ अट्ठाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २२८॥

दो सौ उनतीसवाँ अध्याय

अशुभ और शुभ स्वप्नोंका विचार

पुष्कर कहते हैं—अब मैं शुभाशुभ स्वप्नोंका वर्णन करूँगा तथा दुःस्वप्न-नाशके उपाय भी बतलाऊँगा। नाभिके सिवा शरीरके अन्य अङ्गोंमें तृण और वृक्षोंका उगना, काँसेके बर्तनोंको मस्तकपर रखकर फोड़ा जाना, माथा मुँड़ाना, नग्न होना, मैले कपड़े पहनना, तेल लगाना, कीचड़ लपेटना, ऊँचेसे गिरना, विवाह होना, गीत सुनना, वीणा आदिके बाजे सुनकर मन बहलाना, हिंडोलेपर चढ़ना, पद्म और लोहेका उपार्जन, सर्पोंको मारना, लाल फूलसे भरे हुए वृक्षों तथा चाण्डालको देखना, सूअर, कुत्ते, गदहे और ऊँटोंपर चढ़ना, चिड़ियोंके मांसका भक्षण करना, तेल पीना, खिचड़ी खाना, माताके गर्भमें प्रवेश करना, चितापर चढ़ना, इन्द्रके उपलक्ष्यमें खड़ी की हुई ध्वजाका टूट पड़ना, सूर्य और चन्द्रमाका गिरना, दिव्य, अन्तरिक्ष और भूलोकमें होनेवाले उत्पातोंका दिखायी देना, देवता, ब्राह्मण, राजा और गुरुओंका कोप होना, नाचना, हँसना, ब्याह करना, गीत गाना, वीणाके सिवा अन्य प्रकारके बाजोंका स्वयं बजाना, नदीमें डूबकर नीचे जाना, गोबर, कीचड़ तथा स्याही मिलाये हुए जलसे स्नान करना, कुमारी कन्याओंका आलिङ्गन, पुरुषोंका एक दूसरेके साथ मैथुन, अपने अङ्गोंकी हानि, वमन और विरेचन करना, दक्षिण दिशाकी ओर जाना, रोगसे पीड़ित होना, फलोंकी हानि, धातुओंका भेदन, घरोंका गिरना, घरोंमें झाड़ू देना, पिशाचों, राक्षसों, वानरों तथा चाण्डाल आदिके साथ खेलना, शत्रुसे अपमानित होना, उसकी ओरसे संकटका प्राप्त होना, गेरुआ वस्त्र धारण करना, गेरुए वस्त्रोंसे खेलना, तेल पीना या उसमें नहाना, लाल फूलोंकी माला पहनना और लाल ही चन्दन लगाना—ये सब बुरे स्वप्न हैं। इन्हें दूसरोंपर प्रकट न करना अच्छा है। ऐसे स्वप्न देखकर फिरसे सो जाना चाहिये। इसी प्रकार स्वप्नदोषकी शान्तिके लिये स्नान, ब्राह्मणोंका पूजन, तिलोंका हवन, ब्रह्मा, विष्णु, शिव और सूर्यके गणोंकी पूजा, स्तुतिका पाठ तथा पुरुषसूक्त आदिका जप करना उचित है। रातके पहले प्रहरमें देखे हुए स्वप्न एक वर्षतक फल देनेवाले होते हैं, दूसरे प्रहरके स्वप्न छः महीनेमें, तीसरे प्रहरके तीन महीनेमें, चौथे प्रहरके पंद्रह दिनोंमें और अरुणोदयकी वेलामें देखे हुए स्वप्न दस ही दिनोंमें अपना फल प्रकट करते हैं॥ १-१७॥

यदि एक ही रातमें शुभ और अशुभ—दोनों ही प्रकारके स्वप्न दिखायी पड़ें तो उनमें जिसका पीछे दर्शन होता है, उसीका फल बतलाना चाहिये। अतः शुभ स्वप्न देखनेके पश्चात् सोना अच्छा नहीं माना जाता है। स्वप्नमें पर्वत, महल, हाथी, घोड़े और बैलपर चढ़ना हितकर होता है। परशुरामजी! यदि पृथ्वीपर या आकाशमें सफेद फूलोंसे भरे हुए वृक्षोंका दर्शन हो, अपनी नाभिसे वृक्ष अथवा तिनका उत्पन्न हो, अपनी भुजाएँ और मस्तक अधिक दिखायी दें, सिरके बाल पक जायँ तो उसका फल उत्तम होता है। सफेद फूलोंकी माला और श्वेत वस्त्र धारण करना, चन्द्रमा, सूर्य और ताराओंको पकड़ना, परिमार्जन करना, इन्द्रकी ध्वजाका आलिङ्गन करना, ध्वजाको ऊँचे उठाना, पृथ्वीपर पड़ती हुई जलकी धाराको अपने ऊपर रोकना, शत्रुओंकी बुरी दशा देखना, वाद-विवाद, जुआ तथा संग्राममें अपनी विजय देखना, खीर खाना, रक्तका देखना, खूनसे नहाना, सुरा, मद्य अथवा दूध पीना, अस्त्रोंसे घायल होकर धरतीपर छटपटाना, आकाशका स्वच्छ होना तथा गाय, भैंस, सिंहिनी, हथिनी और घोड़ीको मुँहसे दुहना—ये सब उत्तम स्वप्न हैं। देवता, ब्राह्मण और गुरुओंकी प्रसन्नता, गौओंके सींग अथवा चन्द्रमासे गिरे हुए जलके द्वारा अपना अभिषेक होना—ये स्वप्न राज्य प्रदान करनेवाले हैं, ऐसा समझना चाहिये। परशुरामजी! अपना राज्याभिषेक होना, अपने

मस्तकका कट जाना, मरना, आगमें पड़ना, गृह आदिमें लगी हुई आगके भीतर जलना, राजचिह्नोंका प्राप्त होना, अपने हाथसे वीणा बजाना—ऐसे स्वप्न भी उत्तम एवं राज्य प्रदान करनेवाले हैं। जो स्वप्नके अन्तिम भागमें राजा, हाथी, घोड़ा, सुवर्ण, बैल तथा गायको देखता है, उसका कुटुम्ब बढ़ता है। बैल, हाथी, महलकी छत, पर्वत-शिखर तथा वृक्षपर चढ़ना, रोना, शरीरमें घी और विष्ठाका लग जाना तथा अगम्या स्त्रीके साथ समागम करना—ये सब शुभ स्वप्न हैं ॥ १८-२१ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'शुभाशुभ स्वप्न एवं दुःस्वप्न निवारण' नामक दो सौ उनतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २२९ ॥

दो सौ तीसवाँ अध्याय

अशुभ और शुभ शकुन

पुष्कर कहते हैं—परशुरामजी ! श्वेत वस्त्र, स्वच्छ जल, फलसे भरा हुआ वृक्ष, निर्मल आकाश, खेतमें लगे हुए अन्न और काला धान्य—इनका यात्राके समय दिखायी देना अशुभ है। रुई, तृणमिश्रित सूखा गोबर (कंडा), धन, अङ्गार, गुड़, बंगाल, मूँड़ मुड़ाकर तेल लगाया हुआ नग्न साधु, लोहा, कीचड़, चमड़ा, बाल, पागल मनुष्य, हिजड़ा, चाण्डाल, श्वपच आदि, बन्धनकी रक्षा करनेवाले मनुष्य, गर्भिणी स्त्री, विधवा, तिलकी खली, मृत्यु, भूसी, राख, खोपड़ी, हड्डी और फूटा हुआ बरतन—युद्धयात्राके समय इनका दिखायी देना अशुभ माना जाता है। बाजोंका वह शब्द, जिसमें फूटे हुए झाँझकी भयंकर ध्वनि सुनायी पड़ती हो, अच्छा नहीं माना गया है। 'चले आओ'—यह शब्द यदि सामनेकी ओरसे सुनायी पड़े तो उत्तम है, किंतु पीछेकी ओरसे शब्द हो तो अशुभ माना गया है। 'जाओ'—यह शब्द यदि पीछेकी ओरसे हो तो उत्तम है, किंतु आगेकी ओरसे हो तो निन्दित होता है। 'कहाँ जाते हो ? ठहरो, न जाओ, वहाँ जानेसे तुम्हें क्या लाभ है ?'—ऐसे शब्द अनिष्टकी सूचना देनेवाले हैं। यदि ध्वजा आदिके ऊपर चील आदि मांसाहारी पक्षी बैठ जायँ, घोड़े, हाथी आदि वाहन लड़खड़ाकर गिर पड़ें, हथियार टूट जायँ, द्वार आदिके द्वारा मस्तकपर चोट लगे तथा छत्र और वस्त्र आदिको कोई गिरा दे तो ये सब अपशकुन मृत्युके कारण बनते हैं। भगवान् विष्णुकी पूजा और स्तुति करनेसे अमङ्गलका नाश होता है। यदि दूसरी बार इन अपशकुनोंका दर्शन हो तो घर लौट जाय ॥ १—८½ ॥

यात्राके समय श्वेत पुष्पोंका दर्शन श्रेष्ठ माना गया है। भरे हुए घड़ेका दिखायी देना तो बहुत ही उत्तम है। मांस, मछली, दूरका कोलाहल, अकेला वृद्ध पुरुष, पशुओंमें बकरे, गौ, घोड़े तथा हाथी, देवप्रतिमा, प्रज्वलित अग्नि, दूर्वा, ताजा गोबर, वेश्या, सोना, चाँदी, रत्न, वच, सरसों आदि ओषधियाँ, मूँग, आयुधोंमें तलवार, छाता, पीढ़ा, राजचिह्न, जिसके पास कोई रोता न हो ऐसा शव, फल, घी, दही, दूध, अक्षत, दर्पण, मधु, शङ्ख, ईख, शुभसूचक वचन, भक्त पुरुषोंका गाना-बजाना, मेघकी गम्भीर गर्जना, बिजलीकी चमक तथा मनका संतोष—ये सब शुभ शकुन हैं। एक ओर सब प्रकारके शुभ शकुन और दूसरी ओर मनकी प्रसन्नता—ये दोनों बराबर हैं ॥ ९—१३ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'शकुन वर्णन' नामक दो सौ तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २३० ॥

दो सौ इकतीसवाँ अध्याय

शकुनके भेद तथा विभिन्न जीवोंके दर्शनसे होनेवाले शुभाशुभ फलका वर्णन

पुष्कर कहते हैं—यात्रा, गृहमें प्रवेश अथवा प्रश्न करनेके समय होनेवाले शकुन उसके देश और नगरके लिये शुभ और अशुभ फलकी सूचना देते हैं। शकुन दो प्रकारके होते हैं—'दीप्त' और 'शान्त'। देवता विचार करनेवाले ज्यौतिषियोंने सम्पूर्ण दीप्त शकुनोंका फल अशुभ तथा शान्त शकुनोंका फल शुभ बतलाया है। वेलादीप्त, दिग्दीप्त, देशदीप्त, क्रियादीप्त, रुतदीप्त और जातिदीप्तके भेदसे दीप्त शकुन छः प्रकारके बताये गये हैं। उनमें पूर्व-पूर्वसे अधिक प्रबल समझना चाहिये। दिनमें विचरनेवाले प्राणी रात्रिमें और रात्रिमें चलनेवाले प्राणी दिनमें विचरते दिखायी दें तो उसे

'वेलादीप्त' जानना चाहिये। इसी प्रकार जिस समय नक्षत्र, लग्न और ग्रह आदि क्रूर अवस्थाको प्राप्त हो जायँ, वह भी 'वेलादीप्त'के ही अन्तर्गत है। सूर्य जिस दिशाको जानेवाले हों, वह 'धूमिता', जिसमें मौजूद हों, वह 'ज्वलिता' तथा जिसे छोड़ आये हों, वह 'अङ्गारिणी' मानी गयी है। ये तीन दिशाएँ 'दीप्त' और शेष पाँच दिशाएँ 'शान्त' कहलाती हैं। दीप्त दिशामें जो शकुन हो, उसे 'दिग्दीप्त' कहा गया है। यदि गाँवमें जङ्गली और जङ्गलमें ग्रामीण पशु-पक्षी आदि मौजूद हों तो वह निन्दित देश है। इसी प्रकार जहाँ निन्दित वृक्ष हों, वह स्थान भी निन्द्य एवं अशुभ माना गया है॥ १–७॥

विप्रवर! अशुभ देशमें जो शकुन होता है, उसे 'देश दीप्त' समझना चाहिये। अपने वर्णधर्मके विपरीत अनुचित कर्म करनेवाला पुरुष 'क्रियादीप्त' बतलाया गया है। [उसका दिखायी देना 'क्रियादीप्त' शकुनके अन्तर्गत है।] कभी हुई भयंकर आवाजका सुनायी पड़ना 'रुतदीप्त' कहलाता है। केवल मांसभोजन करनेवाले प्राणीको 'जातिदीप्त' समझना चाहिये। [उसका दर्शन भी 'जातिदीप्त' शकुन है।] दीप्त अवस्थाके विपरीत जो शकुन हो, वह 'शान्त' बतलाया गया है। उसमें भी उपर्युक्त सभी भेद यत्नपूर्वक जानने चाहिये। यदि शान्त और दीप्तके भेद मिले हुए हों तो उसे 'मिश्र शकुन' कहते हैं। इस प्रकार विचारकर उसका फलाफल बतलाना चाहिये॥ ८–१०॥

गौ, घोड़े, ऊँट, गदहे, कुत्ते, सारिका (मैना), गृहगोधिका (गिरगिट), चटक (गौरैया), भास (चील या मुर्गा) और कछुए आदि प्राणी 'ग्रामवासी' कहे गये हैं। बकरा, भेड़ा, तोता, गजराज, सूअर, भैंसा और कौआ—ये ग्रामीण भी होते हैं और जङ्गली भी। इनके अतिरिक्त और सभी जीव जङ्गली कहे गये हैं। बिल्ली और मुर्गे भी ग्रामीण तथा जङ्गली होते हैं, उनके रूपमें भेद होता है, इसीसे वे सदा पहचाने जाते हैं। गोकर्ण (खच्चर), मोर, चक्रवाक, गदहे, हारीत, कौए, कुलाह, कुक्कुभ, बाज, गीदड़, खञ्जरीट, वानर, शतघ्न, चटक, कोयल, नीलकण्ठ (श्येन), कपिञ्जल (चातक), तीतर, शतपत्र, कबूतर, खञ्जन, दात्यूह (जलकाक), शुक, राजीव, मुर्गा, भरदूल और सारंग—ये दिनमें चलनेवाले प्राणी हैं। वागुरी, उल्लू, शरभ, क्रौञ्च, खरगोश, कछुआ, लोमासिका और पिङ्गलिका—ये रात्रिमें चलनेवाले प्राणी बताये गये हैं। हंस, मृग, बिलाव, नेवला, रीछ, सर्प, वृकारि, सिंह, व्याघ्र, ऊँट, ग्रामीण सूअर, मनुष्य, श्वाविद, वृषभ, गोमायु, वृक, कोयल, सारस, घोड़े, गोधा और कौपीनधारी पुरुष—ये दिन और रात दोनोंमें चलनेवाले हैं॥ ११–१९॥

युद्ध और युद्धकी यात्राके समय यदि ये सभी जीव झुंड बाँधकर सामने आवें तो विजय दिलानेवाले बताये गये हैं, किंतु यदि पीछेसे आवें तो मृत्युकारक माने गये हैं। यदि नीलकण्ठ अपने घोंसलेसे निकलकर आवाज देता हुआ सामने स्थित हो जाय तो वह राजाको अपमानकी सूचना देता है और जब वह वामभागमें आ जाय तो कलहकारक एवं भोजनमें बाधा डालने वाला होता है। यात्राके समय उसका दर्शन उत्तम माना गया है, उसके बायें अङ्गका अवलोकन भी उत्तम है। यदि यात्राके समय मोर जोर-जोरसे आवाज दे तो चोरोंके द्वारा अपने धनकी चोरी होनेका संदेश देता है॥ २०–२२॥

परशुरामजी! प्रस्थानकालमें यदि मृग आगे आगे चले तो वह प्राण लेनेवाला होता है। रीछ, चूहा, सियार, बाघ, सिंह, बिलाव, गदहे—ये यदि प्रतिकूल दिशामें जाते हों, गदहा जोर-जोरसे रेंकता हो और कपिञ्जल पक्षी बायीं अथवा दाहिनी ओर स्थित हो तो ये सभी उत्तम माने गये हैं। किंतु कपिञ्जल पक्षी यदि पीछेकी ओर हो तो उसका फल निन्दित है। यात्राकालमें तीतरका दिखायी देना अच्छा नहीं है। मृग, सूअर और चितकबरे हिरन—ये यदि बायें होकर फिर दाहिने हो जायँ तो सदा कार्यसाधक होते हैं। इसके विपरीत यदि दाहिनेसे बायें चले जायँ तो निन्दित माने गये हैं। बैल, घोड़े, गीदड़, बाघ, सिंह, बिलाव और गदहे यदि दाहिनेसे बायें जायँ तो ये मनोवाञ्छित वस्तुकी सिद्धि करनेवाले होते हैं, ऐसा समझना चाहिये। शृगाल, श्यामामुख, छुच्छू (छछूँदर), पिङ्गला, गृहगोधिका, शूकरी, कोयल तथा पुँल्लिङ्ग नाम धारण करनेवाले जीव यदि वाममागमें हों तथा स्त्रीलिङ्ग नामवाले जीव, भास, कारुष, बंदर, श्रीकण्ठ, छित्वर, कपि, पिप्पीक, रुरु और श्येन—ये दक्षिण दिशामें हों तो शुभ हैं। यात्राकालमें जातिक, सर्प, खरगोश, सूअर तथा गोधाका नाम लेना भी शुभ माना गया है॥ २३–२९॥

रीछ और वानरोंका विपरीत दिशामें दिखायी देना अनिष्टकारक होता है। प्रस्थान करनेपर जो कार्यसाधक बलवान् शकुन प्रतिदिन दिखायी देता हो, उसका फल विद्वान् पुरुषोंको उसी दिनके लिये बतलाना चाहिये, अर्थात् जिस जिस दिन शकुन दिखायी देता है, उसी उसी दिन उसका फल होता है। परशुरामजी! पागल, भोजनार्थी बालक तथा वैरी

गाँव या नगरकी सीमाके भीतर दिखायी दें तो इनके दर्शनका कोई फल नहीं होता है, ऐसा समझना चाहिये। यदि सियारिन एक, दो, तीन या चार बार आवाज लगाये तो वह शुभ मानी गयी है। इसी प्रकार पाँच और छः बार बोलनेपर वह अशुभ और सात बार बोलनेपर शुभ बतायी गयी है। सात बारसे अधिक बोले तो उसका कोई फल नहीं होता। यदि रास्तेमें सूर्यकी ओर उठती हुई कोई ऐसी ज्वाला दिखायी दे, जिसपर दृष्टि पड़ते ही मनुष्योंके रोंगटे खड़े हो जायँ और सेनाके वाहन भयभीत हो उठें, तो वह भय करनेवाली—महान् भयकी सूचना देनेवाली होती है, ऐसा समझना चाहिये। यदि पहले किसी उत्तम देशमें सारङ्गका दर्शन हो तो वह मनुष्यके लिये एक वर्षतक शुभकी सूचना देता है। इसे देखनेसे अशुभमें भी शुभ होता है। अतः यात्राके प्रथम दिन मनुष्य ऐसे गुणवाले किसी सारङ्गका दर्शन कर तो उसे अपने लिये एक वर्षतक उपयुक्त रूपसे शुभ फलकी प्राप्ति होगी, ऐसा समझे॥ २०—३६॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'शकुन-वर्णन' नामक दो सौ इकतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २३१॥

दो सौ बत्तीसवाँ अध्याय

कौए, कुत्ते, गौ, घोड़े और हाथी आदिके द्वारा होनेवाले शुभाशुभ शकुनोंका वर्णन

पुष्कर कहते हैं—जिस मार्गसे बहुत-से कौए शत्रुके नगरमें प्रवेश करें, उसी मार्गसे घेरा डालनेपर उस नगरके ऊपर अपना अधिकार प्राप्त होता है। यदि किसी सेना या समुदायमें चारों ओरसे भयभीत कौआ रोता हुआ प्रवेश करे तो वह आनेवाले अपार भयकी सूचना देता है। छाया (तम्बू, रावटी आदि), अङ्ग, वाहन, उपानह, छत्र और वस्त्र आदिके द्वारा कौएको कुचल डालनेपर अपने लिये मृत्युकी सूचना मिलती है। उसकी पूजा करनेपर अपनी भी पूजा होती है तथा अन्न आदिके द्वारा उसका इष्ट करनेपर अपना भी शुभ होता है। यदि कौआ दरवाजेपर बारंबार आया-जाया करे तो वह उस घरमें किसी परदेशी व्यक्तिके आनेकी सूचना देता है तथा यदि वह कोई लाल या जली हुई वस्तु मकानपर ऊपर डाल देता है तो उसमें आग लगनेकी सूचना मिलती है॥ १—४॥

भृगुनन्दन! यदि वह मनुष्यके आगे कोई लाल वस्तु डाल देता है तो उसके कैद होनेकी बात बतलाता है और यदि कोई पीले रंगका द्रव्य सामने गिराता है तो उसके घरमें सोनेकी प्राप्ति सूचित होती है। सारांश यह कि वह जिस द्रव्यको अपने पास ला देता है, उसकी प्राप्ति और जिस द्रव्यको अपने यहाँसे उठा ले जाता है, उसकी हानिकी बात प्रकट करता है। यदि वह अपने आगे कच्चा मांस लाकर डाल दे तो धनकी, मिट्टी गिराये तो पृथ्वीकी और कोई रत्न डाल दे तो महान् राज्यकी प्राप्ति होती है। यदि यात्रा करनेवालेके अनुकूल दिशा (मार्ग) [illegible] और कौआ [illegible] हो तो वह कल्याणकारी और कार्यसाधक होता है, परंतु यदि प्रतिकूल दिशाकी ओर जाय तो उसे कार्यमें बाधा डालनेवाला तथा भयंकर मानना चाहिये। यदि कौआ सामने काँव-काँव करता हुआ आ जाय तो वह यात्राका विघातक होता है। कौएका वामभागमें होना शुभ माना गया है और दाहिने भागमें होनेपर वह कार्यका नाश करता है। वामभागमें होकर कौआ यदि अनुकूल दिशाकी ओर चले तो 'श्रेष्ठ' और दाहिने होकर अनुकूल दिशाकी ओर चले तो 'मध्यम' माना जाता है, किंतु वामभागमें होकर यदि वह विपरीत दिशाकी ओर जाय तो यात्राका निषेध करता है। यात्राकालमें घरपर कौआ आ जाय तो वह अभीष्ट कार्यकी सिद्धि सूचित करता है। यदि वह एक पैर उठाकर एक आँखसे सूर्यकी ओर देखे तो भय देनेवाला होता है। यदि कौआ किसी वृक्षके खोखलेमें बैठकर आवाज दे तो वह महान् अनर्थका कारण है। ऊसर भूमिमें बैठा हो तो भी अशुभ होता है, किंतु यदि वह कीचड़में लिपटा हुआ हो तो उत्तम माना गया है। परशुरामजी! जिसकी चोंचमें मल आदि अपवित्र वस्तुएँ लगी हों, वह कौआ दीख जाय तो सभी कार्योंका साधक होता है। कौएकी भाँति अन्य पक्षियोंका भी फल जानना चाहिये॥ ५—१२॥

यदि सेनाकी छावनीके दाहिने भागमें कुत्ते आ जायँ तो वे ब्राह्मणोंके विनाशकी सूचना देते हैं। इन्द्रध्वजके स्थानमें हों तो राजाका और गोपुर (नगरद्वार) पर हों तो नगराध्यक्षकी मृत्यु सूचित करते हैं। घरके भीतर भूँकता हुआ कुत्ता आये तो गृहस्वामीकी मृत्युका कारण होता है। वह जिसके बायें अङ्गको सूँघता है, उसके कार्यकी

सिद्धि होती है। यदि दाहिने अङ्ग और बायीं भुजाको सूँघे तो भय उपस्थित होता है। यात्रीके सामनेकी ओरसे आवे तो यात्रामें विघ्न डालनेवाला होता है। भृगुनन्दन! यदि कुत्ता राह रोककर खड़ा हो तो मार्गमें चोरोंका भय सूचित करता है, मुँहमें हड्डी लिये हो तो उसे देखकर यात्रा करनेवाले कोई लाभ नहीं होता तथा रस्सी या चिथड़ा मुखमें रखनेवाला कुत्ता भी अशुभसूचक होता है। जिसके मुँहमें जूता या मांस हो, ऐसा कुत्ता सामने हो तो शुभ होता है। यदि उसके मुँहमें कोई अमाङ्गलिक वस्तु तथा केश आदि हो तो उससे अशुभकी सूचना मिलती है। कुत्ता जिसके आगे पेशाब करके चला जाता है, उसके ऊपर भय आता है; किंतु मूत्र त्यागकर यदि वह किसी शुभ स्थान, शुभ वृक्ष तथा माङ्गलिक वस्तुके समीप चला जाय तो वह उस पुरुषके कार्यका साधक होता है। परशुरामजी! कुत्तेकी ही भाँति गीदड़ आदि भी समझने चाहिये ॥ १४–२० ॥

यदि गौएँ अकारण ही डकराने लगें तो समझना चाहिये कि स्वामीके ऊपर भय आनेवाला है। रातमें उनके बोलनेसे चोरोंका भय सूचित होता है और यदि वे विकृत स्वरमें क्रन्दन करें तो मृत्युकी सूचना मिलती है। यदि रातमें बैल गर्जना करे तो स्वामीका कल्याण होता है और साँड आवाज दे तो राजाको विजय प्रदान करता है। यदि अपनी दी हुई तथा अपने घरपर मौजूद रहनेवाली गौएँ अभक्ष्य भक्षण करें और अपने बछड़ोंपर भी स्नेह करना छोड़ दें तो गर्भक्षयकी सूचना देनेवाली मानी गयी हैं। पैरोंसे भूमि खोदनेवाली, दीन तथा भयभीत गौएँ भय लानेवाली होती हैं। जिनका शरीर भीगा हो, रोम-रोम प्रसन्नतासे खिला हो और सींगोंमें मिट्टी लगी हुई हो, वे गौएँ शुभ होती हैं। विज्ञ पुरुषको भैंस आदिके सम्बन्धमें भी यही सब शकुन बताना चाहिये ॥ २१–२४½ ॥

जीन कसे हुए अपने घोड़ेपर दूसरेका चढ़ना, उस घोड़ेका जलमें बैठना और भूमिपर एक ही जगह चक्कर लगाना अनिष्टका सूचक है। बिना किसी कारणके घोड़का सो जाना विपत्तिमें डालनेवाला होता है। यदि अकस्मात् जई और गुड़की ओरसे घोड़ेको अरुचि हो जाय, उसके मुँहसे खून गिरने लगे तथा उसका सारा बदन काँपने लगे तो ये सब अच्छे लक्षण नहीं हैं, इनसे अशुभकी सूचना मिलती है। यदि घोड़ा बगुलों, कबूतरों और सारिकाओंसे खिलवाड़ करे तो मृत्युका संदेश देता है। उसके नेत्रोंसे आँसू बहे तथा वह जीभसे अपना पैर चाटने लगे तो विनाशका सूचक होता है। यदि वह बायें टापसे धरती खोदे, बायीं करवटसे सोये अथवा दिनमें नाद ले तो शुभकारक नहीं माना जाता। जो घोड़ा एक बार मूत्र करनेवाला हो, अर्थात् जिसका मूत्र एक बार थोड़ा सा निकलकर फिर रुक जाय तथा निद्राके कारण जिसका मुँह मलिन हो रहा हो, वह भय उपस्थित करनेवाला होता है। यदि वह चढ़ने न दे, अथवा चढ़ते समय उलटे घरमें चला जाय या सवारकी बायीं पसलीका स्पर्श करने लगे तो वह यात्रामें विघ्न पड़नेकी सूचना देता है। यदि शत्रु योद्धाको देखकर हींसने लगे और स्वामीके चरणोंका स्पर्श करे तो वह विजय दिलानेवाला होता है ॥ २५–३१ ॥

यदि हाथी गाँवमें मैथुन करे तो उस देशके लिये हानिकारक होता है। हथिनी गाँवमें बच्चा दे या पागल हो जाय तो राजाके विनाशकी सूचना देती है। यदि हाथी चढ़ने न दे, उलटे हथिसारमें चला जाय या मदकी धारा बहाने लगे तो वह राजाका घातक होता है। यदि दाहिने पैरको बायेंपर रक्खे और सूँड़से दाहिने दाँतका मार्जन करे तो वह शुभ होता है ॥ ३२–३४ ॥

अपना बैल, घोड़ा अथवा हाथी शत्रुकी सेनामें चला जाय तो अशुभ होता है। यदि थोड़ी ही दूरमें बादल घिरकर अधिक वर्षा करे तो सेनाका नाश होता है। यात्राके समय अथवा युद्धकालमें ग्रह और नक्षत्र प्रतिकूल हों, सामनेसे हवा आ रही हो और छत्र आदि गिर जायँ तो भय उपस्थित होता है। लड़नेवाले योद्धा हर्ष और उत्साहमें भरे हों और ग्रह अनुकूल हों तो यह विजयका लक्षण है। यदि कौए और मांसाहारी जीव जन्तु योद्धाओंका तिरस्कार करें तो मण्डलका नाश होता है। पूर्व, पश्चिम एवं ईशान दिशा प्रसन्न तथा शान्त हों तो प्रिय और शुभ फलकी प्राप्ति करानेवाली होती हैं ॥ ३५–३७ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'शकुन-वर्णन' नामक दो सौ बत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २३२ ॥

दो सौ तैंतीसवाँ अध्याय

यात्राके मुहूर्त और द्वादश राजमण्डलका विचार

पुष्कर कहते हैं—अब मैं राजधर्मका आश्रय लेकर सबकी यात्राके विषयमें बताऊँगा। जब शुक्र अस्त हों अथवा नीच स्थानमें स्थित हों, विकलाङ्ग (अन्ध) हों, शत्रु-राशिपर विद्यमान हों अथवा वे प्रतिकूल स्थानमें स्थित या विध्वस्त हों तो यात्रा नहीं करनी चाहिये। बुध प्रतिकूल स्थानमें स्थित हों तथा दिशाका स्वामी ग्रह भी प्रतिकूल हो तो यात्रा नहीं करनी चाहिये। वैधृति, व्यतीपात, नाग, शकुनि, चतुष्पाद तथा किंस्तुघ्नयोगमें भी यात्राका परित्याग कर देना चाहिये। विपत्, मृत्यु, प्रत्यरि और जन्म—इन ताराओंमें, गण्डयोगमें तथा रिक्ता तिथिमें भी यात्रा न करे॥ १—४॥

उत्तर और पूर्व—इन दोनों दिशाओंकी एकता कही गयी है। इसी तरह पश्चिम और दक्षिण—इन दोनों दिशाओंकी भी एकता मानी गयी है। वायव्यकोणसे लेकर अग्निकोण तक जो परिघ-दण्ड रहता है, उसका उल्लङ्घन करके यात्रा नहीं करनी चाहिये। रवि, सोम और शनैश्चर—ये दिन यात्राके लिये अच्छे नहीं माने गये हैं॥ ५-६॥

कृत्तिकासे लेकर सात नक्षत्रसमूह पूर्व दिशामें रहते हैं। मघा आदि सात नक्षत्र दक्षिण दिशामें रहते हैं, अनुराधा आदि सात नक्षत्र पश्चिम दिशामें रहते हैं तथा धनिष्ठा आदि सात नक्षत्र उत्तर दिशामें रहते हैं। (अग्निकोणसे वायुकोणतक परिघ दण्ड रहा करता है, अतः इस प्रकार यात्रा करनी चाहिये, जिसमें परिघ-दण्डका उल्लङ्घन न हो।)* पूर्वोक्त नक्षत्र उन उन दिशाओंके द्वार हैं; सभी द्वार उन-उन दिशाओंके लिये उत्तम हैं। अब मैं तुम्हें छायाका मान बतलाता हूँ॥ ७½॥

रविवारको बीस, सोमवारको सोलह, मङ्गलवारको पंद्रह, बुधको चौदह, बृहस्पतिको तेरह, शुक्रको बारह तथा शनिश्चरको ग्यारह अङ्गुल 'छायामान' कहा गया है, जो सभी कर्मोंके लिये विहित है। जन्म-लग्नमें तथा सामने इन्द्रधनुष उदित हुआ हो तो मनुष्य यात्रा न करे। शुभ शकुन आदि होनेपर श्रीहरिका स्मरण करते हुए विजययात्रा करनी चाहिये॥ ८—१०½॥

परशुरामजी! अब मैं आपसे मण्डलका विचार बतलाऊँगा। राजाको सब प्रकारसे रक्षा करनी चाहिये। राजा, मन्त्री, दुर्ग, कोष, दण्ड, मित्र और जनपद—ये राज्यके सात अङ्ग कहे जाते हैं। इन सात अङ्गोंसे युक्त राज्यमें विघ्न डालनेवाले पुरुषोंका विनाश करना चाहिये। राजाको उचित है कि अपने सभी मण्डलोंमें वृद्धि करे। अपना मण्डल ही यहाँ सबसे प्रथम

* पूर्व नक्षत्रोंमें पश्चिम या दक्षिण जानेसे परिघदण्डका लङ्घन होगा। चक्र देखिये—
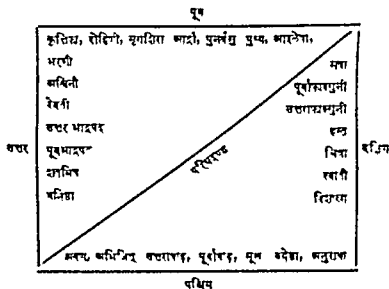
मण्डल है। सामन्त-नरेशोंको ही उस मण्डलका शत्रु जानना चाहिये। 'विजिगीषु' राजाके सामनेका सीमावर्ती सामन्त उसका शत्रु है। उस शत्रु-राज्यसे जिसकी सीमा लगी है, वह उक्त शत्रुका शत्रु होनेसे विजिगीषुका मित्र है। इस प्रकार शत्रु, मित्र, अरिमित्र, मित्रमित्र तथा अरिमित्र मित्र—ये पाँच मण्डलके आगे रहनेवाले हैं। इनका वर्णन किया गया, अब पीछे रहनेवालोंको बताता हूँ; सुनिये ॥ ११—१५½ ॥

पीछे रहनेवालोंमें पहला 'पार्ष्णिग्राह' है और उसके पीछे रहनेवाला 'आक्रन्द' कहलाता है। तदनन्तर इन दोनोंके पीछे रहनेवाले 'आसार' होते हैं, जिन्हें क्रमशः 'पार्ष्णिग्राहासार' और 'आक्रन्दासार' कहते हैं। नरश्रेष्ठ! विजयकी इच्छा रखनेवाला राजा, शत्रुके आक्रमणसे युक्त हो अथवा उससे मुक्त, उसकी विजयके सम्बन्धमें कुछ निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। विजिगीषु तथा शत्रु दोनोंके असंगठित रहनेपर उनका निग्रह और अनुग्रह करनेमें समर्थ तटस्थ राजा 'मध्यस्थ' कहलाता है। जो बलवान् नरेश इन तीनोंके निग्रह और अनुग्रहमें समर्थ हो, उसे 'उदासीन' कहते हैं। कोई भी किसीका शत्रु या मित्र नहीं है; सभी कारणवश ही एक दूसरेके शत्रु और मित्र होते हैं। इस प्रकार मैंने आपसे यह बारह राजाओंके मण्डलका वर्णन किया है ॥ १६—२० ॥

शत्रुओंके तीन भेद जानने चाहिये—कुल्य, अनन्तर और कृत्रिम। इनमें पूर्व पूर्व शत्रु भारी होता है। अर्थात् 'कृत्रिम' की अपेक्षा 'अनन्तर' और उसकी अपेक्षा 'कुल्य' शत्रु बड़ा माना गया है; उसको दबाना बहुत कठिन होता है। 'अनन्तर' (सीमाप्रान्तवर्ती) शत्रु भी मेरी समझमें 'कृत्रिम' ही है। पार्ष्णिग्राह राजा शत्रुका मित्र होता है; तथापि प्रयत्नसे वह शत्रुका शत्रु भी हो सकता है। इसलिये नाना प्रकारके उपायोंद्वारा अपने पार्ष्णिग्राहको शान्त रक्खे—उसे अपने वशमें किये रहे। प्राचीन नीतिज्ञ पुरुष मित्रके द्वारा शत्रुको नष्ट करा डालनेकी प्रशंसा करते हैं। सामन्त (सीमा निवासी) होनेके कारण मित्र भी आगे चलकर शत्रु हो जाता है; अतः विजय चाहनेवाले राजाको उचित है कि यदि अपनेमें शक्ति हो तो स्वयं ही शत्रुका विनाश करे, [मित्रकी सहायता न ले] क्योंकि मित्रका प्रताप बढ़ जानेपर उससे भी भय प्राप्त होता है और प्रतापहीन शत्रुसे भी भय नहीं होता। विजिगीषु राजाको धर्मविजयी होना चाहिये तथा वह लोगोंको इस प्रकार अपने वशमें करे, जिससे किसीको उद्वेग न हो और सबका उसपर विश्वास बना रहे ॥ २१—२६ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'यात्रामण्डलचिन्ता आदिका कथन' नामक दो सौ तैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २३३ ॥

दो सौ चौंतीसवाँ अध्याय

दण्ड, उपेक्षा, माया और साम आदि नीतियोंका उपयोग

पुष्कर कहते हैं—परशुरामजी ! साम, भेद, दान और दण्डकी चर्चा हो चुकी है और अपने राज्यमें दण्डका प्रयोग कैसे करना चाहिये ?—यह बात भी बतलायी जा चुकी है। अब शत्रुके देशमें इन चारों उपायोंके उपयोगका प्रकार बतला रहा हूँ ॥ १ ॥

'गुप्त' और 'प्रकाश'—दो प्रकारका दण्ड कहा गया है। लूटना, गाँवको गर्दमें मिला देना, खेती नष्ट कर डालना और आग लगा देना—ये 'प्रकाश दण्ड' हैं। जहर देना, चुपकेसे आग लगाना, नाना प्रकारके मनुष्योंके द्वारा किसीका वध करा देना, सत्पुरुषोंपर दोष लगाना और पानीको दूषित करना—ये 'गुप्त दण्ड' हैं ॥ २–३ ॥

भृगुनन्दन ! यह दण्डका प्रयोग बताया गया; अब 'उपेक्षा'की बात सुनिये—जब राजा ऐसा समझे कि युद्धमें मेरा किसीके साथ वैर विरोध नहीं है, व्यर्थका लगाव अनर्थका ही कारण होगा, संधिका परिणाम भी ऐसा ही (अनर्थकारी) होनेवाला है, सामका प्रयोग यहाँ किया गया, किंतु लाभ न हुआ; दानकी नीतिसे भी केवल धनका क्षय ही होगा तथा भेद और दण्डके सम्बन्धसे भी कोई लाभ नहीं है; उस दशामें 'उपेक्षा'का आश्रय ले [अर्थात् संधि विग्रहसे अलग हो जाय]। जब ऐसा जान पड़े कि अमुक व्यक्ति शत्रु हो जानेपर भी मेरी कोई हानि नहीं कर सकता तथा मैं भी इस समय इसका कुछ बिगाड़ नहीं सकता, उस समय 'उपेक्षा' कर जाय। उस अवस्थामें राजाको उचित है कि वह अपने शत्रुको अवज्ञा (उपेक्षा) से ही उपहत करे ॥४–७॥

अब मायामय (कपटपूर्ण) उपायोंका वर्णन करूँगा। राजा झूठे उत्पातोंका प्रदर्शन करके शत्रुको उद्वेगमें डाले।

शत्रुकी छावनीमें रहनेवाले स्थूल पक्षीको पकड़कर उसकी पूँछमें जलता हुआ लूक बाँध दे; वह लूक बहुत बड़ा होना चाहिये। उसे बाँधकर पक्षीको उड़ा दे और इस प्रकार यह दिखावे कि 'शत्रुकी छावनीपर उल्कापात हो रहा है।' इसी प्रकार और भी बहुत-से उत्पात दिखाने चाहिये। भाँति-भाँतिकी माया प्रकट करनेवाले मदारियोंको भेजकर उनके द्वारा शत्रुओंको उद्विग्न करे। ज्यौतिषी और तपस्वी जाकर शत्रुसे कहें कि 'तुम्हारे नाशका योग आया हुआ है।' इस तरह पृथ्वीपर विजय पानेकी इच्छा रखनेवाले राजाको उचित है कि अनेकों उपायोंसे शत्रुको भयभीत करे। शत्रुओंपर यह भी प्रकट करा दे कि 'मुझपर देवताओंकी कृपा है—मुझे उनसे वरदान मिल चुका है।' युद्ध छिड़ जाय तो अपने सैनिकोंसे कहे—'वीरो! निर्भय होकर प्रहार करो, मेरे मित्रोंकी सेनाएँ आ पहुँचीं, अब शत्रुओंके पाँव उखड़ गये हैं—वे भाग रहे हैं'—यों कहकर गर्जना करे, किलकारियाँ भरे और योद्धाओंसे कहे—'मेरा शत्रु मारा गया।' देवताओंके आदेशसे वृद्धिको प्राप्त हुआ राजा कवच आदिसे सुसज्जित होकर युद्धमें पदार्पण करे ॥ ८-१३ ½ ॥

अब 'इन्द्रजाल'के विषयमें कहता हूँ। राजा समयानुसार इन्द्रकी मायाका प्रदर्शन करे। शत्रुओंको दिखावे कि 'मेरी सहायताके लिये देवताओंकी चतुरङ्गिणी सेना आ गयी।' फिर शत्रु-सेनापर रक्तकी वर्षा करे और मायाद्वारा यह प्रयत्न करे कि महलके ऊपर शत्रुओंके कटे हुए मस्तक दिखायी दें ॥ १४-१५ ½ ॥

अब मैं छः गुणोंका वर्णन करूँगा, इनमें 'संधि' और 'विग्रह' प्रधान हैं। संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और संश्रय—ये छः गुण कहे गये हैं। किसी शर्तपर शत्रुके साथ मेल करना 'संधि' कहलाता है। युद्ध आदिके द्वारा उसे हानि पहुँचाना 'विग्रह' है। विजयाभिलाषी राजा जो शत्रुके ऊपर चढ़ाई करता है, उसीका नाम 'यात्रा' अथवा 'यान' है। विग्रह छेड़कर अपने ही देशमें स्थित रहना 'आसन' कहलाता है। [आधी सेनाको किलेमें छिपाकर] आधी सेनाके साथ युद्धकी यात्रा करना 'द्वैधीभाव' कहा गया है। उदासीन अथवा मध्यम राजाकी शरण लेनेका नाम 'संश्रय' है ॥ १६-१९ ½ ॥

जो अपनेसे हीन न होकर बराबर या अधिक बलवान् हो, उसीके साथ संधिका विचार करना चाहिये। यदि राजा स्वयं बलवान् हो और शत्रु अपनेसे हीन—निर्बल जान पड़े, तो उसके साथ विग्रह करना ही उचित है। हीनावस्थामें भी यदि अपना पार्ष्णिग्राह विशुद्ध स्वभावका हो, तभी बलिष्ठ राजाका आश्रय लेना चाहिये। यदि युद्धके लिये यात्रा न करके बैठे रहनेसे भी राजा अपने शत्रुके कार्यका नाश कर सके तो पार्ष्णिग्राहका स्वभाव शुद्ध न होनेपर भी वह विग्रह ठानकर चुपचाप बैठा रहे। अथवा पार्ष्णिग्राहका स्वभाव शुद्ध न होनेपर राजा द्वैधीभाव-नीतिका आश्रय ले। जो निस्संदेह बलवान् शत्रुके विग्रहका शिकार हो जाय, उसीके लिये संश्रय-नीतिका अवलम्बन उचित माना गया है। यह 'संश्रय' नाम भी सभी गुणोंमें अधम है। संश्रयके योग्य अवस्थामें पड़े हुए राजा यदि युद्धकी यात्रा करें तो यह उनके अन्न और धनका नाश करनेवाली बतायी गयी है। यदि किसीकी शरण लेनेसे अधिक लाभकी सम्भावना हो तो राजा संश्रयका अवलम्बन करे। उस प्रकारकी शक्तिका नाश हो जानेपर ही दूसरेकी शरण लेनी चाहिये ॥ २०-२५ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'षाड्गुण्यका वर्णन' नामक दो सौ चौंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २३४ ॥

दो सौ पैंतीसवाँ अध्याय

राजाकी नित्यचर्या

पुष्कर कहते हैं—परशुरामजी! अब निरन्तर किये जाने योग्य कर्मका वर्णन करता हूँ, जिसका प्रतिदिन आचरण करना उचित है। जब दो घड़ी रात बाकी रहे तो राजा नाना प्रकारके बाजों, वन्दीजनोंद्वारा की हुई स्तुतियों तथा मङ्गल-गीतोंकी ध्वनि सुनकर निद्राका परित्याग करे। तत्पश्चात् गूढ़ पुरुषों (गुप्तचरों) से मिले। वे गुप्तचर ऐसे हों, जिन्हें कोई भी यह न जान सके कि ये राजाके ही कर्मचारी हैं। इसके बाद विधिपूर्वक आय और व्ययका हिसाब सुने। फिर शौच आदिसे निवृत्त होकर राजा स्नानगृहमें प्रवेश करे। वहाँ राजाको पहले दन्तधावन (दाँतुन) करके फिर स्नान करना चाहिये। तत्पश्चात् संध्योपासना करके भगवान् वासुदेवका पूजन करना उचित है। तदनन्तर राजा पवित्र

पूर्वक अग्निमें आहुति दे, फिर जल लेकर पितरोंका तर्पण करे। इसके बाद ब्राह्मणोंका आशीर्वाद सुनते हुए उन्हें सुवर्णसहित दूध देनेवाली गौ दान दे ॥ १–५ ॥

इन सब कार्योंसे अवकाश पाकर चन्दन और आभूषण धारण करे तथा दर्पणमें अपना मुँह देखे। साथ ही सुवर्णयुक्त घृतमें भी मुँह देखे। फिर दैनिक-कथा आदिका श्रवण करे। तदनन्तर वैद्यकी बतायी हुई दवाका सेवन करके माङ्गलिक वस्तुओंका स्पर्श करे। फिर गुरुके पास जाकर उनका दर्शन करे और उनका आशीर्वाद लेकर राजसभामें प्रवेश करे ॥ ६-७ ॥

महाभाग! सभामें विराजमान होकर राजा ब्राह्मणों, अमात्यों तथा मन्त्रियोंसे मिले। साथ ही द्वारपालने जिनके आनेकी सूचना दी हो, उन प्रजाओंको भी बुलाकर उन्हें दर्शन दे, उनसे मिले। फिर इतिहासका श्रवण करके राज्यका कार्य देखे। नाना प्रकारके कार्योंमें जो कार्य अत्यन्त आवश्यक हो, उसका निश्चय करे। तत्पश्चात् प्रजाके मामले-मुकद्दमोंको देखे और मन्त्रियोंके साथ गुप्त परामर्श करे। मन्त्रणा न तो एकके साथ करे, न अधिक मनुष्योंके साथ, न मूर्खोंके साथ और न अविश्वसनीय पुरुषोंके साथ ही करे। उसे सदा गुप्तरूपसे ही करे, दूसरोंपर प्रकट न होने दे। मन्त्रणाको अच्छी तरह छिपाकर रक्खे, जिससे राज्यमें कोई बाधा न पहुँचे। यदि राजा अपनी आकृतिको परिवर्तित न होने दे—सदा एक रूपमें रहे तो यह गुप्त मन्त्रणाकी रक्षाका सबसे बड़ा उपाय माना गया है; क्योंकि बुद्धिमान् विद्वान् पुरुष आकार और चेष्टाएँ देखकर ही गुप्त मन्त्रणाका पता लगा लेते हैं। राजाको उचित है कि वह ज्योतिषियों, वैद्यों और मन्त्रियोंकी बात माने। इससे वह ऐश्वर्यको प्राप्त करता है; क्योंकि ये लोग राजाको अनुचित कार्योंसे रोकते और हितकर कामोंमें लगाते हैं ॥ ८–१२½ ॥

मन्त्रणा करनेके पश्चात् राजाको रथ आदि वाहनोंके हाँकने और शस्त्र चलानेका अभ्यास करते हुए कुछ कालतक व्यायाम करना चाहिये। युद्ध आदिके अवसरोंपर वह स्नान करके भलीभाँति पूजित हुए भगवान् विष्णुका, हवनके पश्चात् प्रज्वलित हुए अग्निदेवका तथा दान-मान आदिसे सत्कृत ब्राह्मणोंका दर्शन करे। दान आदिके पश्चात् वस्त्राभूषणोंसे विभूषित होकर राजा भलीभाँति जाँचे-बूझे हुए अन्नका भोजन करे। भोजनके अनन्तर पान खाकर बायीं करवटसे थोड़ी देरतक लेटे। प्रतिदिन शास्त्रोंका चिन्तन और योद्धाओं, अन्न-भण्डार तथा शस्त्रागारका निरीक्षण करे। दिनके अन्तमें सायं-संध्या करके अन्य कार्योंका विचार करे और आवश्यक कामोंपर गुप्तचरोंको भेजकर रात्रिमें भोजनके पश्चात् अन्तःपुरमें जाकर रहे। वहाँ संगीत और वाद्योंसे मनोरञ्जन करके सो जाय तथा दूसरोंके द्वारा आत्मरक्षाका पूरा प्रबन्ध रक्खे। राजाको प्रतिदिन ऐसा ही करना चाहिये ॥ १३–१७ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'प्रात्यहिक राजकर्मोंका कथन' नामक दो सौ पैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २३५ ॥

दो सौ छत्तीसवाँ अध्याय

संग्राम-दीक्षा—युद्धके समय पालन करनेयोग्य नियमोंका वर्णन

पुष्कर कहते हैं—परशुरामजी! अब मैं रणयात्राकी विधि बतलाते हुए संग्रामकालके लिये उचित कर्तव्योंका वर्णन करूँगा। जब राजाकी युद्धयात्रा एक सप्ताहमें होनेवाली हो, उस समय पहले दिन भगवान् विष्णु और शंकरजीकी पूजा करनी चाहिये। साथ ही मोदक (मिठाई) आदिके द्वारा गणेशजीका पूजन करना उचित है। दूसरे दिन दिक्पालोंकी पूजा करके राजा शयन करे। शय्यापर बैठकर अथवा उसके पहले देवताओंकी पूजा करके निम्नाङ्कित [भाववाले] मन्त्रका स्मरण करे—"भगवान् गिरीश! आप तीन नेत्रोंसे विभूषित, 'रुद्र'के नामसे प्रसिद्ध, वरदायक, वामन, विकटरूपधारी और स्वप्नके अधिष्ठाता देवता हैं, आपको बारंबार नमस्कार है। भगवन्! आप देवाधिदेवोंके भी स्वामी, त्रिशूलधारी और वृषभपर सवारी करनेवाले हैं। सनातन परमेश्वर! मेरे सो जानेपर स्वप्नमें आप मुझे यह बता दें कि 'इस युद्धसे मेरा इष्ट होनेवाला है या अनिष्ट?' उस समय पुरोहितको 'यज्जाग्रतो दूरमुदैति०' (यजु० ३४। १)—इस मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये। तीसरे दिन दिशाओंकी रक्षा करनेवाले रुद्रों तथा दिशाओंके अधिपतियोंकी पूजा करे, चौथे दिन ग्रहों और पाँचवें दिन अश्विनीकुमारोंका यजन करे। मार्गमें जो देवी, देवता तथा नदी आदि पड़ें, उनका भी पूजन करना चाहिये। द्युलोकमें, अन्तरिक्षमें तथा भूमिपर निवास करनेवाले देवताओंको बलि अर्पण करे। रात्रिमें

गणोंको भी बलि दे । भगवान् वासुदेव आदि देवताओं तथा भद्रकाली और लक्ष्मी आदि देवियोंकी भी पूजा करे । इसके बाद सम्पूर्ण देवताओंसे प्रार्थना करे ॥ १—८ ॥

'वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारायण, ब्रह्मा, विष्णु, नरसिंह, वराह, शिव, ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव, सद्योजात, सूर्य, सोम, भौम, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर, राहु, केतु, गणेश, कार्तिकेय, चण्डिका, उमा, लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, ब्रह्माणी आदि गण, रुद्र, इन्द्रादि देव, अग्नि, नाग, गरुड तथा द्युलोक, अन्तरिक्ष एवं भूमिपर निवास करनेवाले अन्यान्य देवता मेरी विजयके साधक हों । मेरी दी हुई यह भेंट और पूजा स्वीकार करके सब देवता युद्धमें मेरे शत्रुओंका मर्दन करें । देवगण ! मैं माता, पुत्र और भृत्योंसहित आपकी शरणमें आया हूँ । आपलोग शत्रु सेनाके पीछे जाकर उनका नाश करनेवाले हैं, आपको हमारा नमस्कार है । युद्धमें विजय पाकर यदि लौटूँगा तो आपलोगोंको इस समय जो पूजा और भेंट दी है, उससे भी अधिक मात्रामें पूजा चढ़ाऊँगा' ॥ ९—१४ ॥

छठे दिन राज्याभिषेककी भाँति विजय-स्नान करना चाहिये तथा यात्राके सातवें दिन भगवान् त्रिविक्रम (वामन) का पूजन करना आवश्यक है । नीराजनके लिये बताये हुए मन्त्रोंद्वारा अपने आयुध और वाहनकी भी पूजा करे । साथ ही ब्राह्मणोंके मुखसे 'पुण्याह' और 'जय' शब्दके साथ निम्नाङ्कित भाववाले मन्त्रका श्रवण करे—'राजन् ! द्युलोक, अन्तरिक्ष और भूमिपर निवास करनेवाले देवता तुम्हें दीर्घायु प्रदान करें । तुम देवताओंके समान सिद्धि प्राप्त करो । तुम्हारी यह यात्रा देवताओंकी यात्रा हो तथा सम्पूर्ण देवता तुम्हारी रक्षा करें ।' यह आशीर्वाद सुनकर राजा आगे यात्रा करे । 'धन्वना गा॰ (यजु॰ २९ । ३९) इत्यादि मन्त्रद्वारा धनुष-बाण हाथमें लेकर 'तद्विष्णोः॰' (यजु॰ ६ । ५) इस मन्त्रका जप करते हुए शत्रुके सामने दाहिना पैर बढ़ाकर बत्तीस पग आगे जाय; फिर पूर्व, दक्षिण, पश्चिम एवं उत्तरमें जानेके लिये क्रमशः हाथी, रथ, घोड़े तथा भार ढोनेमें समर्थ जानवरपर सवार होवे और बाजा बजवाते हुए आगेकी यात्रा करे; पीछे फिरकर न देखे ॥ १५—२० ॥

एक कोस जानेके बाद ठहर जाय और देवता तथा ब्राह्मणोंकी पूजा करे । पीछे आती हुई अपनी सेनाकी रक्षा करते हुए ही राजाको दूसरेके देशमें यात्रा करनी चाहिये । विदेशमें जानेपर भी अपने देशके आचारका पालन करना राजाका कर्तव्य है । वह प्रतिदिन देवताओंका पूजन करे, किसीकी आय नष्ट न होने दे और उस देशके मनुष्योंका कभी अपमान न करे । विजय पाकर पुनः अपने नगरमें लौट आनेपर राजा देवताओंकी पूजा करे और दान दे । दूसरे दिन संग्राम छिड़नेवाला हो तो पहले दिन हाथी, घोड़े आदि वाहनोंको नहलाकर तथा भगवान् नृसिंहका पूजन करे । छत्र आदि राजचिह्नों, अस्त्र-शस्त्रों तथा भूतगणोंकी भी अर्चना करके सबेरे पुनः भगवान् नृसिंहकी एवं सम्पूर्ण वाहन आदिकी पूजा करे । पुरोहितके द्वारा हवन किये हुए अग्निदेवका दर्शन करके स्वयं भी उसमें आहुति डाले और ब्राह्मणोंका सत्कार करके धनुष-बाण ले, हाथी आदिपर सवार हो युद्धके लिये जाय । शत्रुके देशमें अदृश्य रहकर प्रकृति-कल्पना (मोर्चाबंदी) करे । यदि अपने पास थोड़े-से सैनिक हों तो उन्हें एकत्र संगठित रखकर युद्धमें प्रवृत्त करे और यदि योद्धाओंकी संख्या अधिक हो तो उन्हें इच्छानुसार फैला दे [अर्थात् उन्हें दूर-दूरमें खड़ा करके युद्धमें लगावे] ॥ २१—२७ ॥

थोड़े-से सैनिकोंका अधिक संख्यावाले योद्धाओंके साथ युद्ध करनेके लिये 'सूचीमुख' नामक व्यूह उपयोगी होता है । व्यूह दो प्रकारके बताये गये हैं—प्राणियोंके शरीरकी भाँति द्रव्यस्वरूप । गरुडव्यूह, मकरव्यूह, चक्रव्यूह, श्येनव्यूह, अर्धचन्द्रव्यूह, वज्रव्यूह, शकटव्यूह, सर्वतोभद्रमण्डलव्यूह और सूचीव्यूह—ये नौ व्यूह प्रसिद्ध हैं । सभी व्यूहोंके सैनिकोंको पाँच भागोंमें विभक्त किया जाता है । दो पक्ष, दो अनुपक्ष और पाँचवाँ भाग भी अवश्य रखना चाहिये । योद्धाओंके एक या दो भागोंसे युद्ध करे और तीन भागोंको उनकी रक्षाके लिये रखे । स्वयं राजाको कभी व्यूहमें नियुक्त नहीं करना चाहिये, क्योंकि राजा ही सबकी जड़ है, उस जड़के कट जानेपर सारे राज्यका विनाश हो जाता है; अतः स्वयं राजा युद्धमें प्रवृत्त न हो । वह सेनाके पीछे एक कोसकी दूरीपर रहे । वहाँ रहते हुए राजाका यह कार्य बताया गया है कि युद्धसे भागे हुए सिपाहियोंको उत्साहित करके धैर्य बँधावे । सेनाके प्रधान (अर्थात् सेनापति) के भागने या मारे जानेपर सेना नहीं ठहर सकती । व्यूहमें योद्धाओंको न तो एक-दूसरेसे सटाकर खड़ा करे और न बहुत दूर-दूर ही, उनके बीचमें इतनी ही दूरी रहनी चाहिये, जिससे एक-दूसरेके हथियार आपसमें टकराने न पावें ॥ २८—३५ ॥

जो शत्रु सेनाकी मार्चाबंदी तोड़ना चाहता हो, वह अपने संगठित योद्धाओंके द्वारा ही उसे ताड़नेका प्रयत्न करे तथा शत्रुके द्वारा भी यदि अपनी सेनाके व्यूह-भेदनके लिये प्रयत्न हो रहा हो तो उसकी रक्षाके लिये संगठित वीरोंको ही नियुक्त करना चाहिये। अपनी इच्छाके अनुसार सेनाका ऐसा व्यूह बनावे, जो शत्रुके व्यूहमें घुसकर उसका भेदन कर सके। हाथीके पैरोंकी रक्षा करनेके लिये चार रथ नियुक्त करे। रथकी रक्षाके लिये चार घुड़सवार, उनकी रक्षाके लिये उतने ही ढाल लेकर युद्ध करनेवाले सिपाही तथा ढालवालोंके बराबर ही धनुर्धर वीरोंको तैनात करे। युद्धमें सबसे आगे ढाल लेनेवाले योद्धाओंको स्थापित करे। उनके पीछे धनुर्धर योद्धा, धनुर्धरोंके पीछे घुड़सवार, घुड़सवारोंके पीछे रथ और रथोंके पीछे राजाको हाथियोंकी सेना नियुक्त करनी चाहिये॥३६-३९॥

पैदल हाथीसवार और घुड़सवारोंको प्रयत्नपूर्वक धर्मानुकूल युद्धमें संलग्न रहना चाहिये। युद्धके मुहानेपर शूरवीरोंको ही तैनात करे, डरपोक स्वभाववाले सैनिकोंको वहाँ कदापि न खड़ा होने दे। शूरवीरोंको आगे खड़ा करके ऐसा प्रबन्ध करे, जिससे वीर स्वाभाववाले योद्धाओंको केवल शत्रुओंका जत्थामात्र दिखायी दे [उनके भयंकर पराक्रमपर उनकी दृष्टि न पड़े], तभी व शत्रुओंको भगानेवाला पुरुषार्थ कर सकते हैं। भीरु पुरुष आगे रहें तो वे भागकर सेनाका व्यूह स्वयं ही तोड़ डालते हैं; अतः उन्हें आगे न रक्खे। शूरवीर आगे रहनेपर भीरु पुरुषोंको युद्धके लिये सदा उत्साह ही प्रदान करते रहते हैं। जिनका कद ऊँचा, नासिका तोतेके समान नुकीली, दृष्टि सौम्य तथा दोनों भौंहें मिली हुई हों, जो क्रोधी, कलहप्रिय, सदा हर्ष और उत्साहसे भरे रहनेवाले तथा कामपरायण हों, उन्हें शूरवीर समझना चाहिये॥ ४०-४३½॥

संगठित वीरोंमेंसे जो मारे जायँ अथवा घायल हों, उनको युद्धभूमिसे दूर हटाना, युद्धके भीतर जाकर हाथियोंको पानी पिलाना तथा हथियार पहुँचाना—ये सब पैदल सिपाहियोंके कार्य हैं। अपनी सेनाका भेदन करनेकी इच्छा रखनेवाले शत्रुओंसे उसकी रक्षा करना और संगठित होकर युद्ध करनेवाले शत्रु-वीरोंका व्यूह तोड़ डालना—यह ढाल लेकर युद्ध करनेवाले योद्धाओंका कार्य बताया गया है। युद्धमें विपक्षी योद्धाओंको मार भगाना धनुर्धर वीरोंका काम है। अत्यन्त घायल हुए योद्धाको युद्धभूमिसे दूर ले जाना, फिर युद्धमें आना तथा शत्रुकी सेनामें त्रास उत्पन्न करना—यह सब रथी वीरोंका कार्य बतलाया जाता है। संगठित व्यूहको तोड़ना, टूटे हुएको जोड़ना तथा चहारदीवारी, तोरण (सदर दरवाजा), अट्टालिका और वृक्षोंको भङ्ग कर डालना—यह अच्छे हाथीका पराक्रम है। ऊँची-नीची भूमिको पैदल सेनाके लिये उपयोगी जानना चाहिये, रथ और घोड़ोंके लिये समतल भूमि उत्तम है तथा कीचड़से भरी हुई युद्धभूमि हाथियोंके लिये उपयोगी बतायी गयी है॥ ४४-४९½॥

इस प्रकार व्यूह-रचना करके जब सूर्य पीठकी ओर हों तथा शुक्र, शनैश्चर और दिक्पाल अपने अनुकूल हों, सामनेसे मन्द-मन्द हवा आ रही हो, उस समय उत्साहपूर्वक युद्ध करे तथा नाम एवं गोत्रकी प्रशंसा करते हुए सम्पूर्ण योद्धाओंमें उत्तेजना भरता रहे। साथ ही यह बात भी बताये कि 'युद्धमें विजय होनेपर उत्तम-उत्तम भोगोंकी प्राप्ति होगी और मृत्यु हो जानेपर स्वर्गका सुख मिलेगा।' वीर पुरुष शत्रुओंको जीतकर मनोवाञ्छित भोग प्राप्त करता है और युद्धमें प्राणत्याग करने पर उसे परमगति मिलती है। इसके सिवा वह जो स्वामीका अन्न खाये रहता है, उसके ऋणसे छुटकारा पा जाता है, अतः युद्धके समान श्रेष्ठ गति दूसरी कोई नहीं है। शूरवीरोंके शरीरसे जब रक्त निकलता है, तब वे पापमुक्त हो जाते हैं। युद्धमें जो शस्त्र प्रहार आदिका कष्ट सहना पड़ता है, वह बहुत बड़ी तपस्या है। रणमें प्राण-त्याग करनेवाले शूरवीरके साथ हजारों सुन्दरी अप्सराएँ चलती हैं। जो सैनिक हतोत्साह होकर युद्धसे पीठ दिखाते हैं, उनका सारा पुण्य मालिकको मिल जाता है और स्वयं उन्हें पग-पगपर एक एक ब्रह्महत्याके पापका फल प्राप्त होता है। जो अपने सहायकोंको छोड़कर चल देता है, देवता उसका विनाश कर डालते हैं। जो युद्धसे पीछे पैर नहीं हटाते, उन बहादुरोंके लिये अश्वमेध यज्ञका फल बताया गया है॥ ५०-५६॥

यदि राजा धर्मपर दृढ़ रहे तो उसकी विजय होती है। योद्धाओंको अपने समान योद्धाओंके साथ ही युद्ध करना चाहिये। हाथीसवार आदि सैनिक हाथीसवार आदिके ही साथ युद्ध करें। भागनेवालोंको न मारें। जो लोग केवल युद्ध देखनेके लिये आये हों, अथवा युद्धमें सम्मिलित होनेपर भी जो शस्त्रहीन एवं भूमिपर गिरे हुए हों, उनको भी नहीं मारना चाहिये। जो योद्धा शान्त हो या थक गया हो, नींदमें पड़ा हो तथा नदी या जंगलके बीचमें उतरा हो, उसपर भी

शील आदि सद्गुण भी तत्काल ही छोड़ देते हैं। तुम्हारी कृपादृष्टि पड़नेपर गुणहीन मनुष्य भी तुरंत ही शील आदि सम्पूर्ण उत्तम गुणों तथा पारिवारिक सुखसे रहनेवाले ऐश्वर्यसे युक्त हो जाते हैं। देवि! जिसको तुमने अपनी दयादृष्टिसे एक बार देख लिया, वही श्लाघ्य (प्रशंसनीय), गुणवान्, धन्यवादका पात्र, कुलीन, बुद्धिमान्, शूर और पराक्रमी हो जाता है। विष्णुप्रिये! तुम जगत्‌की माता हो। जिसकी ओरसे तुम मुँह फेर लेती हो, उसके शील आदि सभी गुण तत्काल दुर्गुणके रूपमें बदल जाते हैं। कमलके समान नेत्रोंवाली देवि! ब्रह्माजीकी जिह्वा भी तुम्हारे गुणोंका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हो सकती। मुझपर प्रसन्न हो जाओ तथा कभी भी मेरा परित्याग न करो ॥ २–१७ ॥

पुष्कर कहते हैं—इन्द्रके इस प्रकार स्तवन करनेपर भगवती लक्ष्मीने उन्हें राज्यकी स्थिरता और संग्राममें विजय आदिका अभीष्ट वरदान दिया। साथ ही अपने स्तोत्रका पाठ या श्रवण करनेवाले पुरुषोंके लिये भी उन्होंने भोग तथा मोक्ष मिलनेके लिये वर प्रदान किया। अतः मनुष्यको चाहिये कि सदा ही लक्ष्मीके इस स्तोत्रका पाठ और श्रवण करे* ॥ १८-१९ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'श्रीस्तोत्रका वर्णन' नामक दो सौ सैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २३७ ॥

---

* पुष्कर उवाच—

राज्यलक्ष्मीस्थिरत्वाय यथेन्द्रेण पुरा श्रिया। स्तुतिः कृता तथा राजा जयार्थं स्तुतिमाचरेत् ॥

इन्द्र उवाच—

नमस्ये सर्वलोकानां जननीमब्धिसम्भवाम्। श्रियमुन्निद्रपद्माक्षीं विष्णुवक्षःस्थलस्थिताम् ॥
त्वं सिद्धिस्त्वं स्वधा स्वाहा सुधा त्वं लोकपावनि। संध्या रात्रिः प्रभा भूतिर्मेधा श्रद्धा सरस्वती ॥
यज्ञविद्या महाविद्या गुह्यविद्या च शोभने। आत्मविद्या च देवि त्वं विमुक्तिफलदायिनी ॥
आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिस्त्वमेव च। सौम्या सौम्यं जगद्रूपं त्वयैतद्देवि पूरितम् ॥
का त्वन्या त्वामृते देवि सर्वयज्ञमयं वपुः। अध्यास्ते देवदेवस्य योगिचिन्त्यं गदाभृतः ॥
त्वया देवि परित्यक्तं सकलं भुवनत्रयम्। विनष्टप्रायमभवत् त्वयेदानीं समेधितम् ॥
दाराः पुत्रास्तथागारं सुहृद्धान्यधनादिकम्। भवत्येतन्महाभागे नित्यं त्वद्वीक्षणान्नृणाम् ॥
शरीरारोग्यमैश्वर्यमरिपक्षक्षयः सुखम्। देवि त्वद्दृष्टिदृष्टानां पुरुषाणां न दुर्लभम् ॥
त्वमम्बा सर्वभूतानां देवदेवो हरिः पिता। त्वयैतद् विष्णुना चाम्ब जगद् व्याप्तं चराचरम् ॥
मानं कोषं तथा कोष्ठं मा गृहं मा परिच्छदम्। मा शरीरं कलत्रं च त्यजेथाः सर्वपावनि ॥
मा पुत्रान् मा सुहृद्वर्गान् मा पशून् मा विभूषणम्। त्यजेथा मम देवस्य विष्णोर्वक्षःस्थलालये ॥
सत्त्वेन सत्यशौचाभ्यां तथा शीलादिभिर्गुणैः। त्यज्यन्ते ते नराः सद्यः संत्यक्ता ये त्वयामले ॥
त्वयावलोकिताः सद्यः शीलाद्यैरखिलैर्गुणैः। कुलैश्वर्यैश्च युज्यन्ते पुरुषा निर्गुणा अपि ॥
स श्लाघ्यः स गुणी धन्यः स कुलीनः स बुद्धिमान्। स शूरः स च विक्रान्तो यस्त्वया देवि वीक्षितः ॥
सद्यो वैगुण्यमायान्ति शीलाद्याः सकला गुणाः। पराङ्मुखी जगद्धात्री यस्य त्वं विष्णुवल्लभे ॥
न ते वर्णयितुं शक्ता गुणाञ्जिह्वापि वेधसः। प्रसीद देवि पद्माक्षि नास्मांस्त्याक्षीः कदाचन ॥

पुष्कर उवाच

एवं स्तुता ददौ श्रीश्च वरमिन्द्राय चेप्सितम्। सुस्थिरत्वं च राज्यस्य संग्रामविजयादिकम् ॥
स्वस्तोत्रपाठश्रवणकर्तॄणां भुक्तिमुक्तिदम्। श्रीस्तोत्रं सततं तस्मात् पठेच्च शृणुयान्नरः ॥

(अग्निपुराण २३७। १–१९)

पालनमें संलग्न रहे । मधुर वाणी, दीनोंपर दया, देश-कालकी अपेक्षासे सत्पात्रको दान, दीनों और शरणागतोंकी रक्षा* तथा सत्पुरुषोंका सङ्ग—ये सत्पुरुषोंके आचार हैं । यह आचार प्रजासंग्रहका उपाय है, जो लोकमें प्रशंसित होनेके कारण श्रेष्ठ है तथा भविष्यमें भी अभ्युदयरूप फल देनेवाला होनेके कारण हितकारक है । यह शरीर मानसिक चिन्ताओं तथा रोगोंसे घिरा हुआ है । आज या कल इसका विनाश निश्चित है । ऐसी दशामें इसके लिये कौन राजा धर्मके विपरीत आचरण करेगा ? ॥ १०–१२½ ॥

राजाको चाहिये कि वह अपने लिये सुखकी इच्छा रखकर दीन-दुखी लोगोंको पीड़ा न दे; क्योंकि सताया जानेवाला दीन-दुःखी मनुष्य दुःखजनित क्रोधके द्वारा अत्याचारी राजाका विनाश कर डालता है । अपने पूजनीय पुरुषको जिस तरह आदर हाथ जोड़ा जाता है, कल्याणकामी राजा दुष्टजनको उससे भी अधिक आदर देते हुए हाथ जोड़े । (तात्पर्य यह है कि दुष्टको सामनीतिसे ही वशमें किया जा सकता है ।) साधु सुहृदों तथा दुष्ट शत्रुओंके प्रति भी सदा प्रिय वचन ही बोलना चाहिये । प्रियवादी 'देवता' कहे गये हैं और कटुवादी 'पशु' ॥ १३–१५½ ॥

बाहर और भीतरसे शुद्ध रहकर राजा आस्तिकता (ईश्वर तथा परलोकपर विश्वास) द्वारा अन्तःकरणको पवित्र बनाये और सदा देवताओंका पूजन करे । गुरुजनोंका देवताओंके समान ही सम्मान करे तथा सुहृदोंको अपने तुल्य मानकर उनका भलीभाँति सत्कार करे । वह अपने ऐश्वर्यकी रक्षा एवं वृद्धिके लिये गुरुजनोंको प्रतिदिन प्रणामद्वारा अनुकूल बनाये । अनूचान (साङ्गवेदके अध्येता) की-सी चेष्टाओंद्वारा विद्वान् सत्पुरुषोंका सांमुख्य प्राप्त करे । सुकृतकर्म (यज्ञादि पुण्यकर्म तथा गन्ध-पुष्पादि-समर्पण) द्वारा देवताओंको अपने अनुकूल करे । सद्भाव (विश्वास) द्वारा मित्रका हृदय जीते, सम्भ्रम (विशेष आदर) से बान्धवों (पिता और माताके कुलोंके बड़े-बूढ़ों) को अनुकूल बनाये । स्त्रीको प्रेमसे तथा भृत्यवर्गको दानसे वशमें करे । इनके अतिरिक्त जो बाहरी लोग हैं, उनके प्रति अनुकूलता दिखाकर उनका हृदय जीते ॥ १६–१८½ ॥

दूसरे लोगोंके कृत्योंकी निन्दा या आलोचना न करना, अपने वर्ण तथा आश्रमके अनुरूप धर्मका निरन्तर पालन, दीनोंके प्रति दया, सभी लोक-व्यवहारोंमें सबके प्रति मीठे वचन बोलना, अपने अनन्य मित्रका प्राण देकर भी उपकार करनेके लिये उद्यत रहना, घरपर आये हुए मित्र या अन्य सज्जनोंको भी हृदयसे लगाना—उनके प्रति अत्यन्त स्नेह एवं आदर प्रकट करना, आवश्यकता हो तो उनके लिये यथाशक्ति धन देना, लोगोंके कटु व्यवहार एवं कठोर वचनको भी सहन करना, अपनी समृद्धिके अवसरोंपर निर्विकार रहना (हर्ष या दर्पके वशीभूत न होना), दूसरोंके अभ्युदयपर मनमें ईर्ष्या या जलन न होना, दूसरोंको ताप देनेवाली बात न बोलना, मौनव्रतका आचरण (अधिक वाचाल न होना), बन्धुजनोंके साथ अटूट सम्बन्ध बनाये रखना, सज्जनोंके प्रति चतुरश्रता (अवक्र—सरलभावसे उनका समाराधन), उनकी हार्दिक सम्मतिके अनुसार कार्य करना—ये महात्माओंके आचार हैं ॥ १९–२२ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'रामोक्त नीतिका वर्णन' नामक दो सौ अड़तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २३८ ॥

दो सौ उनतालीसवाँ अध्याय

श्रीरामकी राजनीति

श्रीराम कहते हैं—लक्ष्मण ! स्वामी (राजा), अमात्य (मन्त्री), राष्ट्र (जनपद), दुर्ग (किला), कोष (खजाना), बल (सेना) और सुहृद् (मित्रादि)—ये राज्यके परस्पर उपकार करनेवाले सात अङ्ग कहे गये हैं । राज्यके अङ्गोंमें राजा और मन्त्रीके बाद राष्ट्र प्रधान एवं अर्थका साधन है, अतः उसका सदा पालन करना

* यहाँ यह प्रश्न होता है कि शरणागतोंकी रक्षा तो दयाका ही कार्य है, अतः दयासे ही वह सिद्ध है फिर उसका अलग कथन क्यों किया गया ? इसके उत्तरमें निवेदन है कि दयाके दो भेद हैं—'उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट' । इनमें जो उत्कृष्ट दया है उसके द्वारा दीनोंका उद्धार होता है और अनुत्कृष्ट दयासे उपगत या शरणागतकी रक्षा की जाती है—यही सूचित करनेके लिये उसका अलग प्रतिपादन किया गया है ।

जिसे अन्यायसे हटाना कठिन न हो, जिसका जन्म उसी जनपदमें हुआ हो, जो कुलीन (ब्राह्मण आदि), सुशील, शारीरिक बलसे सम्पन्न, उत्तम वक्ता, सभामें निर्भीक होकर बोलनेवाला, शास्त्ररूपी नेत्रसे युक्त, उत्साहवान् (उत्साहसम्बन्धी त्रिविध गुण—शौर्य, अमर्ष एवं दक्षतासे सम्पन्न), प्रतिपत्तिमान् (प्रतिभाशाली, भय आदिके अवसरोंपर उनका तत्काल प्रतिकार करनेवाला), स्तब्धता (मान) और चपलतासे रहित, मैत्र (मित्रोंके अर्जन एवं संग्रहमें कुशल), शीत-उष्ण आदि क्लेशोंको सहन करनेमें समर्थ, शुचि (उपधाद्वारा परीक्षासे प्रमाणित हुई शुद्धिसे सम्पन्न), सत्य (झूठ न बोलना), सत्त्व (व्यसन और अभ्युदयमें भी निर्विकार रहना), धैर्य, स्थिरता, प्रभाव तथा आरोग्य आदि गुणोंसे सम्पन्न, कृतशिल्प (सम्पूर्ण कलाओंके अभ्याससे सम्पन्न), दक्ष (शीघ्रतापूर्वक कार्य सम्पादनमें कुशल), प्रज्ञावान् (बुद्धिमान्), धारणान्वित (अविस्मरणशील), दृढभक्ति (स्वामीके प्रति अविचल अनुराग रखनेवाला) तथा किसीसे वैर न रखनेवाला और दूसरोंद्वारा किये गये विरोधको शान्त कर देनेवाला पुरुष राजाका बुद्धिसचिव एवं कर्मसचिव होना चाहिये ॥ १२–१४½ ॥

स्मृति (अनेक वर्षोंकी बीती बातोंको भी न भूलना), अर्थ-तत्परता (दुर्गादिकी रक्षा एवं संधि आदिमें सदैव तत्पर रहना), वितर्क (विचार), ज्ञाननिश्चय (यह ऐसा ही है, अन्यथा नहीं है—इस प्रकारका निश्चय), दृढता तथा मन्त्रगुप्ति (कार्यसिद्धि होनेतक मन्त्रणाको अत्यन्त गुप्त रखना)—ये 'मन्त्रिसम्पत्'के गुण कहे गये हैं ॥ १५½ ॥

पुरोहितको तीनों वेदों (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद) तथा दण्डनीतिके ज्ञानमें भी कुशल होना चाहिये; वह सदा अथर्ववेदोक्त विधिसे राजाके लिये शान्तिकर्म एवं पुष्टिकर्मका सम्पादन करे[2] ॥ १६½ ॥

बुद्धिमान् राजा तत्तद् विषयके विद्वानोंद्वारा उन अमात्योंके शास्त्रज्ञान तथा शिल्पकर्म—इन दो गुणोंकी परीक्षा करे[1] । यह परोक्ष या आगम प्रमाणद्वारा परीक्षण है ॥ १७½ ॥

कुलीनता, जन्मस्थान तथा अवग्रह (उसे नियन्त्रित रखनेवाले बन्धुजन)—इन तीन बातोंकी जानकारी उसके आत्मीयजनोंके द्वारा प्राप्त करे । (यहाँ भी आगम या परोक्ष प्रमाणका ही आश्रय लिया गया है ।) परिकर्म (दुर्गादि निर्माण) में दक्षता (आलस्य न करना), विज्ञान (बुद्धिसे अपूर्व बातको जानकर बताना) और धारयिष्णुता (कौन काम हुआ और कौन या कम शेष रहा इत्यादि बातोंको सदा स्मरण रखना)—इन तीन गुणोंकी भी परीक्षा करे । प्रगल्भता (सभा आदिमें निर्भीकता), प्रतिभा (प्रत्युत्पन्नमतिता), वाग्मिता (प्रवचनकौशल) तथा सत्यवादिता—इन चार गुणोंको बातचीतके प्रसङ्गोंमें स्वयं अपने अनुभवसे जाने ॥ १८–१९½ ॥

उत्साह (शौर्यादि), प्रभाव, क्लेश सहन करनेकी क्षमता, धैर्य, स्वामिविषयक अनुराग और स्थिरता—इन गुणोंकी परीक्षा आपत्तिकालमें करे । राजाके प्रति दृढभक्ति, मैत्री तथा आचार विचारकी शुद्धि—इन गुणोंको व्यवहारसे जाने ॥ २०-२१ ॥

आसपास एवं पड़ोसके लोगोंसे बल, सत्त्व (सम्पत्ति और विपत्तिमें भी निर्विकार रहनेका स्वभाव), आरोग्य, शील, अस्तब्धता (मान और दर्पका अभाव) तथा अचापल्य (चपलताका अभाव एवं गम्भीरता)—इन गुणोंको जाने । वैर न करनेका स्वभाव, भद्रता (भलमनसाहत) तथा क्षुद्रता (नीचता) को प्रत्यक्ष देखकर जाने । जिनके गुण और बर्ताव प्रत्यक्ष नहीं हैं, उनके कार्यसे सर्वत्र उनके गुणोंका अनुमान करना चाहिये ॥ २२-२३ ॥

जहाँ खेतीकी उपज अधिक हो, विभिन्न वस्तुओंकी खानें हों, जहाँ विक्रयके योग्य तथा खनिज पदार्थ प्रचुर मात्रामें उपलब्ध होते हों, जो गौओंके लिये हितकारिणी (घास आदिसे युक्त) हो, जहाँ पानीकी बहुतायत हो, जो पवित्र जनपदसे घिरी हुई हो, जो सुरम्य हो, जहाँके जंगलोंमें

---

१ कौटिल्यने भी ऐसा ही कहा है—

'नैयमसौ मन्त्रय शोत्साहगुणा । (कौटि० अध० १ । ९ । १९)

२ यही अभिप्राय लेकर कौटिल्यने कहा है—

पुरोहितम् उदितोदितकुलशील षडङ्गे वेदे दैवे निमित्ते दण्डनीत्यां च अभिविनीतमापदां दैवमानुषीणाम् आथर्वभिरुपायैः प्रतिकर्तारं कुर्वीत । (कौटि० अध० १ । ९ । ५०)

१ राजाओंके लिये तीन प्रमाण हैं—प्रत्यक्ष, परोक्ष और अनुमान । जैसा कि कौटिल्यका कथन है—

प्रत्यक्षपरोक्षानुमेया हि राजवृत्तिः ।' इनमें स्वयं देखा हुआ प्रत्यक्ष', दूसरोंके द्वारा कथित 'परोक्ष' तथा किये गये कर्मसे अकृत कर्मका अवेक्षण 'अनुमान' है ।

अब मैं अनुजीवी (राजसेवक) जनोंके बर्तावका वर्णन करूँगा। सेवकोचित गुणोंसे सम्पन्न पुरुष राजाका सेवन करे। दक्षता (कौशल तथा शीघ्रकारिता), भद्रता (भलमनसाहत या लोकप्रियता), दृढ़ता (सुस्थिर स्नेह एवं कर्मोंमें दृढ़तापूर्वक लगे रहना), क्षमा (निन्दा आदिको सहन करना), क्लेशसहिष्णुता (भूख प्यास आदिके क्लेशको सहन करनेकी क्षमता), संतोष, शील और उत्साह—ये गुण अनुजीवीको अलङ्कृत करते हैं ॥ ३८½ ॥

सेवक यथासमय न्यायपूर्वक राजाकी सेवा करे; दूसरेके स्थानपर जाना, क्रूरता, उद्दण्डता या असभ्यता और ईर्ष्या—इन दोषोंको वह त्याग दे। जो पद या अधिकारमें अपनेसे बड़ा हो, उसका विरोध करके या उसकी बात काटकर राजसभामें न बोले। राजाके गुप्त कर्मों तथा मन्त्रणाको कहीं प्रकाशित न करे। सेवकको चाहिये कि वह अपने प्रति स्नेह रखनेवाले स्वामीसे ही जीविका प्राप्त करनेकी चेष्टा करे; जो राजा विरक्त हो—सेवकसे घृणा करता हो, उसे सेवक त्याग दे ॥३९–४१॥

यदि राजा अनुचित कार्यमें प्रवृत्त हो तो उसे मना करना और यदि न्याययुक्त कर्ममें संलग्न हो तो उसमें उसका साथ देना—यह थोड़ेमें बन्धु, मित्र और सेवकोंका श्रेष्ठ आचार बताया गया है ॥ ४२ ॥

राजा मेघकी भाँति समस्त प्राणियोंको आजीविका प्रदान करनेवाला हो। उसके यहाँ आयके जितने द्वार (साधन) हों, उन सबपर वह विश्वस्त एवं जाँचे-परखे हुए लोगोंको नियुक्त करे। [जैसे सूर्य अपनी किरणोंद्वारा पृथ्वीसे जल लेता है, उसी प्रकार राजा उन आयुक्त पुरुषोंद्वारा धन ग्रहण करे] ॥४३॥

[जिन्हें उन-उन कर्मोंके करनेका अभ्यास तथा यथार्थ ज्ञान हो, जो उपधाद्वारा शुद्ध प्रमाणित हुए हों तथा जिनके ऊपर जाने-समझे हुए गणक आदि करणवर्गकी नियुक्ति कर दी गयी हो तथा] जो उद्योगसे सम्पन्न हों, ऐसे ही लोगोंको सम्पूर्ण कर्मोंमें अध्यक्ष बनाये। खेती, व्यापारियोंके उपयोगमें आनेवाले स्थल और जलके मार्ग, पर्वत आदि दुर्ग, सेतुबन्ध (नहर एवं बाँध आदि), कुञ्जरबन्धन (हाथी आदिके पकड़नेके स्थान), सोने-चाँदी आदिकी खानें, वनमें उत्पन्न सार-दारु आदि (साखू, शीशम आदि) की निकासीके स्थान तथा शून्य स्थानोंको बसाना—आयके इन आठ द्वारोंको 'अष्टवर्ग' कहते हैं। अच्छे आचार व्यवहारवाला राजा इस अष्टवर्गकी निरन्तर रक्षा करे ॥ ४४-४५ ॥

आयुक्तक (रक्षाधिकारी राजकर्मचारी), चोर, शत्रु, राजाके प्रिय सम्बन्धी तथा राजाके लोभ—इन पाँचोंसे प्रजाजनोंको पाँच प्रकारका भय प्राप्त होता है। इस भयका निवारण करके राजा उचित समयपर प्रजासे कर ग्रहण करे। राज्यके दो भेद हैं—बाह्य और आभ्यन्तर। राजाका अपना शरीर ही 'आभ्यन्तर राज्य' है तथा राष्ट्र या जनपदको 'बाह्य राज्य' कहा गया है। राजा इन दोनोंकी रक्षा करे ॥ ४६-४७ ॥

जो पापी राजाके प्रिय होनेपर भी राज्यको हानि पहुँचा रहे हों, वे दण्डनीय हैं। राजा उन सबको दण्ड दे तथा विष आदिसे अपनी रक्षा करे। स्त्रियोंपर, पुत्रोंपर तथा शत्रुओंपर कभी विश्वास न करे ॥ ४८ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'राजधर्मकथन' नामक दो सौ उनतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २३९ ॥

दो सौ चालीसवाँ अध्याय

द्वादशराजमण्डल-चिन्तन*

श्रीराम कहते हैं—राजाको चाहिये कि वह मुख्य द्वादश राजमण्डलका चिन्तन करे। १ अरि, २ मित्र, ३ अरिमित्र, तत्पश्चात् ४ मित्रमित्र तथा ५ अरिमित्रमित्र—ये क्रमशः विजिगीषुके सामनेवाले राजा कहे गये हैं। विजिगीषुके पीछे

* यदि विजयकी इच्छा रखनेवाले राजाको सौ हजार योजनके क्षेत्रफलवाले चक्रवर्ती-क्षेत्रपर विजय प्राप्त करना हो, तो उसे अपने आगेके पाँच तथा पीछेके चार राजाओंकी ओर ध्यान देना होगा। इसी तरह अगल-बगलके उस राज्यपर भी विचार करना होगा, जिसकी सीमा अपने राज्यसे तथा शत्रुके राज्यसे भी मिलती होगी; ऐसे राज्यको 'मध्यम' कहा है। इस सम्पूर्ण मण्डलसे बाहर जो प्रबल राज्य या राजा है—उसकी संज्ञा 'उदासीन' है। विजिगीषुके सामनेके जो पाँच राज्य हैं उनके नामोंका क्रमशः इस प्रकार व्यवहार होगा—(१) शत्रु-राज्य, (२) मित्र राज्य (३) शत्रुके मित्रका राज्य (४) मित्रके मित्रका राज्य तथा (५) शत्रुके

है। उसके दो भेद हैं—अभियोक्ता और अनभियोक्ता। उक्त संधियोंमेंसे उपन्यास, प्रतीकार और संयोग—ये तीन संधियाँ अनभियोक्ता (अनाक्रमणकारी) के प्रति करनी चाहिये। शेष सभी अभियोक्ता (आक्रमणकारी) के प्रति कर्तव्य हैं ॥ ५-८ ॥

परस्परोपकार, मैत्र, सम्बन्धज तथा उपहार—ये ही चार संधिके भेद जानने चाहिये—ऐसा अन्य लोगोंका मत है* ॥ ९ ॥

बालक, वृद्ध, चिरकालका रोगी, भाई-बन्धुओंसे बहिष्कृत, डरपोक, भीरु सैनिकोंवाला, लोभी-लालची सेवकोंसे घिरा हुआ, अमात्य आदि प्रकृतियोंके अनुरागसे वञ्चित, अत्यन्त विषयासक्त, अस्थिरचित्त और अनेक लोगोंके सामने मन्त्र प्रकट करनेवाला, देवताओं और ब्राह्मणोंका निन्दक, दैवका मारा हुआ, दैवको ही सम्पत्ति और विपत्तिका कारण मानकर स्वयं उद्योग न करनेवाला, जिसके ऊपर दुर्भिक्षका संकट आया हो वह, जिसकी सेना कैद कर ली गयी हो अथवा शत्रुओंसे घिर गयी हो वह, अयोग्य देशमें स्थित (अपनी सेनाकी पहुँचसे बाहरके स्थानमें विद्यमान), बहुत-से शत्रुओंसे युक्त, जिसने अपनी सेनाको युद्धके योग्य कालमें नहीं नियुक्त किया है वह, तथा सत्य और धर्मसे भ्रष्ट—ये बीस पुरुष ऐसे हैं, जिनके साथ संधि न करे, केवल विग्रह करे ॥ १०—१३½ ॥

एक-दूसरेके अपकारसे मनुष्योंमें विग्रह (कलह या युद्ध) होता है। राजा अपने अभ्युदयकी इच्छासे अथवा

५ भविष्यमें कल्याण करनेवाली एककार्यसिद्धिके उद्देश्यसे जो संधि की जाय, अर्थात् अमुक शत्रु हम दोनोंको हानि पहुँचाने वाला है, अतः हम दोनों मिलकर उसका उच्छेद करें, इससे हम दोनोंको समानरूपसे लाभ होगा—ऐसा उपन्यास (उल्लेख) करके जो संधि की जाय, उसे उपन्यास कहा गया है।

६ मैंने पहले इसका उपकार किया है, संकटकालमें इसे सहायता दी है, अब यह ऐसे ही अवसरपर मेरी भी सहायता करके उस उपकारका बदला चुकायेगा—इस उद्देश्यसे जो संधि की जाती है, अथवा मैं इसका उपकार करता हूँ, यह मेरा भी उपकार करेगा—इस अभिप्रायसे जो संधि स्थापित की जाती है, उसका नाम प्रतीकारसंधि है—जैसे श्रीराम और सुग्रीवकी संधि।

७ एकपर ही चढ़ाई करनेके लिये जब शत्रु और विजिगीषु दोनों जाते हैं, उस समय यात्राक्रममें जो उन दोनोंमें संगठन या साँठ-गाँठ हो जाती है, ऐसी संधिको संयोग कहते हैं।

८ जहाँ दो राजाओंमें एक नतमस्तक हो जाता है और दूसरा यह शर्त रखता है कि मेरे और तुम्हारे दोनों सेनापति मिलकर मेरा अमुक कार्य सिद्ध करें, तो उस शर्तपर होनेवाली संधि पुरुषान्तर कही जाती है।

९ अकेले तुम मेरा अमुक कार्य सिद्ध करो, उसमें मैं अथवा मेरी सेनाका कोई योद्धा साथ नहीं रहेगा—जहाँ शत्रु ऐसी शर्त सामने रखे, वहाँ उस शर्तपर की जानेवाली संधि 'अदृष्ट पुरुष' कही जाती है। उसमें एक पक्षका कोई भी पुरुष देखनेमें नहीं आता, अतएव उसका नाम अदृष्टपुरुष है।

१० जहाँ अपनी भूमिका एक भाग देकर शेषकी रक्षाके लिये बलवान् शत्रुके साथ संधि की जाती है, उसे आदिष्ट कहा गया है।

११ जहाँ अपनी सेना देकर संधि की जाती है, वहाँ अपने आपको ही आमिष (भोग्य) बना देनेके कारण उस संधिका नाम आत्मामिष है।

१२ जहाँ प्राणरक्षाके लिये सर्वस्व अर्पण कर दिया जाता है, वह संधि उपग्रह कही गयी है।

१३ जहाँ कोषका एक भाग, कुप्य (वस्त्र, कम्बल आदि) अथवा सारा ही खजाना देकर शेष प्रकृति (अमात्य, राष्ट्र आदि) की रक्षा की जाती है, वहाँ मानो उस धनसे उन शेष प्रकृतियोंका क्रय किया जाता है, अतएव उस संधिको परिक्रय कहते हैं।

१४ जहाँ सारभूत भूमि (कोष आदिकी अधिक वृद्धि करानेवाले भूभाग) को देकर संधि की जाती है, वह अपना उच्छेद करनेके समान होनेसे उच्छिन्न कहलाती है।

१५ अपनी सम्पूर्ण भूमिसे जो भी फल या लाभ प्राप्त होता है, उसको कुछ अधिक मिलाकर देनेके बाद जो संधि होती है, वह परदूषण कही गयी है।

१६ जहाँ परिगणित फल (लाभ) खण्ड-खण्ड करके अर्थात् कई किस्तोंमें बाँटकर पहुँचाये जाते हैं, वैसी संधि स्कन्धोपनेय कही गयी है।

* परस्परोपकार' ही प्रतीकार है; 'मैत्र' का ही नाम 'संगत' संधि है। सम्बन्धजको ही 'संतान' कहा गया है और 'उपहार' तो पूर्वकथित 'उपहार' है ही। इन्हींमें अन्य सबका समावेश है।

जब विजिगीषु और शत्रु—दोनों एक-दूसरेकी शक्तिका विघात न कर सकनेके कारण आक्रमण न करके बैठ रहें तो इसे 'आसन' कहा जाता है, इसके भी 'यान'की ही भाँति पाँच भेद होते हैं—१ विगृह्य आसन, २ सन्धाय आसन, ३ सम्भूय आसन, ४ प्रसङ्गासन तथा ५ उपेक्षासन ।* ॥२७½॥

आक्रमण किया जाता है, वह 'सन्धायगमन' कहा जाता है । अथवा अपने पार्ष्णिग्राह संज्ञावाले पृष्ठवर्ती शत्रुके साथ संधि करके जो अन्यत्र—अपने सामनेवाले शत्रुपर आक्रमणके लिये यात्रा की जाती है, विजिगीषुकी उस यात्राको भी 'सन्धायगमन' कहते हैं । सामूहिक लाभमें समानरूपसे भागी होनेवाले सामन्तोंके साथ, जो शक्ति और उद्यमसे युक्त हों, एकीभूत होकर—मिलकर जो किसी एक ही शत्रुपर चढ़ाई की जाती है, उसका नाम 'सम्भूयगमन' है । अथवा जो विजिगीषु और उसके शत्रु दोनोंकी प्रकृतियोंका विनाश करनेके कारण दोनोंका शत्रु हो, उसके प्रति विजिगीषु तथा शत्रु दोनोंका मिलकर युद्धके लिये यात्रा करना 'सम्भूयगमन' है । इसके उदाहरण हैं—सूर्य और हनुमान् । हनुमान् बाल्यावस्थामें लोहित सूर्यमण्डलको उदित हुआ देख, 'यह क्या है'—इस बातको जाननेके लिये बालोचित चपलतावश उछलकर उसे पकड़नेके लिये आगे बढ़े । निकट पहुँचनेपर उन्होंने देखा कि भानुको ग्रहण करनेके लिये स्वर्भानु (राहु) आया है । फिर तो उसे ही अपना प्रतिद्वन्द्वी जान हनुमान्‌जी उसपर टूट पड़े । उस समय सूर्यने भी अपने प्रमुख शत्रु राहुको दबानेके लिये अपने भोले-भाले शत्रु हनुमान्‌जीका ही साथ दिया । एकपर आक्रमण करनेके लिये प्रस्थित हुआ राजा यदि प्रसङ्गवश उसके विरोधी दूसरे पक्षको अपने आक्रमणका लक्ष्य बना लेता है तो उसकी इस यात्राको 'प्रसङ्गगमन' या 'प्रसङ्गयान' कहते हैं । इसके दृष्टान्त हैं राजा शल्य । वे दुर्योधनपर पाण्डवपक्षसे आक्रमणके लिये चले थे, किंतु मार्गमें दुर्योधनके प्रति सत्कारसे प्रसन्न हो उसे वर माँगनेके लिये कहकर उसकी प्रार्थनासे उसीके सेनापति हो गये और अपने भानजे युधिष्ठिरको ही अपने आक्रमणका लक्ष्य बनाया । शत्रुके प्रति आक्रमण करनेवाले विजिगीषुको रोकनेके लिये यदि उस शत्रुके बलवान् मित्र आ पहुँचें तो उस शत्रुकी उपेक्षा करके उसके उन मित्रोंपर ही चढ़ाई करना 'उपेक्षायान' कहलाता है—जैसे इन्द्रकी आज्ञासे निवातकवचोंका वध करनेके लिये प्रस्थित हुए अर्जुनको रोकनेके निमित्त जब हिरण्यपुरवासी 'कालकञ्ज' नामक असुर आ पहुँचे, तब अर्जुन उन निवातकवचोंकी उपेक्षा करके कालकञ्जोंपर ही टूट पड़े और उनको परास्त करनेके बाद ही उन्होंने निवातकवचोंका वध किया ।

* जब शत्रु और विजिगीषु परस्पर आक्रमण करके कारणवशात् युद्ध बंद करके बैठ जायँ तो इसे 'विगृह्यासन' कहते हैं । यह एक प्रकार है । विजिगीषु शत्रुके किसी प्रदेशको क्षति पहुँचाकर जब स्वतः युद्धसे विरत होकर बैठ जाता है, तब यह भी 'विगृह्यासन' कहलाता है ।

यदि शत्रु दुर्गके भीतर स्थित होनेके कारण पकड़ा न जा सके, तो उसके आसार (मित्रवर्ग) तथा वीवध (अनाजकी फसल आदि) को नष्ट करके उसके साथ विग्रह छेड़कर बैठ रहे । दीर्घकालतक ऐसा करनेसे प्रजा आदि प्रकृतियाँ उस शत्रु राजासे विरक्त हो जाती हैं । अतः समयानुसार वह वशीभूत हो जाता है । शत्रु और विजिगीषु समान बलशाली होनेके कारण युद्ध छिड़नेपर जब समानरूपसे क्षीण होने लगें, तब परस्पर संधि करके बैठ जायँ । यह 'सन्धाय आसन' कहलाता है । पूर्वकालमें निवातकवचोंके साथ जब दिग्विजयी रावणका युद्ध होने लगा, तब दोनों पक्ष ब्रह्माजीके वरदानसे शक्तिशाली होनेके कारण एक-दूसरेको परास्त न कर सके । उस दशामें ब्रह्माजीको ही बीचमें डालकर रावण संधि करके बैठ रहा । यह सन्धाय आसन का उदाहरण है ।

विजिगीषु और उसके शत्रुको उदासीन और मध्यमसे आक्रमणकी समानरूपसे शङ्का हो तब उन दोनोंको मिल जाना चाहिये । इस प्रकार मिलकर बैठना 'सम्भूय आसन' कहलाता है । जब मध्यम और उदासीनमेंसे कोई-सा भी विजिगीषु और उसके शत्रु—दोनोंका विनाश करना चाहता हो, तब वह उन दोनोंका शत्रु समझा जाता है; उस दशामें विजिगीषु अपने शत्रुके साथ मिलकर दोनोंके ही अधिक बलवान् शत्रुभूत उस मध्यम या उदासीनका सामना करें । यही 'सम्भूय आसन' है ।

यदि विजिगीषु किसी अन्य शत्रुपर आक्रमणकी इच्छा रखता है; किंतु कार्यान्तर (अर्थलाभ या अनर्थप्रतीकार) के प्रसङ्गसे अन्यत्र बैठ रहे तो इसे 'प्रसङ्गासन' कहते हैं ।

अधिक शक्तिशाली शत्रुकी उपेक्षा करके अपने स्थानपर बैठे रहना 'उपेक्षासन' कहलाता है । भगवान् श्रीकृष्णने जब पारिजातहरण किया था, उस समय उन्हें अधिक शक्तिशाली जानकर इन्द्रदेव उपेक्षा करके बैठ रहे, यह उपेक्षासनका उदाहरण है । इसका एक दूसरा उदाहरण रुक्मी है । महाभारत-युद्धमें वह मय और कैशिकोंकी सेना लेकर बारी-बारीसे कौरवों और पाण्डवोंके पास गया और बोला, 'यदि तुम डरे हुए हो तो हम तुम्हारी सहायता करके तुम्हें विजय दिलावें ।' उसकी इस बातपर दोनोंने उसकी उपेक्षा कर दी । अतः वह किसी ओरसे युद्ध न करके अपने घरपर ही बैठा रहा ।

तथा शत्रु राजाकी आज्ञा लेकर वहाँसे विदा हो। उसे शत्रुके छिद्र (दुर्बलता) की जानकारी प्राप्त करनी चाहिये। उसके कोष, मित्र और सेनाके विषयमें भी वह जाने तथा शत्रुकी दृष्टि एवं शरीरकी चेष्टाओंसे अपने प्रति राग और विरक्तिका भी अनुमान कर लेना चाहिये ॥ ९-१० ॥

वह उभय पक्षोंके कुलकी (यथा 'आप उदितोदित कुलके रत्न हैं' आदि), नामकी (यथा 'आपका नाम दिग्दिगन्तमें विख्यात है' इत्यादि), द्रव्यकी (यथा 'आपका द्रव्य परोपकारमें लगता है' इत्यादि) तथा श्रेष्ठ कर्मकी (यथा 'आपके सत्कर्मकी श्रेष्ठ लोग भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं' आदि कहकर) बड़ाई करे। इस तरह चतुर्विध स्तुति करनी चाहिये। तपस्वीके वेषमें रहनेवाले अपने चरोंके साथ संवाद करे। अर्थात् उनसे बात करके यथार्थ स्थितिको जाननेकी चेष्टा करे ॥ ११ ॥

चर दो प्रकारके होते हैं—प्रकाश (प्रकट) और अप्रकाश (गुप्त)। इनमें जो प्रकाश है, उसकी 'दूत' संज्ञा है और अप्रकाश 'चर' कहा गया है। वणिक् (वैदेहक), किसान (गृहपति), लिङ्गी (मुण्डित या जटाधारी तपस्वी), भिक्षुक (उदास्थित), अध्यापक (छात्रवृत्तिसे रहनेवाला—कापटिक)—इन चारोंकी स्थितिके लिये संस्थाएँ हैं। इनके लिये वृत्ति (जीविका) की व्यवस्था की जानी चाहिये, जिससे वे सुखसे रह सकें* ॥ १२ ॥

जब दूतकी चेष्टा निष्फल हो जाय तथा शत्रु व्यसनग्रस्त हो, तब उसपर चढ़ाई करे ॥ १२½ ॥

जिससे अपनी प्रकृतियाँ व्यसनग्रस्त हो गयी हों, उस कारणको शान्त करके विजिगीषु शत्रुपर चढ़ाई करे। व्यसन दो प्रकारके होते हैं—मानुष और दैव। अनय और अपनय दोनोंके संयोगसे प्रकृति-व्यसन प्राप्त होता है। अथवा केवल दैवसे भी उसकी प्राप्ति होती है। वह श्रेय (अभीष्ट अर्थ) को व्यस्त (क्षिप्त या नष्ट) कर देता है, इसलिये 'व्यसन' कहलाता है। अग्नि (आग लगना), जल (अतिवृष्टि या बाढ़), रोग, दुर्भिक्ष (अकाल पड़ना) और मरक (महामारी)—ये पाँच प्रकारके 'दैव-व्यसन' हैं। शेष 'मानुष-व्यसन' हैं। पुरुषार्थ अथवा अथर्ववेदोक्त शान्तिकर्मसे दैव-व्यसनका निवारण करे। उत्थान शीलता (दुर्गादि निर्माण-विषयक चेष्टा) अथवा नीति—संधि या साम आदिके प्रयोगके द्वारा मानुष-व्यसनकी शान्ति करे ॥ १३-१५½ ॥

मन्त्र (कार्यका निश्चय), मन्त्रफलकी प्राप्ति, कार्यका अनुष्ठान, भावी उन्नतिका सम्पादन, आय-व्यय, दण्डनीति, शत्रुका निवारण तथा व्यसनको टालनेका उपाय, राजा एवं राज्यकी रक्षा—ये सब अमात्यके कर्म हैं। यदि अमात्य व्यसनग्रस्त हो तो वह इन सब कर्मोंको नष्ट कर देता है† ॥ १६-१७½ ॥

सुवर्ण, धान्य, वस्त्र, वाहन तथा अन्यान्य द्रव्योंका संग्रह जनपदवासिनी प्रजाके कर्म हैं। यदि प्रजा व्यसनग्रस्त हो तो वह उपर्युक्त सब कार्योंका नाश कर डालती है ॥ १८½ ॥

आपत्तिकालमें प्रजाजनोंकी रक्षा, कोष और सेनाकी रक्षा, गुप्त या आकस्मिक युद्ध, आपत्तिग्रस्त जनोंकी रक्षा, संकटमें पड़े हुए मित्रों और अमित्रोंका संग्रह तथा सामन्तों और वनवासियोंसे प्राप्त होनेवाली बाधाओंका निवारण भी दुर्गका आश्रय लेनेसे होता है। नगरके नागरिक भी शरण लेनेके लिये दुर्गपतियोंका कोष आदिके द्वारा उपकार करते हैं। (यदि दुर्ग विपत्तिग्रस्त हो जाय तो ये सब कार्य विपन्न हो जाते हैं।) ॥ १९-२०½ ॥

भृत्यों (सैनिक आदि) का भरण-पोषण, दानकर्म, भूषण, हाथी-घोड़े आदिका खरीदना, स्थिरता, शत्रुपक्षकी लुब्ध प्रकृतियोंमें धन देकर फूट डालना, दुर्गका संस्कार (मरम्मत और सजावट), सेतुबन्ध (खेतीके लिये जलसंचय करनेके निमित्त बाँध आदिका निर्माण), वाणिज्य, प्रजा और मित्रोंका संग्रह, धर्म, अर्थ एवं कामकी सिद्धि—ये सब कार्य कोषसे सम्पादित होते हैं। कोषसम्बन्धी व्यसनसे राजा इन सबका नाश कर देता है, क्योंकि राजाका मूल है—कोष ॥ २१-२२ ॥

---

* यहाँ कोष्ठमें दिये गये 'वैदेहक' आदि शब्द 'वणिक्' आदि शब्दोंके पर्याय नामान्तर हैं।

† इन कर्मोंमें मन्त्र या कार्यका निश्चय मन्त्रीके अधीन है, शत्रुओंको दूरसे ही भगाकर मन्त्रसाध्य फलकी प्राप्ति दूतके अधीन है, कार्यका अनुष्ठान (दुर्गादिकर्मकी प्रवृत्ति) अध्यक्षके अधीन है, आयति अथवा भावी उन्नतिका सम्पादन अमात्योंके अधीन है, आय और व्यय अक्षपटलिक (आयमन्त्री) के अधीन है, दण्डनीति धर्मस्थ (न्यायाधिकारी) के हाथमें है तथा शत्रुओंका निवारण मित्र-साध्य कर्म है—ऐसा विभाग व्याख्याकारने किया है।

दौड़ते हुए यान (अश्व आदि) से गिरना, भूख प्यासका कष्ट उठाना आदि दोष मृगयासे प्राप्त होते हैं। किसी छिपे हुए शत्रुसे मारे जानेकी भी सम्भावना रहती है। श्रम या थकावटपर विजय पानेके लिये किसी सुरक्षित वनमें राजा शिकार खेले ॥ ३९½ ॥

जूएमें धर्म, अर्थ और प्राणके नाश आदि दोष होते हैं; उसमें कलह आदिकी भी सम्भावना रहती है। स्त्रीसम्पर्कभी व्यसनमें प्रत्येक कर्तव्य कार्यके करनेमें बहुत अधिक विलम्ब होता है—ठीक समयमें कोई काम नहीं हो पाता तथा धर्म और अर्थकी भी हानि पहुँचती है। मद्यपानके व्यसनमें प्राणोंका नाशतक हो जाता है, नशेके कारण कर्तव्य और अकर्तव्यका निश्चय नहीं हो पाता ॥ ४०-४१ ॥

सेनाकी छावनी कहाँ और कैसे पड़नी चाहिये, इस बातको जो जानता है तथा भले-बुरे निमित्त (शकुन) का ज्ञान रखता है, वह शत्रुपर विजय पा सकता है। स्कन्धावार (सेनाकी छावनी) के मध्यभागमें खजानासहित राजाके ठहरनेका स्थान होना चाहिये। राजभवनको चारों ओरसे घेरकर क्रमशः मौल (पिता-पितामहके कालसे चली आती हुई मौलिक सेना), भृत (भोजन और वेतन देकर रक्खी हुई सेना), श्रेणि (जनपदनिवासियोंका दल अथवा कुविन्द आदिकी सेना), मित्रसेना, द्विषद्बल (राजाकी दण्डशक्तिसे वशीभूत हुए सामन्तोंकी सेना) तथा आटविक (वन्यप्रदेशके अधिपतिकी सेना)—इन सेनाओंकी छावनी डाले ॥ ४२-४३ ॥

(राजा और उसके अन्तःपुरकी रक्षाकी सुव्यवस्था करनेके पश्चात्) सेनाका एक चौथाई भाग युद्धसज्जासे सुसज्जित हो सेनापतिको आगे करके प्रयत्नपूर्वक छावनीके बाहर रातभर चक्कर लगाये। वायुके समान वेगशाली घोड़ोंपर बैठे हुए घुड़सवार दूर सीमान्तपर विचरते हुए शत्रुकी गतिविधिका पता लगायें। जो भी छावनीके भीतर प्रवेश करें या बाहर निकलें, सब राजाकी आज्ञा प्राप्त करके ही वैसा करें ॥ ४४-४५ ॥

साम, दान, दण्ड, भेद, उपेक्षा, इन्द्रजाल और माया—ये सात उपाय हैं, इनका शत्रुके प्रति प्रयोग करना चाहिये। इन उपायोंसे शत्रु वशीभूत होता है ॥ ४६ ॥

सामके पाँच भेद बताये गये हैं—१ दूसरेके उपकारका वर्णन, २ आपसके सम्बन्धको प्रकट करना (जैसे 'आपकी माता मेरी मौसी हैं' इत्यादि), ३ मधुरवाणीमें गुणकीर्तन करते हुए बोलना, ४ भावी उन्नतिका प्रकाशन (यथा—'ऐसा होनेपर आगे चलकर हम दोनोंका बड़ा लाभ होगा' इत्यादि) तथा ५ मैं आपका हूँ—यों कहकर आत्मसमर्पण करना ॥ ४७½ ॥

किसीसे उत्तम (सार), अधम (असार) तथा मध्यम (सारासार) भेदसे जो द्रव्य-सम्पत्ति प्राप्त हुई हो, उसको उसी रूपमें लौटा देना—यह दानका प्रथम भेद है। २ बिना दिये ही जो धन किसीके द्वारा ले लिया गया हो, उसका अनुमोदन करना (यथा 'आपने अच्छा किया जो ले लिया। मैंने पहलेसे ही आपको देनेका विचार कर लिया था')—यह दानका दूसरा भेद है। ३ अपूर्व द्रव्यदान (भाण्डागारसे निकालकर दिया गया नूतन दान), ४ स्वयंग्राह्यप्रवर्तन (किसी दूसरेसे स्वयं ही धन ले लेनेके लिये प्रेरित करना। यथा 'अमुक व्यक्तिसे अमुक द्रव्य ले लो, वह तुम्हारा ही हो जायगा') तथा ५ दातव्य ऋण आदिको छोड़ देना या न लेना—इस प्रकार ये दानके पाँच भेद कहे गये हैं ॥ ४८-४९½ ॥

स्नेह और अनुरागको दूर कर देना, परस्पर संघर्ष (कलह) पैदा करना तथा धमकी देना—भेदज्ञ पुरुषोंने भेदके ये तीन प्रकार बताये हैं ॥ ५०½ ॥

वध, धनका अपहरण और बन्धन एवं ताड़न आदिके द्वारा क्लेश पहुँचाना—ये दण्डके तीन भेद हैं। वधके दो प्रकार हैं—(१) प्रकाश (प्रकट) और (२) अप्रकाश (गुप्त)। जो सब लोगोंके द्वेषपात्र हों, ऐसे दुष्टोंका प्रकटरूपमें वध करना चाहिये, किंतु जिनके मारे जानेसे लोग उद्विग्न हो उठें, जो राजाके प्रिय हों तथा अधिक बलशाली हों, वे यदि राजाके हितमें बाधा पहुँचाते हैं तो उनका गुप्तरूपसे वध करना उत्तम कहा गया है। गुप्तरूपसे वधका प्रयोग यों करना चाहिये—विष देकर, एकान्तमें आग आदि लगाकर, गुप्त मनुष्योंद्वारा शस्त्रका प्रयोग कराकर अथवा शरीरमें पीड़ा पैदा करनेवाले उपचार लगवाकर राज्यके शत्रुको नष्ट करे। जो जातिमात्रसे भी ब्राह्मण हो, उसे प्राणदण्ड न दे। उसपर सामनीतिका प्रयोग करके उसे वशमें लानेकी चेष्टा करे ॥ ५१-५३ ॥

प्रिय वचन बोलना 'साम' कहलाता है। उसका प्रयोग इस तरह करे, जिससे चित्तमें अमृतका-सा स्नेह होने लगे

दो सौ बयालीसवाँ अध्याय

सेनाके छः भेद, इनका बलाबल तथा छः अङ्ग

श्रीराम कहते हैं—छः प्रकारकी सेनाको कवच आदिसे संनद्ध एवं व्यूहबद्ध करके इष्ट देवताओंकी तथा संग्रामसम्बन्धी दुर्गा आदि देवियोंकी पूजा करनेके पश्चात् शत्रुपर चढ़ाई करे। मौल, भृत, श्रेणि, सुहृद्, शत्रु तथा आटविक—ये छः प्रकारके सैन्य हैं।* इनमें परकी अपेक्षा पूर्व-पूर्व सेना श्रेष्ठ कही गयी है। इनका व्यसन भी इसी क्रमसे गरिष्ठ माना गया है। पैदल, घुड़सवार, रथी और हाथीसवार—ये सेनाके चार अङ्ग हैं, किंतु मन्त्र और कोष—इन दो अङ्गोंके साथ मिलकर सेनाके छः अङ्ग हो जाते हैं ॥ १-२ ॥

नदी-दुर्ग, पर्वत-दुर्ग तथा वन-दुर्ग—इनमें जहाँ-जहाँ (सामन्त तथा आटविक आदिसे) भय प्राप्त हो, वहाँ-वहाँ सेनापति संनद्ध एवं व्यूहबद्ध सेनाओंके साथ जाय। एक सेनानायक उत्कृष्ट वीर योद्धाओंके साथ आगे जाय (और मार्ग एवं सेनाके लिये आवास-स्थानका शोध करे)। विजिगीषु राजा और उसका अन्तःपुर सेनाके मध्यभागमें रहकर यात्रा करे। खजाना तथा फल्गु (चमार एवं बेगार करनेवालोंकी) सेना भी बीचमें ही रहकर चले। स्वामीके अगल-बगलमें घुड़सवारोंकी सेना रहे। घुड़सवार सेनाके उभय पार्श्वोंमें रथसेना रहे। रथ-सेनाके दोनों तरफ हाथियोंकी सेना रहनी चाहिये। उसके दोनों बगल आटविकों (जंगली लोगों) की सेना रहे। यात्राकालमें प्रधान एवं कुशल सेनापति स्वयं स्वामीके पीछे रहकर सबको आगे करके चले। थके माँदे (हतोत्साह) सैनिकोंको धीरे-धीरे आश्वासन देता रहे। उसके साथकी सारी सेना कमर कसकर युद्धके लिये तैयार रहे। यदि आगेकी ओरसे शत्रुके आक्रमणका भय सम्भावित हो तो महान् मकरव्यूहकी रचना करके आगे बढ़े। (यदि तिर्यग् दिशासे भयकी सम्भावना हो तो) खुले या फैले पंखवाले श्येन पक्षीके आकारकी व्यूह-रचना करके चले। (यदि एक आदमीके ही चलनेयोग्य पगडंडी-मार्गसे यात्रा करते समय सामनेसे भय हो तो) सूची-व्यूहकी रचना करके चले तथा उसके मुखभागमें वीर योद्धाओंको खड़ा करे। पीछेसे भय हो तो शकटव्यूहकी, पार्श्वभागसे भय हो तो वज्रव्यूहकी[3] तथा सब ओरसे भय होनेपर 'सर्वतोभद्र'[4] नामक व्यूहकी रचना करे ॥ ३-८ ॥

जो सेना पर्वतकी कन्दरा, पर्वतीय दुर्गम स्थान एवं गहन वनमें, नदी एवं घने वनसे संकीर्ण पथपर फँसी हो, जो विशाल मार्गपर चलनेसे थकी हो, भूख-प्याससे पीड़ित हो, रोग, दुर्भिक्ष (अकाल) एवं महामारीसे कष्ट पा रही हो, लुटेरोंद्वारा भगायी गयी हो, कीचड़, धूल तथा पानीमें फँस गयी हो, विक्षिप्त हो, एक-एक व्यक्तिके ही चलनेका मार्ग होनेसे जो आगे न बढ़कर एक ही स्थानपर एकत्र हो गयी हो, सोयी हो, खाने-पीनेमें लगी हो, अयोग्य भूमिपर स्थित हो, बैठी हो, चोर तथा अग्निके भयसे डरी हो, वर्षा और आँधीकी चपेटमें आ गयी हो तथा इसी तरहके अन्यान्य संकटोंमें फँस गयी हो, ऐसी अपनी सेनाकी तो सब ओरसे रक्षा करे तथा शत्रुसेनाको घातक प्रहारका निशाना बनाये ॥ ९-११½ ॥

जब आक्रमणके लक्ष्यभूत शत्रुकी अपेक्षा विजिगीषु राजा देश-कालकी अनुकूलताकी दृष्टिसे बढ़ा-चढ़ा हो तथा शत्रुकी प्रकृतिमें फूट डाल दी गयी हो और अपना बल अधिक हो तो शत्रुके साथ प्रकाश-युद्ध (घोषित या प्रकट संग्राम) छेड़ दे। यदि विपरीत स्थिति हो तो कूट-युद्ध (छिपी लड़ाई) करे। जब शत्रुकी सेना पूर्वोक्त बलव्यसन (सैन्य संकट) के अवसरों या स्थानोंमें फँसकर व्याकुल हो तथा युद्धके अयोग्य भूमिमें स्थित हो और सेनासहित विजिगीषु अपने अनुकूल भूमिपर

---

* मूलभूत पुरुषके सम्बन्धोंसे चली आनेवाली वंशपरम्परागत सेना 'मौल' कही गयी है। आजीविका देकर जिसका भरण-पोषण किया गया हो वह 'भृत' बल है। जनपदके अन्तर्गत जो व्यवसायियों तथा कारीगरोंका संघ है उनकी सेना 'श्रेणिबल' है। सहायताके लिये आये हुए मित्रकी सेना 'सुहृद्बल' है। अपनी दण्डशक्तिसे वशमें की गयी सेना 'शत्रुबल' है तथा स्वमण्डलके अन्तर्गत अटवी (जंगल) का उपभोग करनेवालोंको आटविक कहते हैं। उनकी सेना आटविक बल है।

१ उसका मुख विस्तृत होनेसे वह पीछेकी समस्त सेनाकी रक्षा करता है।

२ शकट-व्यूह पीछेकी ओर विस्तृत होता है।

३ वज्रव्यूहमें दोनों ओर विस्तृत मुख होते हैं।

४ सर्वतोभद्रमें सभी दिशाओंकी ओर सेनाका मुख होता है।

ाँ हों तथा जो अधिक ऊँची-नीची न हो, ऐसी भूमि
ल सेनाके संचार योग्य बतायी गयी है । जहाँ वृक्ष
र प्रस्तरखण्ड बहुत कम हों, जहाँकी दरारें शीघ्र लाँघने
ग्य हों, जो भूमि मुलायम न होकर सख्त हो, जहाँ कंकड़
र कीचड़ न हो तथा जहाँसे निकलनेके लिये मार्ग हो, वह
मि अश्वसंचारके योग्य होती है । जहाँ ठूँठ वृक्ष और खेत
हों तथा जहाँ पङ्कका सर्वथा अभाव हो—ऐसी भूमि रथ
चारके योग्य मानी गयी है । जहाँ पैरोंसे रौंद डालनेयोग्य वृक्ष
र काट देनेयोग्य लताएँ हों, कीचड़ न हो, गर्त या दरार न
, जहाँके पर्वत हाथियोंके लिये गम्य हों, ऐसी भूमि ऊँची-नीची
नेपर भी गजसेनाके योग्य कही गयी है ॥ २८–३०½ ॥

जो सैन्य अश्व आदि सेनाओंमें भेद (दरार या छिद्र)
 जानेपर उन्हें ग्रहण करता—सहायताद्वारा अनुगृहीत
ता है, उसे 'प्रतिग्रह' कहा गया है । उसे अवश्य
पित करना चाहिये, क्योंकि वह भारको वहन या सहन
नेमें समर्थ होता है । प्रतिग्रहसे शून्य व्यूह भिन्न-सा
खता है ॥ ३१-३२ ॥

विजयकी इच्छा रखनेवाला बुद्धिमान् राजा प्रतिग्रहसेनाके
ना युद्ध न करे । जहाँ राजा रहे, वहीं कोष रहना चाहिये,
योंकि राजत्व कोषके ही अधीन होता है । विजयी योद्धाओं
ो उसीसे पुरस्कार देना चाहिये । भला ऐसा कौन है, जो
ताके हितके लिये युद्ध न करेगा ? शत्रुपक्षके राजाका वध करने
र योद्धाको एक लाख मुद्राएँ पुरस्कारमें देनी चाहिये ।
जकुमारका वध होनेपर इससे आधा पुरस्कार देनेकी
वस्था रहनी चाहिये । सेनापतिके मारे जानेपर भी उतना
ी पुरस्कार देना उचित है । हाथी तथा रथ आदिका नाश
रनेपर भी उचित पुरस्कार देना आवश्यक है ॥ ३३-३४½ ॥

पैदल, घुड़सवार, रथी और हाथीसवार—ये सब सैनिक
स तरहसे (अर्थात् एक दूसरेसे इतना अन्तर रखकर)
द्ध करें, जिससे उनके व्यायाम (अङ्गोंके फैलाव) तथा
विनिवर्तन (विश्रामके लिये पीछे हटने) में किसी तरहकी
ाधा या रुकावट न हो । समस्त योद्धा पृथक्-पृथक् रहकर
द्ध करें । घोल-मेल होकर जूझना सङ्कुलावह (घमासान
व रोमाञ्चकारी) होता है । यदि महासङ्कुल (घमासान)
द्ध छिड़ जाय तो पैदल आदि असहाय सैनिक बड़े-बड़े
ाथियोंका आश्रय लें ॥ ३५-३६½ ॥

एक-एक घुड़सवार योद्धाके सामने तीन-तीन पैदल
पुरुषोंको प्रतियोद्धा अर्थात् अग्रगामी योद्धा बनाकर खड़ा
करे । इसी रीतिसे पाँच-पाँच अश्व एक-एक हाथीके अग्रभागमें
प्रतियोद्धा बनाये । इनके सिवा हाथीके पादरक्षक भी उतने
ही हों, अर्थात् पाँच अश्व और पंद्रह पैदल । प्रतियोद्धा तो
हाथीके आगे रहते हैं और पादरक्षक हाथीके चरणोंके निकट
खड़े होते हैं । यह एक हाथीके लिये व्यूह विधान कहा गया
है । ऐसा ही विधान रथव्यूहके लिये भी समझना
चाहिये[1] ॥ ३७-३८½ ॥

एक गजव्यूहके लिये जो विधि कही गयी है, उसीके
अनुसार नौ हाथियोंका व्यूह बनाये । उसे 'अनीक' जानना
चाहिये । (इस प्रकार एक अनीकमें पैंतालीस अश्व तथा
एक सौ पैंतीस पैदल सैनिक प्रतियोद्धा होते हैं और इतने ही
अश्व तथा पैदल—पादरक्षक हुआ करते हैं ।) एक अनीकसे
दूसरे अनीककी दूरी पाँच धनुष बतायी गयी है । इस प्रकार
अनीक विभागके द्वारा व्यूह-सम्पत्ति स्थापित करे ॥ ३९-४० ॥

व्यूहके मुख्यतः पाँच अङ्ग हैं । १ 'उरस्य', २
'कक्ष', ३ 'पक्ष'—इन तीनोंको एक समान बताया जाता
है । अर्थात् मध्यभागमें पूर्वोक्त रीतिसे नौ हाथियोंद्वारा
कल्पित एक अनीक सेनाको 'उरस्य' कहा गया है । उसके
दोनों पार्श्वभागोंमें एक-एक अनीककी दो सेनाएँ 'कक्ष'
कहलाती हैं । कक्षके बाह्यभागमें दोनों ओर जो एक-एक
अनीककी दो सेनाएँ हैं, वे 'पक्ष' कही जाती हैं । इस प्रकार
इस पाँच अनीक सेनाके व्यूहमें ४५ हाथी, २२५ अश्व,
६७५ पैदल सैनिक प्रतियोद्धा और इतने ही पादरक्षक होते
हैं । इसी तरह उरस्य, कक्ष, पक्ष, मध्य, पृष्ठ, प्रतिग्रह
तथा कोटि—इन सात अङ्गोंको लेकर व्यूहशास्त्रके विद्वानोंने
व्यूहको सात अङ्गोंसे युक्त कहा है[2] ॥ ४१½ ॥

उरस्य, कक्ष, पक्ष तथा प्रतिग्रह आदिसे युक्त यह
व्यूहविभाग बृहस्पतिके मतके अनुसार है । शुक्रके मतमें
यह व्यूहविभाग कक्ष और प्रकक्षसे रहित है । अर्थात् उनके
मतमें व्यूहके पाँच ही अङ्ग हैं ॥ ४२½ ॥

---

१ व्यूह दो प्रकारके होते हैं—'शुद्ध' और 'व्यामिश्र' । शुद्धके भी दो भेद हैं—गजव्यूह तथा रथव्यूह । मूलमें जो विधान गजव्यूहके लिये कहा गया है, उसीका अतिदेश रथव्यूहके लिये भी समझना चाहिये । व्यामिश्र आगे बतलायेंगे ।

२ उरस्य, कक्ष, पक्ष, प्रोरस्य, प्रकक्ष, प्रपक्ष तथा प्रतिग्रह—ये मतान्तर व्यूहवादियोंके मतमें व्यूहके सात अङ्गोंके नाम हैं ।

अत्यन्त श्रेष्ठ होते हैं। मौक्तिकमें वृत्ताकार (गोलाई), शुक्लता, स्वच्छता एवं महत्ता—ये गुण होते हैं। उत्तम इन्द्रनीलमणि दुग्धमें रखनेपर अत्यधिक प्रकाशित एवं सुशोभित होती है। जो रत्न अपने प्रभावसे सबको रञ्जित करता है, उसे अमूल्य समझे। नील एवं रक्त आभावाला वैदूर्य श्रेष्ठ होता है। यह हारमें पिरोने योग्य है ॥ १—१५ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'रत्न परीक्षा-कथन' नामक दो सौ छियालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २४६ ॥

दो सौ सैंतालीसवाँ अध्याय

गृहके योग्य भूमि, चतुःषष्टिपद वास्तुमण्डल और वृक्षारोपणका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ ! अब मैं वास्तुके लक्षणोंका वर्णन करता हूँ। वास्तुशास्त्रमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंके लिये क्रमशः श्वेत, रक्त, पीत एवं काले रंगकी भूमि निवास करनेयोग्य है। जिस भूमिमें घृतके समान गन्ध हो वह ब्राह्मणोंके, रक्तके समान गन्ध हो वह क्षत्रियोंके, अन्नकी-सी गन्ध हो वह वैश्योंके और मद्यतुल्य गन्ध हो वह शूद्रोंके वास करनेयोग्य मानी गयी है। इसी प्रकार रसमें ब्राह्मण आदिके लिये क्रमशः मधुर, कषाय और अम्ल आदि स्वादसे युक्त भूमि होनी चाहिये। चारों वर्णोंको क्रमशः कुश, सरपत, काश तथा दूर्वासे संयुक्त भूमिमें घर बनाना चाहिये। पहले ब्राह्मणोंका पूजन करके शल्यरहित भूमिमें खात (कुण्ड) बनावे ॥ १—३ ॥

फिर चौंसठ पदोंसे समन्वित वास्तुमण्डलका निर्माण करे। उसके मध्यभागमें चार पदोंमें ब्रह्माकी स्थापना करे। उन चारों पदोंके पूर्वमें गृहस्वामी 'अर्यमा' बतलाये गये हैं। दक्षिणमें विवस्वान्, पश्चिममें मित्र और उत्तर दिशामें महीधरको अङ्कित करे। ईशानकोणमें आप तथा आपवत्सको, अग्निकोणमें सावित्र एवं सविताको, पश्चिमके समीपवर्ती नैर्ऋत्यकोणमें जय और इन्द्रको और वायव्यकोणमें रुद्र तथा व्याधिको लिखे। पूर्व आदि दिशाओंमें कोणवर्ती देवताओंसे पृथक् निम्नाङ्कित देवताओंका लेखन करे—पूर्वमें महेन्द्र, रवि, सत्य तथा भृश आदिको, दक्षिणमें गृहक्षत, यम, भृङ्ग तथा गन्धर्व आदिको, पश्चिममें पुष्पदन्त, असुर, वरुण और पापयक्ष्मा आदिको, उत्तर दिशामें मल्लाट, सोम, अदिति एवं धनदको तथा ईशानकोणमें नाग और करग्रहको अङ्कित करे। प्रत्येक दिशाके आठ देवता माने गये हैं। उनमें प्रथम और अन्तिम देवता वास्तुमण्डलके गृहस्वामी कहे गये हैं। पूर्व दिशाके प्रथम देवता पर्जन्य हैं, दूसरे करग्रह (जयन्त), महेन्द्र, रवि, सत्य, भृश, गगन तथा पवन हैं। कुछ लोग आग्नेयकोणमें गगन एवं पवनके स्थानपर अन्तरिक्ष और अग्निको मानते हैं। नैर्ऋत्यकोणमें मृग और सुग्रीव—इन दोनों देवताओंको, वायव्यकोणमें रोग एवं मुख्यको, दक्षिणमें पूषा, वितथ, गृहक्षत, यम, भृङ्ग, गन्धर्व, मृग एवं पितरको स्थापित करे। वास्तुमण्डलके पश्चिम भागमें दौवारिक, सुग्रीव, पुष्पदन्त, असुर, वरुण, पापयक्ष्मा और शोष स्थित हैं। उत्तर दिशामें नागराज, मुख्य, मल्लाट, सोम, अदिति, कुबेर, नाग और अग्नि (करग्रह) सुशोभित होते हैं। पूर्वदिशामें सूर्य और इन्द्र श्रेष्ठ हैं। दक्षिण दिशामें गृहक्षत पुण्यमय है, पश्चिम दिशामें सुग्रीव उत्तम और उत्तरद्वारपर पुष्पदन्त कल्याणप्रद है। मल्लाटको ही पुष्पदन्त कहा गया है ॥ ४—१५ ॥

इन वास्तुदेवताओंका मन्त्रोंसे पूजन करके आधारशिलाका न्यास करे। तदनन्तर निम्नाङ्कित मन्त्रोंसे नन्दा आदि देवियोंका पूजन करे—'वसिष्ठनन्दिनी नन्दे ! मुझे धन एवं

पुत्र-पौत्रोंसे संयुक्त करके आनन्दित करो। भार्गवपुत्रि जये! आपके प्रजाभूत हमलोगोंको विजय प्रदान करो। अङ्गिरसतनये पूर्णे! मेरी कामनाओंको पूर्ण करो। कश्यपात्मजे भद्रे! मुझे कल्याणमयी बुद्धि दो। वसिष्ठपुत्रि नन्दे! सब प्रकारके बीजोंसे युक्त एवं सम्पूर्ण रत्नोंसे सम्पन्न इस मनोरम नन्दनवनमें विहार करो। प्रजापतिपुत्रि! देवि भद्रे! तुम उत्तम लक्षणों एवं श्रेष्ठ व्रतको धारण करनेवाली हो, कश्यपनन्दिनि! इस भूमिमय चतुष्कोणभवनमें निवास करो। भार्गवतनये देवि! तुम सम्पूर्ण विश्वको ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली हो, श्रेष्ठ आचार्योंद्वारा पूजित एवं गन्ध और मालाओंसे अलङ्कृत मेरे गृहमें निवास करो। अङ्गिरा ऋषिकी पुत्रि पूर्णे! तुम भी सम्पूर्ण अङ्गोंसे युक्त तथा क्षतिरहित मेरे घरमें रमण करो। इष्टके! मैं गृहप्रतिष्ठा करा रहा हूँ, तुम मुझे अभिलषित भोग प्रदान करो। देशस्वामी, नगरस्वामी और गृहस्वामीके संचयमें मनुष्य, धन, हाथी-घोड़े और पशुओंकी वृद्धि करो' ॥ १९—२२½ ॥

गृहप्रवेशके समय भी इसी प्रकार शिलान्यास करना चाहिये। घरके उत्तरमें प्लक्ष (पाकड़) तथा पूर्वमें वटवृक्ष शुभ होता है। दक्षिणमें गूलर और पश्चिममें पीपलका वृक्ष उत्तम माना गया है। घरके वामपार्श्वमें उद्यान बनाये। शेष घरमें निवास करना शुभ होता है। लगाये हुए वृक्षोंको ग्रीष्मकालमें प्रातः-सायं, शीतऋतुमें मध्याह्नके समय तथा वर्षाकालमें भूमिके सूख जानेपर सींचना चाहिये। वृक्षोंको वायविडंग और घृतमिश्रित शीतल जलसे सींचे। जिन वृक्षोंमें फल लगने बंद हो गये हों, उनको कुलथी, उड़द, मूँग, तिल और जौ मिले हुए जलसे सींचना चाहिये। घृतयुक्त शीतल दुग्धके सेचनसे वृक्ष सदा फल-पुष्पसे युक्त रहते हैं। मत्स्ययुक्त जलके सेचनसे वृक्षोंकी वृद्धि होती है। भेड़ और बकरीकी मेंगनीका चूर्ण, जौका चूर्ण, तिल, अन्य गोबर आदि खाद एवं जल-इन सबको सात दिनतक ढककर रक्खे। इसका सेचन सभी प्रकारके वृक्षोंके फल-पुष्प आदिकी वृद्धि करनेवाला है। आम्रवृक्षोंमें शीतल जलसे सेचन उत्तम माना गया है। अशोक वृक्षके विकासके लिये कामिनियोंके चरणका प्रहार प्रशस्त है। खजूर और नारियल आदि वृक्ष लवणयुक्त जलसे वृद्धिको प्राप्त होते हैं। वायविडंग तथा जलके द्वारा सेचन सभी वृक्षोंके लिये उत्तम दोहद है ॥ २३—३१ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'वास्तुलक्षण-कथन' नामक दो सौ सैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २४७ ॥

दो सौ अड़तालीसवाँ अध्याय

विष्णु आदिके पूजनमें उपयोगी पुष्पोंका कथन

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! पुष्पोंसे पूजन करनेपर भगवान् श्रीहरि सम्पूर्ण कार्योंमें सिद्धि प्रदान करते हैं। मालती, मल्लिका, यूथिका, गुलाब, कनेर, पावन्ती, अतिमुक्तक, कर्णिकार, कुरण्टक, कुब्जक, तगर, नीप (कदम्ब), बाण, वनमल्लिका, अशोक, तिलक, कुन्द और तमाल—इनके पुष्प पूजाके लिये उपयोगी माने गये हैं। बिल्वपत्र, शमीपत्र, भृङ्गराजके पत्र, तुलसी, कृष्णतुलसी तथा वासक (अडूसा) के पत्र पूजनमें ग्राह्य माने गये हैं। केतकीके पत्र और पुष्प, पद्म एवं रक्तकमल—ये भी पूजामें ग्रहण किये जाते हैं। मदार, धतूर, गुञ्जा, पर्वतीय मल्लिका, कुटज, शाल्मलि और कटेरीके पुष्पोंका पूजामें प्रयोग नहीं करना चाहिये। प्रस्थमात्र घृतसे भगवान् विष्णुका अभिषेक करनेपर करोड़ गौओंके दान करनेका फल मिलता है। एक आढ़क घृतसे अभिषेक करनेवाला राज्य तथा घृतमिश्रित दुग्धसे अभिषेक करनेवाला स्वर्गको प्राप्त करता है ॥ १—६ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'पुष्पादिसे पूजनके फलका कथन' नामक दो सौ अड़तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २४८ ॥

दो सौ उनचासवाँ अध्याय

धनुर्वेदका वर्णन—युद्ध और अस्त्रके भेद, आठ प्रकारके स्थान, धनुष, बाणको ग्रहण करने और छोड़नेकी विधि आदिका कथन

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ ! अब मैं चार पादोंसे युक्त धनुर्वेदका वर्णन करता हूँ । धनुर्वेद पाँच प्रकारका होता है । रथ, हाथी, घोड़े और पैदल-सम्बन्धी योद्धाओंका आश्रय लेकर इसका वर्णन किया गया है । यन्त्रमुक्त, पाणिमुक्त, मुक्तसंधारित, अमुक्त और बाहुयुद्ध—ये ही धनुर्वेदके पाँच प्रकार कहे गये हैं। उसमें भी शस्त्र-सम्पत्ति

---

१ 'धनुर्वेद' यजुर्वेदका उपवेद है । प्राचीनकालमें प्रायः सभी सभ्य देशोंमें इस विद्याका प्रचार था । भारतवर्षमें इस विद्याके बड़े-बड़े ग्रन्थ थे, जिन्हें क्षत्रियकुमार अभ्यासपूर्वक पढ़ते थे । आजकल वे ग्रन्थ प्रायः लुप्त हो गये हैं। कुछ थोड़े-से ग्रन्थोंमें इस विद्याका संक्षिप्त वर्णन मिलता है। जैसे शुक्रनीति, कामन्दकीय नीतिसार, अग्निपुराण वीरचिन्तामणि, वृद्ध शार्ङ्गधर, युद्धजयार्णव, युक्तिकल्पतरु तथा नीतिमयूख आदि । 'धनुर्वेद-संहिता' नामक एक छोटी-सी पुस्तक भी मिलती है । नेपाल (काठमाण्डू) गोरखनाथ मठके महन्त योगी नरहरिनाथने भी धनुर्वेदकी एक प्राचीन पुस्तक उपलब्ध की है । कुछ विद्वान् ब्रह्मा और महेश्वरसे इस उपवेदका प्रादुर्भाव मानते हैं, परंतु मधुसूदन सरस्वतीका कथन है कि 'विश्वामित्रने जिस धनुर्वेदका प्रकाश किया था, यजुर्वेदका उपवेद वही है ।' वीरचिन्तामणि'में धनुर्वेदकी बड़ी प्रशंसा की गयी है । 'धनुर्वेद-संहिता'में लिखा है कि "दुष्टों दस्युओं और चोर आदिसे साधुपुरुषोंका संरक्षण और धर्मानुसार प्रजापालन 'धनुर्वेद'का प्रयोजन है" । अग्निपुराणके इन चार अध्यायोंमें धनुर्वेद-विषयक महत्त्वपूर्ण बातोंपर संक्षेपसे ही प्रकाश डाला गया है । धनुर्वेदपर इस समय जो ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं, उनसे अग्निपुराणगत धनुर्वेदका पाठ नहीं मिलता । विश्वकोषमें 'धनुर्वेद' शब्दपर अग्निपुराणके ये ही चार अध्याय उद्धृत किये गये हैं । कतिपय हस्तलिखित प्रतियोंके अनुसार जो पाठ-भेद उपलब्ध हुए हैं उन्हें दृष्टिमें रखते हुए इन अध्यायोंका अविकल अनुवाद करनेकी चेष्टा की गयी है । साङ्गवेद विद्यालय काशीके नैयायिक विद्वान् श्रीहेमूवर शास्त्री काश्मीर पुस्तकालयसे अग्निपुराणके धनुर्वेद-प्रकरणपर कुछ पाठभेद संग्रह करके लाये थे, उससे भी इस प्रकरणको लगानेमें सहयोग मिला है । तथापि कुछ शब्द अस्पष्ट रह गये हैं । माननीय विद्वानोंको धनुर्वेदके विषयमें विशेष ध्यान देकर अनुसंधान करना-कराना चाहिये जिससे भारतकी इस प्राचीन विद्याका पुनरुद्धार हो सके ।

(अनुवादक)

२ महाभारत, आदिपर्व अध्याय २२०, श्लोक ७२में लिखा है कि 'शत्रुदमन बालक अभिमन्युने वेदोंका ज्ञान प्राप्त करके अपने पिता अर्जुनसे चार पादों और दशविध अङ्गोंसे युक्त दिव्य एवं मानुष—सब प्रकारके धनुर्वेदका ज्ञान प्राप्त कर लिया ।' इन चार पादोंको स्पष्ट करते हुए आचार्य नीलकण्ठने 'मन्त्रमुक्त', 'पाणिमुक्त', 'मुक्तामुक्त' और 'अमुक्त'—इन चार नामोंका निर्देश किया है । परंतु मधुसूदन सरस्वतीने अपने 'प्रस्थानभेद'में धनुर्वेदका जो संक्षिप्त विवरण दिया है, उसमें चार पादोंका उल्लेख इस प्रकार हुआ है—दीक्षापाद, संग्रहपाद, सिद्धिपाद और प्रयोगपाद । पूर्वोक्त मन्त्रमुक्त आदि भेद आयुधोंके हैं, वे पादोंके नाम नहीं हैं । अग्निपुराणमें चार पादोंके नामका निर्देश नहीं है । 'मन्त्रमुक्त'के स्थानपर यहाँ 'यन्त्रमुक्त' पाठ है और 'मुक्तामुक्त'के स्थानपर 'मुक्तसंधारित' । इन चारोंके साथ बाहुयुद्धको भी जोड़कर अग्निपुराणमें धनुर्वेद, अस्त्र या युद्धके पाँच प्रकार ही निर्दिष्ट किये गये हैं । अतः धनुर्वेदके चार पाद उपर्युक्त दीक्षा आदि ही ठीक जान पड़ते हैं ।

३ महाभारतमें 'चतुष्पादं दशविधम्' कहकर धनुर्वेदके दस प्रकार कहे गये हैं । परंतु अग्निपुराणसे उसका कोई विरोध नहीं है । अग्निपुराणमें अस्त्र या युद्धके पाँच प्रकारोंको दृष्टिमें रखकर ही ये भेद निर्दिष्ट हुए हैं । किंतु महाभारतमें धनुर्वेदके दस अङ्गोंको लेकर ही दस भेदोंका कथन हुआ है । इन दस अङ्गोंके नाम नीलकण्ठने इस प्रकार लिखे हैं—आदान, संधान, मोक्षण, निवर्तन स्थान, मुष्टि, प्रयोग प्रायश्चित्त मण्डल तथा रहस्य । इन सबका परिचय इस प्रकार है—तरकससे बाणको निकालना 'आदान' है । उसे धनुषकी प्रत्यञ्चापर रखना 'संधान' है । लक्ष्यपर छोड़ना 'मोक्षण' कहा गया है । यदि बाण छोड़ देनेके बाद यह मालूम हो जाय कि हमारा विपक्षी निर्बल या शस्त्रहीन है, तो वीर पुरुष मन्त्रशक्तिसे उस बाणको लौटा लेते हैं । इस प्रकार छोड़े हुए अस्त्रको लौटा लेना निवर्तन' कहलाता है । धनुष या उसकी प्रत्यञ्चाके धारण अथवा शरसंधानकालमें धनुष और प्रत्यञ्चाके मध्यदेशको 'स्थान' कहा गया है। तीन या चार अँगुलियोंका सहयोग ही मुष्टि है । तर्जनी और मध्यमा अँगुलीसे अथवा मध्यमा

मुष्टिकी ही देखी गयी है। यह स्थानका यथोचित स्वरूप है ॥ ९—१८ ॥

ब्रह्मन्! योद्धाओंको चाहिये कि पहले बायें हाथमें धनुष और दायें हाथमें बाण लेकर उसे चलायें और उन छोड़े हुए बाणोंको स्वस्तिकाकार करके उनके द्वारा गुरुजनोंको प्रणाम करें। धनुषका प्रेमी योद्धा 'वैशाख' स्थानके सिद्ध हो जानेपर 'स्थिति' (वर्तमान) या 'आयति' (भविष्य) में जब आवश्यकता हो, धनुषपर डोरीको फैलाकर धनुषकी निचली कोटि और बाणके फलदेशको धरतीपर टिकाकर रक्खे और उसी अवस्थामें मुड़ी हुई दोनों भुजाओं एवं कलाइयोंद्वारा नापे। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले वसिष्ठ! उस योद्धाके प्राणसे धनुष सर्वथा बड़ा होना चाहिये और मुष्टिके सामने बाणके पुङ्ख तथा धनुषके डंडेमें बारह अङ्गुलका अन्तर होना चाहिये। ऐसी स्थिति हो तो धनुर्दण्डको प्रत्यञ्चासे संयुक्त कर देना चाहिये। वह अधिक छोटा या बड़ा नहीं होना चाहिये ॥ १९—२३ ॥

धनुषको नाभिस्थानमें और बाण संचयको नितम्बपर रखकर उठे हुए हाथको आँख और कानके बीचमें कर ले तथा उस अवस्थामें बाणको फेंके। पहले बाणको मुट्ठीमें पकड़े और उसे दाहिने स्तनाग्रकी सीधमें रक्खे। तदनन्तर उसे प्रत्यञ्चापर ले जाकर उस मौर्वी (डोरी या प्रत्यञ्चा)को खींचकर पूर्णरूपसे फैलावे। प्रत्यञ्चा न तो भीतर हो न बाहर, न ऊँची हो न नीची, न कुबड़ी हो न उत्तान, न चञ्चल हो न अत्यन्त आवेष्टित। वह सम, स्थिरतासे युक्त और दण्डकी भाँति सीधी होनी चाहिये। इस प्रकार पहले इस मुष्टिके द्वारा लक्ष्यको आच्छादित करके बाणको छोड़ना चाहिये ॥ २४—२७ ॥

धनुर्धर योद्धाको यत्नपूर्वक अपनी छाती ऊँची रखनी चाहिये और इस तरह झुककर खड़ा होना चाहिये, जिससे शरीर त्रिकोणाकार जान पड़े। कंधा ढीला, ग्रीवा निश्चल और मस्तक मयूरकी भाँति शोभित हो। ललाट, नासिका, मुख, बाहुमूल और कोहनी—ये सब समावस्थामें रहें। ठोढ़ी और कंधेमें तीन अङ्गुलका अन्तर समझना चाहिये। पहली बार तीन अङ्गुल, दूसरी बार दो अङ्गुल और तीसरी बार ठोढ़ी तथा कंधेका अन्तर एक ही अङ्गुलका बताया गया है ॥ २८—३० ॥

बाणको पुङ्खकी ओरसे तर्जनी एवं अँगूठेसे पकड़े। फिर मध्यमा एवं अनामिकासे भी पकड़ ले और तबतक वेगपूर्वक खींचता रहे, जबतक पूरा-पूरा बाण धनुषपर न आ जाय। ऐसा उपक्रम करके विधिपूर्वक बाणको छोड़ना चाहिये ॥ ३१-३२ ॥

सुव्रत! पहले दृष्टि और मुष्टिसे आहत हुए लक्ष्यको ही बाणसे विदीर्ण करे। बाणको छोड़कर पिछला हाथ बड़े वेगसे पीठकी ओर ले जाय, क्योंकि ब्रह्मन्! यह ज्ञात होना चाहिये कि शत्रु इस हाथको काट डालनेकी इच्छा करता है। अतः धनुर्धर पुरुषको चाहिये, धनुषको खींचकर कोहनीके नीचे कर ले और बाण छोड़ते समय उसके ऊपर करे। धनुःशास्त्र विशारद पुरुषोंको यह विशेषरूपसे जानना चाहिये। कोहनीको आँखसे सटाना मध्यम श्रेणीका प्रचार है और शत्रुके लक्ष्यसे दूर रखना उत्तम है ॥ ३३—३५ ॥

उत्तम श्रेणीका बाण बारह मुष्टियोंके मापका होना चाहिये। ग्यारह मुष्टियोंका 'मध्यम' और दस मुष्टियोंका 'कनिष्ठ' माना गया है। धनुष चार हाथ लंबा हो तो 'उत्तम', साढ़े तीन हाथका हो तो 'मध्यम' और तीन हाथका हो तो 'कनिष्ठ' कहा गया है। पैदल योद्धाके लिये सदा तीन हाथका ही धनुष को ग्रहण करनेका विधान है। घोड़े, रथ और हाथीपर श्रेष्ठ धनुषका ही प्रयोग करनेका विधान किया गया है ॥ ३६-३७ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'धनुर्वेदका वर्णन' नामक दो सौ उनचासवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २४९ ॥

दो सौ पचासवाँ अध्याय

लक्ष्यवेधके लिये धनुष-बाण लेने और उनके समुचित प्रयोग करनेकी शिक्षा तथा वेध्यके विविध भेदोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—ब्रह्मन्! द्विजको चाहिये कि पूरी लंबाईवाले धनुषका निर्माण कराकर, उसे अच्छी तरह धो-पोंछकर यज्ञभूमिमें स्थापित करे तथा गदा आदि आयुधोंको भलीभाँति धारण करके रक्खे ॥ १ ॥

तत्पश्चात् मार्गोंका गमन करके, कवच धारणपूर्वक एकाग्रचित्त हो, तूणीर ले, उसे पीठकी ओर दाहिनी काँखके पास दृढ़ताके साथ बाँधे। ऐसा करनेसे तिरछा बाण भी उस तूणीरमें सुस्थिर रहता है। फिर दाहिने हाथसे तूणीरके

अङ्गुलकी ही देखी गयी है। यह स्थानका यथोचित स्वरूप है ॥ ९—१८ ॥

महान्! योद्धाओंको चाहिये कि पहले बायें हाथमें धनुष और दायें हाथमें बाण लेकर उसे चलायें और उन छोड़े हुए बाणोंको स्वस्तिकाकार करके उनके द्वारा गुरुजनोंको प्रणाम करें। धनुषका प्रेमी योद्धा 'वैशाख' स्थानके सिद्ध हो जानेपर 'स्थिति' (वर्तमान) या 'आयति' (भविष्य) में जब आवश्यकता हो, धनुषपर डोरीको फैलाकर धनुषकी निचली कोटि और बाणके फलदेशको धरतीपर टिकाकर रक्खे और इसी अवस्थामें मुड़ी हुई दोनों भुजाओं एवं कलाइयोंद्वारा नापे। उत्तम मतका पालन करनेवाले वसिष्ठ! उस योद्धाके प्राणसे धनुष सर्वथा बड़ा होना चाहिये और मुष्टिके सामने बाणके पुङ्ख तथा धनुषके डंडेमें बारह अङ्गुलका अन्तर होना चाहिये। ऐसी स्थिति हो तो धनुर्दण्डको प्रत्यञ्चासे संयुक्त कर देना चाहिये। यह अधिक छोटा या बड़ा नहीं होना चाहिये ॥ १९—२३ ॥

धनुषको नाभिस्थानमें और बाण संचयको नितम्बपर रखकर उठे हुए हाथको आँख और कानके बीचमें कर ले तथा उस अवस्थामें बाणको फेंके। पहले बाणको मुट्ठीमें पकड़े और उसे दाहिने स्तनाग्रकी सीधमें रक्खे। तदनन्तर उसे प्रत्यञ्चापर ले जाकर उस मौर्वी (डोरी या प्रत्यञ्चा)को खींचकर पूर्णरूपसे फैलावे। प्रत्यञ्चा न तो भीतर हो न बाहर, न ऊँची हो न नीची, न कुबड़ी हो न उत्तान, न चञ्चल हो न अत्यन्त आवेष्टित। वह सम, स्थिरतासे युक्त और दण्डकी भाँति सीधी होनी चाहिये। इस प्रकार पहले इस मुष्टिके द्वारा लक्ष्यको आच्छादित करके बाणको छोड़ना चाहिये ॥ २४—२७ ॥

धनुर्धर योद्धाको यत्नपूर्वक अपनी छाती ऊँची रखनी चाहिये और इस तरह झुककर खड़ा होना चाहिये, जिससे शरीर त्रिकोणाकार जान पड़े। कंधा ढीला, ग्रीवा निश्चल और मस्तक मयूरकी भाँति शोभित हो। ललाट, नासिका, मुख, बाहुमूल और कोहनी—ये सम अवस्थामें रहें। ठोढ़ी और कंधेमें तीन अङ्गुलका अन्तर समझना चाहिये। पहली बार तीन अङ्गुल, दूसरी बार दो अङ्गुल और तीसरी बार ठोढ़ी तथा कंधेका अन्तर एक ही अङ्गुलका बताया गया है ॥ २८—३० ॥

बाणको पुङ्खकी ओरसे तर्जनी एवं अँगूठेसे पकड़े। फिर मध्यमा एवं अनामिकासे भी पकड़ ले और तबतक वेगपूर्वक खींचता रहे, जबतक पूरा-पूरा बाण धनुषपर न आ जाय। ऐसा उपक्रम करके विधिपूर्वक बाणको छोड़ना चाहिये ॥ ३१ ३२ ॥

सुव्रत! पहले दृष्टि और मुष्टिसे आहत हुए लक्ष्यको ही बाणसे विदीर्ण करे। बाणको छोड़कर पिछला हाथ बड़े वेगसे पीठकी ओर ले जाय; क्योंकि महान्! यह ज्ञात होना चाहिये कि शत्रु इस हाथको काट डालनेकी इच्छा करते हैं। अतः धनुर्धर पुरुषको चाहिये, धनुषको खींचकर कोहनीके नीचे कर ले और बाण छोड़ते समय उसके ऊपर करे। धनुःशास्त्र विशारद पुरुषोंको यह विशेषरूपसे जानना चाहिये। कोहनीका आँखसे सटाना मध्यम श्रेणीका बचाव है और शत्रुके लक्ष्यसे दूर रखना उत्तम है ॥ ३३—३५ ॥

उत्तम श्रेणीका बाण बारह मुष्टियोंके मापका होना चाहिये। ग्यारह मुष्टियोंका 'मध्यम' और दस मुष्टियोंका 'कनिष्ठ' माना गया है। धनुष चार हाथ लंबा हो तो 'उत्तम', साढ़े तीन हाथका हो तो 'मध्यम' और तीन हाथका हो तो 'कनिष्ठ' कहा गया है। पैदल योद्धाके लिये सदा तीन हाथके ही धनुषको ग्रहण करनेका विधान है। घोड़े, रथ और हाथीपर श्रेष्ठ धनुषका ही प्रयोग करनेका विधान किया गया है ॥ ३६ ३७ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'धनुर्वेदका वर्णन' नामक दो सौ उनचासवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २४९ ॥

दो सौ पचासवाँ अध्याय

लक्ष्यवेधके लिये धनुष-बाण लेने और उनके समुचित प्रयोग करनेकी शिक्षा तथा वेध्यके विविध भेदोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—महान्! द्विजको चाहिये कि पूरी लंबाईवाले धनुषका निर्माण कराकर, उसे अच्छी तरह धो-पोंछकर यज्ञभूमिमें स्थापित करे तथा गदा आदि आयुधोंको भलीभाँति साफ करके रक्खे ॥ १ ॥

तत्पश्चात् बाणोंका संग्रह करके, कवच धारणपूर्वक एकाग्रचित्त हो, तूणीर ले, उसे पीठकी ओर दाहिनी काँखके पास दृढ़तासे बाँधे। ऐसा करनेसे विग्रह [illegible] भी उस तूणीरमें सुस्थिर रहता है। फिर दाहिने हाथसे तूणीरके

भीतरसे बाणको निकाले। उसके साथ ही बायें हाथसे धनुष को वहाँसे उठा ले और उसके मध्यभागमें बाणका संधान करे ॥ २-४ ॥

चित्तमें विषादको न आने दे—उत्साह-सम्पन्न हो, धनुषकी डोरीपर बाणका पुङ्खभाग रक्खे, फिर 'सिंहकर्ण' नामक मुष्टिद्वारा डोरीको पुङ्खके साथ ही दृढ़तापूर्वक दबाकर समभावसे संधान करे और बाणको लक्ष्यकी ओर छोड़े। यदि बायें हाथसे बाणको चलाना हो तो बायें हाथमें बाण ले और दाहिने हाथसे धनुषकी मुट्ठी पकड़े। फिर प्रत्यञ्चा पर बाणको इस तरह रक्खे कि खींचनेपर उसका फल या पुङ्ख बायें कानके समीप आ जाय। उस समय बाणको बायें हाथकी (तर्जनी और अङ्गुष्ठके अतिरिक्त) मध्यमा अंगुलीसे भी धारण किये रहे। बाण चलानेकी विधिको जाननेवाला पुरुष उपयुक्त मुष्टिके द्वारा धनुषको दृढ़तापूर्वक पकड़कर, मनको दृष्टिके साथ ही लक्ष्यगत करके बाणको शरीरके दाहिने भागकी ओर रखते हुए लक्ष्यकी ओर छोड़े ॥ ५-७ ॥

धनुषका दण्ड इतना बड़ा हो कि भूमिपर खड़ा करने पर उसकी ऊँचाई स्कन्धतक आ जाय। उसपर लक्ष्यवेधके लिये सोलह अङ्गुल लंबे नाराच (बाणविशेष) का संधान करे और उसे भलीभाँति खींचकर लक्ष्यपर प्रहार करे। इस तरह एक बाणका प्रहार करके फिर तत्काल ही तूणीरसे अङ्गुष्ठ एवं तर्जनी अङ्गुलिद्वारा बारंबार बाण निकाले। उसे मध्यमा अङ्गुलिसे भी दबाकर वायुमें करे और शीघ्र ही दृष्टिगत लक्ष्यकी ओर चलावे। चारों ओर बाण और लक्ष्यवेधका क्रम जारी रक्खे। योद्धा पहलेसे ही ओर बाण मारकर सब ओरके लक्ष्यको वेधनेका करे ॥ ८-१० ॥

तदनन्तर वह तीक्ष्ण, पराङ्मुख, गत, निम्न, उ... भिन्न वेधका अभ्यास करावे[3]। मध्य लक्ष्यके ये जो स्थान हैं, इनमें सत्त्व (बल एवं धैर्य) का पु... विचित्र एवं दुस्तर रीतिसे सैकड़ों बार हाथसे बाणोंके ... एवं छोड़नेकी क्रियाद्वारा धनुषका तजन कर— टङ्कारें दे ॥ ११-१२ ॥

विप्रवर! उक्त वेध्यके अनेक भेद हैं। पहले तो दुष्कर तथा चित्र दुष्कर—ये वेध्यके तीन भेद हैं।

---

१ 'वसिष्ठ-धनुर्वेद'के अनुसार 'संधान' तीन प्रकारके हैं—अध, ऊर्ध्व और सम। इनका क्रमशः तीन कार्योंमें ही उपयोग करना चाहिये। दूरके लक्ष्यको मार गिराना हो तो 'अध संधान' उपयोगी होता है। लक्ष्य निश्चल हो तो 'समसंधान'से उसका वेध करना चाहिये तथा चञ्चल लक्ष्यका वेध करनेके लिये 'ऊर्ध्वसंधान'का काम लेना चाहिये।

२ यहाँ वसिष्ठप्रोक्त धनुर्वेद-संहितामें 'मुष्टि'के पाँच भेद बताये गये हैं—पताका, वज्रमुष्टि, सिंहकर्ण, मत्सरी तथा काकतुण्डी। यहाँ सिंहकर्ण नामक मुष्टिका लक्षण इस प्रकार दिया गया है—('अङ्गुष्ठमध्यदेशे तु तर्जन्यग्रं शुभं न्यसेत्। सिंहकर्णः स विज्ञेयो दूरलक्ष्यस्य वेधने ॥' अर्थात् धनुष पकड़ते समय अङ्गुष्ठके मध्यदेशमें तर्जनीके अग्रभागको भलीभाँति रखकर जो मुष्टि बाँधी जाती है, उसका नाम 'सिंहकर्ण' जानना चाहिये। यह दूरलक्ष्यके वेधके लिये उपयोगी है।)

३ 'वसिष्ठ-धनुर्वेद'में 'वेध' तीन प्रकारका बताया गया है—पुष्पवेध, मत्स्यवेध और मांसवेध। फलरहित बाणसे फूलको वेधना 'पुष्पवेध' है। फलयुक्त बाणसे मत्स्यका भेदन करना 'मत्स्यवेध' है। तदनन्तर मांसके प्रति लक्ष्यका स्थिरीकरण 'मांसवेध' है। इन वेधोंके सिद्ध हो जानेपर मनुष्योंके बाण सर्वत्र सफल होते हैं—[illegible]

४ 'बारचिन्तामणि'में 'श्रमकरण' (धनुष चलानेके परिश्रम या अभ्यास) के प्रकरणमें इस तरहकी बातें लिखी हैं। पहले धनुषको चढ़ाकर शिखा बाँध ले, पूर्वोक्त स्थानमें किसी एकका आश्रय ले खड़ा हो बाणके ऊपर हाथ रख धनुषको तोलनपूर्वक उसे बायें हाथमें ले। तदनन्तर आह्वान करके संधान करे। एक बार धनुषकी प्रत्यञ्चा से भूमिस्पर्श करे। पहले भगवान् शंकर, विघ्नराज गणेश, तथा धनुष-बाणको नमस्कार करे। फिर बाण खींचनेके लिये आज्ञा माँगे। प्राणवायुके प्रयत्न (पूरक प्राणायाम) के द्वारा धनुषको पूरित करे। कुम्भक प्राणायामके द्वारा उसे ... करके रेचक प्राणायाम एवं हुंकारके साथ वायु एवं बाण विसर्जन करे। सिद्धिकी इच्छावाले धनुर्धर योद्धाको यह श्रम लिया आरम्भ करनी चाहिये। ... मासमें 'मुष्टि' सिद्ध होती और एक वर्षमें 'बाण'। 'नाराच' तो उसीको सिद्ध होते जिसपर भगवान् महेश्वरकी कृपा हो जाय। अपनी ... चलानेवाला योद्धा बाणको फूलकी भाँति धारण करे। धनुषको ... भाँति दबावे तथा लक्ष्यका बहुमूल्य धनकी भाँति चिन्तन करे इत्यादि।

तीनों ही भेद दो दो प्रकारके होते हैं। 'नतनिम्न' और 'तीक्ष्ण'—ये 'दृढवेध्य'के दो भेद हैं। 'दुष्करवेध्य'के भी 'निम्न' और 'ऊर्ध्वगत'—ये दो भेद कहे गये हैं तथा 'चित्रदुष्कर' वध्यके 'मस्तकपन' और 'मध्य'—ये दो भेद बताये गये हैं ॥ १३ १४½ ॥

इस प्रकार इन वध्यवर्गोंका सिद्ध करके वीर पुरुष पहले दायें अथवा बायें पार्श्वसे शत्रुसेनापर चढाई करे। इससे मनुष्यको अपने लक्ष्यपर विजय प्राप्त होती है। प्रयोक्ता पुरुषोंने वेध्यके विषयमें यही विधि देखी और बतायी है ॥ १५ १६ ॥

योद्धाके लिये उस वेध्यकी अपेक्षा भ्रमणको अधिक उत्तम बताया गया है। वह लक्ष्यको अपने बाणके पुङ्खभागसे आच्छादित करके उसकी ओर दृढतापूर्वक शर-संधान करे। जो लक्ष्य भ्रमणशील, अत्यन्त चञ्चल और सुस्थिर हो, उसपर सब ओरसे प्रहार करे। उसका भेदन और छेदन करे तथा उसे सर्वथा पीड़ा पहुँचाये ॥ १७ १८ ॥

कर्मयोगके विधानका ज्ञाता पुरुष इस प्रकार समझ बूझकर उचित विधिका आचरण (अनुष्ठान) करे। जिसने मन, नेत्र और दृष्टिके द्वारा लक्ष्यके साथ एकता-स्थापनकी कला सीख ली है, वह योद्धा यमराजको भी जीत सकता है। (पाठान्तरके अनुसार वह श्रमको जीत लेता है—युद्ध करते-करते थकता नहीं।) ॥ १९ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'धनुर्वेदका कथन' नामक दो सौ पचासवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २५० ॥

दो सौ इक्यावनवाँ अध्याय

पाशके निर्माण और प्रयोगकी विधि तथा तलवार और लाठीको अपने पास रखने एवं शत्रुपर चलानेकी उपयुक्त पद्धतिका निर्देश

अग्निदेव कहते हैं—ब्रह्मन्! जिसने हाथ, मन और दृष्टिको जीत लिया है, ऐसा लक्ष्यसाधक नियत सिद्धिको पाकर युद्धके लिये वाहनपर आरूढ हो। 'पाश' दस हाथ बड़ा, गोलाकार और हाथके लिये सुखद होना चाहिये। इसके लिये अच्छी मूँज, हरिणकी ताँत अथवा आकके छिलकोंकी डोरी तैयार करानी चाहिये। इनके सिवा अन्य सुदृढ (पट्टसूत्र आदि) वस्तुओंका भी सुन्दर पाश बनाया जा सकता है। उक्त सूतों या रस्सियोंको कई आवृत्ति लपेटकर खूब बट ले। विज्ञ पुरुष तीस आवृत्ति करके बटे हुए सूत्र या रस्सीसे ही पाशका निर्माण करे ॥ १—३ ॥

शिक्षकोंको पाशकी शिक्षा देनेके लिये कक्षाओंमें स्थान बनाना चाहिये। पाशको बायें हाथमें लेकर दाहिने हाथसे उसेड़े। उसे कुण्डलाकार बना, सब ओर घुमाकर शत्रुके मस्तकके ऊपर फेंकना चाहिये। पहले तिनकेके बने और चमड़ेसे मढ़े हुए पुरुषपर उसका प्रयोग करना चाहिये। तत्पश्चात् उछलते-कूदते और जोर-जोरसे चलते हुए मनुष्योंपर सम्यक्‌रूपसे विधिवत् प्रयोग करके सफलता प्राप्त कर लेनेपर ही पाशका प्रयोग करे। सुशिक्षित योद्धाको पाशद्वारा यथोचित रीतिसे जीत लेनेपर ही शत्रुके प्रति पाश-बन्धनकी क्रिया करनी चाहिये ॥ ४—६½ ॥

तदनन्तर कमरमें म्यानसहित तलवार बाँधकर उसे बायीं ओर लटका ले और उसकी म्यानको बायें हाथसे दृढताके साथ पकड़कर दायें हाथसे तलवारको बाहर निकाले। उस तलवारकी चौड़ाई छः अंगुल और लंबाई या ऊँचाई सात हाथकी हो ॥ ७-८ ॥

लोहेकी बनी हुई कई शलाकाएँ और नाना प्रकारके कवच अपने आधे या समूचे हाथमें लगा ले, अगल-बगलमें और ऊपर-नीचे भी शरीरकी रक्षाके लिये इन सब वस्तुओंको विधिवत् धारण करे ॥ ९ ॥

युद्धमें विजयके लिये जिस विधिसे जैसी योजना बनानी चाहिये, यह बताता हूँ, सुनो। तूणीरके चमड़ेसे मढ़ी हुई एक नयी और मजबूत लाठी अपने पास रख ले। उस लाठीको दाहिने हाथकी अँगुलियोंसे उठाकर वह जिसके ऊपर जोरसे आघात करेगा, उस शत्रुका अवश्य नाश हो जायगा। इस क्रियामें सिद्धि मिलनेपर वह दोनों हाथोंसे लाठीको शत्रुके ऊपर गिरावे। इससे अनायास ही वह उसका वध कर सकता है। इस तरह युद्धमें सिद्धिकी बात बतायी गयी। रणभूमिमें भलीभाँति सञ्चरणके लिये अपने वाहनोंसे श्रम कराते रहना चाहिये, यह बात तुम्हें पहले बतायी गयी है ॥ १०—१२ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'धनुर्वेदका कथन' नामक दो सौ इक्यावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २५१ ॥

दो सौ बावनवाँ अध्याय

तलवारके बत्तीस हाथ, पाश, चक्र, शूल, तोमर, गदा, परशु, मुद्गर, भिन्दिपाल, वज्र, कृपाण, क्षेपणी, गदायुद्ध तथा मल्लयुद्धके दाँव और पैंतरोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—ब्रह्मन्! भ्रान्त, उद्भ्रान्त, आविद्ध, आप्लुत, विप्लुत, प्लुत (या सृत), सम्पात, समुदीर्ण, श्येनपात, आकुल, उद्धूत, अवधूत, सव्य, दक्षिण, अनालक्षित, विस्फोट, करालेन्द्र, महासख, विकराल, निपात, विभीषण, भयानक, समग्र, अर्ध, तृतीयांश, पाद, पादार्ध, वारिज, प्रत्यालीढ, आलीढ, वराह और लुलित—ये रणभूमिमें दिखाये जानेवाले ढाल-तलवारके बत्तीस हाथ (या चलानेके ढंग) हैं; इन्हें जानना चाहिये ॥ १–४ ॥

परावृत्त, अपावृत्त, गृहीत, लघु, ऊर्ध्वक्षिप्त, अधःक्षिप्त, सधारित, विधारित, श्येनपात, गजपात और ग्राह-ग्राह्य—ये युद्धमें 'पाश' फेंकनेके ग्यारह प्रकार हैं ॥ ५-६ ॥

ऋजु, आयत, विशाल, तिर्यक् और भ्रामित—ये पाँच कर्म 'व्यस्तपाश'के लिये महात्माओंने बताये हैं ॥ ७ ॥

छेदन, भेदन, पात, भ्रमण, शमन, विकर्तन तथा कर्तन—ये सात कर्म 'चक्र'के हैं ॥ ८ ॥

आस्फोट, क्ष्वेड, भेद, त्रास, आन्दोलिक और आघात—ये छः 'शूल'के कर्म जानो ॥ ९ ॥

द्विजोत्तम! दृष्टिघात, भुजाघात, पार्श्वघात, ऋजुपात, पक्षपात और इषुपात—ये 'तोमर'के कार्य कहे गये हैं ॥१०॥

विप्रवर! आहत, विद्रुत, प्रभूत, कमलासन, सतोर्ध्वगात्र, नमित, वामदक्षिण, आवृत्त, परावृत्त, पादोद्धूत, अवप्लुत, हंसमद (या हंसमार्ग) तथा विमर्द—ये 'गदा-सम्बन्धी' कर्म कहे गये हैं ॥ ११-१२ ॥

कराल, अवघात, दशोपप्लुत, क्षिप्तहस्त, स्थित और शून्य—ये 'फरसे'के कर्म समझने चाहिये ॥ १३ ॥

विप्रवर! ताडन, छेदन, चूर्णन, प्लवन तथा पतन—ये 'मुद्गर'के कर्म हैं ॥ १४ ॥

संभ्रान्त, विभ्रान्त, गोविसर्ग तथा सुदुर्धर—ये 'भिन्दिपाल'के कर्म हैं और 'लगुड'के भी ये ही कर्म बताये गये हैं ॥१५॥

द्विजोत्तम! अन्त्य, मध्य, परावृत्त तथा निदेशान्त—ये 'वज्र' और 'पट्टिश'के कर्म हैं ॥ १६ ॥

हरण, छेदन, घात, भेदन, रक्षण, पातन तथा स्फोटन—ये 'कृपाण'के कर्म कहे गये हैं ॥ १७ ॥

त्रासन, रक्षण, घात, बलोद्धरण और आयत—ये 'क्षेपणी' (गोफन) के कार्य कहे गये हैं। ये ही 'यन्त्र'के भी कर्म हैं ॥ १८ ॥

सन्त्याग, अवदंश, वराहोद्धूतक, हस्तावहस्त, आलीन, एकहस्त, अवहस्तक, द्विहस्त, बाहुपाश, कटिरेचितक, उद्गत, उरोघात, ललाटघात, भुजाविधमन, करोद्धूत, विमान, पादाहति, विपादिक, गात्रसंश्लेषण, शान्त, गात्रविपर्यय, ऊर्ध्वप्रहार, घात, गोमूत्र, सव्य, दक्षिण, पारक, तारक, दण्ड (गण्ड), कबरीबन्ध, आकुल, तिर्यग्बन्ध, अपामार्ग, भीमवेग, सुदर्शन, सिंहाक्रान्त, गजाक्रान्त और गर्दभाक्रान्त—ये 'गदायुद्ध'के हाथ जानने चाहिये। अब 'मल्लयुद्ध'के दाँव बताये जाते हैं ॥ १९–२३½ ॥

आकर्षण, विकर्षण, बाहुमूल, ग्रीवाविपरिवर्त, पृष्ठभङ्ग, पर्यासन, विपर्यास, पशुमार, अजाविक, पादप्रहार, आस्फोट, कटिरेचितक, गात्राश्लेष, स्कन्धगत, महीव्याजन, उरोललाटघात, विसृष्टकरण, उद्धूत, अवधूत, तिर्यङ्मार्गगत, गजस्कन्ध, अवक्षेप, अपराङ्मुख, देवमार्ग, अधोमार्ग, अमार्गगमनाकुल, यष्टिघात, अवक्षेप, वसुधादारण, जानुबन्ध, भुजाबन्ध, सुदारुण गात्रबन्ध, विपृष्ठ, रोदक, श्वभ्र और भुजावेष्टित ॥ २४–२९½ ॥

युद्धमें कवच धारण करके, अस्त्र-शस्त्रसे सम्पन्न हो, हाथी आदि वाहनोंपर चढ़कर उपस्थित होना चाहिये। हाथीपर उसके अङ्कुश धारण किये दो महावत या चालक रहने चाहिये। उनमेंसे एक तो हाथीकी गर्दनपर सवार हो और दूसरा उसके कंधेपर। इनके अतिरिक्त सवारोंमें दो धनुर्धर होने चाहिये और दो खड्गधारी ॥ ३०-३१ ॥

प्रत्येक रथ और हाथीकी रक्षाके लिये तीन-तीन घुड़सवार सैनिक रहें तथा घोड़ेकी रक्षाके लिये तीन-तीन धनुर्धर पैदल सैनिक रहने चाहिये। धनुर्धरकी रक्षाके लिये चर्म या ढा

लिये रहनेवाले योद्धाकी नियुक्ति करनी चाहिये ॥ ३२ ॥

जो प्रत्येक शस्त्रका उसके अपने मन्त्रोंसे पूजन करके 'त्रैलोक्यमोहन-कवच' का पाठ करनेके अनन्तर युद्धमें जाता है, वह शत्रुओंपर विजय पाता और भूतलकी रक्षा करता है। (पाठान्तरके अनुसार शत्रुओंपर विजय पाता और उन्हें निश्चय ही मार गिराता है।) ॥ ३३ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'धनुर्वेदका कथन' नामक दो सौ बावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २५२ ॥

दो सौ तिरपनवाँ अध्याय

व्यवहारशास्त्र तथा विविध व्यवहारोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ ! अब मैं व्यवहारका वर्णन करता हूँ, जो नय और अनयका विवेक प्रदान करने वाला है। उसके चार चरण, चार स्थान और चार साधन बतलाये गये हैं। वह चारका हितकारी, चारमें व्याप्त और चारका कर्ता कहा जाता है। वह आठ अङ्ग, अठारह पद, सौ शाखा, तीन योनि, दो अभियोग, दो द्वार और दो गतियोंसे युक्त है ॥ १-२½ ॥

धर्म, व्यवहार, चरित्र और राजशासन—ये व्यवहार दर्शनके चार चरण हैं। इनमें उत्तरोत्तर पाद पूर्व पूर्व पादके साधक हैं। इन सबमें 'धर्म'का आधार सत्य है, 'व्यवहार' का आधार साक्षी (गवाह) है, 'चरित्र' पुरुषोंके संग्रहपर आधारित है और 'शासन' राजाकी आज्ञापर अवलम्बित है। साम, दान, दण्ड और भेद—इन चार उपायोंसे साध्य होनेके कारण वह 'चार साधनोंवाला' है। चारों आश्रमोंकी रक्षा करनेसे वह 'चतुर्हित' है। अभियोक्ता[1], साक्षी, सभासद और राजा—इनमें एक-एक चरणसे उसकी स्थिति है—इसलिये उसे 'चतुर्व्यापी' माना गया है। वह धर्म, अर्थ, यश और लोकप्रियता—इन चारोंकी वृद्धि करनेवाला होनेसे 'चतुष्कारी' कहा जाता है। राजपुरुष, सभासद, शास्त्र, गणक, लेखक, सुवर्ण, अग्नि और जल—इन आठ अङ्गोंसे युक्त होनेके कारण वह 'अष्टाङ्ग' है। काम, क्रोध और लोभ—इन तीन कारणोंसे मनुष्यकी इसमें प्रवृत्ति होती है, इसीलिये व्यवहारको 'त्रियोनि' कहा जाता है; क्योंकि ये तीनों ही विवाद करानेवाले हैं। अभियोगके दो भेद हैं—(१) शङ्काभियोग और (२) तत्त्वाभियोग। इसी दृष्टिसे वह दो अभियोगवाला है। 'शङ्का' असत् पुरुषोंके संसर्गसे होती है और 'तत्त्वाभियोग' होढा (चिह्न या प्रमाण) देखनेसे होता है। वह दो पक्षोंसे सम्बन्धित होनेके कारण 'दो द्वारोंवाला' कहा जाता है। इनमें पूर्ववाद 'पक्ष' और उत्तरवाद[2] 'प्रतिपक्ष' कहलाता है। 'भूत' और 'छल'—इनका अनुसरण करनेसे यह दो गतियोंसे युक्त माना जाता है ॥ ३-१२ ॥

कैसा ऋण देय है, कैसा ऋण अदेय है—कौन दे, किस समय दे, किस प्रकारसे दे, ऋण देनेकी विधि या पद्धति क्या है तथा उसे लेने या वसूल करनेका विधान क्या है? इन सब बातोंका विचार[3] 'ऋणादान' कहा गया है। जब कोई मनुष्य किसीपर विश्वास करके शङ्कारहित होकर उसके पास अपना कोई द्रव्य धरोहरके तौरपर देता है, तब उसे विद्वान् लोग 'निक्षेप' नामक व्यवहारपद कहते हैं। जब वणिक् आदि अनेक मनुष्य मिलकर सहकारिता या साझेदारीके तौरपर कोई कार्य करते हैं तो उसको 'सम्भूय समुत्थान' संज्ञक विवादपद बतलाते हैं। यदि कोई मनुष्य पहले विधिपूर्वक किसी द्रव्यका दान देकर पुनः उसे रख

1. अभियोगका उपस्थापक या 'मुद्दई'।

2. अभियोगका प्रतिवादी या 'मुद्दालेह'।

3. ऋणादानके सात प्रकार हैं—१—अमुक प्रकारका ऋण देय है, २—अमुक प्रकारका ऋण 'अदेय' है, ३—अमुक अधिकारीको ऋण देनेका अधिकार है, ४—अमुक समयमें ऋण देना चाहिये, ५—इस प्रकारसे ऋण दिया जाना चाहिये—ये पाँच अधमर्ण (ऋण लेनेवाले) व्यक्तिको लक्ष्य करके विचारणीय हैं और शेष दो बातें साहूकारके लिये विचारणीय हैं—६—साहूकार किस विधानसे ऋण दे तथा ७—किस विधानसे उसको वसूल करे। इन्हीं सातों बातोंको इस श्लोकमें स्पष्ट किया गया है। नारद-स्मृतिमें भी इसका इसी रूपमें उल्लेख हुआ है। इन सब बातोंके विचारपूर्वक जो ऋणका आदानप्रदान होता है उसे 'ऋणादान' नामक व्यवहारपद समझना चाहिये।

देनेकी इच्छा करे, तो वह 'दत्ताप्रदानिक' नामक विवादपद कहा जाता है। जो सेवा स्वीकार करके भी उसका सम्पादन नहीं करता या उपस्थित नहीं होता, उसका यह व्यवहार 'अभ्युपेत्य अशुश्रूषा' नामक विवादपद होता है। भृत्योंको वेतन देने-न-देनेसे सम्बन्ध रखनेवाला विवाद 'वेतनानपाकर्म' माना गया है। धरोहरमें रखने हुए या खोये हुए पराये द्रव्यको पाकर अथवा चुराकर स्वामीके परोक्षमें बेचा जाय तो वह 'अस्वामिविक्रय' नामक विवादपद है। यदि कोई व्यापारी किसी पण्य-द्रव्यका मूल्य लेकर विक्रय कर देनेके बाद भी खरीददारको वह द्रव्य नहीं देता है तो उसको 'विक्रीयासम्प्रदान' नामक विवादपद कहा जाता है। यदि ग्राहक किसी वस्तुका मूल्य देकर खरीदनेके बाद उस वस्तुको ठीक नहीं समझता, तो उसका यह आचरण 'क्रीतानुशय' नामक विवादपद कहलाता है। यदि ग्राहक या खरीददार मूल्य देकर वस्तुको खरीद लेनेके बाद यह समझता है कि यह खरीददारी ठीक नहीं है, (अतः वह वस्तु लौटाकर दाम वापस लेना चाहता है) तो उसी दिन यदि वह लौटा दे तो विक्रेता उसका मूल्य पूरा पूरा लौटा दे, उसमें काट-छाँट न करे[४] ॥१९-२१॥

पाखण्डी और नैगम आदिकी स्थितिको 'समय' कहते हैं। इससे सम्बद्ध विवादपदको 'समयानपाकर्म' कहा जाता है। (याज्ञवल्क्यने इसे 'संविद्-व्यतिक्रम' नाम दिया है।) क्षेत्रके अधिकारको लेकर सेतु, केदार (मेड़) और क्षेत्र सीमाके घटने-बढ़नेके विषयमें जो विवाद होता है, वह 'क्षेत्रज' कहा गया है। जो स्त्री और पुरुषके विवाहादिसे सम्बन्धित विवादपद है, उसे 'स्त्री पुंस योग' कहते हैं। पुत्रगण पैतृक धनका जो विभाजन करते हैं, विद्वानोंने उसको 'दायभाग' नामक व्यवहारपद माना है। बलके अभिमानसे जो कर्म सहसा किया जाता है, उसे 'साहस' नामक विवादपद बतलाया गया है। किसीके देश, जाति एवं कुल आदिपर दोषारोपण करके प्रतिकूल अर्थसे युक्त कठोर वचन कहना 'वाक्पारुष्य' माना गया है। दूसरेके शरीरपर हाथ-पैर या आयुधसे प्रहार अथवा भस्म आदिसे आघात करना 'दण्डपारुष्य' कहलाता है। पाश (चमड़ेकी पट्टी) और शलाका (हाथीदाँतकी गोटियों)से जो क्रीडा होती है, उसको 'द्यूत' कहा जाता है। (मेष आदि) पशुओं और (बटेर आदि) पक्षियोंसे होनेवाली क्रीडाको 'प्राणिद्यूत' समझना चाहिये। राजाकी आज्ञाका उल्लङ्घन और उसका कार्य न करना यह 'प्रकीर्णक' नामक व्यवहारपद जानना चाहिये। यह विवादपद राजापर आश्रित है। इस प्रकार व्यवहार अठारह पदोंसे युक्त है। इनके भी सौ भेद माने गये हैं। मनुष्योंकी क्रियाके भेदसे यह सौ शाखाओंवाला कहा जाता है ॥ २२-३१ ॥

राजा क्रोधरहित होकर शास्त्र-सम्पन्न ब्राह्मणोंके साथ व्यवहारका विचार करे और ऐसे मनुष्योंको सभासद बनावे जो वेदवेत्ता, धर्मज्ञ और शत्रु एवं मित्रको समान दृष्टिसे देखनेवाले हों। यदि राजा कार्यवश स्वयं व्यवहारका विचार न कर सके तो सभासदोंके साथ विद्वान् ब्राह्मणको नियुक्त करे। यदि सभासद राग, लोभ या भयसे धर्मशास्त्र एवं आचारके विरुद्ध कार्य करे, तो राजा प्रत्येक सभासदपर अलग-अलग विवादसे दुगुना अर्थदण्ड करे। यदि कोई मनुष्य दूसरोंके द्वारा धर्मशास्त्र और सदाचारके विरुद्ध मार्गसे धर्षित किया गया हो और वह राजाके समीप आवेदन

---

४ नारदस्मृतिमें भी इन श्लोकोंका ठीक ऐसा ही पाठ है। वहाँ इस विषयमें कुछ अधिक बातें बतायी गयी हैं जो इस प्रकार हैं—

द्वितीयेऽह्नि ददत् क्रेता मूल्यात् त्रिंशांशमावहेत्।
द्विगुणं तु तृतीयेऽह्नि परतः क्रेतुरेव तत्॥

'यदि ग्राहक वस्तुको [खरीदनेके दिन न लौटाकर] दूसरे दिन लौटावे तो वह वस्तुके पूरे मूल्यका $\frac{1}{30}$ अर्थात् तीसवाँ हिस्सा हरजानेके तौरपर विक्रेताको दे। यदि वह तीसरे दिन लौटावे तो उससे दूनी रकम हर्जानेके तौरपर दे। इसके बाद 'अनुशय'का अधिकार समाप्त हो जाता है। फिर तो ग्राहकको माल लेना ही पड़ेगा।

याज्ञवल्क्य और मिताक्षराकी दृष्टिसे यह नियम बीज आदिके सिवा अन्य वस्तुओंपर लागू होता है। बीज, लोहा, बैल आदि वाहन, मोती-मूँगा आदि रत्न, दासी, दूध देनेवाली धेनु आदि तथा दास—इनके परीक्षणका काल भिन्न है। यथा—बीजके परीक्षणका समय दस दिन, लोहेके एक दिन, बैल आदिके पाँच दिन, रत्नोंके सात दिन, दूध देनेवाली धेनु आदिके तीन दिन तथा दासके [illegible] समय [illegible] है। इस समयके भीतर ही वे [illegible] वा लौटायी जा सकती है, अन्यथा नहीं। मनुने कुछ इन सभी वस्तुओंके लिये दस दिनका समय ही क्रेताको लौटानेके लिये दिया है। इसके बाद लौटानेका अधिकार नहीं रह जाता है।

तो उसको 'व्यवहार' (पद) कहते हैं। वादीने जो दन किया हो, राजा उसको वर्ष, मास, पक्ष, दिन, नाम जाति आदिसे चिह्नित करके प्रतिवादीके सामने लिख (वादीके आवेदन या बयानको 'भाषा', 'प्रतिज्ञा' अथवा ष' कहते हैं।) प्रतिवादी वादीका आवेदन सुनकर उसके ने ही उसका उत्तर[2] लिखावे। तब वादी उसी समय ने निवेदनका प्रमाण लिखावे। निवेदनके प्रमाणित हो नेपर वादी जीतता है, अन्यथा पराजित हो जाता ॥ ३२–३७ ॥

इस प्रकार विवादमें चार पाद (अंश[3]) से युक्त व्यवहार लाया गया है। जबतक अभियुक्तके वर्तमान अभियोगका गय (फैसला) न हो जाय, तबतक उसके ऊपर दूसरे राधका मामला न चलाये। जिसपर किसी दूसरेने अभियोग : दिया हो, उसपर भी कोई वादी दूसरा अभियोग न गावे। आवेदनके समय जो कुछ कहा गया हो, अपने उस नके विपरीत (विरुद्ध) कुछ न कहे। (हिंसा आदि) अपराध बन जाय तो पूर्व अभियोगका फैसला होनेके ले ही मामला चलाया जा सकता है ॥३८ ३९॥

सभासदोंसहित सभापति या प्राड्विवाकको चाहिये कि वह दी और प्रतिवादी दोनोंके सभी विवादोंमें जो निर्णयका य है, उसके सम्पादनमें समर्थ पुरुषको 'प्रतिभू' बनावे।[4] र्थीके द्वारा लगाये गये अभियोगको यदि प्रत्यर्थीने स्वीकार कर दिया और अर्थीने गवाही आदि देकर अपने वेको पुनः उससे स्वीकार करा लिया, तब प्रत्यर्थी अर्थीको अभियुक्त धन दे और दण्डस्वरूप उतना ही धन राजाको भी दे। यदि अर्थी अपने दावेको सिद्ध न कर सका तो स्वयं मिथ्याभियोगी (झूठा मुकदमा चलानेवाला) हो गया; उस दशामें वही अभियुक्त धनराशिसे दूना धन राजाको अर्पित करे ॥४०½ ॥

हत्या या डकैती-चोरी, वाक्पारुष्य (गाली-गलौज), दण्डपारुष्य (निर्दयतापूर्वक की हुई मारपीट), दूध देने वाली गायके अपहरण, अभिशाप (पातकका अभियोग), अत्यय (प्राणघात) एवं धनातिपात तथा स्त्रियोंके चरित्र सम्बन्धी विवाद प्राप्त होनेपर तत्काल अपराधीसे उत्तर माँगे, विलम्ब न करे। अन्य प्रकारके विवादोंमें उत्तरदानका समय वादी, प्रतिवादी, सभासद् तथा प्राड्विवाककी इच्छाके अनुसार रक्खा जा सकता है ॥ ४१½ ॥

[दुष्टोंकी पहचान इस प्रकार करे—] अभियोगके विषयमें बयान या गवाही देते समय जो एक जगहसे दूसरी जगह आता जाता है, स्थिर नहीं रह पाता, दोनों गलफर चाटता है, जिसके भाल-देशमें पसीना हुआ करता है, चेहरेका रंग फीका पड़ जाता है, गला सूखनेसे वाणी अटकने लगती है, जो बहुत तथा पूर्वापर विरुद्ध बातें कहा करता है, जो दूसरेकी बातका ठीक-ठीक उत्तर नहीं दे पाता और किसीसे दृष्टि नहीं मिला पाता है, जो ओठ टेढ़े-मेढ़े किया करता है, इस प्रकार जो स्वभावसे ही मन, वाणी, शरीर तथा क्रिया-सम्बन्धी विकारको प्राप्त होता है, वह 'दुष्ट' कहा गया है ॥४२ ४३½ ॥

जो संदिग्ध अर्थको, जिसे अधमर्णने अस्वीकार कर दिया है, बिना किसी साधनके मनमाने ढंगसे सिद्ध करनेकी चेष्टा करता है तथा जो राजाके बुलानेपर उनके समक्ष कुछ भी नहीं कह पाता है, वह भी हीन और दण्डनीय माना गया है ॥ ४४½ ॥

दोनों वादियोंके पक्षमें साधक साक्षी मिलने सम्भव हो तो पूर्ववादीके साक्षियोंसे ही पूछे, अर्थात् उन्हींकी गवाही ले। जो वादीके उत्तरमें यह कहे कि 'मैंने बहुत पहले इस क्षेत्रको दानमें पाया था और तभीसे यह हमारे उपभोगमें है', वही यहाँ पूर्ववादी है; जिसने पहले अभियोग दाखिल किया है, वह नहीं। यदि कोई यह कहे कि 'ठीक है कि यह सम्पत्ति इसे दानमें मिली थी और इसने इसका उपभोग भी किया है, तथापि इसके यहाँसे अमुकने यह क्षेत्र-सम्पत्ति खरीद ली

---

१ मिताक्षराकारने व्यवहारके सात रूप बताये हैं। यथा—प्रतिज्ञा, उत्तर, संशय, हेतु-परामर्श, प्रमाण, निर्णय एवं प्रयोजन।

२ उत्तरके चार भेद हैं—'सम्प्रतिपत्ति', 'मिथ्या', 'प्रत्यवस्कन्दन' या प्राङ्न्याय। उत्तर वह अच्छा माना गया है, जो पक्षके प्रतिपादनमें समर्थ, न्यायसंगत, संदेहरहित, पूर्वापर-विरोधसे वर्जित या सुबोध हो—उसे समझनेके लिये व्याख्या अथवा टीका-टिप्पणी करनी पड़े।

३ १—भाषापाद, २—उत्तरपाद, ३—क्रियापाद और ४—साध्य-सिद्धिपाद।

४ प्रतिभूके अभावमें वेतन देकर रक्षक-पुरुषोंकी नियुक्ति करनी चाहिये। जैसा कि कात्यायनका कथन है—

अथ चेत् प्रतिभूर्नास्ति कार्ययोग्यस्तु वादिनः ।
स रक्षितो दिनस्यान्ते दद्याद् भृत्याय वेतनम् ॥

और उसने 'पुनः इसे मुझको दे दिया' तब पूर्वपक्ष असाध्य होनेके कारण दुर्बल पड़ जाता है। ऐसा होनेपर उत्तरवादीके साक्षी ही मन्तव्य हैं; उन्हींकी गवाही ली जानी चाहिये॥४८½॥

यदि विवाद किसी शर्तके साथ किया गया हो, अर्थात् यदि किसीने कहा हो कि 'यदि मैं अपना पक्ष सिद्ध न कर सकूँ तो पाँच सौ पण अधिक दण्ड दूँगा', तब यदि वह पराजित हो जाय तो उससे पूर्वकृत पणरूपी दण्डका धन राजाको दिलवावे। परंतु जो अर्थी धनी है, उसे राजा विवादका आस्पदभूत धन ही दिलवावे॥ ४९½ ॥

राजा छल छोड़कर वास्तविकताका आश्रय ले व्यवहारों का अन्तिम निर्णय करे। यथार्थ वस्तु भी यदि लेखबद्ध न हुई हो तो व्यवहारमें वह पराजयका कारण बनती है। सुवर्ण, रजत और वस्त्र आदि अनेक वस्तुएँ अर्थीके द्वारा अभियोग-पत्रमें लिखा दी गयी हैं, परंतु प्रत्यर्थी उन सबको अस्वीकार कर देता है, उस दशामें यदि साक्षी आदिके प्रमाणसे एक वस्तुको भी प्रत्यर्थीने स्वीकार कर लिया, तब राजा उससे अभियोग-पत्रमें लिखित सारी वस्तुएँ दिलवाये। यदि कोई वस्तु पहले नहीं लिखायी गयी और बादमें उसकी भी वस्तु सूचीमें चर्चा की गयी हो तो उसको राजा नहीं दिलवावे। यदि दो स्मृतियों अथवा धर्मशास्त्र-वचनोंमें परस्पर विरोधकी प्रतीति होती हो तो उस विरोधको दूर करनेके लिये विषय व्यवस्थापना आदिमें उत्सर्गापवाद-लक्षण न्यायको बलवान् समझना चाहिये। एक वाक्य उत्सर्ग या सामान्य है और दूसरा अपवाद अथवा विशेष है, अतः अपवाद उत्सर्गका बाधक हो जाता है। उस न्यायकी प्रतीति कैसे होगी? व्यवहारसे। अन्वय-व्यतिरेक-लक्षण जो वृद्धव्यवहार है, उससे उक्त न्यायका अवगमन हो जायगा। इस कथनका भी अपवाद है। अर्थशास्त्र और धर्मशास्त्रके वचनोंमें विरोध होनेपर अर्थशास्त्रसे धर्मशास्त्र ही बलवान् है, यह महर्षि मुनियोंकी बाँधी मर्यादा है॥ ५०-५१½ ॥

[अर्थी या वादी पुरुष सप्रमाण अभियोग-पत्र उपस्थित करे, यह बात पहले कही गयी है। प्रमाण दो प्रकारका होता है—'मानुष प्रमाण' और 'दैविक प्रमाण'। मानुष प्रमाण तीन प्रकारका होता है, यही यहाँ बताया जाता है—] लिखित, भुक्ति और साक्षी—ये तीन 'मानुष-प्रमाण' कहे गये हैं। (लिखितके दो भेद हैं—'शासन' और 'चीरक'। 'शासन' का लक्षण पहले कहा गया है और 'चीरक' आगे बताया जायगा।) 'भुक्ति' का अर्थ है—उपभोग (कब्जा)। (साक्षी के स्वरूप प्रकार आगे बताये जायँगे।) यदि मानुष-प्रमाणके इन तीनों भेदोंमेंसे एककी भी उपलब्धि न हो तो आगे बताये जानेवाले दिव्य प्रमाणोंमेंसे किसी एकको ग्रहण करना आवश्यक बताया जाता है॥ ५०½ ॥

ऋण आदि समस्त विवादोंमें उत्तर क्रिया बलवती मानी गयी है। यदि उत्तर क्रिया सिद्ध कर दी गयी तो उत्तरवादी विजयी होता है और पूर्ववादी अपना पक्ष सिद्ध कर चुका हो तो भी वह हार जाता है। जैसे किसीने सिद्ध कर दिया कि 'अमुकने मुझसे सौ रुपये लिये हैं, अतः वह उन रुपयोंका देनदार है'; तथापि लेनेवाला यदि यह कहता है कि 'मैंने लिया अवश्य था, किंतु अमुक तिथिको वे रुपये लौटा दिये थे' और यदि उत्तरदाता प्रमाणसे अपना यह कथन सिद्ध कर दे, तो अर्थी या पूर्ववादी पराजित हो जाता है। परंतु 'आधि' (किसी वस्तुको गिरवी रखने), प्रतिग्रह लेने अथवा खरीदनेमें पूर्वक्रिया ही प्रबल होती है। जैसे किसी खेतको उसके मालिकने किसी धनीके यहाँ गिरवी रखकर उससे कुछ रुपये ले लिये। फिर उसी खेतको दूसरेसे भी रुपये लेकर उसने उसके यहाँ गिरवी रख दिया; ऐसे मामलोंमें जहाँ पहले खेतको गिरवी रक्खा है, उसीका स्वत्व प्रबल माना जायगा, दूसरेका नहीं॥ ५१½ ॥

यदि भूमि-स्वामीके देखते हुए कोई दूसरा उसकी भूमिका उपभोग करता है और वह कुछ नहीं बोलता है, बीस वर्षोंतक ऐसा होनेपर वह भूमि उसके हाथसे निकल जाती है। इसी प्रकार हाथी, घोड़े आदि धनका कोई दस वर्षतक उपभोग करे और स्वामी कुछ न बोले तो वह उपभोक्ता ही उस धनका स्वामी हो जाता है, पहलेके स्वामीको उस धनसे हाथ धोना पड़ता है॥ ५२½ ॥

आधि, सीमा और निक्षेप-सम्बन्धी धनको, जड़ और बालकोंके धनको तथा उपनिधि, राजा, स्त्री एवं श्रोत्रिय ब्राह्मणोंके धनको छोड़कर ही पूर्वोक्त नियम लागू होता है, अर्थात् इनके धनका उपभोग करनेपर भी कोई उस धनका स्वामी नहीं हो सकता। आधिसे लेकर श्रोत्रिय पर्यन्त धनका चिरकालसे उपभोगके द्वारा अपहरण करनेवाले पुरुषसे राजा विवादास्पद धनको लेकर उसके वास्तविक स्वामीको दिला दे और अपहरण करनेवालेसे उस धनके बराबर ही दण्डरूपमें धन राजाको दिलवाया जाय।

अथवा अपहरणकर्ताकी शक्तिके अनुसार अधिक या कम धन भी दण्डके रूपमें लिया जाय। स्वत्वका हेतुभूत जो प्रतिग्रह और क्रय आदि है, उसको 'आगम' कहते हैं। वह 'आगम' भोगकी अपेक्षा भी अधिक प्रबल माना गया है। स्वत्वका बोध करानेके लिये आगमसापेक्ष भोग ही प्रमाण है। परंतु पिता, पितामह आदिके क्रमसे जिस धनका उपभोग चला आ रहा है, उसको छोड़कर अन्य प्रकारके उपभोगमें ही आगमकी प्रबलता है; पूर्व-परम्परा प्राप्त भोग तो आगमसे भी प्रबल है, परंतु जहाँ थोड़ा सा भी उपभोग नहीं है, उस आगममें भी कोई बल नहीं है ॥ ५३-५५½ ॥

विशुद्ध आगमसे भोग प्रमाणित होता है। जहाँ विशुद्ध आगम नहीं है, वह भोग प्रमाणभूत नहीं होता है। जिस पुरुषने भूमि आदिका आगम (अर्जन) किया है, वही 'कहाँसे तुम्हें क्षेत्र आदिकी प्राप्ति हुई'—यह पूछे जानेपर लिखितादि प्रमाणोंद्वारा आगम (प्रतिग्रह आदि जनित अर्जन) का उद्धार (साधन) करे। (अन्यथा वह दण्डका भागी होता है।) उसके पुत्र अथवा पौत्रको आगमके उद्धारकी आवश्यकता नहीं है। वह केवल भोग प्रमाणित करे। उसके स्वत्वकी सिद्धिके लिये परम्परागत भोग ही प्रमाण है ॥ ५६-५७½ ॥

जो अभियुक्त व्यवहारका निर्णय होनेसे पहले ही परलोकवासी हो जाय, उसके धनके उत्तराधिकारी पुत्र आदि ही लिखितादि प्रमाणोंद्वारा उसके धनागमका उद्धार (साधन) करें; क्योंकि उस व्यवहार (मामले) में आगमके बिना केवल भोग प्रमाण नहीं हो सकता ॥ ५८½ ॥

जो मामले बलात्कारसे अथवा भय आदि उपाधिके कारण चलाये गये हों, उन्हें लौटा दे। इसी प्रकार जिसे केवल स्त्रीने चलाया हो, जो रातमें प्रस्तुत किया गया हो, घरके भीतर घटित घटनासे सम्बद्ध हो अथवा गाँव आदिके बाहर निर्जन स्थानमें किया गया हो तथा किसी शत्रुने अपने द्वेषपात्रपर कोई अभियोग लगाया हो—इस तरहके व्यवहारोंको न्यायालयमें विचारके लिये न ले—लौटा दे ॥ ५९½ ॥

[अब यह बताते हैं कि किनका चलाया हुआ अभियोग सिद्ध नहीं होता—] जो मादक द्रव्य पीकर मत्त हो गया हो, वात, पित्त, कफ, सन्निपात अथवा ग्रहावेशके कारण उन्मत्त हो, रोग आदिसे पीड़ित हो, इष्टके वियोग अथवा अनिष्टकी प्राप्तिसे दुःखमग्न हो, नाबालिग हो और शत्रु आदिसे डरा हुआ हो, ऐसे लोगोंद्वारा चलाया हुआ व्यवहार 'असिद्ध' माना गया है। जिनका अभियुक्त-वस्तुसे कोई सम्बन्ध न हो, ऐसे लोगोंका चलाया हुआ व्यवहार भी सिद्ध नहीं होता (विचारणीय नहीं समझा जाता) ॥ ६०½ ॥

यदि किसीका चोरोंद्वारा अपहृत सुवर्ण आदि धन शौल्किक (टैक्स लेनेवाले) तथा स्थानपाल आदि राजकर्मचारियोंको प्राप्त हो जाय और राजाको समर्पित किया जाय तो राजा उसके स्वामी—धनाधिकारीको वह धन लौटा दे। यह तभी करना चाहिये, जब धनका स्वामी खोयी हुई वस्तुके रूप, रंग और संख्या आदि चिह्न बताकर उसपर अपना स्वत्व सिद्ध कर सके। यदि वह चिह्नोंद्वारा उस धनको अपना सिद्ध न कर सके तो मिथ्यावादी होनेके कारण उससे उतना ही धन दण्डके रूपमें वसूल करना चाहिये ॥ ६१½ ॥

राजाको चाहिये कि वह चोरोंद्वारा चुराया हुआ द्रव्य उसके अधिकारी राज्यके नागरिकको लौटा दे। यदि वह नहीं लौटाता है तो जिसका वह धन है, उसका सारा पाप राजा अपने ऊपर ले लेता है ॥ ६२ ॥

[अब ऋणादान-सम्बन्धी व्यवहारपर विचार करते हैं—] यदि कोई वस्तु बन्धक रखकर ऋण लिया जाय तो ऋणमें लिये हुए धनका $\frac{1}{80}$ भाग प्रतिमास ब्याज धर्मसंगत होता है; अन्यथा बन्धकरहित ऋण देनेपर ब्राह्मणादि वर्णोंके क्रमसे प्रतिशत कुछ-कुछ अधिक ब्याज लेना भी धर्मसम्मत है। अर्थात् ब्राह्मणसे जितना ले क्षत्रियसे, वैश्यसे और शूद्रसे क्रमशः उससे कुछ-कुछ अधिक प्रतिशत सूद या वृद्धिकी रकम ली जा सकती है ॥ ६३ ॥

ऋणके रूपमें प्रयुक्त मादा पशुओंके लिये वृद्धिके रूपमें उसकी संतति ही ग्राह्य है। तेल, घी आदि रस द्रव्य किसीके यहाँ चिरकालतक रह गया और बीचमें यदि उसकी वृद्धि (सूद—वृद्धिकी रकम) नहीं ली गयी तो वह बढ़ते-बढ़ते आठगुनातक हो सकती है। इससे आगे उसपर वृद्धि नहीं लगायी जाती। इसी प्रकार वस्त्र, धान्य तथा सुवर्ण—इनकी क्रमशः चौगुनी, तिगुनी और दुगुनी तक वृद्धि हो सकती है, इससे आगे नहीं ॥ ६४ ॥

या परदेश जानेवाला हो, उसके द्वारा नियुक्त स्त्रीने ण लिया हो, वह भी यद्यपि पतिका ही किया हुआ ; तथापि उसे पत्नीको चुकाना होगा, अथवा पतिके रहकर मायाने जो ऋण लिया हो, वह भी पति और अभावमें उस भायाको ही चुकाना होगा, जो ऋण स्त्रीने किया हो, उसकी देनदार तो वह है ही। इसके सिवा किसी प्रकारके पतिकृत ऋणको चुकानेका भार स्त्रीपर है ॥ ३-९ ॥

यदि पिता ऋण करके बहुत दूर परदेशमें चला गया, या अथवा किसी बड़ भारी संकटमें फँस गया तो उसके े पुत्र और पौत्र चुकावें। (पिताके अभावमें पुत्र और अभावमें पौत्र उस ऋणकी अदायगी करे।) यदि व कार करें तो अर्थी न्यायालयमें अभियोग उपस्थित करके आदिके द्वारा उस ऋणकी यथार्थता प्रमाणित कर दे। दशामें तो पुत्र-पौत्रोंको वह ऋण देना ही पड़ेगा। जो शराब पीनेके लिये लिया गया हो, परस्त्री-लम्पटताके। कामभोगके लिये किया गया हो, जूएमें हारनेपर जो लिया गया हो, जो धन दण्ड और शुल्कका शेष रह हो तथा जो व्यर्थका दान हो, अर्थात् धूर्तों और नट को देनेके लिये किया गया हो, इस तरहके पैतृक ऋणको कदापि न दे। भाइयोंके, पति-पत्नीके तथा पिता-पुत्रके भक्त धनमें 'प्रातिभाव्य' ऋण और साक्ष्य नहीं माना गया। १०-१२ ॥

विश्वासके लिये किसी दूसरे पुरुषके साथ जो समय-या मर्यादा निश्चित की जाती है, उसका नाम है-तिभाव्य'। यह विषय भेदसे तीन प्रकारका होता है। जैसे-) दर्शनविषयक प्रातिभाव्य। अर्थात् कोई दूसरा पुरुष उत्तरदायित्व ले कि जब-जब आवश्यकता होगी, तब-तब व्यक्तिको मैं न्यायालयके सामने उपस्थित कर दूँगा अर्थात् लाऊँगा-हाजिर कर दूँगा। ('दर्शन प्रतिभू'को आजकलकी षामें 'हाजिर-जामिन' कहते हैं।) (२) प्रत्ययविषयक तिभाव्य। 'प्रत्यय' कहते हैं विश्वासको। 'विश्वास प्रतिभू'को श्वास-जामिन' कहा जाता है। जैसे कोई कहे कि 'आप विश्वासपर इसको धन दीजिये, यह आपको ठगेगा नहीं, योंकि यह अमुकका बेटा है। इसके पास उपजाऊ भूमि है र इसके अधिकारमें एक बड़ा-सा गाँव भी है' इत्यादि। ३) दानविषयक प्रातिभाव्य। 'दान प्रतिभू'को 'माल-जामिन' हते हैं। 'दान प्रतिभू' यह जिम्मेदारी लेता है कि 'यदि यह लिया हुआ धन नहीं देगा तो मैं स्वयं ही अपने पाससे दूँगा'-इत्यादि। इस प्रकार दर्शन (उपस्थिति), प्रत्यय (विश्वास) तथा दान (वसूली) के लिये प्रातिभाव्य किया जाता है-जामिन देनेकी आवश्यकता पड़ती है। इनमेंसे प्रथम दो, अर्थात् 'दर्शन प्रतिभू' और 'विश्वास प्रतिभू'-इनकी बात झूठी होनेपर, स्वयं धनी ऋण चुकानेके लिये विवश है, अर्थात् राजा उनसे धनीको वह धन अवश्य दिलवावे, परंतु जो तीसरा 'दान प्रतिभू' है, उसकी बात झूठी होनेपर वह स्वयं तो उस धनको लौटानेका अधिकारी है ही, किंतु यदि वह बिना लौटाये ही विलुप्त हो जाय तो उसके पुत्रोंसे भी उस धनकी वसूली की जा सकती है। जहाँ 'दर्शन प्रतिभू' अथवा 'विश्वास प्रतिभू' परलोकगामी हो जायँ, वहाँ उनके पुत्र उनके दिलाये हुए ऋणको न दें, परंतु जो स्वयं लौटा देनेके लिये जिम्मेदारी ले चुका है, वह 'दान प्रतिभू' यदि मर जाय तो उसके पुत्र अवश्य उसके दिलाये हुए ऋणको दें। यदि एक ही धनको दिलानेके लिये बहुतसे प्रतिभू (जामिनदार) बन गये हों, तो उस धनके न मिलनेपर वे सभी उस ऋणको बाँटकर अपने-अपने अंशसे चुकावें। यदि सभी प्रतिभू एक-से ही हों, अर्थात् जैसे ऋणग्राही सम्पूर्ण धन लौटानेको उद्यत रहा है, उसी प्रकार प्रत्येक प्रतिभू यदि सम्पूर्ण धन लौटानेके लिये प्रतिज्ञाबद्ध हो तो धनी पुरुष अपनी रुचिके अनुसार उनमें से किसी एकसे ही अपना सारा धन वसूल कर सकता है। ऋण देनेवाले धनीके द्वारा दबाये जानेपर प्रतिभू राजाके आदेशसे सबके सामने उस धनीको जो धन देता है, उससे दूना धन ऋण लेनेवाले लोग उस प्रतिभूको लौटावें ॥ १३-१६॥

मादा पशुओंको यदि ऋणके रूपमें दिया गया हो तो उस धनकी वृद्धिके रूपमें केवल उनकी संतति ली जा सकती है। धान्यकी अधिक-से-अधिक वृद्धि तीनगुनेतक मानी गयी है। वस्त्र वृद्धिके क्रमसे बढ़ता हुआ चौगुना तथा रस (घी, तेल आदि) अधिक-से-अधिक आठगुना तक हो सकता है। यदि कोई वस्तु बन्धक रखकर ऋण लिया गया हो और उस ऋणकी रकम ब्याजके द्वारा बढ़ते-बढ़ते दूनी हो गयी हो, उस दशामें भी ऋणग्राही यदि सारा धन लौटाकर उस वस्तुको छुड़ा नहीं लेता है, तो वह वस्तु नष्ट हो जाती है-उसके हाथसे निकलकर ऋणदाताकी अपनी वस्तु हो जाती है। जो धन समय विशेषपर लौटानेकी शर्तपर लिया जाता है और उसके लिये कोई जेवर आदि बन्धक रक्खा जाता है, वह समय बीत जानेपर वह बन्धक नष्ट हो जाता

से स्थापकके माँगनेपर ज्यों-का-त्यों लौटा देना चाहिये[१]। दि उपनिधिकी वस्तु राजाने बलपूर्वक ले ली हो या दैवी धा (आग लगने आदि) से नष्ट हुई हो, अथवा उसे ोर चुरा ले गये हों तो जिसके यहाँ वह वस्तु रक्खी गयी ो, उसको वह वस्तु देने या लौटानेके लिये बाध्य नहीं किया ा सकता। यदि स्वामीने उस वस्तुको माँगा हो और रोहर रखनेवालेने नहीं दिया हो, उस दशामें यदि राजा ादिकी बाधासे उस वस्तुका नाश हुआ हो तो रखनेवाला उस वस्तुके अनुरूप मूल्य मालधनीको देनेके लिये विवश किया जा सकता है। और राजाको उससे उतना ही दण्ड दिलाया जाय। जो मालधनीकी अनुमति लिये बिना स्वेच्छासे उपनिधिकी वस्तुको भोगता या उससे व्यापार करता है, वह दण्डनीय है। यदि उसने उस वस्तुका उपभोग किया है तो वह सूदसहित उस वस्तुको लौटाये और यदि व्यापारमें लगाकर लाभ उठाया है तो लाभसहित वह वस्तु मालधनीको लौटाये और उतना ही दण्ड राजाको दे। याँचित, अन्वाहित, न्यास और निक्षेप आदिमें यह उपनिधि सम्बन्धी विधान ही लागू होता है ॥ २५-२८ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेयमहापुराणमें 'व्यवहारका कथन' नामक दो सौ चौवनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २५४ ॥

दो सौ पचपनवाँ अध्याय

साक्षी, लेखा तथा दिव्यप्रमाणोंके विषयमें विवेचन

'साक्षी-प्रकरण'

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! तपस्वी, कुलीन, ानशील, सत्यवादी, कोमलहृदय, धर्मात्मा, पुत्रयुक्त, धनी, ञ्चयज्ञ आदि वैदिक क्रियाओंसे युक्त अपनी जाति और र्णके पाँच या तीन साक्षी होने चाहिये। अथवा सभी नुष्य सबके साक्षी हो सकते हैं; किंतु स्त्री, बालक, वृद्ध, ुआरी, मत्त (शराब आदि पीकर मतवाला), उन्मत्त भूत या ग्रहके आवेशसे युक्त), अभिशस्त (पातकी), ामञ्चपर उतरनेवाला चारण, पाखण्डी, कूटकारी (जालसाज), िकलेन्द्रिय (अंधा, बहरा आदि), पतित, आप्त मित्र या सगे-सम्बन्धी), अर्थ-सम्बन्धी (विवादास्पद र्थसे सम्बन्ध रखनेवाला), सहायक, शत्रु, चोर, साहसी दुस्साहसपूर्ण कार्य करनेवाला), दृष्टदोष (जिसका पूर्वापर िरुद्ध बोलनेका स्वभाव देखा गया हो, वह) तथा निर्धूत भाई-बन्धुओंसे परित्यक्त) आदि साक्षी बनानेयोग्य नहीं हैं। वादी और प्रतिवादी—दोनोंके मान लेनेपर एक भी धर्मवेत्ता पुरुष साक्षी हो सकता है। किसी स्त्रीको बलपूर्वक पकड़ लेना, चोरी करना, किसीको कटुवचन सुनाना या कठोर दण्ड देना तथा हत्या आदि दुःसाहसपूर्ण कार्य करना—इन अपराधोंमें सभी साक्षी बनाये जा सकते हैं ॥ १-५ ॥

जो मनुष्य साक्षी होना स्वीकार करके तीन पक्षके भीतर गवाही नहीं देता है, राजा छियालीसवें दिन उससे सारा ऋण सूदसहित वादीको दिलवे और अपना दशांश भाग भी उससे वसूल करे। जो नराधम जानते हुए भी साक्षी नहीं होता, वह कूटसाक्षी (झूठी गवाही देनेवाले) के समान दण्ड और पापका भागी होता है। न्यायाधिकारी वादी एवं प्रतिवादीके समीप स्थित साक्षियोंको यह वचन सुनावे—'पातकियों और महापातकियोंको तथा आग लगानेवालों और स्त्री एवं बालकोंकी हत्या करनेवालोंको जो लोक (नरक) प्राप्त होते हैं, झूठी गवाही देनेवाला मनुष्य उन सभी लोकों

---

२ जो वस्तु बिना गिनती या स्वरूप बताये सील-मोहर करके धरोहर रक्खी जाती है, उसे 'उपनिधि' समझे और जो ेनकर दिखाकर रक्खी जाती है, उसे 'निक्षेप' माना जाता है। जैसा कि नारदका वचन है—'असंख्यातमविज्ञातं समुद्रं ाभिधीयते। तज्जानीयादुपनिधिं निक्षेपं गणितं विदुः ॥' ३ विवाह आदि उत्सवोंमें मँगनीके तौरपर माँगकर लाये हुए वस्त्र और आभूषण आदिको 'याचित' कहते हैं। ४ एकके हाथमें रक्खी हुई वस्तुको वहाँसे लेकर दूसरेके हाथमें रक्खी जाय तो उसे 'अन्वाहित' कहते हैं। ५ घरके मालिकके परोक्षमें ही घरवालोंके हाथमें जो धरोहरको ेतु यह कहकर दी जाती है कि गृहस्वामीके आनेपर उन्हें यह वस्तु दे दी जाय तो उसको न्यास कहते हैं। सबके सामने गिनकर दिखाकर जो वस्तु धरोहर रक्खी जाती है उसका नाम 'निक्षेप' है।

जाता है। युक्तिप्राप्ति[1], क्रिया[2], चिह्न[3], सम्बन्ध[4] और आगम[5]— इन हेतुओंसे भी लेखाकी शुद्धि होती है। ऋणी जब-जब ऋणका धन धनीको दे, तब-तब लेखापत्रकी पीठपर लिख दिया करे। अथवा धनी जब-जब जितना धन पावे, तब-तब अपने हाथसे लेखाकी पीठपर उसको लिखकर अङ्कित कर दे। ऋणी जब ऋण चुका दे तो लेखाको फाड़ डाले, अथवा (लेखा किसी दुर्गम स्थानमें हो या नष्ट हो गया, तो) ऋणशुद्धिके लिये धनीसे भरपाई लिखवा ले। यदि लेखापत्रमें साक्षियोंका उल्लेख हो तो उनके सामने ऋण चुकावे ॥ १६–२७ ॥

दिव्य प्रकरण

तुला, अग्नि, जल, विष तथा कोष—ये पाँच दिव्य प्रमाण धर्मशास्त्रमें कहे गये हैं, जो संदिग्ध अर्थके निर्णय अथवा संदेहकी निवृत्तिके लिये देने चाहिये। जब अभियोग बहुत बड़े हों और अभियोक्ता परले सिरेपर, अर्थात् व्यवहारके जय पराजय-लक्षण चतुर्थपादमें पहुँच गया हो, तभी इन दिव्य प्रमाणोंका आश्रय लेना चाहिये। वादी और प्रतिवादी—दोनोंमेंसे कोई एक परस्पर बातचीत करके, स्वीकृति देकर अपनी रुचिके अनुसार दिव्य प्रमाणके लिये प्रस्तुत हो और दूसरा सम्भावित शारीरिक या आर्थिक दण्डके लिये तैयार रहे। राजद्रोह या महापातकका संदेह होनेपर शीर्षक स्थितिमें आये बिना भी तुला आदि दिव्य प्रमाणोंको स्वीकार करे। एक हजार पणसे कमके अभियोगमें अग्नि, विष और तुला—इन दिव्य प्रमाणोंको ग्रहण न कराये, किंतु राजद्रोह और महापातकके अभियोगमें सत्पुरुष सदा इन्हीं प्रमाणोंका वहन करे। सहस्र पणके अभियोगमें तुला आदि तीन दिव्य प्रमाणोंको प्रस्तुत करे, किंतु अल्प अभियोगमें भी कोश कराये। शपथ ग्रहण करनेवालेके शुद्ध प्रमाणित होनेपर उसे वादीसे पचास पण दिलावे और दोषी प्रमाणित होनेपर उसे दण्ड दे। न्यायाधिकारी दिव्य प्रमाणके लिये प्रस्तुत मनुष्यको पहले दिन उपवास करवाये तथा दूसरे दिन सूर्योदयके समय वस्त्रसहित स्नान कर लेनेपर बुलाये। फिर राजा और ब्राह्मणोंके सम्मुख उससे सभी दिव्य प्रमाण ग्रहण करावे। किसी भी जाति अथवा वर्णकी स्त्री, किसी भी जातिका सोलह वर्षकी अवस्थासे कमका बालक, कम-से-कम अस्सी वर्षकी अवस्थाका बूढ़ा, अन्ध (नेत्रहीन), पङ्गु (पादरहित), जातिमात्रका ब्राह्मण तथा रोगी—इन सबकी शुद्धिके लिये, अर्थात् इनपर लगे हुए अपराधविषयक संदेहका निवारण करनेके लिये 'तुला' नामक दिव्य प्रमाण ही ग्राह्य है। क्षत्रियके लिये अग्नि (गरम किया हुआ फाल और तपाया हुआ माष), वैश्यके लिये जलमात्र तथा शूद्रके लिये सात जौ विष—इनकी शुद्धिके लिये आवश्यक बताये गये हैं ॥ २८–३३ ॥

तुला दिव्यप्रमाण

जो तराजू उठाना या तौलना जानते हों, ऐसे लोगोंसे अभियुक्तको तुलाके एक पलड़ेमें बैठाकर दूसरे पलड़ेमें कोई मिट्टी या पत्थरका उतने ही वजनका टुकड़ा रखकर उससे उसको ठीक-ठीक तौले। फिर जिस सन्निवेशमें वह बराबर तौला गया है, उसमें सफेद खड़ियासे रेखा करके उस व्यक्तिको उतार लिया जाय। उतरनेपर वह निम्नाङ्कित प्रार्थना-वाक्य पढ़कर तुलाको अभिमन्त्रित करे—'सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि, आकाश, भूमि, जल, हृदय, यम, दिन, रात्रि, दोनों संध्या काल और धर्म—ये सब मनुष्यके वृत्तान्तको जानते हैं। तुले! तुम सत्यका धाम (स्थान) हो, पूर्वकालमें देवताओंने तुम्हारा निर्माण किया है। अतः कल्याणि! तुम सत्यको प्रकट करो और मुझे संशयसे मुक्त कर दो। मातः! यदि मैं पापी या अपराधी हूँ तो मेरा पलड़ा नीचे कर दो और यदि मैं दोषरहित हूँ तो मुझे ऊपर उठा दो' ॥ ३४–३७ ॥

अग्नि दिव्यप्रमाण

अग्निका दिव्य ग्रहण करनेवालेके हाथोंमें धान मसलकर, हाथोंके काले तिल आदि चिह्नोंको देखकर उन्हें महावर आदिसे रँग दे। फिर उसके हाथोंकी अञ्जलिमें पीपलके सात पत्ते रक्खे। हाथसहित उन पत्तोंको धागेसे आवेष्टित कर दे। इसके बाद दिव्य ग्रहण करनेवाला अग्निकी प्रार्थना करे— 'अग्निदेव! आप सम्पूर्ण भूत प्राणियोंके अन्तःकरणमें विचरते हैं। आप सबको पवित्र करनेवाले और सब कुछ जाननेवाले हैं। आप साक्षीकी भाँति मेरे पुण्य और पापका निरीक्षण करके सत्यको प्रकट कीजिये' ॥ ३८ ३९ ॥

---

१ इस देशमें इस कालमें इस पुरुषके पास इतने द्रव्यका होना सम्भव है—इसे 'युक्तिप्राप्ति' कहते हैं। २ साक्षियोंका उल्लेख क्रिया' है। ३ असाधारण चिह्न—जैसे 'श्री', 'ओम्' आदिका उल्लेख 'चिह्न' कहलाता है। ४ अर्थी और प्रत्यर्थी—दोनोंमें पहले भी परस्पर विश्वासपूर्वक देन-लेनका व्यवहार होना 'सम्बन्ध' है। ५ इस व्यक्तिको इतने धनकी प्राप्तिका उपाय सम्भावनासे परे नहीं है यह निर्णय 'आगम' कहलाता है।

दाय' है। चाचा और भाई आदिको पुत्र और स्वामीके अभावमें धनपर अधिकार प्राप्त होता है, इसलिये वह 'सप्रतिबन्ध दाय' है। इसी प्रकार उनके पुत्र आदिके लिये भी समझ लेना चाहिये। जिसके अनेक स्वामी हैं, ऐसे धनको बाँटकर एक-एकके अंशको पृथक्-पृथक् व्यवस्थित कर देना 'विभाग' कहलाता है। इस अध्यायमें दाय विभाग और स्वत्वपर विचार किया गया है, जो धर्मशास्त्रकारों एवं महर्षियोंको अभिमत है।]

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! यदि पिता अपने जीवनमें सब पुत्रोंमें धनका विभाजन करे तो वह इच्छानुसार ज्येष्ठ पुत्रको श्रेष्ठ भाग दे या सब पुत्रोंको समांश भागी बनाये। यदि पिता सब पुत्रोंको समान भाग दे, तो अपनी उन स्त्रियोंको भी समान भाग दे, जिनको पति अथवा श्वशुरकी ओरसे स्त्रीधन न मिला हो। जो पुत्र धनोपार्जनमें समर्थ होनेके कारण पैतृक धनकी इच्छा न रखता हो, उसे भी थोड़ा-बहुत धन देकर विभाजनका कार्य पूर्ण करना चाहिये। पिताके द्वारा दिया हुआ न्यूनाधिक भाग, यदि धर्मसम्मत है, तो वह पितृकृत होनेसे निवृत्त नहीं हो सकता, ऐसा स्मृतिकारोंका मत है। माता पिताकी मृत्युके पश्चात् पुत्र पिताके धन और ऋणको बराबर-बराबर बाँट लें[2]। माता द्वारा लिये गये ऋणको चुकानेके बाद बचा हुआ मातृधन पुत्रियाँ आपसमें बाँट लें[3]। उनके अभावमें पुत्र आदि उस धनका विभाग कर लें। पैतृक धनको हानि न पहुँचाकर जो धन स्वयं उपार्जित किया गया हो, मित्रसे मिला हो और विवाहमें प्राप्त हुआ हो, भाई आदि दायाद उसके अधिकारी नहीं होते। यदि सब भाइयोंने सम्मिलित रहकर धनकी वृद्धि की हो तो उस धनमें सबका समान भाग माना जाता है॥ १-५½॥

[यहाँतक पैतृक सम्पत्तिमें पुत्रोंका विभाग किस प्रकार हो, यह बतलाया गया। अब पितामहके धनमें पौत्रोंका विभाग कैसे हो, इस विषयमें विशेष बात बताते हैं—] यद्यपि पितामहके धनमें पौत्रोंका पुत्रोंके समान जन्मसे ही स्वत्व है, तथापि यदि वे पौत्र अनेक पितावाले हैं तो उनके पिताओंको द्वार बनाकर ही पितामहके द्रव्यका विभाजन होगा। साराश यह कि यदि संयुक्त परिवारमें रहते हुए ही अनेक भाई अनेक पुत्रोंको उत्पन्न करके परलोकवासी हो गये और उनमें से एकके दो, दूसरेके तीन और तीसरेके चार पुत्र हों, तो उन पौत्रोंकी संख्याके अनुसार पितामहकी सम्पत्तिका बँटवारा नहीं होगा, अपितु उन पौत्रोंके पिताओंकी संख्याके अनुसार होगा। जिसके दो पुत्र हैं, उसे अपने पिताका एक अंश प्राप्त है, जिसके तीन पुत्र हैं, उसे भी अपने पिताका एक अंश प्राप्त होगा और जिसे चार हैं, उसे भी अपने पिताका एक ही अंश मिलेगा। पितामहद्वारा अर्जित भूमि, निबन्ध और द्रव्यमें पिता और पुत्र दोनोंका समान स्वामित्व है। धनका विभाग होनेके बाद भी सवर्णा स्त्रीमें उत्पन्न हुआ पुत्र विभागका अधिकारी होता है। अथवा आय और व्ययका संतुलन करनेके बाद दृश्य धनमें उसका विभाग होता है। पिता पितामह आदिके क्रमसे आया हुआ जो द्रव्य दूसरोंने हर लिया हो और असमर्थतावश पिता आदिने उसका उद्धार नहीं किया हो, उसे पुत्रोंमेंसे एक कोई भी पुत्र अन्य बन्धुओंकी अनुमति लेकर यदि अपने प्रयाससे प्राप्त कर ले तो वह उस धनको स्वयं ले ले, अन्य दायादोंको न बाँटे। परंतु खेतका उद्धार करनेपर उद्धारकर्ता उसका चौथाई अंश स्वयं ले, शेष भाग सब भाइयोंको बराबर बराबर बाँट दे। इसी तरह विद्यासे (शास्त्रोंको पढ़ने-पढ़ाने या उसकी व्याख्या करनेसे) जो धन प्राप्त हो, उसको भी दायादोंमें न बाँटे। माता पिता अपनी जो वस्तु जिसे दे दें, वह उसीका धन होगा। यदि पिताके मरनेपर पुत्रगण पैतृक धनका विभाजन करें तो माता भी पुत्रोंके समान भागकी अधिकारिणी होती है। विभाजनके समय जिन भाइयोंके विवाह आदि संस्कार न हुए हों, उनके संस्कार वे भाई, जिनके संस्कार पहले हो चुके हैं, उपर्युक्त धनसे करें।

---

१ पिताके द्वारा स्वयं उपार्जित किया हुआ जो धन है उसका बँटवारा वह अपनी रुचिके अनुसार कर सकता है। जिस पुत्रपर अधिक संतुष्ट हो उसे वह अधिक दे सकता है और जिसके व्यवहारसे उसको संतोष न हो, उसे कम भी दे सकता है। परंतु जो पिता पितामहोंकी परम्परासे आया हुआ धन है, उसमें विषम विभाजन नहीं चल सकता। उसमें वह सब पुत्रोंको समांशभागी ही बनावे।

२ यद्यपि शास्त्रोंमें पैतृकधनका विषम-विभाजन भी मिलता है, तथापि वह ईर्ष्या और कलहका मूल होनेके कारण लोक-विदिष्ट है अतः व्यवहारमें लानेयोग्य नहीं है इसलिये सम-विभाजन ही सर्वसम्मत है।

३ माताका ऋण भी पुत्र ही मातृधनसे चुका दें पुत्रियाँ नहीं। ऋण चुकानेसे अवशिष्ट धन पुत्रियोंमें बँट जाना चाहिये।

पुत्र न हो तो वह स्वयं ही उस संसृष्टीके अंशको ले ले, असहोदर भाई संसृष्टी होनेपर भी उसे नहीं ले सकता। अन्य माताके पेटसे पैदा हुआ सौतेला भाई भी यदि संसृष्टी हो तो वह संसृष्टी भ्राताके धनको ले सकता है। यदि वह असंसृष्टी है तो उस धनको नहीं ले सकता। अथवा असंसृष्टी भी उस संसृष्टीके धनको ले सकता है, जबकि वह संसृष्टी उस असंसृष्टीका सहोदर भाई रहा हो ॥ २४–२६ ॥

नपुंसक, पतित, उसका पुत्र, पङ्गु, उन्मत्त, जड, अन्ध, असाध्य रोगसे ग्रस्त और आश्रमान्तरमें गये हुए पुरुष केवल भरण-पोषण पानेके योग्य हैं। इन्हें हिस्सा बँटानेका अधिकार नहीं है। इन लोगोंके औरस एवं क्षेत्रज पुत्र क्लीबत्व आदि दोषोंसे रहित होनेपर भाग लेनेके अधिकारी होंगे। इनकी पुत्रियोंका भी तबतक भरण-पोषण करना चाहिये, जबतक कि वे पतिके अधीन न कर दी जायँ। इन क्लीब, पतित आदिकी पुत्रहीन सदाचारिणी स्त्रियोंका भी भरण-पोषण करना चाहिये। यदि वे व्यभिचारिणी या प्रतिकूल आचरण करनेवाली हों तो उनको घरसे निर्वासित कर देना चाहिये ॥ २७–२९ ॥

स्त्रीधन

जो पिता-माता, पति और भाईने दिया हो, जो विवाहकालमें अग्निके समीप मामा आदिकी ओरसे मिला हो तथा जो आधिवेदनिक[1] आदि धन हो, वह 'स्त्रीधन' कहा गया है। जिसे कन्याकी माताके बन्धु-बान्धवोंने दिया हो, जिसे पिताके बन्धु-बान्धवोंने दिया हो तथा जो वर-पक्षकी ओरसे कन्याके लिये शुल्करूपमें मिला हो एवं विवाहके पश्चात् पतिकुलसे जो वधूको भेंट मिला हो, वह सब 'स्त्रीधन' कहा गया है। यदि स्त्री संतानहीना हो—जिसके बेटी, दौहित्री, दौहित्र, पुत्र और पौत्र कोई भी न हों, ऐसी स्त्री यदि दिवंगत हो जाय तो उसके पति आदि बान्धवजन उसका धन ले सकते हैं। ब्राह्म, दैव, आर्ष और प्राजापत्य—इन चार प्रकारके विवाहोंकी विधिसे विवाहित स्त्रियोंके निस्संतान मर जानेपर उनका धन पतिको प्राप्त होता है। यदि वे संतानवती रही हों तो उनका धन उनकी पुत्रियोंको प्राप्त होता है और शेष चार गान्धर्व, आसुर, राक्षस तथा पैशाच विवाहकी विधिसे विवाहित होकर मरी हुई संतानहीना स्त्रियोंका धन उनके पिताको प्राप्त होता है ॥ ३०–३२ ॥

जो कन्याका वाग्दान करके कन्यादान नहीं करता, वह राजाके द्वारा दण्डनीय होता है तथा वाग्दानके निमित्त वरने अपने सम्बन्धियों और कन्या-सम्बन्धियोंके स्वागत सत्कारमें जो धन खर्च किया हो, वह सब सूदसहित कन्यादाता वरको लौटावे। यदि वाग्दत्ता कन्याकी मृत्यु हो जाय, तो वर अपने और कन्यापक्ष दोनोंके व्ययका परिशोधन करके जो अवशिष्ट व्यय हो, वही कन्यादातासे ले। दुर्भिक्षमें, धर्मकार्यमें, रोग या बन्धनसे मुक्ति पानेके लिये यदि पति दूसरा कोई धन प्राप्त न होनेपर स्त्रीधनको ग्रहण करे, तो पुनः उसे लौटानेको बाध्य नहीं है। जिस स्त्रीको श्वशुर अथवा पतिसे स्त्रीधन न प्राप्त हुआ हो, उस स्त्रीके रहते हुए दूसरा विवाह करनेपर पति 'आधिवेदनिक'के समान धन दे। अर्थात् 'अधिवेदन' (द्वितीय विवाह) में जितना धन खर्च होता हो, उतना ही धन उसे भी दिया जाय। यदि उसे पति और श्वशुरकी ओरसे स्त्रीधन प्राप्त हुआ हो, तब आधिवेदनिक धनका आधा भाग ही दिया जाय। विभागका अपलाप होनेपर यदि संदेह उपस्थित हो तो कुटुम्बीजनों, पिताके बन्धु-बान्धवों, माताके बन्धु-बान्धवों, पूर्वोक्त लक्षणवाले साक्षियों तथा अभिलेख—विभागपत्रके सहयोगसे विभागका निर्णय जानना चाहिये। इसी प्रकार यौतक (दहेजमें मिले हुए धन) तथा पृथक् किये गये गृह और क्षेत्र आदिके आधारपर भी विभागका निर्णय जाना जा सकता है ॥ ३३–३६ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'दाय विभागका कथन' नामक दो सौ छप्पनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २५६ ॥

---

१. जिसके विवाहके बाद पति दूसरा विवाह करे, वह स्त्री 'अधिविन्ना' कहलाती है। ऐसे विवाहके लिये उससे आज्ञा ली जाती है और इस आज्ञाके निमित्त उसको जो धन दिया जाता है वह अधिवेदन-निमित्तक होनेके कारण 'आधिवेदनिक' कहा गया है।

अविवाहिता बहिनोंके भी विवाह संस्कार सब भाई अपने भागका चतुर्थांश देकर करें। ब्राह्मणसे ब्राह्मणी आदि विभिन्न वर्णोंकी स्त्रियोंमें उत्पन्न हुए पुत्र वर्णक्रमसे चार, तीन, दो और एक भाग प्राप्त करें। इसी प्रकार क्षत्रियसे क्षत्रिया आदिमें उत्पन्न तीन, दो एवं एक भाग और वैश्यसे वैश्यजातीय एवं शूद्रजातीय स्त्रीमें उत्पन्न पुत्र क्रमशः दो और एक अंशके अधिकारी होते हैं। धनविभागके पश्चात् जो धन भाइयोंद्वारा एक-दूसरेसे अपहृत किया गया दृष्टिगोचर हो, उस सब भाई पुनः समान अंशोंमें विभाजित कर लें, यह शास्त्रीय मर्यादा है। पुत्रहीन पुरुषके द्वारा दूसरेके क्षेत्रमें नियोगकी विधिसे उत्पन्न पुत्र धर्मके अनुसार दोनों पिताओंके धन और पिण्डदानका अधिकारी है॥ ६—१४॥

अपने समान वर्णकी स्त्री जब धर्मविवाहके अनुसार ब्याहकर लायी जाती है तो उसे 'धर्मपत्नी' कहते हैं। अपनी धर्मपत्नीसे स्वकीय वीर्यद्वारा उत्पादित पुत्र 'औरस' कहलाता है। यह सब पुत्रोंमें मुख्य है। दूसरा 'पुत्रिकापुत्र' है। यह भी औरसके ही समान है। अपनी स्त्रीके गर्भसे किसी सगोत्र या सपिण्ड पुरुषके द्वारा अथवा देवरके द्वारा उत्पन्न पुत्र 'क्षेत्रज' कहलाता है। पतिके घरमें छिपे तौरपर जो सजातीय पुरुषसे उत्पन्न होता है, वह 'गूढज' माना गया है। अविवाहिता कन्यासे उत्पन्न पुत्र 'कानीन' कहलाता है। वह नानाका पुत्र माना गया है। जो अक्षतयोनि अथवा क्षतयोनिकी विधवासे सजातीय पुरुषद्वारा उत्पन्न पुत्र है, उसको 'पौनर्भव' कहते हैं। जिसे माता अथवा पिता किसीको गोद दे दें, वह 'दत्तक' पुत्र कहा गया है। जिसे किसी माता पिताने खरीदा और दूसरे माता पिताने बेचा हो, वह 'क्रीत पुत्र' माना गया है। किसीको स्वयं धन आदिका लोभ देकर पुत्र बनाया गया हो तो वह 'कृत्रिम' कहा गया है। जो माता पिताके रहित बालक 'मुझे अपना पुत्र बना लें'—ऐसा कहकर स्वयं आत्मसमर्पण करता है, वह 'दत्तात्मा' पुत्र है। जो विवाहसे पूर्व ही गर्भमें आ गया और गर्भवतीके विवाह होनेपर उसके साथ परिणीत हो गया, वह 'सहोढज' पुत्र माना गया है। जिसे माता पिताने त्याग दिया हो, वह समान वर्णका पुत्र यदि किसीने ले लिया तो वह उसका 'अपविद्ध पुत्र' माना गया है। ये जो पूर्वकथित बारह पुत्र हैं, इनमेंसे पूर्व पूर्वके अभावमें उत्तर-उत्तर पिण्डदाता और धनांशभागी होता है। मैंने सजातीय पुत्रोंमें धन विभागकी यह विधि बतलायी है॥ १५—१९½॥

शूद्रके धनविभागकी विशेष विधि—

शूद्रद्वारा दासीमें उत्पन्न पुत्र भी पिताकी इच्छासे धनमें भाग प्राप्त करेगा। पिताकी मृत्युके पश्चात् शूद्रकी विवाहिता पत्नीसे उत्पन्न पुत्र अपने पिताके दासीपुत्रको भी भाईकी हैसियतसे आधा भाग दे। यदि शूद्रकी परिणीतासे कोई पुत्र न हो तो यह भ्रातृहीन दासीपुत्र पूरे धनपर अधिकार कर ले, (परंतु यह तभी सम्भव है, जब उसकी परिणीताकी पुत्रियोंके पुत्र न हों। उनके होनेपर तो वह आधा भाग ही पा सकता है।) जिसके पूर्वोक्त बारह प्रकारके पुत्रोंमेंसे कोई नहीं है, ऐसा पुत्रहीन पुरुष यदि स्वर्गवासी हो जाय तो उसके धनके भागी क्रमशः पत्नी, पुत्रियाँ, माता पिता, सहोदर भाई, असहोदर भाई, भ्रातृपुत्र, गोत्रज (सपिण्ड या समानोदक) पुरुष, बन्धु-बान्धव[4] (आचार्य), शिष्य तथा सजातीय सहपाठी होते हैं—इनमें पूर्व-पूर्वके अभावमें उत्तरोत्तर धनके भागी होते हैं। सब वर्णोंके लिये धनके विभाजनकी यही विधि शास्त्रविहित है॥ २०—२३॥

वानप्रस्थ, संन्यासी और नैष्ठिक ब्रह्मचारियोंके धनके अधिकारी क्रमशः एक आश्रममें रहनेवाला धर्मभ्राता, श्रेष्ठ शिष्य और आचार्य होते हैं।[5] बँटे हुए धनको फिर मिला दिया जाय तो वह 'संसृष्ट' कहलाता है। ऐसा संसृष्ट धन जिन लोगोंके पास है, वे सभी 'संसृष्टी' कहे गये हैं। संसृष्टका सम्बन्ध जिस किसीके साथ नहीं हो सकता, किंतु पिता, भाई अथवा पितृव्य (चाचा) के साथ ही हो सकता है। यदि कोई संसृष्टी मर जाय तो उसके हिस्सेका धन दूसरा संसृष्टी पुरुष मृत-संसृष्टीकी मृत्युके बाद उसकी भार्यासे उत्पन्न हुए पुत्रको दे दे। पुत्र न हो तो वह संसृष्टी स्वयं ही ले ले। पत्नी आदिको यह धन नहीं मिल सकता। यदि सहोदर संसृष्टी मर जाय तो दूसरा सहोदर संसृष्टी उसकी मृत्युके पश्चात् पैदा हुए पुत्रको उसका अंश दे दे। यदि

---

४ बन्धु-बान्धव तीन प्रकारके हैं—अपने बन्धु-बान्धव, पिताके बन्धु-बान्धव तथा माताके बन्धु-बान्धव। इनमें यही क्रम अभीष्ट है। अर्थात् पूर्वके अभावमें उत्तरोत्तर धनके भागी होते हैं।

५ यहाँ श्लोकमें आचार्य, शिष्य और धर्मभ्राता—इस क्रमसे उल्लेख है परंतु मिताक्षराकारने यह निर्णय दिया है कि यहाँ विपरीतक्रम लेना चाहिये।

पुत्र न हो तो वह स्वयं ही उस संसृष्टीके अंशको ले ले, असहोदर भाई संसृष्टी होनेपर भी उसे नहीं ले सकता। अन्य माताके पेटसे पैदा हुआ सौतेला भाई भी यदि संसृष्टी हो तो वह संसृष्टी भ्राताके धनको ले सकता है। यदि वह असंसृष्टी है तो उस धनको नहीं ले सकता। अथवा असंसृष्टी भी उस संसृष्टीके धनको ले सकता है, जबकि वह संसृष्टी उस असंसृष्टीका सहोदर भाई रहा हो ॥ २४-२६ ॥

नपुंसक, पतित, उसका पुत्र, पङ्गु, उन्मत्त, जड, अन्ध, असाध्य रोगसे ग्रस्त और आश्रमान्तरमें गये हुए पुरुष केवल भरण-पोषण पानेके योग्य हैं। इन्हें हिस्सा बँटानेका अधिकार नहीं है। इन लोगोंके औरस एवं क्षेत्रज पुत्र क्लीवत्व आदि दोषोंसे रहित होनेपर भाग लेनेके अधिकारी होंगे। इनकी पुत्रियोंका भी तबतक भरण-पोषण करना चाहिये, जबतक कि वे पतिके अधीन न कर दी जायँ। इन क्लीब, पतित आदिकी पुत्रहीन सदाचारिणी स्त्रियोंका भी भरण-पोषण करना चाहिये। यदि वे व्यभिचारिणी या प्रतिकूल आचरण करनेवाली हों तो उनको घरसे निर्वासित कर देना चाहिये ॥ २७-२९ ॥

स्त्रीधन

जो पिता, माता, पति और भाईने दिया हो, जो विवाहकालमें अग्निके समीप मामा आदिकी ओरसे मिला हो तथा जो आधिवेदनिक[1] आदि धन हो, वह 'स्त्रीधन' कहा गया है। जिसे कन्याकी माताके बन्धु-बान्धवोंने दिया हो, जिसे पिताके बन्धु-बान्धवोंने दिया हो तथा जो वर-पक्षकी ओरसे कन्याके लिये शुल्करूपमें मिला हो एवं विवाहके पश्चात् पतिकुलसे जो वधूको भेंट मिली हो, वह सब 'स्त्रीधन' कहा गया है। यदि स्त्री संतानहीना हो—जिसके बेटी, दौहित्री, दौहित्र, पुत्र और पौत्र कोई भी न हों, ऐसी स्त्री यदि दिवंगत हो जाय तो उसके पति आदि बान्धवजन उसका धन ले सकते हैं। ब्राह्म, दैव, आर्ष और प्राजापत्य—इन चार प्रकारके विवाहोंकी विधिसे विवाहित स्त्रियोंके निस्संतान मर जानेपर उनका धन पतिको प्राप्त होता है। यदि वे संतानवती रही हों तो उनका धन उनकी पुत्रियोंको प्राप्त होता है और शेष चार गान्धर्व, आसुर, राक्षस तथा पैशाच विवाहकी विधिसे विवाहित होकर मरी हुई संतानहीना स्त्रियोंका धन उनके पिताको प्राप्त होता है ॥ ३०-३२ ॥

जो कन्याका वाग्दान करके कन्यादान नहीं करता, वह राजाके द्वारा दण्डनीय होता है तथा वाग्दानके निमित्त वरने अपने सम्बन्धियों और कन्या-सम्बन्धियोंके स्वागत सत्कारमें जो धन खर्च किया हो, वह सब सूदसहित कन्यादाता वरको लौटावे। यदि वाग्दत्ता कन्याकी मृत्यु हो जाय, तो वर अपने और कन्यापक्ष दोनोंके व्ययका परिशोधन करके जो अवशिष्ट व्यय हो, वही कन्यादातासे ले। दुर्भिक्षमें, धर्मकार्यमें, रोग या बन्धनसे मुक्ति पानेके लिये यदि पति दूसरा कोई धन प्राप्त न होनेपर स्त्रीधनको ग्रहण करे, तो पुनः उसे लौटानेको बाध्य नहीं है। जिस स्त्रीको श्वशुर अथवा पतिसे स्त्रीधन न प्राप्त हुआ हो, उस स्त्रीके रहते हुए दूसरा विवाह करनेपर पति 'आधिवेदनिक'के समान धन दे। अर्थात् 'अधिवेदन' (द्वितीय विवाह) में जितना धन खर्च होता हो, उतना ही धन उसे भी दिया जाय। यदि उसे पति और श्वशुरकी ओरसे स्त्रीधन प्राप्त हुआ हो, तब आधिवेदनिक धनका आधा भाग ही दिया जाय। विभागका अपलाप होनेपर यदि संदेह उपस्थित हो तो कुटुम्बीजनों, पिताके बन्धु-बान्धवों, माताके बन्धु-बान्धवों, पूर्वोक्त लक्षणवाले साक्षियों तथा अभिलेख—विभागपत्रके सहयोगसे विभागका निर्णय जानना चाहिये। इसी प्रकार यौतक (दहेजमें मिले हुए धन) तथा पृथक् किये गये गृह और क्षेत्र आदिके आधारपर भी विभागका निर्णय जाना जा सकता है ॥ ३३-३६ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'दाय-विभागका कथन' नामक दो सौ छप्पनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २५६ ॥

---

१ जिसके विवाहके बाद पति दूसरा विवाह करे, वह स्त्री 'अधिविन्ना' कहलाती है। ऐसे विवाहके लिये उसकी आज्ञा ली जाती है और इस आज्ञाके निमित्त उसको जो धन दिया जाता है, वह 'अधिवेदन-निमित्तक' होनेके कारण 'आधिवेदनिक' कहा गया है।

दो सौ सत्तावनवाँ अध्याय

सीमा विवाद, स्वामिपाल विवाद, अस्वामिविक्रय, दत्ताप्रदानिक, क्रीतानुशय, अभ्युपेत्याशुश्रूषा, संविद्व्यतिक्रम, वेतनादान तथा द्यूतसमाह्वयका विचार

सीमा विवाद

दो गाँवोंमें सम्बन्ध रखनेवाले खेतकी सीमाके विषयमें विवाद उपस्थित होनेपर तथा एक ग्रामके अन्तर्वर्ती खेतकी सीमाका झगड़ा खड़ा होनेपर सामन्त (गाँव और उस खेतसे सटकर रहनेवाले), स्थविर (वृद्ध) आदि, गोप (गायके चरवाहे), सीमावर्ती किसान तथा समस्त वनचारी मनुष्य—ये सब लोग पूर्वकृत स्थल (ऊँची भूमि) कोयले, धानकी भूसी तथा बरगद आदिके वृक्षोंद्वारा सीमाका निश्चय करें। वह सीमा कैसी हो, इस प्रश्नके उत्तरमें कहते हैं—वह सीमा सेतु (पुल), वल्मीक (बाँबी), चैत्य (पत्थरके चबूतरे या देवस्थान), बाँस और बालू आदिसे उपलक्षित होनी चाहिये ॥ १२ ॥

सामन्त अथवा निकटवर्ती ग्रामवाले चार, आठ अथवा दस मनुष्य लाल फूलोंकी माला और लाल वस्त्र धारण करके सिरपर मिट्टी रखकर सीमाका निर्णय करें। सीमा विवादमें सामन्तोंके असत्य भाषण करनेपर राजा सबको अलग-अलग मध्यम साहसका दण्ड दे। सीमाका ज्ञान करानेवाले चिह्नोंके अभावमें राजा ही सीमाका प्रवर्तक होता है। आराम (बाग), आयतन (मन्दिर या खलिहान), ग्राम, वापी या कूप, उद्यान (क्रीडावन), गृह और वर्षाके जलका प्रवाहित करनेवाले नाले आदिकी सीमाके निर्णयमें भी यही विधि जाननी चाहिये। मर्यादाका भेदन, सीमाका उल्लङ्घन एवं क्षेत्रका अपहरण करनेपर राजा क्रमशः अधम, उत्तम और मध्यम साहसका दण्ड दे। यदि सार्वजनिक सेतु (पुल या बाँध) और छोटे खेतमें अधिक जलवाला कुआँ बनाया जा रहा हो तथा वह दूसरेकी कुछ भूमि अपनी सीमामें ले रहा हो, परंतु उससे हानि तो बहुत कम हो और बहुत-से लोगोंकी अधिक भलाई हो रही हो तो उसके निर्माणमें रुकावट नहीं डालनी चाहिये। जो क्षेत्रके स्वामीको सूचना दिये बिना उसके क्षेत्रमें सेतुका निर्माण करता है, वह उस सेतुसे प्राप्त फलका उपभोग स्वयं

१ सीमा कहते हैं—क्षेत्र आदिकी मर्यादाको। वह चार प्रकारकी होती है—जनपद-सीमा, ग्राम-सीमा, क्षेत्र-सीमा और गृह-सीमा। वह यथासम्भव पाँच लक्षणोंसे युक्त होती है, जैसा कि नारदजीने बताया है—'ध्वजिनी' 'मत्स्यिनी' 'नैधानी', 'भयवर्जिता' तथा 'राजशासननीता'। इनमेंसे जो सीमा वृक्ष आदिसे लक्षित या प्रकाशित हो वह 'ध्वजिनी' कही गयी है। मत्स्य शब्द जलका उपलक्षण है। अतः 'मत्स्यिनी'का अर्थ है—जलवाली। वहाँ जलसे वह सीमा उपलक्षित होती है। 'नैधानी' कहते हैं—धानकी भूसी या कोयले आदि गाड़कर निश्चित की हुई सीमाको। 'भयवर्जिता' वह सीमा है जिसे अर्थी और प्रत्यर्थी दोनोंने मिलकर अपनी स्वीकृतिसे निर्धारित किया हो। यदि सीमाका ज्ञापक कोई चिह्न न हो वहाँ राजाकी इच्छासे जो सीमा निर्मित होती है उसको 'राजशासननीता' कहते हैं। भूमि-सम्बन्धी विवादके छः हेतु हैं। आधिक्य, न्यूनता, अंशका होना, न होना, अभोग भुक्ति तथा मर्यादा—ये भूमि-विवादके छः कारण हैं ऐसा कात्यायनका मत है। जैसे एक कहता है कि मेरी भूमि यहाँ पाँच हाथसे अधिक है तो दूसरा कहता है 'अधिक नहीं है'—यह 'आधिक्य'को लेकर विवाद हुआ। इसी तरह यदि एक कहे, 'मेरी भूमि यहाँ तीन हाथ है' और दूसरा कहे कि 'नहीं तीन हाथसे कम है' तो यह 'न्यूनता'को लेकर विवाद हुआ। एक कहता है 'मेरे हिस्सेमें इतनी भूमि है' और दूसरा कहता है 'यहाँ तुम्हारा हिस्सा ही नहीं है' तो यह अंशविषयक अस्तित्व और नास्तित्वको लेकर विवाद हुआ। एकका कथन है कि 'यह मेरी भूमि है, पहले तुम्हारे उपभोगमें कभी नहीं रही। इस समय तुम बलपूर्वक इसे अपने उपभोगमें ला रहे हो।' दूसरा कहता है 'नहीं हमारे या चिरकालसे यह भूमि मेरे अधिकारमें है'—यह 'अभोगभुक्ति' विषयक विवाद हुआ। एक कहता है 'यह सीमा है' और दूसरा कहता है 'नहीं यह है' तो यह सीमाविषयक विवाद हुआ।

२ सीमाके परिचायक चिह्न दो प्रकारके होने चाहिये—'प्रकाश' और 'अप्रकाश'। बरगद, पीपल, पलाश, सेमल, साखू, ताड़ दूधवाले वृक्ष गुल्म, बेणु, शमी और लताबेलोंसे युक्त स्थल—ये सब 'प्रकाश चिह्न' हैं। पोखरे, कुएँ, बावली, झरने और देवमन्दिर आदि भी प्रकाश-चिह्नके ही अन्तर्गत हैं। सीमा जाननेके लिये कुछ छिपे हुए चिह्न भी होने चाहिये। यथा—पत्थर, हड्डी, गौके बाल, धानकी भूसी, राख, खपड़ी, सूखा गोबर, ईंट, कोयला, कंकड़ और बालू—ये भूमिमें गाड़ दिये जायँ।

नहीं कर सकता, क्षेत्रका स्वामी ही उसके फलका भोगी भागी होगा और उसके अभावमें राजाका उसपर अधिकार होगा। जो कृषक किसीके खेतमें एक बार हल चलाकर भी उसमें स्वयं खेती न करे और दूसरेसे भी न कराये, राजा उससे क्षेत्रस्वामीको कृषिका सम्भावित फल दिलाये और खेतको दूसरे किसानसे जुतवाये ॥ ३–९ ॥

स्वामिपाल विवाद

[अब गाय भैंस या भेड़ बकरी चरानेवाले चरवाहे जब किसीके खेत चरा दें तो उन्हें किस प्रकार दण्ड देना चाहिये—इसका विचार किया जाता है—] राजा दूसरेके खेतकी फसलको नष्ट करनेवाली भैंसपर आठ माष (पणका बीसवाँ भाग) दण्ड लगाये। गौपर उससे आधा और भेड़-बकरीपर उससे भी आधा दण्ड लगाये। यदि भैंस आदि पशु खेत चरकर वहीं बैठ जायँ, तो उनपर पूर्वकथितसे दूना दण्ड लगाना चाहिये। जिसमें अधिक मात्रामें तृण और काष्ठ उपजता है, ऐसा भूप्रदेश जब स्वामीसे लेकर उसे सुरक्षित रक्खा जाता है तो उसे 'विवीत' (रक्षित या रखात) कहते हैं। उस रखातको भी हानि पहुँचानेपर इन भैंस आदि पशुओंपर अन्य खेतोंके समान ही दण्ड समझे। इसी अपराधमें गदहे और ऊँटोंपर भी भैंसके समान ही दण्ड लगाना चाहिये। जिस खेतमें जितनी फसल पशुओंके द्वारा नष्ट की जाय, उसका सामन्त आदिके द्वारा अनुमानित फल गो-स्वामीको क्षेत्रस्वामीके लिये दण्डके रूपमें देना चाहिये और चरवाहोंको तो केवल शारीरिक दण्ड देना (कुछ पीट देना चाहिये)। यदि गो-स्वामीने स्वयं चराया हो तो उससे पूर्वोक्त दण्ड ही वसूल करना चाहिये, ताड़ना नहीं देनी चाहिये। यदि खेत रास्तेपर हो, गाँवके समीप हो अथवा ग्रामके 'विवीत' (सुरक्षित) भूमिके निकट हो और वहाँ चरवाहे अथवा गो-स्वामीकी इच्छा न होनेपर भी अनजानेमें पशुओंने चर लिया अथवा फसलको हानि पहुँचा दी तो उसमें गो-स्वामी तथा चरवाहा—दोनोंमेंसे किसीका दोष नहीं माना जाता, अर्थात् उसके लिये दण्ड नहीं लगाना चाहिये; किंतु यदि स्वेच्छासे जान बूझकर खेत चराया जाय तो चरानेवाला और गो-स्वामी दोनों चोरकी भाँति दण्ड पानेके अधिकारी हैं। साँड़, वृषोत्सर्गकी विधिसे या देवी-देवताको चढ़ाकर छोड़े गये पशु, दस दिनके भीतरकी ब्यायी हुई गाय तथा अपने यूथसे बिछुड़कर दूसरे स्थानपर आया हुआ पशु—ये दूसरेकी फसल चर लें तो भी दण्डनीय नहीं हैं, छोड़ देने योग्य हैं। जिसका कोई चरवाहा न हो, ऐसे दैवोपहत तथा राजोपहत पशु भी छोड़ ही देने योग्य हैं। गोप (चरवाहा) प्रातःकाल गौओंको स्वामीके सँभलाये हुए पशु सायंकाल उसी प्रकार लाकर स्वामीको सौंप दे। वेतन भोगी ग्वालेके प्रमादसे मृत अथवा खोये हुए पशु राजा उससे पशु-स्वामीको दिलाये। गोपालकके दोषसे पशुओंका विनाश होनेपर उसके ऊपर साढ़े तेरह पण दण्ड लगाया जाय और वह स्वामीको नष्ट हुए पशुका मूल्य भी दे। ग्रामवासियोंकी इच्छासे अथवा राजाकी आज्ञाके अनुसार गोचारणके लिये भूमि छोड़ दे, उसे जोते-बोये नहीं। ब्राह्मण सदा, सभी स्थानोंसे तृण, काष्ठ और पुष्प ग्रहण कर सकता है। ग्राम और क्षेत्रका अन्तर सौ धनुषके प्रमाणका हो, अर्थात् गाँवके चारों ओर सौ सौ धनुष भूमि परती छोड़ दी जाय और उसके बादकी भूमिपर ही खेती की जाय। खर्वट (बड़े गाँव) और क्षेत्रका अन्तर दो सौ धनुष एवं नगर तथा क्षेत्रका अन्तर चार सौ धनुष होना चाहिये ॥ १०–१८ ॥

अस्वामिविक्रय

[अब अस्वामिविक्रय नामक व्यवहारपदपर विचार आरम्भ करते हैं—नारदजीने 'अस्वामिविक्रय'का लक्षण इस प्रकार बताया है—

निक्षिप्तं वा परद्रव्यं नष्टं लब्ध्वापहृत्य वा।
विक्रीयतेऽसमक्षं यत् स ज्ञेयोऽस्वामिविक्रयः ॥

अर्थात् धरोहरके तौरपर रक्खे हुए पराये द्रव्यको खोया हुआ पाकर अथवा स्वयं चुराकर जो स्वामी के परोक्षमें बेच दिया जाता है, वह 'अस्वामिविक्रय' कहलाता है।' द्रव्यका स्वामी अपनी वस्तु दूसरेके द्वारा बेची हुई यदि किसी खरीददारके पास देखे तो उसे अवश्य पकड़े—अपने अधिकारमें ले ले। यहाँ 'विक्रीत' शब्द 'दत्त' और 'आहित'का भी उपलक्षण है। अर्थात् यदि कोई दूसरेकी रक्खी हुई वस्तु उसे बताये बिना दूसरेके यहाँ रख दे या दूसरेको दे दे तो उसपर यदि स्वामीकी दृष्टि पड़ जाय तो स्वामी उस वस्तुको हठात् ले ले या अपने अधिकारमें कर ले, क्योंकि उस वस्तु से उसका स्वामित्व निवृत्त नहीं हुआ। यदि खरीददार उस वस्तुको खरीदकर छिपाये रक्खे, किसीपर प्रकट न करे तो उसका अपराध माना जाता है। तथा जो हीन पुरुष है, अर्थात् उस द्रव्यकी प्राप्तिके उपायसे रहित है, उससे एकान्तमें कम मूल्यमें और असमयमें (रात्रि आदिमें) उस वस्तुको खरीदनेवाला मनुष्य चोर होता है, अर्थात् चोरके समान दण्डनीय

होता है। अपनी खोयी हुई या चोरीमें गयी हुई वस्तु जिसके पास देखे, उसे स्थानपाल आदि राजकर्मचारीसे पकड़वा दे। यदि उस स्थान अथवा समयमें राजकर्मचारी न मिले तो चोरको स्वयं पकड़कर राजकर्मचारीको सौंप दे। यदि खरीददार यह कहे कि 'मैंने चोरी नहीं की है, अमुकसे खरीदी है', तो वह बेचनेवालेको पकड़वा देनेपर शुद्ध (अभियोगसे मुक्त) हो जाता है। जो नष्ट या अपहृत वस्तुका विक्रेता है, उसके पाससे द्रव्यका स्वामी द्रव्य, राजा अर्थदण्ड और खरीदनेवाला अपना दिया हुआ मूल्य पाता है। वस्तुका स्वामी लेख्य आदि आगम या उपभोगका प्रमाण देकर खोयी हुई वस्तुको अपनी सिद्ध करे। सिद्ध न करनेपर राजा उससे वस्तुका पञ्चमांश दण्डके रूपमें ग्रहण करे। जो मनुष्य अपनी खोयी हुई अथवा चुरायी गयी वस्तुको राजाको बिना बतलाये दूसरेसे ले ले, राजा उसपर छानवे पणका अर्थदण्ड लगावे। शौल्किक (शुल्कके अधिकारी) या स्थानपाल (स्थानरक्षक) जिस खोये अथवा चुराये गये द्रव्यको राजाके पास लायें, उस द्रव्यको एक वर्षसे पूर्व ही वस्तुका स्वामी प्रमाण देकर प्राप्त कर ले, एक वर्षके बाद राजा स्वयं उसे ले ले। घोड़े आदि एक खुरवाले पशु खोनेके बाद मिलें, तो स्वामी उनकी रक्षाके निमित्त चार पण राजाको दे। मनुष्यजातीय द्रव्यके मिलनेपर पाँच पण; भैंस, ऊँट और गौके प्राप्त होनेपर दो दो पण तथा भेड़-बकरीके मिलनेपर पणका चतुर्थांश राजाको अर्पित करे ॥ १९–२५ ॥

दत्ताप्रदानिक

['दत्ताप्रदानिक'का स्वरूप नारदने इस प्रकार बताया है "जो असम्यग्रूपसे (अयोग्य मार्गका आश्रय लेकर) कोई द्रव्य देनेके पश्चात् फिर उसे लेना चाहता है, उसे 'दत्ताप्रदानिक' नामक व्यवहारपद कहा जाता है।" इस प्रकरणमें इसीपर विचार किया जाता है।]

कुटुम्बका उपरोध न करते हुए ही अपनी वस्तुका दान करे। अर्थात् कुटुम्बके भरण-पोषणसे बचा हुआ धन ही देने योग्य है। स्त्री और पुत्र किसीको न दे। अपना वंश होनेपर किसीको सर्वस्वका दान न करे। जिस वस्तुको दूसरेको देनेके लिये प्रतिज्ञा कर ली गयी हो, वह वस्तु उसीको दे, दूसरेको न दे। प्रतिग्रह प्रकटरूपसे ग्रहण करे। विशेषतः स्थावर भूमि, ग्राम आदिका प्रतिग्रह तो सबके सामने ही ग्रहण करना चाहिये। जो वस्तु जिस धर्मार्थ देनेकी प्रतिज्ञा की गयी हो, वह उसे अवश्य दे दे और दी हुई वस्तुका कदापि फिर अपहरण न करे—उसे वापस न ले ॥ २६-२७ ॥

क्रीतानुशय

[अब 'क्रीतानुशय' बताया जाता है। इसका स्वरूप नारदजीने इस प्रकार कहा है—"जो खरीददार मूल्य देकर किसी पण्य वस्तुको खरीदनेके बाद उसे अधिक महत्त्वकी वस्तु नहीं मानता है, अतः उसे लौटाना चाहता है तो यह मामला 'क्रीतानुशय' नामक विवादपद कहलाता है। ऐसी वस्तुको जिस दिन खरीदा जाय, उसी दिन अविकृतरूपसे मालधनीको लौटा दिया जाय। यदि दूसरे दिन लौटावे तो क्रेता मूल्यसे $\frac{1}{30}$ वाँ भाग छोड़ दे। यदि तीसरे दिन लौटावे तो $\frac{1}{15}$ वाँ भाग छोड़ दे। इसके बाद वह वस्तु खरीददारकी ही हो जाती है, वह उसे लौटा नहीं सकता।"] अब बीज आदिके विषयमें बताते हैं—॥ २७½ ॥

बीजकी दस दिन, लोहेकी एक दिन, वाहनकी पाँच दिन, रत्नकी सात दिन, दासीकी एक मास, दूध देनेवाले पशुकी तीन दिन और दासकी एक पक्षतक परीक्षा होती है। सुवर्ण अग्निमें डालनेपर क्षीण नहीं होता; परंतु चाँदी प्रतिशत दो पल, राँगे और सीसेमें प्रतिशत आठ पल, ताँबेमें पाँच पल और लोहेमें दस पल कमी होती है। ऊन और रूईके स्थूल सूतसे बुने हुए कपड़ेमें सौ पलमें दस पलकी वृद्धि होती है। इसी प्रकार मध्यम सूतमें पाँच पल और सूक्ष्म सूतमें तीन पलकी वृद्धि जाननी चाहिये। कार्मिक (अनेक रङ्गके चित्रोंसे युक्त) और रोमबद्ध (किनारेपर गुच्छोंसे युक्त) वस्त्रमें तीसवाँ भाग क्षय होता है। रेशम और वल्कलके बुने हुए वस्त्रमें न तो क्षय होता है और न वृद्धि ही। उपर्युक्त द्रव्योंके नष्ट होनेपर द्रव्य-गुणज्ञ व्यक्ति देश, काल, उपयोग और नष्ट हुए वस्तुके साराासारकी परीक्षा करके जितनी हानिका निर्णय कर दें, राजा उस हानिकी क्षतिपूर्ति अवश्य पूर्ति करावे ॥ २८–३२ ॥

अभ्युपेत्याशुश्रूषा

[सेवा स्वीकार करके जो उसे नहीं करता है, उसका यह प्रकरण 'अभ्युपेत्याशुश्रूषा' नामक व्यवहारपद है।]

जो बलपूर्वक दास बनाया गया है और जो चोरोंके द्वारा चुराकर किसीके हाथ बेचा गया है—ये दोनों दासभावसे मुक्त हो सकते हैं। यदि स्वामी इन्हें न छोड़े तो राजा अपनी शक्तिसे इन्हें दासभावसे छुटकारा दिलाये। जो स्वामीको प्राणसंकटसे बचा दे, वह भी दासभावसे मुक्त कर देनेयोग्य

। जो स्वामीसे भरण-पोषण पाकर उसका दास्य स्वीकार रके कार्य कर रहा है, वह भरण-पोषणमें स्वामीका जितना न खर्च करा चुका है, उतना धन वापस कर दे तो दास ासे छुटकारा पा जाता है। जितना धन लेकर स्वामीने किसीको किसी धनीके पास बन्धक रख दिया है, अथवा जितना न देकर किसी धनीने किसी ऋणग्राहीको ऋणदातासे ुड़ाया है, उतना धन सूदसहित वापस कर देनेपर आहित ास भी दासत्वसे छुटकारा पा सकता है। प्रव्रज्यावसित सन्यासभ्रष्ट अथवा आरूढपतित) मनुष्य यदि इसका प्रायश्चित्त न कर ले तो मरणपर्यन्त राजाका दास होता है। चारों वर्ण अनुलोमक्रमसे ही दास हो सकते हैं, प्रतिलोमक्रमसे नहीं। विद्यार्थी विद्याग्रहणके पश्चात् गुरुके घरमें आयुर्वेदादि शिल्प शिक्षाके लिये यदि रहना चाहे तो समय निश्चित करके रहे। यदि निश्चित समयसे पहले वह शिल्प शिक्षा प्राप्त कर ले तो भी उतने समयतक वहीं अवश्य निवास करे। उन दिनों वह गुरुके घर भोजन करे और उस शिल्पसे उपार्जित धन गुरुको ही समर्पित करे ॥ ३३–३५ ॥

संविद्-व्यतिक्रम

[नियत की हुई व्यवस्थाका नाम 'समय' या 'संविद्' है। उसका उल्लङ्घन 'संविद्-व्यतिक्रम' कहलाता है। यह विवादका पद है।]

राजा अपने नगरमें भवन निर्माण कराकर उनमें वेदविद्या सम्पन्न ब्राह्मणोंको जीविका देकर बसावे और उनसे प्रार्थना करे कि 'आप यहाँ रहकर अपने धर्मका अनुष्ठान कीजिये।' ब्राह्मणोंको अपने धर्ममें बाधा न डालते हुए जो सामयिक और राजाद्वारा निर्धारित धर्म हो, उसका भी यत्नपूर्वक पालन करना चाहिये। जो मनुष्य समूह या संस्थाका द्रव्यग्रहण और मर्यादाका उल्लङ्घन करता हो, राजा उसका सर्वस्व छीनकर उसे राज्यसे निर्वासित कर दे। अपने समाजके हितैषी मनुष्योंके कथनानुसार ही सब मनुष्योंको कार्य करना चाहिये। जो मनुष्य समाजके विपरीत आचरण करे, राजा उसे प्रथम साहसका[१] दण्ड दे। समूहके कार्यकी सिद्धिके लिये राजाके पास भेजा हुआ मनुष्य राजासे जो कुछ भी मिले, वह समाजके श्रेष्ठ व्यक्तियोंको बुलाकर समर्पित कर दे। यदि वह स्वयं लाकर नहीं देता तो राजा उससे ग्यारहगुना धन दिलावे। जो वेदज्ञान-सम्पन्न, पवित्र अन्तःकरणवाले, लोभ शून्य तथा कार्यका विचार करनेमें कुशल हों, उन समूहके हितैषी मनुष्योंका वचन सबके लिये पालनीय है। 'श्रेणी' (एक व्यापारसे जीविका चलानेवाले), 'नैगम' (वेदोक्त धर्मका आचरण करनेवाले), 'पाखण्डी' (वेदविरुद्ध आचरणवाले) और 'गण' (अस्त्र शस्त्रोंसे जीविका चलानेवाले)—इन सब लोगोंके लिये भी यही विधि है। राजा इनके धर्मभेद और पूर्ववृत्तिका संरक्षण करे ॥ ३६–४२ ॥

वेतनादान

जो भृत्य वेतन लेकर काम छोड़ दे, वह स्वामीको उस वेतनसे दुगुना धन लौटाये। वेतन न लिया हो तो वेतनके समान धन उससे ले। भृत्य सदा खेती आदिके सामानकी रक्षा करे। जो वेतनका निश्चय किये बिना भृत्यसे काम लेता है, राजा उसके वाणिज्य, पशु और शस्यकी आयका दशांश भृत्यको दिलाये। जो भृत्य देश-कालका अतिक्रमण करके लाभको अन्यथा (औसतसे भी कम) कर देता है, उसे स्वामी अपने इच्छानुसार वेतन दे। परंतु औसतसे अधिक लाभ प्राप्त करानेपर भृत्यको वेतनसे अधिक दे। वेतन निश्चित करके दो मनुष्योंसे एक ही काम कराया जाय और यदि वह काम उनसे समाप्त न हो सके तो जिसने जितना काम किया हो, उसको उतना वेतन दे और यदि कार्य सिद्ध हो गया हो तो पूर्वनिश्चित वेतन दे। यदि भारवाहकसे राजा और देवता-सम्बन्धी पात्रके सिवा दूसरेका पात्र फूट जाय तो राजा भारवाहकसे पात्र दिलाये। यात्रामें विघ्न करनेवाले भृत्यपर वेतनसे दुगुना अर्थदण्ड करे। जो भृत्य यात्रारम्भके समय काम छोड़ दे, उससे वेतनका सातवाँ भाग, कुछ दूर चलकर काम छोड़ दे, उससे चतुर्थ भाग और जो मार्गके मध्यमें काम छोड़ दे, उससे पूरा वेतन राजा स्वामीको दिलावे। इसी प्रकार भृत्यका त्याग करनेवाले स्वामीसे राजा भृत्यको दिलाये ॥ ४३–४८ ॥

द्यूत-समाह्वय

[जूएमें छलसे काम लेना 'द्यूतसमाह्वय' है। प्राणिभिन्न पदार्थ—सोना, चाँदी आदिसे खेला जानेवाला जूआ 'द्यूत' कहलाता है। किंतु प्राणियोंको घुड़दौड़ आदिमें दाँवपर लगाकर खेला जाय तो उसको 'समाह्वय' कहा जाता है।] परस्परकी स्वीकृतिसे जुआरियोंद्वारा कल्पित पण (दाँव) को 'ग्लह' कहते हैं। जो जुआरियोंको खेलनेके लिये सभा भवन प्रदान करता है, वह 'सभिक' कहलाता है। 'ग्लह' या दाँवमें जो

[१] नारदस्मृतिमें कहा है कि 'प्रथम' साहसका दण्ड सौ पण 'मध्यम' साहसका दण्ड पाँच सौ पण और 'उत्तम' साहसका दण्ड एक हजार पण है।

या इससे अधिक वृद्धि (लाभ) प्राप्त करनेवाले धूर्त जुआरीसे 'सभिक' प्रतिशत पाँच पण अपने भरण-पोषणके लिये ले। फिर दूसरी बार उतनी ही वृद्धि प्राप्त करनेवाले अन्य जुआरीसे प्रतिशत दस पण ग्रहण करे। राजाके द्वारा भलीभाँति सुरक्षित द्यूतका अधिकारी सभिक राजाका निश्चित भाग उसे दे। जीता हुआ धन जीतनेवालेको दिलाय और क्षमा-परायण होकर सत्य भाषण करे। जब द्यूतका सभिक और प्रख्यात जुआरियोंका समूह राजाके समीप आय तथा राजाको उनका भाग दे दिया गया हो तो राजा जीतनेवालेको जीतका धन दिला दे, अन्यथा न दिलाय। द्यूत-व्यवहारको देखनेवाले सभासदके पदपर राजा उन जुआरियोंको ही नियुक्त करे तथा साक्षी भी द्यूतकारोंको ही बनाये। कृत्रिम पासोंसे छलपूर्वक जुआ खेलनेवाले मनुष्योंके ललाटमें चिह्न करके राजा उन्हें देशसे निर्वासित कर दे। चोरोंका पता लगानेके लिये द्यूतमें एक ही किसीको प्रधान बनावे; यही विधि 'प्राणि-द्यूत-समाह्वय' (घुड़दौड़) आदिमें भी जाननी चाहिये ॥ ४०—५१ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'सीमा-विवादादिके कथनका निर्णय' नामक दो सौ सत्तावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २५७ ॥

दो सौ अट्ठावनवाँ अध्याय

व्यवहारके वाक्पारुष्य, दण्डपारुष्य, साहस, विक्रियासम्प्रदान, सम्भूय-समुत्थान, स्तेय, स्त्री-संग्रहण तथा प्रकीर्णक—इन विवादास्पद विषयोंपर विचार

वाक्पारुष्य

[अब 'वाक्पारुष्य' (कठोर गाली देने आदि) के विषयमें विचार किया जाता है। इसका स्वरूप नारदजीने इस प्रकार बताया है—"देश, जाति और कुल आदिको कोसते हुए उनके सम्बन्धमें जो अश्लील और प्रतिकूल अर्थवाली बात कही जाती है, उसको 'वाक्पारुष्य' कहते हैं।" प्रतिकूल अर्थवालीसे तात्पर्य है—उद्वेगजनक वाक्यसे। जैसे कोई कहे—'गौड़देशवाले बड़े झगड़ालू होते हैं', तो यह देशपर आक्षेप हुआ। 'ब्राह्मण बड़े लालची होते हैं'—यह जातिपर आक्षेप हुआ, तथा 'विश्वामित्रगोत्रीय बड़े क्रूर चरित्रवाले होते हैं'—यह कुलपर आक्षेप हुआ। यह 'वाक्पारुष्य' तीन प्रकारका होता है—'निष्ठुर', 'अश्लील' और 'तीव्र'। इसका दण्ड भी उत्तरोत्तर भारी होता है। आक्षेपयुक्त वचनको 'निष्ठुर' कहते हैं, जिसमें अभद्र बात कही जाय, वह 'अश्लील' है और जिसमें किसीपर पातकी होनेका आरोप हो, वह वचन 'तीव्र' है। जैसे किसीने कहा—'तू मूर्ख है, मोंगा है, तुझे धिक्कार है'—यह साक्षेप वचन 'निष्ठुर'की कोटिमें आता है, किसीकी माँ-बहिनके लिये गन्दे शब्दका कहना 'अश्लील' है और किसीको यह कहना कि 'तू शराबी है, गुरुपत्नीगामी है'—ऐसा कटुवचन 'तीव्र' कहा गया है। इस तरह वाक्पारुष्यके अपराधपर दण्डविधान कैसे किया जाता है, इसीका यहाँ विचार है—]

जो न्यूनाङ्ग (अपाहिज लूले आदि) हैं, न्यूनेन्द्रिय (अंधे बहरे आदि) हैं तथा जो रोगी (दूषित चमड़ेवाले, कोढ़ी आदि) हैं, उनपर सत्यवचन, असत्यवचन अथवा अन्यथा स्तुतिके द्वारा कोई आक्षेप करे तो राजा उसपर साढ़े बारह पण दण्ड लगाय। ("इन महोदयकी दोनों आँखें नहीं हैं इसलिये लोग इन्हें 'अंधा' कहते हैं"—यह सत्यवचनद्वारा आक्षेप हुआ। "इनकी आँखें तो सही-सलामत हैं, फिर भी लोग इन्हें 'अंधा' कहते हैं"—यह असत्यवचनद्वारा आक्षेप हुआ। 'तुम विकृताकार होनेसे ही दर्शनीय हो गये हो' यह 'अन्यथास्तुति' है।) ॥ १ ॥

जो मनुष्य किसीपर आक्षेप करते हुए इस प्रकार कहे कि 'मैं तेरी बहिन, तेरी माँसे समागम करूँगा' तो राजा उसपर पचीस पणका अर्थदण्ड लगाय। यदि गाली देनेवालेकी अपेक्षा गाली पानेवाला अधम[1] है तो उसको गाली देनेके अपराधमें भद्र पुरुषपर उक्त दण्डका आधा लगाना तथा परायी स्त्री एवं उत्तम जातिवालेको अधमके द्वारा गाली दी गयी हो तो उसके ऊपर पूर्वोक्त दण्ड दुगुना लगाया जाय। वर्ण और जातिकी लघुता और गुरुताको देखकर राजा दण्डकी व्यवस्था करे। क्योंकि 'प्रातिलोम्यापवाद'में अर्थात् निम्नवर्णके पुरुषद्वारा उच्चवर्णके पुरुषपर आक्षेप किये जानेपर दुगुने और तिगुने दण्डका विधान है। जैसे ब्राह्मणको कटुवचन सुनानेवाले क्षत्रियपर पूर्वोक्त द्विगुण दण्ड, वैश्यपर दुगुने दण्डसे डेढ़ गुना, शूद्रपर

[1] गुण और आचरणकी दृष्टिसे गिरा हुआ।

जाने चाहिये तथा वही अपराध करनेवाले वैश्यपर तिगुने, अर्थात् डेढ़ सौ पण दण्ड लगने चाहिये । इसी तरह 'आनुलोम्यापवाद'में, अर्थात् उच्चवर्णद्वारा हीनवर्णके मनुष्यपर आक्षेप किये जानेपर क्रमशः आधे आधे दण्डकी कमी हो जाती है । अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रियपर आक्रोश करे तो पचास पण दण्ड दे, वैश्यपर करे तो पचीस पण और यदि शूद्रपर करे तो साढ़े बारह पण दण्ड दे । यदि कोई मनुष्य वाणी द्वारा दूसरोंको इस प्रकार धमकावे कि 'मैं तुम्हारी बाँह उखाड़ लूँगा, गर्दन मरोड़ दूँगा, आँखें फोड़ दूँगा और जाँघ तोड़ डालूँगा' तो राजा उसपर सौ पणका दण्ड लगावे और जो पैर, नाक, कान और हाथ आदि तोड़नेको कहे, उसपर पचास पणका अर्थदण्ड लागू करे । यदि असमर्थ मनुष्य ऐसा कहे, तो राजा उसपर दस पण दण्ड लगाये और समर्थ मनुष्य असमर्थको ऐसा कहे, तो उससे पूर्वोक्त सौ पण दण्ड वसूल करे । साथ ही असमर्थ मनुष्यकी रक्षाके लिये उससे कोई 'प्रतिभू' (जमानतदार) भी माँगे । किसीको पतित सिद्ध करनेके लिये आक्षेप करनेवाले मनुष्यको मध्यम साहसका दण्ड देना चाहिये तथा उपपातकका मिथ्या आरोप करनेवालेपर प्रथम साहसका दण्ड लगाना चाहिये । वेदविद्या सम्पन्न ब्राह्मण, राजा अथवा देवताकी निन्दा करनेवालोंको उत्तम साहस, जातियोंके संघकी निन्दा करनेवालेको मध्यम साहस और ग्राम या देशकी निन्दा करनेवालेको प्रथम साहसका दण्ड देना चाहिये ॥ २–८ ॥

दण्डपारुष्य

[अब 'दण्डपारुष्य' प्रस्तुत किया जाता है । नारदजीके कथनानुसार उसका स्वरूप इस प्रकार है—"दूसरोंके शरीरपर, अथवा उनकी स्थावर-जङ्गम वस्तुओंपर हाथ, पैर, अस्त्र शस्त्र तथा पत्थर आदिसे जो चोट पहुँचायी जाती है तथा राख, धूल और मल-मूत्र आदि फेंककर उनके मनमें दुःख उत्पन्न किया जाता है, यह दोनों ही प्रकारका व्यवहार 'दण्डपारुष्य' कहलाता है ।" उसके तीन कारण बताये जाते हैं—'अवगोरण' (मारनेके लिये उद्योग), 'निःशङ्कपातन' (निष्ठुरतापूर्वक नीचे गिरा देना) और 'क्षतदर्शन' (रक्त निकाल देना) । इन तीनोंके द्वारा हीन द्रव्यपर, मध्यम द्रव्यपर और उत्तम द्रव्यपर जो आक्रमण होता है, उसको दृष्टिमें रखकर 'दण्डपारुष्य'के तीन भेद किये जाते हैं । 'दण्डपारुष्य'का निर्णय करनेके उसके लिये अपराधीको दण्ड दिया जाता है । उसके स्वरूपमें संदेह होनेपर निर्णयके कारण बता रहे हैं—]

यदि कोई मनुष्य राजाके पास जाकर इस आशयका अभियोगपत्र दे कि 'अमुक व्यक्तिने एकान्त स्थानमें मुझे मारा है', तो राजा इस कार्यमें चिह्नोंसे, युक्तियोंसे, आगम (जनप्रवादसे) तथा दिव्य प्रमाणसे निश्चय करे । 'अभियोग लगानेवालेने अपने शरीरपर घावका कपटपूर्वक चिह्न तो नहीं बना लिया है', इस संदेहके कारण उसका परीक्षण (छानबीन) आवश्यक है । दूसरेके ऊपर राख, कीचड़ या धूल फेंकनेवालेपर दस पण और अपवित्र वस्तु या थूक डालनेवाले, अथवा अपने पैरकी एड़ी छुआ देनेवालेपर राजा बीस पण दण्ड लगाये । यह दण्ड समान वर्णवालोंके प्रति ऐसा अपराध करनेवालोंके लिये ही बताया गया है । परायी स्त्रियों और अपनेसे उत्तम वर्णवाले पुरुषोंके प्रति पूर्वोक्त व्यवहार करनेपर मनुष्य दुगुने दण्डका भागी होता है और अपनेसे हीन वर्णवालोंके प्रति ऐसा व्यवहार करनेपर मनुष्य आधा दण्ड पानेका अधिकारी होता है । यदि कोई मोह एवं मदके वशीभूत(नशेमें) होकर ऐसा अपराध कर बैठे तो उसे दण्ड नहीं देना चाहिये ॥ ९–११ ॥

ब्राह्मणेतर मनुष्य अपने जिस अङ्गसे ब्राह्मणको पीड़ा दे—मारे-पीटे, उसका वह अङ्ग छेदन कर देने योग्य है । ब्राह्मणके वधके लिये शस्त्र उठा लेनेपर उस पुरुषको प्रथम साहसका दण्ड मिलना चाहिये । यदि उसने मारनेकी इच्छासे शस्त्र आदिका स्पर्शमात्र किया हो तो उसे प्रथम साहसके आधे दण्डसे दण्डित करना चाहिये । अपने समान जातिवाले मनुष्यको मारनेके लिये हाथ उठानेवालेको दस पण, लात उठानेवालेको बीस पण और एक-दूसरेके वधके लिये शस्त्र उठानेपर सभी वर्णके लोगोंको मध्यम साहसका दण्ड देना चाहिये । किसीके पैर, केश, वस्त्र और हाथ—इनमेंसे कोई-सा भी पकड़कर खींचने या झटका देनेपर अपराधीको दस पणका दण्ड लगावे । इसी तरह दूसरेको कपड़ेमें लपेटकर जोर-जोरसे दबाने, घसीटने और पैरोंसे आघात करनेपर आक्रामकसे सौ पण वसूल करे । जो किसी पर लाठी आदिसे ऐसा प्रहार करे कि उसे दुःख तो हो, किंतु शरीरसे रक्त न निकले, तो उस मनुष्यपर बत्तीस पण दण्ड लगावे । यदि उस प्रहारसे रक्त निकल आवे तो अपराधीपर इससे दूना, चौंसठ पण, दण्ड लगाया जाना चाहिये । किसीके हाथ-पाँव अथवा दाँत तोड़नेवाले, नाक-कान काटनेवाले,

कुचल देनेवाले या मारकर मृतकतुल्य बना देनेवालेपर मध्यम साहस—पाँच सौ पणका दण्ड लगाया जाय। किसीकी चेष्टा, भोजन या वाणीको रोकनेवाले, आँख, जिह्वा आदिको फोड़ने या छेदनेवाले या कंधा, भुजा और जाँघ तोड़नेवालेको भी मध्यम साहसका दण्ड देना चाहिये। यदि बहुत से मनुष्य मिलकर एक मनुष्यका अङ्ग भङ्ग करें तो जिस-जिस अपराधके लिये जो-जो दण्ड बताया गया है, उससे दूना दण्ड प्रत्येकको दे। परस्पर कलह होते समय जिसने जिसकी जो वस्तु हड़प ली हो, राजाकी आज्ञासे उसे उसकी वह वस्तु लौटा देनी होगी और अपहरणके अपराधमें उस अपहृत वस्तुके मूल्य से दूना दण्ड राजाके लिये देना होगा। जो मनुष्य किसीपर प्रहार करके उसे घायल कर दे, वह उसके घाव भरने और स्वस्थ होनेतक औषध, पथ्य एवं चिकित्सामें जितना व्यय हो, उसका भार वहन करे। साथ ही जिस कलहके लिये जो दण्ड बताया गया है, उतना अर्थदण्ड भी चुकाये। नावसे लोगोंको पार उतारनेवाला नाविक यदि स्थलमार्गका शुल्क ग्रहण करता है तो उसपर दस पण दण्ड लगाना चाहिये। यदि यजमानके पास वैभव हो और पड़ोसमें विद्वान् और सदाचारी ब्राह्मण बसते हों तो श्राद्ध आदिमें उनको निमन्त्रण न देनेपर उस यजमानपर भी यही दण्ड लगाना चाहिये। किसीकी दीवारपर मुद्गर आदिसे आघात करनेवालेपर पाँच पण, उसे विदीर्ण करनेवालेपर दस पण तथा उसको फोड़ने या दो टूक करनेवालेपर बीस पण दण्ड लगाया जाय और वह दीवार गिरा देनेवालेसे पैंतीस पण दण्ड वसूल किया जाय। साथ ही उस दीवारके मालिकको नये सिरेसे दीवार बनानेका व्यय उससे दिलाया जाय। किसीके घरमें दुःखोत्पादक वस्तु—कण्टक आदि फेंकनेवालेपर सोलह पण और प्राण हरण करनेवाली वस्तु—विषधर सर्प आदि फेंकनेवालेपर मध्यम साहस—पाँच सौ पण दण्ड देनेका विधान है। क्षुद्र पशुको पीड़ा पहुँचानेवालेपर दो पण, उसके शरीरसे रुधिर निकाल देनेवालेपर चार पण, सींग तोड़नेवालेपर छः पण तथा अङ्ग भङ्ग करनेवालेपर आठ पण दण्ड लगावे। क्षुद्र पशुका लिङ्ग छेदन करने या उसको मार डालनेपर मध्यम साहसका दण्ड दे और अपराधीसे स्वामीको उस पशुका मूल्य दिलवाये। महान् पशु—हाथी घोड़े आदिके प्रति दुःखोत्पादन आदि पूर्वोक्त अपराध करनेपर क्षुद्र पशुओंकी अपेक्षा दूना दण्ड लगाना चाहिये। जिनकी डालियाँ काटकर अन्यत्र लगा दी जानेपर अङ्कुरित हो जाती हैं, वे बरगद आदि वृक्ष 'प्ररोहिशाखी' कहलाते हैं। ऐसे प्ररोही वृक्षोंकी तथा जिनकी डालियाँ अङ्कुरित नहीं होतीं, परंतु जो जीविका चलानेके साधन बनते हैं, उन आम आदि वृक्षोंकी शाखा, स्कन्ध तथा मूलसहित सम्पूर्ण वृक्षका छेदन करनेपर क्रमशः बीस पण, चालीस पण और अस्सी पण दण्ड लगानेका विधान है॥ १२—२५॥

साहस प्रकरण

[अब 'साहस' नामक विवादपदका विवेचन करनेके लिये पहले उसका लक्षण बताते हैं—] सामान्य द्रव्य अथवा परकीय द्रव्यका बलपूर्वक अपहरण 'साहस' कहलाता है। [यहाँ यह कहा गया कि राजदण्डका उल्लङ्घन करके, जन साधारणके आक्रोशकी कोई परवा किये बिना राजकीय पुरुषोंसे भिन्न लोगोंके सामने जो मारण, अपहरण तथा परस्त्रीके प्रति बलात्कार आदि किया जाता है, वह सब 'साहस'की कोटिमें आता है।] जो दूसरेके द्रव्यका अपहरण करता है, उसके ऊपर उस अपहृत द्रव्यके मूल्यसे दूना दण्ड लगाना चाहिये। जो 'साहस' (लूट-पाट, डकैती आदि) कर्म करके उसे स्वीकार नहीं करता—'मैंने नहीं किया है'—ऐसा उत्तर देता है, उसके ऊपर वस्तुके मूल्यसे चौगुना दण्ड लगाना उचित है॥ २६॥

जो मनुष्य दूसरेसे डकैती आदि 'साहस' करवाता है, उससे उस साहसके लिये कथित दण्डसे दूना दण्ड लेना चाहिये। जो ऐसा कहकर कि "मैं तुम्हें धन दूँगा, तुम 'साहस' (डकैती आदि) करो", दूसरेसे 'साहस'का काम कराता है, उससे साहसिकके लिये नियत दण्डकी अपेक्षा चौगुना दण्ड वसूल करना चाहिये। श्रेष्ठ पुरुष (आचार्य आदि) की निन्दा या आज्ञाका उल्लङ्घन करनेवाले, भ्रातृपत्नी (भौजाई या बहू) पर प्रहार करनेवाले, प्रतिज्ञा करके न देनेवाले, किसीके बंद घरका ताला तोड़कर खोलनेवाले तथा पड़ोसी और कुटुम्बीजनोंका अपकार करनेवालेपर राजा पचास पणका दण्ड लगावे, यह शास्त्रका नियम है॥ २७-२८॥

[निषिद्ध विषयक] स्वेच्छाचारपूर्वक विधवासे गमन करनेवाले, संकटग्रस्त मनुष्यके पुकारनेपर उसकी रक्षाके लिये दौड़कर न आनेवाले, अकारण ही लोगोंको रक्षाके लिये पुकारनेवाले, चाण्डाल होकर श्रेष्ठ मनुष्योंका स्पर्श करनेवाले, देव एवं पितृकार्यमें संन्यासीको भोजन करानेवाले, शूद्र, अनुचित शपथ करनेवाले, अयोग्य (अनधिकारी) होकर भी योग्य (अधिकारी) के कर्म

(वेदाध्ययनादि) करनेवाले, बैल एवं क्षुद्र पशु—बकरे आदिको वधिया करनेवाले, साधारण वस्तुमें भी ठगी करनेवाले तथा दासीका गर्भ गिरानेवाले—इन सब पर तथा पिता पुत्र, बहिन भाई, पति-पत्नी तथा आचार्य शिष्य—ये पतित न होते हुए भी यदि एक-दूसरेका त्याग करते हों तो इनके ऊपर भी सौ पण दण्ड लगावे। यदि धोबी दूसरोंके वस्त्र पहने तो तीन पण और यदि बेचे, भाड़ेपर दे, बन्धक रखे या मँगनी दे, तो दस पण अर्थदण्डके योग्य होता है[1]। तोलनदण्ड, शासन, मान (प्रस्थ, द्रोण आदि) तथा नाणक (मुद्रा आदिसे चिह्नित निष्क आदि)—इनमें जो कूटकारी (मानके वजनमें कमी-बेशी तथा सुवर्णमें ताँबे आदिकी मिलावट करनेवाला) हो तथा उससे कूट तुला आदि व्यवहार करता हो, उन दोनोंको पृथक्-पृथक् उत्तम साहसके दण्डसे दण्डित करना चाहिये। सिक्कोंकी परीक्षा करते समय यदि पारखी असली सिक्केको नकली या नकली सिक्केको असली बतावे तो राजा उससे भी प्रथम साहसका दण्ड वसूल करे। जो वैद्य आयुर्वेदको न जाननेपर भी पशुओं, मनुष्यों और राजकर्मचारियोंकी मिथ्या चिकित्सा करे, उसे क्रमशः प्रथम, मध्यम और उत्तम साहसके दण्डसे दण्डित करे। जो राजपुरुष कैद न करनेयोग्य (निरपराध) मनुष्योंको राजाकी आज्ञाके बिना कैद करता है और बाँधनेके योग्य बन्दीको उसके अभियोगका निर्णय होनेसे पहले ही छोड़ देता है, उसे उत्तम साहसका दण्ड देना चाहिये। जो व्यापारी कूटमान अथवा तुलासे धान कपास आदि पण्यद्रव्यका अष्टमांश हरण करता है, वह दो सौ पणके दण्डसे दण्डनीय होता है। अपहृत द्रव्य यदि अष्टमांशसे अधिक या कम हो तो दण्डमें भी वृद्धि और कमी करनी चाहिये। ओषधि, घृत, तेल, लवण, गन्धद्रव्य, धान्य और गुड़ आदि पण्यवस्तुओंमें जो निस्सार वस्तुका मिश्रण कर देता है, राजा उसपर सोलह पण दण्ड लगावे ॥ २९–३९ ॥

यदि व्यापारीलोग संगठित होकर राजाके द्वारा निश्चित किये हुए भावको जानते हुए भी लोभवश कारु और शिल्पियोंको पीड़ा देनेवाले मूल्यकी वृद्धि या कमी करें तो राजा उनपर एक हजार पणका दण्ड लागू करे। राजा निकटवर्ती हो तो उनके द्वारा जिस वस्तुका जो मूल्य निर्धारित कर दिया गया हो, व्यापारीगण प्रतिदिन उसी भावसे क्रय विक्रय करें, उसमें जो बचत हो, वही वनियोंके लिये लाभकारक मानी गयी है। व्यापारी देशज वस्तुपर पाँच प्रतिशत लाभ रखे और विदेशी द्रव्यको यदि शीघ्र ही क्रय विक्रय कर ले तो उसपर दस प्रतिशत लाभ ले। राजा दूकानका खर्च पण्यवस्तुपर रखकर उसका भाव इस प्रकार निश्चित करे, जिससे क्रेता और विक्रेताको लाभ हो ॥ ४०–४३ ॥

विक्रीयासम्प्रदान

[प्रसङ्गप्राप्त 'साहस'का प्रकरण समाप्त करके अब 'विक्रीयासम्प्रदान' आरम्भ करते हैं। नारदजीके वचनानुसार 'विक्रीयासम्प्रदान'का स्वरूप इस प्रकार है—"मूल्य लेकर पण्यवस्तुका विक्रय करके जब खरीददारको वह वस्तु नहीं दी जाती है, तब वह 'विक्रीयासम्प्रदान' (बेचकर भी वस्तुको न देना) नामक विवादास्पद कहलाता है।" विक्रेय वस्तु 'चल' और 'अचल'के भेदसे दो प्रकारकी होती है। फिर उसके छः भेद किये गये हैं—गणित, तुलित, मेय, क्रियोपलक्षित, रूपोपलक्षित और दीप्तिसे उपलक्षित। सुपारीके फल आदि 'गणित' हैं, क्योंकि वे गिनकर बेचे जाते हैं। सोना, कस्तूरी और केसर आदि 'तुलित' हैं, क्योंकि वे तौलकर बेचे जाते हैं। शाली (अगहनी धान) आदि 'मेय' हैं, क्योंकि वे पात्रविशेषसे माप कर दिये जाते हैं। 'क्रियोपलक्षित' वस्तुमें घोड़े, भैंस आदिकी गणना है, क्योंकि उनकी चाल और दोहन आदिकी क्रियाको दृष्टिमें रखकर ही उनका क्रय विक्रय होता है। 'रूपोपलक्षित' वस्तुमें पण्यस्त्री (वेश्या) आदिकी गणना है, क्योंकि उनके रूपके अनुसार ही उनका मूल्य होता है। 'दीप्तिसे उपलक्षित' वस्तुओंमें हीरा, मोती, मरकत और पद्मराग आदिकी गणना है। इन छहों प्रकारकी पण्यवस्तुओंको बेचकर, मूल्य लेकर भी यदि क्रेताको वह वस्तु नहीं दी जाती तो विक्रेताको किस प्रकार दण्डित करना चाहिये, यह बताते हैं—]

जो व्यापारी मूल्य लेकर भी ग्राहकको माल न दे, उससे वृद्धिसहित वह माल ग्राहकको दिलाया जाय। यदि ग्राहक

---

[1] उपर्युक्त अपराधोंके लिये जो राजदण्ड है, वही मूलमें बताया गया है परंतु जो वस्त्र उसने गायब कर दिया हो, उसका मूल्य वह वस्त्र स्वामीको अलगसे दे। मनुजीने यह व्यवस्था दी है कि 'यदि वस्त्र एक बारका धुला है तो धोबी उसके मूल्यका अष्टमांश कम करके शेष मूल्य स्वामीको चुकावे। इसी तरह कई बारके धुले हुए वस्त्रका पादांश अर्धांश इत्यादि कम करके वह लौटावे।

परदेशका हो तो उसके देशमें ले जाकर बेचनेसे जो लाभ होता है, उस लाभसहित वह वस्तु राजा व्यापारीसे ग्राहकको दिलाये। यदि पहला ग्राहक मालमें किसी प्रकार सन्देह होनेपर वस्तुको न लेना चाहे तो व्यापारी उस बची हुई वस्तुको भी दूसरेके हाथ बेच सकता है। यदि विक्रेताके देनेपर भी ग्राहक न ले और वह पण्यवस्तु राजा या दैवकी बाधासे नष्ट हो जाय तो वह हानि क्रेताके ही दोषसे होनेके कारण वही उस हानिको सहन करेगा, बेचनेवाला नहीं। यदि ग्राहकके माँगनेपर भी उस बेची हुई पण्यवस्तुको बेचनेवाला नहीं दे और वह पण्यद्रव्य राजा या दैवके कोपसे उपहत हो जाय तो वह हानि विक्रेताकी होगी ॥ ४४–४६ ॥

जो व्यापारी किसीको बेची हुई वस्तु दूसरेके हाथ बेचता है, अथवा दूषित वस्तुको दोषरहित बतलाकर बेचता है, राजा उसपर वस्तुके मूल्यसे दुगुना अर्थदण्ड लगाये। जान-बूझकर खरीदे हुए पण्यद्रव्योंका मूल्य खरीदनेके बाद यदि बढ़ गया या घट गया तो उससे होनेवाले लाभ या हानिको जो ग्राहक नहीं जानता, उसे 'अनुशय' (माल लेनेमें आनाकानी) नहीं करनी चाहिये। विक्रेता भी यदि बढ़े हुए दामके कारण अपनेको लगे हुए घाटेको नहीं जान पाया है तो उसे भी माल देनेमें आनाकानी नहीं करनी चाहिये। इससे यह बात स्वतः स्पष्ट हो जाती है कि खरीद लेनेके पश्चात् यदि ग्राहकको घाटा दिखायी दे तो वह माल लेनेमें आपत्ति कर सकता है। इसी तरह विक्रेता उस भावपर माल देनेमें यदि हानि देखे तो वह उस सौदेको रोक सकता है। यदि अनुशय न करनेकी स्थितिमें क्रेता या विक्रेता अनुशय करें तो उनपर पण्यवस्तुके मूल्यका छठा अंश दण्ड लगाना चाहिये ॥ ४७-४८ ॥

सम्भूयसमुत्थान

जो व्यापारी सम्मिलित होकर लाभके लिये व्यापार करते हैं, वे अपने निर्धारित भागके अनुसार अथवा लगाये गये धनके अनुसार लाभ-हानिमें भाग ग्रहण करें। यदि उनमें कोई अपने साझीदारोंके मना करनेपर या उनकी अनुमति न लेकर अथवा प्रमादवश किसी वस्तुको नष्ट करेगा, तो उसकी क्षतिपूर्ति उसीको करनी होगी। यदि उनमें कोई [illegible] रक्षा करे तो वह दसवें भागका भागी होता है ॥ ४९–५० ॥

पण्यद्रव्यका मूल्य निश्चित करनेके बाद राजा मूल्यका बीसवाँ भाग अपने शुल्कके रूपमें ग्रहण करे। यदि कोई व्यापारी राजाके द्वारा निषिद्ध एवं राजोपयोगी वस्तुको लाभके लालचसे किसी दूसरेके हाथ बेचता है तो राजा उससे वह वस्तु बिना मूल्य दिये ले सकता है। जो मनुष्य शुल्कस्थानमें वस्तुका मिथ्या परिमाण बताता है, अथवा वहाँसे खिसक जानेकी चेष्टा करता है तथा जो कोई बहाना बनाकर किसी विवादास्पद वस्तुका क्रय-विक्रय करता है—इन सबपर पण्यवस्तुके मूल्यसे आठगुना दण्ड लगाना चाहिये। यदि संघबद्ध होकर काम करनेवालोंमेंसे कोई देशान्तरमें जाकर मृत्युको प्राप्त हो जाय तो उसके हिस्सेके द्रव्यको दायाद (पुत्र आदि), बान्धव (मातुल आदि) अथवा ज्ञाति (सजातीय सपिण्ड) आकर ले लें। उनके न होनेपर उस धनको राजा ग्रहण करे। संघबद्ध होकर काम करनेवालोंमें जो कुटिल या वञ्चक हो, उसे किसी तरहका लाभ दिये बिना ही संघसे बाहर कर दे। उनमेंसे जो अपना कार्य स्वयं करनेमें असमर्थ हो, वह दूसरेसे कराये। होता आदि ऋत्विजों, किसानों तथा शिल्पकर्मोपजीवी नट, नर्तक आदिके लिये भी सहोत्थानका ढंग उपर्युक्त कथनसे स्पष्ट कर दिया गया ॥ ५१–५४ ॥

स्तेय-प्रकरण

[अब 'स्तेय' अथवा चोरीके विषयमें बताया जाता है। मनुजीने 'साहस' और 'चोरी'में अन्तर बताते हुए लिखा है—'जो द्रव्य रक्षकोंके समक्ष बलात्कारपूर्वक पराये धनको लूटा जाता है, वह 'साहस' या 'डकैती' है। तथा जो पराया धन स्वामीकी दृष्टि बचाकर या किसीको चकमा देकर हड़प लिया जाता है, तथा 'मैंने यह कर्म किया है'—यह बात भयके कारण छिपायी जाती है, किसीपर प्रकट नहीं होने दी जाती, वह सब 'स्तेय' (चोरी) कर्म है।' चोरको कैसे पकड़ना चाहिये, यह बता रहे हैं —]

किसीके घरमें चोरी होनेपर ग्राहक—राजकीय कर्मचारी या आरक्षा विभागके सिपाही ऐसे व्यक्तिको पकड़े, जो लोगोंमें चोरीके लिये विख्यात हो—जिसे सब लोग चोर कहते हों, अथवा जिसके पास चोरीका चिह्न—खोया गया हुआ माल मिल जाय, उसे पकड़े। अथवा चोरीके दिनसे ही चोरके पदचिह्नोंका अनुसरण करे। [illegible] चोरको बंदी बनाये। जो पहले भी चोरी कर चुका हो तथा जिसका कोई शुद्ध-निश्चित निवासस्थान न हो, ऐसे व्यक्तिको भी सन्देहमें कैद करे। जो पूछनेपर

अपनी जाति और नाम आदिको छिपावें, जो द्यूतक्रीडा, वेश्यागमन और मद्यपानमें आसक्त हों, चोरीके विषयमें पूछनेपर जिनका मुँह सूख जाय और स्वर विकृत हो जाय, जो दूसरोंके धन और घरके विषयमें पूछते फिरें, जो गुप्तरूपसे विचरण करें, जो आय न होनेपर भी बहुत व्यय करनेवाले हों तथा जो विनष्ट द्रव्यों (फटे पुराने वस्त्रों और टूटे फूटे बर्तन आदि) को बेचते हों—ऐसे अन्य लोगोंको भी चोरीके संदेहमें पकड़ लेना चाहिये । जो मनुष्य चोरीके संदेहमें पकड़ा गया हो, वह यदि अपनी निर्दोषिताको प्रमाणित न कर सके तो राजा उससे चोरीका धन दिलाकर उसे चोरका दण्ड दे । राजा चोरसे चोरीका धन दिलाकर उसे अनेक प्रकारके शारीरिक दण्ड देते हुए मरवा डाले । यह दण्ड बहुमूल्य वस्तुओंकी भारी चोरी होनेपर ही देनेयोग्य है, किंतु यदि चोरी करनेवाला ब्राह्मण हो तो उसके ललाटमें दाग देकर उसको अपने राज्यसे निर्वासित कर दे । यदि गाँवमें मनुष्य आदि किसी प्राणीका वध हो जाय, अथवा धनकी चोरी हो जाय और चोरके गाँवसे बाहर निकल जानेका कोई चिह्न न दिखायी दे तो सारा दोष ग्रामपालपर आता है । वही चोरको पकड़कर राजाके हवाले करे । यदि ऐसा न कर सके तो जिसके घरमें धनकी चोरी हुई है, उस गृहस्वामीको चोरीका सारा धन अपने पाससे दे । यदि चोरके गाँवसे बाहर निकल जानेका कोई चिह्न वह दिखा सके तो जिस भूभागमें चोरका प्रवेश हुआ है, उसका अधिपति ही चोरको पकड़वावे, अथवा चोरीका धन अपने पाससे दे । यदि विवीत-स्थानमें अपहरणकी घटना हुई है तो विवीत स्वामीका ही सारा दोष है । यदि मार्गमें या विवीत स्थानसे बाहर दूसरे क्षेत्रमें चोरीका कोई माल मिले या चोरका भी चिह्न लक्षित हो तो चोर पकड़नेके कामपर नियुक्त हुए मार्गपालका अथवा उस दिशाके संरक्षकका दोष होता है । यदि गाँवसे बाहर, किंतु ग्रामकी सीमाके अंदरके क्षेत्रमें चोरी आदिकी घटना घटित हो तो उस ग्रामके निवासी ही क्षतिपूर्ति करें । उनपर यह उत्तरदायित्व तभीतक आता है, जबतक चोरका पदचिह्न सीमासे बाहर गया हुआ नहीं दिखायी देता । यदि सीमाके बाहर गया दिखायी पड़े, तो जिस ग्राम आदिमें उसका प्रवेश हो, वहींके लोग चोरको पकड़वाने और चोरीका माल वापस देनेके लिये जिम्मेदार हैं । यदि अनेक गाँवोंके बीचमें एक कोसकी सीमासे बाहर हत्या और चोरीकी घटना घटित हुई हो और अधिक जनसमूहकी दौड़धूपसे चोरका पदचिह्न मिट गया हो तो पाँच गाँवके लोग अथवा दस गाँवके लोग मिलकर चोरको पकड़वाने तथा चोरीका माल वापस देनेका उत्तरदायित्व अपने ऊपर लें । बंदीको गुप्तरूपसे जेलसे छुड़ाकर भगा ले जानेवाले, घोड़ों और हाथियोंकी चोरी करनेवाले तथा बलपूर्वक किसीकी हत्या करनेवाले लोगोंको राजा शूलीपर चढ़वा दे । राजा वस्त्र आदिकी चोरी करनेवाले और गठरी आदि काटनेवाले चोरोंके प्रथम अपराधमें क्रमशः अङ्गुष्ठ और तर्जनी कटवा दे और दूसरी बार वही अपराध करनेपर उन दोनोंको क्रमशः एक हाथ तथा एक पैरसे हीन कर दे । जो मनुष्य जान-बूझकर चोर या हत्यारेको भोजन, रहनेके लिये स्थान, सर्दीमें तापनेके लिये अग्नि, प्यासे हुएको जल, चोरी करनेके तौर-तरीकेकी सलाह, चोरीके साधन और उसी कार्यके लिये परदेश जानेके लिये मार्गव्यय देता है, उसको उत्तम साहसका दण्ड देना चाहिये । दूसरेके शरीरपर घातक शस्त्रसे प्रहार करने तथा गर्भवती स्त्रीके गर्भ गिरानेपर भी उत्तम साहसका ही दण्ड देना उचित है । किसी भी पुरुष या स्त्रीकी हत्या करनेपर उसके शील और आचारको दृष्टिमें रखते हुए उत्तम या अधम साहसका दण्ड देना चाहिये । जो पुरुषकी हत्या करनेवाली तथा दूसरोंको जहर देकर मारनेवाली है, ऐसी स्त्रीके गलेमें पत्थर बाँधकर उसे पानीमें फेंक देना चाहिये; (परंतु यदि वह गर्भवती हो तो उस समय उसे ऐसा दण्ड न दे ।) विष देनेवाली, आग लगानेवाली तथा अपने पति, गुरु या संतानको मारनेवाली स्त्रीके कान, हाथ, नाक और ओठ काटकर उसे साँड़से कुचलवाकर मरवा डाले । खेत, घर, वन, ग्राम, रक्षित भूभाग अथवा खलिहानमें आग लगानेवाले या राजपत्नीसे समागम करनेवाले मनुष्यको सूखे नरकुल या सरकंडों तिनकोंसे ढककर जला दे ॥ ५८—६७ ॥

स्त्री-संग्रहण

[अब 'स्त्रीसंग्रहण' नामक विवादपर विचार किया जाता है । परायी स्त्री और पराये पुरुषका मिथुनीभाव (परस्पर आलिङ्गन) 'स्त्री संग्रहण' कहलाता है । दण्डनीयताकी दृष्टिसे इसके तीन भेद हैं—प्रथम, मध्यम और उत्तम । अनुचित देश और कालमें, एकान्त स्थानमें, बिना कुछ बोले-चाले परायी स्त्रीको कटाक्षपूर्वक देखना और हास्य करना 'प्रथम साहस' माना गया है । उसके पास सुगन्धित वस्तु—इत्र फुलेल आदि, फूलोंके हार, धूप, भूषण और वस्त्र भेजना

दो सौ उनसठवाँ अध्याय

ऋग्विधान—विविध कामनाओंकी सिद्धिके लिये प्रयुक्त होनेवाले ऋग्वेदीय मन्त्रोंका निर्देश

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ ! अब मैं महर्षि पुष्करके द्वारा परशुरामजीके प्रति वर्णित ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेदका विधान कहता हूँ, जिसके अनुसार मन्त्रोंके जप और होमसे भोग एवं मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥ १ ॥

पुष्कर बोले—परशुराम ! अब मैं प्रत्येक वेदके अनुसार तुम्हारे लिये कर्तव्यकर्मोंका वर्णन करता हूँ। पहले तुम भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले 'ऋग्विधान'को सुनो। गायत्री-मन्त्रका विशेषतः प्राणायामपूर्वक जलमें खड़े होकर तथा होमके समय जप करनेवाले पुरुषकी समस्त मनोवाञ्छित कामनाओंको गायत्री देवी पूर्ण कर देती हैं। ब्रह्मन्! जो दिनभर उपवास करके केवल रात्रिमें भोजन करता और उसी दिन अनेक बार स्नान करके गायत्री मन्त्रका दस सहस्र जप करता है, उसका वह जप समस्त पापोंका नाश करनेवाला है। जो गायत्रीका एक लाख जप करके हवन करता है, वह मोक्षका अधिकारी होता है। 'प्रणव' परब्रह्म है। उसका जप सभी पापोंका हनन करनेवाला है। नाभिपर्यन्त जलमें स्थित होकर ॐकारका सौ बार जप करके अभिमन्त्रित किये गये जलको जो पीता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। गायत्रीके प्रथम अक्षर प्रणवकी तीन मात्राएँ—अकार, उकार और मकार—ये ही 'ऋक्', 'साम' और 'यजुः'—तीन वेद हैं, ये ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव—तीनों देवता हैं तथा ये ही गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि—तीनों अग्नियाँ हैं। गायत्रीकी जो सात महाव्याहृतियाँ हैं, वे ही सातों लोक हैं। इनके उच्चारणपूर्वक गायत्री-मन्त्रसे किया हुआ होम समस्त पापोंका नाश करनेवाला होता है। सम्पूर्ण गायत्री-मन्त्र तथा महाव्याहृतियाँ—ये सब जप करनेयोग्य एवं उत्कृष्ट मन्त्र हैं। परशुरामजी ! अघमर्षण-मन्त्र 'ऋतं च सत्यं च०' (१० । १९० । १-३) इत्यादि जलके भीतर डुबकी लगाकर जपा जाय तो सब पापनाशक होता है। 'अग्निमीळे पुरोहितम्०' (ऋग्वेद १ । १ । १) —यह ऋग्वेदका प्रथम मन्त्र अग्निदेवताका सूक्त है। अर्थात् 'अग्नि' इसके देवता हैं। जो मस्तकपर अग्निका पात्र धारण करके एक वर्षतक इस सूक्तका जप करता है, तीनों काल स्नान करके हवन करता है, गृहस्थोंके घरमें चूल्हेकी आग बुझ जानेपर उनके यहाँसे भिक्षान्न लाकर उससे जीवननिर्वाह करता है तथा उक्त प्रथम सूक्तके अनन्तर जो वायु आदि देवताओंके सात सूक्त (१ । १ । २ से ८ सूक्त) कहे गये हैं, उनका भी जो प्रतिदिन शुद्धचित्त होकर जप करता है, वह मनोवाञ्छित कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। जो मेधा (धारण-शक्ति) को प्राप्त करना चाहे, वह प्रतिदिन 'सदसस्पति०' (१ । १८ । ६ से ८) इत्यादि तीन ऋचाओंका जप करे ॥ २-११ ॥

'अम्बयो यन्त्यध्वभि०' (१ । २३ । १६ से २४) आदि—ये नौ ऋचाएँ अकालमृत्युका नाश करनेवाली कही गयी हैं। कैदमें पड़ा हुआ या अवरुद्ध (नजरबंद) द्विज 'शुनःशेपो यमह्वद्गृभीत०' (१ । २४ । १२-१४) इत्यादि तीन ऋचाओंका जप करे। इनके जपसे पापी समस्त पापोंसे छूट जाता है और रोगी रोगरहित हो जाता है। जो शाश्वत कामनाकी सिद्धि एवं बुद्धिमान् मित्रकी प्राप्ति चाहता हो, वह प्रतिदिन इन्द्रदेवताके 'इन्द्रस्य०' आदि सोलह ऋचाओंका जप करे। 'हिरण्यस्तूप०' (१० । १४९ । ५) इत्यादि मन्त्रका जप करनेवाला शत्रुओंकी गतिविधिमें बाधा पहुँचाता है। 'ये ते पन्थाः०' (१ । ३५ । ११) का जप करनेसे मनुष्य मार्गमें क्षेमका भागी होता है। जो रुद्रदेवता सम्बन्धिनी छः ऋचाओंसे प्रतिदिन शिवकी स्तुति करता है, अथवा रुद्रदेवताको चरु अर्पित करता है, उसे परम शान्तिकी प्राप्ति होती है। जो प्रतिदिन 'उद्वयं तमस०' (१ । ५० । १०) तथा 'उदुत्यं जातवेदसम्०' (१ । ५० । १)—इन ऋचाओंसे प्रतिदिन उदित होते हुए सूर्यका उपस्थान करता है तथा उनके उद्देश्यसे सात बार जलाञ्जलि देता है, उसके मानसिक दुःखका विनाश हो जाता है। 'द्विषन्त०' इत्यादि आधी ऋचासे लेकर 'यद्विप्रा०' इत्यादि मन्त्रतकका जप और चिन्तन करे। इसके प्रभावसे अपराधी मनुष्य सात ही दिनोंमें दूसरोंके विद्वेषका पात्र हो जाता है ॥ १२-१७½ ॥

आरोग्यकी कामना करनेवाला रोगी 'उ॰

रक्षा करते हैं। 'इस शुचिषत्०' (४। ४०। ५) इत्यादि मन्त्रका जप करते हुए सूर्यका दर्शन करे। ऐसा करनेसे मनुष्य पवित्र हो जाता है॥ ३५—४३॥

कृषिमें संलग्न गृहस्थ मौन रहकर क्षेत्रके मध्यभागमें विभिवत् स्थालीपाक होम करे। ये आहुतियाँ 'इन्द्राय स्वाहा। मरुद्भ्य स्वाहा। पर्जन्याय स्वाहा। एवं भगाय स्वाहा।'—कहकर उन उन देवताओंके निमित्त अग्निमें डाले। फिर जैसे स्त्रीकी योनिमें बीज-वपनके लिये जननेन्द्रियका व्यापार होता है, उसी तरह किसान धान्यका बीज बोनेके लिये हराईके साथ हलका संयोग करे और 'शुनासीराविमां०' (४। ५७। ५)—इस ऋचाका जप भी करावे। इसके बाद गन्ध, माल्य और नमस्कारके द्वारा इन सबके अधिष्ठाता देवताओंकी पूजा करे। ऐसा करनेपर बीज बोने, फसल काटने और फसलको खेतसे खलिहानमें लानेके समय किया हुआ याग कम अमोघ होता है, कभी व्यर्थ नहीं जाता। इससे सदैव कृषिकी वृद्धि होती है। 'समुद्रादूर्मिमधुमान्०' (४। ५८। १) इस सूक्तके जपसे मनुष्य अग्निदेवसे अभीष्ट वस्तुओंकी प्राप्ति करता है। जो 'विश्वानि नो दुर्गहा०' (५। ४। ९ १०) आदि दो ऋचाओंसे जो अग्निदेवका पूजन करता है, वह सम्पूर्ण विपत्तियोंको पार कर जाता है और अक्षय यशकी प्राप्ति करता है। इतना ही नहीं, वह विपुल लक्ष्मी और उत्तम विजयको भी हस्तगत कर लेता है। 'अग्ने त्वम्०' (५।२४।१)—इस ऋचासे अग्निकी स्तुति करनेपर मनोवाञ्छित धनकी प्राप्ति होती है। सन्तानकी अभिलाषा रखनेवाला वरुणदेवता-सम्बन्धी तीन ऋचाओंका नित्य जप करे॥ ४४—५०॥

'स्वस्ति न इन्द्रो०' (१। ८९। ६—८) आदि तीन ऋचाओंका सदा प्रातःकाल जप करे। यह महान् स्वस्त्ययन है। 'स्वस्ति पन्थामनु चरेम०' (५। ५१। १५)—इस ऋचाका उच्चारण करके मनुष्य मार्गमें सकुशल यात्रा करता है। 'विजिहीष्व वनस्पते०' (५। ७८। ५) के जपसे शत्रु रोगग्रस्त हो जाते हैं। इसके जपसे गर्भवेदनासे मूर्च्छित स्त्रीको गर्भके सकटसे भलीभाँति छुटकारा मिल जाता है। वृष्टिकी कामना करनेवाला निराहार रहकर भीगे वस्त्र पहने हुए 'अच्छा वद०' (५। ८३) आदि सूक्तका प्रयोग करे। इससे शीघ्र ही प्रचुर वर्षा होती है। पशुधनकी इच्छा रखनेवाला मनुष्य 'मनस कामम्०' (श्रीसूक्त १०) इत्यादि ऋचाका जप करे। संतानाभिलाषी पुरुष पवित्र व्रत ग्रहण करके 'कर्दमेन०' (श्रीसूक्त ११)—इस मन्त्रसे स्नान करे। राज्यकी कामना रखनेवाला मानव 'अश्वपूर्वा०' (श्रीसूक्त ३) इत्यादि ऋचाका जप करता हुआ स्नान करे। ब्राह्मण विधिवत् रोहितचर्मपर, क्षत्रिय व्याघ्रचर्मपर एवं वैश्य बकरेके चर्मपर स्नान करे। प्रत्येकके लिये दस-दस सहस्र होम करनेका विधान है। जो सदा अक्षय गोधनकी अभिलाषा रखता हो, वह गोष्ठमें जाकर 'आ गावो अग्मन्नुत भद्रम्०' (६। २८। १) ऋचाका जप करता हुआ लोकमाता गौको प्रणाम करे और गोचरभूमितक उसके साथ जाय। राजा 'उप०' आदि तीन ऋचाओंसे अपनी दुन्दुभियोंको अभिमन्त्रित करे। इससे वह तेज और बलकी प्राप्ति करता है और शत्रुपर भी काबू पाता है। दस्युओंसे घिर जानेपर मनुष्य हाथमें तृण लेकर 'रक्षोघ्न सूक्त'(१०।८७)का जप करे। 'ये के च ज्मा०' (६।५२।१५)—इस ऋचाका जप करनेसे दीर्घायुकी प्राप्ति होती है। राजा 'जीमूत-सूक्त'से सेनाके सभी अङ्गोंको उसके चिह्नके अनुसार अभिमन्त्रित करे। इससे वह रणक्षेत्रमें शत्रुओंका विनाश करनेमें समर्थ होता है। 'अग्नये' (७।)आदि तीन सूक्तोंके जपसे मनुष्यको अक्षय धनकी प्राप्ति होती है। 'अमीवहा०' (७। ५५)—इस सूक्तका पाठ करके रात्रिमें भूतोंकी स्थापना करे। फिर संकट, विषम एवं दुर्गम स्थलमें, बन्धनमें या बन्धनमुक्त अवस्थामें, भागते अथवा पकड़े जाते समय सहायताकी इच्छासे इस सूक्तका जप करे। तीन दिन नियमपूर्वक उपवास रखकर खीर और चरु पकावे। फिर 'त्र्यम्बकं यजामहे०' (७। ५९। १२) मन्त्रसे उसकी सौ आहुतियाँ भगवान् महादेवके उद्देश्यसे अग्निमें डाले तथा उसीसे पूर्णाहुति करे। दीर्घकालतक जीवित रहनेकी इच्छावाला पुरुष स्नान करके 'तच्चक्षुर्देवहितम्०' (७। ६६। १६)—इस ऋचासे उदय कालिक एवं मध्याह्नकालिक सूर्यका उपस्थान करे। 'न हि०' आदि चार ऋचाओंके पाठसे मनुष्य महान् भयसे मुक्त हो जाता है। 'परि ब्रह्मणा सावी०' (२।२८।१०) आदि दो ऋचाओंसे होम करनेपर ऐश्वर्यकी उपलब्धि होती है। 'इन्द्रा सोमा तपतम्०' (७।१०४) से प्रारम्भ होनेवाला सूक्त शत्रुओंका विनाश करनेवाला कहा गया है। मोहवश जिसका व्रत भङ्ग हो गया अथवा व्रात्य सगके कारण जो पतित हो गया है, वह उपवास करके 'त्वमग्ने व्रतपा०' (८। ११। १)—इस ऋचासे घृतका होम करे। 'आदित्य' और 'सम्राजा'—इन दोनों ऋचाओंका जप करनेवाला शास्त्रार्थमें विजयी होता है। 'महो०' आदि चार ऋचाओंके जपसे महान् भयसे मुक्ति

समाधिमें स्थिर होता है। 'मयोभूर्वात०' (१०। १६९। १)—यह ऋचा गौओंके लिये परम मङ्गलकारक है। इसके द्वारा शाम्बरी माया अथवा इन्द्रजालका निवारण करे। 'महि त्रीणाम वोऽस्तु०' (१०। १८५। १)—इस कल्याणकारी ऋचाका मार्गमें जप करे। द्वेषपात्रके प्रति विद्वेष रखनेवाला पुरुष 'प्राग्नये०' (१०। १८७। १) इत्यादि ऋचाका जप करे, इससे शत्रुओंका नाश होता है। 'वास्तोष्पते०' आदि चार मन्त्रोंसे गृहदेवताका पूजन करे। यह जपकी विधि बतायी गयी है। अब हवनमें जो विशेष विधि है, वह जाननी चाहिये। होमके अन्तमें दक्षिणा देनी चाहिये। होमसे पापकी शान्ति, अन्नसे होमकी शान्ति और स्वर्णदानसे अन्नकी शान्ति होती है। इनसे मिलनेवाले ब्राह्मणोंके आशीर्वाद कभी व्यर्थ नहीं जाते। यजमानको सब ओरसे बाह्य स्नान करना चाहिये। सिद्धार्थक (सरसों), यव, धान्य, दुग्ध, दधि, घृत, क्षीरवृक्षकी समिधाएँ हवनमें प्रयुक्त होनेपर सम्पूर्ण कामनाओंको सिद्ध करनेवाली हैं तथा अभिचारमें कण्टकयुक्त समिधा, राई, रुधिर एवं विषका हवन करे। होमकालमें शिलोञ्छवृत्तिसे प्राप्त अन्न, भिक्षान्न, सत्तू, दूध, दही एवं फल-मूलका भोजन करना चाहिये। यह 'ऋग्विधान' कहा गया है॥ ९२—९८॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'ऋग्विधानका कथन' नामक दो सौ उनसठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २५९॥

दो सौ साठवाँ अध्याय

यजुर्विधान—यजुर्वेदके विभिन्न मन्त्रोंका विभिन्न कार्योंके लिये प्रयोग

पुष्कर कहते हैं—परशुराम! अब मैं भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले 'यजुर्विधान'का वर्णन करता हूँ, सुनो। ॐकार संयुक्त महाव्याहृतियाँ समस्त पापोंका विनाश करनेवाली और सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाली मानी गयी हैं। विद्वान् पुरुष इनके द्वारा एक हजार घृताहुतियाँ देकर देवताओंकी आराधना करे। परशुराम! इससे मनोवाञ्छित कामनाकी सिद्धि होती है, क्योंकि यह कर्म अभीष्ट मनोरथ देनेवाला है। शान्तिकी इच्छावाला पुरुष प्रणवयुक्त व्याहृति मन्त्रसे जौकी आहुति दे और जो पापोंसे मुक्ति चाहता हो, वह उक्त मन्त्रसे तिलोंद्वारा हवन करे। धान्य एवं पीली सरसोंके हवनसे समस्त कामनाओंकी सिद्धि होती है। परधनकी कामनावालेके लिये गूलरकी समिधाओंद्वारा होम प्रशस्त माना गया है। अन्न चाहनेवालेके लिये दधिसे, शान्तिकी इच्छा करनेवालेके लिये दुग्धसे एवं प्रचुर सुवर्णकी कामना करनेवालेके लिये अपामार्गकी समिधाओंसे हवन करना उत्तम माना गया है। कन्या चाहनेवाला एक सूत्रमें ग्रथित दो-दो जातीपुष्पोंको घीमें डुबोकर उनकी आहुति दे। ग्रामाभिलाषी तिल एवं जौका हवन करे। वशीकरण कर्ममें शाखोट (सिहोर), वासा (अडूसा) और अपामार्ग (चिचिड़ा या ऊँगा) की समिधाओंका होम करना चाहिये। भृगुनन्दन! रोगका नाश करनेके लिये विष एवं रक्तसे सिक्त समिधाओंका हवन प्रशस्त है। शत्रुओंके वधकी इच्छासे उक्त समिधाओंका क्रोधपूर्वक भलीभाँति हवन करे। द्विज सभी धान्योंसे राजाकी प्रतिमाका निर्माण करे और उसका हजार बार हवन करे। इससे राजा वशमें हो जाता है। वस्त्राभिलाषीको पुष्पोंसे हवन करना चाहिये। दूर्वाका होम व्याधिका विनाश करनेवाला है। ब्रह्मतेजकी इच्छा करनेवाले पुरुषके लिये भगवत्प्रीत्यर्थ वासोऽग्र्य (उत्तम वस्त्र) अर्पण करनेका विधान है। विद्वेषण-कर्मके लिये प्रत्यङ्गिराप्रोक्त विधिके अनुसार स्थापित अग्निमें धानकी भूसी, कण्टक और भस्मके साथ काक और उलूकके पंखोंका हवन करे। ब्रह्मन्! चन्द्रग्रहणके समय कपिला गायके घीसे गायत्री-मन्त्रद्वारा आहुति देकर उस घीमें वचाका चूर्ण मिलाकर 'सम्पात' नामक आहुति दे और अवशिष्ट वचाको लेकर उसे गायत्री मन्त्रसे एक सहस्र बार अभिमन्त्रित करे। फिर उस वचाको खानेसे मनुष्य मेधावी होता है। लोहे या खदिर काष्ठकी ग्यारह अङ्गुल लंबी कील 'द्विषतो वधोऽसि०' (१।२८) आदि मन्त्रका जप करते हुए शत्रुके घरमें गाड़ दे। यह मैंने तुमसे शत्रुओंका नाश और उच्चाटन करनेवाला कर्म बतलाया है। 'चक्षुष्पा०' (२।१६) इत्यादि मन्त्र अथवा चाक्षुषी-जपसे मनुष्य अपनी खोयी हुई नेत्र-ज्योतिको पुनः पा लेता है। 'उपयुञ्जत०' इत्यादि अनुवाक अन्नकी प्राप्ति करानेवाला है। 'तनूपा अग्नेऽसि०' (३।१७) इत्यादि मन्त्रद्वारा दूर्वाका होम करनेसे मनुष्यका संकट दूर हो जाता है। 'भेषजमसि०' (३।५९) इत्यादि मन्त्रसे दधि एवं घृतका हवन किया जाय तो यह पशुओंपर आनेवाली महामारी रोगोंको दूर कर देता है। 'त्र्यम्बक

मन्त्रसे बीज बोने और फसल काटनेके समय होम करनेपर धनकी प्राप्ति होती है। 'अश्वावतीर्गोमतीन उषासो०' (३४। ४०) मन्त्रसे पायसका होम करनेसे शान्तिकी प्राप्ति होती है। 'तस्मा अर गमाम०' (३६। १६) इत्यादि मन्त्रसे होम करनेपर बन्धनग्रस्त मनुष्य मुक्त हो जाता है। 'युवा सुवासा०' (तै० ब्रा० ३। ६। १३) इत्यादि मन्त्रसे हवन करनेपर उत्तम वस्त्रोंकी प्राप्ति होती है। 'मुञ्चन्तु मा शपथ्यात्०' (१२। ९०) इत्यादि मन्त्रसे हवन करनेपर शाप या शपथ आदि समस्त किल्बिषोंका नाश होता है। 'मा मा हिंसी ज्जनिता०' (१२। १०२) इत्यादि मन्त्रसे घृतमिश्रित तिलोंका होम शत्रुओंका विनाश करनेवाला होता है। 'नमोऽस्तु सर्पेभ्यो०' (१३। ६) इत्यादि मन्त्रसे घृतका होम एवं 'कृणुष्व पाज०' (१३। ९) इत्यादि मन्त्रसे खीरका होम अभिचारका उपसंहार करनेवाला है। 'काण्डात् काण्डात्०' (१३। २०) इत्यादि मन्त्रसे दूर्वाकाण्डकी दस हजार आहुतियाँ देकर होता ग्राम या जनपदमें फैली हुई महामारीको शान्त करे। इससे रोगपीड़ित मनुष्य रोगसे और दुःखग्रस्त मानव दुःखसे छुटकारा पाता है। परशुराम! 'मधुमान्नो वनस्पति०' (१३। २९) इत्यादि मन्त्रसे उदुम्बरकी एक हजार समिधाओंका हवन करके मनुष्य धन प्राप्त करता है तथा महान् सौभाग्य एवं व्यवहारमें विजय लाभ करता है 'अपां गम्भन्त्सीद मा त्वा०' (वा० १३। ३०) इत्यादि मन्त्रसे हवन करके मनुष्य निश्चय ही पर्जन्यदेवसे वर्षा करा सकता है। धर्मज्ञ परशुराम! 'अपः पिबन्नोषधी०' (१४। ८) इत्यादि मन्त्रसे दधि, घृत एवं मधुका हवन करके यजमान तत्काल महावृष्टि करवाता है। 'नमस्ते रुद्र०' (१६। १) इत्यादि मन्त्रसे आहुति दी जाय तो यह कर्म समस्त उपद्रवोंका नाशक, सर्वशान्तिदायक तथा महापातकोंका निवारक कहा गया है। 'अध्यवोचदधिवक्ता०' (१६। ५) इत्यादि मन्त्रसे आहुति देनेपर व्याधिग्रस्त मनुष्यकी रक्षा होती है। इस मन्त्रसे किया गया हवन राक्षसोंका नाशक, कीर्तिकारक तथा दीर्घायु एवं पुष्टिका वर्धक है। मार्गमें यह मन्त्र स्मरण करते हुए इसका जप करनेवाला राहगीर सुखी होता है। धर्मज्ञ भृगुनन्दन! 'असौ यस्ताम्रः०' (१६। ६)—इसका पाठ करते हुए नित्य प्रातःकाल एवं सायंकाल आलस्यरहित होकर भगवान् सूर्यका उपस्थान करे। इससे वह अक्षय अन्न एवं दीर्घ आयु प्राप्त करता है। 'प्रमुञ्च धन्वन्०' (१६। ९–१४) इत्यादि छः मन्त्रोंसे किया गया आयुधोंका अभिमन्त्रण युद्धमें शत्रुओंके लिये भयदायक है, इसमें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। 'मा नो महान्तम्०' (१६। १५) इत्यादि मन्त्रका जप एवं होम बालकोंके लिये शान्तिकारक होता है। 'नमो हिरण्यबाहवे०' (१६। १७) इत्यादि सात अनुवाकोंसे कड़ुए तेलमें मिलायी गयी राईकी आहुति दे तो वह शत्रुओंका नाश करनेवाली होती है। 'नमो व किरिकेभ्यो०' (१६। ४६)—इस अर्धमन्त्रसे एक लाख कमलपुष्पों का हवन करके मनुष्य राज्यलक्ष्मी प्राप्त कर लेता है तथा बिल्वफलोंसे उतनी ही आहुतियाँ देनेपर उसे सुवर्णराशिकी उपलब्धि होती है। 'इमा रुद्राय०' (१६। ४८) मन्त्रसे तिलोंका होम करनेपर धनकी प्राप्ति होती है। एवं इसी मन्त्रसे घृतसिक्त दूर्वाका हवन करनेपर मनुष्य समस्त व्याधियों से मुक्त होता है। परशुराम! 'आशुः शिशानः०' (१७। ३३) —यह मन्त्र आयुधोंकी रक्षा एवं संग्राममें सम्पूर्ण शत्रुओंका विनाश करनेवाला है। धर्मज्ञ द्विजश्रेष्ठ! 'वाजश्च मे०' (१८। १५–१९) इत्यादि पाँच मन्त्रोंसे घृतकी एक हजार आहुतियाँ दे। इससे मनुष्य नेत्ररोगसे मुक्त हो जाता है। 'शं नो वनस्पते०' (१९। ३८) इस मन्त्रसे घरमें आहुति देनेपर वास्तुदोषका नाश होता है। 'अग्न आयूंषि०' (१९। ३८) इत्यादि मन्त्रसे घृतका हवन करके मनुष्य किसीका द्वेषपात्र नहीं होता। 'अपां फेनेन०' (१९। ७१) मन्त्रसे लाजाका होम करके योद्धा विजय प्राप्त करता है। 'भद्रा उत प्रशस्तयो०' (१९। ३०) इत्यादि मन्त्रके जपसे इन्द्रियहीन अथवा दुर्बलेन्द्रिय मनुष्य समस्त इन्द्रियोंकी शक्तिसे सम्पन्न हो जाता है। 'अग्निश्च पृथिवी च०' (२६। १) इत्यादि मन्त्र उत्तम वशीकरण है। 'अध्वना०' (५। ३३) आदि मन्त्रका जप करनेवाला मनुष्य व्यवहार (मुकदमे) में विजयी होता है। कार्यके आरम्भमें 'ब्रह्म क्षत्रं पवते०' (१९। ५) इत्यादि मन्त्रका जप सिद्धि प्रदान करता है। 'संवत्सरोऽसि०' (२७। ४५) इत्यादि मन्त्रसे घृतकी एक लाख आहुतियाँ देनेवाला रोगमुक्त हो जाता है। 'वसुं कृण्वन्०' (२९। ३७) इत्यादि मन्त्र संग्राममें विजय दिलानेवाला है। 'इन्द्रोऽग्निर्धर्म०' मन्त्र युद्धमें धर्मयुक्त विजयकी प्राप्ति कराता है। 'धन्वना गा०' (२९। ३९) मन्त्रका धनुष ग्रहण करनेके समय जप करना उत्तम माना गया है। 'यजीत०'—यह मन्त्र धनुषकी प्रत्यञ्चाको अभिमन्त्रित करनेके लिये है, ऐसा जानना चाहिये। 'अहिरिव भोगैः०' (२९। ५१) मन्त्रका बाणोंको अभिमन्त्रित

हवन करे। फिर शेष घृतसे मेखलाबन्ध (करधनी आदि) का सेचन करे। यह मेखलाबन्ध ऐसी स्त्रियोंको धारण करावे, जिनके गर्भ गिर जाते रहे हों। तदनन्तर बालकके उत्पन्न होनेपर उसे पूर्वोक्त मन्त्रसे अभिमन्त्रित मणि पहनावे। 'सोम राजानम्०' (९१) मन्त्रका जप करनेसे रोगी व्याधियोंसे छुटकारा पाता है। गव-सामका प्रयोग करनेवालेको कभी सर्पोंसे भय नहीं प्राप्त होता। ब्राह्मण 'मा पापत्वाय नो ०' (९१८)—इस मन्त्रसे सहस्र आहुतियाँ देकर शतावरीयुक्त मणि बाँधनेसे शस्त्रभयको नहीं प्राप्त होता। 'दीर्घतमसोऽर्क ०'—इस साम मन्त्रसे हवन करनेपर प्रचुर अन्नकी प्राप्ति होती है। 'समन्या यन्ति ०' (६०७)—इस सामका जप करनेवाला प्याससे नहीं मर सकता। 'त्वमिमा ओषधी ०' (६०४)—इस मन्त्रका जप करनेसे मनुष्य कभी व्याधिग्रस्त नहीं होता। मार्गमें 'देवव्रत-साम' का जप करके मानव भयसे छुटकारा पा जाता है। 'यदिन्द्रो अनुनयत्०' (१४८)—यह मन्त्र हवन करनेपर सौभाग्यकी वृद्धि करता है। परशुराम! 'भगो न चित्रो०' (४४९)—इस मन्त्रका जप करके नेत्रोंमें लगाया गया अञ्जन हितकारक एवं सौभाग्यवर्द्धक होता है, इसमें अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। 'इन्द्र'—इस पदसे प्रारम्भ होनेवाले मन्त्रवर्गका जप करे। इससे सौभाग्यकी वृद्धि होती है। 'परि प्रिया दिवः कवि ०' (४७६)—यह मन्त्र, जिसे प्राप्त करनेकी इच्छा हो, उस स्त्रीको सुनावे। परशुराम! ऐसा करनेसे वह स्त्री उसे चाहने लगती है, इसमें अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। 'रथन्तर-साम' एवं 'वामदेव्य-साम' ब्रह्मतेजकी वृद्धि करनेवाले हैं। 'इन्द्रमिद्गाथिनो०' (१९८) इत्यादि मन्त्रका जप करके घृतमें मिलाया हुआ बचा चूर्ण प्रतिदिन बालकको खिलाये। इससे वह श्रुतिधर हो जाता है, अर्थात् एक बार सुननेसे ही उसे शास्त्रकी पंक्तियाँ याद हो जाती हैं। 'रथन्तर-साम' का जप एवं उसके द्वारा होम करके पुरुष निस्सन्देह पुत्र प्राप्त कर लेता है। 'मयि श्री ०' (मयि वर्चो अथो०) (६०२)—यह मन्त्र लक्ष्मीकी वृद्धि करनेवाला है। इसका जप करना चाहिये। प्रतिदिन 'वैरूप्याष्टक' (वैरूप्य सामक आठ मन्त्र) का पाठ करनेवाला लक्ष्मीकी प्राप्ति करता है। 'सामाष्टक' का प्रयोग करनेवाला समस्त कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य प्रतिदिन प्रातःकाल एवं सायंकाल आलस्यरहित होकर 'गाव्यो षु णो यथा०' (१८६)—इस मन्त्रसे गौओंका उपस्थान करता है, उसके घरमें गौएँ सदा बनी रहती हैं। 'वात आ वातु भेषजम्०' (१८४) मन्त्रसे एक द्रोण घृतमिश्रित यवोंका विधिपूर्वक होम करके मनुष्य मारी महामारीको नष्ट कर देता है। 'प्र दैवोदासो० (५१) आदि सामसे तिलोंका होम करके मनुष्य अभिचार कर्मको शान्त कर देता है। 'अभि त्वा शूर नोनुमो०' (२३३)—इस सामको अन्तमें वषट्कारसे संयुक्त करके [इससे वासक (अडूसा) वृक्षकी एक हजार समिधाओंका होम युद्धमें विजयकी प्राप्ति करानेवाला है।] उसके साथ 'वामदेव्य साम' का सहस्र बार जप और उसके द्वारा होम किया जाय तो वह युद्धमें विजयदायक होता है। विद्वान् पुरुष सुन्दर पिष्टमय हाथी, घोड़े एवं मनुष्योंका निर्माण करे। फिर शत्रुपक्षके प्रधान-प्रधान वीरोंको लक्ष्यमें रखकर उन पसीजे हुए पिष्टमय पुरुषोंके छुरेसे टुकड़े-टुकड़े कर डाले। तदनन्तर मन्त्रवेत्ता पुरुष उन्हें सरसोंके तेलमें भिगोकर 'अभि त्वा शूर नोनुमो०'(२३३)—इस मन्त्रसे उनका क्रोधपूर्वक हवन करे। बुद्धिमान् पुरुष यह अभिचार-कर्म करके संग्राममें विजय प्राप्त करता है। गारुड, वामदेव्य, रथन्तर एवं बृहद्रथ-साम निस्सन्देह समस्त पापोंका नाशन करनेवाले कहे गये हैं॥ १—२४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'साम विधान' नामक दो सौ इकसठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २६१॥

दो सौ बासठवाँ अध्याय

अथर्व विधान—अथर्ववेदोक्त मन्त्रोंका विभिन्न कर्मोंमें विनियोग

पुष्कर कहते हैं—परशुराम! 'सामविधान' कहा गया। अब मैं 'अथर्वविधान' का वर्णन करूँगा। शान्तातीय गणके उद्देश्यसे हवन करके मानव शान्ति प्राप्त करता है। भैषज्यगणके उद्देश्यसे होम करके होता समस्त रोगोंको दूर करता है। त्रिसप्तीयगणके उद्देश्यसे आहुतियाँ देनेवाला सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है। अभयगणके उद्देश्यसे होम करनेपर मनुष्य किसी स्थानपर भी भय नहीं प्राप्त करता। परशुराम! अपराजितगणके उद्देश्यसे हवन करनेवाला कभी पराजित नहीं होता। आयुष्यगणके उद्देश्यसे आहुतियाँ देकर मानव दुर्मृत्युको दूर कर देता है। स्वस्त्ययनगणके उद्देश्यसे हवन

सूक्तके एक-एक मन्त्रके साथ श्रीविष्णुको फल समर्पित करके पुरुष सम्पूर्ण कामनाओंका भागी होता है। 'पुरुषसूक्त'के जपसे महापातकों और उपपातकोंका नाश हो जाता है। कृच्छ्रव्रत करके शुद्ध हुआ मनुष्य स्नानपूर्वक 'पुरुषसूक्त'का जप एवं होम करके सब कुछ पा लेता है ॥ ४-६½ ॥

अठारह शान्तियोंमें समस्त उत्पातोंका उपसंहार करनेवाली अमृता, अभया और सौम्या—ये तीन शान्तियाँ सर्वोत्तम हैं। 'अमृता शान्ति' सर्वदैवत्या, 'अभया' ब्रह्मदैवत्या एवं 'सौम्या' सर्वदैवत्या है। इनमेंसे प्रत्येक शान्ति सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाली है। भृगुश्रेष्ठ! 'अभया' शान्तिके लिये वरुणवृक्षके मूलभागकी मणि बनानी चाहिये। 'अमृता'शान्तिके लिये दूर्वामूलकी मणि एवं 'सौम्या'शान्तिके लिये शङ्खमणि धारण करे। इनके लिये उन-उन शान्तियोंके देवताओंसे सम्बद्ध मन्त्रोंको सिद्ध करके मणि बाँधनी चाहिये। ये शान्तियाँ दिव्य, आन्तरिक्ष एवं भौम उत्पातोंका शमन करनेवाली हैं। 'दिव्य', 'आन्तरिक्ष' और 'भौम'—यह तीन प्रकारका अद्भुत उत्पात बताया जाता है, सुनो। ग्रहों एवं नक्षत्रोंकी विकृतिसे होनेवाले उत्पात 'दिव्य' कहलाते हैं। अब 'आन्तरिक्ष' उत्पातका वर्णन सुनो। उल्कापात, दिग्दाह, परिवेश, सूर्यपर घेरा पड़ना, गन्धर्व नगरका दर्शन एवं विकारयुक्त वृष्टि—ये अन्तरिक्ष-सम्बन्धी उत्पात हैं। भूमिपर एवं जंगम प्राणियोंसे होनेवाले उपद्रव तथा भूकम्प—ये 'भौम' उत्पात हैं। इन त्रिविध उत्पातोंके दीखनेके बाद एक सप्ताहके भीतर यदि वर्षा हो जाय तो वह 'अद्भुत' निष्फल हो जाता है। यदि तीन वर्षतक अद्भुत उत्पातकी शान्ति नहीं की गयी तो वह लोकके लिये भयकारक होता है। जब देवताओंकी प्रतिमाएँ नाचती, काँपती, जलती, शब्द करती, रोती, पसीना बहाती या हँसती हैं, तब प्रतिमाओंके इस विकारकी शान्तिके लिये उनका पूजन एवं प्राजापत्य होम करना चाहिये। जिस राष्ट्रमें बिना जलाये ही घोर शब्द करती हुई आग जल उठती है और ईंधन डालनेपर भी प्रज्वलित नहीं होती, वह राष्ट्र राजाओंके द्वारा पीड़ित होता है ॥ ७-१६ ॥

भृगुनन्दन! अग्नि-सम्बन्धी विकृतिकी शान्तिके लिये अग्निदैवत्य मन्त्रोंसे हवन बताया गया है। जब वृक्ष असमयमें ही फल देने लगें तथा दूध और रक्त बहावें तो वृक्षजनित भौम-उत्पात होता है। वहाँ शिवका पूजन करके इस उत्पातकी शान्ति करावे। अतिवृष्टि और अनावृष्टि—दोनों ही दुर्भिक्षका कारण मानी गयी हैं। वर्षा ऋतुके सिवा अन्य ऋतुओंमें तीन दिनतक अनवरत वृष्टि होनेपर उसे भयजनक जानना चाहिये। पर्जन्य, चन्द्रमा एवं सूर्यके पूजनसे वृष्टि-सम्बन्धी वैकृत्य (उपद्रव)का विनाश होता है। जिस नगरसे नदियाँ दूर हट जाती हैं या अत्यधिक समीप चली आती हैं और जिसके सरोवर एवं झरने सूख जाते हैं, वहाँ जलाशयोंके इस विकारको दूर करनेके लिये वरुणदेवता-सम्बन्धी मन्त्रका जप करना चाहिये। जहाँ स्त्रियाँ असमयमें प्रसव करें, समयपर प्रसव न करें, विकृत गर्भको जन्म दें या युग्म संतान आदि उत्पन्न करें, वहाँ स्त्रियोंके प्रसव-सम्बन्धी वैकृत्यके निवारणार्थ साध्वी स्त्रियों और ब्राह्मण आदिका पूजन करे ॥ १७-२२½ ॥

जहाँ घोड़ी, हथिनी या गौ एक साथ दो बच्चोंको जनती हैं या विकारयुक्त विजातीय संतानको जन्म देती हैं, छः महीनोंके भीतर प्राणत्याग कर देती हैं अथवा विकृत गर्भका प्रसव करती हैं, उस राष्ट्रको शत्रुमण्डलसे भय होता है। पशुओंके इस प्रसव-सम्बन्धी उत्पातकी शान्तिके उद्देश्यसे होम, जप एवं ब्राह्मणोंका पूजन करना चाहिये। जब अयोग्य पशु सवारीमें आकर जुत जाते हैं, योग्य पशु यानका वहन नहीं करते हैं एवं आकाशमें तूर्यनाद होने लगता है, उस समय महान् भय उपस्थित होता है। जब वन्यपशु एवं पक्षी ग्राममें चले जाते हैं, ग्राम्यपशु वनमें चले जाते हैं, स्थलचर जीव जलमें प्रवेश करते हैं, जलचर जीव स्थलपर चले जाते हैं, राजद्वारपर गीदड़ियाँ आ जाती हैं, मुर्गे प्रदोषकालमें शब्द करें, सूर्योदयके समय गीदड़ियाँ रुदन करें, कबूतर घरमें घुस आवें, मांसभोजी पक्षी सिरपर मँडराने लगें, साधारण मक्खी मधु बनाने लगें, कौए सबकी आँखोंके सामने मैथुनमें प्रवृत्त हो जायँ, दृढ़ प्रासाद, तोरण, उद्यान, द्वार, परकोटा और भवन अकारण ही गिरने लगें, तब राजाकी मृत्यु होती है। जहाँ धूल या धुएँसे दसों दिशाएँ भर जायँ, केतुका उदय, ग्रहण, सूर्य और चन्द्रमामें छिद्र प्रकट होना,—ये सब ग्रहों और नक्षत्रोंके विकार हैं। ये विकार जहाँ प्रकट होते हैं, वहाँ भयकी सूचना देते हैं। जहाँ अग्नि प्रदीप्त न हो, जलसे भरे हुए घड़े अकारण ही चूने लगें तो इन उत्पातोंके फल मृत्यु, भय और महामारी आदि होते हैं। ब्राह्मणों और देवताओंकी पूजासे तथा जप एवं होमसे इन उत्पातोंकी शान्ति होती है ॥ २३-३२ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'उत्पात-शान्तिका कथन' नामक दो सौ तिरसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २६३ ॥

आदिके लिये बलि दे। यथा—श्रियै नमः, हिरण्यकेश्यै नमः तथा वनस्पतये नमः। द्वारपर दक्षिणभागमें 'धर्ममयाय नमः', वामभागमें 'अधर्ममयाय नमः', घरके भीतर 'ध्रुवाय नमः', घरके बाहर 'मृत्यवे नमः' तथा जलाशयमें 'वरुणाय नमः'—इस मन्त्रसे बलि अर्पित करे। फिर घरके बाहर 'भूतेभ्यो नमः'—इस मन्त्रसे भूतबलि दे। घरके भीतर 'धनदाय नमः' कहकर कुबेरको बलि दे। इसके बाद मनुष्य घरसे पूर्वदिशामें 'इन्द्राय नमः, इन्द्रपुरुषेभ्यो नमः'—इस मन्त्रसे इन्द्र और इन्द्रके पार्षदपुरुषोंको बलि अर्पित करे। तत्पश्चात् दक्षिणमें 'यमाय नमः, यमपुरुषेभ्यो नमः'—इस मन्त्रसे, 'वरुणाय नमः, वरुणपुरुषेभ्यो नमः'—इस मन्त्रसे पश्चिममें, 'सोमाय नमः, सोमपुरुषेभ्यो नमः'—इस मन्त्रसे उत्तरमें और 'ब्रह्मणे वास्तोष्पतये नमः, ब्रह्मपुरुषेभ्यो नमः'—इस मन्त्रसे गृहके मध्यभागमें बलि दे। 'विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः'—इस मन्त्रसे घरके आकाशमें ऊपरकी ओर बलि अर्पित करे। 'स्थण्डिलाय नमः'—इस मन्त्रसे पृथ्वीपर बलि दे। तत्पश्चात् 'दिवाचारिभ्यो भूतेभ्यो नमः'—इस मन्त्रसे दिनमें बलि दे तथा 'रात्रिचारिभ्यो भूतेभ्यो नमः'—इस मन्त्रसे रात्रिमें बलि अर्पित करे। घरके बाहर जो बलि दी जाती है, उसे प्रतिदिन सायंकाल और प्रातःकाल देते रहना चाहिये। यदि दिनमें श्राद्ध-सम्बन्धी पिण्डदान किया जाय तो उस दिन सायंकालमें बलि नहीं देनी चाहिये॥ १३–२२॥

पितृ-श्राद्धमें दक्षिणाग्र कुशोंपर पहले पिताको, फिर पितामहको और उसके बाद प्रपितामहको पिण्ड देना चाहिये। इसी प्रकार पहले माताको, फिर पितामहीको, फिर प्रपितामहीको पिण्ड अथवा जल दे। इस प्रकार 'पितृयाग' करना चाहिये॥ २३½॥

बने हुए पाकमेंसे बलिवैश्वदेव करनेके बाद पाँच बलियाँ दी जाती हैं। इनमें सर्वप्रथम 'गो-बलि' है, किंतु यहाँ पहले 'काकबलि' का विधान किया गया है—

काकबलि

इन्द्रवारुणवायव्या याम्या वा नैर्ऋताश्च ये॥
ते काकाः प्रतिगृह्णन्तु इमं पिण्डं मयोद्धृतम्[1]।

'जो इन्द्र, वरुण, वायु, यम एवं निर्ऋति देवताकी दिशामें रहते हैं, वे काक मेरेद्वारा प्रदत्त यह पिण्ड ग्रहण करें।' इस मन्त्रसे काकबलि देकर निम्नाङ्कित मन्त्रसे कुत्तोंके लिये अन्नका ग्रास दे॥ २४-२५॥

कुक्कुर-बलि

विवस्वतः कुले जातौ द्वौ श्यामशबलौ शुनौ।
ताभ्यां पिण्डं प्रदास्यामि रक्षतां पथि मां सदा[2]॥

'श्याम और शबल (काले और चितकबरे) रंगवाले दो श्वान विवस्वान्‌के कुलमें उत्पन्न हुए हैं। मैं उन दोनोंके लिये पिण्ड प्रदान करता हूँ। वे लोक-परलोकके मार्गमें सदा मेरी रक्षा करें॥ २६॥

गो-ग्रास

सौरभेय्यः सर्वहिताः पवित्राः पापनाशनाः[3]।
प्रतिगृह्णन्तु मे ग्रासं गावस्त्रैलोक्यमातरः॥

'त्रैलोक्यजननी, सुरभिपुत्री गौएँ सबका हित करनेवाली, पवित्र एवं पापोंका विनाश करनेवाली हैं। वे मेरे द्वारा दिये हुए ग्रासको ग्रहण करें।' इस मन्त्रसे गो-ग्रास देकर स्वस्त्ययन करे। फिर याचकोंको भिक्षा दिलाये। तदनन्तर दीन प्राणियों एवं अतिथियोंका अन्नसे सत्कार करके गृहस्थ स्वयं भोजन करे॥ २७-२८॥

(अनाहिताग्नि पुरुष निम्नलिखित मन्त्रोंसे जलमें अन्नकी आहुतियाँ दे—)

ॐ भूः स्वाहा। ॐ भुवः स्वाहा। ॐ स्वः स्वाहा। ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा। ॐ देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा। ॐ पितृकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा। ॐ आत्मकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा। ॐ मनुष्यकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा। ॐ एनस एनसोऽवयजनमसि स्वाहा। यच्चाहमेनो विद्वांश्चकार यच्चाविद्वांस्तस्य सर्वस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा। अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा। ॐ प्रजापतये स्वाहा।

यह मैंने तुमसे विष्णुपूजा एवं बलिवैश्वदेवका वर्णन किया॥ २९॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'देवपूजा और वैश्वदेव-बलिका वर्णन' नामक दो सौ चौसठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २६४॥

---

१ उत्तरार्धके स्थानमें यह पाठान्तर उपलब्ध होता है—वायसाः प्रतिगृह्णन्तु भूमौ पिण्डं मयोज्झितम्।

२ कहीं-कहीं—द्वौ श्वानौ श्यामशबलौ वैवस्वतकुलोद्भवौ। ताभ्यामन्नं प्रदास्यामि स्यातामेतावहिंसकौ॥—ऐसा पाठ मिलता है।

३ पाठान्तर—पुण्यराशयः।

पुष्पदन्त आदि गणोंके अधिपतिपदपर प्रतिष्ठित किया है। विघ्नराज विनायकके द्वारा जो ग्रस्त है, उस पुरुषके लक्षण सुनो। वह स्वप्नमें बहुत अधिक स्नान करता है और वह भी गहरे जलमें। (उस अवस्थामें वह यह भी देखता है कि पानीका स्रोत मुझे बहाये लिये जाता है, अथवा मैं डूब रहा हूँ।) वह मूँड़ मुँड़ाये (और गेरुआ वस्त्र धारण करनेवाले) मनुष्योंको भी देखता है। कच्चे मांस खानेवाले गीधों एवं व्याघ्र आदि पशुओंकी पीठपर चढ़ता है। (चाण्डालों, गदहों और ऊँटोंके साथ एक स्थानपर बैठता है।) जाग्रत्-अवस्थामें भी जब वह कहीं जाता है तो उसे यह अनुभव होता है कि शत्रु मेरा पीछा कर रहे हैं। उसका चित्त विक्षिप्त रहता है। उसके द्वारा किये हुए प्रत्येक कार्यका आरम्भ निष्फल होता है। वह अकारण ही खिन्न रहता है। विघ्नराजकी सतायी हुई कुमारी कन्याको जल्दी वर ही नहीं मिलता है और विवाहिता स्त्री भी संतान नहीं पाती। श्रोत्रियको आचार्यपद नहीं मिलता। शिष्य अध्ययन नहीं कर पाता। वैश्यको व्यापारमें और किसानको खेतीमें लाभ नहीं होता है। राजाका पुत्र भी राज्यको हस्तगत नहीं कर पाता है। ऐसे पुरुषको (किसी पवित्र दिन एवं शुभ मुहूर्तमें) विधिपूर्वक स्नान कराना चाहिये। हस्त, पुष्य, अश्विनी, मृगशिरा तथा श्रवण नक्षत्रमें किसी भद्रपीठपर स्वस्तिवाचनपूर्वक बिठाकर उसे स्नान करानेका विधान है। पीली सरसों पीसकर उसे घीसे ढीला करके उबटन बनावे और उसको उस मनुष्यके सम्पूर्ण शरीरमें मले। फिर उसके मस्तकपर सर्वौषधिसहित सब प्रकारके सुगन्धित द्रव्यका लेप करे। चार कलशोंके जलमें उनमें सर्वौषधि छोड़कर स्नान कराये। अश्वशाला, गजशाला, वल्मीक (बाँबी), नदी-संगम तथा जलाशयसे लायी गयी पाँच प्रकारकी मिट्टी, गोरोचन, गन्ध (चन्दन, कुङ्कुम, अगुरु आदि) और गुग्गुल—ये सब वस्तुएँ भी उन कलशोंके जलमें छोड़े। आचार्य पूर्वदिशावर्ती कलशको लेकर निम्नाङ्कित मन्त्रसे यजमानका अभिषेक करे—

सहस्राक्षं शतधारमृषिभिः पावनं कृतम्॥
तेन त्वामभिषिञ्चामि पावमान्यः पुनन्तु ते।

'जो सहस्रों नेत्रों (अनेक प्रकारकी शक्तियों)से युक्त है, जिसकी सैकड़ों धाराएँ (बहुतसे प्रवाह) हैं और जिसे महर्षियोंने पावन बनाया है, उस पवित्र जलसे मैं (विनायकजनित उपद्रवसे ग्रस्त) तुम्हारा (उक्त उपद्रवकी शान्तिके लिये) अभिषेक करता हूँ। यह पावन जल तुम्हें पवित्र करे'॥ १-९½॥

(तदनन्तर दक्षिण दिशामें स्थित द्वितीय कलश लेकर नीचे लिखे मन्त्रको पढ़ते हुए अभिषेक करे—)

भगं ते वरुणो राजा भगं सूर्यो बृहस्पतिः।
भगमिन्द्रश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो ददुः॥

'राजा वरुण, सूर्य, बृहस्पति, इन्द्र, वायु तथा सप्तर्षिगण ने तुम्हें कल्याण प्रदान किया है'॥ १०½॥

(फिर तीसरा पश्चिम कलश लेकर निम्नाङ्कित मन्त्रसे अभिषेक करे—)

यत्ते केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्धनि॥
ललाटे कर्णयोरक्ष्णोरापस्तद्घ्नन्तु सर्वदा।

'तुम्हारे केशोंमें, सीमन्तमें, मस्तकपर, ललाटमें, कानोंमें और नेत्रोंमें भी जो दुर्भाग्य (या अकल्याण) है, उसे जलदेवता सदाके लिये शान्त करें'॥ ११½॥

(तत्पश्चात् चौथा कलश लेकर पूर्वोक्त तीनों मन्त्र पढ़कर अभिषेक करे।) इस प्रकार स्नान करनेवाले यजमानके मस्तकपर बायें हाथमें लिये हुए कुशोंको रखकर आचार्य उसपर गूलरकी सुवासे सरसोंका तेल उठाकर डाले॥ १२-१३॥

(उस समय निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़े—)

'ॐ मिताय स्वाहा। ॐ सम्मिताय स्वाहा। ॐ शालाय स्वाहा। ॐ कण्टकाय स्वाहा। ॐ कूष्माण्डाय स्वाहा। ॐ राजपुत्राय स्वाहा।

इस प्रकार स्वाहासमन्वित इन मितादि नामोंके द्वारा सरसोंके तेलकी मस्तकपर आहुति दे। मस्तकपर तेल डालना ही हवन है॥ १४-१५॥

(मस्तकपर उक्त होमके पश्चात् लौकिक अग्निमें भी स्थालीपाककी विधिसे चरु तैयार करके उक्त छः मन्त्रोंसे ही उसी अग्निमें हवन करे।) फिर होमशेष चरुद्वारा नम:पदयुक्त इन्द्रादि नामोंको बलि-मन्त्र बनाकर उनके उच्चारणपूर्वक उन्हें बलि अर्पित करे। तत्पश्चात् सूपमें सब ओर कुश बिछाकर, उसमें कच्चे-पके चावल, पीसे हुए तिलसे मिश्रित भात तथा भाँति-भाँतिके पुष्प, तीन प्रकारकी (गौड़ी, माध्वी तथा पैष्टी) सुरा, मूली, पूरी, मालपूआ, पीठेकी माला, दही मिश्रित अन्न, खीर, गीला

दो सौ पैंसठवाँ अध्याय

दिक्पालस्नानकी विधिका वर्णन

पुष्कर कहते हैं—परशुराम ! अब मैं सम्पूर्ण अर्थोंको सिद्ध करनेवाले शान्तिकारक स्नानका वर्णन करता हूँ, सुनो । बुद्धिमान् पुरुष नदीतटपर भगवान् श्रीविष्णु एवं ग्रहोंका स्नान कराये । ज्वरजनित पीड़ा आदिमें तथा विघ्नराज एवं ग्रहोंसे कष्ट पीड़ित होनेपर उस पीड़ासे छूटनेवाले पुरुषको देवालयमें स्नान करना चाहिये । विद्याप्राप्तिकी अभिलाषा रखनेवाले छात्रको किसी जलाशय अथवा घरमें ही स्नान करना चाहिये तथा विजयकी कामनावाले पुरुषके लिये तीर्थजलमें स्नान करना उचित है । जिस नारीका गर्भ स्खलित हो जाता हो, उसे पुष्करिणीमें स्नान कराये । जिस स्त्रीके नवजात शिशुकी जन्म लेते ही मृत्यु हो जाती हो, वह अशोकवृक्षके समीप स्नान करे । रजोदर्शनकी कामना करनेवाली स्त्री पुष्पोंसे शोभायमान उद्यानमें और पुत्राभिलाषिणी समुद्रमें स्नान करे । सौभाग्यकी कामनावाली स्त्रियोंको घरमें स्नान करना चाहिये । परंतु जो सब कुछ चाहते हों, ऐसे सभी स्त्री-पुरुषोंको भगवान् विष्णुके अर्चाविग्रहोंके समीप स्नान करना उत्तम है । श्रवण, रेवती एवं पुष्य नक्षत्रोंमें सभीके लिये स्नान करना प्रशस्त है ॥ १—४½ ॥

काम्यस्नान करनेवाले मनुष्यके लिये एक सप्ताह पूर्वमें ही उत्पन्न स्नानोंका विधान है । पुनर्नवा (गदहपूर्णा), रोचना, सनाग्र (शिशिर) एवं अगुरु वृक्षकी छाल, मधूक (महुआ), दो प्रकारकी हल्दी (गाँठहल्दी और दारुहल्दी), तगर, नागकेसर, अम्बरी, मञ्जिष्ठा (मजीठ), जटामाँसी, पाठक, कर्दम (दमनदम), प्रियंगु, सर्षप, कुष्ठ (कूट), ब्राह्मी, कुङ्कुम एवं मत्तभिमित पञ्चगव्य—इन सबको उबटन करके स्नान करे ॥ ५—७½ ॥

तदनन्तर तत्रपदका अष्टदल पद्म मण्डलका निर्माण करके पहले उसकी कर्णिका (या मध्यभाग) में विष्णुका, उनके दक्षिणभागमें ब्रह्माका तथा वामभागमें शिवका अङ्कन और पूजन करे । फिर पूर्व आदि दिशाओंके दलोंमें क्रमशः इन्द्र आदि दिक्पालोंका आयुधों एवं बन्धु-बान्धवोंसहित अङ्कन करे । तदनन्तर पूर्वादि दिशाओं और अग्नि आदि कोणोंमें भी दस स्नान मण्डलोंका निर्माण करे । उन मण्डलोंमें विष्णु, ब्रह्मा, शिव एवं इन्द्र आदि देवताओंका उनके आयुधोंसहित पूजन करके उनके उद्देश्यसे होम करे । प्रत्येक देवताके निमित्त समिधाओं, तिलों या घृतोंकी १०८ (एक सौ आठ) आहुतियाँ दे । फिर भद्र, सुभद्र, सिद्धार्थ, पुष्टिवर्धन, अमोघ, चित्रभानु, पर्जन्य एवं सुदर्शन—इन आठ कलशोंकी स्थापना करे और उनके भीतर अश्विनीकुमार, रुद्र, मरुद्गण, विश्वेदेव, दैत्य, वसुगण तथा मुनिगण एवं अन्य देवताओंका आवाहन करे । उनसे प्रार्थना करे कि 'आप सब लोग प्रसन्नतापूर्वक इन कलशोंमें स्थित हो जायँ ।' इसके बाद उन कलशोंमें जयन्ती, विजया, जया, शतावरी, शतपुष्पा, विष्णुक्रान्ता नामसे प्रसिद्ध अपराजिता, ज्योतिष्मती, अतिबला, उशीर, चन्दन, कस्तूरी, कपूर, बालक, पत्रक (पत्ते) त्वचा (छाल), जायफल, लवङ्ग आदि ओषधियाँ तथा मृत्तिका और पञ्चगव्य डाले । तत्पश्चात् ब्राह्मण स्नान करनेवाले मनुष्यको भद्रपीठपर बैठाकर इन कलशोंके जलसे पृथक्-पृथक् स्नान कराये । गन्धाभिषेकके समय भी उक्त देवताओंके उद्देश्यसे पृथक्-पृथक् होम करना चाहिये । तत्पश्चात् पूर्णाहुति देकर आचार्यको दक्षिणा दे । पूर्वकालमें देवगुरु बृहस्पतिने इन्द्रका इसी प्रकार अभिषेक किया था, जिससे वे दैत्योंका वध करनेमें समर्थ हो सके । यह मैंने संग्राम आदिमें विजय आदि प्रदान करनेवाला 'दिक्पालस्नान' कहा है ॥ ८—१८ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'दिक्पाल-स्नानकी विधिका वर्णन' नामक दो सौ पैंसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २६५ ॥

दो सौ छाछठवाँ अध्याय

विनायकस्नान विधि

पुष्कर कहते हैं—परशुराम ! जो मनुष्य विघ्नराज विनायकद्वारा पीड़ित है, उसके लिये सब मनोरथ साधक स्नानकी विधिका वर्णन करता हूँ । कर्ममें सिद्धि और उसकी सिद्धिके लिये विष्णु, शिव और ब्रह्माजीने विनायकको

पुष्पदन्त आदि गणोंके अधिपतिपदपर प्रतिष्ठित किया है। विघ्नप्रधान विनायकके द्वारा जो ग्रस्त है, उस पुरुषके लक्षण सुनो। वह स्वप्नमें बहुत अधिक स्नान करता है और वह भी गहरे जलमें। (उस अवस्थामें वह यह भी देखता है कि पानीका स्रोत मुझे बहाये लिये जाता है, अथवा मैं डूब रहा हूँ।) वह मूँड़ मुँड़ाये (और गेरुआँ वस्त्र धारण करनेवाले) मनुष्योंको भी देखता है। कच्चे मांस खानेवाले गीधों एवं व्याघ्र आदि पशुओंकी पीठपर चढ़ता है। (चाण्डालों, गदहों और ऊँटोंके साथ एक स्थानपर बैठता है।) जाग्रत्-अवस्थामें भी जब वह कहीं जाता है तो उसे यह अनुभव होता है कि शत्रु मेरा पीछा कर रहे हैं। उसका चित्त विक्षिप्त रहता है। उसके द्वारा किये हुए प्रत्येक कार्यका आरम्भ निष्फल होता है। वह अकारण ही खिन्न रहता है। विघ्नराजकी सतायी हुई कुमारी कन्याको जल्दी वर भी नहीं मिलता है और विवाहिता स्त्री भी संतान नहीं पाती। श्रोत्रियको आचार्यपद नहीं मिलता। शिष्य अध्ययन नहीं कर पाता। वैश्यको व्यापारमें और किसानको खेतीमें लाभ नहीं होता है। राजाका पुत्र भी राज्यको हस्तगत नहीं कर पाता है। ऐसे पुरुषको (किसी पवित्र दिन एवं शुभ मुहूर्तमें) विधिपूर्वक स्नान कराना चाहिये। हस्त, पुष्य, अश्विनी, मृगशिरा तथा श्रवण नक्षत्रमें किसी भद्रपीठपर स्वस्तिवाचनपूर्वक बिठाकर उसे स्नान करानेका विधान है। पीली सरसों पीसकर उसे घीसे ढीला करके उबटन बनावे और उसको उस मनुष्यके सम्पूर्ण शरीरमें मले। फिर उसके मस्तकपर सर्वौषधिसहित सब प्रकारके सुगन्धित द्रव्योंका लेप करे। चार कलशोंमें जल भरकर उनमें सर्वौषधि छोड़कर स्नान कराये। अश्वशाला, गजशाला, वल्मीक (बाँबी), नदी-संगम तथा जलाशयसे लायी गयी पाँच प्रकारकी मिट्टी, गोरोचन, गन्ध (चन्दन, कुङ्कुम, अगुरु आदि) और गुग्गुल—ये सब वस्तुएँ भी उन कलशोंके जलमें छोड़े। आचार्य पूर्वदिशावर्ती कलशको लेकर निम्नाङ्कित मन्त्रसे यजमानका अभिषेक करे—

सहस्राक्षं शतधारमृषिभिः पावनं कृतम्॥
तेन त्वामभिषिञ्चामि पावमान्यः पुनन्तु ते।

'जो सहस्रों नेत्रों (अनेक प्रकारकी शक्तियों)से युक्त है, जिसकी सैकड़ों धाराएँ (बहुतसे प्रवाह) हैं और जिसे महर्षियोंने पावन बनाया है, उस पवित्र जलसे मैं (विनायकजनित उपद्रवसे ग्रस्त) तुम्हारा (उक्त उपद्रवकी शान्तिके लिये) अभिषेक करता हूँ। यह पावन जल तुम्हें पवित्र करे'॥ १-९½॥

(तदनन्तर दक्षिण दिशामें स्थित द्वितीय कलश लेकर नीचे लिखे मन्त्रको पढ़ते हुए अभिषेक करे—)

भगं ते वरुणो राजा भगं सूर्यो बृहस्पतिः।
भगमिन्द्रश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो ददुः॥

'राजा वरुण, सूर्य, बृहस्पति, इन्द्र, वायु तथा सप्तर्षिगणने तुम्हें कल्याण प्रदान किया है'॥ १०½॥

(फिर तीसरा पश्चिम कलश लेकर निम्नाङ्कित मन्त्रसे अभिषेक करे—)

यत्ते केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्धनि॥
ललाटे कर्णयोरक्ष्णोरापस्तद्घ्नन्तु सर्वदा।

'तुम्हारे केशोंमें, सीमन्तमें, मस्तकपर, ललाटमें, कानोंमें और नेत्रोंमें भी जो दुर्भाग्य (या अकल्याण) है, उसे जलदेवता सदाके लिये शान्त करें'॥ ११½॥

(तत्पश्चात् चौथा कलश लेकर पूर्वोक्त तीनों मन्त्र पढ़कर अभिषेक करे।) इस प्रकार स्नान करनेवाले यजमानके मस्तकपर बायें हाथमें लिये हुए कुशोंको रखकर आचार्य उसपर गूलरकी स्रुवासे सरसोंका तेल उठाकर डाले॥ १२-१३॥

(उस समय निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़े—)

ॐ मिताय स्वाहा। ॐ सम्मिताय स्वाहा। ॐ शालाय स्वाहा। ॐ कण्टकाय स्वाहा। ॐ कूष्माण्डाय स्वाहा। ॐ राजपुत्राय स्वाहा।

इस प्रकार स्वाहासमन्वित इन मितादि नामोंद्वारा सरसोंके तेलकी मस्तकपर आहुति दे। मस्तकपर तेल डालना ही हवन है॥ १४-१६॥

(मस्तकपर उक्त होमके पश्चात् लौकिक अग्निमें भी स्थालीपाककी विधिसे चरु तैयार करके उक्त छः मन्त्रोंसे ही उसी अग्निमें हवन करे।) फिर होमशेष चरुद्वारा 'नमः' पदयुक्त इन्द्रादि नामोंसे बलि-मन्त्र बनाकर उनका उच्चारणपूर्वक उन्हें बलि अर्पित करे। तत्पश्चात् सूपमें सब ओर कुश बिछाकर, उसमें कच्चे पके चावल, पकाये हुए तिलमिश्रित भात तथा भाँति-भाँतिके पुष्प, तीन प्रकारकी (गौडी, माध्वी तथा पैष्टी) सुरा, मूली, पूरी, मालपुआ, पीठेकी मालाएँ, दही मिश्रित भात, खीर, मीठा

स्नान करनेपर आरोग्य तथा धात्रीफलके जलसे स्नान करनेपर उत्तम लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। तिल एवं श्वेत सर्षपके जलसे स्नान करनेपर लक्ष्मी, प्रियंगुजलसे स्नान करनेपर सौभाग्य, पद्म, उत्पल तथा कदम्बमिश्रित जलसे स्नान करनेपर लक्ष्मी एवं बलाश्रमके जलसे स्नान करनेपर बलकी प्राप्ति होती है। भगवान् श्रीविष्णुके चरणोदकद्वारा स्नान सब स्नानोंसे श्रेष्ठ है ॥ ७-१३½ ॥

एकाकी मनुष्य मनमें एक कामना लेकर विधिपूर्वक एक ही स्नान करे। वह 'आक्रन्दयति०' आदि सूक्तसे अपने हाथमें मणि (मनका) बाँधे। वह मणि बृहत्, पाठा, वचा, सोंठ, शङ्ख अथवा लोह आदिकी होनी चाहिये। समस्त कामनाओंके ईश्वर भगवान् श्रीहरि ही हैं, अतः उनके पूजनसे ही मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य घृतमिश्रित दुग्धसे स्नान कराके श्रीविष्णुका पूजन करता है, वह पित्तरोगका नाश कर देता है। उनके उद्देश्यसे पाँच मूँगोंकी बलि देकर मनुष्य अतिसारसे छुटकारा पाता है। भगवान् श्रीहरिको पञ्चगव्यसे स्नान करानेवाला वातरोगका नाश करता है। द्विस्नेह-द्रव्यसे स्नान कराके अतिशय श्रद्धापूर्वक उनका पूजन करनेवाला कफ-सम्बन्धी रोगसे मुक्त हो जाता है। घृत, तैल एवं मधुद्वारा कराया गया स्नान 'त्रिरस-स्नान' माना गया है, घृत और जलसे किया गया स्नान 'द्विस्नेह स्नान' है तथा घृत-तैल-मिश्रित जलका स्नान 'समल-स्नान' है। मधु, ईखका रस और दूध—इन तीनोंसे मिश्रित जलद्वारा किया गया स्नान 'त्रिमधुर-स्नान' है। घृत, इक्षुरस तथा शहद यह 'त्रिरस-स्नान' लक्ष्मीकी प्राप्ति करानेवाला है। कपूर, उशीर एवं चन्दनसे किया गया अनुलेप 'त्रिशुक्ल' कहलाता है। चन्दन, अगुरु, कपूर, कस्तूरी एवं कुङ्कुम—इन पाँचोंके मिश्रणसे किया गया अनुलेपन यदि विष्णुको अर्पित किया जाय तो वह सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाला है। कर्पूर, चन्दन एवं कुङ्कुम अथवा कस्तूरी, कपूर और चन्दन—यह 'त्रिसुगन्ध' समस्त कामनाओंको प्रदान करनेवाला है। जायफल, कपूर और चन्दन—ये 'शीतत्रय' माने गये हैं। पीला, मुग्गापंखी, शुक्ल, कृष्ण एवं लाल—ये पञ्च वर्ण कहे गये हैं ॥ १४-२४ ॥

श्रीहरिके पूजनमें उत्पल, कमल, जातीपुष्प तथा त्रिशीत उपयोगी होते हैं। कुङ्कुम, रक्त कमल और लाल उत्पल ये 'त्रिरक्त' कहे जाते हैं। श्रीविष्णुका धूप-दीप आदिसे पूजन करनेपर मनुष्योंको शान्तिकी प्राप्ति होती है। चार हाथके चौकोर कुण्डमें आठ या सोलह ब्राह्मण तिल, घी और चावलसे लक्षहोम या कोटिहोम करें। ग्रहोंकी पूजा करके गायत्री-मन्त्रसे उक्त होम करनेपर क्रमशः सब प्रकारकी शान्ति सुलभ होती है ॥ २५-२७ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'माहेश्वर-स्नान तथा लक्षकोटिहोम आदिका कथन' नामक दो सौ सरसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २६७ ॥

दो सौ अड़सठवाँ अध्याय

सांवत्सर-कर्म, इन्द्र-शचीकी पूजा एवं प्रार्थना, राजाके द्वारा भद्रकाली तथा अन्यान्य देवताओंके पूजनकी विधि, वाहन आदिका पूजन तथा नीराजना

पुष्कर कहते हैं—अब मैं राजाओंके करनेयोग्य सांवत्सर-कर्मका वर्णन करता हूँ। राजाको अपने जन्मनक्षत्रमें नक्षत्र-देवताका पूजन करना चाहिये। वह प्रत्येक मासमें, संक्रान्तिके समय सूर्य और चन्द्रमा आदि देवताओंकी अर्चना करे। अगस्त्य-ताराका उदय होनेपर अगस्त्यकी एवं चातुर्मास्यमें श्रीहरिका यजन करे। श्रीहरिके शयन और उत्थापनकालमें, अर्थात् हरिशयनी एकादशी और हरिप्रबोधिनी एकादशीके अवसरपर, पाँच दिनतक उत्सव करे। भाद्रपदके शुक्लपक्षमें, प्रतिपदा तिथिको शिविरके पूर्वदिग्भागमें इन्द्र पूजाके लिये भवन निर्माण कराये। उस भवनमें इन्द्रध्वज (पताका) की स्थापना करके वहाँ प्रतिपदासे लेकर अष्टमी तक शची और इन्द्रकी पूजा करे। अष्टमीको वाद्यघोषके साथ उस पताकायुक्त ध्वजदण्डका प्रवेश कराये। फिर एकादशीको उपवास रखकर द्वादशीको ध्वजका उत्तोलन करे। फिर एक वस्त्रपर वस्त्रादिसे युक्त देवराज इन्द्र एवं शचीकी स्थापना करके उनका पूजन करे ॥ १-६ ॥

(इन्द्रदेवकी इस प्रकार प्रार्थना करे—)

'असुरविजयी वृत्रनाशन पाकशासन ! महाभाग देवदेव ! आपका अभ्युदय हो। आप कृपापूर्वक इस भूतलपर पधारे हैं। आप सनातन प्रभु सम्पूर्ण भूतोंके हितमें तत्पर रहनेवाले,

प्रशान्त तेजसे सम्पन्न, विराट् पुरुष तथा यज्ञ एवं विजयकी वृद्धि करनेवाले हैं। आप उत्तम वृष्टि करनेवाले इन्द्र हैं, समस्त देवता आपका तेज बढ़ायें। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, कार्तिकेय, विनायक, आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण, साध्यगण, भृगुकुलोत्पन्न महर्षि, दिशाएँ, मरुद्गण, लोकपाल, ग्रह, यक्ष, पर्वत, नदियाँ, समुद्र, श्रीदेवी, भूदेवी, गौरी, चण्डिका एवं सरस्वती—ये सभी आपके तेजको प्रदीप्त करें। शचीपते इन्द्र! आपकी जय हो। आपकी विजयसे मेरा भी सदा शुभ हो। आप नरेशों, ब्राह्मणों एवं सम्पूर्ण प्रजाओंपर प्रसन्न होइये। आपके कृपाप्रसादसे यह पृथ्वी सदा सस्यसम्पन्न हो। सबका विघ्नरहित कल्याण हो तथा ईतियाँ पूर्णतया शान्त हों।' इस अभिप्रायवाले मन्त्रसे इन्द्रकी अर्चना करनेवाला भूपाल पृथ्वीपर विजय प्राप्त करके स्वर्गको प्राप्त होता है ॥ ६-१२½ ॥

आश्विन मासके शुक्लपक्षकी अष्टमी तिथिको किसी पटपर भद्रकालीका चित्र अङ्कित करके राजा विजयकी प्राप्तिके लिये उसकी पूजा करे। साथ ही आयुध, धनुष, ध्वज, छत्र, राजचिह्न (मुकुट, छत्र तथा चँवर आदि) तथा अस्त्र-शस्त्र आदिकी पुष्प आदि उपचारोंसे पूजा करे। रात्रिके समय जागरण करके देवीको बलि अर्पित करे। दूसरे दिन पुनः पूजन करे। (पूजाके अन्तमें इस प्रकार प्रार्थना करे—) 'भद्रकालि, महाकालि, दुर्गतिनाशिनि दुर्गे, त्रैलोक्यविजयिनि चण्डिके! मुझे सदा शान्ति और विजय प्रदान कीजिये' ॥ १३-१५½ ॥

अब मैं 'नीराजन'की विधि कहता हूँ। ईशानकोणमें ध्वजमन्दिरका निर्माण कराये। वहाँ तीन दरवाजे लगाकर मन्दिरके गर्भगृहमें सदा देवताओंकी पूजा करे। जब सूर्य चित्रा नक्षत्रको छोड़कर स्वाती नक्षत्रमें प्रवेश करते हैं, उस समयसे प्रारम्भ करके जबतक स्वातीपर सूर्य स्थित रहें, तबतक देवपूजन करना चाहिये। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, अग्नि, वायु, विनायक, कार्तिकेय, वरुण, विश्रवाके पुत्र कुबेर, यम, विश्वेदेव एवं कुमुद, ऐरावत, पद्म, पुष्पदन्त, वामन, सुप्रतीक, अञ्जन और नील—इन आठ दिग्गजोंकी गन्ध आदिसे पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर पुरोहित घृत, समिधा, सफेद सरसों एवं तिलोंका होम करे। आठ कलशोंमें पूजा करके उनके जलसे उत्तम हाथियोंको स्नान कराये। तदनन्तर घोड़ोंको स्नान कराये और उन सबको ग्रास दे। फिर हाथियोंको तोरणद्वारसे बाहर निकाले, परंतु गोपुर आदिका उल्लङ्घन न कराये। तदनन्तर सब लोग बाहर निकलें और राजचिह्नोंकी पूजा घरमें ही की जाय। शतभिषा नक्षत्रमें वरुणका पूजन करके रात्रिके समय भूतोंको बलि दे। जब सूर्य विशाखा नक्षत्रपर जाय, उस समय राजा आश्रममें निवास करे। उस दिन वाहनोंको विशेषरूपसे अलंकृत करना चाहिये। राजचिह्नोंकी पूजा करके उन्हें उनके अधिकृत पुरुषोंके हाथमें दे। धर्मज्ञ परशुराम! फिर कालज्ञ ज्यौतिषी हाथी, अश्व, छत्र, खड्ग, धनुष, दुन्दुभि, ध्वजा एवं पताका आदि राजचिह्नोंको अभिमन्त्रित करे। फिर उन सबको अभिमन्त्रित करके हाथीकी पीठपर रखे। ज्यौतिषी और पुरोहित भी हाथीपर आरूढ़ हों। इस प्रकार अभिमन्त्रित वाहनोंपर आरूढ होकर तोरणद्वारसे निष्क्रमण करे। इस प्रकार गजद्वारसे बाहर निकलकर राजा हाथीकी पीठपर स्थित रहकर विधिपूर्वक बलि-वितरण करे। फिर नरेश सुसज्जित होकर चतुरङ्गिणी सेनाके साथ मङ्गलवाद्योंके द्वारा जयघोष कराते हुए दिग्दिगन्तको प्रकाशित करनेवाले जलते मशालोंद्वारा नगरकी तीन बार परिक्रमा करे। इस प्रकार पूजन करके राजा जनसाधारणको विदा करके राजभवनको प्रस्थान करे। मैंने यह समस्त शत्रुओंका विनाश करनेवाली 'नीराजना' नामक शान्ति बतलायी है, जो राजाको अभ्युदय प्रदान करनेवाली है ॥ १६-३१ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'नीराजनविधिका वर्णन' नामक दो सौ अड़सठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २६८ ॥

दो सौ उनहत्तरवाँ अध्याय

छत्र, अश्व, ध्वजा, गज, पताका, खड्ग, कवच और दुन्दुभिकी प्रार्थनाके मन्त्र

पुष्कर कहते हैं—परशुराम! अब मैं छत्र आदि राजोपकरणोंके प्रार्थना-मन्त्र बतलाता हूँ, जिनसे उनकी पूजा करके नरेशगण विजय प्राप्त करते हैं ॥ १ ॥

छत्र-प्रार्थना मन्त्र

'महामेघ छत्रदेव! तुम हिम, कुन्द एवं चन्द्रमाके समान श्वेत कान्तिसे सुशोभित और पाण्डुरवर्णधारीकी

आभावाले हो । ब्रह्माजीके सत्यवचन तथा चन्द्र, वरुण और सूर्यके प्रभावसे तुम सतत वृद्धिशील होओ । जिस प्रकार मेघ मङ्गलके लिये इस पृथ्वीको आच्छादित करता है, उसी प्रकार तुम विजय एवं आरोग्यकी वृद्धिके लिये राजाको आच्छादित करो' ॥ १— ॥

अश्व प्रार्थना मन्त्र

'अश्व ! तुम गन्धर्वकुलमें उत्पन्न हुए हो, अतः अपने कुलको दूषित करनेवाले न होना । ब्रह्माजीके सत्यवचनसे तथा सोम, वरुण एवं अग्निदेवके प्रभावसे, सूर्यके तेजसे, मुनिवरोंके तपसे, रुद्रके ब्रह्मचर्यसे और वायुके बलसे तुम सदा आगे बढ़ते रहो । याद रखना, तुम अश्वराज उच्चैःश्रवाके पुत्र हो, अपने साथ ही प्रकट हुए कौस्तुभरत्न का स्मरण करो । (तुम्हें भी उसीकी भाँति अपने यशसे प्रकाशित होते रहना चाहिये ।) ब्रह्मघाती, पितृघाती, मातृहन्ता, भूमिके लिये मिथ्याभाषण करनेवाला तथा युद्धसे पराङ्मुख क्षत्रिय जितनी शीघ्रतासे अधोगतिको प्राप्त होता है, तुम भी युद्धसे पीठ दिखानेपर उसी दुर्गतिको प्राप्त हो सकते हो, किंतु तुम्हें वैसा पाप या कलङ्क न लगे । तुरंगम ! तुम युद्धके पथपर विकारको न प्राप्त होना । समराङ्गणमें शत्रुओंका विनाश करते हुए अपने स्वामीके साथ तुम सुखी होओ' ॥ ४–८½ ॥

ध्वजा प्रार्थना-मन्त्र

'महापराक्रमके प्रतीक इन्द्रध्वज ! भगवान् नारायणके ध्वज विनतानन्दन पक्षिराज गरुड तुममें प्रतिष्ठित हैं । वे सर्पशत्रु, विष्णुवाहन, कश्यपनन्दन तथा देवताओंसे हठात् अमृत छीन लानेवाले हैं । उनका शरीर विशाल और बल एवं वेग महान् है । वे अमृतभोगी हैं । उनकी शक्ति अप्रमेय है । वे युद्धमें दुर्जय रहकर देवशत्रुओंका संहार करनेवाले हैं । उनकी गति वायुके समान तीव्र है । वे गरुड तुममें प्रतिष्ठित हैं । देवाधिदेव भगवान् विष्णुने इन्द्रके लिये तुममें उन्हें स्थापित किया है, तुम सदा मुझे विजय प्रदान करो । मेरे बलको बढ़ाओ । घोड़े, कवच तथा आयुधों सहित हमारे योद्धाओंकी रक्षा करो और शत्रुओंको जलाकर भस्म कर दो' ॥ ९—१३ ॥

गज प्रार्थना मन्त्र

'कुमुद, ऐरावत, पद्म, पुष्पदन्त, वामन, सुप्रतीक, अञ्जन और नील—ये आठ देवयोनिमें उत्पन्न गजराज हैं । इनके ही पुत्र और पौत्र आठ वनोंमें निवास करते हैं । भद्र, मन्द, मृग एवं संकीर्णजातीय गज वन-वनमें उत्पन्न हुए हैं । हे महागजराज ! तुम अपनी योनिका स्मरण करो । वसुगण, रुद्र, आदित्य एवं मरुद्गण तुम्हारी रक्षा करें । गजेन्द्र ! अपने स्वामीकी रक्षा करो और अपनी मर्यादाका पालन करो । ऐरावतपर चढ़े हुए वज्रधारी देवराज इन्द्र तुम्हारे पीछे पीछे आ रहे हैं, वे तुम्हारी रक्षा करें । तुम युद्धमें विजय पाओ और सदा स्वस्थ रहकर आगे बढ़ो । तुम्हें युद्धमें ऐरावतके समान बल प्राप्त हो । तुम चन्द्रमासे कान्ति, विष्णुसे बल, सूर्यसे तेज, वायुसे वेग, पर्वतसे स्थिरता, रुद्रसे विजय और देवराज इन्द्रसे यश प्राप्त करो । युद्धमें दिग्गज दिशाओं और दिक्पालोंके साथ तुम्हारी रक्षा करें । गन्धर्वोंके साथ अश्विनीकुमार सब ओरसे तुम्हारा संरक्षण करें । मनु, वसु, रुद्र, वायु, चन्द्रमा, महर्षिगण, नाग, किंनर, यक्ष, भूत, प्रमथ, ग्रह, आदित्य, मातृकाओंसहित भूतेश्वर शिव, इन्द्र, देवसेनापति कार्तिकेय और वरुण तुममें अधिष्ठित हैं । वे हमारे समस्त शत्रुओंको भस्मसात् कर दें और राजा विजय प्राप्त करें' ॥ १४—२३ ॥

पताका प्रार्थना मन्त्र

'पताके ! शत्रुओंने सब ओर जो घातक प्रयोग किये हों, शत्रुओंके वे प्रयोग तुम्हारे तेजसे अभिहत होकर नष्ट हो जायँ । तुम जिस प्रकार कालनेमिवध एवं त्रिपुरसंहारके युद्धमें, हिरण्यकशिपुके संग्राममें तथा सम्पूर्ण दैत्योंके वधके समय सुशोभित हुई हो, आज उसी प्रकार सुशोभित होओ । अपने प्रणका स्मरण करो । इस नीले-श्वेत-वर्णवाली पताकाको देखकर राजाके शत्रु युद्धमें विविध भयकर व्याधियों एवं शस्त्रोंसे पराजित होकर शीघ्र नष्ट हो जायँ । तुम पूतना, रेवती, लेखा और कालरात्रि आदि नामोंसे प्रसिद्ध हो । पताके ! हम तुम्हारा आश्रय ग्रहण करते हैं, हमारे सम्पूर्ण शत्रुओंको दग्ध कर डालो । सर्वमेध महायज्ञमें देवाधिदेव भगवान् रुद्रने जगत्के सारतत्त्वसे तुम्हारा निर्माण किया था' ॥ २४—२८½ ॥

खड्ग प्रार्थना मन्त्र

'शत्रुसूदन खड्ग ! तुम इस बातको याद रखो कि नारायणके 'नन्दक' नामक खड्गकी दूसरी मूर्ति हो ।

नीलकमलदलके समान श्याम एवं कृष्णवर्ण हो। दुःस्वप्नोंका विनाश करनेवाले हो। प्राचीनकालमें स्वयम्भू भगवान् ब्रह्माने असि, विशसन, खड्ग, तीक्ष्णधार, दुरासद, श्रीगर्भ, विजय और धर्मपाल—ये तुम्हारे आठ नाम बताये हैं। कृत्तिका तुम्हारा नक्षत्र है, देवाधिदेव महेश्वर तुम्हारे गुरु हैं, सुवर्ण तुम्हारा शरीर है और जनार्दन तुम्हारे देवता हैं। खड्ग! तुम सेना एवं नगरसहित राजाकी रक्षा करो। तुम्हारे पिता देवश्रेष्ठ पितामह हैं। तुम सदा हमलोगोंकी रक्षा करो' ॥ २९—३३ ॥

कवच प्रार्थना मन्त्र

'हे वर्म! तुम रणभूमिमें कल्याणप्रद हो। आज मेरी सेनाको यश प्राप्त हो। निष्पाप! मैं तुम्हारे द्वारा रक्षा पानेके योग्य हूँ। मेरी रक्षा करो। तुम्हें नमस्कार है' ॥ ३४ ॥

दुन्दुभि प्रार्थना मन्त्र

'दुन्दुभे! तुम अपने घोषसे शत्रुओंका हृदय कम्पित करनेवाले हो, हमारे राजाकी सेनाओंके लिये विजयवर्धक बन जाओ। मोददायक दुन्दुभे! जैसे मेघकी गर्जनासे श्रेष्ठ हाथी हर्षित होते हैं, वैसे ही तुम्हारे शब्दसे हमारा हर्ष बढ़े। जिस प्रकार मेघकी गर्जना सुनकर स्त्रियाँ भयभीत हो जाती हैं, उसी प्रकार तुम्हारे नादसे युद्धमें उपस्थित हमारे शत्रु त्रस्त हो उठें' ॥ ३५—३७ ॥

इस प्रकार पूर्वोक्त मन्त्रोंसे राजोपकरणोंकी अर्चना करे एवं विजयकार्यमें उनका प्रयोग करे। दैवज्ञ राजपुरोहित रक्षा-बन्धन आदिके द्वारा राजाकी रक्षाका प्रबन्ध करे, प्रतिवर्ष विष्णु आदि देवताओं एवं राजाका अभिषेक करना चाहिये ॥ ३८-३९ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'छत्र आदिकी प्रार्थनाके मन्त्रका कथन' नामक दो सौ उनहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २६९ ॥

दो सौ सत्तरवाँ अध्याय

विष्णुपञ्जरस्तोत्रका कथन

पुष्कर कहते हैं—द्विजश्रेष्ठ परशुराम! पूर्वकालमें भगवान् ब्रह्माने त्रिपुरसंहारके लिये उद्यत शंकरकी रक्षाके लिये 'विष्णुपञ्जर' नामक स्तोत्रका उपदेश किया था। इसी प्रकार बृहस्पतिने बल दैत्यका वध करनेके लिये जानेवाले इन्द्रकी रक्षाके लिये उक्त स्तोत्रका उपदेश दिया था। मैं विजय प्रदान करनेवाले उस विष्णुपञ्जरका स्वरूप बतलाता हूँ, सुनो ॥ १-२ ॥

'मेरे पूर्वभागमें चक्रधारी विष्णु एवं दक्षिणभागमें गदाधारी श्रीहरि स्थित हैं। पश्चिमभागमें शार्ङ्गपाणि विष्णु और उत्तरभागमें नन्दक-खड्गधारी जनार्दन विराजमान हैं। भगवान् हृषीकेश विकोणोंमें एवं जनार्दन मध्यवर्ती अवकाशमें मेरी रक्षा कर रहे हैं। वाराहरूपधारी श्रीहरि भूमिपर तथा भगवान् नृसिंह आकाशमें प्रतिष्ठित होकर मेरा संरक्षण कर रहे हैं। जिसके किनारेके भागोंमें छुरे जुड़े हुए हैं, वह यह निर्मल 'सुदर्शनचक्र' घूम रहा है। यह जब प्रेत तथा निशाचरोंको मारनेके लिये चलता है, उस समय इसकी किरणोंकी ओर देखना किसीके लिये भी बहुत कठिन होता है। भगवान् श्रीहरिकी यह 'कौमोदकी' गदा सहस्रों ज्वालाओंसे प्रदीप्त पावकके समान उज्ज्वल है। यह राक्षस, भूत, पिशाच और डाकिनियोंका विनाश करनेवाली है। भगवान् वासुदेवके शार्ङ्गधनुषकी टंकार मेरे शत्रुभूत मनुष्य, कूष्माण्ड, प्रेत आदि और तिर्यग्योनिगत जीवोंका पूर्णतया संहार करे। जो भगवान् श्रीहरिकी खड्गधारारूपी उज्ज्वल ज्योत्स्नामें स्नान कर चुके हैं, वे मेरे समस्त शत्रु उसी प्रकार तत्काल शान्त हो जायँ, जैसे गरुडके द्वारा मारे गये सर्प शान्त हो जाते हैं ॥ ३—८ ॥

'जो कूष्माण्ड, यक्ष, राक्षस, प्रेत, विनायक, क्रूर मनुष्य, शिकारी पक्षी, सिंह आदि पशु एवं डँसनेवाले सर्प हों, वे सब-के-सब सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्णके शङ्खनादसे आहत हो सौम्यभावको प्राप्त हो जायँ। जो मेरी चित्तवृत्ति और स्मरणशक्तिका हरण करते हैं, जो मेरे बल और ओजका नाश करते हैं तथा जो मेरी कान्ति या तेजको विलुप्त करनेवाले हैं, जो उपभोग-सामग्रीका हरण करनेवाले तथा शुभ लक्षणोंका नाश करनेवाले हैं, वे कूष्माण्डगण विष्णुके सुदर्शन-चक्रके आघातसे आहत होकर विनष्ट हो जायँ। देवाधिदेव भगवान् वासुदेवके संकीर्तनसे मेरी बुद्धि, मन और इन्द्रियोंको स्वास्थ्यलाभ हो। मेरे आगे-पीछे, दायें-बायें तथा कोणवर्तिनी दिशाओंमें सर्व

जगत् जनार्दन श्रीहरिका निवास हो । इनके पूजनीय, मर्यादासे कभी च्युत न होनेवाले अनन्तरूप परमेश्वर जनार्दनके चरणोंमें प्रणत होनेवाला कभी दुःखी नहीं होता । जैसे भगवान् श्रीहरि परब्रह्म हैं, उसी प्रकार वे परमात्मा केशव भी जगत्स्वरूप हैं—इस सत्यके प्रभावसे तथा भगवान् अच्युतके नामकीर्तनसे मेरे त्रिविध पापोंका नाश हो जाय" ॥ १–१५ ॥*

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'विष्णुपञ्जरस्तोत्रका कथन' नामक दो सौ सत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २७० ॥

दो सौ एकहत्तरवाँ अध्याय

वेदोंके मन्त्र और शाखा आदिका वर्णन तथा वेदोंकी महिमा

पुष्कर कहते हैं—परशुराम ! वेदमन्त्र सम्पूर्ण विश्वपर अनुग्रह करनेवाले तथा चारों पुरुषार्थोंके साधक हैं । ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद—ये चार वेद हैं । इनके मन्त्रोंकी संख्या एक लाख है । ऋग्वेदकी एक शाखा 'सांख्यायन' और दूसरी शाखा 'आश्वलायन' है । इन दो शाखाओंमें एक सहस्र तथा ऋग्वेदीय ब्राह्मणभागमें दो सहस्र मन्त्र हैं । श्रीकृष्णद्वैपायन आदि महर्षियोंने ऋग्वेदको प्रमाण माना है । यजुर्वेदमें उन्नीस सौ मन्त्र हैं । उसके ब्राह्मणग्रन्थोंमें एक हजार मन्त्र हैं और शाखाओंमें एक हजार छियासी । यजुर्वेदमें मुख्यतया काण्वी, माध्यन्दिनी, कठी, माध्यकठी, मैत्रायणी, तैत्तिरीया एवं वैशम्पायनीया—ये शाखाएँ विद्यमान हैं । सामवेदमें कौथुमी और आथर्वणायनी (राणायनीया)—ये दो शाखाएँ मुख्य हैं । इसमें वेद, आरण्यक, उक्था और ऊह—ये चार गान हैं । सामवेदमें नौ हजार चार सौ पचीस मन्त्र हैं । वे ब्रह्मसे सम्बन्धित हैं । यहाँतक सामवेदका मान बताया गया ॥ १–७ ॥

अथर्ववेदमें सुमन्तु, जाजलि, श्लोकायनि, शौनक, पिप्पलाद और मुञ्जकेश आदि शाखाप्रवर्तक ऋषि हैं । इसमें सोलह हजार मन्त्र और सौ उपनिषद् हैं । व्यासरूपमें अवतीर्ण होकर भगवान् श्रीविष्णुने ही वेदोंकी शाखाओंका विभाग आदि किया है । वेदोंके शाखाभेद आदि इतिहास और पुराण सब विष्णुस्वरूप हैं । भगवान् व्याससे लोमहर्षण

श्रीविष्णुपञ्जरस्तोत्र

पुष्कर उवाच—

त्रिपुरं जघ्नुषः पूर्वं ब्रह्मणा विष्णुपञ्जरम् । शङ्करस्य द्विजश्रेष्ठ रक्षणाय निरूपितम् ॥
वागीशेन च शक्रस्य बलं हन्तुं प्रयास्यतः । तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि तत् त्वं शृणु जयादिमत् ॥
विष्णुः प्राच्यां स्थितश्चक्री हरिर्दक्षिणतो गदी । प्रतीच्यां शार्ङ्गधृग् विष्णुर्जिष्णुः खड्गी ममोत्तरे ॥
हृषीकेशो विकोणेषु तच्छिद्रेषु जनार्दनः । क्रोडरूपी हरिर्भूमौ नरसिंहोऽम्बरे मम ॥
क्षुरान्तममलं चक्रं भ्रमत्येतत् सुदर्शनम् । अस्यांशुमाला दुष्प्रेक्ष्या हन्तुं प्रेतनिशाचरान् ॥
गदा चेयं सहस्रार्चिः प्रदीप्तपावकोज्ज्वला । रक्षोभूतपिशाचानां डाकिनीनां च नाशनी ॥
शार्ङ्गविस्फूर्जितं चैव वासुदेवस्य मद्रिपून् । तिर्यङ्मनुष्यकूष्माण्डप्रेतादीन् हन्त्वशेषतः ॥
खड्गधारोज्ज्वलज्योत्स्नानिर्धूता ये समाहिताः । ते यान्तु शाम्यतां सद्यो गरुडेनेव पन्नगाः ॥
ये कूष्माण्डास्तथा यक्षा ये दैत्या ये निशाचराः । प्रेता विनायकाः क्रूरा मनुष्या जम्भगाः खगाः ॥
सिंहादयश्च पशवो दन्दशूकाश्च पन्नगाः । सर्वे भवन्तु ते सौम्याः कृष्णशङ्खरवाहताः ॥
चित्तवृत्तिहरा ये मे ये जनाः स्मृतिहारकाः । बलौजसां च हर्तारश्छायाविभ्रंशकाश्च ये ॥
ये चोपभोगहर्तारो ये च लक्षणनाशकाः । कूष्माण्डास्ते प्रणश्यन्तु विष्णुचक्ररवाहताः ॥
बुद्धिस्वास्थ्यं मनःस्वास्थ्यं स्वास्थ्यमैन्द्रियकं तथा । ममास्तु देवदेवस्य वासुदेवस्य कीर्तनात् ॥
पृष्ठे पुरस्तान्मम दक्षिणोत्तरे विकोणतश्चास्तु जनार्दनो हरिः । तमीड्यमीशानमनन्तमच्युतं जनार्दनं प्रणिपतितो न सीदति ।
यथा परं ब्रह्म हरिस्तथा परो जगत्स्वरूपश्च स एव केशवः । सत्येन तेनाच्युतनामकीर्तनात् प्रणाशयेत्तु त्रिविधं ममाशुभम् ॥

(अग्निपु० २७० । १-१५)

'ब्रह्मवैवर्तपुराण'का वर्णन किया है। इसमें रथन्तर-कल्पका वृत्तान्त है और अठारह हजार श्लोक हैं। माघ मासकी पूर्णिमाको इसका दान करे। वराहके चरित्रसे युक्त जो 'वाराहपुराण' है, उसका भी माघ मासकी पूर्णिमाको दान करे। ऐसा करनेसे दाता ब्रह्मलोकका भागी होता है। जहाँ अग्निमय लिङ्गमें स्थित भगवान् महेश्वरने आग्नेय कल्पके वृत्तान्तसे युक्त धर्मोंका विवेचन किया है, वह ग्यारह हजार श्लोकोंवाला 'लिङ्गपुराण' है। फाल्गुनकी पूर्णिमाको तिलधेनुके साथ उसका दान करके मनुष्य शिवलोकको प्राप्त होता है। 'वाराहपुराण'में भगवान् श्रीविष्णुने भूदेवीके प्रति मानव-जगत्की प्रवृत्तिसे लेकर वराह-चरित्र आदि उपाख्यानोंका वर्णन किया है। इसमें चौबीस हजार श्लोक हैं। चैत्रकी पूर्णिमाको 'गरुडपुराण' का सुवर्णके साथ दान करके मनुष्य विष्णुपदको प्राप्त होता है। 'स्कन्दमहापुराण' चौरासी हजार श्लोकोंका है। कुमार स्कन्दने तत्पुरुष-कल्पकी कथा एवं शैवमतका आश्रय लेकर इस महापुराणका प्रवचन किया है। इसका भी चैत्रकी पूर्णिमाको दान करना चाहिये। दस हजार श्लोकोंसे युक्त 'वामनपुराण' धर्मार्थ आदि पुरुषार्थोंका अवबोधक है। इसमें श्रीहरिकी धौमकल्पसे सम्बन्धित कथाका वर्णन है। शरत् पूर्णिमामें विषुव संक्रान्तिके समय इसका दान करे। 'कूर्मपुराण' में आठ हजार श्लोक हैं। कूर्मावतार श्रीहरिने इन्द्रद्युम्नके प्रसङ्गसे रसातलमें इसको कहा था। इसका सुवर्णमय कच्छपके साथ दान करना चाहिये। मत्स्यरूपी श्रीविष्णुने कल्पके आदिकालमें मनुको तेरह हजार श्लोकोंसे युक्त 'मत्स्यपुराण' का श्रवण कराया था। इसे हेमनिर्मित मत्स्यके साथ प्रदान करे। आठ हजार श्लोकोंवाले 'गरुड-पुराण'का भगवान् श्रीविष्णुने तार्क्ष्यकल्पमें प्रवचन किया था। इसमें विश्वाण्डसे गरुडकी उत्पत्तिकी कथा कही गयी है। इसका स्वर्णहंसके साथ दान करे। भगवान् ब्रह्माने ब्रह्माण्डके माहात्म्यका आश्रय लेकर जिसे कहा है, बारह हजार श्लोकोंवाले उस 'ब्रह्माण्डपुराण'को भी लिखकर ब्राह्मणके हाथमें दान करे॥ १—२२½॥

महाभारत-श्रवणकालमें प्रत्येक पर्वकी समाप्तिपर पहले कथावाचकका वस्त्र, गन्ध, माल्य आदिसे पूजन करे। तत्पश्चात् ब्राह्मणोंको खीरका भोजन करावे। प्रत्येक पर्वकी समाप्तिपर गौ, भूमि, ग्राम तथा सुवर्ण आदिका दान करे। महाभारतके पूर्ण होनेपर कथावाचक ब्राह्मण और महाभारत संहिताकी पुस्तकका पूजन करे। ग्रन्थको पवित्र स्थानपर रेशमी वस्त्रसे आच्छादित करके पूजन करना चाहिये। फिर भगवान् नर-नारायणकी पुष्प आदिसे पूजा करे। गौ, अन्न, भूमि, सुवर्णके दानपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराकर क्षमा-प्रार्थना करे। श्रोताको विविध रत्नोंका महादान करना चाहिये। प्रत्येक मासमें कथावाचकको दो या तीन माशे सुवर्णका दान करे और श्रवणके प्रारम्भमें भी पहले उसके लिये सुवर्णके दानका विधान है। द्विजश्रेष्ठ! समस्त श्रोताओंको भी कथावाचकका पूजन करना चाहिये। जो मनुष्य इतिहास एवं पुराणोंका पूजन करके दान करता है, वह आयु, आरोग्य, स्वर्ग और मोक्षको भी प्राप्त कर लेता है *॥ २३-३०॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'पुराणदान आदिके माहात्म्यका कथन' नामक दो सौ बहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥२७२॥

---

* इस अध्यायमें विभिन्न पुराणोंकी जो श्लोक-संख्याएँ दी गयी हैं, वे अन्य पुराणोंके वर्णनोंसे बहुत अंशोंमें मेल नहीं खाती हैं तथा उपलब्ध पुराणोंको देखनेसे भी इन वर्णनोंकी पूर्ण संगति नहीं बैठती है। पद्मपुराणमें जहाँ पचपन हजार श्लोक हैं, वहाँ इसमें बारह हजार ही श्लोक बताये गये हैं। सम्भव है, केवल पद्मसंहिता (भूमिखण्ड) के ही इतने श्लोक कहे गये हों। विष्णुपुराणमें पाँच हजार श्लोक उपलब्ध होते हैं, किंतु इसमें तेईस हजार श्लोक कहे गये हैं। यदि विष्णुधर्मोत्तरपुराणके भी श्लोक इसके साथ सम्मिलित कर लिये जायँ तो उक्त संख्या पूरी हो सकती है। वाराहपुराणके चौबीस हजार श्लोक बताये गये हैं, किंतु वर्तमान पुस्तकोंमें इतने श्लोक नहीं मिलते। गरुडपुराणमें आठ हजार श्लोक बताये गये हैं, परंतु उपलब्ध गरुडपुराणमें इससे दूनेसे भी अधिक श्लोक मिलते हैं। यह भी सम्भव है कि भूलसे गरुडपुराणका नाम वाराहपुराण और वाराहपुराणके स्थानमें गरुडपुराण लिख गया हो।

मान्धातासे बृहदश्व और बृहदश्वसे कुवलाश्व नामक राजाका जन्म हुआ। इन्होंने पूर्वकालमें धुन्धु नामसे प्रसिद्ध दैत्यका वध किया था, अतः उसीके नामपर ये 'धुन्धुमार' कहलाये। धुन्धुमारसे तीन पुत्र हुए। वे तीनों ही राजा थे। उनके नाम थे—दृढाश्व, दण्ड और कपिल। दृढाश्वने हर्यश्व और प्रमोदकने जन्म ग्रहण किया। हर्यश्वसे निकुम्भ और निकुम्भसे संहताश्वकी उत्पत्ति हुई। संहताश्वके दो पुत्र हुए—अकृशाश्व तथा रणाश्व। रणाश्वके पुत्र युवनाश्व और युवनाश्वके पुत्र राजा मान्धाता हुए। मान्धाताके भी दो पुत्र हुए, जिनमें एकका नाम पुरुकुत्स था और दूसरेका नाम मुचुकुन्द॥१७—२४॥

पुरुकुत्ससे त्रसद्दस्युका जन्म हुआ। वे नर्मदाके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। उनका दूसरा नाम 'सम्भूत' भी था। सम्भूतके सुधन्वा और सुधन्वाके पुत्र त्रिधन्वा हुए। त्रिधन्वाके तरुण और तरुणके पुत्र सत्यव्रत थे। सत्यव्रतसे सत्यरथ हुए, जिनके पुत्र हरिश्चन्द्र थे। हरिश्चन्द्रसे रोहिताश्वका जन्म हुआ, रोहिताश्वसे वृक हुए, वृकसे बाहु और बाहुसे सगरकी उत्पत्ति हुई। सगरकी प्यारी पत्नी प्रभा थी, जो प्रसन्न हुए और्व मुनिकी कृपासे साठ हजार पुत्रोंकी जननी हुई तथा उनकी दूसरी पत्नी भानुमतीने राजासे एक ही पुत्रको उत्पन्न किया, जिसका नाम असमञ्जस था। सगरके साठ हजार पुत्र पृथ्वी खोदते समय भगवान् कपिलके क्रोधसे भस्म हो गये। असमञ्जसके पुत्र अंशुमान् और अंशुमान्‌के दिलीप हुए। दिलीपसे भगीरथका जन्म हुआ, जिन्होंने गङ्गाको पृथ्वीपर उतारा था। भगीरथसे नाभाग और नाभागसे अम्बरीष हुए। अम्बरीषके सिन्धुद्वीप और सिन्धुद्वीपके पुत्र श्रुतायु हुए। श्रुतायुके ऋतुपर्ण और ऋतुपर्णके पुत्र कल्माषपाद थे। कल्माषपादसे सर्वकर्मा और सर्वकर्मासे अनरण्य हुए। अनरण्यके निघ्न और निघ्नके पुत्र दिलीप हुए। राजा दिलीपके रघु और रघुके पुत्र अज थे। अजसे दशरथका जन्म हुआ। दशरथके चार पुत्र हुए—वे सभी भगवान् नारायणके स्वरूप थे। उन सबमें ज्येष्ठ श्रीरामचन्द्रजी थे। उन्होंने रावणका वध किया था। रघुनाथजी अयोध्याके सर्वश्रेष्ठ राजा हुए। महर्षि वाल्मीकिने नारदजीके मुँहसे उनका प्रभाव सुनकर (रामायणके नामसे) उनके चरित्रका वर्णन किया था। श्रीरामचन्द्रजीके दो पुत्र हुए, जो कुलकी कीर्ति बढ़ानेवाले थे। वे सीताजीके गर्भसे उत्पन्न होकर कुश और लवके नामसे प्रसिद्ध हुए। कुशसे अतिथिका जन्म हुआ। अतिथिके पुत्र निषध हुए। निषधसे नलकी उत्पत्ति हुई (ये सुप्रसिद्ध राजा दमयन्तीपति नलसे भिन्न हैं), नलसे नभ हुए। नभसे पुण्डरीक और पुण्डरीकसे सुधन्वा उत्पन्न हुए। सुधन्वाके पुत्र देवानीक और देवानीकके अहीनाश्व हुए। अहीनाश्वसे सहस्राश्व और सहस्राश्वसे चन्द्रालोक हुए। चन्द्रालोकसे तारापीड, तारापीडसे चन्द्रगिरि और चन्द्रगिरिसे भानुरथका जन्म हुआ। भानुरथका पुत्र श्रुतायु नामसे प्रसिद्ध हुआ। ये इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न राजा सूर्यवंशका विस्तार करनेवाले माने गये हैं॥२५—३९॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'सूर्यवंशका वर्णन' नामक दो सौ तिहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥२७३॥

दो सौ चौहत्तरवाँ अध्याय

सोमवंशका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं सोमवंशका वर्णन करूँगा, इसका पाठ करनेसे पापका नाश होता है। विष्णुके नाभिकमलसे ब्रह्मा उत्पन्न हुए। ब्रह्माके पुत्र महर्षि अत्रि हुए। अत्रिसे सोमकी उत्पत्ति हुई। सोमने राजसूय यज्ञ किया और उसमें तीनों लोकोंके राज्यको उन्होंने दक्षिणारूपसे दान कर दिया। जब यज्ञके अन्तमें अवभृथ स्नान समाप्त हुआ, तब उनका रूप देखनेकी इच्छासे नौ देवियाँ चन्द्रमाके पास आयीं और कामबाणसे पीड़ित होकर उनकी सेवा करने लगीं। लक्ष्मी (कान्ति) नारायणको छोड़कर चली आयीं। सिनीवाली कर्दमको, द्युति अग्निको और पुष्टि अपने स्वामी धाताको त्यागकर आ गयीं। प्रभा प्रभाकरको और कुहू हविष्मान्‌को छोड़कर स्वयं सोमके पास चली आयीं। कीर्तिने अपने स्वामी जयन्तको छोड़ा और वसुने मरीचिनन्दन कश्यपको तथा धृति भी उस समय अपने पति नन्दिको त्यागकर सोमकी ही सेवामें संलग्न हो गयीं॥१—५॥

चन्द्रमाने भी उस समय उन देवियोंको अपनी ही पत्नीकी भाँति सकामभावसे अपनाया। [illegible]

तालजङ्घके ही नामसे प्रसिद्ध थे। हैहयवंशी क्षत्रियोंके पाँच कुल हैं—भोज, अवन्ति, वीतिहोत्र, स्वयंजात और शौण्डिकेय। वीतिहोत्रसे अनन्तकी उत्पत्ति हुई और अनन्तसे दुर्जय नामक राजाका जन्म हुआ॥ १-११॥

अब क्रोष्टुके वंशका वर्णन करूँगा, जहाँ साक्षात् भगवान् विष्णुने अवतार धारण किया था। क्रोष्टुसे वृजिनीवान् और वृजिनीवान्से स्वाहाका जन्म हुआ। स्वाहाके पुत्र रुषद्गु और उनके पुत्र चित्ररथ थे। चित्ररथसे शशबिन्दु उत्पन्न हुए, जो चक्रवर्ती राजा थे। वे सदा भगवान् विष्णुके भजनमें ही लगे रहते थे। शशबिन्दुके दस हजार पुत्र थे। वे सब-के-सब बुद्धिमान्, सुन्दर, अधिक धनवान् और अत्यन्त तेजस्वी थे, उनमें पृथुश्रवा ज्येष्ठ थे। उनके पुत्रका नाम सुयज्ञ था। सुयज्ञके पुत्र उशना और उशनाके तितिक्षु हुए। तितिक्षुसे मरुत्त और मरुत्तसे कम्बलबर्हिष (जिनका दूसरा नाम रुक्मकवच था) हुए। रुक्मकवचसे रुक्मेषु, पृथुरुक्मक, हवि, ज्यामघ और पापघ्न आदि पचास पुत्र उत्पन्न हुए। इनमें ज्यामघ अपनी स्त्रीके वशीभूत रहनेवाला था। उससे उसकी पत्नी शैब्याके गर्भसे विदर्भकी उत्पत्ति हुई। विदर्भसे कौशिक, लोमपाद और क्रथ नामक पुत्र हुए। इनमें लोमपाद ज्येष्ठ थे। उनसे कृतिका जन्म हुआ। कौशिकके पुत्रका नाम चिदि हुआ। चिदिके वंशज राजा 'चैद्य'के नामसे प्रसिद्ध हुए। विदर्भपुत्र क्रथसे कुन्ति और कुन्तिसे धृष्टका जन्म हुआ। धृष्टके पुत्र धृति और धृतिके विदूरथ हुए। वे 'दशार्ह' नामसे भी प्रसिद्ध थे। दशार्हके पुत्र व्योम और व्योमके पुत्र जीमूत कहे जाते हैं। जीमूतके पुत्रका नाम विकल हुआ और उनके पुत्र भीमरथ नामसे प्रसिद्ध हुए। भीमरथसे नवरथ और नवरथसे दृढरथ हुए। दृढरथसे शकुन्ति तथा शकुन्तिसे करम्भ उत्पन्न हुए। करम्भसे देवरातका जन्म हुआ। देवरातके पुत्र देवक्षेत्र कहलाये। देवक्षेत्रसे मधु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ और मधुसे द्रवरसने जन्म ग्रहण किया। द्रवरसके पुरुहूत और पुरुहूतके पुत्र जन्तु थे। जन्तुके पुत्रका नाम सात्वत था। ये यदुवंशियोंमें गुणवान् राजा थे। सात्वतके भजमान, वृष्णि, अन्धक तथा देवावृध—ये चार पुत्र हुए। इन चारोंके वंश विख्यात हैं। भजमानके बाह्य, वृष्टि, कृमि और निमि नामक पुत्र हुए। देवावृधसे बभ्रुका जन्म हुआ। उनके विषयमें इस श्लोकका गान किया जाता है—'हम जैसा दूरसे सुनते हैं, वैसा ही निकटसे देखते भी हैं। बभ्रु मनुष्योंमें श्रेष्ठ हैं और देवावृध देवताओंके समान हैं।'

बभ्रुके चार पुत्र हुए। वे सभी भगवान् वासुदेवके भक्त थे। उनके नाम हैं—कुकुर, भजमान, शिनि और कम्बलबर्हिष। कुकुरके धृष्णु नामक पुत्र हुए। धृष्णुसे धृति नामवाले पुत्रकी उत्पत्ति हुई। धृतिसे कपोतरोमा और उनके पुत्र तित्तिरि हुए। तित्तिरिके पुत्र नर और उनके पुत्र आनकदुन्दुभि नामसे विख्यात हुए। आनकदुन्दुभिकी परम्परामें पुनर्वसु और उनके पुत्र आहुक हुए। ये आहुकीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। आहुकसे देवक और उग्रसेन हुए। देवकसे देववान्, उपदेव, सहदेव और देवरक्षित—ये चार पुत्र हुए। इनकी सात बहिनें थीं, जिनका देवकने वसुदेवके साथ ब्याह कर दिया। उन सातोंके नाम हैं—देवकी, श्रुतदेवी, मित्रदेवी, यशोधरा, श्रीदेवी, सत्यदेवी और सातवीं सुरापी। उग्रसेनके नौ पुत्र हुए, जिनमें कंस ज्येष्ठ था। शेष आठ पुत्रोंके नाम इस प्रकार हैं—न्यग्रोध, सुनामा, कङ्क, राजा शङ्कु, सुतनु, राष्ट्रपाल, युद्धमुष्टि और सुमुष्टिक। भजमानके पुत्र विदूरथ हुए, जो रथियोंमें प्रधान थे। उनके पुत्र राजाधिदेव और शूर नामसे विख्यात हुए। राजाधिदेवके दो पुत्र हुए शोणाश्व और श्वेतवाहन। शोणाश्वके शमी और शत्रुजित् आदि पाँच पुत्र हुए। शमीके पुत्र प्रतिक्षेत्र, प्रतिक्षेत्रके भोज और भोजके हृदिक हुए। हृदिकके दस पुत्र थे, जिनमें कृतवर्मा, शतधन्वा, देवार्ह और भीषण आदि प्रधान हैं। देवार्हसे कम्बलबर्हि और कम्बलबर्हिसे असमौजाका जन्म हुआ। असमौजाके सुदंष्ट्र, सुवास और धृष्ट नामक पुत्र हुए। धृष्टकी दो पत्नियाँ थीं—गान्धारी और माद्री। इनमें गान्धारीसे सुमित्रका जन्म हुआ और माद्रीने युधाजित्को उत्पन्न किया। धृष्टसे अनमित्र और शिनिका भी जन्म हुआ। शिनिसे देवमीढुष उत्पन्न हुए। अनमित्रके पुत्र निघ्न और और निघ्नके प्रसेन तथा सत्राजित् हुए। इनमें प्रसेनके भाई सत्राजित्को सूर्यसे स्यमन्तकमणि प्राप्त हुई थी, जिसे लेकर प्रसेन जंगलमें मृगयाके लिये विचर रहे थे। उन्हें एक सिंहने मारकर वह मणि ले ली। तत्पश्चात् जाम्बवान्ने उस सिंहको मार डाला (और मणिको अपने अधिकारमें कर लिया)। इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने जाम्बवान्को युद्धमें परास्त किया और उनसे जाम्बवती तथा मणिको पाकर वे द्वारकापुरीको लौट आये। वहाँ आकर उन्होंने वह मणि सत्राजित्को दे दी, किंतु (मणिके लोभसे) शतधन्वाने सत्राजित्को मार डाला। श्रीकृष्णने शतधन्वाको मारकर वह मणि छीन ली और यशके भागी हुए। उन्होंने बलराम और प्रमुख यदुवंशियोंके

और जलमें डूबी हुई पृथ्वीका उद्धार किया। उस समय देवाधिदेवोंने भगवान्‌की स्तुति की ॥ १३—१५ ॥

एक बार देवता और असुरोंने मिलकर मन्दराचलको मथानी और नागराज वासुकिको नेती (मथनेकी रस्सी) बना समुद्रको मथकर अमृत निकाला, किंतु भगवान्‌ने वह सारा अमृत देवताओंको ही पिला दिया। (उस समय देवताओं और दैत्योंमें घोर युद्ध हुआ था।) तारकामय संग्रामके अवसरपर भगवान् ब्रह्माने इन्द्र, बृहस्पति, देवताओं तथा दानवोंको युद्धसे रोककर देवताओंकी रक्षा की और सोमवंशको स्थापित किया। आजीवक-युद्धमें विश्वामित्र, वसिष्ठ और अत्रि आदि ऋषियोंने राग-द्वेषादि दानवोंका निवारण करके देवताओंका पालन किया। पृथ्वीरूपी रथमें वेदरूपी घोड़े जोतकर भगवान् शंकर उसपर बैठे (और त्रिपुरका नाश करनेके लिये चले)। उस समय देवताओंके रक्षक और दैत्योंका विनाश करनेवाले भगवान् श्रीहरिने शंकरजीको शरण दी और बाण बनकर स्वयं ही त्रिपुरका दाह किया। गौरीका अपहरण करनेकी इच्छासे अन्धकासुरने रुद्रदेवको बहुत कष्ट पहुँचाया [illegible] रेवतीमें अनुराग रखनेवाले श्रीहरिने [illegible] किया (यही आठवाँ संग्राम है)। [illegible] युद्धमें वृत्रका नाश करनेके लिये भगवान् विष्णु [illegible] इन्द्रके वज्रमें लग गये। इस प्रकार [illegible] वेदधर्मका पालन करनेवाले देवताओंके [illegible] ('जित्' नामक दसवाँ संग्राम यह है), [illegible] श्रीहरिने परशुराम अवतार धारणकर [illegible] विजय पायी और दुष्ट क्षत्रियोंका विनाश कर [illegible] रक्षा की। (ग्यारहवें संग्रामके समय) [illegible] विषके रूपमें प्रकट हुए दैत्यका [illegible] कराकर देवताओंका भय दूर किया। [illegible] 'कोलाहल' नामका दैत्य था, उसको [illegible] विष्णुने धर्मपालनपूर्वक सम्पूर्ण [illegible] राजकुमार, मुनि और देवता—[illegible] मैंने यहाँ जिनको बतलाया और [illegible] सभी श्रीहरिके ही अवतार हैं ॥ १६—[illegible]

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'द्वादश संग्रामोंका वर्णन' नामक दो सौ छिहत्तरवाँ अध्याय [illegible]

दो सौ सतहत्तरवाँ अध्याय

तुर्वसु आदि राजाओंके वंशका तथा अङ्गवंशका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! तुर्वसुके पुत्र वर्ग और वर्गके पुत्र गोभानु हुए। गोभानुसे त्रैशानि, त्रैशानिसे करंधम और करंधमसे मरुत्तका जन्म हुआ। उनके पुत्र दुष्मन्त हुए। दुष्मन्तसे वरूथ और वरूथसे गाण्डीरकी उत्पत्ति हुई। गाण्डीरसे गान्धार हुए। गान्धारके पाँच पुत्र हुए, जिनके नामपर गान्धार, केरल, चोल, पाण्ड्य और कोल—इन पाँच देशोंकी प्रसिद्धि हुई। ये सभी महान् बलवान् थे। द्रुह्युसे बभ्रुसेतु और बभ्रुसेतुसे पुरोवसुका जन्म हुआ। उससे गान्धार नामक पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई। गान्धारने धर्मको जन्म दिया और धर्मसे घृत उत्पन्न हुए। घृतसे विदुष और विदुषसे प्रचेता हुए। प्रचेताके सौ पुत्र हुए, जिनमें अनद्रु, सुभानु, चाक्षुष और परमेषु—ये प्रधान थे। सुभानुसे कालानल और कालानलसे सृंजय उत्पन्न हुए। सृंजयके पुरंजय और पुरंजयके पुत्र जनमेजय थे। जनमेजयके पुत्र महाशाल और उनके पुत्र महामना हुए। वसिष्ठ! महामनासे उशीनरका जन्म हुआ और महामनाकी 'नृगा' नामक [illegible] उनका जन्म हुआ। उनसे [illegible] उत्पत्ति हुई और कृमि नामक [illegible] हुआ। इसी प्रकार नृगसे [illegible] दृषद्वतीसे शिबि उत्पन्न हुए [illegible] वृषदर्भ, वीरक, कैकय और [illegible] भेद चारवंशोंकी प्रसिद्धि हुई। [illegible] तितिक्षुसे रुषद्रथ, रुषद्रथसे [illegible] पुत्रकी उत्पत्ति हुई। [illegible] बलिसे अङ्ग, वङ्ग, सुम्भ, [illegible] उत्पन्न हुए। ये सभी [illegible] बलवान् थे। अङ्गसे [illegible] और दिविरथसे धर्म[illegible] [illegible]रथ हुआ। चित्र[illegible] हुए। लोमपादका पुत्र [illegible] चतुरङ्ग हुआ, [illegible]

ऋक्षसे संवरण और संवरणसे कुरुका जन्म हुआ, जिन्होंने प्रयागसे जाकर कुरुक्षेत्र तीर्थकी स्थापना की। कुरुसे सुधन्वा, सुधनु, परीक्षित् और रिपुञ्जय—ये चार पुत्र हुए। सुधन्वासे सुगोत्र और सुहोत्रसे च्यवन उत्पन्न हुए। च्यवनकी पत्नी महारानी गिरिकाके वसुश्रेष्ठ उपरिचरसे अंशसे सात पुत्र उत्पन्न हुए। उनके नाम इस प्रकार हैं—बृहद्रथ, कुश, वीर, यदु, प्रत्यग्रह, बल और मत्स्यकाली। राजा बृहद्रथसे कुशाग्रका जन्म हुआ। कुशाग्रसे वृषभकी उत्पत्ति हुई और वृषभके पुत्रका नाम सत्यहित हुआ। सत्यहितसे सुधन्वा, सुधन्वासे ऊर्ज, ऊर्जसे सम्भव और सम्भवसे जरासंध उत्पन्न हुआ। जरासंधके पुत्रका नाम सहदेव था। सहदेवसे उदापि और उदापिसे श्रुतकर्माकी उत्पत्ति हुई। कुरुनन्दन परीक्षित्के पुत्र जनमेजय हुए। वे बड़े धार्मिक थे। जनमेजयसे त्रसदस्युका जन्म हुआ। राजा अजमीढके जो जह्नु नामवाले पुत्र थे, उनके सुरथ, श्रुतसेन, उग्रसेन और भीमसेन—ये चार पुत्र उत्पन्न हुए। परीक्षित्कुमार जनमेजयके दो पुत्र और हुए—सुरथ तथा महिमान्। सुरथसे विदूरथ और विदूरथसे ऋक्ष हुए। इस वंशमें ये ऋक्ष नामसे प्रसिद्ध द्वितीय राजा थे। इनके पुत्रका नाम भीमसेन हुआ। भीमसेनके पुत्र प्रतीप और प्रतीपके शन्तनु हुए। शन्तनुके देवापि, बाह्लिक और सोमदत्त—ये तीन पुत्र थे। बाह्लिकसे सोमदत्त और सोमदत्तसे भूरि, भूरिश्रवा तथा शलका जन्म हुआ। शन्तनुसे गङ्गाजीके गर्भसे भीष्म उत्पन्न हुए तथा उनकी काली (सत्यवती) नामवाली पत्नीसे विचित्रवीर्यकी उत्पत्ति हुई। विचित्रवीर्यकी पत्नीके गर्भसे श्रीकृष्णद्वैपायनने धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुरको जन्म दिया। पाण्डुकी रानी कुन्तीके गर्भसे युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन—ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए तथा उनकी माद्री नामवाली पत्नीसे नकुल और सहदेवका जन्म हुआ। पाण्डुके ये पाँच पुत्र देवताओंके अंशसे प्रकट हुए थे। अर्जुनके पुत्रका नाम अभिमन्यु था। वे सुभद्राके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। अभिमन्युसे राजा परीक्षित्का जन्म हुआ। द्रौपदी पाँचों पाण्डवोंकी पत्नी थी। उसके गर्भसे युधिष्ठिरसे प्रतिविन्ध्य, भीमसेनसे सुतसोम, अर्जुनसे श्रुतकीर्ति, सहदेवसे श्रुतधर्मा और नकुलसे शतानीककी उत्पत्ति हुई। भीमसेनका एक दूसरा पुत्र भी था, जो हिडिम्बाके गर्भसे उत्पन्न हुआ था। उसका नाम था घटोत्कच। ये भूतकालके राजा हैं। भविष्यमें भी बहुत-से राजा होंगे, जिनकी कोई गणना नहीं हो सकती। सभी समयानुसार कालके गालमें चले जाते हैं। विप्रवर! काल भगवान् विष्णुका ही स्वरूप है, अतः उन्हींका पूजन करना चाहिये। उन्हींके उद्देश्यसे अग्निमें हवन करो; क्योंकि वे भगवान् ही सब कुछ देनेवाले हैं॥ २९-४१॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'कुरुवंशका वर्णन' नामक दो सौ अठहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २७८॥

दो सौ उनासीवाँ अध्याय*

सिद्ध ओषधियोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं आयुर्वेदका वर्णन करूँगा, जिसे भगवान् धन्वन्तरिने सुश्रुतसे कहा था। यह आयुर्वेदका सार है और अपने प्रयोगोंद्वारा मृतकको भी जीवन प्रदान करनेवाला है॥ १॥

सुश्रुतने कहा—भगवन्! मुझे मनुष्य, घोड़े और हाथीके रोगोंका नाश करनेवाले आयुर्वेदशास्त्रका उपदेश कीजिये। साथ ही सिद्ध योगों, सिद्ध मन्त्रों और मृतसंजीवन कारक औषधोंका भी वर्णन कीजिये॥ २॥

धन्वन्तरि बोले—सुश्रुत! वैद्य [illegible] दलकी रक्षा करते हुए, अर्थात् उसके [illegible] हुए लङ्घन (उपवास) कराये। तदनन्तर उस रोगीको मुख [illegible] मण्ड (धानके लावेका माँड) तथा नागरमोथा, पित्तपापड़ा, खस, रक्तचन्दन, सुगन्धबाला और सोंठके साथ शृत (अर्धपक्व) जलको ठंडा करके उसको [illegible] दे। [illegible] पीत [illegible] ज्वरको [illegible] शान्त करता है॥ ३-४॥

---

* [illegible] अध्यायसे वैद्यक अथवा आयुर्वेदका प्रकरण आरम्भ होता है। [illegible] आयुर्वेदविभागके प्रवर्तक [illegible] किया है। [illegible] सुप्रसिद्ध आयुर्वेदज्ञ [illegible] के शिष्य हैं।

१. [illegible] है। [illegible] (पित्तज्वर) [illegible] (पित्तनाशक) [illegible] (पिपासा आदि) है।

भोगों) से क्षयको जीते। क्षयरोगीके लिये भोजनमें लाल अगहनी धानका चावल, नीवार, कलम (रोपा धान) आदि हितकारी हैं ॥ २८ २९ ॥

अर्श (बवासीर) में *यवान विकृति*, नीम, मांस (जटामांसी), शाक, सचर नमक, कचूर, हरें, माँड तथा जल मिलाया हुआ मट्ठा हितकारक है ॥ ३० ॥

मूत्रकृच्छ्रमें मोथा, हल्दीके साथ चित्रकका लेप, यवान विकृति, शालिधान्य, बथुआ, सुवचल (सचर नमक), मधु (लाह), दूध, ईखके रस और घीसे युक्त गेहूँ—ये खानेके लिये लाभकारी हैं तथा पानेके लिये मण्ड और सुरा आदि देने चाहिये ॥ ३१ ३२ ॥

छर्दि (कै, वमन) के लिये लाजा (लावा), सत्तू, मधु, परूषक (फालसा), बैगन का भर्ता, शिखि-पंख (मोरकी पाँख) तथा पानक (विशेष प्रकारका पेय) लाभदायक है ॥ ३३ ॥

अगहनीके चावलका जल, गरम या शीत-गरम दूध तृष्णाका नाशक है। मोथा और गुड़से बनी हुई गुटिका (गोली) मुखमें रक्खी जाय तो तृष्णानाशक है। यवान विकृति, पूप (पूआ), सूखी मूली, परवलका शाक, वेत्राग्र (बेतके अग्रभागका नरम हिस्सा) और करेल ऊरुस्तम्भ (जाँघके जकड़ने) का विनाशक है। विसर्पी (फोड़े फुंसी आदिके रूपमें सारे शरीरमें फैलनेवाले रोगका रोगी) मूँग, अरहर, मसूरके यूष, तिलयुक्त जांगल-रस, सेंधा नमक सहित घृत, दाख, सोंठ, आँवला और अनारके यूषके साथ पुराने गेहूँ, जौ और अगहनी धानके चावल आदि अन्नका सेवन करे तथा चीनीके साथ मधु, मुनक्का एवं अनारसे बना जल पीये ॥ ३४–३७ ॥

वातरक्तके रोगीके लिये लाल साठीका चावल, गेहूँ, यव, मूँग आदि हल्का अन्न देवे। काकमाची (काली मकोय), वेत्राग्र, बथुआ, सुवचला आदि शाक देवे। मधु और मिश्री सहित जल पिलावे। नासिकाके रोगोंमें दूधसे सिद्ध घृत लाभदायक है। आँवलेके रससे या भृङ्गराजके रससे सिद्ध किये हुए तेलका नस्य दिया जाय तो यह सिरके समस्त कृमिरोगोंमें लाभप्रद है ॥ ३८–४० ॥

विप्रवर ! शीतल जलके साथ लिया गया भल्लातक और तिलोंका भक्षण दाँतोंको मजबूत करनेवाला तथा परम तृप्तिकारक है। तिलके अन्नसे किया गया कुल्ला दाँतोंको अधिक मजबूत करनेवाला है। सब प्रकारके कृमियोंके नाशके लिये वायविडङ्गका चूर्ण तथा गोमूत्रका प्रयोग करे। आँवलेको घीमें पीसकर यदि उसका सिरपर लेपन किया जाय तो वह शिरो रोगके नाशके लिये उत्तम माना गया है। चिकना और गरम भोजन भी इसके लिये हितकर होता है ॥ ४१–४३ ॥

द्विजोत्तम ! कानमें दर्द हो तो बकरेके मूत्र तथा तेलसे कानोंको भर देना उत्तम है। यह *कर्णशूलका नाश करनेवाला* है। सब प्रकारके सिरके भी इस रोगमें लाभदायक हैं। गिरिमृत्तिका (पहाड़ी मिट्टी), सफेद चन्दन, लाल, मालतीकलिका (चमेलीकी कली) सबको पीसकर बनायी हुई बत्ती उपधात तथा शुक्र-दोषोंको नष्ट करती है। व्योष (सोंठ, काली मिर्च, पीपल) और त्रिफला (आँवला, हर्रा, बहेड़ा) तथा तूतिया थोड़ा जल मिलाकर आँखमें डाले। यह और रसाञ्जन (रसौत) भी आँखके सब रोगोंका नाश करनेवाला है। लोध, काँजी और सेंधा नमकको घीमें भूनकर शिलापर पीसकर आँखोंपर लेप करनेसे सब प्रकारके नेत्र-रोगोंमें लाभ होता है। आश्च्योतन (आँसू गिरना) तो बंद ही हो जाता है। गिरिमृत्तिका और सफेद चन्दनका बाहरी लेप आँखोंको लाभ पहुँचाता है तथा नेत्र-रोगोंके नाशके लिये त्रिफलाका सदा सेवन करे (उसके जलसे आँखोंको धोना उत्तम माना गया है।)॥ ४४–४८ ॥

दीर्घजीवी होनेकी इच्छावालेको रातमें त्रिफला घृत-मधुके साथ खाना चाहिये। शतावरी-रसमें सिद्ध दूध तथा घी वृष्य हैं (बलकारक एवं आयुवर्धक हैं)। कलम्बिका (करमीका शाक) और उड़द भी वृष्य होते हैं। दूध एवं घृत भी वृष्य हैं। पूर्ववत् मुलहठीके सहित त्रिफला आयुको बढ़ानेवाली है। मधुकाके फूलके रसके साथ त्रिफला ली जाय तो यह पुण्याक चिह्न—झुर्री पड़ने और बालोंके पकने गिरने आदिका निवारण करती है ॥ ४९ ५०½ ॥

विप्रवर ! धनसे सिद्ध घृत भूतोंका नाश करनेवाला है। उसका कल्प बुद्धिको देनेवाला तथा सम्पूर्ण मनोरथोंको सिद्ध करनेवाला है। कटेरीके (पत्थरपर पीसे हुए) कल्कसे सिद्ध क्वाथद्वारा बनाया हुआ अपून [illegible] लिये हितकारी है। सरसों या पदारी (हिंगो) से सिद्ध तेल वातव्याधिके लिये हितकर है। [illegible] श्रेष्ठ माना गया है। सम्पूर्ण [illegible] श्रेष्ठ हैं। नीमका चूर्ण धारक [illegible] ([illegible]) में तथा [illegible] ([illegible]) में श्रेष्ठ है। इसी प्रकार [illegible] ([illegible]

लिये सुधा ही उत्तम एवं गुणकारी है, उसी प्रकार यह औषध तुम्हारे लिये आरोग्यकारक एवं प्राणरक्षक हो' ॥ १३-१४ ॥

देश—बहुत वृक्ष तथा अधिक जलवाला देश 'अनूप' कहलाता है। यह वात और कफ उत्पन्न करनेवाला होता है। जाङ्गल देश 'अनूप' देशके गुण-प्रभावसे रहित होता है। थोड़े वृक्ष तथा थोड़े जलवाला देश 'साधारण' कहा जाता है। जाङ्गल देश अधिक पित्त उत्पन्न करनेवाला तथा साधारण देश मध्यमपित्तका उत्पादक है ॥ १५-१६ ॥

वात, पित्त, कफके लक्षण—वायु रूक्ष, शीत तथा चल है। पित्त उष्ण है तथा कटुत्रय (सोंठ, मिर्च, पीपली) पित्तकर हैं। कफ स्थिर, अम्ल, स्निग्ध तथा मधुर है। समान वस्तुओंके प्रयोगसे इनकी वृद्धि तथा असमान वस्तुओंके प्रयोगसे हानि होती है। मधुर, अम्ल एवं लवण रस कफकारक तथा वायुनाशक हैं। कटु, तिक्त एवं कषाय रस वायुकी वृद्धि करते हैं तथा कफनाशक हैं। इसी तरह कटु, अम्ल तथा लवण रस पित्त बढ़ानेवाले हैं। तिक्त, स्वादु (मधुर) तथा कषाय रस पित्तनाशक होते हैं। यह गुण या प्रभाव रसका नहीं, उसके विपाकका माना गया है। उष्णवीर्य कफनाशक तथा शीतवीर्य पित्तनाशक होते हैं। सुश्रुत! ये सब प्रभावसे ही वैसा कार्य करते हैं ॥ १७—२१ ॥

शिशिर, वसन्त तथा शरद्‌में क्रमशः कफके चय, प्रकोप तथा प्रशमन बताये गये हैं। अर्थात् कफका चय शिशिर ऋतुमें, प्रकोप वसन्त ऋतुमें तथा प्रशमन ग्रीष्म ऋतुमें होता है। सुश्रुत! वायुका संचय ग्रीष्ममें, प्रकोप वर्षा तथा रात्रिमें और शमन शरद्‌में कहा गया है। इसी प्रकार पित्तका संचय वर्षामें, प्रकोप शरद्‌में तथा शमन हेमन्तमें कहा गया है। वर्षासे हेमन्तपर्यन्त (वर्षा, शरद्, हेमन्त—ये) तीन ऋतुएँ 'विसर्ग-काल' कही गयी हैं तथा शिशिरसे ग्रीष्मपर्यन्त तीन ऋतुओंको (ओषधि आदिके निमित्त) 'आदान (काल)' कहा गया है। विसर्ग-कालको 'सौम्य' और आदानकालको 'आग्नेय' कहा गया है। वर्षा आदि तीन ऋतुओंमें बढ़ता हुआ चन्द्रमा ओषधियोंमें क्रमशः अम्ल, लवण तथा मधुर रसोंको उत्पन्न करता है। शिशिर आदि तीन ऋतुओंमें बढ़ता हुआ सूर्य क्रमशः तिक्त, कषाय तथा कटु रसोंको बढ़ाता है। ज्यों-ज्यों रातें बढ़ती हैं, त्यों-त्यों ओषधियोंका बल बढ़ता है ॥ २२—२८ ॥

जैसे-जैसे रातें घटती हैं, वैसे-वैसे मनुष्योंका बल क्रमशः घटता है। रातमें, दिनमें तथा भोजनके बाद, आयुके आदि, मध्य और अवसान-कालमें कफ, पित्त एवं वायु प्रकुपित होते हैं। प्रकोपके आदिकालमें इनका संचय होता है तथा प्रकोपके बाद इनका शमन कहा गया है। विप्रवर! अधिक भोजन और अधिक उपवाससे तथा मल-मूत्र आदिके वेगोंको रोकनेसे सभी रोग उत्पन्न होते हैं। इसलिये पेटके दो भागोंको अन्नसे तथा एक भागको जलसे पूरा करे। अवशिष्ट एक भागको वायु आदिके संचरणके लिये रिक्त रक्खे। व्याधिका निदान तथा विपरीत औषध करना चाहिये, इन सबका सार यही है, जो मैंने बतलाया है ॥ २९-३१½ ॥

नाभिके ऊपर पित्तका स्थान है तथा नीचे श्रोणी एवं गुदाको वातका स्थान कहा गया है। तथापि ये सभी समस्त शरीरमें घूमते हैं। उनमें भी वायु विशेषरूपसे सम्पूर्ण शरीरमें संचरण करती है। [इस विषयका सुस्पष्ट वर्णन सुश्रुतमें इस प्रकार है—*दोषस्थानान्यत ऊर्ध्वं वक्ष्यामः। तत्र समासेन वातः श्रोणिगुदसंश्रयः, तदुपर्यधो नाभेः पक्वाशयः, पक्वामाशयमध्यं पित्तस्य, आमाशयः श्लेष्मणः।* (सुश्रुत, सूत्रस्थान अध्याय २१, सूत्र) 'इसके बाद दोषोंके स्थानोंका वर्णन करूँगा—उनमें संक्षेपसे (रहस्य यह है कि) वायुका स्थान श्रोणि एवं गुदा है, उसके ऊपर एवं नाभि (टुण्डी) के नीचे पक्वाशय है, पक्वाशय एवं आमाशयके मध्यमें पित्तका स्थान है। श्लेष्माका स्थान आमाशय है'] ॥ ३४-३५ ॥

देहके मध्यमें हृदय है, जो मनका स्थान है। जो स्वभावतः दुर्बल, थोड़े बलवाला, चञ्चल, अधिक बोलनेवाला तथा विषमानल है—जिसकी जठराग्नि कभी ठीकसे पाचनक्रिया करती है, कभी नहीं करती तथा जो स्वप्नमें आकाशमें उड़ने वाला है, वह वात प्रकृतिका मनुष्य है। समय (अवस्था) से पूर्व ही जिसके बाल पकने—झड़ने लगें, जो क्रोधी हो, जिसे पसीना अधिक होता हो, जो मीठी वस्तुएँ खाना पसंद करता हो और स्वप्नमें अग्नि देखनेवाला हो, वह पित्त प्रकृतिका है। जो दृढ़ अङ्गोंवाला, स्थिरचित्त, सुन्दर, कान्तियुक्त, जिसके केश तथा स्वप्नमें स्वच्छ जलको देखनेवाला है, वह कफ प्रकृतिवाला मनुष्य कहा जाता है। इसी प्रकार तामस, राजस तथा सात्त्विक—तीन प्रकारके मनुष्य होते हैं ॥ ३६-३९ ॥

मुनिश्रेष्ठ! सभी मनुष्य वात, पित्त और कफवाले हैं।

द्रव्योंके क्वाथ लेने चाहिये। तैलका परिपाक तब समझना चाहिये, जब कि उसमें डाली हुई ओषधियाँ उफनते हुए तैलमें गलकर ऐसी हो जायँ, कि उन्हें ठंढा करके यदि हाथपर रगड़ा जाय तो उनकी बत्ती-सी बन जाय। विशेष बात यह है कि उस बत्तीका सम्बन्ध अग्निसे किया जाय तो चिड़चिड़ाहट की प्रतीति न हो, तब सिद्धतैल मानना चाहिये ॥१०-११½॥

सुश्रुत! लेह्य (चाटनेयोग्य) ओषधद्रव्योंमें भी इसीके समान प्रक्षेप आदि होते हैं। निर्मल तथा उचित ओषध प्रक्षेपद्वारा निर्मित क्वाथ उत्तम होता है (तथा उसका प्रयोग लेह्य आदिमें करना चाहिये)। चूर्णकी मात्रा एक अक्ष (तोला) और क्वाथकी मात्रा चार पल[3] है। यह मध्यम मात्रा (साधारण मात्रा) बतलायी गयी है। वैसे मात्राका परिमाण कोई निश्चित परिमाण नहीं है। महाभाग! रोगीकी अवस्था, बल, अग्नि, देश, काल, द्रव्य और रोगका विचार करके मात्राकी कल्पना होती है। उनमें सौम्य रसोंको प्राय: धातुवर्द्धक जानना चाहिये ॥१२—१५॥

मधुर रस तो विशेषतया शरीरके धातुओंकी वृद्धिके लिये जानना चाहिये। दोष, धातु और द्रव्य समानगुणयुक्त होनेपर शरीरकी वृद्धि करते हैं और इसके विपरीत होनेपर क्षयकारक होते हैं। नरश्रेष्ठ! इस शरीरमें तीन प्रकारके उपस्तम्भ (खंभे) कहे गये हैं—आहार, मैथुन और निद्रा। मनुष्य इनके प्रति सदा सावधानी रक्खे। इनके पूर्णतया परित्याग या अत्यन्त सेवनसे शरीर क्षयको प्राप्त होता है। कृश शरीरका 'बृंहण' (पोषण), स्थूल शरीरका 'कर्षण' और मध्यम शरीरका 'रक्षण' करना चाहिये। ये शरीरके तीन भेद माने गये हैं। 'तर्पण' और 'अतर्पण'—

इस प्रकार आहारादि उपक्रमोंके दो भेद होते हैं। मनुष्य को सदा 'हिताशी' होना चाहिये (हितकारी पदार्थोंको ही खाना चाहिये) और 'मिताशी' बनना चाहिये (परिमित भोजन करना चाहिये) तथा 'जीर्णाशी' होना चाहिये (पूर्वभुक्त अन्नका परिपाक हो जानेपर ही पुन: भोजन करना चाहिये) ॥ १६—२० ॥

नरश्रेष्ठ! ओषधियोंकी निर्माणविधि पाँच प्रकारकी मानी गयी है—रस, कल्क, क्वाथ, शीतकषाय तथा फाण्ट। ओषधोंको निचोड़नेसे 'रस' होता है, मन्थनसे 'कल्क' बनता है, औटानेसे 'क्वाथ' होता है, रात्रिभर रखनेसे 'शीत' और तत्काल जलमें कुछ गरम करके छान लेनेसे 'फाण्ट' होता है ॥ २१-२२½ ॥

(इस प्रकार) चिकित्साके एक सौ आठ साधन हैं। जो वैद्य उनको जानता है, वह अजेय होता है। अर्थात् वह चिकित्सामें कहीं असफल नहीं होता है। वह 'षाड्गुण्यिक' कहा जाता है। आहार शुद्धि अग्निके संरक्षण, संवर्द्धन एवं संशुद्धि आदिके लिये आवश्यक है, क्योंकि मनुष्योंके बलका अग्नि ही मूल आधार है। बलके लिये सेंधव लवणसे युक्त त्रिफला, कान्तिप्रद उत्तम पेय, जाङ्गल रस, सेंधवयुक्त दही और दुग्ध तथा पिप्पली (पीपल) का सेवन करना चाहिये ॥ २३-२५ ॥

मनुष्यको चाहिये कि जो रस (या धातु आदि) अधिक हो गये, अर्थात् घट गये हैं, उन्हें सम करे—साम्यावस्थामें लावे। वातप्रधान प्रकृतिके मनुष्यको अपनी परिस्थितिके अनुसार ग्रीष्म ऋतुमें अङ्गमर्दन करना चाहिये। शिशिर ऋतुमें साधारण या अधिक, वसन्त ऋतुमें मध्यम और ग्रीष्म ऋतुमें विशेषरूपसे अङ्गोंका मर्दन करे। पहले मस्तकका, उसके बाद मर्दन करानेयोग्य अङ्गका मर्दन करे ॥ २६-२७ ॥

स्नायु एवं रुधिरसे परिपूर्ण शरीरमें अग्निसमूह अत्यन्त मांसल-सा प्रतीत होता है। इसी प्रकार कफ, वायु, जनुद्वय तथा जङ्घाद्वय भी मांसल प्रतीत होते हैं। बुद्धिमान् मनुष्य धनुके समान इनका मर्दन करे। जत्रु (हँसलीका भाग), वक्ष:स्थल (छाती) इन्हें पृथक् साधारण प्रकारसे मले तथा समस्त अङ्ग-सन्धियोंको खूब भलकर उन्हें (अङ्ग सन्धियोंको) फैला दे। किंतु उनका प्रसारण हठात् एवं क्रमविरुद्ध न करे। मनुष्य अजीर्णमें भोजनोपरान्त और तत्काल जल पीकर परिश्रम न करे ॥ २८-३० ॥

---

१ कलिङ्गमानसे एक 'पल' चार तोलेका होता है।

४ २८१ वें अध्यायके १६-१७ श्लोकोंपर विमर्श—

(१) सर्वदा सर्वभावानां सामान्यं वृद्धिकारणम्।

(२) ह्रासहेतुर्विशेषश्च प्रवृत्तिरुभयस्य तु।

(३) तुल्यार्थता हि सामान्यं विशेषस्तु विपर्यय:।

उक्त तीनों सूत्र 'चरक-संहिता', सूत्र-स्थानके हैं। तथा—'अष्टाङ्गहृदय'कार लिखते हैं—'वृद्धि: समानै: सर्वेषां विपरीतैर्विपर्यय:।'

उक्त पङ्क्तियोंका निष्कर्ष यही है कि समान द्रव्य, गुण या कर्मवाली वस्तुओंसे समान गुण-धर्मवाले रस-रक्तादिकी वृद्धि होती है तथा विपरीतसे इनका ह्रास होता है।

काकड़ाशृंगीका अथवा केवल एक अतीसका चूर्ण करके बालकोंको मधुके साथ चटावे। इससे खाँसी, वमन और ज्वर नष्ट होता है। बालकोंको दुग्ध, घृत अथवा तेलके साथ वचका सेवन करावे अथवा मुलहठी और शङ्खपुष्पीको दूधके साथ बालक पिये। इससे बालकोंकी वाक्शक्ति एवं रूपसम्पत्तिके साथ-साथ आयु, बुद्धि और कान्तिकी भी वृद्धि होती है। वच, कलिहारी, अडूसा, सोंठ, पीपल, हल्दी, कूट, मुलहठी और सैन्धव—इनका चूर्ण बालकोंको प्रातःकाल पिलावे। इसका सेवन बुद्धिवर्द्धक है। देवदारु, बड़ा सहजन, त्रिफला और नागरमोथा—इनका क्वाथ अथवा पीपल और मुनक्काका कल्क सभी प्रकारके कृमिरोगोंका नाशक है। शुद्ध राँगेको त्रिफला, भृङ्गराज तथा अदरखके रस या मधु घृतमें अथवा भेड़के मूत्र या गोमूत्रमें अञ्जन करनेसे नेत्ररोगोंमें लाभ होता है। दूर्वाके रसका नस्य नाकसे बहनेवाले रक्तरोग (नाशा)को शान्त करनेमें उत्तम है॥ १—७॥

लहसुन, अदरख और सहजनके रससे कानको भर देनेपर अथवा अदरखके रस या तेलसे कानको भर देनेपर वह कर्णशूलका नाशक तथा ओष्ठरोगोंको दूर करनेवाला होता है। जायफल, त्रिफला, व्योष (सोंठ, मिर्च, पीपल), गोमूत्र, हल्दी, गोदुग्ध तथा बड़ी हर्रेके कल्कसे सिद्ध किया हुआ तिलका तेल कवल (कुल्ला) करनेसे दन्तपीड़ाका नाशक है। काँजी, नारियलका जल, गोमूत्र, सुपारी तथा सोंठ—इनके क्वाथका कवल मुखमें रखनेसे जिह्वाके रोगका नाश होता है। कलिहारीके कल्क (पिसे हुए द्रव्य)में निर्गुण्डीके रसके साथ सिद्ध किया हुआ तेलका नस्य लेने (नाकमें डालने)से गण्डमाला और गलगण्डरोगका नाश होता है। सभी चर्मरोगोंको नष्ट करनेवाले आक, काठा, करञ्ज, थूहर, अमलतास और चमेलीके पत्तोंको गोमूत्रके साथ पीसकर उबटन लगाना चाहिये। बाकुचीको तिलके साथ एक वर्षतक खाया जाय तो वह सालभरमें कुष्ठरोगका नाश कर देती है। हर्रे, भिलावा, तेल, गुड़ और पिण्डखजूर—ये कुष्ठनाशक ओषध हैं। पाठा, चित्रक, हल्दी, त्रिफला और व्योष (सोंठ, मिर्च, पीपल)—इनका चूर्ण तक्रके साथ पीनेसे अथवा गुड़के साथ हरीतकी खानेसे अर्शरोगका नाश होता है। प्रमेह-रोगीको त्रिफला, दारुहल्दी, बड़ी इन्द्रायण और नागरमोथा—इनका क्वाथ या आँवलेका रस हल्दी, कल्क और मधुके साथ पीना चाहिये। अडूसेको वह गिलोय और अमलतासके क्वाथमें शुद्ध एरण्डका तेल मिलाकर पीनेसे वातरक्तका नाश होता है और पिप्पली प्लीहारोगको नष्ट करती है॥ ८—१६॥

पेटके रोगोंको थूहरके दूधमें अनेक बार भावना दी हुई पिप्पलीका सेवन करना चाहिये। चित्रक, विडङ्ग तथा त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल)के कल्कसे सिद्ध दूध अरुचि रोगका निवारण करता है। पीपलामूल, वच, हर्रे, पीपल और विडङ्गको घीमें मिलाकर रक्खे। (उसके सेवनसे) या केवल तक्रके एक मासतक सेवनसे ग्रहणी, अर्श, पाण्डु, गुल्म और कृमिरोगोंका नाश होता है। त्रिफला, गिलोय, अडूसा, कुटकी, चिरायता—इनका क्वाथ शहदके साथ पीनेसे कामलासहित पाण्डुरोगका नाश होता है। अडूसेके रसको मिश्री और शहद मिलाकर पीनेसे या शतावरी, दाख, खरेटी और सोंठ—इनसे सिद्ध किया हुआ दूध पीनेसे रक्तपित्तरोगका नाश होता है। क्षयरोगके रोगीको शतावरी, विदारीकन्द, बड़ी हर्रे, तीनों खरेटी, असगन्ध, गदहपूर्ना तथा गोखरूके चूर्णका शहद और घीके साथ चाटना चाहिये॥ १७—२१॥

हर्रे, सहजन, करञ्ज, आक, दालचीनी, पुनर्नवा, सोंठ और सैन्धव—इनका गोमूत्रके साथ योग करके लेप किया जाय तो यह विद्रधिकी गाँठको पकानेके लिये उत्तम उपाय है। निशोथ, जीवन्ती, दन्तीमूल, मञ्जिष्ठा, दोनों हल्दी, रसाञ्जन और नीमके पत्तेका लेप भगन्दरमें श्रेष्ठ है। अमलतास, हरिद्रा, लाक्षा और अडूसा—इनके चूर्णको गोघृत और शहदके साथ बत्ती बनाकर नासूरमें देवे। इससे नासूरका शोधन होकर घाव भर जाता है। पिप्पली, मुलहठी, हल्दी, लोध, पद्मकाठ, कमल, रक्तचन्दन एवं मिर्च—इनके साथ गोदुग्धमें सिद्ध किया हुआ तेल घावको भरता है। शीताफल, कपासकी पत्तियोंकी भस्म, त्रिफला, कालीमिर्च, खरेटी और हल्दी—इनका गोला बनाकर घावका स्वेदन करे और इन ओषधियोंके कल्कको घावपर लगावे। दूधके साथ कुम्भीगैर (गुग्गुलसार)को आगपर जलाकर उसका लेप

१ दो ही प्रतियोंमें अध्यायके २० वें श्लोकमें दो प्रकारके पाठ सम्भव तथा युक्तियुक्त हैं—(१) कुम्भीसार बलेयुक्तं बह्निस्थाने निधेद्। (२) कुम्भीसारं बलेयुक्तं बह्निस्थं व्रण लिपेत्। यहाँ 'कुम्भीसार' पदका अर्थ है—गुग्गुलका सार क्योंकि भावप्रकाश आदिमें औषधवर्गमें कुम्भीको गुग्गुलका प्रकार किया गया है तथा कुम्भ सिद्धि गन्धके—का निघण्टुमें भी लिखा है। यही गृहीत

तुच्छ क्रीड़ाएँ कामनापरक हैं। इहलौकिक तथा पारलौकिक दोनों सिद्धियोंके देनेवाले कर्मोंको मैंने तुम्हें बतलाया है, जो छ कर्मोंसे युक्त हैं। मन्त्र, ध्यान, औषध, कथा, मुद्रा और यज्ञ—ये छ जहाँ मुष्टि (मुद्राके रूपसे सहायक) हैं, यह कार्य धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षरूप चतुर्वर्ग फलको देनेवाला कर्म बताया गया। इसे जो पढ़ेगा वह स्वर्गमें जायगा ॥ ४१–५१ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'नानारोगहारी ओषधियोंका वर्णन' नामक दो सौ तिरासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २८३ ॥

दो सौ चौरासीवाँ अध्याय

मन्त्ररूप औषधोंका कथन

धन्वन्तरिजी कहते हैं—सुश्रुत ! 'ओंकार' आदि मन्त्र आयु देनेवाले तथा सब रोगोंको दूर करके आरोग्य प्रदान करनेवाले हैं। इतना ही नहीं, देह छूटनेके पश्चात् वे स्वर्गकी भी प्राप्ति करानेवाले हैं। 'ओंकार' सबसे उत्कृष्ट मन्त्र है। उसका जप करके मनुष्य अमर हो जाता है—आत्माके अमरत्वका बोध प्राप्त करता है, अथवा देवतारूप हो जाता है। गायत्री भी उत्कृष्ट मन्त्र है। उसका जप करके मनुष्य भोग और मोक्षका भागी होता है। 'ॐ नमो नारायणाय।'—यह अष्टाक्षर-मन्त्र समस्त मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला है। 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।'—यह द्वादशाक्षर-मन्त्र सब कुछ देनेवाला है। 'ॐ हूं विष्णवे नमः ।'—यह मन्त्र उत्तम औषध है। इस मन्त्रका जप करनेसे देवता और असुर श्रीसम्पन्न तथा नीरोग हो गये। जगत्‌के समस्त प्राणियोंका उपकार तथा धर्माचरण—यह महान् औषध है। 'धर्म, सद्धर्मकृत्, धर्मी'—इन धर्म-सम्बन्धी नामोंके जपसे मनुष्य निर्मल (शुद्ध) हो जाता है। श्रीद, श्रीश, श्रीनिवास, श्रीधर, श्रीनिकेतन, श्रियःपति तथा श्रीपरम'—इन श्रीपति-सम्बन्धी नामात्मक मन्त्रपदोंके जपसे मनुष्य लक्ष्मी (धन-सम्पत्ति) को पा लेता है ॥ १–५½ ॥

'कामी, कामप्रद, काम, कामपाल, हरि, आनन्द, माधव'—श्रीहरिके इन नाम-मन्त्रोंके जप और कीर्तनसे समस्त कामनाओंकी पूर्ति हो जाती है। 'राम, परशुराम, नृसिंह, विष्णु त्रिविक्रम'—ये श्रीहरिके नाम युद्धमें विजयकी इच्छा रखनेवाले योद्धाओंको जपने चाहिये। नित्य विद्याभ्यास करनेवाले छात्रोंको सदा 'श्रीपुरुषोत्तम' नामका जप करना चाहिये। 'दामोदर' नाम बन्धन दूर करनेवाला है। 'पुष्कराक्ष'—यह नाम-मन्त्र नेत्र-रोगोंका निवारण करनेवाला है। 'हृषीकेश'—इस नामका स्मरण भयहारी है। औषध देते और लेते समय इन सब नामोंका जप करना चाहिये ॥ ६–९ ॥

औषधकर्ममें 'अच्युत'—इस अमृत मन्त्रका भी जप करे। संग्राममें 'अपराजित'का तथा जलसे पार होते समय 'श्रीनृसिंह'का स्मरण करे। जो पूर्वादि दिशाओंकी यात्रामें क्षेमकी कामना रखनेवाला हो, वह क्रमशः 'चक्री', 'गदी', 'शार्ङ्गी' और 'खड्गी'का चिन्तन करे। व्यवहारोंमें (मुकदमोंमें) भक्तिभावसे 'सर्वेश्वर अजित' का स्मरण करे। 'नारायण'का स्मरण हर समय करना चाहिये। भगवान् नृसिंहको याद किया जाय तो वे सम्पूर्ण भीतियोंको भगानेवाले हैं। 'गरुडध्वजः'—यह नाम विषका हरण करनेवाला है। 'वासुदेव' नामका तो सदा ही जप करना चाहिये। धान्य आदिको घरमें रखते समय तथा शयन करते समय भी 'अनन्त' और 'अच्युत' का उच्चारण करे। दुःस्वप्न दीखनेपर 'नारायण'का तथा दाह आदिके अवसरपर 'जलशायी'का स्मरण करे। विद्यार्थी 'हयग्रीव' का चिन्तन करे। पुत्रकी प्राप्तिके लिये 'जगत्सूति (जगत्-स्रष्टा)' का तथा शौर्यकी कामना हो तो 'श्रीबलभद्र' का स्मरण करे। इनमेंसे प्रत्येक नाम अभीष्ट मनोरथको सिद्ध करनेवाला है ॥ १०–१४ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'मन्त्ररूप औषधका कथन' नामक दो सौ चौरासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २८४ ॥

उपदंशकी शान्तिके लिये त्रिफलाके क्वाथ या भृङ्गराजके रससे व्रणोंका प्रक्षालन करे (धोये) । परवलकी पत्तीके चूर्णके साथ अनारकी छालका चूर्ण अथवा गजपीपर या त्रिफलाका चूर्ण पाउडरके रूपमें ही उसपर छोड़े । त्रिफला, लौहचूर्ण, मुलहठी, आर्कव (कुकुरमाँगरा), नील कमल, कालीमिर्च और सैन्धव-नमकसहित पकाये हुए तेलके मर्दनसे वमनकी शान्ति होती है । दुग्ध, मार्कव-रस, मुलहठी और नील कमल—इनको दो सेर लेकर तबतक पकाये, जबतक एक पाव तैल शेष रह जाय । इस तैलका नस्य (वृद्धावस्थाके चिह्न) पलित (बाल पकने) का नाशक है । नीमकी छाल, परवलकी पत्ती, त्रिफला, गिलोय, खैरकी छाल, अडूसा अथवा चिरायता, पाठा, त्रिफला और लाल चन्दन—ये दोनों योग ज्वरको नष्ट करते हैं तथा कुष्ठ, फोड़ा-फुन्सी, चकत्ते आदिको भी मिटा देते हैं । परवलकी पत्ती, गिलोय, चिरायता, अडूसा, मजीठ एवं पित्तपापड़ा—इनके क्वाथमें खदिर मिलाकर लिया जाय तो यह ज्वर तथा विस्फोटक रोगोंको शान्त करता है ॥ २५–३१ ॥

दशमूल, गिलोय, हरें, दारुहल्दी, गदहपूर्णा, सहजना एवं सोंठ ज्वर, विद्रधि तथा शोथ-रोगोंमें हितकर है । महुवा और नीमकी पत्तीका लेप व्रणशोधक होता है । त्रिफला (आँवला, हर्रा, बहेरा), खैर (कत्था), दारुहल्दी, बरगदकी छाल, बरियार, कुशा, नीमके पत्ते तथा मूलीके पत्ते—इनका क्वाथ शरीरके बाह्य-शोधनके लिये हितकर है । करञ्ज, नीम तथा मेउड़का रस घावके कृमियोंको नष्ट करता है । धायका फूल, सफेद चन्दन, खरेटी, मजीठ, मुलहठी, कमल, देवदारु तथा मेदाका घृतसहित लेप व्रणरोपण (घावको भरनेवाला) है । गुग्गुल, त्रिफला, पीपर, सोंठ, मिर्च, पीपर—इनका समान भाग ले और इन सबके समान घृत मिलाकर प्रयोग करे । इस प्रयोगसे मनुष्य नाड़ीव्रण, दुष्टव्रण, शूल और भगन्दर आदि रोगोंको दूर करे । गोमूत्रमें भिगोकर शुद्ध की हुई हरीतकी (छोटी हड़) को (रेंड़ीके) तेलमें भूनकर सेंधा नमकके साथ प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन करे । ऐसी हरीतकी कफ और वातसे होनेवाले रोगोंको नष्ट करती है । सोंठ, मिर्च, पीपल और त्रिफलाका क्वाथ यवक्षार और लवण मिलाकर पीये । कफप्रधान और वातप्रधान प्रकृतिवाले मनुष्योंके लिये यह विरेचन है और दस्तकी शुद्धिको दूर करता है । पीपल, पीपलामूल, वच, चित्रक, सोंठ—इनका क्वाथ अथवा किसी प्रकारका पेय बनाकर पीये । यह आमवातका नाशक है । रास्ना, गिलोय, रेंड़की छाल, देवदारु और सोंठ—इनका क्वाथ सर्वाङ्ग-वात तथा संधि, अस्थि और मज्जागत आमवातमें पीना चाहिये । अथवा सोंठके जलके साथ दशमूल-क्वाथ पीना चाहिये । सोंठ एवं गोखरूका क्वाथ प्रतिदिन प्रातः प्रातः सेवन किया जाय तो यह आमवातके सहित कटिशूल और पाण्डुरोगका नाश करता है । रास्ना एवं पत्रसहित प्रसारिणी (छुइमुइ) का तैल भी उक्त रोगमें लाभकर है । गिलोयका स्वरस, कल्क, चूर्ण या क्वाथ दीर्घकालतक सेवन करके रोगी वातरक्त-रोगसे छुटकारा पा जाता है । वर्धमान पिप्पली या गुड़के साथ हरेंका सेवन करना चाहिये । (यह भी वात-रक्तनाशक है ।) पटोलपत्र, त्रिफला, राइ, कुटकी और गिलोय—इनका पाक तैयार करके उसके सेवनसे दाहयुक्त वात-रक्तरोग शीघ्र नष्ट होता है । गुग्गुलको ठंढे-गरमजलसे और त्रिफलाको समशीतोष्ण जलसे, अथवा खरेटी, पुनर्नवा, एरण्डमूल, दोनों कटेरी, गोखरूका क्वाथ हींग तथा लवणके साथ लेनेपर वह वातजनित पीड़ाको शीघ्र ही दूर कर देता है । एक तोला पीपलामूल, सैन्धव, सौवर्चल, विड्, सामुद्र एवं औद्भिद—पाँचों नमक, पिप्पली, चित्ता, सोंठ, त्रिफला, निशोथ, वच, यवक्षार, सर्जक्षार, शातला, दन्ती, स्वर्णक्षीरी (सत्यानाशी) और काकड़ासिंगी—इनकी बेरके समान गुटिका बनाये और काँजीके साथ उसका सेवन करे । शोथ तथा उससे हुए पाकमें भी इसका सेवन करे । उदरवृद्धिमें भी निशोथका प्रयोग विहित है । दारुहल्दी, पुनर्नवा तथा सोंठ—इनसे सिद्ध किया हुआ दुग्ध शोथनाशक है तथा मदार, गदहपूर्ना एवं चिरायताके क्वाथसे सेक (करनेपर) शोथका हरण होता है ॥ ३२–५१ ॥

जो मनुष्य त्रिकटुयुक्त घृतको तिगुने पञ्चाम्लयुक्त जलमें सिद्ध करके पीता है, उसका अर्शरोग निस्संदेह नष्ट हो जाता है । फूल प्रियङ्गु, कमल, मँभरू, वायविडङ्ग, चित्रक, पञ्चलवण, रास्ना, दुग्ध, देवदारु और वचसे सिद्ध चौगुना कटुद्रव्ययुक्त तैल मर्दन करनेसे (या अन्नके साथ ही पीकर सेवन करनेसे) गलगण्ड और गण्डमाला-रोगोंका नाश हो जाता है ॥ ५२–५४ ॥

कचूर, नागरमोथा, कुटकीका पकाया हुआ क्वाथ तथा भीमसेनी कपूर, पीपल और अडूसाका कल्क दूधके साथ पकाकर लेनेसे क्षयरोगमें लाभ होता है ॥ ५५ ॥

वचा, विड्लवण, अभया (बड़ी हर्रे), सोंठ, हींग, कूठ, चित्रक और अजवाइन—इनके क्रमशः दो, तीन, छः, चार, एक, सात, पाँच और चार भाग ग्रहण करके चूर्ण बनावे। यह चूर्ण गुल्मरोग, उदररोग, शूल और कासरोगको दूर करता है। पाठा, दन्तीमूल, त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल), त्रिफला और चित्रा—इनका चूर्ण गोमूत्रके साथ पीसकर गुटिका बना ले। यह गुटिका गुल्म और प्लीहा आदिका नाश करनेवाली है। अडूसा, नीम और परवलके पत्तोंके चूर्णका त्रिफलाके साथ सेवन करनेपर वात पित्त रोगोंका शमन होता है। वायविडङ्गका चूर्ण शहदके साथ लिया जाय तो वह कृमिनाशक है। विडङ्ग, सेंधानमक, यवक्षार एवं गोमूत्रके साथ ली गयी हर्रे भी (कृमिघ्न है)। शल्लकी (शाल्वविशेष), बेर, जामुन, पियाल, आम्र और अर्जुन—इन वृक्षोंकी छालका चूर्ण मधुमें मिलाकर दूधके साथ लेनेसे रक्तातिसार दूर होता है। कच्चे बेलका सूखा गूदा, आमकी छाल, धायका फूल, पाठा, सोंठ और मोचरस (कदली स्वरस) —इन सबका समान भाग लेकर चूर्ण बना ले और गुड़मिश्रित तक्रके साथ पीये। इससे दुस्साध्य अतिसारका भी अवरोध हो जाता है। चाँगेरी, बेर, दहीका पानी, सोंठ और यवक्षार—इनका घृतसहित क्वाथ पीनेसे गुदभ्रंश रोग दूर होता है। वायविडंग, अतीस, नागरमोथा, देवदारु, पाठा तथा इन्द्रयव—इनके क्वाथमें मिर्चका चूर्ण मिलाकर पीनेसे शोथयुक्त अतिसारका नाश होता है॥ ५६—६३॥

शर्करा, सेंधव और सोंठके साथ अथवा पीपल, मधु एवं गुड़के सहित प्रतिदिन दो हर्रेका भक्षण करे तो इससे मनुष्य सौ वर्ष (अधिक काल) तक सुखपूर्वक जीवित रह सकता है। पिप्पलीयुक्त त्रिफला भी मधु और घृतके साथ प्रयोगमें लायी जानेपर वैसा ही फल देती है। आँवलेके स्वरससे भावित आँवलेके चूर्णको मधु, घृत तथा शर्कराके साथ चाटकर दुग्धपान करे। इससे मनुष्य स्त्रियोंका (प्रिय) प्रभु बन सकता है। उड़द, पीपल, अगहनीका चावल, जौ और गेहूँ—इन सबका चूर्ण समान मात्रामें लेकर घृतमें उसकी पूरी बना ले। उसका भोजन करके शर्करायुक्त मधुर दुग्धपान करे। निस्संदेह इस प्रयोगसे मनुष्य गौरैया पक्षीके समान दस बार स्त्री-सम्भोग करनेमें समर्थ हो सकता है। मजीठ, धायके फूल, लोध, नीलकमल—इनको दूधके साथ देना चाहिये। यह स्त्रियोंके प्रदररोगको दूर करता है। पीली कटसरैया, मुलहठी और श्वेतचन्दन—ये भी प्रदररोगनाशक हैं। श्वेतकमल और नीलकमलकी जड़ तथा मुलहठी, शर्करा और तिल—इनका चूर्ण गर्भपातकी आशङ्का होनेपर गर्भको स्थिर करनेमें उत्तम योग है। देवदारु, अभ्रक, कूठ, खस और सोंठ—इनको काँजीमें पीसकर तैल मिलाकर लेप करनेसे शिरोरोगका नाश करता है। सेंधवलवणको तेलमें सिद्ध करके छान ले। वह तैल थोड़ा गरम रह जाय तो उसको कानमें डालनेसे कर्णशूलका शमन होता है। लहसुन, अदरख, सहजन और केला—इनमेंसे प्रत्येकका रस (कर्णशूलहारी है।) बरियारा, शतावरी, रास्ना, गिलोय, कटसरैया और त्रिफला—इनसे सिद्ध घृतका या इनके सहित घृतका पान तिमिररोगका नाश करनेमें परम उत्तम माना गया है। त्रिफला, त्रिकटु एवं सेंधवलवण—इनसे सिद्ध किये हुए घृतका पान मनुष्यको करना चाहिये। यह चक्षुष्य (आँखोंके लिये हितकर), हृद्य (हृदयके लिये हितकर), विरेचक, दीपक और कफरोगनाशक है। गायके गोबरके रसके साथ नीलकमलके परागकी गुटिकाका अञ्जन दिनौंधी और रतौंधी रोगियोंके लिये हितकर है। मुलहठी, वच, पिप्पलीबीज, कुरैयाकी छालका कल्क और नीमका क्वाथ घोंट देनेसे वह वमनकारक होता है। खूब चिकना तथा रेड़ी-जैसे तैलसे स्निग्ध किया गया या पकाया हुआ यवका पानी विरेचक होता है। किंतु इसका अनुचित प्रयोग मन्दाग्नि, उदरका भारीपन और अरुचिको उत्पन्न करता है। हर्रे, सेंधव लवण और पीपल—इनके समान भागका चूर्ण गर्म जलके साथ ले। यह नाराच संज्ञक चूर्ण सर्वरोगनाशक तथा विरेचक है॥ ६४—७८॥

महर्षि आत्रेयने मुनिजनोंके लिये जिन सिद्ध योगोंका वर्णन किया था, समस्त योगोंमें श्रेष्ठ उन सर्वरोगनाशक योगोंका ज्ञान सुश्रुतने प्राप्त किया॥ ७९॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'मृतसंजीवनीकारक सिद्ध योगोंका कथन' नामक दो सौ पचासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २८५॥

दो सौ छियासीवाँ अध्याय

मृत्युंजय योगोंका वर्णन

भगवान् धन्वन्तरि कहते हैं—सुश्रुत ! अब मैं मृत्युंजय-कल्पोंका वर्णन करता हूँ, जो आयु देनेवाले एवं सब रोगोंका मर्दन करनेवाले हैं। मधु, घृत, त्रिफला और गिलोयका सेवन करना चाहिये। यह रोगको नष्ट करनेवाली है तथा तीन सौ वर्षतककी आयु दे सकती है। चार तोले, दो तोले अथवा एक तोलेकी मात्रामें त्रिफलाका सेवन वही फल देता है। एक मासतक निम्ब-तैलका नस्य लेनेसे पाँच सौ वर्षकी आयु और कवित्व-शक्ति उपलब्ध होती है। भिलावा एवं तिलका सेवन रोग, अपमृत्यु और वृद्धावस्थाको दूर करता है। वाकुचीके पञ्चाङ्गके चूर्णको खैर (कत्था) के क्वाथके साथ छः मासतक प्रयोग करनेसे रोगी कुष्ठपर विजयी होता है। नीली कटसरैयाके चूर्णका मधु या दुग्धके साथ सेवन हितकर है। लौहयुक्त दुग्धका पान करनेवाला सौ वर्षोंकी आयु प्राप्त करता है। प्रतिदिन प्रातःकाल मधु, घृत और सोंठका चार तोलेकी मात्रामें सेवन करनेवाला मनुष्य मृत्यु विजयी होता है। ब्राह्मीके चूर्णके साथ दूधका सेवन करनेवाले मनुष्यके चेहरेपर झुर्रियाँ नहीं पड़ती हैं और उसके बाल नहीं पकते हैं, वह दीर्घजीवन लाभ करता है। मधुके साथ उच्चटा (भुईं आँवला) को एक तोलेकी मात्रामें खाकर दुग्धपान करनेवाला मनुष्य मृत्युपर विजय पाता है। मधु, घी अथवा दूधके साथ मेउड़के रसका सेवन करनेवाला रोग एवं मृत्युको जीतता है। छः मासतक प्रतिदिन एक तोले भर पलाश-तैलका मधुके साथ सेवन करके दुग्धपान करनेवाला पाँच सौ वर्षोंकी आयु प्राप्त करता है। दुग्धके साथ काँगनीके पत्तोंके रसका या त्रिफलाका प्रयोग करे। इससे मनुष्य एक हजार वर्षोंकी आयु प्राप्त कर सकता है। इसी प्रकार मधुके साथ घृत और चार तोलेभर शतावरी-चूर्णका सेवन करनेसे भी सहस्रों वर्षोंकी आयु प्राप्त हो सकती है। घी अथवा दूधके साथ मेउड़की जड़का चूर्ण या पत्तोंका रस रोग एवं मृत्युका नाश करता है। नीमके पञ्चाङ्ग चूर्णको खैरके क्वाथ (काढ़े) की भावना देकर भृङ्गराजके रसके साथ एक तोलाभर सेवन करनेसे मनुष्य रोगको जीतकर अमर हो सकता है। रुदन्तिका चूर्ण घृत और मधुके साथ सेवन करनेसे या केवल दुग्धाहारसे मनुष्य मृत्युको जीत लेता है। हरीतकीके चूर्णको भृङ्गराज-रसकी भावना देकर एक तोलेकी मात्रामें घृत और मधुके साथ सेवन करनेवाला रोगमुक्त होकर तीन सौ वर्षोंकी आयु प्राप्त कर सकता है। गेठी, लौहचूर्ण, शतावरी समान भागसे भृङ्गराज-रस तथा घीके साथ एक तोला मात्रामें सेवन करनेसे मनुष्य पाँच सौ वर्षकी आयु प्राप्त करता है। लौहभस्म तथा शतावरीको भृङ्गराजके रसमें भावना देकर मधु एवं घीके साथ लेनेसे तीन सौ वर्षकी आयु प्राप्त होती है। ताम्रभस्म, गिलोय, शुद्ध गन्धक समान भाग घीकुँवारके रसमें घोटकर दो-दो रत्तीकी गोली बनाये। इसका घृतसे सेवन करनेसे मनुष्य पाँच सौ वर्षकी आयु प्राप्त करता है। असगन्ध, त्रिफला, चीनी, तैल और घृतमें सेवन करनेवाला सौ वर्षतक जीता है। गदहपूर्नाका चूर्ण एक पल मधु, घृत और दुग्धके साथ भक्षण करनेवाला भी शतायु होता है। अशोककी छालका एक पल चूर्ण मधु और घृतके साथ खाकर दुग्धपान करनेसे रोगनाश होता है। निम्बके तैलकी मधुसहित नस्य लेनेसे मनुष्य सौ वर्ष जीता है और उसके केश सदा काले रहते हैं। बहेड़ेके चूर्णको एक तोला मात्रामें शहद, घी और दूधसे पीनेवाला शतायु होता है। मधुरादिगणकी ओषधियों और हरीतकीको गुड़ और घृतके साथ खाकर दूधके सहित अन्न भोजन करनेवालेके केश सदा काले रहते हैं तथा वह रोगरहित होकर पाँच सौ वर्षोंका जीवन प्राप्त करता है। एक मासतक सफेद पेठेके एक पल चूर्णको मधु, घृत और दूधके साथ सेवन करते हुए दुग्धान्नका भोजन करनेवाला नीरोग रहकर एक सहस्र वर्षकी आयुका उपभोग करता है। कमलगट्टेका चूर्ण भाँगरेके रसकी भावना देकर मधु और घृतके साथ लिया जाय तो वह सौ वर्षोंकी आयु प्रदान करता है। कड़वी तुम्बीके एक तोलेभर तेलका नस्य दो सौ वर्षोंकी आयु प्रदान करता है। त्रिफला, पीपल और सोंठ—इनका प्रयोग तीन सौ वर्षोंकी आयु प्रदान करता है। इनका शतावरीके साथ सेवन अत्यन्त बलप्रद और सहस्र वर्षोंकी आयु प्रदान करनेवाला है। इनका चित्रकके साथ तथा सोंठके साथ विडङ्गका प्रयोग भी पूर्ववत् फलप्रद है। त्रिफला, पीपल और सोंठ—इनका लौह, भृङ्गराज, खरैटी, निम्ब-पञ्चाङ्ग, खैर, निर्गुण्डी, कटेरी, अडूसा और पुनर्नवाके साथ या इनके रसकी भावना देकर या इनके संयोगसे वटी या चूर्णका निर्माण करके उसका घृत, मधु, गुड़ और जलादि अनुपानोंके साथ सेवन करनेसे पूर्वोक्त

फलकी प्राप्ति होती है। 'ॐ हूं सः'—इस मन्त्र*से अभिमन्त्रित योगराज मृतसंजीवनीके समान होता है। उसके सेवनसे मनुष्य रोग और मृत्युपर विजय प्राप्त करता है। देवता, असुर और मुनियोंने इस कल्प सागरका सेवन किया है॥ १-२३॥

गजायुर्वेदका वर्णन पालकाप्यने अङ्गराज (लोमपाद) से किया था॥ २४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'मृत्युंजय-कल्प-कथन' नामक दो सौ छियासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २८६॥

दो सौ सत्तासीवाँ अध्याय

गज चिकित्सा

पालकाप्यने कहा—लोमपाद! मैं तुम्हारे सम्मुख हाथियोंके लक्षण और चिकित्साका वर्णन करता हूँ। लम्बी सूँड़वाले, दीर्घ श्वास लेनेवाले, आघातको सहन करनेमें समर्थ, बीस या अठारह नखोंवाले एवं शीतकालमें मदकी धारा बहानेवाले हाथी प्रशस्त माने गये हैं। जिनका दाहिना दाँत उठा हो, गर्जना मेघके समान गम्भीर हो, जिनके कान विशाल हों तथा जो त्वचापर सूक्ष्म बिन्दुओंसे चिह्नित हों, ऐसे हाथियोंका संग्रह करना चाहिये, किंतु जो ह्रस्वाकार और लक्षणहीन हों, ऐसे हाथियोंका संग्रह कदापि नहीं करना चाहिये। पार्श्वगर्भिणी हस्तिनी और मूढ उन्मत्त हाथियोंको भी न रक्खे। वर्ण, सत्त्व, बल, रूप, कान्ति, शारीरिक संगठन एवं वेग—इस प्रकारके सात गुणोंसे युक्त गजराज सम्मुख युद्धमें शत्रुओंपर विजय प्राप्त करता है। गजराज ही शिविर और सेनाकी परम शोभा हैं। राजाओंकी विजय हाथियोंके अधीन है॥ १-८½॥

हाथियोंके सभी प्रकारके ज्वरोंमें अनुवासन देना चाहिये। घृत और तैलके अभ्यङ्गके साथ स्नान वात रोगको नष्ट करनेवाला है। राजाओंको हाथियोंके स्कन्ध रोगोंमें पूर्ववत् अनुवासन देना चाहिये। द्विजश्रेष्ठ! पाण्डुरोगमें गोमूत्र, हरिद्रा और घृत दे। बद्धकोष्ठ (कब्जियत) में तैलसे पूरे शरीरका मर्दन करके स्नान कराना या क्षरण कराना प्रशस्त है। हाथीको पञ्चलवण (काललवण, सेंधा नमक, सौंचर नोन, समुद्रलवण और काचलवण) युक्त वारुणी मदिराका पान करावे। मूर्च्छा-रोगमें हाथीको वेडंग, त्रिफला, त्रिकटु और सैंधव लवणके ग्रास कर खिलाये तथा मधुयुक्त जल पिलाये। शिरःशूलमें घृत और नस्य प्रशस्त है। हाथियोंके पैरके रोगोंमें तैलयुक्त पोटलीसे मर्दनरूप चिकित्सा करे। तदनन्तर कल्क और कषायसे उनका शोधन करना चाहिये। जिस हाथीको कम्पन होता हो, उसको पीपल और मिर्च मिलाकर मोर, तीतर और बटेरके मांसके साथ भोजन करावे। अतिसाररोगके शमनके लिये गजराजको नेत्रवाला, बेल सूखा गूदा, लोध, धायके फूल और मिश्रीकी पिंडी बनाकर खिलावे। करग्रह (सूँड़के रोग) में लवणयुक्त घृतका नस्य देना चाहिये। उत्कर्णक रोगमें पीपल, सोंठ, कालाजीरा और नागरमोथासे साधित यवागू एवं वाराही-कन्दका रस दे। दशमूल, कुलथी, अम्लवेत और काकमाचीसे सिद्ध किया हुआ तैल मिर्चके साथ प्रयोग करनेसे गलग्रह-रोगका नाश होता है। मूत्रकृच्छ्र-रोगमें अष्टलवणयुक्त सुरा एवं घृतका पान करावे अथवा खीरेके बीजोंका क्वाथ दे। हाथीको त्वग्दोषमें नीम या अडूसेका क्वाथ पिलावे। कृमियुक्त कोष्ठकी शुद्धिके लिये गोमूत्र और वायविडंग प्रशस्त हैं। सोंठ, पीपल, मुनक्का और शक्करासे शृत जलका पान क्षतदोषका क्षय करनेवाला है तथा मांस-रस भी लाभदायक है। अरुचिरोगमें सोंठ, मिर्च एवं पिप्पलीयुक्त मूँग भात प्रशंसित है। निशोथ, त्रिकटु, चित्रक, दन्ती, आक, पीपल, दुग्ध और गम्भारीफल—इनसे सिद्ध किया हुआ स्नेह गुल्मरोगका अपहरण करता है। इसी प्रकार (गजचिकित्सक) भेदन, द्रावण, अभ्यङ्ग, स्नेहपान और अनुवासनके द्वारा सभी प्रकारके विद्रधिरोगों का विनाश करे॥ ९-२१॥

हाथीके कटुरोगमें मूँगकी दाल या मूँगके साथ मुलहठी मिलावे और नेत्रबाला एवं बेलकी छालका लेप करे। सभी प्रकारके शूलका शमन करनेके लिये दिनके पूर्वभागमें इन्द्रयव, हींग, धूपसरल, दोनों हल्दी और दारुहल्दीकी

* 'ॐ हूं सः'—ऐसा पाठ ही प्रतियोंमें उपलब्ध है। परंतु मृत्युंजय मन्त्र 'ॐ जूं सः' ऐसा है।

पिंडी दे। हाथियोंके उत्तम भोजनमें साठी चावल, मध्यम भोजनमें जौ और गेहूँ एवं अधम भोजनमें अन्य भक्ष्य-पदार्थ माने गये हैं। जौ और ईख हाथियोंका बल बढ़ानेवाले हैं तथा सूखा तृण उनके धातुको प्रकुपित करनेवाला है। मदक्षीण हाथीको दुग्ध पिलाना प्रशस्त है तथा दीपनीय द्रव्योंसे पकाया हुआ मांसरस भी लाभप्रद है। गुग्गुल, गठिवन, कक्कोल्यादिगण और चन्दन—इनका मधुके साथ प्रयोग करे। इससे पिण्डाद्रेक रोगका नाश होता है। कुटकी, मत्स्य, वायविडंग, लवण, कोशातकी (झिमनी) का दूध और हल्दी—इनका धूप हाथियोंके लिये विजय प्रद है। पीपल और चावल तथा तेल, माध्वीक (महुआ या अङ्गूरके रससे निर्मित सुरा) तथा मधु—इनका नेत्रोंमें परिषेक दीपनीय माना गया है। गौरैया चिड़िया और कबूतरकी बीट, गूलर, सूखा गोबर एवं मदिरा—इनका मञ्जन हाथियोंको अत्यन्त प्रिय है। हाथीके नेत्रोंको इससे अञ्जित करनेपर वह संग्रामभूमिमें शत्रुओंको मसल डालता है। नीलकमल, नागरमोथा और तगर—इनको चावलके जलमें पीस ले। यह हाथियोंके नेत्रोंको परम शान्ति प्रदान करता है। नख बढ़नेपर उनके नख काटने चाहिये और प्रतिमास तेलका सेक करना चाहिये। हाथियों का शयन-स्थान सूखे गोबर और धूलसे युक्त होना चाहिये। शरद् और ग्रीष्म ऋतुमें इनके लिये घृतका सेक उपयुक्त है॥ २२—३३॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'गज चिकित्साका कथन' नामक दो सौ सत्तासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २८७॥

दो सौ अठासीवाँ अध्याय

अश्ववाहन-सार

भगवान् धन्वन्तरि कहते हैं—सुश्रुत! अब मैं अश्ववाहनका रहस्य और अश्वोंकी चिकित्साका वर्णन करूँगा। धर्म, कर्म और अर्थकी सिद्धिके लिये अश्वोंका संग्रह करना चाहिये। घोड़ेके ऊपर प्रथम बार सवारी करनेके लिये अश्विनी, श्रवण, हस्त, उत्तराषाढ़, उत्तरभाद्रपद और उत्तर फाल्गुनी नक्षत्र प्रशस्त माने गये हैं। घोड़ोंपर चढ़नेके लिये हेमन्त, शिशिर और वसन्त ऋतु उत्तम हैं। ग्रीष्म, शरद् एवं वर्षा ऋतुमें घुड़सवारी निषिद्ध है। घोड़ोंको तीखे और रूखे डंडेसे न मारे। उनके मुखपर प्रहार न करे। जो मनुष्य घोड़ेके मनको नहीं समझता तथा उपायोंको जाने बिना ही उसपर सवारी करता है तथा पत्थरों, कीलों और अस्थियोंसे भरे हुए दुर्गम, कण्टकयुक्त, बालू और कीचड़से आच्छन्न पथपर, गड्ढों या उन्नत भूमियोंसे दूषित मार्गपर ले जाता है एवं पीठपर काठीके बिना ही बैठ जाता है, वह मूर्ख अश्वका ही वहन बनता है, अर्थात् वह अश्वके अधीन होकर विपत्तिमें फँस जाता है। कोई बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ सुहृती अश्ववाहक अश्वशास्त्रको पढ़े बिना भी केवल अभ्यास और अध्यवसायसे ही अश्वको अपना अभिप्राय समझा देता है। अथवा घोड़के अभिप्रायको समझकर दूसरोंको उसका ज्ञान करा देता है॥ १—६½॥

अश्वको नहलाकर पूर्वाभिमुख खड़ा करे। फिर उसके शरीरमें आदिमें 'ॐ' और अन्तमें 'नमः' शब्द जोड़कर अपने बीजाक्षरसे युक्त मन्त्र बोलकर देवताओंकी क्रमशः योजना (न्यास या भावना) करे*। अश्वके चित्तमें ब्रह्मा, बलमें विष्णु, पराक्रममें गरुड़, पार्श्वभागमें रुद्रगण, बुद्धिमें बृहस्पति, मर्मस्थानमें विश्वेदेव, नेत्रावर्त और नेत्रमें चन्द्रमा सूर्य, कानमें अश्विनीकुमार, जठराग्निमें स्वधा, जिह्वामें सरस्वती, वेगमें पवन, पृष्ठभागमें स्वर्गपृष्ठ, खुराग्रमें समस्त पर्वत, रोमकूपमें नक्षत्रगण, हृदयमें चन्द्रकला, तेजमें अग्नि, श्रोणिदेशमें रति, ललाटमें जगत्पति, हेषित (हिनहिनाहट) में नवग्रह एवं वक्षःस्थलमें वासुकिका न्यास करे। अश्वारोही उपवासपूर्वक अश्वकी अर्चना करे एवं उसके दक्षिण कर्णमें निम्नलिखित मन्त्रका जप करे—॥ ७-१२॥

"तुरंगम! तुम गन्धर्वराज हो। मेरे वचनको सुनो। तुम गन्धर्वकुलमें उत्पन्न हुए हो। अपने कुलको दूषित न करना। अश्व! ब्राह्मणोंके सत्यवचन, सोम, गरुड, रुद्र, वरुण और पवनके बल एवं अग्निके तेजसे युक्त अपनी जातिका स्मरण करो। याद करो कि तुम राजेन्द्रपुत्र हो।" सत्यवाक्यका स्मरण करो। वरुणकन्या वारुणी और कौस्तुभ मणिको याद करो। जब देवों और दानवोंद्वारा क्षीरसमुद्र का मन्थन हो रहा था, उस समय तुम देवकुलमें प्रादुर्भूत हुए थे। अपने वाक्यका पालन करो। तुम अश्वोंमें उत्पन्न

* यथा ॐ ब्रह्मणे नमः चित्ते। ॐ ह्रीं विष्णवे नमः बले। इत्यादि।

फलकी प्राप्ति होती है। 'ॐ हूं स'—इस मन्त्र*से अभिमन्त्रित योगराज मृतसंजीवनीके समान होता है। उसके सेवनसे मनुष्य रोग और मृत्युपर विजय प्राप्त करता है। देवता, असुर और मुनियोंने इन कल्प सागरोंका सेवन किया है॥ १-३॥

गजायुर्वेदका वर्णन पालकाप्यने अङ्गराज (लमपाद) से किया था॥ २४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'मृत्युंजय-कल्प-कथन' नामक दो सौ छियासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २८६॥

दो सौ सत्तासीवाँ अध्याय

गज चिकित्सा

पालकाप्यने कहा—लोमपाद! मैं तुम्हारे सम्मुख हाथियोंके लक्षण और चिकित्साका वर्णन करता हूँ। लम्बी सूँड़वाले, दीर्घ श्वास लेनेवाले, आघातको सहन करनेमें समर्थ, बीस या अठारह नखोंवाले एवं शीतकालमें मदकी धारा बहानेवाले हाथी प्रशस्त माने गये हैं। जिनका दाहिना दाँत उठा हो, गर्जना मेघके समान गम्भीर हो, जिनके कान विशाल हों तथा जो त्वचापर सूक्ष्म बिन्दुओंसे चिह्नित हों, ऐसे हाथियोंका संग्रह करना चाहिये; किंतु जो ह्रस्वाकार और लक्षणहीन हों, ऐसे हाथियोंका संग्रह कदापि नहीं करना चाहिये। पार्श्वगर्भिणी हस्तिनी और मूढ उन्मत्त हाथियोंको भी न रखे। वर्ण, सत्त्व, बल, रूप, कान्ति, शारीरिक संगठन एवं वेग—इस प्रकारके सात गुणोंसे युक्त गजराज सम्मुख युद्धमें शत्रुओंपर विजय प्राप्त करता है। गजराज ही शिविर और सेनाकी परम शोभा हैं। राजाओंकी विजय हाथियोंके अधीन है॥ १-५½॥

हाथियोंके सभी प्रकारके ज्वरोंमें अनुवासन देना चाहिये। घृत और तैलके अभ्यङ्गके साथ स्नान वात रोगको नष्ट करनेवाला है। राजाओंको हाथियोंके स्कन्ध रोगोंमें पूर्ववत् अनुवासन देना चाहिये। द्विजश्रेष्ठ! पाण्डुरोगमें गोमूत्र, हरिद्रा और घृत दे। पद्मकोष्ठ (फजिगत) में तैलसे पूरे शरीरका मर्दन करके स्नान कराना या धारण कराना प्रशस्त है। हाथीको पञ्चलवण (काललवण, सेंधा नमक, संचर नोन, समुद्रलवण और काचलवण) युक्त वारुणी मदिराका पान करावे। मूर्च्छा-रोगमें हाथीको वायविडङ्ग, त्रिफला, त्रिकटु और सैन्धव लवणके ग्रास बनाकर खिलाये तथा मधुयुक्त जल पिलाये। शिरदर्दमें अभ्यङ्ग और नस्य प्रशस्त है। हाथियोंके पैरके रोगोंमें तैलयुक्त पाटलीय मदनरूप चिकित्सा करे। तदनन्तर और कषायसे उनका शोधन करना चाहिये। जिस हाथीको कम्पन होता हो, उसको पीपल और मिर्च मिले मोर, तीतर और बटेरके मांसके साथ भोजन दे। अतिसाररोगके शमनके लिये गजराजको नेत्रवाला, सूखा गूदा, लोध, धायके फूल और मिश्रीकी बनाकर पिलाये। करग्रह (सूँडके रोग) में लवण घृतका नस्य देना चाहिये। उत्कर्णक रोगमें पीपल, कालाजीरा और नागरमोथासे साधित यवागू एवं वार कदम्ब रस दे। दशमूल, कुलथी, अम्लवेत और काकमाचीसे सिद्ध किया हुआ तैल मिर्चके साथ प्रयोग करनेसे गलग्रह-रोगका नाश होता है। मूत्रकृच्छ्र-रोगमें अम्लवणयुक्त मूंग एवं घृतका पान करावे अथवा खीरेके बीजोंका क्वाथ दे। हाथीको चर्मदोषमें नीम या अडूसेका क्वाथ पिलावे। कृमियुक्त कोठरी शुद्धिके लिये गोमूत्र और वायविडङ्ग प्रशस्त हैं। सोंठ, पीपल, मुनक्का और शर्करासे शृत जलका पान क्षतदोषका क्षय करनेवाला है तथा मांस-रस भी लाभदायक है। अरुचिरोगमें सोंठ, मिर्च एवं पिप्पलीयुक्त मूंग भात प्रशंसित है। निशोथ, त्रिकटु, चित्रक, दन्ती, आक, पीपल, दुग्ध और गजपीपल—इनसे सिद्ध किया हुआ स्नेह गुल्मरोगका अपहरण करता है। इसी प्रकार (गजचिकित्सक) भेदन, द्रावण, अभ्यङ्ग, स्नेहपान और अनुवासनके द्वारा सभी प्रकारके विद्रधिरोगोंका विनाश करे॥ ६-२१॥

हाथीके कटुरोगोंमें मूँगकी दाल या मूँगके साथ मुलहठी मिलावे और नेत्रवाला एवं बेलकी छालका लेप करे। सभी प्रकारके शूलोंका शमन करनेके लिये दिनके पूर्वभागमें इन्द्रयव, हींग, धूमसार, दोनों हल्दी और दारुहल्दीकी

* 'ॐ हूं स'—ऐसा पाठ ही प्रतियोंमें उपलब्ध है। परंतु मृत्युंजय मन्त्र 'ॐ जूं स' ऐसा है।

पिंडी दे । हाथियोंके उत्तम भोजनमें साठी चावल, मध्यम भोजनमें जौ और गेहूँ एवं अधम भोजनमें अन्य भक्ष्य पदार्थ माने गये हैं। जौ और ईख हाथियोंका बल बढ़ानेवाले हैं तथा सूखा तृण उनके धातुको प्रकुपित करनेवाला है। मदक्षीण हाथीको दुग्ध पिलाना प्रशस्त है तथा दीपनीय द्रव्योंसे पकाया हुआ मांसरस भी लाभप्रद है। गुग्गुल, गठिवन, ककोल्यादिगण और चन्दन—इनका मधुके साथ प्रयोग करे। इससे पिण्डोद्रेक रोगका नाश होता है। कुटकी, मत्स्य, वायविडंग, लवण, कोशातकी (झिमनी) का दूध और हल्दी—इनका धूप हाथियोंके लिये विजयप्रद है। पीपल और चावल तथा तेल, माध्वीक (महुआ या अङ्गूरके रससे निर्मित सुरा) तथा मधु—इनका नेत्रोंमें परिषेक दीपनीय माना गया है। गौरैया चिड़िया और कबूतरकी बीट, गूलर, सूखा गोबर एवं मदिरा—इनका मञ्जन हाथियोंको अत्यन्त प्रिय है। हाथीके नेत्रोंको इससे अञ्जित करनेपर वह संग्रामभूमिमें शत्रुओंको मसल डालता है। नीलकमल, नागरमोथा और तगर—इनको चावलके जलमें पीस ले। यह हाथियोंके नेत्रोंको परम शान्ति प्रदान करता है। नख बढ़नेपर उनके नख काटने चाहिये और प्रतिमास तेलका सेक करना चाहिये। हाथियोंका शयन-स्थान सूखे गोबर और धूलसे युक्त होना चाहिये। शरद् और ग्रीष्म ऋतुमें इनके लिये घृतका सेक उपयुक्त है॥ २२—३३॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'गज-चिकित्साका कथन' नामक दो सौ सत्तासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २८७॥

दो सौ अठासीवाँ अध्याय

अश्ववाहन-सार

भगवान् धन्वन्तरि कहते हैं—सुश्रुत! अब मैं अश्ववाहनका रहस्य और अश्वोंकी चिकित्साका वर्णन करूँगा। धर्म, काम और अर्थकी सिद्धिके लिये अश्वोंका संग्रह करना चाहिये। घोड़ेके ऊपर प्रथम बार सवारी करनेके लिये अश्विनी, श्रवण, हस्त, उत्तराषाढ़, उत्तरभाद्रपद और उत्तरफाल्गुनी नक्षत्र प्रशस्त माने गये हैं। घोड़ोंपर चढ़नेके लिये हेमन्त, शिशिर और वसन्त ऋतु उत्तम हैं। ग्रीष्म, शरद् एवं वर्षा ऋतुमें घुड़सवारी निषिद्ध है। घोड़ोंको तीखे और कँटीले डंडोंसे न मारे। उनके मुखपर प्रहार न करे। जो मनुष्य घोड़ेके मनको नहीं समझता तथा उपायोंको जाने बिना ही उसपर सवारी करता है तथा घोड़ेको कीलों और अस्थियोंसे भरे हुए दुर्गम, कण्टकयुक्त, बालू और कीचड़से आच्छन्न पथपर, गड्ढों या उन्नत भूमियोंसे दूषित मार्गपर ले जाता है एवं पीठपर काठीके बिना ही बैठ जाता है, वह मूर्ख अश्वका ही वाहन बनता है, अर्थात् वह अश्वके अधीन होकर विपत्तिमें फँस जाता है। कोई बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ सुकृती अश्वचालक अश्वशास्त्रको पढ़े बिना भी केवल अभ्यास और अध्यवसायसे ही अश्वको अपना अभिप्राय समझा देता है। अथवा घोड़ेके अभिप्रायको समझकर दूसरोंको उसका ज्ञान करा देता है॥ १—६½॥

अश्वको नहलाकर पूर्वाभिमुख खड़ा करे। फिर उसके शरीरमें आदिमें 'ॐ' और अन्तमें 'नमः' शब्द जोड़कर अपने बीजाक्षरसे युक्त मन्त्र बोलकर देवताओंकी क्रमशः योजना (न्यास या भावना) करे*। अश्वके चित्तमें ब्रह्मा, बलमें विष्णु, पराक्रममें गरुड, पार्श्वभागमें रुद्रगण, बुद्धिमें बृहस्पति, मर्मस्थानमें विश्वेदेव, नेत्रावर्त और नेत्रमें चन्द्रमा सूर्य, कानोंमें अश्विनीकुमार, जठराग्निमें स्वधा, जिह्वामें सरस्वती, वेगमें पवन, पृष्ठभागमें स्वर्गपृष्ठ, खुराग्रमें समस्त पर्वत, रोमकूपोंमें नक्षत्रगण, हृदयमें चन्द्रकला, तेजमें अग्नि, श्रोणिदेशमें रति, ललाटमें जगत्पति, हेषित (हिनहिनाहट) में नवग्रह एवं वक्षःस्थलमें वासुकिका न्यास करे। अश्वारोही उपवासपूर्वक अश्वकी अर्चना करे एवं उसके दक्षिण कर्णमें निम्नलिखित मन्त्रका जप करे—॥ ७-१२॥

"तुरंगम! तुम गन्धर्वराज हो। मेरे वचनको सुनो। तुम गन्धर्वकुलमें उत्पन्न हुए हो। अपने कुलको दूषित न करना। अश्व! ब्राह्मणोंके सत्यवचन, सोम, गरुड, रुद्र, वरुण और पवनके बल एवं अग्निके तेजसे युक्त अपनी जातिका स्मरण करो। याद करो कि तुम राजेन्द्रपुत्र हो।' सत्यवाक्यका स्मरण करो। वरुणकन्या वारुणी और कौस्तुभ मणिको याद करो। जब दैत्यों और देवताओंद्वारा क्षीरसमुद्रका मन्थन हो रहा था, उस समय तुम देवकुलमें प्रादुर्भूत हुए थे। अपने वाक्यका पालन करो। तुम अश्ववंशमें उत्पन्न

---

* [illegible]

हुए हो। मदार्थ लिये मेरे मित्र बनो। मित्र! तुम यह सुनो। मेरे लिये सिद्ध वाहन बनो। मेरी रक्षा करते हुए मेरी विजयकी रक्षा करो। समराङ्गणमें मेरे लिये तुम सिद्धिप्रद हो जाओ। पूर्वकालमें तुम्हारे पृष्ठभागपर आरूढ़ होकर देवताओंने दैत्योंका संहार किया था। आज मैं तुम्हारे ऊपर आरूढ होकर शत्रुसेनाओंपर विजय प्राप्त करूँगा" ॥ १३–१९ ॥

अश्वारोही वीर अश्वके कानमें उसका जप करके शत्रुओंको मोहित करता हुआ अश्वको युद्धस्थलमें लाये और उसपर आरूढ हो युद्ध करते हुए विजय प्राप्त करे। श्रेष्ठ अश्वारोही घोड़ोंके शरीरमें उत्पन्न दोषोंको भी प्राय यत्नपूर्वक नष्ट कर देते हैं तथा उनमें पुन गुणोंका विकास करते हैं। श्रेष्ठ अश्वारोहियोंद्वारा अश्वमें उत्पादित गुण स्वाभाविक-से दीखने लगते हैं। कुछ अश्वारोही तो घोड़ोंके सहज गुणोंको भी नष्ट कर देते हैं। कोई अश्वोंके गुण और कोई उनके दोषोंको जानता है। वह बुद्धिमान् पुरुष धन्य है, जो अश्व-रहस्यको जानता है। मन्दबुद्धि मनुष्य उनके गुण-दोष दोनोंको ही नहीं जानता। जो कर्म और उपायसे अनभिज्ञ है, अश्वका वेगपूर्वक वाहन करनेमें प्रयत्नशील है, क्रोधी एवं छोटे अपराधपर कठोर दण्ड देता है, वह अश्वारोही कुशल होनेपर भी प्रशंसित नहीं होता है। जो अश्वारोही उपायका जानकार है, घोड़ेके चित्तको समझनेवाला है, विशुद्ध एवं अश्वदोषोंका नाश करनेवाला है, वह सम्पूर्ण कर्मोंमें निपुण सवार सदा गुणोंके उपार्जनमें लगा रहता है। उत्तम अश्वारोही अश्वको उसकी लगाम पकड़कर वाह्यभूमिमें ले जाय। वहाँ उसकी पीठपर बैठकर दायें-बायेंके भेदसे उसका संचालन करे। उत्तम घोड़ेपर चढ़कर सहसा उसपर कोड़ा नहीं लगाना चाहिये; क्योंकि वह ताड़नासे डर जाता है और भयभीत होनेसे उसको मोह भी हो जाता है। अश्वारोही प्रातःकाल अश्वको उसकी वल्गा (लगाम) उठाकर प्लुतगतिसे चलाये। सायंकालमें यदि घोड़ेके पैरमें नाल न हो तो लगाम पकड़कर धीरे-धीरे चलाये, अधिक वेगसे न दौड़ाये ॥ २०–२८ ॥

ऊपर जो कानमें जपनेकी बात तथा अश्वके लालनके सम्बन्धमें आवश्यक विधि कही गयी है, इससे अश्वको आश्वासन प्राप्त होता है, इसलिये उसके प्रति यह 'सामनीति'का प्रयोग हुआ। जब एक अश्व दूसरे अश्वके साथ (रथ आदिमें) संयोजित होता है, तो उसके प्रति यह 'भेद-नीति'का बर्ताव हुआ। कोड़े आदिसे अश्वको पीटना—यह उसके ऊपर 'दण्ड नीति'का प्रयोग है। अश्वको अनुकूल बनानेके लिये जो काल-विलम्ब सहन किया जाता है या उसे चाल सीखनेका अवसर दिया जाता है, वह उस अश्वके प्रति 'दान-नीति'का प्रयोग समझना चाहिये ॥ २९ ॥

पूर्व-पूर्व नीतिकी शुद्धि (सफल उपयोग) हो जानेपर उत्तरोत्तर नीतिका प्रयोग करे। घोड़ेकी जिह्वाके नीचे किंचित् मोगके ग्रन्थि बाँधे। अधिक-से अधिक सौगुने सूतसे बँटकर बनायी गयी वल्गा (लगामको) घोड़ेके दोनों गल्फोंमें जुड़ दे। फिर धीरे धीरे वाहनको भुलावा देकर लगाम ढीली करे। जब घोड़ेकी जिह्वा आदीनावस्थाको प्राप्त हो, तब जिह्वाकी ग्रन्थि खोल दे। जबतक अश्व स्वाभ (स्थिरता) का त्याग न करे, तबतक गात्रताका मोचन करे—लगामको अधिक न खींचे। उरस्त्राणको तबतक सूब कसा-कसा रक्खे, जबतक अश्व मुँह लार गिराता रहे। जो स्वभावसे ही ऊपर मुँह किये रहे, उस अश्वका उरस्त्राण सूब कसकर श्रेष्ठ घुड़सवार उसे अपनी दृष्टि समतापर लीलापूर्वक चला सकता है ॥ ३०–३३½ ॥

जो पहले घोड़ेके पिछले दायें पैरसे दाईं वल्गा संयोजित कर देता है, उसने उसके दायें पैरको काबूमें कर लिया। इसी क्रमसे जो बायीं वल्गासे घोड़ेके बायें पैरको संयुक्त कर देता है, उसने भी उसके वाम पैरपर नियन्त्रण पा लिया। यदि अगले पैर परिश्यक्त हुए तो आसन सुदृढ होता है। पैर दुष्कर मोटनकर्ममें अपहृत हो गये, अथवा बायें पैरमें ही अवस्था आ गयी, उस स्थितिका नाम 'नाटकायन' है। इन और गुणन कर्मोंमें 'लम्बीकार' होता है। बारबार मुख-व्यावर्तन अश्वका स्वभाव है। ये सब लक्षण उसके पैरोंपर नियन्त्रण पानेके कारणभूत नहीं हैं। जब देख ले कि घोड़ा पूर्णतः विश्वस्त हो गया है, तब आसनको जोरसे दबाकर अपना पैर उसके मुखसे भिड़ा दे। ऐसा करके उसकी शीघ्रताका अवलोकन हितकारी होता है। रानोंद्वारा जोरसे दबाकर लगाम खींचकर उसके बन्धनसे जो घोड़ेके दो पैरोंको गृहीत—आकर्षित किया जाता है, वह 'उद्वक्न' कहलाता है। लगामसे घोड़ेके चारों पैरोंको संयुक्त कर उसे यथेष्ट दौड़ी करके बाह्य पार्ष्णिभागोंके प्रयोगसे जहाँ घोड़ेको मोड़ा जाता है, उसे 'मोटन' (मोड़न) माना गया है ॥ ३४–४१ ॥

बुद्धिमान् घुड़सवार इस क्रमसे प्रत्यय तथा अविप्लवको जान ले। फिर चतुर्थ मोटन क्रियाद्वारा इस विधिका सम्पादन होता है। जो घोड़ा लघुमण्डलमें मोटन और उद्वक्नद्वारा

अपने पैरको भूमिपर नहीं रखता—भूमिस्पर्शके बिना ही चक्कर पूरा कर लेता है, वह सफल माना गया है, उसे इस प्रकारकी पादगति ग्रहण करानी—सिखानी चाहिये। आसनमें खूब कसकर निरुद्ध करके जिसे शिक्षा दी जाती है, तथापि जो मन्दगतिसे ही चलता है, फिर संग्रहण करके (पकड़कर) जिसे अभीष्ट चाल ग्रहण करायी जाती है, उसकी उस शिक्षण-क्रियाको 'संग्रहण' कहा गया है। जो घोड़ा स्थानमें स्थित होकर भी व्यग्रचित्त हो जाय और उसके पार्श्वभागमें एँड़ लगाकर लगाम खींचकर उसे कण्टकपान (लगामके लोहेका आस्वादन) कराया जाय तथा इस प्रकार पार्श्वभागमें किये गये इस पाद प्रहारसे जो खलीकृत होकर चाल सीखे, उसका वह शिक्षण 'खलीकार' माना गया है। तीनों प्रकारकी गतियोंसे भी जो मनोवाञ्छित पैर (चाल) नहीं पकड़ पाता है, उस दशामें डंडेसे मारकर जहाँ वह पादग्रहण कराया जाता है, वह क्रिया 'हनन' कही गयी है ॥ ४२–४७ ॥

जब दूसरी वल्गा (लगाम) के द्वारा बार बार खलीकृत करके अश्वको अन्यत्र ले जाकर उच्छ्वासित करके वह चाल ग्रहण करायी जाती है, तब उस क्रियाको 'उच्छ्वास' नाम दिया जाता है। स्वभावसे ही अश्व अपना मुख बाह्य दिशाकी ओर घुमा देता है। उसे यत्नपूर्वक उसी दिशाकी ओर मोड़कर, वहीं नियुक्त करके जब अश्वको वैसी गति ग्रहण करायी जाती है, तब इस यत्नको 'मुखव्यावर्तन' कहते हैं। क्रमशः तीनों ही गतियोंमें चलनेकी रीति ग्रहण कराकर फिर उसे मण्डल आदि पञ्चधाराओंमें चलनेका अभ्यास कराये। ऊपर उठे हुए मुखसे लेकर घुटनोंतक जब अश्व शिथिल हो जाय, तब उसे गतिकी शिक्षा देनेके लिये बुद्धिमान् पुरुष उसके ऊपर सवारी करे तथा जबतक उसके अङ्गोंमें हल्कापन या फुर्ती न आ जाय, तबतक उसे दौड़ाता रहे। जब घोड़की गर्दन कोमल, मुख हल्का और शरीरकी सारी संधियाँ शिथिल हो जायँ, तब वह सवारके वशमें होता है; उसी अवस्थामें अश्वका संग्रह करे। जब वह शिक्षा पाद (गति ज्ञान) न छोड़े, तब वह साधु (अच्छा) अश्व होता है। उस समय दोनों हाथोंसे लगाम खींचे। लगाम खींचकर ऐसा कर दे, जिससे घोड़ा ऊपरकी ओर गर्दन उठाकर एक पैरसे खड़ा हो जाय। जब भूतलपर स्थित हुए पिछले दोनों पैर आकाशमें उठे हुए दोनों अग्रिम पैरोंके आश्रय बन जायँ, उस समय अश्वको मुट्ठीसे संधारण करे। सहसा इस प्रकार खींचनेपर जो घोड़ा खड़ा नहीं होता, शरीरको झकझोरने लगता है, तब उसको मण्डलाकार दौड़ाकर साधे—वशमें करे। जो घोड़ा कन्धा कँपाने लगे, उसे लगामसे खींचकर खड़ा कर देना चाहिये ॥ ४८–५६ ॥

गोबर, नमक और गोमूत्रका क्वाथ बनाकर उसमें मिट्टी मिला दे और घोड़ेके शरीरपर उसका लेप करे। यह मक्खी आदिके काटनेकी पीड़ा तथा थकावटको दूर करनेवाला है। सवारको चाहिये कि वह 'भद्र' आदि जातिके घोड़ोंको माँड़ दे। इससे सूक्ष्म कीट आदिके दशनका कष्ट दूर होता है। भूखके कारण घोड़ा उत्साहशून्य हो जाता है, अतः माँड़ देना इसमें भी लाभदायक है। घोड़ेको उतनी ही शिक्षा देनी चाहिये, जिससे वह वशीभूत हो जाय। अधिक सवारीमें जोते जानेपर घोड़े नष्ट हो जाते हैं। यदि सवारी ली ही न जाय तो वे सिद्ध नहीं होते। उनके मुखको ऊपरकी ओर रखते हुए ही उनपर सवारी करे। मुट्ठीको स्थिर रखते हुए दोनों घुटनोंसे दबाकर अश्वको आगे बढ़ाना चाहिये। गोमूत्राकृति, वक्रता, वेणी, पद्ममण्डल और मालिका—इन चिह्नोंसे युक्त अश्व 'पञ्चोलूखलिक' कहे गये हैं। वे कार्यमें अत्यन्त गर्हित कहे गये हैं। इनके छः प्रकारके लक्षण बताये जाते हैं—संक्षिप्त, विक्षिप्त, कुञ्चित, आञ्चित, वल्गित और अवल्गित। गलीमें या सड़कपर सौ धनुषकी दूरीतक दौड़ानेपर 'भद्र' जातीय अश्व सुसाध्य होता है। 'मन्द' अस्सी धनुषतक और 'दण्डैक मानस' नब्बे धनुषतक चलाया जाय तो साध्य होता है। 'मृगजङ्घ' या मृगजातीय अश्व संकर होता है, वह इन्हींके समन्वयके अनुसार अस्सी या नब्बे धनुषकी दूरीतक हाँकनेपर साध्य होता है ॥ ५७–६३ ॥

शक्कर, मधु और लाजा (धानका लावा) खानेवाला ब्राह्मणजातीय अश्व पवित्र एवं सुगन्धयुक्त होता है, क्षत्रिय अश्व तेजस्वी होता है, वैश्य अश्व विनीत और बुद्धिमान् हुआ करता है और शूद्र-अश्व अपवित्र, चञ्चल, मन्द, कुरूप, बुद्धिहीन और दुष्ट होता है। लगामद्वारा पकड़ा जानेपर जो अश्व लार गिराने लगे, उसे रस्सी और लगाम खोलकर पानीकी धारसे नहलाना चाहिये। अब अश्वके लक्षण बताऊँगा, जैसा कि शालिहोत्रने कहा था ॥ ६४–६६ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'अश्ववाहन-सार-वर्णन' नामक दो सौ अठासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २८८ ॥

दो सौ नवासीवाँ अध्याय

अश्व चिकित्सा

शालिहोत्र कहते हैं—सुश्रुत ! अब मैं अश्वोंके लक्षण एवं चिकित्साका वर्णन करता हूँ। जो अश्व हीनदन्त, विषमदन्तयुक्त या बिना दाँतका, कराल (दोसे अधिक दन्तपङ्क्तियोंसे युक्त, कृष्णतालु, कृष्णवर्णकी जिह्वासे युक्त, युग्मज (जुड़वाँ पैदा), जन्मसे ही बिना अण्डकोषका, दो खुरोंवाला, शृङ्गयुक्त, तीन रङ्गोंवाला, व्याघ्रवर्ण, गदहभवर्ण, भस्मवर्ण, मुरण या अग्निवर्ण, ऊँचे ककुदवाला, श्वाकुष्ठग्रस्त, कौवे जिसपर आक्रमण करते हों, जो नरसार अथवा वानरके समान नेत्रोंवाला हो या जिसके अयाल, गुह्याङ्ग तथा नथुने कृष्णवर्णके हों, चकवे ढूँढने समान कठोर वश हों, जो सातरके समान रंगवाला हो, विषमाङ्ग हो, श्वेत चरणवाला हो तथा जो ध्रुव (स्थिर) आवर्तोंसे रहित हो तथा अशुभ आवर्तोंसे युक्त हो, ऐसे अश्वका परित्याग करना चाहिये ॥ १—५ ॥

नाक तथा नाकके पास (ऊपर) दो-दो, मस्तक एवं वक्षःस्थलमें दो-दो तथा प्रयाण (पीठ और पिछले भाग), ललाट और कण्ठदेशमें (भी दो-दो)—इस प्रकार अश्वोंके दस आवर्त (भँवरी चिह्न) शुभ माने गये हैं। ओष्ठप्रान्तमें, ललाटमें, कानके मूलमें, निगालक (गर्दन)में, अगले पैरोंके ऊपर मूलमें तथा गलेमें स्थित आवर्त श्रेष्ठ कहे जाते हैं। शेष अङ्गोंके आवर्त अशुभ होते हैं। शुक, इन्द्रगोप (बीरबहूटी), एवं चन्द्रमाके समान कान्तिसे युक्त, काकवर्ण, सुवर्णवर्ण तथा चिकने घोड़े सदैव प्रशस्त माने जाते हैं। जिन राजाओंके पास लंबी ग्रीवावाले, भीतरको ओर धँसी आँखवाले, छोटे कानवाले, किंतु देखनेमें मनोहर घोड़े हों, वर्गमें विजयकी अभिलाषा छोड़ दे। घोड़े हाथी यदि पाले जायँ तो शुभप्रद होते हैं, परंतु यदि उचित पालन न हो तो दुःखप्रद होते हैं। घोड़े लक्ष्मीके पुत्र, गन्धर्वरूपमें पृथ्वीके उत्तम रत्न हैं। अश्वमेधमें पवित्र होनेके कारण ही अश्वका उपयोग किया जाता है ॥ ६—१०½ ॥

मधुके साथ अडूसा, नीमकी छाल, बड़ी कटेरी और गिलोय—इनकी पिण्डी तथा सिरका स्वेद— ये नासिकामलका नाश करनेवाले हैं। हींग, पीकरमूल, सोंठ, अम्लवेत, चीता तथा सैन्धवलवण—ये गरम जलके साथ देनेपर शूलका नाश करते हैं। सोंठ, अतीस, मोथा, अनन्तमूल या दूध और वरु—इनका क्वाथ घोड़ेको पिलाया जाय तो वह उसके सभी प्रकारके अतिसारको नष्ट करता है। प्रियङ्गु, कालीयर तथा पर्याप्त शर्करासे युक्त बकरीका गरम किया हुआ दूध पी लेनेपर घोड़ेकी थकावट दूर हो जाती है। अश्वको द्रोणीमें तैलरक्षित देनी चाहिये अथवा कोठमें उत्पन्न शिराओंका वेधन करना चाहिये। इससे उसको सुख प्राप्त होता है ॥ ११—१५½ ॥

अनारकी छाल, त्रिफला, त्रिकटु तथा गुड़—इनको सम मात्रामें ग्रहण करके इनका पिण्ड बनाकर घोड़ेको दे। यह अश्वोंकी कृशताको दूर करनेवाला है। घोड़ा प्रियङ्गु, लोध तथा मधुके साथ अडूसेके रस या पञ्चकोलादि (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता तथा सोंठ) युक्त दुग्धका पान करे तो वह कासरोगसे मुक्त हो जाता है। प्रस्कन्ध (छलाँग आदि दौड़) से हुए सभी प्रकारके कष्टमें पहले शोधन श्रेयस्कर होता है। तदनन्तर अभ्यङ्ग, उद्वर्तन, स्नेहन, नस्य और वर्तिका प्रयोग श्रेष्ठ माना जाता है। उपर्युक्त अश्वोंकी दुग्धसे ही चिकित्सा करे। लोधमूल, करञ्जमूल, बिजौरा नीबू, चित्रक, सोंठ, कूट, वच एवं रास्ना—इनका लेप शोथ (सूजन)का नाश करनेवाला है। घोड़ेको निराहार रखकर मजीठ, मुलहठी, मुनक्का, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, लाल चन्दन, खीरेके मूल और बीज, सिंघाड़ेके बीज और कसेरू—इनसे युक्त बकरीका दूध पकाकर अत्यन्त शीतल करके शक्करके साथ पिलानेसे वह घोड़ा रक्तप्रमेहसे छुटकारा पाता है ॥ १६—२२ ॥

मन्या, हनु (ठुड्डी) तथा ग्रीवाकी शिराओंके शोथ तथा गलग्रहरोगमें उन उन स्थानोंपर कटुतैलका अभ्यङ्ग प्रशस्त है। गलग्रहरोग और शोथ प्रायः गलदेशमें ही होते हैं। निरन्तर, ... तथा सुगन्ध पालकका रस, पीपल

---

१ सुश्रुत अश्वशास्त्रमें 'हयसार' ग्रन्थका वचन इस प्रकार है—

नगरे राष्ट्रे निरोगः यस्य विनश्यत्यसौ राजा।
...

इसके समान ... उसीके समान ... आवर्तोंसे ... है। ऐसा ... जिस राजाके नगर ... निवास करता है वह राजा ... प्राप्त होता है।

और हींगके साथ इनका नस्य देनेसे अश्व कभी विषादयुक्त नहीं होता है। हल्दी, दारुहल्दी, मालकाँगनी, पाठा, पीपल, कूट, वच तथा मधु—इनका गुड़ एवं गोमूत्रके साथ जिह्वापर लेप जिह्वास्तम्भमें हितकर है। तिल, मुलहठी, हल्दी और नीमके पत्तोंसे निर्मित पिण्डी मधुके साथ प्रयोग करनेपर व्रणका शोधन और घृतके साथ प्रयुक्त होनेपर घावको भरती है। जो घोड़े अधिक चोटके कारण तीव्र वेदनासे युक्त होकर लँगड़ाने लगते हैं, उनके लिये तेलसे परिषेक क्रिया शीघ्र ही रोगनाश करनेवाली होती है। वात, पित्त, कफ दोषोंके द्वारा अथवा आघातके कारण चोट पा जानेसे पके, फूटे स्थानोंके व्रणके लिये यह क्रम है। पीपल, गूलर, पाकर, मुलहठी, वट और बेल—इनका अत्यधिक जलमें सिद्ध क्वाथ थोड़ा गरम हो तो वह व्रणका शोधन करनेवाला है। साफ, सोंठ, रास्ना, मजीठ, कूट, सैन्धव, देवदारु, वच, हल्दी, दारुहल्दी, रक्तचन्दन—इनका स्नेह क्वाथ करके गिलोयके जलके साथ या दूधके साथ उद्वर्तन, बस्ति अथवा नस्यरूपमें प्रयोग सभी लिङ्गित दोषोंमें करना चाहिये। नेत्ररोगयुक्त अश्वके नेत्रान्तमें जोंकद्वारा अभिस्रावण कराना चाहिये। खैर, गूलर और पीपलकी छालके क्वाथसे नेत्रोंका शोधन होता है॥ २३-३२ ½ ॥

मुक्तावलम्बी अश्वके लिये आँवला, जवासा, पाठा, प्रियङ्गु, कुङ्कुम और गिलोय—इनका समभाग ग्रहण करके निर्मित किया हुआ कल्क हितकर है। व्रणसम्बन्धी दोषमें एवं उपद्रवमें, खिल (अनियमित वृत्ति)में, शुष्क शेफ (लिङ्ग सूखनेकी दशामें) और क्षीण (हानि) करनेवाले दोषमें तत्काल सेचन करना चाहिये। गायका गोबर, मजीठ, कूट, हल्दी, तिल और सरसों—इनको गोमूत्रमें पीसकर मर्दन करनेसे खुजलीका नाश होता है। शाल्मली छालका क्वाथ शीतल हो जानेपर मधु और शर्करासहित नासिकामें डालनेसे एवं उसी प्रकार पिलानेसे घोड़ेका रक्तपित्त नष्ट होता है। घोड़ोंको सातवें सातवें दिन नमक देना चाहिये॥ ३३-३७ ॥

अश्वोंके अधिक भाग्य हो उनके सवारी वारुणी (मदिरा), शरद् ऋतुमें जीवनीयगणके द्रव्य [जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुद्गपर्णी (वनमूँग), माषपर्णी (बनउड़द), जीवन्ती तथा मुलहठी][1], मधु, दाख, शक्कर, पिपली और पद्माखसहित प्रतिपानमें देना चाहिये। हेमन्त ऋतुमें अश्वोंको वायविडंग, पीपल, धनियाँ, सौंफ, लोध, सैन्धवलवण और चित्रकसे समन्वित प्रतिपान देना चाहिये। वसन्त ऋतुमें लोध, प्रियङ्गु, मोथा, पीपल, सोंठ और मधुसे युक्त प्रतिपान कफनाशक माना गया है। ग्रीष्म ऋतुमें प्रतिपानके लिये प्रियङ्गु, पीपल, लोध, मुलहठी, सोंठ और गुड़के सहित मदिरा दे। वर्षा ऋतुमें अश्वोंके लिये प्रतिपान तेल, लोध, लवण, पीपल और सोंठसे समन्वित होना चाहिये। ग्रीष्म ऋतुमें बढ़े हुए पित्तके प्रभावसे पीड़ित, शरत्कालमें रक्तयुक्तत्वसे युक्त अश्वको एवं प्रावृट् (वर्षाके आरम्भ)में जिन घोड़ोंका गोबर छूट गया है, उन्हें घृत पिलाना चाहिये। कफ एवं वातकी अधिकता होनेपर अश्वोंको तैलपान कराना चाहिये। जिनके शरीरमें स्नेहतत्त्वके प्राबल्यसे कोई कष्ट उत्पन्न हो, उनका रक्षण करना चाहिये। मट्ठाके साथ भोजन तथा तीन दिन तक यवागू पिलानेसे अश्वोंका रक्षण होता है। अश्वोंके बस्तिकर्मके लिये शरद् ग्रीष्ममें घृत, हेमन्त-वसन्तमें तैल तथा वर्षा एवं शिशिर ऋतुओंमें घृत तैल दोनोंका प्रयोग करना चाहिये। जिन घोड़ोंको स्नेह (तैल-घृतादि) पान कराया गया है, उनके लिये (गुरु-भारी) या अभिष्यन्दी (कफकारक) भोजन—भात आदि, व्यायाम, स्नान, धूप तथा वायुरहित स्थान वर्जित हैं। वर्षा ऋतुमें घोड़ेको दिनमें एक बार स्नान और पान कराये, किंतु घोर दुर्दिनके समय केवल पान ही प्रशस्त है। समशीतोष्ण ऋतुमें दो बार और एक बार स्नान विहित है। ग्रीष्म ऋतुमें तीन बार स्नान और प्रतिपान उचित होता है। पूर्णकालमें बहुत देरतक स्नान कराना चाहिये॥ ३८-४९ ॥

घोड़का प्रतिदिन चार आढक भूसासे रहित जौ खिलाये। उसका चना, धान, मूँग या मटर भी खानेको दे। अश्वको (एक) दिन-रातमें पाँच सेर दूध पिलाये। सूखी दूब होनेपर आठ सेर अथवा भूसा हो तो चार सेर देना चाहिये। दूब पित्तका, जौ कासका, भूसी कफ-पित्तका, अर्जुन श्वासका एवं माषादि स्थूलताका नाश करता है। दूबभोजी अश्वको कष्ट, खाज, पित्तज और संनिपातज रोग पीड़ित नहीं कर सकते। दुष्ट घोड़ेके आगे पीछे दोनों ओर दो रस्सियाँ बाँधनी चाहिये। मर्दनमें भी रक्षण करना चाहिये। यह आस्तर-

---

[1] जीवकर्षभकौ मेदा महामेदा काकोली क्षीरकाकोली मुद्गपर्णीमाषपर्ण्यौ जीवन्ती मधुकमिति दशेमानि जीवनीयानि भवन्ति।
(च० सं०, सू० स्था० ४ अ०)

युक्त और धूपित स्थानमें बाँधने चाहिये। जहाँ कि उपायपूर्वक घोड़े रक्खे हों। (यह अश्वशाला) प्रदीपसे आलोकित तथा सुरक्षित होनी चाहिये। घुड़सालमें मयूर, अज, वानर और मृगोंको रखना चाहिये ॥ ५०—५६ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'अश्व चिकित्साका कथन' नामक दो सौ नवासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २८९ ॥

दो सौ नब्बेवाँ अध्याय

अश्व-शान्ति

शालिहोत्र कहते हैं—सुश्रुत! अब मैं घोड़ोंके रोगोंका मर्दन करनेवाली 'अश्वशान्ति'का वर्णन करूँगा। जो नित्य, नैमित्तिक और काम्यके भेदसे तीन प्रकारकी मानी गयी है, इसे सुनो। किसी शुभ दिनको श्रीधर (विष्णु), श्री (लक्ष्मी) तथा उच्चैःश्रवाके पुत्र हयराजकी पूजा करके सविता-देवता सम्बन्धी मन्त्रोंद्वारा घीका हवन करे। तदनन्तर ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे। इससे अश्वोंकी वृद्धि होती है। (शुभ दिनसे आरम्भ करके इस कर्मको प्रतिदिन चालू रक्खा जाय तो यह 'नित्य अश्व शान्ति' है) ॥ १-२½ ॥

(अश्व-समृद्धिकी कामनासे) आश्विनके शुक्लपक्षकी पूर्णिमाको नगरके बाह्यदेशमें शान्ति-कर्म करे। उसमें विशेषतः अश्विनीकुमारों तथा वरुण-देवताका पूजन करे। तत्पश्चात् श्रीदेवीको वेदीपर पद्मासनके ऊपर अङ्कित करके उन्हें चारों ओरसे वृक्षकी शाखाओंद्वारा आवृत कर दे। उनकी सभी दिशाओंमें समस्त रत्नोंसे परिपूर्ण कलशोंको धान्यसहित स्थापित करे। इसके बाद श्रीदेवीका पूजन करके उनकी प्रसन्नताके लिये जौ और घीका हवन करे। फिर अश्विनीकुमारों और अश्वोंकी अर्चना करे तथा ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे। (यह काम्य शान्ति हुई)। अब नैमित्तिक शान्तिका वर्णन सुनो ॥ ३—५½ ॥

मकर आदिकी संक्रान्तियोंमें अश्वोंका पूजन करे। साथ ही कमलपुष्पोंद्वारा विष्णु, लक्ष्मी, ब्रह्मा, शंकर, चन्द्रमा, सूर्य, अश्विनीकुमार, रेवन्त तथा उच्चैःश्रवाकी अर्चना करे। इसके सिवा कमलके दस दलोंपर दस दिक्पालोंकी भी पूजा करे। प्रत्येक अर्चनीय देवताके निमित्त वेदीपर जलपूर्ण कलश स्थापित करे और उन कलशोंमें अधिष्ठित देवोंकी पूजा करे। इन देवताओंके उत्तरभागमें इन सबके निमित्त तिल, अक्षत, घी और पीली सरसोंकी आहुतियाँ दे। एक-एक देवताके निमित्त सौ-सौ आहुतियाँ देनी चाहिये। अश्व सम्बन्धी रोगोंके निवारणके लिये उपवासपूर्वक यह शान्तिकर्म करना उचित है ॥ ६—८ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'अश्व शान्तिका कथन' नामक दो सौ नब्बेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २९० ॥

दो सौ इक्यानवेवाँ अध्याय

गज-शान्ति

शालिहोत्र कहते हैं—मैं गजरोगोंका प्रशमन करनेवाली गज शान्तिके विषयमें कहूँगा। किसी भी शुक्ल पञ्चमीको विष्णु, लक्ष्मी तथा नागराज ऐरावतकी पूजा करे। फिर ब्रह्मा, शिव, विष्णु, इन्द्र, कुबेर, यमराज, चन्द्रमा, वरुण, वायु, अग्नि, पृथिवी, आकाश, शेषनाग, पर्वत, ... , महापद्म, भद्र, सुमनस और देवजातीय आठ ... योंका पूजन करे। उन आठ नागोंके नाम ये हैं— ... ऐरावत, पद्म, पुष्पदन्त, वामन, सुप्रतीक, अञ्जन नील। तत्पश्चात् होम करे और दक्षिणा दे। शान्ति ... के जलसे हाथियोंका अभिषेक किया जाय तो वे वृद्धिको प्राप्त होते हैं। (यह नित्य विधि है) अब नैमित्तिक शान्तिकर्मके विषयमें सुनो ॥ १-४½ ॥

मकर आदिकी संक्रान्तियोंमें हाथियोंका नगरके बहिर्भागमें ईशानकोणमें (पूजन करे)। वेदी या पद्मासनपर अष्टदल कमलका निर्माण करके उसमें केसरके स्थानपर श्रीविष्णु और लक्ष्मीकी अर्चना करे। तदनन्तर अष्टदलमें क्रमशः ब्रह्मा, स्कन्द, पृथ्वी, स्कन्द, अनन्त, आकाश, शिव तथा चन्द्रमाकी पूजा करे। उन्हीं आठ दलोंमें पूर्वादिके क्रमसे इन्द्रादि दिक्पालोंका भी पूजन करे। देवताओंके साथ कमलदलोंमें उनके वज्र, शक्ति, दण्ड, तोमर, पाश, गदा, शूल और

पद्म आदि अस्त्रोंकी अर्चना करनी चाहिये। दलोंके मध्यभागमें चक्रमें सूर्य और अश्विनीकुमारोंकी पूजा करे। अष्टवसुओं एवं साध्यदेवोंका दक्षिणभागमें तथा भार्गवाङ्गिरस देवताओंका नैर्ऋत्यकोणमें यजन करे। वायव्यकोणमें मरुद्गणोंका, दक्षिण भागमें विश्वेदेवोंका एवं रौद्रमण्डल (ईशान) में रुद्रोंका पूजन करना चाहिये। भक्तरेखाके द्वारा निर्मित अष्टदल कमलके बहिर्भागमें सरस्वती, सूत्रकार और देवर्षियोंकी अर्चना करे। पूर्वभागमें नदी, पर्वत एवं ईशान आदि कोणोंमें महाभूतोंकी पूजा करे। तदनन्तर पद्म, चक्र, गदा तथा शङ्खसे सुशोभित चतुष्कोण एवं चतुर्द्वारयुक्त भूपुरमण्डलका निर्माण करके आग्नेय आदि कोणोंमें कलशोंकी भी स्थापना करे तथा चारों ओर पताकाओं और तोरणोंका निवेश करे। सभी द्वारोंपर ऐरावत आदि नागराजोंका पूजन करे। पूर्वादि दिशाओंमें समस्त देवताओंके लिये पृथक्-पृथक् सर्वौषधियुक्त पात्र रक्खे। हाथियोंका पूजन करके उनकी परिक्रमा करे। सभी देवताओंके उद्देश्यसे पृथक्-पृथक् सौ-सौ आहुतियाँ प्रदान करे। तदनन्तर नागराज, अग्नि और देवताओंको साथ लेकर बाजे बजाते हुए अपने घरको लौटना चाहिये। ब्राह्मणों एवं गज-चिकित्सक आदिको दक्षिणा देनी चाहिये। तत्पश्चात् शास्त्रज्ञ विद्वान् गजराजपर आरूढ होकर उसके कानमें निम्नाङ्कित मन्त्र कहे। उस नागराजके मृत्युको प्राप्त होनेपर शान्ति करके दूसरे हाथीके कानमें मन्त्रका जप करे—॥ ५-१८ ॥

"महाराजने तुमको 'श्रीगज'के पदपर नियुक्त किया है। अबसे तुम इस राजाके लिये 'गजाग्रणी' (गजोंके अगुआ) हो। ये नरेश आजसे गन्ध, माल्य एवं उत्तम अक्षतोंद्वारा तुम्हारा पूजन करेंगे। उनकी आज्ञासे प्रजाजन भी सदा तुम्हारा अर्चन करेंगे। तुमको युद्धभूमि, मार्ग एवं गृहमें महाराजकी सदा रक्षा करनी चाहिये। नागराज! तिर्यग्भाव (टेढ़ापन) को छोड़कर अपने दिव्यभावका स्मरण करो। पूर्वकालमें देवासुर-संग्राममें देवताओंने ऐरावतपुत्र श्रीमान् अरिष्ट नागको 'श्रीगज'का पद प्रदान किया था। श्रीगजका वह सम्पूर्ण तेज तुम्हारे शरीरमें प्रतिष्ठित है। नागेन्द्र! तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारा अन्तर्निहित दिव्यभावसम्पन्न तेज उद्बुद्ध हो उठे। तुम रणाङ्गणमें राजाकी रक्षा करो" ॥ १९-२० ॥

राजा पूर्वोक्त अभिषिक्त गजराजपर शुभ मुहूर्तमें आरोहण करे। शस्त्रधारी श्रेष्ठ वीर उसका अनुगमन करें। राजा हस्तिशालामें भूमिपर अङ्कित कमलके बहिर्भागमें दिक्पालोंका पूजन करे। केसरके स्थानपर महाबली नागराज, भूदेवी और सरस्वतीका यजन करे। मध्यभागमें गन्ध, पुष्प और चन्दनसे डिण्डिमकी पूजा एवं हवन करके ब्राह्मणोंको रत्नपूर्ण कलश प्रदान करे। पुनः गजाध्यक्ष, गजरक्षक और ज्योतिषीका सत्कार करे। तदनन्तर, डिण्डिम गजाध्यक्षको प्रदान करे। वह भी इसको बजावे। गजाध्यक्ष नागराजके जघनप्रदेशपर आरूढ होकर शुभ एवं गम्भीर स्वरमें डिण्डिमवादन करे॥ २१-२४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'गज-शान्तिका कथन' नामक दो सौ इक्यानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २९१॥

दो सौ बानबेवाँ अध्याय

गवायुर्वेद

धन्वन्तरि कहते हैं—सुश्रुत! राजाको गौओं और ब्राह्मणोंका पालन करना चाहिये। अब मैं 'गोशान्ति'का वर्णन करता हूँ। गौएँ पवित्र एवं मङ्गलमयी हैं। गौओंमें सम्पूर्ण लोक प्रतिष्ठित है। गौओंका गोबर और मूत्र अलक्ष्मी (दरिद्रता) के नाशका सर्वोत्तम साधन है। उनके शरीरको खुजलाना, सींगोंको सहलाना और उनको जल पिलाना भी अलक्ष्मीका निवारण करनेवाला है। गोमूत्र, गोबर, गोदुग्ध, दधि, घृत और कुशोदक—यह 'षडङ्ग' (पञ्चगव्य) पीनेके लिये उत्कृष्ट वस्तु तथा दुःस्वप्न आदिका निवारण करनेवाला है। गोरोचना विष और राक्षसोंको विनष्ट करती है। गौओंको ग्रास देनेवाला स्वर्गको प्राप्त होता है। जिसके घरमें गौएँ दुःखित होकर निवास करती हैं, वह मनुष्य नरकगामी होता है। दूसरेकी गायको ग्रास देनेवाला स्वर्गको और गोहितमें तत्पर ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है। गोदान, गो-माहात्म्य-कीर्तन और गोरक्षासे मानव अपने कुलका उद्धार कर देता है। यह पृथ्वी गौओंके श्वाससे पवित्र होती है। उनके स्पर्शसे पापोंका क्षय होता है। एक दिन गोमूत्र, गोमय, घृत, दूध, दधि और कुशका जल एवं

एक दिन उपवास चाण्डालको भी शुद्ध कर देता है। पूर्वकालमें देवताओंने भी समस्त पापोंके विनाशके लिये इसका अनुष्ठान किया था। इनमेंसे प्रत्येक वस्तुका क्रमशः तीन तीन दिन भक्षण करके रहा जाय, उसे 'महासान्तपन व्रत' कहते हैं। यह व्रत सम्पूर्ण कामनाओंको सिद्ध करनेवाला और समस्त पापोंका विनाश करनेवाला है। केवल दूध पीकर इक्कीस दिन रहनेसे 'कृच्छ्रातिकृच्छ्र व्रत' होता है। इसके अनुष्ठानसे श्रेष्ठ मानव सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको प्राप्तकर पापमुक्त हो स्वर्गलोकमें जाते हैं। तीन दिन गरम गोमूत्र, तीन दिन गरम घृत, तीन दिन गरम दूध और तीन दिन गरम वायु पीकर रहे। यह 'तप्तकृच्छ्र व्रत' कहलाता है, जो समस्त पापोंका प्रशमन करनेवाला और ब्रह्मलोककी प्राप्ति करानेवाला है। यदि इन वस्तुओंको इसी क्रमसे शीतल करके ग्रहण किया जाय, तो ब्रह्माजीके द्वारा कथित 'शीतकृच्छ्र' होता है, जो ब्रह्मलोकप्रद है ॥ १—११ ॥

एक मासतक गोव्रती होकर गोमूत्रसे प्रतिदिन स्नान करे, गोरससे जीवन चलाये, गौओंका अनुगमन करे और गौओंके भोजन करनेके बाद भोजन करे। इससे मनुष्य निष्पाप होकर गोलोकको प्राप्त करता है। गोमती विद्याके जपसे भी उत्तम गोलोककी प्राप्ति होती है। उस लोकमें मानव विमानमें अप्सराओंके द्वारा नृत्य-गीतसे सेवित होकर प्रमुदित होता है। गौएँ सदा सुरभिरूपिणी हैं। वे गुग्गुलके समान गन्धसे संयुक्त हैं। गौएँ समस्त प्राणियोंकी प्रतिष्ठा हैं। गौएँ परम मङ्गलरूपी हैं। गौएँ परम अन्न और देवताओंके लिये उत्तम हविष्य हैं। वे सम्पूर्ण प्राणियोंको पवित्र करनेवाले दुग्ध और गोमूत्रका वहन एवं क्षरण करती हैं और मन्त्रपूत हविष्यसे स्वर्गमें स्थित देवताओंको तृप्त करती हैं। ऋषियोंके अग्निहोत्रमें गौएँ होमकार्यमें प्रयुक्त होती हैं। गौएँ सम्पूर्ण मनुष्योंकी उत्तम शरण हैं। गौएँ परम पवित्र, महामङ्गलमयी, स्वर्गकी सोपानभूत, धन्य और सनातन (नित्य) हैं। श्रीमती सुरभि पुत्री गौओंको नमस्कार है। ब्रह्मसुताओंको नमस्कार है। पवित्र गौओंको बारंबार नमस्कार है। ब्राह्मण और गौएँ—एक ही कुलकी दो शाखाएँ हैं। एकके आश्रयमें मन्त्रकी स्थिति है और दूसरीमें हविष्य प्रतिष्ठित है। देवता, ब्राह्मण, गौ, साधु और साध्वी स्त्रियोंके बलपर यह सारा संसार टिका हुआ है, इसीसे वे परम पूजनीय हैं। गौएँ जिस स्थानपर जल पीती हैं, वह स्थान तीर्थ है। गङ्गा आदि पवित्र नदियाँ गो-स्वरूपा ही हैं। सुश्रुत! मैंने यह गौओंके माहात्म्यका वर्णन किया; अब उनकी चिकित्सा सुनो ॥ १२—२२ ॥

गौओंके शृङ्गरोगमें सोंठ, मरेठी और जटामांसीको सिलपर पीसकर उसमें मधु, सैन्धव और तैल मिलाकर प्रयोग करे। सभी प्रकारके कर्णरोगोंमें मञ्जिष्ठा, हींग और सैन्धव डालकर सिद्ध किया हुआ तैल प्रयोग करना चाहिये या लहसुनके साथ पकाया हुआ तैल प्रयोग करना चाहिये। दन्तशूलमें बिल्वमूल, अपामार्ग, धानकी पाटल और कुटजका लेप करे। यह शूलनाशक है। दन्तशूलका हरण करनेवाले द्रव्यों और कूटका घृतमें पकाकर देनेसे मुखरोगोंका निवारण होता है। जिह्वा-रोगोंमें सैन्धव लवण प्रशस्त है। गलग्रह-रोगमें सोंठ, हल्दी, दारुहल्दी और त्रिफला विहित है। हृद्रोग, वस्तिरोग, वातरोग और क्षयरोगमें गौओंको घृतमिश्रित त्रिफलाका अनुपान प्रशस्त बताया गया है। अतिसारमें हल्दी, दारुहल्दी और पाठा (नेमुक) दिलाना चाहिये। सभी प्रकारके कोष्ठगत रोगोंमें, शाखा (पैर पुच्छादि)-गत रोगोंमें एवं कास, श्वास एवं अन्य साधारण रोगोंमें सोंठ, भारङ्गी देनी चाहिये। हड्डी आदि टूटनेपर लवणयुक्त प्रियङ्गुका लेप करना चाहिये। तैल वातरोगका हरण करता है। पित्तरोगमें तैलमें पकायी हुई मुलहठी, कफरोगमें मधुसहित त्रिकटु (सोंठ, मिर्च और पीपल) तथा रक्तविकारमें मजबूत नखोंका भस्म हितकर है। भग्नक्षतमें तैल एवं घृतमें पकाया हुआ हरताल दे। उड़द, तिल, गेहूँ, दुग्ध, जल और घृत—इनका लवणयुक्त पिण्ड गोवत्सोंके लिये पुष्टिप्रद है। विषाणी बल प्रदान करनेवाली है। ग्रहबाधाके विनाशके लिये धूपका प्रयोग करना चाहिये। देवदारु, वचा, जटामांसी, गुग्गुल, हिंगु और सर्षप—इनकी धूप गौओंके ग्रहजनित रोगोंका नाश करनेमें हितकर है। इस धूपसे धूपित करके गौओंके गलेमें घण्टा बाँधना चाहिये। असगन्ध और तिलोंके साथ नवनीतका भक्षण करानेसे गौ दुग्धवती होती है। जो वृष मदसे मदोन्मत्त हो जाता है, उसके लिये हिङ्गु परम रसायन है ॥ २३—३५ ॥

पञ्चमी तिथिको सदा शान्तिके निमित्त गोमयपर भगवान् लक्ष्मी-नारायणका पूजन करे। यह 'अपरा शान्ति' कही

१ स्नानपानाभिषेकाभ्यां मूत्रस्य कीर्त्यं च ।
इदुन्दकं कुङ्कुमं च कोष्ठं स्पर्शनीयके ॥
(ग० पि० अ० १)

गयी है। आश्विनके शुक्लपक्षकी पूर्णिमाको श्रीहरिका पूजन करे। श्रीविष्णु, रुद्र, ब्रह्मा, सूर्य, अग्नि और लक्ष्मीका घृतसे पूजन करे। दही-भात खाकर गोपूजन करके अग्निकी प्रदक्षिणा करे। नगरके बहिर्भागमें गीत और वाद्योंकी ध्वनिके साथ वृषभयुद्धका आयोजन करे। गौओंको लवण और ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे। मकरसंक्रान्ति आदि नैमित्तिक पर्वोंपर भी लक्ष्मीसहित श्रीविष्णुको भूमिस्थ कमलके मध्यमें और पूर्व आदि दिशाओंमें कमलकेसरपर देवताओंकी पूजा करे। कमलके बहिर्भागमें मङ्गलमय ब्रह्मा, सूर्य, बहुरूप, बलि, आकाश, विश्वरूपा तथा ऋद्धि, सिद्धि, शान्ति और रोहिणी आदि दिग्धेनु, चन्द्रमा और शिवका कृशर (खिचड़ी) से पूजन करे। दिक्पालोंकी कलशस्थ पञ्चगव्यसे अर्चना करे। फिर अग्निमें सर्षप, अक्षत, तण्डुल और क्षीरवृक्षकी समिधाओंका हवन करे। ब्राह्मणको सौ-सौ भर सुवर्ण और काँसा आदि धातु दान करे। फिर वृषसंयुक्त गौओंकी पूजा करके उन्हें शान्तिके निमित्त छोड़े॥ ३६-४२॥

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! शालिहोत्रने सुश्रुतको 'अश्वायुर्वेद' और पालकाप्यने अङ्गराजको 'गजायुर्वेद'का उपदेश किया था॥ ४४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'गजायुर्वेदका कथन' नामक दो सौ बानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २९२॥

दो सौ तिरानबेवाँ अध्याय

मन्त्र विद्या

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली मन्त्र-विद्याका वर्णन करता हूँ, ध्यान देकर उसका श्रवण कीजिये। द्विजश्रेष्ठ! बीससे अधिक अक्षरोंवाले मन्त्र 'मालामन्त्र', दससे अधिक अक्षरोंवाले 'मन्त्र' और दससे कम अक्षरोंवाले 'बीजमन्त्र' कहे गये हैं। 'मालामन्त्र' वृद्धावस्थामें सिद्धिदायक होते हैं, 'मन्त्र' यौवनावस्थामें सिद्धिप्रद है। पाँच अक्षरसे अधिक तथा दस अक्षरतकके मन्त्र बाल्यावस्थामें सिद्धि प्रदान करते हैं[1]। अन्य मन्त्र अर्थात् एकसे लेकर पाँच अक्षरतकके मन्त्र सर्वदा और सबके लिये सिद्धिदायक होते हैं[2]॥ १-२½॥

मन्त्रोंकी तीन जातियाँ होती हैं—स्त्री, पुरुष और नपुंसक। जिन मन्त्रोंके अन्तमें 'स्वाहा' पदका प्रयोग हो, वे स्त्रीजातीय हैं। जिनके अन्तमें 'नमः' पद जुड़ा हो, वे मन्त्र नपुंसक हैं। शेष सभी मन्त्र पुरुषजातीय हैं। वे वशीकरण और उच्चाटन कर्ममें प्रशस्त माने गये हैं। क्षुद्रक्रिया तथा रोगके निवारणार्थ अर्थात् शान्तिकर्ममें स्त्रीजातीय मन्त्र उत्तम माने गये हैं। इन सबसे भिन्न (विद्वेषण एवं अभिचार आदि) कर्ममें नपुंसक मन्त्र उपयोगी बताये गये हैं[3]॥ ३-४½॥

मन्त्रोंके दो भेद हैं—'आग्नेय' और 'सौम्य'। जिनके आदिमें 'प्रणव' लगा हो, वे 'आग्नेय' हैं और जिनके अन्तमें 'प्रणव'का योग है, वे 'सौम्य' कहे गये हैं। इनका जप इन्हीं दोनोंके कालमें करना चाहिये (अर्थात् सूर्य-नाड़ी चलती हो तो 'आग्नेय मन्त्र'का और चन्द्र-नाड़ी चलती हो तो 'सौम्य-मन्त्रों'का जप करे)[4]। जिस मन्त्रमें तार (ॐ),

---

१ [illegible] मन्त्रोंका [illegible]। मन्त्रोंको 'युवा' तथा पाँचसे अधिक और दस अक्षरतकके मन्त्रोंको बाल बताया गया है। 'भैरवीतन्त्र'में सात अक्षरके मन्त्रको बाल, आठ अक्षरवाले मन्त्रको कुमार, सोलह अक्षरोंके मन्त्रको 'तरुण' तथा चालीस अक्षरोंके मन्त्रको 'प्रौढ़' बताया गया है। इससे ऊपर अक्षर-संख्यावाला मन्त्र 'वृद्ध' कहा गया है।

२ [illegible] की टीकामें उद्धृत [illegible] कही गयी है। [illegible] में भी ठीक अग्निपुराणकी बातोंकी ही पुष्टि हुई है।

३ कुछ तन्त्र-ग्रन्थोंमें स्त्रीजातीय मन्त्रोंको शान्तिकर्ममें उपयोगी बताया गया है। ये बातें अग्निपुराणके ही अनुसार हैं—

स्त्रीमन्त्रा वह्निजायान्ता हृन्मन्त्राश्च नपुंसकाः।
[illegible]॥
नपुंसकाः [illegible] विद्वेषे चाभिचारके।
पुमांसः [illegible]॥

([illegible])

[illegible]

४ [illegible] में भी यह बात इसी रूपमें कही गयी है।

अन्त्य (क्ष), अग्नि (र), वियत् (ह)—इनका बाहुल्येन प्रयोग हो, वह 'आग्नेय' माना गया है। शेष मन्त्र 'सौम्य' कहे गये हैं।[5] ये दो प्रकारके मन्त्र क्रमशः क्रूर और सौम्य कर्मोंमें प्रशस्त माने गये हैं।[6] 'आग्नेय मन्त्र' प्रायः अन्तमें 'नमः' पदसे युक्त होनेपर 'सौम्य' हो जाता है और 'सौम्य मन्त्र' भी अन्तमें 'फट्' लगा देनेपर 'आग्नेय' हो जाता है।[7] यदि मन्त्र सोया हो या सोकर तत्काल ही जगा हो तो वह सिद्धिदायक नहीं होता है। जब वाम-नाड़ी चलती हो तो वह 'आग्नेय मन्त्र'के सोनेका समय है और यदि दाहिनी नाड़ी (नासिकाके दाहिने छिद्रसे साँस) चलती हो तो यह उसके जागरणका काल है। 'सौम्य मन्त्र'के सोने और जागनेका समय इसके विपरीत है। अर्थात् वामनाड़ी (साँस) उसके जागरणका और दक्षिणनाड़ी उसके शयनका काल है। जब दोनों नाड़ियाँ साथ-साथ चल रही हों, उस समय आग्नेय और सौम्य—दोनों मन्त्र जगे रहते हैं। (अतः उस समय दोनोंका जप किया जा सकता है।)

दुष्ट नाम, दुष्ट राशि तथा शत्रुरूप आदि अक्षरोंसे मन्त्रोंमें अवश्य त्याग देना चाहिये[9]॥ ४२ ॥

(नक्षत्र-चक्र)

राज्यलाभोपकाराय प्रारम्भारि स्वरः कुरुत्॥
गोपालकुकुटी प्रायात् फुल्लाविद्युदिता लिपिः[1]।

(साधकके नामके प्रथम अक्षरसे तथा मन्त्रके आदि अक्षरको लेकर गणना करके यह जानना है कि उस साधकके लिये यह मन्त्र अनुकूल है या प्रतिकूल? इसीके लिये उपर्युक्त श्लोक एक संकेत देता है—) 'रा' से लेकर 'फु' तक लिपिका ही संकेत है। 'इत्युदिता लिपिः' इस प्रकार लिपि कही गयी है। 'नारायणीय तन्त्र'में इसकी व्याख्या करते हुए कहा गया है कि अश्विनीसे लेकर उत्तराभाद्रपदातकके छब्बीस नक्षत्रोंमें 'अ' से लेकर 'ह' तकके अक्षरोंको बाँटना है। किस नक्षत्रमें कितने अक्षर लिये जायँगे, इसके लिये उपर्युक्त श्लोक संकेत देता है। 'रा' से 'फु' तक छब्बीस अक्षर हैं। वे छब्बीस नक्षत्रोंके प्रतीक हैं। तन्त्रशास्त्रियोंने अपने संकेत वचनोंमें केवल व्यञ्जनोंका ग्रहण किया है और समस्त व्यञ्जनोंको कवर्ग, टवर्ग, पवर्ग तथा यवर्गमें बाँटा है। संकेत लिपिका जो

---

५ 'शारदातिलक' में सौम्य-मन्त्रोंकी भी सुस्पष्ट पहचान दी गयी है—जिसमें सकार अथवा वकारका बाहुल्य हो वह सौम्य मन्त्र है। जैसा कि वचन है—

सौम्या भूयिष्ठेन्दुभृगाक्षराः । (२ । ६२)

६ 'शारदातिलक'में भी विशेषतः क्रूरसौम्ययोः—कहकर इसी बातकी पुष्टि की गयी है। ईशानशम्भुने भी यही बात कही है—

प्रयुञ्ज्यादाग्नेयैः क्रूरकार्यप्रसिद्धिं सौम्यैः सौम्यं कर्म कुर्यात् यथावत् ।

७ ईशानशम्भुने भी ऐसा ही कहा है—

आग्नेयोऽपि प्रायशः सौम्यो नमोऽन्तः सौम्योऽपि स्यादग्निमन्त्रः फडन्तः ।

'नारायणीय-तन्त्र' में यही बात यों कही गयी है—

आग्नेयमन्त्रः सौम्यः स्यात् प्रायशोऽन्ते नमोऽन्वितः ।
सौम्यमन्त्रस्तथा तेन फट्कारेणाग्निमान्भवेत् ॥

८ 'बृहन्नारायणीय तन्त्र'में इसी भावकी पुष्टि निम्नाङ्कित श्लोकोंद्वारा की गयी है—

सुप्तः प्रबुध्यमानो वा मन्त्रः सिद्धिं न यच्छति ।
स्वापकालो वामवहो जागरो दक्षिणावहः ॥
आग्नेयस्य मनोः सौम्यस्य तदेतद्विपर्ययः ।
प्रबोधकालं जानीयादुभयोरेकमपि वहे ॥
स्वापकाले तु मन्त्रस्य जपोऽनर्थफलप्रदः ।

इसमें यह कहा गया है कि मन्त्र जब सो रहा हो उस समय उसका जप अनर्थ फलदायक होता है। 'नारायणीय तन्त्र'में 'स्वाप' और 'जागरणकाल'को और भी स्पष्टताके साथ बताया गया है। वामनाड़ी इडानाड़ी और चन्द्रनाड़ी एक वस्तु है तथा दक्षिणनाड़ी सूर्यनाड़ी एवं पिङ्गलानाड़ी एक अर्थके वाचक पद हैं। पिङ्गला नाड़ीमें श्वास-वायु चलती हो तो आग्नेय मन्त्र प्रबुद्ध होते हैं। इडानाड़ीमें श्वासवायु चलती हो तो सौम्यमन्त्र जाग्रत् रहते हैं। पिङ्गला और इडा दोनोंमें श्वासवायुकी स्थिति हो अर्थात् यदि सुषुम्णामें श्वासवायु चलती हो तो सभी मन्त्र प्रबुद्ध (जाग्रत्) होते हैं। प्रबुद्ध मन्त्र ही साधकोंको अभीष्ट फल देते हैं। यथा—

पिङ्गलायां गते वायौ प्रबुद्धा वह्निदेवताः ।
इडां गते तु पवने बुध्यन्ते मन्त्रकाः प्रिये ॥
पिङ्गलेडागते वायौ प्रबुद्धा मन्त्र एव हि ।
प्रबुद्धा मनवः सर्वे साधकानां फलप्रदाः ॥

९ जैसा कि भैरवी-तन्त्रमें कहा गया है—

दुष्टर्क्षराशिमृत्युभूमिविनाशनुगमकम् ।
सम्यक् परीक्ष्य न मन्त्रात् यद्ददत्यस्मिन् मन्त्र ॥

१ 'श्रीमद्भागवत' में तथा 'नारायणीय तन्त्र' में भी यह श्लोक आया है जो लिपि (अक्षर) का संकेतमात्र है। इसमें शब्दार्थ अपेक्षित नहीं है। 'शारदातिलक' में दूसरा श्लोक इसके लिये प्रयुक्त हुआ है। इसमें छब्बीस नक्षत्रोंमें अक्षरोंके विभाजनका संकेत है जो उपर्युक्त पद्धतिसे भिन्न है।

अक्षर जिस वर्गका प्रथम, द्वितीय, तृतीय या चतुर्थ अक्षर है, उससे उतनी ही संख्याएँ ली जायँगी। संयुक्ताक्षरोंमेंसे अन्तिम अक्षर ही गृहीत होगा। स्वरोंपर कोई संख्या नहीं है। उपर्युक्त श्लोकमें पहला अक्षर 'रा' है। यह यवर्गका दूसरा अक्षर है, अतः उससे दो संख्या ली जायगी। इस प्रकार 'रा' यह संकेत करता है कि अश्विनी-नक्षत्रमें दो अक्षर 'अ आ' गृहीत होंगे। दूसरा अक्षर है 'ज्य', यह संयुक्ताक्षर है, इसका अन्तिम अक्षर 'य' गृहीत होगा। यह अपने वर्गका प्रथम अक्षर है, अतः एकका बोधक होगा। इस प्रकार पूर्वोक्त 'ज्य' के संकेतानुसार भरणी नक्षत्रमें एक अक्षर 'इ' लिया जायगा। इस बातको ठीकसे समझनेके लिये निम्नाङ्कित चक्र देखिये—

रा	२	अश्विनी	अ आ
ज्य	१	भरणी	इ
ला	३	कृत्तिका	ई उ ऊ
भो	४	रोहिणी	ऋ ॠ ऌ ॡ
प	१	मृगशिरा	ए
का	१	आर्द्रा	ऐ
रा	२	पुनर्वसु	ओ औ
य	१	पुष्य	क
श्रा	२	आश्लेषा	ख ग
र	२	मघा	घ ङ
क्या	१	पूर्वाफाल्गुनी	च
रि	२	उत्तराफाल्गुनी	छ ज
स्व	२	हस्त	झ ञ
र	२	चित्रा	ट ठ
पु	१	स्वाती	ड
त्र्	२	विशाखा	ढ ण
गो	३	अनुराधा	त थ द
पा	१	ज्येष्ठा	ध
लान्	३	मूल	न प फ
मु	१	पूर्वाषाढ़ा	ब
मु	१	उत्तराषाढ़ा	भ
रा	१	श्रवण	म
श्रा	२	धनिष्ठा	य र
यान्	१	शतभिषा	ल
कु	२	पूर्वभाद्रपदा	व श
ले	१	उत्तरभाद्रपदा	ष स ह

यह नक्षत्रोंके साथ क्रमशः अङ्कोंकी संगति है। इसके साथ 'अं अः'—ये दो अन्तिम स्वर रेवती नक्षत्रके साथ सदा जुड़े रहते हैं[11] ॥ १०-११½ ॥

[इनके द्वारा जन्म, सम्पद्, विपत्, क्षेम, प्रत्यरि, साधक, वध, मित्र तथा अतिमित्र—इन तारोंका विचार किया जाता है। जहाँ साधकके नामका आदि अक्षर है, वहाँसे लेकर मन्त्रके आदि अक्षरतक गिने। उसमें नौका भाग देकर शेषके अनुसार जन्मादि तारोंको जाने।]

(बारह राशियोंमें वर्णोंका विभाजन)

बाल गौर खुर शाण नामी शाभेति भेदिता।
लिप्यर्णा राशिषु क्रमात् षष्ठे शादींश्च योजयेत् ॥१२॥

(जैसा कि पूर्व श्लोकमें संकेत किया है, उसी तरह 'बा' से लेकर 'भा' तकके बारह अक्षर क्रमशः मेष आदि राशियों तथा ४ आदि संख्याओंकी ओर संकेत करते हैं—) बा ४ ल ३ गौ ३ र २ खु २ र २ शा ५ ण ५ मी ५ शा ५ भा ४। इन संख्याओंमें विभक्त हुए अकार आदि अक्षर क्रमशः मेष आदि राशियोंमें स्थित जानने चाहिये। 'श ष स ह' इन अक्षरोंको (तथा स्वरान्त्य वर्णों 'अं अः' को) छठी कन्याराशिमें संयुक्त करना चाहिये[12]। क्षकारका मीनराशिमें प्रवेश है[13]। यथा—

४	अ आ इ ई	मेषराशि	१
३	उ ऊ ऋ	वृषराशि	२
३	ॠ ऌ ॡ	मिथुनराशि	३
२	ए ऐ	कर्कराशि	४
२	ओ औ	सिंहराशि	५
२	अं अः (श ष स ह ल)	कन्याराशि	६
५	क ख ग घ ङ	तुलाराशि	७
५	च छ ज झ ञ	वृश्चिकराशि	८
५	ट ठ ड ढ ण	धनुराशि	९
५	त थ द ध न	मकरराशि	१०
५	प फ ब भ म	कुम्भराशि	११
४	य र ल व (क्ष)	मीनराशि	१२

११. [illegible] भी यही बात कही गयी है— [illegible] (२। १२५)

१२. [illegible] है। उसकी संस्कृत व्याख्यामें यही भाव व्यक्त किया गया है।

१३. जैसा कि [illegible] है— [illegible]

राशि-ज्ञानका उपयोग—साधकके नामका आदि अक्षर जहाँ हो, उस राशिसे मन्त्रके आदि अक्षरकी राशितक गिने। जो संख्या हो, उसके अनुसार फल जाने। यदि संख्या छठी, आठवीं अथवा बारहवीं हो तो वह निन्द्य है। इन बारह संख्याओंको 'बारह भाव' कहते हैं। उनकी विशेष संज्ञाएँ इस प्रकार हैं—तन, धन, सहज, सुहृद्, पुत्र, रिपु, जाया, मृत्यु, धर्म, कर्म, आय और व्यय। मन्त्रके अक्षर यदि मृत्यु, शत्रु तथा व्यय भावके अन्तर्गत हैं तो वे अशुभ हैं।

(सिद्धादि मन्त्र-शोधन-प्रकार)

अ क थ ह	आ ख द क्ष	इ ग ध	ई घ न
उ ङ प	ऊ च फ	ऋ छ ब	ॠ ज भ
ऌ झ म	ॡ ञ य	ए ट र	ऐ ठ ल
ओ ड व	औ ढ श	अं ण ष	अः त स

चौकोर स्थानपर पाँच रेखाएँ पूर्वसे पश्चिमकी ओर तथा पाँच रेखाएँ उत्तरसे दक्षिणकी ओर खींचे। इस प्रकार सोलह कोष्ठ बनावे। इनमें क्रमशः सोलह स्वरोंको लिखा जाय। तदनन्तर उसी क्रमसे व्यञ्जन-वर्ण भी लिखे। तीन आवृत्ति पूर्ण होनेपर चौथी आवृत्तिमें प्रथम दो कोष्ठोंके भीतर क्रमशः 'ह' और 'क्ष' लिखकर सब अक्षरोंकी पूर्ति कर ले। इन खानोंमें प्रथम कोष्ठकी चार पङ्क्तियाँ 'सिद्ध', दूसरे कोष्ठकी चार पङ्क्तियाँ 'साध्य', तीसरे कोष्ठकी चार पङ्क्तियाँ 'सुसिद्ध' तथा चौथे कोष्ठकी चार पङ्क्तियाँ 'अरि' मानी गयी हैं। जिस साधकके नामका आदि अक्षर जिस चतुष्कमें पड़े, वही उसके लिये 'सिद्ध चतुष्क' है, वहाँसे दूसरा उसके लिये 'साध्य', तीसरा 'सुसाध्य' और चौथा चतुष्क 'अरि' है। जिस चतुष्कके जिस कोष्ठमें साधकका नाम है, वह उसके लिये 'सिद्ध-सिद्ध' कोष्ठ है। फिर प्रदक्षिणक्रमसे उस चतुष्कका दूसरा कोष्ठ 'सिद्ध-साध्य', 'सिद्ध-सुसिद्ध' तथा 'सिद्ध-अरि' है। इसी चतुष्कमें यदि मन्त्रका भी आदि अक्षर हो तो इसी गणनाके अनुसार उसके भी 'सिद्ध-सिद्ध', 'सिद्ध-साध्य' आदि भेद मान लेने चाहिये। यदि प्रथम चतुष्कमें अपने नामका आदि अक्षर हो और द्वितीय चतुष्कमें मन्त्रका आदि अक्षर हो तो पूर्व चतुष्क जिस कोष्ठमें नामका आदि अक्षर है, उस दूसरे चतुष्कमें भी उसी कोष्ठसे लेकर प्रादक्षिण्यक्रमसे 'साध्य-सिद्ध' आदि सभी कल्पना करनी चाहिये। इस प्रकार सिद्धादिकी कल्पना करे। सिद्ध-मन्त्र अत्यन्त गुणोंसे युक्त होता है। 'सिद्ध-मन्त्र' जपमात्रसे सिद्ध अर्थात् सिद्धिदायक होता है; 'साध्य मन्त्र' जप, पूजा और होम आदिसे सिद्ध होता है। 'सुसिद्ध मन्त्र' चिन्तनमात्रसे सिद्ध हो जाता है, परंतु 'अरि मन्त्र' साधकका नाश कर देता है। जिस मन्त्रमें दुष्ट अक्षरोंकी संख्या अधिक हो, उसकी सभीने निन्दा की है॥ १३-१ ॥

शिष्यको चाहिये कि वह अभिषेकपर्यन्त दीक्षा विधिवत् प्राप्त करके गुरुके मुखसे तन्त्रोक्त विधिका ज्ञान करके गुरुसे प्राप्त हुए अभीष्ट मन्त्रकी साधना करे। जो धीर, दक्ष, पवित्र, भक्तिभावसे सम्पन्न, जप-ध्यान आदिमें तत्पर रहनेवाला, सिद्ध, तपस्वी, कुशल, तन्त्रवेत्ता, सत्यवादी तथा निग्रह-अनुग्रहमें समर्थ हो, वह 'गुरु' कहलाता है। जो शान्त (मनको वशमें रखनेवाला), दान्त (जितेन्द्रिय), पटु (सामर्थ्यवान्), ब्रह्मचारी, हविष्यान्नभोजी, गुरुकी सेवामें संलग्न और मन्त्रसिद्धिके प्रति उत्साह रखनेवाला हो, वह 'योग्य' शिष्य है। उसको तथा अपने पुत्रको मन्त्रका उपदेश देना चाहिये। शिष्य विनयी तथा गुरुको धन देनेवाला हो। ऐसे शिष्यको गुरु मन्त्रका उपदेश दे और उसकी सुसिद्धिके लिये स्वयं भी एक सहस्रकी संख्यामें जप करे। अकस्मात् कहींसे सुना हुआ, छल अथवा बलसे प्राप्त किया हुआ, पुस्तकके पन्नेमें लिखा हुआ अथवा गाथामें कहा गया मन्त्र नहीं जपना चाहिये। यदि ऐसे मन्त्रका जप किया जाय तो वह अनर्थ उत्पन्न करता है। जो जप, होम तथा अर्चना आदि भूरि क्रियाओंद्वारा मन्त्रकी साधनामें संलग्न रहता है, उसके मन्त्र स्वल्पकालिक साधनसे ही सिद्ध हो जाते हैं। जिसने एक मन्त्रको भी विधिपूर्वक सिद्ध कर लिया है, उसके लिये इस लोकमें कुछ भी असाध्य नहीं है, फिर जिसने बहुसंख्यक मन्त्र सिद्ध कर लिये हैं, उसके माहात्म्यका किस प्रकार वर्णन किया जाय? वह तो साक्षात् शिव ही है। एक अक्षरका मन्त्र दस लाख जप करनेसे सिद्ध हो जाता है। मन्त्रमें ज्यों-ज्यों अक्षरकी वृद्धि हो, त्यों-ही-त्यों उसके जपकी संख्यामें कमी होती है। इस नियमसे अन्य मन्त्रोंके जपकी संख्याके विषयमें स्वयं ऊहा कर लेनी चाहिये। बीजमन्त्रकी अपेक्षा दुगुनी-तिगुनी संख्यामें मालामन्त्रोंके जपका विधान है। जहाँ जपकी संख्या नहीं बतायी गयी हो, वहाँ मन्त्र-जापके लिये एक सौ आठ या एक हजार आठ संख्या जाननी चाहिये।

सम्त्र जपसे दशांश हवन एवं तर्पणका विधान मिलता है ॥ १६–२५ ॥

जहाँ किसी द्रव्य विशेषका उल्लेख न हो, वहाँ होममें घृतका उपयोग करना चाहिये। जो आर्थिक दृष्टिसे असमर्थ हों, उनके लिये होमके निमित्त जपकी संख्यासे दशांश जपका ही सपन विधान मिलता है। अङ्ग आदिके लिये भी जप आदिका विधान है। सशक्ति-मन्त्रसे जपसे मन्त्रदेवता साधकको अभीष्ट फल देते हैं। वे साधकके द्वारा किये गये ध्यान, होम और अर्चन आदिसे तृप्त होते हैं। उच्चस्वरसे जपकी अपेक्षा उपांशु (मन्दस्वरसे किया गया) जप दसगुना श्रेष्ठ कहा गया है। यदि केवल जिह्वा हिलाकर जप किया जाय तो वह सौ गुना उत्तम माना गया है। मानस (मनके द्वारा किये जानेवाले) जपका महत्त्व सहस्रगुना उत्तम कहा गया है। मन्त्र-सम्बन्धी कर्मका सम्पादन पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख होकर करना चाहिये। मौन होकर विहित आहार ग्रहण करते हुए प्रणव आदि सभी मन्त्रोंका जप करना चाहिये। देवता तथा आचार्यके प्रति समान दृष्टि रखते हुए आसनपर बैठकर मन्त्रका जप करे। कुटी, एकान्त एवं पवित्र स्थान, देवमन्दिर, नदी अथवा जलाशय—ये जप करनेके लिये उत्तम देश हैं। मन्त्र सिद्धिके लिये जौकी लप्सी, मालपूए, दुग्ध एवं हविष्यान्नका भोजन करे। साधक मन्त्रदेवताका उनकी तिथि, वार, कृष्णपक्षकी अष्टमी चतुर्दशी तथा ग्रहण आदि पर्वोंपर पूजन करे। अश्विनीकुमार, यमराज, अग्नि, धाता, चन्द्रमा, रुद्र, अदिति, बृहस्पति, सर्प, पितर, भग, अर्यमा, सूर्य, त्वष्टा, वायु, इन्द्राग्नि, मित्र, इन्द्र, जल, निर्ऋति, विश्वेदेव, विष्णु, वसुगण, वरुण, अजैकपात्, अहिर्बुध्न्य और पूषा—ये क्रमशः अश्विनी आदि नक्षत्रोंके देवता हैं। प्रतिपदासे लेकर चतुर्दशीपर्यन्त तिथियोंके देवता क्रमशः निम्नलिखित हैं—अग्नि, ब्रह्मा, पार्वती, गणेश, नाग, स्कन्द, सूर्य, महेश, दुर्गा, यम, विश्वदेव, विष्णु, कामदेव और हर। पूर्णिमाके चन्द्रमा और अमावास्याके देवता पितर हैं। शिव, दुर्गा, बृहस्पति, विष्णु, ब्रह्मा, लक्ष्मी और कुबेर—ये क्रमशः रविवार आदि वारोंके देवता हैं। अब मैं 'लिपिन्यास'का वर्णन करता हूँ ॥ २६–३६½ ॥

साधक निम्नलिखित प्रकारसे लिपि (मातृका) न्यास करे—'ॐ अं नमः, केशान्तेषु। ॐ आं नमः, मुखे। ॐ इं नमः, दक्षिणनेत्रे। ॐ ईं नमः, वामनेत्रे। ॐ उं नमः, दक्षिणकर्णे। ॐ ऊं नमः, वामकर्णे। ॐ ऋं नमः, दक्षिणनासापुटे। ॐ ॠं नमः, वामनासापुटे। ॐ ऌं नमः, दक्षिणकपोले। ॐ ॡं नमः, वामकपोले। ॐ एं नमः ऊर्ध्वोष्ठे। ॐ ऐं नमः, अधरोष्ठे। ॐ ओं नमः, ऊर्ध्वदन्तपङ्क्तौ। ॐ औं नमः अधोदन्तपङ्क्तौ। ॐ अं नमः, मूर्ध्नि। ॐ अः नमः, मुखवृत्ते। ॐ कं नमः, दक्षिणबाहुमूले। ॐ खं नमः, दक्षिणकूर्परे। ॐ गं नमः, दक्षिणमणिबन्धे। ॐ घं नमः, दक्षिणहस्ताङ्गुलिमूले। ॐ ङं नमः दक्षिणहस्ताङ्गुल्यग्रे। ॐ चं नमः, वामबाहुमूले। ॐ छं नमः, वामकूर्परे। ॐ जं नमः, वाममणिबन्धे। ॐ झं नमः, वामहस्ताङ्गुलिमूले। ॐ ञं नमः, वामहस्ताङ्गुल्यग्रे। ॐ टं नमः, दक्षिणपादमूले। ॐ ठं नमः, दक्षिणजानुनि। ॐ डं नमः, दक्षिणगुल्फे। ॐ ढं नमः, दक्षिणपादाङ्गुलिमूले। ॐ णं नमः, दक्षिणपादाङ्गुल्यग्रे। ॐ तं नमः, वामपादमूले। ॐ थं नमः, वामजानुनि। ॐ दं नमः, वामगुल्फे। ॐ धं नमः, वामपादाङ्गुलिमूले। ॐ नं नमः, वामपादाङ्गुल्यग्रे। ॐ पं नमः दक्षिणपार्श्वे। ॐ फं नमः, वामपार्श्वे। ॐ बं नमः पृष्ठे। ॐ भं नमः, नाभौ। ॐ मं नमः, उदरे। ॐ यं त्वगात्मने नमः, हृदि। ॐ रं असृगात्मने नमः, दक्षांसे। ॐ लं मांसात्मने नमः, ककुदि। ॐ वं मेदात्मने नमः, वामांसे। ॐ शं अस्थ्यात्मने नमः हृदयादिदक्षहस्तान्तम्। ॐ षं मज्जात्मने नमः, हृदयादिवामहस्तान्तम्। ॐ सं शुक्रात्मने नमः, हृदयादिदक्षपादान्तम्। ॐ हं आत्मने नमः, हृदयादिवामपादान्तम्। ॐ ळं परमात्मने नमः जठरे। ॐ क्षं प्राणात्मने नमः, मुखे।' इस प्रकार आदिमें 'प्रणव' और अन्तमें 'नमः' पद जोड़कर विद्वानोंने मातृकान्यासका न्यास किया जाता है ॥ ३७–४० ॥

श्रीकण्ठ, अनन्त, सूक्ष्म, त्रिमूर्ति, अमरेश्वर, अर्घीश, भारभूति, तिथीश, स्थाणुक, हर, झिण्टीश, भौतिक, सद्योजात, अनुग्रहेश्वर, अक्रूर तथा महासेन—ये सोलह 'स्वर-मूर्तिदेवता' हैं। क्रोधीश, चण्डीश, पञ्चान्तक, शिवोत्तम, एकरुद्र, कूर्म, एकनेत्र, चतुरानन, अजेश, शर्व, सोमेश, लाङ्गलि, दारुक, अर्द्धनारीश, उमाकान्त, आषाढी, दण्डी, अद्रि, मीन, मेष, लोहित, शिखी, छगलण्ड, द्विरण्ड, महाकाल,

शेष, वासुकि, तक्षक, कर्कोटक, पद्म, महापद्म, शङ्खपाल एवं कुलिक—ये आठ नागोंमें श्रेष्ठ हैं।

सर्प चिकने होते हैं। वे तिरछी ऊर्ध्वगामिनी एवं बहुरंगी रेखाओंद्वारा चित्रित-से जान पड़ते हैं। चरकने भी इन सर्पोंके विषयमें ऐसा ही किंतु संक्षिप्त विवरण दिया है—

दर्वीकराः फणी ज्ञेयो मण्डली मण्डलाफणः। बिन्दुलेखा विचित्राङ्गः पन्नगः स्यात्तु राजिमान्॥

फणवाले (दर्वीकर) सर्प वायुको प्रकुपित करते हैं। मण्डली सर्पोंके दंशसे पित्तका प्रकोप बढ़ता है तथा राजिमान् सर्प कफ-प्रकोपको बढ़ानेवाले होते हैं। (सुश्रुत उत्तरतन्त्र कल्पस्थान ४।२९)

'राजिमान् सर्प रातके पिछले पहरमें, मण्डली सर्प रातके शेष तीन पहरोंमें और दर्वीकर सर्प दिनमें चरते और विचरते हैं।' (सुश्रुत, उत्तरतन्त्र, कल्पस्थान ४।३१)

'दर्वीकर सर्प तरुणावस्थामें, मण्डली वृद्धावस्थामें और राजिमान् सर्प मध्यवयमें उग्र विषवाले होकर लोगोंकी मृत्युके कारण बनते हैं।' (सुश्रुत ४।३२) मण्डली सर्पोंको गोनस भी कहते हैं।

'सुश्रुत-संहिता'की 'आयुर्वेद-तत्त्व-सन्दीपिका' व्याख्यामें सर्पोंका वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है—
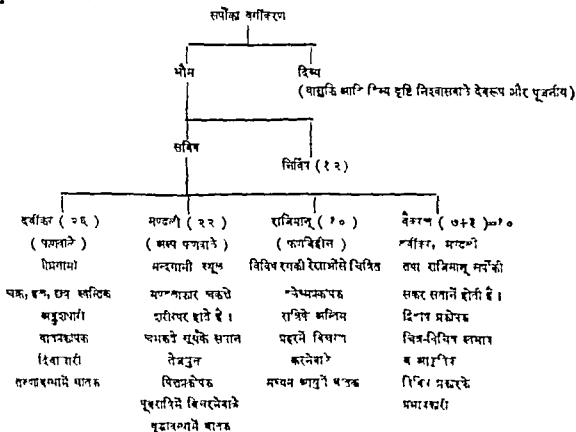
सुश्रुत-संहिता, पू. तन्त्र, कल्पस्थान अध्याय ४ श्लोक २५ से २८ तक कुछ विशेष चिह्न और रंगोंके आधारपर सर्पोंमें ब्राह्मणादि जातियोंकी परिकल्पना की गयी है। जो सर्प मोती और चाँदीके समान स्वच्छ कपिल वर्णके सुनहरे रंगके तथा सुगन्धयुक्त होते हैं वे ब्राह्मण माने गये हैं। जो चिकने रंग (चिकने), अत्यन्त क्रोधी, सूर्य और चन्द्रमाके समान आकृतिके छत्र अथवा अंकुशके समान चिह्न धारण करनेवाले होते हैं उन्हें क्षत्रिय जातिका सर्प मानना चाहिये। जो काले और वज्रके समान रंगके हैं अथवा जो धूमिलसे लाल [illegible] कबूतरोंके रंगवाले दिखायी देते हैं वे सब वैश्य माने गये हैं। जिनका रंग भैंसे और चीतेके समान हो, जो कठोर त्वचावाले हों वे और भिन्न-भिन्न रंगके सर्प शूद्र जातिके होते हैं।

कुलिकोदयका समय सभी कार्योंमें दोषयुक्त माना गया है। सर्पदंशमें तो वह विशेषतः अशुभ है। कृत्तिका, भरणी, स्वाती, मूल, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वभाद्रपदा, अश्विनी, विशाखा, आर्द्रा, आश्लेषा, चित्रा, श्रवण, रोहिणी, हस्त नक्षत्र, शनि तथा मङ्गलवार एवं पञ्चमी, अष्टमी, षष्ठी, रिक्ता—चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी एवं शिवा (तृतीया) तिथि सर्पदंशमें निन्द्य मानी गयी हैं। पञ्चमी और चतुर्दशी तिथियोंमें सर्पका दंशन विशेषतः निन्दित है। यदि सर्प चारों सन्ध्याओंके समय, दग्धयोग या दग्धराशिमें डँस ले, तो अनिष्टकारक होता है। एक, दो और तीन दंशनोंको क्रमशः 'दष्ट', 'विद्ध' और 'खण्डित' कहते हैं। सर्पका केवल स्पर्श हो, परंतु वह डँसे नहीं तो उसे 'अदंश' कहते हैं। इसमें मनुष्य सुरक्षित रहता है। इस प्रकार सर्पदंशके चार भेद हुए। इनमें तीन, दो एवं एक दंश वेदनाजनक और रक्तस्राव करनेवाले हैं। एक पैर और कूर्मके समान आकारवाले दंश मृत्युसे प्रेरित होते हैं। अङ्गोंमें दाह, शरीरमें चींटियोंके रेंगनेका-सा अनुभव, कण्ठशोष एवं अन्य पीड़ासे युक्त और व्यथाजनक गाँठवाला दंशन विषयुक्त माना जाता है, इससे भिन्न प्रकारका सर्पदंश विषहीन होता है। देवमन्दिर, शून्यगृह, वल्मीक (बाँबी), उद्यान, वृक्षके कोटर, दो सड़कों या मार्गोंकी संधि, श्मशान, नदी-सागर-संगम, द्वीप, चतुष्पथ (चौराहा), राजप्रासाद, गृह, कमलवन, पर्वतशिखर, बिलद्वार, जीर्णकूप, जीर्णगृह, दीवाल, शोभाञ्जन, श्लेष्मातक (लिसोड़ा) वृक्ष, जम्बूवृक्ष, उदुम्बर वृक्ष, वेणुवन (बँसवारी), वटवृक्ष और जीर्ण प्राकार (चहारदीवारी) आदि स्थानोंमें सर्प निवास करते हैं। इन्द्रिय-छिद्र, मुख, हृदय, कक्ष, जत्रु (ग्रीवामूल), तालु, ललाट, ग्रीवा, सिर, चिबुक (ठुड्डी), नाभि और चरण—इन अङ्गोंमें सर्पदंश अशुभ है। विषचिकित्सकको सर्पदंशकी सूचना देनेवाला दूत यदि हाथोंमें पुष्प लिये हो, सुन्दर वाणी बोलता हो, उत्तम बुद्धिसे युक्त हो, सर्पदष्ट मनुष्यके समान लिङ्ग एवं जातिका हो, श्वेतवस्त्रधारी हो, निर्मल और पवित्र हो, तो शुभ माना गया है। इसके विपरीत जो दूत मुख्यद्वारसे भिन्न दूसरे मार्गसे आया हो, शस्त्रयुक्त एवं प्रमादी हो, भूमिपर दृष्टि गड़ाये हो, गंदा या फटा वस्त्र पहने हो, हाथमें पाश आदि लिये हो, गद्गदकण्ठसे बोल रहा हो, सूखे काठपर बैठा हो, खिन्न हो तथा जो हाथोंमें काले तिल लिये हो या लाल रंगके धब्बेसे युक्त वस्त्र धारण किये हो अथवा भीगे वस्त्र पहने हुए हो, जिसके मस्तकपर बालोंपर काले और लाल रंगके फूल पड़े हों, अपने कुचोंका मर्दन, नखोंका छेदन या गुदाका स्पर्श कर रहा हो, भूमिको पैरसे खुरच रहा हो, केशोंको नोंच रहा हो या तिनके तोड़ रहा हो, ऐसे दूत दोषयुक्त कहे गये हैं। इन लक्षणोंमेंसे एक भी हो तो अशुभ है॥ २—२८॥

अपनी और दूतकी यदि इडा अथवा पिङ्गला या दोनों ही नाड़ियाँ चल रही हों, उन दोनोंके इन चिह्नोंसे डँसनेवाले सर्पको क्रमशः स्त्री, पुरुष अथवा नपुंसक जाने। दूत अपने जिस अङ्गका स्पर्श करे, रोगीके उसी अङ्गमें सर्पका दंश हुआ जाने। दूतके पैर चञ्चल हों तो अशुभ और यदि स्थिर हों तो शुभ माने गये हैं॥ २९-३०॥

किसी जीवके पार्श्वदेशमें स्थित दूत शुभ और अन्य भागोंमें स्थित अशुभ माना गया है। दूतके निवेदनके समय किसी जीवका आगमन शुभ और गमन अशुभ है। दूतकी वाणी यदि अत्यन्त दोषयुक्त हो अथवा सुस्पष्ट प्रतीत न होती हो तो वह निन्दित कही गयी है। उसके सुस्पष्ट एवं विभक्त वचनोंद्वारा यह ज्ञात होता है कि सर्पका दंशन विषयुक्त है अथवा विषरहित। दूतके वाक्यके आदिमें 'स्वर' और 'कादि' वर्णके भेदसे लिपिके दो प्रकार माने जाते हैं। दूतके वचनसे वाक्यके आरम्भमें स्वर प्रयुक्त हो, तो सर्पदष्ट मनुष्यकी जीवनरक्षा और कादिवर्णोंके प्रयुक्त होनेपर अशुभकी आशङ्का होती है। यह मातृका विधान है। 'क' आदि वर्गोंमें आरम्भके चार अक्षर क्रमशः वायु, अग्नि, इन्द्र और वरुणदेवता-सम्बन्धी होते हैं। कादि वर्गोंके पञ्चम अक्षर नपुंसक माने गये हैं। 'अ' आदि स्वर ह्रस्व और दीर्घके भेदसे क्रमशः इन्द्र एवं वरुणदेवता-सम्बन्धी होते हैं। दूतके वाक्यारम्भमें वायु और अग्निदैवत्य अक्षर दूषित और ऐन्द्र अक्षर मध्यम फलप्रद हैं। वरुणदैवत्य वर्ण उत्तम और नपुंसक वर्ण अत्यन्त अशुभ हैं॥ ३१—३३॥

विषचिकित्सकके प्रस्थानकालमें मङ्गलमय वचन, भेरी और मृदङ्गकी ध्वनि, दक्षिणपार्श्वमें कोयल [illegible] और वामभागमें किसी पक्षीका कलरव हो रहा हो, तो वह विजय या सफलताका सूचक है। प्रस्थानकालमें [illegible] शब्द शुभ होते हैं। दक्षिणभागमें [illegible], पताकाका दर्शन—ऐसे लक्षण सिद्धिके सूचक हैं। पक्षियोंकी अशुभ ध्वनि [illegible]—ये कार्यमें असिद्धि प्रदान करते

है। वरया, ब्राह्मण, राजा, कन्या, गौ, हाथी, ढोलक, पताका, दुग्ध, घृत, दही, शङ्ख, जल, छत्र, भेरी, फल, मदिरा, अक्षत, सुवर्ण और चाँदी—ये लक्षण सम्मुख होनेपर कार्यसिद्धिके सूचक हैं। काष्ठपर अग्निसे युक्त शिल्पकार, मैले कपड़ोंका बोझ ढोनेवाले पुरुष, गलेमें टंक (पाषाणभेदक शस्त्र) धारण किये हुए मनुष्य, शृगाल, गृध्र, उलूक, कौड़ी, तेल, कपाल और निषिद्ध भस्म—ये लक्षण नाशके सूचक हैं। विषका एक धातुसे दूसरे धातुमें प्रवेश करनेसे विषसम्बन्धी सात वेग होते हैं। विष पहले ललाटमें, ललाटसे नेत्रमें और नेत्रसे मुखमें जाता है। मुखमें प्रविष्ट होनेके बाद वह सम्पूर्ण धमनियोंमें व्याप्त हो जाता है। फिर क्रमशः धातुओंमें प्रवेश करता है॥ ३६-४१॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'नागलक्षणकथन' नामक दो सौ चौरानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २९४॥

दो सौ पचानबेवाँ अध्याय

दष्ट चिकित्सा

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं मन्त्र, ध्यान और ओषधिके द्वारा साँपके द्वारा डँसे हुए मनुष्यकी चिकित्साका वर्णन करता हूँ। 'ॐ नमो भगवते नीलकण्ठाय'—इस मन्त्रके जपसे विषका नाश होता है[1]। घृतके साथ गोबरके रसका पान करे। यह ओषधि साँपके डसे हुए मनुष्यके जीवनकी रक्षा करती है। विष दो प्रकारके कहे जाते हैं—'जङ्गम' विष, जो सर्प और मूषक आदि प्राणियोंमें पाया जाता है एवं दूसरा 'स्थावर' विष, जिसके अन्तर्गत शृङ्गी (सिंगिया) आदि विषभेद हैं॥ १-२॥

शान्तस्वरसे युक्त प्रणव (क्षौं), लादि (ह्रीं), तारक (ॐ) और शिव (हौं)—यह चार अक्षरोंका विषनिवृत्ति-सम्बन्धी नाममन्त्र है[2]। इसे शब्दमय तार्क्ष्य (गरुड) माना गया है॥ ३-४॥

'ॐ ज्वल महामते हृदयाय नमः, गरुड विराड् शिरसे स्वाहा, गरुड शिखायै वषट्, गरुडविषभञ्जन प्रभेदन प्रभेदन विग्रासय विग्रासय विमर्दय विमर्दय कवचाय हुम्, उग्ररूपधारक सर्वभयंकर भीषय भीषय सर्वं दह दह भस्मीकुरु कुरु स्वाहा, नेत्रत्रयाय वौषट्। अप्रतिहतशासन य हूं फट्, अस्त्राय फट्।'

मातृकामय कमल बनावे। उसके आग्नेय दिशाओंमें आठ दल हों। पूर्वादि दलोंमें दो-दोके क्रमसे समस्त स्वर वर्णोंको लिखे। कवर्गादि सात वर्गोंके अन्तिम दो-दो अक्षरोंका भी प्रत्येक दलमें उल्लेख करे। उस कमलके केसरभागको वर्गोंके आदि अक्षरोंसे अवरुद्ध करे तथा कर्णिकामें अग्निबीज 'र' लिखे। मन्त्रका साधक उस कमलको हृदयस्थ करके बायें हाथकी हथेलीपर उसका चिन्तन करे। अङ्गुष्ठ आदिमें विषनिवृत्ति मन्त्रके वर्णोंका न्यास करे और उनके द्वारा भेदित कलाओंका भी चिन्तन करे। तदनन्तर चौकोर 'भूपुर' नामक मण्डल बनाये, जो पीले रंगका हो और चारों ओरसे वज्रद्वय चिह्नित हो। यह मण्डल इन्द्रदेवतात्मक होता है। अर्धचन्द्राकार वृत्त जलदेवता-सम्बन्धी है। कमलका आधा भाग शुक्लवर्णका है। उसके देवता वरुण हैं। फिर स्वस्तिक-चिह्नसे युक्त त्रिकोणाकार अग्निमय पद्मिनीपत्रके मण्डलका चिन्तन करे। वायुदेवताका मण्डल बिन्दुयुक्त एवं वृत्ताकार है। वह कृष्णवर्णसे सुशोभित है, ऐसा चिन्तन करे॥ ५-८॥

ये चार भूत अङ्गुष्ठ, तर्जनी, मध्यमा और अनामिका—इन चार अंगुलियोंके अग्रपर्वोंमें स्थित अपने निवासस्थानोंमें विराजमान हैं और सुवर्णमय नागगण इनके बगलमें आश्रित हैं। इस प्रकार चिन्तनपूर्वक क्रमशः पृथ्वी आदि तत्त्वोंका अङ्गुष्ठ आदिके अग्रपर्वमें न्यास करे। उन्हीं विषनिवृत्ति मन्त्रके चार वर्णोंको भी क्रमशः उनमें लिखा

1. पुराणोंमें मन्त्रग्रहणकी विधि इस प्रकार बतायी गयी है— … ही मांस और मधु (मद्य) का सेवन छोड़कर मिताहारी और पवित्र होकर मन्त्र ग्रहण करना चाहिये। मन्त्र सीखनेको गुरुके सम्मुख बैठना और सेवा करनी चाहिये। मन्त्रकी सिद्धिके लिये मन्त्रपूर्वक गन्ध, पुष्प, उपहार, बलि, जप और होमके द्वारा देवताओंका पूजन करे। अविधिपूर्वक उच्चारित अथवा स्वरवर्णसे हीन मन्त्र सिद्धिकर नहीं होते हैं। इसलिये मन्त्रयोगके साधन … न कौल-व्यवहार वर्जित रहकर भी ध्यान रखना चाहिये।
(… ४ । ९१)

2. इन चारों अक्षरोंका उद्धार … कोषके अनुसार … गया है।

करे। इन वर्णोंकी कान्ति उनके सुन्दर मण्डलोंके समान है। इस प्रकार न्यास करनेके पश्चात् रूपरहित शब्दतन्मात्रमय शिवदेवतात्मक आकाशतत्त्वका कनिष्ठाके मध्यपर्वमें चिन्तन करके उसके भीतर वेदमन्त्रके प्रथम अक्षरका न्यास करे। पूर्वोक्त नागोंके नामके आदि अक्षरोंका उनके अपने मण्डलमें न्यास करे। पृथ्वी आदि भूतोंके आदि अक्षरोंका अङ्गुष्ठ आदि अँगुलियोंके अन्तिम पर्वोंपर न्यास करे तथा विद्वान् पुरुष गन्धतन्मात्रादिके गन्धादि गुणसम्बन्धी अक्षरोंका पाँचों अँगुलियोंमें न्यास करे ॥ ९-१२ ॥

इस प्रकार न्यास-ध्यानपूर्वक तार्क्ष्य-मन्त्रसे रोगीके हाथका स्पर्शमात्र करके मन्त्रज्ञ विद्वान् उसके स्थावर-जङ्गम दोनों प्रकारके विषोंका नाश कर देता है। विद्वान् पुरुष पृथ्वीमण्डल आदिमें विन्यस्त नियति-मन्त्रके चारों वर्णोंका अपनी श्रेष्ठ दो अँगुलियोंद्वारा शरीरके नाभिस्थानों और पर्वोंमें न्यास करे। तदनन्तर गरुडके स्वरूपका इस प्रकार ध्यान करे—'पक्षिराज गरुड दोनों घुटनोंतक सुनहरी आभासे सुशोभित हैं। घुटनोंसे लेकर नाभितक उनकी अङ्गकान्ति बर्फके समान सफेद है। वहाँसे कण्ठतक वे कुङ्कुमके समान अरुण प्रतीत होते हैं और कण्ठसे केशपर्यन्त उनकी कान्ति असित (श्याम) है। वे समूचे ब्रह्माण्डमें व्याप्त हैं। उनका नाम चन्द्र है और वे नागमय आभूषणोंसे विभूषित हैं। उनकी नासिकाका अग्रभाग नीले रंगका है और उनके पंख बड़े विशाल हैं।' मन्त्रज्ञ विद्वान् अपने-आपको भी गरुडके रूपमें ही चिन्तन करे। इस तरह गरुडस्वरूप मन्त्रप्रयोक्ता पुरुषके वाक्यसे मन्त्र विषपर अपना प्रभाव डालता है। गरुडके हाथकी मुद्रा रोगीके हाथमें स्थित हो तो वह उसके अङ्गुष्ठमें स्थित विषका विनाश कर देती है। मन्त्रज्ञ पुरुष अपने गरुडस्वरूप हाथको ऊपर उठाकर उसकी पाँचों अँगुलियोंके चालनमात्रसे विषसे उत्पन्न होनेवाले मदपर दृष्टि रखते हुए उस विषका स्तम्भन आदि कर सकता है ॥ १३-१७½ ॥

आकाशसे लेकर भूबीजपर्यन्त जो पाँच बीज हैं, उन्हें 'पञ्चाक्षर मन्त्रराज' कहा गया है। (उसका स्वरूप इस प्रकार है—हं यं रं, वं, लं।) अत्यन्त विषका स्तम्भन करना हो तो इस मन्त्रके उच्चारणमात्रसे मन्त्रज्ञ पुरुष विषको [illegible] कर देता है। यह 'व्यस्तभूषण' बीजमन्त्र है। अर्थात् इन बीजोंको उलट-फेरकर बोलना इस मन्त्रका विपर्यस्त भूषण है। इसको अच्छी तरह याद किया जाय और इसका अभिषेक [illegible]

[illegible]

प्रयोक्ता पुरुष इसके प्रयोगसे विषका संहार कर सकता है ॥ १८-१९½ ॥

इस मन्त्रसे भलीभाँति जपसे अभिमन्त्रित जलके द्वारा अभिषेक करनेमात्रसे यह मन्त्र अपने प्रभावद्वारा उस रोगीको उठा सकता है, अथवा मन्त्रजपपूर्वक की गयी शङ्ख भेरी आदिकी ध्वनिको सुननेमात्रसे यह प्रयोग रोगीके विषको अवश्य ही दग्ध कर देता है। यदि भूबीज 'ल' तथा तेजोबीज 'र' को उलटकर रक्खा जाय, अर्थात् 'हं, यं लं, वं, रं'—इस प्रकार मन्त्रका स्वरूप कर दिया जाय तो उसका प्रयोग भी उपयुक्त फलका साधक होता है। अर्थात् उससे भी विषका दहन हो जाता है। भूबीज और वायुबीजका व्यत्यय करनेसे जो मन्त्र बनता है वह (हं लं रं वं यं) विषका संक्रामक होता है, अर्थात् उसका अन्यत्र संक्रमण करा देता है। मन्त्रप्रयोक्ता पुरुष रोगीके समीप बैठा हो या अपने घरमें स्थित हो, यदि गरुडके स्वरूपका चिन्तन तथा अपने आपमें भी गरुडकी भावना करके 'रं यं'—इन दो ही बीजोंका उच्चारण (जप) करे तो इस कर्मको सफल बना सकता है। गरुड और वरुणके मन्दिरमें स्थित होकर उक्त मन्त्रका जप करनेसे मन्त्रज्ञ पुरुष विषका नाश कर देता है। 'स्वधा' और [illegible] बीजोंसे युक्त करके यदि इस मन्त्रको बोला जाय तो इसे 'जानुदण्डिमन्त्र' कहते हैं। इसका जपपूर्वक स्नान और जलपान करनेसे साधक सब प्रकारके विष, ज्वर, रोग और अपमृत्युपर विजय पा लेता है ॥ २०-२४ ॥

१-पक्षि पक्षि महापक्षि महापक्षि वि वि स्वाहा।

२-पक्षि पक्षि महापक्षि महापक्षि क्षि क्षि स्वाहा॥

—ये दो पक्षिराज गरुडके मन्त्र हैं। इनके द्वारा अभिमन्त्रण करने, अर्थात् इनके जपपूर्वक रोगीको झाड़नेसे ये दोनों मन्त्र विषके नाशक होते हैं ॥ २५-२६ ॥

'पक्षिराजाय विद्महे पक्षिदेवाय धीमहि तन्नो गरुडः प्रचोदयात्।'—यह गरुड-गायत्रीमन्त्र है ॥ २७ ॥

उपर्युक्त दोनों पक्षिराजमन्त्रोंको 'रं' बीजसे आवृत करके उनके पादमध्यमें भी 'रं' बीज जोड़ दे। तदनन्तर [illegible] और [illegible] उन्हें युक्त कर दे और अन्तमें पूर्वोक्त 'नीलकण्ठ मन्त्र' जोड़ दे। इस प्रकार [illegible] मन्त्रका [illegible], [illegible] और [illegible] न्यास करे। उक्त दोनों मन्त्रोंका [illegible] करके उन्हें [illegible] अर्पित करे ॥ २८ ॥

इसके पश्चात् निम्नाङ्कित मन्त्र [illegible]—हर हर

स्थावर विषकी औषधि आदिमें निम्नलिखित मन्त्रका प्रयोग करना चाहिये—

'ॐ नमो वैदूर्यमात्रे तत्र रक्ष रक्ष मां सर्वविषेभ्यो गौरि गान्धारि चाण्डालि मातङ्गिनि स्वाहा हरिमाये।'

विषका भक्षण कर लेनेपर पहले वमन कराकर विषयुक्त मनुष्यको शीतल जलसे स्नान कराये। तदनन्तर उसको मधु और घृत पिलाये और उसके बाद विरेचन कराये ॥१८–२४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'गोनसादि-चिकित्सा-कथन' नामक दो सौ अट्ठानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २९८ ॥

दो सौ निन्यानबेवाँ अध्याय

बालादिग्रहहर बालतन्त्र

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ ! अब मैं बालादि ग्रहोंको शान्त करनेवाले 'बालतन्त्र'को कहता हूँ। शिशुको जन्मके दिन 'पापिनी' नामवाली ग्रही ग्रहण कर लेती है। उससे आक्रान्त बालकके शरीरमें उद्वेग बना रहता है। वह माँका दूध पीना छोड़ देता है, लार टपकाता है और बारबार ग्रीवाको घुमाता है। यह सारी चेष्टा पापिनी ग्रहीके कारणसे ही होती है। इसके निवारणके लिये पापिनी ग्रही और मातृकाओंके उद्देश्यसे उत्तम भोज्य विविध भक्ष्य पदार्थ, गन्ध, माल्य, धूप एवं दीपकी बलि प्रदान करे। पापिनी द्वारा गृहीत शिशुके शरीरमें धातकी, लोध, मजीठ, तालीस पत्र और चन्दनसे लेप करे और गुग्गुलसे धूप दे। जन्मके दूसरे दिन 'भीषणा' ग्रही शिशुको आक्रान्त करती है। उससे आक्रान्त शिशुको ये चेष्टाएँ होती हैं—वह खाँसी और श्वाससे पीड़ित रहता है तथा अङ्गोंको बारबार सिकोड़ता है। ऐसे बालकके शरीरमें बकरीके मूत्र, अपामार्ग और चन्दनके साथ घिसी हुई पिप्पलीका सेवन कराना—अनुलेप लगाना चाहिये। गोशृङ्ग, गजदन्त तथा केशोंकी धूप दे एवं पूर्ववत् बलि प्रदान करे। तीसरे दिन 'घण्टाली' नामकी ग्रही बच्चेको ग्रहण करती है। उसके द्वारा गृहीत शिशुको निम्नलिखित चेष्टाएँ होती हैं। वह बारबार रुदन करता है, जमाइयाँ लेता है, कोलाहल करता है एवं त्रास, गात्रोद्वेग और अरुचिसे युक्त होता है—ऐसे शिशुके केसर, रसाञ्जन, गजदन्त और हस्तिदन्तको बकरीके दूधसे पीसकर लेप लगाये। नख, राइ और बिल्वपत्रकी धूप दे तथा पूर्वोक्त बलि अर्पित करे। चौथी ग्रही 'काकोली' कही गयी है। इससे गृहीत बालकके शरीरमें उद्वेग होता है। वह जोर-जोरसे रोता है, मुँहसे झाग निकालता है और चारों दिशाओंमें बारबार देखता है। इसकी शान्तिके लिये मदिरा और कुल्माष (चना या उड़द)-की बलि दे तथा बालकपर गजदन्त, साँपकी केंचुल और अश्वमूत्रका प्रलेप करे। तदनन्तर राइ, नीमकी पत्ती और भेड़ियेके केशसे धूप दे। 'हंसाधिका' पाँचवीं ग्रही है। इससे गृहीत शिशु जँभाई लेता, ऊपरको और जोरसे साँस खींचता और मुट्ठी बाँधता है। ऐसी ही अन्य चेष्टाएँ भी करता है। 'हंसाधिका'को पूर्वोक्त बलि दे। इससे गृहीत शिशुके शरीरमें काकड़ासिंगी, बला, लोध, मैनसिल और तालीसपत्रका अनुलेपन करे। 'फट्कारी' छठी ग्रही मानी गयी है। इससे आक्रान्त बालक भयसे चिहुँकता, मोहसे अचेत होता और बहुत रोता है, आहारका त्याग कर देता है और अपने अङ्गोंको बहुत हिलाता डुलाता है। 'फट्कारी'के उद्देश्यसे भी पूर्वोक्त बलि प्रदान करे। इससे गृहीत शिशुको राइ, गुग्गुल, कूट, गजदन्त और घृतसे धूपन और अनुलेपन करे। 'मुक्तकेशा' नामकी ग्रही जन्मके सातवें दिन बालकपर आक्रमण करती है। इससे आक्रान्त बालक दुःखातुर रहता है। उसके शरीरसे बकरेकी-सी गन्ध आती है। वह जृम्भा, कोलाहल, अत्यधिक रुदन और कासमे पीड़ित रहता है। ऐसे बालकको व्याघ्रके नखोंकी धूप देकर वच, गोमय और गोमूत्रसे अनुलिप्त करे। 'श्रीदण्डी' नामवाली ग्रही शिशुको आठवें दिन पकड़ती है। इससे ग्रस्त बालक दिशाओंको देखता, जीभको हिलाता, चिल्लाता और रोता है। 'श्रीदण्डी'के उद्देश्यसे पूर्वोक्त पदार्थोंकी विविध बलि दे। इससे पीड़ित शिशुको हींग, वच, सफेद सरसों और लहसुनसे धूपित तथा अनुलिप्त करे। 'ऊर्ध्वग्राही' नवीं महाग्रही है। इससे ग्रस्त बालक उद्वेग और ऊर्ध्वश्वाससे युक्त होता है। वह अपनी दोनों मुट्ठियोंको चबाता है। उस शिशुको रक्तचन्दन, कूट, वच और [illegible] और बकरेके नख एवं रोमसे धूपन करे।

भगवान् श्रीहरिका नारदजीको उपदेश

उच्चारण करके दोनों हाथोंका संशोधन करे। फिर अङ्गुष्ठसे लेकर करतलपर्यन्त करन्यास और नेत्ररहित हृदयादि पञ्चाङ्ग न्यास करके भानुके मूल बीजस्वरूप तीन अक्षरों (ह्रां, ह्रीं, स)[2] द्वारा व्यापकन्यास करे। उसका क्रम इस प्रकार है—मूलाधारचक्रसे पादाग्रपर्यन्त प्रथम बीजका, कण्ठसे मूलाधारपर्यन्त द्वितीय बीजका और मूर्धासे लेकर कण्ठपर्यन्त तृतीय बीजका न्यास करे।[3] इस प्रकार अङ्गन्याससहित व्यापकन्यासका सम्पादन करके अर्घ्यपात्रको अस्त्र-मन्त्रसे प्रक्षालित करे और पूर्वोक्त मूलमन्त्रका उच्चारण करके उस पात्रको जलसे भर दे। फिर उसमें गन्ध, पुष्प, अक्षत और दूर्वा डालकर पुनः उसे अभिमन्त्रित करे। उस अभिमन्त्रित जलसे अपना और पूजाद्रव्यका अवश्य ही प्रोक्षण करे॥ १२–१९॥

तत्पश्चात् योगपीठकी कल्पना करके उस पीठके पायोंके रूपमें 'प्रभूत' आदिकी कल्पना करे। वे क्रमशः इस प्रकार हैं—प्रभूत, विमल, सार, आराध्य और परमसुख। आग्नेयादि चार कोणोंमें और मध्यभागमें इनके नामके अन्तमें 'नमः' पद जोड़कर इनका आवाहन-पूजन करे। योगपीठके ऊपर हृदयकमलमें तथा दिशा विदिशाओंमें दीप्ता आदि शक्तियोंकी स्थापना करे।[4] पीठके ऊपरी भागमें हृदयकमलको स्थापित करके उसके केसरोंमें आठ शक्तियोंकी पूजा करनी चाहिये। 'रां दीप्तायै नमः पूर्वस्याम्। रीं सूक्ष्मायै नमः आग्नेयकेसरे। रूं जयायै नमः दक्षिणकेसरे। रें भद्रायै नमः नैर्ऋत्यकेसरे। रैं विभूत्यै नमः पश्चिमकेसरे। रों विमलायै नमः वायव्यकेसरे। रौं अमोघायै नमः उत्तरकेसरे। रं विद्युतायै नमः ईशानकेसरे। रः सर्वतोमुख्यै नमः मध्ये।'—इस प्रकार शक्तियोंकी अर्चना करके 'ॐ ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाय सौराय योगपीठाय नमः।'—इस मन्त्रसे समस्त पीठकी पूजा करे। सुव्रत! तत्पश्चात् रवि आदि मूर्तियोंका आवाहन करके उन्हें पाद्यादि समर्पित करे और क्रमशः हृदादि षडङ्गन्यासपूर्वक पूजन करे। 'ख कान्तो' इत्यादि संकेतसे 'ख खमोल्काय नमः' यह मन्त्र प्रकट होता है। [यथा 'ख' मन्त्रका स्वरूप है—कान्त—'ख' है, दण्डिनी—'म' है, चण्ड—'उकार' है (संधि करनेपर 'मो' हुआ) मज्जादन्तसयुता मांसा 'ल' ग्रीवा—दीर्घस्वर आकारसे युक्त जल 'क' अर्थात् 'का' तथा वायु—'यकार'। इस प्रकार अन्तमें हृद्—नमः।] इसका उच्चारणपूर्वक 'आदित्यमूर्तिं परिकल्पयामि, रविमूर्तिं परिकल्पयामि, भानुमूर्तिं परिकल्पयामि, भास्करमूर्तिं परिकल्पयामि, सूर्यमूर्तिं परिकल्पयामि'—यों कहना चाहिये। इन मूर्तियोंके पूजनका मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ आदित्याय नमः। ॐ रवये नमः। ॐ भानवे नमः। ॐ भास्कराय नमः। ॐ सूर्याय नमः।' अग्निकोण, नैर्ऋत्यकोण, ईशानकोण और वायव्यकोण—इन चार कोणोंमें तथा मध्यमें हृदादि पाँच अङ्गोंकी उनके नाम मन्त्रोंसे पूजा करनी चाहिये। ये सर्वत्र भीतर ही उक्त दिशाओंमें पूजनीय हैं। अस्त्रकी पूजा अपने सामनेकी दिशामें करनी चाहिये। पूर्वादि दिशाओंमें क्रमशः चन्द्रमा, बुध, गुरु और शुक्र पूजनीय हैं तथा आग्नेय आदि कोणोंमें मङ्गल, शनैश्चर, राहु और केतुकी पूजा करनी चाहिये॥ २०–२[illegible]॥

पृश्निपर्णी, हींग, वच, चव (चित्रकपत्र), शिरीष, लहसुन और आमय—इन औषधोंको बकरेके मूत्रमें पीसकर अञ्जन और नस्य तैयार कर ले। उस अञ्जन और नस्यके रूपमें उक्त औषधोंका उपयोग किया जाय तो वे ग्रहबाधा निवारण करनेवाले होते हैं। पाठा, पथ्या (हरें), वचा, शिग्रु (सहिजन), सिन्धु (सेंधा नमक), व्योष (त्रिकटु)—इन औषधोंका चूर्ण बकरेके मूत्रमें [illegible] ... [illegible] ... नीलकण्ठी (सिन्धुवार), [illegible], [illegible], [illegible] ...

---

[2] इनका उद्धार 'शारदातिलक' में इस प्रकार है—

मार्तण्डमाभिर्बिन्द्विन्दुसंयुक्ता भुवनेश्वरी।
सर्गोपितो भृगुर्भानोरक्षरात्मा मनुरीरितः॥ १४। ५८॥

[3] जैसा कि 'शारदातिलक' में निर्देश किया गया है—

आधारादि पदाग्रान्तं कण्ठादाधारकावधि।
मूर्धादि कण्ठपर्यन्तं क्रमाद् बीजत्रयं न्यसेत्॥
(१४। ५)

[4] 'शारदातिलक' में 'प्रभूत' आदि पीठपादों और शक्तियोंकी स्थापना एवं पूजाके विषयमें इस प्रकार उल्लेख मिलता है—

अग्निकोणे प्रभूतं च विमलं नैर्ऋते यजेत्।
सारं वायव्यकोणे च समाराध्यं तथैशके॥
मध्ये परमसुखं च पद्ममध्ये तु कर्णिकाम्।
दलमूलेषु पूर्वादि मध्ये च विदिशूर्ध्वकम्।
दीप्तसूक्ष्मे जयाभद्रे विभूतिविमले तथा॥
अमोघा विद्युता चान्या नवमी सर्वतोमुखी।
पीठशक्तिः क्रमेणैताः कर्णिकायां समर्चयेत्॥

प्रभूत आदिके लिये पूजा-मन्त्र इस प्रकार है—'प्रभूताय नमः आग्नेये। विमलाय नमः नैर्ऋत्ये। साराय नमः वायव्ये। आराध्याय नमः ऐशान्याम्। परमसुखाय नमः मध्ये।' शक्तियोंके पूजनमन्त्र मूलमें ही दिये गये हैं।

'लक्ष्मणा' और 'श्री' नामक ओषधियोंकी जड़ तथा दूर्वा और अश्वगन्धाका मूल—इन सबको पुत्रकी इच्छा रखनेवाली नारी दूधके साथ पीये। कौन्ती, लक्ष्मी, शिवा और धात्री (आँवलेका बीज), लोध्र और वटके अङ्कुर—इन्हें स्त्री ऋतुकालमें घी और दूधके साथ पीये। इससे उसको पुत्रकी प्राप्ति होती है। पुत्रार्थिनी नारी 'श्री'नामक ओषधिकी जड़ और वटके अङ्कुरको दूधके साथ पीये। श्री, नटाङ्कुर और देवी—इनके रसका नस्य ले और पीये भी। 'श्री' और 'कमल'की जड़को, अश्वत्थ और उत्तरके मूलको दूधके साथ पीये। कपासके फल और पल्लवको दूधमें पीसकर तरल बनाकर पीये। अपामार्गके नूतन पुष्पाग्रको भैंसके दूधके साथ पीये। उपर्युक्त साढ़े पाँच श्लोकोंमें पुत्रप्राप्तिके चार योग बताये गये हैं ॥ १७–२१½ ॥

यदि स्त्रीका गर्भ गलित हो जाता हो तो उसे शक्कर, कमलके फूल, कमलगट्टा, लोध, चन्दन और सारिवालता—इनको चावलके पानीमें पीसकर दे या लाजा, यष्टि (मुलहठी), सिता (मिश्री), द्राक्षा, मधु और घी—इन सबका अवलेह बनाकर वह स्त्री चाटे ॥ २२-२३ ॥

आटरूप (अड़ूसा), कलाङ्गली, काकमाची, शिफा (जटामासी)—इन सबको नाभिके नीचे पीसकर लेप दे तो स्त्री सुखपूर्वक प्रसव कर सकती है ॥ २४ ॥

लाल और सफेद जवाकुसुम, लाल चीता और दोनोंको पीये। केसर, भटकटैयाकी जड़, गोपी, यष्टी (साठीका तृण) और उत्पल—इनको बकरीके दूधमें पीसकर तेल मिलाकर लगाये तो सिरमें बाल उगते हैं। अगर सिरके बाल झड़ रहे हों तो यह उनको रोकनेका उपाय है ॥ २५-२६ ॥

आँवला और भँगरैयाका एक सेर तेल, एक आढक दूध, यष्टी और अञ्जनका एक पल तेल—ये सब सिरके बाल, नेत्र और सिरके लिये हितकारक होते हैं ॥ २७ ॥

हल्दी, राजवृक्षकी छाल, चिञ्चा (इमलीका बीज), नमक, लोध और पीली खारी—ये गौओंके पेट फूलनेकी बीमारीको तत्काल रोक देते हैं ॥ २८ ॥

'ॐ नमो भगवते त्र्यम्बकायोपशमयोपशमय चुलु चुलु मिलि मिलि भिदि भिदि गोमानिनि चक्रिणि हूं फट्। अस्मिन् ग्रामे गोकुलस्य रक्षां कुरु शान्तिं कुरु कुरु कुरु ठ ठ ठ' ॥ २९-३० ॥

यह गोसमुदायकी रक्षाका मन्त्र है।

'घण्टाकर्ण महासेन वीर बड़े बलवान् कहे गये हैं। वे जगदीश्वर महामारीका नाश करनेवाले हैं, अतः मेरी रक्षा करें।' ये दोनों श्लोक और मन्त्र गोरक्षक हैं, इनको छिद्रपर पत्रपर टाँग देना चाहिये ॥ ३१ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'नाना प्रकारके मन्त्र और औषधोंका कथन' नामक तीन सौ दोवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३०२ ॥

तीन सौ तीनवाँ अध्याय

अष्टाक्षर मन्त्र तथा उसकी न्यासादि विधि

जब चन्द्रमा जन्म-नक्षत्रपर हो और सूर्य सातवीं राशिपर हो तो उसे 'पूर्णमा काल' समझना चाहिये। उस समय आयुकी परीक्षा करे। जिसके कान और ओठ अपने स्थानसे खिसक गये हों, [illegible] नाक टेढ़ी हो गयी और जीभ काली पड़ गयी हो, उसका जीवन अधिक-से-अधिक सात दिन और रह सकता है ॥ १-२ ॥

तार (ॐ), मेष (न), शिव (म), दण्डी (मो), दीर्घसहित 'न' तथा 'र' (ना रा), 'य' 'णा', वा (य)—यह भगवान् विष्णुका अष्टाक्षर मन्त्र (ॐ नमो नारायणाय) है।[1] इसका अङ्गन्यास इस प्रकार है—

क्रुद्धोल्काय स्वाहा हृदयाय नमः। महोल्काय स्वाहा शिरसे स्वाहा। वीरोल्काय स्वाहा शिखायै वषट्। द्युल्काय

[1] 'अग्निरहस्य'के अनुसार इस मन्त्रका विनियोग इस प्रकार है—ॐ अस्य श्रीअष्टाक्षरमन्त्रस्य [illegible], [illegible] छन्दः, [illegible] देवता [illegible] विनियोगः। [illegible]

तीन सौ चारवाँ अध्याय

पञ्चाक्षर-दीक्षा विधान, पूजाके मन्त्र

अग्निदेव कहते हैं—मेघ (न) इसके पीछे—विसर्ग युक्त मकार (मः) पहले पहलेका अक्षर श और उसके साथ अग्नि—इकार (शि) दीर्घोदक (वा) मरुत् (य)—यह पञ्चाक्षर मन्त्र (नमः शिवाय) शिवस्वरूप तथा शिवप्रदाता है। इसके आदिमें ॐ लगा देनेपर यह षडक्षर मन्त्र हो जाता है। इसका अर्चन (भजन) करके मनुष्य देवत्व आदि उत्तम फलोंको प्राप्त कर लेता है ॥ १३ ॥

ज्ञानस्वरूप परब्रह्म ही परम बुद्धिरूप है। वही सबके हृदयमें शिवरूपसे विराजमान है। वह शक्तिभूत सर्वेश्वर ही ब्रह्मा आदि मूर्तियोंके भेदसे भिन्न-सा प्रतीत होता है। मन्त्रके अक्षर पाँच हैं, भूतगण भी पाँच हैं तथा उनके मन्त्र और विषय भी पाँच हैं। प्राण आदि वायु पाँच हैं। ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ भी पाँच-पाँच हैं। ये सब-की सब वस्तुएँ पञ्चाक्षर-ब्रह्मरूप हैं। इसी प्रकार यह सब कुछ अष्टाक्षर मन्त्ररूप भी है ॥ २-४ ॥

दीक्षा-स्थानका मन्त्रोच्चारणपूर्वक पञ्चगव्यसे प्रोक्षण करे। फिर वहाँ समस्त आवश्यक सामग्रीका संग्रह करके विधिपूर्वक शिवकी पूजा करे। तत्पश्चात् मूलमन्त्र, इष्ट मूर्तिसम्बन्धी मन्त्र तथा अङ्गसम्बन्धी मन्त्रोंद्वारा अक्षत छोड़ते हुए भूतापसारणपूर्वक रक्षात्मक क्रिया सम्पादित करे। फिर दूधमें चरु पकाकर उसके तीन भाग करे। उनमेंसे एक भाग तो इष्टदेवताको निवेदित कर दे, दूसरे भागकी आहुति दे और तीसरा शिष्यसहित स्वयं ग्रहण करे। फिर आचमन एवं सकलीकरण करके आचार्य शिष्यको हृदय-मन्त्रसे अभिमन्त्रित एक दन्तधावन दे, जो दूधवाले वृक्ष आदिका काष्ठ हो। उससे दाँतोंका धावन करके, उसे चीरकर उसके द्वारा जीभ साफ करनेके बाद धोकर पृथ्वीपर फेंक दे ॥ ५-८ ॥

यदि पूर्वदिशामें फेंकनेपर वह दन्तकाष्ठ उत्तर या पश्चिम दिशाकी ओर जाकर गिरे तो शुभ होता है, अन्यथा अशुभ होता है। पुनः अपने सम्मुख आते हुए शिष्यको शिखा-बन्धके द्वारा रक्षित करके ज्ञानी गुरु वेदीपर उसके साथ कुशके बिस्तरपर सो जाय। शिष्य सोते समय रातमें जो स्वप्न देखे, उसे प्रातःकाल अपने गुरुको सुनावे ॥ ९-१० ॥

यदि स्वप्न शुभ एवं सिद्धिसूचक हुए तो उनसे मन्त्र तथा इष्टदेवके प्रति भक्ति बढ़ती है। तत्पश्चात् पुनः मण्डलार्चन करना चाहिये। 'सर्वतोभद्र' आदि मण्डल पहले बताये गये हैं। उनमेंसे किसी एकका पूजन करना चाहिये। पूजित हुआ मण्डल सम्पूर्ण सिद्धियोंका दाता है ॥ ११ ॥

पहले स्नान और आचमन करके मन्त्रोच्चारणपूर्वक देहमें मिट्टी लगाय। फिर पूर्ववत् कल्पित शिवतीर्थमें जाकर अघमर्षण-मन्त्रसे जलपूर्वक स्नान करे। फिर विद्वान् पुरुष दक्षाभिषेक (हाथोंकी शुद्धि) करके पूजागृहमें प्रवेश करे। मूलमन्त्रसे नाभिपीठपर कमलासनका ध्यान (चिन्तन) करे। मूलसे ही पूरक, कुम्भक तथा रेचक प्राणायाम करे ॥ १२-१३ ॥

[सुषुम्णा नाड़ीके मार्गसे] जीवात्माको ऊपर ब्रह्मरन्ध्र स्थित सहस्रारचक्रमें ले जाकर परमात्मामें योजित (स्थापित) कर दे। फिर लेकर शिवापवर्त्त्त तक अङ्गुष्ठ परिमाण ध्यान दे, यह 'महारम्भ' है। उसमें स्थित परमात्माके भीतर जीवको ('हंसः सोऽहम्'—इस मन्त्रद्वारा) समाहित करनेके पश्चात् [यह चिन्तन करे कि सम्पूर्ण भूत [illegible] बीजरूप] अपना आसन [illegible] [illegible] चिन्तन [illegible]

---

१ 'शारदातिलक' तथा [illegible] अनुसार पञ्चाक्षर मन्त्रका विनियोग इस प्रकार है—अस्य श्रीशिवपञ्चाक्षरमन्त्रस्य (वामदेव ऋषिः) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

२ मूलमन्त्रसे [illegible] [illegible] शिष्यके सिरपर [illegible] है। वही 'शिखाबन्धनिरोधन' [illegible] शिष्यको [illegible] रक्षित करता है। ([illegible])

१ [illegible] [illegible] [illegible] ([illegible]) [illegible]

स्वाहा कवचाय हुम् । सहस्रोल्काय स्वाहा अस्त्राय फट् ।'[2]—इन मन्त्रोंको क्रमशः पढ़ते हुए हृदय, सिर, शिखा, दोनों भुजा तथा सम्पूर्ण दिग्भागमें न्यास करे ॥ ३½ ॥

कनिष्ठासे लेकर कनिष्ठातक आठ अँगुलियोंके तीनों पर्वोंमें अष्टाक्षर मन्त्रके पृथक्-पृथक् आठ अक्षरोंको 'प्रणव' तथा 'नमः' से सम्पुटित करके बोलते हुए अङ्गुष्ठके अग्रभागसे उनका क्रमशः न्यास करे ।[3] तर्जनीमें, मध्यमासे युक्त अङ्गुष्ठमें, करतलमें तथा पुनः अङ्गुष्ठमें प्रणवका न्यास 'उत्तार' कहलाता है । अतः पूर्वोक्त न्यासके पश्चात् 'बीजोत्तार न्यास' करे । अष्टाक्षर मन्त्रके वर्णोंका रंग यों समझे—आदिके पाँच अक्षर क्रमशः रक्त, गौर, धूम्र, हरित और सुवर्णमय कान्तिवाले हैं तथा अन्तिम तीन वर्ण श्वेत हैं । इस रूपमें इन वर्णोंकी भावना करके इनका क्रमशः न्यास करना चाहिये । न्यासके स्थान हैं—हृदय, मुख, नेत्र, मूर्धा, चरण, तालु, गुह्य तथा हस्त आदि ॥ ४—७ ॥

हाथोंमें और अङ्गोंमें बीजन्यास करके फिर अङ्गन्यास करे ।[4] जैसे अपने शरीरमें न्यास किया जाता है, उसी तरह देवविग्रहमें भी करना चाहिये । किंतु देवशरीरमें करन्यास नहीं किया जाता है । देवविग्रहके हृदयादि अङ्गोंमें विन्यस्त वर्णोंका गन्ध-पुष्पोंद्वारा पूजन करे । देवपीठपर धर्म आदि, अग्नि आदि तथा अधर्म आदिका भी यथास्थान न्यास करे । फिर उसपर कमलका भी न्यास करना चाहिये ॥ ८-९ ॥

पीठपर ही कमलके दल, केसर, किञ्जल्क तथा सूर्यमण्डल, चन्द्रमण्डल तथा अग्निमण्डल—इन तीन मण्डलोंका पृथक्-पृथक् क्रमशः न्यास करे । वहाँ सत्त्व आदि तीन गुणोंका तथा केसरोंमें स्थित विमला आदि शक्तियोंका भी चिन्तन करे । उनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वी, सत्या एवं ईशाना । ये आठ शक्तियाँ आठ दिशाओंमें स्थित हैं और नवीं अनुग्रहा शक्ति मध्यमें विराजमान है । योगपीठकी कल्पना करके उसपर श्रीहरिका आवाहन और पूजन करे ॥ १०-११ ॥

पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, पीताम्बर तथा आभूषण—ये पाँच उपचार हैं । इन सबका मूल (अष्टाक्षर) मन्त्रसे समर्पण किया जाता है । पीठके पूर्व आदि चार दिशाओंमें वासुदेव आदि चार मूर्तियोंका तथा अग्नि आदि कोणोंमें क्रमशः श्री, सरस्वती, रति और शान्तिका पूजन करे ॥ १२-१४ ॥

इसी प्रकार दिशाओंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म तथा विदिशाओं (कोणों) में मुसल, खड्ग, शार्ङ्गधनुष तथा वनमालाकी क्रमशः अर्चना करे ॥ १५ ॥

मण्डलके बाहर गरुडकी पूजा करके भगवान् नारायणके सम्मुख विराजमान विष्वक्सेन तथा सोमेशका मध्यमें और आवरणसे बाहर इन्द्र आदि परिचारकवर्गके इन भगवान्‌का सम्यक् पूजन करनेसे साधकको अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है ॥ १६-१७ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'अष्टाक्षर पूजा-विधि-वर्णन' नामक तीन सौ तीनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३०३ ॥

---

२ इन मन्त्रोंके अन्तमें 'स्वाहा' पद जोड़नेके विषयमें 'त्रैलोक्यमोहन-तन्त्र'का निम्नाङ्कित वचन प्रमाण है—

'कुर्यात्करादिषट्केषु शिखावर्जं तिसृषु ।' 'मन्त्रमहार्णव'में भी ऐसा ही कहा गया है—

'वर्णो [illegible] भवेदन्तेऽग्निवल्लभा ।'

३ 'शारदातिलकतन्त्र'ने भी ऐसा ही कहा है—

कनिष्ठादिकनिष्ठान्तमङ्गुलीनां [illegible] । [illegible] [illegible] न्यसेत् ॥ इति ॥

४ शारदातिलक पटलके [illegible] व्याख्याके अनुसार हाथोंमें सृष्टि, स्थिति एवं संहारके क्रमसे न्यास करना चाहिये । दाहिनी तर्जनीसे लेकर बाम तर्जनीतक मन्त्रके आठ अक्षरोंका न्यास 'सृष्टिन्यास' है । दोनों तर्जनीसे आरम्भ कर [illegible] कनिष्ठातक [illegible] अङ्गुलियोंमें इन आठ अक्षरोंका न्यास 'स्थितिन्यास' है । दाहिनी कनिष्ठासे लेकर वाम कनिष्ठापर्यन्त न्यास 'संहारन्यास' है । 'मुद्राकल्प' [illegible] मूलमें जो [illegible] न्यास कहा है, वही 'अङ्गन्यास' है । इस प्रकार [illegible] करके पुनः [illegible] की विधि शारदातिलककी व्याख्यामें स्पष्ट की गयी है । यथा—'अङ्गन्यास'की विधिमें [illegible] अक्षरोंका अङ्गोंमें क्रमशः न्यास करे [illegible] दो अक्षरोंका [illegible] और [illegible] न्यास करना चाहिये । प्रयोग इस प्रकार है—'ॐ हृदयाय नमः । नं शिरसे स्वाहा । मों शिखायै वषट् । नां कवचाय हुम् । रां नेत्रत्रयाय वौषट् । यं अस्त्राय फट् । णां उदराय नमः । यं पृष्ठाय नमः ।' [illegible] [illegible] वचन भी देखा जाता है ।

[illegible] [illegible] शिरो [illegible] शिखा च [illegible] । [illegible] [illegible] [illegible] नयन [illegible] ॥

[illegible] [illegible] च [illegible] [illegible] [illegible] ॥

तीन सौ चारवाँ अध्याय

पञ्चाक्षर-दीक्षा-विधान, पूजाके मन्त्र

अग्निदेव कहते हैं—मेष (म) सर्गि विष—विसर्ग युक्त मकार (मः) पहले पहलेका अक्षर य और उसके बाद अग्नि—इकार (शि) दीर्घोदक (वा) मरुत् (य)—यह पञ्चाक्षर मन्त्र (नमः शिवाय) शिवस्वरूप तथा शिवप्रदाता है। इसके आदिमें ॐ लगा देनेपर यह षडक्षर मन्त्र हो जाता है। इसका अर्चन (भजन) करके मनुष्य देवत्व आदि उत्तम फलोंको प्राप्त कर लेता है॥ १½॥

ज्ञानस्वरूप परब्रह्म ही परम बुद्धिरूप है। वही सबके हृदयमें शिवरूपसे विराजमान है। वह शक्तिभूत सर्वेश्वर ही ब्रह्मा आदि मूर्तियोंके भेदसे भिन्न-सा प्रतीत होता है। मन्त्रके अक्षर पाँच हैं, भूतगण भी पाँच हैं तथा उनके गन्ध और विषय भी पाँच हैं। प्राण आदि वायु पाँच हैं। ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ भी पाँच-पाँच हैं। ये सब-की सब वस्तुएँ पञ्चाक्षर-ब्रह्मरूप हैं। इसी प्रकार यह सब कुछ अष्टाक्षर मन्त्ररूप भी है॥ २-४॥

दीक्षा-स्थानका मन्त्रोच्चारणपूर्वक पञ्चगव्यसे प्रोक्षण करे। फिर वहाँ समस्त आवश्यक सामग्रीका संग्रह करके विधिपूर्वक शिवकी पूजा करे। तत्पश्चात् मूलमन्त्र, इष्ट मूर्तिसम्बन्धी मन्त्र तथा अङ्गसम्बन्धी मन्त्रोंद्वारा अक्षत छींटते हुए भूतापसारणपूर्वक रक्षात्मक क्रिया सम्पादित करे। फिर दूधमें चरु पकाकर उसके तीन भाग करे। उनमेंसे एक भाग तो इष्टदेवताको निवेदित कर दे, दूसरे भागकी आहुति दे और तीसरा शिष्यसहित स्वयं ग्रहण करे। फिर आचमन एवं सकलीकरण करके आचार्य शिष्यके हृदय मन्त्रसे अभिमन्त्रित एक दन्तधावन दे, जो दूधवाले वृक्ष आदिका काष्ठ हो। उससे दाँतोंका धावन करके, उसे चीरकर उसके द्वारा जीभ साफ करनेके बाद धोकर पृथ्वीपर फेंक दे॥ ५-८॥

यदि पूर्वदिशामें फेंकनेपर वह दन्तकाष्ठ उत्तर या पश्चिम दिशाकी ओर जाकर गिरे तो शुभ होता है, अन्यथा अशुभ होता है। पुनः अपने सम्मुख आये हुए शिष्यको शिखा मन्त्रके द्वारा रक्षित करके ज्ञानी गुरु वेदीपर उसके साथ कुशके बिछावनपर सो जाय। शिष्य सोते समय रातमें जो स्वप्न देखे, उसे प्रातःकाल अपने गुरुको सुनावे॥ ९-१०॥

यदि स्वप्न शुभ एवं सिद्धिसूचक हुए तो उनसे मन्त्र तथा इष्टदेवके प्रति भक्ति बढ़ती है। तत्पश्चात् पुनः मण्डलार्चन करना चाहिये। 'सर्वतोभद्र' आदि मण्डल पहले बताये गये हैं। उनमेंसे किसी एकका पूजन करना चाहिये। पूजित हुआ मण्डल सम्पूर्ण सिद्धियोंका दाता है॥ ११॥

पहले स्नान और आचमन करके मन्त्रोच्चारणपूर्वक देहमें मिट्टी लगाये। फिर पूर्ववत् वर्णित शिवतीर्थमें साधक अघमर्षण-मन्त्रसे जलपूर्वक स्नान करे। फिर विद्वान् पुरुष हस्ताभिषेक (हाथोंकी शुद्धि) करके पूजागृहमें प्रवेश करे। मूलमन्त्रसे आसनपर कमलासनका ध्यान (चिन्तन) करे। मूलसे ही पूरक, कुम्भक तथा रेचक प्राणायाम करे॥ १२-१३॥

[सुषुम्णा नाडीके मार्गसे] जीवात्माको ऊपर ब्रह्मरन्ध्र स्थित सहस्रारचक्रमें ले जाकर परमात्मामें स्थापित (समन्वित) कर दे। सिरसे लेकर शिखापर्यन्त जो द्वादश अङ्गुल विस्तृत स्थान है, वही 'ब्रह्मरन्ध्र' है। उसीमें शिव परमात्माके भीतर जीवको (हंस सोऽहम्—इस मन्त्रद्वारा) संयोजित करनेके पश्चात् [यह चिन्तन करे कि सम्पूर्ण भूतोंके तत्त्व बीजरूप] अपने अपने कारणमें [illegible] । [illegible]

१ [illegible] मन्त्रके विनियोग इस प्रकार है—अस्य [illegible] ([illegible]) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।

२ मूलमन्त्रसे [illegible] है। [illegible] ([illegible])

३ [illegible]

अभय एवं वरद मुद्राएँ धारण करते हैं, जिनके पाँच मुख और प्रत्येक मुखके साथ तीन-तीन नेत्र हैं, उन भगवान् शिवका मैं ध्यान एवं आवाहन करता हूँ।'

इसके बाद कमलदलोंमें तत्पुरुषादि पञ्चमूर्तियोंकी स्थापना करे। यथा—न तत्पुरुषाय नमः (पूर्वे)। म अघोराय नमः (दक्षिणे)। शि सद्योजाताय नमः (पश्चिमे)। वा वामदेवाय नमः (उत्तरे)। य ईशानाय नमः (ईशाने)।

तत्पुरुष चतुर्मुख हैं। उनका वर्ण श्वेत है। उनका स्थान कमलके पूर्ववर्ती दलमें है। अघोरके आठ भुजाएँ हैं और उनकी अङ्गकान्ति असित (श्याम) है। इनका स्थान दक्षिणदलमें है। सद्योजातके चार मुख और चार ही भुजाएँ हैं। उनका पीत वर्ण है और स्थान पश्चिमदलमें है। वामदेव मिथुन स्त्री (देवी पार्वती) के साथ निरूपित होता है। उनके भी मुख तथा भुजाएँ चार-चार ही हैं। कान्ति अरुण है। इनका स्थान उत्तरवर्ती कमलदलमें है। ईशानके पाँच मुख हैं। वे ईशान-दलमें स्थित हैं। उनका वर्ण गौर है तथा वे सब कुछ देनेवाले हैं॥ २१-२६॥

तत्पश्चात् इष्टदेवके अङ्गोंका यथोचित पूजन करे[10]। फिर अनन्त, सूक्ष्म, सिद्धेश्वर (अथवा शिवोत्तम) और एकनेत्रका पूर्वादि दिशाओंमें (नाममन्त्रों) पूजन करे। एकरुद्र, त्रिनेत्र, श्रीकण्ठ तथा शिखण्डीका ईशान आदि कोणोंमें पूजन करे। ये सब-के-सब विद्येश्वर हैं और कमल इनका आसन है। इनकी अङ्गकान्ति क्रमशः श्वेत, पीत, सित, रक्त, धूम्र, रक्त, अरुण और नील है। ये सभी चतुर्भुज हैं और चार हाथोंमें शूल, वज्र, बाण और धनुष लिये रहते हैं। इनके मुख भी चार-चार ही हैं। इसके बाद तृतीय अष्टदल-कमलमें उत्तरादि दलोंमें प्रदक्षिणक्रमसे उमा, चण्डेश, नन्दीश्वर, महाकाल, गणेश, वृषभ, भृङ्गिरिटि तथा स्कन्दका पूजन करे॥ २७—३०॥

तत्पश्चात् पूर्वादि दिशाओंमें चतुरस्र रेखापर इन्द्रादि दिक्पालों तथा उनके अस्त्र—वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, ध्वज, गदा, शूल, चक्र और पद्मका पूजन करे[11]। इस प्रकार छः आवरणोंसहित इष्टदेवताकी पूजा करके गुरु अधिवासित शिष्यको पञ्चगव्यपान कराये। फिर आचमन कर लेनेपर उसका प्राशन करे। इसके बाद नेत्रान्त अर्थात् तन ग्रह वन्हकी पत्नीसे नेत्र-मन्त्र (वौषट्) का उच्चारण करते हुए गुरु शिष्यके नेत्रोंको बाँध दे। फिर उस शिष्यको मण्डपके दक्षिणद्वारमें प्रवेश कराये। वहाँ आसन आदि या कुशपर बैठे हुए शिष्यका गुरु शोधन करे। पूर्वोक्त रीतिसे शरीर आदि पाञ्चभौतिक तत्त्वोंका क्रमशः संहार करके शिष्यका परमात्मामें लय किया जाय। फिर सृष्टिमार्गसे दैविक शिष्यका पुनरुत्पादन करे। इसके बाद उस शिष्यके दिव्य शरीरमें न्यास करके उसे प्रदक्षिणक्रमसे पश्चिमद्वारपर लाकर उसके द्वारा पुष्पाञ्जलिका क्षेपण कराये। जिस देवताके ऊपर वे फूल गिरें, उसके नामको आदिमें रखते हुए शिष्यके नामका निर्देश करे। तत्पश्चात् (नेत्रका बन्धन खोलकर) यज्ञभूमिके पार्श्वभागमें सुन्दर नाभि और मेखलासे युक्त कुण्डमें शिवाग्निको प्रकट कराकर, स्वयं उसका पूजन करके, फिर शिष्यसे भी उसकी अर्चना कराये। फिर ध्यान द्वारा आत्मसदृश शिष्यको संहारक्रमसे अपनेमें लीन करके पुनः उसका सृष्टिक्रमसे उत्पादन करे। तदनन्तर उसके हाथमें अभिमन्त्रित कुश दे और हृदयादि मन्त्रोंद्वारा पृथिवी आदि तत्त्वोंके लिये आहुति प्रदान करे॥ ३१-३८॥

१० उनके अङ्ग-पूजनका क्रम यों है—'सिद्धान्तशेखर'के अनुसार—ॐ हृदयाय नमः (ईशान कोणमें)। मं शिरसे स्वाहा (आग्नेयकोणे)। भं शिखायै वषट् (नैर्ऋत्ये)। शिं कवचाय हुम् (वायव्ये)। वां नेत्रत्रयाय वौषट् (मध्ये)। यं अस्त्राय फट् (चारों दिशाओंमें)। (सिद्धान्तशेखर)

११ 'सिद्धान्तशेखर'में पूजनके मन्त्र इस प्रकार दिये गये हैं—देवाग्रभागमारभ्य ॐ इन्द्राय सुराधिपतये पीतवर्णाय वज्रहस्ताय ऐरावतवाहनाय नमः। रं अग्नये तेजोऽधिपतये रक्तवर्णाय शक्तिहस्ताय मेषवाहनाय नमः। टं यमाय प्रेताधिपतये कृष्णवर्णाय दण्डहस्ताय महिषवाहनाय नमः। क्षं नैर्ऋतये रक्षोऽधिपतये धूम्रवर्णाय खड्गहस्ताय प्रेतवाहनाय नमः। वं वरुणाय जलाधिपतये शुक्लवर्णाय पाशहस्ताय मकरवाहनाय नमः। यं वायवे प्राणाधिपतये धूम्रवर्णाय अङ्कुशहस्ताय मृगवाहनाय नमः। सों सोमाय नक्षत्राधिपतये धवलवर्णाय गदाहस्ताय अश्ववाहनाय नमः। हों ईशानाय विद्याधिपतये स्फटिकवर्णाय शूलहस्ताय वृषभवाहनाय नमः। इति सम्पूज्य इन्द्रेशानयोर्मध्ये—आं ब्रह्मणे लोकाधिपतये रक्तवर्णाय पद्महस्ताय हंसवाहनाय नमः। निर्ऋतिवरुणयोर्मध्ये—ह्रीं अनन्ताय नागाधिपतये गौरवर्णाय चक्रहस्ताय गरुडवाहनाय नमः। इति सम्पूज्य दिक्पालेभ्यः—वज्राय नमः। शक्तये। दण्डाय। खड्गाय। पाशाय। ध्वजाय। गदायै। त्रिशूलाय। चक्राय। पद्माय। इस प्रकार इन्द्रादि लोकपालोंका आयुधसहित दिक्पालोंके निकटवर्ती भागमें पूजन करना चाहिये।

पृथ्वी, जल, तेज और वायु—इनमेंसे प्रत्येकके लिये इनके नाम मन्त्रसे सौ-सौ आहुतियाँ देकर आकाशतत्त्वके लिये मूलमन्त्र (ॐ नमः शिवाय) से सौ आहुतियाँ दे। इस प्रकार हवन करके उसकी पूर्णाहुति करे। फिर अस्त्र-मन्त्र (फट्) का उच्चारण करके आठ आहुतियाँ दे। तत्पश्चात् विशेष शुद्धिके लिये प्रायश्चित्त (होम या गोदान) करे। अभिमन्त्रित कलशका पूजन कर पीठस्थित शिष्यका अभिषेक करे। फिर गुरु शिष्यको समयाचार सिखावे। शिष्य मुद्रा आदिके द्वारा अपने गुरुका पूजन करे। इस प्रकार यहाँ 'शिवपञ्चाक्षर' मन्त्रकी दीक्षा बतायी गयी। इसी तरह विष्णु आदि देवताओंके मन्त्रोंकी भी दीक्षा दी जाती है ॥ १९—४१ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'पञ्चाक्षरमन्त्रकी दीक्षाके विधानका वर्णन' नामक तीन सौ चारवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३०४ ॥

तीन सौ पाँचवाँ अध्याय

पचपन विष्णुनाम

अग्निदेव कहते हैं—मुने ! जो मनुष्य भगवान् विष्णुके निम्नाङ्कित पचपन नामोंका जप करता है, वह मन्त्रजप आदिके फलका भागी होता है तथा तीर्थोंमें पूजनादिके अक्षय पुण्यको प्राप्त करता है। पुष्करमें पुण्डरीकाक्ष, गयामें गदाधर, चित्रकूटमें राघव, प्रभासमें दैत्यसूदन, जयन्तीमें जय, हस्तिनापुरमें जयन्त, वर्धमानमें वाराह, काश्मीरमें चक्रपाणि, कुब्जाम्र (या कुब्जाम्रक) में जनार्दन, मथुरामें केशवदेव, कुब्जाम्रकमें हृषीकेश, गङ्गाद्वारमें जटाधर, शालग्राममें महायोग, गोवर्धनगिरिपर हरि, पिण्डारकमें चतुर्बाहु, शङ्खोद्धारमें शङ्खी, कुरुक्षेत्रमें वामन, यमुनामें त्रिविक्रम, शोणतीर्थमें विश्वेश्वर, पूर्वसागरमें कपिल, महासागरमें विष्णु, गङ्गासागर-सङ्गममें वनमाल, किष्किन्धामें रैवतकदेव, काशीतटमें महायोग, विरजामें रिपुञ्जय, विशाखयूपमें अजित, नेपालमें लोकभावन, द्वारकामें कृष्ण, मन्दराचलमें मधुसूदन, लोकाकुलमें रिपुहर, शालग्राममें हरिका स्मरण करे ॥ १—९ ॥

पुरुषवटमें पुरुष, विमलतीर्थमें जगत्प्रभु, सैन्धवारण्यमें अनन्त, दण्डकारण्यमें शार्ङ्गधारी, उत्पलावर्तकमें शौरि, नर्मदामें श्रीपति, रैवतकगिरिपर दामोदर, नन्दामें जलशायी, सिन्धुसागरमें गोपीश्वर, माहेन्द्रतीर्थमें अच्युत, सह्यगिरिपर देवेश्वर, मागधवनमें वैकुण्ठ, विन्ध्यगिरिपर सर्वपापहारी, औड्रमें पुरुषोत्तम और हृदयमें आत्मा विराजमान हैं। ये अपने नामका जप करनेवाले साधकोंको भोग एवं मोक्ष देनेवाले हैं, ऐसा जानो ॥ १०—१३ ॥

प्रत्येक वटवृक्षपर कुबेरका, प्रत्येक चौराहेपर शिवका, प्रत्येक पर्वतपर रामका तथा सर्वत्र मधुसूदनका स्मरण करे। धरती और आकाशमें नरका, वसिष्ठतीर्थमें गरुडध्वजका तथा सर्वत्र भगवान् वासुदेवका स्मरण करनेवाला पुरुष भोग एवं मोक्षका भागी होता है। भगवान् विष्णुके इन नामोंका जप करके मनुष्य सब कुछ पा सकता है। उपर्युक्त क्षेत्रोंमें जो जप, श्राद्ध, दान और तर्पण किया जाता है, वह सब कोटिगुना हो जाता है। जिसकी वहाँ मृत्यु होती है, वह ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। जो इस प्रसंगको पढ़ेगा अथवा सुनेगा, वह शुद्ध होकर स्वर्ग (वैकुण्ठधाम) को प्राप्त होगा* ॥ १४-१७ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'विष्णुके पचपन नामविषयक' तीन सौ पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३०५ ॥

---

* अग्निरुवाच—

जपन् हि पञ्चपञ्चाशद् विष्णुनामानि यो नरः । मन्त्रजप्यादिफलभाक् तीर्थेष्वर्चादि चाक्षयम् ॥
पुष्करे पुण्डरीकाक्षं गयायां च गदाधरम् । राघवं चित्रकूटे तु प्रभासे दैत्यसूदनम् ॥
जयं जयन्त्यां तद्वच्च जयन्तं हस्तिनापुरे । वाराहं वर्धमाने च काश्मीरे चक्रपाणिनम् ॥
जनार्दनं च कुब्जाम्रे मथुरायां च केशवम् । कुब्जाम्रके हृषीकेशं गङ्गाद्वारे जटाधरम् ॥
शालग्रामे महायोगं हरिं गोवर्धनाचले । पिण्डारके चतुर्बाहुं शङ्खोद्धारे च शङ्खिनम् ॥

तीन सौ छठा अध्याय

श्रीनरसिंह आदिके मन्त्र

अग्निदेव कहते हैं—मुने! स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चाटन, उत्सादन, भ्रामण, मारण तथा व्याधि—ये 'क्षुद्र' संज्ञक अभिचारिक कर्म हैं। इनसे छुटकारा कैसे प्राप्त हो? यह बात बताऊँगा; सुनो—॥ १ ॥

'ॐ नमो भगवते उन्मत्तरुद्राय भ्रम भ्रम भ्रामय भ्रामय अमुकं विभ्रासय विभ्रासय उद्भ्रामय उद्भ्रामय रुद्र रौद्रेण रूपेण हुं फट् स्वाहा'[1] ॥ २ ॥

श्मशान-भूमिमें रातको इस मन्त्रका तीन लाख जप करे। फिर चिताकी आगमें धतूरेकी समिधाओंद्वारा हवन करे। इस प्रयोगसे शत्रु सदा भ्रान्त रहता—चक्करमें पड़ा रहता है। गुनहरे गेरूसे शत्रुकी प्रतिमा बनाकर उक्त मन्त्रका जप करे। फिर मन्त्रजपसे अभिमन्त्रित की हुई सोनेकी सूइयोंसे उस प्रतिमाके कण्ठ अथवा हृदयको बींधे। इस प्रयोगसे शत्रुकी मृत्यु हो जाती है। गधेका बाल (अथवा खराधा—मयूरशिखा नामक ओषधिके पत्ते), चिताका भस्म, ब्रह्मदण्डी (ब्रह्मदारु या तुलसी लकड़ी) तथा मर्कटी (करञ्जभेद)—इन सबको जलाकर भस्म (चूर्ण) बना ले। उस भस्म या चूर्णको उक्त मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके उत्सादनका प्रयोग करनेवाला पुरुष शत्रुके घरपर अथवा उसके मस्तकपर फेंक दे[2] ॥ ३–६ ॥

भृगु (स) आकाश (ह), दीप्त (दीर्घ आकारयुक्त) रेफसहित भृगु (स) अर्थात् (सहस्रा), फिर र, वर्म (हुम्) और फट् इस प्रकार सब मिलकर मन्त्र बना—'सहस्रार हुं फट्।' इसका अङ्गन्यास इस प्रकार है—'आचक्राय स्वाहा, हृदयाय नमः। विचक्राय स्वाहा, शिरसे स्वाहा।

वामनं च कुरुक्षेत्रे यमुनायां त्रिविक्रमम्। विश्वेश्वरं तथा श्रोणे कपिलं पूर्वसागरे॥
विष्णुं महोदधौ विद्याद् गङ्गासागरसङ्गमे। वनमालं च किष्किन्ध्यां देवं रैवतकं विदुः॥
काशीतटे महायोगं विरजायां रिपुञ्जयम्। विशाखयूपे ह्यजितं नेपाले लोकभावनम्॥
द्वारकायां विद्धि कृष्णं मन्दरे मधुसूदनम्। लोकाकुले रिपुहरं शालग्रामे हरिं स्मरेत्॥
पुरुषं पूरुषवटे विमले च जगत्प्रभुम्। अनन्तं सैन्धवारण्ये दण्डके शार्ङ्गधारिणम्॥
उत्पलावर्तके शौरिं नर्मदायां श्रियः पतिम्। दामोदरं रैवतके नन्दायां जलशायिनम्॥
गोपीश्वरं च सिन्ध्वब्धौ माहेन्द्रे चाच्युतं विदुः। सह्याद्रौ देवदेवेशं वैकुण्ठं मागधे वने॥
सर्वपापहरं विन्ध्ये औण्ड्रे तु पुरुषोत्तमम्। आत्मानं हृदये विद्धि जपतां भुक्तिमुक्तिदम्॥
वटे वटे वैश्रवणं चत्वरे चत्वरे शिवम्। पर्वते पर्वते रामं सर्वत्र मधुसूदनम्॥
नरं भूमौ तथा व्योम्नि वसिष्ठे गरुडध्वजम्। वासुदेवं च सर्वत्र संस्मरन् भुक्तिमुक्तिभाक्॥
नामान्येतानि विष्णोश्च जप्त्वा सर्वमवाप्नुयात्। क्षेत्रेष्वेतेषु यच्छ्राद्धं दानं जप्यं च तर्पणम्॥
तत्सर्वं कोटिगुणितं मृतो ब्रह्ममयो भवेत्। यः पठेच्छृणुयाद्वापि निर्मलः स्वर्गमाप्नुयात्॥

(अग्निपु० ३०५। ?–१०)

१ 'मन्त्रमहार्णव-समुच्चय' १० वें पटल श्लोक २० में भी इस मन्त्रका यही रूप है। इस मन्त्रका षडङ्गन्यास इस प्रकार करना चाहिये— ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः। उन्मत्तरुद्राय शिरसे स्वाहा। भ्रम भ्रम भ्रामय भ्रामय शिखायै वषट्। अमुकं विभ्रासय विभ्रासय कवचाय हुम्। उद्भ्रामयोद्भ्रामय नेत्रत्रयाय वौषट्। रुद्र रौद्रेण रूपेण हुं फट् स्वाहा अस्त्राय फट्।

२ 'मन्त्रमहार्णव-समुच्चय'में इस श्लोकका पाठ इस प्रकार मिलता है—

[illegible] । [illegible] ॥
[illegible] । [illegible] ॥

(१० पटल श्लोक [illegible])

[illegible]

विजयके लिये राजा आग्निपर दुर्गाका पूजन करे ॥२७-२९॥ ॐ नमो भगवति ज्वालामालिनि गृध्रगणपरिवृते धराधररक्षिणि स्वाहा ।'—युद्धके निमित्त इस मन्त्रका जप करे। इससे योद्धा शत्रुओंपर विजय प्राप्त करता है ॥ ३०-३१ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'दुर्गा आदिकी पूजाका वर्णन' नामक तीन सौ आठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३०८ ॥

तीन सौ नवाँ अध्याय

त्वरिता-पूजा

अग्निदेव कहते हैं—मुने ! त्वरिता विद्याका ज्ञान भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है, अतः अब उसीका वर्णन करूँगा । पहले 'ॐ आधारशक्त्यै नमः ।'—इस मन्त्रसे आधारशक्तिका स्मरण और वन्दन करे । फिर महासिंहस्वरूप सिंहासनकी 'ॐ ह्रीं पुरु पुरु महासिंहाय नमः ।'—इस मन्त्रसे और आसनस्वरूप कमलकी 'पद्माय नमः ।'—इस मन्त्रसे पूजा करे। तदनन्तर मूलमन्त्रका उच्चारण करके त्वरितादेवीकी पूजा करे । यथा—'ॐ ह्रीं हुं खे च छे क्षः स्त्री हूं क्षें ह्रीं फट्[2] त्वरितायै नमः ।' इसका अङ्गन्यास इस प्रकार है—'खे च हृदयाय नमः । च छे शिरसे नमः (शिरसे स्वाहा) । छे क्षः शिखायै नमः (शिखायै वषट्) । क्षः स्त्री कवचाय नमः (कवचाय हुम्) । स्त्री हूं नेत्राय (नेत्रत्रयाय) नमः (वौषट्) । हूं क्षें अस्त्राय नमः (अस्त्राय फट्) ॥ १२ ॥

[इसी प्रकार करन्यास करके निम्नाङ्कित गायत्रीका जप करे—]

ॐ त्वरिताविद्यां विद्महे । तूर्णविद्यां च धीमहि । तन्नो देवी प्रचोदयात् ।'—यह 'त्वरिता-गायत्री मन्त्र' है।

तदनन्तर पीठगत कमल-कर्णिकामें केसरोंमें पूर्वादि क्रमसे अङ्ग-देवताओंका पूजन करे । यथा—

'खे च हृदयाय नमः (पूर्वे) । च छे शिरसे नमः (अग्निकोणे) । छे क्षः शिखायै नमः (दक्षिणे) । क्षः स्त्री कवचाय नमः (नैर्ऋत्ये) । स्त्री हूं नेत्रत्रयाय नमः (पश्चिमे) । हूं क्षें अस्त्राय नमः (वायव्ये) ।' तत्पश्चात् उत्तरदिशामें 'श्रीप्रणीतायै नमः '—इस मन्त्रसे श्रीप्रणीताका तथा

---

[1] 'क्ष्रुं हुं हं यमरदद पुरु पुरु स्फि स्फि गर्ज गर्ज हं हुं क्षां पद्मासनाय नमः ।'—यह पीठमन्त्र है । इससे देवीको आसन देना और आसनकी पूजा करनी चाहिये । (शा० ति० १० पटल)

[2] त्वरिता-मन्त्रका विनियोग शारदातिलक दशमपटलमें इस प्रकार बताया गया है—'ॐ अस्य श्रीत्वरिताद्वादशाक्षर मन्त्रस्यार्जुनऋषिर्विराट् छन्दः त्वरिता देवता भगवती बीजं (केषां चिन्मते हुं बीजम्) ह्रीं शक्तिः (क्षें कीलकम्) समस्तपुरुषार्थ फलप्राप्तये जपे विनियोगः ।' श्रीविद्यार्णवमें एक जगह 'ईश्वरो' और दूसरी जगह 'सौरि'को ऋषि कहा है । वहाँ हुं शक्ति ह्रीं बीज और क्षें कीलक बताया है ।

ध्यान

श्यामां बर्हिकलापशेखरयुतामाबद्धपर्णांशुकां

गुञ्जाहारलसत्पयोधरभरामष्टाहिपान् बिभ्रतीम् ।

ताटङ्काङ्गदमेखलागुणरणन्मञ्जीरतां प्रापितान्

वैरातीं वरदाभयोद्यतकरां देवीं त्रिनेत्रां भजे ॥

[भगवान् शङ्कर और भगवती पार्वती अर्जुनपर कृपा करनेके लिये किरात और किरातीके वेषमें प्रकट हुए थे, उस रूपमें देवी पार्वती बहुत शीघ्र भक्तोंका मनोरथ पूर्ण करती थीं करनेके लिये त्वरायुक्त (उतावली) रहती हैं इसलिये इन्हें 'त्वरिता'की संज्ञा दी गयी है । उन्हींका ध्यान उपर्युक्त श्लोकमें किया गया है । उसका अर्थ यों है—]

मैं किरातीके वेषमें प्रकट हुई त्रिनेत्रधारिणी देवी पार्वतीका भजन (चिन्तन) करता हूँ । उनकी अङ्गकान्ति श्यामा है तथा अवस्थामें भी वे श्यामा (सोलह वर्षकी तरुणी) हैं । मोर पंखका मुकुट एवं वलय धारण करती हैं । कोमल पत्तोंको जोड़कर बनाये हुए वस्त्रसे उनका कटिप्रदेश सुशोभित है । उनके पीन पयोधर गुञ्जाओंके हारसे विलसित हैं । आठ नागेश्वरोंको वे आभूषणोंके रूपमें धारण करती हैं; उनमेंसे दो कानोंके ताटङ्क बने हैं, दो भुजाओंमें बाजूबन्दका आवश्यकता पूरा करते हैं, दो कमरमें करधनीकी लड़ोंका काम देते हैं और दो पैरोंके रुनझुनाते मञ्जीर बन गये हैं । इस अनुपम वन्यभूषासे विभूषित त्वरितादेवीके उठे हुए हाथ वरद और अभयकी मुद्रासे मनोरम प्रतीत होते हैं ।

ऋष्यादिन्यास—'अर्जुनाय (सौरये ईशाय वा) ऋषये नमः, शिरसि । विराट्छन्दसे नमः, मुखे । त्वरितानित्यादेवतायै नमः, हृदि । ॐ बीजाय नमः, गुह्ये । ह्रीं (अथवा हुम्) शक्तये नमः पादयोः । क्षें कीलकाय नमः नाभौ ।

अशोक-सुमनोंसे होम किया जाय तो पुत्रकी और पाटलासे होम करनेपर उत्तम अन्नकी प्राप्ति होती है। आम्रफलकी आहुतिसे आयु, तिलके हवनसे लक्ष्मी, बिल्वके होमसे श्री तथा चम्पाके फूलोंके हवनसे धनकी प्राप्ति होती है। मधुपर्क दूर्वा और बेलके फलोंसे एक साथ होम करनेपर सर्वज्ञता-शक्ति सुलभ होती है। त्वरितामन्त्रके तीन लाख जप, होम, ध्यान तथा पूजनसे समस्त अभिलषित वस्तुओंकी प्राप्ति होती है। मण्डलमें त्वरितादेवीकी अर्चना करके त्वरिता-गायत्रीसे पचीस आहुतियाँ दे। फिर मूलमन्त्रसे पल्लवोंकी तीन सौ आहुतियाँ देकर दीक्षा ग्रहण करे। दीक्षासे पूर्व पञ्चगव्य-पान कर ले। दीक्षितावस्थामें सदा चरु (हविष्य) का भोजन करना चाहिये ॥ १८-२० ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'त्वरितापूजा-कथन' नामक तीन सौ नवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३०९ ॥

तीन सौ दसवाँ अध्याय

अपरत्वरिता-मन्त्र एवं मुद्रा आदिका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—मुने! अब मैं दूसरी 'अपरा विद्या' का वर्णन करता हूँ, जो भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली है। धूलिसे निर्मित, वज्र चिह्नसे आवृत और चौकोर भूपुरमण्डलमें त्वरितादेवीकी पूजा करे। उस मण्डलके भीतर योगपीठपर कमलका निर्माण भी होना चाहिये। मण्डलके पूर्वादि दिशाओं तथा कोणोंमें कुल मिलाकर आठ वज्र अङ्कित होंगे। मण्डल के भीतर वीथी, द्वार, शोभा तथा उपशोभाकी भी रचना करे। उसके भीतर उपासक मनुष्य त्वरितादेवीका चिन्तन करे। उनके अठारह भुजाएँ हैं। उनकी बायीं जङ्घा तो सिंहकी पीठपर प्रतिष्ठित है और दाहिनी जङ्घा उससे दुगुनी बड़ी आकृतिमें पीढ़े या गद्दाऊँपर अवलम्बित है। वे नागमय आभूषणोंसे विभूषित हैं। दायें भागके हाथोंमें क्रमशः वज्र, दण्ड, खड्ग, चक्र, गदा, शूल, बाण, शक्ति तथा वरद मुद्रा धारण करती हैं और वामभागके हाथोंमें क्रमशः धनुष, पाश, शर, घण्टा, तर्जनी, शङ्ख, अङ्कुश, अभयमुद्रा तथा वज्र नामक आयुध लिये रहती हैं ॥ १-५ ॥

त्वरितादेवीके पूजनसे शत्रुका नाश होता है। त्वरिताका आराधक राज्यको भी अनायास ही जीत लेता है। वह दीर्घायु तथा राष्ट्रकी विभूति बन जाता है। दिव्य और अदिव्य (दैविक और लौकिक) सभी सिद्धियाँ उसके अधीन हो जाती हैं। (त्वरिताको 'तोतला त्वरिता' भी कहते हैं। इस नामकी व्युत्पत्ति इस प्रकार समझनी चाहिये—) 'तल' शब्दसे सातों पाताल, काल, अग्नि और सम्पूर्ण भुवन गृहीत होते हैं। ॐकारसे परमेश्वरसे लेकर जितना भी ब्रह्माण्ड है, उन सबका प्रतिपादन होता है। अपने मन्त्रके आदि अक्षर ॐकारसे देवी तलपर्यन्त 'तोय'का त्वरित भ्रामण (प्रक्षेपण) करती हैं, इसलिये वे 'तोतला त्वरिता' कही गयी हैं ॥ ६-७½ ॥

अब मैं त्वरिता-मन्त्रका प्रस्तुत करनेका प्रकार (अर्थात् मन्त्रोद्धार) बता रहा हूँ। भूतलपर स्वरवर्ग लिखे। (स्वरवर्गमें सोलह अक्षर हैं—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः। इसके बाद व्यञ्जन वर्णोंको भी यथाक्रमसे लिखे—) कवर्गके लिये साङ्केतिक नाम तालुवर्ग है। स्वरवर्ग पहला है और तालुवर्ग दूसरा। तीसरा जिह्वा तालुकवर्ग है। (इसमें चवर्गके अक्षर संयोजित हैं।) चतुर्थ वर्ग तालु-जिह्वाग्र कहा गया है। (इसमें टवर्गके अक्षर हैं।) पञ्चम जिह्वादन्तक वर्ग है। (इसमें तवर्गके अक्षर हैं।) षष्ठ वर्गका नाम है—ओष्ठपुट-सम्पन्न। (इसमें पवर्गके अक्षर हैं।) सातवाँ मिश्रवर्ग है। (इसमें अन्तःस्थ—य, र, ल, वका समावेश है।) आठवाँ वर्ग ऊष्मा या शवर्ग है। इन्हीं वर्गोंके अक्षरोंसे मन्त्रका उद्धार करे ॥ ८-१० ॥

छठे स्वर ऊकारपर आरूढ ऊष्माका द्वितीय अक्षर हकार बिन्दु (अनुस्वार) से युक्त हो (हूं)। तालुवर्गका द्वितीय अक्षर 'खकार' ग्यारहवें स्वर 'एकार'से युक्त हो (खे)। जिह्वा-तालु-समायोगका केवल प्रथम अक्षर 'चकार' हो, उसके नीचे उसी वर्गका दूसरा अक्षर 'छकार' हो और वह ग्यारहवें स्वर 'एकार'से संयुक्त (च्छे) हो। तालुवर्गका प्रथम अक्षर 'क्' हो, फिर उसके नीचे ऊष्माका द्वितीय अक्षर 'ष्' को देखकर जोड़ दे और उसे सोलहवें स्वर—'अः'से संयुक्त करे (क्षः)। ऊष्माका तीसरा अक्षर 'स्' हो, उसके नीचे जिह्वादन्त-समायोगके प्रथम अक्षर 'तकार'को जोड़े। उसके नीचे मिश्रवर्गका दूसरा अक्षर 'रकार' जोड़े

अब मैं 'प्रणीता' आदि मुद्राओंका वर्णन करूँगा। 'प्रणीता' मुद्राएँ पाँच प्रकारकी मानी गयी हैं—'प्रणीता', 'सबीजा प्रणीता', 'भेदनी', 'कराली' और 'वज्रतुण्डा'। दोनों हाथोंको परस्पर ग्रथित करके बीचमें अँगूठोंको डाल दे और तर्जनीको ऊपर लगाये रक्खे, इसका नाम 'प्रणीता' है। इसे हृदय देशमें लगाये। इसी मुद्रामें कनिष्ठिका अँगुलीको ऊपरकी ओर उठाकर मध्यमें रक्खे तो वह द्विजोंद्वारा 'सबीजा'के नामसे मानी जाती है। यदि तर्जनीके बीचमें अनामिकाको परस्पर संलग्न करके अङ्गुष्ठके अग्रभागको मध्यभागमें रक्खे तो वह 'भेदनी' मुद्रा कही गयी है। उस मुद्राको नाभि देशमें नियद्ध करके अङ्गुष्ठका जल छिड़के। उसीको मन्त्र साधकके हृदयमें योजित करनेपर 'कराली' नामक महामुद्रा होती है। फिर पूर्ववत् ब्रह्मलग्ना ज्येष्ठाको ऊपर उठाये तो यह 'वज्रतुण्डा मुद्रा' होती है। उसको वज्रदेशमें आबद्ध करे। दोनों हाथोंसे मणिबन्ध (कलाई) को बाँधे और तीन तीन अँगुलियोंको फैलाये रक्खे, इसे 'वज्रमुद्रा' कहते हैं। दण्ड, खड्ग, चक्र और गदा आदि मुद्राएँ उनकी आकृतिके अनुसार बतायी गयी हैं। अङ्गुष्ठसे तीन अँगुलियोंको आक्रान्त करे, व तीनों ऊर्ध्वमुख हों तो 'त्रिशूलमुद्रा' होती है। एकमात्र मध्यमा अँगुली ऊपरकी ओर उठी रहे तो 'शक्ति मुद्रा' सम्पादित होती है। बाण, वरद, धनुष, पाश, मार, घण्टा, शङ्ख, अङ्कुश, अभय और पद्म—ये (प्रणीतासे लेकर पद्मतक कुल) अठारह मुद्राएँ कही गयी हैं। ग्रहणी, मोक्षणी, ज्वालिनी, अमृता और अभया—ये पाँच 'प्रणीता' नामवाली मुद्राएँ हैं। इनका पूजन और होममें उपयोग करना चाहिये॥ ३४—३७॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'त्वरितामन्त्र तथा मुद्रा आदिका वर्णन' नामक तीन सौ दसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३१०॥

तीन सौ ग्यारहवाँ अध्याय

त्वरिता-मन्त्रके दीक्षा-ग्रहणकी विधि

अग्निदेव कहते हैं—मुने! अब सिंहासनपर स्थित वज्रसे व्याप्त कमलमें मन्त्र-न्यासपूर्वक दीक्षा आदिका विधान बताऊँगा॥ १॥

'हे हे द्युति वज्रदन्त पुरु पुरु लुलु गज गर्ज हह सिंहासनाय नमः।' यह सिंहासनके पूजनका मन्त्र है।[1] चार रेखा खड़ी और चार रेखा तिरछी या (पड़ी) खींचे। इस प्रकार नौ भागोंमें विभाग करके विद्वान् पुरुष नौ कोष्ठ बनाये। प्रत्येक दिशाके कोष्ठ तो रख ले और कोणवर्ती कोष्ठ मिटा दे। अब बाह्य दिशामें जो कोष्ठ बच जाते हैं, उनके कोणोंतक जो रेखाएँ आयी हैं, उनकी संख्याएँ आठ कही गयी हैं। बाह्य कोष्ठके बाह्य-भागमें ठीक बीचों-बीचमें वज्रका मध्यवर्ती शृङ्ग होता है। बाह्यरेखाके दो भाग करनेपर जो रेखार्द्ध बनता है,

---

ललाटे—ह्रीं ड्रु ह्रीं नमः। कण्ठे—ह्रीं खे ह्रीं नमः। हृदि—ह्रीं च ह्रीं नमः। नाभौ—ह्रीं छे ह्रीं नमः। मूलाधारे—ह्रीं क्ष ह्रीं नमः। ऊरुद्वये—ह्रीं स्त्री ह्रीं नमः। जानुद्वये—ह्रीं हूं ह्रीं नमः। जङ्घाद्वये—ह्रीं क्षे ह्रीं नमः। पादद्वये—ह्रीं फट् ह्रीं नमः। इस प्रकार ह्रीं बीजसे सम्पुटित अक्षरोंका न्यास करके समस्त विद्या (द्वादशाक्षरविद्या) द्वारा व्यापकन्यास करे। तदनन्तर ध्यानादि मानसपूजनान्त कर्म करके स्वर्णादि पट्टपर कुङ्कुम आदिद्वारा पश्चिमादि द्वारोंसे युक्त दो चतुरस्र रेखा बनाकर उसके भीतर दो वृत्त बनाकर उसमें अष्टदलकमल अङ्कित करे। फिर पूर्ववत् आत्मपूजान्त कर्म करके भुवनेश्वरी-पीठकी अर्चनाके बाद मूलविद्यासे मूर्तिनिर्माण कर आवाहनादि पुष्पोपचार अर्पित करे। कर्णिकामें षडङ्ग गुरुपङ्क्तित्रयकी पूजाके बाद बाहरकी वृत्तत्रयान्तरालगत दो वीथियोंमें देवीके अग्रवर्ती दलके अग्रभागमें फट्कारीका बाह्यवीथी—देवीके अग्रभागमें दो किंकराका द्वारपार्श्वमें जया-विजयाका आठ दलोंमें क्रमशः हुंकारी खेचरी चण्डा, छेदिनी क्षेपिणी स्त्रीकारी हुंकारी एवं क्षेमकारीका पूजा करे। फिर पूर्ववत् लोकपालादिकोंकी पूजा करके पूजा समाप्त करे।

[1] पूनासे प्रकाशित 'अग्निपुराण'के प्राचीन और नवीन संस्करणोंमें 'सिंहासन-मन्त्र'का पाठ इस प्रकार मिलता है—'हु हु हेति वज्रदेवि पुरु पुरु छुलु गर्ज गज ह ह सिंहाय नमः।'

मन्त्रके जितने अक्षर हैं, उतने लाख जप करनेसे मनुष्य निधियोंका अधिपति होता है, दुगुना जप करनेपर राज्यकी प्राप्ति होती है, त्रिगुण जप करे तो यक्षिणी सिद्ध हो जाती है, चौगुने जपसे ब्रह्मपद, पाँचगुन जपसे विष्णुपद तथा छ गुने जपसे महासिद्धि सुलभ होती है। मन्त्रके एक लाख जपसे मनुष्य अपने पापोंका नाश कर देता है, दस बार जप करनेसे देहशुद्धि होती है, सौ बारके जपसे तीर्थस्नानका फल होता है। वेदीपर पट या प्रतिमा रखकर उसके समक्ष सौ हजार अथवा दस हजारकी संख्यामें जप करके हवन करना बताया गया है। इस प्रकार विधानपूर्वक जप करके एक लाख हवन करे। तिल, जौ, लावा, धान, गेहूँ, कमल-पुष्प (पाठान्तरके अनुसार आमके फल) तथा श्रीफल (बेल)—इन सबको एकत्र करके इनमें घी मिलावे और उस होम-सामग्रीसे हवन करके व्रत करे। रातमें कवच आदिसे सन्नद्ध हो खड्ग, धनुष तथा बाण आदि लेकर एक वस्त्र धारण करके उपर्युक्त वस्तुओंसे ही देवीकी पूजा करे। वस्त्रका रंग चितकबरा, लाल, पीला, काला अथवा नीला होना चाहिये। मन्त्रवेत्ता विद्वान् दक्षिणदिशामें जाकर मण्डपके द्वारपर दूती मन्त्रसे बलि अर्पित करे। यह बलि द्वार आदिमें अथवा एक वृक्षवाले श्मशानमें भी दी जा सकती है। ऐसा करनेसे साधक राजा हो समस्त कामनाओंका तथा सारी पृथ्वीके राज्यका उपभोग कर सकता है॥ २५—३७॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'त्वरिता-मूलमन्त्रकी दीक्षा आदिका कथन' नामक तीन सौ ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३११॥

तीन सौ बारहवाँ अध्याय

त्वरिता विद्यासे प्राप्त होनेवाली सिद्धियोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—मुने! अब मैं विद्याप्रस्तारका वर्णन करूँगा, जो धर्म, काम आदिकी सिद्धि प्रदान करनेवाला है। नौ कोष्ठोंके विभागमें विद्याभेदकी उपलब्धि होती है। अनुलोम विलोमयोग, समास-व्यासयोग, वर्णाविकर्णयोग, अध-ऊर्ध्व विभागयोग तथा त्रिविक्रयोगसे देवीके द्वारा जिसके शरीरकी सुरक्षा सम्पादित हुई है, वह साधक सिद्धिदायक मन्त्रों तथा बहुल-से निगम प्रस्तावोंको जानता है। शास्त्र शास्त्रमें मन्त्र बताये गये हैं, किंतु वहाँ उनके प्रयोग दुर्लभ हैं। प्रथम गुरु वर्ण ही होता है। उसका पूर्वकालमें वर्णन नहीं हुआ है। वहाँ प्रस्तावमें एकाक्षर, द्व्यक्षर तथा त्र्यक्षर मन्त्र प्रकट हुए। चार चार खड़ी तथा पड़ी रेखाएँ खींचे। इस प्रकार नौ कोष्ठ होते हैं। मध्यकोष्ठसे आरम्भ करके प्रदक्षिणक्रमसे मन्त्रके अक्षरोंका उनमें न्यास करे। तदनन्तर प्रस्ताव-भेदन करे। प्रस्ताव क्रमयोगसे जो प्रस्तारको प्राप्त करता है, उस साधककी मुट्ठीमें सारी सिद्धियाँ आ जाती हैं। सारी त्रिलोकी उसके चरणोंमें झुक जाती है। वह नौ खण्डोंमें विभक्त जम्बूद्वीपकी सम्पूर्ण भूमिपर अधिकार प्राप्त कर लेता है। कपाल (खप्पर) पर अथवा श्मशानके वस्त्र (शवके ऊपरसे उतारे हुए कपड़े) पर सब ओर शिवतत्त्व लिखकर मन्त्रवेत्ता पुरुष बाहर निकले और मध्यभागमें कर्णिकाके ऊपर अभीष्ट व्यक्तिविशेषका भोजपत्रपर नाम लिखकर रख दे। फिर खैरकी लकड़ीसे तैयार किये गये अङ्गारोंद्वारा उस भोजपत्रको तपाकर दोनों पैरोंके नीचे दबा दे। यह प्रयोग एक ही सप्ताहमें चराचर प्राणियोंसहित समस्त त्रिभुवनको भी चरणोंमें ला सकता है। वज्रसम्पुट गर्भसे युक्त द्वादशारचक्रके मध्यमें द्वेष्य व्यक्तिका नाम लिखकर रक्खे। उस नामको 'सदाशिव' मन्त्रसे विदर्भित (कुशोंद्वारा मार्जित) कर दे। उक्त द्वादशारचक्र तथा नाम आदिका उल्लेख हल्दीसे दीवारपर, काष्ठफलकपर अथवा शिलापट्टपर करना चाहिये। ऐसा करनेसे शत्रुके मुख, गमनशक्ति तथा सेनाका भी स्तम्भन (अवरोध) हो जाता है॥ १—१२॥

श्मशानके वस्त्रपर विषमिश्रित रक्तसे षट्कोणचक्रका उल्लेख कर उसके मध्यमें शत्रुका नाम लिखे। फिर उस चक्रको चारों ओर शक्तिबीजसे योजित करके उसपर डंडा रख दे। फिर साधक श्मशानभूमिपर रक्खे हुए उस शत्रुपर शीघ्र दण्डसे प्रहार करे। यह प्रयोग उस शत्रु-राजाके राष्ट्रको खण्डित कर देता है। इसी तरह चक्राकार मण्डल बनाकर उसके मध्यभागमें शत्रुके नामको स्थापित कर दे। चक्रकी धारोंमें शक्तिबीजका न्यास करे। शत्रुका नाम लेकर उसपर भावनाद्वारा उक्त चक्रधारसे प्रहार करे। इससे शत्रुका हरण होता है। इसी प्रकार खड्गके मध्यभागमें गरुडबीजके साथ

—इन पाँच अङ्गोंमेंसे चारकी तो पूर्वादि चार दिशाओंमें और पाँचवेंकी मध्यभागमें पूजा करे ॥ १-४ ॥

तदनन्तर गणजय, गणाधिप, गणनायक, गणेश्वर, वक्रतुण्ड, एकदन्त, उत्कट, लम्बोदर, गजवक्त्र और विकटानन—इन सबकी पद्मदलमें पूजा करे। फिर मध्यभागमें—'हूं विघ्ननाशनाय नमः। महेन्द्राय-धूम्रवर्णाय नमः।'—यों बोलकर विघ्ननाशन एवं धूम्रवर्णकी पूजा करे। फिर बाह्यभागमें विघ्नेशका पूजन करे ॥ ५-६ ॥

अब मैं 'त्रिपुराभैरवी'के पूजनकी विधि बताऊँगा। इसमें आठ भैरवोंका पूजन करना चाहिये। उनके नाम इस प्रकार हैं—असिताङ्गभैरव, रुरुभैरव, चण्डभैरव, क्रोधभैरव, उन्मत्तभैरव, कपालिभैरव, भीषणभैरव तथा संहारभैरव। ब्राह्मी आदि मातृकाएँ भी पूजनीय हैं। (उनके नाम इस प्रकार हैं—ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा तथा महालक्ष्मी)। 'अकार' आदि ह्रस्व स्वरके बीजको आदिमें रखकर भैरवोंकी पूजा करनी चाहिये तथा 'आकार' आदि दीर्घ अक्षरोंके बीजको आदिमें रखकर 'ब्राह्मी' आदि मातृकाओंकी अर्चना करनी चाहिये[2]। अग्नि आदि चार कोणोंमें चार वटुकोंका पूजन कर्तव्य है। समयपुत्र वटुक, योगिनीपुत्र वटुक, सिद्धपुत्र वटुक तथा चौथा कुलपुत्र वटुक—ये चार वटुक हैं। इनके अनन्तर आठ क्षेत्रपाल पूजनीय हैं। इनमें 'हेतुक' क्षेत्रपाल प्रथम हैं और 'त्रिपुरान्त' द्वितीय। तीसरे 'अग्निवेताल' चौथे, 'अग्निजिह्व', पाँचवें 'कराल' तथा छठे 'काललोचन' हैं। सातवें 'एकपाद' तथा आठवें 'भीमाक्ष' कहे गये हैं। (ये सभी क्षेत्रपाल यक्ष हैं।) इन सबका पूजन करके त्रिपुरादेवीके प्रेतरूप पद्मासनकी पूजा करे। यथा—'ऐं क्षैं प्रेतपद्मासनाय नमः। ॐ ऐं ह्रीं हसौः त्रिपुरायै प्रेतपद्मासनसमास्थितायै नमः।'—इस मन्त्रसे प्रेतपद्मासनपर विराजमान त्रिपुराभैरवीकी पूजा[3] करे। उनका ध्यान इस प्रकार है—'त्रिपुरादेवी

गैं कवचाय हुम्। गौं नेत्रत्रयाय वौषट्। गः अस्त्राय फट्। इनमेंसे चार अङ्गोंका तो आराध्यदेवताके चारों दिशाओंमें और नेत्र तथा अस्त्रका मध्यवर्ती ध्यान-देवताके अग्रभागमें पूजन करना चाहिये।

२ 'शारदातिलक'के नवम पटलमें कहा गया है कि आठ मातृकाओंका क्रमशः आठ दलोंमें पूजन करे। मातृकाएँ अपने अपने भैरवके अङ्कमें विराजती हैं। दीर्घाद्या मातरः प्रोक्ता ह्रस्वाद्या भैरवाः स्मृताः।—अर्थात् दीर्घ-स्वरोंको बीजके रूपमें नामके आदिमें लगाकर मातृकाओंकी पूजा करनी चाहिये और ह्रस्व अक्षरोंको आदिमें बीजके रूपमें बोलकर भैरवोंका पूजन होना चाहिये। यहाँ ह्रस्व और दीर्घ अक्षर पारिभाषिक लिये गये हैं। इनका परिचय देते हुए राघवभट्टने 'शा० ति०' की 'पदार्थादर्श' नामक टीकामें लिखा है कि 'अ इ उ ऋ लृ ए ओ अं—ये आठ अक्षर 'ह्रस्व' के नामसे उपयोगमें लाये जाते हैं और आ ई ऊ ॠ ॡ ऐ औ अः—ये आठ अक्षर दीर्घ-स्वरके नामसे। इनके प्रयोगवाक्य 'श्रीविद्यार्णवतन्त्र'में इस प्रकार दिये गये हैं—'आं ब्राह्म्यै नमः। अं असिताङ्गभैरवाय नमः। ईं माहेश्वर्यै नमः। इं रुरुभैरवाय नमः। ऊं कौमार्यै नमः। उं चण्डभैरवाय नमः। ॠं वैष्णव्यै नमः। ऋं क्रोधभैरवाय नमः। ॡं वाराह्यै नमः। लृं उन्मत्तभैरवाय नमः। ऐं इन्द्राण्यै नमः। एं कपालिभैरवाय नमः। औं चामुण्डायै नमः। ओं भीषणभैरवाय नमः। अः महालक्ष्म्यै नमः। अं संहारभैरवाय नमः।' इस प्रकार भैरवके अङ्कमें स्थित मातृकाओंका प्रदक्षिणक्रमसे पूजन करना चाहिये।

३ 'श्रीविद्यार्णवतन्त्र'के २५-वें श्वासमें त्रिपुरादेवीके पूजनका क्रम यों बताया गया है—प्रातःकृत्य और प्राणायाम करके पीठन्यास करे। अन्यत्र बताये हुए क्रमसे आधारशक्ति आदिकी अर्चनाके पश्चात् हृदयकमलके पूर्वादि केसरोंमें इच्छा, ज्ञाना, क्रिया, कामिनी, कामदायिनी, रति, रतिप्रिया और नन्दाका पूजन करे तथा मध्यभागमें मनोन्मनीका। उसके ऊपर 'ऐं परायै अपरायै परापरायै हसौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः।'—इस प्रकार न्यास करके मस्तकपर दक्षिणामूर्ति ऋषिका, मुखमें पङ्क्ति छन्दका, हृदयमें त्रिपुरभैरवी देवताका, गुह्यमें वाग्भव बीजका, चरणोंमें तार्तीय शक्तिका तथा सर्वाङ्गमें कामराज कीलकका न्यास करे। तत्पश्चात् वाग्भवबीज (हसैं नमः) का नाभिसे चरणपर्यन्त, कामबीज (ह सकल रीं नमः) का हृदयसे नाभिपर्यन्त तथा तार्तीय बीज (हसौः) का सिरसे हृदयपर्यन्त न्यास करे। इसी तरह आद्यबीजका दाहिने हाथमें, द्वितीय बीजका बायें हाथमें तथा तृतीय बीजका दोनों हाथोंमें न्यास करे। इसी क्रमसे मस्तक, मूलाधार और हृदयमें उक्त तीनों बीजोंका न्यास करना चाहिये। दायें कान, बायें कान और चिबुकमें भी उक्त तीनों बीजोंका क्रमशः न्यास करे। फिर आगे बताये जानेवाले तीन-तीन अङ्गोंमें क्रमशः तीनों बीजोंका न्यास करे। यह 'नवयोनि'न्यास है। यथा—दायाँ गाल, बायाँ गाल और मुख। दायाँ नेत्र, बायाँ नेत्र और नासिका। दायाँ कंधा, बायाँ कंधा और पेट। दायीं कोहनी, बायीं कोहनी और कुक्षि। दायाँ घुटना, बायाँ घुटना और लिङ्ग। दायाँ पैर, बायाँ पैर तथा गुह्य भाग। दायाँ पार्श्व, बायाँ पार्श्व और हृदय। दायाँ स्तन, बायाँ स्तन और कण्ठ।

षाणतन्त्र' में ये नाम इस प्रकार मिलते हैं—नित्या, भद्रा, समङ्गला, वनचारिणी, सुभगा, दुभगा, मनोन्मनी था रुद्ररूपिणी ।] इनके वामभागमें पाँच दलमें कामदेवों ा पूजन होता है । 'ॐ ह्रीं अनङ्गाय नमः । ॐ ह्रीं स्मराय मः । ॐ ह्रीं मन्मथाय नमः । ॐ ह्रीं माराय नमः । ॐ ह्रीं कामाय नमः ।' ये ही पाँच काम हैं । कामदेवोंके हाथोंमें पाश, अङ्कुश, धनुष और बाणका चिन्तन करे । इनके भी वामभागमें दस दलोंमें क्रमशः रति-विरति, प्रीति-विप्रीति, मति-दुर्मति, धृति-विधृति, तुष्टि-वितुष्टि—इन पाँच कामवल्लभाओंका पूजन करे ॥ २७—३३ ॥

'ॐ छ (ऐं) नित्यक्लिन्ने मदद्रवे ओं औं (स्वाहा) अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ ण त थ द ध न प फ ब भ म य र ल व श ष स ह क्ष ॐ छ (ऐं) नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा' । यह 'नित्यक्लिन्ना विद्या' है ॥ ३४ ॥

सिंहासनपर आधारशक्ति तथा पद्मका पूजन करके उसके दलोंमें हृदय आदि अङ्गोंकी स्थापना एवं पूजन करनेके अनन्तर मध्यकर्णिकामें देवीकी पूजा करनी चाहिये ॥३५॥

गौरीमन्त्र (२)

'ॐ ह्रीं गौरि रुद्रदयिते योगेश्वरि हुं फट् स्वाहा' ॥३६॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'नाना प्रकारके मन्त्रोंका वर्णन' नामक तीन सौ तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥३१३॥

तीन सौ चौदहवाँ अध्याय

त्वरिताके पूजन तथा प्रयोगका विज्ञान

निग्रहयन्त्र

अग्निदेव कहते हैं—मुने ! 'ॐ ह्रीं हूं खे च च्छे क्ष स्त्री हूं क्षे ह्रीं फट् त्वरितायै नमः ।'—इस मन्त्रसे न्यासपूर्वक त्वरितादेवीकी पूजा करे । उनके द्विभुज या अष्टभुज रूपका ध्यान करे । आधारशक्ति तथा अष्टदल कमलका पूजन करे । सिंहासन और उसके ऊपर विराजित त्वरितादेवीकी तथा उनके चारों ओर हृदयादि अङ्गोंकी पूजा करे[१] । पूर्वादि दिशाओंमें हृदयादि अङ्गोंकी पूजा करके मण्डलमें प्रणीता तथा गायत्रीकी पूजा करे । (देवीके अग्रभागके केसरसे लेकर प्रदक्षिणक्रमसे छः केसरोंमें छः अङ्गोंका पूजन करके अवशिष्ट दोमें प्रणीता तथा गायत्रीका पूजन करना चाहिये ।) इसके बाद आठ दलोंमें हुंकारी, खेचरी, चण्डा, छेदिनी, क्षेपिणी, स्त्री, हूंकारी तथा क्षेमंकरीकी पूजा करे । फिर मध्यभागमें देवीके सामने फट्कारीकी अर्चना करे । देवीके सम्मुखवर्ती द्वारके दक्षिण तथा वामपार्श्वमें जया एवं विजयाकी पूजा करके द्वाराग्रभागमें 'किंकराय रक्ष रक्ष त्वरिताज्ञया स्थिरो भव हुं फट् किंकराय नमः ।' इस मन्त्रसे किंकरका पूजन करना चाहिये ॥ १—४ ॥

त्वरिता-मन्त्रसे तिलोंद्वारा होम करनेसे सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंकी प्राप्ति होती है । नामोच्चारणपूर्वक देवीके आभूषण-स्वरूप आठ नागोंकी पूजा करनी चाहिये । यथा—अनन्ताय नमः स्वाहा । कुलिकाय नमः स्वधा । वासुकिराजाय स्वाहा । शङ्खपालाय वौषट् । तक्षकाय वषट् । महापद्माय नमः । कर्कोटनागाय स्वाहा । पद्माय नमः फट्[२] ॥ ५-६½ ॥

---

१ 'सारसंग्रह' तथा 'श्रीविषाणवतन्त्र' आदिमें जो मन्त्रोद्धार किया गया है, उसमें उपर्युक्त द्वादशाक्षर-बीज ही 'त्वरित-विद्याके नामसे प्रसिद्ध होते हैं । अग्निपुराणकी आजकलकी छपी प्रतियोंमें मन्त्रका शुद्ध रूप नहीं रह गया है अतः तन्त्रान्तरसे मिलाकर ही शुद्ध रूपका यहाँ ग्रहण किया गया है । पूजाकी विधि पहले बता चुके हैं अतः यहाँ संकेतमात्र किया गया है । तन्त्रोंमें देवीके द्विभुज अष्टभुज तथा अष्टादशभुज रूप भी वर्णित हुए हैं । यहाँ मूलमें द्विभुज तथा अष्टभुज रूपकी ओर संकेत है । आधारशक्ति आदिका पूजन भी पूर्ववत् समझना चाहिये । सिंहासनका मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ हुं हुं वज्रदेह मुरु मुरु गि गुरु गुरु गज गज हुं हुं क्षां पञ्चाननाय नमः ।' एक-एक अक्षरका उद्धार करके यह मन्त्रस्वरूप निश्चित हुआ है, अतः इसीको शुद्ध मानकर अन्यत्रके विकृत पाठको भी शुद्ध किया जा सकता है । यहाँ कही हुई अधिकांश बातें पिछले तीन सौ नवें अध्यायमें आ गयी हैं ।

२ 'नारायणीय-तन्त्र'में ब्राह्मण-नागोंको कुण्डलाकि स्थानमें चिन्तनीय बताया है क्षत्रिय-नाग दोनों भुजाओंमें केयूरका काम करते हैं, वैश्य-नाग कटिसूत्र (करधनी) की आवश्यकता पूर्ण करते हैं तथा शूद्र नाग दोनों पैरोंमें नूपुर बनकर शोभा बढ़ाते हैं । इनका ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—'अनन्त और कुलिक

इक्यासी पदोंका होना चाहिये ।) मध्यकोष्ठमें साध्य व्यक्तिका नाम लिखे । उस नामको 'ठ ठ' के मध्यमें रक्खे । पूर्वादि वीथीमें 'हूं ख ख फट्' का उल्लेख करे । ईशान आदि कोणमें आरम्भ करके वीथीको छोड़ते हुए अग्निकोणपर्यन्त लक्ष्मीका आनुष्टुभ मन्त्र (जो सवतोभद्रचक्रमें निबद्ध है) लिखे । यह ऊपरकी चार पङ्क्तियोंमें पूरा हो जायगा । तत्पश्चात् नीचेकी चार पङ्क्तियोंमें सबसे नीचेके नैर्ऋत्यकोणस्थ कोष्ठसे आरम्भ करके दाहिनेसे बायें पार्श्वकी ओर लिखे । निचली पङ्क्तिके बाद ऊपरी पङ्क्तिमें भी बायेंसे दाहिने लिखे । इस तरह चार पङ्क्तियोंमें वही 'लक्ष्मी-मन्त्र' पूरा लिख दे । वह मन्त्र इस प्रकार है—

'श्री मा मा या या मा सा श्री, सा नो या ज्ञे ज्ञे या नो सा । मा या ला ला ला ली या मा या ज्ञे ला ली ली ला ज्ञ या ॥'

चक्रके बहिर्भागमें चारों ओर त्वरिता-मन्त्र लिखे । प्रत्येक दिशामें एक बार, इस प्रकार चार बार वह मन्त्र लिखा जायगा । फिर उस चौकोर चक्रको इस प्रकार गोल रेखासे घेर दे, जिससे वह कलशके भीतर हो जाय । उक्त कलशके नीचे एक कमल बनाकर उसीपर उस कलशको स्थापित किया हुआ दिखाये । (ऊपरकी ओर कलशके मुखकी-सी आकृति बना दे । दो वृत्ताकार रेखाओंसे कलशकी आकृति स्पष्ट करनी चाहिये । कलशके मुखपर दो आड़ी रेखाएँ खींचकर उन रेखाओंके बीचमें 'ववववव'—इस प्रकारकी माला-सी बनाकर उस मालासे घटको परिपूरित दिखाये । इस प्रकार इस चक्रका मनोरथ पूर्तिके लिये तन्त्रशास्त्रोक्त रीतिसे प्रयोग करे ।) ॥ १५–१८ ॥

कमलपर स्थापित पद्मचक्र लिखकर उसे धारण किया जाय तो वह मृत्युको जीतनेवाला तथा स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला है । यह शान्तिके साधनमें भी परम शान्तिप्रद है । सौभाग्य आदि देनेवाला है[६] ॥ १९ ॥

बारह खड़ी रेखाओंपर बारह पड़ी रेखाएँ खींचकर बराबर-बराबर एक सौ इक्कीस कोष्ठ बनावे । उसके मध्य कोष्ठमें साध्यका नाम लिखे । फिर ईशानकोणवाले कोष्ठसे आरम्भ करके प्रदक्षिणक्रमसे बारह बार त्वरिता विद्याके अक्षर लिखे । मायाबीज (ह्रीं) को छोड़कर ही मन्त्र लिखना चाहिये । रेखाओंके अग्रभागोंपर बारबार त्रिशूल अङ्कित करे । इस यन्त्रको जपद्वारा सिद्ध कर लें[७] । मध्यकोष्ठमें साध्य-नामके पहले 'ॐ' तथा अन्तमें 'हूं फट्' जोड़ दे । त्वरिता विद्याके वर्णोंको क्रमसे ही लिखना चाहिये । अन्तमें नीचेकी ओर 'फट्' जोड़ देना चाहिये । यह प्रत्यङ्गिरा-विद्या कहलाती है, जो सम्पूर्ण मनोरथ एवं प्रयोजनको सिद्ध करनेवाली है ॥ २०-२१ ॥

इक्यासी कोष्ठवाले चक्रमें आदिसे ही वर्णक्रमके अनुसार सम्पूर्ण चक्रमें त्वरिता विद्याके अक्षर लिखे । छः बार मन्त्र लिखनेके बाद अन्तमें शेष कोष्ठमें साध्यका नाम तथा उसके अन्तमें 'फट्' लिखे । यह दूसरी 'प्रत्यङ्गिरा विद्या' है, जो समस्त कार्य आदिकी सिद्धि करनेवाली है । चौंसठ कोष्ठवाले चक्रमें भी 'निग्रह-चक्र' और 'अनुग्रह-चक्र' लिखे । वह 'अमृती विद्या' है । उसके मध्यकोष्ठमें 'क्षीं सः हूं' और साध्य-नाम लिखे । (पाठान्तरके अनुसार उस चक्रके मध्यभागमें साध्यका नाम तथा नामके उभय पार्श्वमें 'ह्रीं' लिखे ।) उसके बाह्यभागमें द्वादशदल कमल बनाकर उसके दलोंमें त्वरिता विद्याको विलोमक्रमसे लिखे । अर्थात् पहले 'फट्' लिखे, फिर पूर्व-पूर्वके अक्षर । फिर उसे ह्रींकारयुक्त तीन वृत्ताकार पङ्क्तियोंसे वेष्टित करे । कुम्भाकार यन्त्रके भीतर लिखित इस विद्याको धारण किया जाय तो

अर्थात् रोली अथवा लाक्षा (महावर) के रङ्गसे सोनेके पत्रपर या श्वेत वस्त्रपर सोनेकी ही लेखनीसे इस अनुग्रह यन्त्रको लिखे । लिखकर इसकी पूजा करके त्वरिता-मन्त्रके जपद्वारा इसे सिद्ध कर ले । अपसिद्ध यन्त्रको जहाँ रक्खा जायगा वहाँ अत्यन्त वृद्धिशीला लक्ष्मीका वास होगा । वहाँकी समस्त प्रजाएँ नीरोग होंगी । हाथी, घोड़े तथा अन्य पशु प्राणी अत्यन्त सुखी होंगे । भूत प्रेत तथा पिशाच आदिकी बाधा प्राप्त होनेपर इस यन्त्रका धारण करना चाहिये । दरिद्रताकी शान्ति वशीकरणकी सिद्धि तथा सम्पूर्ण सम्पदाओंकी प्राप्तिके लिये भी इस यन्त्रको धारण करना आवश्यक है ।

६ इस चक्रकी विधि 'श्रीविद्यार्णव-तन्त्र'में इस प्रकार दी गयी है—दस दलवाला पद्म बनाकर उसकी कर्णिकामें माया-बीजके उदरमें साध्य-नाम लिखकर उसके दलोंमें मूल त्वरिता-विद्याके प्रणवादि दस वर्णोंको लिखे । माया-बीजके अक्षर छोड़ दे । उस कमल-चक्रके बाह्यभागमें षट्कोण तथा उसके भी बाह्यभागमें चौकोर मण्डल बनावे ।

७ इस यन्त्रका उल्लेख 'शारदातिलक'के दशम पटलमें उपलब्ध होता है ।

तीन सौ सोलहवाँ अध्याय

त्वरिता आदि विविध मन्त्र एवं कुब्जिका विद्याका कथन

अग्निदेव कहते हैं—मुने ! पहले 'हुं' रखे, फिर 'खे च च्छे'—ये तीन पद जोड़कर मन्त्रकी शोभा बढ़ावे। तत्पश्चात् 'क्ष स्त्रीं हुं क्षे' लिखकर अन्तमें 'फट्' जोड़ दे। (कुल मिलाकर) 'हुं खे च च्छे क्ष स्त्रीं हुं क्षे ह्रीं फट्।' यह दशाक्षरा त्वरिता विद्या हुई। यह विद्या समस्त कार्योंको सिद्ध करनेवाली तथा विष, सर्पादिका मर्दन करनेवाली है। 'खे च च्छे'—यह त्र्यक्षर विद्या काल (अथवा काले साँप) के डँसे हुएको भी जीवन देनेवाली है॥ १-२॥

'ॐ हुं खे क्षः'—इस चतुरक्षरी विद्याका प्रयोग विष एवं सर्पदंशकी पीड़ाको नष्ट करनेवाला है। (पाठान्तर 'विषशत्रुप्रमर्दन'के अनुसार उक्त विद्याका प्रयोग विष एवं शत्रुकी बाधाको दूर करनेवाला है।) 'स्त्रीं हुं फट्'—इस विद्याका प्रयोग पाप तथा रोग आदिपर विजय दिलाता है। 'खे च'—इस द्व्यक्षर मन्त्रका प्रयोग शत्रु एवं दुष्ट आदिकी बाधाको दूर करता है। 'हुं स्त्रीं ॐ'—इस मन्त्रका प्रयोग स्त्री आदिको वशमें करनेवाला है। 'खे स्त्रीं खे'—इस मन्त्रका प्रयोग कालसर्पद्वारा डँसे गये मनुष्यके जीवनकी रक्षा करता है तथा शत्रुओंपर विजय दिलाता है। 'क्ष स्त्रीं क्ष'—इसका प्रयोग वशीकरण तथा विजयका साधक है॥ ३—५॥

कुब्जिका विद्या*

"ॐ ह्रीं श्रीं ह्मस्ख्फ्रें ह्सौः ॐ नमो भगवति ह्मस्ख्फ्रें कुब्जिके ह्रूं ह्रूं अघोरे घोरे अघोरमुखि छ्रां छ्रीं किणि किणि विच्चे ह्सौः ह्सख्फ्रें श्रीं ह्रीं ॐ।"—यह श्रीमती कुब्जिका विद्या सब कार्योंको सिद्ध करनेवाली मानी गयी है॥ ६॥

अब उन मन्त्रोंका वर्णन किया जायगा, जिनका उपदेश भगवान् शंकरने स्कन्दको दिया था॥ ७॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'त्वरिता आदि नाना मन्त्रोंका तथा कुब्जिका विद्याका वर्णन' नामक तीन सौ सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३१६॥

तीन सौ सत्रहवाँ अध्याय

सकलादि मन्त्रोंके उद्धारका क्रम

भगवान् शिव कहते हैं—स्कन्द ! सकल, निष्कल, शून्य, कलाढ्य, समलंकृत, क्षपण, क्षय, अन्तःस्थ, कण्ठोष्ठ तथा आठवाँ शिव—ये प्रासादपरासंज्ञक मन्त्रके आठ स्वरूप माने गये हैं। ('कलाढ्य' सकलमें और 'शून्य' निष्कलके अन्तर्गत है।) यह शब्दमय मन्त्र साक्षात् सदाशिवरूप है। इसके जपसे सम्पूर्ण सिद्धियोंकी प्राप्ति होती है॥ १-२॥ अमृत, अंशुमान्, इन्द्र, ईश्वर, उग्र, ऊहक, एकपाद, ऐल, ओज, औषध, अंशुमान् और वशी—ये क्रमशः अकार आदि बारह स्वरोंके वाचक हैं (यथा—अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ अं अः)। तथा आगे जो शब्द दिये जा रहे हैं, वे ककार आदि अक्षरोंके सूचक हैं। कामदेव, शिखण्डी, गणेश, काल, शंकर, एकनेत्र, द्विनेत्र,

* यह मन्त्र अग्निपुराणकी विभिन्न पोथियोंमें विभिन्न रूपसे छपा है। कहीं भी शुद्ध नहीं है। अतः 'श्रीविद्यार्णवतन्त्र' (अष्टम श्वास)में जो इसका शुद्ध पाठ मिलता है, वही यहाँ रखा गया है। वहीं इसका विनियोग-वाक्य यों दिया गया है—अस्य श्रीकुब्जिकामन्त्रस्य रुद्र ऋषिर्गायत्री छन्दः कुब्जिका देवता ह्सौः बीजं ह्सख्फ्रें शक्तिः ह्रूं कीलकम् श्रीविद्याङ्गत्वेन विनियोगः। पूनावाले अग्निपुराणमें इस मन्त्रका पाठ यों है—ॐ ह्रीं श्रीं रुक्षे भगवति अम्बिके कुब्जिके स्फश रुफ रखम् रू उ म रण नमो घारमुखिच्छां छीं किणि किणि विच्छू स्फों हमें श्री ह्रीम् ॐ। यही मन्त्र बहुत पाठान्तरके साथ चौखम्बावाले संस्करणमें भी है। दोनों जगहका पाठ अशुद्ध ही है। पिछले १४३-१४४ अध्यायोंमें भी कुब्जिकाका प्रसङ्ग द्रष्टव्य है।

१. 'श्रीविद्यार्णवतन्त्र'में प्रसादपरा-संज्ञक मन्त्रका उद्धार प्राप्त होता है। उसके अनुसार इसका स्वरूप है—'ह्सौः'। यदि यह सादि हो जाय, अर्थात् 'सहौः'के रूपमें लिखा जाय तो परा प्रसाद-मन्त्र कहलाता है। केवल 'हौं' हो अर्थात् सकारसे संयुक्त न हो तो वह शुद्ध 'प्रासाद' मन्त्र है।

रहित होनेपर ही उसकी शून्य संज्ञा होती है। ईशानादि मूर्तियाँ इन दोनोंसे अमृततक हैं। इनका पूजन समस्त विघ्नोंका नाश करनेवाला है॥ २०-२२॥

अंशुमान् (अनुस्वार) युक्त निधरूप (ह) यदि उदक (ऊ) के ऊपर अधिष्ठित हो तो वह 'हूं' बीज 'सकलाख्य' कहा गया है। वह 'सकल'के ही अन्तर्गत है। सकलके ही पूजन और अङ्गन्यास आदि सदा होते हैं (इसी तरह जो 'शून्य' कहा गया है, वह 'निष्कल'के ही अन्तर्गत है।) । नरसिंह यमराजके ऊपर बैठे हों, अर्थात् क्षकार मकारके ऊपर चढ़ा हो, साथ ही तेजस्वी (र) तथा प्राण (य) का भी योग हो, फिर ऊपर अंशुमान (अनुस्वार) हो तथा नीचे उदक (दीर्घ ऊकार) हो तो 'क्ष्म्र्यूं'—यह बीज उद्धृत होता है। इसकी 'समलङ्कृत' संज्ञा है। यह ऊपर और नीचे भी मात्रासे अलङ्कृत होनेके कारण 'समलङ्कृत' कहा गया है। यह भी 'प्रासादपर' नामक मन्त्रका एक भेद है। चन्द्रार्धाकार बिन्दु और नादसे युक्त ब्रह्मा एवं विष्णु नामोंसे विभूषित क्रमशः उदधि (व) और नरसिंह (क्ष) को बारह मात्राओंसे भेदित करे। ऐसा करनेपर पूर्ववत् ह्रस्वस्वरोंसे युक्त बीज ईशानादि ब्रह्मात्मक अङ्ग तथा दीर्घस्वरोंसे युक्त बीजसहित मन्त्र हृदयादि अङ्गोंमें विन्यस्त किये जायँगे॥ २३-२५॥

अब दस बीजरूप प्रणव बताये जाते हैं—ओजको अनुस्वारसे युक्त करके 'ओम्' इस प्रथम वर्णका उद्धार करे। अंशुमान् और अंशुका योग 'आं' यह गायकस्वरूप द्वितीय वर्ण है। अंशुमान् और ईश्वर—'ईं'—यह तृतीय वर्ण है, जो मुक्ति प्रदान करनेवाला है। अंशु (अनुस्वार) से आक्रान्त उदक अर्थात् 'ऊं' यह चतुर्थ वर्ण है। सानुस्वार वरुण (वृं), प्राण (यृं) और तेजस् (र)—अर्थात् 'व्र्यूं' इसे पञ्चम बीजाक्षर बताया गया है। तत्पश्चात् सानुस्वार कृतान्त (मकार) अर्थात् 'मं' यह षष्ठ बीज है। सानुस्वार उदक और प्राण (व्यं) सप्तम बीजके रूपमें उद्धृत हुआ है। इन्दुयुक्त पद्म—'पं' आठवाँ तथा एकपादयुक्त नन्दीश 'नें' नवाँ बीज है। अन्तमें प्रथम बीज 'ओम्' का ही उल्लेख किया जाता है। इस प्रकार जो दशबीजात्मक मन्त्र है, इसे 'प्रणव' कहा गया है। इसका पहला, तीसरा, पाँचवाँ, सातवाँ तथा नवाँ बीज क्रमशः ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव और सद्योजातस्वरूप है। द्वितीय आदि बीज हृदयादि अङ्गन्यासमें उपयुक्त होते हैं। दसों प्रणवात्मक बीजोंका एक साथ उच्चारणपूर्वक 'अस्त्राय फट्' बोलकर अस्त्रन्यास करे। ईशानादि मूर्तियोंके अन्तमें 'नमः' जोड़कर ही बोलना चाहिये, अन्यथा नहीं। द्वितीय बीजसे लेकर नवम बीजतक जो आठ बीज हैं, ये आठ विद्येश्वररूप हैं। उनके नाम ये हैं—अनन्तेश, सूक्ष्म, शिवोत्तम, एकमूर्ति, एकरूप, त्रिमूर्ति, श्रीकण्ठ तथा शिखण्डी—ये आठ विद्येश्वर कहे गये हैं। शिखण्डीसे लेकर अनन्तेशपर्यन्त विलोम क्रमसे बीजमन्त्रोंका सम्बन्ध जोड़ना चाहिये। (यही प्रासाद-मन्त्रका 'प्रणव' नामक भेद है।) इस तरह यहाँ मूर्ति-विद्या बतायी गयी॥ २६-३४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'सकलादि मन्त्रोंके उद्धारका वर्णन' नामक तीन सौ सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३१७॥

---

४ यथा—ब्रों ब्रह्मणे क्षों विष्णवे ईशानाय नमः। बें ब्रह्मणे क्षें विष्णवे तत्पुरुषाय नमः। बुं ब्रह्मणे क्षुं विष्णवे अघोराय नमः। विं ब्रह्मणे क्षिं विष्णवे वामदेवाय नमः। वं ब्रह्मणे क्षं विष्णवे सद्योजाताय नमः। ये पूजनके मन्त्र हैं। अङ्गन्यास—वां ब्रह्मणे क्षां विष्णवे हृदयाय नमः। वीं ब्रह्मणे क्षीं विष्णवे शिरसे स्वाहा। वूं ब्रह्मणे क्षूं विष्णवे शिखायै वषट्। वैं ब्रह्मणे क्षैं विष्णवे कवचाय हुम्। वौं ब्रह्मणे क्षौं विष्णवे नेत्रत्रयाय वौषट्। वः ब्रह्मणे क्षः विष्णवे अस्त्राय फट्।

५ यथा—ओम् ईशानाय नमः। ईं तत्पुरुषाय नमः। व्र्यूं अघोराय नमः। व्यं वामदेवाय नमः। नें सद्योजाताय नमः॥ अङ्गन्यासका क्रम इस प्रकार है—आं हृदयाय नमः। ऊं शिरसे स्वाहा। मं शिखायै वषट्। पं कवचाय हुम्। आम् नेत्रत्रयाय वौषट्। ओं आं ईं ऊं व्र्यूं मं व्यं पं नें ओम् अस्त्राय फट्। इसी क्रमसे करन्यास भी कर सकते हैं।

६ यथा—आं शिखण्डिने नमः। ईं श्रीकण्ठाय नमः। ऊं त्रिमूर्तये नमः। व्र्यूं एकरूपाय नमः। मं एकमूर्तये नमः। इत्यादि

भयसूदन—ये बारह नाम दक्षिण दिशाकी पङ्क्तिमें लिखे। पश्चिममें देवत्रात, महानाद, भासुर, विघ्नराज, गणाधिप, उद्भटस्वन, उद्भटशुण्ड, महाशुण्ड, भीम, मन्मथ, मधुसूदन तथा सुन्दर और भावपुष्ट—ये नाम लिखे। फिर उत्तर दिशामें ब्रह्मेश्वर, ब्राह्म मनोवृत्ति, मलय, लय, नृत्यप्रिय, लोल, विकर्ण, वत्सल, कृतान्त, कालदण्ड तथा कुम्भका पूजन उल्लेख करके इन सबका यजन करे ॥ १६—२० ॥

पूर्वोक्त मन्त्रका दस हजार जप और उसके दशांशसे होम करे। शेष नाम मन्त्रोंका दस दस बार जप करके उनके लिये एक एक बार आहुति दे। तत्पश्चात् पूर्णाहुति देकर अभिषेक करे। इससे सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध होता है। साधक भूमि, गौ, अश्व, हाथी तथा वस्त्र आदि देकर गुरुदेवकी पूजा करे ॥ २१-२७ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'गणपति पूजनके विधानका कथन' नामक तीन सौ अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३१८ ॥

तीन सौ उन्नीसवाँ अध्याय

वागीश्वरीकी पूजा एवं मन्त्र आदि

भगवान् शिव कहते हैं—स्कन्द! अब मैं मण्डल-सहित 'वागीश्वरी-पूजन'की विधि बता रहा हूँ। ऊर्ध्व (ऊ) को काल (म) से संयुक्त करके उसका चन्द्रमा (अनुस्वार) से योग करें तो यह एकाक्षर मन्त्र होगा (मूं)। निष्पादपर ईश्वर (ई) का योग करके उसे बिन्दु विसर्गसे समन्वित करे। इस एकाक्षर मन्त्रका उपदेश सबको नहीं देना चाहिये। वागीश्वरीदेवीका ध्यान इस प्रकार करे—'देवीकी अङ्गकान्ति कुन्दकुसुम तथा चन्द्रमाके समान उज्ज्वल है। वे पचास वर्णोंका मालामय रूप धारण करती हैं। मुक्ताकी माला तथा श्वेतपुष्पके हारसे सुशोभित हैं। उनके चार हाथोंमें क्रमशः वरद, अभय, अक्षमाला तथा पुस्तक शोभा पाते हैं। वे तीन नेत्रोंसे युक्त हैं।' इस प्रकार ध्यान करके उक्त एकाक्षर मन्त्रका एक लाख जप करे। 'देवी पैरोंसे लेकर मस्तकपर्यन्त अथवा कण्ठतक ककारसे लेकर क्षकारतककी वर्णमाला धारण करती हैं'—इस प्रकार उनके स्वरूपका स्मरण करे ॥ १-४ ॥

गुरु दीक्षा देनेके या मन्त्रोपदेश करनेके लिये एक मण्डल बनाये। वह सूर्याभ हो और इन्दुसे विभक्त हो। दो भागोंमें कमल बनाये। यह कमल साधकके लिये हितकर होता है। फिर वीथी और पाया बनाये। चार पदोंमें आठ कमल बनाये। उनके बाह्यभागमें वीथी और पदिकाका निर्माण करे। दो-दो पदोंद्वारा प्रत्येक दिशामें द्वार बनाये। इसी तरह उपद्वारोंका भी निर्माण करे। कोणोंमें दो-दो पट्टिकाएँ निर्मित करे। अब नौ कमल (वर्णाब्ज तथा दिशाओंसे सम्बद्ध कमल) श्वेतवर्णके रखने। कर्णिकापर सोनेके रंगका चूर्ण गिराकर उसे पीली कर दे। केसरोंको अनेक रंगोंसे रँगकर कोणोंको लाल रंगसे भरे। व्योमरेखान्तर कालसे रखना द्वारोंका मान इन्द्रके हाथीके मानके अनुसार रखने। मध्यकमलमें सरस्वतीको, पूर्वगत कमलमें वागीशीको, फिर अग्नि आदि कोणोंके क्रमसे हृल्लेखा, चित्रवागीशी, गायत्री, विश्वरूपा, शाङ्करी, मति और धृतिको स्थापित करके उन सबका पूजन करे। नामके आदिमें 'ह्रीं' तथा नामके आदि अक्षरको बीज रूपमें जोड़कर पूजा करनी चाहिये। यथा—पूर्वमें ह्रीं वां वागीश्यै नमः इत्यादि। सरस्वती ही वागीश्वरीके रूपमें ध्येय हैं। जप पूरा करके कपिला गायके घीसे हवन करे। ऐसा करनेवाला साधक संस्कृत तथा प्राकृत भाषाओंमें काव्य-रचना करनेवाला कवि होता है और काव्यशास्त्र आदिका विद्वान् हो जाता है ॥ ५-११ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'वागीश्वरी पूजा' नामक तीन सौ उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३१९ ॥

तीन सौ बीसवाँ अध्याय

सर्वतोभद्र आदि मण्डलोंका वर्णन

भगवान् शिव कहते हैं—स्कन्द! अब मैं 'सर्वतोभद्र' नामक आठ प्रकारके मण्डलोंका वर्णन करता हूँ। पहले शङ्कु या कीलसे प्राचादिशाका साधन करे। इस प्राचीका निश्चय हो जानेपर विद्वान् पुरुष विषुवकालमें चित्रा और

बीचका कमल नीलवर्णका होगा । कार्तिकेय ! विचित्र रंगोंसे युक्त स्वस्तिक आदि मण्डल सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला है ॥ २३–२९½ ॥

'पद्माब्ज मण्डल' पाँच हाथके क्षेत्रको सब ओरसे दससे विभाजित करके बनाया जाता है । इसमें दो पदका कमल, उसके बाह्यभागमें वीथी, फिर पट्टिका, फिर चार दिशाओंमें चार कमल होते हैं । इनके बाद पृष्ठभागमें वीथी हो, जो एक पद अथवा दो पदोंके स्थानमें बनायी गयी हो । कण्ठ और उपकण्ठसे युक्त द्वार हों और द्वारके मध्यभागमें कमल हो । इस पद्माब्ज-मण्डलमें पूर्ववर्ती कमल श्वेत और पीतवर्णका होता है । दक्षिणदिग्वर्ती कमल वैदूर्यमणिके रंगका, पश्चिमवर्ती कमल कुन्दके समान श्वेत वर्णका तथा उत्तरदिशाका कमल शङ्खके सदृश उज्ज्वल होता है । शेष सब विचित्र वर्णके होते हैं ॥ ३०–३३ ॥

अब मैं दस हाथके मण्डलका वर्णन करता हूँ, जो सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला है । उसको विकार-संख्या (२४) द्वारा सब ओर विभक्त करके चौकोर क्षेत्र बना ले । इसमें दो-दो पदोंका द्वार होगा । पूर्वोक्त चक्रोंकी भाँति इसके भी मध्यभागमें कमल होगा । अब मैं 'विघ्नध्वंस-चक्र' का वर्णन करता हूँ । चार हाथका पुर (चौकोर क्षेत्र) बनाकर उसके मध्यभागमें दो हाथके घेरेमें वृत्त (गोलाकार चक्र) बनाये । एक हाथकी वीथी होगी, जो सब ओरसे स्वस्तिक-चिह्नोंद्वारा घिरी रहेगी । एक-एक हाथमें चारों ओर द्वार बनेंगे । चारों दिशाओंमें वृत्त होंगे, जिनमें कमल अङ्कित रहेंगे । इस प्रकार इस चक्रमें पाँच कमल होंगे, जिनका वर्ण श्वेत होगा । मध्यवर्ती कमलमें निष्कल (निराकार परमात्मा) का पूजन करना चाहिये । पूर्वादि दिशाओंमें हृदय आदि अङ्गोंकी तथा विदिशाओंमें अस्त्रोंकी पूजा होनी चाहिये । पूर्ववत् 'सद्योजात' आदि पाँच ब्रह्ममय मुखोंका भी पूजन आवश्यक है ॥ ३४–३७ ॥

अब मैं 'बुद्धयाधार-चक्र' का वर्णन करता हूँ । सौ पदके क्षेत्रमेंसे मध्यवर्ती पद्रह पदोंमें एक कमल अङ्कित करे । फिर आठ दिशाओंमें एक-एक करके आठ शिवलिङ्गोंकी रचना करे । मेखलाभागसहित कण्ठकी रचना दो पदोंमें होगी । आचार्य अपनी बुद्धिका सहारा लेकर यथास्थान लता आदिकी कल्पना करे । चार, छः, पाँच और आठ आदि कमलोंसे युक्त मण्डल होता है । बीस-तीस आदि कमलोंवाला भी मण्डल होता है । १०२० कमलोंसे युक्त भी सम्पूर्ण मण्डल हुआ करता है । १२० कमलोंके मण्डलका भी वर्णन दृष्टिगोचर होता है । श्रीहरि, शिव, देवी तथा सूर्यदेवके १४४० मण्डल हैं । १७ पदोंद्वारा सत्रह पदोंका विभाग करनेपर २८९ पद होते हैं । उक्त पदोंके मण्डलमें लतालिङ्गका उद्भव कैसे होता है, यह सुनो । प्रत्येक दिशामें पाँच, तीन, एक, तीन और पाँच पदोंको मिटा दे । ऊपरके दो पदोंसे लिङ्ग तथा पार्श्ववर्ती दो-दो कोष्ठकोंसे मन्दिर बनेगा । मध्यवर्ती दो पदोंका कमल हो । फिर एक कमल और होगा । लिङ्गके पार्श्वभागोंमें दो 'भद्र' बनेंगे । एक पदका द्वार होगा, उसका लोप नहीं किया जायगा । उस द्वारके पार्श्वभागोंमें छः-छः पदोंका लोप करनेसे द्वारशोभा बनेगी । शेष पदोंमें श्रीहरिके लिये लहलहाती लताएँ होंगी । ऊपरके दो पदोंका लोप करनेसे श्रीहरिके लिये 'भद्राष्टक' बनेंगे । फिर चार पदोंका लोप करनेसे रश्मिमालाओंसे युक्त शोभास्थान बनेगा । पचीस पदोंसे कमल, फिर पीठ, अपीठ तथा दो-दो पदोंको रखकर (एकत्र करके) आठ उपशोभाएँ बनेंगी । देवी आदिका सूचक 'भद्रमण्डल' बीचमें विस्तृत और प्रान्तभागमें लघु होता है । बीचमें नौ पदोंका कमल बनता है तथा चारों कोणोंमें चार 'भद्रमण्डल' बनते हैं । शेष त्रयोदश पदोंका 'बुद्धयाधार-मण्डल' है । इसमें एक सौ साठ पद होते हैं । 'बुद्धयाधार-मण्डल' भगवान् शिव आदिकी आराधनाके लिये प्रशस्त है ॥ ३८–४८ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'मण्डलविधानका वर्णन' नामक तीन सौ बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३२० ॥

तीन सौ इक्कीसवाँ अध्याय

अघोरास्त्र आदि शान्ति विधानका कथन

महादेवजी कहते हैं—स्कन्द ! पहले समस्त कर्मोंमें 'अस्त्रयाग' करना चाहिये । यह सिद्धि प्रदान करनेवाला है । मध्यभागमें शिव, विष्णु आदिके अस्त्रकी पूजा करनी चाहिये तथा पूर्वादि दिशाओंमें क्रमशः इन्द्रादि दिक्पालके वज्र आदि अस्त्रोंका पूजन करना चाहिये । भगवान् शंकरके पाँच मुख तथा दस हाथ हैं । उनके इस स्वरूपका ध्यान करते हुए

कवचाय खड्गवज्रहस्ताय यमदण्डवरुणपाशाय रुद्रशूलाय ज्वल जिह्वाय सर्वरोगविद्रावणाय ग्रहनिग्रहकारिणे दुष्टनागक्षय कारिणे । ॐ कृष्णपिङ्गलाय फट् । हूंकारास्त्राय फट् । वज्र हस्ताय फट् । शक्तये फट् । दण्डाय फट् । यमाय फट् । खड्गाय फट् । नैर्ऋताय फट् । वरुणाय फट् । वज्राय फट् । पाशाय फट् । ध्वजाय फट् । अङ्कुशाय फट् । गदायै फट् । कुबेराय फट् । त्रिशूलाय फट् । मुद्गराय फट् । चक्राय फट् । पद्माय फट् । नागास्त्राय फट् । ईशानाय फट् । खेटकास्त्राय फट् । मुण्डाय फट् । मुण्डास्त्राय फट् । कङ्कालास्त्राय फट् । पिच्छिकास्त्राय फट् । क्षुरिकास्त्राय फट् । ब्रह्मास्त्राय फट् । शक्त्यस्त्राय फट् । गणास्त्राय फट् । सिद्धास्त्राय फट् । पिलिपिच्छास्त्राय फट् । गन्धर्वास्त्राय फट् । पूर्वास्त्रायै फट् । दक्षिणास्त्राय फट् । वामास्त्राय फट् । पश्चिमास्त्राय फट् । मन्त्रास्त्राय फट् । शाकिन्यस्त्राय फट् । योगिन्यस्त्राय फट् । दण्डास्त्राय फट् । महादण्डास्त्राय फट् । नमोऽस्त्राय फट्[3] । शिवास्त्राय फट् । ईशानास्त्राय फट् । पुरुषास्त्राय फट् । अघोरास्त्राय फट् । सद्योजातास्त्राय फट् । हृदयास्त्राय फट् । महास्त्राय फट् । गरुडास्त्राय फट् । राक्षसास्त्राय फट् । दानवास्त्राय फट् । क्षौं नरसिंहास्त्राय फट् । त्वष्ट्रास्त्राय फट् । सर्वास्त्राय फट् । नं फट् । वं फट् । पं फट् । फं फट् । मं फट् । श्रीं फट् । पें[1] फट् । भूः फट् । भुवः फट् । स्वः फट् । महः फट् । जनः फट् । तपः फट् । सत्यं फट् । सर्वलोक फट् । सर्वपाताल फट् । सर्वतत्त्व[11] फट् । सर्वप्राण फट् । सर्वनाडी फट् । सर्वकारण फट् । सर्वदेव फट् । ह्रीं फट् । श्रीं फट् । ह्रूं[12] फट् । स्त्रुं फट्[13] । स्वां[14] फट् । लां फट् । वैराग्याय फट् । मायास्त्राय फट् । कामास्त्राय फट् । क्षेत्रपालास्त्राय फट् । हुंकारास्त्राय फट् । भास्करास्त्राय फट् । चन्द्रास्त्राय फट् । विघ्नेश्वरास्त्राय फट् । गौं गां फट् । स्त्रौं स्त्रौं फट् । हौं हौं[15] फट् । भ्रामय भ्रामय फट् । संतापय संतापय फट् । छादय छादय फट् । उन्मूलय उन्मूलय फट् । त्रासय त्रासय फट् । संजीवय संजीवय फट् । विद्रावय विद्रावय फट् । सर्वदुरित नाशय नाशय फट् ।

इस पाशुपत मन्त्रकी एक बार आवृत्ति करनेसे ही यह मनुष्य सम्पूर्ण विघ्नोंका नाश कर सकता है, सौ आवृत्तियोंसे समस्त उत्पातोंको नष्ट कर सकता है तथा युद्ध आदिमें विजय पा सकता है ॥ २ ॥

इस मन्त्रद्वारा घी और गुग्गुलके होमसे मनुष्य असाध्य कार्योंको भी सिद्ध कर सकता है । इस पाशुपतास्त्र[16] मन्त्रके पाठ मात्रसे समस्त क्लेशोंकी शान्ति हो जाती है ॥ ३ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'पाशुपतास्त्र-मन्त्रद्वारा शान्तिका कथन' नामक तीन सौ बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३२२ ॥

तीन सौ तेईसवाँ अध्याय

गङ्गा मन्त्र, शिवमन्त्रराज, चण्डकपालिनी-मन्त्र, क्षेत्रपाल-बीजमन्त्र, सिद्धविद्या, महामृत्यु जय, मृतसंजीवनी, ईशानादि मन्त्र तथा इनके छः अङ्ग एवं अघोरास्त्रका कथन

महादेवजी कहते हैं—स्कन्द! 'ॐ हूं हंसः'—इस मन्त्रसे मृत्युरोग आदि शान्त हो जाते हैं । इस मन्त्रद्वारा दूर्वाकी एक लाख आहुतियाँ दी जायँ तो उत्तम साधक शान्ति तथा पुष्टिका भी साधन कर सकता है । षडानन ! अथवा केवल

1 पाठान्तर—रूराय फट् । 2 पाठा० मूलास्त्राय । 3 पा० नानास्त्राय फट् । 4 इससे पहले पूनाकी प्रतिमें—महादण्डास्त्राय फट् । नामास्त्राय फट्—इतना अधिक पाठ है । 5 पाठा० वामदेवास्त्राय फट् । 6 पूनाकी प्रतिमें इससे पूर्व 'भं फट्'—इतना अधिक है । 7 पूनाकी प्रतिमें यह नहीं है । 8 पूनाकी प्रतिमें 'भं फट् । पं फट्' ऐसा पाठ है । 9 पाठा० स्रां । 10 पाठा० है । 11 पाठा० सत्त्व । 12 पाठा० हूं । 13 स्त्रुं । 14 स्रां । 15 पाठा० हौं । 16 'श्रीविद्यार्णवतन्त्र' (३ वें श्वास) में तथा 'शारदातिलक' (२० वें पटल) में एक पञ्चाक्षर पाशुपत-मन्त्र भी वर्णित है । यथा—'ॐ श्लीं पशु हुं फट्' । इसके जप और प्रयोगकी विधि वहीं द्रष्टव्य है ।

रणभूमिमें विजय दिलानेवाली है। 'ईशान' आदि मन्त्र भी धर्म काम आदिको देनेवाले हैं ॥ २७ ॥

(ईशान आदि मन्त्र)

(ॐ) ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोम्[1] ॥ २८ ॥

(ॐ) तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्[2] ॥ २९ ॥

(ॐ) अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः सर्वतः सर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः[3] ॥ ३० ॥

(ॐ) वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः[4] ॥ ३१ ॥

(ॐ) सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः। भवे भवे नातिभवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः[5] ॥३२॥

अब मैं 'पञ्चब्रह्म'के छः अङ्गोंका वर्णन करूँगा, जो भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला है ॥ ३३ ॥

(ॐ) नमः परमात्मने पराय कामदाय परमेश्वराय योगाय योगसम्भवाय सर्वकराय कुरु कुरु सत्य सत्य भव भव भवोद्भव वामदेव सर्वकार्यकर पापप्रशमन सदाशिव प्रसन्न नमोऽस्तु ते (स्वाहा) ॥ ३४ ॥

—यह सतहत्तर अक्षरोंका हृदय मन्त्र है, जो सम्पूर्ण मनोरथोंको देनेवाला है। [कोष्ठकमें दिये गये अक्षरोंको छोड़कर गिननेपर सतहत्तर अक्षर होते हैं।] ॥ ३५ ॥

(इस मन्त्रको पढ़कर 'हृदयाय नमः' बोलकर हृदयका स्पर्श करना चाहिये।)

'ॐ शिव शिवाय नमः।'—यह शिरोमन्त्र है, अर्थात् इसे पढ़कर 'शिरसे स्वाहा' बोलकर दाहिने हाथसे सिरका स्पर्श करना चाहिये। 'ॐ शिवहृदय ज्वालिनी स्वाहा, शिखायै वषट्' बोलकर शिखाका स्पर्श करे।

'ॐ शिवात्मक महातेजः सर्वज्ञ प्रभो सर्वतय महाघोर कवच पिङ्गल आयाहि पिङ्गल नमो महाकवच शिवाज्ञया हृदय बन्ध बन्ध घूर्णय घूर्णय चूर्णय चूर्णय सूक्ष्मासूक्ष्म वज्रधर वज्रपाशधनुर्वज्राशनिवज्रशरीर मच्छरीरमनुप्रविश्य सर्वदुष्टान् स्तम्भय स्तम्भय हुम्[6] ॥ ३६ ॥

—यह एक सौ पाँच अक्षरोंका कवच-मन्त्र है। अर्थात् इसे पढ़कर 'कवचाय हुम्' बोलते हुए दोनों हाथोंसे एक साथ दोनों भुजाओंका स्पर्श करे ॥ ३७ ॥

'ॐ ओजसे नेत्रत्रयाय वौषट्' ऐसा बोलकर दोनों नेत्रोंका स्पर्श करे। इसके बाद निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़कर अस्त्रन्यास करे—'ॐ ह्रीं स्फुर स्फुर प्रस्फुर प्रस्फुर घोरघोरतरतनुरूप चट चट प्रचट प्रचट कह कह वम वम बन्ध बन्ध घातय घातय हुं फट्।' यह (प्रणवसहित बावन अक्षरोंका) 'अघोरास्त्र मन्त्र' है ॥ ३८ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'अनेकविध मन्त्रोंके साथ ईशान आदि मन्त्र तथा छः अङ्गोंसहित अघोरास्त्रका कथन' नामक तीन सौ तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३२३ ॥

ईशान आदि मन्त्रोंके अर्थ—

1. जो सम्पूर्ण विद्याओंके ईश्वर, समस्त भूतोंके अधीश्वर, ब्रह्म वेदके अधिपति, ब्रह्म-बल-वीर्यके प्रतिपालक तथा साक्षात् ब्रह्मा एवं परमात्मा हैं, वे सच्चिदानन्दमय नित्य कल्याणस्वरूप शिव मेरे बने रहें ॥ २८ ॥

2. तत्पदार्थ—परमेश्वररूप अन्तर्यामी पुरुषको हम जानें, उन महादेवका चिन्तन करें, वे भगवान् रुद्र हमें सद्धर्मके लिये प्रेरित करते रहें ॥ २९ ॥

3. जो अघोर हैं, घोर हैं, घोरसे भी घोरतर हैं, उन सर्वव्यापी सर्वसंहारी रुद्ररूपोंके लिये—जो आपके ही स्वरूप हैं—साक्षात् आपके लिये मेरा नमस्कार हो ॥ ३० ॥

4. प्रभो! आप ही वामदेव, ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, रुद्र, काल, कलविकरण, बलविकरण, बल, बलप्रमथन, सर्वभूतदमन तथा मनोन्मन आदि नामोंसे प्रतिपादित होते हैं, इन सभी नाम-रूपोंमें आपके लिये मेरा बारंबार नमस्कार है ॥ ३१ ॥

5. मैं सद्योजात शिवकी शरण लेता हूँ। सद्योजातको मेरा नमस्कार है। किसी जन्म या जगत्‌में मेरा अभिभव—पराभव न करें। आप भवोद्भवको मेरा नमस्कार है ॥ ३२ ॥

6. पाठान्तर हूम्।

गपिङ्गल अकालपिशाचाधिपति विश्वेश्वराय नमः ।' त्वकी कर्णिकामें शिवतत्त्वकी स्थिति है। उसमें भगवान् या महेश्वर पूजनीय हैं। मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ मेव्यापिने व्योमरूपाय सर्वव्यापिने शिवायानन्ताय नाथा नाश्रिताय शिवाय ।' (प्रणवको अलग गिननेपर इस न्त्रमें कुल नौ पद हैं)—शिवतत्त्वमें व्योमव्यापी नामवाले यके नौ पदोंका पूजन करना चाहिये ॥ १४—१४ ॥

तदनन्तर योगपीठपर विराजमान शिवका नौ पदोंसे क नाम बोलकर पूजन करे। मन्त्र इस प्रकार है— ाश्वताय योगपीठसंस्थिताय नित्ययोगिने ध्यानाहाराय म। ॐ नमः शिवाय सर्वप्रभवे शिवाय ईशानमूर्धाय पुरुषाय पञ्चवक्त्राय ।' स्कन्द ! तत्पश्चात् 'पद' नामक वेदलमें नौ पदोंसे युक्त शिवका पूजन करे ॥ २५-२६ ॥

'अघोरहृदयाय वामदेवगुह्याय सद्योजातमूर्तये ॐ नमो म । गुह्यातिगुह्याय गोप्त्रेऽनिधनाय सर्वयोगाधिकृताय योतीरूपाय' ॥ २७।१ ॥

अग्निकोणवर्ती ईशतत्त्वमें तथा दक्षिणदिशावर्ती विद्या त्त्वमें 'परमेश्वराय अचेतनाचेतन व्योमन् व्यापिन्नरूपिन् प्रमथतेजस्तेज ।'—इस मन्त्रसे परमेश्वर शिवकी अर्चना करे ॥ २७।२ ॥

नैर्ऋत्यकोणवर्ती मायातत्त्व तथा पश्चिमदिग्वर्ती कालतत्त्वमें निम्नाङ्कित मन्त्रद्वारा पूजन करे—

'ॐ घृ घृ वां वां अनिधान निधनोद्भव शिव सर्व परमात्मन् महादेव सद्भावेश्वर महातेज योगाधिपते मुञ्च मुञ्च प्रमथ प्रमथ ॐ सर्व सर्व ॐ भव भव ॐ भवोद्भव सर्वभूतसुखप्रद ॥' २८—३० ॥

वायुकोण तथा उत्तरवर्ती दलोंमें स्थित नियति एवं पुरुष—इन दोनों तत्त्वोंमें निम्नाङ्कित नौकी पूजा करे—

'सर्वासान्निध्यकर ब्रह्मविष्णुरुद्रपरानर्चितास्तुत स्तुत साक्षिन् साक्षिन् तुरु तुरु पतङ्ग पतङ्ग पिङ्ग पिङ्ग ज्ञान ज्ञान। शब्द शब्द सूक्ष्म सूक्ष्म शिव शिव सर्वप्रद सर्वप्रद ॐ नमः शिवाय ॐ नमो नमः शिवाय ॐ नमो नमः ॥ ३१ ॥

ईशानवर्ती प्राकृततत्त्वमें 'शब्द से लेकर 'नमः' तकका मन्त्र पढ़कर पूजन, जप और होम करे। यह 'रुद्रशान्ति' ग्रहबाधा, रोग आदि तथा त्रिविध पीडाका शमन करनेवाली तथा सम्पूर्ण मनोरथोंकी साधिका है ॥ ३२ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'रुद्रशान्ति विधान-कथन' नामक तीन सौ चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३२४ ॥

तीन सौ पचीसवाँ अध्याय

रुद्राक्ष धारण, मन्त्रोंकी सिद्धादि संज्ञा तथा अंश आदिका विचार

महादेवजी कहते हैं—स्कन्द ! शैव-साधकको द्राक्षका कङ्कण धारण करना चाहिये। रुद्राक्षोंकी संख्या वेषम हो। उसका प्रत्येक मनका सब ओरसे सम और दृढ़ ो। रुद्राक्ष एकमुख, त्रिमुख या पञ्चमुख—जैसा भी मिल ाय, धारण करे। द्विमुख, चतुर्मुख तथा षण्मुख रुद्राक्ष भी ास्त माना गया है। उसमें कोई क्षति या आघात न ा—वह फूटा या घुना न होना चाहिये। उसमें तीखे कण्टक ोने चाहिये। दाहिनी बाँह तथा शिखा आदिमें चतुर्मुख रुद्राक्ष धारण करे। इससे अब्रह्मचारी भी ब्रह्मचारी तथा अस्नातक पुरुष भी स्नातक हो जाता है। अथवा शिव मन्त्रकी पूजा करके सोनेकी अँगूठीको दाहिने हाथमें धारण करे ॥ १—३ ॥

शिव, शिखा, ज्योति तथा सावित्र—ये चार 'गोचर' हैं। 'गोचर'का अर्थ 'कुल' समझना चाहिये। उसीसे दीक्षित पुरुषको लक्ष्य करना चाहिये। शिवकुलमें प्राजापत्य, महीपाल, कापोत तथा ग्रन्थिक—ये चार गिने जाते हैं। कुटिल, वेताल, पद्म और हंस—ये चार 'शिखाकुल'में परिगणित होते हैं। धृतराष्ट्र, वक, काक और गोपाल—ये चार 'ज्योति' नामक कुलमें समझे जाते हैं। कुटिका, साठर, गुटिका तथा दण्डी—ये चार 'सावित्री-कुल'में गिने जाते हैं। इस प्रकार एक-एक कुलके चार-चार भेद हैं ॥ ४—६½ ॥

अब मैं 'सिद्ध' आदि अंशोंकी व्याख्या करता हूँ, जिससे मन्त्र उत्तम सिद्धिका देनेवाला होता है। पृथ्वीपर कूटमन्त्ररहित मातृका (अक्षर) लिखे। मन्त्राक्षरोंको विलग विलग करके अनुस्वारको पृथक् ले जाय। साधकका भी जो नाम हो, उसके अक्षरोंको अलग अलग करे। मन्त्रके आदि और अन्तमें

अव्यक्त प्रतिमा रहे और मध्यभागमें पाँचवीं व्यक्त प्रतिमा स्थापित करे। आवरण देवताओंके रूपमें क्रमशः ललिता आदि शक्तियोंकी पूजा करनी चाहिये। पहले वृत्ताकार मण्डल कमल बनाकर आग्नेय आदि कोणवर्ती दलोंमें क्रमशः ललिता, सुभगा, गौरी और क्षोभणीकी पूजा करे। फिर पूर्वादि दलोंमें वामा, ज्येष्ठा, क्रिया और ज्ञानाका यजन करे। पीठयुक्त वामभागमें शिवके अव्यक्त रूपकी पूजा करनी चाहिये। देवीका व्यक्त रूप दो या तीन नेत्रोंवाला है। यह शुद्ध रूप भगवान् शंकरके साथ पूजित होता है। ये देवी दो पीठ या दो कमलोंपर स्थित होती हैं। वहाँ देवी दो, चार, आठ अथवा अठारह भुजाओंसे युक्त हैं, ऐसा चिन्तन करे। वे सिंह अथवा भेड़ियेको भी अपना वाहन बनाती हैं। अष्टादशभुजाके दायें नौ हाथोंमें नौ आयुध हैं, जिनके नाम यों हैं—स्रक् (स्रुक्), अक्ष, सूत्र (पाश), कलिका, मुण्ड, उत्पल, पिण्डिका, बाण और धनुष। इनमेंसे एक-एक महान् वस्तु उनके एक-एक हाथकी शोभा बढ़ाते हैं। वामभागके नौ हाथोंमें भी प्रत्येकमें एक-एक करके क्रमशः नौ वस्तुएँ हैं। यथा—पुस्तक, ताम्बूल, दण्ड, अभय, कमण्डलु, गणेशजी, दर्पण, बाण और धनुष ॥ २-१४ ॥

उनको 'व्यक्त' अथवा 'अव्यक्त' मुद्रा दिखानी चाहिये। आसन-समर्पणके लिये 'पद्म-मुद्रा' कही गयी है। भगवान् शिवकी पूजामें 'लिङ्ग-मुद्रा' का विधान है। यही 'शिवमुद्रा' है। 'आवाहनीमुद्रा' दोनोंके लिये है। शक्ति-मुद्रा 'योनि' नामसे कही गयी है। इनका मण्डल या मन्त्र चौकोर है। यह चार हाथ लंबा-चौड़ा हुआ करता है। मध्यवर्ती चार कोष्ठोंमें त्रिदल कमल अङ्कित करना चाहिये। तीनों कोणोंके ऊर्ध्वभागमें अर्धचन्द्र रहे। उसे दो पदों (कोष्ठों) को लेकर बनाया जाय। एकसे दूसरा दुगुना होना चाहिये। द्वारोंका कण्ठभाग दो-दो पदोंका हो, किंतु उपकण्ठ उससे दुगुना रहना चाहिये। एक-एक दिशामें तीन-तीन द्वार रखने चाहिये अथवा 'सर्वतोभद्र' मण्डल बनाकर उसमें पूजन करना चाहिये। अथवा किसी चबूतरे या वेदीपर देवताकी स्थापना करके पञ्चगव्य तथा पञ्चामृत आदिसे पूजन करे ॥ १५-१८ ॥

पूजन करके उत्तराभिमुख हो उन्हें लाल रंगके फूल अर्पण करने चाहिये। घृत आदिकी सौ आहुतियाँ देकर पूर्णाहुति प्रदान करनेवाला साधक सम्पूर्ण सिद्धियोंका भागी होता है। फिर बलि अर्पित करके तीन या आठ कुमारियोंको भोजन करावे। पूजाका नैवेद्य शिवभक्तोंको दे, स्वयं अपने उपयोगमें न ले। इस प्रकार अनुष्ठान करके कन्या चाहनेवालेको कन्या और पुत्रहीनको पुत्रकी प्राप्ति होती है। दुर्भाग्यशाली स्त्री सौभाग्यशालिनी होती है। राजाको युद्धमें विजय तथा राज्यकी प्राप्ति होती है। आठ लाख जप करनेसे वाक्सिद्धि प्राप्त होती है तथा देवगण वशमें हो जाते हैं। इष्टदेवको निवेदन किये बिना भोजन न करे। बायें हाथसे भी अर्चना कर सकते हैं। विशेषतः अष्टमी, चतुर्दशी तथा तृतीयाको ऐसा करनेकी विधि है ॥ १९-२२½ ॥

अब मैं मृत्युंजयकी पूजाका वर्णन करूँगा। कलशमें उनकी पूजा करे। इवनमें प्रणव मृत्युंजयकी मूर्ति है और 'ॐ जूं स ।'—इस प्रकार मूलमन्त्र है। 'ॐ जूं स वौषट् ।'—ऐसा कहकर अर्चनीय देवता मृत्युंजयको कुम्भमुद्रा दिखावे। इस मन्त्रका दस हजार बार जप करे तथा खीर, दूर्वा, घृत, अमृता (गुडुची), पुनर्नवा (गदहपूना), पायस (पय पक्व वस्तु) और पुरोडाशका हवन करे। भगवान् मृत्युंजयके चार मुख और चार भुजाएँ हैं। वे अपने दो हाथोंमें कलश और दो हाथोंमें वरद एवं अभयमुद्रा धारण करते हैं। कुम्भमुद्रासे उन्हें स्नान कराना चाहिये। इससे आरोग्य, ऐश्वर्य तथा दीर्घायुकी प्राप्ति होती है। इस मन्त्रसे आमन्त्रित औषध शुभ कारक होता है। भगवान् मृत्युंजय ध्यान किये जानेपर दुर्मृत्युको दूर करनेवाले हैं, इसलिये उनकी सदा पूजा होती है ॥ २३-२७ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'गौरी आदिकी पूजाका वर्णन' नामक तीन सौ छब्बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३२६ ॥

तीन सौ सत्ताईसवाँ अध्याय

विभिन्न कर्मोंमें उपयुक्त माला, अनेकानेक मन्त्र, लिङ्ग-पूजा तथा देवालयकी महत्ताका विचार

भगवान् महेश्वर कहते हैं—कार्तिकेय ! व्रतेश्वर और सत्य आदि देवताओंका पूजन करके उनको व्रतका समर्पण करना चाहिये। अरिष्ट-शान्तिके लिये अरिष्टमूलकी माला उत्तम है। कल्याणप्राप्तिके लिये सुवर्ण एवं रत्नमयी, मारणकर्ममें महाशङ्खमयी, शान्तिकर्ममें शङ्खमयी और पुत्रप्राप्तिके लिये मौक्तिकमयी मालासे जप करे।

तीन सौ उनतीसवाँ अध्याय

गायत्री आदि छन्दोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—[गायत्री छन्दके आठ भेद —आर्षी, दैवी, आसुरी, प्राजापत्या, याजुषी, साम्नी, र्ची तथा ब्राह्मी] 'छन्द' शब्द अधिकारमें प्रयुक्त हुआ है, र्यात् इस पूरे प्रकरणमें छन्द शब्दकी अनुवृत्ति होती है। 'दैवी' यत्री एक अक्षरकी, 'आसुरी' पद्रह अक्षरोंकी, 'प्राजापत्या' ाठ अक्षरोंकी, 'याजुषी' छ अक्षरोंकी, 'साम्नी' गायत्री बारह क्षरोंकी तथा 'आर्ची' अठारह अक्षरोंकी है। यदि साम्नी ायत्रीमें क्रमशः दो-दो अक्षर बढ़ाते हुए उन्हें छ कोष्ठोंमें ख्खा जाय, इसी प्रकार आर्ची गायत्रीमें तीन-तीन, ाजापत्या-गायत्रीमें चार-चार तथा अन्य गायत्रियोंमें अर्थात् वी और याजुषीमें क्रमशः एक एक अक्षर बढ जाय एव ासुरी गायत्रीका एक-एक अक्षर क्रमशः छ कोष्ठोंमें घटता ाय तो उन्हें 'साम्नी' आदि भेदसहित क्रमशः उष्णिक्, नुष्टुप्, बृहती, पङ्क्ति, त्रिष्टुप् और जगती छन्द जानना ाहिये । याजुषी, साम्नी तथा आर्ची—इन तीन भेदोंवाले ायत्री आदि प्रत्येक छन्दके अक्षरोंको पृथक् पृथक् जोड़नेपर न सबको 'ब्राह्मी-गायत्री', 'ब्राह्मी-उष्णिक्' आदि छन्द मझना चाहिये । इसी प्रकार याजुषीके पहले जो दैवी, आसुरी और प्राजापत्या नामक तीन भेद हैं, उनके अक्षरोंको पृथक् पृथक् छ कोष्ठोंमें जोड़नेपर जितने अक्षर होते हैं, वे 'आर्षी गायत्री', 'आर्षी उष्णिक्' आदि कहलाते हैं। इन भेदोंको स्पष्टरूपसे समझनेके लिये चौसठ कोष्ठोंमें लिखना चाहिये ॥ १— ॥ [कोष्ठक इस प्रकार है—]

	छन्द	गायत्री के अक्षर	उष्णिक् के अक्षर	अनुष्टुप् के अक्षर	बृहती के अक्षर	पङ्क्ति के अक्षर	त्रिष्टुप् के अक्षर	जगती के अक्षर
१	आर्षी	२४	२८	३२	३६	४०	४४	४८
२	दैवी	१	२	३	४	५	६	७
३	आसुरी	१५	१४	१३	१२	११	१०	९
४	प्राजापत्या	८	१२	१६	२०	२४	२८	३२
५	याजुषी	६	७	८	९	१०	११	१२
६	साम्नी	१२	१४	१६	१८	२०	२२	२४
७	आर्ची	१८	२१	२४	२७	३०	३३	३६
८	ब्राह्मी	३६	४२	४८	५४	६०	६६	७२

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'छन्दस्सारका कथन' नामक तीन सौ उनतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३२९ ॥

तीन सौ तीसवाँ अध्याय

'गायत्री'से लेकर 'जगती' तक छन्दोंके भेद तथा उनके देवता, स्वर, वर्ण और गोत्रका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—इस प्रकरणकी पूर्ति होनेतक 'पादः' पदका अधिकार (अनुवर्तन) है । जहाँ गायत्री आदि छन्दोंमें किसी पादकी अक्षर संख्या पूरी न हो, वहाँ 'इय्', 'उव्' आदिके द्वारा उसकी पूर्ति की जाती है । [जैसे 'तत्सवितुर्वरेण्यम्' में आठ अक्षरकी पूर्तिके लिये 'वरेण्यम्' के स्थानमें 'वरेणियम्' समझ लिया जाता है । 'स्वःपते' के स्थानमें 'सुवःपते' माना जाता है ।] गायत्री छन्दका एक पाद आठ अक्षरोंका होता है । अर्थात् जहाँ 'गायत्रीके पाद'का कथन हो, वहाँ आठ अक्षर ग्रहण करने चाहिये । [*यही बात अन्य छन्दोंके पादोंके सम्बन्धमें भी है ।*] 'जगती' छन्दका पाद बारह अक्षरोंका होता है । विराट्‌के पाद दस अक्षरोंके बताये गये हैं । 'त्रिष्टुप्' छन्दका चरण ग्यारह अक्षरोंका है । जिस छन्दका जैसा पाद बताया गया है, उसीके अनुसार कोई छन्द एक पादका, कोई दो पादका, कोई तीनका और कोई चार पादका माना गया है । [जैसे आठ अक्षरके तीन पादोंका 'गायत्री' छन्द और चार पादोंका 'अनुष्टुप्' होता है ।] आदि छन्द' अर्थात् 'गायत्री' कहीं छ अक्षरके पादोंसे चार पादोंकी होती है । [जैसे ऋग्वेदमें— *इन्द्र शचीपतिर्बलेन वीलितः । दुश्च्यवनो वृषा समत्सु सासहिः ॥*] कहीं-कहीं गायत्री सात अक्षरके पादोंसे तीन पादकी होती है । [जैसे ऋग्वेदमें—'युवाकु हि शचीनां युवाकु सुमतीनाम् । भूयाम वाजदाव्नाम् ॥ (१ । १७ । ४)]

यही जगतीका पाद हो और शेष तीन चरण गायत्रीके हों तो उसे 'पथ्या बृहती' कहते हैं। [जैसे सामवेदमें—'मा चिदन्यद् विशंसत सखायो मा रिषण्यत । इन्द्रमित् स्तोता वृषण सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ॥' (२४२)] जब पहलेवाला 'जगती'का चरण द्वितीय पाद हो जाय और शेष तीन गायत्रीके चरण हों तो 'न्यङ्कुसारिणी बृहती' नामक छन्द होता है। [जैसे ऋग्वेदमें—'मत्स्यपायि ते मह: पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मदः । वृषा ते वृष्ण इन्दुर्वाजी सहस्रसातम: ' ॥ (१ । १७५ । १)] आचार्य क्रोष्टुकिके मतमें यह (न्यङ्कुसारिणी) 'स्कन्ध' या 'ग्रीवा' नामक छन्द है[५]। यास्काचार्यने इसे ही 'उरोबृहती' नाम दिया है। जब अन्तिम (चतुर्थ) चरण 'जगती'का हो और आरम्भके तीन चरण गायत्रीके हों तो 'उपरिष्टाद् बृहती' नामक छन्द होता है। वही 'जगती'का चरण जब पहले हो और शेष तीन चरण गायत्री छन्दके हों तो उसे 'पुरस्ताद् बृहती' छन्द कहते हैं। [जैसे ऋग्वेदमें—'महो यस्पति: शवसो असाम्या महो नृम्णस्य तूतुजिः । भर्ता वज्रस्य धृष्णोः पिता पुत्रमिव प्रियम् ॥' (१० । २२ । ३)] वेदमें कहीं-कहीं नौ-नौ अक्षरोंके चार चरण दिखायी देते हैं। वे भी 'बृहती' छन्दके ही अन्तर्गत हैं। [उदाहरणके लिये ऋग्वेदमें—'तं त्वा वयं पितो वचोभिर्गावो न हव्या सुषूदिम । देवेभ्यस्त्वा सधमादमस्मभ्यं त्वा सधमादम् ॥' (१ । १८७ । ११)] जहाँ पहले दस अक्षरके दो चरण हों, फिर आठ-अक्षरोंके दो चरण हों, उसे भी 'बृहती' छन्द कहते हैं। [जैसे सामवेदमें—'अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रं राधो अमर्त्य । आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाँ उषर्बुधः ॥ (४०)] केवल 'जगती' छन्दके तीन चरण हों तो उसे महाबृहती' कहते हैं। [जैसे ऋग्वेदमें—'अजीजनो अमृत मर्त्येष्वाँ, ऋतस्य धर्मन्नमृतस्य चारुण: । सदासरो वाजमच्छासनिष्यदत् ' ॥ (९ । ११० । ४)] ताण्डी नामक आचार्यके मतमें यही 'सतो बृहती' नामक छन्द है[६] ॥ ८—१०½ ॥

जहाँ दो पाद बारह-बारह अक्षरोंके और दो आठ आठ अक्षरोंके हों, वहाँ नामक छन्द होता 'पङ्क्ति' है। यदि विषम पाद, अर्थात् प्रथम और तृतीय चरण पूर्वकथनानुसार बारह बारह अक्षरोंके हों और शेष दोनों आठ आठ अक्षरोंके तो उसे 'सत पङ्क्ति' नामक छन्द कहते हैं। [जैसे ऋग्वेदमें—'य त्वा देवासो मनवे दधुरिह यजिष्ठं हव्यवाहन । यं कण्वो मेध्यातिथिर्धनस्पृतं यं वृषा यमुपस्तुत: ॥' (१ । ३६ । १०)] यदि वे ही चरण विपरीत अवस्थामें हों, अर्थात् प्रथम-तृतीय चरण आठ आठ अक्षरोंके और द्वितीय-चतुर्थ बारह-बारह अक्षरोंके तो भी वह छन्द 'सत पङ्क्ति' ही कहलाता है। जैसे ऋग्वेदमें—'य ऋष्वः श्रावयत्सखा विश्वेत् स वेद जनिमा पुरुष्टुत: । तं विश्वे मानुषा युगे, इन्द्रं हवन्ते तविषं यतस्रुच: ॥ (८ । ४६ । १२)] जब पहलेके दोनों चरण बारह-बारह अक्षरोंके हों और शेष दोनों आठ आठ अक्षरोंके, तो उसे 'प्रस्तारपङ्क्ति' कहते हैं। [ग्यारहवें श्लोकमें बताये हुए 'पङ्क्ति' छन्दके लक्षणसे ही यह गतार्थ हो जाता है, तथापि विशेष संज्ञा देनेके लिये यहाँ पुनः उपादान किया गया है। मन्त्र-ब्राह्मणमें इसका उदाहरण इस प्रकार है—'काम वद्ते मदो नामासि समानया अमु सुरा ते अभवत् । परमत्र जन्मा अग्ने तपसा निर्मितोऽसि[११] ॥'] जब अन्तिम दो चरण बारह-बारह अक्षरोंके हों और आरम्भके दोनों आठ आठ अक्षरोंके तो आस्तारपङ्क्ति' नामक छन्द होता है। [जैसे ऋग्वेदमें—भद्रं नो अपि वातय, मनो दक्षमुत क्रतुम् । अधा ते सख्ये अन्धसो वि वो मदे रणन् गावो न यवसे विवक्षसे ॥' (१० । २५ । १)] यदि बारह अक्षरोंवाले दो चरण बीचमें हों और प्रथम एवं चतुर्थ चरण आठ आठ अक्षरोंके हों तो उसे 'विस्तार-पङ्क्ति' कहते हैं। [जैसे ऋग्वेदमें—अग्ने तव श्रवो वयो, महि भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो । बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्य दधासि दाशुषे कवे ॥' (१० । १४० । १)] यदि बारह अक्षरोंवाले दो चरण बाहर हों, अर्थात् प्रथम एवं चतुर्थ चरणके रूपमें हों और बीचके द्वितीय-तृतीय चरण आठ-आठ अक्षरोंके हों तो यह 'संस्तार-पङ्क्ति' नामक छन्द होता है।

५ पिङ्गलसूत्रमें स्कन्धोग्रीवी नाम आया है।

६ इसका उदाहरण सामवेदमें इस प्रकार है—'अग्ने जरित विश्पतिस्तपानो देव रक्षस । अप्रोषिवान् गृहपते महाँ असि दिवस्पायुर्दुरोणयु ॥ (३९)

७ आठवें श्लोकके उत्तरार्धमें जो बृहती छन्दका लक्षण दिया गया है उसीसे यह भी गतार्थ हो जाता है फिर भी विशेष संज्ञा देनेके लिये यहाँ पुनरुक्ति की गयी है।

८ —१० इन सबमें व्यूहकी रीतिसे या निचृत् मानकर पादपूर्ति की जाती है।

११ महाँ नाम्न असि, निर्मित असि—इस प्रकार सन्धिव्यूहसे पादपूर्ति की जाती है। कात्यायनने इसे गायत्री छन्दमें गिना है। सायणने इसे द्विपदा कहा है।

आठ अक्षरके हों तथा बीचवाला चरण तीन, चार या पाँच अक्षरका हो तो उसे 'पिपीलिकमध्या' कहेंगे ।] इसके विपरीत जब आदि और अन्तके पादकि अक्षर कम हों और बीचवाला पाद अधिक अक्षरोंका हो तो उस 'त्रिपाद् गायत्री' आदि छन्दको 'यवमध्या' कहते हैं । यदि 'गायत्री' या 'उष्णिक्' आदि छन्दोंमें केवल एक अक्षरकी कमी हो, उसकी 'निचृत्' यह विशेष संज्ञा होती है । एक अक्षरकी अधिकता होनेपर वह छन्द 'भूरिक्' नाम धारण करता है । इस प्रकार दो अक्षरोंकी कमी रहनेपर 'विराट्' और दो अक्षर अधिक होनेपर 'स्वराट्' संज्ञा होती है । संदिग्ध अवस्थामें आदि पादके अनुसार छन्दका निर्णय करना चाहिये । [जैसे कोई मन्त्र छब्बीस अक्षरका है, उसमें गायत्रीसे दो अक्षर अधिक हैं और उष्णिक्‌से दो अक्षर कम— ऐसी दशामें यह 'स्वराड् गायत्री' छन्द है या 'विराड् उष्णिक्' ?'—ऐसे संदेहयुक्त स्थलमें यदि मन्त्रका पहला चरण 'गायत्री'से मिलता हो तो उसे 'स्वराड् गायत्री' कहेंगे और यदि प्रथम पाद 'उष्णिक्'से मिलता हो तो उसे 'विराड् उष्णिक्' कह सकते हैं । इसी तरह अन्यत्र भी समझना चाहिये ।] इसी प्रकार देवता, स्वर, वर्ण तथा गोत्र आदिके द्वारा संदिग्धस्थलमें छन्दका निर्णय हो सकता है । गायत्री आदि छन्दोंके देवता क्रमशः इस प्रकार हैं—अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, बृहस्पति, मित्रावरुण, इन्द्र तथा विश्वेदेव । उक्त छन्दोंके स्वर हैं—'षड्ज' आदि । उनके नाम क्रमशः ये हैं—षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद । श्वेत, सारंग, पिशङ्ग, कृष्ण, नील, लोहित (लाल) तथा गौर—ये क्रमशः गायत्री आदि छन्दोंके वर्ण हैं । 'कृति' नामवाले छन्दोंका वर्ण गोरोचनके समान है और अतिच्छन्दोंका वर्ण श्यामल है । अग्निवेश्य, काश्यप, गौतम, आङ्गिरस, भार्गव, कौशिक तथा वसिष्ठ—ये क्रमशः उक्त सात छन्दोंके गोत्र बताये गये हैं ॥ १६–२३ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'छन्दस्सारका कथन' नामक तीन सौ तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३३० ॥

तीन सौ एकतीसवाँ अध्याय

उत्कृति आदि छन्द, गण-छन्द और मात्रा-छन्दोंका निरूपण

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठजी ! एक सौ चार अक्षरोंका 'उत्कृति' छन्द होता है । [जैसे यजुर्वेदमें— होता यक्षदश्विनौ छागस्य० इत्यादि (२१ । ४१)] 'उत्कृति' छन्दमेंसे चार-चार घटाते जायँ तो क्रमशः निम्नाङ्कित छन्द होते हैं—सौ अक्षरोंकी 'अभिकृति'[1], छानबे अक्षरोंकी 'संस्कृति'[2], बानबे अक्षरोंकी 'विकृति'[3], अठासी अक्षरोंकी 'आकृति'[4], चौरासी अक्षरोंकी 'प्रकृति,'[5] अस्सी अक्षरोंकी 'कृति'[6], छिहत्तर अक्षरोंकी 'अतिधृति'[7], बहत्तर अक्षरोंकी 'धृति'[8], अड़सठ अक्षरोंकी 'अत्यष्टि'[9], चौसठ अक्षरोंकी 'अष्टि'[10], साठ अक्षरोंकी 'अतिशक्वरी'[11], छप्पन अक्षरोंकी 'शक्वरी'[12],' बावन अक्षरोंकी 'अतिजगती'[13] तथा अड़तालीस अक्षरोंकी 'जगती'[14] होती है । यहाँतक केवल वैदिक छन्द हैं । यहाँसे आगे लौकिक छन्दका अधिकार है । 'गायत्री'से लेकर 'त्रिष्टुप्' तक जो आर्षछन्द वैदिक छन्दोंमें गिनाये गये हैं, वे लौकिक छन्द भी हैं । उनके

---

१ 'अभिकृति' आदि छन्दोंके उदाहरणका प्रतीकमात्र यहाँ दिया जाता है विशेष जानकारीके लिये वेदोंमें अनुसंधान करना चाहिये । यजुर्वेद—'देवो अग्निः स्विष्टकृद् देवानयक्षद्' इत्यादि (२१ । ५८) । २ यजुर्वेदे—'देवो अग्निः स्विष्टकृत्, सुद्रविणामन्द्र कवि' इत्यादि । ३ इमे सोम सुरामाणम्' इत्यादि । ४ 'अग्ना मनुष्मनुष्यमिन्द्रो मातु पुरोगव इत्यादि । ५ मदनेरुदाहरणम्—'सूर्यश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च इत्यादि प्रातराचमनमन्त्र । ६ यजुर्वेदे—'सुपर्णोऽसि गरुत्माँस्त्रिवृत्ते शिरो गायत्रम्' इत्यादि (१७ । ७२) । ७ ऋग्वेदे—स हि शर्धो न मारुत तु विष्वणि इत्यादि (१ । १२७ । ६) । ८ ऋग्वेदे—अयमह इन्द्र दाइहि शुधि न क्षुशोच हि द्यौ० इत्यादि (१ । १३३ । ६) । ९ ऋग्वेदे—'अर्शि गातुरवे वरीयसी पन्था ऋतस्य समयंस्त रश्मिभिः' इत्यादि (१ । १३६ । २) । १० ऋग्वेदे—'त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तु विशुष्म' इत्यादि (२ । २२ । १) । ११ ऋग्वेदे—'साकं जात क्रतुना साकमोजसा ववक्षिथ०' इत्यादि (२ । २२ । ३) । १२ ऋग्वेदे—'प्रीत्स्वस्मै पुरोरथ इन्द्राय शूषमर्चत' इत्यादि । १३ मन्त्रब्राह्मणे—'मा ते गृहेषु निशि घोष उत्था०' इत्यादि । १४ सामवेदे—'इम स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव स महेमा मनीषया । भद्रा हि न प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वय तव ॥ (६६)

हो तो उसका नाम 'प्राच्यवृत्ति'[२०] होता है। [यद्यपि सम लकारका विषम लकारके साथ मिलना निषिद्ध किया गया है, तथापि वह सामान्य नियम है, प्राच्यवृत्ति आदि विशेष स्थलोंमें उस नियमका अपवाद होता है।] शेष लकार पूर्वोक्त प्रकारसे ही रहेंगे। जब प्रथम और तृतीय चरणमें दूसरा लकार तीसरेके साथ मिश्रित होता है, तब 'उदीच्यवृत्ति'[२१] नामक वैतालीय कहलाता है। शेष लकार पूर्वोक्त रूपमें ही रहते हैं। जब दोनों लक्षणोंकी एक साथ ही प्रवृत्ति हो, अर्थात् द्वितीय और चतुर्थ पादोंमें पञ्चम लकारके साथ चौथा मिल जाय और प्रथम एवं तृतीय चरणोंमें तृतीयके साथ द्वितीय लकार संयुक्त हो जाय तो 'प्रवृत्तक'[२२] नामक छन्द होता है। जिस वैतालीय छन्दके चारों चरण विषम पादोंके ही अनुसार हों, अर्थात् प्रत्येक पाद चौदह लकारोंसे युक्त हो तथा द्वितीय लकार तृतीयसे मिला हो, उसे 'चारुहासिनी'[२३] कहते हैं। जब चारों चरण सम पादोंके लक्षणसे युक्त हों, अर्थात् सबमें सोलह लकार (मात्राएँ) हों और चतुर्थ लकार पञ्चमसे मिला हो तो उसका नाम 'अपरान्तिका'[२४] है। जिसके प्रत्येक पादमें सोलह लकार हों, किंतु पादके अन्तिम अक्षर गुरु ही हों, उसे 'मात्रासमक'[२५] नामक छन्द कहा गया है। साथ ही इस छन्दमें नवम लकार किसीसे मिला नहीं रहता। जिस 'मात्रासमक'के चरणमें बारहवाँ लकार अपने स्वरूपमें ही स्थित रहता है, किसीसे मिला नहीं, उसका नाम 'वानवासिका'[२६] है। जिसके चारों चरणमें पाँचवाँ और आठवाँ लकार लघुरूपमें ही स्थित रहता है, उसका नाम 'विश्लोक'[२७] है। जहाँ नवाँ भी लघु हो, वह 'चित्रा'[२८] नामक छन्द कहलाता है। जहाँ नवाँ लकार दसवेंके साथ मिलकर गुरु हो गया हो, वहाँ 'उपचित्रा'[२९] नामक छन्द होता है। मात्रासमक, विश्लोक, वानवासिका, चित्रा और उपचित्रा—इन पाँचोंमें जिस किसी भी छन्दके एक-एक पादको लेकर जब चार चरणोंका छन्द बनाया जाय, तब उसे 'पादाकुलक'[३०] कहते हैं। जिसके प्रत्येक चरणमें सोलह लघु स्वरूपसे ही स्थित हों, किसीसे मिलकर गुरु न हो गये हों, उस छन्दका नाम 'गीत्यार्या'[३१] है। इसी गीत्यार्यामें जब आधे भागकी सभी मात्राएँ गुरुरूपमें हों और आधे भागकी मात्राएँ लघुरूपमें तो उसका नाम 'शिखा' होता है। इसीके दो भेद हैं—पूर्वार्धभागमें लघु-ही-लघु और उत्तरार्धमें गुरु-ही-गुरु हों तो उसका नाम 'ज्योति'[३२]

---

२० प्राच्यवृत्तिका उदाहरण—
विपुलार्थसुवाचकाक्षरा कस्य नाम न हरन्ति मानसम्।
रसभावविशेषपेशला प्राच्यवृत्तिकविकाव्यसम्पदः ॥

२१ उदीच्यवृत्तिका उदाहरण—
अवाचकमनुज्ज्वलाक्षरं श्रुतिदुष्टं यतिकष्टमक्रमम्।
प्रसादरहितं न सेव्यते कविभिः काव्यमुदीच्यवृत्तिभिः ॥

२२ इदं भरतवंशभूभृतां श्रूयतां श्रुतिमनोरसायनम्।
पवित्रमधिकं शुभोदयं व्यासवक्त्रकथितं प्रवृत्तकम् ॥

२३ मनाक्प्रसृतदन्तदीधिति स्मरोल्लसितगण्डमण्डला।
कटाक्षललिता तु कामिनी मनो हरति चारुहासिनी ॥

२४ स्थिरविलासनवमालिकावली कमलकोमलाङ्गी मृगेक्षणा।
हरति कस्य हृदयं न कामिनः सुरतवेलिकुशलापरान्तिका ॥

२५ मदमधुमुखी विरमैन्दोमुखाभाक्षी मितमत्यामा।
निर्मलवनं स्फुरिते केशैर्मात्रासमकं लभते दुःखम् ॥

२६ मन्मथचापध्वनिरमणीयं सुरतमहोत्सवपटहनिनादः।
वनवासवधीस्वनितविशेषः कस्य न चित्तं रमयति पुंसः ॥

२७ ज्ञानगुणरहितं विश्लोकं दुर्नयचरणकलङ्कितलोकम्।
जानन्नहितकुलेऽप्यविनीतं मित्र परिहर साधुविगीतम् ॥

२८ यदि वाञ्छसि परपदमारोढुं मैत्रीं परिहर सह वनिताभिः।
मुह्यति मुनिरपि विषयासक्तश्चित्रा भवति हि मनसो वृत्तिः ॥

२९ नवचित्रं गुरुसक्तमुदारं विद्याभ्यासमहाव्यसनं च।
पुंसां तस्य गुणैरुपचित्रा चन्द्रमरीचिनिभा भवतीयम् ॥

३० अलिवाचालितविकसितचूते काले मदसममागमसूते।
स्मृत्वा कान्तां परिहृतमार्यं पादाकुलकं धावति पान्थः ॥

(इसमें मात्रासमक, विश्लोक, वानवासिका और उपचित्राके चरण हैं।)

३१ स्तबकस्तबकगुलकलरवमुखरिणि
विकसितमरसिजपरिमलसुरभिणि।
गिरिवरपरिसरसरसि महति खलु
रतिरतिशयमिह मम हरति विकसति ॥

३२ यदि सुखमनुपममपरमभिलषसि
परिहर युवतिषु रतिमतिनिर्भरम्।
आत्मन्यात्मानं ध्यायन्
ज्ञानं दृष्टं वन्द्यं कृत्वा ॥

लघु अक्षरोंद्वारा समाप्त होता है, अर्थात् जिसके प्रत्येक पादमें अन्तिम दो वर्ण क्रमशः गुरु-लघु होते हैं, उसे 'समानी'[2] नाम दिया गया है। जिसके चारों चरणोंके अन्तिम वर्ण क्रमशः लघु और गुरु हों, उसकी 'प्रमाणी'[3] संज्ञा है। इन दोनोंसे भिन्न स्थितिवाला छन्द 'वितान' कहलाता है। [इसके अन्तिम दो वर्ण केवल लघु अथवा केवल गुरु भी हो सकते हैं।] यहाँसे तीन अध्यायोंतक 'पादस्य' इस पदका अधिकार है तथा 'पदचतुरूर्ध्व' छन्दके पहलेतक 'अनुष्टुब्वक्त्रम्' का अधिकार है। तात्पर्य यह कि आगे बताये जानेवाले कुछ अनुष्टुप् छन्द 'वक्त्र' संज्ञा धारण करते हैं। 'वक्त्र' जातिके छन्दमें पादके प्रथम अक्षरके पश्चात् सगण (IIS) और नगण (III) नहीं प्रयुक्त होने चाहिये।[5] इन दोनोंके अतिरिक्त मगण आदि छः गणोंमेंसे किसी एक गणका प्रयोग हो सकता है। पादके चौथे अक्षरके बाद भगण (SII) का प्रयोग करना उचित है।[6] जिस 'वक्त्र' जातिके छन्दमें द्वितीय और चतुर्थ पादके चौथे अक्षरके बाद जगण (ISI) का प्रयोग हो, उसे 'पथ्या वक्त्र' कहते हैं। किसी किसीके मतमें इसके विपरीत न्यास करनेसे, अर्थात् प्रथम एवं तृतीय पादके बाद जगण (ISI) का प्रयोग करनेसे 'पथ्या' संज्ञा होती है। जब विषम पादोंमें चतुर्थ अक्षरके बाद नगण (III) हों तथा सम पादोंमें चतुर्थ अक्षरके बाद यगण (ISS) की ही स्थिति हो तो उस 'अनुष्टुब्वक्त्र' का नाम 'चपला' होता है। जब सम पादोंमें सातवाँ अक्षर लघु हो, अर्थात् चौथे अक्षरके बाद जगण (ISI) हो तो उसका नाम 'विपुला' होता है। [यहाँ सम पादोंमें तो सप्तम लघु होगा ही, विषम पादोंमें भी यगणको बाधितकर अन्य गण हो सकते हैं—यही 'विपुला' और 'पथ्या' का भेद है।] सैतव आचार्यके मतमें विपुलाके सम और विषम सभी पादोंमें सातवाँ अक्षर लघु होना चाहिये। जब प्रथम और तृतीय पादोंमें चतुर्थ अक्षरके बाद यगणको बाध कर विकल्पसे भगण (SII), रगण (SIS), नगण (III) और तगण (SSI) आदि हों तो 'विपुला' छन्द होता है।

इस प्रकार 'विपुला' अनेक प्रकारकी होती है। यहाँतक 'वक्त्र' जातिके छन्दोंका वर्णन किया गया। अनुष्टुप् छन्दके प्रथम पादके पश्चात् जब प्रत्येक चरणमें क्रमशः चार-चार अक्षर

४०९६ होता है। यह समविभिन्न अर्धसमवृत्तकी संख्या हुई। पुनः इसमें इतनी ही संख्यासे गुणा करनेपर १६७७७२१६ होता है। यह सम-अर्धसम मिश्रित विषमवृत्तकी संख्या हुई। इसमें मूलराशि गुण्य अङ्क ४०९६ को घटा देनेपर १६७७३१२० होता है। यह शुद्ध विषमवृत्तकी संख्या हुई। इसी प्रकार ४०९६ में मूलराशि ६४ घटा देनेपर ४०३२ शेष रहा। यह 'शुद्ध अर्धसम-वृत्त'की संख्या हुई।

२ समानीका उदाहरण—

वासवोऽपि विक्रमेण यत्समानतां न याति।
तस्य वल्लभस्वरस्य केन तुल्यता क्रियेत॥
ॐ नमो जनार्दनाय पापसंघमोचनाय।
दुष्टदैत्यमर्दनाय पुण्डरीकलोचनाय॥

३ प्रमाणीका उदाहरण—

सरोजयोनिरम्बरे रमातले तथाच्युतः।
भव प्रमाणमीक्षितुं क्षमौ न तौ बभूवतुः॥

४ वितानका उदाहरण—

तृष्णां त्यज धर्मं भज पापे हृदयं मा कुरु।
इष्टा यदि लक्ष्मीस्तव शिष्टाननिशं सेवय॥
हृदयं यस्य विशालं गगनाभोगसमानम्।
कमलेऽसौ मणिचित्रं नृपतिर्मूर्ध्नि वितानम्॥

५ नवशराम्बुसंसिक्त वसुधागन्धिनि श्वासम्।
किञ्चिदुन्नतपीनाग्र मुखं कामयते वक्त्रम्॥

६ दुर्भाषितेऽपि सौभाग्यं प्राप्य प्रकुरुते प्रीतिम्।
मानुमतो हरत्येव दौर्लालित्योक्तिभिर्बाला॥

७ उदाहरण—नित्यं नीतिनिषण्णस्य राज्ञो राष्ट्रं न सीदति।
न हि पथ्याशिनः काये जायन्ते व्याधिवेदनाः॥

८ „ भर्तुराज्ञानुवर्तिनी या स्त्री स्यात् सा स्थिरा लक्ष्मीः।
स्वप्रमुखाभिमानिनी विपरीता परित्याज्या॥

क्षीयमाणमध्यघना यत्रनिमासनसाम्या।
कन्यका चास्यचपला लभते भूनसौभाग्यम्॥

१० „ मैनवेन यथार्णवं तीर्णो दशरथात्मजः।
रक्षःक्षयकरीं पुनः प्रतिज्ञां रचन बाहुना॥

११ यगणके द्वारा उदाहरण—

इयं सखे चन्द्रमुखी स्मितज्योत्स्ना च मानिनी।
इन्दीवराक्षी हृदयं दन्दहीति तथापि मे॥

इसी प्रकार अन्य भी बहुत-से उदाहरण हो सकते हैं। 'विपुला' छन्दके पादोंका चौथा अक्षर प्रायः गुरु ही होता है।

(अठारह अक्षर) हों तो वह 'वर्धमान' छन्द नाम धारण करता है। उसी छन्दमें तृतीय चरणके स्थानमें जब तगण, जगण और रगण (ये नौ अक्षर) हों तो वह 'शुद्ध विराड्‌षभ' छन्द कहलाता है। अब अर्धसमवृत्तका वर्णन करूँगा॥ १—१०॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'विषमवृत्तका वर्णन' नामक तीन सौ बत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३३२॥

तीन सौ तैंतीसवाँ अध्याय

अर्धसम-वृत्तोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—जिसके प्रथम चरणमें तीन सगण, एक लघु और एक गुरु (कुल ग्यारह अक्षर) हों, दूसरे चरणमें तीन भगण एवं दो गुरु हों तथा पूर्वार्धके समान ही उत्तरार्ध भी हो, वह 'उपचित्रक' नामक छन्द है। जिसके प्रथम पादमें तीन भगण एवं दो गुरु हों और द्वितीय पादमें एक नगण (। । ।), दो जगण (। ऽ ।) एवं एक जगण हो, वह 'द्रुतमध्या' नामक छन्द होता है। [यहाँ भी प्रथम पादके समान तृतीय पाद और द्वितीय पादके समान चतुर्थ पाद जानना चाहिये। यही बात आगेके छन्दोंमें भी स्मरण रखनेयोग्य है।] जिसके प्रथम चरणमें तीन सगण और एक गुरु तथा द्वितीय चरणमें तीन भगण एवं दो गुरु हों, उस छन्दका नाम 'वेगवती' है। जिसके पहले पादमें तगण (ऽऽ ।), जगण (। ऽ ।), रगण (ऽ । ऽ) और एक गुरु तथा दूसरे चरणमें मगण (ऽऽऽ), सगण (।।ऽ), जगण (। ऽ ।) एवं दो गुरु हों, वह 'भद्रविराट्' नामक छन्द है। जिसके प्रथम पादमें सगण, जगण, सगण और एक गुरु तथा द्वितीय पादमें भगण, रगण, नगण और दो गुरु हों, उसका नाम 'केतुमती' है। जिसके पहले चरणमें दो तगण, एक जगण और दो गुरु हों तथा दूसरे चरणमें जगण, तगण, जगण एवं दो गुरु हों, उसे 'आख्यानिकी' कहते हैं। इसके विपरीत यदि प्रथम चरणमें जगण, तगण, जगण एवं दो गुरु हों और द्वितीय चरणमें दो तगण, एक जगण तथा दो गुरु हों तो उसकी 'विपरीताख्यानकी' संज्ञा होती है। जिसके पहले पादमें तीन सगण, एक लघु और एक गुरु हों तथा दूसरेमें नगण, भगण, भगण, एवं रगण मौजूद हों, उस छन्दका नाम 'हरिणप्लुता' है। जिसके प्रथम चरणमें,दो नगण, एक रगण, एक लघु और एक गुरु हो तथा दूसरे चरणमें एक नगण, दो जगण और एक रगण हो, वह 'अपरवक्त्र' नामक छन्द है। जिसके प्रथम पादमें दो नगण, एक रगण और एक यगण हो तथा दूसरेमें एक

२२ बिम्बोष्ठी कठिनोन्नतस्तनावनताङ्गी हरिणी शिशुनयना नितम्बगुर्वी।
जनयति मम मनसि मुदं मदिराक्षी मदकलकरिगमना परिणतशशिवदना॥
२३ क इयं कनकोज्ज्वला मनोहरगीतिः शशिनिर्मलवदना विशालनेत्रा।
पीनोन्नतनितम्बशालिनी मुग्धयति हृदयमतिशय तरुणानाम्॥

१ उपचित्रकमत्र विराजते चूतवनं कुसुमैर्विकसद्भिः। परपुष्टविघुष्टमनोहरं मन्मथकेलिनिकेतनमेतत्॥
२ यद्यपि शीघ्रगतिर्मृदुगामी मधुवनवानपि तु क्षमुपैति। नातिशयत्वरिता न च मृद्वी नृपतिगतिः कथिता द्रुतमध्या॥
३ तव भुञ्ज नराधिपमेतां वेगवतीं सहते समरेषु। प्रलयोर्मिमिवाभिमुखीं मां क. सकलक्षितिभृत्त्रिवहेषु॥
४ यत्पादतले चकास्ति चक्रं हस्ते वा कुलिशं सरोरुहं वा। राजा जगदेकचक्रवर्ती स्यात्स्वं भद्रविराट् समस्तनुतेऽस्मौ॥
५ हतभूरिभूमिपतिचिह्नां युद्धसहस्रलब्धजयलक्ष्मीम्। सहते न कोऽपि वसुधायां केतुमतीं नरेन्द्र तव सेनाम्॥
६ मृगावलीमञ्जुगीतनादैर्जनस्य चित्ते मुन्माप्यानि। आख्यानिकी व मारजः गराशमहासंबध्याभवने प्रगल्भी॥
७ अलं तवालीकवचोभिरेभिः स्वाथ प्रिये साधय कार्यमन्यत्। कथ कथावर्णनकौतुकं स्यादाख्यानिकी चेद् विपरीतवृत्तिः॥
आख्यानिकीके दोनों भेद उपजातिके अन्तर्गत हैं। यहाँ विशेष संज्ञा-विधानके लिये पढ़े गये हैं।
८ तव भुज नराधिप विद्विषां भयविवर्जितवेगुरुभीयसाम्। रणभूमिपराङ्मुखत्वरमना भवति शीघ्रगतिहरिणीप्लुता॥
'अपरवक्त्र' नामक छन्द वैतालीय छन्दके अन्तर्गत है; फिर भी विशेष संज्ञा विधानके लिये यहाँ पढ़ा गया है। उदाहरण—
सकृदपि कृपणेन चक्षुषा भरतं पश्यति यावदाननम्। न पुनरपरवक्त्रमीक्षते स हि सुखिनोऽभिजनस्तथाविधः॥

है; इसमें पादान्तमें विराम होता है ।] जिसके प्रत्येक पादमें मगण, नगण, यगण और एक गुरु हो, वह 'पणव'[१०] नामक छन्द है । [इसमें पाँच-पाँचपर विराम होता है ।] रगण, जगण, रगण और एक गुरुयुक्त चरणवाले छन्दका नाम 'मयूरसारिणी'[११] है । [इसमें पादान्तमें विराम होता है ।] मगण, भगण, सगण और एक गुरुयुक्त चरणवाला छन्द 'मत्ता'[१२] कहलाता है । [इसमें चार-छःपर विराम होता है ।] जिसके प्रत्येक पादमें तगण, दो जगण और एक गुरु हो, उसका नाम 'उपस्थिता'[१३] है । [इसमें दो-आठपर विराम होता है ।] भगण, मगण, सगण और एक गुरुसे युक्त पादवाला छन्द 'रुक्मवती'[१४] कहलाता है । [इसमें पादान्तमें विराम होता है ।] जिसके प्रत्येक चरणमें दो तगण, एक जगण और दो गुरु हों उसका नाम 'इन्द्रवज्रा'[१५] है । [इसमें पादान्तमें विराम होता है । यहाँसे 'वंशस्थ' के पहलेतकके छन्द बृहतीके अन्तर्गत हैं ।] जगण, तगण, जगण और दो गुरुसे युक्त पादोंवाला छन्द 'उपेन्द्रवज्रा'[१६] कहलाता है । [इसमें भी पादान्तमें विराम होता है ।] जब एक ही छन्दमें इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा— दोनोंके चरण लक्षित हों, तब उस छन्दका नाम 'उपजाति'[१७] होता है । [इन दोनोंके मेलसे जो उपजाति बनती है, उसके प्रस्तारसे चौदह भेद होते हैं । इसी प्रकार 'वंशस्थ' और 'इन्द्रवंशा' तथा 'शालिनी' और 'वातोर्मी' के मेलसे भी उपजाति छन्द होता है ।] ॥ ३-५ ॥

तीन भगण और दो गुरुसे युक्त पादवाले वृत्तका नाम 'दोधक'[१८] है । [इसमें पादान्तमें विराम होता है ।] जिसके प्रत्येक चरणमें मगण, तगण, तगण और दो गुरु हों, उसका नाम 'शालिनी'[१९] है । इसमें चार और सात अक्षरोंपर विराम होता है । जिसके प्रत्येक पादमें मगण, भगण, तगण एवं दो गुरु हों, उसे 'वातोर्मी'[२०] छन्द नाम दिया गया है । इसमें भी चार-सातपर विराम होता है । प्रत्येक चरणमें मगण, भगण, तगण, नगण, एक लघु और एक गुरु होनेसे 'भ्रमरविलसिता'[२१] (या भ्रमरविलसिता) नामक छन्द होता है । इसमें भी चार और सात अक्षरोंपर ही विराम होता है । जिसके प्रति पादमें रगण, नगण, रगण, एक लघु और गुरु हों, उसे 'रथोद्धता'[२२] कहते हैं । इसमें

---

१० मीमांसारसममृत पीत्वा शास्त्रोक्तिः पटुतरता भाति ।
एव संसदि विदुषां मध्ये जल्पामो जयपणवन्धस्त्वात् ॥

११ उदाहरण—या वनान्तराण्युपैति कृष्ण द्रष्टुमुत्सुका शिखण्डमौलिम् ।
बर्हिण विलोक्य राधिका मे सा मयूरसारिणी प्रगल्भा ॥

१२ उदाहरण—गोरोचने भृतिपुटपेयै
गौरि शौरेश्चरित विशेषे ।
प्रापाभक्तेम्यः भुवनितानां
मध्ये मत्ता विलसति कापि ॥

१३ उदाहरण—एषा नगरैकमनोहरा रम्या कनकोज्ज्वलगोभिति ।
लक्ष्मीरिव दानवसूदनं पुण्यैनरनाथमुपस्थिता ॥

१४ उदाहरण—पाण्डुतले पयोधरगौरे राजति यस्या ऊर्ध्वगरेखा ।
सा भवति स्त्री लक्षणयुक्ता रुक्मवती सौभाग्यवती च ॥

१५ उदाहरण—ये दुष्टदैत्या इह भूमिलोके द्वेषं व्यधुर्गोद्विजदेवसंघे ।
तानिन्द्रवज्रादपि दारुणाङ्गानजीघनद् यः सतत नमस्ते ॥

१६ उदाहरण—भवन्त्यमी कुन्दकलियो ये
भवन्ति लक्ष्मीस्तनकेलनेऽपि ।
उपेन्द्रवज्राधिककर्कशास्ते
क्व गतास्ते रिपुवारणानाम् ॥

१७ उदाहरण—तथोपजातिर्विविधा विदग्धे
सयाऽन्यते शु व्यवहारकाले ।
मत प्रयत्न प्रथमं विवेको
भूपेन पुरत्नपरीक्षणाय ॥

१८ दोधकमर्थविरोधकमर्थं नीचपक्ष भुवि मत्सरचित्तम् ।
स्वामपर मतिहीनममात्य मुञ्चति यो नृपति स सुखी स्यात् ॥

१९ युक्ताश्यामा स्निग्धमुग्धायताक्षी
पीनश्रोणिर्दक्षिणावर्तनाभिः ।
मध्ये क्षामा पीवरोरुस्तनी या
स्यात्सा भर्तुः शालिनी कामिनी सा ॥

२० याऽल्पोत्सेक सपदि प्राप्य किंचित्
स्याद् वा यस्याश्चपला चित्तवृत्तिः ।
या दीर्घाक्षी स्फुटरूपाद्दृहासा
त्याज्या सा स्त्री द्रुतवातोर्मिमाला ॥

२१ किं ते वक्त्र चन्द्रकान्तिविलसितं
किं वा पद्म भ्रमरविलसितम् ।
इत्येव ये जनयति मनसि
भ्रान्ति कान्ते परिसर सरसि ॥

२२ या करोति विविधैनरैः सम
संगति परगृहे रता च या ।
ज्ञानवत्सुभयतोऽपि बान्धवान्
मार्गवृत्तिरिव सा रथोद्धता ॥

कहते हैं। इसमें दस-सातपर विराम होता है। जिसके प्रत्येक चरणमें नगण, सगण, मगण, रगण, सगण, एक लघु तथा एक गुरु हों और छ, चार एवं सात अक्षरोंपर विराम हो, उसका नाम 'हरिणी'[58] है। [शिखरिणीसे मन्दाक्रान्तातकका छन्द 'अत्यष्टि'के अन्तर्गत है।] मगण, भगण, नगण, दो तगण तथा दो गुरुसे युक्त पादोंवाले छन्दको 'मन्दाक्रान्ता'[59] कहते हैं। इसमें चार, छ और सात अक्षरोंपर विराम होता है। जिसके पादोंमें मगण, तगण, नगण तथा तीन यगण हों, वह 'कुसुमितलतावेल्लिता'[60] छन्द है। [यह 'धृति' छन्दके अन्तर्गत है।] इसमें पाँच, छ तथा सात अक्षरोंपर विराम होता है। जिसके प्रत्येक चरणमें मगण, सगण, जगण, सगण, दो तगण और एक गुरु हों, उसका नाम 'शार्दूलविक्रीडित'[61] है। इसमें बारह तथा सात अक्षरोंपर विराम होता है। [यह छन्द 'अतिधृति'के अन्तर्गत है] ॥ १८—२३ ॥

'सुवदना'[62] छन्द 'कृति'के अन्तर्गत है। इसके प्रत्येक पादमें मगण, रगण, भगण, नगण, यगण, भगण, एक लघु और एक गुरु होते हैं। इसमें सात, सात, छःपर विराम होता है। जब कृतिके प्रत्येक पादमें क्रमशः गुरु और लघु अक्षर हों तो उसे 'वृत्त'[63] छन्द कहते हैं। मगण, रगण, भगण, नगण और तीन यगणसे युक्त चरणोंवाले छन्दका नाम 'स्रग्धरा'[64] है। इसमें सात-सातके तीन विराम होते हैं। [यह 'प्रकृति' छन्दके अन्तर्गत है।] जिसके प्रत्येक चरणमें भगण, रगण, नगण, रगण, नगण, रगण, नगण तथा एक गुरु हों और दस-बारह अक्षरोंपर विराम होता हो, उसे 'सुभद्रक'[65] छन्द कहते हैं। [यह 'आकृति' छन्दके अन्तर्गत है।] नगण, जगण, भगण, जगण, भगण, जगण, भगण, एक लघु और एक गुरुसे युक्त पादवाले छन्दकी 'अश्वललिता'[66] संज्ञा है। इसमें ग्यारह बारहपर विराम होता है। [यह 'विकृति'के अन्तर्गत है] ॥ २४-२५½ ॥

जिसके प्रत्येक चरणमें दो मगण, एक तगण, चार नगण, एक लघु और एक गुरु हों तथा आठ और पंद्रहपर विराम हो, उसे 'मत्तक्रीडा'[67] (या मत्ताक्रीडा) कहते हैं। [यह भी 'विकृति'में ही है।] जिसके पृथक्-पृथक् सभी पादोंमें भगण, तगण, नगण, सगण, फिर दो भगण, नगण और यगण हों

---

[58] स्तनभरनमद्गात्रश्यामा पीनोन्नतस्तनशालिनी
चकितहरिणीनेत्रच्छायामलिम्लुचलोचना ।
मनसिजधनुर्ज्यानिर्घोषैरिव श्रुतिपेशलै-
र्मनसि रचना लीलालापैः करोति ममोत्सवम् ॥

[59] प्रत्यादिष्टः समरशिरसि कां दिशं प्राप्य नष्टः
त्वं निःशेषं कुरु रिपुबलं मागमः खापि शत्रोः ।
किं नाश्रौषीः परिणतधियां नीतिवाक्यापदेशं
मन्दाक्रान्ता भवति फलिनी नारिलक्ष्मी क्षयाय ॥

[60] चम्पा नामैषा कुसुमितलतावेल्लितोत्फुल्लवृक्षा
सोत्कण्ठं कूजत्परभृतकलालापकोलाहलिन्यः ।
मध्वादौ माद्यन्मधुकरकुलोद्गीतझंकाररम्या
भामाः क्षोभं परिसरभुवः प्रीतियुक्तं नयन्ति ॥

[61] कम्बुग्रीवमुदग्रबाहुशिखरं रक्तान्तदीर्घेक्षणं
शाल्यांशुशरीरमायतभुजं विस्तीर्णवक्षःस्थलम् ।
लीलाकम्पमुदग्रं परिजने गम्भीरसत्त्वस्वरं
राज्यश्रीः समुपैति वीरपुरुषं शार्दूलविक्रीडितम् ॥

[62] या पीनोद्गाढतुङ्गस्तनजघनघनाभोगालसगति-
र्यस्याः कर्णावतंसोत्पलरुचिजयिनी नेत्रे च नयने ।
श्यामा सीमन्तिनीनां तिलकमिव मुखे या च त्रिभुवने
सम्प्राप्ता साम्प्रतं मे नयनपथमसौ दैवात् सुवदना ॥

[63] गुरुमात्रदुःखकारिकर्म निर्मितं भवत्यनर्थहेतु
तेन सत्त्वमप्रमत्तमस्पमीक्ष्यमाण उत्तमं कुरु त्वमस्त ।
विद्धि बुद्धिपूर्वकं ममोपदेशवाक्यमेतदन्तरेण
वृत्तमेतदुत्तमं महाकुलप्रसूतजन्मनां विनाश ॥

[64] रेखाभ्रूः सुप्रसन्नाननुविहितशरच्चन्द्रिका चारुमूर्तिं
र्मध्ये व्यालग्नलीलागतिरतिविपुलाभोगतुङ्गस्तनी या ।
रम्भास्तम्भोपमोरुः निबिडनिबिडजघनाभिलग्नस्त्रग्
राग्यै रसकण्ठीं स्रग्धरा काणि गोपी ॥

[65] भद्रकर्णविभिः सहस्रपि स्तुवन्ति भव ये भवत्प्रभव
मतिभराद्वनम्रशिरस प्रणम्य तव पादयो मुहुरिति ।
ते परमेश्वरस्य पदवीमवाप्य शुभमाप्नुवन्ति विपुलं
मय्यमुत्र गच्छति न पुनर्मनोहरसुतान्नापरिवृता ॥

[66] पवनविधूतवीचिचपलं विलोकयति जीवितं तनुभृतां
वपुरपि हायमानमनिशं जरावनितया वशीकृतमिदम् ।
सपदि निपीडयन्ति विषयाः प्रभाश्च नराधिपोपमरणं
परवनितानुरोध्य कुरुते न्याय इति बुद्धिरश्वललितम् ॥

[67] एवं मत्तक्रीडा नारी रतिरभसगिरिशिखरपरिक्रमणमिव
मत्ताक्रीडां हि मैथुनेषु गुणविनतमपि कुरुते ।
अंगभङ्गासीत्कारे भ्रमर विलसितसुन्दरवदना
गायति भूरिकैः मत्तगजगतिविलसितनूपुर ॥

तथा पाँच, सात, बारहपर विराम होता हो, उसकी 'तन्वी'[६८] संज्ञा है। [यह 'संस्कृति' छन्दके अन्तर्गत है।] जिसके प्रत्येक चरणमें भगण, मगण, सगण, भगण, चार नगण और एक गुरु हो तथा पाँच-पाँच, आठ और सातपर विराम होता हो, उस छन्दका नाम 'क्रौञ्चपदा' है। [यह 'अभिकृति' के अन्तर्गत है।] जिसके प्रतिपादमें दो मगण, तगण, तीन नगण, रगण, सगण, एक लघु और एक गुरु हों तथा आठ, ग्यारह और सातपर विराम होता हो, उस छन्दको 'भुजंगविजृम्भित' कहते हैं। [यह 'उत्कृति' छन्दके अन्तर्गत है।] जिसके प्रत्येक पादमें एक मगण, छः नगण, एक सगण और दो गुरु हों तथा नौ-नौ एवं पाँच अक्षरोंपर विराम होता हो, उसको 'अपवाह'[७१] या 'उपहार' नाम दिया गया है। [यह भी 'उत्कृति' में ही है] ॥ २६-२८ ॥

[अब 'दण्डक' जातिका वर्णन किया जाता है—] जिसके प्रत्येक चरणमें दो नगण और सात रगण हों, उसका नाम 'दण्डक' है; इसीको 'चण्डवृष्टिप्रपात' भी कहते हैं। [इसमें पादान्तमें विराम होता है।] उक्त छन्दमें दो नगणके सिवा रगणमें वृद्धि करनेपर 'व्याल', 'जीमूत' आदि नामवाले 'दण्डक' बनते हैं। 'चण्डप्रपात' के बाद अन्य जितने भी भेद होते हैं, वे सभी दण्डक-प्रस्तार 'प्रचित' कहलाते हैं। अब 'गाथा प्रस्तार' का वर्णन करते हैं ॥ २९-३० ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'समवृत्तनिरूपण' नामक तीन सौ चौंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३३४ ॥

तीन सौ पैंतीसवाँ अध्याय

प्रस्तार निरूपण

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! इस छन्दःशास्त्रमें जिन छन्दोंका नामतः निर्देश नहीं किया गया है, किंतु जो प्रयोगमें देखे जाते हैं, वे सभी 'गाथा' नामक छन्दके अन्तर्गत हैं। अब 'प्रस्तार' बतलाते हैं। जिसमें सब अक्षर गुरु हों, ऐसे पादमें जो आदिगुरु हो, उसके नीचे लघुका उल्लेख करे। [यह 'एकाक्षर प्रस्तार' की बात हुई। 'द्व्यक्षर प्रस्तार' में] उसके बाद इसी क्रमसे वर्णोंकी स्थापना करे, अर्थात् पहले गुरु और उसके नीचे लघु[१] ॥ १ ॥

---

६८ चन्द्रमुखी सुन्दरघनजघना कुन्दसमसमशिखरदशना या निष्कलवीणारुतिमृदुवचना मत्तचकोराक्षनयना।
निपुणतरीनोत्तरकुचकलशा मत्तगजेन्द्रललितगतिभाषा त्रिभुवनलीलावरितिलके नन्दकुमार भजतु तव तन्वी ॥

६९ या कपिलाक्षी पिङ्गलकेशी कलिरुचिरनुदिनमनुनयकठिना दीर्घतरापि स्थूलशिरापि परिवदनपरनिरतगुरुविनीता।
आततदन्ता लम्बकरोष्ठा कलुषकुचयुगलपरिचितवक्षा सा परिहार्या क्रौञ्चपदा स्त्री ध्रुवमिह निरवधिसुखमभिलषिता ॥

७० ये सततं तानेकानीकैरनुगतकरिपरिवृतैः समं तव प्रत्यर्थी युद्धाभ्याशं ध्यायमानास्तव रणमुखमरगतानिव यान्ति भूमिभुजः।
ते त्वां दृष्ट्वा संग्रामाग्रे मृगपतिरथ कृपणमनसः शक्तिनिग्रामरं किं वा सोढुं शक्यन्ते कैरपि हरिरथ शयितविरम भुजंगविजृम्भितम् ॥

७१ श्रीकण्ठ त्रिपुरदहनममृतकिरणलवकलितशिरस नदुं मृडेश्वं त्वमनुनिमग्नमतिकभुवननमितचरणयुगमीशानम्।
सततं भुजगमनवरतपरिगृहसफटिकशिखरमरातम्भं त्व बन्दे भवमदभिदमभिमतफलविभवदसुरसमपह पुरुषम् ॥

दण्डकस्य उदाहरणम्—

इह हि भवति दण्डकारण्यदेशे स्थितिः पुण्यभाजां मुनीनां मनोहारिणी त्रिदशविजयिवीर्यदृप्यद्दशग्रीवदर्पानिरासेन रामेण संसेविते।
जनकनृपतिभूमिसम्भूतसीमन्तिनी सम्पल्लवस्वच्छतराम्बुमये मुनिजनविहितारचनाभिर्नवविस्मयविकाशस्थलेऽस्मिन्युगे ॥

प्रचित दण्डकस्य उदाहरणम्—

नामधिष्टितदण्डकवनाश्रयाद्विश्रामाधिष्ठितो मुनेः पिङ्गलाचार्यनन्द्योमतः प्रचित इति प्रथम दण्डकानामिह भवेद्भिरुक्तोऽपि प्रोक्तस्तथा स्थेयः पदम्।
स्वरुचिविरचितैर्भवन्त्या उदधिवोपेक्षे पुन कण्टकमुक्तेऽपि कुरु तु वाणीमतः।
भवति इति समस्तसम्पूर्णेन्द पर्यवसाना तथा दण्डकः पूर्णत्वतो वने ॥

१ किस छन्दके कितने भेद हो सकते हैं, इसका ज्ञान करानेवाले प्रत्यय या मार्गको 'प्रस्तार' कहते हैं। प्रस्तार आदि छः हैं—प्रस्तार, नष्ट, उद्दिष्ट, एकद्व्यादिलगक्रिया, संख्या तथा अध्वयोग। एक अक्षरके छन्दका भेद जाननेके लिये पहले एक गुरु लिखकर उसके

[प्रस्तारके अनन्तर अब 'नष्ट' द्वारका वर्णन करते हैं। अर्थात् जब यह जाननेकी इच्छा हो कि गायत्री या अन्य

नीचे एक लघु लिखे । इस प्रकार एकाक्षर छन्दके दो ही भेद हुए। दो अक्षरके छन्दके भेदोंका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये एकाक्षर प्रस्तारको ही दो बार लिखे, अर्थात् पहले एक गुरु और उसके नीचे एक लघु लिखकर नीचे एक तिरछी रेखा खींच दे । फिर उसके नीचे एक गुरु लिखकर उसके अधोभागमें भी एक लघु लिख दे । तत्पश्चात् पहली आवृत्तिमें द्वितीय अक्षरके स्थानपर गुरु और द्वितीय आवृत्तिमें द्वितीय अक्षरके स्थानपर लघुका उल्लेख कर रेखा हटा दे । इस प्रकार दो अक्षरवाले छन्दके चार भेद हुए। 'द्व्यक्षर प्रस्तार'को भी पूर्ववत् दो आवृत्तियोंमें स्थापित करके प्रथम आवृत्तिमें तृतीय अक्षरोंकी जगह गुरु और द्वितीय आवृत्तिमें तृतीय अक्षरोंकी जगह लघु लिखना चाहिये । इस प्रकार 'त्र्यक्षर प्रस्तार' में आठ भेद होंगे । इसकी भी दो आवृत्तियाँ करके पूर्ववत् लघु-गुरु-स्थापन करनेसे सोलह भेद 'चतुरक्षर प्रस्तार'के होंगे । इसी प्रक्रियासे 'पञ्चाक्षर प्रस्तार'के ३२ और छ अक्षरवाले गायत्री आदि छन्दोंके प्रस्तारभेद ६४ होंगे । सप्ताक्षर आदिके भेद जाननेकी भी यही प्रणाली है । नीचे रेखाचित्रद्वारा इन सब भेदोंका स्पष्टीकरण किया जाता है—

एकाक्षर प्रस्तार —

ऽ	१
।	२

द्व्यक्षर प्रस्तार —

ऽऽ	१
।ऽ	२
ऽ।	३
।।	४

त्र्यक्षर प्रस्तार —

ऽऽऽ	१
।ऽऽ	२
ऽ।ऽ	३
।।ऽ	४
ऽऽ।	५
।ऽ।	६
ऽ।।	७
।।।	८

चतुरक्षर-प्रस्तार —

ऽऽऽऽ	१
।ऽऽऽ	२
ऽ।ऽऽ	३
।।ऽऽ	४
ऽऽ।ऽ	५
।ऽ।ऽ	६
ऽ।।ऽ	७
।।।ऽ	८
ऽऽऽ।	९
।ऽऽ।	१०
ऽ।ऽ।	११
।।ऽ।	१२
ऽऽ।।	१३
।ऽ।।	१४
ऽ।।।	१५
।।।।	१६

हो, वही उत्तर होगा । अथवा यदि वह संख्या गुरु अक्षरके स्थानमें जाती हो तो पूर्वस्थानकी संख्याको दूनी करके उसमेंसे एक निकालकर रक्खे । फिर सबको जोड़नेसे अभीष्ट संख्या निकलेगी ।] उद्दिष्टकी संख्या बतलानेका सबसे अच्छा उपाय यह है कि उस छन्दके गुरु लघु वर्णोंको क्रमशः एक पङ्क्तिमें लिख ले और उनके ऊपर क्रमशः एकसे लेकर दूने दूने अङ्क रखता जाय, अर्थात् प्रथमपर एक, द्वितीयपर दो, तृतीयपर चार—इस क्रमसे संख्या बैठाये । फिर केवल लघु अक्षरोंके अङ्कोंको जोड़ ले और उसमें एक और मिला दे तो वही उत्तर होगा । जैसे 'तनुमध्या' छन्द गायत्रीका किस संख्याका वृत्त है, यह जाननेके लिये तनुमध्याके गुरु-लघु वर्णों—तगण, यगण को ऽ ऽ । । ऽ ऽ इस प्रकार लिखना होगा । फिर क्रमशः अङ्क बिछानेपर १ २ ४ ८ १६ ३२ इस प्रकार होगा । इनमें केवल लघु अक्षरके अङ्क ४ । ८ जोड़नेपर १२ होगा । उसमें एक और मिला देनेसे १३ होगा, यही उत्तर है । तात्पर्य यह है कि 'तनुमध्या' छन्द गायत्रीका तेरहवाँ समवृत्त है । [अब बिना प्रस्तारके ही वृत्तसंख्या जाननेका उपाय बतलाते हैं । इस उपायका नाम 'संख्यान' है । जैसे कोई पूछे छः अक्षरवाले छन्दकी समवृत्त संख्या कितनी होगी ? इसका उत्तर—] जितने अक्षरके छन्दकी संख्या जाननी हो, उसका आधा भाग निकाल दिया जायगा । इस क्रियासे दोकी उपलब्धि होगी, [जैसे छः अक्षरोंमेंसे आधा निकालनेसे ३ बचा, किंतु इस क्रियासे जो दोकी प्राप्ति हुई] उसे अलग रक्खेंगे । विषम संख्यामेंसे एक घटा दिया जायगा । इससे शून्यकी प्राप्ति होगी । उसे दोके नीचे रख दें । [जैसे ३ से एक निकालनेपर दो बचा, किंतु इस क्रियासे जो शून्यकी प्राप्ति हुई, उसे २ के नीचे रक्खा गया । तीनसे एक निकालने पर जो दो बचा था, उसे भी दो भागोंमें विभक्त करके आधा निकाल दिया गया । इस क्रियासे पूर्ववत् दोकी प्राप्ति हुई और उस शून्यके नीचे रख दिया गया । अब एक बचा । यह विषम संख्या है—इसमेंसे एक बाद देनेपर शून्य शेष रहा । साथ ही इस क्रियासे शून्यकी प्राप्ति हुई, इसे पूर्ववत् २ के नीचे रख दिया गया ।] शून्यके स्थानमें दुगुना करे । [इस नियमके पालनके लिये निचले शून्यको एक मानकर उसका दूना किया गया ।] इससे प्राप्त हुए अङ्कको ऊपरके अर्धस्थानमें रक्खे और उसे उतनेसे ही गुणा करे । [जैसे शून्यस्थानको एक मानकर दूना करने और उसको अर्धस्थानमें रखकर उतनेसेही गुणा करनेपर ४ संख्या होगी । फिर शून्यस्थानमें उसे ले जाकर पूर्ववत् दूना करनेसे ८ संख्या हुई, पुनः इसे अर्धस्थानमें ले जाकर उतनी ही संख्यासे गुणा करनेपर ६४ संख्या हुई । यही पूर्वोक्त प्रश्नका उत्तर है । इसी नियमसे 'उष्णिक्'के १२८ और 'अनुष्टुप'के २५६ समवृत्त होते हैं ।] इस प्रश्नको इस प्रकार लिखकर हल करे—

अर्धस्थान	२, ८×८	६४
शून्यस्थान	०, ४×२	८
अर्धस्थान	२, २×२	४
शून्यस्थान	०, १×२	२

गायत्री आदि छन्दोंकी संख्याको दूनी करके उसमेंसे दो घटा देनेपर जो संख्या हो, वह वहाँतकके छन्दोंकी संयुक्त संख्या होती है । जैसे गायत्रीकी वृत्त संख्या ६४ का दूना करके २ घटानेसे १२६ हुआ । यह एकाक्षरसे लेकर षडक्षरपर्यन्त सभी अक्षरोंके छन्दोंकी संयुक्त संख्या हुई । जब छन्दके वृत्तोंकी संख्याको द्विगुणित करके उसे पूर्ण ज्यों-का-त्यों रहने दिया जाय, दो घटाया न जाय, तो वह अङ्क बादके छन्दकी वृत्तसंख्याका ज्ञापक होता है । गायत्रीकी वृत्तसंख्या ६४ को दूना करनेसे १२८ हुआ । यह 'उष्णिक्' की वृत्त-संख्याका योग हुआ । [अब एकद्व्यादि लग क्रियाकी सिद्धिके लिये 'मेरु प्रस्तार' बताते हैं—] अमुक छन्दमें कितने लघु, कितने गुरु तथा कितने वृत्त होते हैं, इसका ज्ञान 'मेरुप्रस्तार'से होता है । सबसे ऊपर एक चौकोर कोष्ठ बनाये । उसके नीचे दो कोष्ठ, उसके नीचे तीन कोष्ठ, उसके नीचे चार कोष्ठ आदि जितने अभीष्ट हों, बनाये । पहले कोष्ठमें एक संख्या रक्खे, दूसरी पङ्क्तिके दोनों कोष्ठोंमें एक-एक संख्या रक्खे, फिर तीसरी पङ्क्तिमें किनारेके दो कोष्ठोंमें एक-एक लिखे और बीचमें ऊपरके कोष्ठोंके अङ्क जोड़कर पूरे-पूरे लिख दे । चौथी पंक्तिमें किनारेके कोष्ठोंमें एक-एक लिखे और बीचके दो कोष्ठोंमें ऊपरके दो-दो कोष्ठोंके अङ्क जोड़कर लिखे । नीचेके कोष्ठोंमें भी यही रीति बरतनी चाहिये । उदाहरणके लिये देखिये—

माध्यंदिन-सवन-कर्मसाधन मन्त्रोपयोगी मध्यम स्वरको उत्पन्न करता है। इसके बाद उक्त प्राणवायु शिरोदेशमें पहुँचकर उच्चध्वनिसे युक्त एवं 'जगती' छन्दके आश्रित सायं-सवन कर्मसाधन मन्त्रोपयोगी स्वरको प्रकट करता है। इस प्रकार ऊपरकी ओर प्रेरित वह प्राण, मूर्धामें टकराकर अभिघात नामक संयोगका आश्रय बनकर, मुखवर्ती कण्ठादि स्थानोंमें पहुँचकर वर्णोंको उत्पन्न करता है। उन वर्णोंके पाँच प्रकारसे विभाग माने गये हैं। स्वरसे, कालसे, स्थानसे, आभ्यन्तर प्रयत्नसे तथा बाह्य प्रयत्नसे उन वर्णोंमें भेद होता है। वर्णोंके उच्चारण स्थान आठ हैं—हृदय, कण्ठ, मूर्धा, जिह्वामूल, दन्त, नासिका, ओष्ठद्वय तथा तालु। विसर्गका अभाव, विवर्तन, संधिका अभाव, शकारादेश, षकारादेश, सकारादेश, रेफादेश, जिह्वामूलीयत्व और उपध्मानीयत्व—ये 'ऊष्मा' वर्णोंकी आठ प्रकारकी गतियाँ हैं*। जिस उत्तरवर्ती पदमें आदि अक्षर 'उकार' हो, वहाँ गुण आदिके द्वारा यदि 'ओ'भावका प्रसंधान (परिज्ञान) हो रहा हो, तो उस 'ओकार'को स्वरान्त अर्थात् स्वर स्थानीय जानना चाहिये। जैसे—'गङ्गोदकम्'। इस पदमें जो 'ओ' भावका प्रसंधान है, वह स्वरस्थानीय है। इससे भिन्न संधिस्थलमें जो 'ओभाव'का परिज्ञान होता है, वह 'ओ' भाव ऊष्माका ही गतिविशेष है, यह बात स्पष्टरूपसे जान लेनी चाहिये। जैसे—'शिवो वन्द्य' इसमें जो ओकारका श्रवण होता है, वह ऊष्मस्थानीय ही है। (यह निर्णय किसी अन्य व्याकरणकी रीतिसे किया गया है, ऐसा जान पड़ता है।) जो वेदाध्ययन कुरीतिसे प्राप्त हुआ है, अर्थात् आचारहीन गुरुसे ग्रहण किया गया है, वह दग्ध-नीरस-सा होता है। उसमें अक्षरोंको खींच-तानकर हठात् किसी अर्थतक पहुँचाया गया है। वह भक्षित सा हो गया है, अर्थात् सम्प्रदाय सिद्ध गुरुसे अध्ययन न करनेके कारण वह अभक्ष्य-भक्षणके समान निस्तेज है। इस तरहका उच्चारण या पठन पाप माना गया है। इसके विपरीत जो सम्प्रदायसिद्ध गुरुसे अध्ययन किया जाता है, तदनुसार पठन-पाठन शुभ होता है। जो उत्तम तीर्थ—सदाचारी गुरुसे पढ़ा गया है, सुस्पष्ट उच्चारणसे युक्त है, सम्प्रदायशुद्ध है, सुव्यवस्थित है, उदात्त आदि शुद्ध स्वरसे तथा कण्ठ-तालु आदि शुद्ध स्थानसे प्रयुक्त हुआ है, वह वेदाध्ययन शोभित होता है। न तो विकराल आकृतिवाला, न लटके ओठोंवाला, न अव्यक्त उच्चारण करनेवाला, न नाकसे बोलनेवाला एवं न गद्गद कण्ठ या जिह्वाबन्धसे युक्त मनुष्य ही वर्णोच्चारणमें समर्थ होता है। जैसे व्याघ्री अपने बच्चोंको दाँतोंसे पकड़कर एक स्थानसे दूसरे स्थानपर ले जाती है, किंतु उन्हें पीड़ा नहीं देती, वर्णोंका ठीक इसी तरह प्रयोग करे, जिससे वे वर्ण न तो अव्यक्त (अस्पष्ट) हों और न पीड़ित ही हों। वर्णोंके सम्यक् प्रयोगसे मानव ब्रह्मलोकमें पूजित होता है। 'स्वर' तीन प्रकारके माने गये हैं—उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। इनके उच्चारणकालके भी तीन नियम हैं—ह्रस्व, दीर्घ तथा प्लुत। अकार एवं हकार कण्ठस्थानीय हैं। इकार, चवर्ग, यकार एवं शकार—ये तालुस्थानसे उच्चरित होते हैं। उकार और पवर्ग—ये दोनों ओष्ठस्थानसे उच्चरित होनेवाले हैं। ऋकार, टवर्ग, रेफ एवं षकार—ये मूर्धन्य तथा लृकार, तवर्ग, लकार और सकार—ये दन्तस्थानीय होते हैं। कवर्गका स्थान जिह्वामूल है। वकारको विद्वज्जन दन्त और ओष्ठसे उच्चरित होनेवाला बताते हैं। एकार और ऐकार कण्ठ-तालव्य तथा ओकार एवं औकार कण्ठोष्ठज माने गये हैं। एकार, ऐकार तथा ओकार और औकारमें कण्ठस्थानीय वर्ण अकारकी आधी मात्रा या एक मात्रा होता है। 'अयोगवाह' आश्रयस्थानके भागी होते हैं, ऐसा जानना चाहिये। अच् (अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ)—ये स्वर स्पर्शाभावरूप 'विवृत' प्रयत्नवाले हैं। यण् (य, व, र, ल)' 'ईषत्स्पृष्ट' एवं शल् (श, ष, स, ह) 'अर्धस्पृष्ट' अर्थात् 'ईषद्विवृत' प्रयत्नवाले हैं। शेष 'हल्' अर्थात् क से लेकर म तकके अक्षर 'स्पृष्ट प्रयत्नवाले' माने गये हैं। इनमें बाह्य प्रयत्नके कारण वर्णभेद जानना

८ जहाँ सकारका रुत्व करके होकर 'लोपः शाकल्यस्य'। (पा० सू० ८।३।१९) अथवा 'हलि सर्वेषाम्'। (पा० सू० ८।३।२२) के नियमानुसार वैकल्पिक लोप होता है और उस दशामें संधि नहीं होती वहाँ उस संधिके अभावको विवृत्ति या विवर्तन कहा गया है। जैसा कि 'याज्ञवल्क्य-शिक्षा' में कथन है—
द्वयोस्तु स्वरयोर्मध्ये संधिर्यत्र न दृश्यते।
विवृत्तिस्तत्र विज्ञेया य ईशेति निदर्शनम्॥ (श्लो० ९४)

* इन आठोंके उदाहरण क्रमशः इस प्रकार हैं—शिवो वन्द्य कः ईशः हरिश्शेते आविष्कृतम् कस्कः अग्निपति कः करोति कः पचति।

१० अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय और यम—ये 'अयोगवाह' कहलाते हैं। वे जिस स्वरपर आश्रित होते हैं उसीका स्थान उनका स्थान होता है। जैसे—'रामः' का विसर्ग कण्ठस्थानीय है और 'हरिः' का विसर्ग तालुस्थानीय।

मन्त्रके प्रभावसे जो काव्य निर्मित होता है, वह अयोनिज है। देवता आदिके लिये संस्कृत भाषाका और मनुष्योंके लिये तीन प्रकारकी प्राकृत भाषाका प्रयोग करना चाहिये। काव्य आदि तीन प्रकारके होते हैं—गद्य, पद्य और मिश्र। पादविभागसे रहित पदोंका प्रवाह 'गद्य' कहलाता है। यह भी चूर्णक, उत्कलिका और वृत्तगन्धि भेदसे तीन प्रकारका होता है[9]। छोटी-छोटी कोमल पदावलीसे युक्त और अत्यन्त मृदु सन्दर्भसे पूर्ण गद्यको 'चूर्णक' कहते हैं। जिसमें बड़े-बड़े समासयुक्त पद हों, उसका नाम 'उत्कलिका' है[10]। जो मध्यम श्रेणीके सन्दर्भसे युक्त हो तथा जिसका विग्रह अत्यन्त कुत्सित (क्लिष्ट) न हो, जिसमें पद्यकी छायाका आभास मिलता हो—जिसकी पदावली किसी पद्य या छन्दके खण्ड-सी जान पड़े, उस गद्यको 'वृत्तगन्धि' कहते हैं। यह सुननेमें अधिक उत्कट नहीं होता[11]। गद्यकाव्यके पाँच भेद माने जाते हैं—आख्यायिका, कथा, खण्डकथा, परिकथा एवं कथानिका[12]। जहाँ गद्यके द्वारा विस्तारपूर्वक ग्रन्थनिर्माता कविके वंशकी प्रशंसा की गयी हो, जिसमें कन्याहरण, संग्राम, विप्रलम्भ (वियोग) और विपत्ति (मरणादि) प्रसङ्गोंका वर्णन हो, जहाँ वैदर्भी आदि रीतियों तथा भारती आदि वृत्तियोंकी प्रवृत्तियोंपर विशेषरूपसे प्रकाश पड़ता हो, जिसमें 'उच्छ्वास' इस नामसे परिच्छेद (खण्ड) किये गये हों, जो 'चूर्णक' नामक गद्यशैलीके कारण अधिक

युक्ति (तर्क) तथा कलाओंका काव्य-रचनामें प्रवृत्त होनेवाले कविजनोंको मनन करना चाहिये। यथा—

शब्दश्छन्दोऽभिधानार्था इतिहासाश्रया कथा।
लोको युक्तिः कलाश्चेति मन्तव्या काव्यगैर्ह्यमी॥

अग्निपुराणके 'वेदश्च लोकश्च' इस अंशको ही भामहने विशद किया है। आचार्य वामनने काव्याङ्गकी संज्ञा देकर काव्यरचनाके तीन हेतुओंका उल्लेख किया है—लोक, विद्या और प्रकीर्ण। 'लोक'से उन्होंने 'लोकवृत्त' लिया है। विद्या शब्दसे शब्दस्मृति (व्याकरण), शब्दकोष, छन्दोविचिति, कलाशास्त्र, कामशास्त्र तथा दण्डनीति आदिका ग्रहण किया है तथा प्रकीर्ण शब्दसे प्रतिभा और अवधान (चित्तकी एकाग्रता) का लिया है। यथा—(काव्यालङ्कारसूत्राख्ये ग्रन्थे प्रथमेऽधिकरणे तृतीयाध्याये)—'लोको विद्या प्रकीर्णं च काव्याङ्गानि ॥ १ ॥ लोकवृत्तं लोकः ॥२॥ 'शब्दस्मृत्यभिधानकोशच्छन्दोविचितिकलाकामशास्त्रदण्डनीतिपूर्वा विद्या ॥ ३ ॥ 'लक्ष्यज्ञत्वमभियोगो वृद्धसेवावेक्षणं प्रतिभानमवधानं च प्रकीर्णम् ॥ ११ ॥' इसी प्रकार आचार्य मम्मटने शक्ति (प्रतिभा) को तथा लोकवृत्त, व्याकरणादिशास्त्र तथा पूर्ववर्ती कवियोंके काव्य आदिके अवलोकनसे प्राप्त हुई व्युत्पत्तिको काव्यका हेतु बताया है। साथ ही काव्यवेत्ताओंकी शिक्षाके अनुसार किया जानेवाला अभ्यास भी काव्यनिर्माणमें हेतु होता है, यह उनका कथन है। अन्यान्य परवर्ती आचार्योंने भी काव्यके इन हेतुओंपर विचार किया है। इन सबके मतोंपर अग्निपुराणके 'वेदश्च लोकश्च' इस कथनका ही प्रभाव परिलक्षित होता है।

७ मन्त्रसिद्धिसे भी अद्भुत काव्य-रचनाकी शक्तिका उदय होता है, इसकी चर्चा रसगङ्गाधरकारने भी की है। 'नैषध' महाकाव्यके रचयिता श्रीहर्षने भी अपने काव्यमें चिन्तामणि मन्त्रकी उपासनासे अकस्मात् श्लोक-रचनाकी शक्तिका आविर्भाव होना बताया है।

८ भामहने काव्यके दो भेद बताये हैं—गद्य और पद्य। फिर भाषाकी दृष्टिसे इनके तीन-तीन भेद और होते हैं—संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश। वामनने 'काव्यं गद्यं पद्यं च' (३।२१)—इस सूत्रके द्वारा काव्यके गद्य और पद्य दो मूल भेद माने हैं। दण्डीने अपने 'काव्यादर्श'में अग्निपुराणकथित गद्य, पद्य और मिश्र—तीनों भेदोंका उद्धरण किया है। भाषाकी दृष्टिसे भी उन्होंने काव्यके चार भेद माने हैं—संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और मिश्र। अग्निपुराणमें जो 'पादसन्तानो गद्यम्'—इस प्रकार गद्यका लक्षण किया है, दण्डीने अपने 'काव्यादर्श' में इसे अविकलरूपसे उद्धृत किया है।

९ आचार्य वामनने भी अग्निपुराणोक्त इन्हीं तीन गद्य भेदोंका उल्लेख किया है। यथा—'गद्यं वृत्तगन्धि चूर्णमुत्कलिकाप्रायं च।'

१० इसी भावकी छाया लेकर वामनने १।३ के २४, २५ वें सूत्रोंका निर्माण किया है—'अनाविद्धललितपदं चूर्णम् ॥ २४ ॥ विपरीतमुत्कलिकाप्रायम् ॥ २५ ॥'

११ वामनने जिसमें किसी पद्यका भाग प्रतीत होता हो, ऐसे गद्यको 'वृत्तगन्धि' कहा है। यथा—'पद्यभागवद् वृत्तगन्धि' ॥ १।३।२३ ॥ साहित्यदर्पणकारने भी 'वृत्तभागयुतम्' कहकर इसी भावकी पुष्टि की है। वामन और विश्वनाथ—दोनों ही स्पष्ट अग्निपुराणके ऋणभारी हैं।

१२ विश्वनाथने साहित्यदर्पणके छठे परिच्छेदमें कथा और आख्यायिकाकी चर्चा की है। उन्होंने गद्यपद्यमय काव्योंके तीन भेद माने हैं—चम्पू, विरुद और करम्भक।

सर्वत्र विख्यात होता है। प्रायः समान छन्दों अथवा वृत्तियोंमें महाकाव्यका निर्वाह किया जाता है। कैशिकी वृत्तिकी प्रधानता होनेसे काव्य-प्रबन्धमें कोमलता आती है। जिसमें प्रवासका वर्णन हो, उस रचनाको 'कलाप' कहते हैं। उसमें 'पूर्वानुराग' नामक शृङ्गाररसकी प्रधानता होती है। संस्कृत अथवा प्राकृतके द्वारा प्राप्ति आदिका वर्णन 'विशेषक' कहलाता है। जहाँ अनेक श्लोकोंका एक साथ अन्वय हो, उसे 'कुलक' कहते हैं। उसीका नाम 'सदानितक' भी है। एक-एक श्लोककी स्वतन्त्र रचनाको 'मुक्तक' कहते हैं। उसे सहृदयोंके हृदयमें चमत्कार उत्पन्न करनेमें समर्थ होना चाहिये। श्रेष्ठ कवियोंकी सुन्दर उक्तियोंसे सम्पन्न ग्रन्थको 'कोष' कहा गया है। वह ब्रह्मकी भाँति अपरिच्छिन्न रससे युक्त होता है तथा सहृदय पुरुषोंको रुचिकर प्रतीत होता है। सर्गमें जो भिन्न-भिन्न छन्दोंकी रचना होती है, वह आभासोपम शक्ति है। उसके दो भेद हैं—'मिश्र' तथा 'प्रकीर्ण'। जिसमें 'श्रव्य' और 'अभिनेय'—दोनोंके लक्षण हों, वह 'मिश्र' और सकल उक्तियोंसे युक्त काव्य 'प्रकीर्ण' कहलाता है॥ ३३–३९॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'काव्य आदिके लक्षण' नामक तीन सौ सैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३३७॥

तीन सौ अड़तीसवाँ अध्याय

नाटक निरूपण

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! 'रूपक'के सत्ताईस भेद माने गये हैं[1]—नाटक, प्रकरण, डिम, ईहामृग, समवकार, प्रहसन, व्यायोग, भाण, वीथी, अङ्क, त्रोटक, नाटिका, सट्टक, शिल्पक, कर्णा, दुर्मल्लिका, प्रस्थान, भाणिका, भाणी, गोष्ठी, हल्लीशक, काव्य, श्रीगदित, नाट्यरासक, रासक, उल्लाप्य तथा प्रेक्षण। लक्षण दो प्रकारके होते हैं—सामान्य और विशेष। सामान्य लक्षण रूपकके सभी भेदोंमें व्याप्त होते हैं और विशेष लक्षण किसी किसीमें दृष्टिगोचर होते हैं। रूपकके सभी भेदोंमें पूर्वरङ्ग[2] निवृत्त हो जानेपर देश-काल, रस, भाव, विभाव, अनुभाव, अभिनय, अङ्क और स्थिति—ये उनके सामान्य लक्षण हैं, क्योंकि इनका सर्वत्र उपसर्पण देखा जाता है। विशेष लक्षण यथावसर बताया जायगा। यहाँ पहले सामान्य लक्षण कहा जाता है, 'नाटक'को धर्म, अर्थ और कामका साधन माना गया है, क्योंकि वह करण है। उसकी इतिकर्तव्यता (कार्यारम्भकी विधि) यह है कि 'पूर्वरङ्ग'का विधिवत् सम्पादन किया जाय। पूर्वरङ्गके नान्दी आदि बाईस अङ्ग होते हैं[3]॥ १—८॥

देवताओंको नमस्कार, गुरुजनकी प्रशस्ति तथा गौ, ब्राह्मण और राजा आदिका आशीर्वाद 'नान्दी' कहलाते हैं। रूपकोंमें 'नान्दीपाठ'के पश्चात् यह लिखा जाता है कि 'नान्द्यन्ते सूत्रधारः' (नान्दीपाठके अनन्तर सूत्रधारका

१ भरतमुनिके नाट्यशास्त्र (१८। २) में रूपकके दस भेद बताये गये हैं—नाटक, प्रकरण, अङ्क, व्यायोग, भाण, समवकार, वीथी, प्रहसन, डिम और ईहामृग। अग्निपुराणमें ये दस भेद तो मिलते ही हैं, सत्रह भेद और उपलब्ध होते हैं। इन्हींमें विलासिका नामक एक भेद और जोड़कर विश्वनाथने सब भेदोंकी सम्मिलित संख्या अट्ठाईस कर दी है। उन्होंने प्रथम दस भेदोंको रूपक और शेष अठारह भेदोंको 'उपरूपक' बताया है। अग्निपुराणोक्त 'कर्णा' नामक भेद 'साहित्यदर्पण'में प्रकरणीके नामसे और 'भाणी' नामक भेद सल्लापकके नामसे लिया गया है।

२ रङ्ग कहते हैं—'रङ्गशाला' या नृत्यस्थानको। वहाँ जो सम्भावित विघ्न या उपद्रव हों उनकी शान्तिके लिये सूत्रधार और नट आदि जो 'नान्दीपाठ' और स्तुति आदि करते हैं उसका नाम पूर्वरङ्ग है।

३ नाट्यशास्त्रके पाँचवें अध्याय (—१७ तकके श्लोकों) में प्रत्याहार, अवतरण, आरम्भ, आश्रावणा, वक्त्रपाणि, परिघट्टना, संघोटना, मार्गासारित, ज्येष्ठासारित, मध्यासारित, कनिष्ठासारित—ये ग्यारह बहिर्गीत कहे गये हैं जो परदेके भीतर ही रहकर अभिनेता या प्रयोगकर्ता प्रयोगमें लाते हैं। तदनन्तर परदा उठाकर सब लोग एक साथ गीतकी योजना करते हैं। उसके गीतक, वर्धमान, ताण्डव, उत्थापन, परिवर्तन, नान्दी, शुष्कावकृष्ट, रङ्गद्वार, चारी, महाचारी और प्ररोचना—ये ग्यारह अङ्ग हैं। इन बाईस अङ्गोंका पूर्वरङ्गमें प्रयोग होता है।

४ नाटकोंमें सबसे प्रथम नान्दीपाठका विधान भरतमुनिने किया है। जैसा कि नाट्यशास्त्रके प्रथम अध्यायमें उल्लेख है—

नान्दी कृता मया पूर्वमाशीर्वचनसंयुता।
अष्टाङ्गपदसंयुक्ता विचित्रा वेदसम्मता॥

व्यञ्जित होता है, उस आनन्दकी अभिव्यक्तिको ही 'चैतन्य', 'चमत्कार' और 'रस'के नामसे वर्णन किया जाता है[1]। आनन्दका जो प्रथम विकार है, उसे 'अहंकार' कहा गया है। अहंकारसे 'अभिमान'का प्रादुर्भाव हुआ। इस अभिमानमें ही तीनों लोकोंकी समाप्ति हुई है ॥ १-३ ॥

अभिमानसे रतिकी उत्पत्ति हुई और वह व्यभिचारी आदि भाव-सामान्यके सहकारसे पुष्ट होकर 'श्रृङ्गार' के नामसे गायी जाती है। श्रृङ्गारके इच्छानुसार हास्य आदि अनेक दूसरे भेद प्रकट हुए हैं[2]। उनके अपने-अपने विशेष स्थायी भाव होते हैं, जिनका परिपोष (अभिव्यक्ति) ही उन-उन रसोंका लक्षण है ॥ ४-५ ॥

वे रस परमात्माके सत्त्वादि गुणोंके विस्तारसे प्रकट होते हैं। अनुरागसे श्रृङ्गार, तीक्ष्णतासे रौद्र, उत्साहसे वीर और सकोचसे बीभत्स रसका उदय होता है। श्रृङ्गार रससे हास्य, रौद्र रससे करुण रस, वीर रससे अद्भुत रस तथा बीभत्स रससे भयानक रसकी निष्पत्ति होती है। श्रृङ्गार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत और शान्त—ये नौ रस माने गये हैं। वैसे सहज रस तो चार (श्रृङ्गार, रौद्र, वीर एवं बीभत्स) ही हैं। जैसे विना त्यागके धनकी शोभा नहीं होती, वैसे ही रसहीन वाणीकी भी शोभा नहीं होती। अपार काव्यसंसारमें कवि ही प्रजापति है। उसको संसारका जैसा स्वरूप रुचिकर जान पड़ता है, उसके काव्यमें यह जगत् वैसे ही रूपमें परिवर्तित होता है। यदि कवि श्रृङ्गार रसका प्रेमी है, तो उसके काव्यमें रसमय जगत्का प्राकट्य होता है। यदि कवि श्रृङ्गारी न हो तो निश्चय ही काव्य नीरस होगा। 'रस' भावहीन नहीं है और 'भाव' भी रससे रहित नहीं है; क्योंकि इन भावोंसे रसकी भावना (अभिव्यक्ति) होती है। 'भाव्यन्ते रसा एभिः।' (भावित होते हैं रस इनके द्वारा)—इस व्युत्पत्तिके अनुसार ये 'भाव' कहे गये हैं[3] ॥ ६-१२ ॥

'रति' आदि आठ स्थायी भाव होते हैं तथा 'स्तम्भ' आदि आठ सात्त्विक भाव माने जाते हैं। सुखमें मनोऽनुकूल अनुभव (आनन्दकी मनोरम अनुभूति) को 'रति' कहा जाता है। दर्प आदिके द्वारा चित्तके विकासको 'हास' कहा जाता है। अभीष्ट वस्तुके नाश आदिसे उत्पन्न मनकी विकलताको 'शोक' कहते हैं। अपने प्रतिकूल आचरण करनेवालेपर कठोरताके उदयको 'क्रोध' कहते हैं। पुरुषार्थके अनुकूल मनोभावका नाम 'उत्साह' है ॥ १३-१५ ॥

चित्र आदिके दर्शनसे जनित मानसिक विकलताको 'भय' कहते हैं। दुर्भाग्यवाही पदार्थोंकी निन्दा 'जुगुप्सा' कहलाती है। किसी वस्तुके दर्शनसे चित्तका अतिशय आश्चर्यसे

---

1. भरतमुनिने रसनिष्पत्तिपर विचार किया, भावोंका भी विशद विवेचन किया, किंतु रसको ब्रह्मचैतन्यसे अभिन्न नहीं कहा। इस विषयमें वेदव्यासकी वाणी 'अग्निपुराण'में अधिक स्पष्ट हुई है। इन्होंने ब्रह्मके सहज आनन्दकी अभिव्यक्तिको ही 'चैतन्य', 'चमत्कार' तथा 'रस' नाम दिया है। वेदान्त सूत्रकार वेदव्यासके समक्ष अवश्य ही 'रसो वै सः।'—यह औपनिषद वाणी भी रही है। भरतसूत्रके व्याख्याकार आचार्य अभिनवगुप्तपादने, जिनके मतका विशद विवेचन आचार्य मम्मटने अपनी पीयूषवर्षिणी वाणीद्वारा 'काव्यप्रकाश'में किया है, पर वेदान्तदृष्टि ही अपनायी है, तथा 'रसो वै सः' का प्रमाणरूपमें उल्लेख करके 'चिदावरणभङ्ग' या 'भग्नावरणा चित्' को ही 'रस' माना है। भामहने महाकाव्यके लक्षणमें 'युक्तं लोकस्वभावेन रसैश्च सकलैः पृथक्।'—यों लिखकर रसका योग तो स्वीकार किया है, किंतु रसके भव्य स्वरूपका कोई विवेचन नहीं किया है। अभिनवगुप्त, मम्मट तथा विश्वनाथने भी व्यासद्वारा निर्दिष्ट स्वरूपको ही स्वीकार किया है। ध्वनिवादी या व्यञ्जनावादी सहृदयोंने रसके इस महामहिम स्वरूपको ही आदर दिया तथा 'ब्रह्मास्वादसहोदर' कहकर उसकी प्रतिष्ठा बढ़ायी है।

2. इस कथनके उपजीव्य हैं—भरतमुनि। उन्होंने श्रृङ्गार, रौद्र, वीर और बीभत्स रसोंसे क्रमशः हास्य, करुण, अद्भुत तथा भयानक रसकी उत्पत्ति मानी है। यथा—

> श्रृङ्गाराद्धि भवेद्धास्यो रौद्राच्च करुणो रसः।
> वीराच्चैवाद्भुतोत्पत्तिर्बीभत्साच्च भयानकः॥
> (नाट्यशास्त्र ६। ३९)

3. भरतमुनिने नाट्यशास्त्रमें यह प्रश्न उठाया है कि 'किं रसेभ्यो भावानामभिनिर्वृत्तिरुताहो भावेभ्यो रसानाम्।' (क्या रसोंसे भावोंकी अभिव्यक्ति होती है अथवा भावोंसे रसोंकी।) इसके उत्तरमें वे कहते हैं कि 'भावोंसे ही रसोंकी अभिव्यक्ति देखी जाती है, रसोंसे भावोंकी नहीं।' रसके उद्भावक होनेके कारण ही वे 'भाव' कहे जाते हैं। यह उत्तर ही अग्निपुराणकी पङ्क्तियोंमें मुखरित हुआ है। 'न भावहीनोऽस्ति रसो न भावो रसवर्जितः।'—यह उक्ति भी नाट्यशास्त्रकी कारिकाका एक अंश है। (देखिये ६। ३६।)

इच्छा, द्वेष और प्रयत्नके संयोगसे किये हुए मन, वाणी, बुद्धि तथा शरीरके कार्यको विद्वान 'अनुभाव' मानते हैं— 'स अत्र अनुभूयते उत्त अनुभवति ।' (आलम्बनमें जो अनुभूयमान है, अथवा आलम्बनमें जो दर्शनके बाद प्रकट होता है)—इस प्रकार 'अनुभाव' शब्दकी निरुक्ति (व्युत्पत्ति) की जाती है । मानसिक व्यापारकी बहुलतासे युक्त कार्य 'मनका कार्य' कहा जाता है। वह 'पौरुष' (पुरुष सम्बन्धी) एवं 'स्त्रैण' (स्त्री-सम्बन्धी)—दो प्रकारका होता है। वह इस प्रकार भी प्रसिद्ध है—॥ ४३–४६ ॥

शोभा, विलास, माधुर्य, स्थैर्य, गाम्भीर्य, ललित, औदार्य तथा तेज—ये आठ 'पौरुष कर्म' हैं । नीच जनोंकी निन्दा, उत्तम पुरुषोंसे स्पर्धा, शौर्य और चातुर्य—इनके कारण मानसिक कार्यके रूपमें शोभाका आविर्भाव होता है । जैसे— 'मननकी शोभा होती है' ॥ ४७ ४८ ॥

भाव, हाव, हेला, शोभा, कान्ति, दीप्ति, माधुर्य, शौर्य प्रगल्भता, उदारता, स्थिरता एवं गम्भीरता—ये बारह 'स्त्रियोंके विभाव' कहे गये हैं । विलास और हावको 'भाव' कहते हैं । यह 'भाव' किंचित् हर्षसे प्रादुर्भूत होता है। वाणीके यागको 'वागारम्भ' कहते हैं । उसके भी बारह भेद होते हैं । उनमें भाषणको 'आलाप', अधिक भाषणको 'प्रलाप', दुःखपूर्ण वचनको 'विलाप', बारंबार कथनको 'अनुलाप', कथोपकथनको 'संलाप', निरर्थक भाषणको 'अपलाप', वार्ताके परिवर्तनको 'संदेश' और विषयके प्रतिपादनको 'निर्देश' कहते हैं । तत्त्वकथनको 'अतिदेश' एवं निस्सार वस्तुके वर्णनको 'अपदेश' कहा जाता है । शिक्षापूर्ण वचनको 'उपदेश' और व्याजोक्तिको 'व्यपदेश' कहते हैं । दूसरोंको अभीष्ट अर्थका ज्ञान करानेके लिये उत्तम बुद्धिका आश्रय लेकर वागारम्भका व्यापार होता है । उसके भी रीति, वृत्ति और प्रवृत्ति—ये तीन भेद होते हैं ॥ ४९–५४ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'शृङ्गारादि रस, भाव तथा नायक आदिका निरूपण' नामक तीन सौ उन्तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३३९ ॥

तीन सौ चालीसवाँ अध्याय

रीति निरूपण

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ ! अब मैं 'वाग्विद्या' (काव्यशास्त्र) के सम्यक् परिज्ञानके लिये 'रीति' का वर्णन करता हूँ । उसके भी चार भेद होते हैं—पाञ्चाली, गौडी, वैदर्भी तथा लाटी । इनमें 'पाञ्चाली रीति' उपचारयुक्त, कोमल एवं लघु-समासोंसे समन्वित होती है । 'गौडी रीति'में संदर्भकी अधिकता और लंबे-लंबे समासोंकी बहुलता होती है । यह अधिक उपचारोंसे युक्त नहीं होती । 'वैदर्भी रीति' उपचाररहित, सामान्यतः कोमल संदर्भोंसे युक्त एवं समासवर्जित होती है । 'लाटी रीति' संदर्भकी स्पष्टतासे युक्त होती है, किंतु उसमें समास अत्यन्त स्पष्ट नहीं होते । यह यद्यपि अनेक विद्वानोंद्वारा परित्यक्त है, तथापि अतिबहुल उपचारयुक्त लाटी रीतिकी रचना उपलब्ध होती है ॥ १—४ ॥

(अब वृत्तियोंका वर्णन किया जाता है—) जो क्रियाओंमें विषमताको प्राप्त नहीं होती, वह वाग्रचना 'वृत्ति' कही गयी है । उसके चार भेद हैं—भारती, आरभटी, कैशिकी एवं सात्वती । 'भारती वृत्ति' वाचिक अभिनयकी प्रधानतासे युक्त होती है । यह प्रायः (नट) पुरुषके आश्रित होती है, किंतु कभी-कभी स्त्री (नटी)के आश्रित होनेपर यह प्राकृत उक्तियोंसे संयुक्त होती है । भरतके द्वारा प्रयुक्त होनेके कारण इसे 'भारती' कहा जाता है । भारतीके चार अङ्ग माने गये हैं— वीथी, प्रहसन, आमुख एवं नाटकादिकी प्ररोचना । वीथीके तेरह अङ्ग होते हैं—उद्घात्यक, लपित, असत्प्रलाप, वाक्‌श्रेणी, नालिका, विपण, व्याहार, त्रिगत, छल, अवस्यन्दित, गण्ड, मृदव एवं उचित । तापस आदिसे परिहासयुक्त वचनको 'प्रहसन' कहते हैं । 'आरभटी वृत्ति'में माया, इन्द्रजाल और युद्ध आदिकी बहुलता मानी गयी है । आरभटी वृत्तिके भेद निम्नलिखित हैं—संक्षिप्तकार, पात तथा वस्तूत्थापन * ॥ ५–११ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'रीतिनिरूपण' नामक तीन सौ चालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३४० ॥

* अग्निपुराणमें काव्यशास्त्रके सम्यक् ज्ञानके लिये रीतिज्ञान आवश्यक बताया है। इसीका सहारा लेकर आचार्य वामनने 'रीतिरात्मा काव्यस्य'—यह कहके द्वारा रीतिको [illegible] कहा है और विशिष्ट पद-रचनाका नाम रीति दिया

कुट्टमित, बिब्बोक, ललित, विहृत, क्रीडित तथा केलि—ये नायिकाओंके यौवनकालमें सहजभावसे प्रकट होनेवाले बारह अलंकार हैं। आवरणसे आवृत स्थानमें प्रियजनोंकी चेष्टाके अनुकरणको 'लीला' कहते हैं। प्रियजनके दर्शन आदिसे जो मुख और नेत्र आदिकी चेष्टाओंमें कुछ विशेष चमत्कार लक्षित होता है, उसको सहृदयजन 'विलास' कहते हैं। हर्षसे होनेवाले हास और शुष्क रुदन आदिके मिश्रणको 'किलकिञ्चित' माना गया है। चित्तमें किसी गर्वयुक्त विकारको 'बिब्बोक' कहते हैं। (इस भावके उदय होनेपर अभीष्ट वस्तुमें भी अनादर प्रकट किया जाता है।) सौकुमार्यजनित चेष्टा विशेषको 'ललित' कहते हैं। सिर, हाथ, वक्षःस्थल, पार्श्व भाग—ये क्रमशः अङ्ग हैं। भ्रूलता (भौंह) आदिको 'प्रत्यङ्ग' या 'उपाङ्ग' जाना जाता है। अङ्ग प्रत्यङ्गोंके प्रयत्नजनित कर्म (चेष्टाविशेष) के बिना नृत्य आदिका प्रयोग सफल नहीं होता। वह कहीं मुख्यरूपसे और कहीं चररूपसे साधित होता है। आकम्पित, कम्पित, धुत, विधुत, परिवाहित, आधूत, अवधूत, अञ्चित, निहञ्चित, परावृत, उत्क्षिप्त, अधोगत एवं लोलित—ये तेरह प्रकारके सिरके कर्म जानने चाहिये।[2] भ्रूकर्म सात[3] प्रकारका होता है। भ्रूसंचालनके कर्मोंमें पातन आदि कर्म मुख्य हैं। रस, स्थायी भाव एवं संचारी भावके सम्बन्धसे दृष्टिका 'अभिनय' तीन प्रकारका होता है। उसके भी छत्तीस भेद होते हैं—जिनमें दस भेद रससे प्रादुर्भूत होते हैं।[4] कनीनिकाका कर्म भ्रमण एवं चलनादिके भेदसे नौ[5] प्रकारका माना गया है। मुखके छः[6] तथा नासिकाकर्मके छः[7] एवं निःश्वासके नौ भेद माने जाते हैं। ओष्ठकर्मके छः[8], पादकर्मके छः[9],

---

२ नाट्यशास्त्र के आठवें अध्यायमें श्लोक १० से ४० तक शिरःसंचालनके विविध प्रकारोंकी विशद व्याख्या दृष्टिगोचर होती है। 'आकम्पित' आदि जो तेरह प्रकार हैं, उनके नाममात्र अग्निपुराणमें वहींसे ज्यों-के-त्यों ले लिये गये हैं। इन सबके लक्षणोंका विवेचन वहीं द्रष्टव्य है।

३ भ्रूसंचालनके जिन सात कर्मोंकी यहाँ चर्चा की गयी है, उनके नाम 'नाट्यशास्त्र'में इस प्रकार उपलब्ध होते हैं—उत्क्षेप, पातन, भ्रुकुटी, चतुर, कुञ्चित, रेचित तथा सहज। दोनों ओरकी भौंहोंको एक साथ या बारी-बारीसे ऊपरको उठाना 'उत्क्षेप' है। इसी तरह उन्हें एक साथ या एक-एक करके नीचे लाना 'पातन' है। भौंहोंके मूलभागको ऊपर उठाना 'भ्रुकुटी' कहा गयी है। दोनों ओरकी मनोहर और विस्तृत भौंहोंको तनिक-सा उठानेसे 'चतुर'कर्म सम्पादित होता है। एक या दोनों भौंहोंको मृदुभावसे सिकोड़ना 'कुञ्चित' कहा गया है। एक ही भौंहके ललितभावसे ऊपर उठानेसे 'रेचित' का सम्पादन होता है और भौंहोंका जो स्वाभाविक कर्म है, उसे 'सहज' कहा गया है। (नाट्य० ८। ११८—१२३)

४ कान्ता, भयानका, हास्या, करुणा, अद्भुता, रौद्री, वीरा तथा बीभत्सा—ये आठ 'रसदृष्टियाँ' हैं। स्निग्धा, हृष्टा, दीना, क्रुद्धा, दृप्ता, भयान्विता, जुगुप्सिता तथा विस्मिता—ये आठ 'स्थायिभाव-सम्बन्धिनी' दृष्टियाँ हैं। शून्या, मलिना, श्रान्ता, लज्जिता, ग्लाना, शङ्किता, विषण्णा, मुकुला, कुञ्चिता, अभितप्ता, जिह्मा, ललिता, वितर्किता, अर्धमुकुला, विभ्रान्ता, विप्लुता, आकेकरा, विकोशा, त्रस्ता तथा मदिरा—ये संचारीभावसे सम्बन्ध रखनेवाली बीस प्रकारकी दृष्टियाँ हैं। इन सबका विवेचन 'नाट्यशास्त्र' में बड़े विस्तारके साथ किया गया है। (द्रष्टव्य—अध्याय आठ श्लोक ४१—११४ तक)

५ भ्रमण, वलन, पात, चलन, सम्प्रवेशन, विवर्तन, समुद्वृत्त, निष्क्राम तथा प्राकृत—ये कनीनिकाके नौ कर्म हैं। नेत्रपुटके भीतर दोनों पुतलियोंका मण्डलाकार घुमाना 'भ्रमण' माना गया है। त्रिकोणगमन 'वलन' कहलाता है। नीचेकी ओर खिसकना 'पातन' है। उनके कम्पनको 'चलन' जानना चाहिये। उनको भीतर घुसा देना 'प्रवेशन' कहलाता है। कटाक्ष करनेकी क्रियाको 'विवर्तन' कहते हैं। पुतलियोंका ऊँचे उठना 'समुद्वृत्त' कहलाता है, निकलना 'निष्काम' है और स्वाभाविकरूपसे उनकी स्थिति 'प्राकृत' कहलाती है।

६ विधुत, विनिवृत्त, निर्भुग्न, भुग्न, विवृत्त तथा उद्वाहि—ये मुखके छः कर्म हैं। (द्रष्टव्य—अध्याय ८, श्लोक १५१ से ५७ तक)

७ समा, मन्दा, विकृष्टा, सोच्छ्वासा, विकूणिता तथा स्वाभाविकी—इन छः प्रकारकी 'नासिका' मानी गयी है।

(इसका लक्षण द्रष्टव्य—नाट्य० ८, श्लोक १२९—१३६ तक)

८ विवर्तन, कम्पन, विसर्ग, विनिगूहन, संदष्टक तथा समुद्ग—ये 'ओष्ठ' के छः कर्म हैं। (द्रष्टव्य—अध्याय ८ श्लोक १४१—१४०)

९ नाट्यशास्त्रमें 'पादकर्म' के छः भेदोंका उल्लेख है। उद्घट्टित, सम, अग्रतलसञ्चर, अञ्चित, कुञ्चित तथा सूचीपाद—ये पादके छः कर्म हैं। (द्रष्टव्य—अध्याय [illegible], श्लोक २६५—२८०)

इस पूर्वानुरागादिसे 'सम्भोग' शृङ्गारकी उत्पत्ति होती है। यह भी चार भागोंमें विभाजित होता है एवं पूर्वका अतिक्रमण नहीं करता। यह स्त्री और पुरुषका आश्रय लेकर स्थित होता है। उस शृङ्गारकी साधिका अथवा अभिव्यञ्जिका 'रति' मानी गयी है। उसमें वैवर्ण्य और प्रलयके सिवा अन्य सभी सात्त्विक भावोंका[1] उदय होता है। धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंमें, आलम्बन विशेषसे तथा आलम्बन विशेषके वैशेषिकसे शृङ्गाररस निरन्तर उपचय (वृद्धि) को प्राप्त होता है। 'अभिनेय' शृङ्गारके दो भेद और जानने चाहिये—'वचनक्रियात्मक' तथा 'नेपथ्यक्रियात्मक' ॥ ६—८½ ॥

हास्यरस स्थायीभाव-हासके छः भेद माने गये हैं—स्मित, हसित, विहसित, उपहसित, अपहसित और अतिहसित। जिसमें मुस्कुराहटमात्र हो, दाँत न दिखायी दें—ऐसी हँसीको 'स्मित' कहते हैं। जिसमें दन्ताग्र कुछ दीख पड़ें और नेत्र प्रफुल्लित हो उठें, वह 'हसित' कहा जाता है। यह उत्तम पुरुषोंकी हँसी है। ध्वनियुक्त हासको 'विहसित' तथा कुटिलतापूर्ण दृष्टिसे देखकर किये गये अट्टहासको 'उपहसित' कहते हैं। यह मध्यम पुरुषोंकी हँसी है। बेमौके जोर-जोरसे हँसना (और नेत्रसे आँसूतक निकल आना—यह 'अपहसित' है और बड़े जोरसे ठहाका मारकर हँसना 'अतिहसित' कहा गया है[2]। (यह अधम जनोंकी हँसी है) ॥ ९-१०½ ॥

जो 'करुण' नामसे प्रसिद्ध रस है, वह तीन प्रकारका होता है। 'करुण' नामसे प्रसिद्ध जो रस है, उसका स्थायी भाव 'शोक' है। यह तीन हेतुओंसे प्रकट होनेके कारण 'त्रिविध' माना गया है—१-धर्मोपघातजनित, २-चित्तविलासजनित और ३-शोकदायकघटनाजनित[3]। (प्रश्न) शोकजनित शोकमें कौन स्थायी भाव है ? (उत्तर) जो पूर्ववर्ती शोकसे उद्भूत हुआ है, वही ॥११ १२॥

अङ्गकर्म, नेपथ्यकर्म और वाक्कर्म—इनके द्वारा रौद्ररसके भी तीन भेद होते हैं। उसका स्थायी भाव 'क्रोध' है। इसमें स्वेद, रोमाञ्च और वेपथु आदि सात्त्विक भावोंका उदय होता है[4] ॥ १३ ॥

दानवीर, धर्मवीर एवं युद्धवीर—ये तीन [5]वीर रसके भेद हैं। वीररसका निष्पादक हेतु 'उत्साह' माना गया है। जहाँ प्रारम्भमें वीरका ही अनुसरण किया जाता है, परंतु जो आगे चलकर भयका उत्पादक होता है, वह 'भयानक रस' है। उसका निष्पादक 'भय' नामक[6] स्थायी भाव है। बीभत्सरसके 'उद्वेजन' और

---

1. स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च, स्वरभङ्ग, वेपथु, वैवर्ण्य, अश्रु तथा प्रलय—ये आठ सात्त्विक भाव हैं। इनमेंसे वैवर्ण्य और प्रलयका उदय सम्भोग-शृङ्गारमें नहीं होता।

2. 'नाट्यशास्त्र' अध्याय ६, श्लोक ४९—६१ में 'हास्यरस'का विशद विवेचन उपलब्ध होता है। स्मित हसित आदि छः भेदोंके भी विस्तृत लक्षण वहाँ दिये गये हैं।

3. अग्निपुराणमें 'करुणरस'का लक्षण अत्यन्त संक्षिप्त है। अतः उसके विभाव और अनुभावोंका परिचय देनेवाले दो श्लोक यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—

> इष्टवधदर्शनाद्वा विप्रियवचनस्य संश्रवाद्वापि ।
> एभिर्भावविशेषैः करुणरसो नाम सम्भवति ॥
> सस्वनरुदितैर्मोहागमैश्च परिदेवितैर्विलपितैश्च ।
> अभिनेयः करुणरसो देहायासाभिघातैश्च ॥
>
> (नाट्यशास्त्र ६ । ६०-६१)

4. 'रौद्ररस'के परिचायक श्लोक 'नाट्यशास्त्र'में इस प्रकार दिये गये हैं—

> युद्धप्रहारघातनविकृतच्छेदनविदारणैश्चैव ।
> संग्रामसम्भ्रमाद्यैरेभिः संजायते रौद्रः ॥
> नानाप्रहरणमोक्षैः शिरःकबन्धभुजकर्तनैश्चैव ।
> एभिश्चार्थविशेषैरस्याभिनयः प्रयोक्तव्यः ॥
> इति रौद्ररसो दृष्टो रौद्रवागङ्गचेष्टितः ।
> शस्त्रप्रहारभूयिष्ठ उग्रकर्मक्रियात्मकः ॥
>
> (नाट्यशास्त्र ६ । ६४—६६)

5. 'वीररस'का अभिनय कैसे करना चाहिये, इसे भरत मुनिने दो आर्याओंमें बताया है—

> उत्साहाध्यवसायादविषादित्वादविस्मयामोहात् ।
> विविधादर्थविशेषाद्वीररसो नाम सम्भवति ॥
> स्थितिधैर्यवीर्यगर्वैरुत्साहपराक्रमप्रभावैश्च ।
> वाक्यैश्चाक्षेपकृतैर्वीररसः सम्यगभिनेयः ॥
>
> (अध्याय ६ । ६७-६८)

6. 'भयानकरस'का विशद वर्णन 'नाट्यशास्त्र'में इस प्रकार किया गया है—

> विकृतरवसत्त्वदर्शनसंग्रामारण्यशून्यगृहगमनात् ।
> गुरुनृपयोरपराधात् कृतकश्च भयानको ज्ञेयः ॥

जो 'ऋजूक्ति' है, वह स्वाभाविक कथनरूपा है। ऋजूक्तिके भी दो भेद हैं—'अप्रश्नपूर्विका' और 'प्रश्नपूर्विका'। वक्रोक्तिके भी दो भेद हैं—'भङ्गवक्रोक्ति' और 'काकुवक्रोक्ति' ॥३२-३३॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'अभिनय और अलंकारोंका निरूपण' नामक तीन सौ बयालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३४२ ॥

तीन सौ तैंतालीसवाँ अध्याय

शब्दालंकारोंका विवरण

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ ! पद एवं वाक्यमें वर्णोंकी आवृत्तिको 'अनुप्रास' कहते हैं। वृत्त्यनुप्रासके वर्णसमुदाय दो प्रकारके होते हैं—एकवर्ण और अनेकवर्ण[1] ॥ १ ॥

एकवर्णगत आवृत्तिसे पाँच वृत्तियाँ निर्मित होती हैं—मधुरा, ललिता, प्रौढा, भद्रा तथा परुषा[3] ॥ २ ॥

मधुरावृत्तिकी रचनामें वर्गान्त पञ्चम वर्णके नीचे उसी वर्गके अक्षर तथा 'र ण म न'—ये वर्ण ह्रस्व स्वरसे अन्तरित होकर प्रयुक्त होते हैं तथा दो नकारोंका संयोग भी रहा करता है ॥ ३ ॥

वर्ग्य वर्णोंकी आवृत्ति पाँचसे अधिक बार नहीं करनी चाहिये। महाप्राण (वर्गके दूसरे और चौथे अक्षर) और ऊष्मा (श ष स ह) इनके संयोगसे युक्त उत्तरोत्तर लघु अक्षरवाली रचना मधुरा[4] कही गयी है ॥ ४ ॥

ललितामें बकार और लकारका अधिक प्रयोग होता है। (वकारसे दन्त्योष्ठ्य वर्ण और लकारसे दन्त्यवर्ण समझने चाहिये[5]।) जिसमें ऊर्ध्वगत रेफसे संयुक्त णकार, लकार एवं यवर्ग वर्ण प्रयुक्त होते हैं, किंतु टवर्ग और पञ्चम वर्ण

---

१ अनुप्रासका लक्षण अग्निदेवने 'स्यादावृत्तिरनुप्रासो वर्णानां पदवाक्ययोः।'—इस प्रकार कहा है। इसीका आधार लेकर आचार्य मम्मटने लिखा है कि 'सरूपवर्णविन्यासमनुप्रासं प्रचक्षते।' (पूर्वे विन्यास इति शेषः)। 'वर्णसाम्यमनुप्रासः।' (का० प्र० ९। ७९), 'अनुप्रासः शब्दसाम्यम्।' (सा० द० १०। ३)—ये मम्मट और विश्वनाथकथित लक्षण भी उक्त अभिप्रायके ही पोषक हैं।

२ 'नाट्यशास्त्र' १६। ४० में भरतने उपमा, दीपक, रूपक और यमक—ये चार ही अलंकार माने हैं। व्यासजीने अनुप्रासका उल्लेख किया है। भामहने अपनेसे पूर्व अनुप्रासकी मान्यता स्वीकार की है। 'वृत्त्यनुप्रास'के अग्निपुराणोक्त लक्षणका भाव लेकर भोजराजने 'सरस्वतीकण्ठाभरण'में इस प्रकार किया है—

मुहुरावर्त्यमानेषु च स्ववर्गेषु वर्तते ।
व्याप्यव्यापी स सन्दर्भो वृत्तिरित्यभिधीयते ॥
(२। ७८)

आचार्य मम्मटने 'एकस्याप्यसकृत्परः'—इस सूत्रभूत वाक्यके द्वारा अग्निपुराणोक्त लक्षणकी ओर ही संकेत किया है। इसी भावको कविराज विश्वनाथने निम्नाङ्कित शब्दोंमें विशद किया है—

अनेकस्यैकधा साम्यमसकृद्वाप्यनेकधा ।
एकस्य सकृदप्येष वृत्त्यनुप्रास उच्यते (१०। ४)

३ अग्निपुराणमें जहाँ पाँच वृत्तियोंका उल्लेख है, वहाँ परवर्ती आलोचकोंने अन्यान्य वृत्तियोंका भी उल्लेख किया है। भोजराजने वृत्तिके तीन गुण बताये हैं—सौकुमार्य, प्रौढि और मध्यमत्व। साथ ही वृत्तिके बारह भेदोंका उल्लेख किया है, जिनके नाम इस प्रकार हैं—गम्भीरा, ओजस्विनी, प्रौढा, मधुरा, निष्ठुरा, श्लथा, कठोरा, कोमला, मिश्रा, परुषा, ललिता और अमिता। अग्निपुराणकथित पाँचों वृत्तियाँ भी इनके अन्तर्गत हैं। भद्राके स्थानमें कोमला वृत्ति समझनी चाहिये।

४ भोजराजने 'मधुरा' वृत्तिके उदाहरणके रूपमें निम्नाङ्कित श्लोक प्रस्तुत किया है—

किञ्जल्कमञ्जरीशिखानम्रकाञ्चिद्धचम्पक ।
अयं मधुरयेति त्वां पश्यति मधुव्रतातुर ॥
(२। १०१)

५ भोजराजने इसमें उपनागरिका भी समावेश माना है। 'ललिता' का उदाहरण इस प्रकार है—

द्राविडीनां स्तन लीलार्पितभृङ्गे कुचे ।
आसज्य सम्पयार सर्वं पश्य स्पर्श मन्मथ ॥
(सर० क० २। २०)

यमक। इनके भी अन्य अनेक भेद[११] होते हैं ॥ ११-१७ ॥

आचार्य भामहने यमकके पाँच ही भेद दिये हैं—आदि यमक, मध्यान्त यमक, पादाभ्यास, आवली और समस्तपाद यमक। (द्रष्टव्य भामह 'काव्याल०' द्वितीय परिच्छेद)। आचार्य वामनने 'पाद-यमक', एक पादके आदिमध्यान्त यमक, दो पदोंके आदिमध्यान्त यमक, एकान्तर पादान्त यमक, एकान्तर पादादि मध्य यमक, द्विविध अक्षर यमक, त्रिविध भृङ्गमाग-शृङ्खला, परिवर्तक और चूर्ण आदि भेद माने हैं।

१२ 'सरस्वतीकण्ठाभरण'के रचयिता भोजराजने अग्निपुराणके इसी प्रसङ्गमें अपनी सुस्पष्ट वाणीद्वारा इस प्रकार कहा है—

विभिन्नार्थैकरूपाया याऽऽवृत्तिर्वर्णसंहतेः ।
अव्यपेतव्यपेतात्मा यमकं तन्निगद्यते ॥
तत्राव्यपेतयमकं व्यपेतयमकं तथा ।
स्थानास्थानविभागाभ्यां पादभेदाच्च भिद्यते ॥
यत्र पादादिमध्यान्ताः स्थानं तेषूपकल्प्यते ।
तत्स्थानयमकं तदस्थानयमकं विदुः ॥
चतुस्त्रिद्व्येकपादेषु यमकानां विकल्पना ।
आदिमध्यान्तमध्यान्तमध्याद्यन्ताश्च सर्वतः ॥
अत्यन्तबहवस्तेषां भेदाः सम्भेदयोनयः ।
सुकरा दुष्कराश्चैव दृश्यन्ते तत्र केचन ॥
(२ । ५८-६२)

उपर्युक्त श्लोकोंके अनुसार यमकोंके भेद इस प्रकार बनते हैं—'स्थानयमक' और 'अस्थानयमक'। स्थानयमकोंमें चतुष्पाद यमक, त्रिपाद यमक, द्विपाद यमक और एकपाद यमक होते हैं। चतुष्पाद यमकोंमें अव्यपेत आदि यमक, अव्यपेत मध्य यमक, अव्यपेत अन्त्य यमक, आदिमध्य यमक, आद्यन्त यमक, मध्यान्त यमक तथा आदिमध्यान्त यमक। त्रिपाद यमकोंमें अव्यपेत आदि यमक, अव्यपेत मध्य यमक, अव्यपेत अन्त्य यमक, मध्य यमक, अन्त्य यमक। द्विपाद यमकोंमें अव्यपेत आदि यमक, अव्यपेत मध्य यमक, अन्त्य यमक, आदि मध्य-यमक इत्यादि। एकपाद यमकोंमें अव्यपेत आदि यमक, अव्यपेत अन्त्य यमक, मध्य यमक। इसी प्रकार सदृश आवृत्ति और असदृश आवृत्तिमें भी अव्यपेत यमक होता है। 'अव्यपेत'का अर्थ है—अव्यवहित और 'व्यपेत'का अर्थ है—व्यवधानयुक्त। आवृत्तिकी एकरूपता और अनेकतामें भी अव्यपेत आदि मध्यादि यमक होने सम्भव हैं। व्यपेत आदि यमक, मध्य यमक, अन्त्य यमक, आदिमध्य यमक, मध्यान्त्य यमक और आदिमध्यान्त्य यमक—ये चतुष्पाद यमकोंमें होते हैं। त्रिपाद और द्विपाद यमकोंमें भी व्यपेत आदि यमक

सहृदयजन भिन्नार्थवाची पदकी आवृत्तिको 'स्वतन्त्र' एवं 'अस्वतन्त्र' पदके आवर्तनसे दो प्रकारकी मानते हैं। दो आवृत्त पदोंमें समास होनेपर 'समस्ता' और उनके समासरहित रहनेपर 'व्यस्ता' आवृत्ति कही जाती है। एक पादमें विग्रह होनेसे असमासत्वप्रयुक्त 'व्यस्ता' जानी जाती है। यथासम्भव वाक्यकी भी आवृत्ति इस प्रकार होती है। अनुप्रास, यमक आदि अलंकार लघु होनेपर भी इस प्रकार सुधीजनोंद्वारा सम्मानित होते हैं। आवृत्ति पदकी हो या वाक्य आदिकी, जिस किसी आवृत्तिसे भी जो वर्णसमूह 'समान' अनुभवमें आता है, उस आवृत्तरूपको आदिमें रखकर जो सानुप्रास पदरचना की जाती है, वह सहृदयजनोंको रसास्वाद करानेवाली होती है। सहृदयजनोंकी गोष्ठीमें जिस वाग्बन्ध (पदरचना) को कौतूहलपूर्वक पढ़ा और सुना जाता है, उसे 'चित्र'[१३] कहते हैं ॥ १८-२१½ ॥

मध्य यमक और अन्त्य यमक होते हैं। आवृत्तिकी अनेकतामें भी आदि, मध्य यमकके व्यपेतरूप देखे जाते हैं। इसी तरह आवृत्तिकी एकरूपतामें भी आदि, मध्य तथा मध्यान्त्य यमक कविजनोंकी रचनाओंमें उपलब्ध हैं। इन सबमें आवृत्ति व्यवहित होती है, इसलिये इनको 'व्यपेत यमक' कहा जाता है। जहाँ आदि, मध्य और अन्तका नियम न हो, ऐसे यमकोंको 'अस्थानयमक' कहते हैं। इनके भी व्यपेत और अव्यपेत आदि बहुत-से स्थूल-सूक्ष्म भेद हैं। इन सबका विस्तार 'सरस्वती कण्ठाभरण', द्वितीय परिच्छेदमें देखना चाहिये।

१३ चित्रके छः भेद हैं—वर्ण, स्थान, स्वर, आकार, गति और बन्ध। वर्णचित्रमें चतुर्व्यञ्जन, त्रिव्यञ्जन, द्विव्यञ्जन, एकव्यञ्जन, क्रमस्थसर्वव्यञ्जन छन्दोऽक्षरव्यञ्जन, षड्जादिस्वरव्यञ्जन, गुरुलघ्वक्षर व्यञ्जन। चतुःस्थान चित्रोंमें निष्कण्ठ्य, निस्तालव्य, निरोष्ठ्य, निर्मूर्धन्य। चतुःस्वरोंमें नियतस्वर, प्रति व्यञ्जनविन्यस्त स्वर, असंगतसमस्तस्वर। आकार-चित्रोंमें अष्टदल कमल, चतुर्दल कमल, षोडशदल कमल, चक्र, चतुरङ्ग। गति चित्रोंमें गतागत तुरगपद अर्धभ्रम द्वन्द्वाद्यभ्रम सर्वतोभद्र। बन्धचित्रोंमें द्विचतुष्कचक्रबन्ध, द्विशृङ्गाटकबन्ध त्रिविधिशिरोबन्ध, पद्मबन्ध, व्योमबन्ध, गोमूत्रिकाबन्ध मुरजबन्ध एकाक्षर मुरजबन्ध, मुरजप्रस्तार पादगोमूत्रिका, अर्धगोमूत्रिका गुणसारगोमूत्रिका, श्लोकगोमूत्रिका, शिरीगोमूत्रिका, भिन्नार्धगोमूत्रिका छन्दोगोमूत्रिका अर्धगोमूत्रिकाप्रस्तार गोमूत्रिका अर्धगोमूत्रिका शृङ्खला ... इत्यादि चित्रोंके अतिरिक्त भी अनेक बन्ध होते हैं, जैसे—शरबन्ध, धनुर्बन्ध, हलबन्ध,

यहाँ क्रमशः नीचे-नीचे विन्यस्त वर्णोंका, नीचे-नीचे स्थित वर्णोंका जबतक चतुर्थ पाद पूर्ण न हो जाय, तबतक नयन करे। चतुर्थ पाद पूर्ण हो जानेपर प्रतिलोम-क्रमसे अक्षरोंको पादाग्र-पर्यन्त ऊपर ले जाय। इस तरह तीन प्रकारका 'सर्वतोभद्र मण्डल' बनता है। कमलबन्धके तीन प्रकार हैं—चतुर्दल, अष्टदल और षोडशदल। चतुर्दल कमलको इस प्रकारसे आबद्ध किया जाता है—प्रथम पादके ऊपरी तीन पदोंवाले अक्षर सभी पादोंके अन्तमें रक्खे जाते हैं। पूर्वपादके अन्तिम वर्णको पिछले पादके आदिमें प्रातिलोम्यक्रमसे रक्खा जाय। अन्तिम पादके अन्तिम दो अक्षरोंको प्रथम पादके आदिमें निविष्ट किया जाय। यह स्थिति चतुर्दल कमलमें होती है। अष्टदल कमलमें अन्त्य पादके अन्तिम तीन अक्षरोंको प्रथम पादके आदिमें विन्यस्त किया जाता है। षोडशदल कमलमें दो अक्षरोंके बीचमें कर्णिका—मध्यवर्ती एक अक्षरका उच्चारण होता है। कर्णिकाके अन्तमें ऊपर पत्राकार अक्षरोंकी पङ्क्ति लिखे और उसे कर्णिकामें प्रविष्ट कराये। यह बात चतुर्दल कमलके विषयमें कही गयी है। कर्णिकामें एक अक्षर लिखे और दिशाओं तथा विदिशाओंमें दो-दो अक्षर लिखे, प्रवेश और निर्गमका मार्ग प्रत्येक दिशामें रक्खे। यह बात 'अष्टदल कमल'के विषयमें कही गयी है। चारों ओर विषम-वर्णोंकी उतनी ही पत्रावली बनाकर न्यास करे और मध्यवर्णिकामें सम अक्षरोंका एक अक्षरके रूपमें न्यास करे। यह बात 'षोडशदल कमल'के विषयमें बतायी गयी है। 'चक्रबन्ध' दो प्रकारका होता है—एक चार अरोंका और दूसरा छः अरोंका। उनमें जो आदिम, अर्थात् चार अरोंवाला चक्र है, उसके पूर्वार्द्धमें समवर्णोंकी स्थापना करे और प्रत्येक पादके जो प्रथम, पञ्चम आदि विषमवर्ण हैं, उनको एवं चौथे और आठवें, दोनों समवर्णोंको क्रमशः उत्तर, पूर्व, दक्षिण और पश्चिमके अरोंमें रक्खे ॥ ३९—४९ ॥

उत्तर पादार्धके चार अक्षरोंको नाभिमें रक्खे और उसके आदि अक्षरको पिछले दो अरोंमें ले जाय। शेष दो पदोंको नेमिमें स्थापित करे। तृतीय अक्षरको चतुर्थ पादके अन्तमें तथा प्रथम दो समवर्णोंको तीनों पादोंके अन्तमें रक्खे। यदि दसवाँ अक्षर सम हो तो उसे प्रथम अरेपर रक्खे और छः अक्षरोंको पश्चिम अरेपर स्थापित करे। ये दो-दो अन्तरसे स्थापित होंगे। इस प्रकार 'बृहच्चक्र'का निर्माण होगा। यह 'बृहच्चक्र' बताया गया। सामनेके दो अरोंमें क्रमशः एक-एक पाद लिखे। नाभिमें दशम अक्षर अङ्कित करे और नेमिमें चतुर्थ चरणको ले जाय। श्लोकके आदि, अन्त और दशम अक्षर समान हों तथा दूसरे और चौथे चरणोंके आदि और अन्तिम अक्षर भी समान हों। प्रथम और चौथे चरणके प्रथम, चतुर्थ और पञ्चम वर्ण भी समान हों। द्वितीय चरणको विलोमक्रमसे पढ़नेपर यदि तृतीय चरण बन जाता हो तो उसे पत्रके स्थानमें स्थापित करे तो उस रचनाका नाम 'दण्डचक्राबन्ध' समझना चाहिये। पूर्वदल (पूर्वार्द्ध) में दोनों चरणोंके द्वितीय अक्षर एक समान हों और उत्तरार्द्धमें दोनों चरणोंके सातवें अक्षर समान हों। साथ ही द्वितीय अक्षरोंकी दृष्टिसे भी पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध परस्पर समता रखते हों। दूसरे, छठे तथा चौथे, पाँचवें भी एक-दूसरेके तुल्य हों। उत्तरार्द्ध भागके सातवें अक्षर प्रथम और चतुर्थ चरणोंके उन्हीं अक्षरोंके समान हों तो उन तुल्य रूपवाले चतुर्थ और पञ्चम अक्षरकी क्रमशः योजना करनी चाहिये। समपादगत जो चतुर्थ अक्षर हैं, उनको तथा दलान्त वर्णोंको पूर्ववत् स्थापित करना चाहिये। 'मुरजबन्ध'में पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दोनोंके अन्तिम और आदि अक्षर समान होते हैं। पादार्द्ध भागमें स्थित जो वर्ण है, उसे प्रातिलोम्यानुलोम्य-क्रमसे स्थापित करे। अन्तिम अक्षरको इस प्रकार निरुद्ध करे कि वह चौथे चरणका आदि अक्षर बन जाय। चौथे चरणमें जो आदि अक्षर हो, उससे नवें तथा सोलहवें अक्षरसे पुष्करके बीच-बीचमें चार-चार अक्षरोंका निरोध करे। ऐसा करनेसे उस श्लोकबन्धद्वारा मुरज (ढोल) की आकृति स्पष्ट हो जाती है। द्वितीय चक्र 'शार्दूलविक्रीडित' छन्दमें सम्पादित होता है। 'गोमूत्रिकाबन्ध' सभी छन्दोंसे निर्मित हो सकता है। अन्य सब बन्ध अनुष्टुप् छन्दसे निर्मित होते हैं। यदि इन बन्धोंमें कवि और काव्यका नाम न हो तो मित्रभाव रखनेवाले लोग संतुष्ट होते हैं तथा शत्रु भी खिन्न नहीं होता। नाग, धनुष, व्योम, खड्ग, मुद्गर, शक्ति, द्विशृङ्गाट, त्रिशृङ्गाट, चतुःशृङ्गाट, वज्र, मुसल, अङ्कुश, रथपद, नागपद, पुष्करिणी, असिपुत्रिका (कटारी या छुरी)—इन सबकी आकृतियोंमें चित्रबन्ध लिखे जाते हैं। ये तथा और भी बहुत-से 'चित्रबन्ध' हो सकते हैं, जिन्हें विद्वान् पुरुषोंको स्वयं जानना चाहिये ॥ ५०—६ ॥*

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'शब्दालङ्कारोंका कथन' नामक तीन सौ तैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३४३ ॥

* इस अध्यायके अन्तिम बीस पचीस श्लोकोंका मूल अविकल स्पष्ट नहीं है। इसका भावार्थ अन्वेषणीय है।

कहते हैं। यह भी उपमा, रूपक, सहोक्ति तथा अर्थान्तरन्यास के भेदसे चार प्रकारका होता है। जिसमें भेद और सामान्य धर्मके साथ उपमान एवं उपमेयकी सत्ता हो, उसको 'उपमा'[2] कहते हैं, क्योंकि यत्किंचिद्‌निमित्त सारूप्यका आश्रय लेकर ही लोकयात्रा प्रवर्तित होती है। प्रतियोगी (उपमान) के समस्त और असमस्त होनेसे उपमा दो प्रकारकी मानी गयी है—'ससमासा' एवं 'असमासा'। 'घन इव श्याम' इत्यादि पदोंमें समासके कारण वाचक शब्दके लुप्त होनेसे 'ससमासा उपमा' कही गयी है, इससे भिन्न प्रकारकी उपमा 'असमासा' है। यहाँ उपमाद्योतक 'इवादि' पद, कहीं उपमेय और कहीं दोनोंके निरहसे 'ससमासा' उपमाके तीन भेद होते हैं। इसी प्रकार 'असमासा' उपमाके भी तीन भेद हैं। विशेषणसे युक्त होनेपर उपमाके अठारह भेद होते हैं। जिसमें साधारण धर्मका कथन या ज्ञान होता है—उपमाके उस भेदविशेषको धर्म या वस्तुकी प्रधानताके कारण 'धर्मोपमा'[3] एवं 'वस्तूपमा' कहा जाता है। जिसमें उपमान और उपमेयकी प्रसिद्धिके अनुसार परस्पर तुल्य उपमा दी जाती है, वह 'परस्परोपमा'[5] होती है। प्रसिद्धिके विपरीत उपमान और उपमेयकी विषमतामें जब उपमा दी जाती है, तब वह 'विपरीतोपमा'[6] कहलाती है। उपमा—जहाँ एक वस्तुसे ही उपमा देकर अन्य उपमानोंका व्यावर्तन निराकरण किया जाता है, वहाँ 'नियमोपमा'[7] होती है। यदि उपमेयके गुणादि धर्मकी अन्य उपमानोंमें भी अनुरुचि हो तो उसे 'अनियमोपमा'[8] कहते हैं॥ १—१२॥

एकसे भिन्न धर्मोंके बाहुल्यका कीर्तन होनेसे 'समुच्चयोपमा'[9] होती है। जहाँ अनेक धर्मोंकी समानता होनेपर भी उपमासे उपमेयकी विलक्षणता निश्चित हो और इसके कारण जो अतिरिक्तत्वका कथन होता हो, उसे 'व्यतिरेकोपमा'[10] कहते

---

२. उपमाका अग्निपुराणोक्त लक्षण बहुत ही सीधा सादा और स्पष्ट है। भरतमुनिने सादृश्यमूलक सभी अलंकारोंका 'उपमा' नाम दिया है—'यत्किंचित् काव्यबन्धेषु सादृश्येनोपमीयते। उपमा नाम सा ज्ञेया।' (१६।४१) व्यासजीने अपने लक्षणमें उपमान, उपमेय, सामान्य धर्म और भेदका उल्लेख किया है। भामहने भी इसीको आधार बनाकर 'विरुद्धेनोपमानेन देशकालक्रियादिभिः'—ऐसा लक्षण किया है। इसमें वाचक शब्द, सामान्य धर्म तथा भेद—तीनोंका उल्लेख किया है। उपमानोपमेयका होना तो स्वतःसिद्ध है। वामनने 'उपमानेनोपमेयस्य गुणलेशतः साम्यमुपमा।'—इस सूत्र द्वारा इसी अभिप्रायका ही पोषण किया है। दण्डीने कहा—किसी तरह भी सादृश्यकी स्पष्ट प्रतीति होती हो, उसे 'उपमा' कहा है। मम्मटने 'साधर्म्यमुपमा भेदे', विश्वनाथने 'साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमा द्वयोः।' तथा भोजराजने 'प्रसिद्धेरनुरोधेन यः परस्परमर्थयोः। भूयोऽवयवसामान्ययोगः सेहोपमा मता॥'—ऐसा लक्षण किया है। इन सबने पूर्ववर्ती आचार्योंके ही मतोंका उपपादन किया है।

३. दण्डीने अपने 'काव्यादर्श'में अग्निपुराणोक्त उपमाके इन भेदोंको ग्रहण किया है और इनके सोदाहरण लक्षण भी दिये हैं। यहाँ स्पष्टतया तुल्यता का प्रदर्शन किया गया, वहाँ 'धर्मोपमा' होती है। जैसे 'तुम्हारी हथेली कमलके समान लाल है'—इसमें लालिमारूपी साधारण धर्मका कथन होनेसे यहाँ धर्मोपमा है।

४. जिसमें धर्मके अनुपादानपूर्वक साधारण धर्म न हो,

केवल उपमान वस्तुका प्रतिपादन होनेसे वहाँ 'वस्तूपमा' होती है। जैसे—'तुम्हारा मुख कमलके समान है।'

५. 'परस्परोपमा' का दूसरा नाम 'अन्योन्योपमा' है। दण्डीने इसी नामसे इसका उल्लेख किया है। यहाँ उपमान और उपमेय—दोनों एक-दूसरेके उपमेय तथा उपमान बनते हैं, वहाँ 'परस्परोपमा' होती है। जैसे—'तुम्हारे मुखके समान कमल है और कमलके समान तुम्हारा मुख है।'

६. दण्डीने अपने 'काव्यादर्श'में विपरीतोपमाका 'विपर्यासोपमा' के नामसे उल्लेख किया है। जहाँ प्रसिद्धिके विपरीत उपमानोपमेयभाव गृहीत होता है, वहाँ विपरीतोपमा होती है। जैसे—'खिला हुआ कमल तुम्हारे मुखके समान प्रतीत होता था'—इत्यादि।

७. दण्डीने इसका उदाहरण इस प्रकार प्रस्तुत किया है—'तुम्हारा मुख कमलके ही समान है, दूसरी किसी वस्तुके समान नहीं।'

८. इसका उदाहरण दण्डीके 'काव्यादर्श' में इस प्रकार दिया गया है—'कमल तो तुम्हारे मुखका अनुकरण करता ही है, यदि दूसरी वस्तुएँ (चन्द्र आदि) भी तुम्हारे मुखके समान हैं तो रहें।'

९. 'समुच्चयोपमा' का उदाहरण दण्डीने इस प्रकार किया है—'सुन्दरि! तुम्हारा मुख केवल कान्तिसे ही नहीं, आह्लादन करनेसे भी इन्दुका अनुकरण करता है।' यहाँ कान्तिगुण और आह्लादकत्व—दोनोंका समुच्चय होनेके कारण 'समुच्चयोपमा' कही गयी है।

१०. 'व्यतिरेकोपमा' को ही अर्वाचीन आलंकारिकोंने 'व्यतिरेक' नामक अलंकार माना है। दण्डीने इसका उल्लेख नहीं किया है।

चलता जाय तो उसको 'गमनोपमा[२०]' कहा जाता है। इसके सिवा उपमाके और भी पाँच भेद होते हैं—प्रशंसा[२१], निन्दा[२२], कल्पिता[२३], सदृशी[२४] एवं किंचित्सदृशी[२५]। गुणोंकी समानता देखकर उपमेयका जो तत्त्व उपमानसे रूपित अभेदेन प्रतिपादित होता है, उसे 'रूपक[२६]' मानते हैं। अथवा भेदके तिरोहित होनेपर उपमा ही 'रूपक' हो जाती है। तुल्यधर्मसे युक्त दो पदार्थोंका एक साथ रहनेका वर्णन 'सहोक्ति[२७]' कहा जाता है ॥ १३–२२ ॥

पूर्ववर्णित वस्तुके समर्थनके लिये साधर्म्य अथवा वैधर्म्यसे जो अर्थान्तरका उपन्यास किया जाता है, उसे 'अर्थान्तरन्यास' कहते हैं। जिसमें चेतन या अचेतन पदार्थकी अन्यथास्थित परिस्थितिको दूसरी तरहसे माना जाता है, उसको 'उत्प्रेक्षा[२९]' कहते हैं। लोकसीमातीत वस्तु

गया है—'तुम्हारे मुखके समान कमल है और कमलके समान तुम्हारा मुख है।' इसे ही 'उपमेयोपमा' भी कहते हैं।

२० काव्यादर्शकारने 'गमनोपमा' का उल्लेख नहीं किया है। अग्निपुराणमें दिये गये लक्षणके अनुसार हम 'गमनोपमा'को 'अन्योन्योपमा' की शाखा कह सकते हैं। उदाहरणके लिये निम्नाङ्कित श्लोक द्रष्टव्य है—

> कौमुदीव भवती विभाति मे कातराक्षि भवतीव कौमुदी।
> अम्बुजेन तुलितं विलोचनं लोचनेन च तवाम्बुजं समम्॥

२१–२५ इससे पहले उपमाके अठारह भेद कहे गये हैं। इन्हीं भेदोंका विस्तार करके दण्डीने बत्तीस प्रकारकी उपमाएँ प्रदर्शित की हैं। उक्त भेदोंके अतिरिक्त जो उपमाके 'प्रशंसा' आदि पाँच भेद और कहे गये हैं, उनका आधार है—भरतका 'नाट्यशास्त्र' (द्रष्टव्य १६। ४६)। भरतमुनिने प्रशंसा आदि पाँचों भेदोंके जो उदाहरण दिये हैं, वे भी सोलहवें अध्यायके श्लोक सैंतालीससे इक्यावनतक द्रष्टव्य हैं।

२६ अग्निपुराणोक्त 'रूपक' का लक्षण नाट्यशास्त्रोक्त लक्षणका संक्षिप्त रूप है। अग्निपुराणके ही भावको लेकर दण्डीने 'उपमैव तिरोभूतभेदा रूपकमुच्यते'—ऐसा लक्षण किया है। अर्वाचीन आलंकारिकोंने 'रूपक' के बहुत-से भेदों और उपभेदोंकी चर्चा की है। 'रूपक'का उदाहरण 'नाट्यशास्त्र' १६। ५८ में द्रष्टव्य है।

२७ दण्डीने गुण और क्रियाका सहभावसे कथन 'सहोक्ति' माना है और 'सह दीर्घा मम श्वासैरिमाः सम्प्रति रात्रयः।' (इस समय मेरी लम्बी साँसोंके साथ ये रातें भी बहुत बड़ी हो गयी हैं) ऐसा उदाहरण दिया है।

२८ अर्थान्तरन्यासका जो लक्षण अग्निपुराणमें दिया गया है, लगभग इसीकी छायाको लेकर भामहने इस प्रकार अपने ग्रन्थमें उक्त अलंकारका लक्षण लिखा है—

> उपन्यसनमन्यस्य यदर्थस्योदिताद्ऋते।
> ज्ञेयः सोऽर्थान्तरन्यासः पूर्वार्थानुगतो यथा॥
>
> (का० २। ७१)

वामनने इसमें सादृश्य, असादृश्य (साधर्म्य, वैधर्म्य) की चर्चा नहीं की है परंतु 'पूर्वार्थानुगत'—यह विशेषण देकर उसी अर्थको व्यक्त किया है। अर्थात् जिस अर्थान्तरका उपन्यास किया जाय, वह पूर्वोदित अर्थका अनुगामी होना चाहिये। यह अनुगमन सादृश्य अथवा वैसादृश्यसे ही सम्भव है। वामनने अग्निपुराण तथा भामहके भावोंको अपने सूत्रमें और भी अधिक स्पष्ट किया है। यथा—

> उक्तसिद्ध्यै वस्तुनोऽर्थान्तरस्यैव न्यसनमर्थान्तरन्यासः॥
>
> (का० सू० ४। ३। २१)

काव्यादर्शकार दण्डीने इसके लक्षणको और भी स्वच्छरूपसे प्रस्तुत किया है। यथा—

> ज्ञेयः सोऽर्थान्तरन्यासो वस्तु प्रस्तुत्य किंचन।
> तत्साधनसमर्थस्य न्यासो योऽन्यस्य वस्तुनः॥
>
> (२। १६९)

आचार्य मम्मटतक पहुँचते-पहुँचते इसका लक्षण पूर्णतः निखर उठा है। वे लिखते हैं—

> सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते।
> यत्तु सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा॥
>
> (का० प्र० १०। १००)

अर्थात्—सामान्य अथवा विशेषका उससे भिन्न विशेष और सामान्यसे जो समर्थन किया जाता है, वह 'अर्थान्तरन्यास' है। यह समर्थन साधर्म्य अथवा वैधर्म्यको लेकर किया जाता है। इस प्रकार अर्थान्तरन्यासके चार भेद होते हैं। इनके उदाहरण काव्यप्रकाशमें द्रष्टव्य हैं।

२९ इसी लक्षणको कुछ और विशद करते हुए भामहने इस प्रकार कहा है—

> अविवक्षितसामान्या किंचिच्चोपमया सह।
> अतद्गुणक्रियायोगादुत्प्रेक्षातिशयान्विता॥
>
> (का० २। ९१)

वामनने अग्निदेव तथा भामह—दोनोंके भावोंको अपने सूत्रमें इस प्रकार संकलित किया है—

धर्मका कीर्तन 'अतिशयालङ्कार'[30] कहलाता है। यह 'सम्भव' और 'असम्भव'के भेदसे दो प्रकारका माना जाता है। जिसमें विशेष्यदर्शनके लिये गुण, जाति एवं क्रियादिकी विकलताका प्रदर्शन—अनपेक्षताका प्रकाशन हो, उसको 'विशेषोक्ति'[31] कहा जाता है। जिसमें प्रसिद्ध हेतुकी व्यावृत्तिपूर्वक (अर्थात् उसका अभाव दिखाते हुए) अन्य किसी कारणकी उद्भावना की जाय अथवा स्वाभाविकता स्वीकार की जाय अर्थात् बिना किसी कारणके ही स्वाभाविक रूपसे कार्यकी उत्पत्ति मानी जाय, उसे 'विभावना' कहते हैं। परस्पर असंगत पदार्थोंका जहाँ युक्तिके द्वारा विरोधपूर्वक संगतिकरण किया जाय, वह 'विरोधालङ्कार'[33] होता है। जिसकी सिद्धि अभिलषित हो, ऐसे

अतद्रूपस्यान्यथाध्यवसानमतिशयार्थमुत्प्रेक्षा ॥

(का० सू० ४।३।९)

दण्डीका लक्षण इस प्रकार है—

अन्यथैव स्थिता वृत्तिश्चेतनस्येतरस्य वा।
अन्यथोत्प्रेक्ष्यते यत्र तामुत्प्रेक्षां विदुर्यथा ॥

(२।२२१)

यही लक्षण अग्निपुराणमें भी है। दण्डीने इसे ज्यों-का-त्यों ले लिया है। अन्तर केवल इतना ही है कि अग्निपुराणमें 'मन्यते' क्रियाका प्रयोग है और काव्यादर्शमें 'उत्प्रेक्ष्यते' क्रियाका।

आचार्य मम्मटने थोड़े-से शब्दोंमें ही उत्प्रेक्षाका सर्वसम्मत रूप रख दिया है। यथा—

'सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्।'

(का० प्र० १०।९२)

अर्थात्—'प्रकृत (वर्ण्य उपमेय) की सम (उपमान) के साथ सम्भावना 'उत्प्रेक्षा' कहलाती है।'

३० यह अतिशय ही आगे चलकर 'अतिशयोक्ति'के नामसे प्रसिद्ध हुआ है। अग्निपुराणके इस सूक्ष्म लक्षणको आचार्य भामहने विशद करते हुए कहा है कि—किसी 'कारणवश लोकोत्तर अर्थका बोधक जो वचन है, उसे 'अतिशयोक्ति' अलंकार मानते हैं। वामनने इसके असम्भव-पक्षको नहीं लिया है। वे सम्भाव्य धर्म तथा उसके उत्कर्षकी कल्पनाको ही 'अतिशयोक्ति' मानते हैं (४।३।१०)। लोकसीमातीत होनेपर ही वस्तु धर्ममें उत्कर्ष सिद्ध होता है। आचार्य दण्डीने अग्निपुराणोक्त लक्षणके केवल भावकी ही नहीं, शब्दकी भी छाया ली है। यथा—

विवक्षा या विशेषस्य लोकसीमातिवर्तिनी।
असावतिशयोक्तिः स्यादलङ्कारोत्तमा यथा ॥

(काव्यादर्श २।२१४)

आचार्य मम्मटके द्वारा 'अतिशयोक्ति'का विकसित स्वरूप इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है। उपमानके द्वारा उपमेयका निगरण करके जो उसीसे अभेद-कथनरूप अध्यवसान करता है, वह एक प्रकारकी 'अतिशयोक्ति' है। प्रस्तुत अर्थका अन्यरूपसे वर्णन दूसरे प्रकारकी, यदि के समानार्थक शब्दको लगाकर की गयी कल्पना तृतीय प्रकारकी और कार्य-कारणके पौर्वापर्यका विपर्यय चतुर्थ प्रकारकी 'अतिशयोक्ति' है।

(का० प्र० १०।१००-१०१)

३१ दण्डीके 'काव्यादर्श'में अग्निपुराणकी ही छायामें 'विशेषोक्ति' लक्षित करायी गयी है। भामहने भी अग्निपुराणके ही भाव तथा शब्दकी छाया ली है। यथा—

एकदेशस्य विगमे या गुणान्तरसंस्थितिः।
विशेषप्रथनायासौ विशेषोक्तिर्मता यथा ॥ (३।२३)

वामनने भी 'एकगुणहानिकल्पनायां साम्यदार्ढ्यं विशेषोक्तिः।' —इस सूत्रमें ऐसा ही भाव व्यक्त किया है। अर्वाचीन आलंकारिकोंने "कारण प्राप्त होनेपर भी जो कार्यका न होना बताया जाय, उसे 'विशेषोक्ति' कहा है।" जैसा कि आचार्य मम्मटका कथन है—

'विशेषोक्तिरखण्डेषु कारणेषु फलावचः ॥'

(१०।१०८)

३२ काव्यादर्शकार दण्डीने अग्निपुराणमें दिये गये लक्षणकी आनुपूर्वीको ही अपने ग्रन्थमें उद्धृत किया है। भामहने कारणभूत क्रियाका निषेध होनेपर भी उसके फलकी 'व्यक्ति'को 'विभावना' माना है। इसी भावको वामनने भी अपने सूत्रमें अभिव्यक्त किया है। यथा—

'क्रियाप्रतिषेधे प्रसिद्धतत्फलव्यक्तिर्विभावना ॥'

(काव्यालंकार, सू० ४।३।१३)

आचार्य मम्मटने अपनी कारिकामें उक्त सूत्रको ही ग्रहण किया है—

'क्रियायाः प्रतिषेधेऽपि फलव्यक्तिर्विभावना।'

'सरस्वतीकण्ठाभरण'के रचयिता राजा भोजने 'विभावना'के अपने लक्षणमें अग्निपुराणकी शब्दावलीको ही अंगीकार किया है।

३३ भामहने 'विरोध'का लक्षण इस प्रकार बताया—'विशेषता बतानेके लिये किसी गुण या क्रियाके विरुद्ध अन्य क्रियाका वर्णन हो तो उसे विद्वान् 'विरोध' कहते हैं'—

अर्थका साधक 'हेतु'[34] अलंकार कहलाता है। उस 'हेतु' अलंकारके भी 'कारक' एवं 'ज्ञापक'—ये दो भेद हो जाते हैं। इनमें कारक-हेतु कार्य-जन्मके पूर्वमें और पश्चात् भी रहनेवाला है, जो 'पूर्वशेष' कहा जाता है और उन्हीं भेदोंमें कार्य कारणभावसे अथवा किसी नियामक स्वभावसे या अविनाभावक दर्शनसे जो अविनाभावका नियम होता है, वह ज्ञापक हेतुका भेद है। 'नदीपूर' आदिका दर्शन ज्ञापकका उदाहरण है[35] ॥ २४—३२ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'अर्थालंकारका वर्णन' नामक तीन सौ चौवालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३४४ ॥

तीन सौ पैंतालीसवाँ अध्याय

शब्दार्थोभयालंकार

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ ! 'शब्दार्थालंकार' शब्द और अर्थ दोनोंको समानरूपसे अलंकृत करता है; जैसे एक ही अङ्गमें धारण किया हुआ हार कामिनीके कण्ठ एवं कुचमण्डलकी कान्तिको बढ़ा देता है। 'शब्दार्थालंकार'के छः भेद काव्यमें उपलब्ध होते हैं—प्रशस्ति, कान्ति, औचित्य, संक्षेप, यावदर्थता तथा अभिव्यक्ति। दूसरोंके मर्मस्थलको द्रवीभूत करनेवाले वाक्-कौशलको 'प्रशस्ति' कहते हैं। वह प्रशस्ति 'प्रेमोक्ति' एवं 'स्तुति'के भेदसे दो प्रकारकी मानी गयी है। प्रेमोक्ति और स्तुतिके पर्यायवाचक शब्द क्रमशः 'प्रियोक्ति' एवं 'गुण-कीर्तन' हैं। वाच्य-वाचककी सर्वसम्मत एवं रुचिकर संगतिको 'कान्ति' कहते हैं। यदि ओज एवं माधुर्ययुक्त सदर्भमें—वस्तुके अनुसार रीति एवं वृत्तिके अनुसार रसका प्रयोग हो तो औचित्यका प्रादुर्भाव होता है। अल्पसंख्यक शब्दोंसे अर्थ-बाहुल्यका संग्रह 'संक्षेप' तथा शब्द एवं वस्तुका अन्यूनाधिक्य 'यावदर्थता' कहा जाता है। अब प्राकट्यको 'अभिव्यक्ति' कहते हैं। उसके दो भेद हैं—'श्रुति' और 'आक्षेप'। शब्दके द्वारा अपने अर्थका उद्घाटन 'श्रुति' कहा जाता है। श्रुतिके दो भेद हैं—'नैमित्तिकी' और 'पारिभाषिकी'। 'संकेत' को परिभाषा कहते हैं। परिभाषाके सम्बन्धसे ही यह पारिभाषिकी है। पारिभाषिकीको 'मुख्या' और नैमित्तिकीको 'औपचारिकी' कहते हैं। [ये ही क्रमशः 'अभिधा' और 'लक्षणा' हैं।] उस औपचारिकीके भी दो भेद हैं। जिसके द्वारा अभिधेय अर्थसे स्खलित हुआ शब्द किसी निमित्तवश अमुख्य अर्थका बोधक होता है, यह वृत्ति 'औपचारिकी' है। ये ही दोनों भेद नैमित्तिकीके भी होते हैं। वह लक्षणायोगसे 'लाक्षणिकी'

गुणस्य वा क्रियाया वा विरुद्धान्यक्रियाभिधा। या विशेषाभिधानाय विरोधं तं विदुर्बुधाः ॥ (१ । २५)

दण्डीने "जहाँ प्रस्तुत वस्तुकी विशेषता (उत्कर्ष) दिखानेके लिये परस्परविरुद्ध संसर्ग (एकत्र अवस्थान) प्रदर्शित किया जाय, वह 'विरोध' नामक अलंकार है"—ऐसा लक्षण किया है। वामनने "विरुद्धाभासत्वं विरोधः। (४ । ३ । १२)"—ऐसा कहा है। 'काव्यप्रकाश'में विरोधः सोऽविरुद्धेऽपि विरुद्धत्वेन यद्वचः।—ऐसा विरोधका लक्षण देखा जाता है। इन सबकी शब्दावलीमें किंचित् भेद होते हुए भी अभिप्राय सबका एक ही जान पड़ता है। विरोधपूर्वक संगतिकरणको कुछ लोग 'असंगति' अलंकार भी मानते हैं।

[34] अग्निपुराणमें वर्णित 'हेतु' अलंकारको भामहने चमत्कार-शून्य बताकर अस्वीकार कर दिया है। उन्होंने 'सूक्ष्म' और 'लेश' को भी अलंकार नहीं माना है। परंतु दण्डीने 'वाचामुत्तमभूषणम्'—यों कहकर इन तीनोंको उत्तम अलंकारकी कोटिमें रखा है। उन्होंने 'हेतु'का कोई सामान्य लक्षण नहीं दिया है, परंतु अग्निपुराणोक्त कारक और ज्ञापक दोनों हेतुओंका उल्लेख किया है। अतः अग्निपुराणोक्त लक्षण ही उन्हें अभिमत है। अग्नि धूमका कारक हेतु है और धूम अग्निका ज्ञापक हेतु। इस प्रकार हेतुके दोनों भेद देखे जाते हैं। आचार्य दण्डी 'हेतु'में ही 'काव्यलिङ्ग', 'अनुमान' तथा 'कार्यकारणमूलक अर्थान्तरन्यास' का अन्तर्भाव मानते हैं। अतएव उन्होंने इन सबके पृथक् लक्षण आदि नहीं लिखे हैं। भोजराजने 'हेतुः क्रियाया जनकः' 'हेतु'—ऐसा लक्षण किया है।

[35] जैसे नदीके जलप्रवाहके दर्शनसे उसके उद्गम-स्थानकी सत्ता सिद्ध होती है तथा धूमके दर्शनसे अग्निकी सत्ता सूचित होती है। इस तरहके स्थलोंमें ज्ञापक हेतु समझना चाहिये।

और गुणयोगसे 'गौणी' कहलाती है। अभिधेय अर्थके साथ सम्बद्ध रहकर जो अन्यार्थकी प्रतीति होती है, उसको 'लक्षणा' कहते हैं। अभिधेयके साथ सम्बन्ध, सामीप्य, समवाय, वैपरीत्य एवं क्रियायोगसे लक्षणा पाँच प्रकारकी मानी जाती है। गुणोंकी अनन्तता होनेसे उनकी विवक्षाके कारण गौणीके अनन्त भेद हो जाते हैं। लोकसीमाके पालनमें तत्पर कविद्वारा जब अप्रस्तुत वस्तुके धर्म प्रस्तुत वस्तुपर सम्यग्रूपसे आहित—आरोपित किये जाते हैं, तब उसे 'समाधि'[1] कहते हैं। जिसके द्वारा श्रुतिसे अनुपलब्ध अर्थ चैतन्ययुक्त होकर भासित होता है, वह 'आक्षेप' कहा जाता है। इसको 'ध्वनि' भी माना गया है, क्योंकि वह ध्वनिसे ही व्यक्त होता है। इसमें ध्वनिके आश्रयसे शब्द और अर्थके द्वारा स्वयं सकल्पित अर्थ ही व्यञ्जित होता है। अभीष्ट कथनका विशेष विवक्षासे अर्थात् उसमें और भी उत्कर्षकी प्रतीति करानेके लिये जो प्रतिषेध-सा होता है, उसको 'आक्षेप' कहते हैं। अधिकार (प्रकरण) से पृथक् अर्थात् अप्रकृत या अप्रस्तुत अन्य वस्तुकी जो स्तुति की जाती है, उसे 'अप्रस्तुतस्तोत्र' (अप्रस्तुतप्रशंसा) कहते हैं। जहाँ किसी एक वस्तुके कहनेपर उसके समान विशेषणोंके दूसरे अर्थकी प्रतीति हो, उसे विद्वान् पुरुष अर्थकी संक्षिप्तताके कारण 'समासोक्ति' कहते हैं। वास्तविक पदार्थका अपह्नव या निषेध करके किसी अन्य पदार्थको सूचित करना 'अपह्नुति' है। जो अभिधेय दूसरे प्रकारसे कहा जाता है अर्थात् सीधे न कहकर प्रकारान्तरसे घुमा-फिराकर प्रकट

१ अग्निपुराणमें 'समाधि'का जो लक्षण किया गया है वह भरतमुनिके निम्नाङ्कित श्लोकपर आधारित है—

अभियुक्तैर्विशेषैस्तु योऽर्थस्यैवोपलभ्यते ।
तेन चार्थेन सम्पन्नः समाधिः परिकीर्त्यते ॥
(नाट्य० १६ । १०२)

दण्डीने अग्निपुराणोक्त लक्षणको अविकलरूपसे अपने ग्रन्थमें ले लिया है। वामनने अर्थदृष्टिरूप समाधिको शब्दगुण स्वीकार किया है, किंतु भामहने अग्निपुराण और दण्डीके ही भावको लेकर—समाधि [illegible] [illegible]—यह लक्षण किया है। वाग्भट्टने भी यही बात कही है—[illegible] [illegible] स समाधिः ।

२ यहाँ [illegible] ध्वनिरूप बताया गया है; क्योंकि उससे [illegible] ध्वनन होता है।

३ यह [illegible] है। आचार्य मम्मटने भी [illegible] भावका आश्रय लेकर कहा है कि—

[illegible] [illegible] वा [illegible] ।
[illegible] न [illegible] [illegible] ॥

इस कथनमें [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] हो रहा करते रहे हैं।

४ इस 'अप्रस्तुत-स्तोत्र'को ही परवर्ती आलंकारिकोंने 'अप्रस्तुत-प्रशंसा' नाम दिया है। इसीको 'अन्योक्ति' भी कहते हैं। अग्निपुराणमें जो लक्षण दिया गया है, उसीको भामहने अविकल-रूपसे उद्धृत किया है। अन्तर इतना ही है कि वे 'अप्रस्तुतस्तोत्र'के स्थानमें 'अप्रस्तुतप्रशंसा' लिखते हैं। उनका लक्षण इस प्रकार है—

अधिकारादपेतस्य वस्तुनोऽन्यस्य या स्तुतिः ।
अप्रस्तुतप्रशंसेति सा चैव कथ्यते यथा ॥
(३ । २९)

दण्डीने इसी भावको संक्षिप्त शब्दोंमें व्यक्त किया है—'अप्रस्तुतप्रशंसा स्यादप्रक्रान्तेषु या स्तुतिः ।' (२ । ३४०) वामनने उपमेयकी अनुक्तिमें 'समासोक्ति' और किंचित् उक्तिमें 'अप्रस्तुत-प्रशंसा' मानी है।

५ आचार्य भामहने अपने ग्रन्थमें अग्निपुराणोक्त लक्षणको ज्यों-का-त्यों ले लिया है। अन्तर इतना ही है कि अग्निपुराणमें 'उदिता' है और भामहके ग्रन्थमें 'उदिता'। वहाँ [illegible] पुंस्त्व-परका प्रयोग है और यहाँ 'यथा'का। दण्डीने इसी भावको कुछ अधिक स्पष्टताके साथ इस प्रकार लिखा है—

वस्तु किंचिदभिप्रेत्य तत्तुल्यस्यान्यवस्तुनः ।
उक्तिः संक्षेपरूपत्वात् सा समासोक्तिरिष्यते ॥
(२ । २०५)

समासोक्तिकी गणना व्यङ्ग्य अलंकारोंमें होती है, इस दृष्टिसे अग्निपुराणोक्त लक्षणमें 'गम्यते'—इस क्रियापदका प्रयोग अधिक महत्त्वका है। अर्वाचीन आलंकारिक 'समासोक्ति'के लक्षणमें [illegible] [illegible] समारोपका भी उल्लेख करते हैं।

६ [illegible] दण्डीने अग्निपुराणोक्त लक्षणको ज्यों-का-त्यों ही ग्रहण कर लिया है। अन्तर इतना ही है कि अग्निपुराणमें '[illegible]' पाठ है और काव्यादर्शमें [illegible] [illegible] स्थानपर कर दिया गया है। वामनने [illegible] इसी भावको [illegible] किया है—

किया जाता है, उसको 'पर्यायोक्ति' कहते हैं। इनमेंसे किसी भी एकका नाम 'ध्वनि'[8] है ॥ १-१८ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'शब्दार्थोभयालंकारोंका कथन' नामक तीन सौ पैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३४५ ॥

तीन सौ छियालीसवाँ अध्याय

काव्यगुण विवेक

अग्निदेव कहते हैं—द्विजश्रेष्ठ ! गुणहीन काव्य अलंकारयुक्त होनेपर भी सहृदयके लिये प्रीतिकारक नहीं होता, जैसे नारीके यौवनजनित लालित्यसे रहित शरीरपर हार भी भारस्वरूप हो जाता है। यदि कोई कहे कि 'गुण निरूपणकी क्या आवश्यकता है ? दोषोंका अभाव ही गुण हो जायगा' तो उसका ऐसा कथन उचित नहीं है, क्योंकि 'श्लेष' आदि गुण और 'गूढार्थत्व' आदि दोष पृथक्-पृथक् कहे गये हैं। जो काव्यमें महती शोभाका आनयन करता है, उसको 'गुण' कहा जाता है। वह सामान्य और वैशेषिकके भेदसे दो प्रकारका हो जाता है। जो गुण सर्वसाधारण हो, उसे 'सामान्य' कहा जाता है। सामान्य गुण शब्द, अर्थ और शब्दार्थको प्राप्त होकर तीन प्रकारका हो जाता है। जो गुण काव्य शरीरमें शब्दके आश्रित होता है, वह 'शब्दगुण' कहलाता है। शब्दगुणके सात भेद होते हैं—श्लेष, लालित्य, गाम्भीर्य, सौकुमार्य, उदारता, ओज और यौगिकी (समाधि)। शब्दोंका सुश्लिष्ट संनिवेश 'श्लेष'[3] कहा जाता

अपह्नुतिरभीष्टा च किंचिदन्तर्गतोपमा। भूतार्थापह्नवादस्या क्रियते चाभिधा यथा ॥ (३।२१)

इस लक्षणमें 'किंचिदन्तर्गतोपमा' यह अंश विशेष है। वामनने तुल्य वस्तुके द्वारा अन्य वाक्यार्थके अपलापको 'अपह्नुति' कहा है—'समानवस्तुनान्यापलापोऽपह्नुतिः।' (४।३।५)। परवर्ती आलंकारिकोंने प्रकृत वस्तुका निषेध करके अन्य वस्तुकी स्थापनाको 'अपह्नुति' कहा है।

७ भामहने भी 'पर्यायोक्ति'का यही लक्षण लिखा है।

८ प्राचीनोंने आक्षेप, अप्रस्तुतप्रशंसा, समासोक्ति तथा पर्यायोक्तिको 'ध्वनि' कहकर जो उसे अलंकारोंमें अन्तर्भूत करनेकी चेष्टा की है, उसका ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धनने बड़ी प्रौढ़िके साथ खण्डन किया है।

१ इसी भावको लेकर वामनने कहा है—

यदि भवति वचश्च्युतं गुणेभ्यो वपुरिव यौवनवन्ध्यमङ्गनायाः।
अपि जनदयितानि दुर्भगत्वं नियतमलंकरणानि संश्रयन्ते ॥

अर्थात्—गुणरहित वचन नारीके यौवनरहित रूपकी भाँति मनोरम नहीं होता। यदि उसे अलंकृत भी किया जाय तो वे अलंकार अपना दुर्भाग्य सूचित करते हैं।

२ भरतमुनिने काव्यार्थ-गुण दस माने हैं—

श्लेषः प्रसादः समता समाधिर्माधुर्यमोजः पदसौकुमार्यम्।
अर्थस्य च व्यक्तिरुदारता च कान्तिश्च काव्यार्थगुणा दशैते ॥

अग्निदेवने शब्दगुण सात, अर्थगुण छः और शब्दार्थ-गुण छः माने हैं। काव्यादर्शकार दण्डीने भी भरतोक्त दस गुणोंका ही उल्लेख किया है। वामनने बीस और भोजने चौबीस गुण प्रदर्शित किये हैं।

३ भामहने माधुर्य, प्रसाद और ओज—इन तीन गुणोंको ही स्वीकार किया है। वामनने शब्दगुण दस और अर्थगुण भी दस माने हैं। नाम दोनों विभागोंके एक ही हैं केवल लक्षणमें अन्तर है। उन्होंने 'शब्दश्लेष'का लक्षण इस प्रकार किया है—मसृणत्वं श्लेषः। इसकी व्याख्या करते हुए वे स्वयं लिखते हैं—'मसृणत्वं नाम यस्मिन् सति बहून्यपि पदानि एकवद् भासन्ते।'—अर्थात् जिसके होनेपर बहुत-से पद एक पदके तुल्य प्रतीत होते हैं, उसका नाम 'मसृणत्व' है। उदाहरणके लिये 'अस्त्युत्तरस्याम्'—यह पद्यांश है। इसमें दो पद संधियुक्त होकर एकपदवत् प्रतीत होते हैं। दण्डीने 'श्लिष्टमस्पृष्टशैथिल्यम्'—यह श्लेषका लक्षण किया है। इसके अनुसार जिस वाक्यमें शिथिलता छू भी न गयी हो, वह 'श्लेष' है। इसका और वामनोक्त लक्षणका आधार अग्निपुराणका 'सुश्लिष्टसंनिवेशत्वं शब्दानां श्लेषः।'—यह लक्षण ही है। भोजराजने इसीका भाव लेकर 'सुश्लिष्टपदता श्लेषः।'—यह लक्षण किया है।

है । जहाँ गुणादेश आदिके द्वारा पूर्वापरसम्बद्ध अक्षर सन्धिको प्राप्त नहीं होता, वहाँ 'असंहित' गुण माना गया है । विशिष्ट लक्षणके अनुसार उल्लेखनीय उदात्तभावव्यञ्जक शब्दसमूहको श्रेष्ठ पुरुष 'गाम्भीर्य' कहते हैं । वही अन्यत्र 'उत्तान शब्दक' या 'शब्दत्व' नामसे प्रसिद्ध है । जिसमें निष्ठुरतारहित कोमल अक्षरोंका बाहुल्य हो, उस शब्दसमूहको 'सौकुमार्य' गुणविशिष्ट माना गया है । जहाँ श्लाघ्य विशेषणोंसे युक्त उत्कृष्ट पदका प्रयोग हो, वहाँ 'औदार्य' गुण माना जाता है । समासोंका बाहुल्य 'ओज' कहलाता है । यह गद्य-पद्यरूप काव्यका प्राण है । ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त जो कोई भी प्राणी हैं, उनमें 'पौरुष'का कथन एकमात्र 'ओज' गुणविशिष्ट पदावलीसे ही होता है । जिस किसी भी शब्दके द्वारा वर्ण्यमान वस्तुका उत्कर्ष वहन करनेवाला गुण 'अर्थगुण' कहा जाता है । अर्थगुणके छः भेद प्रकाशित होते हैं—माधुर्य, संविधान, कोमलता, उदारता, प्रौढ़ि एवं सामयिकता । क्रोध और ईर्ष्यामें भी आकारकी गम्भीरता तथा धैर्यधारणको 'माधुर्य' कहते हैं । अपेक्षित कार्यकी सिद्धिके लिये उद्योग 'संविधान' कहा गया है । जो कठिनता आदि दोषोंसे रहित है तथा विशेषका तिरस्कार करके मृदुरूपमें ही भासित होता है, वह गुण 'कोमलता'के नामसे प्रसिद्ध है ॥ १-१४ ॥

जिसमें स्थूललक्ष्यताकी प्रवृत्तिका अभाव नहीं होता है, आशय अत्यन्त सुन्दररूपमें प्रकट होता है, वह 'उदारता' नामक गुण है । इच्छित अर्थके प्रति निर्वाहका उपपादन करनेवाली हेतुगर्भिणी युक्तियोंको 'प्रौढ़ि'[11] कहते हैं । स्वतन्त्र या परतन्त्र कार्यके बाह्य एवं आन्तरिक स्वरूपसे अर्थकी जो व्युत्पत्ति होती है, उसको 'सामयिकता' कहते हैं । जो शब्द एवं अर्थ—दोनोंको उपकृत करता है, वह 'उभयगुण' (शब्दार्थगुण) कहलाता है । साहित्यशास्त्रियोंने इसका विस्तार छः भेदोंमें किया है—प्रसाद, सौभाग्य, यथासंख्य, प्रशस्तता, पाक और राग । सुप्रसिद्ध अर्थसे समन्वित पदोंका सन्निवेश 'प्रसाद'[12] कहा जाता है । जिसे

४-५ 'असंहित' नामक गुणका उल्लेख अन्यत्र नहीं मिलता । गाम्भीर्यका लक्षण भोजराजने इस प्रकार किया है—'ध्वनिमत्ता तु गाम्भीर्यम्' । इसमें भी अग्निपुराणोक्त लक्षणकी भावच्छाया दीख पड़ती है ।

६ भोजराजके 'अनिष्ठुराक्षरप्रायं सुकुमारमिति स्मृतम्' ।—इस लक्षणमें अग्निपुराणकी शब्दावलीका ही समावेश किया गया है । दण्डीने भी इसी आनुपूर्वीसे सुकुमारताको लक्षित कराया है । वामनने बन्धकी अकठोरताको ही 'सौकुमार्य' कहा है । इसका आधार भी अग्निपुराणोक्त लक्षण ही है ।

७ काव्यादर्शकार दण्डीने 'औदार्य'का यही लक्षण थोड़े-से पदोंके हेर-फेरसे सब अपने शब्दोंमें दे दिया है । भोजराजने वैभवके उत्कर्षका प्रतिपादन 'औदार्य' माना है किंतु यह उनका अर्थगुण है—'भूत्युत्कर्ष उदारता ।'—शब्दगुणान्तर्गत उदारताका लक्षण उनके मतमें 'विकटाक्षरबन्धत्व' है जो वामनोक्त लक्षणसे मेल खाता है । वामनने ग्राम्यत्वाभावसे रहित रचनाको 'औदार्य गुणशालिनी' स्वीकार किया है । यथा—'अग्राम्यत्वमुदारता ।' (३ । २ । १२) किंतु यह उनके 'अर्थगुण'का लक्षण है । शब्दगुणोंके प्रसङ्गमें वे बन्धकी विकटताको ही उदारता मानते हैं । जिसके होनेपर पद नृत्य करतेसे प्रतीत होते हैं ।

८—काव्यादर्शमें भी 'ओज'का यही लक्षण ग्रहण किया गया है । वामनने 'गाढबन्धत्व'को ओज कहा है । गाढ़त्व समास-बहुलतासे ही आता है । अतः वामनने कोई नयी बात नहीं कही है । सरस्वतीकण्ठाभरणके निर्माता भोजराजने भी अग्निपुराणकी आनुपूर्वीसे ही 'ओजः समासभूयस्त्वम्' ।—इस प्रकार ओजका लक्षण किया है ।

[illegible] वामनने 'पृथक्पदत्वं माधुर्यम्' ।'—यह लिखकर बताया है जहाँ वाक्यमें सभी पद पृथक्-पृथक् हों, समासमें आबद्ध होनेके कारण विकट या कठिन न हो जायँ, वहाँ 'माधुर्य' है । यह शब्दगत माधुर्यका लक्षण है । अर्थगत माधुर्य वे वहाँ मानते हैं जहाँ उक्ति-वैचित्र्य हो । दण्डीने सरस वाक्यको 'मधुर' कहा है परंतु राजा भोजने 'सरस्वतीकण्ठाभरण'में अग्निपुराणका अनुगमन ही भाव लेकर किया है—'माधुर्यमुक्तमाचार्यैः [illegible]' । यह अर्थगत माधुर्य है । शब्दगत माधुर्यका लक्षण वे भी वामनकी भाँति 'पृथक्पदत्व' ही मानते हैं ।

१० दण्डीने शब्दागमसे अपने लक्षणमें कुछ भेद [illegible] पक्ष किया है । उनका कहना है कि—'जिस वाक्यका श्रवण करनेपर उसमें किसी उत्कृष्ट गुणकी प्रतीति हो वहाँ 'उदार' नामक गुण है । उसके द्वारा काव्यपद्धति 'सनाथा' (चमत्कारिणी) होती है ।'

११ भोजराजने इसी अभिप्रायको थोड़ा भी सरल ढंगसे व्यक्त किया है—'विवक्षितार्थनिर्वाहः काव्ये प्रौढिरिति स्मृता' ।

१२ दण्डीने इसी लक्षणको आधार लेकर 'प्रसादवत् प्रसिद्धार्थम्'—ऐसा लक्षण किया है । वामनने भी अर्थवैमल्य

क होनेपर कोई गुण उत्कर्षको प्राप्त हुआ प्रतीत होता है, विद्वान् उसको 'सौभाग्य' या 'औदार्य' बतलाते हैं। तुल्य वस्तुओंका क्रमशः कथन 'यथासंख्य'[13] माना जाता है। समयानुसार वर्णलोप द्वारा वस्तुका भी अदारुण शब्दसे वर्णन 'प्राशस्त्य' कहलाता है। किसी पदार्थकी उच्च परिणतिको 'पाक' कहते हैं। 'मृद्वीकापाक' एवं 'नारिकेलाम्बुपाक'के भेदसे 'पाक' दो प्रकारका होता है। आदि और अन्तमें भी जहाँ सौरस्य हो, वह 'मृद्वीकापाक' है। काव्यमें जो छायाविशेष (शोभाधिक्य) प्रस्तुत किया जाय, उसे 'राग' कहते हैं। यह राग अभ्यासमें लाया जानेपर सहज कान्तिको भी लाँघ जाता है, अर्थात् उसमें और भी उत्कर्ष ला देता है। जो अपने विशेष लक्षणसे अनुभवमें आता हो, उसे 'वैशेषिक गुण' जानना चाहिये। यह राग तीन प्रकारका होता है—हारिद्रराग, कौसुम्भराग और नीलीराग। (यहाँतक सामान्य गुणका विवेचन हुआ)। अब 'वैशेषिक'का परिचय देते हैं। वैशेषिक उसको जानना चाहिये, जो स्वलक्षण गोचर हो—असाधारण हो ॥ १५-२६ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'काव्यगुणविवेककथन' नामक तीन सौ छियालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३४६ ॥

तीन सौ सैंतालीसवाँ अध्याय

काव्यदोष विवेक

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! 'दृश्य' और 'श्रव्य' काव्यमें यदि 'दोष'[1] हो तो वह सहृदय सभ्यों (दर्शकों और पाठकों) के लिये उद्वेगजनक होता है। वक्ता, वाचक एवं वाच्य—इनमेंसे एक-एकके नियोगसे, दो-दोके नियोगसे और तीनोंके नियोगसे सात प्रकारके दोष[2] होते हैं। इनमें 'वक्ता' कविको माना गया है, जो संदिग्ध, अविनीत, अज्ञ और ज्ञाताके भेदसे चार प्रकारका है। निमित्त और परिभाषा (संकेत) के अनुसार अर्थका स्पर्श करनेवाले शब्दको 'वाचक' कहते हैं। उसके दो भेद हैं—'पद' और 'वाक्य'। इन दोनोंके लक्षणोंका वर्णन पहले हो चुका है। पददोष दो प्रकारके होते हैं—असाधुत्व और अप्रयुक्तत्व। व्याकरणशास्त्रसे विरुद्ध पदमें विद्वानोंने 'असाधुत्व' दोष माना है। काव्यकी व्युत्पत्तिसे सम्पन्न विद्वानोंद्वारा जिसका कहीं उल्लेख न किया गया हो, उसमें 'अप्रयुक्तत्व' दोष कहा जाता है। अप्रयुक्तत्वके

प्रसाद।'—यों कहकर इसी अभिप्रायकी पुष्टि की है। भोजराजने भी 'यत्तु प्राकट्यमर्थस्य प्रसादः सोऽभिधीयते'—यों लिखकर पूर्वोक्त अभिप्रायका ही पोषण किया है।

१३ 'यथासंख्य'को अर्वाचीन आलंकारिकोंने गुण नहीं माना है, उसे अलंकारकी कोटिमें रखा है।

१ काव्यमें 'दोष'का परिहार अत्यन्त आवश्यक माना गया है। दण्डीने कहा है कि—'जिस प्रकार सुन्दर-से-सुन्दर शरीर श्वेतकुष्ठके एक दागसे भी अपनी कमनीयता खो बैठता है, उसी प्रकार कितना भी रमणीय काव्य क्यों न हो, थोड़े-से दोषसे भी दूषित होकर सहृदयोंके लिये अग्राह्य हो जाता है। अतः दोषकी कदापि उपेक्षा नहीं करनी चाहिये।' (काव्या० १।७) भामहने दोषयुक्त काव्यको कुपुत्रके समान निन्दाजनक माना है। वाग्भट (प्रथम) का कहना है कि दोषरहित काव्य ही कीर्तिका विस्तार करनेवाला है। अग्निपुराणमें नाटक और काव्यके दोषको सहृदयोंके लिये उद्वेगजनक कहा गया है। भरतमुनिने अपने 'नाट्यशास्त्र'में काव्यके दस दोष गिनाये हैं। यथा—निगूढ, अर्थान्तर, अर्थहीन, भिन्नार्थ, एकार्थ, अभिप्लुतार्थ, न्यायापेत, विषम, विसन्धि तथा शब्दच्युति। अग्निपुराणमें इन सबका वर्णन तो है ही, अन्यान्य दोषोंकी भी विस्तारपूर्वक उद्भावना की गयी है। भामहके प्रथम निर्दिष्ट दस दोष भरतोक्त दोषोंपर ही आधारित हैं। दण्डीने भी किंचित् शब्दान्तरके साथ उन्हीं दस दोषोंको वर्जनीय बताया है। भामहने सबसे अधिक दोषोंकी उद्भावना की है, किंतु उनका कोई क्रमबद्ध वर्णन देखनेमें नहीं आता, यद्यपि उन्होंने अपना आधा ग्रन्थ दोषनिरूपणमें ही लगा दिया है।

२ अग्निपुराणमें पहले वक्ता, वाचक और वाच्य—इन तीनोंमें एक-एक दो-दो और तीनोंके नियोग (सम्बन्ध) से सात प्रकारके दोष माने हैं। यथा—वक्तृनियुक्तदोष, वाचकनियुक्तदोष, वाच्यनियुक्तदोष, वक्तृवाचकनियुक्तदोष, वाचकवाच्यनियुक्तदोष, वक्तृवाच्यनियुक्तदोष और वक्तृवाचकवाच्यनियुक्तदोष।

भी पाँच भेद होते हैं—छान्दसत्व, अविस्पष्टत्व, कष्टत्व, असामयिकत्व एवं ग्राम्यत्व। जिसका लोकभाषामें प्रयोग न हो, वह 'छान्दसत्व' दोष एवं जो बोधगम्य न हो, वह 'अविस्पष्टत्व' दोष कहलाता है। अविस्पष्टत्वके भेद निम्नलिखित हैं—गूढार्थता, विपर्यस्तार्थता तथा संशयितार्थता। जहाँ अर्थका कष्टपूर्वक ग्रहण हो, वहाँ 'गूढार्थता' दोष होता है। जो विवक्षितार्थसे भिन्न शब्दार्थसे ज्ञानके दूषित हो जाने 'विपर्यस्तार्थता' कहते हैं। अन्यार्थत्व एवं असमर्थत्व—ये दोनों दोष भी 'विपर्यस्तार्थता'का ही अनुगमन करते हैं। जिसमें अर्थ संदिग्ध होता है, उसको 'संशयितार्थता' कहते हैं। यह सहृदयके लिये उद्वेगकारक न होनेपर दोष नहीं माना जाता। गुरुपूर्वक उच्चारण न होना 'कष्टत्वदोष' माना जाता है। जो रचना समय—कविजन-निर्धारित मर्यादामें च्युत हो, उसमें 'असामयिकता' मानी जाती है। उस असामयिकताको मुनिजन 'नेयार्थ' कहते हैं। जिसमें निकृष्ट एवं दूषित अर्थकी प्रतीति होती है, उसमें 'ग्राम्यतादोष' होता है। निन्दनीय ग्राम्यार्थके कथनसे, उसके स्मरणसे तथा उसके वाचक पदसे साम्य समानता होनेसे 'ग्राम्यदोष' तीन प्रकारका है। 'अर्थदोष' साधारण और प्रातिस्विकरूप भेदसे दो प्रकारका होता है। जो दोष अनेकवर्ती होता है, उसको 'साधारण' माना गया है। क्रियाभ्रंश, कारकभ्रंश, विसंधि, पुनरुक्तता एवं व्यस्त-सम्बन्धताके भेदसे 'साधारण दोष' पाँच प्रकारके होते हैं। क्रियाहीनताको 'क्रियाभ्रंश', कर्ता आदि कारकके अभावको 'कारकभ्रंश' एवं संधिदोषको 'विसंधि' कहते हैं॥ ९–१५॥

विसंधि दोष दो प्रकारका होता है—'संधिका अभाव' एवं 'विरुद्धसंधि'। विरुद्ध पदार्थान्तरकी प्रतीति होनेसे विरुद्धसंधिको कष्टकर माना गया है। बारंबार कथनको 'पुनरुक्तत्व' दोष कहते हैं। यह भी दो प्रकारका होता है—'अर्थावृत्ति' एवं 'पदावृत्ति'। 'अर्थावृत्ति' भी दो प्रकारकी होती है—वाक्यमें प्रयुक्त शब्दके या निर्दिष्ट शब्दके द्वारा एवं शब्दान्तरके द्वारा। 'पदावृत्ति' में अर्थकी आवृत्ति नहीं होती, पदमात्रकी ही आवृत्ति होती है। जहाँ व्यवधानके कारण भाँति सम्बन्ध हो, वहाँ 'व्यस्त-सम्बन्धता' दोष होता है। उस व्यस्तसम्बन्धताकी यहाँ किसी, सम्बन्धका व्यवधान होनेके कारण इन दोनोंके अभावमें भी अन्तर्व्यवधानसे व्यस्त-सम्बन्धताके तीन भेद हो जाते हैं। बीचमें पद अथवा वाक्यके व्यवधान होनेके कारण उक्त भेदोंमेंसे प्रत्येकके दो-दो भेद और होते हैं। पद और वाक्यके अर्थ और अप्रमाणके भेदसे वाक्यार्थके दो भेद होते हैं। पदगत वाच्य 'व्युत्पादित' और 'व्युत्पादक' भेदसे दो प्रकारका माना जाता है। यदि हेतु अभीष्टसिद्धिमें व्याप्तवाला ही हो तो वह उसका दोष माना गया है। वह 'हेतुदोष' आठ प्रकारका होता है—असमर्थत्व, असिद्धत्व, विरुद्धत्व, अनैकान्तिकता, सत्प्रतिपक्षत्व, कालातीतत्व, संकर, पक्षमें अभाव, सपक्षमें अभाव, विपक्षमें अस्तित्व और स्वपक्षमें निरर्थत्व। यह इष्टव्याघातकारित्व दोष काव्य और नाटकोंमें तथा सहृदय सभासदोंमें (श्रोताओं, दर्शकों और पाठकोंमें) मार्मिक पीड़ा उत्पन्न करनेवाला है। निरर्थत्वदोष दुष्कर चित्रबन्धादि काव्यमें दूषित नहीं माना जाता। पूर्वोक्त गूढार्थत्वदोष दुष्कर चित्रबन्धमें विद्वानोंके लिये दुःखप्रद नहीं प्रतीत होता। 'ग्राम्यत्व' भी यदि लोक और शास्त्र दोनोंमें प्रसिद्ध हो तो उद्वेगकारक नहीं जान पड़ता। क्रियाभ्रंशमें यदि क्रियाका अध्याहार करके उसका सम्बन्ध जोड़ा जा सके तो वह दोष नहीं रह जाता। इसी तरह भ्रष्टकारकता दोष नहीं रह जाता, जब कि आक्षेपवश कारकका अध्याहार सम्भव हो जाय। जहाँ 'प्रगृह्य' संज्ञा होनेके कारण प्रकृतिभाव प्राप्त हो, वहाँ विसंधित्व दोष नहीं माना गया है। जहाँ संधि कर देनेपर उच्चारणमें कठिनाई आ जाय, वैसे दुर्योग्य स्थलमें विसंधित्व दोषकारक नहीं है॥ १६–२७॥

'अनुप्रास' अलंकारकी योजनामें पदोंकी आवृत्ति तथा व्यस्त-सम्बन्धता गुण है। अर्थात् दोष न होकर गुण है। अर्थसंग्रहमें अर्थावृत्ति दोषकारक नहीं होती। वह क्रमभ्रंश (क्रमोल्लङ्घन) आदि दोषोंमें भी क्लिष्ट नहीं होती। उपमान और उपमेयमें विभक्ति, संख्या, लिङ्ग और वचनका भेद होनेपर भी वह तबतक दोषकारक नहीं माना जाता, जबतक कि बुद्धिमान् पुरुषोंको उससे उद्वेगका अनुभव नहीं होता। (उद्वेगजनकता ही दूषकताका बीज है।) यह न हो तो माने गये दोष भी दोषकारक नहीं समझे जाते। श्रोताकी प्रकृति और गद्दतेकी बहुलता ही नहीं उनका गुण मानी गयी है। (अर्थात् यदि सहृदयोंको उद्वेग न हो तो लिङ्ग-वचनादिके भेद होनेपर भी दोष नहीं मानना चाहिये।) कविजनोंका परम्परानुमोदित व्यवहार 'समय' कहा जाता है। जिसके द्वारा समस्त सिद्धान्तकी निश्चय संचरण करते हैं तथा जिनके ऊपर कुछ ही सिद्धान्तोंकी बात है—इस पक्षद्वयके कारण समान समय दो भेदोंसे

विभक्त हो जाता है। यह मतभेद विचारसे तो सिद्धान्तका आश्रय लेनेमें और किसीको भ्रान्तिसे होता है। किसी मुनिके सिद्धान्तका आधार तर्क होता है और किसीके मतका आलम्बन क्षणिक विज्ञानवाद। किसीका यह मत है कि पञ्चभूतोंके संघातसे शरीरमें चेतनता आ जाती है, कोई स्वतःप्रकाश ज्ञानको ही चैतन्यरूप मानते हैं। कोई प्रज्ञात स्थूलतावादी है और कोई शब्दानेकान्तवादी। शैव, वैष्णव, शाक्त तथा सौर सिद्धान्तोंको माननेवालोंका विचार है कि इस जगत्‌का कारण 'ब्रह्म' है। परंतु सांख्यवादी प्रधानतत्त्व (प्रकृति) को ही इस जगत्‌का कारण मानते हैं। इस प्रणालीसे कर्म विचरते हुए विचारक जो एक-दूसरेके प्रति विपर्यस्त दृष्टि रखते हुए परस्पर युक्तियोंद्वारा एक-दूसरेको बाँधते हैं, उनका वह भिन्न-भिन्न मत या मार्ग ही 'विशिष्ट समय' कहा गया है। यह विशिष्ट समय 'असत्‌के परिग्रह' तथा 'सत्‌के परित्याग'के कारण दो भेदोंमें विभक्त होता है। जो 'प्रत्यक्ष' आदि प्रमाणोंसे बाधित हो, उस मतको 'असत्' मानते हैं। कवियोंको वह मत ग्रहण करना चाहिये, जहाँ ज्ञानका प्रकाश हो। जो अर्थक्रियाकारी हो, वही 'परमार्थ सत्' है। अज्ञान और ज्ञानसे परे जो एकमात्र ब्रह्म है, वही परमार्थ सत् जाननेयोग्य है। वही सृष्टि, पालन और संहारका हेतुभूत विष्णु है, वही शब्द और अलंकाररूप है। वही अपरा और परा विद्या है। उसीको जानकर मनुष्य संसार-बन्धनसे मुक्त होता है ॥२८-४०॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'काव्यदोषविवेकका' कथन नामक तीन सौ सैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३४७॥

तीन सौ अड़तालीसवाँ अध्याय

एकाक्षरकोष

अग्निदेव कहते हैं—अब मैं तुम्हें 'एकाक्षराभिधान' तथा मातृकाओंके नाम एवं मन्त्र बतलाता हूँ। सुनो—'अ' नाम है भगवान् विष्णुका। 'अ' निषेध अर्थमें भी आता है। 'आ' ब्रह्माजीका बोध कराता है। वाक्यप्रयोगमें भी उसका उपयोग होता है। 'सीमा' अर्थमें 'आ' अव्ययपद है। क्रोध और पीड़ा अर्थमें भी उसका प्रयोग किया जाता है। 'इ' काम अर्थमें प्रयुक्त होता है। 'ई' रति और लक्ष्मीके अर्थमें आता है। 'उ' शिवका वाचक है। 'ऊ' रक्षक आदि अर्थोंमें प्रयुक्त होता है। 'ऋ' शब्दका बोधक है। 'ॠ' अदितिके अर्थमें प्रयुक्त होता है। 'ऌ', 'ॡ'—ये दोनों अक्षर दिति एवं कुमार कार्तिकेयके बोधक हैं। 'ए' का अर्थ है—देवी। 'ऐ' योगिनीका वाचक है। 'ओ' ब्रह्माजीका और 'औ' महादेवजीका बोध करानेवाला है। 'अं' का प्रयोग काम अर्थमें होता है। 'अः' प्रशस्त (श्रेष्ठ) का वाचक है। 'क' ब्रह्मा आदिके अर्थमें आता है। 'कु' कुत्सित (निन्दित) अर्थमें प्रयुक्त होता है। 'ख'—यह पद शून्य, इन्द्रिय और मुखका वाचक है। 'ग' अक्षर यदि पुँल्लिङ्गमें हो तो गन्धर्व, गणेश तथा गायकका वाचक होता है। नपुंसकलिङ्ग 'ग' गीत अर्थमें प्रयुक्त होता है। 'घ' घण्टा तथा करधनीके अग्रभागके अर्थमें आता है। 'ताडन' अर्थमें भी 'घ' आता है। 'ङ' अक्षर विषय, स्पृहा तथा भैरवका वाचक है। 'च' दुर्जन तथा निर्मल-अर्थमें प्रयुक्त होता है। 'छ'का अर्थ छेदन है। 'जि' विजयके अर्थमें आता है। 'ज' पद गीतका वाचक है। 'झ'का अर्थ प्रशस्त, 'ञ'का अर्थ बल तथा 'ट'का गायन है। 'ठ'का अर्थ चन्द्रमण्डल, शून्य, शिव तथा उद्बन्धन है। 'ड' अक्षर रुद्र, ध्वनि एवं त्रासके अर्थमें आता है। ढक्का और उसकी आवाजके अर्थमें 'ढ'का प्रयोग होता है। 'ण' निष्कर्ष एवं निश्चयके अर्थमें आता है। 'त'का अर्थ है—तस्कर (चोर) और सूअरकी पूँछ। 'थ' भक्षण और 'द' छेदन, धारण तथा शोभनके अर्थमें आता है। 'ध' धाता (धारण करनेवाले या ब्रह्माजी) तथा धूस्तूर (धतूरे) के अर्थमें प्रयुक्त होता है। 'न'का अर्थ समूह और सुगत (बुद्ध) है। 'प' उपवनका और 'फू' झंझावातका बोधक है। 'फु' फूत्कार तथा निष्फल होनेके अर्थमें आता है। 'वि' पक्षी तथा 'भ' ताराओंका बोधक है। 'मा' का अर्थ है—लक्ष्मी, मान और माता। 'य' योग, याता (यात्री) अथवा दयाहीन) तथा 'इरिण' नामक वृक्षके अर्थमें आता है ॥१-१०॥

'र' का अर्थ है—अग्नि, बल और इन्द्र। 'ल' का विधाता, 'व' का विश्लेषण (वियोग या विभाग) और वरुण तथा 'श' का अर्थ शयन एवं सुख है। 'ष' का अर्थ श्रेष्ठ, 'स' का परोक्ष, 'सा' का लक्ष्मी, 'स'का केश, 'ह' का धारण तथा रुद्र और 'क्ष' का क्षत्र, अक्षर, नृसिंह, हरि, क्षेत्र तथा पालक है। एकाक्षरमन्त्र देवतारूप होता

६—सर्वस्य सर्वयोः सर्वेषाम् । ७—सर्वस्मिन् सर्वयोः सर्वेषु । सम्बोधनमें—हे सर्व हे सर्वौ हे सर्वे ।* यहाँ रेखाङ्कित रूपोंपर दृष्टिपात कीजिये । साधारण अकारान्त शब्दोंकी अपेक्षा सर्वनाम शब्दोंके रूपोंमें भिन्नताके पाँच ही स्थल हैं । इसके बाद 'पूर्व' शब्द आता है । यह सर्वनाम होनेपर भी अन्य सर्वनामोंसे कुछ विलक्षण रूप रखता है । पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर, अधर—ये व्यवस्था और असंज्ञामें सर्वनाम हैं । 'स्व' तथा 'अन्तर' शब्द भी अर्थविशेषमें ही सर्वनाम हैं । अतः उससे भिन्न अर्थमें वे असर्वनामवत् रूप धारण करते हैं । प्रथमाके बहुवचनमें तथा पञ्चमी-सप्तमीके एकवचनमें पूर्वादि शब्दोंके रूप सर्वनामवत् होते हैं, किंतु विकल्पसे । अतः पक्षान्तरमें उनके असर्वनामवत् रूप भी होते ही हैं—जैसे पूर्वे पूर्वाः, परे पराः, इत्यादि । पूर्वस्मात् पूर्वात् । पूर्वस्मिन् पूर्वे इत्यादि । प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय—ये शब्द सर्वनाम नहीं हैं, तथापि 'प्रथम' शब्दके प्रथमा बहुवचनमें—प्रथमे प्रथमाः—यह रूप होता है । 'चरम' आदि शब्दोंके लिये भी यही बात है । 'द्वितीय' तथा 'तृतीय' शब्द चतुर्थी, पञ्चमी तथा सप्तमीके एकवचनमें विकल्पसे सर्वनामवत् रूप धारण करते हैं । यथा—द्वितीयस्मै द्वितीयाय । तृतीयस्मै तृतीयाय—इत्यादि शेष रूप वृक्षवत् होते हैं ।

अब आकारान्त शब्दका एक रूप उपस्थित करते हैं—शङ्खपा—शङ्ख पातीति शङ्खपा अर्थात् 'शङ्ख-रक्षक' । इसका रूप यों समझना चाहिये—१—शङ्खपा शङ्खपौ, शङ्खपाः । २—शङ्खपाम्, शङ्खपौ, शङ्खपः । ३—शङ्खपा, शङ्खपाभ्याम्, शङ्खपाभिः । ४—शङ्खपे, शङ्खपाभ्याम् शङ्खपाभ्यः । ५—शङ्खपः, शङ्खपाभ्याम्, शङ्खपाभ्यः । ६—शङ्खपः, शङ्खपोः, शङ्खपाम् । ७—शङ्खपि शङ्खपोः, शङ्खपासु । सम्बो०—हे शङ्खपाः, हे शङ्खपौ, हे शङ्खपाः । इसी तरह विश्वपा (विश्वपालक), गोपा (गोरक्षक), कीलालपा (जल पीनेवाला), शङ्खध्मा (शङ्ख बजानेवाला) आदि शब्दोंके रूप होंगे । [अब ह्रस्व इकारान्त 'वह्नि' शब्दका रूप प्रस्तुत करते हैं—] १—वह्निः, वह्नी, वह्नयः । २—वह्निम्, वह्नी, वह्नीन् । ३—वह्निना, वह्निभ्याम्, वह्निभिः । ४—वह्नये, वह्निभ्याम्, वह्निभ्यः । ५—वह्नेः, वह्निभ्याम्, वह्निभ्यः । ६—वह्नेः, वह्न्योः, वह्नीनाम् । ७—वह्नौ, वह्न्योः, वह्निषु । सम्बो०—हे वह्ने, हे वह्नी, हे वह्नयः । 'वह्नि'का अर्थ है अग्नि । इसी तरह अग्नि, रवि, कवि, गिरि, पति इत्यादि शब्दोंके रूप होंगे । इकारान्त शब्दोंमें 'सखि' और 'पति' शब्दोंके रूप कुछ भिन्नता रखते हैं । जैसे—१—सखा, सखायौ, सखायः । २—सखायम्, सखायौ, सखीन् । तृतीयाके एकवचनमें—सख्या, चतुर्थीके एकवचनमें सख्ये, पञ्चमी और षष्ठीके एकवचनमें सख्युः तथा सप्तमीके एकवचनमें सख्यौ रूप होते हैं । शेष सभी रूप 'वह्नि' शब्दके समान हैं । 'पति' शब्दके प्रथमा और द्वितीया विभक्तियोंमें वह्निवत् रूप होते हैं, शेष विभक्तियोंमें वह 'सखि' शब्दके समान रूप रखता है । 'अहपति' का अर्थ है सूर्य । यहाँ 'पति' शब्द समासमें आबद्ध है । समासमें उसका रूप वह्नितुल्य ही होता है ।

[अब उकारान्त शब्दका रूप प्रस्तुत करते हैं] पहले पुँल्लिङ्ग 'पटु' शब्दके रूप दिये जाते हैं । पटुका अर्थ है—कुशल—निपुण १—पटुः, पटू, पटवः । २—पटुम्, पटू, पटून् । ३—पटुना, पटुभ्याम् पटुभिः । ४—पटवे पटुभ्याम् पटुभ्यः । ५—पटोः, पटुभ्याम् पटुभ्यः । ६—पटोः, पट्वोः, पटूनाम् । ७—पटौ, पट्वोः, पटुषु । सम्बो०—हे पटो, हे पटू, हे पटवः । इसी तरह भानु, शम्भु, विष्णु आदि शब्दोंके रूप जानने चाहिये । दीर्घ ईकारान्त 'ग्रामणी' शब्द है । इसका अर्थ है—गाँवका मुखिया । इसका रूप इस प्रकार है—१—ग्रामणीः, ग्रामण्यौ, ग्रामण्यः । २—ग्रामणीम्, ग्रामण्यौ, ग्रामण्यः । ३—ग्रामण्या, ग्रामणीभ्याम् ग्रामणीभिः । ४—ग्रामण्ये, ग्रामणीभ्याम् २, ग्रामणीभ्यः २ । ५—ग्रामण्यः २ । ६—ग्रामण्योः २ । बहुवचन—ग्रामण्याम् । ७—ग्रामण्याम् ग्रामणीषु । इसी तरह 'प्रधी' आदि शब्दोंके रूप जानने चाहिये । दीर्घ ऊकारान्त 'स्वभू' शब्द है । इसका अर्थ है—ब्रह्मा, वज्र, सूर्य, शिव और चक्र । इसका रूप—स्वभूः, स्वभ्वौ, स्वभ्वः इत्यादि । 'खलपू'—खलिहान या भूमिको शुद्ध—स्वच्छ करनेवाला । इसका रूप खलपूः, खलप्वौ, खलप्वः इत्यादि । 'स्निभू'—स्निभः इत्यादि ।

* यहाँ यह ध्यानमें रखना चाहिये कि यदि किसीका नाम 'सर्व' रख लिया जाय तो उस 'सर्व'का रूप वृक्षकी तरह ही होगा । सब इस अर्थमें प्रयुक्त 'सर्व' शब्दका ही रूप ऊपर बताये अनुसार होगा । यही बात अन्य सर्वनामोंके विषयमें भी समझनी चाहिये । संज्ञा एवं उपसर्जनीभूत 'सर्व' आदि शब्दोंकी सर्वनामोंमें गणना नहीं होती । अतिसर्व आदि शब्दोंमें जो 'सर्व' शब्द है वह उपसर्जन है ।

अब स्त्रीलिङ्गमें नायकस्वरूप शब्दोंको उपस्थित किया जा रहा है—जाया (स्त्री) जरा, (वृद्धावस्था), बाला (नूतन अवस्थावाली स्त्री), एडका (भेड़), वृद्धा (बूढ़ी), क्षत्रिया (क्षत्रिय जातिकी स्त्री), बहुराजा (जहाँ बहुतसे राजा निवास करते हों, वह नगरी), बहुगा (अधिक देनेवाली), मा (लक्ष्मी), अथवा बहुदामा (अधिक दाम—रज्जु या दीप्तिवाली), बालिका (लड़की), माया (भगवान्‌की शक्ति या प्रकृति), कौमुदगन्धा (कुमुदकी-सी सुगन्धवाली), सरा (सर), पूर्वा (पूर्व दिशा या पहली), अन्या (दूसरी), द्वितीया (दूसरी), तृतीया (तीसरी), बुद्धि (मति), स्त्री (औरत), श्री (लक्ष्मी), नदी, सुधी (उत्तम बुद्धिवाली), भवन्ती (होती हुई), दीव्यन्ती (क्रीड़ा करती हुई), भाती, भान्ती (शोभमाना), यान्ती (जाती हुई), शृण्वती (सुनती हुई), तुदती, तुदन्ती, (व्यथित करती हुई), कर्त्री (करनेवाली), कुर्वती (करती हुई), मही (पृथ्वी), रुन्धती (अवरोध करती हुई), क्रीडन्ती (खेलती हुई), दान्ती, (दाँतकी बनी हुई वस्तु), पाल्यन्ती (पालती हुई), सुवाणी (उत्तम वाणी), गौरी (पार्वती), पुत्रवती (पुत्रवाली), नौ (नाव), वधू (स्त्री), देवता, भू (पृथ्वी), तिस्र (तीन), द्वे (दो), कति, वर्षाभू (वर्षाकालमें उत्पन्न होनेवाली मेढकी), स्वसा (बहिन), माता (माँ), अनरा (स्नुषा), गौ (गाय), द्यौ (स्वर्ग),

---

अधिक आवश्यकता रहती है। इसलिये इसके पूरे रूप यहाँ दिये जाते हैं—

१ अयम्, इमौ इमे। २ इमम्, इमौ, इमान्। (अन्वादेशमें) एनम् एनौ एनान्। ३ अनेन (अन्वादेशमें) एनेन आभ्याम् एभि। ४ अस्मै आभ्याम्, एभ्य। ५ अस्मात् अस्माद् आभ्याम् एभ्य। ६ अस्य अनयो (अन्वादेशमें) एनयो, एषाम्। ७ अस्मिन् अनयो (एनयो) एषु। त्यदादि गणके शब्दोंमें सम्बोधन नहीं होता।

मरुत् आदि शब्दोंके सप्तमान्त रूप क्रमसे इस प्रकार जानने चाहिये—मरुत् मरुद्, मरुतौ, मरुत। भवन् भवन्तौ, भवन्त। दीव्यन् दीव्यन्तौ, दीव्यन्त। भवन् भवन्तौ भवन्त। मघवान् मघवन्तौ, मघवन्त। पिबन् पिबन्तौ पिबन्त। भगवान् भगवन्तौ भगवन्त। अघवान् अघवन्तौ अघवन्त। अर्वा, अर्वन्तौ, अर्वन्त। वह्निमान्, वह्निमन्तौ, वह्निमन्त। सर्ववित् सर्वविद्, सर्वविदौ सर्वविद। सुहृत् सुहृद् सुहृदौ सुहृद। सुधर्मा सुधर्माणौ, सुधर्माण। कुञ्चन्, कुञ्चन्तौ कुञ्चन्त। राजन् आदि शब्दोंके तीन विभक्तियोंके रूप दिये जाते हैं। शेष रूप तदनुसार ही समझ लेने चाहिये। १ राजा, राजानौ राजान। २ राजानम्, राजानौ राज्ञ। ३ राज्ञा, राजभ्याम् राजभि इत्यादि। सप्तमीके एकवचनमें—राज्ञि राजनि। १ श्वा श्वानौ श्वान। २ श्वानम् श्वानौ, शुन। ३ शुना श्वभ्याम्, श्वभि। १ युवा युवानौ, युवान। २ युवानम् युवानौ, यून। ३ यूना, युवभ्याम्, युवभि। १ मघवा, मघवानौ, मघवान। २ मघवानम्, मघवानौ, मघोन। ३ मघोना, मघवभ्याम्, मघवभि। १ पूषा, पूषणौ, पूषण। २ पूषणम्, पूषणौ पूष्ण। ३ पूष्णा पूषभ्याम्, पूषभि। सप्तमीके एकवचनमें पूष्णि पूषणि। १ सुकर्मा सुकर्माणौ सुकर्माण। २ सुकर्माणम् सुकर्माणौ सुकर्मण। ३ सुकर्मणा, सुकर्मभ्याम् सुकर्मभि। १ यज्वा, यज्वानौ, यज्वान। २ यज्वानम्, यज्वानौ यज्वन। ३ यज्वना यज्वभ्याम्, यज्वभि। १ सुवर्मा, सुवर्माणौ सुवर्माण, इत्यादि। शेषरूप 'यज्वन् शब्दके समान हैं।' सुधर्मा, सुधर्माणौ सुधर्माण इत्यादि। १ अर्यमा अर्यमणौ, अर्यमण। २ अर्यमणम्, अर्यमणौ, अर्यम्ण। ३ अर्यम्णा, अर्यमभ्याम् अर्यमभि, इत्यादि। सप्तमीके एकवचनमें—अर्यम्णि, अर्यमणि। १ वृत्रहा वृत्रहणौ, वृत्रहण। २ वृत्रहणम् वृत्रहणौ, वृत्रघ्न। ३ वृत्रघ्ना, वृत्रहभ्याम्, वृत्रहभि, इत्यादि। १ पन्था पन्थानौ पन्थान। २ पन्थानम्, पन्थानौ, पथ। ३ पथा पथिभ्याम्, पथिभि। १ सुकृप सुकुप सुकुभौ सुकुभ इत्यादि। १-२ अष्ट अष्टौ ३ अष्टाभि अष्टभि इत्यादि। १ पञ्च पञ्च। ३ पञ्चभि इत्यादि। अष्टन् पञ्चन् आदि शब्द नित्य बहुवचनान्त हैं। प्रशान् प्रशामौ प्रशाम। प्रशान्भ्याम् इत्यादि। सुत्वा, सुत्वानौ, सुत्वान, इत्यादि। प्राङ्, प्राञ्चौ, प्राञ्च इत्यादि। सुधी, सुधियौ सुधिय इत्यादि। सुभाः सुभासौ, सुभास इत्यादि। सुः सुरौ सुर इत्यादि। चन्द्रमा चन्द्रमसौ चन्द्रमस, इत्यादि। सुवचा, सुवचसौ, सुवचस, इत्यादि। १ श्रेयान् श्रेयांसौ, श्रेयांस। २ श्रेयांसम्, श्रेयांसौ श्रेयस। ३ श्रेयसा श्रेयोभ्याम् इत्यादि। १ विद्वान् विद्वांसौ विद्वांस। २ विद्वांसम्, विद्वांसौ विदुषः। ३ विदुषा, विद्वद्भ्याम्, विद्वद्भि इत्यादि। पेचिवान् पेचिवांसौ, पेचिवांस इत्यादि। अनड्वान् अनड्वाहौ अनड्वाह। २ अनड्वाहम् अनड्वाहौ, अनडुह। ३ अनडुहा अनडुद्भ्याम्, अनडुद्भि, इत्यादि। गोधुक् गोधुग् गोदुहौ गोदुह, इत्यादि। मित्रधुक् मित्रधुग् मित्रद्रुहौ मित्रद्रुह। मित्रधुग्भ्याम् मित्रधुड्भ्याम् इत्यादि। मुह् मुग्, मुट् मुड् मुहौ मुह इत्यादि। लिट् लिड् लिहौ लिह इत्यादि।

(सर्वप्रथम स्वरान्त नपुंसक-लिङ्ग शब्दोंके प्रारम्भिक सिद्ध रूप दिये जाते हैं—) 'कुण्डम्'—यह अकारान्त नपुंसक लिङ्ग 'कुण्ड' शब्दका प्रथमान्त एकवचनरूप है। इसके प्रथम दो विभक्तियोंमें क्रमशः एकवचन, द्विवचन और बहुवचनके रूप इस प्रकार जानने चाहिये—कुण्डम्, कुण्डे, कुण्डानि। तृतीया आदि शेष विभक्तियोंके रूप पुँल्लिङ्गवत् जानने चाहिये। यथा—कुण्डेन कुण्डाभ्याम् कुण्डैः इत्यादि। सम्बोधनमें—हे कुण्ड हे कुण्डे हे कुण्डानि। 'कुण्डम्' का अर्थ है—पानीसे भरा हुआ गहरा गड्ढा। यह नदी और तालाब आदिमें होता है। मिट्टीके बड़े और गहरे पात्रविशेषको भी 'कुण्ड' कहते हैं। इसीको ध्यानमें रखकर कुण्डभर दूध देनेवाली गायको 'कुण्डोध्नी' कहते हैं। 'सर्वम्'—यह 'सर्व' शब्दका एकवचनान्त रूप है, इसका अर्थ है सम्पूर्ण या सब। इसके प्रथमा और द्वितीया विभक्तियोंमें नपुंसकलिङ्ग-सम्बन्धी रूप इस प्रकार होते हैं—सर्वम् सर्वे सर्वाणि। शेष पुँल्लिङ्गवत्। 'सोमपम्'—सोम पान करनेवाला कुल (ब्राह्मणकुल या देवकुल)। इसके भी प्रथम दो विभक्तियोंमें सोमपम्, सोमपे सोमपानि इत्यादि रूप होंगे। शेष पुँल्लिङ्ग रामवत्। 'दधि' और 'वारि' शब्द क्रमशः दही और जलके वाचक हैं। ये नित्य नपुंसक लिङ्ग हैं। अतः इनके सम्पूर्ण रूप यहाँ उद्धृत किये जाते हैं। प्र० द्वि० विभक्तियोंमें—दधि दधिनी दधीनि। तृ०—दध्ना, दधिभ्याम् दधिभिः। च०—दध्ने दधिभ्याम् दधिभ्यः। प०—दध्नः दधिभ्याम् दधिभ्यः। ष०—दध्नः, दध्नोः, दध्नाम्। स०—दध्नि-दधनि, दध्नोः, दधिषु। 'वारि' शब्दके सातों विभक्तियोंके रूप इस प्रकार जानने चाहिये—१, २—वारि वारिणी वारीणि। ३—वारिणा वारिभ्याम् वारिभिः। ४—वारिणे वारिभ्याम् वारिभ्यः। ५—वारिणः वारिभ्याम् वारिभ्यः। ६—वारिणः वारिणोः वारीणाम्। ७—वारिणि वारिणोः वारिषु। 'खलपु' का अर्थ है—खलिहानको स्वच्छ करनेवाला साधन, पुरुष आदि। इसके रूप विशेष्यके अनुसार स्त्रीलिङ्ग और पुँल्लिङ्गमें भी होते हैं। यहाँ नपुंसकलिङ्गमें इसके रूप उद्धृत किये जाते हैं। १, २—

रूप हैं। गी गिरौ गिरः इत्यादि। 'विदुषी'—नारीरत्न। 'किम्' शब्दके—कः कौ के इत्यादि रूप हैं। 'इदम्'—इयम् इमे इमाः इत्यादि। इदम् शब्द निकटके समान। 'तादृश' शब्द तादृशी तादृशः इत्यादि। 'अदस्' शब्द असौ अमू अमूः। अमुम् अमू अमूः। अमुना इत्यादि।

खलपु खलपुनी खलपूनि। ३—खलप्वा, खलपुना खलपुभ्याम् खलपुभिः। ४—खलप्वे-खलपुने खलपुभ्याम् खलपुभ्यः इत्यादि। 'मधु' शब्द शहद और मदिराका वाचक है। इसके रूप इस प्रकार जानने चाहिये—१-२, मधु मधुनी मधूनि। ३-मधुना मधुभ्याम् मधुभिः। ४-मधुने मधुभ्याम् मधुभ्यः। ५-मधुनः मधुभ्याम् मधुभ्यः। ६—मधुनः मधुनोः मधूनाम्। ७—मधुनि मधुनोः मधुषु। स० हे मधो, हे मधु हे मधुनी हे मधूनि। 'त्रपु' शब्द राँगाका वाचक है। इसके प्रथम दो विभक्तियोंके रूप इस प्रकार हैं—त्रपु, त्रपुणी, त्रपूणि। शेष मधुवत्। 'कर्तृ' (करनेवाला), 'भर्तृ' (भरण-पोषण करनेवाला), 'अतिभर्तृ' (भर्ताको भी अतिक्रमण करनेवाला कुल)—इन तीनों शब्दोंके प्रथमा और द्वितीया विभक्तियोंमें रूप क्रमशः इस प्रकार हैं—कर्तृ कर्तृणी कर्तॄणि। भर्तृ भर्तृणी भर्तॄणि। अतिभर्तृ अतिभर्तृणी अतिभर्तॄणि। तृतीया आदि विभक्तियोंमें जो अजादि प्रत्यय हैं, उनमें दो-दो रूप होंगे। यथा—कर्त्रा, कर्तृणा। भर्त्रा, भर्तृणा। अतिभर्त्रा, अतिभर्तृणा इत्यादि। 'पयस्' शब्द जलका वाचक है। इसके रूप इस प्रकार हैं—१, २—पयः पयसी पयांसि। तृतीया आदिमें पयसा पयोभ्याम् पयोभिः इत्यादि। 'पुरस्' शब्द सकारान्त अव्यय है। इसका अर्थ है—पहले या आगे। अव्यय शब्दोंका कोई रूप नहीं चलता; क्योंकि 'अव्यय'का यह लक्षण है—॥२०॥

सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु।
वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम्॥

प्राक् (पूर्व), प्रत्यक् (अदर या पश्चिम), तिर्यक् (तिरछी दिशाकी ओर चलनेवाले पशु-पक्षी आदि), उदक् (उत्तर)—इन शब्दोंके प्रथम दो विभक्तियोंमें रूप इस प्रकार जानने चाहिये। प्राक् प्राची प्राञ्चि। प्रत्यक् प्रतीची प्रत्यञ्चि। तिर्यक् तिरश्ची तिर्यञ्चि। उदक् उदीची उदञ्चि इत्यादि। ये गत्यर्थक 'अञ्च्'के रूप हैं, पूजार्थमें प्रयुक्त 'अञ्च्'के—प्राङ् प्राञ्ची प्राञ्चि। प्रत्यङ् प्रत्यञ्ची प्रत्यञ्चि। उदङ् उदञ्ची उदञ्चि। तिर्यङ् तिर्यञ्ची तिर्यञ्चि। इत्यादि रूप होते हैं। 'जगत्' शब्द संसारका वाचक है। इसके रूप हैं—जगत् जगती जगन्ति इत्यादि। 'जाग्रत्' शब्दका अर्थ है—जागता रहनेवाला। इसके रूप हैं—जाग्रत् जाग्रती जाग्रन्ति, जाग्रति इत्यादि। 'शकृत्' शब्द मल या विष्ठाका वाचक है। इसके रूप शकृत्, शकृती शकृन्ति शकानि इत्यादि। तृतीया आदि में

सूर्य, अम्बुवाह, अर्क, हे रवे! हे द्विजातय ! *॥२४-२९॥

विप्रौ (विप्र + प्र० द्वि०), गजान् (गज + द्वि० बहु०), महेन्द्रेण (महेन्द्र + तृ० एक०), यमाभ्याम् (यम + तृ० द्वि०), अनिलैः (अनिल + तृ० बहु०), कृतम् (कृत नपुंसक लिङ्ग प्रथमा-एकवचन), रामाय (राम + च० एक०), मुनिवर्याभ्याम् (मुनिवर्य + च० द्वि०), कम्य (किम् + च० बहु०), धर्मात् (धर्म + प० एक०), हरौ (हरि + सप्त० एक०), रतिः (रति + प्र० एक०), शराभ्याम् (शर + पञ्च० द्वि०), पुस्तकेभ्य (पुस्तक + पञ्च० बहु०), अथस्य (अथ + षष्ठी एक०), ईश्वरयो (ईश्वर + षष्ठी द्वि०), गति (गति + प्र० एक०), बालानाम् (बाल + षष्ठी बहु०), सज्जने (सज्जन + सप्त० एक०), प्रीति (प्रीति० + प्र० एक०), हसयो (हस + सप्त० द्वि०), कमलेषु (कमल + सप्त० बहु०), बालकोंकी सज्जनमें प्रीति होती है और हंसके जोड़ेकी कमलोंमें—यह इकतीसवें श्लोकके उत्तरार्धका वाक्यार्थ है† ॥ ३०-३१ ॥

इसी प्रकार 'काम', 'महेश' आदि शब्द 'वृक्ष' शब्दके समान जानने चाहिये। 'सर्वे', 'विश्वे'—इन दोनोंका अर्थ है—सब। ये प्रथमा विभक्तिके बहुवचनान्त रूप हैं। सर्वस्मै, सर्वस्मात्—ये 'सर्व' शब्दके क्रमशः चतुर्थी और पञ्चमी विभक्तिके एकवचनान्त रूप हैं। कतरो मतः=दोमेंसे कौन अभिमत है? यहाँ 'कतर' शब्दका प्रथमामें एकवचनान्त सिद्ध रूप दिया गया है। 'कतर' शब्द सर्वनाम है और 'सर्व' शब्दकी भाँति उसका रूप चलता है। सर्वेषाम् (सर्व+षष्ठी० बहु०), स्व च ('स्व' शब्द भी सर्वनाम है। अतः इसका रूप भी सर्ववत् समझना चाहिये।) विश्वस्मिन् (विश्व+सप्त० एक०)—इन शब्दोंके शेष रूप 'सर्व' शब्दके समान हैं। इसी प्रकार उभय, कतर, कतम और अन्यतर आदि शब्दोंके रूप होते हैं। पूर्वे, पूर्वाः—ये 'पूर्व' शब्दके प्रथमान्त बहुवचन रूप हैं। प्रथमान्त बहुवचनमें पूर्वादि शब्दोंको विकल्पसे सर्वनाम माना जाता है। सर्वनाम-पक्षमें 'पूर्वे' और सर्वनामाभाव-पक्षमें 'पूर्वाः' रूपकी सिद्धि होती है। पूर्वस्मै (पूर्व+च० एक०), 'पूर्वस्मात् समागत—पूर्वसे आया'। यहाँ 'पूर्व' शब्दका पञ्चमी विभक्तिमें एकवचनान्त रूप प्रयुक्त हुआ है। 'पूर्वे बुद्धिः पूर्वस्मिन्—पूर्वमें बुद्धि।' यहाँ 'पूर्व' शब्दका सप्तमीके एकवचनमें रूपद्वय प्रयुक्त हुआ है। 'पूर्व' आदि नौ शब्दोंके पञ्चमी और सप्तमीके एकवचनमें 'ङसि और ङि' के स्थानमें 'स्मात्' और 'स्मिन्' आदेश विकल्पसे होते हैं। उनके होनेपर पूर्वस्मात् और पूर्वस्मिन् रूप बनते हैं और न होनेपर 'राम' शब्दकी भाँति 'पूर्वात्' और 'पूर्वे' रूप होते हैं। शेष रूप सर्ववत् जानने चाहिये। इसी प्रकार पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अन्तर, अपर, अधर और नेम शब्दोंके भी रूप जानने चाहिये। प्रथमे, प्रथमाः—ये 'प्रथम' शब्दके बहुवचनान्त रूप हैं। इनके शेष रूप 'अर्क' शब्दके समान जानने चाहिये। इसी तरह 'चरम' शब्द, 'तयप्' प्रत्ययान्त शब्द तथा 'अल्प', 'अर्ध' और 'नेम' आदि शब्दोंके भी रूप होते हैं। यहाँ अन्तर इतना ही है कि 'चरम' और 'कतिपय' आदि शब्दोंके शेष रूप 'प्रथम' शब्दके समान होंगे और 'नेम' आदि शब्दोंके शेष रूप सर्ववत् होंगे। जिसके अन्तमें 'तीय' लगा है, उन 'द्वितीय' और 'तृतीय' शब्दोंके चतुर्थी, पञ्चमी और सप्तमी विभक्तियोंमें एकवचनान्त रूप विकल्पसे सर्ववत् होते हैं। जैसे—(चतुर्थी) द्वितीयस्मै, द्वितीयाय। (पञ्चमी) द्वितीयस्मात्, द्वितीयात्। (सप्तमी) द्वितीयस्मिन्, द्वितीये।

* एकार्थमें एकवचन 'रामः' इत्यादि। द्वित्वविवक्षामें 'रामौ' इत्यादि। बहुत्व-विवक्षामें बहुवचन 'रामाः' इत्यादि। 'वृक्ष' शब्दका प्रथमा विभक्तिके एकवचनमें 'वृक्षः'—यह रूप सिद्ध होता है। इसके शेष रूप 'राम' शब्दकी तरह जानने चाहिये। इसी तरह सूर्य, अम्बुवाह और अर्क—इनको क्रमशः सूर्यः, अम्बुवाहः और अर्कः शब्दका प्रथमान्त एकवचन रूप समझना चाहिये। 'वृक्ष' और सूर्य शब्दका अर्थ सर्वविदित है। 'अम्बुवाह' और 'अर्क' शब्द—ये क्रमशः मेघ और सूर्यके वाचक हैं। हे रवे!—यह रवि शब्दका सम्बोधनमें प्रथमान्त एकवचन रूप है। हे द्विजातयः!—यह 'द्विजाति' शब्दका सम्बोधनमें प्रथमान्त बहुवचन रूप है। 'रवि' शब्द सूर्यका एवं द्विजाति शब्द ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—इन तीनोंका वाचक है।

† इन दो श्लोकोंमें जो शब्द आये हैं, उनका पृथक्-पृथक् अर्थ इस प्रकार जानना चाहिये। विप्रौ=दो ब्राह्मण। गजान्=हाथियोंको। महेन्द्रेण=महेन्द्रसे। यमाभ्याम्=दो यमोंसे। अनिलैः=हवाओंसे। कृतम्=किया गया। रामाय=रामके लिये। मुनिवर्याभ्याम्=दो मुनिवरोंके लिये। केभ्य=किनके लिये। धर्मात्=धर्मसे। हरौ=हरिमें। रतिः=अनुराग। शराभ्याम्=दो बाणोंसे। पुस्तकेभ्य=पुस्तकोंसे। अथस्य=अश्वका। ईश्वरयो=दो ईश्वरोंकी। गतिः=प्राप्ति। बालानाम्=बालकोंकी। सज्जने=सत्पुरुषमें। प्रीतिः=प्रेम। हंसयो=दो हंसोंकी। कमलेषु=कमलोंमें।

क्रोष्टारौ, क्रोष्टार । क्रोष्टारम्, क्रोष्टारौ। द्वितीयाके बहुवचनमें क्रोष्टून्'—यह रूप बनता है। तृतीया आदिके स्वरादि प्रत्ययोंमें दो-दो रूप चलते हैं। एक 'क्रोष्टु' शब्दके, दूसरे क्रोष्टृ' शब्दके। यथा—क्रोष्टुना क्रोष्ट्रा, क्रोष्टवे क्रोष्ट्रे, क्रोष्टो क्रोष्टु इत्यादि। षष्ठीके बहुवचनमें 'क्रोष्टूनाम्'—यह एक ही रूप होता है। सप्तमीके एकवचनमें क्रोष्टौ, क्रोष्टरि—ये रूप होते हैं। हलादि विभक्तियोंमें इसके रूप शम्भु' आदि शब्दोंके समान होते हैं। 'पितृ' शब्दके रूप—१–पिता, पितरौ, पितर । सम्बोधनमें—हे पितः ! हे पितरौ ! हे पितर !। २–पितरम्, पितरौ, पितॄन् । ३–पित्रा, पितृभ्याम्, पितृभि । ४–पित्रे, पितृभ्याम्, पितृभ्य । ५–पितु, पितृभ्याम्, पितृभ्यः। ६–पितु, पित्रो, पितॄणाम्। ७–पितरि, पित्रो, पितृषु ॥ ४१–५० ॥

इसी प्रकार 'भ्रातृ' और 'जामातृ' आदि शब्दोंके रूप जानने चाहिये—१–भ्राता, भ्रातरौ, भ्रातरः । जामाता, जामातरौ, जामातर इत्यादि । 'नृ' शब्दके रूप 'पितृ' शब्दके समान होते हैं । केवल षष्ठीके बहुवचनमें उसके नृणाम्, नॄणाम्—ये दो रूप होते हैं। 'कर्तृ' शब्दके प्रारम्भिक पाँच रूप इस प्रकार होते हैं—कर्ता, कर्तारौ, कर्तार । कर्तारम्, कर्तारौ । द्वितीयाके बहुवचनमें कर्तॄन्, षष्ठीके बहुवचनमें कर्तॄणाम् और सप्तमीके एकवचनमें कर्तरि रूप होते हैं। शेष रूप 'पितृ' शब्दके समान जानने चाहिये। इसी तरह उद्गातृ, स्वसृ और नप्तृ आदि शब्दोंके रूप होते हैं । उद्गाता[1] उद्गातारौ उद्गातार । स्वसा[2], स्वसारौ, स्वसार । नप्ता[3], नप्तारौ, नप्तार इत्यादि । शेष रूप 'कर्तृ' शब्दके समान होते हैं। 'स्वसृ' शब्दका द्वितीयाके बहुवचनमें 'स्वसॄः' रूप होता है। 'सुरै[4]' शब्दके रूप इस प्रकार होते हैं—सुरा, सुरायौ सुराय इत्यादि। षष्ठीके बहुवचनमें सुरायाम् और सप्तमीके एकवचनमें सुरायि रूप होते हैं। 'गो' शब्दके रूप इस प्रकार होते हैं। १–गौः[5], गावौ, गाव । २–गाम्, गावौ, गा । ३–गवा गोभ्याम्, गोभि इत्यादि । षष्ठी–गोः, गवो गवाम्। सप्तमी—गवि, गवो, गोषु। इसी प्रकार 'द्यो' तथा 'ग्लौ' शब्दोंके रूप जानने चाहिये । ये स्वरान्त शब्द पुँल्लिङ्गमें नायक (प्रधान) हैं॥५१–५३ ॥

१ जिसमें 'उद्गान' नामक ऋत्विज, जो साम-मन्त्रोंका उच्चस्वरसे गान करता है। २ बहिन। ३ नाती। ४ उत्तम लक्ष्मीसे सम्पन्न। ५ गाय-बैल।

अब हलन्त पुँल्लिङ्ग शब्दोंके सिद्ध रूप बताये जाते हैं। 'सुवाच्' शब्दके रूप यों जानने चाहिये—१–सुवाक्[6], सुवाग्, सुवाचौ, सुवाच । २–सुवाचम्, सुवाचौ, सुवाचः । ३–सुवाचा, सुवाग्भ्याम्, सुवाग्भि । इत्यादि। (सप्त० बहुवचनमें–) सुवाक्षु । इसी तरह 'दिश्' आदि शब्दोंके रूप होते हैं । प्राञ्च् शब्दके रूप—१–प्राङ्[7], प्राञ्चौ, प्राञ्च । २–ओ प्राञ्च व्रज (हे भाई ! तुम प्राचीन महापुरुषोंके पथपर चलो)। यहाँ 'प्राञ्चम्' यह द्वितीया विभक्तिका एकवचनान्त रूप है। ३–प्राचा, प्राग्भ्याम्, प्राग्भि । षष्ठीके बहुवचनमें 'प्राचाम्' रूप होता है। सप्तमीके एकवचनमें 'प्राचि', द्विवचनमें 'प्राचो' और बहुवचनमें 'प्राक्षु'। पूजार्थक 'प्राञ्च' शब्दके सप्तमीके बहुवचनमें 'प्राङ्क्षु' 'प्राङ्षु' । इसी प्रकार उदञ्च्, सम्यञ्च् और प्रत्यञ्च् शब्दोंके भी रूप होते हैं। यथा—उदङ्[8] उदञ्चौ उदञ्च इत्यादि । स्त्रीलिङ्गमें उदीची[9]। सम्यङ्[10] सम्यञ्चौ, सम्यञ्च । स्त्रीलिङ्गमें समीची[11]। प्रत्यङ्[12] प्रत्यञ्चौ, प्रत्यञ्च । स्त्रीलिङ्गमें प्रतीची[13]। इन सभी शब्दोंके शस् आदि विभक्तियोंमें इस तरह रूप जानने चाहिये—उदीच उदीचा । समीच समीचा । प्रतीच, प्रतीचा इत्यादि । तिर्यङ्[14] तिरश्च । सध्र्यङ्[15], सध्रीच । विष्वद्र्यङ्, विष्वद्रीच इत्यादि रूप भी पूर्ववत् बनते हैं । 'अमुम् अञ्चति'—इस विग्रहमें अमुमुयङ्[16], अदमुयङ्, अदद्र्यङ्—ये तीन रूप प्रथमा विभक्तिके एकवचनमें होते हैं । प्रथमाके बहुवचनमें 'अदद्र्यञ्च' रूप होता है । और द्वितीयाके बहुवचनमें अमुमुईच तथा अमुमुईच—ये रूप होते हैं । 'भ्याम्' विभक्तिमें पूर्ववत् 'अदद्र्यग्भ्याम्' रूपकी सिद्धि होती है। 'तत्त्वतृष्' शब्दके रूप इस प्रकार होते हैं–१–तत्त्वतृट्[17]–तत्त्वतृड्, तत्त्वतृषौ, तत्त्वतृष इत्यादि । तृतीया आदिके द्विवचनमें तत्त्वतृड्भ्याम् । तत्त्वतृड्भ्यां समागत —'यह तत्त्वज्ञानकी पिपासावाले दो व्यक्तियोंके साथ आया।' सप्तमीके एकवचनमें तत्त्वतृषि और बहुवचनमें तत्त्वतृट्सु—ये रूप होते हैं । इसी तरह 'काष्ठतक्ष्' आदि रूप होते हैं। यथा—काष्ठतट्[18],

६ उत्तम वक्ता। ७ पूजनीय विद्वान् या महात्मा। ८ ऊपर चलनेवाला। ९ उत्तर दिशा। १० उत्तम आचरण करनेवाला। ११ साध्वी। १२ सम्मुख। १३ पश्चिम दिशा। १४ तिर्यग्-टेढ़ी ओर जानेवाले पशु-पक्षी आदि। १५ सम्यग्गामी। १६ उसकी ओर जानेवाला। १७ तत्त्वज्ञानके लिये प्यासा (इच्छुक)। १८ काठ काटनेवाला।

बहुवचनमें 'विट्सु' रूप होता है। 'यादृश्' शब्दके रूप इस प्रकार हैं—'यादृक्-ग्, यादृशौ, यादृशः। यादृशा, यादृग्भ्याम् इत्यादि। 'षष्' शब्द नित्य बहुवचनान्त है। इसके रूप यों हैं—१ २–'षट्-षड्। ३–षड्भिः। ४ ५–षड्भ्यः। ६–षण्णाम्, ७–षट्सु। 'सुवचस्' शब्दके रूप इस प्रकार हैं —१–सुवचा, सुवचसौ, सुवचसः। २–सुवचसम्, सुवचसौ, सुवचसः। ३–सुवचसा, सुवचोभ्याम्, सुवचोभिः —इत्यादि। सम्बोधनमें—हे सुवचः!। 'उशनस्' शब्दके रूप यों हैं—१–उशना, उशनसौ, उशनसः। हे उशन इत्यादि। सप्तमीके एकवचनमें 'उशनसि' रूप होता है। 'पुरुदंशस्' और 'अनेहस्' शब्दके रूप भी इसी प्रकार होते हैं। यथा—१–पुरुदंशा[३], पुरुदंशसौ, पुरुदंशसः। अनेहा[४], अनेहसौ, अनेहसः इत्यादि। 'विद्वस्' शब्दके रूप यों जानने चाहिये—विद्वान्[५] विद्वांसौ, विद्वांसः, हे विद्वन् इत्यादि। 'विद्वांस उत्तमाः' (विद्वान् पुरुष उत्तम होते हैं)। चतुर्थी विभक्तिके एकवचनमें 'विदुषे' रूप होता है। 'विदुषे नमः' (विद्वान्‌को नमस्कार है)। द्विवचनमें 'विद्वद्भ्याम्' और सप्तमीके बहुवचनमें 'विद्वत्सु' रूप होते हैं। 'स विद्वत्सु बभूविवान्' (वह विद्वानोंमें प्रकट हुआ।) 'बभूविवस्' शब्दके रूप इस प्रकार जानने चाहिये—बभूविवान्, बभूविवांसौ, बभूविवांसः—इत्यादि। इसी प्रकार 'पेचिवान्, पेचिवांसौ, पेचिवांसः। श्रेयान्, श्रेयांसौ, श्रेयांसः— इत्यादि रूप जानने चाहिये। 'श्रेयस्' शब्दके द्वितीयाके बहुवचनमें 'श्रेयसः' रूप होता है। अब 'अदस्' शब्दके पुँल्लिङ्गमें रूप बताते हैं—१–असौ, अमू, अमी। २–अमुम्, अमू, अमून्। ३–अमुना, अमूभ्याम्, अमीभिः। ४–अमुष्मै, अमूभ्याम्, अमीभ्यः। ५–अमुष्मात्, अमूभ्याम्, अमीभ्यः। ६–अमुष्य, अमुयोः, अमीषाम्। ७–अमुष्मिन्, अमुयोः, अमीषु। 'गोधुग्भिरागतः' (वह गाय दुहनेवालोंके साथ आया)। 'गोदुह्' शब्दके रूप इस प्रकार हैं—गोधुक्-ग्, गोदुहौ, गोदुहः। गोधुक्षु इत्यादि। इसी प्रकार 'दुह्' आदि अन्य शब्दोंके रूप जानने चाहिये। 'मित्रद्रुह्[६१]' शब्दके रूप इस प्रकार जानने चाहिये—मित्रध्रुक्-ग्, मित्रध्रुट्-ड्, मित्रद्रुहौ, मित्रद्रुहः। मित्रद्रुहा, मित्रध्रुग्भ्याम्, मित्रध्रुड्भ्याम्, मित्रध्रुग्भिः, मित्रध्रुड्भिः इत्यादि। इसी प्रकार 'चित्रद्रुह्' आदि शब्दोंके भी रूप जानने चाहिये। 'स्वलिह्[६२]' शब्दके रूप यों होते हैं—स्वलिट्-स्वलिड्, स्वलिहौ, स्वलिहः। स्वलिहा, स्वलिड्भ्याम् इत्यादि। सप्तमीके एकवचनमें 'स्वलिहि' रूप होता है। 'अनडुह्' शब्दके रूप यों हैं—१–अनड्वान्[६३], अनड्वाहौ, अनड्वाहः। २–अनड्वाहम्, अनड्वाहौ, अनडुहः, ३–अनडुहा, अनडुद्भ्याम्, अनडुद्भिः। सप्तमीके बहुवचनमें 'अनडुत्सु' (सम्बोधनमें 'हे अनड्वन्')। अजन्त और हलन्त शब्द पुँल्लिङ्गमें बताये गये। अब स्त्रीलिङ्गमें बताये जाते हैं॥ ६२–७३॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'सामान्यतः सुप् विभक्तियोंके सिद्ध रूपोंका वर्णन' नामक तीन सौ इक्यावनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३५१॥

तीन सौ बावनवाँ अध्याय

स्त्रीलिङ्ग शब्दोंके सिद्ध रूप

भगवान् स्कन्द कहते हैं—आकारान्त स्त्रीलिङ्ग 'रमा' शब्दके रूप इस प्रकार होते हैं,—रमा (प्र०—ए०), रमे (प्र०—द्वि०), रमाः (प्र०—ब०)। 'रमाः शुभाः' (रमाएँ शुभस्वरूपा हैं)। रमाम् (द्वि०—ए०) रमे (द्वि०—द्वि०), रमाः (द्वि०—ब०)। रमया (तृ०—ए०), रमाभ्याम् (तृ०—द्वि०), रमाभिः (तृ०—ब०) 'रमाभिः कृतमव्ययम्।'—(रमाओंने अव्यय (अक्षय) पुण्य किया है)। रमायै (च०—ए०), रमाभ्याम् (च०, पं०—द्वि०), रमायाः (पं०, ष०—ए०), रमयोः (ष०, स०—द्वि०)। 'रमयोः शुभम्' (दो रमाओंका शुभ)। रमाणाम् (ष०—ब०)। रमायाम् (स०—ए०), रमासु (स०—ब०)। इसी प्रकार 'दशा' आदि शब्दोंके रूप होते हैं। आकारान्त 'जरा' शब्दके कुछ रूप भिन्न होते हैं—जरा (प्रथमा विभक्ति एक०) में जरसौ—जरे (प्र०, द्वि०—द्वि०),

---

४ अनेहा। ५ ... । ५१ उत्तम बनाना बोलनेवाला। ५२ सुखमय। ५३ अधिक देखनेवाला। ५४ काल या समय। ५५ पण्डित। ५६ हुआ। ५७ जो भूतकालमें पालक रहा हो, वह। ५८ श्रेष्ठ। ५९ ... । ६० गाय दुहनेवाला। ६१ मित्रद्रोही। ६२ अपनेको या मेरेको ... । ६३ गाड़ी खींचनेवाला बैल।

सुषु (स०—व०)। तादृश्या (तृ०—ए०), तादृशी (प्र०—ए०)—ये 'तादृशी' शब्दके रूप हैं। 'दिश्' शब्दके रूप दिक्-दिग् दिशौ दिशः इत्यादि हैं। यादृश्याम् (स०—ए०), यादृशी (प्र०—ए०)—ये 'यादृशी' शब्दके रूप हैं। सुवचोभ्याम् (तृ०, च० एवं प०—द्वि०), सुवचस्सु (स०—व०)—ये 'सुवचस्' शब्दके रूप हैं। स्त्रीलिङ्गमें 'अदस्' शब्दके कतिपय रूप ये हैं—असौ (प्र०—ए०), अमू (प्र० द्वि०—द्वि०), अमूम् (द्वि०—ए०), अमू (प्र०, द्वि०—ब०), अमूभि (तृ०—ब०), अमुया (तृ०—ए०), अमुयो (प०, स०—द्वि०)॥८—११॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'स्त्रीलिङ्ग शब्दोंके सिद्ध रूपोंका कथन' नामक तीन सौ बावनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३५२ ॥

तीन सौ तिरपनवाँ अध्याय

नपुंसकलिङ्ग शब्दोंके सिद्ध रूप

भगवान् स्कन्द कहते हैं—नपुंसकलिङ्गमें 'किम्' शब्दके ये रूप होते हैं—(प्रथमा) किम्, के, कानि। (द्वितीया) किम्, के, कानि। शेष रूप पुँल्लिङ्गवत् हैं। जलम् (प्र० ए०), सर्वम् (प्र० ए०)। पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर, अधर, स्व और अन्तर—इन सब शब्दोंके रूप इसी प्रकार होते हैं। सोमपम् (प्र० द्वि० ए०), सोमपानि (प्र०, द्वि० ब०)—ये 'सोमप' शब्दके रूप हैं। 'ग्रामणी' शब्दके नपुंसकलिङ्गमें इस प्रकार रूप होते हैं—ग्रामणि (प्र० द्वि—ए०), ग्रामणिनी (प्र० द्वि०—द्वि०), ग्रामणीनि (प्र०, द्वि०—ब०)। इसी प्रकार 'वारि' शब्दके रूप होते हैं—वारि (प्र० द्वि०—ए०), वारिणी (प्र०, द्वि०—द्वि०), वारीणि (प्र० द्वि०—ब०), वारीणाम् (प०—ब०), वारिणि (स० ए०)। शुचये-शुचिने (च०—ए०) और मृदुने-मृदवे (च०—ए०) ये क्रमसे 'शुचि' और 'मृदु' शब्दके रूप हैं। त्रपु (प्र०, द्वि०—ए०), त्रपुणी (प्र०, द्वि०—द्वि०), त्रपूणाम् (प०—ब०)—ये 'त्रपु' शब्दके कतिपय रूप हैं। 'खल्पुनि' तथा 'खल्प्वि'—ये दोनों नपुंसक 'खल्पू' शब्दके सप्तमी, एकवचनके रूप हैं। कर्त्रा—कर्तृणा (तृ०—ए०), कर्तृणे—कर्त्रे (च०—ए०)—ये 'कर्तृ' शब्दके रूप हैं। अतिरि (प्र०, द्वि०—ए०), अतिरिणी (प्र०, द्वि०—द्वि०)—ये 'अतिरि' शब्दके रूप हैं। अभिनि (प्र०, द्वि०—ए०), अभिनिनी (प्र०, द्वि०—द्वि०)—ये 'अभिनि' शब्दके रूप हैं। सुवचांसि (प्र०, द्वि०—ब०), यह 'सुवचस्' शब्दका रूप है। सुवाक्षु (स०—ब०) यह 'सुवाच्' शब्दका रूप है। 'यत्' शब्दके ये दो यत्-यद् (प्र० द्वि०—ए०) हैं। 'तत्' शब्दके तत्, तद् (प्र०, द्वि०—ए०), 'कर्म' शब्दके कर्माणि (प्र० द्वि०—ब०), 'इदम्' शब्दके इदम् (प्र०, द्वि०—ए०), इमे (प्र० द्वि०—द्वि०), इमानि (प्र०, द्वि०—ब०)—ये रूप हैं। ईदृक् ईदृग् (प्र०, द्वि०—ए०)—यह 'ईदृश्' शब्दका रूप है। अद (प्र०, द्वि०—ए०), अमुनी (प्र०, द्वि०—द्वि०), अमूनि (प्र०, द्वि०—ब०)। अमुना (तृ०—ए०), अमीषु (स०—ब०)—'अदस्' शब्दके ये रूप भी पूर्ववत् सिद्ध होते हैं। 'युष्मद्' और 'अस्मद्' शब्दके रूप इस प्रकार होते हैं—अहम् (प्र०—ए०), आवाम् (प्र०—द्वि०), वयम् (प्र०—ब०)। माम् (द्वि०—ए०), आवाम् (द्वि०—द्वि०), अस्मान् (द्वि०—ब०)। मया (तृ०—ए०), आवाभ्याम् (तृ०, च०—द्वि०), अस्माभि (तृ०—ब०)। मह्यम् (च०—ए०), अस्मभ्यम् (च०—ब०)। मत् (प०—ए०), आवाभ्याम् (प०—द्वि०), अस्मत् (प०—ब०)। मम (ष०—ए०), आवयो (ष०, स०—द्वि०), अस्माकम् (ष०—ब०)। अस्मासु (स०—ब०)—ये 'अस्मद्' शब्दके रूप हैं। त्वम् (प्र०—ए०), युवाम् (प्र०—द्वि०) यूयम् (प्र०—ब०)। त्वाम् (द्वि०—ए०), युवाम् (द्वि०—द्वि०), युष्मान् (द्वि०—ब०)। त्वया (तृ०—ए०), युष्माभि (तृ०—ब०)। तुभ्यम् (च०—ए०), युवाभ्याम् (तृ०, च०—द्वि०), युष्मभ्यम् (च०—ब०)। त्वत् (प०—ए०), युवाभ्याम् (प०—द्वि०) युष्मत् (प०—ब०)। तव (ष०—ए०), युवयो (ष०, स०—द्वि०), युष्माकम् (ष०—ब०)। त्वयि (स०—ए०), युष्मासु (स०—ब०)—ये 'युष्मद्' शब्दके रूप हैं। यहाँ 'अजन्त' और 'हलन्त' शब्दोंका दिग्दर्शन मात्र कराया गया है॥ १—७ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'नपुंसकलिङ्ग शब्दोंके सिद्ध रूपोंका वर्णन' नामक तीन सौ तिरपनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३५३॥

तीन सौ चौवनवाँ अध्याय

कारकप्रकरण

भगवान् स्कन्द कहते हैं—अब मैं विभक्त्यर्थोंसे युक्त 'कारक'का वर्णन करूँगा*। 'ग्रामोऽस्ति' (ग्राम है)—यहाँ प्रातिपदिकार्थमात्रमें प्रथमा विभक्ति हुई है। विभक्त्यर्थमें प्रथमा होनेका विधान पहले कहा जा चुका है। 'हे महार्क'—इस वाक्यमें जो 'महार्क' शब्द है, उसमें सम्बोधनमें प्रथमा विभक्ति हुई है। सम्बोधनमें प्रथमाका विधान पहले आ चुका है। 'इह नौमि विष्णुं श्रिया सह। (मैं यहाँ लक्ष्मी सहित भगवान् विष्णुका स्तवन करता हूँ।)—इस वाक्यमें 'विष्णु' शब्दकी कर्म-संज्ञा हुई है। और 'द्वितीया कर्मणि स्मृता'—इस पूर्वकथित नियमके अनुसार कर्ममें द्वितीया हुई है। 'श्रिया सह'—यहाँ 'श्री' शब्दमें 'सह'का योग होनेसे तृतीया हुई है। सहार्थक और सदृशार्थक शब्दोंका योग होनेपर तृतीया विभक्ति होती है, यह सर्वसम्मत मत है। क्रियामें जिसकी स्वतन्त्रता विवक्षित हो, वह 'कर्ता' या 'स्वतन्त्र कर्ता' कहलाता है। जो उसका प्रयोजक हो, वह 'प्रयोजक कर्ता' और 'हेतुकर्ता' भी कहलाता है। जहाँ कर्म ही कर्ताके रूपमें विवक्षित हो, वह 'कर्मकर्ता' कहलाता है। इनके सिवा 'अभिहित' और 'अनभिहित'—ये दो कर्ता और होते हैं। 'अभिहित' उत्तम और 'अनभिहित' अधम माना गया है। स्वतन्त्रकर्ताका उदाहरण—'कृतिनः सो विद्यां समुपासते।' (विद्वान् पुरुष उस विद्याकी उपासना करते हैं) यहाँ विद्याकी उपासनामें विद्वानोंकी स्वतन्त्रता विवक्षित है, इसलिये वे 'स्वतन्त्रकर्ता' हैं। हेतुकर्ताका उदाहरण—'चैत्रो मैत्रं हितं लम्भयते।' (चैत्र मैत्रको हितकी प्राप्ति कराता है।) 'मैत्रो हितं लभते तं चैत्रः प्रेरयति इति चैत्रो मैत्रं हितं लम्भयते।' (मैत्र हितको प्राप्त करता है और चैत्र उसे प्रेरणा देता है। अतः यह कहा जाता है कि चैत्र मैत्रको हितकी प्राप्ति कराता है'—यहाँ 'चैत्र' प्रयोजककर्ता या हेतुकर्ता है। कर्मकर्ताका उदाहरण—'प्राकृतधीः स्वयं भिद्यते।' (गँवार बुद्धिवाला मनुष्य स्वयं ही फूट जाता है), 'तरुः स्वयं छिद्यते।' (वृक्ष स्वयं कट जाता है)। यहाँ फोड़नेवाले और काटनेवाले कर्ता आदिके व्यापारकी विवक्षाका विषय नहीं बनाया गया। जहाँ कार्यके अतिशय सौकर्यको प्रकट करनेके लिये कर्तृव्यापार अविवक्षित हो, वहाँ कर्म आदि अन्य कारक भी कर्ता-जैसे हो जाते हैं और तदनुसार ही क्रिया होती है। इसी दृष्टिसे यहाँ 'प्राकृतधी' और 'तरु' पद कर्मकर्ताके रूपमें प्रयुक्त हैं। अभिहित कर्ताका उदाहरण—'रामो गच्छति।' (राम जाता है।) यहाँ 'कर्ता' अर्थमें तिङन्तका प्रयोग है, इसलिये कर्ता उक्त हुआ। जहाँ कर्ममें प्रत्यय हो, वहाँ 'कर्म' उक्त और 'कर्ता' अनुक्त या अनभिहित हो जाता है। अनभिहित कर्ताका उदाहरण—'गुरुणा शिष्ये धर्मः व्याख्यायते।' (गुरुद्वारा शिष्यके निमित्त धर्मकी व्याख्या की जाती है।) यहाँ कर्ममें प्रत्यय होनेसे 'धर्मम्' की जगह 'धर्मः' हो गया, क्योंकि उक्त कर्ममें प्रथमा विभक्ति होनेका नियम है। अनभिहित कर्तामें पहले कथित नियमके अनुसार तृतीया विभक्ति होती है, इसीलिये 'गुरुणा' पदमें तृतीया विभक्ति प्रयुक्त हुई है। इस तरह पाँच प्रकारके 'कर्ता' बताये गये। अब सात प्रकारके कर्मका वर्णन सुनो ॥ १–४ ॥

१–ईप्सितकर्म, २–अनीप्सितकर्म, ३–ईप्सितानीप्सितकर्म, ४–अकथितकर्म, ५–कर्तृकर्म, ६–अभिहितकर्म तथा ७–अनभिहितकर्म। ईप्सितकर्मका उदाहरण—'यतिः हरिं श्रद्दधाति।' (विरक्त साधु या संन्यासी हरिमें श्रद्धा रखता है।) यहाँ कर्ता यतिको हरि अभीष्ट हैं, इसलिये वे 'ईप्सित कर्म' हैं। अतएव हरिमें द्वितीया विभक्तिका प्रयोग हुआ है। अनीप्सितकर्मका उदाहरण—'अहिं लङ्घयते भूशम्।' (उसे सर्पको बहुधा लँघवाता है।) यहाँ 'अहि' यह 'अनीप्सित कर्म' है। लाँघनेवाला सर्पको लाँघना नहीं चाहता। वह किसीके हठ या प्रेरणासे सर्पलङ्घनमें प्रवृत्त होता है। ईप्सितानीप्सितकर्मका उदाहरण—'दुग्धं सभयपत्रजः भक्षयेत्।' (मनुष्य दूध पीता हुआ धूल भी पी जाता है।) यहाँ दुग्ध 'ईप्सित कर्म' है और धूल 'अनीप्सित कर्म'। अकथितकर्म—जहाँ अपादान आदि विशेष नामोंसे कारकको व्यक्त करना अभीष्ट न हो, वहाँ वह कारक 'अकथित' हो जाता है। यथा—'गोपालः गां पयः दोग्धि।' (ग्वाला

* अध्याय तीन सौ इक्यावनमें श्लोक बाईससे अट्ठाईसतक भवन्तर्थोंके प्रयोगका नियम बताया गया है। वे सब श्लोक ही होने चाहिये थे क्योंकि वहाँ जो नियम या विधान दिये गये हैं, उनके उदाहरण यहाँ मिलते हैं।

गायसे दूध दुहता है।) यहाँ 'गाय' अपादान है, तथापि अपादानके रूपमें कथित न होनेसे अकथित हो गया और उसमें पञ्चमी विभक्ति न होकर द्वितीया विभक्ति हुई। कर्तृकर्म—जहाँ प्रयोजक कर्ताका प्रयोग होता है, वहाँ प्रयोज्य कर्ता कर्मके रूपमें परिणत हो जाता है। यथा—"गुरुः शिष्यं ग्रामं गमयेत्।" (गुरु शिष्यको गाँव भेजें।) शिष्यो ग्रामं गच्छेत्, तं गुरुः प्रेरयेत् इति गुरुः शिष्यं ग्रामं गमयेत्।" (शिष्य गाँवको जाय, इसके लिये गुरु उसे प्रेरित करें, इस अर्थमें गुरु शिष्यको गाँव भेजें, यह वाक्य है।) यहाँ गुरु 'प्रयोजक कर्ता' है, और शिष्य प्रयोज्य कर्ता या 'कर्मभूत कर्ता' है। अभिहित कर्म—'श्रियै हरिः पूजा क्रियते।' (लक्ष्मीकी प्राप्तिके लिये श्रीहरिकी पूजा की जाती है।) यहाँ कर्ममें प्रत्यय होनेसे पूजा 'उक्त कर्म' है, इसीको 'अभिहित कर्म' कहते हैं, अतएव इसमें प्रथमा विभक्ति हुई। अनभिहितकर्म—जहाँ कर्तामें प्रत्यय होता है, वहाँ कर्म अनभिहित हो जाता है, अतएव उसमें द्वितीया विभक्ति होती है। उदाहरणके लिये यह वाक्य है—'हरेः सर्वदं स्तोत्रं कुर्यात्' (श्रीहरिकी सर्वमनोरथदायिनी स्तुति करे।) करण दो प्रकारका बताया गया है—'बाह्य' और 'आभ्यन्तर'। 'तृतीया करणे भवेत्।'—इस पूर्वोक्त नियमके अनुसार करणमें तृतीया होती है। आभ्यन्तर करणका उदाहरण देते हैं—'चक्षुषा रूपं गृह्णाति।' (नेत्रसे रूपको ग्रहण करता है।) यहाँ नेत्र 'आभ्यन्तर करण' है, अतः इसमें तृतीया विभक्ति हुई। 'बाह्य करण'का उदाहरण है—'दात्रेण लुनीयात्' (हँसुआसे उसको काटे।) यहाँ दात्र 'बाह्य करण' है। अतः उसमें तृतीया हुई है। सम्प्रदान तीन प्रकारका बताया गया है—प्रेरक, अनुमन्तृक और अनिराकर्तृक। जो दानके लिये प्रेरित करता हो, वह 'प्रेरक' है। जो प्राप्त हुई किसी वस्तुके लिये अनुमति या अनुमोदनमात्र करता है, वह 'अनुमन्तृक' है। जो न 'प्रेरक' है, न 'अनुमन्तृक' है, अपितु किसीकी दी हुई वस्तुको स्वीकार कर लेता है, उसका निराकरण नहीं करता, वह 'अनिराकर्तृक सम्प्रदान' है। 'सम्प्रदाने चतुर्थी।'—इस पूर्वोक्त नियमके अनुसार सम्प्रदानमें चतुर्थी विभक्ति होती है। तीनों सम्प्रदानोंके क्रमशः उदाहरण दिये जाते हैं—१—'नरो ब्राह्मणाय गां ददाति।' (मनुष्य ब्राह्मणको गाय देता है।) यहाँ ब्राह्मण 'प्रेरक सम्प्रदान' होनेके कारण उसमें चतुर्थी विभक्ति हुई है। ब्राह्मणलोग प्रायः यजमानोंको गोदानके लिये प्रेरित करते रहते हैं, अतः उन्हें 'प्रेरक सम्प्रदान' की संज्ञा दी गयी है। २—'नरो नृपतये दासं ददाति।' (मनुष्य राजाको दास अर्पित करता है।) यहाँ राजाने दास अर्पणके लिये कोई प्रेरणा नहीं दी है। केवल प्राप्त हुए दासको ग्रहण करके उसका अनुमोदनमात्र किया है, इसलिये वह 'अनुमन्तृक सम्प्रदान' है, अतएव 'नृपतये' में चतुर्थी विभक्ति प्रयुक्त हुई है। ३—'सज्जन भर्त्रे पुष्पाणि दद्यात्।' (सज्जन पुरुष स्वामीको पुष्प दे)—यहाँ स्वामीने पुष्पदानकी मनाही न करके उसको अङ्गीकार मात्र कर लिया है, इसलिये 'भर्तृ' शब्द 'अनिराकर्तृक सम्प्रदान' है। सम्प्रदान होनेके कारण ही उसमें चतुर्थी विभक्ति हुई है। अपादान दो प्रकारका होता है—'चल' और 'अचल'। कोई भी अपादान क्यों न हो, 'अपादाने पञ्चमी स्यात्।'—इस पूर्वकथित नियमके अनुसार उसमें पञ्चमी विभक्ति होती है। 'धावतः अश्वात् पतितः।' (दौड़ते हुए घोड़ेसे गिरा)—यहाँ दौड़ता हुआ घोड़ा 'चल अपादान' है। अतः 'धावतः अश्वात्' में पञ्चमी विभक्ति हुई है। 'स वैष्णवः ग्रामादायाति।' (वह वैष्णव गाँवसे आता है)—यहाँ ग्राम शब्द 'अचल अपादान' है, अतः उसमें पञ्चमी विभक्ति हुई है॥ ५-११॥

अधिकरण चार प्रकारके होते हैं—अभिव्यापक, औपश्लेषिक, वैषयिक और सामीप्यक। जो तत्त्व किसी वस्तुमें व्यापक हो, वह आधारभूत वस्तु अभिव्यापक 'अधिकरण' है। यथा—'दध्नि घृतम्।' (दहीमें घी है)। 'तिलेषु तैलं देवार्थम्।' (तिलमें तेल है, जो देवताके उपयोगमें आता है।) यहाँ घी दहीमें और तेल तिलमें व्याप्त है। अतः इनके आधारभूत दही और तिल अभिव्यापक अधिकरण हैं। 'आधारो योऽधिकरणं विभक्तिस्तत्र सप्तमी।'—इस पूर्वोक्त नियमके अनुसार अधिकरणमें सप्तमी विभक्ति होती है। प्रस्तुत उदाहरणमें 'दध्नि' और 'तिलेषु'—इन पदोंमें इसी नियमसे सप्तमी विभक्ति हुई है। अब 'औपश्लेषिक अधिकरण' बताया जाता है—'कपिर्गृहे तिष्ठति वृक्षे च तिष्ठेत्।' (बंदर घरके ऊपर स्थित रहता है और वृक्षपर भी स्थित रहता है।) कपिके आधारभूत जो गृह और वृक्ष हैं, उनपर वह ऊपर बैठता है। इसीलिये वह 'औपश्लेषिक अधिकरण' माना गया है। अधिकरण होनेसे ही 'गृहे' और 'वृक्षे'—इन पदोंमें सप्तमी विभक्ति प्रयुक्त हुई है। अब 'वैषयिक अधिकरण' बताते हैं—विषयभूत

अधिकरणको 'वैषयिक' कहते हैं। यथा—'जले मत्स्यः।', 'वने सिंहः।' (जलमें मछली, वनमें सिंह।) यहाँ जल और वन 'विषय' हैं और मत्स्य तथा सिंह 'विषयी'। अतः विषयभूत अधिकरणमें सप्तमी विभक्ति हुई। अब 'सामीप्यक अधिकरण' बताते हैं—'गङ्गायां घोषो वसति।' (गङ्गामें गोशाला बसती है।) यहाँ 'गङ्गा' का अर्थ है—गङ्गाके समीप। अतः 'सामीप्यक अधिकरण' होनेके कारण गङ्गामें सप्तमी विभक्ति हुई। ऐसे वाक्य 'औपचारिक' माने जाते हैं। जहाँ मुख्यार्थ बाधित होनेसे उसके सम्बन्धसे युक्त अर्थान्तरकी प्रतीति होती है, वहाँ 'लक्षणा' होती है। 'गौर्वाहिक' इत्यादि स्थलोंमें 'गो' शब्दका मुख्यार्थ बाधित होता है, अतः यह स्वसदृशको लक्षित कराता है। इस तरहके वाक्यप्रयोगको 'औपचारिक' कहते हैं। 'अनभिहित कर्ता' में तृतीया अथवा षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—'विष्णुः सम्पूज्यते लोकैः।' (लोगोंद्वारा विष्णु पूजे जाते हैं।) यहाँ कर्ममें प्रत्यय हुआ है। अतः कर्म उक्त है और कर्ता अनुक्त। इसलिये अनुक्त कर्ता 'लोक' शब्दमें तृतीया विभक्ति हुई है। 'तेन गन्तव्यम्, तस्य गन्तव्यम्' (उसको जाना चाहिये) यहाँ उपर्युक्त नियमके अनुसार तृतीया और षष्ठी—दोनोंका प्रयोग हुआ है। षष्ठीका प्रयोग कृदन्तके योगमें ही होता है। अभिहित कर्ता और कर्ममें प्रथमा विभक्ति होती है। इसीलिये 'विष्णु' में प्रथमा विभक्ति हुई है। 'भक्तः हरिं प्रणमेत्।' (भक्त भगवान्‌को प्रणाम करे।) यहाँ अभिहित कर्ता 'भक्त'में प्रथमा विभक्ति हुई है और अनुक्त कर्म 'हरि' में द्वितीया विभक्ति। 'हेतु'में तृतीया विभक्ति होती है। यथा—'अन्नेन वसेत्।' (अन्नके हेतु कहीं भी निवास करे।) यहाँ हेतुभूत अन्नमें तृतीया विभक्ति हुई है। 'तादर्थ्य'में चतुर्थी विभक्ति कही गयी है। यथा—'वृक्षाय जलम्' 'वृक्षके लिये पानी।' यहाँ 'वृक्ष' शब्दमें 'तादर्थ्यप्रयुक्त' चतुर्थी विभक्ति हुई है। परि, अप, आङ् आदिके योगमें पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा—'परि ग्रामात् पुरा बलवत् वृष्टोऽयं देवः।' (गाँवसे कुछ दूर हटकर देखने पूर्वकालमें बड़े जोरकी वर्षा की थी।)—इस वाक्यमें 'परि' के साथ योग होनेके कारण 'ग्राम' शब्दमें पञ्चमी विभक्ति हुई है। दिग्वाचक शब्द, अन्यार्थक शब्द तथा 'ऋते' आदि शब्दोंके योगमें भी पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा—'पूर्वो ग्रामात्।' 'ऋते विष्णोः।' 'न मुक्तिः इतरा हरेः।' 'पृथक्' और 'विना' आदिके योगमें तृतीया एवं पञ्चमी विभक्ति होती है—जैसे 'पृथग् ग्रामात्।' यहाँ 'पृथक्' शब्दके योगमें 'ग्राम' शब्दसे पञ्चमी और 'पृथक् विहारेण'—यहाँ 'पृथक्' शब्दके योगमें 'विहार' शब्दसे तृतीया विभक्ति हुई। इसी प्रकार 'विना' शब्दके योगमें भी जानना चाहिये। 'विना श्रियः'—यहाँ 'विना' के योगमें 'श्री'शब्दसे द्वितीया, 'विना श्रिया'—यहाँ 'विना' के योगमें 'श्री'शब्दसे तृतीया और 'विना श्रियः'—यहाँ 'विना'के योगमें 'श्री'शब्दसे पञ्चमी विभक्ति हुई है। कर्मप्रवचनीय-संज्ञक शब्दोंके योगमें द्वितीया विभक्ति होती है—जैसे 'अन्वर्जुनं योद्धारः'—योद्धा अर्जुनके सनिकट प्रदेशमें हैं।'—यहाँ 'अनु' कर्मप्रवचनीय संज्ञक है—इसके योगमें 'अर्जुन' शब्दमें द्वितीया विभक्ति हुई। इसी प्रकार अभितः परितः आदिके योगमें भी द्वितीया होती है। यथा 'अभितो ग्राम मीरितम्।—गाँवके सब तरफ कह दिया है।' यहाँ 'अभितः' शब्दके योगमें 'ग्राम' शब्दमें द्वितीया विभक्ति हुई है। नमः, स्वाहा, स्वधा, स्वस्ति एवं वषट् आदि शब्दोंके योगमें चतुर्थी विभक्ति होती है—जैसे 'नमो देवाय'—(देवको नमस्कार है)—यहाँ 'नमः' के योगमें 'देव' शब्दमें चतुर्थी विभक्ति प्रयुक्त हुई है। इसी प्रकार 'ते स्वस्ति'—तुम्हारा कल्याण हो'—यहाँ 'स्वस्ति' के योगमें 'युष्मद्' शब्दसे चतुर्थी विभक्ति हुई ('युष्मद्' शब्दको चतुर्थीके एकवचनमें वैकल्पिक 'ते' आदेश हुआ है)। तुमुन्प्रत्ययार्थक भाववाची शब्दसे चतुर्थी विभक्ति होती है—जैसे 'पाकाय याति' और 'पक्तये याति—पकानेके लिये जाता है।' यहाँ 'पाक' और 'पक्ति' शब्द 'तुमर्थक भाववाची' हैं। इन दोनोंसे चतुर्थी विभक्ति हुई। 'सहार्थ' शब्दके योगमें हेतु अर्थ और कुत्सित अङ्गवाचकमें तृतीया विभक्ति होती है। सहाययोगमें तृतीया विशेषणवाचकसे होती है। जैसे पिताऽगात् सह पुत्रेण'—पिता पुत्रके साथ चले गये।' यहाँ 'सह' शब्दके योगमें विशेषणवाचक 'पुत्र' शब्दसे तृतीया विभक्ति हुई। इसी प्रकार 'गदया हरिः' (भगवान् हरि गदाके सहित रहते हैं)—यहाँ 'सहार्थक' शब्दके न रहनेपर भी सहार्थ है, इसलिये विशेषणवाचक 'गदा' शब्दसे तृतीया विभक्ति हुई। 'अक्ष्णा काणः—आँखसे काना है।'—यहाँ कुत्सितअङ्गवाचक 'अक्षि' शब्द है। उससे तृतीया विभक्ति हुई। 'अर्थेन निवसेद् भृत्यः।'—'भृत्य धनके कारणसे रहता है।'—यहाँ हेतु-अर्थ है 'धन'। तद्वाचक 'अर्थ' शब्दसे तृतीया विभक्ति हुई। कालवाचक और भाव अर्थमें सप्तमी विभक्ति होती है।

अर्थात् जिसकी क्रियासे अन्य क्रिया लक्षित होती है, तद्वाचक शब्दसे सप्तमी विभक्ति होती है। जैसे— विष्णौ नते भवेन्मुक्तिः—भगवान् विष्णुको नमस्कार करनेपर मुक्ति मिलती है।'—यहाँ श्रीविष्णुकी नमस्कार क्रियासे मुक्ति-भवनरूपा क्रिया लक्षित होती है, अतः 'विष्णु' शब्दसे सप्तमी विभक्ति हुई। इसी प्रकार 'वसन्ते स गतो हरिम्—वह वसन्त ऋतुमें हरिके पास गया।'—यहाँ 'वसन्त' कालवाचक है, उससे सप्तमी हुई। (स्वामी, ईश, पति, साक्षी, सूत और दायाद आदि शब्दोंके योगमें षष्ठी एवं सप्तमी विभक्तियाँ होती हैं—) जैसे 'नृणां स्वामी, नृषु स्वामी'—मनुष्योंका स्वामी,—यहाँ 'स्वामी' शब्दके योगमें 'नृ' शब्दसे षष्ठी एवं सप्तमी विभक्तियाँ हुईं। इसी प्रकार 'नृणामीशः—नरोंके ईश'—यहाँ 'ईश' शब्दके योगमें 'नृ' शब्दसे, तथा 'सतां पतिः—सज्जनोंका पति—यहाँ 'सत्' शब्दसे षष्ठी विभक्ति हुई। ऐसे ही 'नृणां साक्षी, नृषु साक्षी—मनुष्योंका साक्षी'—यहाँ 'नृ' शब्दसे षष्ठी एवं सप्तमी विभक्तियाँ हुईं। गोषु नाथो गवां पतिः—गौओंका स्वामी है' यहाँ 'नाथ' और 'पति' शब्दोंके योगमें 'गो' शब्दसे षष्ठी और सप्तमी विभक्तियाँ हुईं। 'गोषु सूतो गवां सूतः—गौओंमें उत्पन्न है'—यहाँ 'सूत' शब्दके योगमें 'गो' शब्दसे षष्ठी एवं सप्तमी विभक्ति हुई। 'इह राज्ञां दायादकोऽस्तु।—यहाँ राजाओंका दायाद हो।' यहाँ 'दायाद' शब्दके योगमें 'राजन्' शब्दमें षष्ठी विभक्ति हुई है। हेतुवाचकसे 'हेतु' शब्दके प्रयोग होनेपर षष्ठी विभक्ति होती है। जैसे 'अन्नस्य हेतोर्वसति—अन्नके कारण वास करता है।'—यहाँ 'वास'में अन्न 'हेतु' है, तद्वाचक 'हेतु' शब्दका भी प्रयोग हुआ है, अतः 'अन्न' शब्दसे षष्ठी विभक्ति हुई। स्मरणार्थक धातुके प्रयोगमें उसके कर्ममें षष्ठी विभक्ति होती है। जैसे—'मातुः स्मरति।—माताको स्मरण करता है।' यहाँ 'स्मरति'के योगमें 'मातृ' शब्दसे षष्ठी विभक्ति हुई। कृत्प्रत्ययके योगमें कर्ता एवं कर्ममें षष्ठी विभक्ति होती है। जैसे—'अपां भेत्ता—जलको भेदन करनेवाला।' यहाँ—'भेत्तृ' शब्द 'कृत्' प्रत्ययान्त है। उसके योगमें—कर्मभूत 'अप्' शब्दसे षष्ठी विभक्ति हुई। इसी प्रकार 'तव कृतिः—तुम्हारी कृति है'—यहाँ 'कृति' शब्द 'कृत्प्रत्ययान्त' है। उसके योगमें कर्तृभूत 'युष्मद्' शब्दसे षष्ठी विभक्ति हुई (युष्मद्—ङस्=तव)—निष्ठा आदि अर्थात् क्त—क्तवतु, शतृ शानच्, उ, उक, क्त, तुमुन्, खलर्थक, तृन्, शानच्, चानश् आदिके योगमें षष्ठी विभक्ति नहीं होती (यथा 'ग्रामं गतः' इत्यादि)॥ १२—२६॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'कारक निरूपण' नामक तीन सौ चौवनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३५४॥

तीन सौ पचपनवाँ अध्याय

समास निरूपण

भगवान् कार्त्तिकेय कहते हैं—कात्यायन! मैं छः प्रकारके 'समास' बताऊँगा। फिर अवान्तर भेदोंसे 'समास'के अट्ठाईस भेद हो जाते हैं। समास 'नित्य' और 'अनित्य'के भेदसे दो प्रकारका है तथा 'लुक्' और 'अलुक्'के भेदसे भी

[1] जहाँ अनेक पदोंका परस्पर एकार्थीभावरूप सामर्थ्य लक्षित हो, उनमें समास होता है। कृत्, तद्धित, समास, एकशेष तथा सनाद्यन्त धातु—ये पाँच वृत्तियाँ मानी गयी हैं। परार्थका अभिधान (कथन) 'वृत्ति' है। वृत्त्यर्थके अवबोधक वाक्यको 'विग्रह' कहते हैं। 'विग्रह' दो प्रकारका होता है—'लौकिक' और 'अलौकिक'। परिनिष्ठित (प्रयोगार्ह) होनेके कारण जो साधु वाक्य है वह लौकिक विग्रह कहलाता है। जो प्रयोगयोग्य न होनेसे असाधु है वह अलौकिक विग्रह है। 'राज्ञः पुरुषः'—यह लौकिक विग्रह है 'राजन्+ङस् पुरुष+सु' यह अलौकिक विग्रह है। समास 'नित्य' और 'अनित्य'के भेदसे दो प्रकारका है। जो अविग्रह (लौकिक विग्रहसे रहित) या अस्वपद विग्रह (समस्यमान 'पदान्' पदोंसे कथित) हो, वह नित्य-समास है; इसके विपरीत अनित्य-समास है। प्राचीन विद्वानोंने समासके छः प्रकार बताये हैं। यथा—

सुपां सुपा तिङा नाम्ना धातुनाथ तिङां तिङा।
सुबन्तेनेति विज्ञेयः समासः षड्विधो बुधैः॥

(१) उदाहरणके लिये सुबन्तका सुबन्तके साथ समास—राजपुरुषः। यहाँ ('राज्ञः पुरुषः' इस विग्रहके अनुसार) पूर्व और उत्तर दोनों पद 'सुबन्त' हैं। (२) सुबन्तका तिङ्के साथ समास—यथा—पर्यभूषत्। (३) सुबन्तको नामके साथ—कुम्भकारः। हेमकारः इत्यादि। (४) सुबन्तका धातुके साथ समास। यथा—'कटप्रूः', अजस्रम् इत्यादि। (५) तिङन्तका तिङन्तके साथ समास, यथा—पिबतखादता। खादतमोदता इत्यादि। (६) तिङन्तका सुबन्तके साथ समास यथा—कृन्तविचक्षणा। समास प्रकरणके उदाहरणोंमें पाठ है।

उसके दो प्रकार और हो जाते हैं। कुम्भकार और हेमकार 'नित्य समास' हैं। (क्योंकि विग्रह-वाक्यद्वारा ये शब्द जातिविशेषका बोध नहीं करा सकते।) 'राज्ञ+पुमान्= राजपुमान्'—यह षष्ठी-तत्पुरुष समास स्वपदविग्रह होनेके कारण 'अनित्य' है। कष्टश्रित (कष्ट+श्रित)—इसमें 'लुक्'समास है,क्योंकि 'कष्ट' पदके अन्तमें स्थित द्वितीया विभक्ति का 'लुक्' (लोप) हो जाता है। 'कण्ठेकालः' आदि 'अलुक्' समास हैं, क्योंकि इसमें कण्ठशब्दोत्तरवर्तिनी सप्तमी विभक्तिका 'लुक्' नहीं होता। तत्पुरुष-समास आठ प्रकारका होता है। प्रथमान्त आदि शब्द सुबन्तके साथ समस्त होते हैं। 'पूर्वकाय' इस तत्पुरुषसमासमें जब 'पूर्वं कायस्य'-ऐसा विग्रह किया जाता है, तब यह 'प्रथमा-तत्पुरुष' समास कहा जाता है। इसी प्रकार 'अपरकायः'—कायस्य अपरम्, इस विग्रहमें, 'अधरकाय'—कायस्य अधरम्—इस विग्रहमें और 'उत्तरकायः'—कायस्योत्तरम्—इस विग्रहमें भी प्रथमा तत्पुरुष समास कहा जाता है। ऐसे ही 'अर्द्धकणा' इसमें अर्द्धम् कणाया—ऐसा विग्रह होनेसे प्रथमा-तत्पुरुष समास होता है एवं 'भिक्षातुर्यम्'—इसमें तुर्यं भिक्षाया—ऐसा विग्रह होनेसे तुर्यभिक्षा और पक्षान्तरमें 'भिक्षातुर्यम्'—ऐसा षष्ठी-तत्पुरुष होता है। ऐसे ही 'आपन्नजीविक' यह द्वितीया तत्पुरुष समास है। इसका विग्रह इस प्रकार होता है—'आपन्नो जीविकाम्।' पक्षान्तरमें जीविकापन्न ऐसा रूप होता है। इसी प्रकार 'माधवाश्रित'—यह द्वितीया समास है; इसका विग्रह 'माधवम् आश्रितः'—इस प्रकार है। 'वर्षभोग्य'—यह द्वितीया तत्पुरुष समास है—इसका विग्रह है वर्षं भोग्यः।' धान्यार्थ यह तृतीया-समास है। इसका विग्रह धान्येन अर्थ' इस प्रकार है। 'विष्णु बलि' यहाँ विष्णवे बलि'—इस विग्रहमें चतुर्थी-तत्पुरुष समास होता है। वृकभीति' यह पञ्चमी-तत्पुरुष है। इसका विग्रह 'वृकाद् भीति'—इस प्रकार है। 'राजपुमान्'—यहाँ राज्ञः पुमान्—इस विग्रहमें षष्ठी-तत्पुरुष समास होता है। इसी प्रकार 'वृक्षस्य फलम्—वृक्षफलम्'—यहाँ षष्ठी तत्पुरुष समास है। 'अक्षशौण्ड' (द्यूतक्रीडामें निपुण) इसमें सप्तमी तत्पुरुष समास है। अहित—जो हितकारी न हो, यह—इसमें 'नञ्समास' है॥ १—७॥

'नीलोत्पल' आदि जिसके उदाहरण हैं, वह 'कर्मधारय' समास सात प्रकारका होता है १–विशेषणपूर्वपद (जिसमें विशेषण पूर्वपद हो और विशेष्य उत्तरपद अथवा)। इसका उदाहरण है—'नीलोत्पल' (नीला कमल)। २–विशेष्य विशेषणपद—इसका उदाहरण है—'वैयाकरणखसूचि' (कुछ पूछनेपर आकाशकी ओर देखनेवाला वैयाकरण)। विशेषणोभयपद (अथवा विशेषणद्विपद) जिसमें , पद विशेषणरूप ही हों। जैसे—शीतोष्ण (ठंडा गरम) ४–उपमानपूर्वपद। इसका उदाहरण है (शङ्खके समान सफेद)। ५–उपमानोत्तरपद—इसका उदाहरण है—'पुरुषव्याघ्र' (पुरुषो व्याघ्र इव)। ६ सम्भावनापूर्वपद—(जिसमें पूर्वपद सम्भावनात्मक है) उदाहरण—गुणवृद्धि (गुण इति वृद्धि स्यात्। अर्थात् 'गुण' शब्द बोलनेसे वृद्धिकी सम्भावना होती है)। तात्पर्य यह है कि 'वृद्धि हो'—यह कहनेकी आवश्यकता हो तो गुण शब्दका ही उच्चारण करना चाहिये। ७–अवधारणपूर्वपद—[जहाँ पूर्वपदमें 'अवधारण' (निश्चय) सूचक शब्दका प्रयोग हो, वह]। जैसे—'सुहृदेव सुबन्धुः' (सुहृद् ही सुबन्धु है)। बहुव्रीहिसमास भी सात प्रकारका ही होता है॥ ८—११॥

१–द्विपद, २–बहुपद, ३–सङ्ख्योत्तरपद, ४–सङ्ख्योभयपद, ५–सहपूर्वपद, ६–व्यतिहारलक्षणार्थ तथा ७–दिग्लक्षणार्थ। 'द्विपद बहुव्रीहि'में दो ही पदोंका समास होता है। यथा—'आरूढभवनो नर'। (आरूढं भवनं येन स—इस विग्रहके अनुसार जो भवनपर आरूढ हो गया हो, उस मनुष्यका बोध कराता है।) 'बहुपद बहुव्रीहि'में दोसे अधिक पद समासमें आबद्ध होते हैं। इसका उदाहरण है—'अमम् अर्चितारोपपूर्वः'। (अर्चिता अशेषा पूर्वा यस्य सोऽयम् अर्चिताशेषपूर्वः।) अर्थात् जिसके सभी पूर्वज पूजित हुए हों, वह 'अर्चिताशेषपूर्व' है। इसमें 'अर्चित' 'अशेष' तथा 'पूर्व'—ये तीनों पद समासमें आबद्ध हैं। ऐसा समास 'बहुपद' कहा गया है। 'सङ्ख्योत्तरपद'का उदाहरण है—'एते विप्रा उपदशा'—ये ब्राह्मण लगभग दस हैं। इसमें 'दस' सङ्ख्या उत्तरपदके रूपमें प्रयुक्त है। द्विषा इत्येकशः' इत्यादि सङ्ख्योभयपदके उदाहरण हैं। 'सहपूर्वपद'का उदाहरण—'समूलोद्धृतक तरु'। (सह मूलेन उद्धृत कम्पिता यस्य स। अर्थात् जड़सहित उखाड़ गयी है जिसकी, वह वृक्ष)—यहाँ पूर्वपदके स्थानमें 'सह' (स) का प्रयोग हुआ है। व्यतिहारलक्षणका उदाहरण है—केशाकेशि, नखानखि युद्धम् (आपसमें झोंटा झोंटी और परस्पर नखोंसे नकोटा-नकोटीपूर्वक कलह)॥ १२—१४॥

दिग्लक्षणात्मक उदाहरण—उत्तरपूर्वा (उत्तर और पूर्वके अन्तरालकी दिशा)। 'द्विगु' समास दो प्रकारका बताया गया है। 'एकवद्भाव' तथा 'अनेकधा' स्थितिको लेकर ये भेद किये गये हैं। संख्या पूर्वपदवाला समास 'द्विगु' है। इसे कर्मधारयका ही एक भेदविशेष स्वीकार किया गया है। 'एकवद्भाव'का उदाहरण है—द्विशृङ्गम् (दो सींगोंका समाहार)। 'पञ्चमूली' भी इसीका उदाहरण है। 'अनेकधा' या 'अनेकवद्भाव'का उदाहरण है—सप्तर्षयः इत्यादि। 'पञ्च ब्राह्मणाः' में समास नहीं होगा, क्योंकि यहाँ संज्ञा नहीं है ॥ १५ ॥

'द्वन्द्व' समास भी दो ही प्रकारका होता है—१-'इतरेतरयोगी' तथा २-'समाहारवान्'। प्रथमका उदाहरण है—'रुद्रविष्णू (रुद्रश्च विष्णुश्च—रुद्र तथा विष्णु)। यहाँ इतरेतर-योग है। समाहारका उदाहरण है—भेरीपटहम् (भेरी च पटहश्च, अनयोः समाहारः —अर्थात् भेरी और पटहका समाहार)। यहाँ 'तूर्याङ्ग' होनेसे इनका एकवद्भाव होता है। अव्ययीभाव समास भी दो तरहका होता है—१-'नाम पूर्वपद' और २-('यथा' आदि) अव्यय-पूर्वपद। प्रथमका उदाहरण है—शाकस्य मात्रा—शाकप्रति। यहाँ 'शाक' पूर्वपद है और मात्रार्थक 'प्रति' अव्यय उत्तरपद। दूसरेका उदाहरण—'उपकुमारम्—उपरथ्यम्' इत्यादि हैं। समासको प्रायः चार प्रकारोंमें विभक्त किया जाता है—१-उत्तरपदार्थकी प्रधानतासे युक्त (तत्पुरुष), २-उभयपदार्थ प्रधान द्वन्द्व समास, ३-पूर्वपदार्थ प्रधान 'अव्ययीभाव' तथा ४-अन्य अथवा बाह्यपदार्थ प्रधान 'बहुव्रीहि' ॥ १६—१९ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'समासविभागका वर्णन' नामक तीन सौ पचपनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३५५ ॥

तीन सौ छप्पनवाँ अध्याय

त्रिविध तद्धित-प्रत्यय

कुमार स्कन्द कहते हैं—कात्यायन ! अब त्रिविध तद्धितका वर्णन करूँगा। तद्धितके तीन भेद हैं—सामान्यावृत्ति तद्धित, अव्यय तद्धित तथा भाववाचक तद्धित। 'सामान्यावृत्ति तद्धित' इस प्रकार है—'अंस' शब्दसे 'लच्' प्रत्यय होनेपर 'अंसल' बनता है; इसका अर्थ है—बलवान्। 'वत्स' शब्दसे 'लच्' प्रत्यय होनेपर 'वत्सल' रूप होता है, इसका अर्थ स्नेहवान् है[1]। 'फेन' शब्दसे इलच् प्रत्यय होनेपर 'फेनिलम्'[2] रूप होता है, इसका अर्थ है—फेनयुक्त जल। लोमादिगणसे 'श' प्रत्यय होता है, (विकल्पसे 'मतुप्' भी होता है)—इस नियमके अनुसार श प्रत्यय होनेपर 'लोमशः' प्रयोग बनता है। ('मतुप्' होनेपर 'लोमवान्' होता है। इसी तरह 'रोमशः, रोमवान्'—ये प्रयोग सिद्ध होते हैं।) पामादि शब्दोंसे 'न' होता है—इस नियमके अनुसार 'पाम' शब्दसे 'न' होनेपर पामनः। 'अङ्गात् कल्याणे।'—इस वार्तिकके अनुसार 'कल्याण' अर्थमें 'अङ्ग' शब्दसे 'न' होनेपर 'अङ्गना' (उत्तम अङ्गोंसे युक्त) ये रूप बनते हैं। वैकल्पिक मतुप् होनेपर तो पामवान् आदि रूप होंगे। जिसे खुजली हुई हो, वह 'पामन' या 'पामवान्' है। इसी तरह पिच्छादि शब्दोंसे इलच् होता है—इस नियमके अनुसार 'इलच्

१ पाणिनि-व्याकरणके अनुसार 'वत्सांसाभ्यां कामबले' (५।२।९८)—इस सूत्रसे क्रमशः कामवान् और बलवान्के अर्थमें 'वत्स' और 'अंस' शब्दोंसे लच् प्रत्यय होता है। सूत्रमें काम तथा बल शब्द धर्मप्रधान माने गये हैं। काम शब्द यहाँ स्नेहका वाचक है। यद्यपि लोकमें 'वत्स'का अर्थ बछड़ा और 'अंस'का अर्थ कंधा समझा जाता है तथापि तद्धित वृत्तिमें वत्स और अंस शब्द क्रमशः स्नेह तथा बलके अर्थमें ही लिये गये हैं (तत्त्वबोधिनी)। इन अर्थोंमें मतुप् प्रत्ययका प्रसङ्ग नहीं होता; क्योंकि मतुप् प्रत्यय करनेपर उक्त अर्थोंकी प्रतीति न होकर अर्थान्तरकी ही प्रतीति होती है। यथा 'वत्सवती गौः'। 'अंसवान् दुर्बलः' इत्यादि।

२ पाणिनिके अनुसार 'फेनादिलच् च' (५।२।९९)—इस सूत्रसे 'इलच्' प्रत्यय होता है। यहाँ चकारसे लच् प्रत्ययका भी विकल्पसे विधान सूचित होता है। 'लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः' (५।२।१००)—इस सूत्रसे 'अन्यतरस्याम्' पदकी अनुवृत्ति होती है जिससे यहाँ 'मतुप्' भी वैकल्पिक होता है। इस प्रकार फेन शब्दसे तीन रूप होते हैं—'फेनिल', 'फेनल' तथा 'फेनवान्' आदि।

होनेपर 'पिच्छिल', 'पिच्छवान्', 'उरसिल', 'उरस्वान्' इत्यादि रूप होते हैं। 'पिच्छिल' का अर्थ 'पंखवान्' होता है। मार्गका विशेषण होनेपर यह फिसलनयुक्तका बोधक होता है—यथा 'पिच्छिल पन्था।' उरस्वान्‌का अर्थ 'मनस्वी' समझना चाहिये। ['प्रज्ञाश्रद्धार्चाभ्यो ण।' (५ । २ । १०१)—इस पाणिनि सूत्रके अनुसार] 'ण' प्रत्यय करनेपर 'प्रज्ञा' शब्दसे 'प्राज्ञ' (प्रज्ञावान्), 'श्रद्धा' शब्दसे 'श्राद्ध' (श्रद्धावान्) और 'अर्चा' शब्दसे 'आर्च' (अर्चावान्) रूप बनते हैं। वाक्यमें प्रयोग—'प्राज्ञो व्याकरणे।' स्त्रीलिङ्गमें 'प्राज्ञा' (प्रज्ञावती) रूप होगा। 'ण' प्रत्यय होनेसे अणन्तत्वप्रयुक्त 'ङीप्' प्रत्यय यहाँ नहीं होगा। यद्यपि 'प्रकर्षेण जानातीति प्रज्ञः स एव प्रज्ञावान्।' प्रज्ञ एव प्राज्ञ।' (स्वार्थे अण् प्रत्यय)—इस प्रकार भी 'प्राज्ञ' की सिद्धि तो होती है, तथापि इससे स्त्रीलिङ्गमें 'प्राज्ञी' रूप बनेगा, 'प्राज्ञा' नहीं। 'वृत्ति' शब्दसे भी 'ण' प्रत्यय होता है—'वार्त' (वृत्तिमान्)। 'वार्ता' विद्या इत्यादि। ऊँचे दाँत हैं इसके—इस अर्थमें 'दन्त' शब्दसे 'उरच्' प्रत्यय होनेपर 'दन्तुर'—यह रूप होता है, (दन्त उन्नत उरच्।' (५ । २ । १०६)—इस पाणिनि सूत्रसे उक्त अर्थमें 'दन्तुर' इस पदकी सिद्धि होती है। 'मधु' शब्दसे 'र' प्रत्यय होनेपर 'मधुरम्', 'सुषि' शब्दसे 'र' प्रत्यय होनेपर 'सुषिरम्', 'केश' शब्दसे 'व' प्रत्यय होनेपर 'केशव' 'हिरण्य' तथा 'मणि' शब्दोंसे 'य' प्रत्यय होनेपर '[हिरण्यय'], 'मणिय'—ये प्रयोग सिद्ध होते हैं। 'ऊर्ज्' शब्दसे 'व[लच्]' प्रत्यय होनेपर 'ऊर्जस्वलम्' पदकी सिद्धि होती है। १-३

'धन,' 'कर' तथा 'हस्त'—इन शब्दोंसे 'इनि' प्[रत्यय] होनेपर क्रमशः 'धनी', 'करी' और 'हस्ती'—ये पद होते हैं। 'धन' शब्दसे 'ठन्' प्रत्यय होनेपर 'धनिक' [पु]... या 'धनिक पुरुष'—ये प्रयोग सिद्ध होते हैं। 'पयस्' 'माया' शब्दोंसे 'विनि' प्रत्यय होनेपर 'पयस्वी', 'मायावी' ये रूप बनते हैं। 'ऊर्णा' शब्दसे मत्वर्थीय 'युस्' [प्रत्यय] होनेपर 'ऊर्णायु' पदकी सिद्धि बतायी गयी है।[1] ... शब्दसे 'ग्मिनि' प्रत्यय होनेपर 'वाग्मी' तथा 'आ[लच्]' प्रत्यय होनेपर 'वाचाल'—ये रूप बनते हैं। उसीसे '[आटच्]' प्रत्यय होनेपर 'वाचाट' रूप बनता है। 'फल' 'बर्ह' शब्दोंसे 'इनच्' प्रत्यय होनेपर क्रमशः 'फलिन', 'ब[र्हिण]'—ये रूप बनते हैं। 'वृन्द' शब्दसे 'आरकन्' प्रत्यय [होनेपर] 'वृन्दारक'—इस पदकी सिद्धि होती है॥ ४५॥

---

३ 'लोमश' 'पामन' और 'पिच्छिल' आदि पदोंके साधनके लिये पाणिनिने एक ही सूत्रका उल्लेख किया है—'लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः।' (५ । २ । १००)

४ 'ऊषसुषिमुष्कमधो रः।'(पा० सू० ५ । २ । १०७)—इस सूत्रसे 'र' प्रत्यय होनेपर 'ऊष' आदि शब्दोंसे ऊषर, 'सुषिरम्', 'मुष्कर', 'मधुरम्'—ये प्रयोग सिद्ध होते हैं। ये क्रमशः ऊसर भूमि छिद्र अण्डकोशवान् तथा माधुर्ययुक्तके बोधक हैं।

५ 'केशाद्वोऽन्यतरस्याम्।' (५ । २ । १०९)—इस सूत्रसे 'केश' शब्दसे 'व' प्रत्यय होनेपर 'केशव' रूप बनता है। 'अन्यतरस्याम्' की अनुवृत्ति प्रकरणतः प्राप्त होनेसे 'मतुप्' सिद्ध था, पुनः उक्त सूत्रमें जो उसका ग्रहण किया गया, इससे [इनि] और 'ठन्' का भी समावेश होता है, अतः केशवान्, [के]शी और केशिक—ये तीन रूप और बनते हैं। ये सभी [प्र]योग मत्वर्थीयप्रत्ययमात्र हैं, तथापि व्यवहारमें अन्तर है। 'केशव' का अर्थ है—सुंदराले केशवाले भगवान् श्रीकृष्ण। 'केशी' [तो] किसीके लिये इस शब्दका प्रयोग नहीं देखा जाता। और 'केशिक' उस दैत्यका वाचक है, जो अश्वरूपधारी था, उसकी गर्दनपर बड़े बड़े बाल (अयाल) थे। 'केशवान्' प[द] सामान्यतः सभी केशधारियोंके लिये प्रयुक्त होता है।

६-७ 'हिरण्यय'का अर्थ हिरण्यवान् (सुवर्ण—राशिसे युक्त) तथा 'मणिव' शब्द 'मणिधारी (मणिपाल) सर्प' [या] नागके लिये प्रयुक्त होता है।

८ 'रजःकृष्यासुतिपरिषदो वलच्' (५ । २ । ११२)—इस सूत्रसे 'वलच्' प्रत्यय होनेपर क्रमशः 'रजस्वल', 'कृषीवल', 'आसुतीवल' तथा 'परिषद्वल' शब्द सिद्ध होते हैं। इनके अर्थ क्रमशः इस प्रकार हैं—धूलसे भरा, किसान, जुआरी तथा परिषद्—सभा या समूहसे युक्त।

९ 'अत इनिठनौ' (५ । २ । ११५)—इस सूत्रसे इनि प्रत्यय होनेपर 'धनी' तथा 'ठन्' प्रत्यय होनेपर 'धनिक' रूप बनते हैं। इसी प्रकार करी, करिक, हस्ती, हस्तिक—ये रूप बनते हैं। 'धनी'का अर्थ है—धनवान् तथा 'करी' और 'हस्ती' का अर्थ है—हाथी। 'पयस्वी'का अर्थ है—दूधवाला तथा 'मायावी' का अर्थ है—माया फैलानेवाला। 'विनि' प्रत्ययका विधायक सूत्र है—'अस्मायामेधास्रजो विनिः।' (५ । २ । १२१)। 'ऊर्णाया युस्।' (५ । २ । १२३)—इस सूत्रसे 'युस्' प्रत्ययका विधान हुआ। 'ऊर्णायु' माने ऊनी।

१० 'वाचो ग्मिनिः।' (५ । २ । १२४)—इस सूत्रसे ग्मिनि प्रत्यय होता है। 'कुत्सित [बहुभाषिणि]'... बहुभाषिणि। ... कुत्सित ...

'शीत न सहते', 'हिम न सहते'—इस विग्रहमें 'शीत' तथा 'हिम' शब्दोंसे 'आलुच्' प्रत्यय करनेपर 'शीतालु' तथा 'हिमालुः' रूप बनते हैं। 'वात' शब्दसे 'उलच्' प्रत्यय होनेपर 'वातुल' रूप बनता है। 'अपत्य' अर्थमें 'अण्' प्रत्यय होता है। 'वसिष्ठस्यापत्यं पुमान् वासिष्ठः', 'कुरोरपत्यं पुमान् कौरवः।' (वसिष्ठकी संतान 'वासिष्ठ' कहलाती है तथा कुरुकी संतति 'कौरव')—'वहाँ उसका निवास है'—इस अर्थमें सप्तम्यन्त 'समर्थ' शब्दसे 'अण्' प्रत्यय होता है। यथा 'मथुरायां वासोऽस्येति माथुरः।' (मथुरामें निवास है इसका, इसलिये यह 'माथुर' है।) 'सोऽस्य वासः।—वह इसका वासस्थान है', इस अर्थमें भी प्रथमान्त 'समर्थ'से 'अण्' प्रत्यय होता है। 'उसको जानता और उसे पढ़ता है'—इस अर्थमें द्वितीयान्त 'समर्थ' पदसे 'अण्' प्रत्यय होता है। 'चान्द्रं व्याकरणमधीते तद् वेद वा इति चान्द्रः।' (चान्द्र एव चान्द्रक स्वार्थे कप्रत्यय)। 'क्रमादि' शब्दोंसे 'वुन्' प्रत्यय होता है ('वु'के स्थानमें 'अक' आदेश होता है।) क्रमं वेत्ति इति क्रमकः—जो क्रमपाठको जानता है, वह 'क्रमक' है।' इसी तरह 'पदक', 'शिक्षक', 'मीमांसक' इत्यादि पद बनते हैं। 'कोशम् अधीते वेद वा।—जो कोशको जानता या पढ़ता है, वह 'कौशक' है॥ ६-८॥

'धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्। (पा० सू० ५।२।१)—इस सूत्रके अनुसार धान्योंकी उत्पत्तिके आधारभूत क्षेत्रके अर्थमें षष्ठ्यन्त समर्थ धान्य-वाचक शब्दसे 'खञ्' प्रत्यय होता है। (स्कन्दने कात्यायनको जिसका उपदेश किया, उस कौमार-व्याकरणमें भी यह नियम देखा जाता है।) इसके अनुसार प्रियङ्गोर्भवनं क्षेत्रं प्रैयङ्गवीनम्—प्रियङ्गु (कँगनी)की उत्पत्तिके आधारभूत क्षेत्रका बोध करानेके लिये 'खञ्' प्रत्यय होनेपर ('ख'के स्थानपर 'ईन्' आदेश हो जानेपर) 'प्रैयङ्गवीनम्'—यह पद बनता है। इसका अर्थ है—'प्रियङ्गु (कँगनी)की उपज देनेवाला खेत'। इसी तरह मूँग, कोदो आदिकी उत्पत्तिके उपयुक्त खेतको 'मौद्गीन' तथा 'कौद्रवीण' कहते हैं। यहाँ 'मुद्ग' शब्दसे 'खञ्' होनेपर 'मौद्गीन' शब्द और 'कोद्रव' शब्दसे 'खञ्' होनेपर 'कौद्रवीण' शब्दकी सिद्धि होती है। 'विदेहस्यापत्यम्' (विदेहका पुत्र)—इस अर्थमें 'विदेह' शब्दसे 'अण्' प्रत्यय होनेपर 'वैदेह' पदकी सिद्धि होती है। (इन सबमें आदि स्वरकी वृद्धि होती है।) अकारान्त शब्दसे 'अपत्य' अर्थमें 'अण्'का बाधक 'इ' प्रत्यय होता है। आदि स्वरकी वृद्धि तथा अन्तिम स्वरका लोप। 'दक्षस्यापत्य—दाक्षि, दशरथस्यापत्यं दाशरथि।' इत्यादि पद बनते हैं। 'नडादिभ्यः फक्।' (४।१।९९)—इस सूत्रके नियमानुसार 'नड'-आदि शब्दोंसे 'फक्' प्रत्यय होता है। 'फ'के स्थानमें 'आयन' होता है। अतएव 'नडस्य गोत्रापत्यं नाडायनः, चरस्य गोत्रापत्यं चारायणः।' इत्यादि प्रयोग सिद्ध होते हैं। ('कित्' होनेके कारण आदि वृद्धि हो जाती है।) इसी तरह 'अश्वस्य गोत्रापत्यम् आश्वायन' होता है। इसमें 'अश्वादिभ्यः फञ्।' (४।१।११०)—इस सूत्रके अनुसार 'फञ्' प्रत्यय होता है। ('गोत्रे कुञ्जादिभ्यः च्फञ्।' (४।१।९८) यह भी फञ् विधायक सूत्र है। ब्रध्न, शङ्ख, शकट आदि शब्द कुञ्जादिके अन्तर्गत हैं, अतएव 'शाङ्खायन', 'शाकटायन' आदि प्रयोग सिद्ध होते हैं।) 'गर्गादिभ्यो यञ्' (४।१।१०५)—इस सूत्रके अनुसार गर्ग, वत्स आदि शब्दोंसे गोत्रापत्यार्थक 'यञ्' प्रत्यय होनेपर 'गार्ग्यः', 'वात्स्य' इत्यादि रूप बनते हैं। 'स्त्रीभ्यो ढक्।' (४।१।१२०) के नियमानुसार स्त्रीप्रत्ययान्त शब्दोंसे 'अपत्य' अर्थमें 'ढक्' प्रत्यय होता है। फिर उसके स्थानमें 'एय' होता है। जैसे 'विनताया पुत्र' (विनताका पुत्र) 'वैनतेय' कहलाता है। 'सुमित्रा' आदि शब्द बाह्वादिगणमें पठित हैं, अतः उनसे अपत्यार्थमें 'इञ्' प्रत्यय होता है। अतएव 'सौमित्रेय' न होकर 'सौमित्रि' रूप बनता है। 'कन्या' शब्दसे 'कन्यायाः कनीन च।' (४।१।११६)—इस सूत्रके नियमानुसार ... प्रत्यय होनेपर 'कन्याया अपत्यं पुमान्' (कन्याका नर पुत्र) 'कानीन' कहलाता है। 'गोधा' शब्दसे 'ढ्रक्' का विधान है। 'गोधाया ढ्रक्।' (४।१।१२९) अतः गोधाका अपत्य 'गौधेर' कहलाता है। 'आरगुदीचाम्।' (४।१।१३०) के नियमानुसार 'आरक्' प्रत्यय होनेपर 'गौधारः' रूप बनता है। ऐसा वैयाकरणोंने माना है॥ ९-११॥

वाक्यम्—इन वार्तिकोंद्वारा 'आलच्' और 'आटच्' प्रत्यय होते हैं। अच्छी बातको बहुत बोलनेवाला 'वाग्मी' कहलाता है और कुत्सित बातको अधिक बोलनेवाला 'वाचाल' और 'वाचाट' कहलाता है। 'फलबर्हाभ्यामिनच्।' इस वार्तिकसे 'इनच्' और 'शृङ्गवृन्दाभ्यामारकन्।' इस वार्तिकसे 'आरकन्' प्रत्यय होनेपर 'फलिन' (फलवान्), 'बर्हिण' (मोर) तथा 'वृन्दारक' (देवता)—ये प्रयोग सिद्ध होते हैं।

'क्षत्र' शब्दसे 'घ' प्रत्यय होनेपर 'घ' के स्थानमें 'इय' होनेके कारण क्षत्रिय शब्द सिद्ध होता है। 'क्षत्राद् घः।' (४ । १ । १३८)—जातिबोधक 'घ' प्रत्यय होनेपर ही 'क्षत्रिय' रूप बनता है। अपत्यार्थमें तो 'इञ्' होकर 'क्षत्रस्यापत्यं पुमान् क्षात्रिः'—यही रूप बनेगा। 'कुलात् खः।' (४ । १ । १३९) के अनुसार 'कुल' शब्दसे 'ख' प्रत्यय और 'ख' के स्थानमें 'ईन' आदेश होनेपर 'कुलीन'—इस पदकी सिद्धि होती है। 'कुर्वादिभ्यो ण्यः।' (४ । १ । १५१) के अनुसार अपत्यार्थमें 'कुरु' शब्दसे 'ण्य' प्रत्यय होनेपर आदिवृद्धिपूर्वक गुण-वान्तादेश होकर 'कौरव्य' इत्यादि प्रयोग बनते हैं। 'शरीरावयवाद् यत्।' (५ । १ । ६) के नियमानुसार शरीरावयववाचक शब्दोंसे 'यत्' प्रत्यय होनेपर 'मूर्धन्य' तथा 'मुख्य' आदि शब्द सिद्ध होते हैं। 'सुगन्धि'—'शोभनो गन्धो यस्य सः'—इस लौकिक विग्रहमें बहुव्रीहि समास करनेके पश्चात् 'गन्धस्येदुत्पूतिसुसुरभिभ्यः।' (५ । ४ । १३५)—इस सूत्रके अनुसार अन्तमें 'इ' होनेसे 'सुगन्धि'—इस शब्दरूपकी सिद्धि होती है ॥ १२ ॥

'तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच्।' (५ । २ । ३६) तारकादिगणसे 'इतच्' प्रत्यय होता है—इस नियमके अनुसार 'तारकाः संजाता अस्य' (तारे उग आये हैं, इसमें) इस अर्थमें 'तारका' शब्दसे 'इतच्' प्रत्यय होनेपर 'तारकित नभ' इत्यादि प्रयोग सिद्ध होते हैं। 'कुण्डमिव ऊधो यस्याः सा' (कुण्डके समान है थन जिसका, वह)—इस लौकिक विग्रहमें बहुव्रीहि समास होनेपर 'ऊधसोऽनङ्।' (५ । ४ । १३१)—इस सूत्रके अनुसार ऊधोऽन्त बहुव्रीहिसे स्त्रीलिङ्गमें अनङ् होता है। इस प्रकार 'अनङ्' होनेपर 'बहुव्रीहेरूधसो ङीष्।' (४ । १ । २५)—इस सूत्रसे ङीष् प्रत्यय होता है। तत्पश्चात् अन्यान्य प्रक्रियात्मक कार्य होनेके बाद 'कुण्डोध्नी' पदकी सिद्धि होती है। 'पुष्पं धनुर्यस्य स पुष्पधन्वा' (कामदेव), 'सुष्ठु धनुर्यस्य स सुधन्वा' (श्रेष्ठ धनुष धारण करनेवाला योद्धा)—इन दोनों बहुव्रीहि-पदोंमें 'धनुषश्च।' (५ । ४ । १३२)—इस सूत्रसे 'अनङ्' होता है। तत्पश्चात् सु आदि कार्य होनेपर 'पुष्पधन्वा' तथा 'सुधन्वा'—ये दोनों पद सिद्ध होते हैं ॥ १३ ॥

'वित्तेन वित्तः इति वित्तचुञ्चु'।—जो धन-वैभवके द्वारा प्रसिद्ध है, वह 'वित्तचुञ्चु' है। शब्दशास्त्रमें जिसकी प्रसिद्धि है, वह 'शब्दचुञ्चु' कहलाता है। ये दोनों शब्द 'चुञ्चुप्' प्रत्यय होनेपर सिद्ध होते हैं। इसी अर्थमें 'चणप्' प्रत्यय भी होता है। यथा—'केशचण'। जो बालोंसे विदित है, वह 'केशचण' कहा गया है। (इन प्रत्ययोंका विधान 'तेन वित्तश्चुञ्चुप्चणपौ।' (५ । २ । २६)—इस सूत्रके अनुसार होता है। 'पटु' शब्दसे 'प्रशंसा' अर्थमें 'रूप' प्रत्यय होनेपर 'पटुरूप' पद बनता है। 'प्रशस्तः पटुः—पटुरूपः।' जो प्रशस्त पटु है, वह 'पटुरूप' कहा जाता है। यह 'रूप' प्रत्यय 'सुबन्त' और 'तिङन्त'—दोनों प्रकारके शब्दोंसे होता है। 'तिङन्त' शब्दसे इस प्रकार होता है—प्रशस्तं पचति इति 'पचतिरूपम्'। 'पचतिरूपम्' का अर्थ है—अच्छी तरह पकाता है। अतिशयार्थ-द्योतनके लिये 'तमप्', 'इष्ठन्', 'तरप्' और 'ईयसुन्'—ये प्रत्यय होते हैं। इनमेंसे 'तरप्' और 'ईयसुन्'—ये दोनों दोमेंसे एककी श्रेष्ठताका प्रतिपादन करते हैं और 'तमप्' तथा 'इष्ठन्'—ये दोनों बहुतोंमेंसे एककी श्रेष्ठता बताते हैं।—पाणिनिने इसके लिये दो सूत्रोंका उल्लेख किया है—'अतिशायने तमबिष्ठनौ।' (५ । ३ । ५५) तथा 'द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ।' (५ । ३ । ५७)। इसके सिवा, यदि किसी द्रव्यका प्रकर्ष न बताना हो तो 'तरप्' 'तमप्' प्रत्ययोंसे परे 'आम्' हो जाता है। यह 'आम्' 'किम्' शब्द, 'एदन्त' शब्द, तिङन्त पद तथा अव्यय पदसे भी होते हैं। इन सब नियमोंके अनुसार 'अयम् अनयोरतिशयेन पटुः।' (यह इन दोनोंमें अधिक पटु है)—इस अर्थको बतानेके लिये 'पटु' शब्दसे 'ईयसुन्' प्रत्यय करनेपर विभक्तिकार्यपूर्वक 'पटीयान्' रूप होता है। 'अक्ष' शब्दसे 'तरप्' प्रत्यय होनेपर 'अक्षतर' और 'पटु' आदि शब्दोंसे उक्त प्रत्यय होनेपर 'पटुतर' आदि रूप बनते हैं। तिङन्तसे 'तरप्' प्रत्यय करके अन्तमें 'आम्' करनेपर 'पचतितराम्' रूप बनता है। 'तमप्' और 'आम्' प्रत्यय होनेपर 'अटतितमाम्' इत्यादि उदाहरण उपलब्ध होते हैं ॥ १४-१५ ॥

किंचित् न्यूनता तथा असमाप्तिका भाव प्रकट करनेके लिये 'सुबन्त' और 'तिङन्त' शब्दोंसे 'कल्पप्', 'देश्य' और 'देशीयर्' प्रत्यय होते हैं। 'ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः' (५ । ३ । ६७)—इस सूत्रके अनुसार 'मृदु' शब्दसे 'कल्पप्' प्रत्यय होनेपर 'मृदुकल्प' प्रयोग बनता है। इसका अर्थ हुआ—'कुछ कम मृदु या कोमल'। 'ईषदूनः कृत'—'कृतकल्पः'। 'ईषदून अर्क'—'अर्ककल्प' इत्यादि उदाहरण इसी तरह जाननेयोग्य हैं। इसके

राजा—इस अर्थमें 'राजन्' शब्दसे 'देशीयर्' प्रत्यय करनेपर 'राजदेशीय' तथा 'देश्य' प्रत्यय करनेपर 'राजदेश्य'—ये रूप बनते हैं। इसी तरह 'पटु' शब्दसे 'जातीय' प्रत्यय करनेपर 'पटुजातीय' पद बनता है। इसका अर्थ है—पटुप्रकार—पटुके प्रकारका। 'थल्' प्रत्यय प्रकार मात्रका बोधक है, किंतु 'जातीयर्' प्रत्यय 'प्रकारवान्' का बोध कराता है। [इसका विधायक पा० सू० है— प्रकार वचने जातीयर्।' ५ । ३ । ६९] 'प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ् मात्रचः।' (५ । २ । ३७)—इस सूत्रके अनुसार 'जल आदिका प्रमाण बतानेके लिये 'ऊरु' आदि शब्दोंसे 'द्वयसच्' 'दघ्नच्' तथा 'मात्रच्' प्रत्यय होते हैं। इस नियमसे 'मात्रच्' प्रत्यय होनेपर 'जानुमात्रम्' पद बनता है। इसका अर्थ है—घुटनेतक (पानी है)। 'ऊरु' शब्दसे 'द्वयसच्' प्रत्यय करनेपर 'ऊरुद्वयसम्' तथा 'दघ्नच्' प्रत्यय करनेपर 'ऊरुदघ्नम्'—ये प्रयोग बनते हैं॥ १६-१७॥

'संख्याया अवयवे तयप्।' (पा० सू० ५ । २ । ४२) —इस सूत्रके अनुसार 'पञ्चावयवा यस्य तत्' (पाँच अवयव हैं, जिसके वह) इस अर्थमें 'पञ्चन्' शब्दसे 'तयप्' प्रत्यय करनेपर 'पञ्चतयम्'—यह रूप बनता है। 'द्वारं रक्षति, द्वारे नियुक्तो वा दौवारिकः'—जो द्वारकी रक्षा करता है, अथवा द्वारपर रक्षाके लिये नियुक्त है, वह 'दौवारिक' है। 'रक्षति।' (पा० सू० ४ । ४ । ३३) अथवा 'तत्र नियुक्तः।' (पा० सू० ४ । ४ । ६९) सूत्रसे यहाँ 'ठक्' प्रत्यय हुआ है। 'ठ' के स्थानमें 'इक' आदेश हो जाता है तथा 'द्वारादीनां च।' (७ । ३ । ४)—इस सूत्रसे 'ऐच्' का आगम होता है। फिर विभक्तिकार्य होनेपर 'दौवारिक' इस पदकी सिद्धि होती है। इस प्रकार 'ठक्' प्रत्यय होनेपर 'दौवारिक' शब्दकी सिद्धि बतायी गयी है। यहाँतक 'तद्धितकी सामान्यवृत्ति' कही गयी। अब 'अव्यय संज्ञक तद्धित'का निरूपण किया जाता है॥ १८॥

'यस्मादिति यतः', 'तस्मादिति ततः'—यहाँ 'पञ्चम्यास्तसिल्।' (५ । ३ । ७) सूत्रके अनुसार 'तसिल्' प्रत्यय होता है। दकार और सकारको इकारादेश होकर उनका रूप हो जाता है। 'तसिल्' प्रत्यय विभक्तिसंज्ञक होनेके कारण 'त्यदादीनामः।' (७ । २ । १०२) के नियमानुसार अकारान्तादेश हो जाता है। अतः 'यत्' की जगह 'य' और 'तत्' की जगह 'त' होनेसे 'यतः' 'ततः'—ये रूप बनते हैं। 'तसिलादयः प्राक् पाशपः।' ('तसिल्' आदिसे लेकर 'पाशप्' प्रत्ययके पूर्वतक जितने प्रत्यय विहित या अभिहित हुए हैं, उन सबकी 'अव्ययसंज्ञा' होती है)—इस परिगणनाके अनुसार 'यतः', 'ततः' आदि शब्द 'अव्यय' माने गये हैं। 'तसिल्' आदिमें 'त्रल्' प्रत्यय भी आता है। इसका विधायक पाणिनिसूत्र है—'सप्तम्यास्त्रल्।' (५ । ३ । १०)। 'यस्मिन्निति यत्र', 'तस्मिन्निति तत्र'—इस लौकिक विग्रहमें 'त्रल्' प्रत्यय होनेपर 'यस्मिन् त्र', 'तस्मिन् त्र।' इस अवस्थामें 'कृत्तद्धितसमासाश्च' (१ । २ । ४६) से प्रातिपदिक संज्ञा, 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः।' (२ । ४ । ७१) सूत्रसे विभक्तिका लोप और 'त्यदादीनामः।' (७ । २ । १०२) सूत्रसे अकारान्तादेश होनेपर 'यत्र, तत्र'—इन पदोंकी सिद्धि बतायी गयी है। 'अस्मिन् काले'—इस लौकिक विग्रहमें 'अधुना।' (५ । ३ । १७) सूत्रसे 'अधुना' प्रत्यय होने 'अस्मिन् अधुना' इस अवस्थामें विभक्तिलोप, 'इदम्' के स्थानमें 'इश्' अनुबन्धलोप तथा 'यस्येति च।' (६ । ४ । १४८) से इकारलोप होनेपर 'अधुना' की सिद्धि हुई। इसी अर्थमें 'दानीम्' प्रत्यय होनेपर 'इदम्' के स्थानमें 'इ' होकर 'इदानीम्' रूप बनता है। 'सर्वस्मिन् काले'—इस विग्रहमें 'सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा' (५ । ३ । १५)—इस सूत्रसे 'दा' प्रत्यय होनेपर 'सर्वदा' रूप बनता है। 'तस्मिन् काले—तर्हि', 'कस्मिन् काले—कर्हि' यहाँ 'तत्' और 'किम्' शब्दोंसे 'काल' अर्थमें 'अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम्।' (५ । ३ । २१)—इस सूत्रसे 'र्हिल्' प्रत्यय हुआ। फिर पूर्ववत् प्रातिपदिकादिका विभक्तिका लोप होकर 'त्यदादीनामः।' (७ । २ । १०२)—इस सूत्रसे 'तत्' के स्थानमें 'त' और 'किमः कः।' (७ । २ । १०३) सूत्रसे 'किम्' के स्थानमें 'क' होनेपर 'तर्हि' और 'कर्हि'—इन पदोंकी सिद्धि बतायी गयी है। 'अस्मिन्'—इस विग्रहमें 'त्रल्' प्रत्ययकी प्राप्ति हुई, किंतु उसे बाधित करके 'इदमो हः।' (५ । ३ । ११)—इस सूत्रसे 'ह' प्रत्यय हो गया। फिर 'इदम्' के स्थानमें इकार होनेपर 'इह' रूपकी सिद्धि हुई॥ १९—२०॥

येन प्रकारेण यथा, तेन प्रकारेण तथा—इन शब्दोंमें 'प्रकारवचने थाल्।' (५ । ३ । २३) के अनुसार 'थाल्' प्रत्यय होनेपर 'यथा', 'तथा' आदि रूप बनते हैं। 'किम्' शब्दसे 'किमश्च।' ([illegible]) के अनुसार 'थमु' प्रत्यय होता है। अतः 'कथम्' इस रूपकी सिद्धि होती है। [illegible] शब्द [illegible] हैं, [illegible] 'अस्मि' [illegible]

है। श्लोकमें 'पूर्वस्याम्' यह सप्तमी विभक्तिका, 'पूर्वस्या' यह पञ्चमी विभक्तिका तथा 'पूर्वा' यह प्रथमा विभक्तिका प्रतिरूप है। अर्थात् उक्त शब्द यदि सप्तम्यन्त, पञ्चम्यन्त और प्रथमान्त हों, तभी उनसे 'अस्ताति' प्रत्यय होता है। 'पूर्व', 'अधर' और 'अवर' शब्दोंके स्थानमें क्रमशः 'पुर' 'अध' और 'अव' आदेश होते हैं। 'अस्ताति'के स्थानमें 'असि' प्रत्ययका भी विधान होता है। इन निर्दिष्ट नियमोंके अनुसार 'पूर्वस्यां दिशि', 'पूर्वस्या दिशः' 'पूर्वा वा दिक्'—इन लौकिक विग्रहोंमें 'पुरः', 'पुरस्तात्'—ये रूप होते हैं। उसी प्रकार 'अधः, अधस्तात्'—'अवः, अवस्तात्'—इत्यादि रूप जानने चाहिये। इनके वाक्यप्रयोग 'पुरस्तात् सञ्चरेद्', 'पुरस्ताद् गच्छेत्' इत्यादि रूपोंमें होते हैं। 'समाने अहनि'—इस अर्थमें 'सद्य'—इस शब्दका प्रयोग होता है। 'समान'का 'स' और 'अहनि'के स्थानमें 'द्यस्' निपातित होकर 'सद्य'—इस पदकी सिद्धि होती है। 'पूर्वस्मिन् वर्षे परुत्'—'पूर्वतरवर्षे परारि' इति (पूर्व वर्षमें—इस अर्थको बतानेके लिये 'परुत्' शब्दका प्रयोग होता है तथा पूर्वसे पूर्व वर्षमें—इस अर्थका बोध करानेके लिये 'परारि' शब्दका प्रयोग होता है।) पहलेमें 'पूर्व' शब्दके स्थानमें 'पर' आदेश होता है और उससे 'उत्' प्रत्यय किया जाता है। दूसरेमें 'आरि' प्रत्यय होता है और 'पूर्व'के स्थानमें 'पर' आदेश। 'अस्मिन् संवत्सरे' (इस वर्ष) इस अर्थका बोध करानेके लिये 'ऐषमः' पदका प्रयोग होता है। इसमें 'इदम्' शब्दके स्थानमें 'इकार' आदेश और उससे परे 'समसण्' प्रत्ययका निपातन होता है। अकार णकारकी इत्संज्ञा हो जानेपर 'इ+समः'—इस अवस्थामें आदिवृद्धि और सकारके स्थानमें मूर्धन्यादेश होनेपर 'ऐषमः' रूपकी सिद्धि होती है। 'परस्मिन्नहनि' (दूसरे दिन) इस अर्थमें 'पर' शब्दसे 'एद्यवि' प्रत्यय करनेपर 'परेद्यवि'—यह रूप होता है। 'अस्मिन्नहनि' (आजके दिन) इस अर्थमें 'इदम्' शब्दसे 'द्य' प्रत्यय होता है और 'इदम्'के स्थानमें 'अ' हो जाता है। इस प्रकार 'अद्य'—यह रूप बनता है। 'पूर्वस्मिन् दिने' (पहले दिन)—इस अर्थमें 'पूर्व' शब्दसे 'एद्युस्' प्रत्यय होता है तो 'पूर्वेद्युः' यह रूप बनता है। इसी प्रकार 'परस्मिन् दिने'—'परेद्युः', 'अन्यस्मिन् दिने'—'अन्येद्युः' इत्यादि प्रयोग जानने चाहिये। 'दक्षिणस्यां दिशि वसेत्' (दक्षिण दिशामें निवास करे।)—इस अर्थमें 'दक्षिणा' और 'दक्षिणाहि'—ये रूप बनते हैं। पहलेमें '[illegible]' (५ । ३ । ३६)—इस सूत्रसे 'आच्' प्रत्यय होता है और दूसरेमें 'आहि च दूरे।' (५ । ३ । ३७)—इस सूत्रसे 'आहि' प्रत्यय किया गया है। 'दक्षिणाहि वसेत्' का अर्थ हुआ—'दक्षिण दिशामें दूर निवास करे।' 'दक्षिणोत्तराभ्यामतसुच्।' (५ । ३ । २८) तथा 'उत्तराधरदक्षिणादातिः।' (५ । ३ । ३४)—इन सूत्रोंके अनुसार 'दक्षिणतः', 'दक्षिणात्', 'उत्तरतः', 'उत्तरात्'—ये दो रूप भी बनते हैं। 'उत्तरस्यां दिशि वसेत्' (उत्तर दिशामें निवास करे)—इस अर्थमें 'उत्तराच्च।' (५ । ३ । ३८)—इस सूत्रके अनुसार 'आच्' और 'आहि' प्रत्यय होनेपर 'उत्तरा' तथा 'उत्तराहि'—ये दोनों रूप सिद्ध होते हैं। 'अस्ताति' प्रत्ययके विषयभूत 'ऊर्ध्व' शब्दसे 'रिल्' और 'रिष्टातिल्' प्रत्यय होते हैं तथा 'ऊर्ध्व'के स्थानमें 'उप' आदेश हो जाता है। इस प्रकार 'उपरि वसेत्', 'उपरिष्टाद् भवेत्' इत्यादि प्रयोग सिद्ध होते हैं। 'उत्तर' शब्दसे 'एनप्' प्रत्यय होनेपर 'उत्तरेण' होता है। पूर्वोक्त 'दक्षिणा' शब्दकी सिद्धि 'आच्' प्रत्यय होनेसे होती है—इसका निर्देश पहले किया जा चुका है। 'आहि' प्रत्यय होनेपर 'दक्षिणाहि' पद बनता है—यह भी कहा जा चुका है। 'दक्षिणाहि वसेत्' इसका अर्थ भी दिया जा चुका है। 'संख्याया विधार्थे धा।' (५ । ३ । ४२)—इस सूत्रके अनुसार संख्यावाची शब्दोंसे 'धा' प्रत्यय करनेपर द्विधा, त्रिधा, चतुर्धा, पञ्चधा इत्यादि रूप होते हैं। 'द्विधा' का अर्थ है—दो प्रकारका। 'एक' शब्दसे प्रकार अर्थमें पूर्वोक्त नियमानुसार जो 'धा' प्रत्यय होता है, उसके स्थानमें 'ध्यमुञ्' हो जाता है। 'उञ्' की इत्संज्ञा हो जाती है। 'ध्यम्' शेष रह जाता है। यथा—'ऐकध्यम्', 'एकधा' (द्रष्टव्य पा० सू० ५ । ३ । ४४)। 'एकधा कुरु त्वम्' इस वाक्यका अर्थ है—'तुम एक ही प्रकारसे कर्म करो'। इसी प्रकार 'द्वि' और 'त्रि' शब्दसे 'धा' के स्थानमें 'धमुञ्' होता है। विकल्पसे (द्रष्टव्य—पा० सू० ५ । ३ । ४५)। 'धमुञ्' होनेपर 'द्वैधम्', 'त्रैधम्' रूप होते हैं और 'धमुञ्' न होनेपर 'द्विधा', 'त्रिधा'। 'द्वि' 'त्रि' शब्दसे सम्बद्ध 'धा' के स्थानमें 'एधाच्' भी होता है। यथा—द्वेधा, त्रेधा। ये सभी प्रयोग सुप्रसिद्ध हैं॥ २१—२७॥

यहाँतक 'निपातसंज्ञक तद्धित' (अथवा अव्यय तद्धित) प्रत्यय बताये गये। अब 'भावार्थक तद्धितका' वर्णन किया जाता है।—'तस्य भावस्त्वतलौ।' (५ । १ । ११९)—इस सूत्रके अनुसार भावबोधक

प्रत्यय दो हैं—'त्व' और 'तल्' । प्रकृतिजन्य बोधमें जो प्रकार होता है, उसे 'भाव' कहते हैं । 'पटु' शब्दसे 'पटोर्भावः'—इस अर्थमें 'त्व' प्रत्यय होनेपर 'पटुत्वम्' रूप होता है और 'तल्' प्रत्यय होनेपर 'पटुता' । 'पृथोर्भावः' (पृथुका भाव)—इस अर्थमें 'पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा ।' (५ । १ । १२२)—इस सूत्रसे वैकल्पिक 'इमनिच्' प्रत्यय होनेपर 'प्रथिमा'—यह रूप बनता है। 'प्रथिमा' का अर्थ है—मोटापन। 'सुखस्य भावः कर्म वा (सुखका भाव या कर्म)—इस अर्थमें 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च।'(५। १। १२४)—इस सूत्रके अनुसार 'ष्यञ्' प्रत्यय होनेपर 'सौख्यम्'—इस पदकी सिद्धि कही गयी है । 'स्तेनस्य भावः कर्म वा' (स्तेन—चोरका भाव या कर्म)—इस अर्थमें 'स्तेन' शब्दसे 'यत्' प्रत्यय और 'न'—इस समुदायका लोप हो जाता है। (द्रष्टव्य—पा० सू० ५ । १ । १२५) । इस प्रकार 'स्तेय' शब्दकी सिद्धि होती है । इसी प्रकार 'सख्युर्भावः कर्म वा' (सखाका भाव या कर्म)—इस अर्थमें 'य' प्रत्यय होनेपर 'सख्यम्' इस पदकी सिद्धि कही गयी है । यहाँ 'सख्युर्यः ।' (५ । १ । १२६)—इस सूत्रसे 'य' प्रत्यय होता है । 'कपेर्भावः कर्म वा'—इस अर्थमें 'कपिज्ञात्योर्ढक् ।' (५ । १ । १२७)—इस सूत्रसे 'ढक्' प्रत्यय होनेपर 'कापेयम्' पदकी सिद्धि होती है । 'सेना एव सैन्यम्'—यहाँ 'चतुर्वर्णादीनां स्वार्थ उपसंख्यानम्'—इस वार्तिकके अनुसार स्वार्थमें 'ष्यञ्' प्रत्यय होता है । 'शास्त्रीयात् पथः अपेतम्' (शास्त्रीय पथसे जो भ्रष्ट नहीं हुआ है, वह)—इस अर्थमें 'धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते ।' (४ । ४ । ९२)—इस सूत्रके अनुसार 'पथिन्' शब्दसे 'यत्' प्रत्यय होनेपर 'पथ्यम्'—यह रूप होता है । 'अश्वस्य भावः कर्म वा आश्वम्'—यहाँ 'अश्व' शब्दसे 'अञ्' हुआ है । ('उष्ट्रस्य भावः कर्म वा औष्ट्रम्'—यहाँ भी 'अञ्' प्रत्यय हुआ है) । 'कुमारस्य भावः कर्म वा कौमारम्'—इसमें भी 'कुमार' शब्दसे 'अञ्' प्रत्यय हुआ। 'यूनोर्भावः कर्म वा यौवनम्'—यहाँ भी पूर्ववत् 'युवन्' शब्दसे 'अञ्' प्रत्यय हुआ है । इन सबमें 'अञ्' प्रत्यय विधायक सूत्र है—'प्राणभृज्जातिवयोवचनोद्गात्रादिभ्योऽञ् (५ । १ । १२९) । 'आचार्य' शब्दसे 'वुञ्' प्रत्यय होनेपर 'आचार्यकम्'—यह रूप बनता है । इसी तरह अन्य भी बहुत-से तद्धित प्रत्यय होते हैं, (उन्हें अन्य ग्रन्थोंसे जानना चाहिये) ॥ २८—३० ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'तद्धितान्त शब्दोंके रूपका कथन' नामक तीन सौ छप्पनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३५६ ॥

तीन सौ सत्तावनवाँ अध्याय

उणादिसिद्ध शब्दरूपोंका दिग्दर्शन

कुमार स्कन्द कहते हैं—कात्यायन ! अब 'उणादि' प्रत्यय बताये जाते हैं, जो धातुसे परे होते हैं । 'कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण् ।' (१)—इस सूत्रके अनुसार 'कृ' आदि धातुओंसे 'उण्' प्रत्यय होता है । 'करोतीति कारुः ।' (जो शिल्पकर्म करता है, वह 'कारु' कहलाता है । लोकभाषामें उसे 'शिल्पी' या 'कारीगर' कहते हैं) । 'कृ' धातुसे 'उण्' प्रत्यय होनेपर अनुबन्धलोप, वृद्धि तथा विभक्तिकार्य किये जाते हैं । इससे 'कारु'—इस पदकी सिद्धि होती है । 'जि' धातुसे 'उण्' होनेपर 'जायु' रूप बनता है । 'जायु' का अर्थ है—औषध । इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार समझनी चाहिये—'जयति रोगान् इति जायुः' । 'मि' धातुसे यही (उण्) प्रत्यय करनेपर 'मायु'—यह पद सिद्ध होता है । 'मायु' का अर्थ है—'पित्त' । इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है—'मिनोति—प्रक्षिपति देहे ऊष्माणम् इति मायुः' । इसी प्रकार 'स्वदते—रोचते इति स्वादुः' । 'साध्नोति परकार्यमिति साधुः ।' इत्यादि प्रयोग सिद्ध होते हैं । गोमायु, आयु—इत्यादि प्रयोग भी इसी तरह सिद्ध होते हैं। 'गोमायु' का अर्थ है—गीदड़ तथा 'आयु' शब्द आयुर्वेदके लिये भी प्रयुक्त होता है । 'उणादयो बहुलम्।'—(३ । ३ । १) इस सूत्रके अनुसार 'उण्' आदि बाहुल्येन होते हैं। कहीं होते हैं, कहीं नहीं होते । 'आयु' 'स्वादु' तथा 'हेतु' आदि शब्द भी उणादिसिद्ध हैं । 'किंशारु' नाम है—धान्यके शूकका । 'किं शृणाति' इति किंशारुः । यहाँ 'किं' पूर्वक 'शॄ' धातुसे 'ञुण्' होता है । 'ञ्' तथा 'ण्' अनुबन्ध हैं । किं+शॄ+उ । वृद्धि होकर 'किंशारु' बनता है । 'कृकवाकु' का अर्थ है—मुर्गा या मोर । 'कृकेन गलेन वक्तीति कृकवाकुः ।' 'कृके वचः कश्च'—इस उणादि सूत्रसे 'ञुण्' प्रत्यय होनेपर कृक+वच्+ञुण्—इस अवस्थामें अनुबन्धलोप, चकारको ककार और अत उपधायाः । (पा० ७ । २ । ११६) से वृद्धि होती है । 'मतिः शिशुः' या 'मरुः' । 'मृ'

धातु से 'उ' प्रत्यय, गुण, विभक्तिकार्य—भरु । इसका अर्थ है—भर्ता (स्वामी) । मरु —जलहीन देश । मृ+उ गुणादेश, विभक्तिकार्य=मरु । शी+उ=शयु । इसका अर्थ है—सोया पड़ा रहनेवाला अजगर । त्सर+उ=त्सरु –अर्थात् खड्गकी मूठ । 'स्वयन्ते प्राणा अनेन' इस लौकिक विग्रहमें 'उ' प्रत्यय होता है । फिर गुण होकर 'स्वरु' पद बनता है । 'स्वरु'का अर्थ है—वज्र । त्रप्+उ=त्रपु । 'त्रपु' नाम है सीसेका । फल्ग्+उ=फल्गुः—सारहीन । अभिकाङ्क्षार्थक 'गृध्' धातुसे 'सुसूधाञ्गृधिभ्यः क्रन्', (१९२)—इस सूत्रके अनुसार 'क्रन्' प्रत्यय होनेपर गृध्+क्रन्, ककार-नकारकी इत्संज्ञा गृध्र[1] अर्थात् गीध पक्षी । मदि+किरच्=मन्दिरम् । तिमि+किरच्=तिमिरम् । 'मन्दिर' का अर्थ गृह तथा 'तिमिर'का अर्थ अन्धकार है । 'सलिकल्यनिमहिभडिभण्डिशण्डिपिण्डितुण्डिकुकिभूभ्य इलच् ।' (५७)—इस उणादि सूत्रके अनुसार गत्यर्थक 'सल्' धातुसे 'इलच्' प्रत्यय करनेपर 'सलिलम्' यह रूप बनता है । 'सलति गच्छति निम्नमिति सलिलम्'—यह इसकी व्युत्पत्ति है । 'सलिल' शब्द वारि—जलका वाचक है । (इसी प्रकार उक्त सूत्रसे ही कलिलम् अनिल, महिला—पृषोदरादित्वात् महेला—इत्यादि शब्द निष्पन्न होते हैं ।) भण्डि+इलच्=भण्डिलम् । इसका अर्थ है—कल्याण । भण्डिल' शब्द दूतके अर्थमें भी आता है । ज्ञानार्थक 'विद्' धातुसे औणादिक 'क्वसु' प्रत्यय होनेपर विद्+क्वसु—इस अवस्थामें 'लशक्वतद्धिते ।'(१।३।८)से ककारकी इत्संज्ञा तथा 'उपदेशेऽजनुनासिक इत् ।' (१।३।२)से उकारकी इत्संज्ञा होती है; तत्पश्चात् विभक्ति-कार्य करनेपर 'विद्वान्'[2]—यह रूप बनता है । 'विद्वान्'का अर्थ है—बुध या पण्डित । 'शेरेऽस्मिन् राजबलानि इति शिबिरम् ।'—इस व्युत्पत्तिके अनुसार 'शीङ्' धातुसे 'किरच्' प्रत्यय, 'शीङ्'से 'वुक्' का आगम तथा 'शी' के दीर्घ ईकारके स्थानमें ह्रस्व आदेश होनेपर 'शिबिर' शब्दकी सिद्धि होती है । 'शिबिर' कहते हैं—सेनाकी छावनीको । अग्निपुराणके अनुसार ध्रुव निवासस्थानको 'शिबिर' कहते हैं ॥ १-५ ॥

'अव्' धातुसे 'सितनिगमिमसि ।' (७२) इत्यादि सूत्रके अनुसार 'तुन्' प्रत्यय होनेपर वकारके स्थानमें 'ऊठ्' होकर गुण होनेसे 'ओतु' शब्दकी सिद्धि होती है । 'ओतु' कहते हैं—बिलावको । अभिधानमात्रसे उणादि प्रत्यय होते हैं । 'कृ' धातुसे 'न' प्रत्यय करनेपर गुण होता है और नकारका णकारादेश हो जानेपर 'कर्ण' शब्दकी सिद्धि होती है । 'कर्ण'का अर्थ है—कान अथवा कन्यावस्थामें कुन्तीसे उत्पन्न सूर्यपुत्र कर्ण । 'वस्' धातुसे 'तुन्' प्रत्यय, अगार अर्थमें उसका 'णित्व' होकर वृद्धि होनेसे 'वास्तु' शब्द बनता है । 'वास्तु' का अर्थ है—गृहभूमि । 'जीव' शब्दसे 'आतृकन्' प्रत्यय और वृद्धि होकर 'जैवातृक' शब्दकी सिद्धि होती है । 'जैवातृक' का अर्थ है—चन्द्रमा । 'अनः शकटं वहति ।'—इस लौकिक विग्रहमें 'वह्' धातुसे 'क्विप्' प्रत्यय, 'अनस्'के सकारका डकार आदेश तथा 'वह्' के वकारका सम्प्रसारण होनेपर 'अनडुह्' शब्द बनता है, उसके प्रथमामें अनड्वान्, अनड्वाहौ इत्यादि रूप होते हैं । 'जीव्' धातुसे 'जीवेरातुः ।' (८२)—इस सूत्रके अनुसार 'आतु' प्रत्यय करनेपर 'जीवातु' शब्दकी सिद्धि होती है । 'जीवातु' नाम है—संजीवन औषधका । प्रापणार्थक 'वह्' धातुसे—'वहिश्रिश्रुयुद्रुग्लाहात्वरिभ्यो नित् ।' (५०१)—इस सूत्रके अनुसार 'नित्' प्रत्यय करनेपर विभक्ति कार्यके पश्चात् 'वह्नि'—इस रूपकी सिद्धि होती है । (इसी प्रकार श्रेणि श्रोणि, योनि, द्रोणि, ग्लानि, हानि, तूर्णि बाहुलकात् म्लानि—इत्यादि पदोंकी सिद्धि होती है ।) 'हृ' धातुसे 'इनच्' प्रत्यय होनेपर और अनुबन्धभूत चकार का लोप कर देनेपर 'हृ+इन', गुण तथा विभक्ति-कार्यसे हरिण—इस रूपकी सिद्धि होती है । 'श्यास्त्याहृञविभ्य इनच् ।'(२१३)—इस औणादिक सूत्रसे यहाँ 'इनच्' प्रत्यय हुआ है । 'हरिण' कहते हैं—मृगको । यह शब्द कहीं वर्णविशेषके लिये भी प्रयुक्त होता है । 'कृञादिभ्यः संज्ञायाम् ।'(१२४)—इस सूत्रके अनुसार 'कृ' आदि धातुओंसे 'अण्डन्' प्रत्यय करनेपर क्रमशः—करण्डः, सरण्डः, भरण्डः, वरण्ड—ये रूप सिद्ध होते हैं । 'करण्ड' शब्द भाजन और भाण्डका वाचक है । मेदिनीकोशके अनुसार यह शब्द मधुछत्रके लिये भी प्रयुक्त होता है । 'वरण्ड' शब्द चौतरेका वाचक है । कुछ विद्वान् 'सरण्ड' का अर्थ पक्षी मानते हैं । बाहुलकात् ग्र जन्नतत्वमो ।

---

१ गृध्+क्रन्=गृध्र' रूप होता है । 'गृध्र' का अर्थ है—लालची ।

२ 'विद्' धातुसे 'शतृ' प्रत्यय करनेपर 'विदेः शतुर्वसुः ।' (७।१।३६)—इस सूत्रके अनुसार 'विद्' धातुसे परे विद्यमान 'शतृ' के स्थानमें 'वसु' आदेश हो जाता है । यह आदेश वैकल्पिक होता है । अतः 'विदन्' और 'विद्वान्'—ये दोनों रूप सिद्ध होते हैं । लौकिक 'विद्वान्' का अर्थ बुध है और प्रकृत 'विद्वान्' का अर्थ जानता हुआ है ।

इस धातुसे भी 'अण्डन्' प्रत्यय होकर 'तरण्ड' पदकी सिद्धि होती है। 'तरण्ड' शब्द काठके बेड़ेके लिये प्रयुक्त होता है। कुछ लोग मछली फँसानेके लिये बनायी गयी बंसीके डोरेको भी 'तरण्ड' कहते हैं। 'वरण्ड' शब्द सामवेदके लिये प्रयुक्त होता है। कुछ लोग 'साम' और 'यजुष्'—दो वेदोंके लिये इसका प्रयोग मानते हैं। कुछ लोगोंके मत में 'वरण्ड' शब्द मुखसम्बन्धी रोगका वाचक है। 'स्फायितञ्चिवञ्चि० (१७८)।' इत्यादि सूत्रसे वृद्ध्यर्थक 'स्फायि' धातुसे 'रक्' प्रत्यय होनेपर 'स्फार' पदकी सिद्धि होती है। 'स्फार' शब्दका अर्थ होता है—प्रचुर अर्थात् अधिक। 'मेदिनीकोश' के अनुसार 'स्फार' शब्द विकट अर्थमें आता है और करका या करवा आदि पात्रके भरते समय पानीमें जो बुल्बुले उठते हैं, उनका वाचक भी 'स्फार' शब्द है। 'शुसिचिमीनां दीर्घश्च (१९२)।' इस सूत्रसे 'क्रन्' प्रत्यय और पूर्व ह्रस्वस्वरके स्थानमें दीर्घ कर देनेपर क्रमशः शूर, सीर, चीर, मीर—ये प्रयोग बनते हैं। 'चीर' शब्द गायके थन, वस्त्रविशेष तथा वल्कलके अर्थमें प्रयुक्त होता है। 'भी' धातुसे 'भियः क्रुक्लुकनौ'—(१९९) इस सूत्रसे 'क्रुकन्' प्रत्यय करनेपर 'भीरुक'—इस पदकी सिद्धि होती है। इसके पर्यायवाची शब्द हैं—'भीरु' और 'कातर'। 'उच समवाये'—इस धातुसे 'रन्' प्रत्यय करनेपर 'उग्र' पदकी सिद्धि होती है। 'उग्र' का अर्थ है—प्रचण्ड। 'वहियुभ्यां णित्।'—इस सूत्रके अनुसार 'णित् असच्' प्रत्यय करनेपर 'वाहस', 'यावस'—ये दो रूप सिद्ध होते हैं। 'वाहस' का अर्थ है—अजगर और 'यावस' का अर्थ है—तृणसमूह। 'वर्तमाने पृषद्बृहन्महज्जगच्छतृवच्च।' —इस सूत्रके अनुसार 'गम्' धातुसे 'अत्' प्रत्ययका निपातन हुआ। गम्' के स्थानमें 'जग्' आदेश हुआ। इस प्रकार 'जगत्' शब्दकी सिद्धि हुई। 'जगत्' का अर्थ है—भूलोक। 'कृतन्यशिपन्यञ्ज्यर्चि०' इत्यादि (४५०) सूत्रके अनुसार 'कृश' धातुसे 'आनुक्' प्रत्यय करनेपर 'कृशानु'—इस पदकी सिद्धि होती है। 'कृशानु' का अर्थ है—अग्नि। 'श्यायते इति श्यायति।' 'द्युतेरिसिन्नादेश्च जः। (२७५)—इस सूत्रके अनुसार 'द्युत्' धातुसे 'इसिन्' प्रत्यय, दकारका जकारादेश तथा गुण होनेपर 'ज्योतिः' इस पदकी सिद्धि होती है। 'ज्योतिः' का अर्थ है—अग्नि और सूर्य। 'अर्च' धातुसे 'कृदाधारार्चिकलिभ्यः।' (३२७)—इस सूत्रके अनुसार 'क' प्रत्यय होनेपर 'अर्क' पदकी सिद्धि होती है। 'अर्च्यते एव अर्कः'। स्वार्थे क। 'अर्क' पद सूर्यका वाचक है। 'कृगृशृवृञ्चतिभ्यः ष्वरच्।' (२८६)—इस सूत्रके अनुसार मरणार्थक 'शृ' धातुसे तथा याचनार्थक 'चते' धातुसे 'ष्वरच्' प्रत्यय करनेपर क्रमशः 'शबर', 'चत्वरम्'—इन दो पदोंकी सिद्धि होती है। 'शबर' का अर्थ है—प्राकृत जन अथवा कुटिल मनुष्य। 'हसिमृग्रिण्वामिदमिलूपूधुर्विभ्यस्तन्।' (३७३)—इस सूत्रके अनुसार हिंसार्थक 'धुर्वि' धातुसे 'तन्' प्रत्यय करनेपर 'धूर्त'—इस पदकी सिद्धि होती है। 'धूर्त' शब्दका अर्थ है—शठ। 'चत्वरम्' का अर्थ है—चौराहा। 'छित्वरछत्वरधीवर' इत्यादि औणादिक सूत्रमें 'चीवरम्' इस पदका निपातन हुआ है। 'चीवरम्' का अर्थ है—चिथड़ा अथवा भिक्षुकका वस्त्र। स्नेहनार्थक 'ञिमिदा' अथवा 'मिद्' धातुसे 'अमिचिमिदिशसिभ्यः क्त्रः।' (६१३)—इस सूत्रके अनुसार 'क्त्र' प्रत्यय हुआ। ककारका इत्संज्ञालोप हुआ—'मिद+त्र=मित्र। विभक्ति-कार्य करनेपर 'मित्र'—इस पदकी सिद्धि हुई। 'मित्र' का अर्थ है—सूर्य। नपुंसक-लिङ्गमें इसका अर्थ—सुहृद् होता है। 'पुवो ह्रस्वश्च।' इस सूत्रके अनुसार 'पुनातीति' इस लौकिक विग्रहमें 'पू' धातुसे 'क्त्र' प्रत्यय और दीर्घके स्थानमें ह्रस्व होनेपर 'पुत्र' शब्दकी सिद्धि होती है। 'पुत्र' का अर्थ है—बेटा। 'सुवः कित्।' (३२८)—इस सूत्रके अनुसार प्राणिप्रसवार्थक 'षूङ्' धातुसे 'क्नु' प्रत्यय होता है और वह 'कित्' माना जाता है। धातुके आदि षकारको सकारादेश हो जाता है। इस प्रकार 'सूनु' शब्दकी सिद्धि होती है। विभक्तिकार्य होनेपर 'सूनुः' पद बनता है। 'विश्वकोश' के अनुसार इसका अर्थ पुत्र और सूर्य है। 'नप्तृनेष्टृत्वष्टृहोतृ०' (२५०) इत्यादि सूत्रके अनुसार 'पितृ' शब्द निपातित होता है। 'पातीति पिता'। 'पा' धातुसे 'तृच्' होकर आकारके स्थानमें इकार हो जाता है। पिता, पितरौ, पितरः इत्यादि इसके रूप हैं। जन्मदाता या बापको 'पिता' कहते हैं। विस्तारार्थक 'तन्' धातुसे 'दुतनिभ्यां दीर्घश्च।'—इस सूत्रके अनुसार 'तन्' प्रत्यय तथा ह्रस्वके स्थानमें दीर्घ होनेपर 'तात' शब्दकी सिद्धि होती है। यहाँ अनुनासिक लोप हुआ है। 'तात' शब्द कृपापात्र तथा पिताके लिये प्रयुक्त होता है। कुत्सितशब्दार्थक 'पर्द' धातुसे 'काकु' प्रत्यय होता है और वह 'कित्' माना जाता है। धातुके रेफका सम्प्रसारण और अकारका लोप हो जाता है। जैसा कि सूत्र है—'पर्देर्नित् सम्प्रसारणमल्लोपश्च।' (३१७) 'पर्द कुत्सिते शब्दे' अर्थ करनेवाला

बहुवचनमें 'एधन्ते' रूप होता है। इस प्रकार प्रथमपुरुषके एकवचन, द्विवचन और बहुवचनान्त रूप बताये गये। अब मध्यम और उत्तम पुरुषोंके रूप प्रस्तुत किये जाते हैं—'एधसे' यह मध्यमपुरुषका एकवचनान्त रूप है। वाक्यमें इसका प्रयोग इस प्रकार हो सकता है—'त्वं हि मेधया एधसे।' (निश्चय ही तुम बुद्धिसे बढ़ते हो।) 'एधेथे, एधध्वे' ये दोनों मध्यमपुरुषके क्रमशः द्विवचनान्त और बहुवचनान्त रूप हैं। 'एधे एधावहे एधामहे'—ये उत्तमपुरुषमें क्रमशः एकवचन, द्विवचन और बहुवचनान्त रूप हैं। वाक्यमें प्रयोग—'अहं धिया एधे।' (मैं बुद्धिसे बढ़ता हूँ।) 'आवां मेधया एधावहे।' (हम दोनों मेधासे बढ़ते हैं।) 'वयं हरेर्भक्त्या एधामहे।' (हम श्रीहरिकी भक्तिसे बढ़ते हैं।) 'पाक' अर्थमें 'पच्' धातुका प्रयोग होता है। उससे 'पचति' इत्यादि रूप पूर्ववत् ('भू' धातुके समान) होते हैं। 'भू' धातुसे भावमें और 'अनु + भू' धातुसे कर्ममें 'यक्' प्रत्यय होनेपर क्रमशः 'भूयते' और 'अनुभूयते' रूप होते हैं। भावमें प्रत्यय होनेपर क्रिया केवल एकवचनान्त ही होती है और सभी पुरुषोंमें कर्ता तृतीयान्त होनेके कारण एक ही क्रिया सबके लिये प्रयुक्त होती है। यथा—'त्वया मया अन्यैश्च भूयते।' जहाँ कर्ममें प्रत्यय होता है, वहाँ कर्म उक्त होनेके कारण उसमें प्रथमा विभक्ति होती है और तदनुसार सभी पुरुषों तथा सभी वचनोंमें क्रियाके रूप प्रयोगमें लाये जाते हैं। यथा—'असौ अनुभूयते। तौ अनुभूयेते। ते अनुभूयन्ते। त्वम् अनुभूयसे। युवाम् अनुभूयेथे। यूयम् अनुभूयध्वे। अहम् अनुभूये। आवाम् अनुभूयावहे। वयम् अनुभूयामहे' ॥ ६–११ ॥

अर्थविशेषको लेकर धातुसे 'णिच्, सन्', यङ्' तथा यङ्लुक्' होते हैं। इन्हें क्रमशः 'ण्यन्त', 'सन्नन्त', 'यङन्त' और 'यङ्लुगन्त' कहते हैं। जहाँ किसी क्रियाके कर्ताका कोई प्रेरक या प्रयोजक कर्ता होता है, वहाँ प्रयोजक कर्ताकी 'हेतु' संज्ञा होती है और प्रयोज्य कर्ता 'कर्म' बन जाता है। प्रयोजकके व्यापार प्रेषण आदि वाच्य हों तो धातुसे 'णिच्' प्रत्यय होता है। उसके होनेपर भू धातुके स्थान' आकारसे 'भावयति' इत्यादि रूप होते हैं। उदाहरणके लिये—'ईश्वरो भवति, स यज्ञदत्तो ध्यानादिना प्रेरयति इत्यस्मिन्नर्थे यज्ञदत्त ईश्वरं भावयति इति प्रयोगो भवति (ईश्वर होता है और यज्ञदत्त उसको ध्यानादिके द्वारा प्रेरित करता है—इस अर्थको व्यक्त करनेके लिये यज्ञदत्त ईश्वरं भावयति यह प्रयोग बनता है)।' जहाँ कोई धातु इच्छाक्रियाका कर्म बनता है तथा इच्छाक्रियाका कर्ता ही उस धातुका भी कर्ता होता है, वहाँ उस धातुसे इच्छाकी अभिव्यक्तिके लिये 'सन्' प्रत्यय होता है। भू धातुसे सन्नन्तमें 'बुभूषति' इत्यादि रूप होते हैं। यथा—'भवितुम् इच्छति बुभूषति। (होना चाहता है।) वक्ता चाहे तो 'बुभूषति' कहे अथवा 'भवितुम् इच्छति'—इस वाक्यका प्रयोग करे। यह स्मरणीय है कि सन्' और यङ्' प्रत्यय परे रहनेपर धातुको द्वित्व हो जाता है। शेष कार्य व्याकरणकी प्रक्रियाके अनुसार होते हैं। जहाँ क्रियाका समभिहार हो, अर्थात् पुनः पुनः या अतिशयरूपसे क्रियाका होना बताया जाय, वहाँ उक्त अभिप्रायका द्योतन या प्रकाशन करनेके लिये धातुसे 'यङ्' प्रत्यय होता है। यङ् और यङ्लुगन्त' में धातुका द्वित्व होनेपर पूर्वभागके, जिसे 'अभ्यास' कहते हैं, 'इक्' का 'गुण' हो जाता है। 'भू' धातुसे 'यङन्त' में बोभूयते इत्यादि रूप होते हैं। 'पुनः पुनः अतिशयेन वा भवति'—इस अर्थमें 'बोभूयते' क्रियाका प्रयोग होता है। यथा—'खाद्यं बोभूयते।' (खाद्यवादन बार-बार या अधिक मात्रामें होता है)। 'यङ्लुगन्त' में 'भू' धातुसे 'बोभोति' इत्यादि रूप होते हैं। अन्तर यही है, जो यङन्त क्रियाका होता है। 'यङन्त' में आत्मनेपदीय प्रत्यय होते हैं और 'यङ्लुगन्त' में परस्मैपदीय ॥ १४ ॥

कहीं-कहीं 'नाम' या 'सुबन्त' शब्दसे 'क्यच्' आदि प्रत्यय होनेपर उस शब्दकी 'धातु' संज्ञा होती है और उसके धातुके ही समान रूप चलते हैं। ऐसे प्रकरणको 'नामधातु' कहते हैं। जो इच्छाका कर्म हो और इच्छा करनेवालेका सम्बन्धी हो, ऐसे 'सुबन्त' से इच्छा अर्थमें विकल्पसे 'क्यच्' प्रत्यय होता है। 'आत्मनः पुत्रम् इच्छति। (अपने लिये पुत्र चाहता है)— इस अर्थमें 'पुत्रम्' इस 'सुबन्त' पदसे 'क्यच्' प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप होनेपर 'पुत्र अम् य' हुआ। सनाद्यन्ता धातवः। (३।१।३२) से धातुसंज्ञा होकर 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः। (२।४।७१) से 'अम्' का लोप हो गया। पुत्र+य—इस स्थितिमें क्यचि च। (७।४।३३)—इस सूत्रके अनुसार 'अकार' के स्थानमें 'ईकार' हो गया। इस प्रकार 'पुत्रीय' से तिप्' 'शप्' आदि कार्य होनेपर 'पुत्रीयति' इत्यादि रूप होते हैं। इसी अर्थमें 'काम्यच्' प्रत्यय भी होता है और 'पुत्र' शब्दसे 'काम्यच्' प्रत्यय होनेपर 'पुत्रकाम्यति' इत्यादि रूप होते हैं।

भवति इति पटपटायते ।' यहाँ 'अव्यक्तानुकरणाद्‌द्व्यजवरार्धादनितौ डाच् । (५ । ४ । ५७)—इस सूत्रके अनुसार 'भू' के योगमें 'डाच्' प्रत्यय होनेपर 'पटत् डा' इस स्थितिमें 'डाचि विवक्षिते द्वे बहुलम् ।' इस वार्तिकसे द्वित्व होकर 'नित्यमाम्रेडिते डाचि ।' इस वार्तिकसे पररूप हुआ तो टि-लोपके अनन्तर 'पटपटा+भू'—यह अवस्था प्राप्त हुई । इसके बाद 'लोहितादिडाज्भ्यः क्यष् ।' (३ । १ । १३)—इस सूत्रसे 'भवति' इस अर्थमें 'क्यष्' प्रत्यय हुआ तो 'पटपटा+क्यष्' बना । फिर अनुबन्धलोप, धातु संज्ञा तथा धातुसम्बन्धी कार्य होनेसे 'पटपटायते'—यह रूप सिद्ध हुआ । इसका अर्थ है कि 'पटपट' की आवाज होती है । 'पट करोति ।'—इस अर्थमें 'तत्करोति तदाचष्टे' के अनुसार 'पटयति' रूप बनता है । 'सन्नन्त' से 'णिच्' प्रत्यय किया जाय तो 'भू' धातुके सन्नन्त रूप 'बुभूषति' की जगह 'बुभूषयति' रूप बनेगा । प्रयोग—'गुरु शिष्यं बुभूषयति' ॥ १९ ॥

'भू' धातुके 'विधिलिङ्' लकारमें क्रमशः ये रूप होते हैं—'भवेत्, भवेताम्, भवेयुः । भवेः, भवेतम्, भवेत । भवेयम्, भवेव, भवेम' । 'एध' धातुके 'विधिलिङ्' में इस प्रकार रूप बनते हैं—एधेत, एधेयाताम्, एधेरन् । एधेथाः, एधेयाथाम् एधेध्वम् । एधेय एधेवहि, एधेमहि ।' वाक्य प्रयोग— 'ते मनसा एधेरन्' (वे मनसे बढ़ें—उन्नति करें)। 'त्वं श्रिया एधेथाः ।' (तुम लक्ष्मीके द्वारा बढ़ो इत्यादि) । 'भू' धातुके 'लोट्' लकारमें ये रूप होते हैं—'भवतु, भवतात्, भवताम्, भवन्तु । भव-भवतात्, भवतम्, भवत । भवानि, भवाव भवाम । 'एध्' धातुके 'लोट्' लकारमें ये रूप जानने चाहिये—'एधताम्, एधेताम्, एधन्ताम् । एधस्व, एधेथाम्, एधध्वम् । एधै, एधावहै, एधामहै ।' 'पच्' धातुके भी आत्मनेपदमें यों ही रूप होते हैं । यथा उत्तमपुरुषमें—पचै पचावहै पचामहै ।' 'अमि पूर्वक 'अद्' धातुका 'लङ्' लकारमें प्रथमपुरुषके एकवचनमें 'आम्यन्नदत्'—यह रूप होता है । 'पच्' धातुके 'लङ्' लकारमें—'अपचत् अपचताम् अपचन्' इत्यादि रूप होते हैं । 'भू' धातुके 'लङ्' लकारमें 'अभवत्, अभवताम् अभवन्' इत्यादि रूप होते हैं । पच् धातुके 'लङ्' लकारके उत्तमपुरुषमें—'अपचम् अपचाव, अपचाम'—ये रूप होते हैं । 'एध्' धातुके 'लङ्' लकारमें—ऐधत, ऐधेताम् ऐधन्त । ऐधथाः ऐधेथाम् ऐधध्वम् । ऐधे ऐधावहि,

ऐधामहि'—ये रूप होते हैं । 'भू' धातुके 'लुङ्' लकारमें—'अभूत्, अभूताम्, अभूवन् । अभूः, अभूतम्, अभूत । अभूवम्, अभूव, अभूम'—ये रूप होते हैं । 'लुङ्' लकारमें ऐधिष्ट, ऐधिषाताम्, ऐधिषत । ऐधिष्ठाः, ऐधिषाथाम्, ऐधिढ्वम् । ऐधिषि, ऐधिष्वहि, ऐधिष्महि' ये रूप जानने चाहिये । वाक्यप्रयोग—'नरौ ऐधिषाताम्' (दो मनुष्य बढ़ें) । 'भू' धातुके 'परोक्षलिट्' में 'बभूव, बभूवतुः, बभूवुः । बभूविथ, बभूवथुः, बभूव । बभूव, बभूविव, बभूविम ।'—ये रूप होते हैं । 'पच्' धातुके आत्मनेपदी 'लिट्' लकारमें प्रथमपुरुषके रूप इस प्रकार हैं—'पेचे, पेचाते, पेचिरे ।' 'एध्' धातुके 'लिट्' लकारमें इस प्रकार रूप समझने चाहिये—'एधाञ्चक्रे, एधाञ्चक्राते, एधाञ्चक्रिरे । एधाञ्चकृषे, एधाञ्चक्राथे, एधाञ्चकृढ्वे । एधाञ्चक्रे, एधाञ्चकृवहे, एधाञ्चकृमहे ।' 'पच्' धातुके परोक्ष लिट्' में प्रथमपुरुषके रूप बताये गये हैं । मध्यम और उत्तम पुरुषके रूप इस प्रकार होते हैं— पेचिषे, पेचाथे, पेचिध्वे । पेचे, पेचिवहे, पेचिमहे ।' 'भू' धातुके 'अनद्यतन भविष्य लुट्' लकारमें इस प्रकार रूप जानने चाहिये—'भविता, भवितारौ, भवितारः । भवितासि, भवितास्थः, भवितास्थ । भवितास्मि, भवितास्वः, भवितास्मः ।' वाक्यप्रयोग—'हरादयो भवितारः ।' (हर आदि होंगे) 'वयं भवितास्मः ।' (हम होंगे ।) 'पच्' धातुके 'लुट्' लकारमें 'परस्मैपदीय' रूप इस प्रकार हैं—'पक्ता, पक्तारौ, पक्तारः । पक्तासि । (शेष भू धातुकी तरह) । वाक्यप्रयोग—'त्वं शुभौदनं पक्तासि ।' (तुम अच्छा भात राँधोगे ।) 'पच्' धातुके 'लुट्' लकारमें 'आत्मनेपदीय' रूप इस प्रकार हैं—प्रथमपुरुषमें वे 'परस्मैपदीय' रूपके समान ही होते हैं, मध्यम और उत्तम पुरुषोंमें—'पक्तासे पक्तासाथे, पक्ताध्वे । पक्ताहे, पक्तास्वहे पक्तास्महे ।' वाक्यप्रयोग—'अहं पक्ताहे ।' (मैं पकाऊँगा) 'वयं हरेरन्नं पक्तास्महे ।' (हम श्रीहरिके लिये चरु पकायेंगे या तैयार करेंगे ।) 'आशीर्लिङ्' में 'भू' धातुके रूप इस प्रकार जानने चाहिये—'भूयात्, भूयास्ताम्, भूयासुः । भूयाः, भूयास्तम्, भूयास्त । भूयासम्, भूयास्व भूयास्म ।' वाक्यप्रयोग—'सुखं भूयात् ।' (सुख हो ।) 'हरिहरौ भूयास्ताम् ।' (विष्णु और शिव हों ।) 'ते भूयासुः ।' (वे हों ।) 'त्वं भूयाः ।' (तुम होओ ।) 'युवाम् हरौ भूयास्तम् ।' (तुम दोनों हरि—ऐश्वर्यशाली होओ ।) 'यूयं भूयास्त ।' (तुम सब होओ ।) 'अहं भूयासम् ।'

पूर्ण होऊँ।) 'वयं सर्वदा भूयास्म।' 'यक्ष' धातुके आत्मनेपदीय 'आशिष् लिङ्' में इस प्रकार रूप होते हैं— यक्षीष्ट, यक्षीयास्ताम्, यक्षीरन्। यक्षीष्ठा, यक्षीयास्थाम्, यक्षीध्वम्। यक्षीय, यक्षीवहि, यक्षीमहि।' इसी प्रकार 'एधु' धातुके 'आशीर्लिङ्' में ये रूप जानने चाहिये— एधिषीष्ट, एधिषीयास्ताम्, एधिषीरन्। एधिषीष्ठा, एधिषीयास्थाम्, एधिषीध्वम्। एधिषीय, एधिषीवहि एधिषीमहि। 'यक्ष' धातुके 'लृङ्' लकारमें ये रूप होते हैं— अयक्ष्यत, अयक्ष्येताम्, अयक्ष्यन्त। अयक्ष्यथाः, अयक्ष्येथाम्, अयक्ष्यध्वम्। अयक्ष्ये, अयक्ष्यावहि, अयक्ष्यामहि। 'एधु' धातुके 'लृङ्' लकारके रूप इस प्रकार हैं—'ऐधिष्यत, ऐधिष्येताम्, ऐधिष्यन्त। ऐधिष्यथा, ऐधिष्येथाम्, ऐधिष्यध्वम्। ऐधिष्ये, एधिष्यावहि, ऐधिष्यामहि।' वाक्यप्रयोग—कश्चिद् बाधा नाभविष्यच्चेद् वयम् अरे ऐधिष्यामहि। (यदि कोई बाधा न पड़े तो हम अवश्य शत्रुसे बढ़ जायँ।) 'भू' धातुके 'लृट्' लकारमें 'भविष्यति, भविष्यतः, भविष्यन्ति'—इत्यादि रूप होते हैं। 'एधु' धातुके 'लृट्' लकारमें— 'एधिष्यते, एधिष्येते, एधिष्यन्ते। एधिष्यसे, एधिष्येथे, एधिष्यध्वे। एधिष्ये एधिष्यावहे, एधिष्यामहे।' ये रूप होते हैं॥ १६-२९॥

इसी प्रकार 'णिजन्त' विशिष्ट 'भू' धातुके 'लृट्' लकारमें—'विभावयिष्यति, विभावयिष्यतः, विभावयिष्यन्ति' इत्यादि रूप होते हैं। 'यङ्लुगन्त' 'भू' धातुके 'लृट्' लकारमें 'बोभविष्यति' इत्यादि रूप होते हैं। 'नामधातु'में 'घट करोति, पट करोति' इत्यादि अर्थमें जिनके 'घटयति, पटयति' इत्यादि रूप बन आये हैं, उन्हींके 'विधिलिङ्' में 'घटयेत्, पटयेत्' इत्यादि रूप होते हैं। इसी तरह 'पुत्रीयति' और 'पुत्रकाम्यति' इत्यादि नामधातु सम्बन्धिनी क्रियाओंके रूपोंकी ऊहा कर लेनी चाहिये॥ ३०॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'तिङ् विभक्त्यन्त सिद्ध रूपोंका वर्णन' नामक तीन सौ अट्ठावनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३५८॥

तीन सौ उनसठवाँ अध्याय

कृदन्त शब्दोंके सिद्ध रूप

कुमार कार्तिकेय कहते हैं—कात्यायन! यह जानना चाहिये कि 'कृत्' प्रत्यय भाव, कर्म तथा कर्ता—तीनोंमें होते हैं। वे इस प्रकार हैं—'अच्', 'अप्', ल्युट्, 'क्तिन्' भाववाचक 'घञ्', कारणार्थक घञ्, युच्, 'अ तथा यत्' आदि। 'अच्' प्रत्यय होनेपर वि+नी+अच् (गुण, अयादेश और विभक्तिकार्य)=विनय। (अनुबन्धलोप) उत्+कृ+अप्=उत्कर। प्र+कृ+अप्=प्रकर। दिव+अच्=देव। भद्+अच्=भद्र। श्री+कृ+अप्=श्रीकर।' इत्यादि रूप होते हैं। 'ल्युट्' प्रत्यय होनेपर शुभ+ल्युट् (लकार, टकारकी इत्संज्ञा, लघूपध गुण 'युवोरनाकौ।' (७।१।१) से अनादेश=शोभनम्—इस रूपकी सिद्धि होती है। 'वृध्' धातुसे क्तिन् प्रत्यय करनेपर 'वृध्+क्ति' (ककारकी इत्संज्ञा, तकारका धकारादेश, पूर्व धकारका जश्त्वेन दकार और विभक्तिकार्य)=वृद्धि'। स्तु+क्तिन्=स्तुति। मन्+क्तिन्=मति'—ये पद सिद्ध होते हैं। 'भू' धातुसे 'घञ्' प्रत्यय होनेपर भू+घञ्=भाव—यह पद बनता है। 'णिजन्त कृ' धातुसे 'ण्यासश्रन्थो युच्।' (३।३।१०७)—इस सूत्रके अनुसार 'युच्' प्रत्यय करनेपर कारि+यु (णिलोप, अनादेश)='कारणा'। 'भावि+युच'='भावना' इत्यादि पद सिद्ध होते हैं। प्रत्ययान्त धातुसे स्त्रीलिङ्गमें 'अ' प्रत्यय होता है। उसके होनेपर 'चिकित्स+अ, पिपास+अ=चिकित्सा, पिपासा' इत्यादि पद सिद्ध होते हैं। धातुसे 'तव्य' और 'अनीय' प्रत्यय भी होते हैं। कृ+तव्य=कर्तव्यम्। कृ+अनीय=करणीयम्—इत्यादि पदोंकी सिद्धि होती है। 'अचो यत्।' (३।१।९७) सूत्रके अनुसार अजन्त धातुसे 'यत्' प्रत्यय होता है। उसके होनेपर दा+यत् ('ईद्यति।' सूत्रसे 'आ' के स्थानमें ईकारादेश, गुण और विभक्तिकार्य)=देयम्। ग्लै+यत् ('आदेच उपदेशेऽशिति।' से 'ऐ' के स्थानमें आ, 'ईद्यति' से 'आ' के स्थानमें 'ई' विभक्तिकार्य)=ग्लेयम्—ये पद सिद्ध होते हैं। 'ऋहलोर्ण्यत्' (३।१।१२४)—इस सूत्रके अनुसार ण्यत् प्रत्यय होनेपर कृ+ण्यत् ('वृद्धि' (७।२।११) सूत्रसे णकारकी तथा 'हलन्त्यम्।' (१।३।३) सूत्रसे तकारकी इत्संज्ञा। 'अचो ञ्णिति।' (७।२।११५) से 'वृद्धि' तथा विभक्ति कार्य)='कार्यम्'—यह पद सिद्ध होता है। यहाँतक 'कृदन्तप्रकरण' के पद कहे गये हैं॥ १-८॥

शची और इन्द्राणी—ये उनकी प्रियतमा शची देवीके नाम हैं। इन्द्रके महलका नाम वैजयन्त, पुत्रका नाम जयन्त और पाकशासनि तथा हाथीके नाम ऐरावत, अभ्रमातङ्ग, ऐरावण और अभ्रमुवल्लभ हैं। ह्रादिनी [स्त्रीलिङ्ग], पुँल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्गमें प्रयुक्त होनेवाला वज्र, कुलिश [नपुंसक], भिदुर [नपुंसक] और पवि [पुँल्लिङ्ग]—ये सब इन्द्रके वज्रके नाम हैं। व्योम-यान [नपु०] तथा विमान [पुँल्लि० नपु०]—ये आकाशमें विचरनेवाले देववाहनोंके नाम हैं। पीयूष, अमृत और सुधा—ये अमृतके नाम हैं। [इनमें सुधा तो स्त्रीलिङ्ग और शेष दोनों नाम नपुंसकलिङ्ग हैं।] देवताओंकी सभा 'सुधर्मा' कहलाती है। देवताओंकी नदी गङ्गाका नाम स्वर्गङ्गा और सुरदीर्घिका है। उर्वशी आदि अप्सराओंको अप्सरा और स्वर्वेश्या कहते हैं। इनमें अप्सरस् शब्द स्त्रीलिङ्ग एवं बहुवचनमें प्रयुक्त होता है। हाहा, हूहू आदि गन्धर्वोंके नाम हैं। अग्नि, वह्नि, धनंजय, जातवेदा, कृष्णवर्त्मा, आश्रयाश, पावक, हिरण्यरेता, सप्तार्चि, शुक्र, आशुशुक्षणि, शुचि और अप्पित्त—ये अग्निके नाम हैं तथा और्व, वाडव और वडवानल—ये समुद्रके भीतर जलनेवाली आगके नाम हैं। आगकी ज्वालाके पाँच नाम हैं—ज्वाल, कील, अर्चिष्, हेति और शिखा। इनमें पहले दो शब्द स्त्रीलिङ्ग और पुँल्लिङ्ग दोनोंमें प्रयुक्त होते हैं। अर्चिष् नपुंसकलिङ्ग है तथा हेति और शिखा स्त्रीलिङ्ग शब्द हैं। आगकी चिनगारीके दो नाम हैं—स्फुलिङ्ग और अग्निकण। इनमें पहला तीनों लिङ्गोंमें और दूसरा केवल पुँल्लिङ्गमें प्रयुक्त होता है। धर्मराज, परेतराट्, काल, अन्तक, दण्डधर और श्राद्धदेव—ये यमराजके नाम हैं। राक्षस, कौणप, क्रव्य, क्रव्याद, यातुधान और नैर्ऋति—ये राक्षसोंके नाम हैं। प्रचेता, वरुण और पाशी—ये वरुणके तथा श्वसन, स्पर्शन, अनिल, सदागति, मातरिश्वा, प्राण, मरुत् और समीरण—ये वायुके नाम हैं। जव, रंहस् और तरस्—ये वेगके वाचक हैं। [इनमें पहला पुँल्लिङ्ग और शेष दोनों शब्द नपुंसकलिङ्ग हैं।] लघु, क्षिप्र, अर, द्रुत, सत्वर, चपल, तूर्ण, अविलम्बित और आशु—ये शीघ्रताके अर्थमें प्रयुक्त होते हैं। [क्रियाविशेषण होनेपर इन सबका नपुंसकलिङ्ग एवं एकवचनमें प्रयोग होता है।] सतत, अनारत, अश्रान्त, संतत, अविरत, अनिश, नित्य, अनवरत और अजस्र—ये निरन्तरके वाचक हैं। [ये भी प्रायः क्रियाविशेषणमें ही प्रयुक्त होते हैं, केवल 'नित्य' शब्दका ही अन्य विशेषणमें भी प्रयोग होता है।]

अतिशय, भर, अतिवेल, भृश, अत्यर्थ, अतिमात्र, उद्गाढ, निर्भर, तीव्र, एकान्त, नितान्त, गाढ, बाढ और दृढ—ये अतिशय (अधिकमात्रा) के वाचक हैं। गुह्यकेश, यक्षराज, राजराज और धनाधिप—ये कुबेरके नाम हैं। किंनर, किम्पुरुष, तुरंगवदन और मयु—ये किंनरोंके वाचक शब्द हैं। निधि और शेवधि—ये दोनों पुँल्लिङ्ग शब्द निधिके वाचक हैं। व्योम, अभ्र, पुष्कर, अम्बर, द्यो, दिव्, अन्तरिक्ष और ख—ये आकाशके पर्याय हैं। [इनमें द्यो और दिव् शब्द स्त्रीलिङ्गमें प्रयुक्त होते हैं और शेष सब नपुंसकलिङ्गमें।] काष्ठा, आशा, ककुभ् और दिश्—ये दिशा-अर्थके बोधक हैं। अभ्यन्तर और अन्तराल शब्द मध्यके तथा चक्रवाल और मण्डल शब्द गोलाकार मण्डल एवं समुदायके वाचक हैं। तडित्वान्, वारिद, मेघ, स्तनयित्नु और बलाहक—ये मेघके पर्याय हैं॥ १—२१॥

बादलोंकी घटाका नाम है कादम्बिनी और मेघमाला तथा स्तनित और गर्जित—ये [नपुंसकलिङ्ग] शब्द मेघगर्जनाके वाचक हैं। शम्पा, शतह्रदा, ह्रादिनी, ऐरावती, क्षणप्रभा, तडित्, सौदामिनी (सौदामनी), विद्युत्, चञ्चला और चपला—ये बिजलीके पर्याय हैं। स्फूर्जथु और वज्रनिर्घोष—ये दो बिजलीकी गड़गड़ाहटके नाम हैं। वर्षाकी रुकावटको वृष्टिघात और अवग्रह कहते हैं। धारा-सम्पात और आसार—ये दो मूसलाधार वृष्टिके नाम हैं। जलके छींटे या फुहारोंको शीकर कहते हैं। वर्षाके साथ गिरनेवाले ओलेका नाम करका है। जब मेघोंकी घटासे दिन छिप जाय तो उसे दुर्दिन कहते हैं। अन्तर्धा, व्यवधा, पुँल्लिङ्गमें प्रयुक्त होनेवाला अन्तर्धि तथा [नपुंसकलिङ्ग] अपवारण, अपिधान, तिरोधान, पिधान और आच्छादन—ये आठ अन्तर्धान (अदृश्य होने) के नाम हैं। अब्ज, जैवातृक, सोम, ग्लौ, मृगाङ्क, कलानिधि, विधु तथा कुमुद-बन्धु—ये चन्द्रमाके पर्याय हैं। चन्द्रमा और सूर्यके मण्डलका नाम है—बिम्ब और मण्डल। इनमें बिम्ब शब्दका पुँल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्गमें तथा मण्डल शब्दका तीनों लिङ्गोंमें प्रयोग होता है। चन्द्रमाके सोलहवें भागको कला कहते हैं। भित्त, शकल और खण्ड—ये टुकड़ेके वाचक हैं। चाँदनीको चन्द्रिका, कौमुदी और ज्योत्स्ना कहते हैं। प्रसाद और प्रसन्नता—ये निर्मलता और हर्षके बोधक हैं। कलङ्क, अङ्क और लक्ष्म—ये चिह्नके तथा शोभा, कान्ति, द्युति और छवि—ये शोभाके नाम हैं। उत्तम शोभाको सुषमा कहते हैं। तुषार, तुहिन, हिम, अवश्याय,

नीहार, प्रालेय, शिशिर और हिम—ये पालेके वाचक हैं। नक्षत्र, ऋक्ष, भ, तारा, तारका और उडु—ये नक्षत्रके पर्याय हैं। इनमें उडु शब्द विकल्पसे स्त्रीलिङ्ग और नपुंसक होता है। गुरु, जीव और आङ्गिरस—ये बृहस्पतिके; उशना, भार्गव और कवि—ये शुक्राचार्यके तथा विधुन्तुद, तम और राहु—ये तीन राहुके नाम हैं। राशियोंके उदयको लग्न कहते हैं। मरीचि और अत्रि आदि ऋषि[1] 'चित्रशिखण्डी' के नामसे प्रसिद्ध हैं। हरिदश्व, ब्रध्न, पूषा, द्युमणि, मिहिर और रवि—ये सूर्यके नाम हैं। परिवेष, परिधि, उपसूर्यक और मण्डल—ये उत्पात आदिके समय दिखायी देनेवाले सूर्यमण्डलके घेरेका बोध करानेवाले हैं। किरण, उस्र, मयूख, अंशु, गभस्ति, घृणि, धृष्णि, भानु, कर, मरीचि और दीधिति—ये ग्यारह सूर्यकी किरणोंके नाम हैं। इनमें मरीचि शब्द स्त्रीलिङ्ग और पुँल्लिङ्ग दोनोंमें प्रयुक्त होता है तथा दीधिति शब्दका प्रयोग केवल स्त्रीलिङ्गमें होता है। प्रभा, रुक्, रुचि, त्विट्, भा, आभा, छवि, द्युति, दीप्ति, रोचिष् और शोचिष्—ये प्रभाके नाम हैं। इनमें रोचिष् और शोचिष्—ये दो शब्द केवल नपुंसकलिङ्गमें प्रयुक्त होते हैं [शेष सभी स्त्रीलिङ्ग हैं]। प्रकाश, द्योत और आतप—ये तीन धूप या घामके नाम हैं। कोष्ण, कवोष्ण, मन्दोष्ण और कदुष्ण—ये थोड़ी गरमीका बोध करानेवाले हैं। यद्यपि स्वरूपसे ये नपुंसकलिङ्ग हैं, तथापि जब थोड़ी गरमी रखनेवाली किसी वस्तुके विशेषण होते हैं तो विशेष्यके अनुसार इनका तीनों लिङ्गोंमें प्रयोग होता है। तिग्म, तीक्ष्ण और खर—ये अधिक गर्मीके वाचक हैं। ये भी पूर्ववत् गुणबोधक होनेपर नपुंसकमें और गुणवान्‌के विशेषण होनेपर विशेष्यके अनुसार तीनों लिङ्गोंमें प्रयुक्त होते हैं। दिष्ट, अनेहा और काल—ये समयके पर्याय हैं। घस्र, दिन और अहन्—ये दिनके, साय शब्द सायंकालका और संध्या तथा पितृप्रसू—ये दो संध्याके नाम हैं। प्रत्यूष, अहर्मुख, कल्य, उषस् और प्रत्यूषस्—ये प्रभातकालके वाचक हैं। दिनके प्रथम भागको प्राह्ण, अन्तिम भागको अपराह्ण और मध्यभागको मध्याह्न कहते हैं—इन तीनोंका समुदाय त्रिसंध्य कहलाता है। शर्वरी, यामी (यामिनी) और तमी—ये रात्रिके वाचक हैं। अँधेरी रातको तमिस्रा और चाँदनी रात्रिको ज्योत्स्नी कहते हैं। आगामी और वर्तमान—इन दो दिनोंसहित बीचकी रात्रिका बोध करानेके लिये पक्षिणी शब्दका प्रयोग किया जाता है। आधी रातके दो नाम हैं—अर्धरात्र और निशीथ। रात्रिके प्रारम्भको प्रदोष और रजनीमुख कहते हैं। प्रतिपदा और पूर्णिमा या अमावास्याके बीचमें जो संधि होती है, उसे पर्वसंधि कहते हैं। दोनों पक्षोंकी तिथियों अर्थात् पूर्णिमा और अमावास्याको पक्षान्त कहा जाता है। पूर्णिमाके दो नाम हैं—पौर्णमासी तथा पूर्णिमा। यदि पूर्णिमाको चन्द्रोदयके समय प्रतिपद्‌का योग लग जानेसे एक कलासे हीन चन्द्रमाका उदय हो तो उस पूर्णिमाकी 'अनुमति' संज्ञा है तथा पूर्ण चन्द्रमाका उदय होनेपर उसे 'राका' कहते हैं। अमावस्या, अमावास्या, दर्श और सूर्येन्दुसंगम—ये चार अमावास्याके नाम हैं। यदि सवेरे चतुर्दशीका योग होनेसे अमावास्याके दिन चन्द्रमाका दर्शन हो जाय तो उस अमावास्याको सिनीवाली कहते हैं। किंतु चन्द्रोदयकालमें अमावस्याका योग हो और यदि चन्द्रमाकी कला बिल्कुल न दिखायी दे तो वह 'कुहू' कहलाती है ॥ २२—४० ॥

संवर्त, प्रलय, कल्प, क्षय और कल्पान्त—ये पाँच प्रलयके नाम हैं। कलुष, वृजिन, एनस्, अघ, अंहस्, दुरित और दुष्कृत शब्द पापके वाचक हैं। धर्म शब्दका प्रयोग पुँल्लिङ्ग और नपुंसक दोनोंमें होता है। इसके पर्याय हैं—पुण्य, श्रेयस्, सुकृत और वृष। [इनमें आरम्भके तीन नपुंसक और वृष शब्द पुँल्लिङ्ग है।] मुत्, प्रीति, प्रमद, हर्ष, प्रमोद, आमोद, सम्मद, आनन्दथु, आनन्द, शर्म, सात और सुख—ये सुख एवं हर्षके नाम हैं। श्वःश्रेयस, शिव, भद्र, कल्याण, मङ्गल, शुभ, भावुक, भविक, भव्य, कुशल और क्षेम—ये कल्याण-अर्थका बोध करानेवाले हैं। [ये सभी शब्द स्त्रीलिङ्गमें नहीं प्रयुक्त होते। दैव, दिष्ट, भागधेय, भाग्य, नियति और विधि—ये भाग्यके नाम हैं। इनमें नियति-शब्द स्त्रीलिङ्ग [और विधि पुँल्लिङ्ग तथा आरम्भके चार शब्द नपुंसकलिङ्ग हैं]। क्षेत्रज्ञ, आत्मा और पुरुष—ये आत्माके पर्याय हैं। प्रकृति या मायाके दो नाम हैं—प्रधान और प्रकृति। इनमें प्रकृति स्त्रीलिङ्ग है और प्रधान नपुंसक लिङ्ग। हेतु, कारण और बीज—ये कारणके वाचक हैं। इनमें पहला पुँल्लिङ्ग और शेष दो शब्द नपुंसकलिङ्ग हैं। कार्यकी उत्पत्तिमें प्रधान हेतुके दो नाम हैं—निदान और आदिकारण। चित्त, चेतस्, हृदय, स्वान्त, हृत्, मानस और मनस्—ये चित्तके पर्याय हैं। बुद्धि, मनीषा, धिषणा, धी, प्रज्ञा, शेमुषी, मति, मेधा, उपलब्धि, चित्, संवित्, प्रतिपत्, ज्ञप्ति और चेतना—ये बुद्धिके वाचक हैं।

---

१ [illegible] पुलस्त्य पुलह क्रतु और वसिष्ठका ग्रहण होता है।

। धारणाशक्तिसे युक्त बुद्धिको 'मेधा' कहते हैं और मानसिक व्यापारका नाम संकल्प है। सख्या, विचारणा और चर्चा—ये विचारके, विचिकित्सा और संशय संदेहके तथा अध्याहार, तर्क और ऊह—ये तर्क वितर्कके नाम हैं। नेश्चित विचारको निर्णय और निश्चय कहते हैं। 'ईश्वर और परलोक नहीं हैं'—ऐसे विचारको मिथ्या दृष्टि और नास्तिकता कहते हैं। भ्रान्ति, मिथ्यामति और भ्रम—ये तीन भ्रमात्मक ज्ञानके वाचक हैं। अङ्गीकार, अभ्युपगम, प्रतिश्रव और समाधि—ये स्वीकार अर्थका बोध करानेवाले हैं। मोक्षविषयक बुद्धिको ज्ञान और शिल्प एवं शास्त्रके बोधको विज्ञान कहते हैं। मुक्ति, कैवल्य, निर्वाण, श्रेयस्, निःश्रेयस, अमृत, मोक्ष और अपवर्ग—ये मोक्षके वाचक शब्द हैं। अज्ञान, अविद्या और अहम्मति—ये तीन अज्ञानके पर्याय हैं। इनमें पहला नपुंसक और शेष दो शब्द स्त्रीलिङ्ग हैं। एक दूसरेकी रगड़से प्रकट हुई मनोहारिणी गन्धके अर्थमें 'परिमल' शब्दका प्रयोग होता है। वही गन्ध जब अत्यन्त मनोहर हो तो उसे 'आमोद' कहते हैं। घ्राणेन्द्रियको तृप्त करनेवाली उत्तम गन्धका नाम 'सुरभि' है। शुभ्र, शुक्ल, शुचि, श्वेत, विशद, श्येत, पाण्डर, अवदात, सित, गौर, वलक्ष, धवल और अर्जुन—ये श्वेत वर्णके वाचक हैं। कुछ पीलापन लिये हुए सफेदीको हरिण, पाण्डुर और पाण्डु कहते हैं। यह रंग भी बहुत हल्का हो तो उसे धूसर कहते हैं। नील, असित, श्याम, काल, श्यामल और मेचक—ये कृष्णवर्ण (काले रंग) के बोधक हैं। पीत, गौर तथा हरिद्राभ—ये पीले रंगके और पालाश, हरित तथा हरित् —ये हरे रंगके वाचक हैं। रोहित, लोहित और रक्त—ये लाल रंगका बोध करानेवाले हैं। रक्त कमलके समान जिसकी शोभा हो, उसे 'शोण' कहते हैं। जिसकी लालिमा जान न पड़ती हो, उस हल्की लालीका नाम 'अरुण' है। सफेदी लिये हुए लाली अर्थात् गुलाबी रंगको 'पाटल' कहते हैं। जिसमें काले और पीले—दोनों रंग मिले हों वह 'श्याव' और 'कपिश' कहलाता है। जहाँ काले लाल रंगका मेल हो, उसे धूम्र तथा धूमल कहते हैं। कडार, कपिल, पिङ्ग, पिशङ्ग, कद्रु तथा पिङ्गल—ये भूरे रंगके वाचक हैं। चित्र, किर्मीर, कल्माष, शबल, एत और कर्बुर—ये चितकबरे रंगका बोध करानेवाले हैं॥ ४१-५९ ॥

व्याहार, उक्ति तथा लपित—ये वचनके समानार्थक शब्द हैं। व्याकरणके नियमोंसे च्युत—अशुद्ध शब्दको 'अपभ्रंश' तथा 'अपशब्द' कहते हैं। सुबन्त पदोंका समुदाय ['चैत्रेण शयितव्यम्' इत्यादि], तिङन्त पदोंका समूह ['पश्य पश्य गच्छति' इत्यादि], सुबन्त और तिङन्त—दोनों पदोंका समुदाय ['चैत्र पचति' इत्यादि] अथवा कारकसे अन्वित क्रियाका बोध करानेवाला पद-समूह ['घटमानय'] इत्यादि—ये सभी 'वाक्य' कहलाते हैं। पूर्वकालमें बीती हुई सच्ची घटनाओंका वर्णन करनेवाले ग्रन्थको 'इतिहास' तथा 'पुरावृत्त' कहते हैं। [सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित—इन] पाँच लक्षणोंसे युक्त व्यासादि मुनियोंके ग्रन्थका नाम 'पुराण' है। सच्ची घटनाको लेकर लिखी हुई पुस्तक 'आख्यायिका' कहलाती है। कल्पित ग्रन्थको 'कथा' कहते हैं। संग्रहके वाचक दो शब्द हैं—समाहार तथा संग्रह। अबूझ पहेलीको 'प्रवह्लिका' और 'प्रहेलिका' कहते हैं। पूर्ण करनेके लिये दी हुई संक्षिप्त पदावलीका नाम 'समस्या' और 'समासार्था' है। वेदार्थके स्मरणपूर्वक लिखे हुए धर्मशास्त्रको 'स्मृति' और 'धर्मसंहिता' कहते हैं। आख्या, आह्वा और अभिधान—ये नामके वाचक हैं। 'वार्ता' और 'प्रवृत्ति'—दोनों समानार्थक शब्द हैं। हूति, आकारणा और आह्वान—ये पुकारनेके अर्थमें आते हैं। वाणीके आरम्भको 'उपन्यास' और 'वाङ्मुख' कहते हैं। विवाद और व्यवहार मुकदमेबाजीका नाम है। प्रतिवाक्य और उत्तर—ये दोनों समानार्थक शब्द हैं। उपोद्घात और उदाहार—ये भूमिकाके नाम हैं। झूठा कलङ्क लगानेको मिथ्याभिशंसन और अभिशाप कहते हैं। यश और कीर्ति—ये सुयशके नाम हैं। प्रश्न, पृच्छा और अनुयोग—इनका पूछनेके अर्थमें प्रयोग होता है। एक ही शब्दके दो-तीन बार उच्चारण करनेको 'आम्रेडित' कहते हैं। परायी निन्दाके अर्थमें कुत्सा, निन्दा और गर्हण शब्दका प्रयोग होता है। भाषणपूर्वक बातचीतको आभाषण और आलाप कहते हैं। पागलोंकी तरह कहे हुए असम्बद्ध या निरर्थक वचनका नाम प्रलाप है। बारंबार किये जानेवाले कथनको अनुलाप कहते हैं। दुःखयुक्त उद्गारका नाम विलाप और परिदेवन है। परस्पर विरुद्ध कथनोंका विप्रलाप और [विरोधोक्ति] कहते हैं। दो व्यक्तियोंके पारस्परिक कथोपकथनका नाम सल्लाप है। सुलाप और सुवचन—ये उत्तम वाणीके

नीचेके लोकका नाम अधोभुवन और पाताल है। छिद्र, श्वभ्र, वपा और सुषि—ये छिद्रके वाचक हैं। पृथ्वीके भीतर जो छेद (सुरङ्ग आदि) होता है, उसे गर्त और अवट कहते हैं। तमिस्र, तिमिर और तम—ये अन्धकारके वाचक हैं। सर्प, पृदाकु, भुजग, दन्दशूक और विलेशय—ये साँपोंके नाम हैं। विष, क्ष्वेड और गरल—ये जहरका बोध करानेवाले हैं। निरय और दुर्गति—ये नरकके नाम हैं। इनमें दुर्गति शब्द स्त्रीलिङ्ग है। पयस्, कीलाल, अमृत, उदक, भुवन और वन—ये जलके पर्याय हैं। भङ्ग, तरंग, ऊर्मि, कल्लोल और उल्लोल—ये लहरके नाम हैं। पृषत्, बिन्दु और पृषत—ये जलकी बूँदोंके नाम हैं। कूल, रोध और तीर—ये तटके वाचक हैं। जलसे तुरंतके बाहर हुए किनारेको 'पुलिन' कहते हैं। जम्बाल, पङ्क और कर्दम—ये कीचड़के नाम हैं। तालाब या नदी आदिके भर जानेपर जो अधिक जल बहने लगता है, उसे 'जलोच्छ्वास' और 'परीवाह' कहते हैं। सूखी हुई नदी आदिके भीतर जो गहरे गड्ढेमें बचा हुआ जल रहता है, उसका नाम 'कूपक' और 'विदारक' है। नदी पार करनेके लिये जो उतराई या खेवा दिया जाता है, उसे आतर एवं तरपण्य कहते हैं। काठकी बनी हुई बाल्टी या जल रखनेके पात्रका नाम द्रोणी है [इससे नावका पानी बाहर निकालते हैं]। मैले जलको 'कलुष' और 'आविल', साफ पानीको 'अच्छ' और 'प्रसन्न' तथा गहरे जलको 'गम्भीर' और 'अगाध' कहते हैं। दाश और कैवर्त—ये मल्लाहके नाम हैं। शम्बूक और जलशुक्ति—ये सीपके वाचक हैं। सौगन्धिक और कह्लार—ये श्वेत कमलके वाचक हैं। नील कमलको इन्दीवर कहते हैं। उत्पल और कुवलय—ये कमल और कुमुद आदिके साधारण नाम हैं। श्वेत उत्पलको कुमुद और कैरव कहते हैं। कुमुदकी जड़का नाम शालूक (सिरुकी) है। पद्म, तामरस और कञ्ज—ये कमलके पर्याय हैं। नील उत्पलका नाम कुवलय और रक्त उत्पलका नाम कोकनद बताया गया है। पद्मकन्द अर्थात् कमलकी जड़का नाम करहाट और शिफाकन्द है। कमलके केसरको किञ्जल्क और केसर कहते हैं। ये दोनों शब्द स्त्रीलिङ्गके सिवा अन्य लिङ्गोंमें प्रयुक्त होते हैं। स्त्रीलिङ्ग खनि शब्द और आकर—ये खानके वाचक हैं। बड़े-बड़े पर्वतोंके आसपास जो छोटे-छोटे पर्वत होते हैं, उन्हें पाद और प्रत्यन्तपर्वत कहते हैं। पर्वतके निकटकी नीची भूमि (तराई) को उपत्यका तथा पहाड़के ऊपरकी जमीनको अधित्यका कहते हैं। इस प्रकार मैंने स्वर्ग और पाताल आदि वर्गोंका वर्णन किया। अब अनेक अर्थवाले शब्दोंको श्रवण कीजिये ॥ ८८–९५ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'कोषविषयक स्वर्ग-पातालादि वर्गोंका वर्णन' नामक तीन सौ साठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३६० ॥

तीन सौ एकसठवाँ अध्याय

अव्यय-वर्ग

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठजी! 'आङ्' अव्यय ईषत् (अल्प), अभिव्याप्ति तथा मर्यादा (सीमा) अर्थमें प्रयुक्त होता है। साथ ही धातुसे उसका संयोग होनेपर जो विभिन्न अर्थ प्रकाशित होते हैं, उन सभी अर्थोंमें उसका प्रयोग समझना चाहिये। 'आ' प्रगृह्यसंज्ञक अव्यय है। इसका वाक्य और स्मरण अर्थमें प्रयोग होता है। 'आः' अव्यय पाप और पीड़ाका भाव द्योतित करनेके लिये प्रयुक्त होता है। 'कु' पाप, कुत्सा (घृणा) और ईषत् अर्थमें तथा 'धिक्' फटकार और निन्दा अर्थमें आता है। 'च' शब्दका प्रयोग समुच्चय, समाहार अर्थमें होता है। अन्वाचय, इतरेतरयोग और

---

१ समुच्चयमें अनेक पदोंका एक क्रियामें अन्वय होना 'समुच्चय' कहलाता है। जैसे 'ईश्वरं गुरुं च भजस्व।' (ईश्वर और गुरुको भजो) यहाँ 'ईश्वरम्' और 'गुरुम्'—इन दोनोंका एक ही भजन-क्रियामें अन्वय है। २ एक प्रधान कार्यके साथ साथ दूसरे अप्रधान कार्यका भी साधन करना 'अन्वाचय' है। जैसे भिक्षाके लिये जाय—'भिक्षामट गां चानय' (भिक्षा माँगने जाओ, गाय भी लेते आना)। यहाँ मुख्य कार्य है—भिक्षा माँगना; उसके साथ गाय लानेका कार्य गौण है। ३ परस्पर अपेक्षा रखनेके कारण अनेक पदोंका एक क्रियामें अन्वय 'इतरेतरयोग' कहलाता है। जैसे—'धवखदिरौ छिन्धि' (धव और खदिरको काटो)। यहाँ धव और खदिर—दोनोंका एक ही क्रियामें अन्वय है। ४ समूहको 'समाहार' कहते हैं। जैसे संज्ञापरिभाषम् (संज्ञा और परिभाषाओंका समूह)।

वैसे ही शास्त्रोंमें स्वधाका प्रयोग होता है।] पुर, पुरतः और अग्रतः—ये सामनेके अर्थमें आते हैं। स्वाहा पद देवताओंको हविष्य अर्पण करनेके अर्थमें आता है। 'श्रौषट्' और 'वौषट्'का भी यही अर्थ है। 'वषट्' शब्द इन्द्रका और स्वधा शब्द पितरोंका भाग अर्पण करनेके लिये प्रयुक्त होता है। किंचित्, ईषत् और मनाक्—ये अल्प अर्थके वाचक हैं। प्रेत्य और अमुत्र—ये दोनों जन्मान्तरके अर्थमें आते हैं। यथा और तथा समताके एवं अहो और हो—ये आश्चर्यके बोधक हैं। तूष्णीम् और तूष्णीकम् पद मौन अर्थमें, सद्यः और सपदि शब्द तत्काल अर्थमें, दिष्ट्या और समुपजोषम्—ये आनन्द अर्थमें तथा अन्तरा शब्द भीतर के अर्थमें आता है। अन्तरेण पद भी मध्य अर्थका वाचक है। प्रसह्य शब्द हठका बोध करानेवाला है। साम्प्रतम् और स्थाने शब्द उचितके अर्थमें तथा 'अभीक्ष्णम्' और शश्वत् पद सदा—निरन्तरके अर्थमें प्रयुक्त होते हैं। नहि, अ, नो और न—ये अभाव अर्थके बोधक हैं। मास्म, मा और अलम्—इनका निषेधके अर्थमें प्रयोग होता है। चेत् और यदि पद दूसरा पद उपस्थित करनेके लिये प्रयुक्त होते हैं तथा अद्धा और अञ्जसा—ये दोनों पद वास्तवके अर्थमें आते हैं। प्रादुस् और आविर्—इनका अर्थ है प्रकट होना। ओम्, एवम् और परमम्—ये शब्द स्वीकृति या अनुमति देनेके अर्थमें प्रयुक्त होते हैं। समन्ततः, परितः, सर्वतः और विष्वक्—इनका अर्थ है चारों ओर। 'कामम्' शब्द अकाम अनुमतिके अर्थमें आता है। 'अस्तु' पद असूया (दोषदृष्टि) तथा स्वीकृतिका भाव सूचित करनेवाला है। किसी बातके विरोधमें कुछ कहना हो तो वहाँ 'ननु'का प्रयोग होता है। 'कच्चित्' शब्द किसीकी अभीष्ट वस्तुकी जिज्ञासाके लिये प्रश्न करनेके अवसरपर प्रयुक्त होता है। निःषमम् और दुःषमम्—ये दोनों पद निन्द्य अर्थका बोध कराते हैं। यथास्वम् और यथायथम् पद यथायोग्य अर्थके वाचक हैं। मृषा एवं मिथ्या शब्द असत्यके और यथातथम् पद सत्यके अर्थमें आता है। एवम्, तु, पुनः, वै और वा—ये निश्चय अर्थके वाचक हैं। 'प्राक्' शब्द बीती बातका बोध करानेवाला है। नूनम् और अवश्यम्—ये दो अव्यय निश्चयके अर्थमें प्रयुक्त होते हैं। 'सम्वत्' शब्द वर्षका, 'अर्वाक्' शब्द पश्चात् कालका, आम् और एवम् शब्द हामी भरनेका तथा स्वयम् पद अपनेसे—इस अर्थका बोध करानेवाला है। 'नीचैस्' अल्प अर्थमें, 'उच्चैस्' महान् अर्थमें, 'प्रायस्' बाहुल्य अर्थमें तथा 'शनैस्' मन्द अर्थमें आता है। 'सना' शब्द नित्यका, 'बहिस्' शब्द बाहरका, 'स्म' शब्द भूतकालका, 'अस्तम्' शब्द अदृश्य होनेका, 'अस्ति' शब्द सत्ताका, 'उ' क्रोधभरी उक्तिका तथा 'अपि' शब्द प्रश्न तथा अनुनयका बोधक है। 'उम्' रुकका, 'उषा' रात्रिके अन्तका, 'नमस्' प्रणामका, 'अङ्ग' पुनः-अर्थका, 'दुष्ठु' निन्दाका तथा 'सुष्ठु' शब्द प्रशंसाका वाचक है। 'सायम्' शब्द संध्याकालका, 'प्रगे' और 'प्रातर्' शब्द प्रभातकालका, 'निकषा' पद समीपका, 'ऐषमः' शब्द वर्तमान वर्षका, 'परुत्' शब्द गतवर्षका और 'परारि' शब्द उसके भी पहलेके गतवर्षका बोध करानेवाला है। 'आजके दिन' इस अर्थमें 'अद्य'का प्रयोग देखा जाता है। पूर्व, उत्तर, अपर, अधर, अन्य, अन्यतर और इतर शब्दसे 'पूर्वेऽह्नि' (पहले दिन) आदिके अर्थमें 'पूर्वेद्युः' आदि अव्ययपद निष्पन्न होते हैं। 'उभयद्युः' और 'उभयेद्युः'—ये 'दोनों दिन'के अर्थमें आते हैं। 'परस्मिन्नहनि' (दूसरे दिन) के अर्थमें 'परेद्यवि'का प्रयोग होता है। 'ह्यस्' बीते हुए दिनके अर्थमें, 'श्वस्' आगामी दिनके अर्थमें तथा 'परश्वस्' शब्द उसके बाद आनेवाले दिनके अर्थमें प्रयुक्त होता है। 'तदा' 'तदानीम्' शब्द 'तस्मिन् काले' (उस समय) के अर्थमें आते हैं। 'युगपत्' और 'एकदा'का अर्थ है—एक ही समयमें। 'सर्वदा' और 'सदा'—ये हमेशाके अर्थमें आते हैं। एतर्हि, सम्प्रति, इदानीम्, अधुना तथा साम्प्रतम्—इन पदोंका प्रयोग 'इस समय'के अर्थमें होता है ॥ १९–२८ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें कोशविषयक 'अव्ययवर्गका वर्णन' नामक तीन सौ इकसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३६१ ॥

---

१ [illegible] 'कालि' शब्दसे उत्तर [illegible] शब्दोंका प्रयोग होता है—जैसे [illegible]।

२ [illegible] शब्दसे [illegible]—इन अव्ययपदोंका प्रयोग करना चाहिये।

'मृदु'—दोनों शब्द दोनों ही लिङ्गोंमें प्रयुक्त होते हैं। 'सत्' शब्द सत्य, साधु, विद्यमान, प्रशस्त तथा पूज्य अर्थमें उपलब्ध होता है। 'विधि' शब्द विधान और दैवका वाचक है। 'प्रणिधि' शब्द याचना और चर (दूत) के अर्थमें आता है। 'वधू' शब्द जाया, पतोहू तथा स्त्रीका बोधक है। 'सुधा' शब्द अमृत, चूना तथा शहदके अर्थमें आता है। 'श्रद्धा' शब्द आदर, विश्वास एवं आकाङ्क्षाके अर्थमें प्रयुक्त होता है। 'समुन्नद्ध' शब्द अपनेको पण्डित माननेवाले और घमंडीके अर्थमें आता है। 'ब्रह्मबन्धु' शब्दका प्रयोग ब्राह्मणकी भर्त्सनामें प्रयुक्त होता है। 'भानु' शब्द किरण और सूर्य—दोनों अर्थोंमें प्रयुक्त होता है। 'ग्रावन्' शब्दका अभिप्राय पहाड़ और पत्थर—दोनोंसे है। 'पृथग्जन' शब्द मूर्ख और नीचके अर्थमें आता है। 'शिखरिन्' शब्दका अर्थ वृक्ष और पर्वत तथा 'तनु' शब्दका अर्थ शरीर और त्वचा (छाल) है। 'आत्मन्' शब्द यत्न, धृति, बुद्धि, स्वभाव, ब्रह्म और शरीरके अर्थमें भी आता है। 'उत्थान' शब्द पुरुषार्थ और तन्त्रके तथा 'व्युत्थान' शब्द विरोधमें खड़े होनेके अर्थका बोधक है। 'निर्यातन' शब्द वैरका बदला लेने, दान देने तथा धरोहर लौटानेके अर्थमें भी आता है। 'व्यसन' शब्द विपत्ति, अधःपतन तथा काम-क्रोधसे उत्पन्न होनेवाले दोषोंका बोध करानेवाला है। शिकार, जुआ, दिनमें सोना, दूसरोंकी निन्दा करना, स्त्रियोंमें आसक्त होना, मदिरा पीना, नाचना, गाना, बाजा बजाना तथा व्यर्थ घूमना—यह कामसे उत्पन्न होनेवाले दस दोषोंका समुदाय है। चुगली, दुस्साहस, द्रोह, ईर्ष्या, दोषदर्शन, अर्थदूषण, वाणीकी कठोरता तथा दण्डकी कठोरता—यह क्रोधसे उत्पन्न होनेवाले आठ दोषोंका समूह है। 'कौपान' शब्द नहीं करनेयोग्य खोटे कर्म तथा गुह्यस्थानका वाचक है। 'मैथुन' शब्द सङ्गति तथा रतिके अर्थमें आता है। 'प्रधान' कहते हैं—परमार्थबुद्धिको तथा 'प्रज्ञान' शब्द बुद्धि एवं चिह्न (पहचान) का वाचक है। 'क्रन्दन' शब्द रोने और पुकारनेके अर्थमें आता है। 'वर्ष्मन्' शब्द देह और परिमाणका बोधक है। 'आराधन' शब्द साधन, प्राप्ति तथा सन्तुष्ट करानेके अर्थमें प्रयुक्त होता है। 'रत्न' शब्दका स्वजातिमें श्रेष्ठ पुरुषके लिये भी प्रयोग होता है और 'लक्ष्मन्' शब्द चिह्न एवं प्रधानका बोध करानेवाला है। 'कल्प' शब्द आभूषण, मोरपंख, तरकस और सङ्गठितके अर्थमें भी उपलब्ध होता है। 'स्तूप' शब्द थम्भा, भद्रशिला तथा स्त्रीरूप अर्थका वाचक है। 'डिम्भ' शब्द शिशु और मूर्ख अर्थमें प्रयुक्त होता है। 'स्तम्भ' शब्द खंभे तथा जडवत् निश्चेष्ट होनेके अर्थमें आता है। 'क्षमा' शब्द सामर्थ्य तथा सहनशीलताका भी वाचक है॥ १३–२९॥

'रश्मि' शब्द किरण तथा रस्सीका वाचक है। 'धर्म' शब्दका प्रयोग पुण्य और यमराज आदिके लिये होता है। 'ललाम' शब्द पूँछ, पुण्ड्र (तिलक), घोड़ा, आभूषण, श्रेष्ठता तथा ध्वजा इत्यादि अर्थोंमें आता है। 'प्रत्यय' शब्द अधीन, शपथ, ज्ञान, विश्वास तथा हेतुके अर्थमें प्रयुक्त होता है। 'समय' शब्दका अर्थ है—शपथ, आचार, काल, सिद्धान्त और संविद् (करार)। 'अत्यय' अतिक्रमण (उल्लङ्घन) और कठिनाई अर्थमें तथा 'सत्य' शब्द शपथ और सत्यभाषणके अर्थमें आता है। 'वीर्य' शब्द बल और प्रभावका तथा 'रूप्य' शब्द परमसुन्दर रूपका वाचक है। 'दुरोदर' शब्द पुँल्लिङ्ग होनेपर जुआ खेलनेवाले पुरुष और जुएमें लगाये जानेवाले दाँवका बोध करानेवाला होता है तथा नपुंसकलिङ्ग होनेपर जुएके अर्थमें आता है। 'कान्तार' शब्द बहुत बड़े जंगल और दुर्गम मार्गका वाचक है तथा पुँल्लिङ्ग और नपुंसक—दोनों लिङ्गोंमें उसका प्रयोग होता है। 'हरि' शब्द यम, वायु, इन्द्र, चन्द्रमा, सूर्य, विष्णु और सिंह आदि अनेकों अर्थोंका वाचक है। 'दर' शब्द स्त्रीलिङ्गको छोड़कर अन्य दो लिङ्गोंमें प्रयुक्त होता है। उसका अर्थ है—भय और गड्ढा। 'जठर' शब्द उदर एवं कठिन अर्थका बोधक है। 'उदार' शब्द दाता और महान् पुरुषके अर्थमें आता है। 'इतर' शब्द अन्य और नीचका वाचक है। 'मौलि' शब्दके तीन अर्थ हैं—चूड़ा, किरीट और बँधे हुए केश। 'बलि' शब्द कर (टैक्स या लगान) तथा उपहार (भेंट आदि) के अर्थमें प्रयोग आता है। 'बल' शब्द सेना और स्थिरता आदिका बोधक है। 'नीवी' शब्द स्त्रीके कटिवस्त्रके बन्धनरूप अर्थमें तथा परिपण (पूँजी, मूलधन अथवा बंधक रखने) के अर्थमें आता है। 'शूर' शब्द शक्र (अधिक शक्तिवान्), शूर, भद्र पुरुष, पुण्य (धर्म) तथा बैलके अर्थमें प्रयुक्त होता है। 'अक्षर' शब्द पक्षी तथा योगरूढी [छँदक] अर्थमें आता है। 'अक्ष' शब्द नपुंसकलिङ्ग होनेपर इन्द्रियके अर्थमें आता है तथा पुँल्लिङ्ग होनेपर पासा, कर्ष (सोलह माशेका एक माप), गाड़ीके पहिये, व्यवहार (मुकदमेबाजी [?]) और बहेड़ेके वृक्षके अर्थमें उपलब्ध होता है। 'उष्णीष' शब्द किरीट आदिके अर्थमें प्रयुक्त होता है। 'कीर्ति'

'कर्पू' शब्द कुल्या अर्थात् छोटी नदीका वाचक है। 'अध्यक्ष' शब्द प्रत्यक्ष [द्रष्टा] और अधिकारीके अर्थमें आता है। 'विभावसु' शब्द सूर्य और अग्निका वाचक है। 'रस' शब्द विष, वीर्य, गुण, राग, द्रव तथा शृङ्गार आदि रसोंका बोध करानेवाला है। 'वर्चस्' शब्द तेज और पुरीष (मल) का तथा 'आगस्' शब्द पाप और अपराधका वाचक है। 'छन्दस्' शब्द पद्य और इच्छाके 'साधीयस्' शब्द साधु (उत्तम) और बाढ़ (निश्चय करने) के अर्थमें आता है। 'व्यूह' शब्द ... वाचक है। 'अहि' शब्द वृत्रासुरके अर्थमें भी आता है तथा 'तमोपह' शब्द अग्नि, चन्द्रमा एवं सूर्यका वाचक है ॥ १०—४१ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'कोशविषयक नानार्थ वर्गका वर्णन' नामक तीन सौ बासठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३६२ ॥

तीन सौ तिरसठवाँ अध्याय

भूमि, वनौषधि आदि वर्ग

अग्निदेव कहते हैं—अब मैं भूमि, पुर, पर्वत, वनौषधि तथा सिंह आदि वर्गोंका वर्णन करूँगा। भू, अनन्ता, क्षमा, धात्री, क्ष्मा, कु तथा धरित्री—ये भूमिके नाम हैं। मृत् और मृत्तिका—ये मिट्टीका बोध करानेवाले हैं। अच्छी मिट्टीको मृत्स्ना और मृत्सा कहते हैं। जगत्, त्रिविष्टप, लोक, भुवन और जगती—ये सब समानार्थक हैं। [अर्थात् ये सभी संसारके पर्यायवाची शब्द हैं।] अयन, वर्त्म (वर्त्मन्), मार्ग, अध्व (अध्वन्), पन्था (पथिन्), पदवी, सृति, सरणि, पद्धति, पद्या, वर्तनी और एकपदी—ये मार्गके वाचक हैं [इनमेंसे पद्या और एकपदी शब्द पगडंडीके अर्थमें आते हैं।] पूः (स्त्रीलिङ्ग 'पुर्' शब्द) पुरी, नगरी, पत्तन, पुटभेदन, स्थानीय और निगम—ये सात नगरके नाम हैं। मूल नगर (राजधानी) से भिन्न जो पुर होता है, उसे शाखानगर कहते हैं। वेश्याओंके निवास स्थानका नाम वेश और वेश्याजनसमाश्रय है। आपण, शब्द निषद्या (बाजार, हाट, दूकान) के अर्थमें आता है। विपणि और पण्यवीथिका—ये दो बाजारकी गलीके नाम हैं। रथ्या, प्रतोली और विशिखा—ये शब्द गली तथा नगरके मुख्यमार्गका बोध करानेवाले हैं। खाईसे निकालकर जमा किये हुए मिट्टीके ढेरको चय और वप्र कहते हैं। वप्र शब्दका केवल स्त्रीलिङ्गमें प्रयोग नहीं होता। प्राकार, वरण, शाल और प्राचीर—ये नगरके चारों ओर बने हुए घेरे (चहारदिवारी) के नाम हैं। भित्ति और कुड्य—ये दीवारके वाचक हैं। इनमें 'भित्ति' शब्द स्त्रीलिङ्ग है। एडूक उस दीवारको कहते हैं, जिसके भीतर हड्डी लगायी गयी हो। वास और कुटी पर्यायवाचक हैं। इनमें कुटी शब्द स्त्रीलिङ्ग है तथा कुट शब्दका इसी अर्थमें पुंलिङ्गमें भी प्रयोग है। इसी प्रकार शाला और सभा पर्यायवाचक हैं। चार ... युक्त गृहको सञ्जवन कहते हैं। मुनियोंकी कुटीका पर्णशाला और उटज है। उटज शब्दका प्रयोग पुंलिङ्ग और नपुंसक लिङ्ग—दोनोंमें होता है। चैत्य और आयतन—ये शब्द समान अर्थ और समान लिङ्गवाले हैं। [ये ... वृक्ष तथा मन्दिरके अर्थमें आते हैं।] वाजिशाला और मन्दुरा—ये घोड़ोंके रहनेकी जगहके नाम हैं। राजाओंके महलके नाम हर्म्य आदि हैं तथा देवताओं और राजाओंके भवनको प्रासाद (मन्दिर) कहते हैं। द्वार, द्वार और प्रतीहार—ये दरवाजेके नाम हैं। आँगन आदिमें बैठनेके लिये बने हुए चबूतरेको वितर्दि एवं वेदिका कहते हैं। कबूतरों [एवं अन्य पक्षियों] के रहनेके लिये बने हुए स्थानको कपोतपालिका और विटङ्क कहते हैं। 'विटङ्क' शब्द पुंलिङ्ग और नपुंसक दोनों लिङ्गोंमें प्रयुक्त होता है। कपाट और अरर—ये दोनों समान लिङ्ग और समान अर्थमें आते हैं। इनका अर्थ है—किवाड़। निःश्रेणि और अधिरोहणी—ये सीढ़ीके नाम हैं। सम्मार्जनी और शोधनी—ये दोनों शब्द झाड़ूके अर्थमें आते हैं। सङ्कर तथा अवकर झाड़ूसे फेंकी जानेवाली धूलके नाम हैं। अद्रि, गोत्र, गिरि और ग्रावा—ये पर्वतके नाम हैं। अटवी, अरण्य, विपिन, गहन, कानन और वन—ये जंगलके वाचक हैं। कृत्रिम (लगाये हुए) वन अर्थात् वृक्ष-समूहको आराम एवं उपवन कहते हैं। वही कृत्रिम वन, जो केवल राजा एवं उसके अन्तःपुरकी रानियोंके उपभोगमें आता है, 'प्रमदवन' कहलाता है। वीथी, आलि, आवलि, पङ्क्ति, श्रेणी, लेखा और राजि—ये सभी शब्द पङ्क्ति (कतार) के अर्थमें आते हैं। जिनमें फूल लगकर फल लगते हैं, उन वृक्षोंको 'वानस्पत्य' कहा जाता है तथा जिनमें बिना फूलके ही फल लगते हैं, उन वृक्षों (आदि) को 'वनस्पति' कहते हैं ॥ १—११ ॥

फलोंकि पकनेपर जिनके पेड़ सूख जाते हैं, उन धान जौ आदि अनाजोंको 'ओषधि' कहा जाता है। पलाशी, द्रु, द्रुम और अगम—ये सभी शब्द वृक्षके अर्थमें आते हैं। स्थाणु, ध्रुव तथा शङ्कु—ये तीन ठूँठ वृक्षके नाम हैं। इनमें स्थाणु शब्द वैकल्पिक पुँल्लिङ्ग है। अर्थात् उसका प्रयोग पुँल्लिङ्ग, नपुंसकलिङ्ग-दोनोंमें होता है। प्रफुल्ल, उत्फुल्ल और संस्फुट—ये फूलसे भरे हुए वृक्षके लिये प्रयुक्त होते हैं। पलाश, छदन और पर्ण—ये पत्तेके नाम हैं। इध्म, एधस् और समिध्—ये समिधा (यज्ञकाष्ठ) के वाचक हैं। इनमें समिध् शब्द स्त्रीलिङ्ग है। बोधिद्रुम और चलदल—ये पीपलके नाम हैं। दधित्थ, ग्राही, मन्मथ, दधिफल, पुष्पफल और दन्तशठ—ये कपित्थ (कैथ) नामक वृक्षका बोध करानेवाले हैं। हेमदुग्ध-शब्द उदुम्बर (गूलर) के और विपत्रक शब्द कोविदार (कचनार) के अर्थमें आता है। सप्तपर्ण और विशालत्वक्—ये छितवनके नाम हैं। कृतमाल, सुवर्णक, आरेवत, व्याधिघात, सम्पाक और चतुरङ्गुल—ये सभी शब्द सोनालु अथवा धनबहेड़ाके वाचक हैं। दन्तशठ-शब्द जम्बीर (जमीरी नीबू) के अर्थमें आता है। तिक्तशाक-शब्द वरुण [या वरण] का वाचक है। पुनाग, पुरुष, तुङ्ग, केसर तथा देववल्लभ—ये नागकेसरके नाम हैं। पारिभद्र, निम्बतरु, मन्दार और पारिजात—ये फरहदके नाम हैं। वञ्जुल और चित्रकृत—ये तिनिश-नामक वृक्षके वाचक हैं। पीतन और कपीतन—ये आम्रातक (अमड़ा) के अर्थमें आते हैं। गुडपुष्प और मधुद्रुम—ये मधूक (महुआ) के नाम हैं। पीलु अर्थात् देशी अखरोटको गुडफल और स्रंसी कहते हैं। नादेयी और अम्बुवेतस्—ये पानीमें पैदा हुए बेंतके नाम हैं। शिग्रु, तीक्ष्णगन्धक, अक्षीव और मोचक—ये शोभाञ्जन अर्थात् सहिजनके नाम हैं। लाल फूलवाले सहिजनको मधुशिग्रु कहते हैं। अरिष्ट और फेनिल—ये दोनों समान लिङ्गवाले शब्द रीठेके अर्थमें आते हैं। गालव, शाबर, लोध्र, तिरीट, तिल्व और मार्जन—ये लोधके वाचक हैं। शेलु, श्लेष्मातक, शीत, उद्दाल और बहुवारक—ये लसोड़ेके नाम हैं। वैकङ्कत, स्रुवावृक्ष, ग्रन्थिल और व्याघ्रपाद—ये वृक्षविशेषके वाचक हैं। [यह वृक्ष विभिन्न स्थानोंपर टैंटी, कटेर और कंगाई आदि नामोंसे प्रसिद्ध है।] तिन्दुक, स्फूर्जक और काल [या कालस्कन्ध]—ये तेंदू वृक्षके वाचक हैं। नादेयी और भूमिजम्बुक—ये नागरङ्ग अर्थात् नारंगीके नाम हैं। पीलुक शब्द काकतिन्दुक अर्थात् कुचिलाके अर्थमें भी आता है। पाटलि, मोक्ष और मुष्कक—ये मोरवा या पाढलके नाम हैं। क्रमुक और पट्टिका—ये पठानी लोधके वाचक हैं। कुम्भी, कैडर्य और कट्फल—ये कायफलका बोध करानेवाले हैं। वीरवृक्ष, अरुष्कर, अग्निमुखी और भल्लातकी—ये शब्द भिलावा नामक वृक्षके वाचक हैं। सनक, असन, पीत और पीतसाल—ये विजयसारके नाम हैं। सर्ज और अश्वकर्ण—ये साल वृक्षके वाचक हैं। वीरद्रु (वीरतरु), इन्द्रद्रु, ककुभ और अर्जुन—ये अर्जुन नामक वृक्षके पर्याय हैं। इङ्गुदी तपस्वियोंका वृक्ष है। इसीलिये इसे तापसतरु भी कहते हैं। [कहीं-कहीं यह 'इगुवा' तथा गोंदी वृक्षके नाम से भी प्रसिद्ध है।] मोचा और शाल्मलि—ये सेमलके नाम हैं। चिरबिल्व, नक्तमाल, करज और करञ्जक—ये 'कजा' नामक वृक्षके अर्थमें आते हैं। ['करञ्जक' शब्द भङ्गराज या भगरइयाका भी वाचक है।] प्रकीर्य और पूतिकरज—ये कँटीले करञ्जके वाचक हैं। मर्कटी तथा अङ्गार-वल्लरी—ये करञ्जके ही भेद हैं। रोही, रोहितक, प्लीहशत्रु और दाडिम पुष्पक—ये रोहेड़ाके नाम हैं। गायत्री, बालतनय, खदिर और दन्तधावन—ये खैरा नामक वृक्षके वाचक हैं। अरिमेद और विट्खदिर—ये दुर्गन्धित खैराके तथा कदर—यह श्वेत खैराका नाम है। पञ्चाङ्गुल, वर्धमान, चञ्चु और गन्धर्वहस्तक—ये एरण्ड (रेंड़) के अर्थमें आते हैं। पिण्डीतक और मरुबक—ये मदन (मैनफल) नामक वृक्षके बोधक हैं। पीतदारु, दारु, देवदारु और पूतिकाष्ठ—ये देवदारुके नाम हैं। श्यामा, महिलाह्वया, लता, गोवन्दिनी, गुन्द्रा, प्रियङ्गु, फलिनी और फली—ये प्रियङ्गु (कँगनी या टाँगुन) के वाचक हैं। मण्डूकपर्ण, पत्रोर्ण, नट, कट्वङ्ग, टुण्टुक, स्योनाक, शुकनास, ऋक्ष, दीर्घवृन्त और कुटन्नट—ये श्योनाक (सोनापाठा) का बोध करानेवाले हैं। पीतद्रु और सरल—ये सरल वृक्षके नाम हैं। निचुल, अम्बुज और इज्जल [या हिज्जल]—ये [illegible] अथवा क्षुद्र फलके वाचक हैं। काकोदुम्बरिका और फल्गु—ये कठूमरी या कठूमरके वाचक हैं। अरिष्ट, पिचुमर्द और सर्वतोभद्र—ये निम्ब-वृक्षके वाचक हैं। शिरीष और कपीतन—ये सिरस वृक्षके अर्थमें आते हैं। बकुल और वञ्जुल—ये मौलसिरीके नाम हैं। [वञ्जुल शब्द अशोक आदिके अर्थमें भी आता है।] पिच्छिला, अगरु और शिंशपा—ये शीशमके अर्थमें आते हैं। जया, जयन्ती और तर्कारी—ये

ऋष—ये काकड़ाशिंगीके वाचक हैं। [यह अष्टवर्गकी प्रसिद्ध ओषधि है।] शाङ्गेष्टा और नागवल्ली—ये गुञ्जाके भेद हैं। इन्हें हिंदीमें गुल्फकरी और गगेरन भी कहते हैं। मुषली और तालमूलिका—ये मूसलीके नाम हैं। ज्योत्स्नी, पटोलिका और जाली—ये तरोईके अर्थमें आते हैं। अजशृङ्गी और विषाणी—ये 'मेढ़ासिंगी'के वाचक हैं। लाङ्गलिकी और अग्निशिखा—ये करियारीका बोध करानेवाले हैं। ताम्बूली तथा नागवल्ली—ये ताम्बूल या पानके नाम हैं। हरेणु, रेणुका और कौन्ती—ये रेणुका नामक गन्धद्रव्यके वाचक हैं। ह्रीबेर और दिव्यनागर—ये नेत्रवाला और सुगन्धवालाके नाम हैं। कालानुसार्य, वृद्ध, अश्मपुष्प, शीत शिव और शैलेय—ये शिलाजीतके वाचक हैं। तालपर्णी, दैत्या, गन्ध, कुटी और मुरा—ये मुरा नामक सुगन्धित द्रव्यका बोध करानेवाले हैं। ग्रन्थिपर्ण, शुक और बर्हि [या बर्ह]—ये गठिवनके अर्थमें आते हैं। बला, त्रिपुटा और त्रुटि—ये छोटी इलायचीके वाचक हैं। शिवा और तामलकी—ये भुइँ आमलाके अर्थमें आते हैं। हनु और हट्टविलासिनी—ये नली नामक गन्धद्रव्यके बोधक हैं। कुटन्नट, दाशपुर, वानेय और परिपेलव—ये मोथाके नाम हैं। तपस्विनी तथा जटामासी—ये जटामांसीके अर्थमें आते हैं। पृक्का [या स्पृक्का], देवी, लता और लघु या [लशु]—ये 'असबरग'के वाचक हैं। कर्चूरक और द्राविडक—ये कचूरके नाम हैं। गन्धमूली और शठी शब्द भी कचूरके ही अर्थमें आते हैं। वृषगन्धा, छगलान्त्री, आवर्तकी तथा वृद्धदारक—ये विधाराके नाम हैं। तुण्डिकेरी, रक्तफला, बिम्बिका और पीलुपर्णी—ये कन्दूरीके वाचक हैं। चाङ्गेरी, चुक्रिका और अम्बष्ठा—ये अम्ललोणिका (अमलोनिया)के बोधक हैं। स्वर्णक्षीरी और हिमावती—ये मकोयके नाम हैं। सहस्रवेधी, चुक्र, अम्लवेतस और शतवेधी—ये अमलवेतके अर्थमें आते हैं। जीवन्ती, जीवनी और जीवा—ये जीवन्तीके नाम हैं। भूमिनिम्ब और किरातक—ये किराततिक्त या चिरायताके वाचक हैं। कृष्णजीरक और मधुरक—ये अश्वगन्धाक 'जीरक' नामक ओषधिके बोधक हैं। चन्द्र और कपिलक—ये समानार्थक शब्द हैं। [चन्द्र शब्द कपूर और कम्पिल्ल आदि अर्थोंमें आता है।] दद्रुघ्न और एडगज—ये चकवड़ नामक क्षुपके वाचक हैं। वर्षाभू और शोथहारिणी—ये गदहपुनाके अर्थमें आते हैं। कुनटी, निकुम्भा, मनली और नार्गिका—ये स्थानविशेषके वाचक हैं। स्नुहा, वज्रन, क्षीरी, महावृक्ष और स्नोन—ये स्नुहनके नाम हैं। वाराही, वरदा [या वदरा] तथा गृष्टि—ये वराहीकन्दके वाचक हैं। काकमाची और वायसी—ये समानार्थ शब्द हैं। शतपुष्पा, सितच्छत्रा, अतिच्छत्रा, मधुरा, मिसि, अवाक्पुष्पी और कारवी—ये सौंफके नाम हैं। सरणा, प्रसारिणी, कटम्भरा और भद्रबला—ये कुब्जप्रसारिणी नामक ओषधिके वाचक हैं। कर्चूर और शटी—ये भी कचूरके अर्थमें आते हैं। पटोल, कुलक, तिक्तक और पटु—ये परवलके नाम हैं। कारवेल्ल और कटिल्लक—ये करैलाके अर्थमें आते हैं। कूष्माण्डक और कर्कारु—ये कोंहड़ाके वाचक हैं। उर्वारु और कर्कटी—ये दोनों स्त्रीलिङ्ग शब्द ककड़ीके वाचक हैं। इक्ष्वाकु तथा कटुतुम्बी—ये कड़वी लौकीके बोधक हैं। विशाला और इन्द्रवारुणी—ये इन्द्रायन (तूँबी) नामक लताके नाम हैं। अर्शोघ्न, सूरण और कन्द—ये सूरन या ओलके वाचक हैं। मुस्तक और कुरुविन्द—ये दोनों शब्द भी मोथाके अर्थमें आते हैं। त्वक्सार, कर्मार, वेणु, मस्कर और तेजन—ये वंश (बाँस)के वाचक हैं। छत्रा, अतिच्छत्र और पालघ्न—ये पानीमें पैदा होनेवाले तृणविशेषके बोधक हैं। मालातृणक और भूस्तृण—ये भी तृणविशेषके ही नाम हैं। ताड़के वृक्षका नाम ताल और तृणराज है। घोण्टा, क्रमुक तथा पूग—ये सुपारीके अर्थमें आते हैं॥ १–७०३ ॥

शार्दूल और द्वीपी—ये व्याघ्र (बाघ)के वाचक हैं। हर्यक्ष, केसरी (केशरी) तथा हरि—ये सिंहके नाम हैं। कोल, पोत्री और वराह—ये सूअरके तथा कोक, ईहामृग और वृक भेड़ियेके अर्थमें आते हैं। लूता, ऊर्णनाभि, तन्तुवाय और मर्कट—ये मकड़ीके नाम हैं। वृश्चिक और शूककीट बिच्छूके वाचक हैं। ['शूककीट' शब्द ऊन आदि चाटनेवाले कीड़ेके अर्थमें भी आता है।] सारङ्ग और स्तोक—ये समान लिङ्गमें प्रयुक्त होनेवाले शब्द पपीहाके वाचक हैं। कृकवाकु तथा ताम्रचूड—ये कुक्कुट (मुर्गा)के नाम हैं। पिक और कोकिल—ये कोयलके वाचक हैं। करट और अरिष्ट—काक (कौए)के अर्थमें आते हैं। बक और कङ्क—बगुलेके नाम हैं। कोक, चक्र और चक्रवाक—ये चकवेके तथा कादम्ब और कलहंस—ये मटमैले रंगके हंस या बत्तखके वाचक हैं। पतङ्गिका और पुत्तिका—ये मधुका छत्ता बनानेवाली छोटी मक्खियोंके नाम हैं और सरघा तथा मधुमक्षिका—ये बड़ी मधुमक्खीके अर्थमें आते हैं। [इन्हें भँवरा माखी भी कहते हैं।] द्विरेफ, पुष्पलिट्, भृङ्ग, षट्पद, भ्रमर और अलि—ये भ्रमर (भौंरे)के नाम हैं। केकी तथा शि

मल-मूत्रके निरोधको अनाह और विबन्ध कहते हैं।
ी और प्रवाहिका—ये संग्रहणी रोगके नाम हैं। बीज,
, इन्द्रिय और शुक्र—ये वीर्यके पर्याय हैं। पलल, क्रव्य
आमिष—ये मांसके अर्थमें आते हैं। बुक्का और अग्र
—ये छातीके मांस (हरिग्ड) का बोध करानेवाले
['बुक्का' शब्द केवल हृदयका भी वाचक है।] हृदय और
—ये मनके पर्याय हैं। मेदस्, वपा और वसा—ये
ाके नाम हैं। गलेके पीछेकी नाड़ीको मन्या कहते हैं। नाड़ी,
मनि और शिरा—ये नाड़ीके वाचक हैं। तिलक और
ोम—ये शरीरमें रहनेवाले काले तिलके अर्थमें आते हैं।
ाखिष्क दिमागको और दूषिका आँखोंकी कीचड़को कहते
। अन्त्र और पुरीतत्—ये आँतके अर्थमें आते हैं। गुल्म
और प्लीहा—वरवट (तिल्ली) को कहते हैं। प्लीहा 'प्लीहन्' शब्दका
पुँल्लिङ्गरूप है। अस्थि प्रत्यङ्गकी संधियोंके बन्धनको स्नायु
और वस्नसा कहते हैं। कालखण्ड और यकृत्—जिगर या
लेजेके नाम हैं। कर्पर और कपाल शब्द ललाटके वाचक
। 'कपाल' शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग—दोनोंमें आता है।
कीकस, कुल्य और अस्थि—ये हड्डीके नाम हैं। रक्त-माससे
रहित शरीरकी हड्डीको कङ्काल कहते हैं। पीठकी हड्डी
(मेरुदण्ड) का नाम कशेरुका है। 'करोटि' शब्द स्त्रीलिङ्ग
है और यह मस्तककी हड्डी (खोपड़ी) के अर्थमें आता है।
पँसलीकी हड्डीको पर्शुका कहते हैं। अङ्ग, प्रतीक, अवयव,
शरीर, वर्ष्म तथा विग्रह—ये शरीरके पर्याय हैं। कट और
श्रोणिफलक—ये चूतड़के अर्थमें आते हैं। 'कट' शब्द
पुँल्लिङ्ग है। कटि, श्रोणि और ककुद्मती—ये कमरका बोध
करानेवाले हैं। [किन्हीं किन्हींके मतमें उपर्युक्त पाँचों ही शब्द
पर्यायवाची हैं।] स्त्रीकी कमरके पिछले भागको नितम्ब और
अगले भागको जघन कहते हैं। 'जघन' शब्द नपुंसकलिङ्ग है।
नितम्बके ऊपर जो दो गड्ढे-से होते हैं, उन्हें कूपक एवं
कुकुन्दर कहते हैं। 'कुकुन्दर' शब्द केवल नपुंसकलिङ्ग है। कटिके
मांस-पिण्डका नाम स्फिच् और कटिप्रोथ है। 'स्फिच्' शब्दका
प्रयोग स्त्रीलिङ्गमें होता है। नीचे बताये जानेवाले भग और लिङ्ग
—दोनोंको उपस्थ कहा जाता है। भग और योनि—ये स्त्री
चिह्नके बोधक पर्यायवाची शब्द हैं। शिश्न, मेढ्र, मेहन और
शेफस्—ये पुरुषचिह्न (लिङ्ग) के वाचक हैं। पिचण्ड, कुक्षि,
जठर, उदर और तुन्द—ये पेटके अर्थमें आते हैं। कुच और
स्तन पर्यायवाची शब्द हैं। कुचोंके अग्रभागका नाम चूचुक
है। नपुंसकलिङ्ग क्रोड तथा भुजान्तर शब्द गोदीके वाचक हैं।
स्कन्ध, भुजशिरस् और अंस—ये कंधेके अर्थमें आते हैं। 'अंस'
शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग है। कंधेकी संधियों अर्थात् हँसली
की हड्डीको जत्रु कहते हैं। पुनर्भव, कररुह, नख और नखर—
ये नखोंके नाम हैं। इनमें 'नखर' और 'नख' शब्द स्त्रीलिङ्गके सिवा
अन्य दो लिङ्गोंमें प्रयुक्त होते हैं। अँगूठेसे लेकर
तर्जनीतक फैलाये हुए हाथको प्रादेश, अँगूठेसे मध्यमा तकके
ताल और अनामिकातक फैलाये हुए हाथको गोकर्ण कहते हैं।
इसी प्रकार अँगूठेसे कनिष्ठिका अँगुलीतक फैले हुए हाथका
नाम वितस्ति (बालिश्त या बित्ता) है। इसकी लंबाई बारह
अङ्गुलकी होती है। जब हाथकी सभी अँगुलियाँ
फैली हों, तब उसे चपेट, तल और प्रहस्त कहते हैं। मुट्ठी
बँधे हुए हाथका नाम रत्नि है। [कोहनीसे लेकर मुट्ठी बँधे
हुए हाथतकके मापको भी 'रत्नि' कहते हैं।] कोहनीसे
कनिष्ठा अँगुलीतककी लंबाईका नाम अरत्नि है।
शङ्खके समान आकारवाली ग्रीवाका नाम कम्बुग्रीवा
और त्रिरेखा है। गलेकी घाँटीको अवटु, घाटा
और कृकाटिका कहते हैं। ओठसे नीचेके हिस्सेका
नाम चिबुक है। गण्ड और गल्ल गालके वाचक हैं।
गालके निचले भागको हनु कहते हैं। नेत्रोंके
दोनों प्रान्तोंको अपाङ्ग कहा जाता है। उन्हें दिखानेकी
चेष्टाको कटाक्ष कहा जाता है। चिकुर, कुन्तल और
बाल—ये केशके वाचक हैं। प्रतिकर्म और प्रसाधन शब्द
सँवारने और शृङ्गार करनेके अर्थमें आते हैं।
आकल्प, वेष और नेपथ्य—ये शब्द प्रत्यक्ष नाटक आदिके
खेलमें भिन्न-भिन्न वेष धारण करनेके अर्थमें आते हैं।
मस्तकपर धारण किये जानेवाले रत्नका नाम चूडामणि और
शिरोरत्न है। हारके बीच-बीचमें पिरोये हुए रत्नको तरल
कहते हैं। कर्णिका और तालपत्र—ये कानके
आभूषणके नाम हैं। लम्बन और ललन्तिका गलेमें नीचेतक
लटकनेवाले हारको कहते हैं। मञ्जीर और नूपुर—ये पैरके
आभूषण हैं। किङ्किणी और क्षुद्रघण्टिका घुँघुरूके नाम हैं।
दैर्घ्य, आयाम और आनाह—ये वस्त्र आदिकी लंबाईके
बोधक हैं। परिणाह और विशालता—ये चौड़ाईके
(पनहा या अर्ज) के अर्थमें आते हैं। पुराने वस्त्रको पटच्चर
कहते हैं। संव्यान और उत्तरीय—ये चादर या दुपट्टेके
अर्थमें आते हैं। पूरा अर्थ भी...

या कपोल आदिपर पत्रभङ्ग आदि बनानेकी रचना और परिस्पन्द कहते हैं। प्रत्येक उपचारकी पूर्णताका नाम आभोग है। ढक्कनदार पेटीको समुद्गक और सम्पुटक कहते हैं। प्रतिग्राह और पतद्ग्रह—ये पीकदानके नाम हैं॥ १-८॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'कोशगत मनुष्य-वर्गका वर्णन' नामक तीन सौ चौसठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३६४॥

तीन सौ पैंसठवाँ अध्याय

ब्रह्म-वर्ग

अग्निदेव कहते हैं—वंश, अन्ववाय, गोत्र, कुल, अभिजन और अन्वय—ये वंशके नाम हैं। मन्त्रकी व्याख्या करनेवाले ब्राह्मणको आचार्य कहते हैं। जिसने यज्ञमें व्रतकी दीक्षा ग्रहण की हो, वह आदेष्टा, यष्टा और यजमान कहलाता है। समझ-बूझकर आरम्भ करनेका नाम उपक्रम है। एक गुरुके यहाँ साथ-साथ विद्या पढ़नेवाले छात्र परस्पर सतीर्थ्य और एकगुरु कहलाते हैं। सभ्य, सामाजिक, सभासद और सभास्तार—ये यज्ञके सदस्योंके नाम हैं। ऋत्विक् और याजक—ये यज्ञ करानेवाले ऋत्विजोंके वाचक हैं। यजुर्वेदके ज्ञाता ऋत्विजको अध्वर्यु, सामवेदके जाननेवालेको उद्गाता और ऋग्वेदके ज्ञाताको होता कहते हैं। चषाल और यूपकटक—ये यज्ञीय खम्भेपर लगाये जानेवाले काठके छल्लेके नाम हैं। स्थण्डिल और चत्वर—ये दोनों शब्द समान लिङ्ग और समान अर्थके बोधक हैं। खौलाये हुए दूधमें दही मिला देनेसे जो हवनके योग्य वस्तु तैयार होती है, उसे आमिक्षा कहते हैं। दही मिलाये हुए घीका नाम पृषदाज्य है। परमान्न और पायस—ये खीरके वाचक हैं। जो पशु यज्ञमें अभिमन्त्रित करके मारा गया हो, उसको उपाकृत कहते हैं। परम्पराक, शमन और प्रोक्षण—ये शब्द यज्ञीय पशुका वध करनेके अर्थमें आते हैं। पूजा, नमस्या, अपचिति, सपर्या, अर्चा और अर्हणा—ये समानार्थक शब्द हैं। वरिवस्या, शुश्रूषा, परिचर्या और उपासना—ये सेवाके नाम हैं। नियम और व्रत—ये एक-दूसरेके पर्यायवाची शब्द हैं। इनमें व्रत शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग—दोनोंमें प्रयुक्त होता है। उपवास आदिके रूपमें किये जानेवाले व्रतका नाम पुण्यक है। जिसका प्रथम या प्रधानरूपसे विधान किया गया हो, उसे 'मुख्यकल्प' कहते हैं और उसकी अपेक्षा गौण या अप्रधानरूपसे जिसकी विधि हो, उसका नाम अनुकल्प है। कल्पके अर्थमें विधि और क्रम—इन शब्दोंका प्रयोग करना चाहिये। वस्तुका पृथक्-पृथक् ज्ञान [अथवा सत्-असत्‌के द्वय इत्यादिके पार्थक्यका निश्चय] विवेक कहलाता है। [श्रावणीपूर्णिमा आदिके दिन] संस्कारपूर्वक वेदका स्वाध्याय आरम्भ करना उपाकरण या उपाकर्म कहलाता है। भिक्षु, परिव्राट्, कर्मन्दी, पाराशरी तथा मस्करी—संन्यासीके पर्यायवाची शब्द हैं। जिनकी वाणी सदा सत्य होती है, वे ऋषि और सत्यवचा कहलाते हैं। जिसने वेदव्रत और ब्रह्मचर्यके व्रतको विधिवत् समाप्त कर लिया है, किंतु अभी दूसरे आश्रमको स्वीकार नहीं किया है, उसको स्नातक कहते हैं। जिन्होंने अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त कर ली है, वे 'यती' और 'यति' कहलाते हैं। शरीर-साध्य नित्यकर्मका नाम यम है तथा जो कर्म अनित्य एवं कभी-कभी आवश्यकतानुसार किये जानेयोग्य होता है, वह (व्रत, उपवास आदि) नियम कहलाता है। ब्रह्मभूय, ब्रह्मत्व और ब्रह्मसायुज्य—ये ब्रह्मभावकी प्राप्तिके नाम हैं॥ १-११॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'कोशगत ब्रह्मवर्गका वर्णन' नामक तीन सौ पैंसठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३६५॥

तीन सौ छाछठवाँ अध्याय

क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र-वर्ग

अग्निदेव कहते हैं—मूर्धाभिषिक्त, राजन्य, बाहुज, क्षत्रिय और विराट्—ये क्षत्रियके वाचक हैं। जिस राजाके चरणोंमें सभी सामन्त-नरेश मस्तक झुकाते हैं, उसे अधीश्वर कहते हैं। जिसका समुद्रपर्यन्त समूची भूमिपर अधिकार हो, उस सम्राट्का नाम चक्रवर्ती और सार्वभौम है तथा दूसरे राजाओंको [जो छोटे-छोटे मण्डलोंके शासक हैं, उन्हें

तूण, उपासङ्ग, तूणीर, निषङ्ग और इषुधि—ये तरकसके नाम हैं। इनमें इषुधि शब्द पुँल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग दोनों लिङ्गोंमें आता है। असि, ऋष्टि, निस्त्रिंश, करवाल और कृपाण—ये तलवारके वाचक हैं। तलवारकी मूठको त्सरु कहते हैं। ईली और करपालिका [करवालिका]—ये गुप्तीके नाम हैं। कुठार और सुधिति [या स्वधिति]—ये कुल्हाड़ीके अर्थमें आते हैं। इनमें कुठार शब्दका प्रयोग पुँल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग—दोनोंमें होता है। छुरीको क्षुरिका और असिपुत्रिका कहते हैं। प्रास और कुन्त भालेके नाम हैं। सर्वला और तोमर गँड़ासेके अर्थमें आते हैं। तोमर शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग—दोनोंमें प्रयुक्त होता है [यह बाण-विशेषका भी वाचक है]। जो प्रातःकाल मङ्गल गान करके राजाको जगाते हैं, उन्हें वैतालिक और बोधकर कहते हैं। स्तुति करनेवालोंका नाम मागध और बन्दी है। जो शपथ लेकर संग्रामसे पीछे पैर नहीं हटाते, उन योद्धाओंको संशप्तक कहते हैं। पताका और वैजयन्ती—ये पताकाके नाम हैं। केतन और ध्वज—ये ध्वजाके वाचक हैं और इनका प्रयोग नपुंसकलिङ्ग तथा पुँल्लिङ्गमें भी होता है। 'मैं पहले' 'मैं पहले' ऐसा कहते हुए जो योद्धाओंकी युद्ध आदिमें प्रवृत्ति होती है, उसे अहम्पूर्विका कहते हैं। इसका प्रयोग स्त्रीलिङ्गमें होता है। 'मैं समर्थ हूँ' ऐसा कहकर जो परस्पर अहंकार प्रकट किया जाता है, उसका नाम अहमहमिका है। शक्ति, पराक्रम, प्राण, शौर्य, स्थाम (स्थामन्) सहस् और बल—ये सभी शक्तिके वाचक हैं। मूर्छाके तीन नाम हैं—मूर्छा, कश्मल और मोह। शत्रुओंको अच्छी तरह रगड़ने या कष्ट पहुँचानेको अवमर्द तथा पीडन कहते हैं। शत्रुको धर दबानेका नाम अभ्यवस्कन्दन तथा अभ्यासादन है। जीतको विजय और जय कहते हैं। निर्वासन, संज्ञपन, मारण और प्रतिघातन—ये मारनेके नाम हैं। पञ्चता और कालधर्म—ये मृत्युके अर्थमें आते हैं। दिष्टान्त, प्रलय और अत्यय—इनका भी यही अर्थ है ॥ १७—२१ ॥

विश्, भूमिस्पृश् और वैश्य—ये शब्द वैश्यजातिका बोध करानेवाले हैं। वृत्ति, वर्तन और जीवन—ये जीविकाके वाचक हैं। कृषि, पाशुपाल्य और वाणिज्य—ये वैश्योंकी जीविका-वृत्तियाँ हैं। सेवा (सूद) से जीवननिर्वाह करनेवालोंका नाम कुसीद भी है। ब्याजके लिये धन देनेवाले उत्तमर्ण और लेनेवाले अधमर्ण कहलाते हैं। अनाजकी बालका नाम कणिश है। जौ आदि तीसे अन्नधान्यको किंशारु तथा सस्यशूक कहते हैं। शूक आदिके गुच्छका नाम स्तम्ब है। धान्य, व्रीहि और स्तम्बकरि—ये अनाजके वाचक हैं। अनाजके डंठलोंसे होनेवाले भूसेका कडंगर और बुस कहते हैं। शमीधान्य अर्थात् फली या छीमीसे निकलनेवाले अनाजके अन्दर उड़द, चना और मटर आदिकी गणना है तथा शूकधान्यमें जौ आदिकी गिनती है। तृणधान्य अर्थात् तिन्नीको नीवार कहते हैं। सूपका नाम है—सूप और प्रस्फोटन। सन या बाँसके बने हुए झोले अथवा पैलेको स्यूत और प्रसेव कहते हैं। कण्डोल और पिट टोकरीके तथा कट और किलिञ्जक चटाईके नाम हैं। इन दोनोंका एक ही लिङ्ग है। रसवती, पाकस्थान और महानस—ये रसोईघरके अर्थमें आते हैं। रसोईके अध्यक्षका नाम पौरोगव है। रसोई बनानेवालोंको सूपकार, बल्लव, आरालिक, आन्धसिक, सूद, औदनिक तथा गुण कहते हैं। नपुंसकलिङ्ग अम्बरीष तथा पुँल्लिङ्ग भ्राष्ट्र शब्द भाड़के वाचक हैं। कर्करी, आलु और गलन्तिका—ये करवेके नाम हैं। बड़े घड़े या मटकेको आलिञ्जर तथा मणिक कहते हैं। काले जीरेका नाम सुषवी है। आरनाल और कुल्माष—ये काँजीके नाम हैं। बाह्लीक, हिङ्गु तथा रामठ—ये हींगके अर्थमें आते हैं। निशा, हरिद्रा और पीता—ये हल्दीके वाचक हैं। खाँडको मत्स्यण्डी तथा फाणित कहते हैं। दूधके विकार अर्थात् खोवा या मावाका नाम कूर्चिका और क्षीरविकृति है। पिच्छिल, मसृण और चिक्कण—ये तीनों शब्द चिकनेके अर्थमें आते हैं। पृथुक और चिपिटक—ये चिउड़ेके वाचक हैं। भूने हुए जौको धाना कहते हैं। यह स्त्रीलिङ्ग शब्द है। जेमन, लेह (लेप) और आहार—ये भोजनका बोध करानेवाले हैं। माहेयी, सौरभी और गौ—ये गायके पर्याय हैं। कठोर भूमि रखनेवाले बैलको युग्य और प्रासङ्ग तथा गाड़ी खींचनेवालेको शाकट कहते हैं। बहुत दिनोंकी ब्यायी हुई गायका नाम बष्कयणी (बकेना) तथा थोड़े दिनोंकी ब्यायी हुईका नाम धेनु है। साँड़से लगी हुई गौको संधिनी कहते हैं। गर्भ गिरानेवाली गायकी 'वेहद्' संज्ञा है ॥ २१—३२ ॥

स्वयाजीव तथा आपणिक व्यापारीके अर्थमें आते हैं। न्यास और उपनिधि—ये धरोहरके वाचक हैं। ये दोनों शब्द पुँल्लिङ्ग हैं। बेचनेका नाम है विक्रय और विक्रय। संख्यावाचक शब्द एकसे लेकर 'दश' शब्दके बाद तकके [अर्थात् एकसे अष्टादशतक] शब्द संख्येय द्रव्यका बोध करानेके लिये प्रयुक्त होते हैं, अतः उनका तीनों लिङ्गोंमें प्रयोग होता है। जैसे—एकः पटः, एका स्त्री, एकं पुष्पम् इत्यादि।

सात प्रकारकी है—पहली मांस धारण करनेवाली, दूसरी रक्तधारिणी, तीसरी जिगर एवं प्लीहाको आश्रय देनेवाली, चौथी मेदा और अस्थि धारण करनेवाली, पाँचवीं मज्जा, श्लेष्मा और पुरीषको धारण करनेवाली, जो पक्वाशयमें स्थित रहती है, छठी पित्त धारण करनेवाली और सातवीं शुक्र धारण करनेवाली है । यह शुक्राशयमें स्थित रहती है ॥३७-४०॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'आत्यन्तिक प्रलय तथा गर्भकी उत्पत्तिका वर्णन' नामक तीन सौ उनहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३६९ ॥

तीन सौ सत्तरवाँ अध्याय

शरीरके अवयव

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठजी ! कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका—ये ज्ञानेन्द्रियाँ हैं । आकाश आदि भूतोंमें व्यापक है । शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये क्रमशः आकाश आदि पाँच भूतोंके गुण हैं । गुदा, उपस्थ (लिङ्ग या योनि), हाथ, पैर और वाणी—ये 'कर्मेन्द्रिय' कहे गये हैं । मलत्याग, विषयजनित आनन्दका अनुभव, ग्रहण, चलन तथा वार्तालाप—ये क्रमशः उपर्युक्त इन्द्रियोंके कार्य हैं । पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच इन्द्रियोंके विषय, पाँच महाभूत, मन, बुद्धि, आत्मा (महत्तत्त्व), अव्यक्त (मूल प्रकृति)—ये चौबीस तत्त्व हैं । इन सबसे परे है—पुरुष । वह इनसे संयुक्त भी रहता है और पृथक् भी, जैसे मछली और जल—ये दोनों एक साथ संयुक्त भी रहते हैं और पृथक् भी । रजोगुण, तमोगुण और सत्त्वगुण—ये अव्यक्तके आश्रित हैं । अन्तःकरणकी उपाधिसे युक्त पुरुष 'जीव' कहलाता है, वही निरुपाधिक स्वरूपसे 'परब्रह्म' कहा गया है, जो सबका कारण है । जो मनुष्य इस परम पुरुषको जान लेता है, वह परमपदको प्राप्त होता है । इस शरीरके भीतर सात 'आशय' माने गये हैं—पहला रुधिराशय, दूसरा श्लेष्माशय, तीसरा आमाशय, चौथा पित्ताशय, पाँचवाँ पक्वाशय, छठा वाताशय और सातवाँ मूत्राशय । स्त्रियोंके इन सातके अतिरिक्त एक आठवाँ आशय भी होता है, जिसे 'गर्भाशय' कहते हैं । अग्निसे पित्त और पित्तसे पक्वाशय होता है । ऋतुकालमें स्त्रीकी योनि कुछ फैल जाती है । उसमें स्थापित किया हुआ वीर्य गर्भाशयतक पहुँच जाता है । गर्भाशय कमलके आकारका होता है । वही अपनेमें रज और वीर्यको धारण करता है । वीर्यसे शरीर और समयानुसार उसमें केश प्रकट होते हैं । ऋतुकालमें भी यदि योनि वात, पित्त और कफसे आवृत हो तो उसमें विकास (फैलाव) नहीं होता । [ऐसी दशामें वह गर्भ धारणके योग्य नहीं रहती ।] महाभाग ! कुक्षिमें पुक्कस, प्लीहा, यकृत्, कोष्ठाङ्ग, हृदय, अन्त्र तथा तण्डक होते हैं । ये सभी आशयमें निबद्ध हैं । प्राणियोंके पकाये जानेवाले रसके सारसे प्लीहा और यकृत् होते हैं । धर्मके ज्ञाता वसिष्ठजी ! रक्तके फेनसे पुक्कसकी उत्पत्ति होती है । इसी प्रकार रक्त, पित्त तथा तण्डक भी उत्पन्न होते हैं । मेदा और रक्तके प्रसारसे वृक्ककी उत्पत्ति होती है । रक्त और मांसके प्रसारसे देहधारियोंकी आँतें बनती हैं । पुरुषकी आँतोंका परिमाण साढ़े तीन व्याम बताया जाता है और वेदवेत्ता पुरुष स्त्रियोंकी आँतें तीन व्याम लंबी मानते हैं । रक्त और वायुके संयोगसे कामका उदय होता है । कफके प्रसारसे हृदय प्रकट होता है । उसका आकार कमलके समान है । उसका मुख नीचेकी ओर होता है तथा उसके मध्यका जो आकाश है, उसमें जीव स्थित रहता है । चेतनताका सम्बन्ध रखनेवाले सभी भावोंकी स्थिति वहीं है । हृदयके वामभागमें प्लीहा और दक्षिणभागमें यकृत् है तथा इसी प्रकार हृदयकमलके दक्षिणभागमें क्लोम (फुफ्फुस) की भी स्थिति बतायी गयी है । इस शरीरमें कफ और रक्तको प्रवाहित करनेवाले जो स्रोत हैं, उनसे भूतानुसार इन्द्रियोंकी उत्पत्ति होती है । नेत्रमण्डलका जो श्वेतभाग है, वह कफसे उत्पन्न होता है । उसका प्रान्तभाग पिताके वीर्यसे बना माना गया है तथा नेत्रोंका जो कृष्णभाग है, वह माताके रजरूप सारभागसे प्रकट होता है । त्वचामण्डलकी उत्पत्ति पित्तसे होती है । इस मज्जा और पित्त—दोनोंको उससे उत्पन्न समझना चाहिये । मांस, रक्त और कफसे जिह्वाका निर्माण होता है । मेद, रक्त, कफ और मांससे अण्डकोषकी उत्पत्ति होती है । प्राणके दस आश्रय जानने चाहिये—मूर्धा, हृदय, नाभि, कण्ठ, जिह्वा, शुक्र, रक्त, गुदा, बस्ति (मूत्राशय) और गुल्फ [पैरकी गाँठ या घुट्टी] तथा 'कण्डरा'

वृत्तियोंको लेकर शरीरसे बाहर हो जाता है। देहसे निकलते, अन्यत्र जन्म लेते अथवा नाना प्रकारकी योनियोंमें प्रवेश करते समय जीवको सिद्ध पुरुष और देवता ही अपनी दिव्यदृष्टिसे देखते हैं। मृत्युके बाद जीव तुरंत ही आतिवाहिक शरीर धारण करता है। उसके त्यागे हुए शरीरसे आकाश, वायु और तेज—ये ऊपरके तीन तत्त्वोंमें मिल जाते हैं तथा जल और पृथ्वीके अंश नीचेके तत्त्वोंसे एकीभूत हो जाते हैं। यही पुरुषका 'पञ्चत्वको प्राप्त होना' माना गया है। मरे हुए जीवको यमदूत शीघ्र ही आतिवाहिक शरीरमें पहुँचाते हैं। यमलोकका मार्ग अत्यन्त भयंकर और छियासी हजार योजन लंबा है। उसपर ले जाया जानेवाला जीव अपने बन्धु-बान्धवोंके दिये हुए अन्न-जलका उपभोग करता है। यमराजसे मिलनेके पश्चात् उनके आदेशसे चित्रगुप्त जिन भयंकर नरकोंको बतलाते हैं, उन्हींको वह जीव प्राप्त होता है। यदि वह धर्मात्मा होता है, तो उत्तम मार्गोंसे स्वर्गलोकको जाता है॥ १—१२॥

अब पापी जीव जिन नरकों और उनकी यातनाओंका उपभोग करते हैं, उनका वर्णन करता हूँ। इस पृथ्वीके नीचे नरककी अट्ठाईस ही श्रेणियाँ हैं। सातवें तलके अन्तमें घोर अन्धकारके भीतर उनकी स्थिति है। नरककी पहली कोटि 'घोरा'के नामसे प्रसिद्ध है। उसके नीचे 'सुघोरा'की स्थिति है। तीसरी 'अतिघोरा', चौथी 'महाघोरा' और पाँचवीं 'घोररूपा' नामकी कोटि है। छठीका नाम 'तरलतारा' और सातवींका 'भयानका' है। आठवीं 'भयोत्कटा', नवीं 'कालरात्रि', दसवीं 'महाचण्डा', ग्यारहवीं 'चण्डा', बारहवीं 'कोलाहला', तेरहवीं 'प्रचण्डा', चौदहवीं 'पद्मा' और पंद्रहवीं 'नरकनायिका' है। सोलहवीं 'पद्मावती', सत्रहवीं 'भीषणा', अठारहवीं 'भीमा', उन्नीसवीं 'करालिका', बीसवीं 'विकराला', इक्कीसवीं 'महावज्रा', बाईसवीं 'त्रिकोणा' और तेईसवीं 'पञ्चकोणिका' है। चौबीसवीं 'सुदीर्घा', पचीसवीं 'वर्तुला', छब्बीसवीं 'सप्तभूमा', सत्ताईसवीं 'सुभूमिका' और अट्ठाईसवीं 'दीप्तमाया' है। इस प्रकार ये अट्ठाईस कोटियाँ पापियोंको दुःख देनेवाली हैं॥ १३—१८॥

नरकोंकी अट्ठाईस कोटियोंके पाँच-पाँच नायक हैं [तथा पाँच उनके भी नायक हैं]। वे 'रौरव' आदि नामसे प्रसिद्ध हैं। उन सबकी संख्या एक सौ पैंतालीस है—तामिस्र, अन्धतामिस्र, महारौरव, रौरव, असिपत्रवन, लोहभार, कालसूत्र, नरक, महानरक, सञ्जीवन, महावीचि, तपन, सम्प्रतापन, संघात, काकोल, कुड्मल, पूतिमृत्तिक, लोहशङ्कु, ऋजीष, प्रधान, शाल्मली वृक्ष और वैतरणी नदी आदि सभी नरकोंको 'कोटि-नायक' समझना चाहिये। ये बड़े भयंकर दिखायी देते हैं। पापी पुरुष इनमेंसे एक-एकमें तथा अनेकमें भी डाले जाते हैं। यातना देनेवाले यमदूतोंमें किसीका मुख बिलावके समान होता है तो किसीका उल्लूके समान, कोई गीदड़के समान मुखवाले हैं तो कोई गृध्र आदिके समान। वे मनुष्यको तेलके कड़ाहेमें डालकर उसके नीचे आग जला देते हैं। किन्हींको भाड़में, किन्हींको ताँबे या तपाये हुए लोहेके बर्तनोंमें तथा बहुतोंको आगकी चिनगारियोंमें डाल देते हैं। कितनोंको वे शूलीपर चढ़ा देते हैं। बहुत-से पापियोंको नरकमें डालकर उनके टुकड़े-टुकड़े किये जाते हैं। कितने ही कोड़ोंसे पीटे जाते हैं और कितनोंको तपाये हुए लोहेके गोले खिलाये जाते हैं। बहुत-से यमदूत उनको धूलि, विष्ठा, रक्त और कफ आदि भोजन कराते तथा तपायी हुई मदिरा पिलाते हैं। बहुत-से आरोंसे चीर डालते हैं। कुछ लोगोंको कोल्हूमें पेरते हैं। कितनोंको कौवे आदि नोच-नोचकर खाते हैं। किन्हीं-किन्हींके ऊपर गरम तेल छिड़का जाता है तथा कितने ही जीवोंके मस्तकके अनेकों टुकड़े किये जाते हैं। उस समय पापी जीव 'अरे बाप रे!' कहकर चिल्लाते हैं और हाहाकार मचाते हुए अपने पापकर्मोंकी निन्दा करते हैं। इस प्रकार बड़े-बड़े पातकोंके फलस्वरूप भयंकर एवं निन्दित नरकोंका कष्ट भोगकर कर्म क्षीण होनेके पश्चात् वे महापापी जीव पुनः इस मर्त्यलोकमें जन्म लेते हैं॥ १९—२०३॥

महापातकी पुरुष मृग, कुत्ते, सूअर और ऊँटकी योनिमें जाता है। मदिरा पीनेवाला गदहे, चाण्डाल तथा म्लेच्छोंमें जन्म पाता है। सोना चुरानेवाला कीड़े, मकोड़े और पतिंगे होते हैं तथा गुरुपत्नीसे गमन करनेवाला मनुष्य तृण एवं लताओंमें जन्म ग्रहण करता है। ब्रह्महत्यारा राजयक्ष्मा रोगी होता है, शराबी [illegible] हैं, सोना चुरानेवालेका [illegible] होता है तथा [illegible] रोगसे दूषित होता है [अथवा वह कोढ़ी हो जाता है]। जो जिस पापीसे सम्पर्क रखता है, [illegible] उसीके चिह्न [illegible] है। अन्न चुरानेवाला [illegible] होता है। [illegible] (चुगली आदि) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

समुद्रमें डूबे हुए अपने-आपको स्वयं ही निकालनेका प्रयत्न करे। भोगरूपी नदीका वेग अत्यन्त बढ़ जानेपर उससे बचनेके लिये अत्यन्त सुदृढ़ ज्ञानरूपी वृक्षका आश्रय लेना चाहिये ॥ ६—२१ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'आसन, प्राणायाम तथा प्रत्याहारका वर्णन' नामक तीन सौ तिहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३७३ ॥

तीन सौ चौहत्तरवाँ अध्याय

ध्यान

अग्निदेव कहते हैं—मुने! 'ध्यै—चिन्तायाम्'—यह धातु है। अर्थात् 'ध्यै' धातुका प्रयोग चिन्तनके अर्थमें होता है। ['ध्यै' से ही 'ध्यान' शब्दकी सिद्धि होती है] अतः स्थिरचित्तसे भगवान् विष्णुका बारंबार चिन्तन करना 'ध्यान' कहलाता है। समस्त उपाधियोंसे मुक्त मनसहित आत्माका ब्रह्मविचारमें परायण होना भी 'ध्यान' ही है। ध्येयरूप आधारमें स्थित एवं सजातीय प्रतीतियोंसे युक्त चित्तकी जो विजातीय प्रतीतियोंसे रहित प्रतीति होती है, उसको भी 'ध्यान' कहते हैं। जिस किसी प्रदेशमें भी ध्येय वस्तुके चिन्तनमें एकाग्र हुए चित्तको प्रतीतिके साथ जो अभेद भावना होती है, उसका नाम भी 'ध्यान' है। इस प्रकार ध्यानपरायण होकर जो अपने शरीरका परित्याग करता है, वह अपने कुल, स्वजन और मित्रोंका उद्धार करके स्वयं भगवत्स्वरूप हो जाता है। इस तरह जो प्रतिदिन एक या आधे मुहूर्ततक भी श्रद्धापूर्वक श्रीहरिका ध्यान करता है, वह भी जिस गतिको प्राप्त करता है, उसे सम्पूर्ण महायज्ञोंके द्वारा भी कोई नहीं पा सकता ॥ १—६ ॥

तत्त्ववेत्ता योगीको चाहिये कि वह ध्याता, ध्यान, ध्येय तथा ध्यानका प्रयोजन—इन चार वस्तुओंका ज्ञान प्राप्त करके योगका अभ्यास करे। योगाभ्याससे मोक्ष तथा आठ प्रकारके महान् ऐश्वर्यों (अणिमा आदि सिद्धियों) की प्राप्ति होती है। जो ज्ञान-वैराग्यसे सम्पन्न, श्रद्धालु, क्षमाशील, विष्णुभक्त तथा ध्यानमें सदा उत्साह रखनेवाला हो, ऐसा पुरुष ही 'ध्याता' माना गया है। 'व्यक्त और अव्यक्त, जो कुछ प्रतीत होता है, सब परम ब्रह्म परमात्माका ही स्वरूप है'—इस प्रकार विष्णुका चिन्तन करना 'ध्यान' कहलाता है। सकल परमात्मा श्रीहरिको सम्पूर्ण कलाओंसे युक्त तथा निष्कल जानना चाहिये। अणिमादि ऐश्वर्योंकी प्राप्ति तथा मोक्ष—ये ध्यानके प्रयोजन हैं। भगवान् विष्णु ही कर्मोंके फलकी प्राप्ति करानेवाले हैं, अतः उन परमेश्वरका ध्यान करना चाहिये। वे ही ध्येय हैं। चलते-फिरते, खड़े होते, सोते-जागते, आँख खोलते और आँख मीचते समय भी, शुद्ध या अशुद्ध अवस्थामें भी निरन्तर परमेश्वरका ध्यान करना चाहिये ॥ ७—११½ ॥

अपने देहरूपी मन्दिरके भीतर मनमें स्थित हृदयकमलरूपी पीठके मध्यभागमें भगवान् केशवकी स्थापना करके ध्यानयोगके द्वारा उनका पूजन करे। ध्यानयज्ञ श्रेष्ठ, शुद्ध और सब दोषोंसे रहित है। उसके द्वारा भगवान्‌का यजन करके मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर सकता है। बाह्यशुद्धिसे युक्त यज्ञोंद्वारा भी इस फलकी प्राप्ति नहीं हो सकती। हिंसा आदि दोषोंसे मुक्त होनेके कारण ध्यान अन्तःकरणकी शुद्धिका प्रमुख साधन और चित्तको वशमें करनेवाला है। इसलिये ध्यानयज्ञ सबसे श्रेष्ठ और मोक्षरूपी फल प्रदान करनेवाला है। अतः अशुद्ध एवं अनित्य बाह्य साधन यज्ञ आदि कर्मोंका त्याग करके योगका ही विशेषरूपसे अभ्यास करे। पहले विकारयुक्त, अव्यक्त तथा भोग्य भोगसे युक्त तीनों गुणोंका क्रमशः अपने हृदयमें ध्यान करे। तमोगुणको रजोगुणसे आच्छादित करके रजोगुणको सत्त्वगुणसे आच्छादित करे। इसके बाद पहले कृष्ण, फिर रक्त, तत्पश्चात् श्वेतवर्णके तीनों मण्डलोंका क्रमशः ध्यान करे। इस प्रकार जो गुणोंका ध्यान करता है, वह 'अशुद्ध ध्यान' है। उसका त्याग करके 'शुद्ध ध्यान'का चिन्तन करे। पुरुष (आत्मा) सत्त्वादि गुणोंसे अतीत चौबीस तत्त्वोंके ऊपर पचीसवाँ तत्त्व है, यह 'शुद्ध ध्यान' है। पुरुषके ऊपर उसकी नाभिसे प्रकट हुआ एक दिव्य कमल स्थित है, जो प्रभुका ऐश्वर्य ही जान पड़ता है। उसका विस्तार बारह अङ्गुल है। वह शुद्ध, विकसित तथा श्वेतवर्णका है। उसका मृणाल आठ अङ्गुलका है। उस कमलके आठ दलोंको अणिमा आदि आठ ऐश्वर्य समझना चाहिये। उसकी कर्णिकाको 'ज्ञान' तथा नालको 'उत्तम वैराग्य' कहा गया है। 'विष्णुधर्म' ही उसकी

साथ ऊपर-नीचे तथा इधर-उधर फैल रहा है, ऐसी भावना करे। महामुने! श्रेष्ठ साधकको तबतक रश्मिमण्डलका चिन्तन करते रहना चाहिये, जबतक कि वह अपने सम्पूर्ण शरीरको उसके भीतर भस्म होता न देखे। तदनन्तर उस धारणाका उपसंहार करे। इसके द्वारा द्विजगण शीत और श्लेष्मा आदि रोग तथा अपने पापोंका विनाश करते हैं (यह 'आग्नेयी धारणा' है) ॥ १–१० ॥

तत्पश्चात् धीरभावसे विचार करते हुए मस्तक और कण्ठमें अधोमुख होनेका चिन्तन करे। उस समय साधकका चित्त नष्ट नहीं होता। वह पुनः अपने अन्तःकरणद्वारा ध्यानमें लग जाय और ऐसी धारणा करे कि जलके अनन्त कण प्रकट होकर एक-दूसरेसे मिलकर हिमराशिको उत्पन्न करते हैं और उससे इस पृथ्वीपर जलकी धाराएँ प्रवाहित होकर सम्पूर्ण विश्वको आप्लावित कर रही हैं। इस प्रकार उस हिमस्पर्शसे शीतल अमृतस्वरूप जलके द्वारा ब्रह्मरन्ध्रसे लेकर मूलाधारपर्यन्त सम्पूर्ण चक्र मण्डलको आप्लावित करके सुषुम्णा नाड़ीके भीतर होकर पूर्ण चन्द्रमण्डलका चिन्तन करे। भूख-प्यास आदिसे क्रमसे प्राप्त होनेवाले क्लेशोंसे अत्यन्त पीड़ित होकर अपनी तुष्टिके लिये इस 'वारुणी धारणा'का चिन्तन करना चाहिये तथा उस समय आलस्य छोड़कर विष्णु-मन्त्रका जप करना भी उचित है। यह 'वारुणी धारणा' बतलायी गयी; अब 'ऐशानी धारणा'का वर्णन सुनिये ॥ ११–१५ ॥

प्राण और अपानका क्षय होनेपर हृदयाकाशमें ब्रह्ममय कमलके ऊपर विराजमान भगवान् विष्णुके प्रसाद (अनुग्रह)का तबतक चिन्तन करता रहे, जबतक कि सारी चिन्ताका नाश न हो जाय। तत्पश्चात् व्यापक ईश्वररूपसे स्थित होकर परम शान्त, निरञ्जन, निराभास एवं अर्द्धचन्द्रस्वरूप सम्पूर्ण महाभावका जप और चिन्तन करे। जबतक गुरुके मुखसे जीवात्माको ब्रह्मका ही अंश [या साक्षात् ब्रह्मरूप] नहीं जान लिया जाता, तबतक यह सम्पूर्ण चराचर जगत् असत्य होनेपर भी सत्यवत् प्रतीत होता है। उस परम तत्त्वका साक्षात्कार हो जानेपर ब्रह्मासे लेकर यह सारा चराचर जगत्, प्रमाता, मान और मेय (ध्याता, ध्यान और ध्येय)—सब कुछ ध्यानगत हृदयकमलमें लीन हो जाता है। जप, होम और पूजा आदिको माताकी दी हुई मिठाईकी भाँति मधुर एवं लाभकर जानकर विष्णुमन्त्रके द्वारा उसका श्रद्धापूर्वक अनुष्ठान करे। अब मैं 'अमृतमयी धारणा' बतला रहा हूँ—मस्तकगत नाड़ीके केन्द्रस्थानमें पूर्ण चन्द्रमाके समान आकारवाले कमलका ध्यान करे तथा प्रयत्नपूर्वक यह भावना करे कि 'आकाशमें दस हजार चन्द्रमाके समान प्रकाशमान एक पूर्ण चन्द्रमण्डल उदित हुआ है, जो कल्याणमय कल्लोलोंसे परिपूर्ण है।' ऐसा ही ध्यान अपने हृदय-कमलमें भी करे और उसके मध्यभागमें अपने शरीरको स्थित देखे। धारणा आदिके द्वारा साधकके सभी क्लेश दूर हो जाते हैं ॥ १६–२२ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'धारणानिरूपण' नामक तीन सौ पचहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३७५ ॥

तीन सौ छिहत्तरवाँ अध्याय

समाधि

अग्निदेव कहते हैं—जो चैतन्यस्वरूपसे युक्त और प्रशान्त समुद्रकी भाँति स्थिर हो, जिसमें आत्माके सिवा अन्य किसी वस्तुकी प्रतीति न होती हो, उस ध्यानको 'समाधि' कहते हैं। जो ध्यानके समय अपने चित्तको ध्येयमें लगाकर वायुहीन प्रदेशमें जलती हुई अग्निशिखाकी भाँति अविचल एवं स्थिरभावसे बैठा रहता है, वह योगी 'समाधिस्थ' कहा गया है। जो न सुनता है न सूँघता है, न देखता है न रसास्वादन करता है, न स्पर्शका अनुभव करता है न मनमें संकल्प उठने देता है, न अभिमान करता है और न बुद्धिसे दूसरी किसी वस्तुको जानता ही है, केवल काष्ठकी भाँति अविच्छिन्नभावसे ध्यानमें स्थित रहता है, ऐसे ईश्वरचिन्तनपरायण पुरुषको 'समाधिस्थ' कहते हैं। जो वायुरहित स्थानमें रखा हुआ दीपक कम्पित नहीं होता, वही उस समाधिस्थ योगीके लिये उपमा मानी गयी है। जो अपने अन्तःकरणमें श्रीविष्णुके ध्यानमें मग्न रहता है, उसके सामने अनेक दिव्य विघ्न उपस्थित होते हैं। वे सिद्धिकी सूचना देनेवाले हैं। साधक ऊपर [illegible] [illegible] है, उसके [illegible] पीड़ा होती है, अनेक प्रकारके धातुओंके दर्शन होते हैं तथा उसे अपने शरीरमें भी वेदनाका अनुभव होता है। देवता[illegible] [illegible] वर्णके [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

तथा नागवीथीके उत्तरमें जितने देवता गये हैं, उतने ही [अर्थात् अठासी हजार] मुनि और भी हैं, जो सब प्रकारके आरम्भसे रहित हैं। वे तपस्या, ब्रह्मचर्य, आसक्ति-त्याग तथा मेधाशक्तिके प्रभावसे कल्पपर्यन्त भिन्न-भिन्न दिव्यलोकोंमें निवास करते हैं ॥ २०—३५ ॥

वेदोंका निरन्तर स्वाध्याय, निष्काम यज्ञ, ब्रह्मचर्य, तप, इन्द्रिय-संयम, श्रद्धा, उपवास तथा सत्य भाषण—ये आत्मज्ञानके हेतु हैं। समस्त द्विजातियोंको उचित है कि वे सत्त्वगुणका आश्रय लेकर आत्मतत्त्वका श्रवण, मनन, निदिध्यासन एवं साक्षात्कार करें। जो इसे इस प्रकार जानते हैं, जो वानप्रस्थ आश्रमका आश्रय ले चुके हैं और परम श्रद्धासे युक्त हो सत्यकी उपासना करते हैं, वे क्रमशः अग्नि, दिन, शुक्लपक्ष, उत्तरायण, देवलोक, सूर्यमण्डल तथा विद्युत्के अभिमानी देवताओंके लोकोंमें जाते हैं। तदनन्तर मानस पुरुष वहाँ आकर उन्हें साथ ले जाकर ब्रह्मलोकका निवासी बना देता है, उनकी इस लोकमें पुनरावृत्ति नहीं होती। जो लोग यज्ञ, तप और दानसे स्वर्गलोकपर अधिकार प्राप्त करते हैं, वे क्रमशः धूम, रात्रि, कृष्णपक्ष, दक्षिणायन, पितृलोक तथा चन्द्रमाके अभिमानी देवताओंके लोकोंमें जाते हैं और फिर आकाश, वायु एवं जलके मार्गसे होते हुए इस पृथ्वीपर लौट आते हैं। इस प्रकार वे इस लोकमें जन्म लेते और मृत्युके बाद पुनः उसी मार्गसे यात्रा करते हैं। जो जीवात्मा इन दोनों मार्गोंको नहीं जानता, वह साँप, पतंग अथवा कीड़ा-मकोड़ा होता है। हृदयाकाशमें दीपककी भाँति प्रकाशमान ब्रह्मका ध्यान करनेसे जीव अमृतस्वरूप हो जाता है। जो न्यायसे धनका उपार्जन करनेवाला, तत्त्वज्ञानमें स्थित, अतिथि-प्रेमी, श्राद्धकर्ता तथा सत्यवादी है, वह गृहस्थ भी मुक्त हो जाता है ॥ ३६—४४ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'सृष्टिविनिरूपण' नामक तीन सौ छिहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३७६ ॥

तीन सौ सतहत्तरवाँ अध्याय

श्रवण एवं मननरूप ज्ञान

अग्निदेव कहते हैं—अब मैं संसाररूप अज्ञानजनित बन्धनसे छुटकारा पानेके लिये 'ब्रह्मज्ञान'का वर्णन करता हूँ। 'यह आत्मा परब्रह्म है और वह ब्रह्म मैं ही हूँ।' ऐसा निश्चय हो जानेपर मनुष्य मुक्त हो जाता है। घट आदि वस्तुओंकी भाँति यह देह दृश्य होनेके कारण आत्मा नहीं है; क्योंकि सो जानेपर अथवा मृत्यु हो जानेपर यह बात निश्चितरूपसे समझमें आ जाती है कि 'देहसे आत्मा भिन्न है'। यदि देह ही आत्मा होता तो सोने या मरनेके बाद भी पूर्ववत् व्यवहार करता, (आत्माके) 'अविकारी' आदि विशेषणोंके समान विशेषणसे युक्त निर्विकाररूपसे प्रतीत होता। नेत्र आदि इन्द्रियाँ भी आत्मा नहीं हैं, क्योंकि वे 'करण' हैं। यही हाल मन और बुद्धिका भी है। वे भी दीपककी भाँति प्रकाशके 'करण' हैं, अतः आत्मा नहीं हो सकते। 'प्राण' भी आत्मा नहीं है, क्योंकि सुषुप्तावस्थामें उसपर जडताका प्रभाव रहता है। जाग्रत् और स्वप्नावस्थामें प्राणके साथ चैतन्य मिला-सा रहता है, इसलिये उसका पृथक् बोध नहीं होता; परंतु सुषुप्तावस्थामें प्राण विज्ञानरहित है—यह [illegible] है। [illegible] आत्मा इन्द्रिय आदि रूप नहीं है। इन्द्रिय आदि [illegible] करणमात्र हैं। अहंकार भी आत्मा नहीं है; क्योंकि देहकी भाँति यह भी आत्मासे पृथक् उपलब्ध होता है। पूर्वोक्त देह आदिसे भिन्न यह आत्मा सबके हृदयमें अन्तर्यामीरूपसे स्थित है। यह रातमें जलते हुए दीपककी भाँति सबका द्रष्टा और भोक्ता है ॥ १—७ ॥

समाधिके आरम्भकालमें मुनिको इस प्रकार चिन्तन करना चाहिये—'ब्रह्मसे आकाश, आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल, जलसे पृथ्वी तथा पृथ्वीसे सूक्ष्म शरीर प्रकट हुआ है।' अपञ्चीकृत भूतोंसे पञ्चीकृत भूतोंकी उत्पत्ति हुई है। फिर स्थूल शरीरका ध्यान करके ब्रह्ममें उसका लय [illegible] करे। [illegible] उनके कार्योंसे [illegible] है। आत्माका यह स्थूल शरीर [illegible] कल्पित है। इन्द्रियोंसे [illegible] जो [illegible] होता है, [illegible] पुरुष 'जाग्रत्-आत्मा' मानते हैं। [illegible] अभिमानी आत्माका नाम 'विश्व' है। [illegible] ([illegible] आत्मा और उसका अभिमानी [illegible]) [illegible] है। [illegible] और उसका [illegible] है। [illegible] ([illegible] इन्द्रिय, पञ्चप्राण [illegible] मन और बुद्धि) ।

और भयसे रहित ज्योतिर्मय परब्रह्म हूँ । मैं मिति (मान) और माता (माप करनेवाले) से भिन्न ज्योतिर्मय परब्रह्म हूँ । मैं साक्षित्व आदिसे रहित ज्योतिर्मय परब्रह्म हूँ । मैं कार्य-कारणसे भिन्न ज्योतिर्मय परब्रह्म हूँ । मैं देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण और अहंकाररहित तथा जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति आदिसे मुक्त तुरीय ब्रह्म हूँ । मैं नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सत्य, आनन्द और अद्वैतरूप ब्रह्म हूँ । मैं विज्ञानयुक्त ब्रह्म हूँ । मैं सर्वथा मुक्त और प्रणवरूप हूँ । मैं ज्योतिर्मय परब्रह्म हूँ और मोक्ष देनेवाला समाधिरूप परमात्मा भी मैं ही हूँ ॥ १—२३ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'ब्रह्मज्ञाननिरूपण' नामक तीन सौ अठहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३७८ ॥

तीन सौ उन्यासीवाँ अध्याय

भगवत्स्वरूपका वर्णन तथा ब्रह्मभावकी प्राप्तिका उपाय

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठजी ! धर्मात्मा पुरुष यज्ञके द्वारा देवताओंको, तपस्याद्वारा विराट्के पदको, कर्मके संन्यासद्वारा ब्रह्मपदको, वैराग्यसे प्रकृतिमें लयको और ज्ञानसे कैवल्यपद (मोक्ष) को प्राप्त होता है—इस प्रकार ये पाँच गतियाँ मानी गयी हैं । प्रसन्नता, संताप और विषाद आदिसे निवृत्त होना 'वैराग्य' है । जो कर्म किये जा चुके हैं तथा जो अभी नहीं किये गये हैं, उन सब [की आसक्ति, फलेच्छा और संकल्प] का परित्याग 'संन्यास' कहलाता है । ऐसा हो जानेपर अव्यक्तसे लेकर विशेषपर्यन्त सभी पदार्थोंके प्रति अपने मनमें कोई विकार नहीं रह जाता । जड और चेतनकी भिन्नताका ज्ञान (विवेक) होनेसे ही 'परमार्थज्ञान'की प्राप्ति बतलायी जाती है । परमात्मा सबके आधार हैं, वे ही परमेश्वर हैं । वेदों और वेदान्तों (उपनिषदों) में 'विष्णु' नामसे उनका यशोगान किया जाता है । वे यज्ञोंके स्वामी हैं । प्रवृत्तिमार्गसे चलनेवाले लोग यज्ञपुरुषके रूपमें उनका यजन करते हैं तथा निवृत्तिमार्गके पथिक ज्ञानयोगके द्वारा उन ज्ञानस्वरूप परमात्माका साक्षात्कार करते हैं । ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत आदि वचन उन पुरुषोत्तमके ही स्वरूप हैं ॥ १—६ ॥

महामुने ! उनकी प्राप्तिके दो हेतु बताये गये हैं—'ज्ञान' और 'कर्म' । 'ज्ञान' दो प्रकारका है—'आगमजन्य' और 'विवेकज' । शब्दब्रह्म (वेदादि शास्त्र और प्रणव) का बोध 'आगमजन्य' है तथा परब्रह्मका ज्ञान 'विवेकज' ज्ञान है । 'ब्रह्म' दो प्रकारसे जाननेयोग्य है—'शब्दब्रह्म' और 'परब्रह्म' । वेदादि विद्याको 'शब्दब्रह्म' या 'अपरब्रह्म' कहते हैं और सत्यस्वरूप अक्षरतत्त्व 'परब्रह्म' कहलाता है । यह परब्रह्म ही 'भगवत्' शब्दका मुख्य वाच्यार्थ है । पूजा (सम्मान) आदि अन्य अर्थोंमें जो उसका प्रयोग होता है, वह औपचारिक (गौण) है । महामुने ! 'भगवत्' शब्दमें जो 'भकार' है, उसके दो अर्थ हैं—पोषण करनेवाला और सबका आधार तथा 'गकार'का अर्थ है—नेता (कर्म फलकी प्राप्ति करानेवाला), गमयिता (प्रेरक) और स्रष्टा (सृष्टि करनेवाला) । सम्पूर्ण ऐश्वर्य, पराक्रम (अथवा धर्म), यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य—इन छःका नाम 'भग' है । विष्णुमें सम्पूर्ण भूत निवास करते हैं । वे भगवान् सबके धारक तथा ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव—इन तीन रूपोंमें विराजमान हैं । अतः श्रीहरिमें ही 'भगवान्' पद मुख्यवृत्तिसे विद्यमान है, अन्य किसीके लिये तो उसका उपचार (गौण वृत्ति) से ही प्रयोग होता है । जो सम्पूर्ण प्राणियोंके उत्पत्ति विनाश, आवागमन तथा विद्या-अविद्याको जानता है, वही 'भगवान्' कहलानेयोग्य है । त्याग करनेयोग्य दुर्गुण आदिको छोड़कर सम्पूर्ण ज्ञान, शक्ति, परम ऐश्वर्य, वीर्य तथा समस्त तेज—ये 'भगवत्' शब्दके वाच्यार्थ हैं ॥ ७—१४ ॥

पूर्वकालमें राजा खेदिध्वजने खाण्डिक्य जनकको इस प्रकार उपदेश दिया था—'अनात्मामें जो आत्मबुद्धि होती है, अपनेसे भिन्नमें अपनेपनकी भावना होती है, वही अविद्याजनित संसार-बन्धनका कारण है । इस अविद्याकी 'अहंता' और 'ममता'—दो रूपोंमें स्थिति है । देहाभिमानी जीव मोहरूप अन्धकारसे आच्छादित हो, कुत्सित बुद्धिके कारण इस पाञ्चभौतिक शरीरमें यह दृढ भावना कर लेता है कि 'मैं ही यह देह हूँ ।' इसी प्रकार इस शरीरसे उत्पन्न किये हुए पुत्र-पौत्र आदिमें 'ये मेरे हैं'—ऐसी निश्चित भावना बना लेता है । किंतु पुरुष आत्मस्वरूप शरीरसे सम्बन्ध रखता है—उनमें कभी भी राग-द्वेषका बन्धन नहीं होता । मनुष्य अपने शरीरके मङ्गलके लिये ही सारे कर्म करता है; किंतु जब पुरुष

शरीर भिन्न है, तो वह सारा कर्म फल अज्ञानका ही कारण होता है। वास्तवमें तो आत्मा निर्वाणमय (शान्त), ज्ञानमय तथा निर्मल है। दुःखानुभवरूप जो धर्म है, वह प्रकृतिका है, आत्माका नहीं, जैसे जल स्वयं तो अग्निसे असङ्ग है, किंतु आगपर रक्खी हुई बटलोईके संसर्गसे उसमें तापजनित खलखलाहट आदिके शब्द होते हैं। महामुने! इसी प्रकार आत्मा भी प्रकृतिके सङ्गसे अहंता ममता आदि दोष स्वीकार करके प्राकृत धर्मोंको ग्रहण करता है, वास्तवमें तो वह उनसे सर्वथा भिन्न और अविनाशी है। विषयोंमें आसक्त हुआ मन बन्धनका कारण होता है और वही जब विषयोंसे निवृत्त हो जाता है तो ज्ञान प्राप्तिमें सहायक होता है। अतः मनको विषयोंसे हटाकर ब्रह्मस्वरूप श्रीहरिका स्मरण करना चाहिये। मुने! जैसे चुम्बक पत्थर लोहेको अपनी ओर खींच लेता है, उसी प्रकार जो ब्रह्मका ध्यान करता है, उसे वह ब्रह्म अपनी ही शक्तिसे अपने स्वरूपमें मिला लेता है। अपने प्रयत्नकी अपेक्षासे जो मनकी विशिष्ट गति होती है, उसका ब्रह्मसे संयोग होना ही 'योग' कहलाता है। जो पुरुष स्थिरभावसे समाधिमें स्थित होता है, वह परब्रह्मको प्राप्त होता है॥ १५—२५॥

"अतः यम, नियम, प्रत्याहार, प्राणजय, प्राणायाम, इन्द्रियोंको विषयोंकी ओरसे हटाने तथा उन्हें अपने वशमें करने आदि उपायोंके द्वारा चित्तको किसी शुभ आश्रयमें स्थापित करे। 'ब्रह्म' ही चित्तका शुभ आश्रय है। वह 'मूर्त' और 'अमूर्त'रूपसे दो प्रकारका है। सनक-सनन्दन आदि मुनि ब्रह्मभावनासे युक्त हैं तथा देवताओंसे लेकर स्थावर-जङ्गम पर्यन्त सम्पूर्ण प्राणी कर्म भावनासे युक्त हैं। हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) आदिमें ब्रह्मभावना और कर्मभावना दोनों ही हैं। इस तरह यह तीन प्रकारकी भावना बतायी गयी है। 'सम्पूर्ण विश्व ब्रह्म है'—इस भावसे ब्रह्मकी उपासना की जाती है। जहाँ सब भेद शान्त हो जाते हैं, जो सत्तामात्र और वाणीका अगोचर है तथा जिसे स्वसंवेद्य (स्वयं ही अनुभव करनेयोग्य) माना गया है, वही 'ब्रह्मज्ञान' है। वही रूपहीन विष्णुका उत्कृष्ट स्वरूप है, जो अजन्मा और अविनाशी है। अमूर्तरूपका ध्यान पहले कठिन होता है, अतः मूर्त आदिका ही चिन्तन करे। ऐसा करनेवाला मनुष्य भगवद्भावको प्राप्त हो परमात्माके साथ एकीभूत—अभिन्न हो जाता है। भेदकी प्रतीति तो अज्ञानसे ही होती है"॥ २६—३२॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'ब्रह्मज्ञाननिरूपण' नामक तीन सौ उन्यासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३७९॥

तीन सौ अस्सीवाँ अध्याय

जडभरत और सौवीर-नरेशका संवाद—अद्वैत ब्रह्मविज्ञानका वर्णन

अब मैं उस 'अद्वैत ब्रह्मविज्ञान'का वर्णन करूँगा, जिसे भरतने (सौवीरराजको) बतलाया था। प्राचीनकालकी बात है, राजा भरत शालग्रामक्षेत्रमें रहकर भगवान् वासुदेवकी पूजा आदि करते हुए तपस्या कर रहे थे। उनका एक मृगके प्रति आसक्ति हो गयी थी, इसलिये अन्तकालमें उसीका स्मरण करते हुए प्राण त्यागनेके कारण उन्हें मृग होना पड़ा। मृगयोनिमें भी वे 'जातिस्मर' हुए—उन्हें पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण रहा। अतः उस मृगशरीरका परित्याग करके वे स्वयं ही योगबलसे एक ब्राह्मणके रूपमें प्रकट हुए। उन्हें अद्वैत ब्रह्मका पूर्ण बोध था। वे साक्षात् ब्रह्मस्वरूप थे, तो भी लोकमें जडवत् (ज्ञानशून्य मूककी भाँति) व्यवहार करते थे। उन्हें हृष्ट-पुष्ट देखकर सौवीर-नरेशके सेवकने बेगारमें ढोनेके योग्य समझा [और राजाकी पालकी ढोनेमें नियुक्त कर दिया]। सेवकके कहनेसे वे सौवीरराजकी पालकी ढोने लगे। यद्यपि वे ज्ञानी थे, तथापि बेगारमें पकड़े जानेपर अपने प्रारब्धभोगका क्षय करनेके लिये राजाका भार वहन करने लगे; परंतु उनकी गति मन्द थी। वे पालकीमें पीछेकी ओर लगे थे तथा उनके सिवा दूसरे जितने कहार थे, वे सब-के-सब तेज चल रहे थे। राजाने देखा, 'अन्य कहार शीघ्रगामी हैं तथा शीघ्रगतिसे चल रहे हैं। यह जो नया आया है, इसकी गति बहुत मन्द है।' तब वे बोले॥ १—५॥

राजाने कहा—अरे! क्या तू थक गया? अभी तो तूने थोड़ी ही दूरतक मेरी पालकी ढोयी है। क्या परिश्रम नहीं सहा जाता? क्या तू मोटा-ताजा नहीं है? देखनेमें तो खूब मुस्टंड जान पड़ता है॥ ६॥

ब्राह्मणने कहा—राजन्! न मैं मोटा हूँ, न मैंने तुम्हारी पालकी ढोयी है, न मुझे थकावट आयी है, न परिश्रम करना पड़ा है और न मुझपर तुम्हारा कुछ भार

किंतु ये 'अहम्' (मैं) पदके वाच्यार्थ नहीं हैं, क्योंकि ये व्यक्ते-सब शब्दोच्चारणके साधनमात्र हैं। किन कारणों या उक्तियोंसे जिह्वा कहती है कि "वाणी ही 'अहम्' (मैं) हूँ।" यद्यपि जिह्वा यह कहती है, तथापि 'यदि मैं वाणी नहीं हूँ' ऐसा कहा जाय तो यह कदापि मिथ्या नहीं है। राजन्! मस्तक और गुदा आदिके रूपमें जो शरीर है, वह पुरुष (आत्मा) से सर्वथा भिन्न है, ऐसी दशामें मैं किस अवयवके लिये 'अहम्' संज्ञाका प्रयोग करूँ? भूपालशिरोमणे! यदि मुझ (आत्मा) से भिन्न कोई भी अपनी पृथक् सत्ता रखता हो तो 'यह मैं हूँ', 'यह दूसरा है'—ऐसी बात भी कही जा सकती है। वास्तवमें पर्वत, पशु तथा वृक्ष आदिका भेद सत्य नहीं है। शरीरदृष्टिसे ये जितने भी भेद प्रतीत हो रहे हैं, सब के-सब कर्मजन्य हैं। संसारमें जिसे 'राजा' या 'राजसेवक' कहते हैं, वह तथा और भी इस तरह की जितनी संज्ञाएँ हैं, वे कोई भी निर्विकार सत्य नहीं हैं। भूपाल! तुम सम्पूर्ण लोकके राजा हो, अपने पिताके पुत्र हो, शत्रुके लिये शत्रु हो, धर्मपत्नीके पति हो और पुत्रके पिता हो—इतने नामोंके होते हुए मैं तुम्हें क्या कहकर पुकारूँ? पृथ्वीनाथ! क्या यह मस्तक तुम हो? किंतु जैसे मस्तक तुम्हारा है, वैसे ही उदर भी तो है! [फिर उदर क्यों नहीं हो?] तो क्या इन पैर आदि अङ्गोंमेंसे तुम कोई हो? नहीं, तो ये सब तुम्हारे क्या हैं? महाराज! इन समस्त अवयवोंसे तुम पृथक् हो, अतः इनसे अलग होकर ही अच्छी तरह विचार करो कि 'वास्तवमें मैं कौन हूँ'॥ २३-३७½॥

यह सुनकर राजाने उन भगवत्स्वरूप अवधूत ब्राह्मण-से कहा॥ ३८॥

राजा बोले—ब्रह्मन्! मैं आत्मकल्याणके लिये उद्यत होकर महर्षि कपिलके पास कुछ पूछनेके लिये जा रहा था। आप भी मेरे लिये इस पृथ्वीपर महर्षि कपिलके ही अंश हैं, अतः आप ही मुझे ज्ञान दें। जिससे ज्ञानरूपी महासागरकी प्राप्ति होकर परम कल्याणकी सिद्धि हो, वह उपाय मुझे बताइये॥ ३९-४०॥

ब्राह्मणने कहा—राजन्! तुम फिर कल्याणका ही उपाय पूछने लगे। 'परमार्थ क्या है?' यह नहीं पूछते। 'परमार्थ' ही सब प्रकारके कल्याणोंका स्वरूप है। मनुष्य देवताओंकी आराधना करके धन-सम्पत्तिकी इच्छा करता है, पुत्र और राज्य पाना चाहता है। किंतु सौवीरनरेश! तुम्हीं बताओ, क्या यही उसका श्रेय है? (इसीसे उसका कल्याण होगा?) विवेकी पुरुषकी दृष्टिमें तो परमात्माकी प्राप्ति ही श्रेय है; यज्ञादिकी क्रिया तथा द्रव्यकी सिद्धिको वह श्रेय नहीं मानता। परमात्मा और आत्माका संयोग—उनके एकत्वका बोध ही 'परमार्थ' माना गया है। परमात्मा एक अर्थात् अद्वितीय है। वह सर्वत्र समानरूपसे व्यापक, शुद्ध, निर्गुण, प्रकृतिसे परे, जन्म-वृद्धि आदिसे रहित, सर्वगत, अविनाशी, उत्कृष्ट, ज्ञानस्वरूप, गुण-जाति आदिके संसर्गसे रहित एवं विभु है। अब मैं तुम्हें निदाघ और ऋतु (ऋभु)का संवाद सुनाता हूँ, ध्यान देकर सुनो—ऋतु ब्रह्माजीके पुत्र और ज्ञानी थे। पुलस्त्यनन्दन निदाघने उनकी शिष्यता ग्रहण की। ऋतुसे विद्या पढ़ लेनेके पश्चात् निदाघ देविका नदीके तटपर एक नगरमें जाकर रहने लगे। ऋतुने अपने शिष्यके निवासस्थानका पता लगा लिया था। हजार दिव्य वर्ष बीतनेके पश्चात् एक दिन ऋतु निदाघको देखनेके लिये गये। उस समय निदाघ बलिवैश्वदेवके अनन्तर अन्न-भोजन करके अपने शिष्यसे कह रहे थे—'भोजनके बाद मुझे तृप्ति हुई है, क्योंकि भोजन ही अक्षय तृप्ति प्रदान करनेवाला है।' [यह कहकर वे तत्काल आये हुए अतिथिसे भी तृप्तिके विषयमें पूछने लगे]॥ ४१-४८॥

तब ऋतुने कहा—ब्राह्मण! जिसको भूख लगी होती है, उसीको भोजनके पश्चात् तृप्ति होती है। मुझे तो कभी भूख ही नहीं लगी, फिर मेरी तृप्तिके विषयमें क्यों पूछते हो? भूख और प्यास देहके धर्म हैं। मुझ आत्माका ये कभी स्पर्श नहीं करते। तुमने पूछा है, इसलिये कहता हूँ। मुझे सदा ही तृप्ति बनी रहती है। पुरुष (आत्मा) आकाशकी भाँति सर्वत्र व्याप्त है और मैं वह प्रत्यगात्मा ही हूँ; अतः तुमने जो मुझसे यह पूछा कि 'आप कहाँसे आते हैं?' यह प्रश्न कैसे सार्थक हो सकता है? मैं न कहीं जाता हूँ, न आता हूँ और न किसी एक स्थानमें रहता हूँ। न तुम मुझसे भिन्न हो, न मैं तुमसे अलग हूँ। जैसे मिट्टीका घर मिट्टीसे लीपनेपर सुदृढ होता है, उसी प्रकार यह पार्थिव देह ही पार्थिव अन्नके परमाणुओंसे पुष्ट होता है। ब्रह्मन्! मैं तुम्हारा आचार्य ऋतु हूँ और तुम्हें ज्ञान देनेके लिये यहाँ आया हूँ। अब जाऊँगा। तुम्हें परमार्थतत्त्वका उपदेश कर दिया। इस प्रकार तुम इस सम्पूर्ण जगत्‌को एकमात्र वासुदेवसंज्ञक परमात्माका ही स्वरूप समझो; इसमें भेदका सर्वथा अभाव है॥ ४९-५५॥

तत्पश्चात् एक हजार वर्ष व्यतीत होनेपर ऋतु पुनः

सब भूत प्राणी जागते हैं, अर्थात् जो विषय भोग उनके सामने दिनके समान प्रकट हैं, वह ज्ञानी मुनिके लिये रात्रिके ही समान है । जो अपने-आपमें ही सन्तुष्ट है, उसके लिये कोई कर्तव्य शेष नहीं है। इस संसारमें उस आत्माराम पुरुषको न तो कुछ करनेसे प्रयोजन है और न न करनेसे ही। महाबाहो ! जो गुण विभाग और कर्म विभागके तत्त्वको जानता है, वह यह समझकर कि सम्पूर्ण गुण गुणोंमें ही बरत रहे हैं, कहीं आसक्त नहीं होता । अर्जुन ! तुम ज्ञानरूपी नौकाका सहारा लेनेसे निश्चय ही सम्पूर्ण पापोंको तर जाओगे। ज्ञानरूपी अग्नि सब कर्मोंको जलाकर भस्म कर डालती है। जो सब कर्मोंको परमात्मामें अर्पण करके आसक्ति छोड़कर कर्म करता है, वह पापसे लिप्त नहीं होता—ठीक उसी तरह जैसे कमलका पत्ता पानीसे लिप्त नहीं होता। जिसका अन्तःकरण योगयुक्त है—परमानन्दमय परमात्मामें स्थित है तथा जो सर्वत्र समान दृष्टि रखनेवाला है, वह योगी आत्माको सम्पूर्ण भूतोंमें तथा सम्पूर्ण भूतोंको आत्मामें देखता है । योगभ्रष्ट पुरुष शुद्ध आचार विचारवाले श्रीमानों (धनवानों) के घरमें जन्म लेता है । तात ! कल्याणमय शुभ कर्मोंका अनुष्ठान करनेवाला पुरुष कभी दुर्गतिको नहीं प्राप्त होता ॥ ९-११½ ॥

"मेरी यह त्रिगुणमयी माया अलौकिक है; इसका पार पाना बहुत कठिन है । जो केवल मेरी शरण लेते हैं, वे ही इस मायाको लाँघ पाते हैं । भरतश्रेष्ठ ! आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी—ये चार प्रकारके मनुष्य मेरा भजन करते हैं । इनमेंसे ज्ञानी तो मुझसे एकीभूत होकर स्थित रहता है । अविनाशी परम तत्त्व (सच्चिदानन्दमय परमात्मा) 'ब्रह्म' है, स्वभाव अर्थात् जीवात्माको 'अध्यात्म' कहते हैं, भूतोंकी उत्पत्ति और वृद्धि करनेवाले विसर्गका (यज्ञ दान आदिके निमित्त किये जानेवाले द्रव्यादिके त्यागका) नाम 'कर्म' है, विनाशशील पदार्थ 'अधिभूत' है तथा पुरुष (हिरण्यगर्भ) 'अधिदैवत' है । देहधारियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन ! इस देहके भीतर मैं वासुदेव ही 'अधियज्ञ' हूँ । अन्तकालमें मेरा स्मरण करनेवाला पुरुष मेरे स्वरूपको प्राप्त होता है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है । मनुष्य अन्तकालमें जिस जिस भावका स्मरण करते हुए अपने देहका परित्याग करता है, उसीको वह प्राप्त होता है । मृत्युके समय जो प्राणोंको भौंहोंके मध्यमें स्थापित करके 'ओम्'—इस एकाक्षर ब्रह्मका उच्चारण करते हुए देहत्याग करता है, वह मुझ परमेश्वरको ही प्राप्त करता है ।

ब्रह्माजीसे लेकर तुच्छ कीटतक जो कुछ दिखायी देता है, सब मेरी ही विभूतियाँ हैं । जितने भी श्रीसम्पन्न और शक्तिशाली प्राणी हैं, सब मेरे अंश हैं । 'मैं अकेला ही सम्पूर्ण विश्वके रूपमें स्थित हूँ'—ऐसा जानकर मनुष्य मुक्त हो जाता है ॥ १२—१९ ॥

"यह शरीर 'क्षेत्र' है, जो इसे जानता है, उसको 'क्षेत्रज्ञ' कहा गया है । 'क्षेत्र' और 'क्षेत्रज्ञ'को जो यथार्थरूपसे जानना है, वही मेरे मतमें 'ज्ञान' है । पाँच महाभूत, अहंकार, बुद्धि, अव्यक्त (मूलप्रकृति), दस इन्द्रियाँ, एक मन, पाँच इन्द्रियोंके विषय, इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, स्थूल शरीर, चेतना और धृति—यह विकारोंसहित 'क्षेत्र' है, जिसे यहाँ संक्षेपसे बतलाया गया है । अभिमानशून्यता, दम्भका अभाव, अहिंसा, क्षमा, सरलता, गुरुसेवा, बाहर भीतरकी शुद्धि, अन्तःकरणकी स्थिरता, मन, इन्द्रिय एवं शरीरका निग्रह, विषयभोगोंमें आसक्तिका अभाव, अहंकारका न होना, जन्म, मृत्यु, जरा तथा रोग आदिमें दुःखरूप दोषका बारंबार विचार करना, पुत्र, स्त्री और गृह आदिमें आसक्ति और ममताका अभाव, प्रिय और अप्रियकी प्राप्तिमें सदा ही समानचित्त रहना (हर्ष शोकके वशीभूत न होना); मुझ परमेश्वरमें अनन्य भावसे अविचल भक्तिका होना, पवित्र एवं एकान्त स्थानमें रहनेका स्वभाव, विषयी मनुष्योंके समुदायमें प्रेमका अभाव, अध्यात्म ज्ञानमें स्थिति तथा तत्त्व ज्ञानस्वरूप परमेश्वरका निरन्तर दर्शन—यह सब 'ज्ञान' कहा गया है और जो इसके विपरीत है, वह 'अज्ञान' है ॥ २०—२७ ॥

"अब जो 'ज्ञेय' अर्थात् जाननेके योग्य है, उसका वर्णन करूँगा, जिसको जानकर मनुष्य अमृतस्वरूप परमात्माको प्राप्त होता है। 'ज्ञेय तत्त्व' अनादि है और 'परब्रह्म'के नामसे प्रसिद्ध है । उसे न 'सत्' कहा जा सकता है, न 'असत्' । (वह इन दोनोंसे विलक्षण है ।) उसके सब ओर हाथ-पैर हैं, सब ओर नेत्र, सिर और मुख हैं तथा सब ओर कान हैं। वह संसारमें सबको व्याप्त करके स्थित है । सब इन्द्रियोंसे रहित होकर भी समस्त इन्द्रियोंके विषयोंको जाननेवाला है । सबका धारण-पोषण करनेवाला होकर भी आसक्तिरहित है तथा गुणोंका भोक्ता होकर भी 'निर्गुण' है । वह परमेश्वर सम्पूर्ण प्राणियोंके बाहर और भीतर विद्यमान है । 'चर' और 'अचर' सब उसीके स्वरूप हैं । सूक्ष्म होनेके कारण वह 'अविज्ञेय' है । वही निकट है और वही दूर । यद्यपि वह विभागरहित है (आकाशकी भाँति अखण्डरूपसे सर्वत्र परिपूर्ण

है); तथापि सम्पूर्ण भूतोंमें विभक्त (पृथक्-पृथक् स्थित हुआ सा प्रतीत होता है । उसे विष्णुरूपसे सब प्राणियोंका पोषक, रुद्ररूपसे सबका संहारक और ब्रह्माके रूपसे सबको उत्पन्न करनेवाला जानना चाहिये । वह सूर्य आदि ज्योतियोंकी भी ज्योति (प्रकाशक) है । उसकी स्थिति अज्ञानमय अन्धकारसे परे बतायी जाती है । वह परमात्मा ज्ञानस्वरूप, जाननेके योग्य, तत्त्वज्ञानसे प्राप्त होनेवाला और सबके हृदयमें स्थित है ॥ २८—३१ ॥

"उस परमात्माको कितने ही मनुष्य सूक्ष्मबुद्धिसे ध्यानके द्वारा अपने अन्तःकरणमें देखते हैं । दूसरे लोग सांख्ययोगके द्वारा तथा कुछ अन्य मनुष्य कर्मयोगके द्वारा देखते हैं । इनके अतिरिक्त जो मन्द बुद्धिवाले साधारण मनुष्य हैं, वे स्वयं इस प्रकार न जानते हुए भी दूसरे ज्ञानी पुरुषोंसे सुनकर ही उपासना करते हैं । वे सुनकर उपासनामें लगनेवाले पुरुष भी मृत्युरूप संसार-सागरसे निश्चय ही पार हो जाते हैं । सत्त्वगुणसे ज्ञान, रजोगुणसे लोभ तथा तमोगुणसे प्रमाद, मोह और अज्ञान उत्पन्न होते हैं । गुण ही गुणोंमें बर्तते हैं—ऐसा समझकर जो स्थिर रहता है, अपनी स्थितिसे विचलित नहीं होता, जो मान-अपमानमें तथा मित्र और शत्रुपक्षमें भी समानभाव रखता है, जिसने कर्तृत्वके अभिमानको त्याग दिया है, वह 'निर्गुण' (गुणातीत) कहलाता है । जिसकी जड़ ऊपरकी ओर [अर्थात् परमात्मा है] और 'शाखा' नीचेकी ओर [यानी ब्रह्माजी आदि] हैं, उस संसाररूपी अश्वत्थ वृक्षको अनादि प्रवाहरूपसे 'अविनाशी' कहते हैं । वेद उसके पत्ते हैं । जो उस वृक्षको मूलसहित यथार्थरूपसे जानता है, वही वेदके तात्पर्यको जाननेवाला है । इस संसारमें प्राणियोंकी सृष्टि दो प्रकारकी है—एक 'दैवी'—देवताओंके-से स्वभाववाली और दूसरी 'आसुरी'—असुरोंके-से स्वभाववाली । अतः मनुष्योंके अहिंसा आदि सद्गुण और क्षमा 'दैवी सम्पत्ति' है । 'आसुरी सम्पत्ति'से जिसकी उत्पत्ति हुई है, उसमें न शौच होता है, न सदाचार । क्रोध, लोभ और काम—ये नरक देनेवाले हैं, अतः इन तीनोंको त्याग देना चाहिये । सत्त्व आदि गुणोंके भेदसे यज्ञ, तप और दान तीन प्रकारके माने गये हैं [सात्त्विक, राजस और तामस] । 'सात्त्विक' अन्न आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य और सुखकी वृद्धि करनेवाला है । तीखा और रूखा अन्न 'राजस' है । वह दुःख, शोक और रोग उत्पन्न करनेवाला है । अपवित्र, जूठा, दुर्गन्धयुक्त और नीरस आदि अन्न 'तामस' माना गया है । 'यज्ञ करना कर्तव्य है'—यों समझकर निष्कामभावसे विधिपूर्वक किया जानेवाला यज्ञ 'सात्त्विक' है । फलकी इच्छासे किया हुआ यज्ञ 'राजस' और दम्भके लिये किया जानेवाला यज्ञ 'तामस' है । श्रद्धा और मन्त्र आदिसे युक्त एवं विधि प्रतिपादित जो देवता आदिकी पूजा तथा अहिंसा आदि तप है, उन्हें 'शारीरिक तप' कहते हैं । अब वाणीसे किये जानेवाले तपको बताया जाता है । जिससे किसीको उद्वेग न हो—ऐसा सत्य वचन, स्वाध्याय और जप—यह 'वाङ्मय तप' है । चित्तशुद्धि, मौन और मनोनिग्रह—ये 'मानस तप' हैं । कामनारहित तप 'सात्त्विक' फल आदिके लिये किया जानेवाला तप 'राजस' तथा दूसरोंको पीड़ा देनेके लिये किया हुआ तप 'तामस' कहलाता है । उत्तम देश, काल और पात्रमें दिया हुआ दान 'सात्त्विक' है, प्रत्युपकारके लिये दिया जानेवाला दान 'राजस' है तथा अयोग्य देश, काल आदिमें अनादरपूर्वक दिया हुआ दान 'तामस' कहा गया है । 'ॐ', 'तत्,' और 'सत्'—ये परब्रह्म परमात्माके तीन प्रकारके नाम बताये गये हैं । यज्ञ-दान आदि कर्म मनुष्योंको भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं । जिन्होंने कामनाओंका त्याग नहीं किया है, उन सकामी पुरुषोंके कर्मका बुरा, भला और मिला हुआ—तीन प्रकारका फल होता है । यह फल मृत्युके पश्चात् प्राप्त होता है । संन्यासी (त्यागी पुरुषों) के कर्मोंका कभी कोई फल नहीं होता । मोहवश जो कर्मोंका त्याग किया जाता है, वह 'तामस' है, शरीरको कष्ट पहुँचनेके भयसे किया हुआ त्याग 'राजस' है तथा कामनाके त्यागसे सम्पन्न होनेवाला त्याग 'सात्त्विक' कहलाता है । अधिष्ठान, कर्ता, भिन्न भिन्न करण, नाना प्रकारकी अलग-अलग चेष्टाएँ तथा दैव—ये पाँच ही कर्मके कारण हैं । सब भूतोंमें एक परमात्माका ज्ञान 'सात्त्विक', भेद ज्ञान 'राजस' और अतात्त्विक ज्ञान 'तामस' है । निष्काम भावसे किया हुआ कर्म 'सात्त्विक', कामनाके लिये किया जानेवाला 'राजस' तथा मोहवश किया हुआ कर्म 'तामस' है । कार्यकी सिद्धि और असिद्धिमें सम (निर्विकार) रहनेवाला कर्ता 'सात्त्विक', हर्ष और शोक करनेवाला 'राजस' तथा शठ और आलसी कर्ता 'तामस' कहलाता है । कार्य अकार्यके तत्त्वको समझनेवाली बुद्धि 'सात्त्विकी', उसे ठीक-ठीक न जाननेवाली बुद्धि 'राजसी' तथा विपरीत धारणा रखनेवाली बुद्धि 'तामसी' मानी गयी है । मनको धारण करनेवाली धृति 'सात्त्विकी', प्रीतिकी कामनावाली धृति 'राजसी' तथा शोक आदिको धारण करनेवाली धृति

सब भूत प्राणी जागते हैं, अर्थात् जो विषय-भोग उनके सामने दिनके समान प्रकट हैं, वह ज्ञानी मुनिके लिये रात्रिके ही समान है। जो अपने-आपमें ही संतुष्ट है, उसके लिये कोई कर्तव्य शेष नहीं है। इस संसारमें उस आत्माराम पुरुषको न तो कुछ करनेसे प्रयोजन है और न न करनेसे ही। महाबाहो! जो गुण-विभाग और कर्म-विभागके तत्त्वको जानता है, वह यह समझकर कि सम्पूर्ण गुण गुणोंमें ही बरत रहे हैं, कहीं आसक्त नहीं होता। अर्जुन! तुम ज्ञानरूपी नौकाका सहारा लेनेसे निश्चय ही सम्पूर्ण पापोंको तर जाओगे। ज्ञानरूपी अग्नि सब कर्मोंको जलाकर भस्म कर डालती है। जो सब कर्मोंको परमात्मामें अर्पण करके आसक्ति छोड़कर कर्म करता है, वह पापसे लिप्त नहीं होता—ठीक उसी तरह जैसे कमलका पत्ता पानीसे लिप्त नहीं होता। जिसका अन्तःकरण योगयुक्त है—परमानन्दमय परमात्मामें स्थित है तथा जो सर्वत्र समान दृष्टि रखनेवाला है, वह योगी आत्माको सम्पूर्ण भूतोंमें तथा सम्पूर्ण भूतोंको आत्मामें देखता है। योगभ्रष्ट पुरुष शुद्ध आचार विचारवाले श्रीमानों (धनवानों) के घरमें जन्म लेता है। तात! कल्याणमय शुभ कर्मोंका अनुष्ठान करनेवाला पुरुष कभी दुर्गतिको नहीं प्राप्त होता॥ २-११½॥

"मेरी यह त्रिगुणमयी माया अलौकिक है, इसका पार पाना बहुत कठिन है। जो केवल मेरी शरण लेते हैं, वे ही इस मायाको लाँघ पाते हैं। भरतश्रेष्ठ! आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी—ये चार प्रकारके मनुष्य मेरा भजन करते हैं। इनमेंसे ज्ञानी तो मुझसे एकीभूत होकर स्थित रहता है। अविनाशी परम-तत्त्व (सच्चिदानन्दमय परमात्मा) 'ब्रह्म' है, स्वभाव अर्थात् जीवात्माको 'अध्यात्म' कहते हैं, भूतोंकी उत्पत्ति और वृद्धि करनेवाले विसर्गका (यज्ञ-दान आदिके निमित्त किये जानेवाले द्रव्यादिके त्यागका) नाम 'कर्म' है, विनाशशील पदार्थ 'अधिभूत' है तथा पुरुष (हिरण्यगर्भ) 'अधिदैवत' है। देहधारियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन! इस देहके भीतर मैं वासुदेव ही 'अधियज्ञ' हूँ। अन्तकालमें मेरा स्मरण करनेवाला पुरुष मेरे स्वरूपको प्राप्त होता है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। मनुष्य अन्तकालमें जिस जिस भावका स्मरण करते हुए अपने देहका परित्याग करता है, उसीको वह प्राप्त होता है। मृत्युके समय जो प्राणोंको भौंहोंके मध्यमें स्थापित करके 'ओम्'—इस एकाक्षर ब्रह्मका उच्चारण करते हुए देहत्याग करता है, वह मुझ परमेश्वरको ही प्राप्त करता है। ब्रह्माजीसे लेकर तुच्छ कीटतक जो कुछ दिखायी देता है, सब मेरी ही विभूतियाँ हैं। जितने भी श्रीसम्पन्न और शक्तिशाली प्राणी हैं, सब मेरे अंश हैं। 'मैं अकेला ही सम्पूर्ण विश्वके रूपमें स्थित हूँ'—ऐसा जानकर मनुष्य मुक्त हो जाता है॥ १२—१९॥

"यह शरीर 'क्षेत्र' है, जो इसे जानता है, उसको 'क्षेत्रज्ञ' कहा गया है। 'क्षेत्र' और 'क्षेत्रज्ञ'को जो यथार्थरूपसे जानना है, वही मेरे मतमें 'ज्ञान' है। पाँच महाभूत, अहंकार, बुद्धि, अव्यक्त (मूलप्रकृति), दस इन्द्रियाँ, एक मन, पाँच इन्द्रियोंके विषय, इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, स्थूल शरीर, चेतना और धृति—यह विकारोंसहित 'क्षेत्र' है, जिसे यहाँ संक्षेपसे बतलाया गया है। अभिमानशून्यता, दम्भका अभाव, अहिंसा, क्षमा, सरलता, गुरुसेवा, बाहर-भीतरकी शुद्धि, अन्तःकरणकी स्थिरता, मन, इन्द्रिय एवं शरीरका निग्रह, विषयभोगोंमें आसक्तिका अभाव, अहंकारका न होना, जन्म, मृत्यु, जरा तथा रोग आदिमें दुःखरूप दोषका बारबार विचार करना, पुत्र, स्त्री और गृह आदिमें आसक्ति और ममताका अभाव, प्रिय और अप्रियकी प्राप्तिमें सदा ही समानचित्त रहना (हर्ष शोकके वशीभूत न होना), मुझ परमेश्वरमें अनन्य भावसे अविचल भक्तिका होना, पवित्र एवं एकान्त स्थानमें रहनेका स्वभाव, विषयी मनुष्योंके समुदायमें प्रेमका अभाव, अध्यात्म ज्ञानमें स्थिति तथा तत्त्व ज्ञानस्वरूप परमेश्वरका निरन्तर दर्शन—यह सब 'ज्ञान' कहा गया है और जो इसके विपरीत है, वह 'अज्ञान' है॥ २०—२७॥

"अब जो 'ज्ञेय' अर्थात् जाननेके योग्य है, उसका वर्णन करूँगा, जिसको जानकर मनुष्य अमृतस्वरूप परमात्माको प्राप्त होता है। 'ज्ञेय तत्त्व' अनादि है और 'परब्रह्म'के नामसे प्रसिद्ध है। उसे न 'सत्' कहा जा सकता है, न 'असत्'। (वह इन दोनोंसे विलक्षण है।) उसके सब ओर हाथ-पैर हैं, सब ओर नेत्र, सिर और मुख हैं तथा सब ओर कान हैं। वह संसारमें सबको व्याप्त करके स्थित है। सब इन्द्रियोंसे रहित होकर भी समस्त इन्द्रियोंके विषयोंको जाननेवाला है। सबका धारण-पोषण करनेवाला होकर भी आसक्तिरहित है तथा गुणोंका भोक्ता होकर भी 'निर्गुण' है। वह परमेश्वर सम्पूर्ण प्राणियोंके बाहर और भीतर विद्यमान है। 'चर' और 'अचर' सब उसीके स्वरूप हैं। सूक्ष्म होनेके कारण वह 'अविज्ञेय' है। वही निकट है और वही दूर। यद्यपि वह विभागरहित है (आकाशकी भाँति सर्वत्र एकरूपसे सबमें परिपूर्ण

है), तथापि सम्पूर्ण भूतोंमें विभक्त (पृथक्-पृथक् स्थित हुआ सा प्रतीत होता है । उसे विष्णुरूपसे सब प्राणियोंका पोषक, रुद्ररूपसे सबका संहारक और ब्रह्माके रूपसे सबको उत्पन्न करनेवाला जानना चाहिये । वह सूर्य आदि ज्योतियोंकी भी ज्योति (प्रकाशक) है । उसकी स्थिति अज्ञानमय अन्धकारसे परे बतलायी जाती है । वह परमात्मा ज्ञानस्वरूप, जाननेके योग्य, तत्त्वज्ञानसे प्राप्त होनेवाला और सबके हृदयमें स्थित है ॥ २८—३१ ॥

"उस परमात्माको कितने ही मनुष्य सूक्ष्मबुद्धिसे ध्यानके द्वारा अपने अन्तःकरणमें देखते हैं । दूसरे लोग सांख्ययोगके द्वारा तथा कुछ अन्य मनुष्य कर्मयोगके द्वारा देखते हैं । इनके अतिरिक्त जो मन्द बुद्धिवाले साधारण मनुष्य हैं, वे स्वयं इस प्रकार न जानते हुए भी दूसरे ज्ञानी पुरुषोंसे सुनकर ही उपासना करते हैं । वे सुनकर उपासनामें लगनेवाले पुरुष भी मृत्युरूप संसार-सागरसे निश्चय ही पार हो जाते हैं । सत्त्वगुणसे ज्ञान, रजोगुणसे लोभ तथा तमोगुणसे प्रमाद, मोह और अज्ञान उत्पन्न होते हैं । गुण ही गुणोंमें वर्तते हैं—ऐसा समझकर जो स्थिर रहता है, अपनी स्थितिसे विचलित नहीं होता, जो मान-अपमानमें तथा मित्र और शत्रुपक्षमें भी समानभाव रखता है, जिसने कर्तृत्वके अभिमानको त्याग दिया है, वह 'निर्गुण' (गुणातीत) कहलाता है । जिसकी जड़ ऊपरकी ओर [अर्थात् परमात्मा है] और 'शाखा' नीचेकी ओर [यानी ब्रह्माजी आदि] हैं, उस संसाररूपी अश्वत्थ वृक्षको अनादि प्रवाहरूपसे 'अविनाशी' कहते हैं । वेद उसके पत्ते हैं । जो उस वृक्षको मूलसहित यथार्थरूपसे जानता है, वही वेदके तात्पर्यको जाननेवाला है । इस संसारमें प्राणियोंकी सृष्टि दो प्रकारकी है—एक 'दैवी'—देवताओंके-से स्वभाववाली और दूसरी 'आसुरी'—असुरोंके-से स्वभाववाली । अतः मनुष्योंके अहिंसा आदि सद्गुण और क्षमा 'दैवी सम्पत्ति' है । 'आसुरी सम्पत्ति'से जिसकी उत्पत्ति हुई है, उसमें न शौच होता है, न सदाचार । क्रोध, लोभ और काम—ये नरक देनेवाले हैं, अतः इन तीनोंको त्याग देना चाहिये । सत्त्व आदि गुणोंके भेदसे यज्ञ, तप और दान तीन प्रकारके माने गये हैं [सात्त्विक, राजस और तामस] । 'सात्त्विक' अन्न आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य और सुखकी वृद्धि करनेवाला है । तीखा और रूखा अन्न 'राजस' है । वह दुःख, शोक और रोग उत्पन्न करनेवाला है । अपवित्र, जूठा, दुर्गन्धयुक्त और नीरस आदि अन्न 'तामस' माना गया है । 'यज्ञ करना कर्तव्य है'—यह समझकर निष्कामभावसे विधिपूर्वक किया जानेवाला यज्ञ 'सात्त्विक' है । फलकी इच्छासे किया हुआ यज्ञ 'राजस' और दम्भके लिये किया जानेवाला यज्ञ 'तामस' है । श्रद्धा और मन्त्र आदिसे युक्त एवं विधि प्रतिपादित जो देवता आदिकी पूजा तथा अहिंसा आदि तप है, उन्हें 'शारीरिक तप' कहते हैं । अब वाणीसे किये जानेवाले तपको बताया जाता है । जिससे किसीको उद्वेग न हो—ऐसा सत्य वचन, स्वाध्याय और जप—यह 'वाङ्मय तप' है । चित्तशुद्धि, मौन और मनोनिग्रह—ये 'मानस तप' हैं । कामनारहित तप 'सात्त्विक' फल आदिके लिये किया जानेवाला तप 'राजस' तथा दूसरोंको पीड़ा देनेके लिये किया हुआ तप 'तामस' कहलाता है । उत्तम देश, काल और पात्रमें दिया हुआ दान 'सात्त्विक' है, प्रत्युपकारके लिये दिया जानेवाला दान 'राजस' है तथा अयोग्य देश, काल आदिमें अनादरपूर्वक दिया हुआ दान 'तामस' कहा गया है । 'ॐ', 'तत्,' और 'सत्'—ये परब्रह्म परमात्माके तीन प्रकारके नाम बताये गये हैं । यज्ञ दान आदि कर्म मनुष्योंको भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं । जिन्होंने कामनाओंका त्याग नहीं किया है, उन सकामी पुरुषोंके कर्मका बुरा, भला और मिला हुआ—तीन प्रकारका फल होता है । यह फल मृत्युके पश्चात् प्राप्त होता है । संन्यासी (त्यागी पुरुषों) के कर्मोंका कभी कोई फल नहीं होता । मोहवश जो कर्मोंका त्याग किया जाता है, वह 'तामस' है, शरीरको कष्ट पहुँचनेके भयसे किया हुआ त्याग 'राजस' है तथा कामनाके त्यागसे सम्पन्न होनेवाला त्याग 'सात्त्विक' कहलाता है । अधिष्ठान, कर्ता, भिन्न भिन्न करण, नाना प्रकारकी अलग-अलग चेष्टाएँ तथा दैव—ये पाँच ही कर्मके कारण हैं । सब भूतोंमें एक परमात्माका ज्ञान 'सात्त्विक', भेद ज्ञान 'राजस' और अतात्त्विक ज्ञान 'तामस' है । निष्काम भावसे किया हुआ कर्म 'सात्त्विक', कामनाके लिये किया जानेवाला 'राजस' तथा मोहवश किया हुआ कर्म 'तामस' है । कार्यकी सिद्धि और असिद्धिमें सम (निर्विकार) रहनेवाला कर्ता 'सात्त्विक', हर्ष और शोक करनेवाला 'राजस' तथा शठ और आलसी कर्ता 'तामस' कहलाता है । कार्य अकार्यके तत्त्वको समझनेवाली बुद्धि 'सात्त्विकी', उसे ठीक-ठीक न जाननेवाली बुद्धि 'राजसी' तथा विपरीत धारणा रखनेवाली बुद्धि 'तामसी' मानी गयी है । मनको धारण करनेवाली धृति 'सात्त्विकी', प्रीतिकी कामनावाली धृति 'राजसी' तथा शोक आदिको धारण करनेवाली धृति

'तामसी' है। जिसका परिणाम सुखद हो, वह सत्त्वसे उत्पन्न होनेवाला 'सात्त्विक सुख' है। जो आरम्भमें सुखद प्रतीत होनेपर भी परिणाममें दुःखद हो वह 'राजस सुख' है तथा जो आदि और अन्तमें भी दुःख-ही-दुःख है, वह आपाततः प्रतीत होनेवाला सुख 'तामस' कहा गया है। जिससे सब भूतोंकी उत्पत्ति हुई है और जिससे यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है, उन विष्णुको अपने-अपने स्वाभाविक कर्मद्वारा पूजकर मनुष्य परम सिद्धिको प्राप्त कर लेता है। जो सब अवस्थाओंमें और सर्वदा मन, वाणी एवं कर्मके द्वारा ब्रह्मासे लेकर तुच्छ कीटपर्यन्त सम्पूर्ण जगत्‌को भगवान् विष्णुका स्वरूप समझता है, वह भगवान्‌में भक्ति रखनेवाला भागवत पुरुष सिद्धिको प्राप्त होता है" ॥ ३४—५८ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'गीता-सार निरूपण' नामक तीन सौ इक्यासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३८१ ॥

तीन सौ बयासीवाँ अध्याय

यमगीता

अग्निदेव कहते हैं—ब्रह्मन्! अब मैं 'यमगीता'का वर्णन करूँगा, जो यमराजके द्वारा नचिकेताके प्रति कही गयी थी। यह पढ़ने और सुननेवालोंको भोग प्रदान करती है तथा मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाले सत्पुरुषोंको मोक्ष देनेवाली है ॥ १ ॥

यमराजने कहा—अहो! कितने आश्चर्यकी बात है कि मनुष्य अत्यन्त मोहके कारण स्वयं अस्थिरचित्त होकर आसन, शय्या, वाहन, परिधान (पहननेके वस्त्र आदि) तथा गृह आदि भोगोंको सुस्थिर मानकर प्राप्त करना चाहता है। कपिलजीने कहा है—'भोगोंमें आसक्तिका अभाव तथा सदा ही आत्मतत्त्वका चिन्तन—यह मनुष्योंके परमकल्याणका उपाय है।' 'सर्वत्र समतापूर्ण दृष्टि तथा ममता और आसक्तिका न होना—यह मनुष्योंके परमकल्याणका साधन है'—यह आचार्य पञ्चशिखका उद्गार है। 'गर्भसे लेकर जन्म और बाल्य आदि वय तथा अवस्थाओंके स्वरूपको ठीक-ठीक समझना ही मनुष्योंके परमकल्याणका हेतु है'—यह गङ्गा विष्णुका ज्ञान है। 'आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक दुःख आदि-अन्तवाले हैं, अर्थात् ये उत्पन्न और नष्ट होते रहते हैं, अतः इन्हें क्षणिक समझकर धैर्यपूर्वक सहन करना चाहिये, विचलित नहीं होना चाहिये—इस प्रकार उन दुःखोंका प्रतिकार ही मनुष्योंके लिये परमकल्याण-का साधन है'—यह महाराज जनकका मत है। 'जीवात्मा और परमात्मा वस्तुतः अभिन्न (एक) हैं; इनमें जो भेदकी प्रतीति होती है, उसका निवारण करना ही परमकल्याणका हेतु है'—यह ब्रह्माजीका सिद्धान्त है। जैगीषव्यका कहना है कि 'ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदमें प्रतिपादित जो कर्म हैं, उन्हें कर्तव्य समझकर अनासक्तभावसे करना श्रेयका साधन है।' 'सब प्रकारकी विधित्सा (कर्मारम्भकी आकाङ्क्षा) का परित्याग आत्माके सुखका साधन है; यही मनुष्योंके लिये परम श्रेय है'—यह देवलका मत बताया गया है। 'कामनाओंके त्यागसे विज्ञान, सुख, ब्रह्म एवं परमपदकी प्राप्ति होती है। कामना रखनेवालोंको ज्ञान नहीं होता'—यह सनकादिकोंका सिद्धान्त है ॥ २—१० ॥

"दूसरे लोग कहते हैं कि प्रवृत्ति और निवृत्ति—दोनों प्रकारके कर्म करने चाहिये। परंतु वास्तवमें नैष्कर्म्य ही ब्रह्म है, वही भगवान् विष्णुका स्वरूप है—यही श्रेयका भी श्रेय है। जिस पुरुषको ज्ञानकी प्राप्ति हो जाती है, वह सबोंमें श्रेष्ठ है; वह अविनाशी परब्रह्म विष्णुसे कभी भेदको नहीं प्राप्त होता। ज्ञान, विज्ञान, आस्तिकता, सौभाग्य तथा उत्तम रूप तपस्यासे उपलब्ध होते हैं। इतना ही नहीं, मनुष्य अपने मनसे जो-जो वस्तु पाना चाहता है, वह सब तपस्यासे प्राप्त हो जाती है। विष्णुके समान कोई ध्येय नहीं है, निराहार रहनेसे बढ़कर कोई तपस्या नहीं है, आरोग्यके समान कोई बहुमूल्य वस्तु नहीं है और गङ्गाजीके तुल्य दूसरी कोई नदी नहीं है। जगद्गुरु भगवान् विष्णुको छोड़कर दूसरा कोई बान्धव नहीं है।* नीचे ऊपर, आगे, देह, इन्द्रिय, मन तथा मुख—सबमें और सर्वत्र भगवान् श्रीहरि विराजमान हैं।' इस प्रकार भगवान्‌का चिन्तन करते हुए जो प्राणोंका परित्याग करता है, वह

* नास्ति विष्णुसमं ध्येयं तपो नानशनात् परम्।
नास्त्यारोग्यसमं धन्यं नास्ति गङ्गासमा सरित्॥
न सोऽस्ति बान्धवः कश्चिद् विष्णुं मुक्त्वा जगद्गुरुम्॥
(३८२।१४-१५)

साक्षात् श्रीहरिके स्वरूपमें मिल जाता है । वह जो सर्वत्र व्यापक ब्रह्म है, जिससे सबकी उत्पत्ति हुई है, जो सर्वस्वरूप है तथा यह सब कुछ जिसका संस्थान (आकार विशेष) है, जो इन्द्रियोंसे ग्राह्य नहीं है, जिसका किसी नाम आदिके द्वारा निर्देश नहीं किया जा सकता, जो सुप्रतिष्ठित एवं सबसे परे है, उस परात्पर ब्रह्मके रूपमें साक्षात् भगवान् विष्णु ही सबके हृदयमें विराजमान हैं । वे यज्ञके स्वामी तथा यज्ञस्वरूप हैं, उन्हें कोई तो परब्रह्मरूपसे प्राप्त करना चाहते हैं, कोई विष्णुरूपसे, कोई शिवरूपसे, कोई ब्रह्मा और ईश्वररूपसे, कोई इन्द्रादि नामोंसे तथा कोई सूर्य, चन्द्रमा और कालरूपसे उन्हें पाना चाहते हैं । ब्रह्मासे लेकर कीटतक सारे जगत्को विष्णुका ही स्वरूप कहते हैं । वे भगवान् विष्णु परब्रह्म परमात्मा हैं, जिनके पास पहुँच जानेपर (जिन्हें जान लेने या पा लेनेपर) फिर वहाँसे इस संसारमें नहीं लौटना पड़ता । सुवर्ण-दान आदि बड़े-बड़े दान तथा पुण्य-तीर्थोंमें स्नान करनेसे, ध्यान लगानेसे, व्रत करनेसे, पूजासे और धर्मकी बातें सुनने (एवं उनका पालन करने) से उनकी प्राप्ति होती है ॥ ११—२०½ ॥

"आत्माको 'रथी' समझो और शरीरको 'रथ' । बुद्धिको 'सारथि' जानो और मनको 'लगाम' । विवेकी पुरुष इन्द्रियोंको 'घोड़े' कहते हैं और विषयोंको उनके 'मार्ग' तथा शरीर, इन्द्रिय और मनसहित आत्माको 'भोक्ता' कहते हैं । जो बुद्धिरूप सारथि अविवेकी होता है, जो अपने मनरूपी लगामको कसकर नहीं रखता, वह उत्तम पदको (परमात्माको) नहीं प्राप्त होता, संसाररूपी गर्तमें गिरता है । परंतु जो विवेकी होता है और मनको काबूमें रखता है, वह उस परमपदको प्राप्त होता है, जिससे वह फिर जन्म नहीं लेता । जो मनुष्य विवेकयुक्त बुद्धिरूप सारथिसे सम्पन्न और मनरूपी लगामको काबूमें रखनेवाला होता है, वही संसाररूपी मार्गको पार करता है, जहाँ विष्णुका परमपद है । इन्द्रियोंकी अपेक्षा उनके विषय पर हैं, विषयोंसे परे मन है, मनसे परे बुद्धि है, बुद्धिसे परे महान् आत्मा (महत्तत्त्व) है, महत्तत्त्वसे परे अव्यक्त (मूलप्रकृति) है और अव्यक्तसे परे पुरुष (परमात्मा) है । पुरुषसे परे कुछ भी नहीं है, वही सीमा है, वही परमगति है । सम्पूर्ण भूतोंमें छिपा हुआ यह आत्मा प्रकाशमें नहीं आता । सूक्ष्मदर्शी पुरुष अपनी तीव्र एवं सूक्ष्म बुद्धिसे ही उसे देख पाते हैं । विद्वान् पुरुष वाणीका मनमें और मनको विज्ञानमयी बुद्धिमें लीन करे । इसी प्रकार बुद्धिको महत्तत्त्वमें और महत्तत्त्वको शान्त आत्मामें लीन करे ॥ २१-२९½ ॥

"यम-नियमादि साधनोंसे ब्रह्म और आत्माकी एकताको जानकर मनुष्य सत्स्वरूप ब्रह्म ही हो जाता है । अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरीका अभाव), ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह (संग्रह न करना)—ये पाँच 'यम' कहलाते हैं । 'नियम' भी पाँच ही हैं—शौच (बाहर-भीतरकी पवित्रता), संतोष, उत्तम तप, स्वाध्याय और ईश्वरपूजा । 'आसन' बैठनेकी प्रक्रियाका नाम है, उसके 'पद्मासन' आदि कई भेद हैं । प्राणवायुको जीतना 'प्राणायाम' है । इन्द्रियोंका निग्रह 'प्रत्याहार' कहलाता है । ब्रह्मन् ! एक शुभ विषयमें जो चित्तको स्थिरतापूर्वक स्थापित करना होता है, उसे बुद्धिमान् पुरुष 'धारणा' कहते हैं । एक ही विषयमें बारंबार धारणा करनेका नाम 'ध्यान' है । 'मैं ब्रह्म हूँ'—इस प्रकारके अनुभवमें स्थिति होनेको 'समाधि' कहते हैं । जैसे घड़ा फूट जानेपर घटाकाश महाकाशसे अभिन्न (एक) हो जाता है, उसी प्रकार मुक्त जीव ब्रह्मके साथ एकीभावको प्राप्त होता है—वह सत्स्वरूप ब्रह्म ही हो जाता है । ज्ञानसे ही जीव अपनेको ब्रह्म मानता है, अन्यथा नहीं । अज्ञान और उसके कार्योंसे मुक्त होनेपर जीव अजर-अमर हो जाता है" ॥ ३०-३६ ॥

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ ! यह मैंने 'यमगीता'* बतलायी है । इसे पढ़नेवालोंको यह भोग और मोक्ष प्रदान करती है । वेदान्तके अनुसार सर्वत्र ब्रह्मबुद्धिका होना 'आत्यन्तिक लय' कहलाता है ॥ ३७ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'यमगीताका कथन' नामक तीन सौ बयासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३८२ ॥

---

* इस यमगीता का आधार कठोपनिषद् का यम नचिकेता संवाद है

तीन सौ तिरासीवाँ अध्याय

अग्निपुराणका माहात्म्य

अग्निदेव कहते हैं—ब्रह्मन्! 'अग्निपुराण' ब्रह्मस्वरूप है, मैंने तुमसे इसका वर्णन किया। इसमें कहीं संक्षेपसे और कहीं विस्तारके साथ 'परा' और 'अपरा'—इन दो विद्याओंका प्रतिपादन किया गया है। यह महापुराण है। 'ऋक्, यजु, साम और अथर्व-नामक वेदविद्या, विष्णु महिमा, संसार-सृष्टि, छन्द, शिक्षा, व्याकरण, निघण्टु (कोष), ज्यौतिष, निरुक्त, धर्मशास्त्र आदि, मीमांसा, विस्तृत न्यायशास्त्र, आयुर्वेद, पुराण-विद्या, धनुर्वेद, गन्धर्व वेद, अर्थशास्त्र, वेदान्त और महान् (परमेश्वर) श्रीहरि—यह सब 'अपरा विद्या' है तथा परम अक्षर तत्त्व 'परा विद्या' है। [इस पुराणमें इन दोनों विद्याओंका विषय वर्णित है।] 'यह सब कुछ विष्णु ही है'—ऐसा जिसका भाव हो, उसे कलियुग बाधा नहीं पहुँचाता। बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान और पितरोंका श्राद्ध न करके भी यदि मनुष्य भक्तिपूर्वक श्रीकृष्णका पूजन करे तो वह पापका भागी नहीं होता। विष्णु सबके कारण हैं। उनका निरन्तर ध्यान करनेवाला पुरुष कभी कष्टमें नहीं पड़ता। यदि परतन्त्रता आदि दोषोंसे प्रभावित होकर तथा विषयोंके प्रति चित्त आकृष्ट हो जानेके कारण मनुष्य पाप-कर्म कर बैठे तो भी गोविन्दका ध्यान करके वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। दूसरी-दूसरी बहुत सी बातें बनानेसे क्या काम? 'ध्यान' वही है, जिसमें गोविन्दका चिन्तन होता हो, 'कथा' वही है, जिसमें केशवका कीर्तन हो रहा हो और 'कर्म' वही है, जो श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये किया जाय।* पण्डितजी! जिस परमोत्कृष्ट परमार्थ तत्त्वका उपदेश न तो पिता पुत्रको और न गुरु शिष्यको कर सकता है, वही इस अग्निपुराणके रूपमें मैंने आपके प्रति किया है। द्विजवर! संसारमें भटकनेवाले पुरुषको स्त्री, पुत्र और धन-वैभव मिल सकते हैं तथा अन्य अनेकों सुहृदोंकी भी प्राप्ति हो सकती है, परंतु ऐसा उपदेश नहीं मिल सकता। स्त्री, पुत्र, मित्र, खेती-बारी और बन्धु-बान्धवोंसे क्या लेना है? यह उपदेश ही सबसे बड़ा बन्धु है, क्योंकि यह संसारसे मुक्ति दिलानेवाला है॥१-११॥

प्राणियोंकी सृष्टि दो प्रकारकी है—'दैवी' और 'आसुरी'। जो भगवान् विष्णुकी भक्तिमें लगा हुआ है, वह 'दैवी सृष्टि'के अन्तर्गत है तथा जो भगवान्‌से विमुख है, वह 'आसुरी सृष्टि'का मनुष्य है—असुर है। यह अग्निपुराण, जिसका मैंने तुम्हें उपदेश किया है, परम पवित्र, आरोग्य एवं धनका साधन, दुःस्वप्नका नाश करनेवाला, मनुष्योंको सुख और आनन्द देनेवाला तथा भव-बन्धनसे मोक्ष दिलानेवाला है। जिनके घरोंमें हस्तलिखित अग्निपुराणकी पोथी मौजूद होगी, वहाँ उपद्रवोंका जोर नहीं चल सकता। जो मनुष्य प्रतिदिन अग्निपुराण-श्रवण करते हैं, उन्हें तीर्थ-सेवन, गोदान, यज्ञ तथा उपवास आदिकी क्या आवश्यकता है? जो प्रतिदिन एक प्रस्थ तिल और एक माशा सुवर्ण दान करता है तथा जो अग्निपुराणका एक ही श्लोक सुनता है, उन दोनोंका फल समान है। श्लोक सुनानेवाला पुरुष तिल और सुवर्ण-दानका फल पा जाता है। इसके एक अध्यायका पाठ गोदानसे बढ़कर है। इस पुराणको सुननेकी इच्छामात्र करनेसे दिन-रातका किया हुआ पाप नष्ट हो जाता है। ज्येष्ठपुष्कर-तीर्थमें सौ कपिला गौओंका दान करनेसे जो फल मिलता है, वही अग्निपुराणका पाठ करनेसे मिल जाता है। 'प्रवृत्ति' और 'निवृत्ति'रूप धर्म तथा 'परा' और 'अपरा' नामवाली दोनों विद्याएँ इस 'अग्निपुराण' नामक शास्त्रकी समानता नहीं कर सकतीं। वसिष्ठजी! प्रतिदिन अग्निपुराणका पाठ अथवा श्रवण करनेवाला भक्त-मनुष्य सब पापोंसे छुटकारा पा जाता है। जिस घरमें अग्निपुराणकी पुस्तक रहेगी, वहाँ विघ्न-बाधाओं, अनर्थों तथा चोरों आदिका भय नहीं होगा। जहाँ अग्निपुराण रहेगा, उस घरमें गर्भपातका भय न होगा, बालकोंको ग्रह नहीं सतायेंगे तथा पिशाच आदिका भय भी निवृत्त हो जायगा। इस पुराणका श्रवण करनेवाला ब्राह्मण वेदवेत्ता होता है, क्षत्रिय पृथ्वीका राजा होता है, वैश्य धन पाता है, शूद्र नीरोग रहता है। जो भगवान् विष्णुमें मन लगाकर सर्वत्र

---

* तद् ध्यानं यत्र गोविन्दः सा कथा यत्र केशवः ।
तत्कर्म यत्तदर्थीयं किमन्यैर्बहुभाषितैः ॥
(३८३।८)

समानदृष्टि रखते हुए ब्रह्मस्वरूप अग्निपुराणका प्रतिदिन पाठ या श्रवण करता है, उसके दिव्य, आन्तरिक्ष और भौम आदि सारे उपद्रव नष्ट हो जाते हैं। इस पुस्तकके पढ़ने-सुनने और पूजन करनेवाले पुरुषके और भी जो कुछ पाप होते हैं, उन सबको भगवान् केशव नष्ट कर देते हैं। जो मनुष्य हेमन्त-ऋतुमें गन्ध और पुष्प आदिसे पूजा करके श्रीअग्निपुराणका श्रवण करता है, उसे अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता है। शिशिर-ऋतुमें इसके श्रवणसे पुण्डरीकका तथा वसन्त-ऋतुमें अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है। गर्मीमें वाजपेयका, वर्षामें राजसूयका तथा शरद्-ऋतुमें इस पुराणका पाठ और श्रवण करनेसे एक हजार गोदान करनेका फल प्राप्त होता है। वसिष्ठजी! जो भगवान् विष्णुके सम्मुख बैठकर भक्तिपूर्वक अग्निपुराणका पाठ करता है, वह मानो ज्ञानयज्ञके द्वारा श्रीकेशवका पूजन करता है। जिसके घरमें हस्तलिखित अग्निपुराणकी पुस्तक पूजित होती है, उसे सदा ही विजय प्राप्त होती है तथा भोग और मोक्ष—दोनों ही उसके हाथमें रहते हैं—यह बात पूर्वकालमें कालाग्निस्वरूप श्रीहरिने स्वयं ही मुझसे बतायी थी। आग्नेय पुराण ब्रह्मविद्या एवं अद्वैतज्ञान रूप है॥ १२–३१॥

वसिष्ठजी कहते हैं—व्यास! यह अग्निपुराण 'परा अपरा'—दोनों विद्याओंका स्वरूप है। इसे विष्णुने ब्रह्मासे तथा अग्निदेवने समस्त देवताओं और मुनियोंके साथ बैठे हुए मुझसे जिस रूपमें सुनाया, उसी रूपमें मैंने तुम्हारे सामने इसका वर्णन किया है। अग्निदेवके द्वारा वर्णित यह 'आग्नेय पुराण' वेदके तुल्य माननीय है तथा यह सभी विषयोंका ज्ञान करानेवाला है। व्यास! जो इसका पाठ या श्रवण करेगा, जो इसे स्वयं लिखेगा या दूसरोंसे लिखायेगा, शिष्योंको पढ़ायेगा या सुनायेगा, अथवा इस पुस्तकका पूजन या धारण करेगा, वह सब पापोंसे मुक्त एवं पूर्णमनोरथ होकर स्वर्गलोकमें जायगा। जो इस उत्तम पुराणको लिखाकर ब्राह्मणोंको दान देता है, वह ब्रह्मलोकमें जाता है तथा अपने कुलकी सौ पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। जो एक श्लोकका भी पाठ करता है, उसका पाप-पङ्कसे छुटकारा हो जाता है। इसलिये व्यास! इस सर्वदर्शनमयस्वरूप पुराणको तुम्हें श्रवणकी इच्छा रखनेवाले शुकादि मुनियोंके साथ अपने शिष्योंको सदा सुनाते रहना चाहिये। अग्निपुराणका पठन और चिन्तन अत्यन्त शुभ तथा भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है। जिन्होंने इस पुराणका गान किया है, उन अग्निदेवको नमस्कार है॥ ३२–३८॥

व्यासजी कहते हैं—सूत! पूर्वकालमें वसिष्ठजीके मुखसे सुना हुआ यह अग्निपुराण मैंने तुम्हें सुनाया है। 'परा' और 'अपरा' विद्या इसका स्वरूप है। यह परम पद प्रदान करनेवाला है। आग्नेय पुराण परम दुर्लभ है, भाग्यवान् पुरुषोंको ही यह प्राप्त होता है। 'ब्रह्म' या 'वेद'स्वरूप इस अग्निपुराणका चिन्तन करनेवाले पुरुष श्रीहरिको प्राप्त होते हैं। इसके चिन्तनसे विद्यार्थियोंको विद्या और राज्यकी इच्छा रखनेवालोंको राज्यकी प्राप्ति होती है। जिन्हें पुत्र नहीं है, उन्हें पुत्र मिलता है तथा जो लोग निराश्रय हैं, उन्हें आश्रय प्राप्त होता है। सौभाग्य चाहनेवाले सौभाग्यको तथा मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाले मनुष्य मोक्षको पाते हैं। इसे लिखने और लिखानेवाले लोग पापरहित होकर लक्ष्मीको प्राप्त होते हैं। सूत! तुम शुक और पैल आदिके साथ अग्निपुराणका चिन्तन करो, इससे तुम्हें भोग और मोक्ष—दोनोंकी प्राप्ति होगी—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। तुम भी अपने शिष्यों और भक्तोंको यह पुराण सुनाओ॥ ३९–४४॥

सूतजी कहते हैं—शौनक आदि मुनिवरो! मैंने श्रीव्यासजीकी कृपासे श्रद्धापूर्वक अग्निपुराणका श्रवण किया है। यह अग्निपुराण ब्रह्मस्वरूप है। आप सब लोग श्रद्धायुक्त होकर इस नैमिषारण्यमें भगवान् श्रीहरिका यजन करते हुए निवास करते हैं, अतः [आपको सर्वोत्तम अधिकारी समझकर] मैंने आपसे इस पुराणका वर्णन किया है। 'अग्निदेव' इस पुराणके वक्ता हैं, अतएव यह 'आग्नेय पुराण' कहलाता है। इसे वेदोंके तुल्य माना गया है। यह 'ब्रह्म' और 'विद्या'—दोनोंसे युक्त है। भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला श्रेष्ठ साधन है। इससे बढ़कर सर्वोत्तम सार, इससे उत्तम सुहृद्, इससे श्रेष्ठ ग्रन्थ तथा इससे उत्कृष्ट कोई गति नहीं है। इस पुराणसे बढ़कर शास्त्र नहीं है, इससे उत्तम श्रुति नहीं है, इससे श्रेष्ठ ज्ञान नहीं है तथा इससे उत्कृष्ट कोई स्मृति नहीं है। इससे श्रेष्ठ आगम, इससे श्रेष्ठ विद्या, इससे श्रेष्ठ सिद्धान्त और इससे श्रेष्ठ मङ्गल नहीं है। इससे बढ़कर वेदान्त भी नहीं है। यह पुराण सर्वोत्कृष्ट है। इस पृथ्वीपर अग्निपुराणसे बढ़कर श्रेष्ठ और दुर्लभ वस्तु कोई नहीं है॥ ४५–५१॥

इस अग्निपुराणमें सब विद्याओंका प्रदर्शन (परिचय) कराया गया है। भगवान्‌के मत्स्य आदि सम्पूर्ण अवतार, गीता और रामायणका भी इसमें वर्णन है। 'हरिवंश' और 'महाभारत'का भी परिचय है। नौ प्रकारकी सृष्टिका भी दिग्दर्शन कराया गया है। वैष्णव-आगमका भी गान किया गया है। देवताओंकी स्थापनाके साथ ही दीक्षा तथा पूजाका भी उल्लेख हुआ है। पवित्रारोहण आदिकी विधि, प्रतिमाके लक्षण आदि तथा मन्दिरके लक्षण आदिका वर्णन है। साथ ही भोग और मोक्ष देनेवाले मन्त्रोंका भी उल्लेख है। शैव-आगम और उसके प्रयोजन, शाक्त आगम, सूर्यसम्बन्धी आगम, मण्डल, वास्तु और भाँति भाँतिके मन्त्रोंका वर्णन है। प्रतिसर्गका भी परिचय कराया गया है। ब्रह्माण्ड-मण्डल तथा भुवनकोषका भी वर्णन है। द्वीप, वर्ष आदि और नदियोंका भी उल्लेख है। गङ्गा तथा प्रयाग आदि तीर्थोंकी महिमाका वर्णन किया गया है। ज्योतिश्चक्र (नक्षत्र-मण्डल), ज्यौतिष आदि विद्या तथा युद्धजयार्णवका भी निरूपण है। मन्वन्तर आदिका वर्णन तथा वर्ण और आश्रम आदिके धर्मोंका प्रतिपादन किया गया है। साथ ही अशौच, द्रव्यशुद्धि तथा प्रायश्चित्तका भी ज्ञान कराया गया है। राजधर्म, दानधर्म, भाँति भाँतिके व्रत, व्यवहार, शान्ति तथा ऋग्वेद आदिके विधानका भी वर्णन है। सूर्यवंश, सोमवंश, धनुर्वेद, वैद्यक, गान्धर्व वेद, अर्थशास्त्र, मीमांसा, न्यायविस्तार, पुराण-संख्या, पुराण-माहात्म्य, छन्द, व्याकरण, अलङ्कार, निघण्टु, शिक्षा और कल्प आदिका भी इसमें निरूपण किया गया है ॥ ५२-६१ ॥

नैमित्तिक, प्राकृतिक और आत्यन्तिक लयका वर्णन है। वेदान्त, ब्रह्मज्ञान और अष्टाङ्गयोगका निरूपण है। स्तोत्र, पुराण-महिमा और अष्टादश विद्याओंका प्रतिपादन है। ऋग्वेद आदि अपरा विद्या, परा विद्या तथा परम अक्षरतत्त्वका भी निरूपण है। इतना ही नहीं, इसमें ब्रह्मके सप्रपञ्च (सविशेष) और निष्प्रपञ्च (निर्विशेष) रूपका वर्णन किया गया है। यह पुराण पंद्रह हजार श्लोकोंका है। देवलोकमें इसका विस्तार एक अरब श्लोकोंमें है। देवता सदा इस पुराणका पाठ करते हैं। सम्पूर्ण लोकोंका हित करनेके लिये अग्निदेवने इसका संक्षेपसे वर्णन किया है। शौनकादि मुनियो! आप इस सम्पूर्ण पुराणको ब्रह्ममय ही समझें। जो इसे सुनता या सुनाता, पढ़ता या पढ़ाता, लिखता या लिखवाता तथा इसका पूजन और कीर्तन करता है, वह परम शुद्ध हो सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त करके कुलसहित स्वर्गको जाता है ॥ ६२-६६ ॥

राजाको चाहिये कि संयमशील होकर पुराणके वक्ताका पूजन करे। गौ, भूमि तथा सुवर्ण आदिका दान दे, वस्त्र और आभूषण आदिसे तृप्त करते हुए वक्ताका पूजन करके मनुष्य पुराण-श्रवणका पूरा पूरा फल पाता है। पुराण श्रवणके पश्चात् निश्चय ही ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। जो इस पुस्तकके लिये धारयन्त्र (पेटी), सूत, पत्र (पन्ने), काठकी पट्टी, उसे बाँधनेकी रस्सी तथा वेष्टन-वस्त्र आदि दान करता है, वह स्वर्गलोकको जाता है। जो अग्निपुराणकी पुस्तकका दान करता है, वह ब्रह्मलोकमें जाता है। जिसके घरमें यह पुस्तक रहती है, उसके यहाँ उत्पातका भय नहीं रहता। वह भोग और मोक्षको प्राप्त होता है। मुनियो! आपलोग इस अग्निपुराणको ईश्वररूप मानकर सदा इसका स्मरण रक्खें ॥ ६७-७१ ॥

व्यासजी कहते हैं—तत्पश्चात् सूतजी मुनियोंसे पूजित हो वहाँसे चले गये और शौनक आदि महात्मा भगवान् श्रीहरिको प्राप्त हुए ॥ ७२ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'अग्निपुराणमें वर्णित संक्षिप्त विषय तथा इस पुराणके माहात्म्यका वर्णन' नामक तीन सौ तिरासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३८३ ॥

अग्निपुराण सम्पूर्ण

श्रीहरि

श्रीगर्ग-संहिता

(अश्वमेधखण्ड)

वृन्दावनमें सौन्दर्य-माधुर्य निधि भगवान् श्रीकृष्ण [गर्ग०, अश्वमेध०, अ० ४०

श्रीहरि

ॐ दामोदर हृषीकेश वासुदेव नमोऽस्तु ते

श्रीगर्ग-संहिता

(अश्वमेधखण्ड)

पहला अध्याय

अश्वमेध-कथाका उपक्रम; गर्ग-वज्रनाभ-संवाद

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥ १ ॥
नमः श्रीकृष्णचन्द्राय नमः संकर्षणाय च।
नमः प्रद्युम्नदेवायानिरुद्धाय नमो नमः ॥ २ ॥

सर्वव्यापी भगवान् नारायण, नरश्रेष्ठ नर, उनकी लीला कथाको भाषामें अभिव्यक्त करनेवाली वाग्देवता सरस्वती तथा भगवदीय लीलाओंका विस्तारसे वर्णन करनेवाले मुनिवर वेद व्यासको प्रणाम करके जय (इतिहास पुराण आदि) का उच्चारण करे। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार, संकर्षणको भी नमस्कार, प्रद्युम्नदेवको नमस्कार तथा अनिरुद्धको भी नमस्कार है ॥ १-२ ॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—एक समयकी बात है, ऋषियोंकी सभामें रोमहर्षण सूतके पुत्र उग्रश्रवाजी पधारे। उन्हें आया हुआ देख शौनकजीने उन्हें प्रणाम किया और (कुशल-प्रश्नके अनन्तर) अभिवादनपूर्वक इस प्रकार कहा ॥ १ ॥

शौनक बोले—महामते! आपके मुखसे मैंने सम्पूर्ण शास्त्र, पुराण तथा श्रीहरिके नाना प्रकारके निर्मल लीलाचरित्र सुने। पूर्वकालमें गर्गाचार्यजीने मेरे सामने गर्गसंहिता सुनायी थी, जिसमें श्रीराधा और माधवकी महिमाका अनेक प्रकारसे और अधिकाधिक वर्णन हुआ है। सूतनन्दन! आज मैं पुनः आपसे मन दुःखोंको हर लेनेवाली श्रीकृष्णकी कथा सुनना चाहता हूँ। आप सोच विचारकर वह कथा मुझसे कहिये ॥ २-४ ॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—शौनकजीके साथ अठासी हजार ऋषियोंने भी जब यही जिज्ञासा व्यक्त की, तब रोमहर्षणकुमार सूतने भगवान् श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंका स्मरण करके इस प्रकार कहा ॥ ५ ॥

सौति बोले—अहा शौनकजी! आप धन्य हैं, जिनकी बुद्धि इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रके युगल-चरणारविन्दोंका मकरन्द पान करनेके लिये लालायित है। वैष्णवजनोंका समागम प्राप्त हो, इसे देवतालोग श्रेष्ठ बताते हैं, क्योंकि वैष्णवोंके सङ्गसे भगवान् श्रीकृष्णकी वह कथा सुननेको मिलती है, जो समस्त पापोंका विनाश करनेवाली है। श्रीकृष्णचन्द्रका चरित्र समस्त कल्मषोंका निवारण करनेवाला है। उसको थोड़ा थोड़ा ब्रह्माजी जानते हैं और थोड़ा ही थोड़ा भगवान् उमावल्लभ शिव। मेरे-जैसा कोई मच्छर उसे क्या जान सकेगा? भगवान् वासुदेवकी लीला-कथा एक समुद्र है, जिसमें डूबकर मोहित ब्रह्मा आदि देवता भी कुछ कह नहीं सकेंगे। (फिर मुझ-जैसा मनुष्य क्या कह सकता है?) यादवराज भूपालशिरोमणि उग्रसेनके यज्ञवर अश्वमेधका अनुष्ठान देखकर लौटे हुए गर्गाचार्यने एक दिन अपने मनका उद्गार इस प्रकार प्रकट किया—'यादवेश्वर! राजा उग्रसेन धन्य हैं, जिन्होंने भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञासे द्वारकापुरीमें क्रतुश्रेष्ठ अश्वमेधका सम्पादन किया। उस यज्ञको देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ है। मैंने अपनी संहितामें परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णकी प्रत्यक्ष देखी-सुनी लीला कथाओंका ठीक वैसा ही वर्णन किया है। उस संहितामें मैंने अश्वमेध यज्ञकी कथाका उल्लेख नहीं किया है, अतः अब पुनः उस अश्वमेधकी ही कथा कहूँगा। कलियुगमें उस कथाके श्रवणमात्रसे भगवान् श्रीकृष्ण मनुष्योंको शीघ्र ही भोग तथा मोक्ष प्रदान करते हैं' ॥ ६-१४ ॥

शौनक! ऐसा कहकर श्रीगर्गमुनिने श्रीकृष्णभक्तिसे प्रेरित हो उग्रसेनके अश्वमेध यज्ञकी कथा कही। 'अश्वमेधचरित्र' का उन्होंने एक सुन्दर नाम रख दिया—'सुमेरु!' मुने! ऐसा करके भगवान् गर्गाचार्य कृतकृत्य हो गये। यादव-कुलके परम गुरु तथा बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ श्रीगर्गमुनिने आठ दिनोंतक

अश्वमेध यज्ञकी कथा कही, फिर वे नरेश्वर वज्रसे मिलनेके लिये श्रीहरिकी मथुरापुरीमें आये। ज्ञानिशिरोमणि गर्गमुनिको वहाँ आकाशसे उतरा देख वज्रनाभने द्विजोंके साथ उठकर उन्हें नमस्कार किया। बैठनेके लिये सोनेका सिंहासन देकर उन्होंने गुरुजीके दोनों चरण-कमल पखारे और फूल-मालाओंसे मुनिका पूजन करके उन्हें मिष्टान्न निवेदन किया। सोलह वर्षकी अवस्था और सुपुष्ट शरीरवाले विशालबाहु श्यामसुन्दर कमललोचन वज्रनाभने गुरुके चरणोदकको लेकर सिरपर रखा और दोनों हाथ जोड़कर उनसे इस प्रकार कहा। वज्रनाभ तो सिंहके समान उत्कट शक्तिशाली थे ॥ १७–२१ ॥

वज्रनाभने कहा—ब्रह्मन्! आपको नमस्कार है। आपका स्वागत है। हम आपकी क्या सेवा करें? मैं आपको भगवत्स्वरूप मानता हूँ। आप महर्षियोंमें परम श्रेष्ठ हैं। गुरु ब्रह्मा हैं, गुरु रुद्र हैं, गुरु ही बृहस्पति हैं तथा गुरुदेव साक्षात् नारायण हैं, उन श्रीगुरुको नमस्कार है। मुनिश्रेष्ठ! मनुष्योंके लिये आपका दर्शन दुर्लभ है। देव! विशेषतः हम जैसे विषयासक्त चित्तवाले लोगोंके लिये तो यह अत्यन्त दुर्लभ है। गर्गाचार्य! मेरे कुलके आचार्य! तेजस्विन्! योगभास्कर! आपके दर्शनमात्रसे हम कुटुम्बसहित पवित्र हो गये ॥ २२–२५ ॥

यदुकुलतिलक राजा वज्रनाभका यह वचन सुनकर मुनीन्द्रवर्य महान् महात्माने श्रीहरिके चरणारविन्दका चिन्तन करते हुए तत्काल नृपेश्वर वज्रनाभसे प्रसन्नतापूर्वक कहा—'यदुराज! महाराज! यदुवंशशिरोमणे! तुमने सब सत्कर्म ही किया है। पृथ्वीपर रहनेवाले सब लोगोंका पालन किया है। वत्स! तुमने भूतलपर धर्मको स्थापित किया है। विष्णुरात (हस्तिनापति परीक्षित्) तुम्हारे मित्र होंगे तथा अन्य नरेश भी तुम्हारे वशमें रहेंगे। नृपश्रेष्ठ! तुम धन्य हो, तुम्हारी मथुरापुरी धन्य है, तुम्हारी सारी प्रजाएँ धन्य हैं तथा तुम्हारी व्रजभूमि भी धन्य है। तुम श्रीकृष्ण, बलराम, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्धका भजन करते हुए उत्तम भोग भोगो। नरेश्वर! निष्काम होकर राज्य करो' ॥ २६–३० ॥

उग्रश्रवा सूत कहते हैं—गर्गजीकी यह बात सुनकर नृपश्रेष्ठ राजा वज्रनाभ श्रीकृष्ण, संकर्षण, पितामह प्रद्युम्न तथा पिता अनिरुद्धका विरहावस्थामें स्मरण करके गद्गदकण्ठ हो गये। उनका मुख आँसुओंकी धारासे परिपूर्ण हो गया। गर्गने देखा, राजा वज्रनाभ दुःखी हो नीचेकी ओर मुख किये भूमिपर खड़े हैं। यह देख उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और वे उनका दुःख शान्त करते हुए-से बोले ॥ ३१-३२½ ॥

गर्गने पूछा—राजेन्द्र! क्यों रो रहे हो? मेरे रहते तुम्हें क्या भय है? तुम अपने दुःखका समस्त कारण मेरे सामने कहो ॥ ३३½ ॥

उनकी यह बात सुनकर भी राजा दुःखमग्न होनेके कारण कुछ बोल न सके। जब गुरुने पुनः पूछा तो वे गद्गदवाणीसे इस प्रकार बोले ॥ ३४½ ॥

राजाने कहा—देव! श्रीकृष्ण-संकर्षण आदि समस्त यादव मुझे यहाँ छोड़ परलोकमें चले गये, यह सोचकर ही मैं दुःखी हो गया। ब्रह्मन्! स्वामी, अमात्य, मित्र, राष्ट्र (जनपद), कोष, दुर्ग और सेना—राजाके ये सातों अङ्ग मुझ एकाकीके लिये प्रीतिकारक नहीं होते हैं। मैंने भगवान् श्रीकृष्णका चरित्र न तो देखा है और न किसीसे सुना ही है। आप यह चरित्र मुझसे कहिये। मैंने अपनी आँखोंसे तो केवल यादवोंका संहार ही देखा है, अतः मेरा दुःख दूर नहीं हो रहा है। चतुर्व्यूहरूपधारी श्रीहरिने पहले जिस पुरीको सुशोभित किया था, वह भी समुद्रमें डूब गयी और भगवान् श्रीकृष्ण भी भक्तिके परम धाम गोलोकको चले गये। शिष्यवत्सल गुरुदेव! आप ही बताइये, अब मैं किसके लिये जीवित रहूँ? आज ही वनको जाता हूँ। मेरे मनमें राज्य करनेकी इच्छा नहीं है ॥ ३५–३९ ॥

सूतजी कहते हैं—यदुकुलशिरोमणि वज्रनाभकी यह बात सुनकर मुनिश्रेष्ठ महात्मा गर्गने उनकी प्रशंसा की और उनका दुःख शान्त करते हुए-से वे सत्पुरुष गर्गमुनि राजा वज्रनाभसे बोले ॥ ४० ॥

गर्गने कहा—वृष्णिवंशतिलक! मेरी बात सुनो। यह शोकका विनाश करनेवाली है। समस्त पापोंको हरनेवाली, पवित्र तथा शुभ है। तुम सावधानीके साथ इसे श्रवण करो। पूर्वकल्पमें जो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कुशस्थली (द्वारका) पुरीमें विराजते थे, वे सदा और सर्वत्र विराजमान हैं। भूप! अब तुम भक्तिभावसे उनको देखो। आज मैं तुम्हें भगवान्‌की वह कथा सुनाऊँगा, जो भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली है। वसुधानाथ! श्रीकृष्ण तथा बलरामजीकी यह उत्तम कथा तुम सुनो ॥ ४१–४३ ॥

सूतजी कहते हैं—विप्रवर शौनक! ऐसा कहकर भगवान् गर्गने वज्रनाभको नौ दिनोंतक अपनी पवित्र संहिता सुनायी ॥ ४४ ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें अश्वमेध चरित्र-सुमेरु-प्रसङ्गमें 'गर्ग-वज्रनाभ संवाद' नामक पहला अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥

दूसरा अध्याय

श्रीकृष्णावतारकी पूर्वाङ्गगत लीलाओंका सक्षेपसे वर्णन

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार गर्गमुनिके मुखसे श्रीगर्गसंहिताकी कथा सुनकर राजा वज्रनाभ मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने गुरु गर्गाचार्यके चरणोंमें प्रणाम करके उनसे इस प्रकार कहा—'प्रभो! मुनिश्रेष्ठ! आज मैंने आपके मुखारविन्दसे जो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका चारु चरित्र सुना है, उससे मेरे सारे दु:ख दूर हो गये। कृपानाथ! मैं इस कथाश्रवणसे अतृप्त रह गया हूँ, अतः मेरा मन पुनः श्रीहरिके यशको सुननेके लिये उत्सुक है। आप कृपापूर्वक श्रीकृष्णके परम उत्तम चरित्रका वर्णन कीजिये। मुने! द्वारकामें महाराज उग्रसेनने पहले अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान किया था, उसके विषयमें कुछ बातें मैंने पूर्वकालमें सुनी थीं। आप उस अश्वमेध यज्ञका ही सम्पूर्ण चरित्र या वृत्तान्त मुझसे कहिये। मुनीश्वर! करुणामय गुरुजन अपने सेवापरायण शिष्यों तथा पुत्रोंसे उनके पूछे बिना भी गूढ़ रहस्यकी बातें बता दिया करते हैं'॥ १—५॥

सूतजी कहते हैं—यदुकुलगुरु गर्गमुनि वज्रनाभका ऐसा वचन सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और श्रीहरिके युगल-चरणारविन्दोंका स्मरण करते हुए उन राजाधिराजसे इस प्रकार बोले॥ ६॥

गर्गजीने कहा—यादवश्रेष्ठ! तुम धन्य हो, क्योंकि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंमें तुम्हारी ऐसी अविचल भक्ति हुई है, जो दूसरे मनुष्योंके लिये दुर्लभ है। वह भक्ति तुम्हें सहज सुलभ है, यह बड़े सौभाग्यकी बात है। राजन्! इस विषयमें मैं तुमसे प्राचीन इतिहास बता रहा हूँ, उसे सुनो। उसका श्रवण कर लेनेमात्रसे मनुष्य समस्त पापोंसे छुटकारा पा जाता है। राजन्! द्वापरमें पापियोंके भारसे पीड़ित हुई वसुन्धराने ब्रह्माजीके सामने अपना दुःख प्रकट किया। उसे सुनकर ब्रह्माजी श्रीहरिकी शरणमें गये और वहाँ उन्होंने पृथ्वीका सारा कष्ट कह सुनाया। यह सब सुनकर श्रीराधिकावल्लभ श्रीकृष्णने वसुधाको आश्वासन दिया और देवताओंके सहयोगसे उसका भार उतारनेका निश्चय किया॥ ७—१०॥

तदनन्तर मथुरामें वसुदेवका देवकीके साथ विवाह हुआ। फिर कंसको सावधान करनेवाली आकाशवाणी हुई। देवकीके पुत्रसे अपने वधकी बात जानकर कंसने क्रमशः उसके छः पुत्र मार डाले। नरेश्वर! कंसको भय होने लगा और उस भयके आवेशमें उसे सर्वत्र कृष्ण-ही-कृष्ण दीखने लगे। इसके बाद भगवान्‌ने योगमायाको आज्ञा दी, जिसके अनुसार उसने देवकीके गर्भका संकर्षण करके रोहिणीके गर्भमें उसे स्थापित कर दिया और स्वयं वह यशोदाके गर्भसे कन्याके रूपमें प्रकट हुई। इधर भगवान् देवकीके गर्भमें आविष्ट हुए और ब्रह्मा आदि देवताओंने आकर उनकी स्तुति की। फिर श्रीकृष्णका प्राकट्य हुआ। भगवान्‌के बालस्वरूप रूपकी दिव्य झाँकीका वर्णन ऋषि वेदव्यासद्वारा किया गया है। वसुदेवने भगवान्‌के उस दिव्य रूपका स्तवन किया। जगदीश्वर श्रीकृष्णने देवकी और वसुदेवके पूर्वजन्म-सम्बन्धी पुण्यकर्मोंका वर्णन किया। तदनन्तर भगवदीय आज्ञाके अनुसार वसुदेवजी बालकृष्णको गोकुल पहुँचा आये और वहाँसे यशोदाकी कन्या उठा लाये। कंसने उस कन्याको पत्थरपर दे मारा। परंतु वह आकाशमें उड़ गयी और कंसको यह बताती गयी कि 'तेरा काल कहीं प्रकट हो चुका है।' कंसका निकट जाकर वसुदेव-देवकीको सान्त्वना देना और पत्नीसहित वसुदेवको बन्धनमुक्त कर देना आदि बातें घटित हुईं। कंसने दैत्योंकी सभामें दुष्टतापूर्ण मन्त्रणा की और साधुपुरुषों तथा बालकोंके प्रति उपद्रव प्रारम्भ करवाया॥ ११—१४॥

व्रजमें श्रीकृष्णका प्राकट्य होनेपर व्रजराज नन्दके भवनमें महान् उत्सव मनाया गया। नन्दरायजी राजा कंसको भेंट देनेके लिये मथुरा गये और वहाँ वसुदेवजीके साथ उनकी भेंट हुई। उधर गोकुलमें विषमिश्रित स्तनपान करानेके लिये आयी हुई पूतनाके प्राणोंको भगवान् उसके दूधके साथ ही पी गये। उसके मरे हुए विकराल शरीरको देखकर मथुरासे लौटे हुए नन्दादि गोपोंको बड़ा विस्मय हुआ। उसके बाद एक दिन श्रीकृष्णके पैरोंका हल्का-सा आघात पाकर दूध-दहीके मटकोंसे भरा हुआ छकड़ा उलट गया। बवंडररूपधारी 'तृणावर्त' नामक दैत्यका शिशु श्रीकृष्णके हाथों वध हुआ। एक दिन मैया यशोदा बालकृष्णको लाड़-प्यार कर रही थीं। इतनेमें ही उन्हें जँभाई

आयी और उनके मुखमें माताको सम्पूर्ण विश्वका दर्शन हुआ। तदनन्तर बलराम और श्रीकृष्णके नामकरण-संस्कार हुए। फिर व्रजभूमिमें इन दोनों भाइयोंकी बाललीला होने लगी। गोपाङ्गनाओंके घरोंमें घुसकर धूर्ततापूर्ण व्यवहार— दही-माखन चुरानेके खेल चलने लगे। प्रसङ्गवश किसी दिन मिट्टी खा ली और माताको मुखमें सम्पूर्ण विश्वका दर्शन कराया। नन्द और यशोदाको श्रीकृष्णके लालन-पालनका सुख कैसे सुलभ हुआ, इस प्रसङ्गमें उन दोनोंके पूर्वजन्मसम्बन्धी सौभाग्यवर्धक सत्कर्मकी चर्चा हुई। माखनकी चोरी, रस्सीसे ऊखलमें बलपूर्वक बाँधा जाना, 'यमलार्जुन' नामक वृक्षोंका भङ्ग होना, उनके शापकी निवृत्ति, उन दोनोंके द्वारा भगवान्‌की स्तुति, बाललीला, उपनन्द आदिकी मन्त्रणा, व्रजसे वृन्दावन-गमन, वहाँ समवयस्क ग्वालबालोंके साथ बछड़े चराना, वहीं प्रसङ्गमें वत्सासुर, बकासुर और अघासुरका वध, सखाओंके साथ श्रीहरिका यमुनातटपर प्रसन्नतापूर्वक भोजन, ब्रह्माजीके द्वारा बछड़ों और ग्वालबालोंका हरण, श्रीकृष्णका स्वयं ग्वाल-बाल और बछड़े बन जाना, ब्रह्माका आना और फिर मोह निवृत्त होनेपर लौटकर भगवान्‌की स्तुति करना, श्रीकृष्णका ग्वालबालोंके साथ विहार तथा वनमें गमन, गोचारणके प्रसङ्गमें बड़ी-बड़ी क्रीडाएँ, धेनुकासुर आदिका वध, सन्ध्याके समय व्रजमें आगमन तथा श्रीकृष्णका गोपीजनोंके नेत्रोंमें महान् उत्सव प्रदान करना आदि वृत्तान्त वर्णित हुए॥ १५—२३॥

कालियनागके विषसे दूषित जलको पीनेसे मरे हुए गौओंको श्रीहरिने जिलाया, कालियनागका दमन किया। उस समय नागपत्नियोंने भगवान्‌की स्तुति की और उनके साथ वार्तालाप किया। फिर इस शतकमें वर्णन किया कि यमुनाके ह्रदमें कालियनागका सम्बन्ध कैसे हुआ? तदनन्तर मुञ्जाटवीमें फैली हुई दावाग्निको पीकर भगवान्‌ने किस प्रकार गोप-गोपियोंके जीवनकी रक्षा की, इस बातका प्रतिपादन हुआ है। खेल-खेलमें ही प्रलम्बासुरका वध, दावानलसे गौओंकी रक्षा, वर्षा-वर्णन, शरद्-वर्णन, वेणुगीत, गोकुलकी गोपकिशोरियोंद्वारा कात्यायनीव्रतका अनुष्ठान, उनके वस्त्रोंका अपहरण, वृन्दावनके सौभाग्यका वर्णन, ग्वाल-बालोंका भगवान्‌के भेजनेसे भोजन माँगना और याज्ञिकोंका उन्हें ब्राह्मणियोंके पास भेजना, ब्राह्मणपत्नियोंपर भगवान्‌का कृपाप्रसाद, ब्राह्मणोंका अपनी मूढ़ताके लिये पश्चात्ताप, इन्द्रयज्ञकी प्रथा मिटाकर गोवर्धनपूजनका क्रम चलाना, कुपित हुए इन्द्रद्वारा की गयी घोर वृष्टिमें व्रजवासियोंकी रक्षाके निमित्त भगवान्‌का गोवर्धन पर्वतको छत्रकी भाँति धारण करना, देवराज इन्द्रके गर्वका चूर्ण करना, महर्षि गर्गके द्वारा नन्दरायके यहाँ उत्पन्न श्रीकृष्ण-बलरामके भावी जीवनके कर्मका वर्णन, गोपोंकी शङ्का, भगवान्‌के द्वारा उसका निवारण, इन्द्र-धेनु सुरभिके द्वारा भगवान्‌का गोविन्दपदपर अभिषेक और स्तवन, नन्दजीको वरुणलोकसे छुड़ाकर लाना, गोपोंको वैकुण्ठलोकमें ले जाकर उसका दर्शन कराना, पाँच अध्यायोंमें रातमें होनेवाली रासक्रीडाका वर्णन, नन्दका अजगरके मुखसे उद्धार, शङ्खचूडका वध, गोपियोंके युगलगीत, अरिष्टासुरका वध, कंस और नारदका संवाद, कंस और अक्रूरकी बातचीत, श्रीकृष्णके द्वारा केशीका वध, नारदमुनिका श्रीकृष्णसे वार्तालाप, व्योमासुरका वध, अक्रूरका गोकुलमें आगमन, प्रभुके दर्शनजनित आनन्दसे उनके शरीरका पुलकित होना, अन्तःकरणका हर्षसे खिल उठना, रोमाञ्च होना, गद्गद वाणीमें बोलना, बलराम और श्रीकृष्णके साथ उनकी बातचीत, उनके द्वारा कंसकी चेष्टाओंका वर्णन, बलराम और श्रीकृष्णका मथुराको प्रस्थान, गोपीजनोंका विलाप, मथुरागमन, मार्गमें ही यमुनाके ह्रदमें प्रविष्ट हुए अक्रूरको भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन, उनके द्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति, फिर उन सबका मथुरापुरीमें आगमन, नगरका दर्शन, नगरकी सम्पत्तिका वर्णन, रजकका शिरश्छेदन, दर्जीको वरदान, सुदामा मालीको वरदान, कुब्जाको श्रीकृष्णका दर्शन, कंसके धनुषका भञ्जन, उसके सैनिकोंका वध, कंसको दुर्निमित्तोंका दिखायी देना, कंसका रङ्गोत्सव, कुवलयापीड नामक हाथीका युद्धमें मारा जाना, पुरवासियोंको बलराम और श्रीकृष्णका दर्शन, उनके प्रति नागरिकोंके भावमें प्रसन्नताकी वृद्धि, रङ्गशालामें मल्लोंका मारा जाना, बन्धुओंसहित कंसका वध, श्रीकृष्ण-बलरामद्वारा माता-पिताको आश्वासन तथा समस्त सुहृदोंका सम्मान, उग्रसेनका राजाके पदपर अभिषेक, नन्द आदि गोपोंका व्रजभूमिकी ओर लौटना, श्रीकृष्ण-बलरामका विधिवत् द्विजाति-संस्कार, गुरुके घर जाकर विद्याध्ययन, उनके मरे हुए पुत्रको यमलोकसे लाकर लौटाना, इसी प्रसङ्गमें 'पञ्चजन' नामक दैत्यका वध, पुनः श्रीकृष्णका मथुरा-आगमन, मथुरामें महान् उत्सव, उद्धवको व्रजमें भेजना, गोपियोंका विलाप, उद्धवद्वारा उन्हें सान्त्वना प्रदान, व्रजगोपियोंसे मिलकर फिर श्रीकृष्णका उनसे गोकुलमें आना,

फिर कोल-दैत्यका वध, कुब्जा मिलन, अक्रूरको हस्तिनापुर भेजना तथा पाण्डवोंके प्रति विषमतापूर्ण बर्ताव रोकनेके लिये धृतराष्ट्रको समझाना इत्यादि प्रसङ्गोंका वर्णन किया गया है ॥ २४–४२ ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें अश्वमेध खण्डके अन्तर्गत 'श्रीकृष्णकी लीलाओंका वर्णन' नामक दूसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

तीसरा अध्याय

जरासंधके आक्रमणसे लेकर पारिजात-हरणतककी श्रीकृष्णलीलाओंका संक्षिप्त वर्णन

गर्गजी कहते हैं—राजन् ! अपने दामाद कंसके वधका समाचार सुनकर राजा जरासंध सतप्त हो उठा । उसने कई अक्षौहिणी सेनाएँ लेकर मथुरापुरीपर अनेक बार आक्रमण किया और उसकी समस्त सेनाओंका श्रीकृष्ण और बलरामने संहार कर डाला । उभय पक्षकी सेनाओंमें बारंबार युद्धका अवसर आनेपर श्रीकृष्णने विश्वकर्माद्वारा समुद्रमें 'द्वारका' नामक दुर्गकी रचना करवायी । इसी बीचमें कालयवनका भी आक्रमण हुआ और मुचुकुन्दद्वारा उसका वध करवाकर भगवान्ने उनके मुखसे अपना स्तवन सुना, फिर उन्हें वर देकर बदरिकाश्रम भेज दिया और वहाँसे लौटकर म्लेच्छ सैनिकोंका वध करके उन सबका धन द्वारकापुरीमें पहुँचानेकी व्यवस्था की । इतनेमें ही घमंडी राजा जरासंध आ पहुँचा । भगवान् किसी विशेष अभिप्रायसे अबकी बार युद्ध छोड़कर उसके सामनेसे पलायन कर गये । 'रैवत' नामवाले राजाने द्वारकापुरीमें आकर अपनी कन्या रेवती बलदेवजीके हाथमें समर्पित कर दी । एक समय राजकुमारी रुक्मिणीका प्रेम-संदेश सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण कुण्डिनपुरमें गये और वहाँ अम्बिकादेवीके मन्दिरसे अपनी प्रेयसी रुक्मिणीका अपहरण करके, वहाँके समस्त राजाओंको जीतकर द्वारकापुरीको निकल गये । तब राजाओंने चेदिराज शिशुपालको सान्त्वना दी और उसे चुपचाप घर लौट जानेको कहा । तत्पश्चात् एक विशेष प्रतिज्ञाके साथ रुक्मी युद्धके मैदानमें उतरा । श्रीकृष्णने पहले तो उसके साथ युद्ध किया, फिर उसे रथमें बाँधकर उसका मुण्डन कर दिया । इससे रुक्मिणीको बड़ा दुःख हुआ । बलरामजीने समझा-बुझाकर उन्हें शान्त किया और बलरामजीके ही कहनेसे रुक्मीको बन्धनसे छुटकारा मिला । इसके बाद द्वारकापुरीमें पहुँचकर श्रीकृष्णका रुक्मिणीके साथ बड़े आनन्दसे विधिपूर्वक विवाह संस्कार सम्पन्न हुआ ॥ १–६ ॥

तत्पश्चात् प्रद्युम्नकी उत्पत्ति कही गयी । उनका सूतिकागारसे अपहरण हुआ । मायावतीके कथनसे अपने पूर्व वृत्तान्तको जानकर प्रद्युम्नने शम्बरासुरका वध किया, फिर वे अपने घर लौट आये । इससे द्वारकावासियोंको बड़ा संतोष हुआ । सत्राजित् नामक यादवने भगवान् सूर्यकी कृपासे स्यमन्तकमणि प्राप्त की । उसे एक दिन श्रीहरिने माँगा । उसी मणिको अपने गलेमें बाँधकर सत्राजित्के छोटे भाई प्रसेनजित् शिकार खेलनेके लिये वनमें गये । वहाँ एक सिंहने उनको मार डाला । इससे श्रीहरिपर कलङ्क आया । उसका मार्जन करनेके लिये भगवान् श्रीकृष्ण वनमें ऋक्षराजकी गुफामें गये । वहाँ उन दोनोंमें घोर युद्ध हुआ । जाम्बवान्ने यह जानकर कि 'ये कोई साधारण मनुष्य नहीं, साक्षात् भगवान् हैं' इन्हें अपनी कन्या जाम्बवती समर्पित कर दी । भगवान्को जाम्बवान्की गुफामें जो मणि प्राप्त हुई थी, उसे उन्होंने सत्राजित्के यहाँ पहुँचा दिया । सत्राजित्ने अपनी बेटी सत्यभामाका विवाह श्रीकृष्णके साथ कर दिया और दहेजमें वह मणि उन्हें दे दी ॥ ७–१०½ ॥

तदनन्तर एक दिन बलरामजीके साथ श्रीकृष्णने हस्तिनापुरकी यात्रा की । इसी बीचमें अक्रूर और कृतवर्माकी प्रेरणासे शतधन्वाने सत्राजित्को मार डाला । यह समाचार पाते ही श्रीकृष्णने तत्काल शतधन्वाको भी मौतके घाट उतार दिया । बलरामजी मिथिलामें रहकर दुर्योधनको गदायुद्धकी शिक्षा देने लगे । इधर भगवान् श्रीकृष्ण अक्रूरको मणि देकर स्वयं इन्द्रप्रस्थ चले गये । वहाँ उन्हें कालिन्दीकी प्राप्ति हुई । उसके साथ श्रीहरिने अपनी द्वारकापुरीमें विवाह किया । इसी प्रकार मित्रविन्दा और सत्याके साथ भी उनका विवाह हुआ । तदनन्तर भद्रा और लक्ष्मणाका भी श्रीहरिके साथ विवाह हुआ । एक समय श्रीकृष्णने देवराज इन्द्रको जीतकर उनके पारिजातको ले लिया और उसे द्वारकापुरीमें लाकर अपनी प्रिया सत्यभामाको दे दिया ॥ ११–१५ ॥

पद्मनाभने पूछा—मुने ! भगवान् श्रीकृष्णने देवराज इन्द्रको जीतकर उनसे कल्पवृक्ष या पारिजातको लाकर जो अपनी प्रिया सत्यभामाको दिया, उसका क्या कारण है ? यह सारी कथा मुझे विस्तारपूर्वक सुनाइये ॥ १६ ॥

श्रीगर्गजीने कहा—किसी समय देवर्षि नारद स्वर्गसे पारिजातका एक फूल लेकर द्वारकापुरीमें आये। वह फूल लेकर श्रीकृष्णने अपनी पटरानी श्रीरुक्मिणीजीके हाथमें दे दिया। इससे सत्यभामाको बड़ा दुःख हुआ। वे कोपभवनमें चली गयीं। श्रीकृष्ण वहाँ जाकर कुपित हुई सत्यभामासे मिले और बोले—'तुम दुःख न मानो, मैं तुम्हें पारिजातका वृक्ष ही लाकर दे दूँगा।' उसी समय इन्द्रने आकर श्रीकृष्णके समक्ष भौमासुरकी सारी चेष्टाएँ बतायीं। यह सुनकर भगवान्ने हाथ जोड़े इन्द्रकी ओर देखते हुए कहा ॥ १७–१९ ॥

श्रीकृष्ण बोले—'वृत्रसूदन ! देखिये, मेरी प्रिया सत्यभामा दुःखी होकर रो रही है। इसका यह रोदन पारिजात वृक्षके लिये ही है। बताइये, मैं क्या करूँ ? हरे ! यदि आप सत्यभामाके लिये पारिजात वृक्ष दे देंगे तो मैं सेनासहित भौमासुरका संहार कर डालूँगा, इसमें संशय नहीं है।' श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर देवराज इन्द्र जोर जोरसे हँसते हुए बोले ॥ २०-२१ ॥

इन्द्रने कहा—श्रीकृष्ण ! तुम नरकासुरका वध करके नन्दनवनमें आओ। पारिजातके वृक्ष हैं, उन सबको स्वतः ले लेना ॥ २२ ॥

'एवमस्तु' कहकर भगवान् श्रीकृष्ण सत्यभामाके साथ गरुड़के कंधेपर आरूढ़ हो प्राग्ज्योतिषपुरकी ओर चल दिये। जब इन्द्र स्वर्गको लौट गये, तब सत्यभामाने स्वयं श्रीहरिसे कहा ॥ २३ ॥

सत्यभामा बोलीं—भगवन् ! आप पहले इन्द्रसे वृक्षराज पारिजातको ले लें। हरे ! अपना काम निकल जानेपर इन्द्र आपका प्रिय कार्य नहीं करेंगे।' प्रियाकी यह बात सुनकर प्रियतमने उससे कहा ॥ २४-२५ ॥

श्रीकृष्ण बोले—यदि मेरे माँगनेपर शचीपति इन्द्र पारिजात नहीं देंगे तो मैं पुरन्दरकी छातीपर, जहाँ शचीदेवी चन्दनका अनुलेप लगाती हैं, गदासे चोट करूँगा ॥२६॥

—ऐसा कहकर भगवान् श्रीकृष्ण भौमासुरके नगरमें गये। वह नगर नाना प्रकारके सात दुर्गों और बड़े-बड़े असुरोंसे आवेष्टित था। श्रीकृष्णने गदा, चक्र और पाश आदिसे उन सातों दुर्गोंका भेदन कर दिया। मुर दैत्य और उसके पुत्र अस्त्र शस्त्र लेकर नगरकी रक्षामें नियुक्त थे। श्रीकृष्णने उन सबको कालके गालमें डाल दिया। तदनन्तर सेना सहित नरक अस्त्र शस्त्रोंकी वर्षा करता हुआ सामने आया। श्रीहरिने चक्र चलाकर नरकासुरके दो टुकड़े कर डाले तथा गरुड़के द्वारा उसकी सारी सेनाका संहार कर डाला। भौमासुरको मारकर यदुकुलतिलक जगन्नाथने उसके सारे उत्तम रत्न ग्रहण कर लिये ॥ २७–२९½ ॥

वहाँ उन्होंने कुमारी कन्याओंका एक विशाल समुदाय देखा। उनकी संख्या सोलह हजार एक सौ थी। वे देवों, सिद्धों तथा नरेशोंकी कुमारियाँ थीं। श्रीहरिने उन सबको अपनी द्वारकापुरीमें भेज दिया। फिर वे इन्द्रकी मणि और छत्र लेकर तथा देवमाता अदितिके दोनों कुण्डल प्राप्त करके पारिजात वृक्ष लानेके लिये इन्द्रपुरीकी ओर चले ॥ ३०–३२ ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधचरित्र-सुमेरुमें 'श्रीकृष्णकी कथाका वर्णन' नामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ ३ ॥

चौथा अध्याय

पारिजातहरण

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन् ! स्वर्गमें जाकर इन्द्रको उनका छत्र और मणि देकर श्रीकृष्णने माता अदितिको उनके दोनों कुण्डल अर्पित कर दिये। उसके बाद अपना अभिप्राय व्यक्त किया। श्रीहरिके अभिप्रायको जानकर भी जब इन्द्रने पारिजात वृक्ष नहीं दिया, तब माधवने देवताओंको पराजित करके पारिजातको बलपूर्वक अपने अधिकारमें ले लिया ॥ १-१ ॥

सूतजी कहते हैं—शौनक ! यह कथा सुनकर यादव नरेश वज्रको बड़ा विस्मय हुआ। श्रीहरिके गुणोंमें श्रद्धा रखते हुए उन्होंने पुनः अपने गुरुसे पूछा—भगवन् ! इन्द्र तो

देवताओंके राजा हैं। वे यह जानते हैं कि श्रीकृष्ण साक्षात् परमेश्वर श्रीहरि हैं, तथापि उन्होंने भगवान्‌के प्रति अपराध कैसे किया ? यह ठीक-ठीक बताइये। इन्द्रकी चेष्टाको सत्यभामाने पहले ही भाँप लिया था और श्रीकृष्णके सामने सुस्पष्ट बता भी दिया था। अतः इस प्रसङ्गको सुननेके लिये मेरे मनमें बड़ी उत्कण्ठा है। आप इन्द्र और माधवके इस युद्धका मेरे समक्ष विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये ॥ ३-५ ॥

श्रीगर्गजी बोले—राजन् ! अदितिने भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति और इन्द्रने भी पारिजात ले जानेके लिये स्वीकृति दे दी, तब भगवान् श्रीकृष्ण नन्दनवनमें गये और वहाँ बहुत-से पारिजात वृक्षोंका अवलोकन करने लगे। उन सबके बीचमें एक महान् वृक्ष था, जो बहुत-सी मञ्जरियोंके पुञ्जको धारण किये अनुपम शोभा पा रहा था। कहते हैं, वह वृक्ष क्षीरसागरके मन्थनसे प्रकट हुआ था। उससे कमलकी-सी सुगन्ध निकल रही थी। वह देवताओंके लिये सुखद वृक्ष ताँबेके समान रंगवाले नूतन पल्लवोंसे परिवेष्टित था। वह सुन्दर दिव्य वृक्ष उस वनका विभूषण था और उसकी छाल सुनहले रंगकी थी ॥ ६-८ ॥

उस पारिजात वृक्षको देखकर मानिनी सत्यभामाने माधवसे कहा—'श्रीकृष्ण ! इस सम्पूर्ण वनमें यही वृक्ष सबसे श्रेष्ठ है। अतः मैं इसीको पसंद करती हूँ।' प्रियाके इस प्रकार कहनेपर जगदीश्वर श्रीकृष्णने हँसते हुए पारिजात वृक्षको उखाड़कर लीलापूर्वक गरुड़की पीठपर रख लिया। उसी समय क्रोधसे भरे हुए समस्त वनपाल धनुष-बाण धारण किये उठे और फड़कते हुए ओठोंसे श्रीकृष्णको सम्बोधित करके इस प्रकार कहने लगे—'ओ मनुष्य ! यह इन्द्रवल्लभा महारानी शचीका वृक्ष है। तुमने क्यों इसका अपहरण किया है ? अपनी इच्छासे अकस्मात् हम सबको तिनकेके समान समझकर—हमारा अपकार करके तुम कहाँ जाओगे ? पूर्वकालमें समुद्र-मन्थनके समय देवताओंने इन्द्राणीकी प्रसन्नताके लिये इस वृक्षको उत्पन्न किया है। इसे लेकर तुम सकुशल नहीं रह सकोगे। जिन्होंने पहले समस्त पर्वतोंके पंख काट गिराये थे, उन वृत्रासुरनिषूदन वीर महेन्द्रको जीतकर ही तुम इस वृक्षको ले जा सकोगे। अतः महावीर ! पारिजातको यहीं छोड़कर चले जाओ। हम देवराज इन्द्रके अनुचर हैं, इसलिये यह वृक्ष तुम्हें नहीं ले जाने देंगे। जब साक्षात् पुरन्दर यह पारिजात वृक्ष तुम्हें दे देंगे, तब हम नहीं रोकेंगे। उस दशामें हम केवल वनके रक्षक होंगे। इस वृक्षके नहीं' ॥ ९-१६ ॥

वनरक्षकोंका यह भाषण सुनकर सत्यभामा रोषसे तमतमा उठीं। नरेश्वर ! श्रीहरि तो चुप रह गये, किंतु सत्यभामा निर्भय होकर उन रक्षकोंसे बोलीं ॥ १७ ॥

सत्याने कहा—यदि यह पारिजात अमृत-मन्थनके समय समुद्रसे प्रकट हुआ है, तब तो यह सामान्यतः सम्पूर्ण लोकोंकी सम्पत्ति है। तुम्हारी शची अथवा देवराज इन्द्र इस पारिजातके कौन होते हैं ? उन्हें अकेले इसपर अपना स्वत्व जतानेका क्या अधिकार है ? समुद्रसे प्रकट हुई वस्तुको अकेले देवराज इन्द्र कैसे ले सकते हैं ? वनरक्षको ! जैसे अमृत, जैसे चन्द्रमा और जैसे लक्ष्मी समस्त संसारकी साधारण सम्पत्ति हैं, उसी प्रकार यह पारिजात वृक्ष भी। यदि अपने पतिके बाहुबलका भारी घमंड लेकर शची हठ ही इसे अपने वशमें रोक रखना चाहती हैं तो जाओ, कह दो, क्षमा करनेकी आवश्यकता नहीं है; उनसे जो कुछ करते बने, कर लें। सत्यभामा पारिजात वृक्षका अपहरण करवा रही है। तुम शीघ्र जाकर उस पुलोम दानवकी पुत्रीको मेरी यह बात कह सुनाओ। जिसका एक-एक अक्षर अत्यन्त गर्व और उद्दण्डतासे भरा हुआ है, वह यह वचन सत्यभामा कहती है। यदि तुम पतिकी प्राणवल्लभा हो और यदि पति देव तुम्हारे वशमें हैं तो पारिजातका अपहरण करनेवाले मेरे पतिके हाथसे इस वृक्षको रोक लो। मैं तुम्हारे पति इन्द्रको भी जानती हूँ। तुम सब देवता क्या हो ? यह सब मैं अच्छी तरह समझती हूँ, तथापि मैं मानुषी होकर भी तुम्हारे इस पारिजातका अपहरण करवा रही हूँ। (तुम रोक सको तो, रोको) ॥ १८-२३½ ॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—श्रीकृष्णवल्लभाकी यह बात सुनकर बेचारे वनरक्षक सन्न हो गये। उन्होंने इन्द्राणीके निकट जाकर उनकी कही हुई सारी बातें ज्यों-की-त्यों सुना दीं। रक्षकोंकी बात सुनकर शचीको बड़ा रोष हुआ। देवराज इन्द्र श्रीकृष्णको रोकनेके लिये नहीं जा रहे थे, अतः वे खीझकर बोलीं ॥ २४-२५½ ॥

शचीने कहा—देवराज ! तुम वज्रधारी हो। पाकशासन और वृत्रासुरके विनाशक हो। तुम्हें तिनकेके समान समझकर अत्यन्त बलशाली माधवने अपनी प्रियतमा सत्यभामाके लिये मेरा पारिजात ले लिया है [illegible]

श्रीकृष्णको कंधेपर धारण किये हुए ही पङ्खों और पञ्जोंसे तत्काल युद्ध आरम्भ कर दिया। वे अपनी चोंचसे देवताओंको चबाते और घायल करते हुए युद्धभूमिमें विचरने लगे। गरुड़की मार खाकर देवतालोग इधर-उधर भागने लगे। राजन्! इन्द्र और उपेन्द्र दोनों महाबली वीर एक दूसरेपर बाणोंकी वर्षा करते हुए जलकी धारा बरसानेवाले दो मेघोंके समान शोभा पाते थे। राजेन्द्र! उस समय गरुड़ ऐरावत हाथीके साथ युद्ध करने लगे। हाथीने अपने दाँतोंके आघातसे गरुड़को चोट पहुँचायी और गरुड़ने भी अपनी चोंच और पङ्खोंकी मारसे ऐरावतको छिन्न-भिन्न कर डाला॥ १२—१७½॥

यदुकुलतिलक श्रीकृष्ण अकेले ही समस्त देवताओं तथा वज्रधारी इन्द्रके साथ जूझ रहे थे। भगवान् श्रीकृष्ण इन्द्रपर और इन्द्र मधुसूदन श्रीकृष्णपर क्रोधपूर्वक बाणोंकी वर्षा करने लगे। वे दोनों एक-दूसरेको जीतनेकी इच्छा किये युद्ध कर रहे थे। जब सारे अस्त्र-शस्त्र और बाण कट गये, तब इन्द्रने तत्काल ही वज्र उठा लिया और भगवान् श्रीकृष्णने चक्र हाथमें ले लिया। देवेश्वरको वज्र और नरेश्वर श्रीकृष्णको चक्र हाथमें लिये देख उस समय चराचर प्राणियोंसहित तीनों लोकोंमें हाहाकार मच गया। वज्रधारी इन्द्रके चलाये हुए वज्रको भगवान् श्रीकृष्णने बायें हाथसे पकड़ लिया, परंतु अपना चक्र उनपर नहीं छोड़ा। केवल इतना ही कहा—'खड़ा रह, खड़ा रह!' इन्द्रके हाथमें वज्र नहीं था। गरुड़ने उनके वाहनको क्षत-विक्षत कर दिया था। वे लज्जित और भयभीत होकर भागने लगे। उन्हें इस दशामें देखकर सत्यभामा हँसने लगीं॥ १८—२३॥

राजन्! उधर शचीने जब देखा कि इन्द्र युद्धमें पीठ दिखाकर चले आये, तो वे रोषसे आगबबूला हो गयीं और फटकारकर बोलीं—'देवेश्वर! आप देवताओंके विशाल सेनाके साथ रहकर माधवके साथ युद्ध कर रहे थे, तथापि उन्होंने अकेले ही रणक्षेत्रमें आपको पराजित कर दिया। अतः आपके बल-पराक्रमको धिक्कार है। देवाधम! तुम चुपचाप तमाशा देखो। मैं स्वयं युद्धस्थलमें जाकर श्रीकृष्णका सामना करूँगी और पारिजातको छुड़ा लाऊँगी, इसमें संदेह नहीं'॥ २४—२६½॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! ऐसा कहकर क्रोधसे भरी हुई शची सोनेकी ही शिबिकापर आरूढ़ हो युद्धकी इच्छासे प्रस्थित हुईं। फिर समस्त देवता उनके साथ युद्धके मैदानमें गये। शचीको आयी देख श्रीकृष्णके मनमें युद्धके लिये उत्साह नहीं हुआ। तब सत्यभामाके अधर रोषसे फड़कने लगे। वे श्रीहरिसे बोलीं—'प्रभो! अब मैं शचीके साथ युद्ध करूँगी।' उनकी बात सुनकर श्रीकृष्णने हँसते हुए सुदर्शन चक्र उनके हाथमें दे दिया और स्वयं पारिजातको गरुड़पर रखकर उसे पकड़ लिया। जब श्रीहरिप्रिया सत्यभामा क्रोधपूर्वक युद्ध करनेपर उतर आयीं, तब ब्रह्माण्डमें सर्वत्र महान् कोलाहल मच गया। नरेश्वर! ब्रह्मा और इन्द्र आदि सब देवता भयभीत हो गये। राजन्! उसी समय इन्द्रकी प्रेरणासे देवगुरु बृहस्पतिजी वहाँ आये। आकर उन्होंने युद्धकी इच्छा रखनेवाली पुलोमपुत्री शचीको रोका॥ २६—३१½॥

श्रीबृहस्पतिने बोले—शची! मेरी बात सुनो। यह अनेक प्रकारकी बुद्धि और विचार देनेवाला है। श्रीकृष्ण तो साक्षात् भगवान् हैं और बुद्धिमती सत्यभामा साक्षात् लक्ष्मी। देवेन्द्रवल्लभे! तुम उनके साथ कैसे युद्ध करोगी? अतः इन्द्रके प्रति अवहेलना छोड़कर घरको लौट चलो। सत्यभामाको पारिजात देकर समस्त देवताओंकी भयसे रक्षा करो। जिनके भयसे हवा चलती है, जिनके डरसे आग जलती और जलाती है, जिनके भयसे मृत्यु सर्वत्र विचरता है, जिनके डरसे सूर्यदेव तपते हैं तथा ब्रह्मा, शिव एवं इन्द्र जिनसे सदा भयभीत रहते हैं, उन श्रीकृष्णको, जो भौमासुरका वध करके यहाँ आये हैं, तुम अच्छी तरह नहीं जानतीं॥ ३२—३६॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—देवगुरुकी यह बात सुनकर शची लज्जित हो सत्यभामा और श्रीकृष्णको नमस्कार करके अपने-आपको धिक्कारती हुई घरको लौट गयीं। तत्पश्चात् लज्जित हुए इन्द्रको नमस्कार करते देख श्रीकृष्णप्रिया सत्यभामाने कहा—'देवेन्द्र! अपने हाथसे वज्रके निकल जानेसे लज्जाका अनुभव न करो। इन्द्र-युद्धमें दोमेंसे एककी पराजय अवश्यम्भावी है।' उनका यह कथन सुनकर पाकशासन बोले॥ ३७—३९॥

इन्द्रने कहा—देवि! जिन आदि और मध्यसे रहित परमात्मामें यह सम्पूर्ण जगत् विद्यमान है, जिनसे इसकी उत्पत्ति हुई है तथा जिन सर्वव्यापी परमात्मासे ही इसका संहार होनेवाला है, जो सृष्टि, पालन और संहारके कारणभूत हैं, उनसे पराजित हुए पुरुषको लज्जा नहीं हो सकती है। जो समस्त भूतोंका उत्पत्ति-स्थान है, जिनमें अत्यन्त सूक्ष्म

पीछी धाराको हलके अग्रभागसे खींच लिया। भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा काशिराज पौण्ड्रकका वध किया गया। काशिराजके पुत्रोंने पुरश्चरण करके कृत्या उत्पन्न की, जिसने द्वारकापर आक्रमण किया। फिर सुदर्शनचक्रने कृत्याको जलाकर काशीपुरीको भी दग्ध कर दिया। रैवतक पर्वतपर बलरामने 'द्विविद' नामक वानरका वध किया। दुर्योधन आदिने जब साम्बको हस्तिनापुरके बन्धनागारमें बंद कर दिया, तब वहाँ बलरामजीका पराक्रम प्रकट हुआ। उग्रसेनके राजसूय यज्ञमें श्रीहरिने शकुनिका वध किया। देवर्षि नारदने द्वारकामें भगवान् श्रीकृष्णकी गृहस्थजनोचित लीलाओंका दर्शन किया ॥ ४–७ ॥

भगवान् श्रीकृष्णकी दिनचर्या, बंदी राजाओंके द्वारा भेजे गये दूतके मुखसे श्रीहरिकी स्तुति, भगवान्का यादवों तथा उद्धवके साथ इन्द्रप्रस्थगमन, गिरिव्रजमें भीमसेनके द्वारा जरासंधका वध, जरासंधपुत्र सहदेवका राज्याभिषेक, बन्धनमुक्त हुए राजाओंद्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति, राजसूय यज्ञमें श्रीहरिकी अग्रपूजा, शिशुपालका वध, दुर्योधनके अभिमानका खण्डन, प्रद्युम्न और शाल्वका सत्ताईस दिनोंतक युद्ध, श्रीकृष्णका द्वारकामें आगमन, शाल्व, दन्तवक्त्र और उसके भाई विदूरथका श्रीकृष्णके हाथसे लीलापूर्वक वध आदि वृत्तान्त घटित हुए ॥ ८–११ ॥

राजन्! तदनन्तर कौरवोंने हस्तिनापुरमें कपटद्यूतका आयोजन करके उसमें भाइयों और भार्यासहित युधिष्ठिरको हराया तथा वे अपनी माता कुन्तीको विदुरके घरमें रखकर वनको चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने बहुत दिनोंतक विभिन्न वनप्रदेशोंमें निवास किया। तत्पश्चात् दुर्योधन राजा बन बैठा और बड़ी प्रसन्नताके साथ पृथ्वीका पालन करने लगा, परंतु पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरके चले जानेपर प्रजाजनोंने उसका अभिनन्दन नहीं किया। वनमें रहकर कष्ट उठानेवाले पाण्डवोंसे एक दिन बलराम और श्रीकृष्ण मिले और दोनोंने उन्हें धीरज बँधाया। पाण्डवोंसे मिलकर श्रीकृष्ण द्वारका लौट आये। उन्होंने उग्रसेनकी सुधर्मा-सभामें कौरवोंकी सारी कुचेष्टाएँ कह सुनायीं। यह सब सुनकर समस्त यादव विस्मित होकर बोले ॥ १२–१६½ ॥

यादवोंने कहा—अहो! राजा धृतराष्ट्रने यह क्या किया! उन्होंने दीन-दयनीय भतीजोंको कपटद्यूतमें जीतकर अधर्मपूर्वक घरसे निकाल दिया। राज्यलोलुप कौरव अपने अधर्मसे नष्ट हो जायँगे और भगवान् पाण्डवोंको राज्य-सम्पत्ति प्रदान करेंगे ॥ १७–१८½ ॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—नृपेश्वर! यादवोंकी यह बात सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण सायंकाल अपने घरमें आये और माताको प्रणाम किया। पुत्रको आया और प्रणाम करता देख देवकीने प्रसन्नतापूर्वक शुभ आशीर्वाद दिया और उस सती-साध्वी देवीने बड़े प्यारसे उनको भोजन कराया। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण अपनी रानियोंके महलमें आये और प्रियाजनोंसे पूजित हो वहीं शयन किया ॥ १९–२२ ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'श्रीकृष्णचरित्र वर्णन' नामक छठा अध्याय पूरा हुआ ॥ ६ ॥

सातवाँ अध्याय

देवर्षि नारदका ब्रह्मलोकसे आगमन; राजा उग्रसेनद्वारा उनका सत्कार, देवर्षिद्वारा अश्वमेध यज्ञकी महत्ताका वर्णन, श्रीकृष्णकी अनुमति एवं नारदजीद्वारा अश्वमेध यज्ञकी विधिका वर्णन

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! एक समय देवर्षि नारद बलराम और श्रीकृष्णसे मिलनेके लिये अपना वीणा बजाते और श्रीकृष्णलीलाओंका गान करते हुए ब्रह्मलोकसे चलकर समस्त लोकोंको देखते हुए भूतलपर आये। वे सूर्यदेवके समान तेजस्वी जान पड़ते थे। उनके साथ तुम्बुरु भी थे। पिङ्गलवर्णकी जटाओंका भार उनके मस्तककी शोभा बढ़ा रहा था। उनकी अङ्गकान्ति कुछ-कुछ श्याम थी, नेत्र मृगोंके नयनोंके समान विशाल थे, भालदेशमें चन्दनके तिलक शोभा दे रहे थे। उन्होंने श्वेत धौतवस्त्र तथा रेशमी पीताम्बर धारण किये हुए थे। रुद्राक्षकी माला और गोपीचन्दन। मण्डित स्वर्णिम पदक पहनी थी, वे सब अपनी सुषमासे आनन्द सुशोभित होते थे ॥ १–४ ॥

राजा उग्रसेन सुधर्मा सभामें देवराजके दिये सिंहासनपर विराजमान थे। देवर्षिको आया देख वे उठकर खड़े हो गये और चरणोंमें प्रणाम करके उन्हें बैठानेके लिये सिंहासन दिया। फिर उनके चरण पखारकर उत्तम विधिसे पूजन

पारिजात-हरण—इन्द्र-पराजय [गा० उ० अ० ८

बृहस्पतिका शचीको समझाना [गाँ० उ० अ० ५

राजाने कहा—गोविन्ददेव ! अब मैं तुम्हारी कृपासे अश्वमेधका अनुष्ठान अवश्य करूँगा और यह आपकी कृपासे शीघ्र पूर्ण हो जायगा । अब आप अश्वमेधका सारा विधि-विधान मुझे विस्तारपूर्वक बताइये ॥ ३५½ ॥

राजाका यह वचन सुनकर विस्तृत यशवाले भगवान् श्रीकृष्ण बोले—'यदुकुलतिलक महाराज ! अश्वमेध यज्ञकी विधि आप देवर्षि नारदजीसे पूछिये । ये सब कुछ जानते हैं, अतः आपके सामने उसका वर्णन करेंगे ।' राजन् ! श्रीहरिका यह वचन सुनकर यदुराज उग्रसेन आनन्दमग्न हो गये । नरेश्वर ! उन्होंने सभामें बैठे हुए देवर्षिसे इस प्रकार पूछा—'देवर्षे ! अश्वमेध यज्ञमें घोड़ा कैसा होना चाहिये ? उसमें भाग लेनेवाले श्रेष्ठ द्विजोंकी संख्या कितनी होनी चाहिये ? ब्रह्मन् ! उसमें दक्षिणा कैसी हो तथा मुझ यजमानको किस तरहसे व्रतका पालन करना चाहिये, यह सब बताइये' ॥३६—३९॥

उग्रसेनकी यह बात सुनकर देवताओंके सम्मान्य दर्शनीय देवर्षि नारद श्रीकृष्णके ऊपर प्रेमपूर्ण दृष्टि डालकर मुसकराते हुए-से बोले ॥ ४० ॥

श्रीनारदजीने कहा—महाराज ! विज्ञ पुरुषोंका कथन है कि इस यज्ञमें चन्द्रमाके समान श्वेत वर्णवाले अश्वका उपयोग होना चाहिये । उसका मुख लाल हो, पूँछ पीले रंगकी हो तथा वह देखनेमें मनोहर, सर्वाङ्गसुन्दर एवं दिव्य हो । उसके कान श्यामवर्णके तथा नेत्र सुन्दर होने चाहिये । नरेश्वर ! चैत्र मासकी पूर्णिमा तिथिको वह अश्व स्वच्छन्द विचरनेके लिये छोड़ा जाना चाहिये । बड़े-बड़े वीर योद्धा एक वर्षतक साथ रहकर उस उत्तम अश्वकी रक्षा करें । जबतक वह अपने नगरमें न लौट आवे, तबतक उसकी प्रयत्नपूर्वक रक्षा की जानी चाहिये । यजमान उतने कालतक नियमसे रहे और प्रयत्नपूर्वक अपने उद्देश्यकी सिद्धिके लिये प्रयत्न करे । वह अश्व जहाँ-जहाँ मूत्र और पुरीष करे, वहाँ-वहाँ ब्राह्मणोंद्वारा हवन कराना तथा एक सहस्र गौओंका दान करना चाहिये । सोनेके पत्रपर अपने नाम और बल-पराक्रमका सूचक वाक्य लिखकर उस अश्वके भालमें बाँध देना चाहिये तथा जगह-जगह यह घोषणा करानी चाहिये—'समस्त राजालोग सुनें, मैंने यह अश्व छोड़ा है । यदि कोई राजा मेरे श्यामकर्ण अश्वको अभिमानवश बलपूर्वक पकड़ लेगा, उसे बलात् परास्त किया जायगा ।' नरेश्वर ! इस यज्ञके आरम्भमें तीस हजार ऐसे ब्राह्मणोंके वरण करनेका विधान है, जो वेदोंके विद्वान्, सम्पूर्ण शास्त्रोंके तत्त्वज्ञ, कुलीन और तपस्वी हों ॥ ४१—४८ ॥

अब मैं इस यज्ञमें दी जानेवाली दक्षिणाके विषयमें बताता हूँ । तुम समर्थ हो, अतः सुनो । महाराज ! अश्वमेध यज्ञमें ब्राह्मणोंकी दक्षिणा इस प्रकार है—प्रत्येक द्विजको एक हजार घोड़े, सौ हाथी, दो सौ रथ, एक-एक सहस्र गौ तथा बीस-बीस भार सुवर्ण देने चाहिये । यह यज्ञके प्रारम्भकी दक्षिणा है । यज्ञ समाप्त होनेपर भी इतनी ही दक्षिणा देनी चाहिये । असिपत्र-व्रतका नियम लेकर ब्रह्मचर्य पालनपूर्वक रात्रिमें पत्नीके साथ भूतलपर एक साथ शयन करना चाहिये । महाराज ! एक वर्षतक ऐसे व्रतका पालन आवश्यक है । दीनजनोंको अन्न एवं बहुत धन देना चाहिये । राजेन्द्र ! इस विधिसे यह यज्ञ पूर्ण होगा । असिपत्र-व्रतसे युक्त होनेपर यह यज्ञ रघुसम्बन्धक पुत्ररूपी फल प्रदान करनेवाला है । भीष्मके बिना दूसरा कौन ऐसा मनुष्य है, जो कामदेवको जीत सके । इसलिये भारु हृदयके लोग इस कठिन एवं अद्भुत व्रतका पालन नहीं करते हैं । नृपश्रेष्ठ ! यदि आपमें कामदेवको जीतनेकी शक्ति हो तो आप गर्गाचार्यको बुलाकर यज्ञका आरम्भ कर दीजिये ॥ ४९—६ ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'यज्ञ-सम्बन्धी उद्योगका वर्णन' नामक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७ ॥

आठवाँ अध्याय

यज्ञके योग्य श्यामकर्ण अश्वका अवलोकन

श्रीगर्गजी कहते हैं—देवर्षि नारदजीका सुस्पष्ट अक्षरोंसे युक्त यह वचन सुनकर राजर्षि उग्रसेन चकित हो गये । उन्होंने हँसते हुए-से उनसे कहा ॥ १ ॥

राजा बोले—मुने ! मैं अश्वमेध यज्ञ करूँगा । आप इस यज्ञके योग्य अश्वको मेरी अश्वशालामें जाकर देखिये । बहुत-से अश्वोंके बीचसे एकको छाँट लीजिये ॥२॥

राजाकी यह बात सुनकर 'बहुत अच्छा' कहकर देवर्षि नारद यज्ञके योग्य अश्व देखनेके लिये भगवान्

का निश्चय किया है। मुने! उस यज्ञ-महोत्सवको आप शीघ्र पधारें'॥ २-४॥

उन दूतोंका यह कथन सुनकर मैं गर्गाचलसे द्वारका पुरीकी ओर चला। नृपश्रेष्ठ! उस यज्ञका दर्शन करनेके लिये मेरे मनमें भी बड़ा कौतूहल था। तदनन्तर आनर्तदेशमें दूरसे ही मुझे द्वारकापुरी दिखायी दी, जो नाना प्रकारके वृक्षों तथा अनेकानेक उपवनोंसे सुशोभित था। बहुत-से सरोवर, बावलियाँ तथा नाना प्रकारके पक्षी उस पुरीकी शोभा बढ़ा रहे थे। नृपेश्वर! वहाँके सरोवरोंमें नीलकमल, रक्तकमल, श्वेतकमल और पीतकमल खिले हुए थे। कुमुद और शुक्ल पुष्प भी उनकी शोभा बढ़ाते थे। बिल्व, कदम्ब, बरगद, जामुन, ताड़, तमाल, बकुल (मौलसिरी), नागकेसर, पुन्नाग, कोविदार, पीपल, जम्बीर (नीबू), हरसिंगार, आम, आमड़ा, केवड़ा, गोखरी, कदली, जामुन, अंगूर, पिण्डखजूर, खदिर, पलविन्दु, अगर-तगर, चन्दन, रक्तचन्दन, पलाश, कपित्थ, पाकर, बेंत, ताल, मल्लिका, जूही, मालती (मोगरा), मदनबाण, सुमुखी, प्रियावली, गुल्मवल्ली, खिले हुए कर्णिकार (कनेर), सहस्र कन्दुक, अगस्त्य पुष्प, सुदर्शन, चन्द्रक, कुन्द, कर्णपुष्प, दाडिम (अनार), अनुजीर (अंजीर), नागरंग (नारंगी), आड़ू, सीताफल, पूगीफल, बादाम, लूक, राजादन, एला, सेवती, देवदारु तथा इसी तरहके अन्यान्य छोटे और बड़े वृक्षोंसे श्रीहरिकी नगरी द्वारका शोभा पा रही थी। राजेन्द्र! वहाँ मोर, सारस और शुक कलरव करते थे। हंस, परेवा, कबूतर, कोयल, मैना, चकवा, खञ्जरीट तथा चटक (गौरैया) आदि समस्त सुन्दर पक्षियोंके समुदाय वहाँ वैकुण्ठसे आये थे, जो मधुर वाणीमें 'कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण' गा रहे थे॥ ५—१७॥

राजन्! इस तरह चलते-चलते मैंने द्वारकापुरी देखी, जो ताँबे, चाँदी और सुवर्णके बने हुए तीन दुर्गों (परकोटों) से घिरी हुई थी। दिव्य प्रभासे परिपूर्ण रैवतक पर्वत (गिरनार), समुद्र तथा पापका नाश करनेवाली गोमती— इन सबसे घिरी हुई श्रीकृष्णनगरी द्वारकापुरी अत्यन्त रमणीय दिखायी देती थी। उस पुरीमें मङ्गलमय उत्सवकी सूचक वन्दनवारें लगी थीं। वहाँ सोनेके मण्डप शोभा पाते थे और सदा हृष्ट-पुष्ट रहनेवाले लोगोंसे वह पुरी भरी हुई थी। सोनेके हाट-बाजारों तथा सुन्दर ध्वजा-पताकाओंसे द्वारकापुरीकी अनुपम शोभा हो रही थी। वहाँ बहुत-से ऊँचे-ऊँचे विष्णु-मन्दिर तथा शिव-मन्दिर दृष्टिगोचर होते थे। बड़े-बड़े शौर्यसम्पन्न यादव-वीर उस पुरीकी शोभा थे। सदनों विमान, गैलरी, चौराहे तथा चित्रशालाएँ करोड़ों उस पुरीकी शोभामें चार चाँद लगा रहे थे। सड़कों, अश्वशालाओं, गजशालाओं, गोशालाओं तथा अन्यान्य शालाओंसे सुशोभित द्वारकापुरीकी सड़कोंपर सुन्दर चाँदीके पत्र जड़े गये थे। उस पुरीमें नौ लाख सुन्दर महल थे। परमात्मा श्रीकृष्णने सोलह हजार एक सौ आठ भव्य भवनोंसे द्वारकापुरी वेष्टित-सी दिखायी देती थी। राजन्! उस नगरीके द्वार द्वारपर नियुक्त करोड़ों शूरवीर सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये दिन-रात रक्षा करते थे। वहाँके सब लोग घर-घरमें भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामके यश गाते और नाम तथा लीलाओंका कीर्तन सुनते थे। इस प्रकार सब कुछ देखता हुआ मैं सुधर्मा-सभामें गया। वहाँ ऊँचेपर चढ़ा था और तुलसीकी मालासे 'कृष्ण' नामका जप कर रहा था। राजर्षि उग्रसेन मुझे आया देख बड़े प्रसन्न हुए और इन्द्रके सिंहासनसे उठकर खड़े हो गये। भूपाल! उनके साथ छप्पन करोड़ अन्य यादव भी थे। उन्होंने नमस्कार करके मुझे सिंहासनपर बिठाया और मेरी पूजा की। समस्त यादवोंके समीप मेरे दोनों चरण धोकर राजाधिराज उग्रसेनने चरणोदकको सिरपर चढ़ाया और कहा॥ १८—३०॥

उग्रसेन बोले—विप्रेन्द्र! मैं देवर्षि नारदके मुखसे जिसके महान् फलका वर्णन सुन चुका हूँ, उस 'अश्वमेध' नामक यज्ञका आपकी आज्ञासे अनुष्ठान करूँगा। जिनके चरणोंकी सेवा करके पूर्ववर्ती भूपालोंने जगत्‌को तिनकेके समान मानकर अपने मनोरथके महासागरको पार कर लिया था, वे भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ साक्षात् विद्यमान हैं॥ ३१-३२॥

आगमनी (मैं) ने कहा—महाराज! यादवनरेश! आपने बहुत उत्तम निश्चय किया है। अश्वमेध यज्ञ करनेसे आपकी कीर्ति तीनों लोकोंमें फैल जायगी। नृपेश्वर! अश्वकी रक्षाके लिये कौन जायगा, इस बातका निश्चय कर लीजिये, क्योंकि भूमण्डलमें आपके शत्रु बहुत अधिक हैं। पूरे एक वर्षतक आपको अखण्डित-व्रतका पालन करना होगा, तभी यह श्रेष्ठ यज्ञ सकुशल सम्पन्न हो सकेगा। पूर्वकालमें राजसूय यज्ञके अवसरपर प्रद्युम्नने समस्त भूमण्डलपर विजय पायी थी। इस बार अश्वकी रक्षाके लिये क्या आप पुनः उन्हींको नियुक्त करेंगे?॥ ३३—३६॥

इस विषयमें यह मेरा निषेध नहीं मानता है, अतः आप स्वयं उसके पास जाकर मानपूर्वक उसे मना कीजिये ॥ ११ ॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर ब्रह्माजी चन्द्रमाको साथ लेकर प्रद्युम्ननन्दन अनिरुद्धको रोकनेके लिये गये। ब्रह्मा और चन्द्रमा ज्यों ही अनिरुद्धजीके समीप गये, त्यों ही अनिरुद्धके श्रीविग्रहमें वे तत्काल विलीन हो गये, यह देख शिव और इन्द्र आदि सब देवता विस्मयमें पड़ गये। समस्त यादवों, मुनियों और उग्रसेन आदि नरेशोंको भी महान् आश्चर्य हुआ। वज्रनाभ! सब लोग तुम्हारे पिताकी स्तुति करने लगे। इसीलिये मनीषी मुनि तुम्हारे पिता अनिरुद्धको पूर्णतम परमात्मा बताते हैं ॥ १२–१५ ॥

राजन्! तदनन्तर राजा उग्रसेन सभासे उठकर मन ही मन श्रीकृष्णको प्रणाम करके यज्ञ-सम्बन्धी कौतुकसे युक्त हो सुन्दर रत्नोंसे जटित अपने अन्तःपुरमें गये। वह अन्तःपुर अपने वैभवसे देवराज इन्द्रके भवनको भी लज्जित कर रहा था। वहाँ जाकर नृपश्रेष्ठ उग्रसेनने वस्त्राभूषणोंसे विभूषित, दासियोंसे सेवित तथा श्वेत चामरोंसे वीजित शचीके समान मनोहर मुखवाली रानी रुचिमतीको देखा, जो पर्यङ्कपर विराजमान थीं। नरेश्वर! अपने पति यादवराज उग्रसेनको वहाँ आया देख रानी सहसा उठकर खड़ी हो गयीं। उन्होंने यथोचित रीतिसे महाराजका समादर किया, तब पर्यङ्कपर बैठकर वृष्णिवंशियोंके स्वामी राजा उग्रसेन हँसते हुए मेघके समान गम्भीर वाणीमें अपनी परमप्रिया रुचिमतीसे बोले—'प्रिये! मैं भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञासे आज अश्वमेध यज्ञका आरम्भ करूँगा, जिसके प्रतापसे मनुष्य मनोवाञ्छित फल पा लेता है' ॥ १६—२१ ॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजाकी यह बात सुनकर शोकसे संतप्त हुई दीन-दुःखी रानीने अपने पुत्रोंका स्मरण करते हुए राजाधिराज उग्रसेनसे कहा ॥ २२ ॥

रानी बोली—महाराज! मैं पुत्रोंके दर्शनसे वञ्चित हूँ; अतः मुझे ये सारी सम्पत्तियाँ, जो देवताओंके लिये भी प्रार्थनीय हैं, नहीं रुचती हैं। आप सुखपूर्वक यज्ञका अनुष्ठान कीजिये (मुझे इससे कोई मतलब नहीं है)। नृपेश्वर! जब इस यज्ञके प्रतापसे सुन्दर पुत्र प्राप्त होता हो, तब तो मैं प्रसन्न चित्त होकर इसके अनुष्ठानमें आपके साथ रहूँगी ॥ २३-२४ ॥

रानीकी यह बात सुनकर राजाका मन उदास हो गया। जैसे श्राद्धदेव मनु अपनी पत्नी श्रद्धासे वार्तालाप करते हैं, उसी प्रकार वे पुनः अपनी प्रियासे बोले ॥ २५ ॥

राजाने कहा—भद्रे! मैं जो कहता हूँ, उसे ध्यान देकर सुनो। पुत्रोंकी कामना बहुत दुःखदायिनी होती है। अतः उसे छोड़कर तुम साक्षात् मुक्तिदाता परात्पर परमात्मा श्रीकृष्णका भजन करो। मैं बूढ़ा हो गया और तुम भी बूढ़ी हुई। फिर पुत्र कैसे होगा? इसलिये मोहजनक कारणभूत अज्ञानजनित शोकको त्याग दो ॥ २६-२७ ॥

राजन्! यादवराज उग्रसेनका यह विज्ञानप्रद उत्तम वचन सुनकर रानी रुचिमती अपने यदुकुलतिलक पतिसे बोली ॥ २८ ॥

रुचिमतीने कहा—राजन्! यदि इस यज्ञके प्रतापसे मनोवाञ्छित फल प्राप्त होता है तो मेरी भी एक मनोवाञ्छा है। मैं चाहती हूँ कि मेरे मारे गये पुत्र यहाँ आवें और मैं उन्हें देखूँ। यदि आप मेरे सामने ऐसी बात कहें कि 'मरे हुए लोगोंका दर्शन कैसे हो सकता है?' तो इसका उत्तर भी मेरे ही मुँहसे सुन लें। राजेन्द्र! भगवान् श्रीकृष्णने अपने गुरुको गुरुदक्षिणाके रूपमें उनके मरे हुए पुत्रको लाकर दे दिया था, उसी प्रकार मैं भी अपने पुत्रोंको सामने आया देखना चाहती हूँ ॥ २९—३१ ॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—रानीकी यह बात सुनकर महायशस्वी महाराज उग्रसेनने मुझको और श्रीकृष्णको अन्तःपुरमें बुलवाया। हम दोनोंके जानेपर उन्होंने बड़ा भारी स्वागत-सत्कार किया। हम दोनोंका पूजन करके राजाने हमसे अपना सारा अभिप्राय निवेदन किया। उग्रसेनकी कही हुई बात सुनकर मैंने श्रीहरिको कुछ कहनेके लिये प्रेरणा दी। नृपेश्वर! जैसे उपेन्द्र इन्द्रसे बोलते हैं, उसी प्रकार उस समय उन्होंने राजासे कहा ॥ ३२-३३½ ॥

श्रीभगवान् बोले—राजन्! मुनियो! पूर्वकालमें आपके जो-जो पुत्र संग्राममें मारे गये हैं, वे सब-के-सब दिव्य देह धारण करके स्वर्गलोकमें देवताके समान विद्यमान हैं। अतः नृपश्रेष्ठ! आप पुत्रशोक छोड़कर धैर्यपूर्वक क्रतुश्रेष्ठ अश्वमेधका अनुष्ठान कीजिये। यज्ञके अन्तमें मैं आपको आपके सभी पुत्रोंके दर्शन कराऊँगा ॥ ३४-३६ ॥

श्रीकृष्णका यह कथन सुनकर पृथ्वीपति उग्रसेन बड़े प्रसन्न हुए और अपनी प्रियाको सुन्दर वचनोंद्वारा आश्वासन दे, श्रेष्ठ पुरुषोंके साथ सुधर्मा-सभामें गये। श्रीकृष्णसहित राजा उग्रसेनको आया देख दिक्पालों तथा बलराम और शिव आदि देवताओंने प्रणाम किया। वज्रनाभ! रा—

योग्य आसनपर बिठाकर पिण्डारक तीर्थमें धर्मके अनुसार समस्त प्रयोग करवाया। राजा उग्रसेन चैत्रमासकी पूर्णिमाको मृगचर्म धारण किये यज्ञके लिये दीक्षित हुए। राजन्! उन्होंने मेरी आज्ञासे 'असिपत्र-व्रत'का नियम लिया। नरेश्वर! मैं यदुवंश-कुलका पूर्वगुरु होनेके कारण उस यज्ञमें समस्त ब्राह्मणोंका आचार्य बनाया गया ॥ १९–२०½ ॥

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञासे समस्त ब्राह्मण वेदमन्त्रोंका उच्चारण करते हुए अपने-अपने आसनपर बैठे। उन सबने गणेश आदि देवताओंका पृथक्-पृथक् पूजन किया। राजन्! फिर उन मुनियोंने अश्वकी स्थापना करके उसपर केसर, चन्दन, पुष्प-माला और चावल चढ़ाये, धूप निवेदित किये। सुधाकुण्डलिका आदिका नैवेद्य लगाया और आरती आदिके द्वारा उस अश्वकी विधिपूर्वक पूजा करके राजाको दानके लिये प्रेरित किया। उनका यह आदेश सुनकर उग्रसेनने शीघ्रतापूर्वक पहले मुझे धनका दान किया। एक लाख घोड़े, एक हजार हाथी, दो हजार रथ, एक लाख दुधारू गाय और सौ भार सुवर्ण—इतनी दक्षिणा राजाने मुझको दी। राजन्! तदनन्तर निमन्त्रित ब्राह्मणोंको महाराज उग्रसेनने जो शास्त्रोक्त दक्षिणा दी, उसका वर्णन सुनो। प्रत्येकको एक हजार घोड़े, दो सौ हाथी, दो सौ रथ और तीस भार सुवर्ण—इतनी दक्षिणा दी गयी। तत्पश्चात् जो अनिमन्त्रित ब्राह्मण आये थे, उनको नमस्कार करके राजाने विधिपूर्वक एक हाथी, एक रथ, एक गौ, एक भार सुवर्ण और एक घोड़ा—इतनी दक्षिणा प्रत्येक ब्राह्मणके लिये दी ॥ २१–२९ ॥

इस प्रकार दान करके घोड़ेके ललाटपर, जो कुङ्कुम आदिके कारण अत्यन्त कमनीय दिखायी देता था, राजाने सोनेका पत्र बाँधा। उस पत्रपर मैंने सभामण्डपमें समस्त यादवोंके समक्ष महाराज उग्रसेनके बड़े-बड़े बल-पराक्रम तथा प्रतापका इस प्रकार उल्लेख किया ॥ ४०–४१ ॥

"चन्द्रवंशके अन्तर्गत यदुकुलमें राजा उग्रसेन विराजमान हैं, जिनके आदेशका इन्द्र आदि देवता भी अनुसरण करते हैं। भक्तपालक भगवान् श्रीकृष्ण जिनके सहायक हैं और उन्हींकी भक्तिसे बँधकर वे श्रीहरि सदा द्वारकापुरीमें निवास करते हैं। उन्हींकी आज्ञासे चक्रवर्ती राजाधिराज उग्रसेन अपने यशका विस्तार करनेके लिये इठात् अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान करते हैं। उन्होंने ही यह अश्वोंमें श्रेष्ठ शुभलक्षणसम्पन्न श्याम कर्ण घोड़ा छोड़ा है। इस अश्वके रक्षक हैं, श्रीकृष्णके पौत्र अनिरुद्ध, जिन्होंने 'वृक' दैत्यका वध किया था। वे हाथी, घोड़े, रथ और पैदल-वीरोंकी चतुरङ्गिणी सेनाओंके साथ हैं। इस भूतलपर जो-जो राजा राज्य करते हैं और अपनेको शूरवीर मानते हैं, वे इस स्वर्णपत्रशोभित अश्वमेधीय अश्वको अपने बलसे रोकें। धर्मात्मा अनिरुद्ध अपने बाहुबल और पराक्रमसे हठपूर्वक अनायास ही राजाओंद्वारा पकड़े गये इस अश्वको छुड़ा लेंगे। जो धनुर्धर नरेश इस अश्वको नहीं पकड़ें, वे अनिरुद्धजीके चरणोंमें प्रणाम करके सकुशल लौट जायँ" ॥ ४२–४८ ॥

जब इस प्रकार स्वर्णपत्रपर लिख दिया गया, तब श्रेष्ठ यदुवंशी वीरोंने वाद्य बजाये। शङ्ख, मृदङ्ग, नगाड़े और गोमुख आदि बाजे बज उठे। गायनगण श्रीकृष्ण और बलदेवके मङ्गलमय चरित्रोंका गान करने लगे और अप्सराएँ भी वहाँ आनन्दविभोर होकर नृत्य करने लगीं। तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णने अत्यन्त प्रसन्न होकर यादवराज उग्रसेनके सामने ही वहाँ खड़े हुए प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्धको उस यज्ञ सम्बन्धी अश्वके सब प्रकार संरक्षणका आदेश दिया ॥ ४९–५१ ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधचरित्र-सुमेरुमें 'अश्वका पूजन' नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११ ॥

बारहवाँ अध्याय

अश्वमोचन तथा उसकी रक्षाके लिये सेनापति अनिरुद्धका विजयाभिषेक

श्रीगर्गजी कहते हैं—तदनन्तर राजा उग्रसेनने द्वारकापुरीमें, जिसके ऊपर विधिपूर्वक चामर बँधे हुए थे, उस अश्वका पूजन करके वेदमन्त्रोंके उद्घोषके साथ उसे छोड़ा। वह अश्वराज भी सुधाकुण्डलिका (इमरती या जलेबी[1] आदि) खाकर, सोनेकी मालाओं तथा कुङ्कुमसे सुशोभित हो उस स्थानसे निकला। उस अश्वकी रक्षाके लिये उद्यत हुए प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्धसे राजाधिराज उग्रसेनने अश्वरक्षाके विषयमें आदरपूर्वक कहा ॥ १–३ ॥

[1] मिठाई (इमरती या जलेबी आदि) एक मधुर खाद्यपदार्थका नाम।

राजन्! अनिरुद्धका यह कथन सुनकर माताओंने उन्हें हृदयसे लगा लिया और गद्गदकण्ठसे उन प्रणत प्रद्युम्नकुमारको जानेकी आज्ञा देते हुए आशीर्वाद प्रदान किया। माताओंको नमस्कार करके वे अपनी पत्नियोंके महलोंमें गये। अपने पतिको आया देखकर ऊषा आदि तीनों पत्नियोंने उनका समादर किया। परंतु विरहकी सम्भावनासे उन सबका मन उदास हो गया। अनिरुद्ध उन प्यारी पत्नियोंको आश्वासन दे राजसभामें लौट आये ॥ १–५ ॥

राजेन्द्र! उसके बाद यज्ञ-सम्बन्धी अश्वकी रक्षाके लिये यात्राके निमित्त ऋषि-मुनियोंने अनिरुद्धके उद्देश्यसे मङ्गल-पाठ किया। फिर वे समस्त महर्षियों, गुरुजनों, महाराज उग्रसेन, शूरसेन, वसुदेव, बलराम, श्रीकृष्ण, अपने पिता प्रद्युम्न तथा अन्यान्य पूजनीय यादवोंको प्रणाम करके समस्त नागरिकोंद्वारा पूजित हुए। नरेश्वर! उन्होंने हाथोंमें धनुष बाण लिये, अँगुलियोंमें गोधाके चर्मसे बने हुए दस्ताने पहन लिये, कवच-कुण्डल धारण किये और पैरोंमें जूते पहनकर सिंहके समान पराक्रमी महावीर अनिरुद्धने ढाल, तलवार, किरीट एवं शक्ति ले, सोनेके बने हुए आभूषण धारण किये। फिर वे इन्द्रके दिये हुए दिव्य रथके द्वारा अपनी पुरीसे बाहर निकले। उस समय गाजे-बाजेकी आवाज और वेद मन्त्रोंके घोषके साथ यात्रा करते हुए अनिरुद्धपर चारों ओरसे चँवर डुलाये जा रहे थे। समस्त पुरवासी उनकी इस यात्राको देख रहे थे ॥ ६–११ ॥

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उनके साथ जानेके लिये उद्धव आदि मन्त्री तथा भोज, वृष्णि, अन्धक, मधु, शूरसेन और दशार्णकुलमें उत्पन्न वीर योद्धा भेजे। तदनन्तर राजा उग्रसेनने यदुवंशी वीरोंको सम्बोधित करके पूछा—'यादवो! बताओ, युद्धमें अनिरुद्धकी सहायता करनेके लिये कौन जायगा?' उग्रसेनकी यह बात सुनकर जाम्बवतीकुमार साम्बने सबके देखते-देखते राजाको नमस्कार करके यह बात कही ॥ १२–१४ ॥

साम्ब बोले—राजेन्द्र! मैं महासमरमें सदा सनद्ध रहकर प्रद्युम्नपुत्र अनिरुद्धकी रक्षा एवं सहायता करूँगा। यदि समराङ्गणमें मैं इनकी रक्षा न करूँ तो महाराज! इस विषयमें मुझ सत्यवादीकी यह प्रतिज्ञा सुन लीजिये—मनुष्य त्याग देनेयोग्य दशमीविद्धा एकादशीका व्रत करके जिस गतिको प्राप्त होता है, मुझे भी निश्चय वही गति मिले। गोहत्यारों और ब्रह्महत्यारोंकी जो गति होती है, वही गति यदि मैं यह रक्षणकार्य न कर सकूँ, तो मेरी भी हो' ॥ १५–१८ ॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—ऐसी बात कहकर साम्ब वहाँसे अन्तःपुरमें गये। वहाँ माता जाम्बवतीको प्रणाम करके उन्होंने सारा अभिप्राय निवेदन किया। उनकी बात सुनकर माताने विरहकी अनुभूति करके बेटेको हृदयसे लगा लिया और आशीर्वाद दिया। तदनन्तर समस्त माताओंको नमस्कार करके वे पत्नीके घरमें गये। उन्हें आते देख शुभलक्षणा लक्ष्मणा बैठनेके लिये आसन दे आँसुओंसे कण्ठ अवरुद्ध हो जानेके कारण कुछ भी नहीं बोलीं। साम्बने उसे आश्वासन दे अपना अभिप्राय कह सुनाया। सुनकर विरहकी सम्भावनासे खिन्नचित्त हो वह पतिसे बोली ॥ १९–२२ ॥

लक्ष्मणाने कहा—पतिदेव! आपको अनिरुद्धके अश्वकी सदा रक्षा करनी चाहिये। आप युद्धका अवसर आने तो सम्मुख होकर युद्ध करें। रणभूमिसे कभी विमुख न हों। आपके सहस्रों भाई हैं और उन सबकी सहस्रों मानवती स्त्रियाँ हैं। नाथ! यदि युद्धमें आपकी पराजय सुनकर वे आपकी प्रियतमा होनेके कारण मेरी ओर देखकर मुस्करा देंगी तो उस समय दुःखके कारण मेरी मृत्यु हो जायगी ॥ २३–२५ ॥

लक्ष्मणाकी यह बात सुनकर साम्ब हँसते हुए अपनी प्राणवल्लभासे बोले ॥ २५½ ॥

साम्बने कहा—भद्रे! युद्धभूमिमें मेरा सामना करनेके लिये यदि सारी त्रिलोकी उमड़ आये तो भी तुम सुनोगी कि मैंने उन सबका विदलन (संहार) कर दिया है। शुभे! यदि शूरवीर साम्ब रणभूमिसे विमुख हो जाय तो वह अपने पापसे वेद और ब्राह्मणोंका निन्दक माना जाय। उस दशामें मैं फिर तुम्हारे इस चन्द्रोपम मुखका दर्शन नहीं करूँगा ॥ २६–२८ ॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—इस प्रकार अपनी पहली प्रियाको आश्वासन दे साम्बने दूसरी प्रियाको भी धीरज बँधाया। फिर वे अभिमन्यु और सुभद्रासे मिलकर घरसे निकले। धनुष और तलवार ले यात्राके लिये सुसज्जित साम्ब रथपर बैठे और यादवोंसे घिरे हुए उस उपवनमें गये, जहाँ अनिरुद्ध विद्यमान थे। तदनन्तर श्रीकृष्णने अपने गद आदि समस्त यादवोंको और भानु तथा दीप्तिमान् आदि सभी पुत्रोंको भेजा। वे सब के सब [illegible] और

थे। दुर्गम भूमि, नदी, ऊँचे-ऊँचे महल तथा पर्वत आदिको भी लाँघ जाते थे। उन सभी घोड़ोंपर वीर योद्धा सवार थे ॥ ५४–५७ ॥

इसके बाद द्वारकापुरीसे समस्त पैदल-सैनिक बाहर निकले। वे धनुष और कवचसे सुसज्जित शूरवीर तथा महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न थे। उनके कद ऊँचे थे। ढाल और तलवार धारण किये वे योद्धा लोहेके कवचसे मण्डित थे। हाथीके समान हृष्ट-पुष्ट शरीरवाले थे और युद्धमें बहुत-से शत्रुओंपर विजय पानेकी शक्ति रखते थे, इस प्रकार पुरीसे बाहर निकली हुई यादवोंकी उस विशाल सेनाको देखकर देवता, दैत्य और मनुष्य सबको महान् विस्मय हुआ ॥ ५८–६० ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'यादव सेनाका निर्गमन' नामक तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३ ॥

चौदहवाँ अध्याय

अनिरुद्धका सेनासहित अश्वकी रक्षाके लिये प्रयाण; माहिष्मतीपुरीके राजकुमारका अश्वको बाँधना तथा अनिरुद्धका राजा इन्द्रनीलसे युद्धके लिये उद्यत होना

श्रीगर्गजी कहते हैं—नरेश्वर! तदनन्तर राजा उग्रसेनकी आज्ञासे अनिरुद्धसे मिलनेके लिये वसुदेव, बलराम, श्रीकृष्ण, प्रद्युम्न तथा अन्य सब यादव रथोंद्वारा नगरसे बाहर निकले। वहाँ जाकर उन्होंने सेनासे घिरे हुए अनिरुद्धको देखा। भगवान् श्रीकृष्णने पहले राजसूय यज्ञके अवसरपर प्रद्युम्नको जिस नीतिका उपदेश दिया था, वही सारी नीति उस समय अनिरुद्धसे कह सुनायी ॥ १–३ ॥

राजन्! भगवान् श्रीकृष्णका वह उपदेश सुनकर अनिरुद्ध आदि समस्त यादवोंने प्रसन्नतापूर्वक उसे शिरोधार्य किया। तत्पश्चात् मुनिवर गर्ग, अन्यान्य मुनिवृन्द, वसुदेव, बलराम, श्रीकृष्णचन्द्र तथा प्रद्युम्नको अनिरुद्धने प्रणाम किया। वसुदेव, बलराम, श्रीकृष्ण और प्रद्युम्न आदि यादव अनिरुद्धको शुभाशीर्वाद देकर रथोंद्वारा पुरीमें लौट आये। नरेश्वर! अनिरुद्धका अश्व देश-देशमें गया; किंतु श्रीकृष्णके भयसे कोई भूपाल उसे पकड़नेका साहस न कर सके। जहाँ-जहाँ वह घोड़ा गया, वहाँ-वहाँ सैनिकोंसहित अनिरुद्ध उसके पीछे शत्रुओंको जीतनेके लिये गये ॥ ४–८ ॥

इस प्रकार विभिन्न राज्योंका अवलोकन करता हुआ अनिरुद्धका वह अश्व नर्मदाके तटपर विराजमान माहिष्मती पुरीको गया। उस पुरीमें चारों वर्णोंके लोग भरे थे और वह प्रस्तरनिर्मित दुर्गसे मण्डित थी। भगवान् शंकरके गगनचुम्बी मन्दिर उस पुरीकी शोभा बढ़ाते थे। पाँच योजन विस्तृत माहिष्मतीपुरी राजा इन्द्रनीलसे परिपालित थी। शाल, ताल, तमाल, वट, बिल्व और पीपल आदि वृक्ष उसकी श्रीवृद्धि कर रहे थे। बहुत-से पोखरे और बावड़ियाँ वहाँ शोभा पाती थीं, जिनमें पक्षी कलरव करते थे। ऐसी नगरीको वहाँके उपवनमें पहुँचकर अश्वने देखा। राजा इन्द्रनीलके बलवान् पुत्रका नाम नीलध्वज था। वह सहस्रों वीरोंके साथ शिकार खेलनेके लिये पुरीसे बाहर निकला ॥ ९–१३ ॥

उस राजकुमारने भालमें बँधे हुए पत्रके साथ श्यामकर्ण घोड़ेको देखा, जो फूलोंसे भरे उपवनमें कदम्बके नीचे खड़ा था। उसकी अङ्ग-कान्ति गायके दूधकी भाँति श्वेत थी। अनेक चामरोंसे अलंकृत वह अश्व वहाँ घूमता हुआ आ गया था। उसके शरीरपर स्त्रियोंके कुङ्कुमरञ्जित हाथोंके छाप शोभा दे रहे थे तथा वह मोतीकी मालाओंसे मण्डित था। उस घोड़ेको देख राजकुमार नीलध्वजने अपने वाहनसे उतर कर बड़े हर्षके साथ खेल-खेलमें ही उसके सिरका बाल पकड़ लिया। उसके भालमें यादवराज उग्रसेनने जो पत्र लगा दिया था, उसको राजकुमार पढ़ने लगा। उसमें लिखा था—'द्वारकाके अधिपति, राजा उग्रसेन समस्त शूरवीरोंके शिरोमणि हैं। उनके समान महायशस्वी और चक्रवर्ती राजा दूसरा कोई नहीं है। उन्होंने पत्रसहित इस अश्वराजको स्वतन्त्र विचरनेके लिये छोड़ा है। अनिरुद्ध इसका पालन करते हैं। जो राजा अपनेको सबल समझते हों, वे इसे पकड़ें। अन्यथा अनिरुद्धके चरणोंमें प्रणाम करके लौट जायँ।' यह अभिप्राय देखकर राजकुमार क्रोधसे बोल उठा—'क्या अनिरुद्ध ही धनुर्धर हैं? हमलोग धनुर्धर नहीं हैं? मेरे पिताजीके रहते हुए कौन इस प्रकार वीरताका गर्व कर सकता है?' ॥ १४–२० ॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! ऐसा कहकर राजकुमार घोड़ेको लेकर राजाके पास गया और उसने पिताके आगे

पंद्रहवाँ अध्याय

अनिरुद्ध और साम्बका शौर्य, माहिष्मती-नरेशपर इनकी विजय

श्रीगर्गजी कहते हैं—तदनन्तर इन्द्रनीलका पुत्र महाबली नीलध्वज तीन अक्षौहिणी सेना साथ लेकर यादवोंको जीतनेके लिये अपने नगरसे बाहर निकला। वह अपने पिताजीकी बात सुनकर यदुवंशियोंके प्रति अत्यन्त रोषसे भरा था। उस राजकुमारको आया देख श्रीकृष्ण पौत्र अनिरुद्ध धनुष हाथमें लेकर अकेले ही उसके साथ युद्ध करनेके लिये गये, मानो इन्द्र वृत्रासुरपर विजय पानेके लिये प्रस्थित हुए हों। संग्राम भूमिमें जाकर अनिरुद्ध शत्रुओंके ऊपर तत्काल बाणसमूहोंकी वर्षा करने लगे। इससे उन सबके हृदयमें त्रास छा गया। फिर तो नीलध्वजके समस्त सैनिक भयभीत हो रणभूमिसे भागने लगे और प्रद्युम्नकुमारने विजयसूचक अपना शङ्ख बजाया॥ १—४॥

अपनी सेनाको भागती देख बलवान् नीलध्वज धनुष टंकारता हुआ शीघ्र ही संग्राममण्डलमें आया। उसने धनुषकी प्रत्यञ्चासे अपनी सेनाको पुनः युद्धमें लौटनेके लिये प्रेरित किया। अनिरुद्धको शत्रुओंके बीचमें घिरा हुआ देख साम्बके रोषकी सीमा न रही। वे एक अक्षौहिणी सेनासे घिरे रोषपूर्वक धनुष टंकारते हुए वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने बीस बाणोंसे नीलध्वजको और पाँच-पाँच बाणोंसे रथों, हाथियों, घोड़ों और पैदलोंको घायल कर दिया। साम्बके बाणोंकी चोट खाकर वे सब के-सब धराशायी हो गये। हाथीके ऊपर हाथी, रथोंके ऊपर रथ, घोड़ोंपर घोड़े और पैदल मनुष्योंपर मनुष्य गिरने लगे। क्षणभरमें वहाँकी भूमिपर रक्तकी धारा बह चली। हाथी, घोड़े, रथ और पैदल छिन्न भिन्न होकर वहाँ पड़ गये॥ ५—१०॥

राजन्! फिर अपनी सेनामें भगदड़ मची हुई देख नीलध्वज, जिसके मनमें यादवोंको जीतनेकी बड़ी इच्छा थी, धनुष लेकर बाणोंकी वर्षा करता हुआ शत्रु-सेनाके सम्मुख आया। राजन्! युद्धस्थलमें पहुँचकर रोषसे भरे हुए उस राजकुमारने दस बाणोंसे साम्बके धनुषको उसी तरह काट दिया, जैसे कोई दुर्वचनद्वारा प्रेम सम्बन्धको छिन्न भिन्न कर दे। बलवान् इन्द्रनीलकुमारने चार बाणोंसे साम्बके चारों घोड़े मार दिये, दो बाणोंसे उनके रथकी ध्वजा काट गिरायी, सौ बाणोंसे रथकी धज्जियाँ उड़ा दीं और एक बाणसे सारथिको कालके गालमें भेज दिया॥ ११—१३॥

इस प्रकार साम्बको रथहीन करके राजकुमार नीलध्वजने पुनः सामने आयी हुई साम्बकी सेनाको बाणोंसे घायल करना आरम्भ किया। इतनेमें ही नीलध्वजकी सारी सेना भी लौट आयी और युद्धस्थलमें यादवोंकी विशाल वाहिनीको तीखे बाणोंसे घायल कर दिया। फिर तो रणक्षेत्रमें दोनों सेनाओंके बीच घमासान युद्ध होने लगा। खड्ग, परिघ, बाण, गदा और तीखी शक्तियोंद्वारा उभयपक्षके सैनिक परस्पर प्रहार करने लगे। साम्ब दूसरे रथपर आरूढ़ हो, सुदृढ धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर रणक्षेत्रमें आये। वे बड़े बलवान् थे। उन्होंने सौ बाण मारकर नीलध्वजके रथको चूर-चूर कर दिया। मानद नरेश! उसका धनुष भी कट गया, तब उस रथहीन राजकुमारने गदा उठाकर क्रुद्ध हो युद्धस्थलमें बड़े वेगसे साम्बपर धावा किया। उसी समय साम्ब भी सहसा रथसे उतरकर गदा लिये नीलध्वजका सामना करनेके लिये रोषपूर्वक आगे बढ़े। साम्बको आया देख राजकुमारने उनपर गदासे चोट की। परंतु फूलकी मालासे चोट करनेपर जैसे हाथी विचलित नहीं होता, उसी प्रकार साम्ब उस प्रहारसे विचलित न हो सके। तदनन्तर साम्बने अपनी गदासे राजकुमारपर आघात किया। उनके उस प्रहारसे राजकुमार रणभूमिमें गिर पड़ा और मूर्च्छित हो गया। फिर तो उसके सैनिक हाहाकार करते हुए भाग चले॥ १४—२१½॥

तब अत्यन्त क्रोधसे भरे हुए राजा इन्द्रनील स्वयं युद्धके लिये आये। उनके साथ दो अक्षौहिणी सेना थी और वे अपने धनुषसे बाणोंकी वर्षा कर रहे थे। उन्हें आया देख बलवान् धनुर्धर वीर श्रीकृष्णकुमार मधुने अपने बाणोंकी मारसे इन्द्रनीलको रथहीन कर दिया। साथ ही अर्जुनके प्रिय शिष्य युयुधान (सात्यकि) ने समराङ्गणमें आयी हुई इन्द्रनीलकी सेनाको अपने बाणोंद्वारा उसी प्रकार क्षत विक्षत कर दिया, जैसे किसीने कटुवचनोंसे मित्रताको छिन्न भिन्न कर दिया हो। तदनन्तर यादवोंके छोड़ देनेपर राजा इन्द्रनील माहिष्मतीपुरीको लौट गये। वे दुःखसे व्याकुल हो रहे थे। उन्होंने पुरीमें पहुँचकर अपने स्वामी भगवान् शिवका स्मरण किया। तब भगवान् शिवने उन्हें परम उत्तम साक्षात् दर्शन देकर उनसे सारा वृत्तान्त पूछा।

युद्ध करेगा। वह नरेश युद्धके लिये नगरसे बाहर नहीं निकलेगा। अत नरेश्वर! तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वैसा करो ॥ ११-१३½ ॥

उद्धवजीकी यह बात सुनकर अनिरुद्ध रोषपूर्वक बोले ॥ १४ ॥

अनिरुद्धने कहा—सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ उद्धवजी! दुर्गमें रहकर युद्धमें लगे हुए इन बहुसंख्यक शत्रुओंको लोहेकी बनी हुई शक्तिके समान बाणोंद्वारा मैं आधे पलमें मार गिराऊँगा ॥ १५ ॥

उद्धवजीकी पूर्वोक्त बात सुनकर इस प्रकार रोषमें भरे हुए यदुकुलतिलक अनिरुद्ध उस पुरीका विध्वंस करनेके लिये शीघ्र ही गये और कोटि कोटि बाणोंकी वर्षा करने लगे। अश्वक्वशी वीरोंके बाणसमूहोंसे उस पुरीमें कोलाहल मच गया। वीर हंसध्वज आदि समस्त शत्रु शङ्कित हो गये। तदनन्तर राजाके कहनेसे उन वीरोंने साहसपूर्वक दुर्गकी दीवारोंपर चढ़कर बाहर जमे हुए यादव सैनिकोंको देखा। यदुकुलके श्रेष्ठ वीरोंको कवच आदिसे सुसज्जित देख वे सब-के-सब भयभीत हो उठे। यादव-योद्धा अस्त्र शस्त्रोंसे परिमण्डित हो शस्त्रोंकी वृष्टि कर रहे थे। हेमाङ्गदके सैनिकोंने उनपर चारों ओरसे शतघ्नियोंद्वारा आग बरसाना आरम्भ किया। वे इस निश्चयपर पहुँच गये कि हम सभी शत्रुओंको मौतके घाट उतार देंगे, घोड़ेको कदापि नहीं लौटायेंगे ॥ १६-२० ॥

उस समय अनिरुद्धकी सेनामें महान् हाहाकार मच गया। शतघ्नियोंसे ताड़ित हो समस्त वृष्णिवंशी वीर विह्वल हो गये। उनके सारे अङ्ग क्षत विक्षत हो गये। कितने ही योद्धा युद्धसे भाग चले। राजन्! कुछ सैनिक मूर्च्छित हो गये और कितने ही अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठे। कोई युद्धमें जल गये और कोई भस्मीभूत हो गये। कितने ही लोगोंके हाथ पैर और भुजाएँ कट गयीं। कुछ लोग शस्त्रहीन होकर गिर पड़े। कितनोंके कवच जल गये। कितने ही हाय हाय करने लगे और कितने ही योद्धा बलराम तथा श्रीकृष्णके नाम ले-लेकर पुकारने लगे। उस युद्धभूमिमें शतघ्नियोंकी मार खाकर सारे अङ्ग जर्जर हो जानेके कारण कितने ही हाथी भागते हुए गिर पड़े और मूर्च्छित होकर मर गये। संग्राममें उछलते भागते हुए घोड़े शरीर छिन्न भिन्न हो जानेके कारण मौतके मुखमें चले गये। कितने ही रथ चूर चूर होकर धराशायी हो गये। सारी यादव-सेना आगकी लपेटमें आकर भयानक दिखायी देने लगी ॥ २१-२६½ ॥

यह सब देखकर अनिरुद्ध संग्राम-भूमिमें श्रीहरिका स्मरण करते हुए कुछ सोचने लगे। तब श्रीकृष्णकृपासे ऊषावल्लभ अनिरुद्धको कर्तव्यबुद्धि सूझ गयी। उन्होंने शार्ङ्गधनुष लेकर तरकससे बाण निकाला और उसे धनुषपर रखकर उसमें पर्जन्यास्त्रका संधान किया। उस बाणके छूटते ही यादवसेनाके ऊपर मेघ छा गये। नरेश्वर! उन मेघोंने यादव सैनिकोंकी रक्षा करते हुए भूरि भूरि जलकी वर्षा की और चारों ओर फैली हुई आगको बुझा दिया। सब वृष्णिवंशी सैनिकोंके अङ्ग-अङ्ग शीतल हो गये। वे आगके भयसे छूट गये और अनिरुद्धकी प्रशंसा करते हुए पुन युद्धके लिये उठ खड़े हुए। उन सबको सम्बोधित करके अनिरुद्धने कहा—'मैं पंखवाले घोड़ेपर चढ़कर अकेला ही शत्रुओंके राजाको जीतनेके लिये चम्पावतीपुरीमें प्रवेश करूँगा' ॥ २७-३२ ॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! अनिरुद्धकी यह बात सुनकर समस्त कृष्णकुमार साम्ब आदि अठारह महारथी उनसे बोल उठे ॥ ३३ ॥

हरिपुत्रोंने कहा—राजन! तुम शत्रुओंकी नगरीमें न जाओ। हम सब लोग उस आततायी नरेशको जीतनेके लिये वहाँ जायँगे ॥ ३४ ॥

—ऐसा कहकर रोषसे भरे हुए वे सब वीर हरिपुत्र सहसा पाँखवाले घोड़ोंपर चढ़कर दुर्गके परकोटेको लाँघते हुए चम्पावती पुरीमें आ पहुँचे। वे सभी धनुर्धर, कवचधारी और युद्ध कुशल थे। उन्होंने जाते ही सर्पाकार बाणोंसे शत्रुओंको मारना आरम्भ किया ॥ ३५-३६ ॥

नरेश्वर! वे शत्रु भी राजाकी आज्ञासे सहसा युद्धके लिये धनुष धारण किये क्रोधपूर्वक आ पहुँचे। उनकी संख्या एक करोड़ थी। रोषसे भरे और अस्त्र शस्त्र उठाये उन बहुसंख्यक वीरोंको वहाँ आया देख साम्ब, मधु, बृहद्बाहु, चित्रभानु, वृक, अरुण, संग्रामजित्, सुमित्र, दीप्तिमान्, भानु, वेदबाहु, पुष्कर, श्रुतदेव, सुनन्दन, विरूप, चित्रबाहु, न्यग्रोध और कवि—इन समस्त श्रीकृष्णपुत्रोंने बाणोंद्वारा मारना आरम्भ किया। राजेन्द्र! फिर तो उस नगरीमें वीरोंके रक्तसे भयंकर नदी प्रकट हो गयी, जो नगरद्वारसे बाहर निकली। राजन्! उस घोर नदीको बहकर आती देख अनिरुद्ध शङ्कित हो गये। उनका मुँह सूख गया और वे रोषपूर्वक बोले—'अहो! क्या मेरे पिताके सभी भाई मारे गये, जिनके कारण यह घोर नदी प्रकट हो हम सबको बहा ले जानेके लिये इधर ही

उग्रसेनद्वारा नारद-तुम्बुरुका स्वागत [अध्याय ७]

उग्रसेनद्वारा श्रीकृष्ण-बलरामका स्तवन [अध्याय ७]

लिये गयीं। घोड़ेको देखकर और उसके भालमें बँधे हुए पत्रको पढ़कर रानीको बड़ा रोष हुआ। उन्होंने नगरमें घोड़को बाँधकर उसके प्रतिपालकोंके साथ युद्ध करनेका निश्चय किया। कोई स्त्रियाँ हाथीपर, कोई रथपर और कोई घोड़ेपर आरूढ़ हो कवच बाँधकर अस्त्र शस्त्रोंसे सम्पन्न हो युद्धके लिये जायीं। वे सब स्त्रियाँ कुपित हो अस्त्र शस्त्रोंकी वर्षा करती हुई आयीं। उन्हें देखकर अनिरुद्धने हेमाङ्गदसे पूछा ॥ ७-१३ ॥

अनिरुद्ध बोले—राजन्! ये कौन-सी स्त्रियाँ हैं, जो युद्ध करनेके लिये आयी हैं। जिस उपायसे यहाँ मेरा कल्याण हो, वह विस्तारपूर्वक बताइये ॥ १४ ॥

हेमाङ्गदने कहा—नृपवर! इस देशमें रानी राज्य करती है, क्योंकि राजा यहाँ जीवित नहीं रहता है। इसीलिये यह स्त्रियोंसे घिरी हुई आयी है। आपके घोड़ेको पकड़कर यह संग्राम करनेके लिये उपस्थित है ॥ १५ ॥

यह सुनकर अनिरुद्ध राजासे इस प्रकार बोले ॥ १५½ ॥

अनिरुद्धने कहा—राजन्! यहाँपर स्त्री राज्य क्यों करती है तथा राजा क्यों जीवित नहीं रहता है? यह बात विस्तारपूर्वक बतलाइये, क्योंकि आप सब कुछ जानते हैं ॥ १६-१७ ॥

अनिरुद्धकी यह बात सुनकर राजा हेमाङ्गदने अपने गुरु याज्ञवल्क्यजीके चरणारविन्दोंका चिन्तन करते हुए कहा—'यादवेन्द्र! इस विषयका प्राचीन इतिहास मैंने चम्पापुरीमें पहले गुरुवर याज्ञवल्क्यजीके मुखसे सुना था, वही तुमसे कहूँगा, ध्यान देकर सुनो ॥ १८-१९ ॥

राजन्! प्राचीन सत्ययुगकी बात है, इस देशमें 'नारीपाल' नामसे विख्यात एक मण्डलेश्वर राजा हुए थे। उनके मोहिनी नामवाली पत्नी थी, जिसका जन्म सिंहलद्वीपमें हुआ था। वह पद्मिनी नायिका थी। उसकी चाल हंसके समान थी और मुख पूर्णचन्द्रके समान मनोहर था। राजा उसके सौन्दर्यके महासागरमें डूबकर यह भी नहीं जान पाते थे कि कब दिन बीता और कब रात समाप्त हुई। वे सैकड़ों वर्षोंतक उसके साथ रमण करते रहे। काममोहित होनेके कारण वे प्रजाजनोंका न्याय भी नहीं करते थे। राजन्! उस समय सारी प्रजा दुःखसे पीड़ित हो रही थी। यादवेश्वर! प्रजाजनोंमें पारस्परिक कलहसे विनाश होता देख राजवल्लभा मोहिनी अपनी शक्तिके अनुसार सारी प्रजाका न्यायकार्य स्वयं ही सँभालने लगी। एक दिन उस नरेशसे मिलनेके लिये महामुनि अष्टावक्र उनके अन्तःपुरमें आये। राजाका मन स्त्रीमें ही आसक्त रहता था। वे मुनिको आया देख जोर-जोरसे हँसने लगे और बोले—'यह कुरूप यहाँ कैसे आ गया?' ॥ २०-२६ ॥

तब मुनि रुष्ट होकर बोले—'अरे! ओ मूर्ख नपुंसक! मेरी बात सुन ले, तू स्त्रियोंके हाथका खिलौना होकर मुनियोंका अपमान क्यों कर रहा है? तुम्हारे देशमें सदा स्त्रियाँ राज्य करेंगी। इस राज्यमें पुरुष-राजा जीवित नहीं रहेगा। अतः तू अभी इस राजभवनसे निकल जा। इस देशमें स्त्रीको पाकर जो प्रतिदिन उसका सेवन करेगा, वह एक वर्ष बीतनेके बाद निस्संदेह जीवित नहीं रहेगा' ॥ २७-२९ ॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! ऐसा कहकर मुनिश्रेष्ठ अष्टावक्र अपने आश्रमको चले गये। मुनिके चले जानेपर राजा उनके शापसे नपुंसक हो गये। 'यह मेरी दुर्दशा मुनिने ही की है'—ऐसा जानकर राजा अत्यन्त दीन एवं दुःखसे व्याकुल हो गये और स्वयं ही अपनी निन्दा करने लगे ॥ ३०-३१ ॥

नारीपाल बोले—अहो! स्त्रीके वशीभूत रहनेवाले मुझ मन्दभाग्यने यह क्या किया? मुनियोंकी पूजा छोड़कर नरककी राह पकड़ ली। आज मुझ दुष्ट पापात्मापर यमदूतोंकी दृष्टि पड़ी है। अब मैं वैतरणीमें गिराये जानेयोग्य हो गया हूँ। इस दशामें देखकर मुझे कौन अपना सुजन इस कष्टसे छुड़ायगा? ॥ ३२-३४ ॥

ऐसा उद्गार प्रकट करके राजा घर छोड़कर वन-वनमें विचरने लगे। वे मुक्तिदाता भगवान् विष्णुके भजनमें लग गये और अन्तमें उन्होंने श्रीहरिका पद प्राप्त कर लिया। मुनि शापके भयसे राजालोग इस देशमें राज्य नहीं करेंगे, अतः नारियाँ ही यहाँ शासन करेंगी, इसमें संशय नहीं है ॥ ३४-३५ ॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—अनिरुद्ध और हेमाङ्गद इस प्रकार बातचीत कर ही रहे थे कि रोषसे भरी हुई यहाँकी पुंश्चली नारियाँ इनके पास आ गयीं और रोषपूर्वक अपने धनुषोंसे बाणोंकी वर्षा करने लगीं। उन स्त्रियोंको देखकर अनिरुद्ध विस्मित हो गये और 'मैं स्त्रियोंके साथ युद्ध कैसे करूँगा?'—ऐसा कहते हुए वे भयभीत-से हो गये। उसी समय

उस घोड़ेको पकड़ लिया । उसी समय सब यादव, जिनकी दृष्टि घोड़ेपर ही लगी हुई थी, वहाँ आ पहुँचे । आकर उन्होंने देखा—'यज्ञके अश्वको एक राक्षसने पकड़ रक्खा है।' तब वे युद्धशाली यादव उस राक्षससे बोले ॥ १–४½ ॥

यादवोंने कहा—अरे ! तू कौन है ? जैसे सिंहकी वस्तुको सियार ले जाय, उसी तरह यादवेन्द्र महाराज उग्रसेनका घोड़ेको लेकर तू कहाँ जायगा ? धूर्त ! खड़ा रह, खड़ा रह । हमारे साथ धैर्यपूर्वक युद्ध कर । हम घोड़ेको तेरे हाथसे छुड़ा लेंगे तथा रणभूमिमें तेरा वध कर डालेंगे । भाइयोंसहित शकुनि, नरकासुर, बाणासुर और बल्वल—ये समस्त राक्षसराज हमारे हाथसे मारे जा चुके हैं । तू तो उनके सामने तिनकेके तुल्य है । अतः हम युद्धमें तुझे कुछ भी नहीं गिनेंगे । तू घोड़ा लेकर चला जा, चला जा, नहीं तो हम तुझे मार डालेंगे ॥ ५–८½ ॥

उनका यह भाषण सुनकर देवताओंको भी भयभीत करनेवाले भीषणने शूल, गदा और खड्ग लेकर वह रोषके साथ उन सबसे कहा ॥ ९½ ॥

भीषण बोला—अरे ! तुमलोग क्या मेरा सामना कर सकते हो ? मनुष्य तो हमारे भोजन हैं । वे राक्षसोंके सामने कौन-सा पुरुषार्थ प्रकट करेंगे ? पहले जब यादव राजने 'विश्वजित् यज्ञ' किया था, तब मैं राक्षसोंको लानेके लिये लङ्का चला गया था । उन्हें लेकर अब मैं अपनी पुरीमें लौटा तो नारदजीके मुखसे सुना कि वह यज्ञ पूरा हो गया । अब तुमलोगोंने पुनः अश्वमेध यज्ञ करनेका प्रयास व्यर्थ ही किया है । तुमलोगोंमें कौन ऐसे वीर हैं, जो मेरे पकड़े हुए घोड़ेको छुड़ा सकें ! अतः घोड़ेकी आशा छोड़कर तुमलोग जाओ, चले जाओ । नहीं तो मेरे चार लाख अनुयायी राक्षस तुम सबको खा जायँगे । इस स्थानसे बारह योजन दूर समुद्रमें मेरी बनायी हुई पुरी है, जिसका नाम 'उपलङ्का' है । जैसे भोगवतीपुरी सर्पोंसे भरी रहती है, उसी प्रकार उपलङ्का निशाचरगणोंसे परिपूर्ण है ॥ १०–१६ ॥

राजन् ! ऐसा कहकर घोड़ा लिये आकाशमार्गसे वह सहसा अपनी पुरीको चला गया और समस्त यादव शोक करने लगे । तब अनिरुद्ध कहने लगे—'मोक्षराजके इस अश्वको जिसे निशाचर ले गया है, हम कैसे छुड़ायेंगे' ॥ १७ १८ ॥

उनका यह वचन सुनकर नीतिकुशल साम्ब आदि उनसे बोले—राजन् ! चिन्ता छोड़ो । हमारे रहते तुम्हें क्या भय है ? तुम्हारी सेनामें पंखदार घोड़े हैं, विमान हैं और बाण हैं । दोनों लोकोंपर विजय पानेवाले शौर्य सम्पन्न महान् वीर विद्यमान हैं । राजन् ! हमलोग घोड़ोंसे यात्रा करेंगे अथवा बाणोंसे पुल बाँधकर जायँगे, या भगवान् विष्णुके दिये हुए विमानसे शत्रुओंकी नगरीपर आक्रमण करेंगे । सबकी बात सुनकर धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ अनिरुद्धने मन्त्रिप्रवर उद्धवको बुलाकर इस प्रकार पूछा ॥ १९–२२ ॥

अनिरुद्ध बोले—मन्त्रिवर ! श्यामकर्ण हमारे हाथसे चला गया । अब हम क्या करें ? भगवान्‌ने आपके आदेशानुसार ही कार्य करनेकी आज्ञा दी थी, अतः आप कोई उपाय बताइये । मेरे सब चाचा लोग जो उपाय बता रहे हैं, वह आपने भी सुना है । यदि आपकी भी आज्ञा हो जाय तो मैं वह सब करूँ ॥ २३ २४ ॥

अनिरुद्धकी यह बात सुनकर उद्धवजी लज्जित होकर बोले—भैया ! मैं तो श्रीकृष्णका और विशेषतः उनके पुत्रों तथा पौत्रोंका भी सदा दास हूँ । निरन्तर आज्ञामें रहनेवाला सेवक हूँ । मैं क्या बताऊँगा । जो तुम्हारी और इन सबकी इच्छा हो, वह करो । निश्चय ही वह सफल होगी ॥ २५ २६ ॥

तब अनिरुद्धने कहा—यादवो ! मैं भगवान् विष्णुके दिये हुए विमानद्वारा दस अक्षौहिणी सेनाके साथ दैत्य नगरी (उपलङ्का) में जाऊँगा । चारुण, कृतवर्मा तथा सत्यकपुत्र युयुधान—ये लोग अक्रूरके साथ यहीं रहकर शेष सेनाकी रक्षा करें ॥ २७ २८ ॥

ऐसा कहकर अनिरुद्ध श्रीहरिके अठारह पुत्रों, उद्धव, गद और विशाल सेनाके साथ भगवान् विष्णुके दिये हुए विमानपर आरूढ हुए । श्रीकृष्णके पौत्र तथा यादव-वीरोंसे युक्त वह सूर्य बिम्बके समान तेजस्वी विमान अपनी शक्तिसे चालित होकर उसी प्रकार शोभा पाने लगा, जैसे पूर्वकालमें कुबेरका विमान पुष्पक श्रीराम और कपियूथोंसे युक्त होकर सुशोभित होता था ॥ २९ ३० ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'विमानपर आरोहण' नामक अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८ ॥

क्षणभरमें धनुष लेकर बोल उठे—'मेरा शत्रु दुष्ट भीषण कहाँ गया, कहाँ गया ?' श्रीहरिके पौत्रको खड़ा हुआ देख यादवपुंगव जय-जयकार करने लगे और समस्त देवताओंको भी बड़ा हर्ष हुआ ॥ २८-२९ ॥

तदनन्तर नारदजीसे सूचना पाकर भीषणका पिता निशाचर 'बक' अर्गलसे कुपित होकर वहाँ आया। महाराज ! वह कज्जलगिरिके समान काला और ताड़के बराबर ऊँचा था। उसकी जीभ लपलपा रही थी, नेत्र भयंकर हो गये थे तथा वह त्रिशूल और गदा लिये हुए था। एक हाथीको बायें हाथसे पकड़कर मुँहसे चबाता हुआ वह राक्षस रक्तसे नहा गया था और बड़े भारी पिशाचके समान दिखायी देता था। उसके दोनों पैर ताड़के बराबर बड़े थे। वह उनकी धमकसे भूतलको कम्पित कर रहा था। देवताओंके हृदयमें भय उत्पन्न करनेवाला वह निशाचर जनताके लिये काल-सा दिखायी देता था। उसको आते देख वहाँ सब यादव आतङ्कित हो गये और श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दों का स्मरण करते हुए वे सब आपसमें इस प्रकार कहने लगे ॥ ३०-३४ ॥

यादव बोले—मित्रो ! बताओ, यह कौन हमारे निकट आ पहुँचा है ? इसका रूप बड़ा ही बीभत्स है और यह कालके समान निर्भय प्रतीत होता है ॥ ३५ ॥

इस प्रकार जब सब लोग बोलने लगे तो वहाँ महान् कोलाहल छा गया। बकको देखकर वे सब निशाचर प्रसन्न हो गये। राजन् ! भीषणको मूर्च्छित देख राक्षसराज बक संग्राममें बारंबार 'हा दैव ! हा दैव !' कहता हुआ शोकमग्न हो गया ॥ ३६-३७ ॥

नरेश्वर ! तत्पश्चात् दो घड़ीमें मूर्च्छा त्यागकर भीषण उठा और कहने लगा—'मेरे भयसे गद कहाँ भाग गया ?' अपने पुत्रको उठा देख उस नरभक्षी राक्षसको बड़ा हर्ष हुआ। वह बोलनेमें बहुत कुशल था। उसने बेटेको हृदयसे लगाकर उत्तम वचनोंद्वारा उसे आश्वासन दिया। महाराज ! पिताको सहायताके लिये आया देख भीषणने प्रसन्नचित्त होकर उन्हें प्रणाम किया ॥ ३८-४० ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'बकका आगमन' नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९ ॥

बीसवाँ अध्याय

बक और भीषणकी पराजय तथा यादवोंका घोड़ा लेकर आकाशमार्गसे लौटना

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर असुरोंके बीचमें खड़े होकर राक्षस बकने भीषणसे युद्धका अभिप्राय (कारण) पूछा—'बेटा ! इन तिनकोंके समान यादवोंके साथ किसलिये युद्ध हुआ था, जिससे तुम मूर्च्छित हो गये और बहुत-से राक्षस मारे गये ! यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है' ॥ १-२ ॥

राजन् ! बकके इस प्रकार पूछनेपर भीषणने मुँह नीचे करके अश्वमेधके घोड़को पकड़ लानेके सम्बन्धमें सारी बात बतायी। पुत्रकी बात सुनकर बकने अपनी गदा ले ली और यादव-सेनामें उसी प्रकार प्रवेश किया, जैसे जंगलमें दावानल प्रकट हो जाता है। जैसे सिंह सोये हुए मृगोंको रौंद डालता है, उसी प्रकार सामने आये हुए यादवोंको बकने दोनों पैरोंसे, हाथोंसे, भुजाओंसे और गदाके आघातसे कुचल डाला। वह घोड़ोंको पकड़कर आकाशमें फेंक देता था, हाथियों तथा रथोंकी भी यही दशा करता था। बलवान् बक युद्धमें मनुष्योंको अपना भक्ष्य बनाता हुआ जोर-जोरसे गर्जना करने लगा। यदुकुलतिलक वज्रनाभ ! उस राक्षसकी गर्जनासे लोकोंसहित सम्पूर्ण विश्व गूँज उठा। भूमण्डलकी जनमण्डली बहरी हो गयी। उसके इस विपरीत युद्धसे समस्त यादव हाहाकार करने लगे और मनमें अत्यन्त खिन्न हो गये। उस दुरात्मा राक्षसने अपनी सेनाको अत्यन्त पीड़ित होती देख प्रचण्ड पराक्रमी जाम्बवतीनन्दन साम्बने पाँच नाराच अपने धनुषपर रखकर तत्काल ही बकको लक्ष्य करके छोड़े। मानद नरेश ! वे बाण उसके शरीरको विदीर्ण करते हुए तत्काल भूतलमें घुस गये और भोगवती गङ्गाका जल पीने लगे ॥ ३-११ ॥

राजन् ! उन बाणोंके आघातसे बक पृथ्वीको कम्पित करता हुआ गिर पड़ा, किंतु पुनः उठकर मेघगर्जनाके समान सिंहनाद करने लगा। तब पुनः जाम्बवतीकुमारने उसे पाँच बाण मारे। उन बाणोंके आघातसे चक्कर काटता हुआ बक लङ्कामें जा गिरा। नरेश्वर ! वहाँसे आकर उस राक्षसने अग्निके समान प्रज्वलित तीन शिखाओंवाले त्रिशूलको लेकर साम्बपर दे मारा, जैसे किसीने फूलसे हाथीपर आघात

उन्नीसवाँ अध्याय

यादवों और निशाचरोंका घोर युद्ध, अनिरुद्ध और भीषणकी मूर्च्छा तथा चेतना एवं रणभूमिमें बकका आगमन

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर रुक्मवती कुमार अनिरुद्ध कुबेरके समान विमानद्वारा विशाल सेनाके साथ उपलङ्कामें गये । नरेश्वर ! वहाँ जाकर यादवोंसहित अनिरुद्धने विषधर सर्पके समान विषाक्त बाणोंद्वारा उस नगरीका और वहाँके वन-उपवनोंका विध्वंस आरम्भ कर दिया । वहाँके क्रीडास्थानों, द्वारों, भवनों, अट्टालिकाओं, छज्जों तथा गोपुरोंपर उस विमानके अग्रभागसे अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा होने लगी । मुसल, शक्ति, परिघ, बाण और शिलाएँ भी निरन्तर पड़ने लगीं । राजन् ! वहाँ प्रचण्ड वायु चलने लगी और सम्पूर्ण दिशाएँ धूमसे आच्छादित हो गयीं । इस प्रकार यादवोंद्वारा की गयी अस्त्र-वर्षासे अत्यन्त पीड़ित हुई भीषणकी वह नगरी कहीं भी कल्याण (परित्राण) नहीं पा रही थी । उसकी वही दशा हो गयी थी, जैसे पूर्वकालमें शाल्वदेशीय योद्धाओंके आक्रमणसे द्वारकापुरीकी हुई थी ॥ १–५ ॥

नृपश्रेष्ठ ! उस समय उस नगरीमें हाहाकार मच गया । भीषण आदि असुर भयसे विह्वल हो गये । सारी नगरीको पीड़ित देख राक्षसराज भीषण 'डरो मत'—इस प्रकार अभयदान दे राक्षसोंके साथ बाहर निकला । फिर तो उसकी पुरीमें निशाचरोंके साथ यादवोंका घोर युद्ध होने लगा । ठीक उसी तरह, जैसे पहले लङ्कामें वानरों और राक्षसोंमें युद्ध हुआ था । वृष्णिवंशी योद्धाओंके बाणसमूहोंसे कंधे कट जानेके कारण राक्षस आँधीके उखाड़े हुए वृक्षोंकी भाँति समुद्रमें गिरने लगे । कुछ निशाचर औंधे मुँह उस पुरीमें ही धराशायी हो गये । राजन् ! कोई रक्तवमन करते हुए गिरे और कोई तत्काल पञ्चत्वको प्राप्त हो गये । वहाँ उन राक्षसोंके रक्तसे एक भयंकर दुर्गम नदी प्रकट हो गयी, जो महावैतरणीकी भाँति दुस्तर थी । वहाँ यादवोंका बल देखकर भीषणको बड़ा विस्मय हुआ । उसने टेढ़ी आँखोंसे यादवोंकी ओर देखकर कहा—'तुमलोगोंने निर्लज्जकी भाँति आकाशमें खड़े होकर युद्ध किया है । तुमलोग जो व्यर्थ वीरताका अभिमान करते हो, वह प्रशंसाके योग्य नहीं है । तुमलोगोंके शरीरोंमें यदि शक्ति हो तो सुनो—पृथ्वीपर उतर आओ और मेरे साथ युद्ध करो ।' उसकी यह बात सुनकर करुणामय प्रद्युम्नकुमार भूतलपर विमान उतारकर उस महान् असुरसे बोले ॥ ६–१५ ॥

अनिरुद्धने कहा—महान् असुर ! बहुत विकत्थन करनेसे क्या होगा ? तुम महासमरमें भय छोड़कर धैर्यपूर्वक मेरे साथ युद्ध करो ॥ १६ ॥

उनकी यह बात सुनकर भयंकर पराक्रमी भीषणने अपने धनुषसे पाँच नाराच बाण अनिरुद्धके ऊपर चलाये । अनिरुद्धने उन्हें देखकर अपने बाणोंद्वारा उन नाराचोंके दो-दो टुकड़े कर दिये और खेल-खेलमें ही एक बाणसे उसके धनुषको काट दिया । भीषणने भी दूसरा धनुष लेकर उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी और सौ-सौ बाणोंद्वारा प्रद्युम्नकुमारको व्याकुल कर दिया । उनका रथ खण्डित हो गया, सारथि मारा गया, सब घोड़े भी कालके गालमें चले गये और अनिरुद्ध मूर्च्छित हो गये । उस समय अपने सेनानायकको गिरा हुआ देख समस्त वृष्णिवंशी यादवोंके अधर फड़कने लगे, वे रोषसे फड़क उठे और वे बाणोंकी वर्षा करते हुए वहाँ आ पहुँचे । उन बहुसंख्यक वीरोंको आया देख उस असुरने रोषपूर्वक धनुषको रखकर गदासे ही उन सबको मार गिराया, जैसे सिंह अपनी दाढ़ोंसे ही मृगोंको कुचल देता है । गदाकी मारसे पीड़ित हो यादव सैनिक भूतलपर गिर पड़े । उनके सारे अङ्ग छिन्न-भिन्न हो गये थे । कितने ही योद्धा रणक्षेत्रमें धराशायी हो गये ॥ १७–२३ ॥

तब बलरामजीके छोटे भाई गदने अपनी गदा लेकर समरभूमिमें राक्षस भीषणके मस्तकपर प्रहार किया । राजन् ! गदाके उस प्रहारसे व्यथित हो वज्रके मारे हुए पर्वतकी भाँति वह असुर वसुधाको कम्पित करता हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा । भीषणका सिर फट गया था । उसे मूर्च्छित होकर पड़ा देख वे असुर शस्त्र धारण किये गदको मारनेके लिये आ पहुँचे । परंतु नरेश्वर ! नृसिंहने जैसे अपने दाँतोंसे हाथियोंको मार गिराया था, उसी प्रकार बलरामके छोटे भाई गदने अपनी वज्र-सरीखी गदासे उन सब असुरोंको धराशायी कर दिया ॥ २४–२९ ॥

इसके बाद अनिरुद्ध होशमें आकर खड़े हो गये और

क्षणभरमें धनुष लेकर बोल उठे—'मेरा शत्रु दुष्ट भीषण कहाँ गया, कहाँ गया ?' श्रीहरिके पौत्रको खड़ा हुआ देख यादवपुंगव जय-जयकार करने लगे और समस्त देवताओंको भी बड़ा हर्ष हुआ ॥ २८-२९ ॥

तदनन्तर नारदजीसे सूचना पाकर भीषणका पिता निशाचर 'बक' जंगलसे कुपित होकर वहाँ आया। महाराज ! वह कज्जलगिरिके समान काला और ताड़के बराबर ऊँचा था। उसकी जीभ लपलपा रही थी, नेत्र भयंकर हो गये थे तथा वह त्रिशूल और गदा लिये हुए था। एक हाथीको बायें हाथसे पकड़कर मुँहसे चबाता हुआ वह राक्षस रक्तसे नहा गया था और बड़े भारी पिशाचके समान दिखायी देता था। उसके दोनों पैर ताड़के बराबर बड़े थे। वह उनकी धमकसे भूतलको कम्पित कर रहा था। देवताओंके हृदयमें भय उत्पन्न करनेवाला वह निशाचर जनताके लिये काल-सा दिखायी देता था। उसको आते देख वहाँ सब यादव आतङ्कित हो गये और श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दोंका स्मरण करते हुए वे सब आपसमें इस प्रकार कहने लगे ॥ ३०-३४ ॥

यादव बोले—मित्रो ! बताओ, यह कौन हमारे निकट आ पहुँचा है ? इसका रूप बड़ा ही बीभत्स है और यह कालके समान निर्भय प्रतीत होता है ॥ ३५ ॥

इस प्रकार जब सब लोग बोलने लगे तो वहाँ महान् कोलाहल छा गया। बकको देखकर वे सब निशाचर प्रसन्न हो गये। राजन् ! भीषणको मूर्च्छित देख राक्षसराज बक संग्राममें बारंबार 'हा दैव ! हा दैव !' कहता हुआ शोकमग्न हो गया ॥ ३६-३७ ॥

नरेश्वर ! तत्पश्चात् दो घड़ीमें मूर्च्छा त्यागकर भीषण उठा और कहने लगा—'मेरे भयसे गद कहाँ भाग गया ?' अपने पुत्रको उठा देख उस नरभक्षी राक्षसको बड़ा हर्ष हुआ। वह बोलनेमें बहुत कुशल था। उसने बेटेको हृदयसे लगाकर उत्तम वचनोंद्वारा उसे आश्वासन दिया। महाराज ! पिताको सहायताके लिये आया देख भीषणने प्रसन्नचित्त होकर उन्हें प्रणाम किया ॥ ३८-४० ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'बकका आगमन' नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९ ॥

बीसवाँ अध्याय

बक और भीषणकी पराजय तथा यादवोंका घोड़ा लेकर आकाशमार्गसे लौटना

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर असुरोंके बीचमें खड़े होकर राक्षस बकने भीषणसे युद्धका अभिप्राय (कारण) पूछा—'बेटा ! इन तिनकोंके समान यादवोंके साथ किस लिये युद्ध हुआ था, जिससे तुम मूर्च्छित हो गये और बहुत-से राक्षस मारे गये ? यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है' ॥ १-२ ॥

राजन् ! बकके इस प्रकार पूछनेपर भीषणने मुँह नीचे करके अश्वमेधके घोड़ेको पकड़ लानेके सम्बन्धमें सारी बात बतायी। पुत्रकी बात सुनकर बकने अपनी गदा ले ली और यादव-सेनामें उसी प्रकार प्रवेश किया, जैसे जंगलमें दावानल प्रकट हो जाता है। जैसे सिंह आये हुए मृगोंको रौंद डालता है, उसी प्रकार सामने आये हुए यादवोंको बकने दोनों पैरोंसे, हाथोंसे, भुजाओंसे और गदाके आघातसे कुचल डाला। वह घोड़ोंको पकड़कर आकाशमें फेंक देता था, हाथियों तथा रथोंकी भी यही दशा करता था। बलवान् बक युद्धमें मनुष्योंको अपना भक्ष्य बनाता हुआ जोर-जोरसे गर्जना करने लगा। यदुकुलतिलक वज्रनाभ ! उस राक्षसकी गर्जनासे लोकोंसहित सम्पूर्ण विश्व गूँज उठा। भूमण्डलकी जनमण्डली बहरी हो गयी। उसके इस विपरीत युद्धसे समस्त यादव हाहाकार करने लगे और मनमें अत्यन्त खिन्न हो गये। उस दुरात्मा राक्षसके अपनी सेनाको अत्यन्त पीड़ित होती देख प्रचण्ड पराक्रमी जाम्बवतीनन्दन साम्बने पाँच नाराच अपने धनुषपर रखकर तत्काल ही बकको लक्ष्य करके छोड़े। मानद नरेश ! वे बाण उसके शरीरको विदीर्ण करते हुए तत्काल भूतलमें घुस गये और भोगवती गङ्गाका जल पीने लगे ॥ ३-११ ॥

राजन् ! उन बाणोंके आघातसे बक पृथ्वीको कम्पित करता हुआ गिर पड़ा, किंतु पुनः उठकर मेघगर्जनाके समान सिंहनाद करने लगा। तब पुनः जाम्बवतीकुमारने उसे पाँच बाण मारे। उन बाणोंके आघातसे चक्कर काटता हुआ बक लङ्कामें जा गिरा। नरेश्वर ! वहाँसे आकर उस राक्षसने अग्निके समान प्रज्वलित तीन शिखाओंवाले त्रिशूलको लेकर साम्बपर दे मारा, जैसे किसीने पूर्वमें हाथीपर

किया हो। त्रिशूलको आते देख साम्बने शीघ्र बाण मारकर अनायास ही युद्धस्थलमें उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले, जैसे गरुड़ने किसी नागको छिन्न भिन्न कर डाला हो। महाराज! तब रणदुर्मद बकने भारी गदा लेकर साम्बके घोड़ों और सारथिको मार डाला। फिर रथ और पताकाको भी चूर-चूर करके वह साम्बसे बोला—'तुम दूसरे रथपर बैठकर मेरे साथ युद्ध करो। इस समय तुम रथहीन हो, इसलिये रणभूमिमें मैं अधर्म या अन्यायसे तुम्हें नहीं मारूँगा' ॥ १२—१७½ ॥

उस दैत्यके ऐसा कहनेपर हँसते हुए साम्बने किंचित् कुपित होकर बककी कपाट-जैसी छातीपर शीघ्र ही गदासे आघात किया। युद्धस्थलमें उस गदासे आहत हुआ बक मन ही-मन कुछ व्याकुल हो उठा। फिर वह साम्बकी कोई परवा न करके यादव-सेनामें जा घुसा। वहाँ पहुँचकर उस निशाचरने गदाके आघातसे बहुत-से हाथियों, घोड़ों, रथों और मनुष्योंको उसी तरह मार गिराया, जैसे मृगराज सिंह मृगोंके समुदायको धराशायी कर देता है। नृपेश्वर! उस समय यादव-सेनामें हाहाकार मच गया। राजन्! यह देख रुक्मवतीनन्दन अनिरुद्ध रोषपूर्वक एक अक्षौहिणी सेनाके साथ वहाँ आये और सबको अभय देते हुए बोले ॥१८–२२॥

अनिरुद्धने कहा—रे मूढ! तू वीरपुरुषका सामना छोड़कर क्या युद्ध करेगा? निशाचर! भयभीतोंको मारनेसे तेरी प्रशंसा नहीं होगी। यदि तेरे शरीरमें शक्ति है तो मेरी बात सुन। मेरे सामने आकर यत्नपूर्वक युद्ध कर ॥२३-२४॥

राजन्! इस प्रकार अनिरुद्धकी बात सुनकर बकासुर रोषसे सर्पकी भाँति फुफकारता हुआ उनके सामने शीघ्र युद्धके लिये आया। युद्धस्थलमें उसे आया देख धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ अनिरुद्धने रोषपूर्वक उसे दस नाराच मारे। वे बाण शीघ्र ही उसके शरीरको छेदकर बाहर निकले और फिर भीषणको भी विदीर्ण करते हुए भूतलमें समा गये। तब भीषणसहित बक मूर्च्छित हो चक्रसे आहत हुए पर्वतके समान पृथ्वीपर गिर पड़ा। उस समय यादव-सेनामें जय-जयकार होने लगा। दुन्दुभियाँ बज उठीं, नगाड़े पीटे जाने लगे और शङ्खों तथा गोमुखोंकी ध्वनि होने लगी। अपने दोनों स्वामियोंको गिरा हुआ देख समस्त राक्षसोंका हृदय क्रोधसे भर गया। वे यादवोंको मारनेके लिये एक साथ ही उनपर टूट पड़े। फिर तो समराङ्गणमें दोनों दलोंमें बीच घोर युद्ध होने लगा। बाण, खड्ग, गदा, शक्ति और भिन्दिपालोंद्वारा परस्पर आघात प्रत्याघात होने लगा। राजन्! राक्षसोंके तीव्र बलको देखकर श्रीहरिके साम्ब आदि अठारह पुत्र बाणोंद्वारा उनपर प्रहार करने लगे। वहाँ उन सबके बाणोंसे घायल हो बहुत-से राक्षस युद्धस्थलमें सदाके लिये सो गये, कुछ तो मौतके मुखमें पड़ गये और कुछ जीवित रहनेकी इच्छासे मैदान छोड़कर भाग गये ॥ २५—३३ ॥

राजन्! तदनन्तर दो घड़ीके बाद उठकर मदमत्त बक तत्काल ही अपने शत्रु अनिरुद्धके सम्मुख गया। जाकर बकने अपने हाथमें एक भारी गदा लेकर अनिरुद्धके सिरपर फेंका और कहा—'लो अब तुम गये!' महाराज! उस गदाको अपने ऊपर आती देख अनिरुद्धने यमदण्डसे उसे उसी तरह चूर-चूर कर दिया, जैसे दुर्वचनसे मित्रता नष्ट कर दी जाती है। तब क्रोधसे भरा हुआ बक अपना मुखमण्डल फैलाकर अनिरुद्धको ला जानेके लिये उनकी ओर दौड़ा, मानो राहुने कहीं चन्द्रमापर ग्रास लगानेके लिये आक्रमण किया हो। उसे निकट आया देख धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ अनिरुद्धने फिर यमदण्ड उठाकर उससे उसके ऊपर आघात किया। राजन्! उस आघातसे बकका मस्तक फट गया और वह मुखसे रक्त वमन करता तथा पृथ्वीको कँपाता हुआ मूर्च्छित होकर गिर पड़ा ॥ ३४—३९ ॥

वज्रनाभ! पिताको मूर्च्छित हुए देख भीषणने रणक्षेत्रमें परिघ लेकर यादवोंका संहार आरम्भ किया। तब दक्षात्मा अनिरुद्धने रोषपूर्वक नागपाशसे भीषणको बाँधकर उसी प्रकार खींचा, जैसे गरुड़ सर्पको खींचते हैं। वरुणके पाशसे बँधकर उसने हताश होकर अपना मुँह नीचे कर लिया। उसे पराजित और मलहीन देख साम्ब बोले—"अनिरुद्ध! तुम्हारा भला हो। तुम अपनी पुरीमें आकर शीघ्र विधिपूर्वक अनिरुद्धके यज्ञसम्बन्धी घोड़ेको लौटा दो। अनिरुद्ध महात्मा श्रीकृष्णके पौत्र हैं। ये घोड़ेकी रक्षाके बहाने मनुष्योंको अपने स्वरूपका दर्शन करानेके लिये विचर रहे हैं। देवता, दैत्य और मनुष्य सभी आकर इनके चरणोंमें मस्तक झुकाते हैं। ये मनुष्योंके समस्त पापोंका नाश करनेवाले हैं। तुम इन्हें श्रीकृष्णके समान ही समझो। राक्षस! 'तुम युद्धमें श्रीकृष्णसे पराजित हुए हो'—ऐसा समझकर कुल और चिन्ता त्याग दो और हमलोगोंके साथ श्रीकृष्णका दर्शन करनेके लिये चलो" ॥ ४०—४६ ॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! साम्बके इस प्रकार समझाने और वरुणपाशसे मुक्त कर दिये जानेपर भीषणने पुरीमें आकर वहाँसे द्रव्यराशिके साथ घोड़ा लाकर

अनिरुद्धको लौटा दिया। तब अनिरुद्धने उससे भी अपनी रक्षाके लिये बड़े वेगसे अनुरोध किया। नरेश्वर! उनके इस प्रकार अनुरोध करनेपर भीषणने कुछ सोच विचारकर उत्तर दिया॥ ४७-४८॥

भीषणने कहा—'मेरे असुरराजक पिता जब चेतेत हों जायँगे, तब मैं उनकी आज्ञा लेकर आऊँगा, इसमें संशय नहीं है।' भीषणके ऐसा कहनेपर प्रद्युम्नपुत्र अनिरुद्धने यादवोंको साथ ले उनके वाहनोंको विमानपर चढ़ा लिया और स्वयं भी उसपर आरूढ़ हो, वे आकाशमार्गसे चल दिये॥ ४९-५०॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'उपयकुमार विजय' नामक बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २०॥

इक्कीसवाँ अध्याय

भद्रावतीपुरी तथा राजा यौवनाश्वपर अनिरुद्धकी विजय

श्रीगर्गजी कहते हैं—तदनन्तर विमानपर बैठे हुए ऊषावल्लभ अनिरुद्ध अपनी विजय-दुन्दुभि बजवाते हुए आकाशमार्गसे शीघ्र ही अपनी सेनाके पास आ गये। उन सबको आया देख अक्रूर आदि यादवोंने मिलकर सारा कुशल समाचार पूछा और उन लोगोंने सब कुछ बता दिया॥ १-२॥

तत्पश्चात् मूर्च्छा त्यागकर वक्र सहसा उठ खड़ा हुआ। वहाँ यादवोंको न देखकर उसने पुत्रसे रोषपूर्वक उनके चले जानेका कारण पूछा। तब भीषणने पिताको समस्त वृत्तान्त कह सुनाया। उसकी बात सुनकर रोषसे भरे और फड़कते हुए और वह कुपित होकर बोला—'मैं जानता हूँ, जैसे सिंहके डरसे हरिन भागते हैं, उसी प्रकार यादव मेरे भयसे विमान द्वारा भागकर कुशस्थलीको चले गये हैं। इसलिये मैं पृथ्वीको यादवोंसे सूनी कर दूँगा, इसमें संशय नहीं है। अब मैं कृष्णकी द्वारकामें जाकर समस्त यादवोंका संहार करूँगा'॥ ३-६॥

भीषणने कहा—महाराज! क्रोधको रोकिये, यह समय हमारे अनुकूल नहीं है। जब दैव प्रसन्न होगा, तब हम यादवोंको जीतेंगे॥ ७॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! पुत्रके इस प्रकार समझानेपर वकासुर चुप हो गया और वन जन्तुओंको खाता हुआ वनमें विचरने लगा॥ ८॥

नृपेन्द्र! तदनन्तर अश्वका विधिपूर्वक अभिषेक करके श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको दान दे, विजयी प्रद्युम्नपुत्र अनिरुद्धने पुनः विजययात्राके लिये उसको छोड़ा। प्रद्युम्नकुमारके छोड़नेपर वह अश्व पैदल सेनाके साथ निर्विघ्नतापूर्वक और बहुत-से वीरोंसे युक्त दलोंका दर्शन करता हुआ भद्रावतीपुरीमें जा पहुँचा॥ ९-१०॥

राजेन्द्र! भद्रावतीपुरी अनेक उपवनोंसे सुशोभित थी। परकोटे, दुर्गोंसे घिरी हुई थी तथा रजतमय मन्दिर उसकी शोभा बढ़ाते थे। बड़े-बड़े वीर पुरुष उसमें निवास करते थे। राजा यौवनाश्व उस पुरीके रक्षक थे। कोटेसे घिरे हुए कपाटोंसे वह पुरी अत्यन्त दृढ़ थी। उसमें जाकर वह अश्व राजाके सम्मुख खड़ा हो गया। राजाने उसे पकड़ा और सब बात जानकर वे क्रोधपूर्वक युद्ध करनेके लिये सेनासहित पुरीसे बाहर निकले। महाबली यौवनाश्वको सेनासहित सामने आया देख प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्धने श्रीकृष्णभक्त मन्त्री उद्धवको बुलाकर पूछा॥ ११-१४॥

अनिरुद्धने कहा—मन्त्रीजी! यह सेनाके साथ कौन हमारे सम्मुख आया है? इसने अश्वका अपहरण किया है और यह हमारे शत्रुओंमें मुख्य है। अतः इसके विषयमें आप सारी बातें बताइये॥ १५॥

उद्धव बोले—यदुकुलश्रेष्ठ अनिरुद्ध! इस राजाका नाम 'यौवनाश्व' है। यह मत्स्य देशके स्वामीका पुत्र है और अपने पिताके दिवंगत होनेपर यहाँ राज्य करता है। महाराज! अभी यह बालक वयकी अवस्थामें है। अपने दुष्ट मन्त्रीके कहनेसे यह युद्ध आरम्भ करेगा, परंतु आप इसका वध कदापि न करें॥ १६-१७॥

यह सुनकर 'बहुत अच्छा' कहकर अनिरुद्ध युद्धस्थलमें यौवनाश्वके साथ उसी प्रकार युद्ध करने लगे, जैसे सिंह हाथीसे लड़ रहा हो। कदाचित् अनिरुद्धने यौवनाश्वको तीन अक्षौहिणी सेनाका संहार करके उसे रथहीन कर दिया और राजकुमारसे यह उत्तम बात कही॥ १८-१९॥

अनिरुद्ध बोले—राजन्! मुझे घोड़ा लौटा दो, अन्यथा मेरे साथ युद्ध करो॥ २०॥

उनकी यह बात सुनकर और उन्हें श्रीकृष्णका पौत्र जान राजाको बड़ा भय हुआ। उसने अनिरुद्धको विधिपूर्वक सबका

घोड़ा समर्पित कर दिया और उनसे निमन्त्रित हो उस राजाने हाथ जोड़कर कहा ॥ २०-२१ ॥

यौवनाश्व बोला—नृपेश्वर ! जब द्वारकामें यज्ञ होगा, उस समय मैं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दोंका दर्शन करनेके लिये आऊँगा ॥ २२ ॥

तदनन्तर अनिरुद्धने उसे उसके राज्यपर प्रतिष्ठित कर दिया । यौवनाश्वने उनके चरणोंमें प्रणाम किया और विजयी अनिरुद्धने उस श्रेष्ठ घोड़ेको पुनः विजयके लिये छोड़ा ॥ २३ ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'भद्रावतीपर विजय' नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २१ ॥

बाईसवाँ अध्याय

यज्ञके घोड़ेका अवन्तीपुरीमें जाना और वहाँ अवन्तीनरेशकी ओरसे सेनासहित यादवोंका पूर्ण सत्कार होना

श्रीगर्गजी कहते हैं—महाराज ! यदुकुलतिलक वीरवर अनिरुद्धका वह घोड़ा अनेक जनपदोंका अवलोकन करता हुआ 'गजपुर' जनपदमें जा पहुँचा। मार्गमें सफरा (शिप्रा) नदीका दर्शन करके वह अवन्तिका (उज्जयिनी) के उपवनमें जा खड़ा हुआ । उसी समय श्रीकृष्णके गुरु महात्मा विप्रवर सान्दीपनि स्नान करनेके लिये घरसे चलकर वहाँ आये । उन्होंने तुलसीकी माला पहन रखी थी । कंधेपर श्वेत वस्त्र रख छोड़ा था और मुखसे वे श्रीकृष्ण-नामका जप कर रहे थे । उन्होंने वहाँ पानी पीते हुए श्वेत एवं श्यामकर्ण घोड़ेको, जिसके भालदेशमें पत्र बँधा हुआ था, देखा । देखकर पूछा—'किस नृपेश्वरने इस यज्ञके घोड़ेको छोड़ा है ?' ॥ १-३ ॥

नरेश्वर ! वहाँ राजकुमार विन्दुको स्नान करते देख उन्हें घोड़ेके विषयमें जानकारी प्राप्त करनेके लिये आकर प्रेरित किया । महाराज ! तब राजाधिदेवीके वीरपुत्र विन्दुने अन्य बहुत-से वीरोंके साथ जाकर सहसा उस घोड़ेको पकड़ा और उसका भलीभाँति निरीक्षण करके लौटकर गुरु सान्दीपनिको प्रणाम कर उसके विषयमें बताया । तत्पश्चात् गुरुके आदेशसे प्रसन्न हो राजकुमार घोड़ा लेकर आये और हर्षपूर्वक गुरुजीको दिखाने लगे । सान्दीपनिने भालपत्र पढ़कर प्रसन्नतापूर्वक राजाको बताया ॥ ४-६ ॥

सान्दीपनि बोले—राजन् ! इसे राजा उग्रसेनका घोड़ा समझो । प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्ध इसकी रक्षामें आये हैं । यह अश्व अपनी इच्छानुसार घूमता हुआ यहाँतक आ गया है । अब अनिरुद्ध भी यहाँ आयेंगे । उनके साथ और भी बहुत-से युद्धशाली यादव-वीर पधारेंगे । घोड़ेका निरीक्षण करते हुए तुम्हारी बहिन मित्रविन्दाके पुत्र भी आयेंगे । तुम्हें यहाँ श्रीकृष्णचन्द्रके सभी पुत्रोंका आदर-सत्कार करना चाहिये । मेरे कहनेसे तुम युद्धका विचार छोड़कर घोड़ा उन्हें लौटा देना ॥ ७-९ ॥

गुरुका यह कथन सुनकर धनुर्धर शूरवीर राजकुमार वहाँ चुप रह गया । उसका मन घोड़ेको पकड़ ले जानेका था । उसी समय यादव-सेनाका कोलाहल सुनायी पड़ा, जो समस्त लोकोंके मानका मर्दन करनेवाला था । दुन्दुभियोंका महानाद, धनुषोंकी टंकार, हाथियोंका चीत्कार, घोड़ोंकी हिनहिनाहट, रथोंका झणत्कार, वीरोंकी गर्जना तथा शङ्खध्वनियोंका महानाद—इन सबका तुमुल शब्द समस्त लोकोंके लिये भयदायक था । उसे सुनकर राजकुमार विन्दुको बड़ा विस्मय हुआ । इतनेमें ही रथियों, हाथियों और घोड़ोंके साथ भोज, वृष्णि, अन्धक, मधु, शूरसेन तथा दशार्हवंशके समस्त यादव वहाँ आ पहुँचे । वे सेनाकी धूलिसे आकाशको व्याप्त तथा पैरोंकी धमकसे पृथ्वीको कम्पित करते हुए आये और सब-के-सब पूछने लगे—'यज्ञका घोड़ा कौन ले गया, कहाँ गया ?' ॥ १०-१५ ॥

उस समय समस्त अन्वेषकोंने पुष्पवाले वृक्षोंसे व्याप्त अत्यन्त अद्भुत उपवनमें चामर बँधे हुए घोड़ेको देखा, जिसे राजकुमार विन्दुने अनायास ही पकड़ लिया था । देखकर सबने अनिरुद्धके निकट जाकर इसकी सूचना दी । सूचना पाकर यदुवंशी अनिरुद्ध विस्मित हुए । उन्होंने हँसते हुए विन्दुके पास उद्धवजीको भेजा । महाराज ! उस समय अवन्तीपुरीमें महान् कोलाहल छा गया । वहाँ एकत्र हुई भयंकर सेनाको देखकर सब लोग भयभीत हो उठे थे । इसी समय अपने भाईकी रक्षा करनेके लिये भयभीत अनुविन्द एक करोड़ वीरोंके साथ अपनी पुरीसे बाहर निकला । वह

यादवसेनाका विमानद्वारा उपलङ्कामें पहुँचना

अनिरुद्धद्वारा भीषणपर प्रहार

हाथीको चबाता हुआ बक

भीषणके द्वारा अश्व समर्पण

दुग्धराशिके समान धवल एवं मालपत्रसे युक्त यज्ञ-सम्बन्धी अश्वको वहाँ अपने भाइके द्वारा पकड़ा गया देख उसे मना करता हुआ बोला ॥ १९–२१ ॥

अनुबिन्दुने कहा—भैया! भगवान् श्रीकृष्ण जिनके देवता हैं, उन यादवोंका यह घोड़ा है। आप उनके साथ जो हमारा सम्बन्ध है, उसके बढ़ाने या अपने कुलकी कुशलताके लिये इस घोड़ेको छोड़ दीजिये। यादवोंकी यह सेना तो देखिये। भैया! पहले जो राजसूय यज्ञ हुआ था, उसमें इन यादवोंने देवता, दैत्य, मनुष्य और असुर—सबपर विजय पायी थी ॥ २२-२३ ॥

अनुबिन्दुकी यह बात सुनकर बड़ा भाई बिन्दु हार मान गया। उसने घोड़ेपर चढ़कर आये हुए उद्धवजीसे कहा ॥२४॥

बिन्दु बोला—मन्त्रिप्रवर! मैंने मित्रोंके साथ मिलनेके लिये घोड़ेको पकड़ रखा है। अतः आप सब लोगोंको निमन्त्रित किया जाता है। आज आपलोग यहीं ठहरें ॥ २५ ॥

राजन्! यह सुनकर उद्धव बिन्दुकी सराहना करके बड़े प्रसन्न हुए और अनिरुद्धके निकट जाकर उन्होंने सब समाचार बताया। नरेश्वर! उद्धवजीका कथन सुनकर अनिरुद्धका मन प्रसन्न हो गया। उन्होंने सेनासहित अवन्ती पुरीमें शिप्रा नदीके तटपर पड़ाव डाल दिया। महाराज! वहाँ दस योजन दूरतकके भूभागमें रंग-बिरंगे अनेक शिविर पड़ गये। सभी सुवर्णकलशोंसे युक्त थे। वे सुन्दर शिविर वहाँ अद्भुत शोभा पा रहे थे। राजकुमार बिन्दुने वहाँ आये हुए सब लोगोंका भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और चोष्य—इन चारों प्रकारके भोजनोंद्वारा आतिथ्य-सत्कार किया। इसी तरह अवन्तीनरेशने सेनावर्ती पशुओंको भी घास-पात और अन्न आदि प्रदान किये। उन्होंने वृष्णिवंशी वीरोंका इस प्रकार स्वागत-सत्कार किया। राजाधिदेवी, उनके पति तथा दोनों राजकुमार—सब-के-सब श्रीहरिके समस्त पुत्रोंको देखकर बड़े प्रसन्न हुए ॥ २६–३१ ॥

तदनन्तर रातमें प्रद्युम्नपुत्र अनिरुद्धने अपने बाबाके गुरु सान्दीपनि मुनिको बुलाकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया। उन्हें आसन देकर बैठाया और उत्तम रीतिसे उनका पूजन करके कहा—'भगवन्! द्वारकामें भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञासे चक्रवर्ती यदुकुलतिलक महाराज उग्रसेन अश्वमेध यज्ञ कर रहे हैं। ब्रह्मन्! मुनिश्रेष्ठ! आप मुझपर कृपा करके उस श्रेष्ठ यज्ञमें अपने पुत्रसहित अवश्य पधारें।' अनिरुद्धका यह वचन सुनकर श्रीकृष्णदर्शनके अभिलाषी सान्दीपनि मुनिने वहाँ चलनेका निश्चय किया ॥ ३२–३५॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'अवन्तिकागमन' नामक बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २२ ॥

तेईसवाँ अध्याय

अनिरुद्धके पूछनेपर सान्दीपनिद्वारा श्रीकृष्ण-तत्त्वका निरूपण, श्रीकृष्णकी परब्रह्मता एवं भजनीयताका प्रतिपादन करके जगत्‌से वैराग्य और भगवान्‌के भजनका उपदेश

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! तत्पश्चात् वहाँ श्रीकृष्णपौत्र अनिरुद्धने मनमें कुछ संदेह लेकर सान्दीपनि मुनिसे उसी प्रकार प्रश्न किया, जैसे देवराज इन्द्र देवगुरु बृहस्पतिसे अपने मनका संदेह पूछा करते हैं ॥ १ ॥

अनिरुद्ध बोले—'भगवन्! मुने! मुझे उस सारतत्त्वका उपदेश दीजिये, जिससे मैं जगत्‌के स्वप्नतुल्य सुखोंको त्यागकर नित्यानन्द-स्वरूपमें रमण करूँ।' राजन्! अनिरुद्धके इस प्रकार पूछनेपर सान्दीपनि मुनि हँसते हुए उसी प्रकार उन्हें उपदेश देने लगे, जैसे पूर्वकालमें राजा पृथुके पूछनेपर सनत्कुमारने उन्हें प्रसन्नतापूर्वक उपदेश दिया था ॥ २-३ ॥

सान्दीपनि बोले—लोकेश! तुम्हीं श्रीहरिके नाभिकमलसे उत्पन्न हुए आदिदेव हो; अतः तुम्हारे सामने मैं सारतत्त्वकी बात क्या कह सकूँगा। राजन्! तथापि तुम्हारे वचनका गौरव मानकर समस्त दीनचेता मनुष्योंके कल्याणके लिये कुछ कहूँगा। नरेश्वर! तुमने जो कुछ पूछा है, वह सब मेरे मुखसे सुनो। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंका सेवन ही सारतत्त्व है, जिन चरणोंके पूजनमात्रसे ध्रुवजीने ध्रुवपद प्राप्त कर लिया। प्रह्लाद, अम्बरीष, गय और यदुने भी अक्षयपद प्राप्त किया। राजेन्द्र! इसलिये तुम भी मनोयोगपूर्वक श्रीकृष्णकी सेवा करो, क्योंकि यही सब साधनोंका सारभूत है। तुम सब लोग इस जगत्‌में बड़े सौभाग्यशाली हो; क्योंकि श्रीकृष्ण

उनकी यह बात सुनकर सान्दीपनि मुनि प्रसन्नतापूर्वक श्रीकृष्णके दिये हुए पुत्रके साथ रथपर बैठकर द्वारकापुरीको गये। द्वारकापुरीमें बलराम और श्रीकृष्णने बड़े आदरके साथ उन्हें ठहराया। समस्त यादवों तथा भोजराज उग्रसेनने विधिपूर्वक उनका पूजन किया ॥ २४ ॥

इधर प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्धने सोनेकी साँकलमें बँधे हुए अत्यन्त उज्ज्वल श्यामकर्ण अश्वको विजय-यात्राके लिये खोल दिया। वह घोड़ा राजाधिराज उग्रसेनदेवका वैभव सूचित करता हुआ वेगपूर्वक आगे बढ़ा और उस नगरपुरमें चला गया, जहाँ शाल्वका भाई राजा अनुशाल्व नित्य राज्य करता था। स्वेच्छानुसार वहाँ पहुँचे हुए उस अश्वको अनुशाल्वने पकड़ लिया और उसके भालमें बँधे हुए पत्रको बाँचा। बाँचकर उसे बड़ा हर्ष हुआ। सारा अभिप्राय समझकर रोषसे उसके ओठ फड़कने लगे। वह टेढ़ी आँखोंसे देखता हुआ अपने सैनिकोंसे बोला—'बड़े सौभाग्यकी बात है कि मेरे सारे शत्रु स्वयं यहाँ आ गये। मैं उन सबको मार डालूँगा, जिन्होंने मेरे भाईका वध किया है' ॥५-९॥

—ऐसा कहकर और यादवोंको तिनकेके समान मानकर दस अक्षौहिणी सेनाके साथ वह नगरसे बाहर निकला। उसी समय समस्त वृष्णिवंशियोंने देखा, सामने विशाल सेना आयी है और बाणवर्षा कर रही है, तब उन्होंने भी बाण बरसाना आरम्भ किया। उस रणक्षेत्रमें दोनों सेनाओंके बीच खड्ग, बाण, शक्ति और भिन्दिपालोंद्वारा घोर युद्ध होने लगा। अनुशाल्वकी सेना भाग चली। यह देख महाबली अनुशाल्वने उसे रोका और सिंहनाद करते हुए रथके द्वारा वह स्वयं युद्धके मैदानमें आया। उसे आया देख श्रीकृष्णनन्दन दीप्तिमान् उसके साथ युद्ध करनेके लिये तत्काल सामने जा पहुँचे। दीप्तिमान्‌को युद्धभूमिमें देखकर अनुशाल्व अमर्षसे भर गया और अपने धनुषसे चलाये गये दस बाणों द्वारा उनपर आघात किया, मानो किसी बाघने हाथीपर पंजे मार दिये हों। उन बाणसमूहोंसे ताड़ित होनेपर दीप्तिमान्‌की भुजा क्षत विक्षत हो खूनसे लथपथ हो गयी। उन्होंने तत्काल धनुष उठाकर रोषपूर्वक दस बाण हाथमें लिये। उन बाणोंको कोदण्डपर रखकर दीप्तिमान्‌ने छोड़ा। राजन्! वे बाण अनुशाल्वके शरीरको विदीर्ण करके बाहर निकल गये, जैसे अनेक गरुड़ घोंसले छोड़कर सहसा बाहर चले गये हों। उन बाणोंसे घायल हुआ अनुशाल्व रणभूमिमें मूर्च्छित हो गया। तब उसके समस्त सैनिकोंके ओठ रोषसे फड़कने लगे और वे चित्र-विचित्र शस्त्रों और बाणोंद्वारा युद्धस्थलमें दीप्तिमान्‌पर चोट करने लगे। उस समय श्रीहरिके पुत्र भानुने आकर जैसे भानु (सूर्य) कुहासेके बादलोंको नष्ट कर देता है, उसी प्रकार अपने बाणोंद्वारा समस्त शत्रुओं को छिन्न भिन्न कर दिया। फिर तो अनुशाल्वके चार सैनिक भाग चले। नरेश्वर! उसी समय अनुशाल्वके 'प्रचण्ड' नामक मन्त्रीने कुपित हो समराङ्गणमें सत्यभामाकुमार भानुपर शक्तिसे प्रहार किया। वह शक्ति भानुकी छाती छेदकर धरतीमें समा गयी और वे भी रणक्षेत्रमें मूर्च्छित होकर रथसे नीचे गिर पड़े ॥ १०-२२½ ॥

ऐसा कौतुक देख साम्ब वहाँ रोषसे जल उठे। वे शीघ्र ही हाथमें कोदण्ड लिये रथके द्वारा वहाँ आ पहुँचे। साम्बने सौ बाण मारकर प्रचण्डके ध्वज, सारथि और घोड़ोंसहित सम्पूर्ण रथको चूर्ण-चूर्ण कर डाला। रथ नष्ट हो जानेपर रणदुर्मद प्रचण्ड गदा लेकर अपने शत्रु साम्बको मारनेके लिये उसी प्रकार आया, जैसे पतंग अग्निपर टूट पड़ा हो। उसे आया देख साम्बने चन्द्रमा और सूर्यके समान तेजस्वी एक ही बाणसे समरभूमिमें उसका मस्तक काट दिया। नृपेश्वर! उस समय उसकी सेनामें हाहाकार मच गया ॥ २३-२७ ॥

तदनन्तर अनुशाल्व दो घड़ीमें मूर्च्छा त्यागकर उठ खड़ा हुआ। उसने देखा मेरा मन्त्री साम्बके हाथसे युद्धमें मारा गया। यह देख उस राजाने रथपर आरूढ़ हो कवच बाँधकर धनुष और खड्ग लेकर धावा किया तथा समरमें चार बाणोंद्वारा साम्बके चार घोड़ों, दो बाणोंसे उसके ध्वज, तीन बाणोंसे सारथि, पाँच बाणोंसे धनुष तथा तीस बाणोंसे रथकी धज्जियाँ उड़ा दीं। धनुष कट गया, रथ नष्ट हो गया और घोड़े तथा सारथि मारे गये, तब जाम्बवती कुमार साम्ब दूसरे रथपर आरूढ़ हो शोभा पाने लगे। तदनन्तर उन्होंने कुपित हो धनुष लेकर युद्धस्थलमें सौ बाणोंद्वारा अपने शत्रुपर प्रहार किया, मानो गरुड़ने अपने पंखोंकी मारसे सर्पको चोट पहुँचायी हो। उस प्रहारसे अनुशाल्वका भी रथ टूट गया, घोड़े कालके गालमें चले गये, सारथि दिवंगत हो गया और स्वयं अनुशाल्व रणभूमिमें मूर्च्छित हो गया। तब उसके समस्त सैनिक सिंधुरी घाँतोंसे युक्त और विषधर सर्पके समान तीखे नाराचोंसे बाणोंद्वारा रोषपूर्वक साम्बपर प्रहार करने लगे ॥ २८-३४ ॥

युद्धस्थलमें साम्बको अकेला देख कृष्णपुत्र मधु रोषसे भर गया और वह मयूरके समान रंगवाले घोड़ेपर चढ़कर युद्धस्थलमें आ पहुँचा। राजेन्द्र! साम्बके साथ मिलकर मधु सारे दुष्ट शत्रुओंको तलवारकी धारसे मौतके घाट उतारता हुआ आधे पहरतक समराङ्गणमें विचरता रहा। तत्पश्चात् अनुशाल्वने मूर्च्छासे उठकर अपनी पराजय देख, जलसे आचमनकर शुद्ध हो, समस्त शत्रुओंको मार डालनेका निश्चय किया। उसने मयासुरसे ब्रह्मास्त्रकी शिक्षा पायी थी, किंतु उसका निवारण करना वह नहीं जानता था। तथापि प्राणसंकट प्राप्त होनेपर उसने रोषपूर्वक ब्रह्मास्त्रका संधान किया। उस अस्त्रका दारुण और महान् तेज तीनों लोकोंको दग्ध करता हुआ-सा बारह सूर्योंके समान अन्तरिक्षमें फैलने लगा। उसके दुस्सह तेजसे जलते हुए समस्त यादव प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्धके पास गये और कहने लगे—'नरदेव! महात्मन्! इस दुःखसे हमारी रक्षा कीजिये।' राजन्! तब बलवतांकुमार वीर अनिरुद्धने उन सबको अभय दे, समराङ्गणमें वेगपूर्वक ब्रह्मास्त्र चलाकर उस ब्रह्मास्त्रको शान्त कर दिया॥ ३५–४१॥

तब अनुशाल्वने आग्नेयास्त्र चलाया। उस अस्त्रके प्रभावसे आकाशमण्डल अग्निसे व्याप्त हो गया। सारी भूमि आगसे जलने लगी, मानो खाण्डववन आगकी लपटोंमें आ गया हो। यह देख बलवान् अनिरुद्धने फिर वारुणास्त्रका प्रयोग किया। उससे प्रचण्ड मेघ उत्पन्न हो गये और उनकी बरसायी हुई जलधाराओंसे वह आग बुझ गयी। उस समय महामेघोंद्वारा वर्षा ऋतुका आगमन जानकर मेंढक, कोकिल, मोर और सारस आदि बार-बार बोलकर अपनी आन्तरिक प्रसन्नता प्रकट करने लगे। तब मायावी अनुशाल्वने वायव्यास्त्रका प्रयोग किया। यह देख अनिरुद्ध उसपर पर्वतास्त्रद्वारा युद्ध करने लगे॥ ४२–४५॥

इसके बाद अनुशाल्वने हजार भारसे युक्त भारी गदा हाथमें लेकर युद्धस्थलमें शूरवीरोंके मुकुटमणि अनिरुद्धसे कुद्ध होकर कहा—'राजेन्द्र! तुम्हारी सेनामें कोई ऐसा वीर नहीं है, जो गदायुद्धमें कुशल हो। यदि कोई है तो उसे शीघ्र मेरे सामने लाओ'॥ ४६-४७॥

उसका यह वचन सुनकर महान् गदाधारी गद अनिरुद्धके देखते देखते आगे होकर बोले—'दैत्यराज! इस सेनामें बहुत-से ऐसे वीर हैं, जिन्हें सम्पूर्ण शास्त्रोंमें निपुणता प्राप्त है। घमंड न करो, क्योंकि तुम रणक्षेत्रमें अकेले हो। असुर! यदि तुम मेरी बात नहीं मानते हो तो पहले मेरे साथ गदायुद्ध कर लो, फिर दूसरोंको देखना'॥ ४८–५०॥

नरेश्वर! ऐसा कहकर गदने लाख भारकी मुद्गर हाथमें ली और उसके द्वारा अनुशाल्वके मस्तकपर तथा छातीमें चोट की। अनुशाल्वने भी समराङ्गणमें गदपर गदासे आघात किया। फिर तो वे दोनों क्रोधसे मूर्च्छित हो एक-दूसरेपर अपनी-अपनी गदासे चोट करने लगे। इतनेमें ही गदने अनुशाल्वको उठा लिया और उसे सौ बार घुमाकर आकाशमें फेंक दिया। अनुशाल्व पृथ्वीपर गिर पड़ा। राजेन्द्र! तदनन्तर उसने भी रोहिणीकुमार गदको पकड़कर धरतीपर खूब रगड़ा। वह एक अद्भुत-सा दृश्य था। तत्पश्चात् गदने एक हाथीको पकड़कर अनुशाल्वके ऊपर फेंका। अनुशाल्वने अपने ऊपर आते हुए हाथीको हाथमें ले लिया और पुनः उसे गदपर ही दे मारा। वे दोनों परस्पर घुटनों और मुक्कोंके घोर प्रहारोंद्वारा चोट पहुँचाने लगे। दोनों दानोंसे द्वारा धरतीपर रौंदे गये। फिर दोनों ही गिरकर मूर्च्छित हो गये॥ ५१–५६॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'राजपुर विजय' नामक चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २४॥

पचीसवाँ अध्याय

अनुशाल्वद्वारा प्रद्युम्नको उपहारसहित अश्वका अर्पण तथा बल्वल दैत्यके द्वारा उस अश्वका अपहरण

श्रीगर्गजी कहते हैं—उन दोनोंका युद्ध देखकर यादव परस्पर कहने लगे—'अनुशाल्व धन्य है!' शत्रुसैनिक आपसमें चर्चा करने लगे कि 'गद महान् वीर हैं।' वे सब इस प्रकार बात कर ही रहे थे कि गद वहाँ सचेत होकर उठे और बोल पड़े—'मेरा शत्रु मुझपर प्रहार करके रणक्षेत्रसे कहाँ गया! कहाँ गया?'॥ १-२॥

—ऐसा कहकर उन्होंने अनुशाल्वको हाथसे पकड़कर रोषपूर्वक खींचा और अनिरुद्धके निकट बड़े वेगसे दे मारा।

अनुशाल्व औंधे मुँह गिरा और मूर्च्छित हो गया। यह देख अनिरुद्धने स्वयं पानी छिड़ककर और व्यजन डुलवाकर उसे होश [में ला]या। उसी समय अनुरोधर अनुशाल्व मूर्च्छासे जाग उठा और अपने सामने मेघके समान श्यामवर्णवाले परमसुन्दर श्रीकृष्णपौत्रको देखकर उन्हें प्रणाम करके बोला—'श्रीकृष्ण पौत्र अनिरुद्ध! आपने मेरे प्राणोंकी रक्षा की है, अतः मैंने जो अपराध किया है, उसे क्षमा कर दें। सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान् वासुदेवको नमस्कार है। संकर्षणको प्रणाम है। प्रद्युम्नको नमस्कार है और आप अनिरुद्धको भी प्रणाम है*। आप अपना घोड़ा लीजिये और मैं भी इसकी रक्षाके लिये आपके साथ चलूँगा' ॥ ३–७½ ॥

ऐसा कह उसने नगरमें जाकर अनिरुद्धको घोड़ा लौटा दिया। साथ ही दस हजार हाथी, एक लाख घोड़े, पचास हजार रथ तथा एक सहस्र शिविकाएँ उन्हें भेंट कीं। नृपश्रेष्ठ! इनके अतिरिक्त राजा अनुशाल्वने एक हजार ऊँट, एक सहस्र गवय (वनगाय अथवा घड़रोज), पिंजड़ेमें बंद दो हजार सिंह, एक हजार शिकारी कुत्ते, एक सहस्र शिविर (तम्बू-कनात), एक लाख रुनझुन शब्द करती हुई धनुषकी प्रत्यञ्चाएँ, दस हजार परदे, एक लाख दुधारू गौएँ, सहस्र भार सुवर्ण, चार सहस्र भार चाँदी और एक भार मोती अनिरुद्धको अर्पित किये। तब अनिरुद्धने अत्यन्त प्रसन्न हो उसे मणिमय हार भेंट किया ॥ ८–१३ ॥

अनुशाल्व अपने राज्यपर श्रेष्ठ मन्त्रिको स्थापित कर यादवोंके साथ स्वयं भी अन्यान्य देशोंको गया। भूपते! तत्पश्चात् छूटा हुआ मणिमय और सुवर्णमय आभूषणोंसे विभूषित वह अश्व वीरोंसे भरे दूसरे-दूसरे देशोंका दर्शन करता हुआ भ्रमण करने लगा। 'अनुशाल्व हार गया, यौवनाश्व तथा भीषण भी परास्त हो गये'—यह सुनकर अन्यान्य मण्डलेश्वर नरेशोंने अपने यहाँ आनेपर भी उस घोड़ेको नहीं पकड़ा। महाराज! इस तरह घूमते हुए उस घोड़ेके छः मास बीत गये और उतने ही शेष रह गये ॥ १४–१७ ॥

नरेश्वर! मणिपुरके राजा तथा रत्नपुरके भूपालने घोड़ेको पकड़ा, किंतु अनिरुद्धके भयसे उसको छोड़ दिया। राजन्! वह मेध्य अश्व शूरवीरोंसे रहित समस्त राष्ट्रोंको छोड़कर प्राची दिशामें गया, जहाँ दैत्यराज बल्वल निवास करता था। यह दैत्य नारदजीके मुखसे यज्ञ-सम्बन्धी घोड़ेका समाचार सुनकर नैमिषारण्यमें होनेवाले यज्ञका विनाश करके वहाँसे शीघ्र ही अपने नगरको लौटा। रास्तेमें उसने देखा, वह यज्ञ-सम्बन्धी घोड़ा प्रयागतीर्थमें त्रिवेणीका जल पी रहा है। राजन्! उसे देखते ही बल्वलने भगवान् श्रीकृष्णकी कोई परवा न करके उसे शीघ्र ही जा पकड़ा। उसी समय समस्त वृष्णिवंशी योद्धा दण्डकारण्यका दर्शन करते हुए चर्मण्वती नदी पार करके चित्रकूटमें आ पहुँचे। वहाँ श्रीरामक्षेत्रमें दान करके अश्वको देखते हुए उसके पीछे लगे वे सब लोग तीर्थराज प्रयागमें आ गये ॥ १८–२३ ॥

राजन्! वहाँ पहुँचकर उन श्रेष्ठतम यादव-वीरोंने देखा कि 'पत्रसहित अश्वको दुरात्मा असुर बल्वलने बलपूर्वक पकड़ रक्खा है।' बल्वल नील अञ्जनके ढेरकी भाँति दिखायी पड़ता था। उसके शरीरकी ऊँचाई दो योजनकी थी। उस उग्र दैत्यके नेत्र अङ्गारके समान जान पड़ते थे। उसकी दाढ़ी-मूँछ तपायी हुई ताम्रशिखाके समान दिखायी देती थी। बड़ी बड़ी दाढ़ें और उग्र भ्रुकुटिके कारण उसका मुख भयंकर प्रतीत होता था। वह ब्राह्मणद्रोही असुर अपनी जीभ लपलपा रहा था और उसमें दस हजार हाथियोंके समान बल था। उसे देखते ही यादवोंके अधर-पल्लव रोषसे फड़क उठे और वे बोले—'अरे! तू कौन है? हमारा यह यज्ञपशु लेकर तू कहाँ जायगा? अतः इसे शीघ्र छोड़ दे, नहीं तो हमलोग युद्धमें तुझे मार डालेंगे।' यह सुनकर उस असुरने कहा—'मनुष्यो! मेरी बात सुनो' ॥ २४–२८ ॥

बल्वलने कहा—मैं देवताओंको दुःख देनेवाला दैत्य बल्वल हूँ, जिसके सामने सारे मनुष्य भयसे व्याकुल हो जाते हैं ॥ २९ ॥

यह सुनकर यादवोंने बल्वलको बाणोंसे मारना आरम्भ किया। नरेश्वर! उनके बाणोंकी चोट खाकर बल्वल घोड़े सहित सहसा अन्तर्धान हो गया ॥ ३० ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'बल्वलके द्वारा अश्वका अपहरण' नामक पचीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २५ ॥

---

* … । प्रद्युम्नाय नमस्तुभ्यमनिरुद्धाय ते नमः ॥

छब्बीसवाँ अध्याय

नारदजीके मुखसे बल्वलके निवासस्थानका पता पाकर यादवोंका अनेक तीर्थोंमें स्नान-दान करते हुए कपिलाश्रमतक जाना और वहाँ कपिल मुनिको प्रणाम करके सागरके तटपर सेनाका पड़ाव डालना

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन् ! यज्ञपशुके अपहृत हो जानेपर समस्त यादवगण शोक करने लगे कि 'हम कहाँ जायँ और इस पृथ्वीपर क्या करें ?' अनिरुद्ध आदि सब लोगोंको उस समय कोई उपाय नहीं सूझा । नरेश्वर ! तब श्रीनारदरूपधारी भगवान् वहाँ आ पहुँचे । देवर्षि नारदको आया देख यादवोंसहित अनिरुद्धने आसनपर बैठाकर उनका पूजन किया और वह प्रसन्न होकर वे उन मुनीश्वरसे बोले ॥ १—३ ॥

अनिरुद्धने कहा—भगवन् ! वक्ताओंमें श्रेष्ठ मुने ! दुरात्मा दैत्य बल्वल हमारा घोड़ा लेकर कहाँ चला गया है ? यह सब मुझे बताइये । आपका दर्शन दिव्य है । आप सूर्यदेवकी भाँति तीनों लोकोंमें विचरते रहते हैं । त्रिभुवनके भीतर वायुके समान विचरण करनेवाले आप सर्वज्ञ तथा आत्मसाक्षी हैं । इसलिये सब बात मुझसे कहिये । अनिरुद्धका यह प्रश्न सुनकर नारदजी माधव प्रद्युम्नकुमारसे बोले ॥ ४-५ ॥

नारदजीने कहा—नृपवर ! बल्वलने तुम्हारे घोड़ेको समुद्रके बीचमें बसे हुए 'पाञ्चजन्य' नामक उपद्वीपमें ले जाकर रख दिया है । उसका मित्र या बन्धु शकुनि यादवोंके हाथसे मारा गया था, अतः यादवोंका वध करनेके लिये उसने यह कार्य किया है । यह महान् असुर सुतललोकमें दैत्यसमूहोंको बुलाकर वहाँ राज्य करता है । भगवान् शिवका वरदान पाकर वह घमंडसे भरा रहता है ॥ ६-८ ॥

यह सुनकर अनिरुद्धने चकित होकर पूछा ॥ ८½ ॥

अनिरुद्ध बोले—देवर्षे ! चन्द्रमौलि भगवान् शिवने उस दैत्यको कौन-सा श्रेष्ठ वर प्रदान किया है ? उसके किस कार्यसे शिवजी संतुष्ट हो गये थे ? ॥ ९½ ॥

राजन् ! तब मुनिवर नारदने कहा—प्रद्युम्नकुमार ! मेरी बात सुनो । एक समय उस दैत्यने कैलास पर्वतपर एक पैरसे खड़े रहकर बारह वर्षोंतक अत्यन्त कठोर तप किया । उस तपस्यासे संतुष्ट होकर महादेवजीने कहा—'वर माँगो' । उनकी बात सुनकर वह बोला—'सदाशिव ! आपको नमस्कार है । कृपानिधान ! देव ! महासमरमें आप मेरी रक्षा करें ।' नरेश्वर ! तब 'तथास्तु' कहकर महादेवजी वहीं अन्तर्धान हो गये । फिर वह दैत्य पाञ्चजन्य उपद्वीपमें सुखपूर्वक वास करने लगा । वह युद्धके बिना स्वतः तुम्हें घोड़ा नहीं देगा ॥ १०—१४ ॥

तब अनिरुद्ध कहने लगे—मुनिश्रेष्ठ ! मैं सेनानी दुष्ट बल्वलको मारकर घोड़ा छुड़ा लूँगा । यदि वह भगवान् शिवके वरदानसे युद्ध करेगा तो मुझे विश्वास है कि शिव युद्धमें उस श्रीकृष्णद्रोही दुष्टकी रक्षा नहीं करेंगे ॥ १५-१६ ॥

—ऐसा कहकर अनिरुद्धने विजययात्राके लिये उन समस्त यादवोंको आज्ञा दी । नृपेश्वर ! नारदजीके हृदयमें युद्ध देखनेका कौतूहल था । वे अनिरुद्धसे विदा ले आकाशमार्गसे उस स्थानपर गये । समस्त यादव तत्काल तीर्थराजमें विधिवत् स्नान-दान करके रोषपूर्वक युद्धयात्राके लिये सुसज्जित हो गये ॥ १७—१९ ॥

राजन् ! वे हाथियों, घोड़ों तथा रथोंके द्वारा उस उत्तरीमें गये । प्रतिदिन दो लाख सिपाही उनके आगेके लिये मार्ग तैयार करते थे । वे भिन्दिपालोंकी सहायतासे उत्तर सेनाके लिये पहले ही मार्ग तैयार कर देते थे, जिसपर रथ, हाथी और घोड़े सुखसे यात्रा करते थे । राजेन्द्र ! उस निष्कण्टक मार्गमें पैदल सिपाही भी शीघ्रगतिसे चलते थे । यादव-सेनाके भारसे पीड़ित हो शेषनाग मन-ही-मन कहते थे—'न जाने भूतलपर क्या हो गया है ?' ॥ २०-२१½ ॥

नरेश्वर ! अनिरुद्ध सेनाके आगे होकर अपने रत्नमय रथमें बैठे थे । वे अपनी रथसेनाके महान् पापमय विनाश-सा करते थे । राजन् ! प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्ध अश्वकी रक्षाके लिये जहाँ-जहाँ गये, वहाँ-वहाँ वे श्रीकृष्णके समस्त यशकी गाथा सुनते थे । जो लोग श्रीकृष्ण और बलरामकी प्रशंसा करते थे, उनको वे रत्न, वस्त्र और आभूषण बाँटते थे । उनकी सेनाओंमें जो कुछ भी उत्तम धन था, वह सब श्रीकृष्ण-कथासे आश्चर्यचकित हो वे प्रसन्नतापूर्वक दे डालते थे ॥ २१—२६½ ॥

राजन्! इस प्रकार श्रीहरिका यशोगान सुनते और काशी तथा गया आदि तीर्थोंको देखते हुए, वहाँ अनेक प्रकारके दान दे, वे पूर्वदिशाकी ओर चले गये। यादवोंकी ऐसी भयंकर सेना देखकर गिरिव्रजपुरके स्वामी जरासंधपुत्र सहदेव शङ्कित हो गये। वे नाना प्रकारके रत्नोंकी भेंट ले, भयसे विह्वल हो, दोनों हाथ जोड़कर अनिरुद्धके चरणोंमें गिर पड़े। शरणागतवत्सल अनिरुद्धने सहदेवको प्रसन्नतापूर्वक रत्नमयी माला भेंट की और उन्हें उनके राज्यपर स्थापित करके शीघ्र ही श्रेष्ठ वृष्णिवंशी वीरोंके साथ वे कपिलाश्रमको गये। उन श्रेष्ठ यादव-वीरोंने वहाँ गङ्गा-सागर-सङ्गममें स्नान किया और सिद्ध मुनीन्द्र कपिलका दर्शन करके सेना सहित उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया। राजन्! उस स्थानसे दक्षिण दिशामें समुद्रके तटपर महलोंके समान ऊँचे-ऊँचे शिविर लग गये। राजेन्द्र! उन शिविरोंमें अनुयायियोंसहित अनिरुद्ध आदि शूरवीर और विजयाभिलाषी समस्त यादवोंने निवास किया॥ २७—३४॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'अश्वके लिये उपद्वीपमें गमन' नामक छब्बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २६॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

यादवोंद्वारा समुद्रपर बाणमय सेतुका निर्माण

श्रीगर्गजी कहते हैं—महाराज! तत्पश्चात् यादवराज अनिरुद्धने उद्धवजीको बुलाकर गम्भीर वाणीमें पूछा—'साधुशिरोमणे! पाञ्चजन्य द्वीप कितनी दूर है, जिसमें उस दैत्यने मेरा घोड़ा ले जाकर रखा है?'॥ १-२॥

उनका यह प्रश्न सुनकर श्रीकृष्णके मन्त्री, सुहृद् और सखा उद्धव मन-ही-मन श्रीकृष्णचरणारविन्दोंका चिन्तन करके यदुकुलनन्दन अनिरुद्धसे बोले—"भगवन्! सर्वज्ञ! प्रभो! लोकेश! मैं आपकी बातका गौरव रखनेके लिये मार्गमें जैसा सुना है, वैसा बता रहा हूँ। नृपेश्वर! तीस योजन विस्तृत सागरके उस पार दक्षिण दिशामें 'पाञ्चजन्य' नामक उपद्वीप है"॥ ३—५॥

उद्धवकी बात सुनकर बलवान्, धैर्यशाली तथा धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ अनिरुद्ध रोष और उत्साहसे भरकर श्रेष्ठ यादव-वीरोंसे बोले॥ ६॥

अनिरुद्धने कहा—श्रेष्ठतम वीर यादवो! मैं समुद्रके पार जाऊँगा। इसलिये तुमलोग शीघ्र ही बाणोंद्वारा समुद्रके ऊपर सेतुका निर्माण करो॥ ७॥

उनकी यह बात सुनकर युद्धकुशल यादव परस्पर हँसते हुए समुद्रके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। तब समस्त जलचर जन्तु तीखे बाणोंसे घायल हो चीत्कार करते हुए चारों दिशाओंमें भाग चले। देवर्षि नारद आकाशमें खड़े होकर यह सब कौतुक देख रहे थे। वे वहाँ ओरसे बोले—'तुमलोगोंमेंसे किसीके बाण अभी समुद्रके पारतक नहीं पहुँचे हैं'॥ ८-९½॥

नरेश्वर! उस समय नारदजीकी बात सुनकर अक्रूर, हृदीक, युयुधान सात्यकि, उद्धव, बलवान् कृतवर्मा और सारण आदि वीरों तथा हेमाङ्गद, इन्द्रनील और अनुशाल्व आदि भूपालोंका घमण्ड चूर-चूर हो गया। तब बलवान् अनिरुद्धने श्रीकृष्णचरणारविन्दोंका चिन्तन करके शार्ङ्ग धनुषके तुल्य कोदण्ड लेकर उसके द्वारा दिव्य बाण छोड़े। उन बाणोंको देखकर देवर्षि बोले—'अनिरुद्धके बाण समुद्रके पार जाकर उसकी तटवर्ती भूमिमें प्रविष्ट हो गये हैं'॥ १०—१४॥

राजन्! देवर्षिका यह वचन सुनकर साम्ब और दीप्तिमान् आदि यादवोंने भी बाण छोड़े। उनके भी वे बाण समुद्रके उस पार पहुँच गये। महाराज! यों करोड़ों बाण घुसते चले गये। यह देख समस्त धनुर्धर आश्चर्यचकित हो गये। इस प्रकार उन यादवोंने जलके ऊपर आकाशमें तीस योजन लंबा और एक योजन चौड़ा पुल तैयार कर दिया। चार पहरमें इतना बड़ा पुल बाँधकर अनिरुद्ध आदि यादव रात्रिके समय अपने शिविरोंमें सोये। अनन्त परमात्मा श्रीकृष्णके शूरवीर पुत्र-पौत्रोंके, जो श्रीकृष्णके ही प्रतिबिम्ब हैं, बलका मैं क्या वर्णन करूँ?॥ १५—२०॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'सेतु-बन्धन' नामक सत्ताईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २७॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय

यादवोंका पाञ्चजन्य उपद्वीपमें जाना, दैत्योंकी परस्पर मन्त्रणा; मयासुरका बल्वलको घोड़ा लौटा देनेके लिये सलाह देना; परंतु बल्वलका युद्धके निश्चयपर ही अडिग रहना

श्रीगर्गजी कहते हैं—नृपेन्द्र ! प्रातःकाल शौचादि कर्म करके यदुनन्दन अनिरुद्ध यादवोंके साथ उसी प्रकार सागरके उस पार गये, जैसे पूर्वकालमें कपियोंके साथ श्रीरामचन्द्रजी गये थे। वहाँ जाकर उन अनिरुद्ध आदि यादवोंने पाञ्चजन्य उपद्वीप देखा, जिसका विस्तार सौ योजन था। राजेन्द्र ! उस उपद्वीपमें आसुरी पुरी शोभा पाती थी, जो बीस योजनतक फैली हुई थी। उसमें दैत्योंके समुदाय निवास करते थे। पुनाग, नागकेसर, चम्पा, तिलक, देवदारु, अशोक, पाटल, आम, मन्दार, कोविदार, निम्ब, जम्बू, कदम्ब, प्रियाल, पनस (कटहल), ताल, साल, तमाल, मल्लिका, जाति (चमेली), जूही, नीप, कदम्ब, मौलश्री, चम्पक तथा मदन नामवाले वृक्ष एवं पुष्प उस रमणीय नगरीकी शोभा बढ़ाते थे। उसमें रत्नोंके महल बने हुए थे ॥ १–६ ॥

यादवोंका आगमन सुनकर दुष्ट बल्वलने महात्मा यादवोंकी सेनाकी गणना करनेके लिये मायावी मयको भेजा। उसने बालकका रूप धारण करके वहाँ जाकर सब यादवोंको देखा और लौटकर अत्यन्त विस्मित हो पुरीके भीतर बल्वलसे कहा ॥ ७–८ ॥

मय बोला—दैत्यराज ! बलवान् वृष्णिवंशी योद्धाओंकी गणना कौन कर सकता है। जहाँ ये प्रद्युम्नपुत्र अनिरुद्ध लाख-लाख कराड़ सैनिकोंके साथ सुशोभित हैं। समस्त यादव समुद्रके ऊपर बाणोंसे सेतुका निर्माण करके तुम्हारे ऊपर चढ़ आये हैं। राजन् ! देखो, उनकी सेना देवताओंको भी विस्मयमें डालनेवाली है। दैत्यराज ! मैं बूढ़ा हो गया, परंतु आजतक सागरके ऊपर बाणोंका बना हुआ पुल न तो देखा था और न सुना ही था। आज तुम्हारे सामने ही यह देखनेको मिला है। रघुकुलशिरोमणि श्रीरामने पूर्वकालमें समुद्रके निकट आकर पुल निर्माण किया था, वह पत्थरों और वृक्षोंसे बनाया गया था और उनके वानर सागरके पानीके ऊपर उछलकर उतर गये थे। वह मार्ग तो मैंने प्रत्यक्ष देखा था, परंतु आज जो देखा है, वह तो बहुत ही अद्भुत है। राजन् ! पूर्वकालमें श्रीकृष्णने बक, अघ तथा शकुनि आदि दैत्योंको युद्धमें मारा था और समस्त राजाओंको परास्त कर दिया था। श्रीकृष्ण तो साक्षात् भगवान् हैं। पूर्वकालमें ब्रह्माजीके प्रार्थना करनेपर वे अपने भक्तोंकी रक्षाके लिये गोलोकसे भूमिपर पधारे हैं। वे दुष्ट पापियोंका विनाश करनेके लिये कुशस्थलीमें विराजमान हैं। इसीलिये अनिरुद्ध आदि महाबली समस्त श्रेष्ठ यादव भीष्मक, बक तथा अन्य नरेशोंको परास्त करके यहाँ आये हैं। श्रीकृष्णके पुत्र, पौत्र तथा जाति भाई श्रेष्ठ यादव आकाशको भी जीतनेका हौसला रखते हैं, फिर भूतलपर विजय पानेकी तो बात ही क्या ! अतः बल्वल ! तुम मरनेसे बचे हुए दैत्योंकी भलाईके लिये और अपने कुलकी कुशलताके लिये अनिरुद्धको घोड़ा लौटा दो। देवद्रोही दैत्योंको सुख मिले, इस उद्देश्यसे अनिरुद्धको घोड़ा देकर श्रीकृष्णचन्द्रका भजन करते हुए तुम सुखपूर्वक अपने राज्यको भोगो ॥ ९–१९ ॥

इस प्रकार शुभ वचनोंको समझाये जानेपर भी बल्वल श्रीकृष्णसे विमुख हो लंबी साँस खींचकर मयसे बोला ॥ २० ॥

बल्वलने कहा—दैत्य ! तुम बिना युद्धके ही देवभयभीत हो रहे हो, और मेरे सामने ऐसी बात कह रहे हो, जो शूरवीरोंके लिये हास्यजनक है। तुम बुढ़ापेके कारण बुद्धि और बल दोनोंसे हीन हो गये हो; इसलिये हे मयासुर ! मैं तुम्हारी बात नहीं मान सकता। यद्यपि श्रीकृष्ण साक्षात् भगवान् हैं और ये यादव श्रीकृष्णकी ही संतान हैं, तथापि मैं शिवजीका भक्त हूँ। मेरे सामने ये क्या पुरुषार्थ करेंगे ? इसलिये तुम भय न करो। तुम्हारी माया कहाँ चली गयी ? मैं तो तुम्हारे सहारे ही युद्ध करने जा रहा हूँ। अनिरुद्ध यदि शूरवीर हैं तो क्या हमलोग शूरवीर नहीं हैं ? मेरे रहते इस भूमण्डलमें यादवोंका यह कैसा गर्व क्या है ! मेरे अनुगामी बने हुए दानवोंद्वारा अनिरुद्ध अपना पौरुष नष्ट हुआ समझें। दैत्यराज ! आज रणभूमिमें मेरे तीखे बाण मारा अनिरुद्धके उनके शरीरको छिन्न-भिन्न करके मुझे संतप्त कर देंगे। आज दानवोंके द्वारा मनुष्योंका पराजयदिवस भी स्मरण करना चाहिये। ऐसे

कच्चे मांसको चबाकर आज महाकाली संतुष्ट हो जाय। अपने महान् कोदण्डसे करोड़ों मल्लोंकी वर्षा करते हुए मुझ वीरके बाहुबलको समस्त सुभट प्रत्यक्ष देखें ॥ २१-३० ॥

बल्वलकी यह बात सुनकर महाबुद्धिमान् मायावी मय श्रीकृष्णके माहात्म्यको जाननेके कारण उस मदान्ध दैत्यसे इस प्रकार बोला ॥ ३१ ॥

मयने कहा—जब तुम रणक्षेत्रमें श्रीकृष्णके पुत्रों एवं यादवोंको जीत लोगे, तब तुम्हें परास्त करनेके लिये श्रीकृष्ण अथवा बलराम यहाँ पदार्पण करेंगे ॥ ३२ ॥

मयकी बात सच्ची और हितकारक थी तो भी कालपाशसे बँधे हुए उस महादैत्यने उसे सुनकर भी नहीं स्वीकार किया, उल्टे वह रोषसे जल उठा ॥ ३३ ॥

बल्वलने कहा—बलराम और श्रीकृष्ण मेरे शत्रु हैं। समस्त वृष्णिवंशी यादव मेरे वैरी हैं। जिन्होंने मेरे मित्रोंको मारा है, मैं उन सबको मौतके घाट उतार दूँगा। यहाँ यादवोंका वध करके पीछे मैं भी यज्ञ करूँगा और उस यज्ञके दिग्विजय प्रसङ्गमें मैं द्वारकापुरीपर विजय पाऊँगा ॥ ३४ ३५ ॥

मय बोला—दैत्यराज! घमंड न करो। यह कालरूपी घोड़ा तुम्हारे नगरमें आया है। अबतक मरनेसे जो बच गये हैं, उन महान् असुरोंको मरवा डालनेके लिये ही इसका यहाँ पदार्पण हुआ है। असुरेश्वर! अनिरुद्धके समस्त बाण इसी क्षण तुम्हारी पुरीको छिन्न भिन्न तथा शूरवीरोंसे हीन कर डालेंगे, इसमें संशय नहीं है। जिन्होंने हिरण्याक्ष आदि दैत्यों तथा रावण आदि निशाचरोंको कालके गालमें भेजा था, वे ही श्रीकृष्ण यदुकुलमें अवतीर्ण हुए हैं, ऐसा मैंने सुना है। बल्वल! इस छोटेसे राज्यके अभिमानमें आकर तुम उन्हें नहीं जानते हो। मेरे कहनेसे घोड़ा अनिरुद्धको दे दो। यह हमारे लिये युद्धका समय नहीं है ॥ ३६-३९ ॥

बल्वल बोला—मैं तुम्हारी बात समझता हूँ। तुम यादवोंके साथ युद्ध नहीं करोगे। इसलिये पूर्वकालमें जैसे रावणका भाई विभीषण श्रीरामके पास चला गया था, उसी प्रकार तुम भी अनिरुद्धके पास चले जाओ ॥ ४० ॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! बल्वलकी यह बात सुनकर मायावियोंमें श्रेष्ठ मयने वहाँ अपने मानसिक दुःखको दूर करनेके लिये इस प्रकार विचार किया—'पूर्वकालमें वैरभावसे भगवच्चिन्तन करनेके कारण बहुत-से निशाचर और दैत्य वैकुण्ठधामको जा पहुँचे। अतः जो भी उस भावको अपने हृदयमें स्थान देता है, उसकी अवश्य उत्तम गति होती है।' ऐसा विचार करके मयासुरने सहसा उस महान् असुरसे कहा ॥ ४१ ४२½ ॥

मयासुर बोला—बल्वल! तुम महान् वीर हो। अब मैं तुमसे युद्धसे नहीं रोकूँगा। तुम रणभूमिमें जाकर युद्ध करो और अपने सायकोंसे यादवोंको मार डालो। अब मैं भी तुम्हारे कहनेसे संग्रामभूमिमें जाकर युद्ध ही करूँगा ॥ ४३½ ॥

—ऐसा कहकर बल्वलको हर्ष प्रदान करता हुआ मयासुर मौन हो गया। राजन्! तब ऊर्ध्वकेश, नद, सिंह और कुशाम्ब आदि चार मन्त्रियोंने अत्यन्त कुपित होकर बल्वलसे कहा ॥ ४४ ४५ ॥

मन्त्री बोले—दैत्यराज! पहले हमलोग समस्त श्रेष्ठ यादवोंका वध करनेके लिये युद्धके मुहानेपर जायँगे, क्योंकि हमें बहुत दिनोंसे संग्राम करनेका अवसर नहीं मिला है। राजेन्द्र! चिन्ता मत करो। हमलोग मयदैत्यके साथ रहकर कोटि-कोटि मनुष्योंको क्षणभरमें मार गिरायेंगे ॥ ४६ ४७ ॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—नृपश्रेष्ठ! उन मन्त्रियोंका भाषण सुनकर बल्वलको बड़ी प्रसन्नता हुई। उस रणकोविद दैत्यने उन्हें युद्ध करनेके लिये आज्ञा दे दी ॥ ४८ ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'दैत्योंकी मन्त्रणाका वर्णन' नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २८ ॥

उन्तीसवाँ अध्याय

यादवों और असुरोंका घोर संग्राम तथा ऊर्ध्वकेश एवं अनिरुद्धका द्वन्द्व युद्ध

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजेन्द्र! तदनन्तर ऊर्ध्वकेश आदि चार मन्त्री कवच बाँधकर करोड़ों दैत्योंकी सेनाके साथ युद्धके लिये नगरसे बाहर निकले। नरेश्वर! वे सब-के-सब धनुर्धर तथा विद्याधरोंके समान तेजस्वी थे। कवच बाँधकर खड्ग, शूल, गदा, परिघ, मुद्गर, एकघ्नी, दशघ्नी, शतघ्नी, भुशुण्डी, भाले, भिन्दिपाल, चक्र, सायक,

गये। वे यमलोकके ससवालुकावाले मार्गसे नरकमें गये। इस प्रकार समस्त यदुकुलशिरोमणि वीरोंने महान् दैत्यवीरोंका संहार कर डाला। इसी तरह उस महायुद्धमें दानवोंने भी नाना प्रकारके शस्त्रोंद्वारा यादव-सैनिकोंको भी कालके गालमें भेज दिया ॥ ३३–३५ ॥

राजन्! करोड़ोंकी संख्यामें युद्धके लिये आये हुए समस्त दैत्य उस समराङ्गणमें मृत्युके ग्रास बन गये तथा सहस्रों यादव भी रणभूमिमें मारे गये। जब वहाँ बाण-वर्षासे अन्धकार छा गया, तब धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ अनिरुद्ध ऊर्ध्वकेशके साथ उसी प्रकार युद्ध करने लगे, जैसे वृत्रासुरके साथ इन्द्रने किया था। नृपेश्वर! नदके साथ गद, सिंहके साथ वृक और कुशाम्बके साथ साम्ब उस समराङ्गणमें लोहा लेने लगे। इस प्रकार उनमें परस्पर बड़ा भारी तुमुल युद्ध छिड़ गया ॥ ३६–३८½ ॥

महाराज! उस समय बारंबार धनुष टंकारते हुए ऊर्ध्वकेशने युद्धस्थलमें प्रद्युम्नकुमारको दस नाराच मारे। परंतु श्रेष्ठ धनुर्धर रुक्मवतीनन्दन भगवान् अनिरुद्धने उन सबको काट गिराया। तब ऊर्ध्वकेशने पुनः उनके कवचपर दस बाण मारे। वे सभी सोनेके पंखोंसे विभूषित थे और अनिरुद्धका कवच काटकर उनके शरीरमें घुस गये थे। फिर उसने चार बाणोंसे उनके चार घोड़ोंको मार गिराया। बीस बाणोंद्वारा प्रत्यञ्चासहित उनके धनुषको खण्डित कर दिया। राजेन्द्र! बल्वलके उस बलवान् सेवकने जब अनिरुद्धके रथको बेकार कर दिया, तब वे उस रथको छोड़कर दूसरे रथपर आरूढ हो गये। नृपश्रेष्ठ! वह रथ इन्द्रका दिया हुआ था। उसपर चढ़कर महान् वीर अनिरुद्धने 'प्रतिशार्ङ्ग' नामक धनुष हाथमें लिया। श्रीकृष्णके दिये हुए उस कोदण्डपर एक बाण रखकर रोषसे भरे हुए प्रद्युम्नकुमारने हाथकी फुर्ती दिखाकर ऊर्ध्वकेशके रथपर चलाया। उस सायकने ऊर्ध्वकेशके रथको ऊपर ले जाकर दो घड़ीतक घुमाया। फिर जैसे कोई बालक शीशेका बर्तन पटक देता है, उसी प्रकार उसे आकाशसे पृथ्वीपर गिरा दिया। ऊर्ध्वकेशका रथ अङ्गारकी तरह बिखर गया। नृपश्रेष्ठ! सारथिसहित उसके घोड़े भी उसके सामने ही पञ्चत्वको प्राप्त हो गये। ऊर्ध्वकेश आकाशसे गिरनेके कारण समराङ्गणमें मूर्च्छित हो गया ॥ ३९–४७ ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'यादवों तथा असुरोंके संग्रामका वर्णन' नामक उन्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २९ ॥

तीसवाँ अध्याय

ऊर्ध्वकेश और अनिरुद्धका तथा नद और गदका घोर युद्ध, ऊर्ध्वकेश और नदका वध

श्रीगर्गजी कहते हैं—महाराज! तब ऊर्ध्वकेश मूर्च्छासे उठकर, दूसरे रथपर आरूढ हो ज्यों ही अनिरुद्धके सामने संग्रामके लिये आया, त्यों ही उन्होंने अपने तीखे नाराचोंसे उसके रथके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। नरेश्वर! रथको टूटा देख उसने पुनः दूसरे रथका आश्रय लिया। परंतु प्रद्युम्नकुमारने रणभूमिमें तत्काल ही बाण मारकर उसके उस रथको भी खण्डित कर दिया। इस प्रकार समराङ्गणमें ऊर्ध्वकेशके नौ रथ अनिरुद्धके द्वारा तोड़े गये ॥ १–३ ॥

तब उस दैत्यने कुपित होकर रणक्षेत्रमें अनिरुद्धपर तीव्र गतिसे शक्तिका प्रहार किया। उस शक्तिको अपने ऊपर आती देख वीर अनिरुद्धने अनेक नाराचोंसे उसके दस टुकड़े कर डाले। तब युद्धस्थलमें सुवर्णमय रथपर आरूढ हो ऊर्ध्वकेश अनिरुद्धका सामना करनेके लिये बड़े वेगसे आया। आते ही हर्षोल्लाससे भरकर उसने अनिरुद्धको पाँच बाणोंसे घायल कर दिया। उन बाणोंके आघातसे अनिरुद्धको बड़ी वेदना हुई। तब कुपित हुए अनिरुद्धने धनुष उठाकर सहसा हाथकी फुर्ती दिखाते हुए ऊर्ध्वकेशकी छातीमें विचित्र पाँख वाले दस बाण मारे। उन अत्यन्त दारुण बाणोंने उसका रक्त पी लिया और पीकर उसी प्रकार पृथ्वीपर गिर पड़े, जैसे झूठी गवाही देनेवालेके पूर्वज नरकमें गिरते हैं ॥ ४–८ ॥

तदनन्तर पुनः कुपित हुए ऊर्ध्वकेशने 'खड़ा रह, खड़ा रह'—ऐसा कहते हुए दस बाणोंद्वारा अनिरुद्धके मस्तकपर प्रहार किया। राजेन्द्र! वे दसों बाण अनिरुद्धकी पगड़ीमें गड़ गये और वृक्षकी दस शाखाओंके समान शोभा पाने लगे। नृपश्रेष्ठ! जैसे फूलोंद्वारा प्रहार करनेपर हाथीको कोई पीड़ा नहीं होती, उसी प्रकार युद्धस्थलमें उन बाणोंके आघातसे रुक्मवतीकुमार अनिरुद्धको व्यथा नहीं हुई। माधव अनिरुद्धने अत्यन्त रोषसे भरकर विचित्र पाँखवाले बाण

राजन्! देखो फिर उन्होंने रोहिणीकुमारको जा पकड़ा और बलपूर्वक आकाशमें उन्हें सौ योजन ऊपर फेंक दिया। वहाँसे गिरनेपर भी वज्रके समान अङ्गवाले गदको कोई चोट नहीं पहुँची और किंचिन्मात्र मनमें व्याकुलता हुई। फिर उन्होंने उस दैत्यको भी एक सहस्र योजन ऊपर उछाल दिया। उतनी ऊँचाईसे गिरनेपर भी वह दैत्य फिर उठकर युद्ध करने लगा। गद नदको और नद गदको पारस्परिक आघातोंद्वारा चोट पहुँचाते रहे। नृपेश्वर! भयंकर घूँसोंकी मारसे उन दोनोंमें महान् युद्ध छिड़ा हुआ था। दोनोंमें लाठा-लाठी, मुक्का-मुक्की, कचाकचि (झोंटा झोंटी), नखानखि (नकोटा-नकोटी) और दाँता दाँती होने लगी। इस प्रकार घोर युद्ध छिड़ा हुआ था। इस तरह जूझते हुए वे दोनों योद्धा बारंबार मारा मारी कर रहे थे। एक-दूसरेके वधकी इच्छासे दोनों आपसमें इस प्रकार गुथ गये कि पैरपर पैर, छातीपर छाती, हाथपर हाथ और मुँहपर मुँह सट गया था। बलपूर्वक आक्रमणके शिकार होकर वे दोनों गिरे और मूर्च्छित हो गये। नरेश्वर! उन दोनोंका ऐसा युद्ध देखकर दानव और यादव बोलने लगे—'गद धन्य है, नद धन्य है' ॥ ४२–४९ ॥

गदको गिरा देख अनिरुद्ध शोकमें डूब गये। उन्होंने जल छिड़ककर और व्यजन डुलाकर गदको होशमें लानेकी चेष्टा की। राजेन्द्र! वे तत्काल क्षणभरमें उठकर खड़े हो गये और बोल उठे—'कहाँ नद है, कहाँ नद है? वह मेरे भयसे युद्ध छोड़कर भाग तो नहीं गया?' लोगोंने देखा वह दानव वहाँ मूर्च्छित होकर प्राणशून्य हो गया था। फिर तो यादव और देवतालोग जय-जयकार करने लगे ॥५०–५२॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'ऊर्ध्व, कश और नदका वध' नामक तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३० ॥

इकतीसवाँ अध्याय

वृकद्वारा सिंहका और साम्बद्वारा कुशाम्बका वध

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! अपनी सेनाकी पराजय होती देख गदहेपर चढ़ा हुआ 'सिंह' नामक दैत्य रोषसे आगबबूला हो उठा और रथपर बैठे हुए वृकपर बाणोंद्वारा प्रहार करने लगा। नरेश्वर! उन बाणोंको अपने ऊपर आया देख युद्धस्थलमें श्रीकृष्णनन्दन वृकने खेल-खेलमें ही बाण मारकर उन्हें काट गिराया। सिंहने फिर बाण मारे और श्रीकृष्णकुमारने फिर उन्हें काट डाला ॥ १२ ॥

राजन्! फिर तो रणक्षेत्रमें असुरराज सिंहके क्रोधकी सीमा न रही। उसने धनुषपर आठ बाण रक्खे। उनमेंसे चार बाणोंद्वारा उस वीरने वृकके घोड़ोंको यमलोक पहुँचा दिया, एक बाणसे हँसते हुए उसने वेगपूर्वक उनके रथकी बहुत ही ऊँची और भयंकर ध्वजा काट डाली और एक बाणसे सारथिका सिर धड़से अलग करके पृथ्वीपर गिरा दिया। फिर एक बाणसे रोषपूर्वक रणभूमिमें उनके प्रत्यञ्चासहित धनुषको काट दिया और एक बाणसे उस वेगशाली दैत्यने वृककी छातीमें चोट पहुँचायी ॥ २–६ ॥

उसके उस अद्भुत कर्मको देखकर सब वीरोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। उसी समय वृकने सहसा उस दैत्यपर शक्तिसे आघात किया। वह शक्ति उसके शरीरको छेदकर और गदहेको भी विदीर्ण करके बाहर निकल गयी। राजन्! जैसे साँप बिलमें घुस जाता है, उसी प्रकार वह शक्ति सिंहको घायल करके धरतीमें समा गयी। गदहा तो वहीं मर गया और दैत्य भी तत्काल पृथ्वीपर गिर पड़ा। परंतु पुनः उठकर दैत्य सिंहके समान जोर-जोरसे गर्जना करने लगा। उसने वृकके ऊपर एक शिखासहित शूल लेकर चलाया। अपने ऊपर आते हुए उस शूलको वृकने समराङ्गणमें अपने हाथसे पकड़ लिया। राजन्! फिर उसी शूलसे अत्यन्त कुपित हुए कृष्णकुमारने शत्रुपर आघात किया। सिंहका शरीर विदीर्ण हो गया। वह हाय हाय करता हुआ पृथ्वीपर गिरा और मर गया। उसी समय समराङ्गणमें दानवोंका महान् हाहाकार प्रकट हुआ। देवतागण फूलोंकी वर्षा और श्रेष्ठ यादव-वीर 'जय जयकार' करने लगे ॥ ७–१२ ॥

तब क्रोधसे भरे हुए कुशाम्बने युद्धके मैदानमें रथपर आरूढ़ हो शीघ्र आकर साम्ब आदि समस्त यादवोंको अपने सायकोंद्वारा बींधना आरम्भ किया। उसके बाणोंसे छिन्न भिन्न होकर बहुत-से विशाल गजराज धराशायी हो गये, रथ उलट गये और युद्धमें बहुत-से घोड़ोंकी गर्दनें कट

बल्वल बोला—अब मैं यादवोंका शीघ्र विनाश करनेके लिये रणभूमिमें जाऊँगा। तुम मेरे महलमें छिपे रहो। हरि श्रीकृष्ण तो पहले 'नन्दका पुत्र' कहा जाता था। अब वह निर्लज्ज वसुदेव उसे अपना पुत्र मानता है। वह गोपियोंके घरसे माखन, दूध, घी, दही और तक्र आदि चुराया करता था। रासमण्डलमें रसिया बनकर नाचता था। अब जरासंधके भयसे उसने समुद्रकी शरण ली है। जिसने अपने मामाको मारा है, वह क्या पुरुषार्थ करेगा? ॥ ४–७ ॥

बल्वलकी यह बात सुनकर मयको बड़ा क्रोध हुआ। वह बोला ॥ ७½ ॥

मयने कहा—ओ निन्दक! जिससे ब्रह्मा, शिव, माया (दुर्गा) और इन्द्र भी डरते हैं, ऐसे सबको भय देनेवाले नित्य निर्भय श्रीकृष्णकी तू निन्दा कर रहा है! जो मूर्ख अज्ञानवश और कुसङ्गके कारण श्रीकृष्णकी निन्दा करता है, वह तबतक कुम्भीपाकमें पड़ा रहता है, जबतक ब्रह्माजीकी आयु पूरी नहीं हो जाती*। जिन्होंने चण्डपाल और शिशुपालकी मण्डलीका खण्डन किया है, जो दानवोंके दलका दमन करनेवाले हैं, उन परमात्मा मदनमोहन माधवका तू अपने कुलकी कुशलताके लिये भजन कर ॥ ८—११ ॥

मयका यह वचन सुनकर बल्वल परम ज्ञानको प्राप्त हो गया। राजेन्द्र! उसने क्षणभर विचार करके हँसते हुए से कहा ॥ १२ ॥

बल्वल बोला—मैं जानता हूँ कि भगवान् श्रीकृष्ण सम्पूर्ण विश्वके पालक हैं, बलरामजी साक्षात् भगवान् शेषनाग हैं, प्रद्युम्न कामदेवके अवतार हैं और यहाँ आये हुए अनिरुद्ध साक्षात् ब्रह्माजी हैं। इन्हींके हाथसे हमारा वध होनेवाला है, यह सोचकर ही मैंने इस अश्वका अपहरण किया है। उनके बाणोंसे मारा जाकर यदि मैं मृत्युको प्राप्त होऊँगा, तो शीघ्र ही सुखपूर्वक भगवान् विष्णुके परमपदको चला जाऊँगा। पहले भी बहुत-से दानव तथा राक्षस वैरभावसे भगवानका भजन करके वैकुण्ठ धाममें जा चुके हैं। अतः मैं भी उसी वैरभावका आश्रय ले रहा हूँ ॥ १३–१५ ॥

—ऐसा कह कवच धारण करके दानवशिरोमणि बल्वलने तुरंत ही अपने सेनापतिको बुलाया और इस प्रकार कहा—"सेनापते! तुम प्रयत्नपूर्वक ढिंढोरा पिटवाकर इस पुरीमें मेरा यह आदेश प्रसारित कर दो कि 'पुरीमेंसे जो लोग भी बच गये हैं, वे अनिरुद्धके साथ युद्धके लिये चलें।' जो मेरी आज्ञा नहीं मानेंगे, वे बेटे अथवा भाई ही क्यों न हों, युद्ध किये बिना वधके योग्य समझे जायँगे" ॥ १६–१८ ॥

बल्वलका ऐसा आदेश सुनकर सेनापतिने गली-गली और घर-घरमें डंका बजाकर यह बतायी उसकी आज्ञा घोषित कर दी। ढिंढोरेके साथ की गयी इस घोषणाको सुनकर समस्त दैत्य भयसे आतुर हो गये और शीघ्र ही सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लेकर वे बल्वलके सभाभवनमें आ गये। तब सबसे पहले सैन्यपाल नामक दैत्यसिंह शिरस्त्राण, कवच और धनुषसे सुसज्जित हो, रथके द्वारा नगरसे बाहर निकला। दुर्नेत्र, दुर्मुख, दुःस्वभाव और दुर्मद—ये मन्त्रियोंके चार पुत्र भी युद्धके लिये निकले ॥ १९–२२ ॥

बल्वलके साथ महामत्त गजराज, चपल अङ्गोंवाले तुरङ्ग तथा देवविमानोंके समान आकारवाले रथ थे। विद्याधरोंके समान पैदल योद्धा भी साथ चल रहे थे। इस चतुरङ्गिणी सेनाके साथ तत्काल मयके दिये हुए एवं इच्छानुसार चलनेवाले मानपर बैठकर बल्वल स्वयं युद्धके लिये प्रस्थित हुआ। उसके साथ चार लाख बड़े-बड़े असुर थे। सैन्यपालका पुत्र भूला था और घरपर भोजन कर रहा था, इसलिये युद्धके निमित्त शीघ्र नहीं निकल सका। सेनामें उसे नहीं आया देख बल्वलके सैनिकोंने डरते-डरते दैत्यराजसे उसके अनुपस्थित होनेकी बात बतायी। तब बल्वलके आदेशसे कई वीर गये और उसे शीघ्रतापूर्वक रस्सियोंसे बाँधकर राजाके सामने ले आये। इस घबराहटमें उसके मुख और नेत्र खिले हुए थे ॥ २३–२७ ॥

सैन्यपालके पुत्रको देखकर प्रचण्ड शासक बल्वलने बहुत फटकारा और वेगपूर्वक उसके मुखपर मुष्टिकी मार दी। सैन्यपालके पुत्रका वध हुआ देख सब दैत्य भयभीत हो उठे। सैन्यपाल समाममें अपने पुत्रको मार दिया गया सुनकर दुःखसे कातर हो हाथमें धनुष

---

* कृष्णं निन्दति यो मूढो ह्यज्ञानाच्च कुसङ्गतः ।
कुम्भीपाके स पतति यावद्वै ब्रह्मणो वयः ॥

दैत्यराजकुमार कुनन्दनकी तोपके मुखसे रक्षा
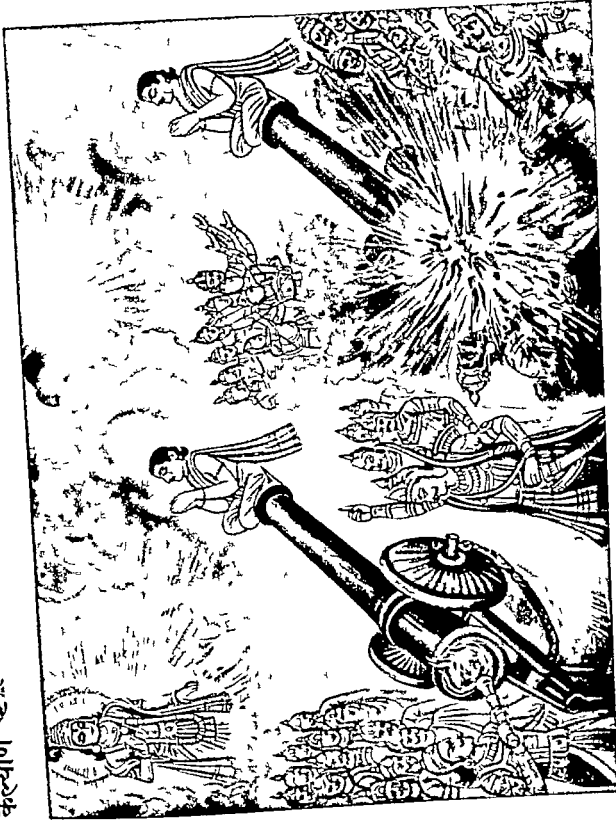
तोपके गोलेसे सैन्यपालकी मृत्यु

स्य करके शीघ्र रणभूमिमें नहीं पहुँचा था, इसलिये वल्वने उस शतघ्नीमें तुम्हें डाल देनेके लिये मुझे भेजा है। अतः ताके पास चलो। तुम्हारे पिता बड़े सत्यवादी हैं। उन्होंने हमें पकड़ लानेके लिये मुझे भेजा है, अतः वे शीघ्र ही तुम्हें मार डालेंगे॥ ८—१२ ॥

सैन्यपालकी सारी बात सुनकर भयके कारण राजकुमारका मुँह सूख गया। वह दुःखी सुधन्वाकी भाँति पिताके पास गया। दैत्य-समुदायसे घिरे हुए उसके पिता अनिरुद्धको जीतनेके लिये उत्सुक हो रोषपूर्वक रथपर बैठे थे। उनके पास जाकर राजकुमारने पिताका दर्शन किया। पिताको देखकर उनके चरणोंमें मस्तक झुकाकर राजकुमार लज्जित तथा भयसे विह्वल हो गया। दानवेन्द्रके सामने वह पृथ्वीपर नीचे मुँह किये खड़ा था। बल्वल कुपित हो दाँतोंसे दाँत पीसता हुआ बोला—'अरे! अपने विनाशके लिये तूने मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन क्यों किया? तेरे इस अपराधके कारण मैं तुझे दण्ड दूँगा। निश्चय ही तू डरकर रणक्षेत्रसे प्राण बचानेके लिये घरमें आ घुसा था। कुनन्दन! तू पुत्र नहीं, कुपुत्र है, शत्रुके समान है और अत्यन्त मलिन है। मैं तुझे त्यागकर शतघ्नीमें मुखसे अभी मार डालूँगा'॥ १३—१७॥

अपने बेटेसे ऐसा कहकर बार बल्वल दुःखसे आँसू बहाने लगा और मन ही मन खिन्न होकर बोला—'हाय! मैंने ऐसी प्रतिज्ञा क्यों की? अहो! सैन्यपालके बेटेको मैंने बिना अपराधके ही मार डाला, उसी पापसे मेरा पुत्र भी मरेगा, इसमें संशय नहीं है। यदि अपने वीर पुत्रको मैं बलपूर्वक मृत्युके मुखसे छुड़ा लूँगा तो मेरे समस्त सैनिक मुझे गाली देंगे और मुझपर हँसेंगे।' दैत्यराजको इस प्रकार शोकमग्न, दुःखी अपने पुत्रके लिये खिन्नचित्त देखकर रोष और अमर्षसे भरा हुआ सैन्यपाल हँसता हुआ बोला॥ १८—२१॥

सैन्यपालने कहा—राजन्! पहले अपने इस पुत्र कुनन्दनको शीघ्र मार डालो। इसके बाद यादवोंका दानवोंके साथ संग्राम होगा। दैत्येन्द्र! तुम सत्यवादी हो और यह कर्म अत्यन्त दारुण है। यदि पुत्रके कारण तुम इसे नहीं करोगे तो तुम्हें नरकमें जाना पड़ेगा। भूपाल! कोसलपति राजा दशरथने सत्यकी रक्षाके लिये श्रीराम-जैसे बेटेको त्याग दिया। राजा हरिश्चन्द्रने अपनी प्यारी पत्नीको, पुत्रको और अपने-आपको भी बेच दिया था।

बलिने सत्यके कारण सारी पृथ्वी दे डाली। विरोचनने अपना जीवन दे दिया। राजा शिबिने अपकीर्तिसे तथा दधीचिने अपने शरीरका त्याग कर दिया था। जैसे गुरु वसिष्ठने पुत्रमोहको तथा राजा रन्तिदेवने भोजनका त्याग किया था, उसी प्रकार दैत्यराज! तुम भी आज्ञाभङ्ग करनेवाले इस पुत्रका मोह छोड़कर इसे मार डालो। तुमने पहले जो यह प्रतिज्ञा की थी कि 'मैं अपनी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेवाले बेटे और भाईको भी तत्काल मार डालूँगा, फिर दूसरेकी तो बात ही क्या है?' उस देशमें निवास करना चाहिये, जहाँ राजा सत्यवादी हो। उस देशमें कदापि नहीं रहना चाहिये, जहाँका राजा मिथ्यावादी हो॥ २२—२८॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—सैन्यपालकी बात सुनकर बल्वलने खिन्नचित्त हो अपने उस पुत्रका भी वध करनेके लिये उसीको आज्ञा दे दी। तदनन्तर बल्वल दुःखी हो यादवोंके सामने गया। इधर सैन्यपालने राजकुमारके आगे उसके पिताकी दी हुई आज्ञा सुना दी। यह सुनकर कुनन्दनने उसे शीघ्र ही इस प्रकार उत्तर दिया॥ २९-३०½॥

राजपुत्र बोला—सेनापते! हम पराधीन हो; इसलिये तुम्हें राजाकी आज्ञाका अवश्य पालन करना चाहिये। परशुरामजीने अपने पिताकी आज्ञासे माताका मस्तक काट लिया था। सैन्यपाल! मैं निश्चिन्त हूँ। मैंने धर्मकार्यका पालन कर लिया है। अब मेरी मृत्यु! कोई भय नहीं है। तुम मुझे शतघ्नीमें झोंक दो॥ ३१-३२½॥

—ऐसा कहकर राजकुमारने अपना किरीट, भुजबंद, मोतियोंका हार, सुवर्णमयी माला तथा कुण्डल और कड़े आदि सब आभूषण ब्राह्मणोंको दान कर दिये। उन ब्राह्मणोंने बड़े दुःखसे उस राजकुमारको आशीर्वाद दिया॥ ३३-३४॥

तदनन्तर स्नान करके, अपने शरीरमें तीर्थकी मिट्टी पोतकर, मुखमें तुलसीदल और कण्ठमें तुलसीकी माला पहनकर राजकुमार 'श्रीकृष्ण! हे राम!'—इस प्रकार कहता हुआ भगवान्‌का स्मरण करने लगा। राजेन्द्र! सैन्यपालने बलपूर्वक उसकी दोनों भुजाएँ पकड़ लीं और रोषपूर्वक उसे शतघ्नीके मुखमें डाल दिया। उसी समय हाहाकार मच गया। समस्त सैनिक फूट-फूटकर रोने लगे। बल्वल भी रो उठा और वहाँ खड़े हुए ब्राह्मण भी रोदन करने लगे। शतघ्नीमें बारूद भरकर उसमें तोपके गोले डाल दिये गये और वह अग्नियुक्त होकर तप गयी। उस दशामें उस

मनुष्य मार सकता है ? जो भक्तका वध करनेके लिये आता है, वह दैवयोगसे आप ही नष्ट हो जाता है। जिन्होंने भयसे इस राजकुमारकी रक्षा की है, उन भक्तवत्सल श्रीकृष्णको हम सब लोग नमस्कार करते हैं* ॥ ६०-६१ ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'राजकुमारके जीवनकी रक्षा' नामक तैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३३ ॥

चौंतीसवाँ अध्याय

दैत्यों और यादवोंका घोर युद्ध; बल्वल, कुनन्दन तथा अनिरुद्धके अद्भुत पराक्रम

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन् ! तत्पश्चात् बल्वलने बड़ी प्रसन्नताके साथ पुत्रको रथपर चढ़ाया और उसके साथ ही अपनी सेना लेकर बड़ी उतावलीके साथ वह युद्धके लिये चला। उसके समस्त सैनिक नाना प्रकारके शस्त्र लिये हुए थे। वे अनेक प्रकारके वाहनोंपर बैठे थे तथा भाँति-भाँतिके कवचोंसे सुसज्जित हो नाना प्रकारके रूपोंमें बड़े भयंकर दिखायी देते थे। वे गजराजके समान हृष्ट-पुष्ट शरीरवाले और सिंहके समान पराक्रमी थे। वे पृथ्वीको कम्पित करते हुए वृष्णिवंशी यादवोंके सम्मुख गये। उन बहुत-से दैत्योंको आया हुआ देख अनिरुद्ध शङ्कित हो गये और उन्होंने समस्त यादवोंकी रक्षाके लिये चक्रव्यूहकी रचना की। चारों ओरसे शूरवीर यादव सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये हाथी, घोड़े और रथोंद्वारा व्यूह होकर बड़ी शोभा पाने लगे। राजन् ! उनके मध्यभागमें इन्द्रनील आदि राजा खड़े हुए। उनके बीचमें अक्रूर और कृतवर्मा आदि अच्छे वीर स्थित हुए। राजेन्द्र ! उनके बीचमें गद आदि श्रीकृष्णके भाई विराजित हुए। उनके मध्यभागमें साम्ब और दीप्तिमान् आदि महान् वीर खड़े हुए ॥ १-७ ॥

पृथ्वीनाथ ! इस प्रकार चक्रव्यूह बनाकर उसके बीचों बीच प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्ध कवच धारण करके खड़े हुए। नरेश्वर ! वहाँ सागरके तटपर यादवोंके साथ दानवोंका बड़ा घोर युद्ध हुआ, मानो अनेक समुद्रोंके साथ बहुत-से दूसरे समुद्र जूझ रहे हों। उस संग्रामस्थलमें रथी रथियोंके साथ, हाथी-सवार हाथी-सवारोंके साथ, अश्वारोही अश्वारोहियोंके साथ और पैदल-वीर पैदल-वीरोंके साथ परस्पर युद्ध करने लगे। राजन् ! तीखे बाणों, ढाल-तलवारों, गदाओं, भुशुण्डियों, पाशों, फरसों, शतघ्नियों और मुशुण्डियोंद्वारा यादव-वीर बल्वलके सैनिकोंका वध करने लगे। उनकी मार खाकर भयभीत हो वे सब-के-सब अपना-अपना रणस्थल छोड़कर भाग चले। सैनिकोंके पैरोंसे उड़ी हुई बहुत-सी धूलराशिने आकाश और सूर्यको ढक दिया। सब ओर अन्धकार फैल गया और उस अँधेरेमें समस्त महादैत्य युद्धसे पीठ दिखाकर पलायन करने लगे। यादवोंके सायकोंसे घायल होकर उन असुरोंमेंसे कितने ही कुएँमें गिर गये, कई अंधे मुँह होकर गड्ढेमें गिर पड़े और कितने ही पोखरे तथा बावलीमें डूब गये। अपनी सेनामें भगदड़ मची देख बल्वल रोषसे भर गया और चारों मन्त्रिकुमारों तथा अपने पुत्रके साथ यादवोंका सामना करनेके लिये आया। उस महासमरमें बल्वलके साथ अनिरुद्ध, दुर्नेत्रके साथ बृहद्बाहु, दुर्मुखके साथ बलवान् अरुण, दुःसमारके साथ न्यग्रोध, दुमदके साथ कवि तथा कुनन्दनके साथ श्रीकृष्णपुत्र सुनन्दन युद्ध करने लगे ॥ ८-१७ ॥

राजेन्द्र ! इस प्रकार वहाँ देवताओंको भी विस्मयमें डाल देनेवाला संग्राम छिड़ गया। कार्तिक मासके सम्पूर्ण दिन वहाँ युद्धमें ही व्यतीत हो गये। राजन् ! बारंबार अपना धनुष टंकारते हुए बल्वलने कुपित हो रणभूमिमें इन्द्रनीलको तीन और हेमाङ्गदको छः बाण मारे। अनुशाल्वको दस, अक्रूरको दस, गदको बारह, युयुधानको पाँच, कृतवर्माको पाँच, उद्धवको दस और प्रद्युम्नको सौ बाणोंद्वारा समराङ्गणमें उस असुरने घायल कर दिया। उसके बाणोंके आघातसे रथोंरहित वे सभी वीर दो घड़ीतक चक्कर काटते रहे। रणभूमिमें उनके घोड़े मर गये तथा रथ चूर-चूर हो गये। मानद नरेश ! उसके हाथकी फुर्ती देखकर अनिरुद्ध आदि समस्त यादव चकित हो गये। फिर वे सब-के-सब दूसरे रथोंपर आरूढ़ हुए ॥ १८-२३ ॥

---

* यं यं रक्षति श्रीकृष्णस्तं को मारयति मानवः। भक्तं हन्तुं आगतो यः स विनश्यति दैवतः॥
तस्मात् कृष्णसमो नास्ति येनायं रक्षितो भयात्। तं वयं नमस्कुर्मः कृष्णं भक्तवत्सलम्॥
(अ० ३३। ६०-६१)

पैंतीसवाँ अध्याय

बल्वलके चारों मन्त्रिकुमारोंका वध, बल्वलद्वारा मायामय युद्ध तथा अनिरुद्धके द्वारा उसकी पराजय

श्रीगर्गजी कहते हैं—महाराज ! तदनन्तर उस संग्राममें अनुशाल्व दुर्मुखसे, इन्द्रनील दुरात्मा दुर्नेत्रसे, हेमाङ्गद दुर्मदसे और सारण दुःस्वभावसे युद्ध करने लगे। इस प्रकार रणक्षेत्रमें परस्पर द्वन्द्व युद्ध होने लगा। सारणने बड़े वेगसे अपनी गदाद्वारा दैत्य दुःस्वभावको मार डाला। हेमाङ्गदने युद्धस्थलमें दुर्मदको तीन बाणोंसे पीट दिया। दुर्मदने भी रणक्षेत्रमें हेमाङ्गदको अपने बाणोंसे घायल किया। फिर हेमाङ्गदने शक्तिद्वारा उस दैत्यका वध कर डाला। इन्द्रनीलने खेल-खेलमें ही दुर्नेत्रको अपने बाणोंसे कालके गालमें भेज दिया। अनुशाल्वने बाण मारकर दुर्मुखके रथको चौपट कर डाला। फिर दुर्मुखने भी दूसरे रथपर आरूढ हो बाणों द्वारा अनुशाल्वको रथहीन कर दिया। तब अनुशाल्वने एक परिघ लेकर युद्धस्थलमें दुर्मुखको मार डाला। इस प्रकार दुर्नेत्र, दुःस्वभाव, दुर्मुख और दुर्मदके मारे जानेपर शेष दैत्य प्राण बचानेके लिये भाग चले ॥ १–६½ ॥

राजन् ! इसी समय राजकुमार कुनन्दन आकाशसे चक्कर काटता हुआ गिरा और मुँहसे रक्त वमन करता हुआ रणक्षेत्रमें मूर्च्छित हो गया। उसका रथ अङ्गारकी भाँति बिखर गया और घोड़े तत्काल मर गये। पुत्रको मूर्च्छित हुआ देख बल्वल कुपित हो उठा। उसने अनिरुद्धपर बड़े वेगसे धनुषद्वारा दस बाण चलाये। उन दसों बाणोंको आया देख रुक्मवतीकुमार अनिरुद्धने अपने तेज धारवाले सुवर्ण-भूषित सायकोंद्वारा काट डाला। तब रोषसे भरे हुए दैत्य बल्वलने पुनः धनुषपर बाणका संधान करके अनिरुद्धसे इसी प्रकार कहा, जैसे पहले युद्धमें प्रद्युम्नसे शकुनिने कहा था ॥ ७–११ ॥

बल्वल बोला—यदुकुलके प्रमुख वीर ! तुम युद्धके अभिमानी और धनुर्धर हो। आज इस बाणसे समरभूमिमें तुम्हें मार डालूँगा। मैं झूठ नहीं बोलता। यदि जीवित रहनेकी इच्छा हो तो अपने प्राणोंकी रक्षा करो। उसकी बात सुनकर अनिरुद्धने भी अपने कोदण्डपर एक बाण रक्खा और जैसे प्रद्युम्नने शकुनिको उत्तर दिया था, उसी प्रकार बल्वलसे हँसते हुए कहा ॥ १२-१३ ॥

अनिरुद्ध बोले—कौन प्राणी किसके द्वारा मारा जाता है और कौन किससे रक्षित होता है ? सदा काल ही सबको मारता है और वही संकटसे सबकी रक्षा करता है। 'मैं करूँगा, मैं कर्ता हूँ, संहर्ता हूँ और पालक भी मैं ही हूँ'—जो ऐसी बात कहता है, वह कालसे ही विनाशको प्राप्त होता है*। मैं तुमको नहीं जीत सकूँगा और तुम भी मुझे नहीं जीत सकोगे। विश्वात्मा कालरूपी जगदीश्वर ही तुमको और मुझको जीतेंगे। दानव ! न जाने वे कालपुरुष किसको जय अथवा पराजय देते हैं। मैं तो अपनी विजयके लिये उन कालदेवताको ही मनसे वन्दना करता हूँ। अतः तुम भी अपने मनसे कालको ही बलवानोंमें श्रेष्ठ समझो और मेरी बात मानकर अपने बड़े भारी अज्ञानको त्यागकर युद्ध करो ॥ १४–१८ ॥

अनिरुद्धकी यह बात सुनकर बल्वलको आश्चर्य हुआ। उनके वचनोंसे संतोष प्राप्त करके उसने प्रसन्नतापूर्वक उनसे कहा—ठीक उसी तरह, जैसे वृत्रासुरने देवराज इन्द्रसे वार्तालाप किया था ॥ १९ ॥

बल्वल बोला—यदुकुलतिलक ! इस भूतलपर 'कर्म' ही प्रधान है। कर्म ही गुरु और ईश्वर है। कर्मसे ही लोगोंको ऊँची और नीची स्थिति प्राप्त होती है। जैसे बछड़ा हजारों गायोंके बीचमें अपनी माताको ढूँढ़ लेता है, उसी प्रकार जिसने शुभ या अशुभ कर्म किया है, उसका वह 'कर्म' विद्यमान रहकर फल प्रदानके समय उसको खोज लेता है। अतः मैं अपने सुदृढ़ कर्मके द्वारा संग्रामभूमिमें तुमपर विजय पाऊँगा। मैंने यह प्रतिज्ञा कर ली। अब तुम तुरंत उसका प्रतीकार करो ॥ २०–२२ ॥

अनिरुद्धने कहा—दैत्य ! तुम 'कर्म'को प्रधान मानते हो, परंतु कालके बिना उसका कोई फल नहीं मिलता। जैसे भोजन बना लेनेपर भी कभी कभी उसकी प्राप्तिमें विघ्न पड़ जाता है। पाकके विभिन्न प्रकार हैं। उनकी सिद्धिके

---

* कः केन हन्यते जन्तुः कः केन रक्ष्यते ।
हन्ति नित्यं कालस्तथा रक्षति दुःखतः ॥
अहं करोमि कर्ताहं हर्ताहं पालकोऽप्यहम् ।
यो वदेदहङ्कृतं वचनं स विनश्यति कालतः ॥
(अ० ३५ । १४-१५)

छत्तीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णपुत्र सुनन्दनद्वारा दैत्यपुत्र कुनन्दनका वध

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! इसी समय कुनन्दन भी मूर्च्छा त्यागकर रथारूढ़ हो क्रोधपूर्वक धनुषसे बाणोंकी वर्षा करता हुआ युद्धस्थलमें आया। शत्रुवीरोंका नाश करनेवाले वीर अनिरुद्ध उसको आया देख रोषसे आग बबूला हो उठे तथा अपने सेवकोंसे उसकी बात पूछने लगे। सेवकोंने कहा—'महाराज! यह बल्वलनन्दन कुनन्दन है और आपके साथ युद्ध करनेके लिये आया है।' यह सुनकर अनिरुद्ध बोले—'मैं कुनन्दनको मार डालूँगा।' उसी समय श्रीकृष्णपुत्र सुनन्दनने उनसे कहा ॥ १-५ ॥

सुनन्दन बोले—राजन्! यह दैत्यपुत्र क्या है? तथा इसकी यह थोड़ी-सी सेना क्या चीज है? प्रभो! मैं आपके प्रतापसे इसको जीत लूँगा। अतः मैं ही युद्धके लिये जाता हूँ। राजन्! मेरी प्रतिज्ञा सुनिये। यह आपके लिये आनन्ददायिनी होगी—'यदि मैं समरमें रणकुशल कुनन्दनको न जीत लूँ तो श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंके मकरन्दका आस्वादन करानेसे विरत रहनेवाले मनुष्योंको जो पाप लगता है, वही मुझे भी लगे। यदि मैं इस दानवको परास्त न कर दूँ तो भवबन्धन हर लेनेवाले गुरु और पिताकी सेवासे विमुख पुरुषको जो पाप लगता है, वही मुझे भी लगे' ॥ ६-८ ॥

पृथ्वीनाथ! सुनन्दनकी इस प्रतिज्ञाको सुनकर अनिरुद्ध मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने उस वीरको युद्धके लिये आदेश दे दिया। इस प्रकार अनिरुद्धकी आज्ञा पाकर श्रीकृष्णनन्दन सुनन्दन कवच धारण कर अकेले ही उस स्थानपर गये, जहाँ बल्वलनन्दन कुनन्दन विद्यमान था। कुनन्दन सुनन्दनको युद्धके लिये आया देख रोषपूर्वक उनकी अगवानीके लिये आगे बढ़ा, क्योंकि वह वीरोंमें श्रेष्ठ, रथी एवं शूरशिरोमणि था। राजसिंह! रथपर बैठे और धनुष धारण किये वे दोनों वीर एक-दूसरेसे मिलकर दमन और पुष्करके समान शोभा पाने लगे। दोनोंके अङ्ग बाणोंसे विदीर्ण हो रहे थे। दोनों ही खूनसे लथपथ दिखायी देते थे तथा दोनों ही बड़े वेगशाली थे। करोड़ों बाणोंका संधान करते और छोड़ते थे। पृथ्वीनाथ! वे कब बाण लेते हैं, धनुषपर रखते हैं और कब छोड़ते हैं, यह किसीको ज्ञात नहीं होता था। वे दोनों महाबली मण्डलीकृत धनुषसे मण्डलाकार

किये दिखायी देते थे। दैत्य राजकुमारने शोभाशाली भ्रामकास्त्रके द्वारा सुनन्दनके रथको भूतलपर कुम्हारके चाककी भाँति घुमाया। उनका रथ दो घड़ीतक चक्कर काटनेके बाद घोड़ोंसहित सुस्थिर हो गया। तब श्रीकृष्णकुमारने कुनन्दनके रथपर बाण मारा। उस बाणसे आहत हो वह रथ घोड़ोंसहित आकाशमें जाकर मतवाले हाथीकी भाँति चक्कर काटने लगा और पृथ्वीपर गिर पड़ा। गिरते ही शीशेके बर्तनकी भाँति चूर-चूर हो गया। रथ, घोड़े और सारथिके नष्ट हो जानेपर कुनन्दन उठा और दूसरे रथपर आरूढ़ हो ज्यों ही सामने आया, त्यों ही कृष्णनन्दन सुनन्दनने कुछ बाण मारकर उसके रथकी धज्जियाँ उड़ा दीं। इस तरह उस रणभूमिमें दैत्यकुमारके सात रथ नष्ट हो गये ॥ ९-१९ ॥

नरेश्वर! तब कुनन्दन एक विचित्र यानमें बैठकर युद्धस्थलमें श्रीकृष्णपुत्रका सामना करनेके लिये वेगपूर्वक आया। आते ही कुनन्दनने सुनन्दनको युद्धस्थलमें दस बाण मारे। उन बाणोंसे घायल होनेपर उन्हें बड़ी वेदना हुई। तब कुपित हुए बलवान् कृष्णकुमारने धनुष उठाकर दस सायक हाथमें ले उन्हें कुनन्दनकी छातीका लक्ष्य करके छोड़ा। राजन्! वे बाण उस दैत्यका रक्त पीकर उसी तरह पृथ्वीपर गिर पड़े, जैसे झूठी गवाही देनेवालेके पितर नरकमें गिरते हैं। कुनन्दन सुनन्दनको और सुनन्दन कुनन्दनको उस महासमरमें विशाल बाणोंद्वारा परस्पर घायल करने लगे ॥ २०-२४ ॥

इस प्रकार उन दोनोंके शरीर बाणोंके आघातसे क्षत-विक्षत हो गये थे। दोनोंके रथ नष्ट हो गये थे और दोनों ही धनुष लिये भूमिपर एक-दूसरेको बाण मारते हुए घोर युद्ध कर रहे थे। उस समराङ्गणमें कुनन्दन और सुनन्दन कुमार और [illegible] समान शोभा पाते थे। तदनन्तर कृष्णकुमार वीर सुनन्दनने सुवर्णनिर्मित [illegible] अर्द्धचन्द्राकार बाण रखकर शीघ्र ही कुनन्दनसे कहा ॥ [illegible] ॥

सुनन्दन बोले—वीर! मेरी बात सुनो। मैं इस बाणके द्वारा इसी क्षण तुम्हारा मस्तक काट दूँगा। यदि [illegible] [illegible] [illegible]

मुण्डमालासे अलंकृत हो, सारे अङ्गमें भस्म रमाये भयंकररूपसे आये। दस बाँह, पाँच मुख और पंद्रह नेत्रोंसे युक्त रुद्रदेव सिंहके चमड़ेका वस्त्र धारण किये मदमत्त एवं भयंकारक प्रतीत होते थे। उनके हाथोंमें त्रिशूल, पट्टिश, धनुष, बाण, कुठार, पाश, परिघ और भिंदिपाल शोभा दे रहे थे। वे सहस्रों सूर्योंके तुल्य तेजस्वी और समस्त भूतगणोंसे आवृत थे। अनिरुद्ध आदि समस्त श्रेष्ठ वृष्णिवंशी वीरोंका युद्धस्थलमें वध करनेके लिये वे बड़ी उतावलीके साथ कैलाससे पृथ्वीतलको कम्पित करते हुए आये ॥ ४–९ ॥

नरेश्वर! उस समय आकाश और भूतलपर बड़ा हंगामा मचा। देवता, दैत्य और मनुष्य सभी विस्मित और भयभीत हो उठे। समस्त गणों और परिवारके साथ प्रलयंकर शंकरको रोषपूर्वक आया देख यादवोंको बड़ा भय हो गया। अनिरुद्धका मुँह भयके कारण निस्तेज हो गया। समराङ्गणमें वे दुःखी हो गये और उनका हृदय काँपने लगा। उस समय क्रोधसे भरे हुए गिरीशने हाथमें त्रिशूल लेकर समस्त यादवोंसे यह निष्ठुर बात कही ॥ १०–१३ ॥

शंकर बोले—कहाँ गये अनिरुद्ध और कहाँ गये सुनन्दन? मेरे भक्त कुनन्दनका वध करके साम्ब आदि यादव कहाँ चले गये? मेरे भक्त दैत्यशिरोमणि बल्वलको मूर्च्छित करके और उसके सेवकोंको युद्धमें मारकर वृष्णिवंशी जायँगे कहाँ? मैं युद्धस्थलमें अपने भक्तोंके इन सभी शत्रुओंको मार डालूँगा। मैं, विष्णु और ब्रह्मा—ये सभी सकरूपसे भक्तजनोंकी रक्षा करते हैं ॥ १४–१६ ॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! ऐसा कहकर रुद्रदेवने अनिरुद्धके पास भैरवको भेजा और कहा—'शूर! तुम समराङ्गणमें विजयी प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्धसे युद्ध करनेके लिये जाओ।' फिर उन्होंने सुनन्दनसे युद्ध करनेके लिये नन्दीको रोषपूर्वक भेजा, गदसे लोहा लेनेके लिये वीरभद्रको और साम्बसे लड़नेके लिये मयूरवाहन कार्तिकेयको प्रेरित किया। उन विरूपाक्ष शिवने भानुके साथ युद्ध करनेके लिये भृङ्गीको आदेश दिया और अन्य यादव सैनिकोंसे जूझनेके लिये भूतों और प्रेतोंको प्रेरित किया। भगवान् रुद्रकी आज्ञा पाकर वे भूत, प्रेत, विनायक, भैरव, प्रमथ, वेताल, ब्रह्मराक्षस, उन्माद और कूष्माण्ड करोड़ोंकी संख्यामें युद्धमें आये। भूत यादवोंको प्रहारोंसे मारने लगे। विनायक पट्टिशोंसे, भैरव शूलोंसे और प्रमथ खट्वाङ्गोंसे प्रहार करने लगे। ब्रह्मराक्षस मनुष्यों और घोड़ोंको पकड़कर खा जाते थे। यातुधान समराङ्गणमें मनुष्योंके मुण्ड चबाते और वेताल खप्परोंमें रक्त ले-लेकर पीते थे। पिशाच वहाँ नाचते और प्रेत गीत गाते थे। वे बारंबार योद्धाओंके मस्तकोंको गेंदकी भाँति इधर-उधर फेंकते थे। अट्टहास करते हुए चारों ओर दौड़ते और हाथियों तथा रथारोहियोंको रणमण्डलमें चबाते हुए दिखायी देते थे। पिशाचिनी और डाकिनियाँ युद्धस्थलमें अपने बालकोंको रक्त पिलातीं और 'रोओ मत'—ऐसा कहती हुई उनकी आँखें पोंछती थीं। उन्माद और कूष्माण्ड स्वर्गगामी शूरवीरोंके मुण्डोंकी मालाएँ तैयार करके भगवान् शंकरको भेंट करते थे ॥ १७–२७ ॥

नृपेश्वर! उस समय यादव-सेनामें हाहाकार मच गया। भयसे भागते हुए घोड़े, हाथी और पैदल-वीर सहस्रोंकी संख्यामें युद्धक्षेत्रमें गिरकर मृत्युको प्राप्त हो गये। शिवगणोंका ऐसा बल देखकर श्रीकृष्णकुमार दीप्तिमान्ने अपने धनुषपर अत्यन्त अद्भुत बाणोंका संधान करके छोड़ना आरम्भ किया। राजन्! वे तीखे बाण कोटि-कोटि भूतों, प्रेतों और विनायकोंके शरीरमें उसी तरह घुसने लगे, जैसे वनमें मोर प्रवेश करते हैं। बाणोंसे विदीर्ण होकर समस्त भूतगण भागने लगे। कोई युद्धस्थलमें गिर गये और कोई मर गये। कितने ही बाणोंका आघात लगनेसे पहले ही धराशायी हो गये ॥ २८–३२ ॥

प्रेतगणोंके पलायन कर जानेपर भैरव क्रोधसे भर गये। वे कुत्तेपर सवार हो, त्रिशूल हाथमें लिये कालकी भाँति आ पहुँचे। नरेश्वर! उन कालभयंकर भैरवको देखकर कोई भी उनके साथ जूझनेके लिये तैयार नहीं हुआ। केवल अनिरुद्ध उनके साथ युद्ध करने लगे। अनिरुद्धने युद्धस्थलमें भैरवको पाँच बाण मारे। भैरवने भी परिघके प्रहारसे उनके उत्तम रथको चूर-चूर कर दिया। फिर अनिरुद्धने भी दूसरे रथपर आरूढ़ हो अपने सुन्दर धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर मायावी भैरवको रणभूमिमें दस बाणोंद्वारा घायल कर दिया। उन बाणोंसे आहत हो भैरवको कुछ मूर्च्छा-सी आ गयी। फिर उन्होंने अग्निके समान प्रज्वलित तीन शिखाओंवाला त्रिशूल अनिरुद्धपर फेंका। शूलको आया देख प्रद्युम्नकुमारने अपने बाणोंद्वारा उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। अपने त्रिशूलको छिन्न-भिन्न हुआ देख बलवान् रुद्रकुमार भैरवने मायाद्वारा अपने मुखसे अग्निकी सृष्टि की। उस अग्निसे भूमि, वृक्ष और दसों दिशाएँ जलने लगीं। पैदल-योद्धा, रथारोहियों, घोड़ों तथा हाथियोंके शरीर सुन्दर फूलवाले पेड़ोंकी भाँति जलने लगे। कितने ही वीर आगकी ज्वालाकी लपेटमें आ गये और

गे वह युद्ध देखकर भयसे विह्वल हो परस्पर कहने लगे॥ ८-१३ ॥

देवता बोले—ये दोनों त्रिभुवनकी सृष्टि और संहार करनेवाले हैं। इसलिये रणमण्डलमें इन दोनोंका युद्ध निष्फल है। कौन इस युद्धको जीतेगा और किसकी पराजय होगी ! (यह कैसे कहा जा सकता है) ॥ १४½ ॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर तीन दिनों तक उन दोनोंमें बड़ा भारी युद्ध हुआ। फिर रुद्रदेवने धनुषपर ब्रह्मास्त्र चढ़ाकर रोषपूर्वक ब्रह्मास्त्रका संधान किया, जो वहाँ तीनों लोकोंका प्रलय करनेमें समर्थ था। परंतु अनिरुद्धने ब्रह्मास्त्रसे ब्रह्मास्त्रका, वज्रास्त्रसे पर्वतास्त्रका और पर्जन्यास्त्रसे आग्नेयास्त्रका निवारण कर दिया। तब पिनाकधारी शिव अत्यन्त क्रोधके कारण प्रज्वलित-से हो उठे। उन्होंने तीन शिखाओंवाले त्रिशूलसे प्रद्युम्ननन्दन अनिरुद्धपर आघात किया। वह त्रिशूल अनिरुद्धको विदीर्ण करके हाथीको भी चीरता हुआ निकल गया और उन दोनोंके बीचमें ऊपरको पुच्छभाग तथा नीचेको मुख किये स्थित हो गया। हाथीकी तत्काल मृत्यु हो गयी और युद्धस्थलमें अनिरुद्ध भी मूर्च्छित हो गये। वे दोनों रणभूमिमें वक्षःस्थल विदीर्ण हो जानेके कारण एक-दूसरेसे लगे हुए ही गिर पड़े। उस समय हाहाकार मच गया। सब यादव रोने लगे। जैसे यमराजके आगे पापी डर जाते हैं, उसी प्रकार रुद्रदेवके आगे सब यादव भयभीत हो गये। अनिरुद्ध मृतकके समान मूर्च्छित होकर गिर पड़े हैं, यह समाचार सुनकर साम्ब शङ्कित हो स्कन्दको छोड़कर वहाँ गये। यादव-वीरको मूर्च्छित हुआ देख साम्बके नेत्रोंसे अश्रुधारा बह चली और वे धनुष हाथमें लेकर क्रोधपूर्वक शिवसे बोले—"रुद्र! रणमें अनिरुद्ध तथा वीर सुनन्दनको मारकर तुम दानवोंका पालन कैसे करोगे ? मैंने पहले वेदमें और भागवत-शास्त्रमें ब्राह्मणोंके मुँहसे सुन रखा था कि शिव वैष्णव हैं और वे सदा 'श्रीकृष्ण' मन्त्रक परब्रह्मका भजन-सेवन करते हैं। आज प्रद्युम्नकुमारके पराधीन होनेपर वह सब कुछ व्यर्थ हो गया। सुनन्दन श्रीकृष्णके पुत्र हैं, किंतु उन्हें भी तुमने युद्धमें मार डाला। महेश्वर ! शिव ! तुम व्यर्थ युद्ध करते हो। तुम्हें धिक्कार है। तुम श्रीकृष्णसे विमुख हो, अतः मैं रणभूमिमें क्षुरप्रों तथा सायकोंद्वारा तुम्हें शीघ्र ही मार गिराऊँगा। तुम खड़े रहो, खड़े रहो" ॥ १५—२७½ ॥

साम्बकी यह बात सुनकर भगवान् शङ्कर प्रसन्न हो गये और इस प्रकार बोले ॥ २८ ॥

शिवने कहा—यादवश्रेष्ठ ! तुम धन्य हो। तुम मुझसे जो कुछ कह रहे हो, वह सब सत्य है। देव दानव-वन्दित ये भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मेरे स्वामी हैं। किंतु वीर ! जब सुनन्दन मारा गया तथा रणक्षेत्रमें बल्वल मूर्च्छित हो गया, तब मैं उसकी सहायताके लिये, अथवा यों कहो कि भक्तकी रक्षाके लिये यहाँ आ गया। मैं अपने दिये हुए वचनको सत्य करनेके लिये आया हूँ और भक्तका प्रिय करनेकी इच्छासे समराङ्गणमें किंचित् कुपित होकर युद्ध करता हूँ ॥ २९-३१ ॥

भगवान् भूतनाथ शिव जब इस प्रकार कह रहे थे, तभी रोषसे भरे हुए साम्बने बड़ी शीघ्रताके साथ अपने धनुषसे छूटे हुए क्षुरप्रों एवं सायकोंद्वारा उन्हें घायल कर दिया। उन बाणोंसे आहत होनेपर भी रुद्रदेवको थोड़ी सी भी वेदना नहीं हुई, जैसे फूलोंसे मारनेपर गजराजको कुछ पता नहीं चलता है। अब शिवने अपना धनुष उठाया और युद्धमें जाम्बवतीकुमारको अनेक तीखे बाण मारे। साम्ब शिवको और शिव साम्बको परस्पर घायल करने लगे। उन दोनोंका युद्ध देखकर देवता ऐसा मानने लगे कि अब समस्त लोकोंका संहार होनेवाला है। राजन् ! पृथ्वीपर और आकाशमें महान् कोलाहल मच गया। समस्त वृष्णिवंशी भयभीत हो अपने रक्षक भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण करने लगे ॥ ३२-३६ ॥

तब यादवोंपर महान् विपत्ति आयी हुई जानकर श्रीयदुकुलपालक मधुसूदन घोड़े और सारथिसे युक्त रथके द्वारा वहाँ आ पहुँचे। उनकी अङ्गकान्ति श्याम थी। मस्तकपर किरीट शोभा पा रहा था। नेत्र नूतन नील कमलकी शोभा छीने लेते थे। करोड़ों नवीन सूर्योंकी कान्ति धारण किये भगवान् श्यामसुन्दर हाथोंमें कौमोदकी गदा, शङ्ख, चक्र, पद्म, धनुष, बाण और खड्ग लिये हुए थे। श्रीवत्सचिह्न, कौस्तुभमणि, पीताम्बर तथा वनमालासे अलंकृत श्रीहरि नीली अलकों तथा कुण्डल, कङ्कण आदि आभूषणोंसे विभूषित हो, करोड़ों कामदेवोंके समान शोभा पा रहे थे। जैसे राजहंस मुखसे मुक्ताफल गिरा रहे हों, उसी प्रकार श्वेत फेनकणोंको उगलनेवाले सुग्रीव आदि अत्यन्त वेगशाली तथा सुन्दर

भगवान् शंकरके इस प्रकार स्तुति करनेपर बलरामके छोटे भाई श्रीकृष्णने प्रसन्न होकर अपने चरणोंमें झुके हुए चन्द्रशेखर शिवसे सारा अभिप्राय पूछा ॥ ९ ॥

श्रीकृष्ण बोले—शिव ! मेरे कुबुद्धि पुत्रने तुम्हारा क्या अपराध किया था, जिससे तुमने युद्धमें उसे मार डाला और अनिरुद्धको मूर्च्छित कर दिया ? किसलिये यदुकुलका विनाश किया ? तुम युद्धस्थलमें आये ही क्यों ? और आये भी तो युद्ध क्यों करने लगे ? यह सब बात विस्तारपूर्वक मुझे बताओ ॥ १०-११ ॥

श्रीकृष्णका यह कथन सुनकर प्रमथनाथ शिव लज्जित हो गये और कुछ सोच विचारकर उन मधुसूदनसे बोले ॥१२॥

शंकरजीने कहा—देवदेव ! जगन्नाथ ! राधिकावल्लभ ! जगन्मय ! करुणाकर ! मैं निर्लज्ज हूँ, अपराधी हूँ । आप मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये । देव ! क्या आप नहीं जानते, मैं आपके सामने क्या कहूँगा ? प्रभो ! आपकी मायासे मोहित होकर मैं भक्तकी रक्षा करनेके लिये यहाँ आया था, आप मेरे इस सारे अपराधको क्षमा कर दीजिये। हरे ! 'मैं ही सम्पूर्ण जगत्का शासक हूँ' इस अभिमानसे मैंने युद्धस्थलमें, जिनके श्रीकृष्ण ही देवता हैं, उन शूरवीर वृष्णिवंशियोंको मारा है । श्रीकृष्ण ! यही कारण है कि सत्पुरुष परमवाञ्छित महान् ऐश्वर्यको स्वयं छोड़कर आपके निर्भय चरणकमलका सदा चिन्तन करते हैं । मनुष्योंको सुख और दुःख तभीतक प्राप्त होते हैं, जबतक उनका मन श्रीकृष्णमें नहीं लगता है । श्रीकृष्णमें मन लग जानेपर वह दुर्जय भक्तियोगरूपी खड्ग प्राप्त होता है, जो मनुष्योंके कर्मरूपी वृक्षोंका मूलोच्छेद कर डालता है । जो लोग मेरी भक्तिके बलसे घमंडमें आकर आप मेरे स्वामी यदुकुल-तिलकका अपमान करते हैं, वे सब निश्चय ही नरकमें जायँगे* ॥ १३-१९ ॥

—ऐसा कहकर भगवान् शंकर चुप हो नेत्रोंमें आँसू भरकर भक्तिभावसे श्रीकृष्णके युगलचरणारविन्दोंमें दण्डकी भाँति प्रणत हो गये । भगवान् श्रीकृष्णने रुद्रदेवको उठाकर अपने पास खड़ा किया और उन्हें आश्वासन देकर, मिलकर उनकी ओर सुधाभरी दृष्टिसे देखा ॥ २०-२१ ॥

तत्पश्चात् श्रीकृष्ण बोले—शिव ! सभी देवता अपने भक्तका पालन करते हैं । तुमने भी यदि भक्तका पालन किया तो इसमें कौन-सा निंदित कर्म कर डाला ? तुम मेरे हृदयमें हो और मैं तुम्हारे हृदयमें । हम दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है । खोटी बुद्धिवाले मूढ़ पुरुष ही हम दोनोंमें अन्तर या भेद देखते हैं । सदाशिव ! मेरे भक्त तुमको नमस्कार करते हैं और तुम्हारे भक्त मुझको । जो मेरी इस बातको नहीं मानते हैं, वे नरकमें पड़ेंगे† ॥ २२-२४ ॥

—ऐसा कहकर भगवान् श्रीकृष्णने युद्धस्थलमें मारे गये अपने पुत्र सुनन्दनको अमृतवर्षिणी दृष्टिसे देखकर जीवित कर दिया । तत्पश्चात् अनिरुद्धके हृदयसे शूलको धीरे धीरे खींचा और उन्हें भी जीवनदान दिया । इसके बाद सब समर्थ परमेश्वर श्रीकृष्णने युद्धस्थलमें मारे गये समस्त यादवोंको सुधावर्षिणी दृष्टिसे देखकर जीवित कर दिया । इतनेमें ही दुन्दुभिनादके साथ देवता उत्साहसूचक पुष्पवर्षा करने लगे । ऐसा करके उन्होंने भगवान् गरुडध्वजको प्रसन्न किया । सम्पूर्ण त्रिलोकीके नेता भगवान् श्रीकृष्णका आगमन देख वे श्रेष्ठ यादव वेगपूर्वक उठकर खड़े हो गये और प्रसन्नताके साथ जय-जयकार करने लगे ॥ २५-३० ॥

* देवदेव जगन्नाथ राधिकेश जगन्मय ।
पाहि पाहि कृपाकारिंस्त्वं मां कृतागसम् ॥
त्वं न जानासि किं देव कथयिष्यामि किं त्वहम् ।
भक्तस्य पालनं कर्तुं मायया तव मोहितः ॥
सर्वमागतवान् देव त्वं सर्वं क्षन्तुमर्हसि ।
शास्ताहं सर्वलोकस्य मानादिति मया हरे ॥
मारिता समरे शूरा वृष्णयः कृष्णदेवताः ।
तस्मात् सन्तः स्वयं त्यक्त्वा परमैश्वर्यमीप्सितम् ॥
ध्यायन्ति सततं कृष्ण पादाब्जं ते निरापदम् ।
सुखं दुःखं नृणां तावद् यावत्कृष्णे न मानसम् ॥
कृष्णे मनसि सञ्जाते भक्तिखड्गो दुरत्ययः ।
नराणां कर्मवृक्षाणां मूलच्छेदं करोति च ॥
मद्भक्तिबलदर्पिष्ठ मत्प्रभुं त्वां यदूत्तमम् ।
न मन्यन्ते च ते सर्वे यास्यन्ति निरयं ध्रुवम् ॥
(म० ३९ । १३-१९)

† ममासि हृदये त्वं तु भवतो हृदये ह्यहम् ।
आवयोरन्तरं नास्ति मूढाः पश्यन्ति दुर्धियः ॥
त्वां नमन्ति च मद्भक्तास्त्वद्भक्ता मां सदाशिव ।
ये न मन्यन्ति मद्वाक्यं यास्यन्ति नरकं च ते ।
(म० ३९ । २२-२४)

करनेवाले घोड़ोंसे उनका रथ जुता हुआ था*। जैसे सर्दीसे डरे हुए लोग सूर्यका उदय देखकर सुखी हो जाते हैं, उसी प्रकार यादव अपने स्वामी श्रीकृष्णका शुभागमन देखकर हर्षसे विह्वल हो गये। उस समय यादव-सेनामें जय-जयकार होने लगा। आकाशमें स्थित हुए देवता पुष्पोंकी वृष्टि करने लगे। भगवान् श्रीकृष्णको सहायताके लिये आया जान शाम्ब हर्षसे उछल पड़े और धनुष त्यागकर उनके चरणोंमें गिर पड़े॥ १५-२१॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'अनिरुद्ध आदिकी सहायताके लिये श्रीकृष्णका आगमन' नामक अड़तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३८॥

उन्तालीसवाँ अध्याय

भगवान् शंकरद्वारा श्रीकृष्णका स्तवन, शिव और श्रीकृष्णकी एकता; श्रीकृष्णद्वारा सुनन्दन, अनिरुद्ध एवं अन्य सब यादवोंको जीवनदान देना तथा बल्वलद्वारा यज्ञ-सम्बन्धी अश्वका लौटाया जाना

श्रीगर्गजी कहते हैं—भगवान् श्रीकृष्णको वहाँ उपस्थित देख महादेवजी भयभीत एवं शङ्कितचित्त हो गये और धनुष तथा त्रिशूल आदि त्यागकर उन श्रीपतिसे भक्तिपूर्वक बोले॥ १॥

शंकरने कहा—सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वत्र व्यापक विष्णुदेव! मेरे अविनयको दूर कीजिये। मनको दबाइये और विषयोंकी मृगतृष्णा शान्त कीजिये। प्राणियोंके प्रति मेरे हृदयमें दयाका विस्तार कीजिये और मुझे संसार-सागरसे उबारिये। देवनदी गङ्गा जिनकी मकरन्दराशि है, जिनका मनोहर सौरभसमूह सच्चिदानन्दमय है तथा जो भव-बन्धनके भय एवं खेदका छेदन करनेवाले हैं, श्रीपतिके उन चरणारविन्दोंकी मैं वन्दना करता हूँ। प्रभो! परमार्थदृष्टिसे आपमें और मुझमें कोई भेद न होनेपर भी मैं ही आपका हूँ, आप मेरे नहीं हैं; क्योंकि समुद्रकी ही तरङ्गें हुआ करती हैं, तरङ्गोंका समुद्र कहीं नहीं होता। हे गोवर्धनको धारण करनेवाले! हे पर्वत-भेदी इन्द्रके अनुज! हे दानवकुलके शत्रु! तथा हे सूर्य और चन्द्रमाको नेत्रोंके रूपमें धारण करनेवाले परमेश्वर! आप प्रभुका दर्शन हो जानेपर क्या इस संसारका तिरस्कार नहीं हो जाता है? परमेश्वर! मैं भवतापसे भीत हूँ और आप मत्स्य आदि अवतारोंद्वारा अवतारी होकर वसुधाका पालन करते हैं, अतः मेरा भी पालन कीजिये। दामोदर! गुणोंके मन्दिर! सुन्दर वदनारविन्द! गोविन्द! भवसागरको मथ डालनेके लिये मन्दराचलरूप श्रीकृष्ण! आप मेरे बड़े भारी भयको भगाइये। नारायण! करुणामय! मैं आपके युगलचरणोंकी शरण हूँ। यह छः पदोंवाली स्तुतिरूपिणी षट्पदी (भ्रमरी) मेरे मुखकमलमें सदा निवास करे†॥ २—८॥

* श्यामः किरीटी नवकञ्जनेत्रो नवार्ककोटिद्युतिमण्डलाभः।
कौमोदकीशङ्खरथाङ्गपद्मकोदण्डबाणैर्निगुप्तोऽसिधारी॥
श्रीवत्सचिह्नेन तु कौस्तुभेन पीताम्बरेणापि च मालयाढ्यः।
लीलाम्बुजे कुण्डलनूपुराद्यैर्विभूषितः कोटिमनोजतुल्यः॥
समुद्गमद्भिः सितफेनहीरान् मुखप्रकाशानिव चामराद्यैः।
सुवर्णमुख्यैरतिवेगवद्भिः [illegible] सुन्दरश्यामघने॥ (अध्याय ३८। १८-२०)

† अविनयमपनय विष्णो दमय मनः शमय विषयमृगतृष्णाम्। भूतदयां विस्तारय तारय संसारसागरतः॥
दिव्यधुनीमकरन्दे परिमलपरिभोगसच्चिदानन्दे। श्रीपतिपदारविन्दे भवभयखेदच्छिदे वन्दे॥
सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्। सामुद्रो हि तरङ्गः क्वचन समुद्रो न तारङ्गः॥
उद्धृतनग नगभिदनुज दनुजकुलामित्र मित्रशशिदृष्टे। दृष्टे भवति प्रभवति न भवति किं भवतिरस्कारः॥
मत्स्यादिभिरवतारैरवतारवतावता सदा वसुधाम्। परमेश्वर परिपाल्यो भवता भवतापभीतोऽहम्॥
दामोदर गुणमन्दिर सुन्दरवदनारविन्द गोविन्द। भवजलधिमथनमन्दर परमं दरमपनय त्वं मे॥
नारायण करुणामय शरणं करवाणि तावकौ चरणौ। इति षट्पदी मदीये वदनसरोजे सदा वसतु॥
(अ० ३९। २-८)

भगवान् शंकरके इस प्रकार स्तुति करनेपर बलरामके छोटे भाई श्रीकृष्णने प्रसन्न होकर अपने चरणोंमें झुके हुए चन्द्रशेखर शिवसे सारा अभिप्राय पूछा ॥ ९ ॥

श्रीकृष्ण बोले—शिव ! मेरे कुबुद्धि पुत्रने तुम्हारा क्या अपराध किया था, जिससे तुमने युद्धमें उसे मार डाला और अनिरुद्धको मूर्च्छित कर दिया ? किसलिये यदुकुलका विनाश किया ? तुम युद्धस्थलमें आये ही क्यों ? और आये भी तो युद्ध क्यों करने लगे ? यह सब बात विस्तारपूर्वक मुझे बताओ ॥ १०-११ ॥

श्रीकृष्णका यह कथन सुनकर प्रमथनाथ शिव लज्जित हो गये और कुछ सोच-विचारकर उन मधुसूदनसे बोले ॥१२॥

शंकरजीने कहा—देवदेव ! जगन्नाथ ! राधिकावल्लभ ! जगन्मय ! करुणाकर ! मैं निर्लज्ज हूँ, अपराधी हूँ। आप मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। देव ! क्या आप नहीं जानते, मैं आपके सामने क्या कहूँगा ? प्रभो ! आपकी मायासे मोहित होकर मैं भक्तकी रक्षा करनेके लिये यहाँ आया था। आप मेरे इस सारे अपराधको क्षमा कर दीजिये। हरे ! 'मैं ही सम्पूर्ण जगत्‌का शासक हूँ' इस अभिमानसे मैंने युद्धस्थलमें, जिनके श्रीकृष्ण ही देवता हैं, उन शूरवीर वृष्णिवंशियोंको मारा है। श्रीकृष्ण ! यही कारण है कि सत्पुरुष परमवाञ्छित महान् ऐश्वर्यको स्वयं छोड़कर आपके निर्भय चरणकमलका सदा चिन्तन करते हैं। मनुष्योंको सुख और दुःख तभीतक प्राप्त होते हैं, जबतक उनका मन श्रीकृष्णमें नहीं लगता है। श्रीकृष्णमें मन लग जानेपर वह दुर्जय भक्तियोगरूपी खड्ग प्राप्त होता है, जो मनुष्योंके कर्मरूपी वृक्षोंका मूलोच्छेद कर डालता है। जो लोग मेरी भक्तिके बलसे घमंडमें आकर आप मेरे स्वामी यदुकुल-तिलकका अपमान करते हैं, वे सब निश्चय ही नरकमें जायँगे* ॥ १३-१९ ॥

—ऐसा कहकर भगवान् शंकर चुप हो नेत्रोंमें आँसू भरकर भक्तिभावसे श्रीकृष्णके युगलचरणारविन्दोंमें दण्डकी भाँति प्रणत हो गये। भगवान् श्रीकृष्णने रुद्रदेवको उठाकर अपने पास खड़ा किया और उन्हें आश्वासन देकर, मिलकर उनकी ओर सुधाभरी दृष्टिसे देखा ॥ २०-२१ ॥

तत्पश्चात् श्रीकृष्ण बोले—शिव ! सभी देवता अपने भक्तका पालन करते हैं। तुमने भी यदि भक्तका पालन किया तो इसमें कौन-सा निन्दित कर्म कर डाला ? तुम मेरे हृदयमें हो और मैं तुम्हारे हृदयमें। हम दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है। खोटी बुद्धिवाले मूढ़ पुरुष ही हम दोनोंमें अन्तर या भेद देखते हैं। सदाशिव ! मेरे भक्त तुमको नमस्कार करते हैं और तुम्हारे भक्त मुझको। जो मेरी इस बातको नहीं मानते हैं, वे नरकमें पड़ेंगे† ॥ २२-२४ ॥

—ऐसा कहकर भगवान् श्रीकृष्णने युद्धस्थलमें मारे गये अपने पुत्र सुनन्दनको अमृतवर्षिणी दृष्टिसे देखकर जीवित कर दिया। तत्पश्चात् अनिरुद्धके हृदयसे शूलको धीरे-धीरे खींचा और उन्हें भी जीवनदान दिया। इसके बाद सबमें समर्थ परमेश्वर श्रीकृष्णने युद्धस्थलमें मारे गये समस्त यादवोंको सुधावर्षिणी दृष्टिसे देखकर जीवित कर दिया। इतनेमें ही दुन्दुभिनादके साथ देवता उत्साहसूचक पुष्पवर्षा करने लगे। ऐसा करके उन्होंने भगवान् गरुडध्वजका प्रणाम किया। सम्पूर्ण त्रिलोकीके नेता भगवान् श्रीकृष्णको आया देख वे श्रेष्ठ यादव वेगपूर्वक उठकर खड़े हो गये और प्रसन्नताके साथ जय-जयकार करने लगे ॥ २५-२९ ॥

---

* देवदेव जगन्नाथ राधिकेश जगन्मय।
पाहि पाहि कृपाकारिन्निरत्रप मां कृतागसम् ॥
त्वं न जानासि किं देव कथयिष्यामि किं त्वहम्।
भक्तस्य पालनं कर्तुं मायया तव मोहितः ॥
अपराधमिमं देव त्वं सर्वं क्षन्तुमर्हसि।
शासकः सर्वलोकस्य मानादिति मया हरे ॥
मारिता समरे शूरा वृष्णयः कृष्णदेवताः।
तस्मात् सन्तः स्वयं त्यक्त्वा परमैश्वर्यमीप्सितम् ॥
ध्यायन्ति ते सदा कृष्ण पादाब्जं ते निरापदम्।
सुखं दुःखं नृणां तावद् यावत्कृष्णे न मानसम् ॥
कृष्णे मनसि संलग्ने भक्तिखड्गो दुरत्ययः।
नराणां कर्मवृक्षाणां मूलच्छेदं करोति च ॥
मद्भक्तिबलदर्पिष्ठ मत्प्रभुं त्वां यदूत्तमम्।
न मन्यन्ते च ते सर्वे यास्यन्ति निरयं ध्रुवम् ॥
(अ० ३९। १३-१९)

† मद्धृदि त्वं स्थितः शम्भो भवतो हृदये ह्यहम्।
आवयोरन्तरं नास्ति मूढाः पश्यन्ति दुर्धियः ॥
त्वां नमन्ति च मद्भक्तास्त्वद्भक्ता मां सदाशिव।
ये न मन्यन्ति मद्वाक्यं यास्यन्ति नरकं च ते ॥
(अ० ३९। २२-२४)

कुशल पूछी और भगवान् श्रीकृष्णने भी उन सबका उत्तम कुशल-समाचार पूछा ॥ ३८—४५ ॥

नृपेश्वर ! तत्पश्चात् वृन्दावनमें यमुनाके तटपर महात्मा अनिरुद्धकी सेनाके सारे शिविर लग गये । अनिरुद्ध, साम्ब और उद्धव आदिने तो शिविरोंमें ही निवास किया, किंतु भगवान् श्रीकृष्ण नन्दनगरमें ही ठहरे । राजन् ! आप-सहित नन्दरायजीने वहाँ पधारे हुए समस्त यादवोंको भोजन दिया और पशुओंके लिये भी चारे-दाने आदिका प्रबन्ध कर दिया ॥ ४६–४८ ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'व्रजमण्डलमें प्रवेश' नामक चालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४० ॥

इकतालीसवाँ अध्याय

श्रीराधा और श्रीकृष्णका मिलन

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन् ! सन्ध्याके समय श्रीराधाने नन्दनन्दन श्रीकृष्णको बुलवाया । उनका आमन्त्रण पाकर नित्य एकान्तस्थलमें, जहाँ शीतल कदलीवन था, श्रीकृष्ण वहाँ गये । कदलीवनमें एक मेघ-महल बना था, जिसमें चन्दन पङ्कका छिड़काव हुआ था । केलेके पत्तोंसे सज्जित होनेके कारण वह भवन बड़ा मनोहर लगता था । अपनी विशालतासे सुशोभित उस मेघमन्दिरमें यमुनाजलका स्पर्श करके बहती हुई वायु पानीके फुहारे बिखेरती रहती थी । श्रीराधिकाका ऐसा सुन्दर सारा भवनमन्दिर उनके विरह-दुःखकी आगसे सदा भस्मीभूत हुआ-सा प्रतीत होता था । नरेश्वर ! गोलोकमें प्राप्त हुए श्रीदामाके शापसे वृषभानुनन्दिनीको श्रीकृष्णविरहका दुःख भोगना पड़ रहा था । उस दशामें भी वे यहाँ अपने शरीरकी रक्षा इसलिये कर रही थीं कि किसी-न-किसी दिन श्रीकृष्ण यहाँ आयेंगे ॥ १–४ ॥

सखीके मुखसे जब यह संवाद मिला कि श्रीकृष्ण अपने शिविरमें पधारे हैं, तब श्रीवृषभानुनन्दिनी उन्हें लानेके लिये अपने श्रेष्ठ आसनसे तत्काल उठकर खड़ी हो गयीं और चहेलियोंके साथ दरवाजेपर आयीं । मधुरवती श्यामाने व्रजवल्लभ श्यामसुन्दर श्रीकृष्णसे उनका कुशल-समाचार पूछते हुए आसन दिया और क्रमशः पाद्य, अर्घ्य आदि उपचार अर्पित किये । नरेश्वर ! परिपूर्णतमा श्रीराधाने परिपूर्णतम श्रीकृष्णका दर्शन पाकर विरहजनित दुःखको त्याग दिया और सयाग पाकर वे हर्षोल्लाससे भर गयीं । उन्होंने वस्त्र, आभूषण और चन्दनसे अपना शृङ्गार किया । प्राणनाथ श्रीकृष्णके मथुरापुरी चले जानेके बादसे श्रीराधाने कभी शृङ्गार धारण नहीं किया था । इस दिनसे पहले उन्होंने कभी पान नहीं खाया, मिष्टान्न भोजन नहीं किया, शय्यापर नहीं सोयीं और कभी हास-परिहास नहीं किया था । इस समय सिंहासनपर विराजमान मदनमोहनदेवसे श्रीराधाने हर्षके आँसू बहाते हुए गद्गद कण्ठसे पूछा ॥ ५–१० ॥

श्रीराधा बोलीं—हृषीकेश ! तुम तो साक्षात् गोकुलेश्वर हो, फिर गोकुल और मथुरा छोड़कर द्वारका क्यों चले गये ? इसका कारण मुझे बताओ । नाथ ! तुम्हारे वियोगमें मुझे एक-एक क्षण युगके समान जान पड़ता है । एक-एक घड़ी एक-एक मन्वन्तरके तुल्य प्रतीत होती है और एक दिन मेरे लिये दो परार्धके समान प्रतीत होता है । देव ! किस कुसमयमें मुझे दुःखदायी विरह प्राप्त हुआ, जिसके कारण मैं तुम्हारे सुखदायी चरणारविन्दोंका दर्शन नहीं कर पाती हूँ । जैसे सीता श्रीरामको और हंसिनी मानसरोवरको चाहती है, उसी तरह मैं तुम मानसराज राधेश्वरसे नित्यमिलनकी इच्छा रखती हूँ । तुम तो स्वयं हो, सब कुछ जानते हो । मैं तुमसे अपना दुःख क्या कहूँ ! नाथ ! सौ वर्ष बीत गये, किंतु मेरे वियोगका अन्त नहीं हुआ ॥ ११–१५ ॥

राजन् ! अपने प्राणप्रियतम स्वामी श्यामसुन्दरसे ऐसा वचन कहकर स्वामिनी श्रीराधा विरहावस्थाके दुःखोंको याद करके अत्यन्त खिन्न हो फूट-फूटकर रोने लगीं । जिनके रोते देख प्रियतम श्रीकृष्णने अपने वचनोंद्वारा उनके मानसिक क्लेशको शान्त करते हुए यह प्रिय बात कही ॥ १६–१७ ॥

श्रीकृष्ण बोले—प्रिये राधे ! यह शाप सदाको सुख देनेवाला है, अतः तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये । हम दोनोंका तेज एक है, जो दो रूपोंमें प्रकट हुआ है । इस बातको ऋषि-महर्षि जानते हैं । जहाँ मैं हूँ, वहाँ सदा तुम हो और जहाँ तुम हो, वहाँ सदा मैं हूँ । हम दोनोंमें प्रकृति और पुरुषकी भाँति कभी वियोग नहीं होता । राधे ! जो नराधम हम दोनोंके बीचमें भेद देखता है, वे सगोलकमें

मय-वल्वलसंवाद [अध्याय १२

भगवान् शिवका वल्वलको उपदेश [अध्याय ११
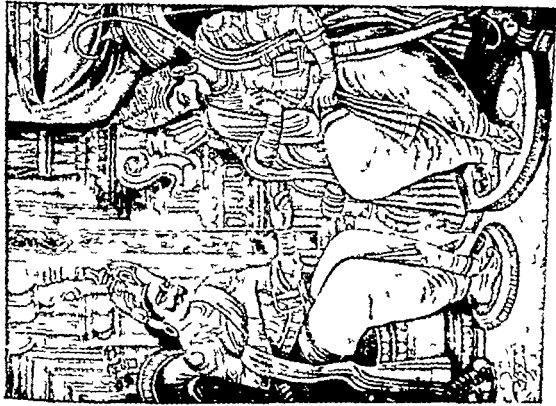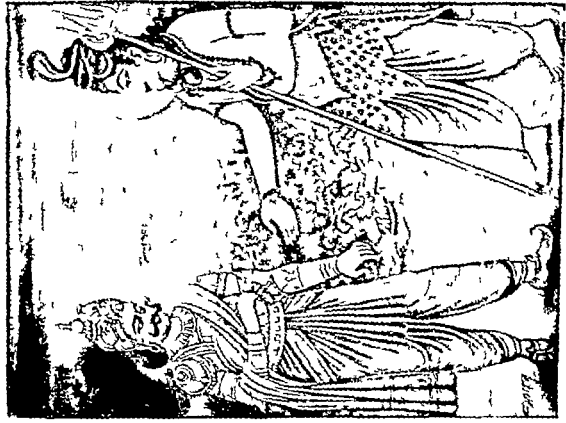
होनेपर अपनी उस दोषदृष्टिके कारण नरकोंमें पड़ते हैं*। श्रीराधिके! जैसे चकई प्रतिदिन प्रातःकाल अपने प्यारे चक्रवाकको देखती है, उसी तरह आजसे तुम भी मुझे सदा अपने निकट देखोगी। प्राणवल्लभे! थोड़े ही दिनोंके बाद मैं समस्त गोप-गोपियोंके और तुम्हारे साथ अविनाशी ब्रह्मस्वरूप श्रीगोलोकधाममें चलूँगा ॥ १८-२२ ॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! माधवकी यह बात सुनकर गोपियोंसहित श्रीराधिकाने प्रसन्न हो प्यारे श्यामसुन्दरका उसी प्रकार पूजन किया, जैसे रमादेवी रमापतिकी पूजा करती हैं। नरेश्वर! श्रीराधिकाने पुनः श्रीकृष्णसे रासक्रीडाके लिये प्रार्थना की। तब प्रसन्न हुए रासेश्वरने वृन्दावनमें रास करनेका विचार किया ॥ २३-२४ ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'श्रीराधा-कृष्णका मिलन' नामक इकतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४१ ॥

बयालीसवाँ अध्याय

रासक्रीडाके प्रसङ्गमें श्रीवृन्दावन, यमुना पुलिन, वंशीवट, निकुञ्जभवन आदिकी शोभाका वर्णन, गोपसुन्दरियों, श्यामसुन्दर तथा श्रीराधाकी छविका चिन्तन

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! हेमन्त ऋतुके प्रथम मासमें पूर्णिमाकी रातको राधिकावल्लभ श्यामसुन्दरने वृन्दावनमें पहलेकी ही भाँति सबको वशमें कर लेनेवाली वंशी बजायी। वह वंशीध्वनि सबके मनको आकृष्ट करती हुई सब ओर फैल गयी। उसे सुनकर गोपसुन्दरियाँ प्रेमवेदनासे पीड़ित एवं त्रस्त हो गयीं। मेघोंकी गतिको रोकती, तुम्बुरुको बारंबार आश्चर्यमें डालती, सनक-सनन्दन आदिके ध्यानमें बाधा पहुँचाती, ब्रह्माजीको विस्मित करती, उत्कण्ठायुक्त राजा बलिको भी चञ्चल बनाती, नागराज शेषमें चञ्चलता लाती तथा ब्रह्माण्डकटाहकी भित्तियोंका भेदन करती हुई वह वंशीध्वनि सब ओर फैल गयी† ॥ १-३ ॥

राजेन्द्र! इतनेमें ही चराचर प्राणियोंके सूर्यकिरणजनित संतापका मार्जन करते हुए चन्द्रमाका उदय हुआ। जैसे परदेशसे आया हुआ प्रियतम अपनी प्रियाके विरह-शोकको दूर कर देता है। दूसरोंको मान देनेवाले नरेश! उसी समय यमुनाने दिव्य रूप धारण किया। वृन्दावन, गिरिराज और व्रजभूमिका स्वरूप भी दिव्य हो गया। श्यामवर्णा यमुना नदीका उदर बहुत बढ़ गया। वहाँ मणियोंमें श्रेष्ठ रत्न, मोती, माणिक्य, शुभ्ररत्न (हीरा), हरितरत्न (पन्ना) आदिसे निर्मित करतोलिकाओंसे, जो वैदूर्य, नीलम, हरिन्मणि, इन्द्रनील, पद्मराग और पीतमणियोंसे निर्मित सोपानों एवं रत्नमण्डपोंसे युक्त थीं, यमुनाजीकी अतिशय शोभा हो रही थी। यमुना-नदी वहाँ श्रीकृष्णसदनमें लोटती हुई सब नदियोंसे उत्कृष्ट शोभा पा रही थी। स्वच्छन्द उछलते हुए मत्स्यगणोंके साथ बहती तथा सुन्दर श्याम अङ्गसे पापराशिका हरण करती हुई वे अपनी ऊँची-ऊँची चञ्चल लहरों तथा प्रफुल्ल कमलोंसे सुशोभित थीं ॥ ४-७ ॥

उस गोवर्धनगिरिका भजन-सेवन करो, जो शत-शत चन्द्रमाओंके प्रकाशसे युक्त है, मन्दार और चन्दन लताओंसे वेष्टित कल्पवृक्ष जहाँ अद्भुत शोभा पाते हैं, जहाँ रासमण्डल तथा मणिमय मण्डप विद्यमान हैं तथा जिसके शिखरपर करोड़ों मञ्जुल निकुञ्ज कुटीर दीप्तिमान् हैं। यमुनाजीके तटप्रदेश, नीरराशि तथा तीरके सम्पर्कमें आकर मन्दगतिसे प्रवाहित होनेवाली अत्यन्त सुगन्धित वायुसे कम्पित वृन्दावनका सारा भाग सुवासित है तथा श्रीखण्ड, कुङ्कुमयुक्त मृत्तिका एवं अगुरुसे चर्चित होकर यह वन परम कल्याणमय जान पड़ता है। वसन्त ऋतुमें सुलभ नूतन पल्लवों और फूलोंसे रागसे सेवित वृन्दावन मन्दार, चन्दन, चम्पा, कदम्ब,

---

* तेजस्त्वेकं द्विधाभूतमावयोर्ब्रह्मणो विदुः ॥
यथाहं त्वं सदा तत्र यत्र त्वं ह्यहमेव च। वियोगं भावमानोऽस्ति मायपुरुषयोर्यथा ॥
ये हि चावयोर्मध्ये ये पश्यन्ति नराधमाः। देहान्ते नरकान् घोरांस्ते प्रयान्ति स्वपापतः ॥
(अध्याय ४१। १८-२०)

† वंशीनादमुदीरयन् मेघगतिं रुन्धन् मुहुस्तुम्बुरुं ध्यानादस्खलयन् सनन्दनमुखान् विस्मापयन् वेधसम्।
औत्सुक्यावलिभिर्बलिं चटुलयन् भोगीन्द्रमाघूर्णयन् भिन्दन्नण्डकटाहभित्तिमभितो बभ्राम वंशीध्वनिः ॥
(अध्याय ४२। ३)

परित्याग कर प्राणवल्लभ गोविन्दकी ओर बढ़ चलनेके लिये उत्सुक हो गयीं। मालतीवनसे व्याप्त दिव्य वृक्षों एवं दिव्य लताओंके जालसे मण्डित तथा भ्रमरोंकी गुञ्जारोंसे मुखरित शोभाशाली वृन्दावनमें साक्षात् मदनमोहनदेव श्रीहरि गोपाङ्गनाओंके साथ विचरने लगे। अपने हस्तकमलसे श्रीराधिकाके करकमलको पकड़कर हँसते हुए साक्षात् भगवान् नन्दनन्दन यमुनाजीके तटपर आये। यमुनाके किनारे शोभायमान निकुञ्ज भवनमें श्रीकृष्ण विराजमान हुए। राजन्! मधुरतिके उस भवनमें श्रीकृष्ण-चन्द्रके चरणारविन्दोंके चिन्तनमें संलग्न हुई गोपाङ्गनाओंके पैरोंमें झनकारते हुए नूपुरोंकी ध्वनिके साथ खनखनाते हुए हाथके कङ्गनों, पाँवके मञ्जीरों और कटिप्रदेशकी रत्ननिर्मित चञ्चल किंकिणियोंके मधुर रवको तुम मनके कानोंसे सुनो ॥ २७-३३ ॥

मन्द मन्द मुसकानकी कान्तिसे उन गोपसुन्दरियोंके कोमल कपोलप्रान्त सुस्पष्ट चमकते या चमत्कारपूर्ण शोभा धारण करते थे। शोभामयी दन्तपङ्क्तियोंसे विद्युद्विलास-सा प्रकट करनेवाली उन सखियोंके वेष बड़े मनोहर थे। कोटीर रत्नके हार और हरितमणिके बाजूबंदसे विभूषित तथा सूर्यमण्डलके समान दीप्तिमान् कुण्डलोंसे मण्डित हुई उन गोपसुन्दरियोंमें कोई-कोई युवती 'मुग्धा' बतायी गयी है। कोई तरुणी 'मध्या' और कोई सुन्दरी 'प्रगल्भा' नायिका थी। कोई तरुणी 'तरुं नयति—इति तरुणी।'—इस व्युत्पत्तिके अनुसार तरुको भी नृत्यकी शिक्षा देती थी। कोई सखी उस सुन्दर वनमें अपने मधुर हासकी छटा बिखेरती थी और कोई मन्मत्त होकर चलती थी। कोई उसे भी हाथमें लेकर आगे दौड़ जाती थी और कोई उसको भी पकड़कर उस निकुञ्ज भवनमें कमलके फूलोंसे पीटती थी। कोई किसीके डाले या टूटते हुए मुक्ताहारको हँसी हँसीमें खींच लेती और कोई उस वन विहारमें इस तरह मतवाली होकर दौड़ती कि उसके बँधे हुए केशपाश खुल जाते थे। उस निकुञ्ज भवनमें श्रीजाह्नवी (गङ्गा), मधुमाधवी, शीला, रमा, शशिमुखी, विरजा, सुशीला, चन्द्रानना, ललिता, अचला, विशाखा और माया आदि असंख्य गोपियाँ थीं। मैंने यहाँ थोड़ी-सी गोपाङ्गनाओंके ही नाम बताये हैं। वहाँकी मणिमयी भूमियोंमें कोई खेलाकर लेकर और कोई अतिमौक्तिक लता (मोंगरा आदि) के फूलोंकी मालाएँ लेकर चलती थी। कितनी ही सखियाँ चामर, व्यजन, दण्ड और फहराती हुई पीली पताकाएँ लिये चल रही थीं। कुछ गोपाङ्गनाएँ वहाँ श्रीहरि (नटवर नन्दकिशोर) का वेष धारण करके नाचती थीं। कोई हाथमें वीणा लेकर बजाती, कोई हाथसे ताल देती और कोई मृदङ्गवादनकी कला दिखाती थी। कितनी ही सखियाँ वृषभानुनन्दिनीका-सा वेष धारण किये, केयूर और कुण्डलसे अलङ्कृत हो वंशी लेकर बजातीं और कई मणि-मण्डित बेंतकी छड़ी हाथमें लेकर चलती थीं। सुन्दर हाव भाव, रस और तालसे युक्त मन्द मुसकानसे रस सिक्त तथा झनकारते हुए नूपुरोंके शब्दसे युक्त विशद कटाक्षों, भौंहोंके कुटिल विलासों एवं संगीत-नृत्यकलाके ज्ञानोंद्वारा गोपाङ्गनाएँ वहाँ श्रीराधा तथा माधवको सतत संतुष्ट कर रही थीं। यमुनाके तटपर उस निकुञ्ज भवनमें वंशीवटके पासकी वनभूमिके निकट नटवरवेषधारी नन्दनन्दन श्रीकृष्ण श्रीराधाके साथ गिरिराजकी घाटीमें विचर रहे हैं। इस झाँकीमें तुम उनका चिन्तन करो ॥ ३४-४१ ॥

पद्मरागमणिके समान अरुण आभावाले चमकीले नखोंसे जिनके चरणारविन्द उद्दीप्त जान पड़ते हैं, जो अपने पैरोंमें झनकारते हुए नूपुर धारण किये हुए हैं, जिनके सम्पूर्ण अङ्गदेशसे दिव्य दीप्ति झर रही है, जो विचरणकालमें अपने लाल-लाल पादतलोंसे भूप्रदेशको अरुण रंगसे रञ्जित कर रहे हैं, शोभाशाली चरणकमलोंकी सुन्दर कान्ति बिखेरते हुए इधर उधर टहल रहे हैं, जिनका युगल जानुदेश लक्ष्मीजीके करकमलोंद्वारा सब ओरसे स्नेहपूर्वक दाबा—दुलराया जाता है, जिनके रम्भाके समान जाँघोंपर पीताम्बर शोभा पाता है, जिनका उदरभाग अत्यन्त कृश है, नाभिरूपी रोमावलिरूपी भ्रमरसे सुशोभित है, जो उदरमें त्रिवलीमयी तीन रेखा धारण करते हैं, जिनका वक्षःस्थल भृगुके चरणचिह्न तथा कौस्तुभमणिसे अलङ्कृत है, श्रीवत्सचिह्न एवं हारोंसे अत्यन्त रुचिर दिखायी देता है, जिनके श्रीअङ्गोंकी कान्ति नूतन मेघमालाके समान नील है, जो रेशमी पीताम्बर धारण करते हैं, जिनके विशाल भुजदण्ड हाथीकी सूँड़के समान प्रतीत होते हैं, जो रत्नमय बाजूबंद और मणिमय कङ्गन धारण करते हैं, जिनके एक हाथमें दिव्य कमल है तथा दूसरे हाथमें दिव्य शङ्ख कमलपर विराजित राजहंसके समान शोभा पाता है, जो कम्बुकण्ठ (शङ्खाकार ग्रीवा) से सुन्दर दिखायी देते हैं, जिनके कपोलोंका मध्यभाग अनन्त आभाशाली है, चिबुक (ठोढ़ी) का भाग गहरा है और दाँत कुन्दके समान चमकते हैं, पके हुए बिम्बफलकी-सी अपनी अरुणिमासे रञ्जित करनेवाले अधर मन्द मुसकानसे शोभायमान हैं,

श्याम आभा बड़ी मनोहर है तथा जो पारिजातके हारोंके मधुर मकरन्दपर लुभायी हुई भ्रमरीके गुञ्जारवसे सुशोभित हैं, उन श्रीकृष्णवल्लभा राधाका चिन्तन करो । श्रीखण्ड चन्दन, केसरपङ्क तथा अगुरुमिश्रित जलसे जिनका अभिषेक हुआ है, भालदेशमें जो कुङ्कुमकी बेंदी धारण करती हैं तथा जिनके मुखमण्डलमें रुचिर पत्ररचनाके रूपमें विचित्र चित्र चित्रित किया गया है, कल्पवृक्षके पत्तोंके समान जिनकी रुचिर गौर कान्ति है तथा जो नेत्रोंमें पूर्णरूपसे अञ्जनकी शोभा धारण करती हैं, उन गजगामिनी, पद्मिनी नायिका रासेश्वरी श्रीराधाका भजन करो*॥ ४८— ५४॥

ऐसी रीतिसे भी अधिक सुन्दर श्रीराधाको साथ लेकर श्रीकृष्ण निकुञ्जवनकी शोभा देखनेके लिये जब जा रहे थे, तब वहाँ गोपाङ्गनाएँ मणिमय छत्र धारण किये, मनोहर चँवर लिये तथा फहराती हुई पताकाएँ ग्रहण किये उनके साथ-साथ दौड़ने लगीं । आदिपुरुष नन्दनन्दन उत्तम धैवत और मध्यम आदि स्वरोंसे छः राग तथा उनका अनुगमन करनेवाली छत्तीसों रागिनियोंका ललित वंशीरवके द्वारा गान करते हुए चल रहे थे, ऐसे श्रीकृष्णका ध्यान करो । जो शृङ्गार, वीर, करुण, अद्भुत, हास्य, रौद्र, बीभत्स और भयानक रसोंसे नित्य युक्त हैं, व्रजवधुओंके मुखारविन्दके भ्रमर हैं और जिनके युगल चरण योगीश्वरोंके हृदयकमलमें सदा प्रकाशित होते हैं, उन भक्तप्रिय भगवान्‌का भजन करो। जो समस्त क्षेत्रोंमें क्षेत्रज्ञरूपसे निवास करते हैं, आदिपुरुष हैं, अधियज्ञस्वरूप हैं, समस्त कारणोंके भी कारणेश्वर हैं, प्रकृति और पुरुषमेंसे पुरुषरूप हैं तथा जिन्होंने अपने तेजसे यहाँ समस्त छल-कपट—काम-कैतवको निरस्त कर दिया है, उन सर्वेश्वर श्रीकृष्ण हरिका भजन करो । शिव, धर्म, इन्द्र, शेष, ब्रह्मा, सिद्धिदाता गणेश तथा अन्य देवता आदि भी जिनकी ही स्तुति करते हैं, श्रीराधा, लक्ष्मी, दुर्गा, भूदेवी, विरजा, सरस्वती आदि तथा सम्पूर्ण वेद सदा जिनका भजन करते हैं, उन श्रीहरिका मैं भजन करता हूँ ॥ ५५— ६ ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'रासक्रीडा-विषयक' बयालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४२ ॥

तैंतालीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णका श्रीराधा और गोपियोंके साथ विहार तथा मानवती गोपियोंके अभिमानपूर्ण वचन सुनकर श्रीराधाके साथ उनका अन्तर्धान होना

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन् ! वृक्षों, लताओं और भ्रमरोंसे व्याप्त तथा शीतल मन्द पवनसे वीजित वृन्दावनमें मुरलीके छिद्रोंको मुखोद्गत समीरसे भरते—वेणु बजाते हुए नन्दनन्दन श्रीहरि बारंबार देवताओंका मन मोहने लगे ।

* आरक्तरत्नखचन्द्रपरार्ध्यशोभां मञ्जीरनूपुररणत्कविकिङ्किणीकाम् ।
श्रीघण्टिकाकनककङ्कणवज्रयुक्तां राधां दधामि तरुपुञ्जनिकुञ्जमध्ये ॥
नीलाम्बरे कनकरश्मिविस्फुरद्भिः श्रीभानुजाम्बुधरस्निग्धलाङ्गे ।
सुक्ष्मस्वरूपकलितैरतिगौरवर्णां रासेश्वरीं भज मनोहरमन्दहासाम् ॥
बालार्कमण्डलमहाङ्करहारां ताटङ्कतोरणमणीन्द्रमनोहराभाम् ।
श्रीकण्ठमालसुमनानवचम्पकाम्नीं रत्नाङ्गुलीयकलितां भ्रमराम्बरान्तीम् ॥
चूडामणिद्युतिशरत्सुरम्यचन्द्र ग्रैवेयकाकलपनत्रविचित्ररूपाम् ।
श्रीपट्टसूत्रमणिपट्टचलद्दिगम्नी स्फूर्जत्सहस्रदलपद्मपरां भजस्व ॥
श्रीबाहुकङ्कणलसत्करवररत्नदीप्तिं श्रीनासिकाभरणभूषितगण्डशोभाम् ।
सद्यौवनालसगतिं कलसर्पवेणीं सद्यस्तुकाम्बिकवर्णां स्फुरच्चम्पकाभाम् ॥
सद्भावभावमहितां नवपद्मनेत्रां स्फूर्जत्सिताद्युतिकरां भवमलकप्रभाम् ।
कृष्णप्रियां ललितकुन्तलपुन्नगाभां मन्दारहारमधुभ्रमरीरवाढ्याम् ॥
श्रीखण्डकुङ्कुममृगागुरुवारिसिक्तां भालेन्दुकोमलविपत्रविचित्रभाम् ।
कल्पानपत्ररुचिरामलकाञ्जनाभां रासेश्वरीं गजगतिं भज पद्मिनीं ताम् ॥ (अश्व० ४२ । ४८–५४)

संसारमें वे लोग धन्य हैं, जो सदा अपने कानोंसे श्रीकृष्णकी कथा सुनते हैं, मुखसे श्रीकृष्णचन्द्रके नाम जपते हैं, हाथोंसे प्रतिदिन श्रीकृष्णकी सेवा करते हैं, नित्यप्रति उनका ध्यान और दर्शन करते हैं तथा प्रतिदिन उन भगवान्‌का चरणोदक पीते और प्रसाद पाते हैं। मुनिप्रवर! इस भावसे श्रम करके जो लोग जगदीश्वर श्रीकृष्णका भजन करते हैं, वे उनके परमधाममें जाते हैं। मुने! जो शारीरिक सौख्यसे उन्मत्त होकर संसारमें नाना प्रकारके भोग भोगते हैं और श्रवण मनन आदि साधन नहीं करते, वे शरीरका अन्त होनेपर भयंकर यमदूतोंद्वारा पकड़े जाते हैं और जबतक सूर्य तथा चन्द्रमाकी स्थिति है, तबतकके लिये कालसूत्र नरकमें डाल दिये जाते हैं *॥ १—७॥

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार प्रश्न करनेवाले राजा वज्रनाभकी प्रशंसा करके मुनीश्वर गर्गजी गद्गदवाणीसे उन्हें श्रीहरिका चरित्र सुनाने लगे॥ ८॥

श्रीगर्गजी बोले—राजन्! श्रीकृष्णके अन्तर्धान हो जानेपर समस्त गोपाङ्गनाएँ उन्हें न देखकर उसी तरह संतप्त हो उठीं, जैसे हरिणियाँ यूथपति हरिणको न पाकर दुःखमग्न हो जाती हैं। 'भगवान् श्रीहरि अन्तर्धान हो गये'—यह जानकर समस्त गोपसुन्दरियाँ पूर्ववत् यूथ बनाकर चारों ओर वन-वनमें उनकी खोज करने लगीं। परस्पर मिलकर वे समस्त वृक्षोंसे पूछने लगीं—'वृक्षगण! नन्दनन्दन श्रीकृष्ण हमको अपने कटाक्ष-बाणसे घायल करके कहाँ चले गये? यह बात हमें बता दो, क्योंकि तुम सब लोग इस वनके स्वामी हो। सूर्यनन्दिनि यमुने! तुम्हारे पुलिनके प्राङ्गणमें प्रतिदिन गौएँ चराते हुए जो तरह-तरहकी लीलाएँ किया करते थे, वे गोपाल श्रीकृष्ण कहाँ चले गये? यह हमें बताओ। सकड़ों शिखरोंसे सुशोभित होनेके कारण 'शतशृङ्ग' नामसे विख्यात गोवर्द्धन! तुम गिरिराज हो। तुम्हें पूर्वकालमें इन्द्रके कोपसे व्रजवासियोंकी रक्षा करनेके लिये श्रीनाथजीने अपने बायें हाथपर धारण किया था। तुम श्रीहरिके औरस पुत्र हो, इसलिये वे कभी तुमको छोड़ते नहीं हैं। अतः तुम्हीं बताओ, वे नन्दनन्दन हमें वनमें छोड़कर कहाँ गये और इस समय कहाँ हैं? हे मयूर! हरिण! गौओ! मृगो! तथा विहङ्गमो! क्या तुमने काली-काली घुँघराली अलकावलिसे सुशोभित किरीटधारी श्रीकृष्णको देखा है? बताओ! वे हमारे मनमोहन इस समय कहाँ, किस वनमें हैं?'॥ ९—१६॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! इन वचनोंद्वारा पूछे जानेपर भी वे वनके तीर्थवासी प्राणी कोई उत्तर नहीं दे रहे थे, क्योंकि वे सभी मोहके वशीभूत थे॥ १७॥

इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रका पता पूछती हुई समस्त गोपसुन्दरियाँ 'कृष्ण! कृष्ण!' पुकारते कृष्णमयी हो गयीं। वे कृष्णस्वरूपा गोपाङ्गनाएँ वहाँ श्रीकृष्णकी लीला-चरित्रोंका अनुकरण करने लगीं। फिर वे यमुनाकी रेतीमें गयीं और वहाँ उन्हें श्रीहरिके पदचिह्न दिखायी दिये। वज्र, ध्वज और अङ्कुश आदि चिह्नोंसे उपलक्षित महात्मा श्रीकृष्णके चरण देखती और उनका अनुसरण करती हुई व्रजाङ्गनाएँ तीव्र गतिसे आगे बढ़ीं। वे श्रीकृष्णकी चरणरेणु लेकर अपने मस्तकपर रखती जाती थीं। इतनेमें ही अन्य चिह्नोंसे उपलक्षित दूसरे पदचिह्न भी उनके दृष्टिपथमें आये। उन चरणचिह्नोंको देखकर वे आपसमें कहने लगीं—'मालूम होता है, प्रियतम श्यामसुन्दर प्रियाके साथ गये हैं।' इस तरह बात करती और चरणचिह्न देखती हुई वे गोपाङ्गनाएँ तालवनमें जा पहुँचीं। नरेश्वर! उधर श्रीराधाके साथ वनमें आगे-आगे जाते हुए व्रजेन्द्र श्रीकृष्ण पीछे आती हुई गोपियोंका कोलाहल सुनकर स्वामिनी श्रीलाडिलीजीसे बोले—'करोड़ों चन्द्रमाओंके समान कान्ति धारण करनेवाली प्रियतमे! जल्दी-जल्दी चलो। तुमको और मुझको साथ ले जानेके लिये व्रजसुन्दरियाँ सब ओरसे यहाँ आ पहुँची हैं'॥ १८—२४॥

नरेश्वर! तब प्रियाजीने पहले प्रियतम श्यामसुन्दरका फूलोंसे शृङ्गार किया। शृङ्गार करके वृन्दावनेश्वर उन्हें पुष्प-रचित सुन्दर बना दिया। इसके बाद नन्दनन्दनने बहुतेरे पुष्प लाकर अपने हाथ प्रियाको भी फिर शृङ्गार धारण कराया। जैसे पूर्वकालमें उन्होंने भाण्डीरवनमें प्रियाका शृङ्गार

* ध्यास्ते ये हि शृण्वन्ति कर्णे कृष्णकथां सदा॥
मुखेन कृष्णचन्द्रस्य नामानि प्रजपन्ति हि।
हस्तैः श्रीकृष्णसेवां वै ये प्रकुर्वन्ति नित्यशः॥
नित्यं कुर्वन्ति कृष्णस्य ध्यानं दर्शनमेव च।
पादाम्बु प्रसादं च ये प्रभुञ्जन्ति नित्यशः॥
एतद्दृष्टेन भावेन श्रमेण जगदीश्वरम्।
ये भजन्ति मुनिश्रेष्ठ ते प्रयान्ति हरेः पदम्॥
संसारे ये प्रभुञ्जन्ति भोगान् नानाविधान् मुने।
श्रवणादीन् कुर्वन्ति देहसौख्येन दुर्मदाः॥
ते धान्ते यमदूतैश्च गृहीताश्च भयानकैः।
पतन्ति कालसूत्रे वै यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥
(अध्याय ४४। २—७)

रणक्षेत्रमें श्रीकृष्णका शुभागमन [अध्याय २८]

भगवान् शिवद्वारा भगवान् श्रीकृष्णका स्तवन [अध्याय ३९]

प्रफुल्ल कमलदलके समान सुन्दर एवं विशाल हैं, जो भक्त जनोंका अभीष्ट कामना पूर्ण कर देते हैं, व्रजसुन्दरियोंके नेत्रोंको शीतल करनेवाले हैं, उन मनमोहन श्रीकृष्णका हम भजन करती हैं। जिनके लोचनाञ्चल विशेष चञ्चल हैं और कोमल अधर अर्धविकसित कमलकी शोभा धारण करते हैं, जिनके हाथोंकी अँगुलियाँ और मुख बाँसुरीसे सुशोभित हैं, उन वेणुवादन रसिक माधवका हम चिन्तन करती हैं। जिनके दाँत किंचित् अङ्कुरित हुई कुन्दकलिकाके समान उज्ज्वल हैं, जो व्रजभूमिका भूषण है, अखिल भुवनके लिये मङ्गलमयी शोभासे सम्पन्न हैं, जो अपने शब्द और सौरभसे मनको हर लेता है, श्रीहरिके उस सुन्दर वेषको ही हम गोपाङ्गनाएँ खोज रही हैं। जिनकी आकृति देवताओंद्वारा पूजित होती है, जिनके चरणारविन्दोंके अमृतका मुनीश्वरगण नित्य निरन्तर सेवन करते रहते हैं, वे कमलनयन भगवान् श्यामसुन्दर नित्य हम सबका कल्याण करें। जो गोपोंके साथ मल्लयुद्धका आयोजन करते हैं, जिन्होंने युद्धमें बड़े-बड़े चतुर जवानोंको परास्त किया है तथा जो सम्पूर्ण योगियोंके भी आराध्य-देवता हैं, उन श्रीहरिका हम सदैव सेवन करती हैं। उमड़ते हुए नूतन मेघके समान जिनकी आभा है, जिनका लोचनाञ्चल प्रफुल्ल कमलकी शोभाको छीने लेता है, जो गोपाङ्गनाओंके हृदयको देखते देखते चुरा लेते हैं तथा जिनका अधर नूतन पल्लवोंकी शोभाको तिरस्कृत कर देता है, उन श्यामसुन्दरकी हम उपासना करती हैं। जो अर्जुनके रथकी शोभा है, समस्त संचित पापोंको तत्काल खण्डित कर देनेवाला है और वेदकी वाणीका जीवन है, वह निर्मल श्यामल तेज हमारे मनमें सदा स्फुरित होता रहे। जिनकी दृष्टि-परम्परा गोपिकाओंके वक्षःस्थल और चञ्चल लोचनोंके प्रान्तमें पड़ती रहती है तथा जो बाल-क्रीडाके रसकी लालसासे इधर-उधर घूमते रहते हैं, उन माधवका हम दिन-रात ध्यान करती हैं। जिनके मस्तकपर नीलकण्ठ (मोर) के पंखका मुकुट शोभा पाता है, जिनके अङ्गवैभव (कान्ति) को नीलमेघकी उपमा दी जाती है, जिनके नेत्र लाल कमलदलके समान शोभा पाते हैं, उन नील मेघ पीताम्बरधारी श्यामसुन्दरका हम भजन करती हैं। व्रजकी युवतियाँ जिनके लीला-वैभवका सदा गान करती हैं, जो कोमल स्वरमें मुरली बजाया करते हैं तथा जो मनोऽभिराम सम्पदाओंके धाम हैं, उन सुख-सारस्वरूप कमलनयन श्रीकृष्णका हम भजन करती हैं। जो मनपर मोहनी डालनेवाले और उत्तम शार्ङ्गधनुषधारी हैं, जो मानवती

गोपाङ्गनाओंको छोड़कर निकल गये हैं तथा नारद आदि मुनि जिनका सदा भजन-सेवन करते हैं, उन नन्दनन्दनका हम भजन करती हैं। जो श्रीहरि अमूल्य रमणियोंसे घिरे रहकर रासमण्डलमें सुखपूर्वक विजय पाते हैं, उन्हीं प्रियतम श्यामसुन्दरको वनमें राधासहित दुःख उठाती हुई हम व्रजवनिताएँ ढूँढ़ रही हैं। देवदेव! व्रजराजनन्दन! हरे! हमें पूर्णरूपसे दर्शन दीजिये, जो सब दुःखोंको हर लेनेवाला है। हम आपकी मोल ली हुई दासियाँ हैं। आप पूर्ववत् हमारी ओर देखकर हमें अपनाइये। जिन्होंने प्रलयजलसे इस भूमण्डलका उद्धार करनेके लिये परम उत्तम सम्पूर्ण यज्ञ वाराहस्वरूप धारण किया था और अपनी तीखी दाढ़से 'हिरण्याक्ष' नामक दैत्यको विदीर्ण कर डाला था, वे भगवान् श्रीहरि ही हम सबका उद्धार करनेमें समर्थ हों। जिन्होंने वेनकी दाहिनी बाँहसे स्वेच्छापूर्वक पृथुरूपमें प्रकट हो देवताओं सहित मनुकी सम्मतिसे इस पृथ्वीका दोहन किया और मत्स्यरूप धारण करके वेदोंकी रक्षा की, वे ही भगवान् श्रीकृष्ण इस अशुभ वेलामें हम गोपियोंके लिये शरणदाता हों। अहो! जिन परम प्रभुने समुद्र-मन्थनके समय कच्छपरूप धारण करके बड़े भारी पर्वत मन्दराचलको अपनी पीठपर ढोया था और नृसिंहरूप धारण करके अपने भक्तके प्राण लेनेको उद्यत हुए असुर हिरण्यकशिपुको प्राणदण्डसे दण्डित किया, वे ही श्रीहरि हम सबको परम आश्रय देनेवाले हों। जिन्होंने राजा बलिको छला—तीन पग भूमिके व्याजसे त्रिलोकीका राज्य उनसे छीन लिया तथा देवद्रोहियोंका दलन करके मुनिजनोंपर अनुग्रह करते हुए भूमण्डलपर विचरण किया, जो यदुकुलतिलक बलरामजीके रूपमें प्रकट हुए हैं और जिन्होंने उसी रूपसे कौरवपुरी हस्तिनापुरको हलसे खींचते हुए उसे गङ्गाजीमें डुबा देनेका विचार किया था, वे भगवान् श्रीकृष्ण सदा हमारे रक्षक हों। जिन्होंने गिरिराज गोवर्धनको उठाकर व्रजके पशुओंका उद्धार किया तथा व्रजपति नन्दरायकी, अन्यान्य गोपजनोंकी तथा हम गोपाङ्गनाओंकी भी रक्षा की थी, फिर आगे चलकर जिन्होंने कौरवोंद्वारा उत्पन्न किये गये संकटसे द्रुपदराजकुमारी पाञ्चालीके प्राण बचाये—भरी सभामें उसकी लज्जा रक्खी, उन्हींके चरणारविन्दोंमें हमारा सदा अनन्य अनुराग बना रहे। जिन परमपुरुष यदुकुलतिलकने समस्त पाण्डवोंकी विषसे, लाक्षागृहकी महाभयंकर अग्निसे, बड़े-बड़े अस्त्रोंसे तथा अनेकानेक विपत्तियोंसे पूर्णतः रक्षा की, उन्होंने

छियालीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णके आगमनसे गोपियोंको उल्लास, श्रीहरिके वेणुगीतकी चर्चासे श्रीराधाकी मूर्च्छाका निवारण, श्रीहरिका श्रीराधा आदि गोपसुन्दरियोंके साथ वनविहार, स्थल विहार, जल विहार, पर्वत विहार और रासक्रीडा

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! श्रीकृष्णको आया देख वे सब गोपसुन्दरियाँ हर्षसे उल्लसित होकर उठीं और दुःख त्यागकर जय-जयकार करने लगीं। श्रीराधा मूर्च्छामें ही पड़ी थीं। उनकी अवस्था देख गोपाङ्गनाओंके प्रार्थना करनेपर श्रीहरि उन्हें होशमें लानेके लिये उस व्रजभूमिमें वंशीनाद करने लगे। तब भी राधिका नहीं उठीं। यह देख श्रीराधावल्लभ हरि उन्हें बार-बार वेणुगीत सुनाने लगे। राजन्! वह गीत सुनकर श्रीराधा उठीं, किंतु वियोगजनित दुःखका स्मरण करके माधवको देखते-देखते फिर मूर्च्छित हो गयीं। तब श्रीकृष्णके वेणुगीतसे प्रसन्न हुई चन्द्रानना नामवाली सखी उनका आदेश पाकर तत्काल चन्द्रावलीके प्रति श्रीराधाको ही उपलक्षित करके बोली—॥ १—५ ॥

चन्द्राननाने कहा—हे राधे! जो श्रीकृष्णचन्द्र पहले तुम्हारे मानसे रूठकर चले गये थे, वे मानो एक युगके बाद फिर आ गये हैं। उन्हीं देवकीनन्दनने तुम्हारे समस्त दुःखोंका नाश करनेके लिये निकट बैठकर वेणु बजाते हुए गीत गाया है। रासके रमणीय प्राङ्गणमें छुम-छुम ध्वनिके साथ मधुर स्वरमें मृदङ्ग बजाया जा रहा है और देवाङ्गनाओंसे सेवित देवकीनन्दन माधव नृत्य करते हुए वेणुगीत सुना रहे हैं। वे मनोहर सुवर्णकी-सी कान्तिवाले पीताम्बरसे सुशोभित हैं। उनके वक्षःस्थलमें वैजयन्तीकी मालाएँ शोभा दे रही हैं। उन देवकीनन्दनने नन्दके वृन्दावनमें गोपिकामण्डलीके मध्यमें विराजमान होकर वेणु बजाते हुए गीत गाया है। मनोहर चन्द्रावलीके लोचनोंसे चुम्बित, गोप, गौओं तथा गोपाङ्गनाओंके वल्लभ और काम-वह्निरूपी वनको जलानेके लिये दावानलरूप देवकीनन्दनने वेणु बजाते हुए गीत गाया है। गोपबालिकाएँ ताली बजाकर ताल दे रही हैं और उस ताल-लीलाके साथ-साथ जो अपनी भ्रूलताओंका विभ्रम विलास प्रदर्शित कर रहे हैं, वे देवकीनन्दन गोपाङ्गनाओंके गीतोंकी ओर ध्यान देकर स्वयं भी वेणु बजाते हुए गा रहे हैं। देवि! जो तुम्हारे प्रेमी हैं, उन परमसुन्दर नन्दराजकुमार देवकीनन्दनने मुकुट, माला, बाजूबंद, करधनी और कुण्डल आदि आभूषणोंसे विभूषित हो तुम्हारी प्रसन्नताके लिये वेणुगीत आरम्भ किया है। *जिन श्रीराधावल्लभने सत्यभामाके भवनमें स्वर्गीय पारिजात* उखाड़कर उनके आँगनमें लगा दिया है, गोपाङ्गनाओं और देवाङ्गनाओंके कामपूरक उन देवकीनन्दनने वेणुद्वारा गीत गाया है। जिन्होंने ऋक्षराजको जीतकर उनके यहाँसे स्यमन्तकमणि ले आकर भक्तभावकी भाँति भूमिनाथ उग्रसेनको अर्पित की थी, वे ही रासेश्वर देवकीनन्दन आज रासमण्डलमें पधारकर वेणुके स्वरमें गीत गा रहे हैं* ॥ ६—१३ ॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! वेणु बजानेवाले श्याम सुन्दरकी महिमाका वर्णन सुनकर प्रिया श्रीराधा प्रसन्न होकर उठीं और उन्होंने प्रियतमका गाढ आलिङ्गन किया। तत्पश्चात् वृन्दावनाधीश्वर गोविन्द वृन्दावनमें वृन्दावनवासिनी प्राणवल्लभाके साथ उस वनके वृक्षोंकी शोभा देखते हुए विहार करने लगे। नृपश्रेष्ठ! तदनन्तर व्रजकी युवतियोंने सब ओरसे श्रीकृष्णको उसी तरह आ पकड़ा, जैसे वर्षाकालमें

* कृष्णचन्द्र दूरं गतो निजमानात्त्वागतः सोऽपि राधे युगान्ते पुनः ।
नाशयन् सर्वदुःखानि ते सन्निधौ सङ्गतो वेणुना देवकीनन्दनः ॥
घुङ्घुरुध्वनिनादं मृदङ्गे कलं वाद्यमाने सुराङ्गनैः सेविते ।
रासरम्याङ्गणे नृत्यमानोऽत्र सङ्गतो वेणुना देवकीनन्दनः ॥
चारुचामीकराभासिवासा विशुद्धैर्जयन्तीभराभासितोरःस्थलः ।
नन्दवृन्दावने गोपिकामध्यगः सङ्गतो वेणुना देवकीनन्दनः ॥
चारुचन्द्रावलीलोचनाचुम्बितो गोपगोवृन्दगोपालिकावल्लभः ।
वल्लवीकामवह्निदावानलः सङ्गतो वेणुना देवकीनन्दनः ॥
बालिकातालिकातालहेलालयासङ्गसंदर्शितभ्रूलताविभ्रमः ।
गोपिकागीतदत्तावधानः स्वयं सङ्गतो वेणुना देवकीनन्दनः ॥
मालिकाङ्गदैः किङ्किणीकुण्डलैर्भूषितो नन्दनो नन्दराजस्य च ।
प्रेमिणस्ते सुसुन्दरवि प्रीतये तव सङ्गतो वेणुना देवकीनन्दनः ॥
पारिजातं समुद्धृत्य राधावरो रोपयामास भामागृहाङ्गे ।
वल्लवीवृन्दशाखाकामपूरकः सङ्गतो वेणुना देवकीनन्दनः ॥
ऋक्षराजं विनिर्जित्य येन्याः मणिं भक्तवद्भूमिनाथाय च ।
आसीदद्य सन्मण्डले रासेश्वरः सङ्गतो वेणुना देवकीनन्दनः ॥
(अध्याय ४६ । ६—१३)

राजेन्द्र ! फिर सुन्दर कदलीवनमें गोपीजनोंके साथ श्रीगोपीजनवल्लभने रास किया । नरेश्वर ! इस प्रकार रास मण्डलमें नित्यानन्दमय श्यामसुन्दरके साथ गोपियोंकी वह हेमन्त ऋतुकी रात एक क्षणके समान व्यतीत हो गयी ॥ ४८-४९ ॥

इस प्रकार रास करनेके पश्चात् नन्दनन्दन श्रीहरि नन्दभवनको चले गये । श्रीराधा वृषभानुपुरमें लौट गयीं तथा अन्यान्य गोपाङ्गनाएँ भी अपने-अपने घरको चली गयीं । नृपेश्वर ! व्रजके गोप श्रीहरिकी इस रासवार्ताको बिल्कुल नहीं जान सके । उन्हें अपनी अपनी स्त्रियाँ अपने पास ही सोती प्रतीत हुईं । राधा-माधवके इस परम उत्तम शृङ्गारचरित्रको जो लोग पढ़ते और सुनते हैं, वे अक्षय धाम गोलोकको प्राप्त होंगे ॥ ५०-५२ ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'रासक्रीडाकी पूर्ति' नामक छियालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४६ ॥

सैंतालीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णसहित यादवोंका व्रजवासियोंको आश्वासन देकर वहाँसे प्रस्थान

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजेन्द्र ! श्रीकृष्णका यह चरित्र शास्त्रोंमें गुप्तरूपसे वर्णित है, जिसे मैंने तुम्हारे सामने प्रस्तुत किया है । अब तुम भगवान्‌के अन्य चरित्रोंको विस्तारपूर्वक सुनो । इस प्रकार श्रीकृष्ण नन्दनगरमें आठ दिनोंतक रहकर सब लोगोंको आनन्द प्रदान करते रहे । इसके बाद पुनः उन्होंने वहाँसे जानेका विचार किया ॥ १-२ ॥

श्रीकृष्णकी माता यशोदा अपने प्राणोंसे भी प्यारे पुत्रको जानेके लिये उद्यत देख पहलेकी ही भाँति उच्चस्वरसे रोदन करने लगीं । नृपेश्वर ! वहाँ गोपियोंके भी नेत्र आँसुओंसे भर आये और वे घर घरमें पहलेके दुःखोंको याद करके करुण भावसे रोदन करने लगीं । सान्त्वना देनेमें कुशल श्रीहरिने जितनी व्रजाङ्गनाएँ थीं, उतने ही रूप धारण करके उन सबको पृथक्-पृथक् आश्वासन दिया तथा श्रीराधाको भी धीरज बँधाया । इसके बाद भगवान् माता यशोदासे बोले—"मैया ! शोक न करो । मैं इस उत्तम अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान पूरा करवाकर शीघ्र ही यहाँ आऊँगा । यदि तुम नहीं विश्वास करती हो तो मेरी यह बात सुन लो—'मैया ! आजसे तुम प्रतिदिन मुझे पुत्ररूपमें अपने पास ही देखोगी ।' मैं भक्तिभावसे स्मरण करनेपर कालके भयका भी नाश करनेवाला हूँ" ॥ ३-७ ॥

इस प्रकार यशोदाजीको आश्वासन देकर नेत्रोंमें आँसू भरे श्रीहरि नन्दसदनसे बाहर निकले और गोपोंके साथ अपने पौत्र अनिरुद्धकी सेनामें गये । नृपश्रेष्ठ ! अनिरुद्धकी सेनामें पहुँचकर साक्षात् नारायण श्रीहरिने यादवोंको घोड़ा छोड़नेके लिये आज्ञा दी । श्रीकृष्णचन्द्रसे प्रेरित होकर उनके पौत्र अनिरुद्धने बलपूर्वक अश्वका पूजन किया और पुनः पूर्ववत् विजययात्राके लिये उसे छोड़ दिया ॥ ८-१० ॥

अनिरुद्ध आदि सब यादव नेत्रोंमें आँसू भरे नन्दको नमस्कार करके बड़े कष्टसे वहाँसे जानेके लिये अपने अपने वाहनोंपर आरूढ़ हुए । श्रीकृष्णके पुत्र और पौत्र सबके आकार उन्हींके समान सुन्दर थे । श्रीकृष्णके साथ उन सब यादवोंको जानेके लिये उद्यत देख, गोविन्दके विरहसे व्याकुल हो, वे गोप गण वहाँ फूट फूटकर रोने लगे । पहलेके विरहजनित दुःखोंको याद करके उनके कण्ठ, ओठ और तालु सूख गये थे । नन्द राजके नेत्रोंमें भी आँसू छलक रहे थे । वे दुःखसे पीड़ित हो सूखे हुए मुँहसे कुछ बोल न सके, केवल रोदन करने लगे । श्रीकृष्ण भी आँसू बहाते हुए 'मैं फिर आऊँगा'—ऐसा कहकर सबसे पृथक्-पृथक् मिले और सबको आश्वासन दिया ॥ ११-१५ ॥

उन्होंने कहा—गोपालगण ! चैत्रमासमें जब द्वारका पुरीमें यज्ञ आरम्भ होगा, तब मैं तुम सबको बुलवाऊँगा, इसमें संशय नहीं है । मेरे मित्र गोपगण ! तुम सब लोग प्रतिदिन गोकुलमें मुझ गोपालको देखोगे । अतः अभी यहीं व्रजमण्डलमें निवास करो ॥ १६-१७ ॥

इस प्रकार आश्वासन दे, उनके दिये हुए उपहारको लेकर, नन्दजीको प्रणाम करके श्रीहरि पुत्र-पौत्रादिके साथ रथपर बैठकर, वहाँसे चल दिये । नन्द आदि दुःखी गोप श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमलोंमें लगे हुए मनको पुनः हटानेमें असमर्थ हो केवल शरीरसे गोकुलको लौटे । नरेश्वर ! उस दिनसे प्रेममग्न गोप और गोपियाँ यशोदादिके लिये भी परम दुर्लभ श्रीकृष्णको अपने समीप देखने लगे ॥ १८-२० ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'यादवोंका व्रजसे अन्यत्र गमन' नामक सैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४७ ॥

देखकर उन सबको तिनकेके समान समझते हुए कहा—'अहो ! किसने हमारे घोड़ेको बाँधा है ? किसके ऊपर आज यमराज प्रसन्न हुए हैं और कौन युद्धस्थलमें नाराचोंद्वारा बड़ी भारी पीड़ा प्राप्त करनेके लिये उत्सुक है ? अहो ! जिनके चरणोंमें देवता और दानव भी वन्दना करते हैं, जो पहले राजसूय यज्ञ कर चुके हैं, जिनकी समानता करनेवाला संसारमें दूसरा कोई नहीं है तथा जो नरेशोंके भी ईश्वर हैं, उन वृष्णिकुलतिलक चक्रवर्ती राजाधिराज उग्रसेनको क्या व राजा नहीं जानते, जो अपने ही विनाशके लिये घोड़ेको पकड़ रखे हैं ? हेमाङ्गद, इन्द्रनील, रङ्क, भीषण और रत्नल—इन समस्त नरेशोंको हमने संग्रामभूमिमें पराजित किया है' ॥ २३–३२ ॥

यादवोंकी यह बात सुनकर कौरवोंके अधर क्रोधसे फड़क उठे। वे यादवोंकी ओर टेढ़ी आँखोंसे देखते हुए उन्हें इस प्रकार उत्तर देने लगे ॥ ३३ ॥

कौरवोंके अनुगामी बोले—हमलोगोंने ही घोड़ेको पकड़ा है। तुमलोग हमारा क्या कर लोगे ? हम अपने सायकोंद्वारा तुम सब यादवोंको यमलोक पहुँचा देंगे। उग्रसेन कितने दिनोंसे श्रीकृष्णके हाथसे राज्य पाकर घमंड करने लगा है ? हम उसे बाँधकर स्वयं राज्य करेंगे। अनिरुद्ध हमारे भयसे कहाँ भाग गया है ? बताओ, हम युद्धमें अपने बाणोंद्वारा उसकी पूजा करेंगे, इसमें संशय नहीं है ॥ ३४–३६ ॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन् ! कौरवोंकी यह बात सुनकर यादव क्रोधसे मूर्च्छित हो उठे। उन्होंने कौरव सैनिकोंके मुखोंपर धनुषसे अनेक बाण फेंके। उन बाणोंसे कितने ही कौरवोंकी जीभें कट गयीं, कितनोंके दाँत टूट गये और कितनोंके मुख छिन्न-भिन्न हो गये। वे अधिक मात्रामें रक्तवमन करते हुए घायल हो अपना क्षत-विक्षत मुँह लिये शीघ्र ही दुर्योधनके पास गये और पूछनेपर बताया कि यादवोंने हमारी यह दुर्दशा की है ॥ ३७–३९ ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'कौरवोंद्वारा श्यामकर्ण अश्वका अपहरण' नामक अड़तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४८ ॥

उनचासवाँ अध्याय

यादवों और कौरवोंका घोर युद्ध

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन् ! भीष्म, द्रोण और कृप आदिके साथ दुर्योधनने अपने वीरोंके भग्न हुए मुखोंको देखकर क्रोधपूर्वक कहा—'आश्चर्यकी बात है कि नीच यादव स्वयं मौतके मुखमें चले आये। क्या वे नृप महाराज धृतराष्ट्रके महान् बलको नहीं जानते हैं ?' ॥ १-२ ॥

—ऐसा कहकर दुर्योधनने घोड़े, हाथी, रथ और पैदल योधोंसे युक्त अपनी चतुरङ्गिणी सेना युद्धमें यादवोंका सामना करनेके लिये भेजी। वह विशाल सेना दस अक्षौहिणियोंके द्वारा भूतलको कम्पित करती और शत्रुओंको डराती हुई वेगपूर्वक आगे बढ़ी। उस आती हुई सेनाको वीरोंसे विभूषित जाम्बवतीनन्दन साम्बने देखा और उत्साहसे अपनी सेनाको युद्धके लिये प्रेरणा दी ॥ ३– ॥

उधर समस्त कौरव अपनी रक्षाके लिये क्रौञ्चव्यूहका निर्माण करके उसीमें सब-के-सब खड़े हो गये। उसके मुख भागमें भीष्म खड़े हुए और ग्रीवाभागमें आचार्य द्रोण। दोनों पंखोंकी जगह कर्ण तथा शकुनि स्थित हुए और पुच्छ भागमें दुर्योधन। उस क्रौञ्चव्यूहके मध्यभागमें चतुरङ्ग सैनिकोंके साथ कौरवोंकी विशाल वाहिनी खड़ी हुई। यादवोंने जब शत्रुओंके लिये दुर्जय उस क्रौञ्चव्यूहका निर्माण हुआ देखा, तब वे युद्धसे शङ्कित हो उस क्रौञ्चव्यूहपर दृष्टि रखते हुए साम्बसे बोले—'तुम भी यत्नपूर्वक व्यूह बना लो।' साम्ब युद्धकी कलामें बड़े निपुण थे। उन्होंने अपने सैनिकोंकी व्यूह-रचनाविषयक बात सुनकर भी कौरवोंको कुछ न गिनते हुए रणक्षेत्रमें व्यूहका निर्माण नहीं किया ॥ ६–१० ॥

नरेश्वर ! जब दोनों ओरकी सेनाएँ युद्ध करनेके लिये आगे बढ़ीं, तब दो घड़ीतक सारी पृथ्वी बार-बार काँपती रही। दोनों सेनाओंमें तरह-तरहके रणभेरियाँ बज उठीं और शङ्खनाद होने लगा। सब ओर जगह-जगह धनुषोंकी टंकारें सुनायी देने लगीं। वहाँ हाथी चिग्घाड़ने और घोड़े हिनहिनाते थे। शूरवीर सिंहनाद करते और रथोंके नेमियाँ (पहिये) घर्घरनाद उत्पन्न करती थीं। सैनिकोंकी धूलिसे युद्धभूमिमें अन्धकार छा गया। आकाश मलिन हो गया और

किया। संग्रामभूमिमें उन दोनोंके बाण परस्पर रगड़ उठे और चिनगारियाँ बरसाते हुए अलातचक्रकी भाँति आकाशमें घूमने लगे। पृथ्वीनाथ! तब युयुधानने क्रोध करके कर्णके कवचपर कामभयुक्त तीखे बाण मारे। राजन्! वे बाण कर्णके कवचपर न लगकर उसी तरह पृथ्वीपर गिर गये, जैसे पापी स्वर्गमें न जाकर नरकमें ही गिरते हैं। युयुधान बड़े विस्मयमें पड़ गये और कर्णने हँसकर युद्धस्थलमें नाना प्रकारके शस्त्रोंसे योजित बाणोंद्वारा उन्हें रथहीन कर दिया। यह देख बलीने युद्धस्थलमें दुःशासनको मूर्च्छित करके अग्नितुल्य तेजस्वी रथके द्वारा कर्णपर आक्रमण किया। भास्करनन्दन कर्णने बलीको आया देख पवनास्त्रयुक्त बाणसे उन्हें रथसहित दूर फेंक दिया। बली एक योजन दूर जा गिरे। इतनेमें ही साम्ब शापपूर्वक कौरवोंको मारते और बाणोंद्वारा अन्धकार प्रकट करते हुए फिर वहाँ आ पहुँचे॥ ४५—५१॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'यादवों और कौरवोंके संग्रामका वर्णन' नामक उनचासवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४९॥

पचासवाँ अध्याय

कौरवोंकी पराजय और उनका भगवान् श्रीकृष्णसे मिलकर भेंटसहित अश्वको लौटा देना

श्रीगर्गजी कहते हैं—नृपेश्वर! उसी समय भोज, वृष्णि और अन्धक आदि समस्त यादव तथा मथुरा और शूरसेन प्रदेशके महासामन्तकवच एवं बलवान् योद्धा यमुनाजीको पार करके पैरोंकी धूलिसे आकाशको श्याम और पृथ्वीको कम्पित करते हुए वहाँ आ पहुँचे। घोड़ेको सब ओर देखते और खोजते हुए महाबलवान् श्रीकृष्ण आदि और अनिरुद्ध आदि महावीर भी आ गये। वृष्णिवंशियोंने दूरसे ही वहाँ युद्धका भयंकर महाघोष, कोदण्डोंकी टंकार, शतघ्नियोंकी गूँजती हुई आवाज, शूरोंकी सिंहगर्जना, शस्त्रोंके परस्पर टकरानेके चट चट शब्द, कोलाहल और हाहाकार सुना। सुनकर वे बड़े ही विस्मित हुए। जब उन्हें मालूम हुआ कि यादवोंका कौरवोंके साथ घोर युद्ध छिड़ गया है तो अनिष्टकी शङ्का मनमें लिये अनिरुद्ध और श्रीकृष्ण आदि यदुकुलशिरोमणि महापुरुष बड़े वेगसे वहाँ आये। नरेश्वर! 'अनिरुद्ध आदिके साथ हमारी सहायता करनेके लिये सेनासहित श्रीकृष्ण आ पहुँचे हैं', यह देखकर साम्ब आदिने उनको प्रणाम किया। श्रीकृष्णके पधारनेपर रणभेरियाँ बजने लगीं, शङ्ख और गोमुखोंके शब्द गूँज उठे, आकाशमें स्थित देवता फूलोंकी वर्षा तथा भूतलपर विद्यमान यादव जय-जयकार करने लगे। 'समराङ्गणमें सौ अक्षौहिणी सेनाके साथ भूतलको कम्पित करते हुए महाबली अनिरुद्ध आ पहुँचे हैं'—यह देख कौरव-योद्धा भयसे भागने लगे। प्रलयकालके समुद्रकी भाँति उमड़ती हुई अन्धकवंशियोंकी उस विशाल वाहिनीको देखकर कौरवलोग डरके मारे भाग गये। पुरभरमें अमङ्गल छा गया। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और स्त्रीसमुदाय दुर्योधनको कोसते और गाली देते हुए घरसे निकल गये तथा रोदन करने लगे॥ १—११॥

तदनन्तर मूर्छा छोड़कर दुःशासनका बड़ा भाई दुर्योधन तत्काल सोकर उठे हुएके समान जाग उठा। उस समय यादव-सेनापर उसकी दृष्टि पड़ी। यादवोंकी यह विशाल सेना देखते ही दुर्योधन आशङ्कित हो गया और डरके मारे पैदल ही अपने नगरमें चला गया। कर्ण, भीष्म, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, भूरि और दुर्योधन आदिने सभाभवनमें जाकर धृतराष्ट्रको नमस्कार करके सारा हाल कह सुनाया। अपने पक्षकी पराजय, यादवोंकी विजय तथा श्रीकृष्णका शुभागमन सुनकर राजाने विदुरसे पूछा॥ १२—१५॥

धृतराष्ट्र बोले—वीर! सौ अक्षौहिणी सेना लेकर क्रोधसे भरे हुए वासुदेव श्रीकृष्ण यहाँ चढ़ आये हैं। ऐसी दशामें हमलोग क्या करें? यह बताओ॥ १६॥

महाराज धृतराष्ट्रकी यह बात सुनकर विदुर ठहाका मारकर हँस पड़े और बोले॥ १६½॥

विदुरने कहा—महाराज! पहले तो अकेले बलरामजी ही कुपित होकर आये थे, जिन्होंने हस्तिनापुरीको हलसे खींचकर गङ्गाकी ओर झुका दिया, अब उन्हींके भाई आ पहुँचे हैं, जिन्होंने देवकीके हृदयरूपी कोशसे अवतार ग्रहण किया है। वे श्रीकृष्ण साक्षात् श्रीहरि हैं। राजन्! जिन्होंने युद्धमें कंस और शकुनि आदि बहुत-से दैत्योंको मार गिराया तथा अनेकानेक नरेशोंको परास्त करके ... किया है। इसलिये महाराज! भेंट, हमारे

आपके इन चरणोंके लिये मेरी यह अञ्जलि जुड़ी हुई है[१] ॥ ३८ ॥

विदुरने कहा—जो लोग छोटे बालककी भाँति ब्रह्मका परिपालन करते हैं, अर्थात् जैसे माता पिता बच्चेकी सदा देखभाल रखते हैं, उसी तरह जो निरन्तर ब्रह्म चिन्तनमें लगे रहते हैं, उनके शुभाशुभ कर्म वैसे ही हैं, जैसे बेचनेवालोंकी वस्तुएँ। तात्पर्य यह है कि जैसे बिकी हुई वस्तुपर विक्रेताका स्वत्व नहीं होता, उसी प्रकार अपने द्वारा किये गये शुभाशुभ कर्मपर ब्रह्मनिष्ठ पुरुष अहंता ममताका भाव नहीं रखते हैं। (अतः उनके वे कर्म बन्धनकारक नहीं होते हैं।) ब्रह्म कैसा है ? इसके उत्तरमें इतना ही कहा जा सकता है कि वह दैत्य, देवता और मुनियोंके लिये मनसे भी अगम्य है। वेद 'नेति-नेति' कहकर उसका वर्णन करता है, किंतु उसको जान नहीं पाता। (प्रभो ! वह ब्रह्म आप ही हैं)[२] ॥ ३९ ॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन् ! शरणमें आये हुए कौरवोंके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर भगवान् श्रीकृष्ण प्रसन्न हो मेघके समान गम्भीर वाणीमें उनसे बोले ॥ ४० ॥

श्रीकृष्णने कहा—आर्यपुरुषो ! मेरी बात सुनिये। मैं नारदजीसे प्रेरित होकर यहाँ युद्ध रोकनेके लिये ही आया हूँ। मेरे पुत्र निरङ्कुश (स्वच्छन्द) हो गये हैं, अतः मेरी आज्ञा नहीं मानते हैं। ये बड़े-बड़े लोगोंका अपराध कर बैठते हैं, जो बड़ा भारी दोष है। आपलोग धन्य और माननीय हैं कि हमसे मिलनेके लिये आये हैं। मेरे पुत्रोंने जो कुछ किया है, वह सब आपलोग क्षमा कर दें। वीरो ! उग्रसेनका घोड़ा आपलोग कृपापूर्वक छोड़ दें और इसकी रक्षा करनेके लिये आपलोग भी चलें, अवश्य चलें। यादव और कौरव तो मित्र हैं। पहलेसे चले आते हुए प्रेम सम्बन्धको दृष्टिमें रखकर इन्हें आपसमें कलह नहीं करना चाहिये ॥ ४१–४५ ॥

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने जब मीठे वचनोंद्वारा संतोष प्रदान किया, तब कौरवोंने बड़ी प्रसन्नताके साथ बहुमूल्य भेंट-सामग्रीसहित अश्वको लौटा दिया। राजन् ! घोड़ा लौटाकर अन्य सब कौरव तो मन-ही-मन खेदका अनुभव करते हुए अपने नगरमें चले गये, परंतु भीष्मजीने यादव सेनाके साथ अश्वकी रक्षाके लिये जानेका विचार किया ॥ ४६-४७ ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'हस्तिनापुर विजय' नामक पचासवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५० ॥

इक्यावनवाँ अध्याय

यादवोंका द्वैतवनमें राजा युधिष्ठिरसे मिलकर घोड़ेके पीछे-पीछे अन्यान्य देशोंमें जाना तथा अश्वका कौन्तलपुरमें प्रवेश

श्रीगर्गजी कहते हैं—नृपेश्वर ! तत्पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण यादवोंकी रक्षा करके सबसे मिल-जुलकर रथके द्वारा कुशस्थलीपुरीको चल दिये। उनके चले जानेपर अनिरुद्धने अश्वका यत्नपूर्वक पूजन किया और विजययात्राके लिये पुनः उसे बन्धनमुक्त कर दिया। छूटनेपर वह घोड़ा अनेकानेक देशोंको देखता हुआ तीव्र गतिसे आगे बढ़ा। राजेन्द्र ! उसके पीछे वृष्णिवंशी यादव भी वेगपूर्वक चले। दुर्योधनकी पराजय सुनकर दूसरे-दूसरे भूपाल महात्मा श्रीकृष्णके भयसे अपने राज्यमें आनेपर भी उस घोड़ेको पकड़ न सके ॥ १–४ ॥

तदनन्तर यज्ञका वह घोड़ा इधर उधर देखता-सुनता हुआ द्वैतवनमें जा पहुँचा, जहाँ राजा युधिष्ठिर भार्या और पुत्रोंके साथ वनवास करते थे। उस द्वैतवनमें भीमसेन प्रतिदिन हाथियोंके समुदायोंके साथ उसी तरह क्रीड़ा करते थे, जैसे बालक खिलौनोंसे खेलता है। उन्होंने वहाँ उस घोड़ेको देखा। वह वन बड़ा ही विख्यात और घना था। बरगद, पीपल, बेल, खजूर, कटहल, मौलसिरी, छितवन, तिंदुक, तिलक, साल, ताल, तमाल, बेर, लोध, पाटल, बबूल, सेमर, बाँस और पलाश आदि वृक्षोंसे भरा था।

१ भीष्म उवाच—

युगाभ्यामपि जानुभ्यां मौलिना भालेन निवेदिताभ्याम्। आनामरंहकोमलाभ्यां चाभ्यां पदाभ्यां मम अञ्जलिर्मे ॥ ३८ ॥

२ विदुर उवाच—

यातेऽर्भकवत्कृता ब्रह्माणि तानि ये ब्रह्म बालमिव तत्परिपालयन्ति। यद्दैत्यदेवमुनिभिर्मनसाप्यगम्यं नेतीति नेति च वदन्ति वेदाः ॥ ३९ ॥

राजन् ! बहुत-से ग्रामों तथा देशोंको लाँघकर वह अश्वराज इच्छानुसार विचरता हुआ कौन्तलपुरमें गया। महाराज ! उस नगरमें 'चन्द्रहास' नामक वैष्णव राजा राज्य करता था, जो केरल देशके राजाका पुत्र था और कुलिन्दने उसका पालन किया था। वह भगवान् श्रीकृष्णके प्रसादसे वहाँ राज्य करता था। राजन् ! भक्त चन्द्रहासकी कथा 'जैमिनी महाभारत'में वर्णित है। नारदजीने अर्जुनके सामने चन्द्रहासके जीवनवृत्तका विस्तारपूर्वक वर्णन किया था। उस कौन्तलपुरमें सब लोग श्रीकृष्णके भक्त होकर रहते हैं। वे सब-के-सब ब्राह्मणभक्त, पुण्यपरायण, परस्त्रीसे पराङ्मुख, अपनी ही पत्नीमें अनुराग रखनेवाले तथा सदा श्रीकृष्णकी समाराधनामें संलग्न रहनेवाले थे। वे गोविन्दकी गाथाएँ और पुराण-कथा सुनते तथा बड़े आनन्दसे श्रीराधा और माधवके नाम जपते थे। वहाँके द्विज दो ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक धारण करते, तुलसीकी मालाएँ पहनते और गोपीचन्दन, केसर तथा हरिचन्दनसे चर्चित रहते थे। वे सब ललाटमें श्याम बिन्दु धारण करते। उनमेंसे कोई ही-कोई ऐसे थे, जो श्रीतिलक लगाते थे। वहाँके सभी वैष्णव बारह तिलक और आठ मुद्राएँ धारण करते थे। ब्राह्मण आदि वर्णोंके गृहस्थलोग प्रतिदिन प्रातःकाल गोपीचन्दनसे युक्त शीतल मुद्रा धारण करते थे। कोई-कोई विरक्त और संन्यासी साधु अग्नि-संस्कारके लिये तप्तमुद्रा धारण करते थे। उस नगरमें इधर-उधर देखता हुआ वह घोड़ा राजभवनमें जा पहुँचा, जहाँ राजा चन्द्रहास चन्द्रमाके समान शोभा पाता था ॥ ४०–५० ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'अश्वका कौन्तलपुरमें गमन' नामक
इक्यावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५१ ॥

बावनवाँ अध्याय

श्यामकर्ण अश्वका कौन्तलपुरमें जाना और भक्तराज चन्द्रहासका बहुत-सी भेंट-सामग्रीके साथ अश्वको अनिरुद्धकी सेवामें अर्पित करना और वहाँसे उन सबका प्रस्थान

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन् ! वहाँ आये हुए घोड़ेको देखकर प्रसन्नचित्त श्रीकृष्णभक्त राजा चन्द्रहासने उसे तत्काल पकड़ लिया और प्रसन्नतापूर्वक उसके भालपत्रको पढ़ा। नरेश्वर ! उस पत्रको पढ़कर उस महाभागवत नरेशने कहा—'अहो ! बड़े सौभाग्यकी बात है कि मैं आज भगवान् श्रीकृष्णके पौत्रको अपने नेत्रोंसे देखूँगा। पता नहीं, पूर्वकालमें मेरेद्वारा कौन-सा ऐसा पुण्य बन गया है, जिससे मुझे श्रीकृष्णपौत्र यदुकुलतिलक अनिरुद्धके दर्शनका अवसर मिल रहा है। मैंने आजतक मायासे मानव-शरीर धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन नहीं किया है। इसलिये मैं प्रद्युम्नकुमारके साथ द्वारका जाऊँगा और वहाँ श्रीकृष्ण, बलराम, प्रद्युम्न तथा उन महाराज उग्रसेनका भी दर्शन करूँगा, जो भगवान् श्रीकृष्णसे भी पूजित हैं' ॥ १–४½ ॥

—ऐसा कहकर राजा चन्द्रहास गन्ध, पुष्प, अक्षत आदि उपचार, दिव्य वस्त्र, दिव्य रथ और उस घोड़ेको भी साथ लेकर माला-तिलकसे सुशोभित समस्त पुरजनोंसहित अनिरुद्धका दर्शन करनेके लिये नगरसे बाहर निकला। गीत और बाजोंकी मङ्गलमयी ध्वनिके साथ राजा पैदल ही चला ॥ ५–७ ॥

नरेश्वर ! नागरिकोंसहित राजाको आया देख अनिरुद्धको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे मन्त्री उद्धवजीसे पूछने लगे ॥ ८ ॥

अनिरुद्धने कहा—महामन्त्रिन् ! यह कौन राजा है, जो समस्त पुरवासियोंके साथ हमसे मिलनेके लिये आया है ! आप इसका वृत्तान्त हमें बतावें ॥ ९ ॥

उद्धव बोले—प्रद्युम्नकुमार ! यह केरलके राजाका पुत्र 'चन्द्रहास' नामक नरेश है। इसके माता-पिता बचपनमें ही परलोकवासी हो गये। अतः कुलिन्दने इसका पालन किया है। यह बाल्यावस्थासे ही भगवान् श्रीकृष्णका भक्त है और उन्होंने ही इसकी रक्षा की है। दुष्टबुद्धिवाले मन्त्रीकी पुत्रीके साथ इसने विवाह किया है। कुन्तल-देशके राजा इसे अपना राज्य देकर वनमें चले गये थे। उस राजाका वृत्तान्त मैंने द्वारकामें श्रीकृष्णके ही मुखसे सुना था। उसे दर्शन देनेके लिये भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं यहाँ आयेंगे ॥ १०–१२½ ॥

उद्धवकी यह बात सुनकर यादवकुमार अनिरुद्ध हर्षित हो गये। समस्त पुरवासियोंसे घिरे हुए राजा चन्द्रहासने अनिरुद्धके निकट आकर श्यामकर्ण घोड़ा दिया और प्रसन्नतापूर्वक बहुत धन-राशि भी भेंट की। तत्पश्चात्

नन्दबाबाका श्रीकृष्णको हृदयसे लगाना [भा० १० पू० ४०

माता यशोदाके चरणोंमें शीश नवाते हुए श्रीकृष्ण [पृ० ४०

समस्त राजाओं तथा पुत्र-पौत्रोंके साथ एकमात्र गतिरूप कुशस्थलीपुरीमें गये। उस समय आकाशसे उनके ऊपर फूलों और मन्दारोंकी वर्षा होने लगी तथा हाथियोंपर बैठी हुई कुमारियोंने खीलों और मोतियोंकी वृष्टि की। वे सब लोग नृत्य, वाद्य, गीत और वेदमन्त्रोंके घोषसे सुशोभित हो, जिसकी सड़कोंपर छिड़काव किया गया था, उस द्वारकापुरीकी शोभा निहारते हुए पिण्डारकक्षेत्रमें गये। सब राजा यादवोंके उस देवदुर्लभ वैभवको देखकर आश्चर्यचकित हो अपने-अपने वैभवकी निन्दा करने लगे। उन्होंने यज्ञस्थलको भी देखा, जो घीकी सुगन्धसे भरे धूमजाल तथा ब्राह्मणोंके मन्त्रघोषसे व्याप्त था। फिर वहाँ अखिण्ड-व्रतधारी यदुकुलतिलक महाराज उग्रसेनको भी उन्होंने देखा, जो देवराज इन्द्रके समान तेजस्वी, जितेन्द्रिय, हृष्ट-पुष्ट और दीप्तिमान् थे। वे कुशासनपर बैठे बड़े सुन्दर लग रहे थे। उन्होंने नियम-निर्वाहके लिये आभूषण उतार दिये थे। हाथमें मृगका शृंग ले रखा था और अपनी रानीके साथ मृगछालापर ही वे विराजमान थे, जो उक्त कुशासनके ऊपर बिछा था। महाराज उग्रसेन घृत, गन्ध और अक्षत आदिसे यज्ञमण्डपमें अग्निकी पूजा कर रहे थे। उनके साथ ऋषि-मुनि बैठे थे और उनके नेत्र धुआँ लगनेके कारण लाल हो गये थे ॥ २२-२९ ॥

अनिरुद्ध आदि यादवोंने वाहनोंसे उतरकर यज्ञ-सम्बन्धी अश्वको आगे करके बड़ी प्रसन्नताके साथ महाराजको पृथक्-पृथक् प्रणाम किया। इसके बाद यादवराज श्रीउग्रसेनने उन समस्त नरेशों और यादवोंका अपनी शक्तिके अनुसार यथायोग्य सम्मान किया। तत्पश्चात् अनिरुद्धने धीमतापूर्वक नमस्कार करके, दोनों हाथ जोड़कर सबके सुनते हुए उन जम्बूद्वीपके स्वामी महाराज उग्रसेनसे कहा ॥ ३०-३२ ॥

अनिरुद्ध बोले—महाराज! इनकी ओर देखिये। ये नरपतियोंमें श्रेष्ठ राजा इन्द्रनील बड़े प्रेमसे आपके चरणोंमें पड़े हैं। आप देवताकी भाँति इन्हें उठाइये। हेमाङ्गद, अनुशाल्व, किन्तु, श्रीचन्द्रहास तथा ये देवव्रत भीष्मजी भी आपके समीप आये हैं। आप इनपर दृष्टिपात कीजिये। ये मेरे रक्षक जाम्बवतीनन्दन साम्ब पधारे हैं। इनकी ओर देखिये। श्रीबलदेवने इनको और मुझको भी मार डाला था, किंतु परमात्मा श्रीकृष्णने हमें जीवन-दान दिया। इसी तरह रुद्रद्वारा मारे गये और श्रीकृष्ण-कृपासे जीवित हुए इन सुनन्दनपर भी दृष्टिपात कीजिये और अन्य समस्त यादवोंको भी देखिये, जो श्रीकृष्ण-कृपासे ही यहाँ लौटकर आये हैं। निर्विघ्न लौटे हुए इस यज्ञके घोड़ेको ग्रहण कीजिये तथा आपने युद्धके लिये जो तलवार दी थी, उसको भी ले लीजिये। आपको नमस्कार है ॥ ३३-३७ ॥

अनिरुद्धका यह वचन सुनकर यादवराज उग्रसेन बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने उनकी प्रशंसा करके अन्यान्य नरेशोंको भी यथायोग्य आशीर्वाद दिया। फिर समस्त नरेशोंका पूजन करके वे देवव्रत भीष्मसे बोले—'भीष्मजी! आइये और मेरे साथ हृदयसे हृदय लगाकर मिलिये।' यों कहकर यदुकुलतिलक उग्रसेनने उठकर उनका गाढ़ आलिङ्गन किया। इसके बाद दान-मानसे सम्मानित हुए वे राजा तथा यादव बड़ी प्रसन्नताके साथ द्वारकापुरीके विभिन्न महलोंमें निवास करने लगे ॥ ३८-४०½ ॥

नरेश्वर! तदनन्तर अनिरुद्धको साम्ब आदिके साथ आया देख देवकी, रोहिणी, रुक्मिणी तथा जाम्बवती आदि पूजनीया स्त्रियोंने उन्हें हृदयसे लगाकर बड़े हर्षका अनुभव किया। राजन्! सुरूपा, रोचना और ऊषा—इन सबको भी बड़ी प्रसन्नता हुई। साम्बकी प्रशंसा सुनकर दुर्योधनकी पुत्री लक्ष्मणा नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहाती हुई अत्यन्त हर्षका अनुभव करने लगी। नृपश्रेष्ठ! सेना सहित अनिरुद्धके लौट आनेसे द्वारकाके घर-घरमें महान् उत्सव मनाया जाने लगा ॥ ४१-४४ ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें अश्वमेधखण्डके अन्तर्गत 'अनिरुद्धका द्वारकामें आगमन' नामक चौवनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५४ ॥

पचपनवाँ अध्याय

व्यासजीका मुनि-दम्पति तथा राज-दम्पतियोंको गामतीका जल लानेके लिये आदेश देना, नारदजीका मोह और भगवान्द्वारा उस मोहका भञ्जन, श्रीकृष्णकी कृपासे रानियोंका कलशमें जल भरकर लाना

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! तत्पश्चात् आठ द्वारोंसे युक्त, फहराती हुई पताकाओंसे सुशोभित, अग्निकुण्डोंसे सम्पन्न और आठ याज्ञिकोंसे युक्त रमणीय यज्ञमण्डपमें, जहाँ पलाश, बेल तथा खदिरके यूप शोभा दे रहे थे, अनेकानेक वेदिकाओं तथा चषालों (यज्ञस्तम्भोंके ऊपर लगे हुए काष्ठमय वलयों) से जो विभूषित था तथा जिसमें स्रुवा, मृगचर्म, कुश, मूसल और उलूखल आदि वस्तुएँ सञ्चित थीं और इनके अतिरिक्त भी जहाँ बहुत-सी सामग्रियों और नाना प्रकारकी वस्तुओंका समूह किया गया था, राजर्षि उग्रसेन वेदोंके पारगत महर्षियों तथा यादवोंके साथ वैसी ही शोभा पा रहे थे, जैसे अमरावतीपुरीमें देवराज इन्द्र देवताओंके साथ सुशोभित होते हैं ॥ १–४ ॥

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके आमन्त्रणपर नन्द आदि गोप, वृषभानुवर आदि श्रेष्ठ पुरुष तथा श्रीदामा आदि ग्वाल-बाल द्वारकापुरीमें आये। यशोदा, राधिका तथा अन्य सब व्रजाङ्गनाएँ शिबिकाओं और रथोंपर आरूढ़ हो प्रसन्नतापूर्वक कुशस्थलीमें आयीं। बुलावा जानेपर अपने पुत्रों और कौरवोंके साथ राजा धृतराष्ट्र भी वहाँ आये। अन्यान्य नरेश भी निमन्त्रण पाकर कुशस्थलीमें पधारे। श्रीकृष्णसे आमन्त्रित हो युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल तथा सहदेव अपनी पत्नी द्रौपदीके साथ वनसे वहाँ आये। श्रीकृष्णने नारदजीको भेजकर इन्द्र आदि आठ दिक्पालों, आठ वसुओं, बारह आदित्यों, चारों सनत्कुमारों, ग्यारह रुद्रों, मरुद्गणों, वेतालों, गन्धर्वों, किन्नरों, विश्वेदेवों, समस्त साध्यगणों, विद्याधरों, देवताओं, देवपत्नियों, गन्धर्वियों और अप्सराओंको बुलवाया ॥ ५–११ ॥

राजन्! वे सब लोग श्रीकृष्णदर्शनकी अभिलाषासे द्वारकामें पधारे। कैलाससे भगवती पार्वतीके साथ भगवान् शिव भी बुलाये गये। सुतललोकसे दैत्य-समुदायके साथ प्रह्लाद और बलि आये। विभीषण, मौयग, मय और वल्वलक भी वहाँ आगमन हुआ। रघुनाथजी भगवान्‌के साथ जाम्बवान्, वानरों, धन, हनुमान, यक्षियोंके साथ पक्षिराज गरुड़ तथा सर्पोंके साथ नागराज वासुकि भी वहाँ पधारे। महाराज! धेनुओंके साथ धेनुरूपधारिणी धरा देवी भी उपस्थित हुई। पर्वतोंके साथ मेरु और हिमालय, वृक्षोंके साथ बरगद, रत्नयुक्त रत्नाकर (समुद्र), नदियोंके साथ स्वर्धुनी (गङ्गा), समस्त तीर्थोंके साथ तीर्थराज प्रयाग और पुष्कर—ये सब आमन्त्रित होकर बड़ी प्रसन्नताके साथ उस यज्ञमें आये। फिर श्रीकृष्णके आवाहनपर यज्ञभूमि भी वहाँ आ गयी ॥ १२–१७ ॥

श्रीकृष्णका यज्ञोत्सव देखनेके लिये यमराजकी बहिन यमुनाजी भी आयीं ॥ १७½ ॥

उन सबको आया देख राजा उग्रसेनने बड़ी प्रसन्नताके साथ उन्हें यथायोग्य स्थानोंमें ठहराया। किन्हींको शिविरोंमें, किन्हींको मन्दिरोंमें, किन्हींको विमानोंमें और किन्हींको उपवनोंमें आवासस्थान दिया गया। उस यज्ञमें मैंने वेदव्यासजीको आचार्य बनाया और यज्ञवल्क्यको ब्रह्मा तथा पहले जिन लोगोंको निमन्त्रित किया गया था, वे दिव्य ऋषि-महर्षि ऋत्विज बनाये गये। नरेश्वर! इसके बाद यज्ञमें श्रीकृष्णकी इच्छासे अनिरुद्ध, प्रद्युम्न, चन्द्रमा और अपना भी पृथक्-पृथक् रूप धारण करके तीन रूपोंमें सुशोभित हुए। प्रद्युम्नकुमारकी यह लीला देखकर देवता, यादव और भूपगण आश्चर्यचकित हो परस्पर एक-दूसरेके कानमें इसी बातकी चर्चा करने लगे ॥ १८–२१½ ॥

व्यासजीने राजासे कहा—यादवश्रेष्ठ! मेरी बात सुनो। यहाँ जो राजा और ब्राह्मण यथायोग्य स्थानपर अलग-अलग बैठे हैं, इनमेंसे चौसठ दम्पति गामतीके तटपर मेरे आदेशके अनुसार यथोचित जल लानेके लिये जायँ। अदितिके साथ कश्यप, अरुन्धतीके साथ वसिष्ठ, कृपीके साथ द्रोणाचार्य, अनुसूयाके साथ अत्रि, रुक्मिणीके साथ श्रीकृष्णचन्द्र, रेवतीके साथ बलराम, मायावतीके साथ प्रद्युम्न, उषाके साथ अनिरुद्ध, सुभद्राके साथ अर्जुन, लक्ष्मणाके साथ साम्ब और अपनी-अपनी भार्याओंके साथ देवाङ्गद आदि राजा भी जायँ ॥ २२–३३½ ॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार व्यासजीके कहनेसे वे सपत्नीक ब्राह्मण और राजा कलश बाँधकर गोमतीका जल लानेके लिये गये। देवकी, रोहिणी, कुन्ती, गान्धारी और यशोदाको आगे करके रुक्मिणीसहित श्रीकृष्णने कलश उठाया। इसी प्रकार रेवतीके साथ बलराम तथा जो भी सपत्नीक भूपाल थे—उन सबने फूल और पल्लवोंसहित सोने चाँदीके कलश लेकर गोमती-तटको प्रस्थान किया। उस भीड़में रुक्मिणीके साथ श्रीकृष्णको जाते देख नारदजी झगड़ा लगानेके लिये सत्यभामाके भवनमें गये। भगवान्‌की उस भार्याको घरमें अकेली देख उसके द्वारा आगमनका कारण पूछे जानेपर वे बोले॥ २७–३१॥

नारदजीने कहा—सत्राजितनन्दिनी! मैं देखता हूँ, इस घरमें तुम्हारा कोई आदर नहीं है। श्रीकृष्ण रुक्मिणीके साथ गोमतीका जल लानेके लिये गये हैं। बहुत-से लोग तुम्हारे पास याचना करने आते हैं। तुम स्वर्गसे पारिजात वृक्ष अपने यहाँ लानेमें सफल हुई हो। श्रीकृष्णके संकल्पको सिद्ध करनेवाली, स्यमन्तक मणिसे मण्डित तथा मानिनी हो। ऐसी तुम परमसुन्दरीको, जो गरुड़पर यात्रा कर चुकी है, छोड़कर श्रीकृष्ण रुक्मिणीके साथ शोभा देखनेके लिये चले गये। भामिनि! भामिनि! जिसके पुत्र प्रद्युम्न हैं और जिसके पौत्र अनिरुद्ध हैं, वह रुक्मिणी अपनी बात, मान और गौरवका सर्वोपरि प्रदर्शन करती है॥ ३२–३५॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—महाराज! 'मेरे प्राणनाथ रुक्मिणीके साथ गये हैं'—यह बात सुनकर सत्यभामाको बड़ा रोष हुआ। वे दुःखी होकर रोने लगीं। इसी समय नारदजीकी चेष्टा जानकर भगवान् श्रीकृष्ण एक रूपसे तत्काल सत्यभामाके भवनमें चले आये। उन सर्वेश्वरने वहाँ आते ही यह बात कही—'प्रिये! मैं उस समाज (जुलूस) में रुक्मिणीके साथ नहीं गया। भोजन करनेके लिये आ गया हूँ। केवल भाभीजीके साथ भैया बलरामजी गये हैं'॥ ३६–३९॥

उनकी यह बात सुनकर सत्यभामा प्रसन्न हो गयीं और नारदजी भयभीत होकर उठे तथा दूसरे भवनमें चले गये। जाम्बवतीके घरमें जाकर उसके आगे सारा समाचार कहा। सुनकर वह हँसने लगी और बोली—'मुनिजी महाराज! झूठ मत बोलिये, श्रीनाथजी तो भोजन करके घरमें सो रहे हैं।' यह सुनकर डरे हुए नारदजी तुरंत वहाँसे निकलकर मित्रविन्दाके घरमें जा पहुँचे और चारों ओर देखते हुए बोले॥ ४०–४२½॥

नारदजीने कहा—भैया! जहाँ राजा और रानियोंका समाज जुटा है, वहाँ नहीं गयीं क्या? घरमें क्यों बैठी हो? वहाँ रमावल्लभ श्रीकृष्ण गोमतीका जल लानेके लिये जा रहे हैं। वे अपने साथ रुक्मिणी, सत्यभामा तथा जाम्बवतीको भी ले जायँगे॥ ४३-४४॥

मित्रविन्दा बोली—देवर्षिजी! केशवको तो सभी प्यारी हैं। वे जिसको भी छोड़कर चले जायँगे, वही जीवित नहीं रह सकेगी। उधर घरमें देखिये, श्रीकृष्ण अपने पौत्रको लाड़ लड़ा रहे हैं॥ ४५॥

तब मुनि उठकर श्रीकृष्णपत्नियोंके सभी घरोंमें चक्कर लगाते रहे, परंतु उन सबने उन्हें श्रीकृष्णकी उपस्थिति जान पड़ी। फिर सोच विचारकर देवर्षि श्रीराधाको यह समाचार देनेके लिये गोपाङ्गनाओंके महलोंमें गये। परंतु वहाँ श्रीराधा तथा गोपियोंके साथ नन्दनन्दन चौसर खेलते दिखायी दिये। उन्हें देखकर देवर्षिने ज्यों ही वहाँसे खिसक जानेका विचार किया, त्यों ही श्रीकृष्णने तुरंत उन्हें हाथसे पकड़ लिया और वहीं बैठाया। फिर विधिवत् उनकी पूजा करके वे बोले॥ ४६–४९॥

श्रीकृष्ण बोले—विप्रवर! तुम यह क्या कर रहे हो? व्यर्थ ही मोहित होकर इधर-उधर घूम रहे हो। मैंने अपनी पत्नियोंके घर घरमें तुम्हें देखा है। मुनिश्रेष्ठ! तुम्हारे ही डरसे मैंने अनेक रूप धारण किये हैं। तुम ब्राह्मण हो, इसलिये तुम्हें दण्ड तो नहीं दूँगा, परंतु प्रार्थना अवश्य करूँगा। मैं सबका देवता हूँ और ब्राह्मण मेरे देवता हैं। जो मूढ़ मानव ब्राह्मणोंसे द्रोह करते हैं, वे मेरे शत्रु हैं। जो लोग ब्राह्मणोंको मेरा स्वरूप समझकर उनका पूजन करते हैं, वे इहलोकमें सुख भोगते हैं और अन्तमें मेरे परमधाममें चले जायँगे।* देवर्षे! तुम मेरी पुरीमें मेरी ही मायासे मोहित हो गये, यह सोचकर खेद न करना; क्योंकि ब्रह्मा तथा रुद्र आदि सब देवता मेरी मायासे मोहित हो जाते हैं॥ ५०—५४॥

---

* सर्वेषां चैव देवानां मम देवाश्च ब्राह्मणाः ।
ये द्रुह्यन्ति द्विजान् मूढाः सन्ति ते मम शत्रवः ॥
ये पूजयन्ति विप्रांश्च मम भावेन भूसुरान् ।
ते भुञ्जन्ति सुखं चात्र यान्त्यन्ते मत्पदं परम् ॥

(अध्याय ५५ । ५…)

भगवान्‌का यह वचन सुनकर, उनसे प्रशंसित हो वे महामुनि चुपचाप अञ्जलियोंमें भरे हुए यज्ञमण्डपमें चले आये ॥ ५५ ॥

उधर वे श्रीकृष्ण आदि राजा और रुक्मिणी आदि स्त्रियाँ नाना प्रकारके बाजों-गाजोंके साथ गोमतीके तटपर गयीं। भगवान् गोविन्दके यशका गान करनेवाली झुंड-की-झुंड स्त्रियोंके कड़ों और नूपुरोंका मधुर मनोहर शब्द वहाँ गूँजने लगा। मेरे साथ मुनिवर व्यासने जल-सम्बन्धी देवताओंका पूजन करवाकर जलसे भरा हुआ एक घड़ा मनुसूयाजीके हाथमें दिया। तत्पश्चात् रेवती आदि सभी स्त्रियोंने कलश पकड़े, किंतु उनके कोमल हाथोंसे वे सभी कलश नहीं उठ सके। जो फूलोंके भारसे पीड़ित हो जाती हैं, वे कोमलाङ्गी स्त्रियाँ कलशका बोझ कैसे उठा सकती हैं। तब वे राजरानियाँ एक-दूसरेकी ओर देखकर हँसने लगीं और बोलीं—'अब हमलोग कलशके बिना यज्ञमण्डपमें कैसे जायँगी?' उस समय रुक्मिणी आदि सभी स्त्रियोंने मन-ही-मन श्रीकृष्णसे प्रार्थना की—'हे श्रीकृष्ण! हे जगन्नाथ! हे भक्तोंके कष्टका निवारण करनेवाले चक्रधारी देव! आप सर्वशक्तिमान् हैं। इस सङ्कटमें हमारी रक्षा कीजिये।' इस प्रकार प्रार्थना करती हुई उन स्त्रियोंने जब कलशमें हाथ लगाया, तब वे भारहीन हो गये। उन्होंने रत्नों तथा मोतियोंसे विभूषित अपने-अपने मस्तकपर उन कलशोंको उठाकर रख लिया और अपने पतियोंके साथ वे शीघ्रतापूर्वक यज्ञमण्डपमें चली आयीं। जहाँ भेरी, शङ्ख और पणव आदि बाजे बज रहे थे, गोमतीका जल लाकर उन सबने उस स्थानपर पहुँचा दिया, जहाँ श्यामकर्ण अश्वके साथ यादवराज उग्रसेन विराजमान थे ॥ ५६—६५ ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'गोमतीके जलका आनयन' नामक पचपनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५५ ॥

छप्पनवाँ अध्याय

राजाद्वारा यज्ञमें विभिन्न बन्धु-बान्धवोंको भिन्न-भिन्न कार्योंमें लगाना, श्रीकृष्णका ब्राह्मणोंके चरण पखारना; घीकी आहुतिसे अग्निदेवको अजीर्ण होना; यज्ञपशुके तेजका श्रीकृष्णमें प्रवेश; उसके शरीरका कर्पूरके रूपमें परिवर्तन; उसकी आहुति और यज्ञकी समाप्तिपर अवभृथस्नान

श्रीगर्गजी कहते हैं—महाराज! महात्मा राजा उग्रसेनके यज्ञमें उनकी परिचर्यामें प्रेमके बन्धनसे बँधे हुए समस्त बन्धु-बान्धव लगे रहे। उन यादवराजने विभिन्न कर्मोंमें कर्म-सम्बन्धी भाई-बन्धुओंको लगाया। भीमसेन रसोईघरके अध्यक्ष बनाये गये। धर्मराज युधिष्ठिरको धर्माङ्ग-सम्बन्धी कर्ममें नियुक्त किया गया। राजाने पशुपुरुषोंकी सेवा-शुश्रूषामें अर्जुनको, विभिन्न द्रव्योंको प्रस्तुत करनेमें नकुलको, पूजन कर्ममें सहदेवको और धनाध्यक्षके स्थानमें दुर्योधनको नियुक्त किया। दानकर्ममें दानी कर्णको, परोसनेके कार्यमें द्रौपदीको तथा रक्षाके कार्यमें श्रीकृष्णके अठारह महारथी पुत्रोंको लगाया ॥ १—४ ॥

तत्पश्चात् भूपालने युयुधान, विकर्ण, हृदीक, विदुर, अक्रूर और उद्धवको भी अनेक कर्मोंमें लगाकर श्रीकृष्णसे पूछा—'देव! आप कौन-सा काम अपने हाथमें लेंगे?' उनकी बात सुनकर श्रीकृष्णने कहा—'राजन्! मैं तो ब्राह्मणोंके चरण पखारनेका कार्य करूँगा। राजसूयमें भी मैंने यही काम किया था।' यह सुनकर ब्रह्मा आदि देवता और भूतलके मनुष्य हँसने लगे ॥ ५—७ ॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! ऐसा कहकर साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णने तपस्वी ऋषि-मुनियोंके चरण धोकर उन सबको यथायोग्य आसनोंपर बिठाया। नये-नये वस्त्र पहन, बारह तिलक लगा, दिव्य आभूषणोंसे विभूषित हो नाना मणियोंकी मालाएँ—अनेक प्रकारकी कलाओंसे निर्मित पुष्प-हार धारण किये। अनेक आसनोंपर बैठे हुए वे ब्राह्मण पानके बीड़े चबाकर यज्ञमण्डपमें देवताओंके समान शोभा पाने लगे ॥ ८—१० ॥

तदनन्तर विभिन्न वस्तुओंके प्रयोजनवाले अर्थी, भिक्षुक, विरक्त और भूखे—ये सभी दूर देशसे आकर वहाँ याचना करने लगे—'नरेश्वर! हमें अन्न दो, धन दो, अश्व दो, उपानह, पात्र, वस्त्र तथा कम्बल दो' ॥ ११—१२ ॥

मुनिवरों तथा राजाओंसे भरे हुए उग्रसेनके उस यज्ञमें

न याचकोंकी वह करुण याचना सुनकर यदुकुलतिलक महाराजने बड़े हर्ष और उत्साहके साथ उन्हें सोना, चाँदी, रत्न, बर्तन, हाथी, घोड़े, रथ, गौ, छत्र और शिबिका आदि दान किये। जिनको जिनको जो-जो वस्तु प्रिय थी, उनको उनको राजाने वही वस्तु दी ॥ १३-१४½ ॥

यज्ञकर्ममें दीक्षित असिपत्रव्रतधारी राजा उग्रसेन स्नान करके रानी रुचिमतीके साथ बड़ी शोभा पा रहे थे। वेद शास्त्रोंमें विशारद व्यास और गर्ग आदि तीस हजार ब्राह्मण वह श्रेष्ठ यज्ञ करा रहे थे। नृपश्रेष्ठ! अग्निकुण्डमें हाथीकी सूँड़के समान मोटी घृतकी धारा गिर रही थी और ब्रह्मवादी मुनि उसे गिरवा रहे थे। श्रीकृष्णकी कृपासे उस यज्ञमें अग्निदेवको अजीर्ण हो गया। वे सबके सुनते हुए राजासे बोले—'मैं प्रसन्न हूँ, मैं प्रसन्न हूँ। अब मुझे पशु प्रदान करो।'—यज्ञसभामें अग्निका यह वचन सुनकर मुनियोंसहित यादवेन्द्र उग्रसेनने सोनेकी यूपमें सुवर्णमयी डोरीसे बँधे हुए उस घोड़ेसे बोले ॥ १५-२० ॥

उग्रसेनने कहा—हे अश्व! तुम अग्निदेवकी बात सुनो। यज्ञमें घीसे तृप्त होनेपर भी अग्निदेव तुझ विशुद्ध यज्ञपशुको अपना आहार बनायेंगे ॥ २१ ॥

राजाकी बात सुनकर श्यामकर्ण अश्वने प्रसन्न हो श्रीकृष्णकी ओर देखते और अपनी स्वीकृति सूचित करते हुए सिर हिलाया। × × × ×

तत्पश्चात् घोड़ेके शरीरसे एक ज्योति प्रकट हुई, जो सबके देखते-देखते मधुसूदन श्रीकृष्णमें समा गयी। इसके बाद घोड़का शरीर कपूर होकर गिर पड़ा, मानो भगवान् शंकरके शरीरसे विभूति झड़ गयी हो। उस अद्भुत कर्पूरराशिको देखकर और उसकी सुगन्धसे यज्ञशाला तथा द्वारकापुरीको सुवासित हुई जानकर वे व्यास आदि महर्षि अत्यन्त हर्षित हो, यज्ञकर्ममें संलग्न राजासे बोले—'नृपश्रेष्ठ! बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुम्हारा यह उत्तम यज्ञ सफल हो गया। अब हम इस कपूरसे ही हवन करेंगे और तुम भी करो' ॥ २२-३३ ॥

—ऐसा कहकर समस्त ऋत्विजोंने उस यज्ञकुण्डमें उसी क्षण पहले यज्ञेश्वरके उद्देश्यसे घनसार (कपूर) की आहुतियाँ दीं। राजा वज्रनाभ! जहाँ चतुर्व्यूहरूपधारी साक्षात् परमेश्वर परमात्मा श्रीकृष्ण अपने पुत्र और पौत्रोंके साथ विराजमान थे, वहाँ कौन-सी वस्तु दुर्लभ थी? उस यज्ञमें मैंने महेन्द्रसे कहा—'भगवन् शक्र! इस यज्ञमें कपूरकी आरती ग्रहण कीजिये। आइये, राजा उग्रसेनकी दी हुई इस आहुतिको स्वीकार कीजिये; अब आगे कलियुगमें यह दुर्लभ हो जायगी' ॥ ३४-३६½ ॥

मेरी बात सुनकर इन्द्रने मुस्कराते हुए कहा—'महर्षियो! जब कौरव-पाण्डव-युद्धमें कौरवकुलका क्षय होगा और धर्मराज युधिष्ठिर हस्तिनापुरमें उत्तम अश्वमेध यज्ञ करेंगे, उस समय ब्राह्मणोंकी दी हुई ऐसी आहुति मैं पुनः ग्रहण करूँगा। आप इसे दुर्लभ क्यों बता रहे हैं?' ॥ ३७-३८ ॥

नृपश्रेष्ठ! इन्द्रका यह वचन सुनकर सब मुनीश्वरोंने इसे सच माना और उस यज्ञमें सम्पूर्ण देवताओंके लिये आहुतियाँ दीं। दूसरे लोगोंने यह नहीं समझा कि इन्द्रने क्या कहा है। 'अग्नये स्वाहा'—इस मन्त्रसे सभी देवताओंके लिये ब्राह्मणोंने आहुतियाँ दीं। उस कपूरके होमसे भी समस्त चराचर विश्व प्रसन्न हो गया। राजा उग्रसेन उस महान् यज्ञमें उऋण हो गये ॥ ३९-४१ ॥

तदनन्तर श्रेष्ठ ब्राह्मणों, श्रीकृष्ण आदि यादवों तथा अन्य भूपालोंके साथ महाराज उग्रसेनने यज्ञकी समाप्तिपर पिण्डारक तीर्थमें अवभृथस्नान किया। वेदोक्त विधिसे पत्नीसहित स्नान करके, रेशमी वस्त्र धारणकर राजा उसी प्रकार शोभा पाने लगे, जैसे दक्षिणाके साथ यज्ञदेवता सुशोभित होते हैं। उस समय देवताओं तथा मनुष्योंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं। सब देवता राजा उग्रसेनके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे। इसके बाद स्वधा-पान कराकर और पुरोडाशका प्राशन कराकर व्यासजीने उन लोगोंको क्रमशः यज्ञशेष पुरोडाशका प्रसाद बाँटा। गाजे-बाजेके साथ वन्दीजनोंने प्रसन्नतापूर्वक राजा उग्रसेनकी स्तुति की। फिर देवी आदि स्त्रियोंने उनकी आरती उतारी। आरतीसे प्रसन्न हुए महाराजने उन सब स्त्रियोंको नाना प्रकारके रत्न, वस्त्र और अलंकार दिये ॥ ४२-४७ ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'यज्ञकी पूर्ति तथा राजाका अभिषेक' नामक छप्पनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५६ ॥

अनन्तर हमने बलरामसहित आपका दर्शन किया था। उसके बाद द्वारकामें प्रद्युम्न और अनिरुद्धजीका प्रादुर्भाव हुआ, जिन्हें हमलोगोंने नहीं देखा था। अतः चतुर्व्यूहरूपमें आपका दर्शन करनेके लिये हमलोग यहाँ आये हैं। अहो! यह सौभाग्यकी बात है कि आज हमलोगोंने श्रीकृष्ण, बलभद्र, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इन चारों परिपूर्णतम महापुरुषोंका दर्शन किया। हम नहीं जानते कि किस पूर्व पुण्यके प्रभावसे इन परिपूर्णतम चतुर्व्यूहस्वरूप परमात्माका, जो बड़े-बड़े सतोंके लिये भी दुर्लभ हैं, हमें दर्शन मिला है। हे संकर्षण! हे श्रीकृष्ण! हे प्रद्युम्न! और हे ऊषावल्लभ अनिरुद्ध! हम मूढ़ हैं, कुबुद्धि हैं। आप हमारे अपराधको क्षमा करें। गोविन्द! अब वैकुण्ठमें पधारिये। आपका यह सुन्दर धाम आपके बिना सूना लग रहा है। आपके इस द्वारकापुरी वैकुण्ठसे भी अधिक वैभवशालिनी और ... हो गयी है। ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि, सूर्य, शिव, मरुद्गण, ... कुबेर, चन्द्रमा तथा वरुण आदिने जिनका पूजन किया, आपके उन्हीं चरणारविन्दोंका हम सदा भजन करते हैं। बड़े-बड़े मुनीश्वर, लक्ष्मी, देवता, भक्तजन तथा सात्वतोंने गन्ध, चन्दन, धूप, लावा, अक्षत, दूर्वाङ्कुर और दूर्वा आदिसे जिनका भलीभाँति पूजन किया है, आपके उन्हीं चरणारविन्दोंका हम सदा भजन करते हैं ॥ ८-१७ ॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—नरेश्वर! ऐसा कहकर वे ... आदि सब भाई सबके देखते-देखते वैकुण्ठधामको चले गये तथा पत्नीसहित राजा उग्रसेन आश्चर्यसे चकित रह गये ॥ १८ ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'वैकुण्ठादिका दर्शन' नामक अट्ठावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५८ ॥

उनसठवाँ अध्याय

गर्गाचार्यके द्वारा राजा उग्रसेनके प्रति भगवान् श्रीकृष्णके सहस्र नामोंका वर्णन

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! तब राजा उग्रसेनने पुत्रकी आशा छोड़कर सम्पूर्ण विश्वको मनका संकल्पमात्र जानकर व्यासजीसे अपना संदेह पूछा—'ब्रह्मन्! किस प्रकारसे लौकिक सुखका परित्याग करके मनुष्य परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्णका भजन करे, यह मुझे विस्तारपूर्वक बतानेकी कृपा करें ॥ १-२ ॥

व्यासजी बोले—महाराज उग्रसेन! मैं तुम्हारे सामने सत्य और हितकर बात कह रहा हूँ, इसे एकाग्रचित्त होकर सुनो। नरेन्द्र! तुम श्रीराधा और श्रीकृष्णकी उत्कृष्ट आराधना करो। इन दोनोंके पृथक्-पृथक् सहस्र नाम हैं। उनके द्वारा तुम दोनोंका भक्तिभावसे भजन करो। भूपते! राधाके सहस्रनामको ब्रह्मा, शंकर, नारद और कोई-कोई मेरे-जैसे लोग भी जानते हैं ॥ ३-५ ॥

उग्रसेनने कहा—ब्रह्मन्! मैंने पूर्वकालमें सूर्यग्रहणके अवसरपर कुरुक्षेत्रके एकान्त दिव्य शिविरमें नारदजीके मुखसे 'राधिका-सहस्रनाम'का श्रवण किया था, परंतु अनायास ही महान् कर्म करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णके सहस्रनामको मैंने नहीं सुना है। अतः कृपा करके मेरे सामने उसीका वर्णन कीजिये, जिससे मैं कृतार्थताका भागी हो सकूँ ॥ ६-७ ॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—उग्रसेनकी यह बात सुनकर महामुनि वेदव्यासने प्रसन्नचित्त होकर उनकी प्रशंसा की और श्रीकृष्णकी ओर देखते हुए कहा ॥ ८ ॥

व्यासजी बोले—राजन्! सुनो। मैं तुम्हें श्रीकृष्णका सुन्दर सहस्रनाम-स्तोत्र सुनाऊँगा, जिसे पहले अपने परमधाम गोलोकमें इन भगवान् श्रीकृष्णने श्रीराधाके लिये प्रकट किया था ॥ ९ ॥

श्रीभगवान् बोले—प्रिये! यह सहस्रनाम-स्तोत्र, जो अभी बताया जायगा, गोपनीय रहस्य है। इसे हर एकके सामने प्रकट कर दिया जाय तो सदा हानि ही उठानी पड़ेगी। अधिकारीके सामने प्रकट किया गया यह स्तोत्र सम्पूर्ण ...का देनेवाला, साधुदायक, कल्याणस्वरूप, उत्कृष्ट परमार्थ... और समस्त पुरुषार्थोंको देनेवाला है। श्रीकृष्णसहस्रनाम मेरा रूप है। जो इसका पाठ करेगा, वह मेरा स्वरूप होकर ... प्रसिद्ध होगा। कहीं किसी शठ और दाम्भिकको इसका उपदेश कदापि नहीं देना चाहिये। जो कल्याणमें भरा हुआ ... सदा गुरुके चरणोंमें निरन्तर भक्ति रखनेवाला है, उस ... सेवक और मद एवं मात्सर्यसे रहित शुद्ध श्रीकृष्णभक्तको ही इसका उपदेश देना चाहिये ॥ १०—१२ ॥

विनियोग

ॐ अस्य श्रीकृष्णसहस्रनामस्तोत्रमन्त्रस्य नारायण ऋषिर्भुजङ्गप्रयात छन्दः श्रीकृष्णचन्द्रो देवता वासुदेवो बीजम् श्रीराधाशक्तिः मन्मथ कीलकम् श्रीपूर्णब्रह्मकृष्णचन्द्र भक्तिजन्यफलप्राप्तये जपे विनियोगः ।

इस 'श्रीकृष्णसहस्रनामस्तोत्रमन्त्र'के नारायण ऋषि हैं, भुजङ्गप्रयात छन्द है, श्रीकृष्णचन्द्र देवता हैं, वासुदेव बीज, श्रीराधा शक्ति और मन्मथ कीलक है । श्रीपूर्णब्रह्म कृष्णचन्द्रकी भक्तिजन्य फलकी प्राप्तिके लिये इसका विनियोग किया जाता है ।

ध्यान

शिखिमुकुटविशेषं नीलपद्माङ्गदेशं
विधुमुखकृतकेशं कौस्तुभापीतवेशम् ।
मधुररवकलेशं तं भजे भ्रातृशेषं
व्रजजनवनितेशं माधवं राधिकेशम् ॥

जिनके मस्तकपर मोरपंखका मुकुट विशेष शोभा देता है, जिनका अङ्गदेश (सम्पूर्ण शरीर) नील कमलके समान श्याम है, चन्द्रमाके समान मनोहर मुखपर कुञ्चित केश सुशोभित हैं, कौस्तुभमणिकी सुनहरी आभासे जिनका वेश कुछ पीतवर्णका दिखायी देता है (अथवा जो पीताम्बरधारी हैं), जो मीठी धुनमें मुरली बजा रहे हैं, कल्याणस्वरूप हैं, शेषावतार बलराम जिनके भाई हैं तथा जो व्रजवनिताओंके वल्लभ हैं, उन राधिकाके प्राणेश्वर माधवका मैं भजन (चिन्तन) करता हूँ ॥ १३ ॥

१ हरि=भक्तोंके पाप-तापका हरण करनेवाले, २ देवकीनन्दन=अपने आविर्भावसे माता देवकी एवं यशोदाको आनन्द प्रदान करनेवाले, ३ कंसहन्ता=कंसका वध करनेवाले, ४ परात्मा=परमात्मा, ५ पीताम्बर=पीतवस्त्रधारी, ६ पूर्णदेव=परिपूर्ण देवता श्रीकृष्ण, ७ रमेश=रमावल्लभ, ८ कृष्ण=सबको अपनी ओर आकर्षित करनेवाले, ९ परेश=सर्वोत्कृष्ट ब्रह्मा आदि देवताओंके भी नियन्ता, १० पुराण=पुरातन पुरुष या अनादिसिद्ध, ११ सुरेश=देवताओंपर भी शासन करनेवाले, १२ अच्युत=अपनी महिमा या मर्यादासे कभी च्युत न होनेवाले, १३ वासुदेव=वसुदेवनन्दन अथवा सबके अन्तःकरणमें निवास करनेवाले देवता, चार व्यूहोंमेंसे प्रथम व्यूहस्वरूप, १४ देव=प्रकाशस्वरूप परम देवता ॥ १४ ॥

१५ धराभारहर्ता=पृथ्वीका भार हरण करनेवाले, १६ कृती=कृतकृत्य अथवा पुण्यात्मा, १७ राधिकेश=राधाप्राणवल्लभ, १८ पर=सर्वोत्कृष्ट, १९ भूवर=पृथ्वीके स्वामी, २० दिव्यगोलोकनाथ=दिव्यधाम गोलोकके स्वामी, २१ सुदाम्नस्तथा राधिकाशापहेतु=सुदामा तथा राधिकाके पारस्परिक शापमें कारण, २२ घृणी=दयालु, २३ मानिनीमानद=मानिनीको मान देनेवाले, २४ दिव्यलोक=दिव्यधामस्वरूप ॥ १५ ॥

२५ लसद्गोपवेश=सुन्दर गोपवेषधारी, २६ अज=अजन्मा, २७ राधिकात्मा=राधिकाके आत्मा अथवा राधिका हैं आत्मा जिनकी, वे, २८ चलत्कुण्डल=हिलते हुए कुण्डलोंसे सुशोभित, २९ कुन्तली=घुँघराली अलकोंसे शोभायमान, ३० कुन्तलस्रक्=केशराशिमें फूलोंके हार धारण करनेवाले, ३१ कदाचिद् राधया रथस्थ=कभी-कभी राधिकाके साथ रथमें विराजमान, ३२ दिव्यरत्न=दिव्यमणि—कौस्तुभ धारण करनेवाले अथवा अखिल जगत्के दिव्यरत्नस्वरूप, ३३ सुधासौधभूचारण=चूनासे लिपे पुते छतकी महलपर घूमनेवाले, ३४ दिव्यवासा=दिव्य वस्त्रधारी ॥ १६ ॥

३५ कदा वृन्दकारण्यचारी=कभी-कभी वृन्दावनमें विचरनेवाले, ३६ स्वलोके महारत्नसिंहासनस्थ=अपने धाममें महामूल्यवान् एवं विशाल रत्नमय सिंहासनपर विराजमान, ३७ प्रशान्त=परम शान्त, ३८ महाहंसभैश्चामरैर्वीज्यमान=महान् हंसोंके समान उज्ज्वल चामरोंसे जिनके ऊपर हवा की जाती है, ऐसे भगवान्, ३९ चलच्छत्रमुक्तावलीशोभमान=हिलते हुए श्वेतछत्र तथा मुक्ताकी मालाओंसे शोभित होनेवाले ॥ १७ ॥

४० सुखी=आनन्दस्वरूप, ४१ कोटिकन्दर्पलीलाभिराम=करोड़ों कामदेवोंके समान ललित लीलाओंके कारण अतिशय मनोहर, ४२ क्वणन्नूपुरालंकृताङ्घ्रि=बजते हुए नूपुरोंसे अलंकृत चरणवाले, ४३ शुभाङ्घ्रि=शुभ लक्षणसम्पन्न पैरवाले, ४४ सुजानु=सुन्दर घुटनोंवाले, ४५ रम्भाशुभोरु=केलेके समान परम सुन्दर ऊरुयुगल (जाँघ) वाले, ४६ कृशाङ्ग=दुबले-पतले, ४७ प्रतापी=तेजस्वी एवं प्रभावशाली, ४८ इभशुण्डादण्डप्रचण्ड=हाथीकी सूँड़के समान सुन्दर भुजदण्डवाले ॥ १८ ॥

४९ जपापुष्पहस्त=अड़हुलके फूलोंके समान

काल लटक रहे हैं ऐसे, ५० शातोदरश्री=पतली कमरकी शोभासे सम्पन्न, ५१ महापद्मवक्षःस्थल=वक्षःस्थलमें प्रफुल्ल विशाल कमलकी मालासे अलङ्कृत, अथवा जिनका हृदयकमल विशाल है, ऐसे, ५२ चन्द्रहास=जिनके हँसते समय चन्द्रमाकी चाँदनीकी-सी छटा छिटक जाती है, ऐसे, ५३ लसत्कुन्ददन्त=शोभामयी कुन्दकलिकाके समान उज्ज्वल दाँतवाले, ५४ बिम्बाधरश्रीः=जिनके अधरकी शोभा पके बिम्ब फलसे अधिक अरुण है, ऐसे, ५५ शारदपद्मनेत्रः=शरत्कालके प्रफुल्ल कमलके सदृश नेत्रवाले, ५६ किरीटोज्ज्वलाभ=कान्तिमान् किरीटकी उज्ज्वल आभा धारण करनेवाले ॥ १९ ॥

५७ सखीकोटिभिर्वर्तमानः=करोड़ों सखियोंके साथ रहकर शोभा पानेवाले, ५८ निकुञ्जे प्रियाराधया राससक्तः=निकुञ्जमें प्राणवल्लभा श्रीराधाके साथ रास लीलामें तत्पर, ५९ नवाङ्गः=अपने दिव्य अङ्गोंमें नित्य नूतन रमणीयता धारण करनेवाले, ६० धराब्रह्मरुद्रादिभिः प्रार्थितः सन् धराभारदूरीक्रियार्थं प्रजातः=पृथ्वी, ब्रह्मा तथा रुद्र आदि देवताओंकी प्रार्थना सुनकर भूमिका भार दूर करनेके लिये अवतार ग्रहण करनेवाले ॥ २० ॥

६१ यदुः=यादववृन्दके मस्तक राजा यदु जिनकी विभूति हैं, वे, ६२ देवकीसौख्यदः=देवकीको सुख देनेवाले, ६३ बन्धनच्छित्=भवबन्धनका उच्छेद करनेवाले अथवा अवतारकालमें माता पिताके बन्धनको काट देनेवाले, ६४ सशेषः=शेषावतार बलरामजीके साथ विराजमान, ६५ विभुः=व्यापक अथवा सर्वसमर्थ, ६६ योगमायी=योगमायाके प्रवर्तक तथा स्वामी, ६७ विष्णुः=व्यापक या वैकुण्ठनाथ विष्णुस्वरूप, ६८ व्रजे नन्दपुत्रः=व्रजमण्डलमें नन्दनन्दनके रूपमें लीला करनेवाले, ६९ यशोदासुताख्यः=यशोदाजीके पुत्ररूपमें विख्यात, ७० महासौख्यदः=महान् सौख्य प्रदान करनेवाले, ७१ बालरूपः=शिशुरूपधारी, ७२ शुभाङ्गः=सुन्दर एवं शुभ लक्षणसम्पन्न शरीरवाले ॥ २१ ॥

७३ पूतनामोक्षदः=पूतनाको मोक्ष देनेवाले, ७४ श्यामरूपः=श्याम मनोहर रूपवाले, ७५ दयालुः=दयालु, ७६ अनोभञ्जनः=शकट-भञ्जन करनेवाले, ७७ पल्लवाङ्घ्रिः=नूतन पल्लवोंके समान कोमल एवं अरुण चरणवाले, ७८ तृणावर्तसंहारकारी=तृणावर्तका संहार करनेवाले, ७९ गोपः=गोपरूप, ८० यशोदायशः=यशोदाके यश-रूप, ८१ विश्वरूपप्रदर्शी=माताको अपने मुखमें (तथा अर्जुन, धृतराष्ट्र और उत्तङ्कको) सम्पूर्ण विश्वरूपका दर्शन करानेवाले ॥ २२ ॥

८२ गर्गदिष्टः=गर्गजीके द्वारा जिनका नामकरण संस्कार एवं भावी फलादेश किया गया, ऐसे, ८३ भाग्योदयश्री=भाग्योदयसूचक शोभासे सम्पन्न, ८४ लसद्बालकेलिः=सुन्दर बालोचित क्रीडा करनेवाले, ८५ सरामः=बलरामजीके साथ विचरनेवाले, ८६ सुवाक्=मनोहर बात करनेवाले, ८७ क्वणन्नूपुरैः शब्दयुक्=खनकते हुए नूपुरोंसे शब्दयुक्त, ८८ जानुहस्तैर्व्रजेशाङ्गणे रिङ्गमाणः=घुटनों और हाथोंके बलसे व्रजराज नन्दके आँगनमें रेंगने या चलनेवाले ॥ २३ ॥

८९ दधिस्पृक्=दहीका स्पर्श (दान) करनेवाले, ९० हैयङ्गवीदुग्धभोक्ता=ताजा माखन खानेवाले और दूध पीनेवाले, ९१ दधिस्तेयकृत्=व्रजाङ्गनाओंको सुख देनेके लिये दहीकी चोरी-लीला करनेवाले, ९२ दुग्धभुक्=दुग्ध-भोग आरोगनेवाले, ९३ भाण्डभेत्ता=दही-दूध आदिके मटके फोड़नेवाले, ९४ मृद्भुक्तवान्=मिट्टी खानेवाले, ९५ गोपजः=नन्दगोपके पुत्र, ९६ विश्वरूपः=सम्पूर्ण विश्व जिनका रूप है, ऐसे, ९७ प्रचण्डांशुचण्डप्रभामण्डिताङ्गः=सूर्यकी प्रखर किरणोंसे सुशोभित शरीरवाले ॥ २४ ॥

९८ यशोदाकरैर्बन्धनप्राप्तः=यशोदाके हाथों ओखलीमें बाँधे गये, ९९ आद्यः=आदिपुरुष या सबके आदि कारण, १०० मणिग्रीवमुक्तिप्रदः=कुबेरपुत्र मणिग्रीव और नलकूबरका शापसे उद्धार करनेवाले, १०१ दामबद्धः=यशोदाद्वारा रस्सीसे बाँधे गये, १०२ कदा व्रजे गोपिकाभिर्नृत्यमानः=कभी व्रजमें गोपिकाओंके साथ नृत्य करनेवाले, १०३ कदा नन्दसन्नन्दकैर्लाल्यमानः=कभी नन्द और उपनन्द आदिके द्वारा लाड़ लड़ाये जानेवाले ॥ २ ॥

१०४ कदा गोपनन्दाङ्कगः=कभी गोपराज नन्दकी गोदमें प्रमोद पानेवाले, १०५ गोपालरूपी=ग्वालरूपधारी, १०६ कलिन्दाङ्गजाकूलगः=कलिन्दनन्दिनी यमुनाके तटपर विहार करनेवाले, १०७ वत्समानः=नित्य गमनवाले, १०८ घनैर्मारुतैर्दत्तभाण्डीरदेशे मन्दहस्तात् राधया गृहीतो हरः=एक समय प्रचण्ड वायु और मेघ बादलोंसे आच्छादित भाण्डीरवनके प्रदेशमें नन्दजीके हाथसे श्रीराधाद्वारा ग्रहण किये [illegible] ॥ २६ ॥

१०९. गोलोकलोकागते महारत्नसमूहैर्युते कदम्बावृते निकुञ्जे राधिकासहिताह्वे ब्रह्मणा प्रतिष्ठान=गोलोक धामसे आये महान् रत्नसमूहोंसे शोभित तथा कदम्ब-वृक्षोंसे आवृत निकुञ्जमें राधिकाजीके साथ विवाहके अवसरपर ब्रह्माजीके द्वारा सादर स्थापित, ११० साममन्त्रैः पूजित=सामवेदके मन्त्रोंद्वारा पूजित ॥ २७ ॥

१११ रसी=विविध रसोंके अधिष्ठान, परम रसिक, ११२ मालतीना वनेऽपि प्रियाराधया सह राधिकार्थे रासयुक्=मालती-वनमें भी प्रियतमा राधिकाके साथ उन्हींको सुख पहुँचानेके लिये रास विलासमें संलग्न, ११३ रमेशधरानाथ=लक्ष्मीके पति और पृथ्वीके स्वामी, ११४ आनन्दद=आनन्द प्रदान करनेवाले, ११५ श्रीनिकेत=रमानिवास, ११६ वनेश=वृन्दावनके स्वामी, ११७ धनी=सीमातीत धन और ऐश्वर्यके स्वामी, ११८ सुन्दर=अप्रतिम सौन्दर्यकी निधि, ११९ गोपिकेश=गोपाङ्गनाओंके प्राणवल्लभ ॥ २८ ॥

१२० कदा राधया नन्दगेहे प्रापित=किसी समय राधिकाद्वारा नन्दके घरमें पहुँचाये गये, १२१ यशोदाकरैर्लालित=यशोदाके हाथों दुलारे गये, १२२ मन्दहास=मन्द-मन्द मनोरम हाससे सुशोभित, १२३ क्वापि भयी=कहीं-कहीं डरे हुएकी भाँति लीला करनेवाले, १२४ वृन्दारकारण्यवासी=वृन्दावनमें निवास करनेवाले, १२५ महामन्दिरे वासकृत्=नन्दरायके विशाल भवनमें रहनेवाले, १२६ देवपूज्य=देवताओंके पूजनीय ॥ २९ ॥

१२७ वने वत्सचारी=वनमें बछड़े चरानेवाले, १२८. महावत्सहारी=महान् बछड़ेका रूप धारण करके आये हुए वत्सासुरके विनाशक, १२९. बकारि=बकासुरके शत्रु, १३० सुरैः पूजित=देवगणोंद्वारा सम्मानित, १३१ अघारिनामा=अघासुरका वध करके 'अघारि' नामसे प्रसिद्ध, १३२ वने वत्सकृत्=वनमें नूतन बछड़ोंकी सृष्टि करनेवाले, १३३ गोपकृत्=नूतन ग्वाल-बालोंका निर्माण करनेवाले, १३४ गोपवेश=ग्वालवेशधारी, १३५ कदा ब्रह्मणा संस्तुत=किसी समय ब्रह्माजीके मुखसे अपना गुणगान सुननेवाले, १३६ पद्मनाभ=एकार्णवके जलमें अपनी नाभिसे कमल प्रकट करनेवाले ॥ ३० ॥

१३७ विहारी=वृन्दावनमें विचरण करनेवाले और भक्तोंके साथ नाना प्रकार विहार करनेवाले, १३८ तालभुक्=ताड़का फल खानेवाले, १३९. धेनुकारि=धेनुकासुरके शत्रु, १४० सदा रक्षक=सदा सबके रक्षक, १४१ गोविषार्तिप्रणाशी=यमुनाजीका विषाक्त जल पीनेसे गौओंके भीतर व्याप्त विषजनित पीड़ाका नाश करनेवाले, कलिन्दाङ्गनाकूलग=कलिन्द-कन्या यमुनाके तटपर जानेवाले, १४२ कालियस्य दमी=कालियनागका दमन करनेवाले, १४३ फणेषु नृत्यकारी=कालियनागके फणोंपर नृत्य करनेवाले, १४४ प्रसिद्ध=सर्वत्र प्रसिद्धिको प्राप्त ॥ ३१ ॥

१४५ सलील=लीलापरायण, १४६ शमी=स्वभावतः शान्त, १४७ ज्ञानद=ज्ञानदाता, १४८ कामपूर=कामनाओंके पूरक, १४९. गोपयुक्=गोपोंके साथ विराजमान, १५० गोप=गोपालरूप या गौओंके पालक, १५१ आनन्दकारी=आनन्ददायिनी लीला प्रस्तुत करनेवाले, १५२ स्थिर=स्थैर्ययुक्त, १५३ अग्निभुक्=दावानलको पी जानेवाले, १५४ पालक=रक्षक, १५५ बाललील=बालकों जैसी क्रीड़ा करनेवाले, १५६ सुराग=मुरलीके स्वरोंमें सुन्दर राग गानेवाले, १५७ वंशीधर=मुरलीधारी, १५८. पुष्पशील=स्वभावतः फूलोंका शृङ्गार धारण करनेवाले ॥ ३२ ॥

१५९. प्रलम्बप्रभानाशक=बलरामरूपसे प्रलम्बासुरकी प्रभाके नाशक, १६० गौरवर्ण=गोरे वर्णवाले बलराम, १६१ बल=बलस्वरूप या बलभद्र, १६२ रोहिणीज=रोहिणीनन्दन, १६३ राम=बलराम, १६४ शेष=शेषके अवतार, १६५ बली=बलवान्, १६६ पद्मनेत्र=कमलनयन, १६७ कृष्णाग्रज=श्रीकृष्णके बड़े भाई, १६८ धरेश=धरणीधर, १६९. फणीश=नागराज, १७० नीलाम्बराभ=नीलाम्बरकी शोभासे युक्त ॥ ३३ ॥

महासौख्यद=महान् सौख्य देनेवाले, १७१ अनिलाहारक=मुञ्जाटवीमें लगी हुई आगको दूर हटानेवाले, १७२ व्रजेश=व्रजके स्वामी, १७३ शरद्ग्रीष्मवर्षाकर=शरद्, ग्रीष्म और वर्षा प्रकट करनेवाले, १७४ कृष्णवर्ण=श्यामसुन्दर, १७५ व्रजे गोपिकापूजित=व्रजमण्डलमें गोपसुन्दरियोंद्वारा पूजित, १७६ चीरहर्ता=चीरहरणकी लीला करनेवाले, १७७ कदम्बे स्थित=चीर लेकर कदम्बपर जा बैठनेवाले, १७८ चीरद=गोपकिशोरियोंके माँगनेपर उन्हें चीर लौटा देनेवाले, १७९. कुमारीवर=सुन्दरी गोपकुमारियोंके मनोहर ॥ ३४ ॥

१८० क्षुधानाशकृत्=ग्वाल-बालोंकी भूख मिटानेवाले, १८१ यज्ञपत्नीमनःस्पृक्=यज्ञ करनेवाले ब्राह्मणोंकी पत्नियोंके मनका स्पर्श करनेवाले—उनके मन दूर्दशमें रख जानेवाले,

१८२ कृपाकारकः=दया करनेवाले, १८३ केलिकर्ता=क्रीडापरायण, १८४ अवनीशः=भूस्वामी, १८५ व्रजे शक्रयागप्रणाशः=व्रजमण्डलमें इन्द्रयागकी परम्पराको मिटा देनेवाले, १८६ अमितान्नभोजी=गोवर्धन पूजामें समर्पित अपरिमित भोजन-राशिका आरोग लेनेवाले, १८७ शुनासीर-मोहप्रदः=इन्द्रको मोह प्रदान करनेवाले अथवा उनके मोहका खण्डन करनेवाले, १८८ बालरूपी=बालरूपधारी ॥ ३७ ॥

१८९ गिरेः पूजकः=गिरिराज गोवर्धनकी पूजा करनेवाले, १९० नन्दपुत्रः=नन्दरायजीके बेटे, १९१ अगध्रः=गिरिवरधारी, १९२ कृपाकृत्=कृपा करनेवाले, १९३ गोवर्धनोद्धारिनामा='गोवर्धनोद्धारी' नामवाले, १९४ धातवर्षापहरः=आँधी और वर्षाके कष्टको हर लेनेवाले, १९५ रक्षकः=व्रजवासियोंकी रक्षा करनेवाले, १९६ व्रजाधीशगोपाङ्गनाशङ्कितः=व्रजराज नन्द और गोपाङ्गनाओंमें शङ्का उत्पन्न करनेवाले, अथवा गोवर्धन उठानेके अलौकिक कर्मको देखकर व्रजराज नन्द तथा गोपियोंको जिनके प्रति यह शङ्का हुई थी कि ये साधारण गोप नहीं, साक्षात् नारायण हो सकते हैं, इस तरहकी शङ्काके पात्र ॥ ३६ ॥

१९७ अगेन्द्रोपरि शक्रपूज्यः=गिरिराज गोवर्धनके ऊपर इन्द्रके द्वारा पूजनीय, १९८ प्राक्स्तुतः=पहले जिनका स्तवन हुआ है, ऐसे, १९९ सुपार्षदेक्षकः=अपने ऊपर शङ्का करनेवाले नन्दादि गोपोंको स्वधर्मकी बातोंमें बहला देनेवाले, २०० देवगोविन्दनामा='गोविन्ददेव' नाम धारण करनेवाले, २०१ व्रजाधीशरक्षाकरः=व्रजराज नन्दकी रक्षा करनेवाले (उन्हें वरुणलोकसे छुड़ाकर लानेवाले), २०२ पाशिपूज्यः=पाशधारी वरुणके द्वारा पूजनीय, २०३ सुनन्दादिगोपाङ्गवैकुण्ठदर्शी=अनुगामी ग्वालोंके साथ जाकर उन्हें दिव्य वैकुण्ठधामका दर्शन करानेवाले ॥ ३७ ॥

२०४ परब्रह्मदयमीक्षणः=मनोहर मदीकी कान्ति धारण करनेवाले, २०५ कामिनीशः=गोप सुन्दरियोंके प्राणेश्वर, २०६ व्रजे कामिनीमोहदः=व्रजकी कामिनियोंको मोह प्रदान करनेवाले, २०७ कामरूपः=कामदेवसे भी सुन्दर रूपवाले, २०८ रसाक्तः=रसमग्न, २०९ रसी रासकृत्=रासलीला करनेवाले रसके निधि, २१० राधिकेशः=राधिकाके स्वामी, २११ महामोहदः=महान् मोह प्रदान करनेवाले, २१२ मानिनीमानहारी=मानिनियोंके मान हर लेनेवाले ॥ ३८ ॥

२१३ विहारी वरः=विहारशील श्रेष्ठ पुरुष, २१४ मानहृत्=मान हर लेनेवाले, २१५ राधिकाङ्गः=श्रीराधिका जिनकी वामाङ्गस्वरूपा हैं, २१६ धराद्वीपगः=भूमण्डलके सभी द्वीपोंमें विचरनेवाले, २१७ खण्डचारी=विभिन्न वनखण्डोंमें विचरनेवाले, २१८ वनस्थः=वनवासी, २१९ प्रियः=सबके प्रिय, २२० अष्टवक्रर्षिदृष्टः=अष्टावक्र ऋषिको दर्शन देनेवाले, २२१ सराधः=राधिकाके साथ विचरनेवाले, २२२ महामोक्षदः=महामोक्ष प्रदान करनेवाले, २२३ प्रियार्थं पद्महारी=प्रियतमाके प्रसन्नताके लिये कमलका फूल लानेवाले ॥ ३९ ॥

२२४ वटस्थः=वटवृक्षपर विराजमान, २२५ सुरः=देवता, २२६ चन्दनाक्तः=चन्दनसे चर्चित, २२७ प्रसक्तः=श्रीराधाके प्रति अधिक अनुरक्त, २२८ राधया व्रज आगतः=श्रीराधाके साथ व्रजमण्डलमें अवतीर्ण, २२९ मोहिनीषु महामोहकृत्=मोहिनियोंमें महामोह उत्पन्न करनेवाले, २३० गोपिकागीतकीर्तिः=गोपिकाओंद्वारा गायी गयी कीर्तिवाले, २३१ रसस्थः=अपने स्वरूपभूत रसमें स्थित, २३२ पटी=पीताम्बरधारी, २३३ दुःखिताकामिनीशः=दुःखिया नारियोंके रक्षक ॥ ४० ॥

२३४ वने गोपिकात्यागकृत्=वनमें गोपियोंका त्याग करनेवाले, २३५ पादचिह्नप्रदर्शी=वनमें ढूँढ़ती हुई गोपिकाओंको अपना चरणचिह्न प्रदर्शित करनेवाले, २३६ कलाकारकः=चौंसठ कलाओंके कर्ता, २३७ काममोही=अपने रूप-लावण्यसे कामदेवको भी मोहित करनेवाले, २३८ वशी=मन और इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले, २३९ गोपिकामध्यगः=गोपाङ्गनाओंके बीचमें विराजमान, २४० पेशवाचः=मधुरभाषी, २४१ प्रियाप्रीतिकृत्=प्रिया श्रीराधासे प्रेम करनेवाले अथवा प्रियाकी प्रसन्नताके लिये कार्य करनेवाले, २४२ रासरक्तः=रासके रंगमें रँगे हुए, २४३ कलेशः=सम्पूर्ण कलाओंके स्वामी ॥ ४१ ॥

२४४ रसासारवर्षी=रसमग्न विहारी, २४५ अनन्तस्वरूपः=अनन्त रूपवाले अथवा अनन्तस्वरूप, २४६ स्रजा सम्वृतः=आजानुलम्बिनी वनमाला धारण करनेवाले, २४७ वल्लवीमध्यसंस्थः=गोपाङ्गनामण्डलके मध्य बैठे हुए, २४८ सुबाहुः=सुन्दर बाँहोंवाले, २४९ सुपादः=सुन्दर चरणवाले, २५० सुवेषः=सुन्दर

१८२ कृपाधारकः=दया करनेवाले, १८३ केलिकर्ता=श्रीडानरायण, १८४ अवनीशः=भूस्वामी, १८५ व्रजे शक्रयागप्रणाशः=व्रजमण्डलमें इन्द्रयागकी परम्पराको मिटा देनेवाले, १८६ अमिताशी=गोवर्धन पूजामें समर्पित अपरिमित भोजन-राशिको आरोग लेनेवाले, १८७ शुनासीर-मोहप्रदः=इन्द्रको मोह प्रदान करनेवाले अथवा उनके मोहका खण्डन करनेवाले, १८८ बालरूपी=बालरूपधारी ॥ ३' ॥

१८९ गिरेः पूजकः=गिरिराज गोवर्धनकी पूजा करनेवाले, १९० नन्दपुत्रः=नन्दरायजीके बेटे, १९१ अगधः=गिरिधारी, १९२ कृपाढ्यः=कृपा करनेवाले, १९३ गोवर्धनोद्धारिनामा='गोवर्धनोद्धारी' नामवाले, १९४ वातवर्षाहरः=आँधी और वर्षाके कष्टको हर लेनेवाले, १९५ रक्षकः=व्रजवासियोंकी रक्षा करनेवाले, १९६ व्रजाधीशगोपाङ्गनाशङ्कितः=व्रजराज नन्द और गोपाङ्गनाओंमें ड रनेवाले, अथवा गोवर्धन उठानेके अलौकिक कर्मको देखकर व्रजराज नन्द तथा गोपियोंको जिनके प्रति यह शङ्का हुई थी कि ये साधारण गोप नहीं, साक्षात् नारायण हो सकते हैं, इस तरहकी शङ्काके पात्र ॥ ३६ ॥

१९७ अगेन्द्रोपरि शक्रपूज्यः=गिरिराज गोवर्धनके ऊपर इन्द्रके द्वारा पूजनीय, १९८ प्राक्स्तुतः=पहले जिनका स्तवन हुआ है, ऐसे, १९९ मृषाशिक्षकः=अपने ऊपर शङ्का करनेवाले नन्दादि गोपोंको व्यर्थकी शङ्काओंमें पड़ने देनेवाले, २०० देवगोविन्दनामा='गोविन्ददेव' नाम धारण करनेवाले, २०१ व्रजाधीशरक्षाकरः=व्रजराज नन्दकी रक्षा करनेवाले (उन्हें वरुणलोकसे छुड़ाकर लानेवाले), २०२ पाशिपूज्यः=पाशधारी वरुणके द्वारा पूजनीय, २०३ अनुगैर्गोपजैः दिव्यवैकुण्ठदर्शी=अनुगामी ग्वालबालोंके साथ जाकर उन्हें दिव्य वैकुण्ठधामका दर्शन करानेवाले ॥ ३७ ॥

२०४ चलच्चारुवंशीक्वणः=मनोहर वंशीकी ध्वनि ... और फैलानेवाले, २०५ कामिनीशः=गोप सुन्दरियोंके प्राणेश्वर, २०६ व्रजे कामिनीमोहदः=व्रजकी कामिनियोंको मोह प्रदान करनेवाले, २०७ कामरूप=कामदेवसे भी सुन्दर रूपवाले, २०८ रसाक्तः=रसपूर्ण, २०९ रसी रासकृत्=रसिक तथा रास करनेवाले रसकी निधि, २१० राधिकेशः=राधिकाके स्वामी, २११ महामोहदः=महान् मोह प्रदान करनेवाले, २१२ मानिनीमानहारी=मानिनियोंके मान हर लेनेवाले ॥ ३८ ॥

२१३ विहारी वरः=विहारी श्रेष्ठ पुरुष, २१४ मानहृत्=मान हर ... २१५ राधिकाङ्गः=श्रीराधिका जिनकी वामाङ्गस्व... २१६ धराद्वीपगः=भूमण्डलके सभी द्वीपोंमें ... २१७ खण्डचारी=विभिन्न खण्डोंमें ... २१८ वनस्थः=वनवासी, २१९ प्रियः=प्यारे ... २२० अष्टवक्रर्षिदृष्टः=अष्टावक्र ऋषिका दर्शन ... २२१ सराधः=राधिकाके साथ ... २२२ महामोक्षदः=महामोक्ष प्रदान ... २२३ प्रियार्थे पद्महारी=प्रियतमाके प्रसन्न ... कमलका फूल लानेवाले ॥ ३९ ॥

२२४ वटस्थः=वटवृक्षपर विराजमान, २२५ ... देवता, २२६ चन्दनाक्तः=चन्दनसे चर्चित, २२७ ... श्रीराधाके प्रति अधिक अनुरक्त, २२८ राधया व्रज... श्रीराधाके साथ व्रजमण्डलमें अवतीर्ण, २२९ महामोहहृत्=मोहनिवारक महामोह ... २३० गोपिकागीतकीर्तिः=गोपिका... कीर्तिवाले, २३१ रसस्थः=अपने ... २३२ पटी=पीताम्बरधारी, २... दुखिया नारियोंके रक्षक ॥ ४ ...

२३४ वने गोपिक... करनेवाले, २३५ ... गोपिकाओंको अपना ... २३६ कलाकार... २३७ काममोह... करनेवाले, २... रमानेवाले, २... विराग... प्रीतिद ... प्रसन्नता ... गाने ... स्वामी ... २४... २४९

३७६ अनन्तः=शेषनागस्वरूप, ३७७ मार=कामदेवावतार, ३७८ कार्ष्णि=कृष्णकुमार प्रद्युम्न, ३७९ काम=कामदेव, ३८० मनोज=काम, ३८१ शम्बरारि=शम्बरासुरके शत्रु कामदेव, ३८२ रतीशः=रतिके स्वामी, ३८३ रथी=रथारूढ, ३८४ मन्मथः=मनको मथ देनेवाले, ३८५ मीनकेतुः=मत्स्यचिह्न ध्वजासे युक्त, ३८६ शरी=बाणधारी, ३८७ स्मर=काम, ३८८ दर्पक=कामदेव, ३८९ मानहा=मानमर्दन करनेवाले, ३९० पञ्चबाण=पञ्चबाणधारी कामदेव (ये सब नाम प्रद्युम्नस्वरूप श्रीहरिके पर्यायवाची हैं) ॥ ५८ ॥

३९१ प्रिय सत्यभामापतिः=सत्यभामाके प्रिय पति, ३९२ यादवेश=यादवोंके स्वामी, ३९३ सत्राजित्प्रेमपूर=सत्राजित्के प्रेमको पूर्ण करनेवाले, ३९४ प्रहास=उत्कृष्ट हासवाले, ३९५ महारत्नद=महारत्न स्यमन्तकको ढूँढ़कर ला देनेवाले, ३९६ जाम्बवद्युद्धकारी=जाम्बवान्से युद्ध करनेवाले, ३९७ महाचक्रधृक्=महान् सुदर्शनचक्र धारण करनेवाले, ३९८ खड्गधृक्='नन्दक' नामक खड्ग धारण करनेवाले, ३९९ रामसंधि=बलरामजीके साथ संधि करनेवाले ॥ ५९ ॥

४०० विहारस्थित=लीला विहारपरायण, ४०१ पाण्डवप्रेमकारी=पाण्डवोंसे प्रेम करनेवाले, ४०२ कलिन्दाङ्गजामोहन=कालिन्दीके मनको मोह लेनेवाले, ४०३ खाण्डवार्थी=खाण्डव-वनको अग्निदेवके लिये अर्पित करनेके इच्छुक, ४०४ फाल्गुनप्रीतिकृत् सखा=अर्जुनसे प्रेम रखनेवाले उनके सखा, ४०५ नग्नजिन्=नाग्नजिन्नरा नलाका नग्न (शून्य) करनेवाले, ४०६ मित्रविन्दापतिः='मित्रविन्दा' नामवाली अवन्तीदेशकी राजकुमारीके पति, ४०७ नीडमार्थी=नील या नेवल इच्छुक ॥ ६० ॥

४०८ नृपप्रेमकृत्=राजा नग्नजित्से प्रेम करनेवाले, ४०९ सप्तरूपी गोजयी=सात रूप धारण करके सात बिगड़ैल बैलोंको एक ही साथ नाथकर काबूमें कर लेनेवाले, ४१० सत्यापति=नग्नजित्कुमारी सत्याके पति, ४११ पारिबर्ही=राजा नग्नजित्के द्वारा दिये दहेजको ग्रहण करनेवाले, ४१२ यशेष्टम्=पूर्ण, ४१३ नृपैः सत्युद्ध=सत्याको लेकर लौटते समय मार्गमें युद्धार्थ राजाओंद्वारा घेर लिये जानेवाले, ४१४ भद्रापति=भद्राके स्वामी, ४१५ मधुविलासी=मधुमास चैत्री पूर्णिमाको रासविलास करनेवाले, ४१६ मानिनीश=मानिनी जनोंके प्राणवल्लभ, ४१७ जनेश=प्रजाजनोंके स्वामी ॥ ६१ ॥

४१८ शुनासीरमोहावृत=इन्द्रके प्रति मोह (स्नेह एवं कृपाभाव) से युक्त, ४१९ सत्यभाय=पत्नी भार्यासे युक्त, ४२० सताक्ष्य=गरुडपर आरूढ, ४२१ मुरारि=मुर दैत्यका नाश करनेवाले, ४२२ पुरीसद्यभेत्ता=भौमासुरकी पुरीके दुर्गसमुदायका भेदन करनेवाले, ४२३ सुवीरशिर खण्डन=श्रेष्ठवीर असुरोंका मस्तक काटनेवाले, ४२४ दैत्यनाशी=दैत्योंका नाश करनेवाले, ४२५ शारी भौमहा=सायकधारी होकर भौमासुरका वध करनेवाले, ४२६ चण्डवेग=प्रचण्ड वेगशाली, ४२७ प्रवीर=उत्कृष्ट वीर ॥ ६२ ॥

४२८ धरासंस्तुत=पृथ्वीदेवीके मुखसे अपना गुणगान सुननेवाले, ४२९ कुण्डलच्छत्रहर्ता=अदितिके कुण्डल और इन्द्रके छत्रको भौमासुरकी राजधानीसे लेकर उन्हें स्वर्गलोकतक पहुँचानेवाले, ४३० महारत्नयुक्=महान् मणिरत्नोंसे सम्पन्न, ४३१ राजकन्याभिराम=सोलह हजार राजकुमारियोंके सुन्दर पति, ४३२ शचीपूजित=स्वर्गमें इन्द्रपत्नी शचीके द्वारा सम्मानित, ४३३ शक्रजित्=पारिजातके लिये होनेवाले युद्धमें इन्द्रको जीतनेवाले, ४३४ मानहन्ता=इन्द्रका अभिमान चूर्ण कर देनेवाले, ४३५ पारिजातापहारी रमेश=पारिजातका अपहरण करनेवाले रमावल्लभ ॥ ६३ ॥

४३६ गृही चामरैः शोभित=गृहस्थरूपमें रहकर चँवर डुलाये जानेके कारण अतिशय शोभायमान, ४३७ भीष्मकन्यापति=राजा भीष्मककी पुत्री रुक्मिणीके पति, ४३८ हास्यकृत्=रुक्मिणीके साथ परिहास करनेवाले, ४३९ मानिनीमानकारी=मानिनी रुक्मिणीको मान देनेवाले, ४४० रुक्मिणीवाक्पटु=रुक्मिणीकी अपनी बातें। रिझानेमें कुशल, ४४१ प्रेमगेह=प्रेमके आश्रय, ४४२ सतीमोहन=पतिव्रता सती मोह लेनेवाले, ४४३ कामदेवापरश्री=दूसरे कामदेवके समान मनोरम सुषमासे सम्पन्न ॥ ६४ ॥

४४४ सुदेष्ण='सुदेष्ण' नामक श्रीहरिपुत्र, ४४५ सुचारु=सुचारु, ४४६ चारुदेष्ण=चारुदेष्ण, ४४७ चारुदेह=चारुदेह, ४४८ बली चारुगुप्त=बली, चारुगुप्त, ४४९ सुतो भद्रचारु=पुत्र भद्रचारु

श्रीकृष्ण राधाका वृन्दावनमें विचरण

६९१ पुलस्त्यः=पुलस्त्य, ६९२ भृगुः=भृगु, ६९३ ब्रह्मरातः=ब्रह्मरात, वसिष्ठः=वसिष्ठ, ६९४ नरनारायणः=नर-नारायण, ६९५ दत्तः=दत्तात्रेय, ६९६ पाणिनिः=व्याकरण-सूत्रकार पाणिनि, ६९७ पिङ्गलः=छन्द सूत्रकार महर्षि पिङ्गल, ६९८ भाष्यकारः=महाभाष्यकार पतञ्जलि ॥ ९१ ॥

६९९ कात्यायनः=वार्तिककार कात्यायन, ७०० विप्रपातञ्जलिः=ब्राह्मण पतञ्जलि, ७०१ गर्गः=यदुकुलके आचार्य गर्ग, ७०२ गुरुः=बृहस्पति, ७०३ गीष्पतिः=वाचस्पति बृहस्पति, ७०४ गौतमीशः=गौतमीके स्वामी, ७०५ मुनि जाजलिः=महर्षि जाजलि, ७०६ कश्यपः=कश्यप, ७०७ गालवः=गालव, ७०८ द्विज सोभरिः=ब्रह्मर्षि सौभरि, ७०९ ऋष्यशृङ्गः=ऋष्यशृङ्ग, ७१० कण्वः=कण्व ॥ ९२ ॥

७११ त्रितः=त्रित, ७१२ एकतः=एकत, ७१३ जातूकर्ण्यः=जातूकर्ण्य, ७१४ घनः=घन, ७१५ कर्दमस्यात्मजः=कर्दमपुत्र कपिल, ७१६ कर्दमः=कपिलके पिता महर्षि कर्दम, ७१७ भार्गवः=भृगुपुत्र च्यवन, ७१८ कौत्सः=कौत्स, ७१९ आरुणिः=आरुणि, ७२० शुचि पिप्पलादः=पवित्र पिप्पलाद मुनि, ७२१ मृकण्डस्य पुत्रः=मार्कण्डेय ॥ ९३ ॥

७२२ पैलः=पैल, ७२३ जैमिनिः=जैमिनि, ७२४ सत् सुमन्तुः=सत्सुमन्तु, ७२५ वरो गाङ्गलः=श्रेष्ठ गाङ्गल मुनि, ७२६ स्फोटायनः फलादः=फल खानेवाले स्फोटायन, ७२७ सदापूजित ब्राह्मणः=नित्यपूजित ब्राह्मणस्वरूप, ७२८ सत्स्वरूपी=सत्स्वरूपधारी, ७२९ महामोहनाशः मुनीशः=महान् मोहका नाश करनेवाले मुनीश्वर, ७३० प्रागमरः=पूर्वदेवता जो उपेन्द्रावतारमें देवतारूपमें थे ॥ ९४ ॥

७३१ मुनीशस्तुतः=मुनीश्वरोंद्वारा संस्तुत, ७३२ शौरिविज्ञानदाता=वसुदेवजीको ज्ञान देनेवाले, ७३३ महायज्ञकृत्=महान् यज्ञ करनेवाले, ७३४ आभृथस्नानपूज्यः=यज्ञान्तमें किये जानेवाले अवभृथस्नानके द्वारा पूजनीय, ७३५ सदा दक्षिणादः=सदा दक्षिणा देनेवाले, ७३६ नृपैः पारिबर्ही=राजाओंसे भेंट लेनेवाले, ७३७ नन्दानन्दकः=नन्दको आनन्द देनेवाले, ७३८ द्वारकागेहदर्शी=द्वारकापुरीके भवनोंको देखनेवाले ॥ ९५ ॥

७३९ महाज्ञानदः=महान् ज्ञान प्रदान करनेवाले, ७४० देवकीपुत्रदः=देवकीको उनके मरे हुए पुत्र लाकर देनेवाले, ७४१ असुरैः पूजितः=असुरोंसे पूजित, ७४२ इन्द्रसेनादृतः=राजा बलिसे सम्मानित, ७४३ सदा फाल्गुनप्रीतिकृत्=अर्जुनसे सदा प्रेम करनेवाले, ७४४ सत्सुभद्राविवाहे द्विपाश्वप्रदः=सुभद्राके शुभ विवाहमें दहेजके रूपमें हाथी, घोड़े देनेवाले, ७४५ मानयानः=वरपक्षको सम्मानित करनेवाले अथवा मानयुक्त वाहन अर्पित करनेवाले ॥ ९६ ॥

७४६ भुवः दर्शकः=भूमण्डलको देखने और दिखानेवाले, ७४७ मैथिलेन प्रयुक्तः=मिथिलापति राजा बहुलाश्व तथा मिथिलानिवासी ब्राह्मण श्रुतदेवके एक ही समय दर्शन देनेके लिये प्रार्थित, ७४८ आशु ब्राह्मणैः सह राजा स्थित ब्राह्मणैश्च स्थितः=उसी क्षण एक ही साथ राजा बहुलाश्वके साथ विराजमान तथा श्रुतदेव ब्राह्मणके साथ ब्राह्मणोंमें विराजमान, ७४९ मैथिले कृती=मैथिल राजा और मैथिल ब्राह्मणके प्रति कर्तव्यका पालन करनेवाले, ७५० लोकवेदोपदेशी=लोक और वेदका उपदेश करनेवाले, ७५१ सदा वेदवाक्यैः स्तुतः=सदा वेदवचनोंद्वारा स्तुत, ७५२ शेषशायी=शेषनागकी शय्यापर शयन करनेवाले ॥ ९७ ॥

७५३ अमरेषु प्रमाणं परायणः=भृगु आदि ब्राह्मणोंकी परीक्षा करके सब देवताओंमें श्रेष्ठरूपसे जिनका वरण किया है, ७५४ भृगुप्रार्थितः=भृगुसे प्रार्थित, ७५५ दैत्यहा=दैत्यनाशक, ७५६ इतरार्थी=भस्मासुरसे भस्म होनेसे शिवजीकी रक्षा करनेवाले, ७५७ अर्जुनस्य सखा=अर्जुनके मित्र, ७५८ अर्जुनस्यापि मानप्रहारी=अर्जुनका भी अभिमान भङ्ग करनेवाले, ७५९ विप्रपुत्रप्रदः=ब्राह्मणको पुत्र प्रदान करनेवाले, ७६० धामगन्ता=ब्राह्मणके पुत्रोंको लानेके लिये अपने दिव्यधाममें जानेवाले ॥ ९८ ॥

७६१ मार्यानिर्विहारस्थितः=अपनी भार्यास्वरूपा मधुपुरीकी स्त्रियोंके साथ समुद्रमें जलविहार करनेवाले, ७६२ कञ्जगाङ्गः=कमलके समान अङ्ग है, ७६३ महामोहदायनिद्र्याभिगमः=महामोहमय दानवका दमन (नष्ट) हुए स्त्रीके भी मनका आकर्षित करनेवाले, ७६४ यदु उग्रसेन नृपः=[illegible] ७६५ अमृतः=अमृत [illegible]

८५४ सदैक=सदा एकमात्र अद्वितीय, ८५५ अनेक=अनेक रूपोंमें प्रकट, ८५६ प्रभापूरिताङ्ग=प्रकाशपूर्ण अङ्गवाले, ८५७ योगमायाकर=योगमायाके उद्भावक, ८५८ कालजित्=कालविजयी, ८५९ सुदृष्टि=उत्तम दृष्टिवाले, ८६० महत्तत्त्वरूप=महत्तत्त्वस्वरूप, ८६१ प्रजात=उत्कृष्ट अवतारधारी, ८६२ कूटस्थ=कूटस्थ (निर्विकार), ८६३ आद्याङ्कुर=विश्ववृक्षके प्रथम अङ्कुर, ब्रह्मा, ८६४ वृक्षरूप=विश्ववृक्षरूप ॥ १०८ ॥

८६५ विकारस्थित=विकारों (कार्यों) में भी कारणरूपसे विद्यमान, ८६६ वैकारिकस्तैजसस्तामसश्च अहङ्कार=वैकारिक, तैजस और तामस (अथवा सात्त्विक, राजस, तामस) त्रिविध अहङ्काररूप, ८६७ नभ=आकाशस्वरूप, ८६८ दिक्=दिशास्वरूप, ८६९ समीर=वायुरूप, ८७० सूर्य=सूर्यस्वरूप, ८७१ प्रचेतोऽश्विवह्नि=वरुण, अश्विनीकुमार एवं अग्निस्वरूप, ८७२ शक्र=इन्द्र, ८७३ उपेन्द्र=भगवान् वामन, ८७४ मित्र=मित्रदेवता ॥ १०९ ॥

८७५ श्रुति=श्रवणेन्द्रिय ८७६ त्वक्=त्वगिन्द्रिय, ८७७ दृक्=नेत्रेन्द्रिय, ८७८ घ्राण=नासिकेन्द्रिय, ८७९ जिह्वा=रसनेन्द्रिय, ८८० गिर=वागिन्द्रिय, ८८१ भुजा=हस्तस्वरूप, ८८२ मेढ्र=जननेन्द्रियरूप, ८८३ पायु='पायु' नामक कर्मेन्द्रिय (गुदा) रूप, ८८४ अङ्घ्रि='चरण' नामक कर्मेन्द्रियरूप, ८८५ सचेष्ट=चेष्टाशील, ८८६ धरा=पृथ्वी, ८८७ व्योम=आकाश, ८८८ वा=जल, ८८९ मारुत=वायु, ८९० तेज=अग्नि (पञ्चभूतरूप), ८९१ रूपम्=रूप, ८९२ रस=रस, ८९३ गन्ध=गन्ध, ८९४ शब्द=शब्द, ८९५ स्पर्श=स्पर्श विषयरूप ॥ ११० ॥

८९६ सचित्त=चित्तयुक्त, ८९७ बुद्धि=बुद्धि, ८९८ विराट्=विराट्, ८९९ कालरूप=कालस्वरूप, ९०० वासुदेव=सर्वव्यापी भगवान्, ९०१ जगत्पद=जगत्के पद, ९०२ अण्डेशयान=ब्रह्माण्डके गर्भमें शयन करनेवाले ब्रह्माजी, ९०३ सशेष=शेषके साथ रहनेवाले (अर्थात् शेषशय्याशायी), ९०४ सहस्रस्वरूप=सहस्रों स्वरूप धारण करनेवाले, ९०५ रमानाथ=लक्ष्मीपति, ९०६ आद्योऽवतार=ब्रह्मारूपमें जिनका प्रथम बार अवतार हुआ, वे श्रीहरि ॥ १११ ॥

९०७ सदा सर्गकृत्=विधाताके रूपमें सदा सृष्टि करनेवाले, ९०८ पद्मज=दिव्य कमलसे उत्पन्न ब्रह्मा, ९०९ कर्मकर्ता=निरन्तर कर्म करनेवाले, ९१० नाभिपद्मोद्भव=नारायणके नाभिकमलसे प्रकट ब्रह्मा, ९११ दिव्यवर्ण=दिव्य कान्तिसे सम्पन्न, ९१२ कवि=त्रिकालदर्शी अथवा विश्वरूप काव्यके निर्माता आदिकवि, ९१३ लोककृत्=जगत्स्रष्टा, ९१४ कालकृत्=कालके निर्माता, ९१५ सूर्यरूप=सूर्यस्वरूप, ९१६ अनिमेष=निमेषरहित, ९१७ अभव=जन्मरहित, ९१८ वत्सरान्त=संवत्सरके स्वस्थान, ९१९ महीयान्=महान्से भी अत्यन्त महान् ॥ ११२ ॥

९२० तिथि=तिथिस्वरूप, ९२१ वार=दिन, ९२२ नक्षत्रम्=नक्षत्र, ९२३ योग=योग, ९२४ लग्न=लग्नस्वरूप, ९२५ मास=मासस्वरूप, ९२६ घटी=अर्धमुहूर्तरूप, ९२७ क्षण=क्षणरूप, ९२८ काष्ठिका=काष्ठा, ९२९ मुहूर्त=दो घड़ीका समय, ९३० याम=प्रहर, ९३१ प्रहा=प्रहरस्वरूप, ९३२ यामिनी=रात्रिरूप, ९३३ दिनम्=दिनरूप, ९३४ ऋक्षमालागत=नक्षत्रपङ्क्तियोंमें गमन करनेवाले ग्रहरूप, ९३५ देवपुत्र=वसुदेवनन्दन ॥ ११३ ॥

९३६ कृत=सत्ययुगरूप, ९३७ त्रेतया=त्रेता, ९३८ द्वापर=द्वापररूप, ९३९ असौ कलि=यह कलियुग, ९४० युगानां सहस्रम्=सहस्र चतुर्युग (ब्रह्माजीका एक दिन), ९४१ मन्वन्तरम्=मन्वन्तरकाल, ९४२ लय=संहाररूप, ९४३ पालनम्=पालनकर्मस्वरूप, ९४४ सत्कृति=उत्तम सृष्टिरूप, ९४५ परार्द्धम्=परार्द्धकालरूप, ९४६ सदोत्पत्तिकृत्=सदा सृष्टि करनेवाले, ९४७ द्व्यक्षर ब्रह्मरूप=दो अक्षरवाला 'कृष्ण' नामक ब्रह्मस्वरूप ॥ ११४ ॥

९४८ रुद्रसर्ग=रुद्रसर्ग, ९४९ कौमारसर्ग=कौमारसर्ग, ९५० मुनेः सर्गकृत्=मुनिनाथ सर्ग, ९५१ देवकृत्=देवसर्गके रचयिता, ९५२ प्राकृत=प्राकृतसर्गरूपी, ९५३ श्रुति=वेद, ९५४ स्मृति=धर्मशास्त्र, ९५५ स्तोत्रम्=स्तुति, ९५६ पुराणम्=पुराण, ९५७ धनुर्वेद=धनुर्वेद, ९५८ इज्या=यज्ञ, ९५९ गान्धर्व वेद=गान्धर्ववेद (संगीत शास्त्र) ॥ ११५ ॥

९६० विधाता=ब्रह्मा, ९६१ नारायण

१ सर्वोत्पत्ति। २ सम्पूर्ण ...

साठवाँ अध्याय

कौरवोंके संहार, पाण्डवोंके स्वर्गगमन तथा यादवोंके संहार आदिका संक्षिप्त वृत्तान्त, श्रीराधा तथा व्रजवासियोंसहित भगवान् श्रीकृष्णका गोलोकधाममें गमन

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन् ! व्यासजीके मुखसे इस प्रकार श्रीकृष्ण-सहस्रनामका निरूपण सुनकर यादवेन्द्र उग्रसेनने उनकी पूजा करके भगवान् श्रीकृष्णमें भक्तिपूर्वक मन लगाया ॥ १ ॥

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णने मिथिलामें जाकर राजा बहुलाश्व तथा श्रुतदेवको दर्शन दिया । इसके बाद वे द्वारकापुरीको लौट आये । तत्पश्चात् समस्त पाण्डव अपनी पत्नी द्रौपदीके साथ द्वारकासे निकलकर वन-वनमें विचरने लगे । नरेश्वर ! वनवास और अज्ञातवासका कष्ट भोगकर वे सब सेनासहित विराटनगरमें एकत्र हुए । इधर श्रीकृष्णके प्रार्थना करनेपर भी समस्त कौरवोंने पाण्डवोंको उनके राज्यके आधेके आधेका आधा भी नहीं दिया । तब पाण्डवों और कौरवोंमें युद्ध होना अनिवार्य हो गया । यह जानकर श्रीकृष्णने हथियार न उठानेकी प्रतिज्ञा कर ली और बलरामजी तीर्थयात्राको चले गये । उसी यात्रामें उन्होंने रोमहर्षण सूत और बल्वलको मार डाला । इसके बाद समस्त कौरव और पाण्डव धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्रमें प्रविष्ट हो परस्पर युद्ध करने लगे । श्रीकृष्णकी कृपासे पाण्डवोंकी विजय हुई तथा पापी और अपराधी सब कौरव महाभारत-युद्धमें मारे गये ॥२–८॥

नरेश्वर ! तदनन्तर धर्मराज युधिष्ठिरने नौ वर्षोंतक राज्य किया । इस बीचमें उन्होंने तीन अश्वमेध यज्ञ किये, जिससे वे ज्ञाति-बन्धुओंके वधके दोषसे शुद्ध हुए । राजन् ! इसके बाद एक दिन द्वारकामें श्रीकृष्णकी इच्छासे ही समस्त यादवोंके लिये ब्रह्मर्षियोंका महान् शाप प्राप्त हुआ । उसके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्णने शरणागत भक्त उद्धवको अश्वत्थ वृक्षके नीचे परम उत्तम श्रीमद्भागवतधर्मका उपदेश दिया । कुछ दिनोंके बाद यादवोंमें परस्पर संग्राम छिड़ गया । वे प्रभासक्षेत्रमें नाना प्रकारके शस्त्रोंद्वारा एक-दूसरेपर प्रहार करके मर गये । बलरामजी मानव शरीरको छोड़कर अपने धामको चले गये । वहाँ देवताओंको आया देख श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये । व्रजमें आकर श्रीहरि नन्द, यशोदा, राधिका तथा गोपियोंसहित गोपोंसे मिले और उन प्रेमी भगवान्‌ने भक्त प्रियजनोंसे प्रेमपूर्वक इस प्रकार कहा ॥ ९–१४ ॥

श्रीकृष्ण बोले—नन्द और यशोदे ! अब तुम मुझमें पुत्रबुद्धि छोड़कर समस्त गोकुलवासियोंके साथ मेरे परमधाम गोलोकको जाओ । अब आगे सबको दुःख देनेवाला घोर कलियुग आयेगा, जिसमें मनुष्य प्रायः पापी हो जायँगे। इसमें संशय नहीं है । उस समय परस्पर सम्पर्क स्थापित करनेके लिये स्त्री-पुरुषका तथा वर्णका कोई नियम नहीं रह जायगा । इसलिये जरा और मृत्युको हर लेनेवाले मेरे उत्तम गोलोकमें तुमलोग शीघ्र चले जाओ ॥ १५–१७ ॥

श्रीकृष्ण इस प्रकार कह ही रहे थे कि गोलोकसे एक परम अद्भुत रथ उतर आया, जिसे गोपोंने बड़ी प्रसन्नताके साथ देखा । उसका विस्तार पाँच योजनका था और ऊँचाई भी उतनी ही थी । वह वज्रमणि (हीरे) के समान निर्मल और मुक्ता-रत्नोंसे विभूषित था । उसमें नौ लाख मन्दिर थे और उन घरोंमें मणिमय दीप जल रहे थे । उस रथमें दो हजार पहिये लगे थे और दो ही हजार घोड़े जुते हुए थे । उस रथपर महीन वस्त्रका आच्छादन (परदा) पड़ा था । करोड़ों सखियाँ उसे घेरे हुए थीं ॥ १८–२०½ ॥

राजन् ! इसी समय श्रीकृष्णके शरीरसे करोड़ों कामदेवोंके समान सुन्दर चार भुजाधारी 'श्रीविष्णु' प्रकट हुए, जिन्होंने शङ्ख और चक्र धारण कर रखे थे । वे जगदीश्वर श्रीमान् विष्णु लक्ष्मीके साथ एक सुन्दर रथपर आरूढ हो शीघ्र ही क्षीरसागरको चल दिये । इसी प्रकार 'नारायण'-रूपधारी भगवान् श्रीकृष्ण हरि महालक्ष्मीके साथ गरुड़पर बैठकर वैकुण्ठधामको चले गये । नरेश्वर ! इसके बाद श्रीकृष्ण हरि 'नर और नारायण'—दो ऋषियोंके रूपमें अभिव्यक्त हो मानवोंके कल्याणार्थ बदरिकाश्रमको गये ॥ २१–२४½ ॥

तदनन्तर साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण श्रीराधाके साथ गोलोकसे आये हुए रथपर आरूढ हुए । नन्द आदि समस्त गोप तथा यशोदा आदि समस्त गोपियाँ सब-के-सब वहाँ भौतिक शरीरका त्याग करके दिव्यरूपधारी हो गये । तब गोपालक भगवान् श्रीकृष्ण नन्द आदिको उस दिव्य रथपर बिठाकर गोकुलके साथ शीघ्र ही गोलोकधामको चले गये । व्रजवासियोंने बाहर आकर उन सबके दिव्य शरीरोंको

चलकर भूतलपर घोर कलियुग आनेवाला है। मुने! उसमें मनुष्य कैसे होंगे, यह बताइये! आप भविष्यको भी जानते हैं। अतः मैं आपसे पूछता हूँ और आपको प्रणाम करता हूँ॥ ७८॥

श्रीगर्गजीने कहा—राजन्! कलियुगके दस हजार वर्ष बीतनेतक भगवान् जगन्नाथ भूतलपर स्थित रहते हैं। (उसके बाद सर्वत्र विद्यमान होते हुए भी अविद्यमानकी भाँति उसके ऊपर नियन्त्रण करना छोड़ देते हैं।) उसके आधे समय (पाँच हजार वर्ष) तक गङ्गाजीके जलमें उसकी अधिष्ठात्री देवी गङ्गाका निवास रहेगा। उससे आधे समय (ढाई हजार वर्षों) तक ग्रामदेवता रहेंगे (उसके बाद उनका प्रभाव कम हो जायगा)। तदनन्तर कलिसे मोहित होकर सबलोग पापी हो जायँगे; अतः नरकोंमें गिरेंगे। सबकी आयु बहुत कम हो जायगी। ब्राह्मण ब्राह्मणसे मूल्य लेकर उसे अपनी कन्या देंगे। क्षत्रियलोग अत्यन्त लोलुप होकर अपनी पुत्रीको मार डालेंगे। वैश्य ब्राह्मणके धनका हरण करनेमें तत्पर हो झूठा व्यापार करेंगे। शूद्रलोग म्लेच्छोंके साथसे ब्राह्मणोंको दूषित करेंगे। ब्राह्मण शास्त्रज्ञानसे शून्य, क्षत्रिय राज्याधिकारसे वञ्चित, वैश्य निर्धन तथा शूद्र अपने स्वामीको दुःख देनेवाले होंगे। सबलोग धर्म-कर्मसे दूर रहकर दिनमें ही मैथुन करेंगे। स्त्रियाँ स्वेच्छाचारिणी और पुरुष योनिलम्पट होंगे। देवताओं, पितरों तथा श्रुतियोंका, भगवान् विष्णुका, वैष्णवजनोंका, तुलसीका तथा गौओंका पूजन एवं सेवा-सत्कार कलिमोहित मनुष्य प्रायः नहीं करेंगे। लोग वर्णाश्रमि, परस्त्रियोंमें तथा पराये धनमें आसक्त होंगे। प्रायः सब मनुष्य शूद्रके समान एक वर्ण हो जायँगे। निरन्तर ओले और पत्थरोंकी वर्षासे पृथ्वी सस्यहीन होगी। खेती-बारी चौपट हो जायगी। वृक्षोंमें फल नहीं लगेंगे। नदियोंका पानी सूख जायगा। प्रजा राजाको मारेगी और राजा प्रजाको॥ ९–१८॥

राजा वज्रनाभने पूछा—विप्रेन्द्र! आप भूत और भविष्यके ज्ञाताओंमें सर्वश्रेष्ठ हैं। अतः मुझे यह बताइये कि कलियुगमें जीवोंकी मुक्ति किस उपायसे होगी?॥ १९॥

गर्गजीने कहा—राजा युधिष्ठिर, विक्रमादित्य, शालिवाहन, विजयाभिनन्दन, राजा नागार्जुन तथा भगवान् कल्कि—ये छः संवत्सर प्रवर्तक होंगे। ये ही पृथ्वीपर प्रतिष्ठित हो कलिमें धर्मकी स्थापना करते हैं। [illegible] युधिष्ठिर तो हो चुके। शेष राजा भविष्यकालमें यथा समय होंगे। वे चक्रवर्ती होकर अधर्मका नाश करेंगे। वामन, ब्रह्मा, शेषनाग और सनकादि—ये भगवान् विष्णुके आदेशसे धर्मकी स्थापना एवं रक्षाके लिये कलियुगमें ब्राह्मण होंगे। वामनके अंशसे विष्णुस्वामी और ब्रह्माजीके अंशसे मध्वाचार्य होंगे। शेषनागका अंश रामानुजाचार्यके रूपमें प्रकट होगा तथा सनकादिका अंश निम्बार्काचार्यके रूपमें। ये कलियुगमें सम्प्रदायके प्रवर्तक आचार्य होंगे। ये चारों विक्रम संवत्‌के प्रारम्भिक कालमें ही होंगे और इस भूतलको अपने सम्पर्कसे पावन बनायेंगे। सम्प्रदाय विहीन मन्त्र निष्फल माने गये हैं, अतः सभी मनुष्योंको सम्प्रदायके मार्गसे ही चलना चाहिये। इन सम्प्रदायोंमें पापोंका नाश करनेवाली श्रीकृष्ण-कथा होती है। ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ नारायणपरायण वैष्णवजन इन कथाओंका प्रवचन एवं प्रचार करते हैं। सत्ययुगमें किसीके किये हुए पापसे सारा देश लिप्त होता है। त्रेतामें ग्राम, द्वापरमें कुल और कलियुगमें केवल कर्ता ही उस पापसे लिप्त होता है। सत्ययुगमें ध्यान, त्रेतामें यज्ञोंद्वारा यजन और द्वापरमें भगवान्‌की अर्चना करके मनुष्य जिस पुण्यफलका भागी होता है, उसीको कलियुगमें केवल 'केशव'का नाम कीर्तन करके मनुष्य पा लेता है। सत्ययुगमें जो सत्कर्म दस वर्षोंमें सफल होता है, वह त्रेतामें एक ही वर्षमें, द्वापरमें एक ही मासमें तथा कलियुगमें केवल एक दिन-रातमें सफल हो जाता है। सब धर्मोंसे रहित घोर कलियुग प्राप्त होनेपर जो मानव भगवान् वासुदेवकी आराधनामें तत्पर रहते हैं, वे निस्संदेह कृतार्थ हो जाते हैं। नरेश्वर! मनुष्योंमें वे लोग निश्चय ही सौभाग्यशाली और कृतार्थ हैं, जो कलियुगमें श्रीहरिके नामोंका स्मरण करते और कराते हैं। 'कृष्' शब्द 'सत्ता' का वाचक है और 'णकार' 'आनन्द' का। इसलिये जो [illegible] परब्रह्म है, वही 'कृष्ण' कहा गया है। [illegible] वेदोंका [illegible] तथा [illegible] 'कृष्ण'—ये दो अक्षर ही [illegible] हैं। [illegible] दूसरा कोई [illegible] नहीं है। [illegible] मनुष्य [illegible] पृथ्वी [illegible] है। [illegible] [illegible] रहता है। [illegible] देता नहीं [illegible] है। [illegible] और [illegible]

प्राप्त होती है। राजेन्द्र! दही, दूध, मिठाई, वूट, ककड़ी, बथुआ, कमलगट्टा, आम, सीताफल, गङ्गाफल, नींबू, पपीता, अनार, सिंघाड़ा, नारंगी, सेंधानमक, अमरूद, अदरख, तूत, बेर, जामुन, आँवला, परवल, भिङ्डी, रतालू, शकरकन्द, गन्ना और दाख आदि तथा अन्याय पवित्र फल एकादशीको एक बार खाने चाहिये। दिनका तीसरा पहर व्यतीत होनेपर एक सेर फलका आधा भाग तो ब्राह्मणको दान कर देना चाहिये और आधा अपने लिये भोजनके काममें लेना चाहिये। एकादशीको एक बार फल खाय और दो बार पानी पीये। भगवान् विष्णुका पूजन करके रातमें जागरण करे। जो मनुष्य एकादशीको दो बार या तीन बार फलाहार करता है, उसको कोई फल नहीं मिलता। पन्द्रह दिनोंतक अन्न खानेसे जो पाप लगता है, वह सब-का-सब एकादशीके उपवाससे नष्ट हो जाता है। भोजनका ब्राह्मणको दान करके स्वयं उपवास करे और एकादशीका माहात्म्य सुने। ऐसा करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। एकादशीके व्रतसे धनार्थी धन पाता है, पुत्रार्थीको पुत्र प्राप्त होता है और मोक्षार्थी मोक्ष पा लेता है॥४९-६१॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'एकादशीका माहात्म्य' नामक इकसठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ६१॥

बासठवाँ अध्याय

गुरु और गङ्गाकी महिमा, श्रीवज्रनाभद्वारा कृतज्ञता-प्रकाशन और गुरुदेवका पूजन तथा श्रीकृष्णके भजन चिन्तन एवं गर्गसंहिताका माहात्म्य

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! जिसने पूर्वजन्ममें अक्षय तप किया है, इस लोकमें उसीकी गुरुके प्रति भक्ति होती है। जो समर्थ होकर भी गुरुकी सेवा नहीं करता, अपने गुरुको नहीं मानता, वह सदा 'कुम्भीपाक' नरकमें गिरता है। जो गुरुके प्रति भक्ति न रखनेवाले पुरुषको अपने सामने आया हुआ देख लेता है, उसे गोहत्याका पाप लगता है। वह गङ्गा और यमुनामें स्नान करके उस पापसे शुद्ध होता है। शिष्यको जहाँ-जहाँ जितना द्रव्य उपलब्ध होता है, उसका दशांश भाग गुरुका समझना चाहिये। हमारे घरके द्रव्यमें भी इसी तरह दशांश भाग गुरुका है। जो शिष्य कपटपूर्वक उसे माँगता है, गुरुको अल्पांश निकालकर नहीं देता है, वह 'महारौरव' नरकमें जाता है और सब सुखोंसे वञ्चित हो जाता है॥ १-५॥

राजन्! जो नित्य श्रीहरिमें यथाशक्ति करते हैं, वे अनायास ही संसार-सागरको पार कर जाते हैं। शाति (कुलीनता), विद्या, महत्त्व, रूप और यौवन—इसका यत्नपूर्वक परित्याग करो; क्योंकि ये पाँच भक्तिमार्गके कण्टक हैं। राजेन्द्र! जो भक्तिभावसे भगवान् श्रीकृष्णका प्रसाद और चरणोदक लेते हैं, वे इस पृथ्वीको पावन करनेवाले होते हैं, इसमें संशय नहीं है। गङ्गा पापका, चन्द्रमा तापका और कल्पवृक्ष दीनताका अभिशापका अपहरण करता है, परंतु साधु-संग पाप, ताप और दैन्य—तीनोंका तत्काल नाश कर देता है। मनुष्योंके पितृगण पिण्ड पानेकी इच्छासे तभीतक संसारमें चक्कर लगाते हैं, जबतक कि उनके कुलमें कृष्णभक्त पुत्र जन्म नहीं लेता। वह कैसा गुरु, कैसा पिता, कैसा बेटा, कैसा मित्र, कैसा राजा और कैसा बन्धु है, जो श्रीहरिमें मन नहीं लगा देता! जो विद्या, धन, देह कलाका अभिमान रखनेवाले हैं तथा रूप आदि विषय एवं स्त्री पुत्रोंमें नित्यबुद्धि रखते हैं और जो फलकी कामनासे अन्य देवताओंकी ओर देखते रहते हैं, भगवान् केशवका भजन नहीं करते हैं, वे जीते-जी मरे हुएके समान हैं*॥ ६-१२॥

---

* भक्त्या कृष्णस्य राजेन्द्र प्रसादं चरणोदकम्।
ये गृह्णन्ति भवेद्भूपावना नात्र संशयः॥
गङ्गा पापं शशी तापं दैन्यं कल्पतरुर्हरेत्।
पापं तापं तथा दैन्यं सद्यः साधुसमागमः॥
तावद् भ्रमन्ति संसारे पितरः पिण्डतत्पराः।
यावद् वंशे सुतः कृष्णभक्तियुक्तो न जायते॥
स किं गुरुः स किं तातः किं पुत्रः स किं सखा।
स किं राजा स किं बन्धुर्न दद्याद् यो हरौ मतिम्॥
विद्याधनगृहस्वाभिमानिनो
[illegible]
[illegible]
[illegible]
(अ० ६२ । ८-१२)

...ने स्त्रीहत्यारा और गोहत्यारा भी समस्त पातकोंसे मुक्त हो जाता है। इसके सुननेमात्रसे ब्राह्मण विद्याको, क्षत्रिय राज्यको, वैश्य धनको और शूद्र धर्मको प्राप्त करता है। जैसे नदियोंमें गङ्गा श्रेष्ठ हैं, देवताओंमें भगवान् श्रीकृष्ण श्रेष्ठ हैं तथा तीर्थोंमें तीर्थराज प्रयाग उत्तम है, उसी प्रकार समस्त संहिताओंमें यह अश्वमेधखण्डकी संहिता सर्वोत्तम है। इसका श्रवण करनेमात्रसे श्रेष्ठ मनुष्यको बड़ी तृप्ति प्राप्त होती है। मुने! जैसे भागवतके अध्ययनसे दूसरे शास्त्रोंमें आसक्ति नहीं होती, उसी प्रकार इसके स्वाध्यायसे भी कहीं अन्यत्र आसक्ति नहीं रहती है। अतः महर्षियो! भक्तोंका दुःख दूर करनेवाले परमात्मा श्रीकृष्णके चरणारविन्दका अपने कल्याणके लिये भजन करें ॥ १८–४६ ॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—शौनक आदि मुनियोंने इस प्रकार श्रीहरिके चरित्रको सुनकर प्रसन्नचित्त हो सूतपुत्र उग्रश्रवाकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। करुणानिधे! नारायण! मैं दुःखपारावारमें डूबकर अत्यन्त दयनीय एवं दुखी हो गया हूँ। कालरूपी ग्राहने मेरे अङ्ग-अङ्गको जकड़ लिया है। आप मेरा उद्धार कीजिये, आपको नमस्कार है। साधुशिरोमणे! गुरुदेव! आप अनाथोंके वल्लभ हैं, हमलोगोंपर अनुग्रह कीजिये। जैसे जगदीश्वर तीनों लोकोंको अभय देते हैं, उसी प्रकार आप मुझे भी अनुग्रह प्रदान करें। श्रीगुरुदेवकी कृपा और श्रीमदनमोहनजीकी सेवासे पुण्यसे जैसा मेरी वाणीसे बन सका है, वैसा श्रीहरिका चरित्र मैंने कहा है। वाल्मीकि आदि तथा वेदव्यास आदि महर्षियो! आप मेरी इस तुच्छ कवितापर दृष्टिपात करें और मेरे अपराधको क्षमा कर दें। जो व्रजके पालक, नूतन जलधरके समान श्याम रंगवाले, देवताओंके स्वामी, भक्तोंकी पीड़ा दूर करनेवाले तथा परमार्थस्वरूप हैं, उन अनन्तदेव श्रीराधावल्लभ माधव श्रीकृष्णको मैं मस्तक झुकाकर मनसे और भक्तिभावसे प्रणाम करता हूँ*। मेरे आत्मा श्रीकृष्णके इस चरित्र-ग्रन्थमें सत्ताईस सौ सत्तासी श्लोक हैं, जिनमें उनके लीलाचरित्रोंका गान किया गया है ॥ ४७–५३ ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें अश्वमेधखण्डके अन्तर्गत 'सुमेरु-सम्पूर्ति' नामक बासठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६२ ॥

यह गर्गसंहिता सम्पूर्ण हुई

शुभं भूयात्

* [illegible] ॥
([illegible])

दूसरा अध्याय

नारदजीकी प्रेरणासे गर्गद्वारा संहिताकी रचना, संतानके लिये दुखी राजा प्रतिबाहुके पास महर्षि शाण्डिल्यका आगमन

महादेवजीने कहा—देवर्षि नारदका कथन सुनकर मुनि गर्गाचार्य विनयसे झुककर हँसते हुए यों कहने लगे॥ १॥

गर्गजी बोले—ब्रह्मन्! आपकी कही हुई बात यद्यपि सब हसे अत्यन्त कठिन है—यह स्पष्ट है, तथापि यदि आप ा करेंगे तो मैं उसका पालन करूँगा॥ २॥

सुमङ्गले! यों कहे जानेपर भगवान् नारद हर्षातिरेकसे नी वीणा बजाते और गाते हुए ब्रह्मलोकमें चले गये। नन्तर गर्गाचलपर आकर कविश्रेष्ठ गर्गने इस महान् अद्भुत न्थकी रचना की। इसमें देवर्षि नारद और राजा बहुलाश्वके ादका निरूपण हुआ है। यह श्रीकृष्णके विभिन्न विचित्र रित्रोंसे परिपूर्ण तथा सुधा-सदृश स्वादिष्ट बारह हजार ोकोंसे सुशोभित है। गर्गजीने श्रीकृष्णके जिस महान् रित्रको गुरुके मुखसे सुना था, अथवा स्वयं अपनी आँखों ा था, वह सारा-का-सारा चरित्र इस संहितामें सजा दिया । वह कथा 'श्रीगर्गसंहिता' नामसे प्रचलित हुई। यह गभक्ति प्रदान करनेवाली है। इसके श्रवणमात्रसे सभी र्थ सिद्ध हो जाते हैं॥ ३—७½॥

इस विषयमें एक प्राचीन इतिहासका वर्णन किया ता है, जिसके सुनते ही सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते । ब्रह्मके पुत्र राजा प्रतिबाहु हुए, जो प्रजा-पालनमें र रहते थे। उस राजाकी प्यारी पत्नीका नाम मालिनी ी था। राजा प्रतिबाहु पत्नीके साथ कृष्णपुरी मथुरामें ते थे। उन्होंने संतानकी प्राप्तिके लिये विधानपूर्वक बहुत यत्न किया। राजाने सुपात्र ब्राह्मणोंको बछड़े-सहित त्सी गायोंका दान दिया तथा प्रयत्नपूर्वक भरपूर क्षिणाओंसे युक्त अनेकों यज्ञोंका अनुष्ठान किया। भोजन र धनद्वारा गुरुओं, ब्राह्मणों और देवताओंका पूजन किया, ापि पुत्रकी उत्पत्ति न हुई। तब राजा चिन्तासे व्याकुल गये। वे दोनों पति-पत्नी नित्य चिन्ता और शोकमें े रहते थे। इनके पितर (तर्पणमें) दिये हुए जलको कुछ म-सा पान करते थे। 'इस राजाके पश्चात् जो हमलोगोंको िलाञ्जलि दान करेगा—ऐसा कोई दिखायी नहीं पड़ रहा (इस राजाके भाई-बन्धु, मित्र, अमात्य, सुहृद् तथा हाथी, े और पैदल सैनिक—किसीको भी इस बातकी कोई चिन्ता ी है।)'—इस बातको याद करके राजाके पितृगण अत्यन्त दुखी हो जाते थे। इधर राजा प्रतिबाहुके मनमें निरन्तर निराशा छायी रहती थी॥ ८—१५½॥

(वे सोचते रहते थे कि) 'पुत्रहीन मनुष्यका जन्म निष्फल है। जिसके पुत्र नहीं है, उसका घर सूना-सा लगता है और मन सदा दुःखाभिभूत रहता है। पुत्रके बिना मनुष्य देवता, मनुष्य और पितरोंके ऋणसे उऋण नहीं हो सकता। इसलिये बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि वह सभी प्रकारके उपायोंका आश्रय लेकर पुत्र उत्पन्न करे। उसीकी भूतलपर कीर्ति होती है और परलोकमें उसे शुभगति प्राप्त होती है। जिन पुण्यशाली पुरुषोंके घरमें पुत्रका जन्म होता है, उनके भवनमें आयु, आरोग्य और सम्पत्ति सदा बनी रहती है।' राजा अपने मनमें यों लगातार सोचा करते थे, जिससे उन्हें शान्ति नहीं मिलती थी। अपने सिरके बालोंको सफेद हुआ देखकर वे रात-दिन शोकमें निमग्न रहते थे॥ १६—२०॥

एक समय मुनीश्वर शाण्डिल्य स्वेच्छापूर्वक विचरते हुए प्रतिबाहुसे मिलनेके लिये उनकी राजधानी मधुपुरी (मथुरा) में आये। उन्हें देखकर राजा सहसा अपने सिंहासनसे उठ पड़े और उन्हें आसन आदि देकर सम्मानित किया। पुनः मधुपर्क आदि निवेदन करके हर्षपूर्वक उनका पूजन किया। राजाको उदासीन देखकर महर्षिको बड़ा विस्मय हुआ। तत्पश्चात् मुनीश्वरने स्वस्तिवाचनपूर्वक राजाका अभिनन्दन करके उनसे राज्यके सातों अङ्गोंके[1] विषयमें कुशल पूछी। तब नृपश्रेष्ठ प्रतिबाहु अपनी दुःखगाथा निवेदन करनेके लिये बोले॥ २१—२४॥

राजाने कहा—ब्रह्मन्! पूर्वजन्मार्जित पापके कारण इस समय मुझे जो दुःख प्राप्त है, अपने उस कष्टके विषयमें मैं क्या कहूँ! भला, आप-जैसे ऋषियोंके लिये क्या अज्ञात है! मुझे अपने राज्य तथा नगरमें कुछ भी सुख दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है। मैं क्या करूँ! कहाँ जाऊँ! किस प्रकार मुझे पुत्रकी प्राप्ति हो। 'राजाके बाद जो हमारी रक्षा करे—ऐसा हमलोग किसीको नहीं देख रहे हैं।' इस बातको स्मरण करके मेरी सारी प्रजा दुःखी है। ब्रह्मन्! आप तो सर्वज्ञ दिव्यदर्शी हैं, अतः मुझे ऐसा उपाय बतलाइये, जिससे मुझे शीघ्रतापूर्वक दीर्घायु पुत्रकी प्राप्ति हो जाय॥ २५—२८॥

महादेवजी बोले—देवि! उस दुःखी राजाके इस वचनको सुनकर मुनिवर्य शाण्डिल्य राजाके दुःखका वारण करते हुए-से बोले॥ २९॥

इस प्रकार श्रीसम्मोहनतन्त्रमें पार्वती-शंकर-संवादमें 'गर्गसंहिता-माहात्म्य'[illegible] विषयक दूसरा अध्याय पूरा हुआ॥ २॥

---

[1] राजा, अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, कोष, दण्ड या सेना और सुहृद्—ये राज्यके सात अङ्ग कहे गये हैं।

करा करना चाहिये । विद्वान् वक्ताको तीन प्रहर (९ घंटे) तक उच्च स्वरसे कथा बाँचनी चाहिये । कथाके बीचमें दो बार विश्राम लेना उचित है । उस समय लघुशङ्का आदिसे निवृत्त होकर जलसे हाथ-पैर धोकर पवित्र हो ले । साथ ही कुल्ला करके मुख-शुद्धि भी कर लेनी चाहिये । राजन् ! नवें दिनकी पूजा-विधि विज्ञानखण्डमें बतलायी गयी है । उस दिन उत्तम बुद्धिसम्पन्न श्रोता पुष्प, नैवेद्य और चन्दनसे पुस्तककी पूजा करके पुनः सोना, चाँदी, दिन, दक्षिणा, वस्त्र, आभूषण और गन्ध आदिसे वक्ताका पूजन करे । नरेश ! तत्पश्चात् यथाशक्ति नौ सहस्र या नौ सौ निन्यानबे अथवा नौ ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करके खीरका भोजन कराये । तब कथाके फलकी प्राप्ति होती है । कथा-विश्रामके समय विष्णुभक्तिसम्पन्न स्त्री-पुरुषोंके साथ भगवन्नाम-कीर्तन भी करना चाहिये । उस समय झाँझ, शङ्ख, मृदङ्ग आदि बाजोंके साथ-साथ बीच-बीचमें नाद जयकारके शब्द भी बोलने चाहिये । जो श्रोता श्रीगर्ग-संहिताकी पुस्तकको सोनेके सिंहासनपर स्थापित करके उसे वक्ताको दान कर देता है, वह मरनेपर श्रीहरिको प्राप्त करता है । राजन् ! इस प्रकार मैंने तुम्हें गर्गसंहिताका माहात्म्य बतला दिया, अब और क्या सुनना चाहते हो ? अरे, इस संहिताके श्रवणसे ही भुक्ति और मुक्तिकी प्राप्ति देखी जाती है ॥ २५–३४ ॥

इस प्रकार श्रीसम्मोहन-तन्त्रमें पार्वती-शंकर-संवादमें 'श्रीगर्गसंहिताका माहात्म्य तथा श्रवणविधिका वर्णन' नामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ ३ ॥

चौथा अध्याय

शाण्डिल्य मुनिका राजा प्रतिबाहुको गर्गसंहिता सुनाना, श्रीकृष्णका प्रकट होकर राजा आदिको वरदान देना, राजाको पुत्रकी प्राप्ति और संहिताका माहात्म्य

महादेवजी बोले—प्रिये ! मुनीश्वर शाण्डिल्यका यह वचन सुनकर राजाको बड़ी प्रसन्नता हुई । उसने विनयावनत होकर प्रार्थना की—'मुने ! मैं आपके शरणागत हूँ । आप शीघ्र ही मुझे श्रीहरिकी कथा सुनाइये और पुत्रवान् बनाइये' ॥ १ ॥

राजाकी प्रार्थना सुनकर मुनिवर शाण्डिल्यने श्रीयमुनाजीके तटपर मण्डपका निर्माण करके सुखदायक कथा-पारायणका आयोजन किया । उसे सुनकर सभी मथुरावासी वहाँ आये । महान् ऐश्वर्यशाली यादवेन्द्र श्रीप्रतिबाहुने कथारम्भ तथा कथा-समाप्तिके दिन ब्राह्मणोंको उत्तम भोजन कराया तथा बहुत-सा धन दान दिया । तत्पश्चात् राजाने मुनिवर शाण्डिल्यका भलीभाँति पूजन करके उन्हें रथ, अश्व, ग्राम, पृथ्वी, गौ, हाथी और ढेर-के-ढेर रत्न दक्षिणामें दिये । तदनन्तर शाण्डिल्यने मेरे द्वारा कहे हुए श्रीमान् गोपालकृष्ण-सहस्रनामका पाठ किया, जो सम्पूर्ण दोषोंको हर लेनेवाला है । कथा समाप्त होनेपर शाण्डिल्यकी प्रेरणासे राजेन्द्र प्रतिबाहुने भक्तिपूर्वक मुरलीधर श्रीमान् मदनमोहनका ध्यान किया । तब श्रीकृष्ण अपनी प्रेयसी राधा तथा पार्षदोंके साथ वहाँ प्रकट हो गये । उन साँवरे-सलोनेके हाथमें वंशी और बेंत शोभा पा रहे थे । उनकी छटा करोड़ों कामदेवोंको मोहमें डालनेवाली थी[1] । उन्हें सम्मुख उपस्थित देखकर महर्षि शाण्डिल्य, राजा तथा समस्त श्रोताओंके साथ तुरंत ही उनके चरणोंमें टूट पड़े और पुनः विधिपूर्वक स्तुति करने लगे ॥ २–७ ॥

शाण्डिल्य बोले—प्रभो ! आप वेणुवादनपूर्वक सदा क्रीडामें तत्पर रहनेवाले हैं । आपका स्वरूप परम मनोहर है । देवगण सदा आपको नमस्कार करते हैं । आप परमेश्वर हैं । गोपाङ्गनाओंकी क्रीडामें आपकी विशेष अभिरुचि रहती है— ऐसे आपका मैं भजन करता हूँ । साथ ही आप गोलोकाधिपतिको मैं नमस्कार करता हूँ[2] ॥ ८ ॥

प्रतिबाहु बोले—गोलोकनाथ ! आप गिरिराज गोवर्धनके स्वामी हैं । परमेश्वर ! आप वृन्दावनके अधीश्वर तथा नित्य विहारकी लीलाएँ करनेवाले हैं । राधापते ! व्रजाङ्गनाएँ आपकी कीर्तिका गान करती रहती हैं । गोविन्द ! आप गोकुलके पालक हैं । निश्चय ही आपकी जय हो[3] ॥ ९ ॥

रानी बोली—राधेश ! आप वृन्दावनके स्वामी तथा

---

१ वंशीधरः श्याम [illegible]

(गर्ग०, माहात्म्य-अध्याय ४ । ६)

२ वेणुवाद्यकरं [illegible]

[illegible]

(गर्ग०, माहात्म्य, अध्याय ४ । ८)

३ गोलोकनाथ गिरिराजपते परेश

[illegible]

राधापते [illegible]

गोविन्द गोकुलपते किल ते जयोऽस्तु ॥

(गर्ग०, माहात्म्य अध्याय ४ । ९)

श्रीकृष्ण-संवत्‌के सम्बन्धमें आवश्यक सूचना

'कल्याण'के प्रेमी पाठकोंको स्मरण होगा कि गत सौर कार्तिक (अक्तूबर) मासके अङ्कमें विज्ञ पाठकोंकी सेवामें यह निवेदन किया गया था कि वे कृपापूर्वक इस विषयमें हमारा पथप्रदर्शन करें कि श्रीकृष्ण-सवत्‌का व्यवहार किस प्रकार किया जाय और साथ ही मास आदिका व्यवहार भी किस प्रकार हो। हमारी उक्त प्रार्थनाके उत्तरमें अनेक महानुभावोंने अपने-अपने विचार इस विषयमें हमारे पास भेजे, हम इसके लिये उन सबके हृदयसे कृतज्ञ हैं। जिन-जिनके पत्र हमारे पास आये, उनमेंसे अधिकाश लोगोंकी सम्मति यह है कि श्रीकृष्ण-सवत् कलियुगके प्रारम्भसे माना जाय, क्योंकि भगवान् श्रीकृष्णके परमधामगमनके साथ ही कलियुगका प्रवेश हुआ—ऐसी मान्यता है। कलियुगका प्रवेश आजसे ५०७१ वर्ष पूर्व हुआ था—ऐसा सभी ज्योतिर्विद् महानुभावोंका मत है। ऐसी स्थितिमें इस समय श्रीकृष्ण-सवत् ५०७१ ही मानना चाहिये। कुछ थोड़े-से सम्मान्य विद्वानोंने हमें यह सुझाव दिया कि श्रीकृष्ण-सवत्‌की गणना उनके परम-धामगमनसे न मानकर उनके 'प्रादुर्भावसे' माननी चाहिये, क्योंकि उनके प्रादुर्भावसे जगत्‌का अशेष मङ्गल हुआ और उसीका स्मरण हम सबको करना चाहिये, न कि उनके परमधामगमनका, जो जगत्‌के लिये अमङ्गलरूप था। श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थोंमें इसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि भगवान् श्रीकृष्ण इस धराधाममें १२५ वर्ष विराजे। ऐसी दशामें श्रीकृष्ण-सवत्‌का प्रारम्भ उनके जन्म-सवत्‌से अर्थात् ५०७१+१२५=५१९६ वर्ष पूर्व मानना चाहिये। अर्थात् इस समय श्रीकृष्ण-सवत् ५१९६ लिखा जाना चाहिये। हमारी धारणामें भी यही मत ठीक है। अतएव हमने 'कल्याण'के इस नये विशेषाङ्कके मुखपृष्ठपर श्रीकृष्ण-सवत् ५१९६ का ही उल्लेख किया है। आशा है सभी पाठकोंको इससे प्रसन्नता

होगी और वे लोग अपने दैनिक व्यवहार-पत्र आदिमें भी सहर्ष इनका प्रयोग चालू कर देंगे। इससे भगवान्‌के परममङ्गलमय अवतारोंकी उन्हें निरन्तर स्मृति बनी रहेगी और उससे उनका अशेष मङ्गल होगा।

मास आदिके सम्बन्धमें भी कई प्रकारके सुझाव लोगोंने दिये हैं। कुछ लोगोंकी ऐसी धारणा है कि श्रीकृष्ण-संवत्‌का प्रारम्भ उनके जन्म-दिवस अर्थात् भाद्रपद कृष्णा ८ से होना चाहिये तथा कुछ दूसरे लोगोंका ऐसा मत है कि गीता-जयन्ती अर्थात् मार्गशीर्ष शुक्ला ११ से इसका प्रारम्भ मानना चाहिये, क्योंकि श्रीमद्भगवद्गीताका उपदेश जगत्‌के लिये सबसे महत्त्वपूर्ण घटना थी और वही श्रीकृष्णकी जगत्‌के लिये सबसे बड़ी देन थी। उनका यह भी कहना है कि अत्यन्त प्राचीनकालमें मार्गशीर्षसे ही संवत्सरका प्रारम्भ माना जाता था। स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने मार्गशीर्षको श्रीमद्भगवद्गीतामें अपना स्वरूप बताया है—'मासानां मार्गशीर्षोऽहम्।' यद्यपि ये दोनों ही मत ठीक हैं, कुछ महानुभावोंने सौर चैत्रसे ही वर्षका प्रारम्भ माननेकी विचारपूर्ण सम्मति दी है। विचार करनेपर हमें भी यही सबसे अधिक सुगम और समीचीन लगा, क्योंकि सम्पूर्ण भारतवर्षमें प्रायः वर्षका प्रारम्भ चैत्रसे ही माना जाता है और सौर मासमें तिथियोंके घटने-बढ़नेका प्रश्न नहीं रहता, अतः सौर मासका प्रयोग एवं गणनाकी दृष्टिसे भी सर्वथा समीचीन है। आशा है 'कल्याण'के माननीय पाठक-पाठिकाएँ तथा अन्यान्य विद्वान् तथा भगवान् एवं भारतीय संस्कृतिके प्रेमी इसे स्वीकार करेंगे और ईस्वी सन् एवं अंग्रेजी महीनों एवं तारीखोंका प्रयोग न करके अपने व्यवहारमें अधिक-से-अधिक प्रयोग श्रीकृष्ण-संवत् तथा भारतीय मासों एवं तिथियोंका ही करेंगे।

विनीत—

चिमनलाल गोस्वामी,

सम्पादक 'कल्याण'

भगवान् नरसिंहकी भक्त प्रह्लादपर कृपा

श्रीहरि

श्रीनरसिंहपुराणकी विषय-सूची

ने० पु० अ० †

चित्र-सूची

बहुरंगा चित्र

ॐ श्रीलक्ष्मीनृसिंहाभ्यां नमः

महर्षिवेदव्यासप्रणीतम्

श्रीनरसिंहपुराणम्

(श्रीभरद्वाजमुनि और लोमहर्षण सूतजीके संवादरूपमें)

मूल संस्कृत हिंदी अनुवादसहित

संशोधक और अनुवादक

पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री, पाण्डेय 'राम'

(वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी)

श्रीनरसिंहपुराणका संक्षिप्त परिचय और निवेदन

अन्यान्य पुराणोंकी भाँति श्रीनरसिंहपुराण भी भगवान् श्रीवेदव्यासरचित ही माना जाता है। इसमें भी पुराणोंके लक्षणके अनुसार ही सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरितका सुन्दर वर्णन है। भगवान्के अवतारोंकी लीला-कथा है, उसमें भगवान् श्रीरामका लीलाचरित प्रधानरूपसे वर्णित है।

श्रीमार्कण्डेय मुनिकी मृत्युपर विजय प्राप्त करनेकी सुन्दर कथा है, उसमें 'यमगीता' है। कलियुगके मनुष्योंके लिये बड़ी ही आशाप्रद बातें हैं। इसमें कई ऐसे स्तोत्र-मन्त्रोंका विधान बताया गया है, जिनके अनुष्ठानसे भोग-मोक्षकी सिद्धि प्राप्त हो सकती है। भक्तिके स्वरूप, भक्तोंके लक्षण तथा ध्रुव आदि भक्तोंके सुन्दर चरित्रोंका वर्णन है।

इस छोटे-से पुराणमें बहुत ही उपयोगी तथा जाननेयोग्य सामग्री है। यह पुराण इस समय अप्राप्य है—कहीं मिलता नहीं। इसलिये इसे मूल सानुवादसहित इस विशेषाङ्कमें प्रकाशित किया जा रहा है। आशा है, पाठक-पाठिका इसका पठन मनन करेंगे तथा इसमें उल्लिखित कल्याणकारी विषयोंको यथारुचि यथावश्यक अपने जीवनमें उतारकर लाभ उठायेंगे।

[illegible]।
[illegible]।
[illegible]॥

श्रीनरसिंह-पुराण

पहला अध्याय

प्रयागमें ऋषियोंका समागम, सूतजीके प्रति भरद्वाजजीका प्रश्न, सूतजीद्वारा कथारम्भ और सृष्टिक्रमका वर्णन

श्रीलक्ष्मीनृसिंहाय नमः ॥ श्रीवेदव्यासाय नमः ॥

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ १ ॥

अन्तर्यामी भगवान् नारायण (श्रीकृष्ण) उनके सखा नरश्रेष्ठ नर (अर्जुन) तथा इनकी लीला प्रकट करनेवाली सरस्वती देवीको नमस्कार करनेके पश्चात् 'जय' (इतिहास पुराण) का पाठ करे ॥ १ ॥

तप्तहाटककेशान्तज्वलत्पावकलोचन ।
वज्राधिकनखस्पर्श दिव्यसिंह नमोऽस्तु ते ॥ २ ॥
पान्तु वो नरसिंहस्य नखलाङ्गलकोटयः ।
हिरण्यकशिपोर्वक्षःक्षेत्रासृक्कर्दमारुणाः ॥ ३ ॥

दिव्य सिंह ! तपाये हुए सुवर्णके समान पीले केशोंके भीतर प्रज्वलित अग्निकी भाँति आपके नेत्र देदीप्यमान हो रहे हैं तथा आपके नखोंका स्पर्श वज्रसे भी अधिक कठोर है, इस प्रकार अमित प्रभावशाली आप परमेश्वरको मेरा नमस्कार है। भगवान् नृसिंहके नखरूपी हलके अग्रभाग, जो हिरण्यकशिपु नामक दैत्यके वक्षःस्थलरूपी खेतकी रक्तमयी कीचड़से सननेसे लाल हो गये हैं, आपलोगोंकी रक्षा करें ॥ २-३ ॥

हिमवद्वासिनः सर्वे मुनयो वेदपारगाः ।
त्रिकालज्ञा महात्मानो नैमिषारण्यवासिनः ॥ ४ ॥
येऽर्बुदारण्यनिरताः पुष्करारण्यवासिनः ।
महेन्द्राद्रिरता ये च ये च विन्ध्यनिवासिनः ॥ ५ ॥
धर्मारण्यरता ये च दण्डकारण्यवासिनः ।
श्रीशैलनिरता ये च कुरुक्षेत्रनिवासिनः ॥ ६ ॥
कौमारपर्वते ये च ये च पम्पानिवासिनः ।
एते चान्ये च बहवः सशिष्या मुनयोऽमलाः ॥ ७ ॥
माघमासे प्रयागं तु स्नातुं तीर्थं समागताः ।

एक समय हिमालयपर्वतके निवासी [illegible] वेद-पारगामी एवं त्रिकालवेत्ता समस्त महात्मा मुनिगण नैमिषारण्य, अर्बुदारण्य और पुष्करारण्यके निवासी मुनि, महेन्द्र पर्वत और विन्ध्यगिरिके निवासी ऋषि, धर्मारण्य, दण्डकारण्य, श्रीशैल और कुरुक्षेत्रमें वास करनेवाले मुनि तथा कुमार पर्वत एवं पम्पासरके निवासी ऋषि—ये तथा अन्य भी बहुत-से शुद्ध हृदयवाले महर्षिगण अपने शिष्योंके साथ माघके महीनेमें स्नान करनेके लिये प्रयाग तीर्थमें आये ॥ ४-७½ ॥

तत्र स्नात्वा यथान्यायं कृत्वा कर्म जपादिकम् ॥ ८ ॥
नत्वा तु माधवं देवं कृत्वा च पितृतर्पणम् ।
दृष्ट्वा तत्र भरद्वाजं पुण्यतीर्थनिवासिनम् ॥ ९ ॥
तं पूजयित्वा विधिवत्तेनैव च सुपूजिताः ।
आसनेषु विचित्रेषु बृस्यादिषु यथाक्रमम् ॥ १० ॥
भरद्वाजेन दत्तेषु आसीनास्ते तपोधनाः ।
कृष्णाश्रिताः कथा मृष्टाः परस्परमथाब्रुवन् ॥ ११ ॥
कथान्तेषु ततस्तेषां मुनीनां भावितात्मनाम् ।
आजगाम महातेजास्तत्र सूतो महामतिः ॥ १२ ॥
व्यासशिष्यः पुराणज्ञो लोमहर्षणसंज्ञकः ।
तान् प्रणम्य यथान्यायं स च तैश्चाभिपूजितः ॥ १३ ॥
उपविष्टो यथायोग्यं भरद्वाजमतेन सः ।
व्यासशिष्यं सुखासीनं ततस्तं लोमहर्षणम् ।
स पप्रच्छ भरद्वाजो मुनीनामग्रतस्तदा ॥ १४ ॥

वहाँ [illegible] तीर्थमें स्नान और [illegible] करके उन्होंने भगवान् वेणीमाधवको नमस्कार किया, फिर [illegible] तर्पण करके उस [illegible] तीर्थमें निवास करनेवाले भरद्वाज मुनिका दर्शन किया। वहाँ उन ऋषियोंने भरद्वाजजीका [illegible] पूजन किया और स्वयं भी भरद्वाजजीके द्वारा पूजित हुए। [illegible] [illegible] भरद्वाज मुनिके [illegible] हुए [illegible] [illegible]

1 [illegible]

एक समय हिमालयके [illegible] निवासी [illegible]

अष्टादश पुराणोंका ज्ञान प्राप्त कर सका हूँ, उनकी भक्तिपूर्वक वन्दना करके आपलोगोंसे नरसिंह पुराणकी कथा कहना आरम्भ करता हूँ। जो समस्त देवताओंके एकमात्र कारण और वेदों तथा उनके छहों अङ्गोंद्वारा जाननेयोग्य परम पुरुष विष्णुके स्वरूप हैं; जो विद्यावान्, विमल बुद्धिदाता, नित्य शान्त, विषयकामनाशून्य और पापरहित हैं, उन विशुद्ध तेजोमय महात्मा पराशरनन्दन वेदव्यासजीको मैं सदा प्रणाम करता हूँ। उन अमित तेजस्वी भगवान् व्यासजीको नमस्कार है, जिनकी कृपासे मैं भगवान् वासुदेवकी इस कथाको कह सकूँगा। मुनिगण! आपलोगोंने भलीभाँति विचार करके मुझसे जो महान् प्रश्न पूछे हैं, उनका उत्तर भगवान् विष्णुकी कृपा हुए बिना कौन बतला सकता है? तथापि भरद्वाजजी! भगवान् नरसिंहकी कृपाके बलसे ही आपके प्रश्नोंके उत्तरमें अत्यन्त पवित्र नरसिंहपुराणकी कथा आरम्भ करता हूँ। आप ध्यानसे सुनें। अपने शिष्योंके साथ जो-जो मुनि यहाँ उपस्थित हैं, वे सब लोग भी सावधान होकर सुनें। मैं सभीको यथावत् रूपसे नरसिंहपुराणकी कथा सुनाता हूँ ॥ २५–३० ॥

नारायणादिदं सर्वं समुत्पन्नं चराचरम्।
तेनैव पाल्यते सर्वं नरसिंहादिमूर्तिभिः ॥३१॥
तथैव लीयते चान्ते हरौ ज्योतिःस्वरूपिणि।
यथैव देवः सृजति तथा वक्ष्यामि तच्छृणु ॥३२॥
पुराणानां हि सर्वेषामयं साधारणः स्मृतः।
श्लोको यस्तु मुने श्रुत्वा निःशेषं त्वं ततः शृणु ॥३३॥
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥३४॥
आदिसर्गोऽनुसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव वक्ष्याम्यनुसमासतः ॥३५॥

यह समस्त चराचर जगत् भगवान् नारायणसे ही उत्पन्न हुआ और वे ही नरसिंहादि रूपोंसे सबका पालन करते हैं। इसी प्रकार अन्तमें यह जगत् उन्हीं ज्योतिःस्वरूप भगवान् विष्णुमें लीन हो जाता है। भगवान् जिस प्रकार सृष्टि करते हैं, उसे मैं बतलाता हूँ, आप सुनें। सृष्टि यथा पुराणोंमें ही विस्तारके साथ वर्णित है, अतः पुराणोंका लक्षण बतानेके लिये यह एक श्लोक सभी पुराणोंमें कहा गया है। मुने! इस श्लोकको सुनकर फिर सारी बातें सुनियेगा। यह श्लोक इस प्रकार है—सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित—इन्हीं पाँच लक्षणोंसे युक्त पुराण होता है। आदिसर्ग, अनुसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित—इन सबका मैं क्रमशः संक्षिप्तरूपसे वर्णन करता हूँ ॥ ३१–३५ ॥

आदिसर्गो महांस्तावत् कथयिष्यामि वै द्विजाः।
यस्मादारभ्य देवानां राज्ञां चरितमेव च ॥३६॥
ज्ञायते सरहस्यं च परमात्मा सनातनः।
प्राक्सृष्टेः प्रलयादूर्ध्वं नासीत् किंचिद् द्विजोत्तम ॥३७॥
ब्रह्मसंज्ञमभूदेकं ज्योतिष्मत्सर्वकारणम्।
नित्यं निरञ्जनं शान्तं निर्गुणं नित्यनिर्मलम् ॥३८॥
आनन्दसागरं स्वच्छं यं काङ्क्षन्ति मुमुक्षवः।
सर्वज्ञं ज्ञानरूपत्वादनन्तमजमव्ययम् ॥३९॥
सर्गकाले तु सम्प्राप्ते ज्ञात्वाऽसौ ज्ञाननायकः।
अन्तर्लीनं विकारं च तत्स्रष्टुमुपचक्रमे ॥४०॥

द्विजगण! आदिसर्ग महान् है, अतः पहले मैं उसीका वर्णन करता हूँ। वहींसे सृष्टिका वर्णन आरम्भ करनेपर देवताओं और राजाओंके चरित्रोंका तथा सनातन परमात्माके तत्त्वका भी रहस्यसहित ज्ञान हो जाता है। द्विजोत्तम! सृष्टिसे पहले महाप्रलय होनेके बाद (परमात्माके सिवा) कुछ भी शेष नहीं था। उस समय एकमात्र 'ब्रह्म' नामक तत्त्व ही विद्यमान था, जो परम प्रकाशमय और सबका कारण है। वह नित्य, निरञ्जन, शान्त, निर्गुण एवं सदा ही दोषरहित है। मुमुक्षु पुरुष विशुद्ध आनन्दमहासागर परमेश्वरकी अभिलाषा किया करते हैं। वह ज्ञानस्वरूप होनेके कारण सर्वज्ञ, अनन्त, अजन्मा और अव्यय (अविनाशी) है। सृष्टिरचनाका समय आनेपर उन्हीं ज्ञानेश्वर परब्रह्मने जगत्को अपनेमें लीन जानकर पुनः उसकी सृष्टि आरम्भ की ॥ ३६–४० ॥

तस्मात् प्रधानमुद्भूतं ततश्चापि महानभूत्।
सात्त्विको राजसश्चैव तामसश्च त्रिधा महान् ॥४१॥
वैकारिकस्तैजसश्च भूतादिश्चैव तामसः।
त्रिविधोऽयमहंकारो महत्तत्त्वादजायत ॥४२॥
यथा प्रधानं हि महान् महता स तथाऽऽवृतः।
भूतादिस्तु विकुर्वाणः शब्दतन्मात्रकं ततः ॥४३॥

शिल्प (हाथकी कला), गमन और बोलना—ये ही क्रमशः इन कर्मेन्द्रियोंके पाँच कर्म कहे गये हैं ॥ ५३–५६ ॥

आकाशवायुतेजांसि सलिलं पृथिवी तथा ।
शब्दादिभिर्गुणैर्विप्र संयुक्तान्युत्तरोत्तरैः ॥५७॥
नानावीर्याः पृथग्भूतास्ततस्ते संहतिं विना ।
नाशक्नुवन् प्रजाः स्रष्टुमसमागम्य कृत्स्नशः ॥५८॥
समेत्यान्योन्यसंयोगं परस्परसमाश्रयात् ।
एकसंघातलक्ष्याश्च सम्प्राप्यैक्यमशेषतः ॥५९॥
पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च प्रधानानुग्रहेण च ।
महदाद्या विशेषान्तास्त्वण्डमुत्पादयन्ति ते ॥६०॥
तत्क्रमेण विवृद्धं तु जलबुद्बुदवत् स्थितम् ।
भूतेभ्योऽण्डं महाबुद्धे बृहत्तदुदकेशयम् ॥६१॥
प्राकृतं ब्रह्मरूपस्य विष्णोः स्थानमनुत्तमम् ।
तत्राव्यक्तस्वरूपोऽसौ विष्णुर्विश्वेश्वरः प्रभुः ॥६२॥
ब्रह्मस्वरूपमास्थाय स्वयमेव व्यवस्थितः ।
मेरुरुल्बमभूत्तस्य जरायुश्च महीधराः ।
गर्भोदकं समुद्राश्च तस्याभूवन् महात्मनः ॥६३॥

विप्र ! आकाश, वायु, तेज, जल और पृथिवी—ये पाँच भूत क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—इन गुणोंसे उत्तरोत्तर युक्त हैं, अर्थात् आकाशमें एकमात्र शब्द गुण है, वायुमें शब्द और स्पर्श दो गुण हैं, तेजमें शब्द, स्पर्श और रूप तीन गुण हैं, इसी प्रकार जलमें चार और पृथिवीमें पाँच गुण हैं। ये पञ्चभूत अलग-अलग भिन्न भिन्न प्रकारकी शक्तियोंसे युक्त हैं, अतः परस्पर पूर्णतया मिले बिना ये सृष्टि-रचना नहीं कर सके। तब एक ही संघातको उत्पन्न करना जिनका लक्ष्य है, उन महत्तत्त्वसे लेकर पञ्चभूत पर्यन्त सभी विकारोंने पुरुषसे अधिष्ठित होनेके कारण परस्पर मिलकर एक-दूसरेका आश्रय ले, सर्वथा एकरूपताको प्राप्त हो, प्रधानतत्त्वके अनुग्रहसे एक अण्डकी उत्पत्ति की। वह अण्ड क्रमशः बढ़ा होकर जलके ऊपर बुलबुलेके समान स्थित हुआ। महाबुद्धे ! समस्त भूतोंसे प्रकट हो जलपर स्थित हुआ। वह महान् प्राकृत अण्ड ब्रह्मा (हिरण्यगर्भ) रूप भगवान् विष्णुका अत्यन्त उत्तम आधार हुआ। उसमें वे अव्यक्तस्वरूप जगदीश्वर भगवान् विष्णु स्वयं ही हिरण्यगर्भ रूपसे विराजमान हुए। उस समय सुमेरु पर्वत उन महात्मा भगवान् हिरण्यगर्भका उल्ब (गर्भको ढकनेवाली झिल्ली) था। अन्यान्य पर्वत जरायुज (गर्भाशय) थे और समुद्र ही गर्भाशयके जल थे ॥ ५७–६३ ॥

अद्रिद्वीपसमुद्राश्च सज्योतिर्लोकसंग्रहः ।
तस्मिन्नण्डेऽभवत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥६४॥
रजोगुणयुतो देवः स्वयमेव हरिः परः ।
ब्रह्मरूपं समास्थाय जगत्सृष्टौ प्रवर्तते ॥६५॥
सृष्टं च पात्यनुयुगं यावत्कल्पविकल्पना ।
नरसिंहादिरूपेण रुद्ररूपेण संहरेत् ॥६६॥

ब्राह्मेण रूपेण सृजत्यनन्तो
जगत्समस्तं परिपातुमिच्छन् ।
रामादिरूपं स तु गृह्य पाति
भूत्वाथ रुद्रः प्रकरोति नाशम् ॥६७॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे 'सर्गनिरूपणं' नाम प्रथमोऽध्यायः ।

पर्वत, द्वीप, समुद्र और ग्रह-ताराओंसहित समस्त लोक तथा देवता, असुर और मनुष्यादि प्राणी सभी उस अण्डसे ही प्रकट हुए हैं। परमेश्वर भगवान् विष्णु स्वयं ही रजोगुणसे युक्त ब्रह्माका स्वरूप धारणकर संसारकी सृष्टिमें प्रवृत्त होते हैं। जबतक कल्पकी सृष्टि रहती है, तबतक वे ही नरसिंहादि रूपसे प्रत्येक युगमें अवतीर्ण हो अपने रचे हुए इस जगत्की रक्षा करते हैं और कल्पान्तमें रुद्ररूपसे इसका संहार कर लेते हैं। भगवान् अनन्त स्वयं ही ब्रह्मारूपसे सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करते हैं, फिर इसके पालनकी इच्छासे रामादि अवतार धारणकर इसकी रक्षा करते हैं और अन्तमें रुद्ररूप होकर समस्त जगत्‌का नाश कर देते हैं ॥ ६४–६७ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'सर्गनिरूपण' विषयक पहला अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥

चतुर्युगाना सख्या च साधिका ह्येकसप्तति. ।
मन्वन्तर मनोः काल. शक्रादीनामपि द्विज ॥१८॥
अष्टौ शतसहस्राणि दिव्यया सख्यया स्मृत ।
द्विपञ्चाशत्तथान्यानि सहस्राण्यधिकानि तु ॥१९॥
त्रिंशत्कोट्यस्तु सम्पूर्णा सख्याता. सख्यया द्विज ।
सप्तषष्टिस्तथान्यानि नियुतानि महामुने ॥२०॥
विंशतिश्च सहस्राणि कालोऽयमधिक विना ।
मन्वन्तरस्य सख्येय मानुषैर्वत्सरैर्द्विज ॥२१॥

पुराण-तत्त्ववेत्ताओंने कृत आदि युगोंका परिमाण क्रमशः चार, तीन, दो और एक हजार दिव्य वर्ष बतलाया है। ब्रह्मन्! प्रत्येक युगके पूर्व उतने ही सौ वर्षोंकी 'सन्ध्या' कही गयी है और युगके पीछे उतने ही परिमाणवाले 'सन्ध्यांश' होते हैं। विप्र! सन्ध्या और सन्ध्यांशके बीचका जो काल है, उसे सत्ययुग और त्रेता आदि नामोंसे प्रसिद्ध युग समझना चाहिये। 'सत्ययुग', 'त्रेता', 'द्वापर' और 'कलि'—ये चार युग मिलकर 'चतुर्युग' कहलाते हैं। द्विज! एक हजार चतुर्युग मिलकर 'ब्रह्माका एक दिन' होता है। ब्रह्मन्! ब्रह्माके एक दिनमें चौदह मनु होते हैं। उनका कालकृत परिमाण सुनिये। सप्तर्षि, इन्द्र, मनु और मनु-पुत्र—ये पूर्व कल्पानुसार एक ही समय उत्पन्न किये जाते हैं तथा इनका संहार भी एक ही साथ होता है। ब्रह्मन्! इकहत्तर चतुर्युगसे कुछ अधिक काल एक 'मन्वन्तर' कहलाता है। यही मनु तथा इन्द्रादि देवोंका काल है। इस प्रकार दिव्य वर्ष-गणनाके अनुसार यह मन्वन्तर आठ लाख बावन हजार वर्षोंका समय कहा गया है। महामुने! द्विजवर! मानवीय वर्ष-गणनाके अनुसार पूरे तीस करोड़, सरसठ लाख, बीस हजार वर्षोंका काल एक मन्वन्तरका परिमाण है। इससे अधिक नहीं ॥ १८—२१ ॥

चतुर्दशगुणो ह्येष कालो ब्राह्ममह स्मृतम् ।
विश्वसादौ सुमनसा सृष्ट्वा देवास्तथा पितॄन् ॥२२॥
गन्धर्वान् राक्षसान् यक्षान् पिशाचान् गुह्यकांस्तथा ।
ऋषीन् विद्याधरांश्चैव मनुष्याश्च पशूस्तथा ॥२३॥
पक्षिण. स्थावरांश्चैव पिपीलिकभुजगमान् ।
चातुर्वर्ण्य तथा सृष्ट्वा नियुज्याध्वरकर्मणि ॥२४॥
पुनर्दिनान्ते त्रैलोक्यमुपसहृत्य स प्रभु ।
शेते चानन्तशयने तावन्तीं रात्रिमव्यय. ॥२५॥
तस्यान्तेऽभून्महान्कल्पो ब्राह्म इत्यभिविश्रुत ।
यस्मिन् मत्स्यावतारोऽभून्मथन च महोदधे ॥२६॥
तद्वद्वाराहकल्पश्च तृतीय परिकल्पित ।
यत्र विष्णु स्वय प्रीत्या वाराह वपुराश्रित ।
उद्धर्तुं वसुधां देवीं स्तूयमाना महर्षिभि ॥२७॥

सृष्ट्वा जगद्व्योमचराप्रमेय
प्रजाश्च सृष्ट्वा सकलास्तयेत्थ ।
नैमित्तिकाख्ये प्रलये समस्त
सहृत्य शेते हरिरादिदेव ॥२८॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे सर्गरचनाया द्वितीयोऽध्याय ॥२॥

इस कालका चौदह गुना ब्रह्माका एक दिन होता है। ब्रह्माजीने विश्व-सृष्टिके आदिकालमें प्रसन्न मनसे देवताओं तथा पितरोंकी सृष्टि करके गन्धर्व, राक्षस, यक्ष, पिशाच, गुह्यक, ऋषि, विद्याधर, मनुष्य, पशु, पक्षी, स्थावर (वृक्ष पर्वत आदि), पिपीलिका (चींटी) और सर्पोंकी रचना की है। फिर चारों वर्णोंकी सृष्टि करके उन्हें यज्ञकर्ममें नियुक्त करते हैं। तत्पश्चात् दिनका अन्त होनेपर वे अविनाशी प्रभु त्रिलोकी का उपसंहार करके दिनके ही समान परिमाणवाली रात्रिमें शेषनागकी शय्यापर सोते हैं। उस रात्रिका अन्त होनेपर 'ब्राह्म' नामक विख्यात महाकल्प हुआ, जिसमें भगवान्‌का मत्स्यावतार और समुद्र-मन्थन हुआ। इस ब्राह्मकल्पके ही समान तीसरा 'वाराह कल्प' हुआ, जिसमें कि भगवान् वसुधा (पृथ्वी) का उद्धार करनेके लिये स्वयं भगवान् विष्णु [illegible] वाराहरूप धारण किया। [illegible] करते थे। [illegible] ॥ २२—२८ ॥

[illegible]

पाँचवाँ अध्याय

रुद्र आदि सर्गों और अनुसर्गोंका वर्णन, दक्ष प्रजापतिकी कन्याओंकी संततिका विस्तार

भरद्वाज उवाच

रुद्रसर्गं तु मे ब्रूहि विस्तरेण महामते ।
पुनः सर्गे मरीच्याद्याः ससृजुस्ते कथं पुनः ॥ १ ॥
मित्रावरुणपुत्रत्वं वसिष्ठस्य कथं भवेत् ।
ब्रह्मणो मनसः पूर्वमुत्पन्नस्य महामते ॥ २ ॥

श्रीभरद्वाजजी बोले—महामते ! अब मुझसे 'रुद्रसर्ग' का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये तथा यह भी बताइये कि मरीचि आदि ऋषियोंने पहले किस प्रकार सृष्टि की ? महाबुद्धिमान् सूत ! वसिष्ठजी तो पहले ब्रह्माजीके मनसे उत्पन्न हुए थे; फिर वे मित्रावरुणके पुत्र कैसे हो गये ? ॥ १-२ ॥

सूत उवाच

रुद्रसृष्टिं प्रवक्ष्यामि तत्सर्गांश्चैव सत्तम ।
प्रतिसर्गं मुनीनां तु विस्तराद्वदतः शृणु ॥ ३ ॥
कल्पादावात्मनस्तुल्यं सुतं प्रध्यायतस्ततः ।
प्रादुरासीत् प्रभोरङ्के कुमारो नीललोहितः ॥ ४ ॥
अर्धनारीनरवपुः प्रचण्डोऽतिशरीरवान् ।
तेजसा भासयन् सर्वा दिशश्च प्रदिशश्च सः ॥ ५ ॥
तं दृष्ट्वा तेजसा दीप्तं प्रत्युवाच प्रजापतिः ।
विभजात्मानमद्य त्वं मम वाक्यान्महामते ॥ ६ ॥
इत्युक्तो ब्रह्मणा विप्र रुद्रस्तेन प्रतापवान् ।
स्त्रीभावं पुरुषत्वं च पृथक् पृथगथाकरोत् ॥ ७ ॥
बिभेद पुरुषत्वं च दशधा चैकधा च सः ।
तेषां नामानि वक्ष्यामि शृणु मे द्विजसत्तम ॥ ८ ॥
अजैकपादहिर्बुध्न्यः कपाली रुद्र एव च ।
हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्चापराजितः ॥ ९ ॥
वृषाकपिश्च शम्भुश्च कपर्दी रैवतस्तथा ।
एकादशैते कथिता रुद्रास्त्रिभुवनेश्वराः ॥ १० ॥
स्त्रीत्वं चैव तथा रुद्रो बिभेद दशधैकधा ।
उमैव बहुरूपा तु पत्नी सैव व्यवस्थिता ॥ ११ ॥

सूतजी बोले—साधुशिरोमणे ! अब [illegible] तुमसे मैं रुद्र-सृष्टिका तथा उनसे होनेवाले सर्गोंका वर्णन करूँगा; साथ ही मुनियोंद्वारा सम्पादित प्रतिसर्ग (अनुसर्ग) को भी मैं विस्तारके साथ बताऊँगा, आपलोग ध्यानसे सुनें । कल्पके आदिमें प्रभु ब्रह्माजी अपने ही समान शक्तिशाली पुत्र होनेका चिन्तन कर रहे थे । उस समय उनकी गोदमें एक नील-लोहित वर्णका बालक प्रकट हुआ । उसका आधा शरीर स्त्रीका और आधा पुरुषका था । वह प्रचण्ड एवं विशालकाय था और अपने तेजसे दिशाओं तथा अवान्तर दिशाओंको प्रकाशित कर रहा था । उसे तेजसे देदीप्यमान देख प्रजापति ने कहा—'महामते ! इस समय मेरे कहनेसे तुम अपने शरीरके दो भाग कर लो ।' विप्र ! ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर प्रतापी रुद्रने अपने स्त्रीरूप और पुरुषरूपको अलग-अलग कर लिया । द्विजश्रेष्ठ ! फिर पुरुषरूपको उन्होंने ग्यारह स्वरूपोंमें विभक्त किया; मैं उन सबके नाम बतलाता हूँ, सुनें । अजैकपाद्, अहिर्बुध्न्य, कपाली, हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, अपराजित, वृषाकपि, शम्भु, कपर्दी और रैवत—ये ग्यारह रुद्र कहे गये हैं, जो तीनों भुवनोंके स्वामी हैं । पुरुषकी भाँति स्त्रीरूपके भी रुद्रने ग्यारह विभाग किये । भगवती उमा ही अनेक रूप धारणकर इन सबकी पत्नी हैं ॥ ३-११ ॥

तपः कृत्वा जले घोरमुत्तीर्णः स यदा पुरा ।
तदा स सृष्टवान् देवो रुद्रस्तत्र प्रतापवान् ॥ १२ ॥
तपोबलेन विप्रेन्द्र भूतानि विविधानि च ।
पिशाचान् राक्षसांश्चैव सिंहोष्ट्रमकराननान् ॥ १३ ॥
वेतालप्रमुखान् भूतानन्यांश्चैव सहस्रशः ।
विनायकानामुग्राणां [illegible] च ॥ १४ ॥
गन्धर्वान् [illegible] च ।
[illegible] रुद्रोऽसौ [illegible] ॥ १५ ॥

[illegible]

क्रव्यान्त वह्नयस्त्वेते पिता पुत्रत्रयं च यत् ।
एवमेकोनपञ्चाशद्वह्नयः परिकीर्तिताः ॥३४॥
पितरो ब्रह्मणा सृष्टा व्याख्याता ये मया तव ।
तेभ्यः स्वधा सुते जज्ञे मेनां वै धारिणीं तथा ॥३५॥

मरीचि आदि मुनियोंके जो पुत्र हुए, उन्हें मैं आपसे बतलाता हूँ । मरीचिकी पत्नी सम्भूति थी । उसने पूर्णमास मुनिको जन्म दिया । अङ्गिराकी भार्या स्मृति थी । उसने सिनीवाली, कुहू, राका और अनुमति—इन चार कन्याओंको उत्पन्न किया । इसी प्रकार अत्रि मुनिकी पत्नी अनसूयाने सोम, दुर्वासा और योगी दत्तात्रेय—इन तीन पापरहित पुत्रोंको जन्म दिया । द्विज ! ब्रह्माजीका ज्येष्ठ पुत्र, जो अग्निका अभिमानी देवता है, उससे उसकी पत्नी स्वाहाने पावक, पवमान और जलको भक्षण करनेवाले शुचि—इन अत्यन्त तेजस्वी पुत्रोंको उत्पन्न किया । इन तीनोंके (प्रत्येकके पन्द्रह-पन्द्रहके क्रमसे) अन्य पैंतालीस अग्निस्वरूप सन्तान हुईं । पिता अग्नि, उसके तीनों पुत्र तथा उनके भी ये पूर्वोक्त पैंतालीस पुत्र सब मिलकर 'अग्नि' ही कहलाते हैं । इस प्रकार उनचास अग्नि कहे गये हैं । ब्रह्माजीके द्वारा रचे गये जिन पितरोंका मैंने आपसे वर्णन किया था, उनसे उनकी पत्नी स्वधाने मेना और धारिणी—इन दो कन्याओंको जन्म दिया ॥ २०–३५ ॥

प्रजाः सृजेति व्यादिष्टः पूर्वं दक्षः स्वयम्भुवा ।
यथा ससर्ज भूतानि तथा मे शृणु सत्तम ॥३६॥
मनसैव हि भूतानि पूर्वं दक्षोऽसृजन्मुनिः ।
देवानृषींश्च गन्धर्वानसुरान् पन्नगांस्तथा ॥३७॥
यदास्य मनसा जाता नाभ्यवर्धन्त ते द्विज ।
तदा सञ्चिन्त्य स मुनिः सृष्टिहेतोः प्रजापतिः ॥३८॥
मैथुनेनैव धर्मेण सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ।
असिक्नीमुदवहत् कन्यां वीरणस्य प्रजापतेः ॥३९॥
षष्टिं दक्षोऽसृजत्कन्या वीरण्यामिति नः श्रुतम् ।
ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ॥४०॥
सप्तविंशति सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमिने ।
द्वे चैव बहुपुत्राय द्वे चैवाङ्गिरसे तथा ॥४१॥
द्वे कृशाश्वाय विदुषे तन्नामानि मे शृणु ।

साधुशिरोमणे ! पूर्वकालमें स्वयम्भू ब्रह्माजीके द्वारा 'तुम प्रजाकी सृष्टि करो' यह आज्ञा पाकर दक्षने जिस प्रकार सम्पूर्ण भूतोंकी सृष्टि की थी, उसे सुनिये । द्विजवर ! दक्षमुनिने पहले देवता, ऋषि, गन्धर्व, असुर और सर्प—इन सभी भूतोंको मनसे ही उत्पन्न किया । परन्तु जब मनसे उत्पन्न किये हुए वे देवादि सर्ग वृद्धिको प्राप्त नहीं हुए, तब उन दक्ष प्रजापति ऋषिने सृष्टिके लिये पूर्णतः विचार करके मैथुनधर्मके द्वारा ही नाना प्रकारकी सृष्टि रचनेकी इच्छा मनमें लिये वीरण प्रजापतिकी कन्या असिक्नीके साथ विवाह किया । हमने सुना है कि दक्ष प्रजापतिने वीरण-कन्या असिक्नीके गर्भसे साठ कन्याएँ उत्पन्न कीं । उनमेंसे दस कन्याएँ उन्होंने धर्मको और तेरह कश्यपमुनिको ब्याह दीं ।* फिर सत्ताईस कन्याएँ चन्द्रमाको, चार अरिष्टनेमिको, दो बहुपुत्रको, दो अङ्गिराको और दो कन्याएँ विद्वान् कृशाश्वको समर्पित कर दीं । अब इन सबकी सन्तानोंका वर्णन सुनिये ॥ ३६–४१½ ॥

विश्वेदेवांस्तु विश्वा या साध्या साध्यानसूयत ॥४२॥
मरुत्वत्यां मरुत्वन्तो वसोस्तु वसवः स्मृताः ।
भानोस्तु भानवो देवा मुहूर्तायां मुहूर्तजाः ॥४३॥

* पाँचवें अध्यायके [illegible] श्लोकमें यह चर्चा आयी है कि स्वायम्भुव मनुने प्रजापतिको अपनी पुत्री प्रसूति ब्याह दी थी । उसके गर्भसे दक्षने चौबीस कन्याएँ उत्पन्न कीं, जिनमेंसे तेरह [illegible] विवाह उन्होंने धर्मके साथ कर दिया था । फिर इसी अध्यायके [illegible] श्लोकोंमें यह बात आयी है कि दक्षने वीरण प्रजापतिकी पुत्री असिक्नीके साथ विवाह किया जिसके गर्भसे उन्होंने साठ कन्याएँ उत्पन्न कीं, जिनमेंसे दसका विवाह उन्होंने धर्मके साथ किया था । इस तरह [illegible] दो प्रकार [illegible] [illegible]

नाना पुत्रा महासत्त्वा बुधाद्यास्त्वभवन् द्विज ।
अरिष्टनेमिपत्नीनामपत्यानीह षोडश ॥६१॥

विनताके 'गरुड' और 'अरुण' नामक दो विख्यात पुत्र हुए । गरुडजी परमतेजस्वी अमित-तेजस्वी पक्षिराज भगवान् विष्णुके वाहन हो गये और अरुण सूर्यके सारथि बने । ताम्राके श्यपजीसे छः पुत्र हुए, जो आज मुख्य मुनिप— घोड़ा, ऊँट, गदहा, हाथी, गवय और मृग । पृथ्वीपर जितने वृक्ष आदि हैं, वे काष्ठासे उत्पन्न हुए हैं । इराने वृक्ष, लता, वल्ली और 'तृण' जातिके तृणसमूहोंको जन्म दिया । स्वसाने यक्ष और राक्षस तथा मुनिने अप्सराओंको प्रकट किया । क्रोधके पुत्र प्रचण्ड विषवाले 'दन्दशूक' नामक महासर्प हुए, विप्रवर ! चन्द्रमाकी सुन्दर मनवाली जिन सत्ताईस स्त्रियोंकी चर्चा की गयी है, उनमें बुध आदि महान् पराक्रमी पुत्र हुए । अरिष्टनेमिकी स्त्रियोंके गर्भसे सोलह सतान हुई ॥ ५८—६१ ॥

बहुपुत्रस्य विदुषश्चतस्रो विद्युतः स्मृताः ।
प्रत्यङ्गिरससुताः श्रेष्ठा ऋषयश्चर्षिसत्कृताः ॥६२॥
कृशाश्वस्य तु देवर्षेर्देवाश्च ऋषयः सुताः ।
एते युगसहस्रान्ते जायन्ते पुनरेव हि ॥६३॥
एते कश्यपदायादाः कीर्तिताः स्थाणुजङ्गमाः ।
स्थितौ स्थितस्य देवस्य नरसिंहस्य धर्मतः ॥६४॥
एता विभूतयो विप्र मया ते परिकीर्तिताः ।
कथिता दक्षकन्यानां मया तेऽपत्यसंततिः ॥६५॥
श्रद्धावान् संस्मरेदेतां स सुसंततिवान् भवेत् ॥६६॥
सर्गानुसर्गौ कथितौ मया ते
समासतः सृष्टिविवृद्धिहेतोः ।
पठन्ति ये विष्णुपराः सदा नरा
इदं द्विजास्ते विमला भवन्ति ॥६७॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे सृष्टिकथने पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

विद्वान् बहुपुत्रकी सतान कपिला, अतिलोहिता, पीता और सिता—इन चार वर्णोंवाली चार बिजलियाँ कही गयी हैं । प्रत्यङ्गिराके पुत्रगण ऋषियोंद्वारा सम्मानित उत्तम ऋषि हुए । देवर्षि कृशाश्वके पुत्र देवर्षि ही हुए । ये एक एक हजार युग (अर्थात् एक कल्प) के बीतनेपर पुनः पुनः उत्पन्न होते रहते हैं । इस प्रकार ये कश्यपके वंशमें उत्पन्न हुए चर अचर प्राणियोंका वर्णन किया गया । विप्रवर ! धर्मपूर्वक पालनकर्ममें लगे हुए भगवान् नरसिंहकी इन विभूतियोंका यहाँ मैंने आपसे संक्षेपसे वर्णन किया है । साथ ही दक्ष कन्याओंकी संतान-परम्परा भी बतलायी है । जो श्रद्धापूर्वक इसका स्मरण करता है, वह सुन्दर संतानसे युक्त होता है । ब्रह्मन् ! सृष्टि विस्तारके लिये ब्रह्मा तथा अन्य प्रजापतियोंद्वारा जो सर्ग और अनुसर्ग सम्पन्न हुए, उन सबका मैंने संक्षेपसे आपसे वर्णन किया । जो द्विजाति मानव भगवान् विष्णुमें मन लगाकर इन प्रसङ्गोंका पाठ करते हैं वे निर्मल हो जाते हैं ॥ ६२—६७ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें सृष्टिवर्णनमें पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

इद पुसीयमाख्यान वारुण पापनाशनम्।
पुत्रकामास्तु ये केचिच्छृण्वन्तीद शुचिव्रताः।
अचिरादेव पुत्रास्ते लभन्ते नात्र सशय ॥४२॥
यश्चैतत्पठते नित्य हव्यकव्ये द्विजोत्तमः।
देवाश्च पितरस्तस्य तृप्ता यान्ति पर सुखम् ॥४३॥
यश्चैतच्छृणुयान्नित्य प्रातरुत्थाय मानव।
नन्दते स सुख भूमौ विष्णुलोक स गच्छति ॥४४॥
इत्येतदाख्यानमिद मयेरित
पुरातन वेदविदैरुदीरितम्।
पठिष्यते यस्तु शृणोति सर्वदा
स याति शुद्धो हरिलोकमञ्जसा ॥४५॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे पुसवनाख्यान नाम षष्ठोऽध्यायः

ब्राह्मण! इस प्रकार महात्मा वसिष्ठजी और बुद्धिमान् अगस्त्यजी जिस तरह मित्रावरुणके पुत्र हुए थे, वह सब प्रसङ्ग मैंने आपसे कह दिया। यह वरुणदेवता सम्बन्धी पुंसवनाख्यान पाप नष्ट करनेवाला है। जो लोग पुत्रकी कामनासे शुद्ध व्रतका आचरण करते हुए इसका श्रवण करते हैं, वे शीघ्र ही अनेक पुत्र प्राप्त करते हैं—इसमें संदेह नहीं है। जो उत्तम ब्राह्मण हव्य (देवयाग) और कव्य (पितृयाग) में इसका पाठ करता है, उसके देवता तथा पितर तृप्त होकर अत्यन्त सुख प्राप्त करते हैं। जो मनुष्य नित्य प्रातःकाल उठकर इसका श्रवण करता है, वह पृथ्वीपर सुखपूर्वक प्रसन्नताके साथ रहता है और फिर विष्णुलोकको प्राप्त करता है। वेदवेत्ताओंके द्वारा प्रतिपादित इस पुरातन आख्यानको, जो मैंने कहा है, जो लोग सादर पढ़ेंगे और सुनेंगे, वे शुद्ध होकर अनायास ही विष्णुलोकको प्राप्त कर लेंगे॥४१–४५॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'पुंसवन' नामक छठा अध्याय पूरा हुआ॥६॥

सातवाँ अध्याय

मार्कण्डेयजीके द्वारा तपस्यापूर्वक श्रीहरिकी आराधना, 'मृत्युंजय-स्तोत्र'का पाठ और मृत्युपर विजय प्राप्त करना

श्रीभरद्वाज उवाच

मार्कण्डेयेन मुनिना कथ मृत्युः पराजितः।
एतदाख्याहि मे सूत त्वयैतत् सूचित पुरा ॥ १ ॥

श्रीभरद्वाजजी बोले—सूतजी! मार्कण्डेयमुनिने मृत्युको कैसे पराजित किया? यह मुझे बताइये। आपने पहले यह सूचित किया था कि वे मृत्युपर विजयी हुए थे* ॥ १ ॥

सूत उवाच

इद तु महदाख्यान भरद्वाज शृणुष्व मे।
शृण्वन्तु ऋषयश्चेमे पुरावृत्त वदाम्यहम् ॥ २ ॥
कुरुक्षेत्रे महापुण्ये व्यासपीठ मनोरमे।
तत्रासीन मुनिवर कृष्णद्वैपायन मुनिम् ॥ ३ ॥
कृतस्नान कृतजप मुनिशिष्यैः समावृतम्।
वेदवेदार्थतत्त्वज्ञ सर्वशास्त्रविशारदम् ॥ ४ ॥
प्रणिपत्य यथान्याय गुरु परमधार्मिकम्।
इममेवार्थमुद्दिश्य त पप्रच्छ कृताञ्जलिः ॥ ५ ॥
यमुद्दिश्य वय पृष्टास्त्वयात्र गुनिनिशी।
नरसिंहस्य भक्तेन त्वत्तीर्थनिवासिना ॥ ६ ॥

सूतजी बोले—[illegible]

* यद्यपि नरसिंहपुराणके गत अध्यायोंमें मार्कण्डेयकी चर्चा नहीं आयी ... आपने पहले यह सूचित किया था—(त्वयैतत् सूचितं पुरा)' इत्यादि कथनकी कोई संगति नहीं बैठती, तथापि प्रथम अध्यायके [illegible]

वंद्धूत्वासौ मुनि प्राह मातर पितर पुन ।
पित्रा सार्धं त्वया मातर्न कार्यं दु.खमण्वपि ॥२२॥
अपनेष्यामि भो मृत्यु तपसा नात्र सशय ।
यथा चाह चिरायु. स्या तथा कुर्यामिह तप ॥२३॥

ब्रह्मन् ! उस समय उन परम बुद्धिमान् महात्मा एव विनीत पुत्रको देखकर माता पिता शोकसे बहुत ही दुखी हुए। उन्हें दुखी देखकर महामति मार्कण्डेयजीने कहा—'माँ ! तुम बुद्धिमान् पिताजीके साथ क्यों इस प्रकार निरन्तर दुःखी रहा करती हो ? मैं पूछता हूँ, मुझसे अपने दुःखका कारण बतलाओ।' अपने पुत्र मार्कण्डेयजीके इस प्रकार पूछनेपर उन महात्माकी माताने, ज्योतिषी जो कुछ कह गया था, वह सब कह सुनाया। यह सुनकर मार्कण्डेयमुनिने माता पितासे कहा—'माँ ! तुम और पिताजी तनिक भी दुःख न मानो। मैं तपस्याके द्वारा अपनी मृत्युको दूर हटा दूँगा, इसमें सशय नहीं है। मैं ऐसा तप करूँगा, जिससे चिरजीवी हो सकूँ' ॥ १८–२३ ॥

इत्युक्त्वा तौ समाश्वास्य पितरौ वनमभ्यगात् ।
तक्षिवट नाम वन नानाऋषिनिषेवितम् ॥२४॥
तत्रासौ मुनिभि सार्धमासीन स्वपितामहम् ।
भृगु ददर्श धर्मज्ञ मार्कण्डेयो महामति ॥२५॥
अभिवाद्य यथान्याय मुनींश्चैव स धार्मिकः ।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा तस्थौ तत्पुरतो दमी ॥२६॥
भृगुस्त ततो दृष्ट्वा पौत्र बाल महामति ।
प्रोवाह महाभाग मार्कण्डेय तदा शिशुम् ॥२७॥
किमागतोऽसि पुत्रात्र पितुस्ते कुशल पुन ।
मातुश्च बान्धवाना च किमागमनकारणम् ॥२८॥
एवमुक्तो भृगुणा मार्कण्डेयो महामति ।
वाच सकल तस्मै आदेशिवचन तदा ॥२९॥
तस्य वचन श्रुत्वा भृगुस्तु पुनरब्रवीत ।
ते मति महाबुद्धे किं त्व कर्म चिकीर्षसि ॥३०॥

इस प्रकार कहकर, माता पिताको आश्वासन देकर, वे अनेक ऋषियोंसे सुसेवित 'तक्षिवट' नामक वनमें गये। वहाँ पहुँचकर महामति मार्कण्डेयजीने मुनियोंके साथ बैठे हुए अपने पितामह धर्मात्मा भृगुजीको देखा और उन्हें प्रणाम किया। उनके साथ ही अन्य ऋषियोंको भी यथोचित अभिवादन करके धर्मपरायण मार्कण्डेयजी मनःनिग्रहपूर्वक दोनों हाथ जोड़कर भृगुजीके सम्मुख खड़े हो गये। महामति भृगुजीने अपने बालक पौत्र महाभाग मार्कण्डेयको, जिसकी आयु प्रायः बीत चुकी थी, देखकर कहा—'वत्स ! तुम यहाँ कैसे आये ? अपने माता पिता और बान्धवजनोंका कुशल कहो तथा यह भी बतलाओ कि यहाँ तुम्हारे आनेका क्या कारण है ?' भृगुजीके इस प्रकार पूछनेपर महाभाग मार्कण्डेयजीने उनसे उस समय ज्योतिषीकी कही हुई सारी बात कह सुनायी। पौत्रकी बात सुनकर भृगुजीने पुनः कहा—'महाबुद्धे ! ऐसी स्थितिमें तुम कौन-सा कर्म करना चाहते हो ?' ॥ २४–३० ॥

मार्कण्डेय उवाच

भूतापहारिण मृत्यु जेतुमिच्छामि साम्प्रतम् ।
शरण त्वा प्रपन्नोऽस्मि तत्रोपाय वदस्व नः ॥३१॥

मार्कण्डेयजी बोले—भगवन् ! मैं इस समय प्राणियोंका अपहरण करनेवाले मृत्युको जीतना चाहता हूँ इसलिये आपकी शरणमें आया हूँ। इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये आप मुझे कोई उपाय बतावें ॥ ३१ ॥

भृगुरुवाच

नारायणमनाराध्य तपसा महता सुत ।
को जेतु शक्नुयान्मृत्यु तस्मात्त तपमार्चय ॥३२॥
तमनन्तमज विष्णुमच्युत पुरुषोत्तमम् ।
भक्तप्रिय सुरश्रेष्ठ भक्त्या त्व शरण व्रज ॥३३॥
तमेव शरण पूर्वं गतवान्नारदो मुनि ।
तपसा महता वत्स नारायणमनामयम् ॥३४॥
तत्प्रसादान्महाभाग नारदो ब्रह्मण सुत ।
जरा मृत्यु विजित्याशु सोऽपि पूर्वधने सुखम् ॥३५॥
तमृते पुण्डरीकाक्ष नारसिंह जनार्दनम् ।
क कुर्यान्मानवो वत्स मृत्युसत्वानिवारणम् ॥३६॥
तमनन्तमज विष्णु कृष्ण विष्णु श्रिय पति ।
गोविन्द गोपति देव सतत शरण व्रज ॥३७॥
नरसिंह महादेव यदि पूजयसे सदा ।
वत्स जेष्यसि मृत्यु त्व सतत नात्र सशय

व्यासजी कहते हैं—वत्स! भृगुजीके इस प्रकार कहनेपर उन्हें प्रणाम करके मार्कण्डेयजी सह्यपर्वतकी शाखासे निकली हुई तुङ्गभद्राके उत्तम तटपर विविध प्रकारके वृक्ष और लताओंसे भरे हुए नाना भाँतिके पुष्पोंसे सुशोभित, गुल्म, लता और वेणुओंसे व्याप्त तथा अनेकानेक मुनिजनोंसे पूर्ण तपोवनमें गये। वहाँ वे महामुनि देवेश्वर भगवान् विष्णुकी स्थापना करके क्रमशः गन्ध धूप आदिसे उनकी पूजा करने लगे। भगवान्‌की पूजा करते हुए वहाँ उन्होंने निरालस्यभावसे निराहार रहकर मासभर अत्यन्त दुष्कर तप किया। मातापिताका बतलाया हुआ समय निकट आनेपर उस दिन महामति मार्कण्डेयजीने वहाँ स्नान करके पूर्वोक्त विधिसे विष्णुकी पूजा की और स्वस्तिकासन बाँध इन्द्रियसमूहको मनमें एकत्र कर विशुद्ध अन्तःकरणसे युक्त हो प्राणायाम किया। फिर ॐकारके उच्चारणसे हृदयकमलको विकसित करते हुए उसके मध्यभागमें क्रमशः सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्निमण्डलकी कल्पना करके भगवान् विष्णुका पीठ निश्चित किया और उस स्थानपर पीताम्बर तथा शङ्ख, चक्र, गदा धारण करनेवाले सनातन भगवान् श्रीकृष्णकी भावमय पुष्पोंसे पूजा करके उनमें अपने चित्तको लगा दिया। फिर उन ब्रह्मस्वरूप श्रीहरिका ध्यान करते हुए वे 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।'—इस मन्त्रका जप करने लगे॥ ४–५४॥

व्यास उवाच

इत्येवं ध्यायतस्तस्य मार्कण्डेयस्य धीमतः।
मनस्तत्रैव संलग्नं देवदेवे जगत्पतौ॥५५॥
ततो यमाज्ञया तत्र आगता यमकिंकराः।
पाशहस्तास्तु तं नेतुं विष्णुदूतैस्तु ते हताः॥५६॥
शूलैः प्रहन्यमानास्तु द्विजं मुक्त्वा ययुस्तदा।
वयं निवर्त्य गच्छामो मृत्युरेवागमिष्यति॥५७॥

व्यासजी कहते हैं—शुकदेव! इस प्रकार ध्यान करते हुए बुद्धिमान् मार्कण्डेयजीका मन उन देवाधिदेव जगदीश्वरमें लीन हो गया। तदनन्तर यमराजकी आज्ञासे उन्हें ले जानेके लिये हाथोंमें पाश लिये हुए यमदूत वहाँ आये। परंतु भगवान् विष्णुके दूतोंने उन्हें मार भगाया। शूलोंसे मार खाते हुए वे उस समय विप्रवर मार्कण्डेयको छोड़कर भाग चले और यह कहते गये कि 'हमलोग तो लौटकर चले जा रहे हैं, परंतु अब साक्षात् मृत्युदेव ही यहाँ आयेंगे'॥ ५५–५७॥

विष्णुदूता ऊचुः

यत्र नः स्वामिनो नाम लोकनाथस्य शार्ङ्गिणः।
को यमस्तत्र मृत्युर्वा कालः कलयतां वरः॥५८॥

विष्णुदूत बोले—जहाँ हमारे स्वामी जगदीश्वर शार्ङ्गधन्वा भगवान् विष्णुका नाम जपा जाता हो, वहाँ उनकी क्या बिसात है? ग्रसनेवालोंमें श्रेष्ठ काल, मृत्यु अथवा यमराज कौन होते हैं?॥ ५८॥

व्यास उवाच

आगत्य स्वयमेवाह मृत्युः पार्श्वं महात्मनः।
मार्कण्डेयस्य चक्राम विष्णुकिंकरशङ्कया॥५९॥
तेऽप्युद्यम्याशु मुसलान्यायमान् विष्णुकिंकराः।
विष्ण्वाज्ञया हनिष्यामो मृत्युमद्येति सस्मिताः॥६०॥
ततो विष्ण्वर्पितमना मार्कण्डेयो महामतिः।
तुष्टाव प्रणतो भूत्वा देवदेवं जनार्दनम्॥६१॥
विष्णुनैवोदितं यत्तत्स्तोत्रं कर्णे महात्मनः।
सुभावितेन मनसा तेन तुष्टाव माधवम्॥६२॥

व्यासजी कहते हैं—यमदूतोंके लौट जानेपर साक्षात् मृत्यु ही वहाँ आये। उन्हें यमलोक चलनेको कहा, परंतु श्रीविष्णुदूतोंके डरसे वे महात्मा मार्कण्डेयके आगेसे ही घूमते रह गये, उन्हें स्पर्श करनेका साहस न कर सके। इधर विष्णुदूत भी शीघ्र ही हाथमें मूसल उठाकर खड़े हो गये। उन्होंने अपने मनमें यह निश्चय कर लिया था कि 'आज हमलोग विष्णुकी आज्ञासे मृत्युका वध कर डालेंगे।' तत्पश्चात् महामति मार्कण्डेयजी भगवान् विष्णुमें चित्त लगाकर उन देवाधिदेव जनार्दनको प्रणाम करके स्तुति करने लगे। भगवान् विष्णुने ही यह स्तोत्र उन महात्माके कानमें कह दिया। उसी शुद्ध चित्तके द्वारा उन्होंने सम्यक् प्रकार भगवान् माधवकी स्तुति की॥ ५९–६२॥

मार्कण्डेय उवाच

नारायणं सहस्राक्षं पद्मनाभं पुरातनम्।
प्रणतोऽस्मि हृषीकेशं किं मे मृत्युः करिष्यति॥६३॥

त्वां प्रपन्नोऽस्मि शरणं देवदेव जनार्दन ।
इति यः शरणं प्राप्तस्तं क्लेशादुद्धराम्यहम् ॥२९॥

भगवान् कहते हैं—'हे कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण !'—इस प्रकार जो मेरा नित्य स्मरण करता है, उसको मैं उसी प्रकार नरकसे निकाल लेता हूँ, जैसे जलको भेदकर कमल बाहर निकल आता है। 'पुण्डरीकाक्ष ! देवेश्वर नरसिंह ! त्रिविक्रम ! मैं आपकी शरणमें पड़ा हूँ'—यों जो कहता है, उसका मैं उद्धार कर देता हूँ। 'देवाधिदेव ! जनार्दन ! मैं आपकी शरणमें आ गया हूँ'—इस प्रकार जो मेरा शरणागत होता है, उसे मैं क्लेशसे मुक्त कर देता हूँ ॥ २७–२९ ॥

व्यास उवाच

इत्युदीरितमाकर्ण्य हरिवाक्यं यमेन च ।
नारका कृष्णकृष्णेति नारसिंहेति चुक्रुशुः ॥३०॥
यथा यथा हरेर्नाम कीर्तयन्त्यत्र नारकाः ।
तथा तथा हरेर्भक्तिमुद्वहन्तोऽब्रुवन्निदम् ॥३१॥

व्यासजी कहते हैं—वत्स ! यमराजके कहे हुए इस भगवद्वाक्यको सुनकर नरकमें पड़े हुए जीव 'कृष्ण ! कृष्ण ! नरसिंह !' इत्यादि भगवन्नामोंका जोरसे उच्चारण करने लगे। नारकीय जीव ज्यों-ज्यों भगवन्नामका कीर्तन करते थे, त्यों-ही-त्यों भगवद्भक्तिसे युक्त होते जाते थे। इस तरह भक्तिभावसे पूर्ण हो वे इस प्रकार कहने लगे ॥ ३०-३१ ॥

नारका ऊचुः

ॐ नमो भगवते तस्मै केशवाय महात्मने ।
यन्नामकीर्तनात्सद्यो नरकाग्निः प्रशाम्यति ॥३२॥
भक्तप्रियाय देवाय रक्षाय हरये नमः ।
लोकनाथाय शान्ताय यज्ञेशायादिमूर्तये ॥३३॥
अनन्तायाप्रमेयाय नरसिंहाय ते नमः ।
नारायणाय गुरवे शङ्खचक्रगदाभृते ॥३४॥
वेदप्रियाय महते विक्रमाय नमो नमः ।
वाराहायाप्रतर्क्याय वेदाङ्गाय महीभृते ॥३५॥
नमो द्युतिमते नित्यं ब्राह्मणाय नमो नमः ।
वामनाय बहुरूपाय वेदवेदाङ्गधारिणे ॥३६॥
बलिसंयमनदक्षाय वेदपालाय ते नमः ।
विष्णवे सुरनाथाय व्यापिने परमात्मने ॥३७॥
चतुर्भुजाय शुद्धाय शुद्धद्रव्याय ते नमः ।
जामदग्न्याय रामाय दुष्टक्षत्रान्तकारिणे ॥३८॥
रामाय रावणान्ताय नमस्तुभ्यं महात्मने ।
अस्मानुद्धर गोविन्द पूतिगन्धान्नमोऽस्तु ते ॥३९॥

नरकस्थ जीव बोले—'ॐ' जिनका नाम कीर्तन करनेसे नरककी ज्वाला तत्काल शान्त हो जाती है, उन महात्मा भगवान् केशवको नमस्कार है। जो रक्षक हरि, आदिमूर्ति, शान्तस्वरूप और लोकोंके स्वामी हैं, उन भक्तप्रिय, विश्वपालक भगवान् विष्णुको नमस्कार है। अनन्त, अप्रमेय नरसिंहस्वरूप, शङ्ख-चक्र-गदा धारण करनेवाले, लोकगुरु आप श्रीनारायणको नमस्कार है। वेदोंके प्रिय, महान् एवं विविध गतिवाले भगवान्‌को नमस्कार है। तर्कसे अतीत, वेदस्वरूप, पृथ्वीको धारण करनेवाले भगवान् वाराहको प्रणाम है। ब्राह्मणकुलमें अवतीर्ण, वेद-वेदाङ्गके ज्ञाता और अनेक विषयोंका ज्ञान रखनेवाले कान्तिमान् भगवान् वामनको नमस्कार है। बलिको बाँधनेवाले, वेदके पालक, देवताओंके स्वामी, व्यापक, परमात्मा आप वामनरूपधारी विष्णु भगवान्‌को प्रणाम है। शुद्ध द्रव्यमय, शुद्धस्वरूप भगवान् चतुर्भुजको नमस्कार है। दुष्ट क्षत्रियोंका अन्त करनेवाले जमदग्निनन्दन भगवान् परशुरामको प्रणाम है। रावणका वध करनेवाले आप महात्मा श्रीरामको नमस्कार है। गोविन्द ! आपको बारंबार प्रणाम है। आप इस दुर्गन्धपूर्ण नरकसे हमारा उद्धार करें ॥ ३२–३९ ॥

व्यास उवाच

इति सङ्कीर्तितं विष्णुं नारकैर्भक्तिपूर्वकम् ।
तदा सा नारकी पीडा गता तेषां महात्मनाम् ॥४०॥
कृष्णरूपधराः सर्वे दिव्यस्रग्भिर्विभूषिताः ।
दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गा दिव्याभरणभूषिताः ॥४१॥
तानारोप्य विमानेषु दिव्येषु हरिकिङ्कराः ।
तर्जयित्वा यमभटान् नीतास्ते केशवालयम् ॥४२॥
नारकेषु च सर्वेषु नीतेषु हरिकिङ्करैः ।
विष्णुलोकं यमो भूयो नमश्चक्रे नृकेसरिम् ॥४३॥
यन्नामकीर्तनाद्याता नारकाः केशवालयम् ।
तं नमामि सदा देवं नरसिंहमहं गुरुम् ॥४४॥

ओर जानेको उद्यत देखकर यमराज उसके कानमें कहते हैं—"दूत! तुम भगवान् मधुसूदनकी शरणमें गये हुए प्राणियोंको छोड़ देना, क्योंकि मेरी प्रभुता दूसरे मनुष्योंपर ही चलती है, वैष्णवोंपर मेरा प्रभुत्व नहीं है। देवपूजित ब्रह्माजीने मुझे 'यम' कहकर लोगोंके पुण्य पापका विचार करनेके लिये नियुक्त किया है। जो विष्णु और गुरुसे विमुख हैं, मैं उन्हीं मनुष्योंका शासन करता हूँ। जो श्रीहरिके चरणोंमें शीश झुकानेवाले हैं, उन्हें तो मैं स्वयं ही प्रणाम करता हूँ। भगवद्भक्तोंके चिन्तन एवं स्मरणमें अपना मन लगाकर मैं भी भगवान् वासुदेवसे अपनी सुगति चाहता हूँ। मैं मधुसूदनके वशमें हूँ, स्वतन्त्र नहीं हूँ। भगवान् विष्णु मेरा भी नियन्त्रण करनेमें समर्थ हैं। जो भगवान्से विमुख है, उसे कभी सिद्धि (मुक्ति) नहीं प्राप्त हो सकती, विष अमृत हो जाय, ऐसा कभी सम्भव नहीं है, लोहा सैकड़ों वर्षोंतक आगमें तपाया जाय, तो भी कभी सोना नहीं हो सकता, चन्द्रमाकी कलङ्कित कान्ति कभी निष्कलङ्क नहीं हो सकती, वह कभी सूर्यके समान प्रकाशमान नहीं हो सकता, परंतु जो अनन्यचित्त होकर भगवान् विष्णुके चिन्तनमें लगा है, वह मनुष्य अपने शरीरसे अत्यन्त मलिन होनेपर भी बड़ी शोभा पाता है। महान् लोकतत्त्वका अच्छी तरह विचार करनेपर भी यही निश्चित होता है कि भगवान्की उपासनाके बिना सिद्धि नहीं प्राप्त हो सकती, इसलिये देवगुरु बृहस्पतिके ऊपर सुहृद् अनुकम्पा करनेवाले भगवच्चरणोंका तुमलोग मोक्षके लिये स्मरण करते रहो। जो लोग सैकड़ों पुण्योंके फलस्वरूप इस सुन्दर मनुष्य शरीरको पाकर भी व्यर्थ विषयसुखोंमें रमण करते हैं, मोक्षपथका अनुसरण नहीं करते, वे मानो राखके लिये जल्दी-जल्दी चन्दनकी लकड़ीको फूँक रहे हैं। बड़े-बड़े देवेश्वर हाथ जोड़कर मुकुलित कर सङ्कल्प द्वारा जिन भगवान्के चरणारविन्दोंको प्रणाम करते हैं तथा जिनकी गति कभी और कहीं भी प्रतिहत नहीं होती, उन भव-जन्मनाशक एवं सबके अग्रज सनातन पुरुष भगवान् विष्णुको नमस्कार है" ॥ १-८ ॥

यमाष्टकमिदं पुण्यं पठते यः शृणोति वा ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ९ ॥
इतीदमुक्तं यमवाक्यमुत्तमं
मयाधुना ते हरिभक्तिवर्द्धनम् ।
पुनः प्रवक्ष्यामि पुरातनीं कथां
भृगोस्तु पौत्रेण च या पुरा कृता ॥१०॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

श्रीव्यासजी कहते हैं—इस पवित्र यमाष्टकको जो पढ़ता अथवा सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो विष्णुलोकको चला जाता है। भगवान् विष्णुकी भक्तिको बढ़ानेवाला यमराजका यह उत्तम वचन मैंने इस समय तुमसे कहा है। अब पुनः उसी पुरानी कथाको अर्थात् भृगुके पौत्र मार्कण्डेयजीने पूर्वकालमें जो कुछ किया था, उसको कहूँगा ॥ १० ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें नवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९ ॥

दसवाँ अध्याय

मार्कण्डेयका विवाह कर वेदशिराको उत्पन्न करके प्रयागमें अक्षयवटके नीचे तप एवं भगवान्की स्तुति करना, फिर आकाशवाणीके अनुसार स्तुति करनेपर भगवान्का उन्हें आशीर्वाद एवं वरदान देना तथा मार्कण्डेयजीका क्षीरसागरमें जाकर पुनः उनका दर्शन करना

श्रीव्यास उवाच

जित्वैवमात्मनो मृत्युं तपसा शमितव्रतः ।
स जगाम पितुर्गेहं मार्कण्डेयो महामतिः ॥ १ ॥
कृत्वा विवाहं धर्मेण भृगोर्वाक्यनिदेशतः ।
स वेदशिरसं पुत्रमुत्पाद्य च विधानतः ॥ २ ॥
इष्ट्वा यज्ञैस्तु देवेशं नारायणमनामयम् ।
श्राद्धेन तु पितॄनिष्ट्वा अन्नदानेन चातिथीन् ॥ ३ ॥
प्रयागमासाद्य पुरा स्नात्वा तीर्थे गतानि ।
मार्कण्डेयो महातेजाः ... ॥ ४ ॥

भगवान् गोविन्दको मैं प्रणाम करता हूँ। जो अजन्मा, सबके आधार, जन-समुदायके दुःखोंका नाश करनेवाले, गुरु, पुराण पुरुषोत्तम एवं सबके स्वामी हैं, सहस्रों सूर्योंके समान जिनकी कान्ति है तथा जो अच्युतस्वरूप हैं, उन आदि माधव भगवान् विष्णुको मैं भक्तिभावसे प्रणाम करता हूँ। जो पुण्यात्मा भक्तोंके ही समक्ष सगुण साकार रूपमें प्रकट होते हैं, सबकी परमगति हैं, भूमि, लोक और प्रजाओंके पति हैं, 'पर' अर्थात् कारणोंके भी परम कारण हैं तथा तीनों प्रकारके कर्मोंके साक्षी हैं, उन भगवान् विष्णुको मैं नमस्कार करता हूँ। जो अनादि विधाता भगवान् पूर्वकालमें क्षीर समुद्रके भीतर 'अनन्त' नामक शेषनागके शरीररूपी शय्यापर सोये थे, क्षीरसिन्धुकी तरङ्गोंके जलकणोंसे अभिषिक्त होनेवाले उन लक्ष्मीनिवास भगवान् केशवको मैं प्रणाम करता हूँ। जिन्होंने नरसिंहस्वरूप धारण किया है, जो महान् देवता हैं, मुर दैत्यके शत्रु हैं, मधु तथा कैटभ नामक दैत्योंका अन्त करनेवाले हैं और समस्त लोकोंकी पीड़ा दूर करनेवाले एवं हिरण्यगर्भ हैं, उन भगवान् विष्णुको मैं सदा नमस्कार करता हूँ। जो अनन्त, अव्यक्त, इन्द्रियातीत, सर्वव्यापी और अपने विभिन्न रूपोंमें स्वयं ही प्रतिष्ठित हैं तथा योगीश्वरगण जिनके चरणोंमें सदा ही मस्तक झुकाते हैं, उन भगवान् जनार्दनको मैं भक्तिपूर्वक निरन्तर प्रणाम करता हूँ। जो आनन्दमय, एक (अद्वितीय), रजोगुणसे रहित, ज्ञानस्वरूप, वृन्दा (लक्ष्मी) के धाम और योगियोंद्वारा पूजित हैं, जो अणुसे भी अत्यन्त अणु और वृद्धि तथा क्षयसे शून्य हैं, उन भक्तप्रिय भगवान् विष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ८-१५ ॥

भीष्मक उवाच

इति स्तोत्रावसाने तु वागुवाचाशरीरिणी।
मार्कण्डेय महाभाग तीर्थेऽनु तपसि स्थितम् ॥१६॥
किमर्थं क्लिश्यते ब्रह्मंस्त्वया यो नैव दृश्यते।
माधवः सर्वतीर्थेषु यावन्न स्नानमाचरे ॥१७॥
इत्युक्तः सर्वतीर्थेषु स्नात्वोवाच महामतिः।
कृत्वा कृत्वा सर्वतीर्थे स्नानं चैव कृतं भवेत्।
तद्वद त्वं मम प्रीत्या योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते ॥१८॥

भीष्मकजी कहते हैं—वत्स ! इस प्रकार स्तुति समाप्त होनेपर उस तीर्थमें तपस्या करनेवाले उन महाभाग मार्कण्डेयजीसे आकाशवाणीने कहा—'ब्रह्मन् ! क्यों क्लेश उठा रहे हो, तुम्हें जो भगवान् माधवका दर्शन नहीं हो रहा है, वह तभीतक जबतक तुम समस्त तीर्थोंमें स्नान नहीं कर लेते।' उसके यों कहनेपर महामति मार्कण्डेयजीने समस्त तीर्थोंमें स्नान किया (परन्तु जब फिर भी दर्शन नहीं हुआ, तब उन्होंने आकाशवाणीको लक्ष्य करके कहा—) 'जो कार्य करनेसे समस्त तीर्थोंमें स्नान करनेका फल होता है, अथवा समस्त तीर्थोंमें स्नानका फल मिल जाता है, वह कार्य मुझे प्रसन्न होकर आप बतलाइये। आप जो भी हों, आपको नमस्कार है' ॥ १६-१८ ॥

वागुवाच

स्तोत्रेणानेन विप्रेन्द्र स्तुहि नारायणं प्रभुम्।
नान्यथा सर्वतीर्थानां फलं प्राप्स्यसि सुव्रत ॥१९॥

आकाशवाणीने कहा—विप्रेन्द्र ! सुव्रत ! इस स्तोत्रसे प्रभुवर नारायणका स्तवन करो, और किसी उपायसे तुम्हें समस्त तीर्थोंका फल नहीं प्राप्त होगा ॥ १९ ॥

मार्कण्डेय उवाच

तदेवाख्याहि भगवन् स्तोत्रं तीर्थफलप्रदम्।
येन जप्तेन सकलं तीर्थस्नानफलं लभेत् ॥२०॥

मार्कण्डेयजी बोले—भगवन् ! जिसका जप करनेसे तीर्थस्नानका सम्पूर्ण फल प्राप्त हो जाता है, वह तीर्थ फलदायक स्तोत्र कौन-सा है ? उसे ही मुझे बताइये ॥ २० ॥

वागुवाच

जय जय देवदेव जय माधव केशव।
जय पद्मपलाशाक्ष जय गोविन्द गोपते ॥२१॥
जय जय पद्मनाभ जय वैकुण्ठ वामन।
जय पद्म हृषीकेश जय दामोदराच्युत ॥२२॥
जय पद्मेश्वरानन्त जय लोकगुरो जय।
जय शङ्खगदापाणे जय भूधरसूकर ॥२३॥
जय यज्ञेश वाराह जय भूधर भूमिप।
जय योगेश योगज्ञ जय योगप्रवर्तक ॥२४॥
जय योगप्रवर्तक जय धर्मप्रवर्तक।
कृतप्रिय जय जय यज्ञेश यज्ञाङ्ग जय ॥२५॥
जय वन्दितसद्द्विज जय नारदसिद्धिद।
जय पुण्यवतां गेह जय वैदिकभाजन ॥२६॥

ततः कदाचित् पुरुषोत्तमोक्तं
वचः स्मरन् शास्त्रविदां वरिष्ठः ।
भ्रमन् समुद्रं स जगाम द्रष्टुं
हरिं सुरेशं मुनिरुग्रतेजाः ॥५१॥
क्रमेण युक्तश्चिरकालमप्रमाद्
भृगोः स पौत्रो हरिभक्तिमुद्वहन् ।
क्षीराब्धिमासाद्य हरिं सुरेशं
नागेन्द्रभोगे कृतनिद्रमैक्षत ॥५२॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे मार्कण्डेयचरित्रे दशमोऽध्यायः ॥

श्रीव्यासजी बोले—यों कहकर कमललोचन भगवान् विष्णु वहीं अदृश्य हो गये। धर्मात्मा, महाभाग्यशाली तपोधन मार्कण्डेयजी भी शुद्धस्वरूप देवदेवेश मधुसूदनका ध्यान, पूजन, जप और नमस्कार करते हुए वहीं रहकर मुनियोंको पवित्र वेद शास्त्र, अखिल पुराण, विचित्र प्राचीन गाथाएँ, पावन इतिहास और पितृतत्त्व भी सुनाते रहे। तदनन्तर किसी समय भगवान् पुरुषोत्तमके कहे हुए वचनका स्मरण कर, वे शास्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ उग्रतेजस्वी मुनि देवेश्वर सुरेश्वर भगवान् श्रीहरिका दर्शन करनेके लिये घूमते हुए समुद्रकी ओर चले। हृदयमें भगवान्की भक्ति धारण किये चिरकाल तक परिश्रमपूर्वक चलते-चलते क्षीरसागरमें पहुँचकर उन भृगुके पौत्रने नागराजके शरीररूपी पर्यङ्कपर निद्रामग्न हुए सुरेश्वर भगवान् विष्णुका दर्शन किया ॥ ४८-५२ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'मार्कण्डेयचरित्र' वर्णनके प्रसङ्गमें दसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १० ॥

ग्यारहवाँ अध्याय

मार्कण्डेयजीद्वारा शेषशायी भगवान्का स्तवन

व्यास उवाच

प्रणिपत्य जगन्नाथं चराचरगुरुं हरिम् ।
मार्कण्डेयोऽभितुष्टाव भोगपर्यङ्कशायिनम् ॥ १ ॥

व्यासजी बोले—शुकदेव! तदनन्तर मार्कण्डेयजी शेषशय्यापर सोये हुए उन चराचरगुरु जगदीश्वर भगवान् विष्णुको प्रणाम करके उनका स्तवन करने लगे ॥ १ ॥

मार्कण्डेय उवाच

प्रसीद भगवन् विष्णो प्रसीद पुरुषोत्तम ।
प्रसीद देवदेवेश प्रसीद गरुडध्वज ॥ २ ॥
प्रसीद विष्णो लक्ष्मीश प्रसीद धरणीधर ।
प्रसीद लोकनाथाद्य प्रसीद परमेश्वर ॥ ३ ॥
प्रसीद सर्वदेवेश प्रसीद कमलेक्षण ।
प्रसीद मन्दरधर प्रसीद मधुसूदन ॥ ४ ॥
प्रसीद सुभगाकान्त प्रसीद भुवनाधिप ।
प्रसीदाद्य महादेव प्रसीद मम केशव ॥ ५ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—भगवन्! विष्णो! आप प्रसन्न हों। पुरुषोत्तम! आप प्रसन्न हों। देवदेवेश्वर! गरुडध्वज! आप प्रसन्न हों, प्रसन्न हों। लक्ष्मीपते विष्णो! धरणीधर! आप प्रसन्न हों, प्रसन्न हों। लोकनाथ! आदिपरमेश्वर! आप प्रसन्न हों, प्रसन्न हों। कमललोचन! सर्वदेवेश्वर! आप प्रसन्न हों, प्रसन्न हों। समुद्र-मन्थनके समय मन्दर पर्वतको धारण करनेवाले मधुसूदन! आप प्रसन्न हों, प्रसन्न हों। लक्ष्मीकान्त! भुवनेश! आप प्रसन्न हों, प्रसन्न हों। आदिपुरुष महादेव! केशव! आप मुझपर प्रसन्न हों, प्रसन्न हों ॥ २-५ ॥

जय कृष्ण जयाचिन्त्य जय विष्णो जयाव्यय ।
जय विश्व जयाव्यक्त जय विष्णो नमोऽस्तु ते ॥ ६ ॥
जय देव जयाजेय जय सत्य जयाक्षर ।
जय काल जयेशान जय सर्व नमोऽस्तु ते ॥ ७ ॥
जय यज्ञपते नाथ जय विश्वपते विभो ।
जय भूतपते नाथ जय सर्वपते विभो ॥ ८ ॥
जय विश्वपते नाथ जय दक्ष नमोऽस्तु ते ।
जय पापहरानन्त जय जन्मजरापह ॥ ९ ॥
जय भद्रातिभद्रेश जय भद्र नमोऽस्तु ते ।
जय कामद काकुत्स्थ जय मानद माधव ॥ १० ॥

जय शङ्कर देवेश जय श्रीश नमोऽस्तु ते ।
जय कुङ्कुमरक्ताभ जय पङ्कजलोचन ॥११॥
जय चन्दनलिप्ताङ्ग जय राम नमोऽस्तु ते ।
जय देव जगन्नाथ जय देवकिनन्दन ॥१२॥
जय सर्वगुरो ज्ञेय जय शम्भो नमोऽस्तु ते ।
जय सुन्दर पद्माभ जय सुन्दरिवल्लभ ।
जय सुन्दरसर्वाङ्ग जय वन्द्य नमोऽस्तु ते ॥१३॥
जय सर्वद सर्वेश जय शर्मद शाश्वत ।
जय कामद भक्तानां प्रभविष्णो नमोऽस्तु ते ॥१४॥

कृष्ण ! अचिन्तनीय कृष्ण ! अव्यय विष्णो ! विश्वके मूलमें रहनेवाले एवं व्यापक व्यक्त होते हुए भी अव्यक्त ! परमेश्वर ! आपकी जय हो, आपको मेरा प्रणाम है । अजेय देव ! आपकी जय हो, जय हो । अविनाशी सत्य ! आपकी जय हो, जय हो । सबका शासन करनेवाले काल ! आपकी जय हो, जय हो । सर्वमय ! आपकी जय हो, आपको नमस्कार है । महेश्वर ! नाथ ! व्यापक विश्वनाथ ! आपकी जय हो, जय हो । स्वामिन् ! भूतनाथ ! सर्वेश्वर ! विभो ! आपकी जय हो, जय हो । विश्वपते ! नाथ ! कार्यदक्ष ईश्वर ! आपकी जय हो, जय हो, आपको प्रणाम है । [illegible] ! अनन्त ! [illegible] तथा [illegible] नाश करनेवाले देव ! आपकी जय हो, जय हो । भद्र ! अतिभद्र ! [illegible] ! कल्याणमय प्रभो ! आपकी जय हो, जय हो, आपको नमस्कार है । कामनाओंको पूर्ण करनेवाले कुङ्कुमकृष्णोत्पन्न [illegible] ! [illegible] देनेवाले माधव ! आपकी जय हो, जय हो । देवेश्वर शङ्कर ! लक्ष्मीपते ! आपकी जय हो, जय हो। आपको नमस्कार है । कुङ्कुमके समान अरुण कान्तिवाले कमलनयन ! आपकी जय हो, जय हो । चन्दनसे अनुलिप्त श्रीअङ्गवाले श्रीराम ! आपकी जय हो, जय हो, आपको नमस्कार है । देव ! जगन्नाथ ! देवकीनन्दन ! आपकी जय हो, जय हो । सर्वगुरु ! जाननेयोग्य शम्भो ! आपकी जय हो, जय हो, आपको नमस्कार है । [illegible] कमलकी [illegible] ! सुन्दरी [illegible] प्राणवल्लभ ! आपकी जय हो, जय हो । सर्वाङ्गसुन्दर ! [illegible] प्रभो ! आपको नमस्कार है, आपकी जय हो, जय हो । सब कुछ देनेवाले सर्वेश्वर ! कल्याणदायी सनातन पुरुष ! आपकी जय हो, जय हो । भक्तोंकी कामनाओंको देनेवाले प्रभुवर ! आपकी जय हो, आपको नमस्कार है ॥ ६-१४ ॥

नमः कमलनाभाय नमः कमलमालिने ।
लोकनाथ नमस्तेऽस्तु वीरभद्र नमोऽस्तु ते ॥१५॥
नमस्त्रैलोक्यनाथाय चतुर्मूर्ते जगत्पते ।
नमो देवाधिदेवाय नमो नारायणाय ते ॥१६॥
नमस्ते वासुदेवाय नमस्ते पीतवाससे ।
नमस्ते नरसिंहाय नमस्ते शार्ङ्गधारिणे ॥१७॥
नमः कृष्णाय रामाय नमश्चक्रायुधाय च ।
नमः शिवाय देवाय नमस्ते भुवनेश्वर ॥१८॥
नमो वेदान्तवेद्याय नमोऽनन्ताय विष्णवे ।
नमस्ते सकलाध्यक्ष नमस्ते श्रीधराच्युत ॥१९॥
लोकाध्यक्ष जगत्पूज्य परमात्मन् नमोऽस्तु ते ।

जिनकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ है तथा जो कमलकी माला पहने हुए हैं, उन भगवान्‌को नमस्कार है । लोकनाथ ! वीरभद्र ! आपको बारम्बार नमस्कार है । चतुर्व्यूहस्वरूप जगदीश्वर ! आप त्रिभुवननाथ देवाधिदेव नारायणको नमस्कार है । पीताम्बरधारी वासुदेवको प्रणाम है, प्रणाम है । शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले नरसिंहस्वरूप आप भगवान् विष्णुको नमस्कार है, नमस्कार है । चक्रधारी विष्णु, कृष्ण, राम और भगवान् शिवके रूपमें [illegible] आपको बारम्बार नमस्कार है । सबके स्वामी श्रीधर ! अच्युत ! वेदान्त शास्त्रके द्वारा जाननेयोग्य अनन्त [illegible] भगवान् विष्णुको बारम्बार नमस्कार है । [illegible] ! [illegible] परमात्मन् ! आपको नमस्कार है ॥ १५-१९ ॥

त्वं माता सर्वलोकानां त्वमेव जगतः पिता ॥२०॥
त्वमार्तानां सुहृन्मित्रं प्रियस्त्वं प्रपितामहः ।
त्वं गुरुस्त्वं गतिः साक्षी त्वं पतिस्त्वं परायणः ॥२१॥
त्वं ध्रुवस्त्वं वषट्कर्ता त्वं हविस्त्वं हुताशनः ।
त्वं शिवस्त्वं वसुर्धाता त्वं ब्रह्मा त्वं सुरेश्वरः ॥२२॥
त्वं यमस्त्वं रविर्वायुस्त्वं जलं त्वं धनेश्वरः ।
त्वं मनुस्त्वमहोरात्रं त्वं निशा त्वं निशाकरः ।
त्वं धृतिस्त्वं श्रियः कान्तिस्त्वं क्षमा त्वं धराधरः ॥२३॥
त्वं कर्ता जगतामीशस्त्वं हन्ता मधुसूदन ।
त्वमेव गोप्ता भुवनस्य [illegible] ॥२४॥

करण कारण कर्ता त्वमेव परमेश्वर ।
शङ्खचक्रगदापाणे भो समुद्धर माधव ॥२५॥
प्रिय पद्मपलाशाक्ष शेषपर्यङ्कशायिनम् ।
त्वामेव भक्त्या सतत नमामि पुरुषोत्तमम् ॥२६॥
श्रीवत्साङ्क जगद्बीज श्यामल कमलेक्षणम् ।
नमामि ते वपुर्देव कलिकल्मषनाशनम् ॥२७॥

आप ही समस्त संसारकी माता और आप ही सम्पूर्ण जगत्के पिता हैं । आप पीड़ितोंके सुहृद् हैं, आप सबके मित्र, प्रियतम, पिताके भी पितामह, गुरु, गति, साक्षी, पति और परम आश्रय हैं । आप ही ध्रुव, वषट्कर्ता, हवि, हुताशन (अग्नि), शिव, वसु, धाता, ब्रह्मा, सुरराज इन्द्र, यम, सूर्य, वायु, जल, कुबेर, मनु, दिन रात, रजनी, चन्द्रमा, धृति, श्री, कान्ति, क्षमा और धराधर शेषनाग हैं । जगन्मय स्वरूप मधुसूदन ! आप ही जगत्के स्रष्टा, शासक और संहारक हैं तथा आप ही समस्त संसारके रक्षक हैं । आप ही करण, कारण, कर्ता और परमेश्वर हैं । हाथोंमें शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले माधव ! आप मेरा उद्धार करें । कमलदललोचन प्रियतम ! शेषशय्यापर शयन करनेवाले पुरुषोत्तम आपको ही मैं सदा भक्तिके साथ प्रणाम करता हूँ । देव ! जिनमें श्रीवत्सचिह्न शोभा पाता है, जो जगत्का आदिकारण है, जिसका वर्ण श्यामल और नेत्र कमलके समान हैं तथा जो कलिके दोषोंको नष्ट करनेवाला है, आपके उस श्रीविग्रहको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २०-२७ ॥

लक्ष्मीधरमुदाराङ्ग दिव्यमालाविभूषितम् ।
चारुपृष्ठ महाबाहु चारुभूषणभूषितम् ॥२८॥
पद्मनाभ विशालाक्ष पद्मपत्रनिभेक्षणम् ।
दीर्घतुङ्गमहाघ्राण नीलजीमूतसंनिभम् ॥२९॥
दीर्घबाहु सुगुप्ताङ्ग रत्नहारोज्ज्वलोरसम् ।
सुभ्रूललाटमुकुट स्निग्धदन्त सुलोचनम् ॥३०॥
चारुबाहु सुताम्रोष्ठ रत्नोज्ज्वलितकुण्डलम् ।
वृत्तकण्ठ सुपीनांस सरस श्रीधर हरिम् ॥३१॥

जो लक्ष्मीजीको अपने हृदयमें धारण करते हैं, जिनका शरीर सुन्दर है, जो दिव्यमालासे विभूषित हैं, जिनका पृष्ठदेश सुन्दर और भुजाएँ लंबी-लंबी हैं, जो सुन्दर आभूषणोंसे अलंकृत हैं, जिनकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ है, जिनके नेत्र कमलदलके समान सुन्दर और विशाल हैं, नासिका बड़ी ऊँची और लंबी है, जो नील मेघके समान श्याम हैं, जिनकी भुजाएँ लंबी, शरीर सुरक्षित और वक्षःस्थल रत्नोंके हारसे प्रकाशमान है, जिनकी भौंहें, ललाट और मुकुट—सभी सुन्दर हैं, दाँत चिकने और नेत्र मनोहर हैं, जो सुन्दर भुजाओं और रुचिर अरुण अधरोंसे सुशोभित हैं, जिनके कुण्डल रत्नजटित होनेके कारण जगमगा रहे हैं, कण्ठ वर्तुलाकार है और कंधे मांसल हैं, उन रसिकशेखर श्रीधर हरिको नमस्कार है ॥ २८-३१ ॥

सुकुमारमज नित्य नीलकुञ्चितमूर्धजम् ।
उन्नतांस महोरस्क कर्णान्तायतलोचनम् ॥३२॥
हेमारविन्दवदनमिन्दिरायतनमीश्वरम् ।
सर्वलोकविधातार सर्वपापहर हरिम् ॥३३॥
सर्वलक्षणसम्पन्न सर्वसत्त्वमनोरमम् ।
विष्णुमच्युतमीशानमनन्त पुरुषोत्तमम् ॥३४॥
नतोऽस्मि मनसा नित्य नारायणमनामयम् ।
वरद कामद कान्तमनन्त सूनृत शिवम् ॥३५॥

जो अजन्मा एवं नित्य होनेपर भी सुकुमारस्वरूप धारण किये हुए हैं, जिनके केश काले-काले और घुँघराले हैं, कंधे ऊँचे और वक्षःस्थल विशाल है, आँखें कानोंतक फैली हुई हैं, मुखारविन्द सुवर्णमय कमलके समान परम सुन्दर है, जो लक्ष्मीके निवासस्थान एवं सबके शासक हैं, सम्पूर्ण लोकोंके स्रष्टा और समस्त पापोंको हर लेनेवाले हैं, समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न और सभी जीवोंके लिये मनोरम हैं तथा जो सर्वव्यापी, अच्युत, ईशान, अनन्त एवं पुरुषोत्तम हैं, वरदाता, काम पूरक, कमनीय, अनन्त, मधुरभाषी एवं कल्याणस्वरूप हैं, उन निरामय भगवान् नारायण श्रीहरिको मैं सदा हृदयसे नमस्कार करता हूँ ॥ ३२-३५ ॥

नमामि शिरसा विष्णो सदा त्वां भक्तवत्सल ।
अस्मिन्नेकार्णवे घोरे वायुस्तम्भितचञ्चले ॥३६॥
अनन्तभोगशयने सहस्रफणशोभिते ।
विचित्रशयने रम्ये सेविते मन्दवायुना ॥३७॥
भुजपञ्जरसंसक्तकमलालयसेवितम् ।
दृष्ट्वा त्वां मनसा सर्वमिदानीं दृष्टवानहम् ॥३८॥

भक्तवत्सल विष्णो ! मैं सदा आपको मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। इस भयंकर एकार्णवमें, जो प्रलयकालिक वायुकी प्रेरणासे विक्षुब्ध एवं चञ्चल हो रहा है, सहस्र फणोंसे सुशोभित 'अनन्त' नामक शेषनागके शरीरकी विचित्र एवं रमणीय शय्यापर, जहाँ मन्द-मन्द वायु चल रही है, आपके चरणोंमें बसी हुई श्रीलक्ष्मीजीसे आप सेवित हैं, मैंने इस समय सत्त्वरूप आपके रूपका यहाँपर जी भरकर दर्शन किया है ॥ ३६-३८ ॥

इदानीं तु सुदुःखार्तो मायया तव मोहितः।
एकोदके निरालम्बे नष्टस्थावरजङ्गमे ॥३९॥
शून्ये तमसि दुष्पारे दुःखपङ्के निरामये।
शीतातपजरारोगशोकतृष्णादिभिः सदा ॥४०॥
पीडितोऽस्मि भृशं तात सुचिरं कालमच्युत।
शोकमोहग्रहग्रस्तो विचरन् भवसागरे ॥४१॥
इहाद्य विधिना प्राप्तस्तव पादाब्जसंनिधौ।
एकार्णवे महाघोरे दुस्तरे दुःखपीडितः ॥४२॥
विश्रमपरिश्रान्तस्त्वामद्य शरणं गतः।
प्रसीद सुमहामाय विष्णो राजीवलोचन ॥४३॥

इस समय आपकी मायासे मोहित होकर मैं अत्यन्त दुःखसे पीड़ित हो रहा हूँ। दुःखरूपी पङ्कसे भरे हुए, व्याधिशून्य एवं अवलम्बशून्य इस एकार्णवमें समस्त स्थावर-जङ्गम नष्ट हो चुके हैं। घोर और शून्यमय अपार अन्धकार छाया हुआ है। मैं इसके भीतर शीत, आतप, जरा, रोग, शोक और तृष्णा आदिके द्वारा सदा चिरकालसे अत्यन्त कष्ट पा रहा हूँ। तात ! अच्युत ! इस भवसागरमें शोक और मोहरूपी ग्राहसे ग्रस्त होकर भटकता हुआ आज मैं यहाँ दैववश आपके चरणकमलोंके निकट आ पहुँचा हूँ। इस महाभयानक दुस्तर एकार्णवमें बहुत कालतक भ्रमण करनेसे अत्यन्त दुःखपीड़ित एवं थका हुआ मैं आज आपकी शरणमें आया हूँ। महामायी कमललोचन भगवन् ! विष्णो ! आप मुझपर प्रसन्न हों ॥ ३९-४३ ॥

विश्वयोने विशालाक्ष विश्वात्मन् विश्वसम्भव।
अनन्यशरणं प्राप्तमतोऽत्र कुलनन्दन ॥४४॥
त्राहि मां कृपया कृष्ण शरणागतमातुरम्।
नमस्ते पुण्डरीकाक्ष पुराणपुरुषोत्तम ॥४५॥
अञ्जनाभ हृषीकेश मायामय नमोऽस्तु ते।
मामुद्धर महाबाहो मग्नं संसारसागरे ॥४६॥
गह्वरे दुस्तरे दुःखक्लिष्टं क्लेशमहाग्रहे।
अनाथं कृपणं दीनं पतितं भवसागरे।
मां समुद्धर गोविन्द वरदेश नमोऽस्तु ते ॥४७॥
नमस्त्रैलोक्यनाथाय हरये भूधराय च।
देवदेव नमस्तेऽस्तु श्रीवल्लभ नमोऽस्तु ते ॥४८॥

कुलनन्दन कृष्ण ! आप विश्वकी उत्पत्तिके स्थान, विशाललोचन, विश्वोत्पादक और विश्वात्मा हैं, अतः दूसरेकी शरणमें न जाकर एकमात्र आपकी ही शरणमें आये हुए मुझ आतुरका आप कृपापूर्वक यहाँ उद्धार करें। पुराण पुरुषोत्तम पुण्डरीकलोचन ! आपको नमस्कार है। कज्जलके समान श्याम कान्तिवाले हृषीकेश ! मायाके आश्रयभूत महेश्वर ! आपको नमस्कार है। महाबाहो ! संसार-सागरमें डूबे हुए मुझ शरणागतका उद्धार कर दें। वरदाता ईश्वर ! गोविन्द ! क्लेशरूपी महान् ग्राहोंसे भरे हुए, दुःख और क्लेशोंसे युक्त, दुस्तर एवं गहरे भवसागरमें गिरे हुए मुझ दीन, अनाथ एवं कृपणका उद्धार करें। त्रिभुवननाथ विष्णु और धरणीधर अनन्तको नमस्कार है। देवदेव ! श्रीवल्लभ ! आपको बारंबार नमस्कार है ॥ ४४-४८ ॥

कृष्ण कृष्ण कृपालुस्त्वमगतीनां गतिर्भवान्।
संसारार्णवमग्नानां प्रसीद मधुसूदन ॥४९॥
त्वामेकमाद्यं पुरुषं पुराणं
जगत्पतिं कारणमच्युतं प्रभुम्।
जनार्दनं जन्मजरार्तिनाशनं
सुरेश्वरं सुन्दरमिन्दिरापतिम् ॥५०॥
बृहद्भुजं श्यामलकोमलं शुभं
वराननं वारिजपत्रनेत्रम्।
तरङ्गभङ्गायतकुन्तलं हरिं
सुकान्तमीशं प्रणतोऽस्मि शाश्वतम् ॥५१॥
सा जिह्वा या हरिं स्तौति तच्चित्तं यत्तदर्पितम्।
तावेव केवलौ श्लाघ्यौ यौ तत्पूजाकरौ करौ ॥५२॥

जन्मान्तरसहस्रेषु यन्मया पातकं कृतम् ।
तन्मे हर त्वं गोविन्द वासुदेवेति कीर्तनात् ॥५३॥

कृष्ण ! कृष्ण ! आप दयालु और आश्रयहीनोंके आश्रय हैं । मधुसूदन ! संसार-सागरमें निमग्न हुए प्राणियोंपर आप प्रसन्न हों । आप ही एक (अद्वितीय), आदि, पुराणपुरुष, जगदीश्वर, जगत्‌के कारण, अच्युतस्वरूप, सबके स्वामी और जन्म जरा एवं पीड़ाको नष्ट करनेवाले, देवेश्वर, परम सुन्दर स्वभाववाले भगवान् जनार्दनको प्रणाम करता हूँ । जिनकी भुजाएँ बड़ी हैं, जो श्यामवर्ण, कोमल, सुशोभन, सुसूक्ष्म और कमलदललोचन हैं, क्षीरसागरकी तरंगभङ्गीके समान जिनके लंबे-लंबे घुँघराले केश हैं, उन परम कमनीय, सनातन ईश्वर भगवान् विष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ । भगवन् ! वही जिह्वा सफल है, जो आप श्रीहरिका स्तवन करती है, वही चित्त साधक है, जो आपके चरणोंमें समर्पित हो चुका है तथा वे ही हाथ धन्य हैं, जो आपकी पूजा करते हैं । गोविन्द ! हजारों जन्मान्तरोंमें मैंने जो-जो पाप किये हों, उन सबको आप 'वासुदेव' इस नामका कीर्तन करनेमात्रसे हर लीजिये ॥ ४९-५३ ॥

व्यास उवाच

इति स्तुतस्ततो विष्णुर्मार्कण्डेयेन धीमता ।
संतुष्टः प्राह विश्वात्मा तं मुनिं गरुडध्वजः ॥५४॥

व्यासजी बोले—तदनन्तर बुद्धिमान् मार्कण्डेय मुनिके इस प्रकार स्तुति करनेपर गरुडचिह्नित ध्वजावाले विश्वात्मा भगवान् विष्णुने संतुष्ट होकर उनसे कहा ॥ ५४ ॥

श्रीभगवानुवाच

प्रीतोऽस्मि तपसा विप्र स्तुत्या च भृगुनन्दन ।
वरं वृणीष्व भद्रं ते प्रार्थितं दद्मि ते वरम् ॥५५॥

श्रीभगवान् बोले—विप्र ! भृगुनन्दन ! मैं तुम्हारी तपस्या और स्तुतिसे प्रसन्न हूँ । तुम्हारा कल्याण हो । तुम मुझसे वर माँगो । मैं तुम्हें मुँहमाँगा वर दूँगा ॥ ५५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

त्वत्पादपद्मे देवेश भक्तिं मे देहि सर्वदा ।
यदि तुष्टो ममाद्य त्वमन्यदेकं वृणोम्यहम् ॥५६॥
स्तोत्रेणानेन देवेश यस्त्वां स्तोष्यति नित्यशः ।
स्वलोकवसतिं तस्य देहि देव जगत्पते ॥५७॥
दीर्घायुष्ट्वं तु यद्दत्तं त्वया मे तपसः पुरा ।
तत्सर्वं सफलं जातमिदानीं तव दर्शनात् ॥५८॥
वस्तुमिच्छामि देवेश तव पादाब्जमर्चयन् ।
अत्रैव भगवन्नित्यं जन्ममृत्युविवर्जितः ॥५९॥

मार्कण्डेयजी बोले—देवेश्वर ! यदि आज आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मैं यही माँगता हूँ कि 'आपके चरण-कमलोंमें मेरी भक्ति सदा बनी रहे ।' इसके सिवा एक दूसरा वर भी मैं माँग रहा हूँ—'देव ! देवेश्वर ! जगत्पते ! जो इस स्तोत्रसे आपकी नित्य स्तुति करे, उसे आप अपने वैकुण्ठधाममें निवास प्रदान करें ।' पूर्वकालमें तपस्या करते हुए मुझको जो आपने दीर्घायु होनेका वरदान दिया था, वह सब आज आपके दर्शनसे सफल हो गया । देवेश ! भगवन् ! अब मैं आपके चरणारविन्दोंका पूजन करता हुआ जन्म और मृत्युसे रहित होकर यहीं ही नित्य निवास करना चाहता हूँ ॥ ५६-५९ ॥

श्रीभगवानुवाच

मय्यस्तु ते भृगुश्रेष्ठ भक्तिरव्यभिचारिणी ।
भक्त्या मुक्तिर्भवत्येव तव कालेन सत्तम ॥६०॥
यस्त्विदं पठते स्तोत्रं सायं प्रातस्त्वयेरितम् ।
मयि भक्तिं दृढां कृत्वा मम लोके स मोदते ॥६१॥
यत्र यत्र भृगुश्रेष्ठ स्थितस्त्वं मां स्मरिष्यसि ।
तत्र तत्र समेष्यामि दान्तो भक्तवशोऽस्मि भो ॥६२॥

श्रीभगवान् बोले—भृगुश्रेष्ठ ! मुझमें तुम्हारी अनन्य भक्ति बनी रहे तथा साधुशिरोमणे ! समय आनेपर इस भक्तिसे तुम्हारी मुक्ति भी अवश्य ही हो जायगी । तुम्हारे कहे हुए इस स्तोत्रका जो लोग नित्य प्रातःकाल और सायंकालके समय पाठ करेंगे, वे मुझमें सुदृढ़ भक्ति रखते हुए मेरे लोकमें आनन्दपूर्वक रहेंगे । भृगुश्रेष्ठ ! मैं दान्त (संयत) होनेपर भी भक्तके वशमें रहता हूँ; अतः तुम जहाँ-जहाँ रहकर मेरा स्मरण करोगे, वहाँ-वहाँ मैं पहुँच जाऊँगा ॥ ६०-६२ ॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा तं मुनिश्रेष्ठं मार्कण्डेयं स माधवः ।
विरराम स सर्वत्र पश्यन् विष्णुं गतस्ततः ॥६३॥
इति ते कथितं विप्र चरितं तस्य धीमतः ।
मार्कण्डेयस्य च मुनेस्तन्नैवोक्तं पुरा मम ॥६४॥

ये विष्णुभक्त्या चरितं पुराणं
भृगोस्तु पौत्रस्य पठन्ति नित्यम्।
ते मुक्तपापा नरसिंहलोके
वसन्ति भक्तैरभिपूज्यमानाः ॥६५॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे मार्कण्डेयचरितं नाम एकादशोऽध्यायः ॥११॥

व्यासजी बोले—मुनिवर मार्कण्डेयसे यों कहकर भगवान् लक्ष्मीपति मौन हो गये तथा वे मुनि इधर-उधर विचरते हुए सर्वत्र भगवान् विष्णुका साक्षात्कार करने लगे। विप्र! बुद्धिमान् मार्कण्डेय मुनिके इस चरित्रका, जिसे पूर्वकालमें उन्होंने स्वयं ही मुझसे कहा था, मैंने तुमसे वर्णन किया। जो लोग भृगुके पौत्र मार्कण्डेयजीके इस पुरातन चरित्रका भगवान् विष्णुमें भक्ति रखते हुए नित्य पाठ करते हैं, वे पापोंसे मुक्त हो, भक्तोंसे पूजित होते हुए भगवान् नृसिंहके लोकमें निवास करते हैं॥ ६३-६५॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'मार्कण्डेय-चरित' नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११॥

बारहवाँ अध्याय

यम और यमीका संवाद*

सूत उवाच

श्रुत्वेमाममृतां पुण्यां सर्वपापप्रणाशिनीम्।
अवितृप्तः स धर्मात्मा शुको व्यासमभाषत॥ १॥

सूतजी बोले—समस्त पापोंको नष्ट करनेवाली और अमृतके समान मधुर इस पावन कथाको सुनकर धर्मात्मा शुकदेवजी तृप्त न हुए—उनकी श्रवणविषयक इच्छा बनी ही रही; अतः वे व्यासजीसे बोले॥ १॥

श्रीशुक उवाच

अहोऽतीव तपश्चर्या मार्कण्डेयस्य धीमतः।
येन दृष्टो हरिः साक्षाद्येन मृत्युः पराजितः॥ २॥

* यह 'यम-यमी-संवाद' ऋग्वेदके एक सूक्तपर आधारित है। वहाँ प्रसङ्ग यों है कि यम और यमी, जो परस्पर भाई और बहन हैं, कुमरावस्थामें बालोचित खेलमें मन बहला रहे थे। उनके सामने एक ऐसा दृश्य आया, जिसमें कोई वर [illegible] के साथ विवाहके लिये जा रहा था। यमीने पूछा—भैया! यह क्या है? यमने उसे बताया कि यह [illegible] है। इसमें वर [illegible] पुरुष किसी कुमारी स्त्रीके साथ विवाह करेगा। फिर वे दोनों पति-पत्नी होकर गृहस्थ-जीवन व्यतीत करेंगे। यमी बालोचित सरलताके साथ प्रस्ताव कर बैठी—भैया! आओ, हम और तुम भी परस्पर विवाह कर लें। यमने उसे समझाया कि भाईके साथ बहनका विवाह नहीं होता। तुम्हें मुझसे भिन्न किसी दूसरे श्रेष्ठ पुरुषको अपना पति चुनना [illegible] मुझसे पति मत [illegible]।

इसी वैदिक उपाख्यानको यहाँ इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है, मानो यमी [illegible] हो यमसे यह प्रार्थना कर रही हो कि—वे उसे अपनी पत्नी बनाकर उसकी इच्छा पूर्ण करें। इसमें [illegible] प्रस्तुत किया गया है और 'विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः।' (विकारका कारण उपस्थित होनेपर भी जिनके चित्तमें विकार नहीं होता, वे ही पुरुष धीर—ज्ञानी और संयमी हैं—) इस उक्तिके अनुसार यमकी [illegible] उनकी धर्मविषयक [illegible] धैर्य और विवेकको [illegible] प्रकाशमें लाया गया। [illegible] धर्मात्मा, मनस्वी और विवेकी सिद्ध हुए हैं। [illegible] है। [illegible] और मरण [illegible] है। [illegible] किसी [illegible] विवाह कर देना चाहिये। [illegible] है। इसमें किसी प्रकारके विकारकी [illegible] नहीं है। [illegible] लिये ही आचार्योंने इस वैदिक उपाख्यानको यहाँ इस प्रकार चित्रित किया है।

न तृप्तिरस्ति मे तात श्रुत्वेमां वैष्णवीं कथाम् ।
पुण्यां पापहरां तात तस्मादन्यत्तु मे वद ॥ ३ ॥
नराणां दृढचित्तानामकार्यं नेह कुर्वताम् ।
यत्पुण्यमृषिभि॰ प्रोक्त तन्मे वद महामते ॥ ४ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—पिताजी ! बुद्धिमान् मार्कण्डेयजी की तपस्या बड़ी भारी और अद्भुत है, जिन्होंने साक्षात् भगवान् विष्णुका दर्शन किया और मृत्युपर विजय पायी। तात ! पापोंको नष्ट करनेवाली इस विष्णु सम्बन्धिनी पावन कथाको सुनकर मुझे तृप्ति नहीं हो रही है। अतः अब मुझसे कोई दूसरी कथा कहिये । महामते ! जिनका मन सुदृढ़ है, जो इस जगत्में कभी निषिद्ध कर्म नहीं करते, उन मनुष्योंको जिस पुण्यकी प्राप्ति ऋषियोंने बतायी है, उसे ही आप कहिये ॥ २-४ ॥

व्यास उवाच

नराणां दृढचित्तानामिह लोके परत्र च ।
पुण्य यत्स्यान्मुनिश्रेष्ठ तन्मे निगदत शृणु ॥ ५ ॥
अत्रैवोदाहरन्तीममितिहास पुरातनम् ।
यम्या च सह सवाद यमस्य च महात्मन ॥ ६ ॥
विवस्वानदिते पुत्रस्तस्य पुत्रौ सुवर्चसौ ।
जज्ञाते स यमश्चैव यमी चापि यवीयसी ॥ ७ ॥
तौ तत्र भवनिर्द्वृते पितुर्भवन उत्तमे ।
क्रीडमानौ स्वभावेन स्वच्छन्दगमनावुभौ ॥ ८ ॥
यमी यम समासाद्य स्वसा भ्रातरमब्रवीत् ॥ ९ ॥

व्यासजी बोले—मुनिश्रेष्ठ शुकदेव ! स्थिर चित्तवाले पुरुषोंको इस लोकमें या परलोकमें जो पुण्य प्राप्त होता है, उसे मैं बतलाता हूँ; तुम सुनो । इसी विषयमें विद्वान् पुरुष यमी और यम महात्मा यमके संवादरूप इस प्राचीन इतिहासका वर्णन किया करते हैं । अदितिके पुत्र जो विवस्वान् (सूर्य) हैं, उनके दो तेजस्वी संतानें हुईं । उनमें प्रथम तो 'यम' नामक पुत्र था और दूसरी उससे छोटी 'यमी' नामकी कन्या थी । वे दोनों अपने पिताके उत्तम भवनमें दिनोंदिन भलीभाँति बढ़ने लगे । वे बाल स्वभावके अनुसार एक साथ खेलते-कूदते और इच्छानुसार घूमते फिरते थे । एक दिन यमकी बहिन यमीने अपने भाई यमके पास जाकर कहा ॥ ५-९ ॥

न भ्राता भगिनीं योग्यां कामयन्तीं च कामयेत् ।
भ्रातृभूतेन किं तस्य स्वसुर्यो न पतिर्भवेत् ॥१०॥
अभूत इव स ज्ञेयो न तु भूत कथचन ।
अनाथां नाथमिच्छन्तीं स्वसार यो न नाथति ॥११॥
काङ्क्षन्तीं भ्रातर नाथ भर्तार यस्तु नेच्छति ।
भ्रातेति नोच्यते लोके स पुमान् मुनिसत्तम ॥१२॥
स्याद्वान्यत्तनया तस्य भार्या भवति किं तया ।
ईक्षतस्तु स्वसा भ्रातु कामेन परिदह्यते ॥१३॥
यत्कार्यमहमिच्छामि त्वमेवेच्छ तदेव हि ।
अन्यथाद मरिष्यामि त्वामिच्छन्ती विचेतना ॥१४॥
कामदु खमसह्य तु भ्रात॰ किं त्व न चेच्छसि ।
कामाग्निना भृश तप्ता प्रलीयाम्यद्य मा चिरम् ॥१५॥
कामार्तया स्त्रिया ,कान्त वशगो भव मा चिरम् ।
स्वेन कायेन मे काय सयोजयितुमर्हसि ॥१६॥

यमी बोली—जो भाई अपनी योग्य बहिनको उसके चाहनेपर भी न चाहे, जो बहिनका पति न हो सके, उसके भाई होनेसे क्या लाभ ? जो स्वामीकी इच्छा रखनेवाली अपनी कुमारी बहिनका स्वामी नहीं बनता, उस भाईको ऐसा समझना चाहिये कि वह पैदा ही नहीं हुआ । किसी तरह भी उसका उत्पन्न होना नहीं माना जा सकता । भैया ! यदि बहिन अपने भाईको ही अपना स्वामी—अपना पति बनाना चाहती है, इस दशामें जो बहिनको नहीं चाहता, वह पुरुष मुनिशिरोमणि ही क्यों न हो, इस संसारमें भ्राता नहीं कहा जा सकता । यदि किसी दूसरेकी ही कन्या उसकी पत्नी हो तो [illegible] । [illegible] भाईकी अपनी बहिन उसके देखते-देखते कामसे दग्ध हो रही है । [illegible] इस समय अपने [illegible] नहीं है । मैं इस समय जो काम करना चाहती हूँ, तुम भी उसको स्वीकार करो, नहीं तो मैं तुम्हारी ही चाह [illegible] प्राण त्याग दूँगी, मर जाऊँगी । भाई ! कामकी वेदना असह्य होती है । तुम मुझे क्यों नहीं चाहते ? प्यारे भैया ! कामाग्निसे अत्यन्त संतप्त होकर मैं मरी जा रही हूँ, अब देर न करो । कान्त ! मैं कामपीड़िता स्त्री हूँ । तुम शीघ्र ही मेरे अधीन हो जाओ । अपने शरीरसे मेरे शरीरका संयोग होने दो ॥ १०-१६ ॥

यम उवाच

किमिदं लोकविद्विष्टं धर्मं भगिनि भाषसे ।
अकार्यमिह कः कुर्यात् पुमान् भद्रे सुचेतनः ॥१७॥
न ते संयोजयिष्यामि कायं कायेन भामिनि ।
न भ्राता मदनार्ताया स्वसुः कामं प्रयच्छति ॥१८॥
महापातकमित्याहुः स्वसारं योऽधिगच्छति ।
पशूनामेष धर्मः स्यात्तिर्यग्योनिगतां शुभे ॥१९॥

यम बोले—बहिन ! सारा संसार जिसकी निन्दा करता है, उसी इस पापकर्मको तू धर्म कैसे बता रही है ? भद्रे ! भला कौन सचेत पुरुष यह न करनेयोग्य पापकर्म कर सकता है ? भामिनि ! मैं अपने शरीरसे तुम्हारे शरीरका संयोग न होने दूँगा । कोई भी भाई अपनी कामपीड़िता बहिनकी इच्छा नहीं पूरी कर सकता । जो बहिनके साथ समागम करता है, उसके इस कर्मको महापातक बताया गया है—शुभे ! यह तिर्यग् योनिमें पड़े हुए पशुओंका धर्म है—देवता या मनुष्यका नहीं ॥ १७–१९ ॥

यम्युवाच

एकस्थाने यथा पूर्वं संयोगो नौ न दुष्यति ।
मातृगर्भे तथैवाय संयोगो नौ न दुष्यति ॥२०॥
किं भ्रातरप्यनाथां त्वं मां नेच्छसि शोभनम् ।
स्वसारं निर्ऋती रक्षः संगच्छति च नित्यशः ॥२१॥

यमी बोली—भैया ! हम दोनों जुड़वीं पैदा हुए हैं और माताके गर्भमें एक साथ रहे हैं । पहले माताके गर्भमें एक ही स्थानपर हम दोनोंका जो संयोग हुआ था, वह जैसे दूषित नहीं माना गया, उसी प्रकार यह संयोग भी दूषित नहीं हो सकता । भाई ! अभीतक मुझे पतिकी प्राप्ति नहीं हुई है । तुम मेरा भला करना क्यों नहीं चाहते ? 'निर्ऋति' नामक राक्षस तो अपनी बहिनके साथ नित्य ही समागम करता है ॥ २०–२१ ॥

यम उवाच

सर्वस्मिन्नपि निन्द्येत लोकवृत्तं जुगुप्सितम् ।
प्रधानपुरुषाचीर्णं लोकोऽयमनुवर्तते ॥२२॥
तस्मादनिन्दितं धर्मं प्रधानपुरुषश्चरेत् ।
निन्दितं वर्जयेद्यत्नादेतद्धर्मस्य लक्षणम् ॥ २३॥

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥२४॥
अतिपापमहं मन्ये सुभगे वचनं तव ।
विरुद्धं सर्वधर्मेषु लोकेषु च विशेषतः ॥२५॥
मत्तोऽन्यो यो भवेद्यो वै विशिष्टो रूपशीलतः ।
तेन सार्धं प्रमोदस्व न ते भर्ता भवाम्यहम् ॥२६॥
नाहं स्पृशामि तन्वा ते तनुं भद्रे दृढव्रतः ।
मुनयः पापमाहुस्तं यः स्वसारं निगृह्णति ॥२७॥

यम बोले—बहिन ! कुत्सित लोकव्यवहारको निन्दा ब्रह्माजीने भी की है । इस संसारमें लोग श्रेष्ठ पुरुषोंद्वारा आचरित धर्मका ही अनुसरण करते हैं । इसलिये श्रेष्ठ पुरुषको चाहिये कि वह उत्तम धर्मका ही आचरण करे और निन्दित कर्मको यत्नपूर्वक त्याग दे—यही धर्मका लक्षण है । श्रेष्ठ पुरुष जिस जिस कर्मका आचरण करता है, उसीको अन्य लोग भी आचरणमें लाते हैं और वह जिसे प्रमाणित कर देता है, लोग उसीका अनुसरण करते हैं । शुभगे ! मैं तो तुम्हारे इस वचनको अत्यन्त पापपूर्ण समझता हूँ । इतना ही नहीं, मैं इसे सब धर्मों और विशेषतः समस्त लोकोंके विपरीत मानता हूँ । मुझसे अन्य जो कोई भी रूप और शीलमें विशिष्ट हो, उसके साथ तुम आनन्दपूर्वक रहो । मैं तुम्हारा पति नहीं हो सकता । भद्रे ! मैं दृढ़ता पूर्वक उत्तम व्रतका पालन करनेवाला हूँ, अतः अपने शरीरसे तुम्हारे शरीरका स्पर्श नहीं करूँगा । जो बहिनसे प्रसंग करता है, उसे मुनियोंने पापी कहा है ॥ २२—२७ ॥

यम्युवाच

दुर्लभं चैव पश्यामि लोके रूपमिहेदृशम् ।
यत्र रूपं वयश्चैव पृथिव्यां क्व प्रतिष्ठितम् ॥२८॥
न विजानामि ते चित्तं कुलं गतप्रतिष्ठितम् ।
आत्मरूपगुणोपेतां न कामयसि मोहिताम् ॥२९॥
लतेव पादपे लग्ना काम त्वच्छरणं गता ।
बाहुभ्यां सम्परिष्वज्य निवसामि शुचिस्मिता ॥३०॥

यमी बोली—मैं देख [illegible] रूपमें ऐसा [illegible] (तुम्हारे [illegible]) [illegible] है [illegible] कहा है, [illegible] हो । मैं [illegible]

तेरहवाँ अध्याय

पतिव्रताकी शक्ति, उसके साथ एक ब्रह्मचारीका संवाद; माताकी रक्षा परम धर्म है, इसका उपदेश

श्रीशुक उवाच

विचित्रेयं कथा तात वैदिकी मे त्वयेरिता ।
अन्याः पुण्याश्च मे ब्रूहि कथाः पापप्रणाशिनीः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—तात ! आपने जो यह वैदिक कथा मुझे सुनायी है, बड़ी विचित्र है । अब दूसरी पापनाशक कथाओंका मेरे सम्मुख वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

अहं ते कथयिष्यामि पुरावृत्तमनुत्तमम् ।
पतिव्रतायाः संवादं कस्यचिद्ब्रह्मचारिणः ॥ २ ॥
कश्यपो नीतिमान्नाम ब्राह्मणो वेदपारगः ।
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो व्याख्याने परिनिष्ठितः ॥ ३ ॥
स्वधर्मकार्यनिरतः परधर्मपराङ्मुखः ।
ऋतुकालाभिगामी च अग्निहोत्रपरायणः ॥ ४ ॥
सायंप्रातर्महाभाग हुत्वाग्निं तर्पयन् द्विजान् ।
अतिथीनागतान् गेहं नरसिंहं च पूजयत् ॥ ५ ॥
तस्य पत्नी महाभागा सावित्री नाम नामतः ।
पतिव्रता महाभागा पत्युः प्रियहिते रता ॥ ६ ॥
भर्तुः शुश्रूषणेनैव दीर्घकालमनिन्दिता ।
परोक्षज्ञानमापन्ना कल्याणी गुणसम्मता ॥ ७ ॥
तया सह स धर्मात्मा मध्यदेशे महामतिः ।
नन्दिग्रामे वसन् धीमान् स्वानुष्ठानपरायणः ॥ ८ ॥

व्यासजी बोले—बेटा ! अब मैं तुमसे उस परम उत्तम प्राचीन इतिहासका वर्णन करूँगा, जो किसी ब्रह्मचारी और एक पतिव्रता स्त्रीका संवादरूप है । (मध्यदेशमें) एक कश्यप नामक ब्राह्मण रहते थे, वे बड़े ही नीतिज्ञ, वेदशास्त्रोंके पारगामी विद्वान्, सम्पूर्ण शास्त्रोंके अर्थ एवं तत्त्वके ज्ञाता, व्याख्यानमें प्रवीण, अपने धर्मके अनुकूल कार्योंमें तत्पर और दूसरोंके धर्मसे विमुख रहनेवाले थे । वे ऋतुकालमें ही पत्नी-समागम करते और प्रतिदिन अग्निहोत्र किया करते थे । महाभाग ! कश्यपजी नित्य प्रातः और सायंकाल अग्निमें हवन करके ब्राह्मणोंको तृप्त करते थे, घर आये हुए अतिथियोंका सम्मान करते हुए भगवान् नृसिंहका पूजन किया करते थे । उनकी परम सौभाग्यशालिनी पत्नीका नाम सावित्री था । महाभागा सावित्री पतिव्रता होनेके कारण पतिके ही प्रिय और हित-साधनमें लगी रहती थी । अपने गुणोंके कारण उसका बड़ा सम्मान था । वह कल्याणमयी अनिन्दिता सती-साध्वी दीर्घकालतक पतिकी शुश्रूषामें संलग्न रहनेके कारण परोक्ष ज्ञानसे सम्पन्न हो गयी थी—परोक्षमें घटित होनेवाली घटनाओंका भी उसे ज्ञान हो जाता था । मध्यदेशके निवासी वे धर्मात्मा एवं परम बुद्धिमान् कश्यपजी अपनी उसी धर्मपत्नीके साथ नन्दिग्राममें रहते हुए स्वधर्मके अनुष्ठानमें लगे रहते थे ॥ २—८ ॥

अथ कौशलिको विप्रो यज्ञशर्मा महामतिः ।
तस्य भार्याभवत् साध्वी रोहिणी नाम नामतः ॥ ९ ॥
सर्वलक्षणसम्पन्ना पतिशुश्रूषणे रता ।
सा प्रसूता सुतं त्वेकं तस्माद्भर्तुरनिन्दिता ॥१०॥
स चापि यज्ञशर्मा तु पुत्रे जाते विचक्षणः ।
जातकर्म तदा चक्रे स्नात्वा पुत्रस्य मन्त्रतः ॥११॥
द्वादशेऽहनि तस्यैव देवशर्मेति बुद्धिमान् ।
पुण्याहं वाचयित्वा तु नाम चक्रे यथाविधि ॥१२॥
उपनिष्क्रमणं चैव चतुर्थे मासि यत्नतः ।
तथान्नप्राशनं षष्ठे मासि चक्रे यथाविधि ॥१३॥

उन्हीं दिनों कोसलदेशमें उत्पन्न यज्ञशर्मा नामक एक परम बुद्धिमान् ब्राह्मण थे, जिनकी सती-साध्वी स्त्रीका नाम रोहिणी था । वह समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न थी और पतिकी सेवामें सदा तत्पर रहती थी । उस [illegible] स्त्रीने अपने स्वामी यज्ञशर्मासे एक पुत्र उत्पन्न किया । पुत्रके जन्म लेनेपर [illegible] बुद्धिमान् [illegible] स्नान करके [illegible] । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] । [illegible]

यह। तपस्याका अभिमान रखनेवाला वह ब्रह्मचारी [illegible]के घरोंमें भीख माँगता हुआ उस घरमें गया, जहाँ वह [illegible] सावित्री रहती थी। पतिव्रताने उसे देखा, ब्रह्मचारीने [illegible] लिए उससे याचना की, तो भी वह मौन रही। पहले उसने अपने स्वामीके आदेशको ओर ध्यान [illegible] उसीका पालन किया, फिर गरम जलसे पतिके चरण [illegible]—इस प्रकार स्वामीको आराम देकर वह भिक्षा [illegible] उद्यत हुई। तब ब्रह्मचारी क्रोधसे लाल आँखें [illegible] अपने तपोबलके द्वारा पतिव्रताको जला देनेकी [illegible] उसकी ओर बारबार देखने लगा। सावित्री उसे [illegible] देख हँसती हुई बोली—'ऐ क्रोधी ब्राह्मण! [illegible] और बगुला नहीं हूँ, जो आज नदीके तटपर [illegible] क्रोधसे जलकर भस्म हो गये थे। मुझसे यदि भीख [illegible] हो, तो चुपचाप ले लो' ॥ २६–३० ॥

[illegible]मुक्तः सावित्र्या भिक्षामादाय सोऽव्रत. ।
[illegible]यन् मनसा तस्याः शक्तिं दूरार्थवेदिनीम् ॥३१॥
[illegible]श्रमे मठे स्थाप्य भिक्षापात्रं प्रयत्नतः ।
[illegible]व्रताया भुक्ताया गृहस्थे निर्गते पतौ ॥३२॥
[illegible]रागम्य तद्गेहं तामुवाच पतिव्रताम् ।

सावित्रीके यों कहनेपर उससे भिक्षा लेकर वह आगे [illegible] और उसकी दूरवर्ती घटनाको जान लेनेवाली शक्तिका [illegible] ही मन चिन्तन करता हुआ अपने आश्रमपर पहुँचा। वहाँ [illegible] यत्नपूर्वक मठमें रखकर जब पतिव्रता भोजनसे [illegible] हो गयी और जब उसका गृहस्थ पति घरसे बाहर [illegible] गया, तब वह पुनः उसके घर आया और उस [illegible] बोला ॥ ३१-३२½ ॥

ब्रह्मचार्युवाच

[illegible]तन्महाभाग पृच्छतो मे यथार्थतः ॥३३॥
[illegible]दूरार्थविज्ञानं कथमाशु तवाभवत् ।

ब्रह्मचारीने कहा—महाभागे! मैं तुमसे एक बात [illegible] हूँ, तुम मुझे यथार्थरूपसे बताओ, तुम्हें दूरकी [illegible] का ज्ञान इतना शीघ्र कैसे हो गया? ॥ ३३½ ॥

[illegible] तेन सा साध्वी सावित्री तु पतिव्रता ॥३४॥
[illegible]चारिणं प्राह पृच्छन्तं गृहमेत्य वै ।
[illegible]पार्दितो ब्रह्मन् यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥३५॥

तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि स्वधर्मपरिबृंहितम् ।
स्त्रीणां तु पतिशुश्रूषा धर्म एष परिस्थितः ॥३६॥
तमेवाहं सदा कुर्यां नान्यमस्मि महामते ।
दिवारात्रमसंदिग्धं श्रद्धया परितोषणम् ॥३७॥
कुर्वन्त्या मम सम्भूतं विप्रकृष्टार्थदर्शनम् ।
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि निबोध त्वं यदीच्छसि ॥३८॥
पिता यायावरः शुद्धस्तत्प्रसादाद्वेदमधीत्य वै ।
मृते पितरि कृत्वा तु प्रेतकार्यमिहागतः ॥३९॥
उत्सृज्य मातरं द्रष्टुं वृद्धां दीनां तपस्विनीम् ।
अनाथां विधवामत्र नित्यं स्वोदरपोषकः ॥४०॥
यया गर्भे धृतः पूर्वं पालितो लालितस्तथा ।
तां त्यक्त्वा विपिने धर्मं चरन् विप्र न लज्जसे ॥४१॥
यया तव कृतं ब्रह्मन् बाल्ये मलनिकृन्तनम् ।
दुःखितां तां गृहे त्यक्त्वा किं भवेद्विपिनेऽटतः ॥४२॥
मातृदुःखेन ते वक्त्रं पूतिगन्धमिदं भवेत् ।
पित्रैव संस्कृतो यस्मात् तस्माच्छक्तिरभूदियम् ॥४३॥
पक्षी दग्धः कुदुर्बुद्धे पापात्मन् साम्प्रतं वृथा ।
वृथा स्नानं वृथा तीर्थं वृथा जप्तं वृथा हुतम् ॥४४॥
स जीवति वृथा ब्रह्मन् यस्य माता सुदुःखिता ।
यो रक्षेत् सततं भक्त्या मातरं मातृवत्सलः ॥४५॥
तस्येहानुष्ठितं सर्वं फलं चामुत्र चेह हि ।
मातुश्च वचनं ब्रह्मन् पालितं यैर्नरोत्तमैः ॥४६॥
ते मान्यास्ते नमस्कार्या इह लोके परत्र च ।
अतस्त्वं तत्र गत्वाद्य यत्र माता व्यवस्थिता ॥४७॥
तां त्वं रक्षय जीवन्तीं तद्रक्षा ते परं तपः ।
क्रोधं परित्यजैनं त्वं दृष्टादृष्टनिपातनम् ॥४८॥
तयोः कुरु वधे बुद्धिं षड्रिपोस्त्वं महाद्भवे ।
याथातथ्येन कथितमेतत्सर्वं मया तव ॥४९॥
ब्रह्मचारिन् कुरुष्व त्वं यदीच्छसि सद्गतिम् ।

उसके यों कहनेपर [illegible] पतिव्रता [illegible] आकर प्रश्न करनेवाले उस ब्रह्मचारीसे बोली—ब्रह्मन्! तुम मुझसे जो कुछ पूछते हो, उस धर्मज्ञान [illegible] सुनो—अपने [illegible] हुए अपने [illegible] हैं तुमसे

भलीभाँति बताऊँगी। पतिकी सेवा करना ही स्त्रियोंका सुनिश्चित परम धर्म है। महामते! मैं सदा उसी धर्मका पालन करती हूँ, किसी अन्य धर्मका नहीं। निस्संदेह मैं दिन-रात श्रद्धापूर्वक पतिको संतुष्ट करती रहती हूँ, इसीलिये मुझे दूर होनेवाली घटनाका भी ज्ञान हो जाता है। मैं तुम्हें कुछ और भी बताऊँगी, तुम्हारी इच्छा हो, तो सुनो—तुम्हारे पिता यज्ञशर्मा यायावर-वृत्तिसे शुद्ध ब्राह्मण थे। उनसे ही तुमने वेदाध्ययन किया था। पिताके मर जानेपर उनका अन्त्यकार्य करके तुम यहाँ चले आये। दीन अवस्थामें पड़कर कष्ट भोगती हुई उस अनाथ विधवा बूढ़ी माताकी देख-भाल करना छोड़कर तुम यहाँ रोज अपना ही पेट भरनेमें लगे हुए हो। ब्राह्मण! जिसने पहले तुम्हें गर्भमें धारण किया और उसके बाद तुम्हारा लालन-पालन किया, उसे असहायावस्थामें छोड़कर वनमें धर्माचरण करते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती? ब्रह्मन्! जिसने बाल्यावस्थामें तुम्हारा मल-मूत्र साफ किया था, उस दुःखिया माताको घरमें अकेली छोड़कर वनमें घूमनेसे तुम्हें क्या लाभ होगा? माताके कष्टसे तुम्हारा मुँह दुर्गन्धयुक्त हो जायगा। तुम्हारे पिताने ही तुम्हारा उत्तम संस्कार कर दिया था, जिससे तुम्हें यह शक्ति प्राप्त हुई है। दुर्बुद्धि यायावर! तुमने व्यर्थ ही पक्षियोंको जलाया। इस समय तुम्हारा किया हुआ तप, तीर्थसेवन, जप और होम—सब व्यर्थ है। ब्रह्मन्! जिसकी माता आपत्तिमें पड़ी हो, वह व्यर्थ ही जीवन धारण करता है। जो पुत्र माताकी सदा भक्तिपूर्वक निरन्तर रक्षा करता है, उसका किया हुआ सब धर्म यहाँ और परलोकमें भी फलप्रद होता है। ब्रह्मन्! जिन उत्तम पुत्रोंने माताके वचनका पालन किया है, वे इस लोक और परलोकमें भी [illegible] हैं। अतः जहाँ तुम्हारी माता है, वहाँ जाकर उनके जीवनकी रक्षा करो। उनकी रक्षा करना ही तुम्हारे लिये परम तपस्या है। इस तपस्याका पालन करो; क्योंकि वह तुम्हारे इस लोक और परलोक—सबमें कल्याण करनेवाला है। अब पतिसेवाका समय हो गया, इसलिये तुम सावधान रहो। यह सब मैंने तुम्हें बताया [illegible]। यदि तुम [illegible] करो ॥ ४४–४९ ॥

इत्युक्त्वा विररामाथ द्विजपुत्रं पतिव्रता ॥५०॥
सोऽपि तामाह भूयोऽपि सावित्रीं तु क्षमापयन्।
अज्ञानात्कृतपापस्य क्षमस्व वरवर्णिनि ॥५१॥
मया तवाहितं यच्च कृतं क्रोधनिरीक्षणम्।
तत् क्षमस्व महाभागे हितमुक्तं पतिव्रते ॥५२॥
तत्र गत्वा मया यानि कर्माणि तु शुभव्रते।
कार्याणि तानि मे ब्रूहि यथा मे सुगतिर्भवेत् ॥५३॥

ब्राह्मणकुमारसे यों कहकर वह पतिव्रता चुप हो गयी। तब ब्रह्मचारी भी पुनः अपना अपराध क्षमा माँगता हुआ सावित्रीसे बोला—वरवर्णिनि! अनजानमें किये हुए मेरे इस पापको क्षमा करो। महाभागे! पतिव्रते! तुमने मेरे हितकी ही बात कही है। मैंने जो क्रोधपूर्वक तुम्हारी ओर देखकर तुम्हारा अपराध किया था, उसे क्षमा कर दो। शुभव्रते! मुझे माताके पास जाकर जिन कर्मोंका पालन करना चाहिये, उन्हें बताओ, जिनसे कि मेरी सद्गति हो ॥ ५०–५३ ॥

तेनैवमुक्ता साप्याह तं पृच्छन्तं पतिव्रता।
यानि कार्याणि वक्ष्यामि त्वया कर्माणि मे शृणु ॥५४॥
पोष्या माता त्वया तत्र निश्चयं भैक्ष्यवृत्तिना।
अत्र वा तत्र वा ब्रह्मन् प्रायश्चित्तं च पक्षिणोः ॥५५॥
यज्ञशर्मसुता कन्या भार्या तव भविष्यति।
तां गृहीष्व च धर्मेण गते त्वयि स दास्यति ॥५६॥
पुत्रस्ते भविता तस्यामेकः संततिवर्धनः।
यायावरधनाद्वृत्तिं पितृवत्ते भविष्यति ॥५७॥
पुनर्मृतायां भार्यायां भविता त्वं त्रिदण्डकः।
स न्यासाश्रमधर्मेण यथोक्तेनानुष्ठितेन च।
नारसिंहप्रसादेन वैष्णवं पदमाप्स्यसि ॥५८॥
आख्यातमेतत् कथितं मया तव हि पृच्छतः।
मन्यसे नावृतं स्त्रैवं कुरु सर्वं हि मे वचः ॥५९॥

कृत्वा विवाहमुत्पाद्य पुत्रं वंशकरं शुभम् ।
मृतभार्यश्च संन्यस्य समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।
नरसिंहप्रसादेन परां सिद्धिमवाप्तवान् ॥६२॥

पतिव्रताशक्तिरियं तवेरिता
धर्मश्च मातुः परिरक्षणं परम् ।
संसारवृक्षं च निहत्य बन्धनं
छित्त्वा च विष्णोः पदमेति मानवः ॥६३॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे ब्रह्मचारिसंवादो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

जीवननिर्वाह करते हुए वहाँ माताका निश्चय ही पोषण करना चाहिये और पक्षियोंकी हत्याका प्रायश्चित्त यहाँ अथवा वहाँ अवश्य करना चाहिये । यज्ञशर्माकी पुत्री तुम्हारी पत्नी होगी । उसे ही तुम धर्मपूर्वक ग्रहण करो । तुम्हारे जानेपर यज्ञशर्मा अपनी कन्या तुम्हें दे देंगे । उसके गर्भसे तुम्हारी वंश-परम्पराको बढ़ानेवाला एक पुत्र होगा । पिताकी भाँति यायावर वृत्तिसे प्राप्त हुए धनसे ही तुम अपनी जीविका चलाओगे । फिर तुम अपनी पत्नीकी मृत्युके बाद त्रिदण्डी (संन्यासी) हो जाओगे । वहाँ संन्यासाश्रमके लिये शास्त्रविहित धर्मका यथावत् रूपसे पालन करनेपर भगवान् नरसिंहकी प्रसन्नतासे तुम विष्णुपदको प्राप्त कर लोगे ।' तुम्हारे पूछनेपर मैंने ये भविष्यमें होनेवाली बातें तुमसे बतला दी हैं । यदि तुम इन्हें असत्य नहीं मानते, तो मेरे सब वचनोंका पालन करो' ॥५४-५९॥

ब्राह्मण उवाच

गच्छामि मातृरक्षार्थमद्यैवाहं पतिव्रते ।
करिष्ये त्वद्वचः[1] सर्वं तत्र गत्वा शुभेक्षणे ॥६०॥

ब्राह्मण बोला—पतिव्रते ! मैं माताकी रक्षाके लिये आज ही जाता हूँ । शुभेक्षणे ! वहाँ जाकर तुम्हारी सब बातोंका मैं पालन करूँगा ॥ ६० ॥

इत्युक्त्वा गतवान् ब्रह्मन् देवशर्मा ततस्त्वरन् ।
ररक्ष मातरं यत्नात् क्रोधमोहविवर्जितः ॥६१॥

ब्रह्मन् ! यों कहकर देवशर्मा वहाँसे शीघ्रतापूर्वक चला गया और क्रोध तथा मोहसे रहित होकर उसने यत्नपूर्वक माताकी रक्षा की । फिर विवाह करके एक सुन्दर वंशवर्धक पुत्र उत्पन्न किया और कुछ कालके बाद पत्नीकी मृत्यु हो जानेपर संन्यासी होकर ढेले और मिट्टीको बराबर समझते हुए उसने भगवान् नृसिंहकी कृपासे परमसिद्धि (मोक्ष) प्राप्त कर ली । यह मैंने तुमसे पतिव्रताकी शक्ति बतायी और यह भी बतलाया कि माताकी रक्षा करना परम धर्म है । संसारवृक्षका उच्छेद करके सब बन्धनोंको तोड़ देनेपर मनुष्य विष्णुपदको प्राप्त करता है ॥ ६१-६३ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'पतिव्रता और ब्रह्मचारीका संवाद' विषयक तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३ ॥

चौदहवाँ अध्याय

तीर्थसेवन और आराधनसे भगवान्‌की प्रसन्नता; 'अनाश्रमी' रहनेसे दोष तथा आश्रमधर्मके पालनसे भगवत्प्राप्तिका कथन

व्यास उवाच

शृणु वत्स महाबुद्धे शिष्याश्चैतां परां कथाम् ।
मयोच्यमानां शृण्वन्तु सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥ १ ॥

व्यासजी बोले—महाबुद्धिमान् पुत्र शुकदेव ! तुम और मेरे अन्य शिष्यगण भी मेरे द्वारा कही जानेवाली इस पापहारिणी कथाको सुनो ॥ १ ॥

पुरा द्विजवरः कश्चिद्वेदशास्त्रविशारदः ।
मृतभार्यो गतस्तीर्थं चक्रे स्नानं यथाविधि ॥ २ ॥

तपः सुतप्तं विजने निःस्पृहो दारकर्मणि ।
भिक्षाहारः प्रशान्तो जपस्नानपरायणः ॥ ३ ॥

स्नात्वा स गङ्गां यमुनां सरस्वतीं
पुण्यां वितस्तामथ गोमतीं च ।
गयां समासाद्य पितॄन् पितामहान्
सतर्पयन् मन्त्रगणान् महेन्द्रम् ॥ ४ ॥

[1] ये वचन देवशर्माके चित्तसे भिन्न हैं ।

विविक्तदेशे विपुले कुशासने
निवेश्य तत्रं हृदयेऽस्य सर्वम् ।
बाह्यं समस्तं गुणमिन्द्रियाणां
विलीय भेदं भगवत्यनन्ते ॥१३॥
विज्ञयमानन्दमजं विशालं
सत्यात्मकं क्षेमपदं वरेण्यम् ।
सचिन्त्य तस्मिन् प्रविहाय देहं
बभूव मुक्तः परमात्मरूपी ॥१४॥

फिर प्रतिदिन उस पापहारी जलमें डुबकी लगाकर तथा उसीमें खड़ा रहकर त्रिदण्ड और अक्षमाला धारण करनेसे पवित्र हाथों-वाला वह ब्राह्मण मन-ही-मन भगवान् विष्णुका स्मरण करता हुआ निर्दोष गायत्री-मन्त्रका जप करने लगा। नित्यप्रति शुद्ध आदिदेव भगवान् विष्णुका हृदयमें ध्यान करके उनके नृसिंह विग्रहका पूजन करता और वनवासी हो किसी प्रकार शाक आदि खाकर भिक्षावृत्तिसे ही संतोषपूर्वक रहता था। विस्तृत एकान्त प्रदेशमें कुशासनपर बैठकर वह इन्द्रियोंके समस्त बाह्य विषयों तथा भेदबुद्धिको हृदयस्थित भगवान् अनन्तमें विलीन करके विज्ञेय, अजन्मा, विराट्, सत्यस्वरूप, श्रेष्ठ, कल्याणधाम आनन्दमय परमेश्वरका चिन्तन करता हुआ आयु पूरी होनेपर शरीर त्यागकर मुक्त एवं परमात्मस्वरूप हो गया ॥ ११-१४ ॥

इमां कथां मुक्तिपरां यथोक्तां
पठन्ति ये नारसिंह स्मरन्तः ।
प्रयागतीर्थप्लवने तु यत्फलं
तत्प्राप्य ते यान्ति हरेः पदं महत् ॥१५॥
इत्येतदुक्तं तव पुत्र पृच्छतः
पुरातनं पुण्यतमं पवित्रकम् ।
संसारवृक्षस्य विनाशनं परं
पुनः किमिच्छस्यभिवाञ्छितं वद ॥१६॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

जो लोग मोक्ष सम्बन्धिनी अपरा कथाको ही [illegible] पढ़ने वाले इस कथासे भगवान् नृसिंहका स्मरण करते हुए पढ़ते हैं, वे प्रयागतीर्थमें स्नान करनेसे जो फल होता है, उसे पाकर अन्तमें भगवान् विष्णुके महान् पदको प्राप्त कर लेते हैं। बेटा! तुम्हारे पूछनेसे मैंने यह उत्तम, पवित्र, पुण्यतम एवं पुरातन उपाख्यान, जो संसारवृक्षका नाश करनेवाला है, तुमसे कहा है; अब और क्या सुनना चाहते हो? अपना मनोरथ प्रकट करो ॥ १५-१६ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४ ॥

पंद्रहवाँ अध्याय

संसारवृक्षका वर्णन तथा इसे नष्ट करनेवाले ज्ञानकी महिमा

श्रीशुक उवाच

श्रोतुमिच्छाम्यहं तात साम्प्रतं मुनिभिः सह ।
संसारवृक्षं सकलं येनेदं परिवर्तते ॥ १ ॥
वक्तुमर्हसि मे तात त्वमेतत् सूचितं पुरा ।
नान्यो वेत्ति महाभाग संसारोत्तारलक्षणम् ॥ २ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—तात! मैं इस समय मुनियोंके साथ [illegible] वृक्षका वर्णन सुनना चाहता हूँ, जिसके द्वारा यह [illegible] परिवर्तन करता है। [illegible] आपने ही पहले इस वृक्षको सूचित किया है; अतः आप ही इसका [illegible] करनेमें समर्थ हैं। महाभाग! आपके सिवा दूसरा [illegible] संसारवृक्षका [illegible] नहीं जानता ॥ १-२ ॥

सूत उवाच

स पुत्रेणैवमुक्तस्तु शिष्याणां मध्यगस्तदा ।
कृष्णद्वैपायनः प्राह संसारतरुलक्षणम् ॥ ३ ॥

सूतजी बोले—[illegible] पुत्र शुकदेवजीके इस प्रकार पूछनेपर [illegible] (व्यासजी) ने [illegible]

[illegible]

शृण्वन्तु शिष्याः सकला [illegible] ।
संसारवृक्षं वक्ष्यामि [illegible] ॥ ४ ॥

गिरा हुआ है तथा काम, क्रोध, लोभ और विषयोंसे पीड़ित होकर अपने कर्ममय मुख्य-बन्धनों तथा पुत्रैषणा और दारैषणा आदि गौण-बन्धनोंसे आबद्ध है, वह मनुष्य इस दुस्तर भवसागरको कैसे शीघ्र पार कर सकता है? उसकी मुक्ति कैसे हो सकती है? हमारे इस प्रश्नका समाधान कीजिये ॥ १-३ ॥

व्यास उवाच

शृणु वत्स महाप्राज्ञ यज्ज्ञात्वा मुक्तिमाप्नुयात् ।
तत्ते वक्ष्यामि ते दिव्यं नारदेन श्रुतं पुरा ॥ ४ ॥
नरके रौरवे घोरे धर्मज्ञानविवर्जिताः ।
स्वकर्मभिर्महादुःखं प्राप्ता यत्र यमालये ॥ ५ ॥
महापापकृतं घोरं सम्प्राप्ताः पापकृज्जनाः ।
आलोक्य नारदः शीघ्रं गत्वा यत्र त्रिलोचनः ॥ ६ ॥
गङ्गाधरं महादेवं शंकरं शूलपाणिनम् ।
प्रणम्य विधिवद्देवं नारदः परिपृच्छति ॥ ७ ॥

श्रीव्यासजी बोले—महाप्राज्ञ पुत्र! मैंने पूर्वकालमें नारदजीके मुखसे जिसका श्रवण किया था और जिसे जान लेनेपर मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर लेता है, उस दिव्य ज्ञानका मैं तुमसे वर्णन करता हूँ। यमराजके भवनमें जहाँ घोर रौरव नरकके भीतर धर्म और ज्ञानसे रहित प्राणी अपने पापकर्मोंके कारण महान् कष्ट पाते हैं, वहाँ एक बार नारदजी गये। उन्होंने देखा, पापी जीव अपने महान् पापोंके फलस्वरूप घोर नरकमें पड़े हैं। यह देखकर नारदजी शीघ्र ही उस स्थानपर गये, जहाँ त्रिलोचन महादेवजी थे। वहाँ पहुँचकर सिरपर गङ्गाजीको धारण करनेवाले महान् देवता शूलपाणि भगवान् शंकरको उन्होंने विधिवत् प्रणाम किया और इस प्रकार पूछा ॥ ४-७ ॥

नारद उवाच

यः संसारे महाद्वन्द्वे कामभोगैः शुभाशुभैः ।
शब्दादिविषयैर्बद्धः पीड्यमानः षडूर्मिभिः ॥ ८ ॥
कथं तु मुच्यते क्षिप्रं मृत्युसंसारसागरात् ।
भगवन् ब्रूहि मे तत्त्वं श्रोतुमिच्छामि शंकर ॥ ९ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा नारदस्य त्रिलोचनः ।
उवाच तमृषिं शम्भुः प्रसन्नवदनो हरः ॥ १० ॥

नारदजी बोले—[illegible] शुभाशुभ कामभोगों और शब्दादि विषयोंसे बँधकर छहों ऊर्मियों* द्वारा पीड़ित हो रहा है, वह मृत्युमय संसार-सागरसे किस प्रकार शीघ्र ही मुक्त हो सकता है? कल्याणस्वरूप भगवान् शिव! यह तत्त्व मुझे बताइये। मैं यही सुनना चाहता हूँ। नारदजीका यह वचन सुनकर त्रिनेत्रधारी भगवान् शंकरका मुखारविन्द प्रसन्नतासे खिल उठा। वे उन महर्षिसे बोले ॥ ८-१० ॥

महेश्वर उवाच

ज्ञानामृतं च गुह्यं च रहस्यमृषिसत्तम ।
वक्ष्यामि शृणु दुःखघ्नं सर्वबन्धभयापहम् ॥ ११ ॥
तृणादि चतुरास्यान्तं भूतग्रामं चतुर्विधम् ।
चराचरं जगत्सर्वं प्रसुप्तं यस्य मायया ॥ १२ ॥
तस्य विष्णोः प्रसादेन यदि कश्चित् प्रबुध्यते ।
स निस्तरति संसारं देवानामपि दुस्तरम् ॥ १३ ॥
भोगैश्वर्यमदोन्मत्तस्तत्त्वज्ञानपराङ्मुखः ।
संसारसुमहापङ्के जीर्णा गौरिव मज्जति ॥ १४ ॥
यस्त्वात्मानं निबध्नाति कर्मभिः कोशकारवत् ।
तस्य मुक्तिं न पश्यामि जन्मकोटिशतैरपि ॥ १५ ॥
तस्मान्नारद सर्वेशं देवानां देवमव्ययम् ।
आराधयेत्सदा सम्यग् ध्यायेद्विष्णुं समाहितः ॥ १६ ॥

श्रीमहेश्वरने कहा—मुनिश्रेष्ठ! सुनो। मैं [illegible] बन्धनोंका भय और दुःख दूर करनेवाले गोपनीय रहस्यभूत ज्ञानामृतका वर्णन करता हूँ। तृणसे लेकर चतुर्मुख ब्रह्मापर्यन्त, जो चार प्रकारका प्राणिसमुदाय है, यह [illegible] चराचर जगत् जिनकी मायासे सुप्त हो रहा है, उन भगवान् विष्णुकी कृपासे यदि कोई जाग्रत् होता है [illegible] वही देवताओंके लिये भी दुस्तर इस संसारसे [illegible] पार कर जाता है। [illegible] मनुष्य [illegible] मद और ऐश्वर्यसे उन्मत्त है, वह [illegible] पंकमें [illegible] डूब जाता है, जैसे बूढ़ी गौ [illegible]। जो रेशमके कीड़ेकी भाँति अपने कर्मोंसे अपनेको बाँध लेता है, [illegible] करोड़ों जन्मोंमें भी मुक्ति [illegible] नहीं [illegible]

* [illegible]

करनेवाला मनुष्य मुक्त हो जाता है। जो अनिर्वचनीय, गुणातीत, प्रणवस्वरूप और जन्म रहित हैं, उन एकमात्र निरञ्जन भगवान् विष्णुका सदा ध्यान करनेवाला मनुष्य मुक्त हो जाता है। जो विश्वके आदिकारण, विश्वके रक्षक, विश्वका भक्षण (संहार) करनेवाले तथा सम्पूर्ण काम्य वस्तुओंके दाता हैं, तीनों अवस्थाओंसे अतीत उन भगवान् विष्णुका सदा ध्यान करनेवाला मनुष्य मुक्त हो जाता है। समस्त दुःखोंके नाशक, सबको शान्ति प्रदान करनेवाले और सम्पूर्ण पापोंको हर लेनेवाले भगवान् विष्णुका सदा ध्यान करनेवाला मनुष्य संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है। ब्रह्मा आदि देवता, गन्धर्व, मुनि, सिद्ध, चारण और योगियोंद्वारा सेवित भगवान् विष्णुका सदा ध्यान करनेवाला पुरुष पाप-तापसे मुक्त हो जाता है। यह विश्व भगवान् विष्णुमें स्थित है और भगवान् विष्णु इस विश्वमें प्रतिष्ठित हैं। सम्पूर्ण विश्वके स्वामी, अजन्मा भगवान् विष्णुका कीर्तन करनेमात्रसे मनुष्य मुक्त हो जाता है। जो संसार-बन्धनसे मुक्ति तथा सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्ति करता है, वह यदि भक्तिपूर्वक वरदायक भगवान् विष्णुका ध्यान करे तो सफलमनोरथ होकर संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है ॥ २१-२३ ॥

व्यास उवाच

नारदेन पुरा पृष्ट एवं स वृषभध्वजः ।
यदुवाच तदा तस्मै तन्मया कथितं तव ॥२४॥
तमेव सततं ध्याहि निर्बीजं ब्रह्म केवलम् ।
अवाप्स्यसि ध्रुवं तात शाश्वतं पदमव्ययम् ॥२५॥

श्रीव्यासजी कहते हैं—बेटा! इस प्रकार पूर्वकालमें देवर्षि नारदजीके पूछनेपर उन वृषभचिह्नित ध्वजावाले भगवान् शङ्करने उस समय उनके प्रति जो कुछ कहा था, वह सब मैंने तुमसे यह सुनाया। तात! निर्बीज ब्रह्मस्वरूप उन अद्वितीय विष्णुका ही निरन्तर ध्यान करो, इससे तुम अवश्य ही सनातन अविनाशी पदको प्राप्त करोगे ॥ २४-२५ ॥

श्रुत्वा सुरर्षिर्विष्णोः प्राधान्यमिदमीश्वरात् ।
स विष्णुं सम्यगाराध्य परां सिद्धिमवाप्तवान् ॥२६॥
यस्त्विदं पठते चैव नृसिंहकृतमानसः ।
शतजन्मकृतं पापमपि तस्य प्रणश्यति ॥२७॥
विष्णोः स्तवमिदं पुण्यं महादेवेन कीर्तितम् ।
प्रातः स्नात्वा पठेन्नित्यममृतत्वं स गच्छति ॥२८॥
ध्यायन्ति ये नित्यमनन्तमच्युतं
हृत्पद्ममध्येष्वथ कीर्तयन्ति ये ।
उपासकानां प्रभुमीश्वरं परं
ते यान्ति सिद्धिं परमां तु वैष्णवीम् ॥२९॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे विष्णोः स्तवराजनिरूपणे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

देवर्षि नारदने शङ्करजीके मुखसे इस प्रकार भगवान् विष्णुकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन सुनकर उनकी भलीभाँति आराधना करके उत्तम सिद्धि प्राप्त कर ली। जो भगवान् नृसिंहमें चित्त लगाकर इस स्तवका नित्य पाठ करता है, उसका सौ जन्मोंमें किया हुआ पाप भी नष्ट हो जाता है। महादेवजीके द्वारा वर्णित भगवान् विष्णुके इस पावन स्तोत्रका जो प्रतिदिन प्रातःकाल स्नान करके पाठ करता है, वह अमृतपद (मोक्ष) को प्राप्त कर लेता है। जो लोग अपने हृदय-कमलके मध्यमें विराजमान अनन्त भगवान् अच्युतका सदा ध्यान करते हैं और उपासकोंके प्रभु उन सर्वेश्वर भगवान् विष्णुका कीर्तन करते हैं, वे परम उत्तम वैष्णवी सिद्धि (विष्णुसायुज्य) प्राप्त कर लेते हैं ॥ २६-२९ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'श्रीविष्णुस्तवराजनिरूपण' विषयक सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६ ॥

सत्रहवाँ अध्याय

अष्टाक्षरमन्त्र और उसका माहात्म्य

श्रीशुक उवाच

किं जपन् मुच्यते तात सततं विष्णुतत्परः ।
संसारदुःखात् सर्वेषां हिताय वद मे पितः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—तात! पिताजी! मनुष्य सदा भगवान् विष्णुके भजनमें तत्पर रहकर किस मन्त्रका जप करनेसे संसार-दुःखसे मुक्त होता है? यह सब लोगोंके हितके लिये मुझे बताइये ॥ १ ॥

स्नान करके पवित्रभावसे जो 'ॐ नमो नारायणाय' मन्त्रका सौ (एक सौ आठ) बार जप करता है, वह निरामय परमदेव भगवान् नारायणको प्राप्त करता है। जो इस मन्त्रके द्वारा गन्ध पुष्प आदिसे भगवान् विष्णुकी आराधना करके इसका जप करता है, वह महापातकसे युक्त होनेपर भी निस्सन्देह मुक्त हो जाता है। जो हृदयमें भगवान् विष्णुका ध्यान करते हुए इस मन्त्रका जप करता है, वह समस्त पापोंसे विशुद्धचित्त होकर उत्तम गतिको प्राप्त करता है ॥ १५–१७½ ॥

प्रथमेन तु लक्षेण आत्मशुद्धिर्भविष्यति ॥१८॥
द्वितीयेन तु लक्षेण मनुसिद्धिमवाप्नुयात्।
तृतीयेन तु लक्षेण स्वर्गलोकमवाप्नुयात् ॥१९॥
चतुर्थेन तु लक्षेण हरे सामीप्यमाप्नुयात्।
पञ्चमेन तु लक्षेण निर्मलं ज्ञानमाप्नुयात् ॥२०॥
तथा षष्ठेन लक्षेण भवेद्विष्णौ स्थिरा मतिः।
सप्तमेन तु लक्षेण स्वरूपं प्रतिपद्यते ॥२१॥
अष्टमेन तु लक्षेण निर्वाणमधिगच्छति।
स्वस्वधर्मसमायुक्तो जपं कुर्याद् द्विजोत्तमः ॥२२॥
एतत् सिद्धिकरं मन्त्रमष्टाक्षरमतन्द्रितः।
दुःस्वप्नासुरपैशाचा उरगा ब्रह्मराक्षसाः ॥२३॥
जापिनं नोपसर्पन्ति चौरक्षुद्राधयस्तथा।

एक लक्ष मन्त्रका जप करनेसे चित्तशुद्धि होती है, दो लक्षके जपसे मन्त्रकी सिद्धि होती है, तीन लक्षके जपसे मनुष्य स्वर्गलोक प्राप्त कर सकता है, चार लक्षसे भगवान् विष्णुकी समीपता प्राप्त होती है और पाँच लक्षसे निर्मल ज्ञानकी प्राप्ति होती है। इसी प्रकार छः लक्षसे भगवान् विष्णुमें चित्त स्थिर होता है, सात लक्षसे भगवत्स्वरूपका ज्ञान होता है और आठ लक्षसे पुरुष निर्वाण (मोक्ष) प्राप्त कर लेता है। द्विजमात्रको चाहिये कि अपने-अपने धर्मसे युक्त रहकर इस मन्त्रका जप करे। यह अष्टाक्षरमन्त्र सिद्धिदायक है। आलस्य त्यागकर इसका जप करना चाहिये। इसका जप करनेवाले पुरुषके पास दुःस्वप्न, असुर, पिशाच, सर्प, ब्रह्मराक्षस, चोर और छोटी-मोटी मानसिक व्याधियाँ भी नहीं फटकती हैं ॥ १८–२३½ ॥

एकाग्रमनसाव्यग्रो विष्णुभक्तो दृढव्रतः ॥२४॥
जपेन्नारायणं मन्त्रमेतन्मृत्युभयापहम्।
मन्त्राणां परमो मन्त्रो देवतानां च दैवतम् ॥२५॥
गुह्यानां परमं गुह्यमोंकाराद्यक्षराष्टकम्।
आयुष्यं धनपुत्रांश्च पशून् विद्यां महद्यशः ॥२६॥
धर्मार्थकाममोक्षांश्च लभते च जपन्नरः।
एतत् सत्यं च धर्म्यं च वेदश्रुतिनिदर्शनात् ॥२७॥
एतत् सिद्धिकरं नृणां मन्त्ररूपं न संशयः।
ऋषयः पितरो देवाः सिद्धास्त्वसुरराक्षसाः ॥२८॥
एतदेव परं जप्त्वा परां सिद्धिमितो गताः।
ज्ञात्वा यस्त्वात्मनः कालं शास्त्रान्तरविधानतः।
अन्तकाले जपन्नेति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥२९॥

विष्णुभक्तको चाहिये कि वह दृढव्रतस्थ एवं स्वस्थ होकर एकाग्रचित्तसे इस नारायण-मन्त्रका जप करे। यह मृत्यु भयका नाश करनेवाला है। मन्त्रोंमें सबसे उत्कृष्ट मन्त्र और देवताओंका भी देवता (आराध्य) है। यह ॐकारादि अष्टाक्षर मन्त्र गोपनीय वस्तुओंमें परम गोपनीय है। इसका जप करनेवाला मनुष्य आयु, धन, पुत्र, पशु, विद्या, महान् यश एवं धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको भी प्राप्त कर लेता है। यह वेदों और श्रुतियोंके कथनानुसार धर्मसम्मत तथा सत्य है। इसमें कोई संदेह नहीं कि ये मन्त्ररूपी नारायण मनुष्योंको सिद्धि देनेवाले हैं। ऋषि, पितृगण, देवता, सिद्ध, असुर और राक्षस इसी परम उत्तम मन्त्रका जप करके परम सिद्धिको प्राप्त हुए हैं। जो ज्यौतिष आदि अन्य शास्त्रोंके विधानसे अपना अन्तकाल निकट जानकर इस मन्त्रका जप करता है, वह भगवान् विष्णुके प्रसिद्ध परमपदको प्राप्त होता है ॥२४–२९॥

नारायणाय नम इत्ययमेव मन्त्रः
सर्वार्थसाधनपरः परमार्थमन्त्रः।
शृण्वन्तु भव्यमनसो मुदितास्त्वरागाः
उच्चैस्तरामुपदिशाम्यहमूर्ध्वबाहुः ॥३०॥
भूत्वोर्ध्वबाहुरद्याह सत्यपूर्वं ब्रवीम्यहम्।
हे पुत्र शिष्याः शृणुत न मन्त्रोऽष्टाक्षरात् परः ॥३१॥
सत्यं सत्यं पुनः सत्यमुत्क्षिप्य भुजमुच्यते।
वेदाच्छास्त्रं परं नास्ति न देवः केशवात् परः

सूत उवाच

तानि मे शृणु नामानि यैः स्तुतो विश्वकर्मणा।
सविता तानि वक्ष्यामि सर्वपापहराणि ते ॥ २ ॥

सूतजीने कहा—ब्रह्मन् ! विश्वकर्माने जिन नामों द्वारा भगवान् सविताका स्तवन किया था उन सर्वपापहारी नामोंको तुम्हें बतलाता हूँ, सुनो ॥ २ ॥

आदित्यः सविता सूर्यः खगः पूषा गभस्तिमान्।
तिमिरोन्मथनः शम्भुस्त्वष्टा मार्तण्ड आशुगः ॥ ३ ॥

१ आदित्य—अदितिके पुत्र, २ सविता—जगत्के उत्पादक, ३ सूर्य—सम्पत्ति एवं प्रकाशके स्रष्टा, ४ खगः—आकाशमें विचरनेवाले, ५ पूषा—सबका पोषण करनेवाले, ६ गभस्तिमान्—सहस्रों किरणोंसे युक्त, ७ तिमिरोन्मथन—अन्धकारनाशक, ८ शम्भुः—कल्याणकारी, ९ त्वष्टा—विश्वकर्मा अथवा विश्वरूपी शिल्पके निर्माता, १० मार्तण्ड—मृत अण्डसे प्रकट, ११ आशुग—शीघ्रगामी ॥ ३ ॥

हिरण्यगर्भः कपिलस्तपनो भास्करो रविः।
अग्निगर्भोऽदितेः पुत्रः शम्भुस्तिमिरनाशनः ॥ ४ ॥

१२ हिरण्यगर्भ—ब्रह्मा, १३ कपिलः—कपिलवर्णवाले अथवा कपिलमुनिस्वरूप, १४ तपनः—तपने या ताप देनेवाले, १५ भास्कर—प्रकाशक, १६ रवि—रव—वेदत्रयीकी ध्वनिसे युक्त अथवा भूतलके रसोंका आदान (आकर्षण) करनेवाले, १७ अग्निगर्भ—अपने भीतर अग्निमय तेजको धारण करनेवाले, १८ अदितेः पुत्र—अदितिदेवीके पुत्र, शम्भु—कल्याणके उत्पादक, १९ तिमिरनाशन—अन्धकारका नाश करनेवाले ॥ ४ ॥

अंशुमानंशुमाली च तमोघ्नस्तेजसां निधिः।
आतपी मण्डली मृत्युः कपिलः सर्वतापनः ॥ ५ ॥

२० अंशुमान्—अनन्त किरणोंसे प्रकाशमान, २१ अंशुमाली—किरणमालामण्डित, २२ तमोघ्न—अन्धकारनाशक, २३ तेजसां निधि—तेज अथवा प्रकाशके भण्डार, २४ आतपी—आतप या घाम प्रकट करनेवाले, २५ मण्डली—अपने मण्डल या बिम्बसे युक्त, २६ मृत्यु—मृत्युस्वरूप अथवा मृत्युके अधिष्ठाता यमके जन्मदाता, २७ कपिल सर्वतापन—भूरी या सुनहरी किरणोंसे युक्त होकर सबको संताप देनेवाले ॥ ५ ॥

हरिर्विश्वो महातेजाः सर्वरत्नप्रभाकरः।
अंशुमाली तिमिरहा ऋग्यजुस्सामभावितः ॥ ६ ॥

२८ हरिः—सूर्य अथवा पापहारी, २९ विश्व—सर्वरूप, ३० महातेजा—महातेजस्वी, ३१ सर्वरत्नप्रभाकर—सम्पूर्ण रत्नों तथा प्रभापुञ्जको प्रकट करनेवाले, ३२ अंशुमाली तिमिरहा—किरणोंकी माला धारण करके अन्धकारको दूर करनेवाले, ३३ ऋग्यजुस्सामभावित—ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद—इन तीनोंके द्वारा भावित या प्रतिपादित ॥ ६ ॥

प्राणाविष्करणो मित्रः सुप्रदीपो मनोजवः।
यज्ञेशो गोपतिः श्रीमान् भूतज्ञः क्लेशनाशनः ॥ ७ ॥

३४ प्राणाविष्करण—प्राणोंके आधारभूत अन्न आदिकी उत्पत्ति और उनकी वृद्धि करनेवाले, ३५ मित्र—'मित्र' नामक आदित्य अथवा सबके सुहृद्, ३६ सुप्रदीप—भलीभाँति प्रकाशित होनेवाले अथवा सर्वत्र उत्तम प्रकाश बिखेरनेवाले, ३७ मनोजव—मनके समान या उससे भी अधिक तीव्र वेगवाले, ३८ यज्ञेश—यज्ञोंके स्वामी नारायणस्वरूप, ३९ गोपति—किरणोंके स्वामी अथवा भूमि एवं गौओंके पालक, ४० श्रीमान्—कान्तिमान्, ४१ भूतज्ञ—सम्पूर्ण भूतोंके ज्ञाता अथवा भूतकालकी बातोंको भी जाननेवाले, ४२ क्लेशनाशन—सब प्रकारके क्लेशोंका नाश करनेवाले ॥ ७ ॥

अमित्रहा शिवो हंसो नायकः प्रियदर्शनः।
शुद्धो विरोचनः केशी सहस्रांशुः प्रतर्दनः ॥ ८ ॥

४३ अमित्रहा—शत्रुनाशक, ४४ शिव—कल्याण-स्वरूप, ४५ हंस—[illegible] एकमात्र [illegible], ४६ नायक—नेता अथवा नियन्ता, ४७ प्रियदर्शन—[illegible] देखने [illegible], ४८ शुद्ध—[illegible], ४९ विरोचन—[illegible] प्रकाशमान, ५० केशी—[illegible] युक्त, ५१ सहस्रांशु—[illegible] युक्त, [illegible] ॥ ८ ॥

धर्मरश्मिः पतङ्गश्च विशालो विश्वसंस्तुतः।
दुर्विज्ञेयगतिः [illegible]

…रोगसे लेकर आये हैं, यह मुझे ज्ञात है । अतः आप इस शाणचक्रपर चढ़ाकर मेरे मण्डलको छाँट दें; इससे मेरी उष्णता कुछ कम हो जायगी ॥ १६ ॥

…युक्तो विश्वकर्मा च तथा स कृतवान् द्विज ।
…ल्वोष्ण सविता तस्य दुहितुर्विश्वकर्मणः ॥१७॥
…शापरत्वाभवद्विप्र भानुस्त्वष्टारमब्रवीत् ।

…न् ! भगवान् सूर्यके यों कहनेपर विश्वकर्माने …ा ही किया । विप्रवर ! उस दिनसे प्रचण्डतारूप सविता …कर्माकी बेटी संज्ञाके लिये शान्त हो गये तथा उनकी …ता कम हो गयी । इसके बाद वे त्वष्टासे …॥ १७½ ॥

…या यस्मात् स्तुतोऽहं वै नाम्नामष्टशतेन च ॥१८॥
…र वृणीष्व तस्मात् त्वं वरदोऽहं तवानघ ।

…नघ ! चूँकि आपने एक सौ आठ नामोंके द्वारा मेरी स्तुति की है, इसलिये मैं प्रसन्न होकर आपको वर देनेके लिये उद्यत हूँ । कोई वर माँगिये ॥ १८½ ॥

इत्युक्तो भानुना सोऽथ विश्वकर्माब्रवीदिदम् ॥१९॥

वरदो यदि मे देव वरमेतं प्रयच्छ मे ।
एतैस्तु नामभिर्यस्त्वां नरः स्तोष्यति नित्यशः ॥२०॥
तस्य पापक्षयं देव कुरु भक्तस्य भास्कर ॥२१॥

भगवान् सूर्यके यों कहनेपर विश्वकर्मा बोले— देव ! यदि आप मुझे वर देनेको उद्यत हैं तो यह मुझे वर प्रदान कीजिये—देव भास्कर ! जो मनुष्य इन नामोंके द्वारा प्रतिदिन आपकी स्तुति करे, उस भक्तपुरुषके सारे पापोंका नाश कर दें ॥ १९-२१ ॥

तेनैवमुक्तो दिनकृत्तथेति
त्वष्टारमुक्त्वा विरराम भास्करः ।
संज्ञां विशङ्कां रविमण्डलस्थितां
कृत्वा जगामाथ रविं प्रसाद्य ॥२२॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विश्वकर्माके यों कहनेपर दिन प्रकट करनेवाले भगवान् भास्कर उनसे 'बहुत अच्छा !' कहकर चुप हो गये, तत्पश्चात् सूर्यमण्डलमें निवास करनेवाली संज्ञाको निर्भय करके, सूर्यदेवको प्रसन्नकर विश्वकर्मा अपने स्थानको चले गये ॥ २२ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९ ॥

बीसवाँ अध्याय

मारुतोंकी उत्पत्ति

साम्प्रतं मारुतोत्पत्तिं वक्ष्यामि द्विजसत्तम ।
पुरा देवासुरे युद्धे देवैरिन्द्रादिभिर्दितेः ॥ १ ॥
पुत्रा पराभूता दितिश्च विनष्टपुत्रा महेन्द्रदर्पहरं पुत्रमिच्छन्ती कश्यपमृषिं स्वपतिमाराधयामास ॥ २ ॥ स च तपसा संतुष्टो गर्भाधानं चकार तस्याम् । पुनस्तामेवमुक्तवान् ॥ ३ ॥ यदि त्वं शुचिः सती शरच्छतमिमं गर्भं धारयिष्यसि ततस्ते महेन्द्रदर्पहन्ता पुत्रो भविष्यति । इत्येवमुक्ता सा च तं गर्भं धारयामास ॥ ४ ॥

श्रीसूतजी बोले—द्विजवर ! अब मैं मारुतोंकी उत्पत्तिका वर्णन करूँगा । पूर्वकालमें देवासुर संग्राममें इन्द्र आदि देवताओंद्वारा दितिके पुत्र दैत्यगण पराजित हो गये थे । उस समय दिति, जिसके पुत्र नष्ट हो गये थे, इन्द्रके अभिमानको चूर्ण करनेवाले पुत्रकी इच्छा मनमें लेकर अपने पति कश्यप ऋषिकी आराधना करने लगी । [illegible] होकर ऋषिने दितिके भीतर गर्भाधान किया । फिर वे उससे इस प्रकार बोले—[illegible] [illegible] [illegible] पूरा करनेवाला पुत्र तुम्हारे होगा । [illegible] कश्यपजीके यों कहनेपर दिति [illegible] लगी ॥ १-४ ॥

इन्द्रोऽपि तज्ज्ञात्वा वृद्धब्राह्मणरूपं [illegible] दितिपार्श्वे निवसन् [illegible] [illegible] गीतमहत्त्वा दितिं शयनमारुह्य निद्रां [illegible] ॥५॥

॥ १४ ॥ क्षत्रपाणेः शुद्धोदनः । शुद्धोदनाद्बुधः । बुधादादित्यवंशो निवर्तते ॥ १५ ॥

सबसे पहले ब्रह्माजी प्रकट हुए, उनसे मरीचि, मरीचिसे कश्यप, कश्यपसे सूर्य, सूर्यसे मनु, मनुसे इक्ष्वाकु, इक्ष्वाकुसे विकुक्षि, विकुक्षिसे द्योत, द्योतसे वेन, वेनसे पृथु और पृथुसे पृथाश्वकी उत्पत्ति हुई। पृथाश्वसे असंख्याताश्व, असंख्याताश्वसे मान्धाता, मान्धातासे पुरुकुत्स, पुरुकुत्ससे दृषद, दृषदसे अभिशम्भु, अभिशम्भुसे दारुण, दारुणसे सगर, सगरसे हर्यश्व, हर्यश्वसे हारीत, हारीतसे रोहिताश्व, रोहिताश्वसे अंशुमान् तथा अंशुमान्‌से भगीरथ उत्पन्न हुए। भगीरथसे सौदास, सौदाससे शत्रुदम, शत्रुदमसे अनरण्य, अनरण्यसे दीर्घबाहु, दीर्घबाहुसे अज, अजसे दशरथ, दशरथसे श्रीराम, श्रीरामसे लव, लवसे पद्म, पद्मसे अनुपर्ण और अनुपर्णसे वस्त्रपाणिका जन्म हुआ। वस्त्रपाणिसे शुद्धोदन और शुद्धोदनसे बुध (बुद्ध) की उत्पत्ति हुई। बुधसे सूर्यवंश समाप्त हो जाता है ॥ ४–१५ ॥

सूर्यवंशभवास्ते ते प्राधान्येन प्रकीर्तिताः ।
यैरियं पृथिवी भुक्ता धर्मतः क्षत्रियैः पुरा ॥१६॥
सूर्यस्य वंशः कथितो मया मुने
समुद्भवा यत्र नरेश्वराः पुरा ।
मयाच्यमानाञ्छशिनः समाहितः
शृणुष्व वंशेऽथ नृपाननुक्रमात् ॥१७॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे सूर्यवंशकथनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

सूर्यवंशमें उत्पन्न हुए जो क्षत्रिय हैं, उनमेंसे मुख्य-मुख्य लोगोंका यहाँ वर्णन किया गया है, जिन्होंने पूर्वकालमें इस पृथ्वीका धर्मपूर्वक पालन किया है। मुने! यह मैंने सूर्यवंशका वर्णन किया है, जिसमें प्राचीन कालमें अनेकानेक नरेश हो गये हैं। अब मेरे द्वारा कहे जानेवाले चन्द्रवंशीय राजाओंका वर्णन क्रमशः सावधान होकर सुनें ॥ १६-१७ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'सूर्यवंशका वर्णन' नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २१ ॥

बाईसवाँ अध्याय

चन्द्रवंशका वर्णन

सूत उवाच
सोमवंशं शृणुष्वाथ भरद्वाज महामुने ।
पुराणे विस्तरणाक्तं संक्षेपात् कथयेऽधुना ॥ १ ॥

सूतजी बोले—महामुने भरद्वाज! अब चन्द्रवंशका वर्णन सुनो। (अन्य) पुराणोंमें इसका विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है, अतः इस समय मैं यहाँ संक्षेपसे इसका वर्णन करता हूँ ॥ १ ॥

आदौ तावद्ब्रह्मा । ब्रह्मणो मानसः पुत्रो मरीचिर्मरीचेर्दाक्षायण्यां कश्यपः ॥ २ ॥ कश्यपाददितेरादित्यः । आदित्यान्सुवर्चलायां मनुः ॥ ३ ॥ मनोः सुरूपायां सोमः । सोमाद्रोहिण्यां बुधः । बुधादिलायां पुरूरवाः ॥ ४ ॥ पुरूरवस आयुः । आयोः स्वर्भानुजायां नहुषः ॥ ५ ॥ नहुषात् पितृकन्यायां ययातिः । ययातेः शर्मिष्ठायां पूरुः ॥ ६ ॥ पूरोर्वंशदायां संयातिः । संयातेर्भानुदत्तायां सार्वभौमः । सार्वभौमस्य वैदेह्यां भोजः ॥ ७ ॥ भोजस्य लिङ्गायां दुष्यन्तः । दुष्यन्तस्य शकुन्तलायां भरतः ॥ ८ ॥ भरतस्य नन्दायामजमीढः । अजमीढस्य सुदेव्यां पृश्निः । पृश्नेरुग्रसेनायां प्रसरः । प्रसरस्य बहुरूपायां शन्तनुः । शन्तनोर्योजनगन्धायां विचित्रवीर्यः । विचित्रवीर्यस्याम्बिकायां पाण्डुः ॥ ९ ॥ पाण्डोः [illegible] अर्जुनात् सुभद्रायामभिमन्युः ॥ १० ॥ अभिमन्योः [illegible] परीक्षित् । परीक्षितो [illegible] जनमेजयः । [illegible] ॥ ११ ॥ शतानीकस्य [illegible] । [illegible]

सूत उवाच

चतुर्थीदिवसे राजा स्नात्वा त्रिषवणं द्विज ।
रक्ताम्बरधरो भूत्वा रक्तगन्धानुलेपनः ॥ २ ॥
सुरक्तकुसुमैर्हृद्यैर्विनायकमथार्चयत् ।
रक्तचन्दनतोयेन स्नानपूर्वं यथाविधि ॥ ३ ॥
विलिप्य रक्तगन्धेन रक्तपुष्पैः प्रपूजयत् ।
ततोऽसौ दत्तवान् धूपमाज्ययुक्तं सचन्दनम् ।
नैवेद्यं चैव हारिद्रं गुडखण्डघृतप्लुतम् ॥ ४ ॥
एवं सुविधिना पूज्य विनायकमथास्तवीत् ।

सूतजी बोले—द्विज ! गणेश-चतुर्थीके दिन राजाने त्रिकाल स्नान करके रक्तवस्त्र धारण किया और लालचन्दन लगाकर मनोहर लाल पुष्पों तथा रक्तचन्दनमिश्रित जलसे गणेशजीको स्नान कराकर विधिवत् उनका पूजन किया। स्नान करानेके बाद उनके श्रीअङ्गोंमें लाल चन्दन लगाया। फिर रक्तपुष्पोंसे उनकी पूजा की। तदनन्तर उन्हें घृत और चन्दन मिला हुआ धूप निवेदन किया। अन्तमें हल्दी, घी और गुड़खण्डसे तैयार किया हुआ मधुर नैवेद्य अर्पण किया। इस प्रकार सुन्दर विधिपूर्वक भगवान् विनायकका पूजन करके राजाने उनकी स्तुति आरम्भ की ॥ २-४½ ॥

इक्ष्वाकुरुवाच

नमस्कृत्य महादेवं स्तोष्येऽहं तं विनायकम् ॥ ५ ॥
महागणपतिं शूरमजितं ज्ञानवर्धनम् ।
एकदन्तं द्विदन्तं च चतुर्दन्तं चतुर्भुजम् ॥ ६ ॥
त्र्यक्षं त्रिशूलहस्तं च रक्तनेत्रं वरप्रदम् ।
आम्बिकेयं शूर्पकर्णं प्रचण्डं च विनायकम् ॥ ७ ॥
आरक्तं दण्डिनं चैव वह्निवक्त्रं हुतप्रियम् ।
अनर्चितो विघ्नकरः सर्वकार्येषु यो नृणाम् ॥ ८ ॥
तं नमामि गणाध्यक्षं भीममुग्रमुमासुतम् ।
मदमत्तं विरूपाक्षं भक्तविघ्ननिवारकम् ॥ ९ ॥
सूर्यकोटिप्रतीकाशं भिन्नाञ्जनसमप्रभम् ।
शुद्धं सुनिर्मलं शान्तं नमस्यामि विनायकम् ॥ १० ॥
नमोऽस्तु गजवक्त्राय गणानां पतये नमः ।
मेरुमन्दररूपाय नमः कैलासवासिने ॥ ११ ॥
विरूपाय नमस्तेऽस्तु नमस्ते ब्रह्मचारिणे ।
भक्तस्तुताय देवाय नमस्तुभ्यं विनायक ॥ १२ ॥

इक्ष्वाकु बोले—मैं महान् देव गणेशजीको प्रणाम करके उन विनायककी स्तवन करता हूँ, जो महान् गणोंके स्वामी हैं, शूरवीर तथा अपराजित हैं और ज्ञानवृद्धि करानेवाले हैं। जो एक, दो तथा चार दाँतोंवाले हैं, जिनकी चार भुजाएँ हैं, जो तीन नेत्रोंसे युक्त और हाथमें त्रिशूल धारण करते हैं, जिनके नेत्र रक्तवर्ण हैं, जो वर देनेवाले हैं, जो माता पार्वतीके पुत्र हैं, जिनके सूपके समान कान हैं, जिनका वर्ण कुछ-कुछ लाल है, जो दण्डधारी तथा अग्निमुख हैं एवं जिन्हें हवन प्रिय है तथा जो प्रथम पूजित न होनेपर मनुष्योंके सभी कार्योंमें विघ्नकारी होते हैं, उन भीमकाय और उग्र स्वभाववाले पार्वतीनन्दन गणेशजीको मैं नमस्कार करता हूँ। जो मदसे मत्त रहते हैं, जिनके नेत्र भयंकर हैं और जो भक्तोंके विघ्न दूर करनेवाले हैं, करोड़ों सूर्यके समान जिनकी कान्ति है, सानपर खरादकर निखारे हुए काजलकी भाँति जिनकी श्याम प्रभा है तथा जो निर्मल और शान्त हैं, उन भगवान् विनायकको मैं नमस्कार करता हूँ। मेरुगिरिके समान रूप और हाथीके मुख-सदृश मुखवाले, कैलासवासी गणपतिको नमस्कार है। विनायकदेव ! आप विरूपधारी और ब्रह्मचारी हैं, भक्तजन आपकी स्तुति करते हैं, आपको बारम्बार नमस्कार है ॥ ५-१२ ॥

त्वया पुराणं पूर्वेषां देवानां कार्यसिद्धये ।
गजरूपं समास्थाय त्रासिता सर्वदानवाः ॥ १३ ॥
ऋषीणां देवतानां च नायकत्वं प्रकाशितम् ।
यतस्ततः सुरैरग्रे पूज्यसे त्वं भवात्मज ॥ १४ ॥
त्वामाराध्य गणाध्यक्षं सर्वज्ञं कामरूपिणम् ।
कार्यार्थं रक्तकुसुमै रक्तचन्दनवारिभिः ॥ १५ ॥
रक्ताम्बरधरो भूत्वा चतुर्थ्यामर्चयेज्जपेत् ।
त्रिकालमेककालं वा पूजयेन्नियताशनः ॥ १६ ॥
राजानं राजपुत्रं वा राजमन्त्रिणमेव वा ।
राज्यं च सर्वविघ्नेश वशं कुर्यात् सराष्ट्रकम् ॥ १७ ॥

[illegible]
[illegible]
[illegible]

(राजा बोले—) 'ब्रह्मा की स्तुति करनेवाले तथा वेद शास्त्रोंके मर्मज्ञ, चार मुखोंवाले महात्मा हिरण्यगर्भ ब्रह्माजीको नमस्कार है।' इस प्रकार स्तुति की जानेपर जगत्स्रष्टा ब्रह्माजीने राज्य त्यागकर तपस्यामें लगे हुए उन शान्त एवं महान् मुनि श्रेष्ठ नरेशसे कहा ॥ ३१½ ॥

ब्रह्मोवाच

लोकप्रकाशको राजन् सूर्यस्तव पितामहः ॥३२॥
मुनीनामपि सर्वेषां सदा मान्यो मनुः पिता ।
कृतवन्तौ तपः पूर्वं तीव्रं पितृपितामहौ ॥३३॥
किमर्थं राज्यभोगं तु त्यक्त्वा सर्वं नृपोत्तम ।
तपः करोषि घोरं त्वं समाचक्ष्व महामते ॥३४॥

ब्रह्माजी बोले—राजन् ! समस्त विश्वको प्रकाशित करनेवाले तुम्हारे पितामह सूर्य तथा पिता मनु भी सदा ही सभी मुनियोंके मान्य हैं। तुम्हारे पिता और पितामहने भी पूर्वकालमें तीव्र तपस्या की थी। (उन्हींके समान आज तुम भी तप कर रहे हो।) महामते नृपश्रेष्ठ ! सारा राज्य भोग छोड़कर किसलिये यह घोर तप कर रहे हो ? इसका कारण बताओ ॥ ३२–३४ ॥

इत्युक्तो ब्रह्मणा राजा तं प्रणम्याब्रवीद्वचः ।
द्रष्टुमिच्छंस्तपश्चर्यानलेन मधुसूदनम् ॥३५॥
करोम्येव तपो ब्रह्मन् शङ्खचक्रगदाधरम् ।
इत्युक्तः प्राह राजानं पद्मजन्मा हसन्निव ॥३६॥

ब्रह्माजीके इस प्रकार पूछनेपर राजाने उनको प्रणाम करके कहा—'ब्रह्मन् ! मैं तपोबलसे शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् मधुसूदनका प्रत्यक्ष दर्शन करनेकी इच्छा लेकर ही ऐसा तप कर रहा हूँ।' राजाके यों कहनेपर कमलजन्मा ब्रह्माजीने हँसते हुए-से उनसे कहा ॥३५–३६॥

न शक्यस्तपसा द्रष्टुं त्वया नारायणो विभुः ।
मादृशैरपि नो दृश्यः केशवः क्लेशनाशनः ॥३७॥
पुरातनीं पुण्यकथां कथयामि निबोध मे ।
निशान्ते प्रलये लोकान् निनीय कमलेक्षणः ॥३८॥
अनन्तभोगशयने योगनिद्रां गतो हरिः ।
सनन्दनाद्यैर्मुनिभिः स्तूयमानो महामते ॥३९॥
तस्य सुप्तस्य नाभौ तु महत्पद्ममजायत ।
तस्मिन् पद्मे शुभे राजन् जातोऽहं वेदवित्पुरा ॥४०॥

ततो भूत्वा त्वधोदृष्टिर्दृष्टवान् कमलेक्षणम् ।
अनन्तभोगपर्यङ्के भिन्नाञ्जननिभं हरिम् ॥४१॥
अतसीकुसुमाभासं शयानं पीतवाससम् ।
दिव्यरत्नविचित्राङ्गं मुकुटेन विराजितम् ॥४२॥

'राजन् ! सर्वव्यापक भगवान् नारायणका दर्शन तुम केवल तपस्यासे नहीं कर सकोगे। (औरोंकी तो बात ही क्या है,) हमारे जैसे लोगोंको भी क्लेशनाशन भगवान् केशवका दर्शन नहीं हो पाता। महामते ! मैं तुम्हें एक पुरातन पवित्र कथा सुनाता हूँ, सुनो—'प्रलयकालमें कमललोचन भगवान् विष्णुने समस्त लोकोंको अपनेमें लीन कर लिया और सनन्दन आदि मुनियोंसे अपनी स्तुति सुनते हुए वे 'अनन्त' नामक शेषनागकी शय्यापर योगनिद्राका आश्रय ले सो गये। राजन् ! उन सोये हुए भगवान्‌की नाभिसे प्रकाशमान एक बहुत बड़ा कमल उत्पन्न हुआ। पूर्वकालमें उस प्रकाशमान कमलपर सर्वप्रथम मुझ वेदवेत्ता ब्रह्माका ही आविर्भाव हुआ। तत्पश्चात् नीचेकी ओर दृष्टि करके मैंने कमलनयन भगवान्‌का दर्शन किया। वे घिसे हुए काजलके समान श्यामवर्णवाले भगवान् विष्णुको शेषनागकी शय्यापर सोते देखा। उनके श्रीअङ्गोंकी कान्ति अलसीके फूलकी भाँति सुन्दर जान पड़ती थी, दिव्य रत्नोंके आभरणोंसे उनके श्रीविग्रहकी विचित्र शोभा हो रही थी और उनका मस्तक मुकुटसे शोभायमान था ॥ ३७–४२ ॥

कुन्देन्दुसदृशाकारमनन्तं च महामते ।
सहस्रफणमध्यस्थमणिभिर्दीप्तिमत्तरम् ॥४३॥
क्षणमात्रं तु तं दृष्ट्वा पुनस्तत्र न दृष्टवान् ।
दुःखेन महताऽऽविष्टो बभूवाहं नृपोत्तम ॥४४॥
ततो ह्यवतरं तस्मात् पद्मनालं समाश्रितः ।
कौतूहलेन वै द्रष्टुं नारायणमनामयम् ॥४५॥
ततस्त्वन्विष्य राजेन्द्र सलिलान्ते न दृष्टवान् ।
शीघ्रं पुनस्तमेवाहं पद्ममाश्रित्य चिन्तयन् ॥४६॥
तद्रूपं वासुदेवस्य द्रष्टुं नैव शशाक ह ।
ततो मामन्तरिक्षस्था वागुवाचाशरीरिणी ॥४७॥

'महामते ! उस समय मैंने उन अनन्त [illegible] का भी दर्शन किया, जिनका आकार कुन्द और चन्द्रमाके समान [illegible] हजार फनोंके मध्यमें स्थित मणियोंसे [illegible] देदीप्यमान हो रहे थे। [illegible]

षीन् प्रणम्य निप्राश्च तदादाय ययौ पुरीम्।
रंर्जनैश्च नारीभिर्दृष्टः शोभासमन्वितैः ॥६२॥
ाजा निनिक्षिपद्भिश्च नीतो राजा स्वकं गृहम्।
मन्दिरे निशाले तु निमानं वैष्णवं शुभम् ॥६३॥
स्थाप्याराधयामास तैर्द्विजैरर्चितं हरिम्।
हिष्य शोभना यास्तु पिष्ट्वा तु हरिचन्दनम् ॥६४॥
ला कृत्वा सुगन्धाढ्या प्रीतिस्तस्य ववर्ध ह।
रा कर्पूरश्रीखण्डं कुङ्कुमाद्यगुरु तथा ॥६५॥
रान विशेषतो वस्त्र महिषाख्यं च गुग्गुलम्।
ष्पाणि विष्णुयोग्यानि ददुरानीय भूपतेः ॥६६॥

द्विज ! ब्रह्माजीके चले जानेपर राजा इक्ष्वाकु उनकी तोंपर विचार ही कर रहे थे, तबतक उनके समक्ष वह विष्णु और अनन्तकी प्रतिमाओंका शुभ विमान, जिसे ब्रह्माजीने दिया था, सिद्ध ब्राह्मणोंसहित प्रकट हो गया। उन भगवान् पुरुषोत्तमका दर्शन करके उन्होंने बड़ी भक्तिके साथ उन्हें प्रणाम किया तथा साथमें आये हुए ऋषियों एवं ब्राह्मणोंको भी नमस्कार करके वे उस विमानको लेकर अपनी पुरीको गये। वहाँ नगरके सभी शोभायमान स्त्री-पुरुषोंने राजाका दर्शन किया और लाया छींटते हुए वे उन्हें राजभवनमें ले गये। राजाने अपने विशाल मन्दिरमें उस सुन्दर वैष्णव-विमानको स्थापित किया और साथ आये हुए उन ब्राह्मणों द्वारा पूजित भगवान् विष्णुकी वे आराधना करने लगे। उनकी सुन्दरी रानियाँ चन्दन घिसकर और सुगन्धित फूलोंका हार गूँथकर अर्पण करती थीं, इससे राजाको बड़ी प्रसन्नता होती थी। इसी प्रकार नगर निवासी जन कपूर, श्रीखण्ड, कुंकुम, अगुरु आदि सभी उपचार और विशेषतः वस्त्र, गुग्गुल तथा श्रीविष्णुके योग्य पुष्प ला-लाकर राजाको अर्पित करते थे ॥ ६०-६६ ॥

विमानस्थं हरिं पूज्य गन्धपुष्पादिभिः क्रमात्।
त्रिमध्ये परया भक्त्या जपैः स्तोत्रैश्च वैष्णवैः ॥६७॥
गीतैः कोलाहलैः शब्दैः शङ्खादिनिनादितैः।
प्रेक्षणैरपि शास्त्रोक्तैः प्रीतैश्च निशि जागरैः ॥६८॥
कारयामास सुचिरमुत्सवं परमं हरेः।
यागैश्च तोषयित्वा तं सर्वदेवमयं हरिम् ॥६९॥
निष्कामो दानधर्मैश्च परं ज्ञानमवाप्तवान्।
यजन् यज्ञं महीं रक्षन् स कुर्वन् कृतार्चनम् ॥७०॥
उत्पाद्य पुत्रान् पित्रर्थं ध्यानाच्यक्त्वा कलेवरम्।
ध्यायन् वै कमलब्रह्म प्राप्तवान् वैष्णवं पदम् ॥७१॥
अज विशोक विमल विशुद्ध
शान्तमदानन्दचिदात्मकं ततः।
विहाय समारमनन्तदुःख
जगाम तद्विष्णुपदं हि राजा ॥७२॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे इक्ष्वाकुचरिते
पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

राजा तीनों सन्ध्याओंमें विमानपर विराजमान भगवान् श्रीहरिकी क्रमशः गन्ध पुष्प आदि उपचारोंद्वारा बड़ी भक्तिसे पूजा करते थे। श्रीविष्णुके नामोंका जप, स्तोत्र-पाठ, उनके गुणोंका गान और शङ्ख आदि बाजोंका [illegible] करते थे। शास्त्रोक्त विधिसे प्रेमपूर्वक मनाये हुए भगवान्‌की झाँकियों तथा रात्रिमें जागरण आदिके द्वारा [illegible] तक भगवत्सम्बन्धी उत्सव कराया करते थे। [illegible] [illegible] [illegible] भगवान् विष्णुको सन्तुष्ट करके [illegible] प्राप्त कर लिया। यज्ञोंका अनुष्ठान, पृथ्वीका पालन और भगवान् [illegible] पूजन करते हुए [illegible] सुन्दर निर्मल भाव आदि [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] द्वारा ही [illegible] भगवान् विष्णुके [illegible] इस प्रकार राजा इक्ष्वाकु [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ ६७-७२ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'इक्ष्वाकुचरित' विषयक पचीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २५ ॥

क्षणभर ही वहाँ उन्हें देखकर मैं फिर उनका दर्शन न पा सका, इससे अत्यन्त दुःखी हो गया। तब मैं कौतूहलवश निरामय भगवान् नारायणका दर्शन करनेके लिये कमल-नालका सहारा ले वहाँसे नीचे उतरा; परंतु राजेन्द्र! उस समय जलके भीतर बहुत खोजनेपर भी मैं उन लक्ष्मीपतिका पुनः दर्शन न पा सका। तब मैं फिर उसी कमलका आश्रय ले वासुदेवके उसी रूपका चिन्तन करता हुआ उनके दर्शनके लिये बड़ी भारी तपस्या करने लगा। तत्पश्चात् अन्तरिक्षके भीतरसे किसी अव्यक्त शरीरवाली वाणीने मुझसे कहा ॥ ४३—४७ ॥

वृथा किं क्लिश्यते ब्रह्मन् साम्प्रतं कुरु मे वचः।
न दृश्यो भगवान् विष्णुस्तपसा महतापि ते ॥४८॥
सृष्टिं कुरु तदाज्ञप्तो यदि द्रष्टुमिहेच्छसि।
शुद्धस्फटिकसंकाशनागपर्यङ्कशायिनम् ॥४९॥
यद्दृष्टं शार्ङ्गिणा रूपं भिन्नाञ्जनसमप्रभम्।
प्रतिभानियतं रूपं विमानस्थं महामते ॥५०॥
भज नित्यमनालस्यस्ततो द्रक्ष्यसि माधवम्।

"ब्रह्मन्! क्यों व्यर्थ क्लेश उठा रहे हो? इस समय मेरी बात मानो। बहुत बड़ी तपस्यासे भी तुम्हें भगवान् विष्णुका दर्शन नहीं हो सकेगा। यदि यहाँ शुद्ध स्फटिकमणिके समान श्वेत नागशय्यापर शयन करनेवाले भगवान् विष्णुका दर्शन करना चाहते हो तो उनकी आज्ञानुसार सृष्टि करो। महामते! तुमने 'शार्ङ्ग' धनुष धारण करनेवाले उन भगवान्का, जो अञ्जन पुञ्जके समान श्याम सुषमासे युक्त तथा स्वभावतः प्रतिभाशाली रूप विमान (शेष शय्या) पर स्थित देखा है, उसीका आलस्यरहित होकर भजन-ध्यान करो, तब उन माधवको देख सकोगे ॥४८—५०½॥

तयेत्थं चोदितो राजंस्त्यक्त्वा तत्समनुक्षणम् ॥५१॥
सृष्टवान् लोकभूतानां सृष्टिं सृष्ट्या स्थितस्य च।
आविर्बभूव मनसि विश्वकर्मा प्रजापतिः ॥५२॥
अनन्तकृष्णयोस्तेन द्वे रूपे निर्मिते शुभे।
विमानस्थो यथापूर्वं मया दृष्टो जले नृप ॥५३॥
तथैव तं ततो भक्त्या सम्पूज्याहं हरिं स्थितः।
तत्प्रसादाच्च श्रेष्ठं मया ज्ञानमनुत्तमम् ॥५४॥
लब्ध्वा मुक्तिं च पश्यामि अविकारक्रियासुखम्।

"राजन्! उस आकाशवाणीद्वारा इस प्रकार प्रेरित हो मैंने निरन्तर की जानेवाली तीव्र तपस्याका अनुष्ठान त्यागकर इस जगत्के प्राणियोंकी सृष्टि की। सृष्टि करके स्थित होनेपर मेरे हृदयमें प्रजापति विश्वकर्माका प्राकट्य हुआ। उन्होंने 'अनन्त' नामक शेषनाग और भगवान् विष्णुकी दो चमकीली प्रतिमाएँ बनायीं। नरेश्वर! मैंने पहले जलके भीतर शेष शय्यापर जिस रूपमें देख चुका था, उसी रूपमें भगवान् श्रीहरिकी वह प्रतिमा बनायी गयी थी। तब मैं उन श्रीहरिके उस श्रीविग्रहकी भक्तिपूर्वक पूजा करके और उन्हींके प्रसादसे श्रेष्ठ तत्त्वरूप परम उत्तम ज्ञान प्राप्त करके विकाररहित नित्यानन्दमय मोक्ष-सुखका अनुभव करने लगा ॥५१—५४½॥

तदहं ते प्रवक्ष्यामि हितं नृपवरेश्वर ॥५५॥
विसृज्यैतत्तपो घोरं पुरीं व्रज निजां नृप।
प्रजानां पालनं धर्मस्तपश्चैव महीभृताम् ॥५६॥
विमानं प्रेषयिष्यामि सिद्धद्विजगणान्वितम्।
तत्राराधय देवेशं बाह्यार्थैरखिलैः शुभैः ॥५७॥
नारायणमनन्ताख्ये शयानं क्रतुभिर्यजन्।
निष्कामो नृपशार्दूल प्रजा धर्मेण पालय ॥५८॥
प्रसादाद्वासुदेवस्य मुक्तिस्ते भविता नृप।
इत्युक्त्वा तं जगामाथ ब्रह्मलोकं पितामहः ॥५९॥

"राजराजेश्वर! इस समय मैं तुम्हारे हितकी बात बता रहा हूँ, सुनो—राजन्! इस घोर तपस्याको छोड़कर अब अपनी पुरीको लौट जाओ। प्रजाओंका पालन करना ही राजाओंका धर्म तथा तप है। मैं सिद्धों और ब्राह्मणोंसहित उस विमानको, जिसपर भगवान्की प्रतिमा है, तुम्हारे पास भेजूँगा। उसीमें तुम सुन्दर बाह्य उपचारोंद्वारा उन देवेश्वरकी आराधना करो। नृपश्रेष्ठ! तुम यज्ञोंद्वारा 'अनन्त' नामक शेषनागकी शय्यापर शयन करनेवाले भगवान् नारायणका निष्कामभावसे यज्ञोंद्वारा आराधन करते हुए धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करो। नृप! भगवान् वासुदेवकी कृपासे अवश्य ही तुम्हारी मुक्ति हो जायगी।" राजासे यों कहकर लोकपितामह ब्रह्माजी अपने धामको चले गये ॥ ५५—५९ ॥

इक्ष्वाकुश्चिन्तयन्नास्ते पद्मयोनिवचो द्विज।
आविर्बभूव पुरतो विमानं तन्महीभृतः ॥६०॥
ब्रह्मदत्तं द्विजयुतं माधवानन्तयोः शुभम्।
तं दृष्ट्वा परया भक्त्या नत्वा च पुरुषोत्तमम् ॥६१॥

ऋषीन् प्रणम्य विप्रांश्च तदादाय ययौ पुरीम्।
पौरजनैश्च नारीभिर्हृष्टैः शोभासमन्वितैः ॥६२॥
लाजा विनिक्षिपद्भिश्च नीतो राजा स्वकं गृहम्।
स्वमन्दिरे विशाले तु विमानं वैष्णवं शुभम् ॥६३॥
संस्थाप्याराधयामास तद्द्विजैरर्चितं हरिम्।
महिष्यः शोभना यास्तु पिष्ट्वा तु हरिचन्दनम् ॥६४॥
मालां कृत्वा सुगन्धाढ्यां प्रीतिस्तस्य ववर्ध ह।
पौराः कर्पूरश्रीखण्डं कुङ्कुमाद्यगुरुं तथा ॥६५॥
कुर्वन् विशेषतो वस्त्रं महिषाख्यं च गुग्गुलम्।
पुष्पाणि विष्णुयोग्यानि ददुरानीय भूपतेः ॥६६॥

द्विज! ब्रह्माजीके चले जानेपर राजा इक्ष्वाकु उनकी बातोंपर विचार ही कर रहे थे, तबतक उनके समक्ष वह विष्णु और अनन्तकी प्रतिमाओंका शुभ विमान, जिसे ब्रह्माजीने दिया था, सिद्ध ब्राह्मणोंसहित प्रकट हो गया। उन भगवान् पुरुषोत्तमका दर्शन करके उन्होंने बड़ी भक्तिके साथ उन्हें प्रणाम किया तथा सत्यमें आये हुए ऋषियों एवं ब्राह्मणोंको भी नमस्कार करके वे उस विमानको लेकर अपनी पुरीको गये। वहाँ नगरके सभी शोभायमान स्त्री-पुरुषोंने राजाका दर्शन किया और लावा छींटते हुए वे उन्हें राजभवनमें ले गये। राजाने अपने विशाल मन्दिरमें उस सुन्दर वैष्णव-विमानको स्थापित किया और साथ आये हुए उन ब्राह्मणों द्वारा पूजित भगवान् विष्णुकी वे आराधना करने लगे। उनकी सुन्दरी रानियाँ चन्दन घिसकर और सुगन्धित फूलोंका हार गूँथकर अर्पण करती थीं, इससे राजाको बड़ी प्रसन्नता होती थी। इसी प्रकार नगर निवासी जन कपूर, श्रीखण्ड, कुङ्कुम, अगुरु आदि सभी उपचार और विशेषतः वस्त्र, गुग्गुल तथा श्रीविष्णुके योग्य पुष्प ला-लाकर राजाको अर्पित करते थे ॥ ६०-६६ ॥

विमानस्थं हरिं पूज्य गन्धपुष्पादिभिः क्रमात्।
त्रिसंध्यं परया भक्त्या जपैः स्तोत्रैश्च वैष्णवैः ॥६७॥
गीतैः कोलाहलैः शब्दैः शङ्खवादित्रनादितैः।
प्रेक्षणैरपि शास्त्रोक्तैः प्रीतैश्च निशि जागरैः ॥६८॥
कारयामास सुचिरमुत्सवं परमं हरेः।
यागैश्च तोषयित्वा तं सर्वदेवमयं हरिम् ॥६९॥
निष्कामो दानधर्मैश्च परं ज्ञानमवाप्तवान्।
यजन् यज्ञं महीं रक्षन् स कुर्वन् केशवार्चनम् ॥७०॥
उत्पाद्य पुत्रान् पित्रर्थं ध्यानात्त्यक्त्वा कलेवरम्।
ध्यायन् वै कमलं ब्रह्म प्राप्तवान् वैष्णवं पदम् ॥७१॥
अजं विशोकं विमलं विशुद्धं
शान्तं सदानन्दचिदात्मकं ततः।
विहाय संसारमनन्तदुःखं
जगाम तद्विष्णुपदं हि राजा ॥७२॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे इक्ष्वाकुचरिते पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

राजा तीनों सन्ध्याओंमें विमानपर विराजमान भगवान् श्रीहरिकी क्रमशः गन्ध पुष्प आदि उपचारोंद्वारा बड़ी भक्तिसे पूजा करते थे। श्रीविष्णुके नामोंका जप, उनके स्तोत्रोंका पाठ, उनके गुणोंका गान और शङ्ख आदि बाजोंका शब्द करते-कराते थे। शास्त्रोक्त विधिसे प्रेमपूर्वक सजायी हुई भगवान्की झाँकियों तथा रात्रिमें जागरण आदिके द्वारा वे सदा ही देर तक भगवत्सम्बन्धी उत्सव कराया करते थे। निष्कामभावसे किये गये यज्ञ, दान तथा धर्माचरणोंद्वारा उन सर्वदेवमय भगवान् विष्णुको संतुष्ट करके राजाने परम उत्तम ज्ञान प्राप्त कर लिया। यज्ञोंका अनुष्ठान, पृथ्वीका पालन और भगवान् केशवका पूजन करते हुए राजाने पितृगणोंकी तृप्तिके निमित्त श्राद्ध आदि कर्म करनेके लिये पुत्रोंको उत्पन्न किया और केवल ब्रह्मका चिन्तन करते हुए ध्यानके द्वारा ही शरीरका त्यागकर भगवान् विष्णुके धामको प्राप्त कर लिया। इस प्रकार राजा इक्ष्वाकु अनन्त दुःखोंसे पूर्ण संसारका त्याग करके अज, अशोक, अमल, विशुद्ध, शान्त एवं सच्चिदानन्दमय विष्णुपदको प्राप्त हो गये ॥ ६७-७२ ॥

इस तरह श्रीनरसिंहपुराणके अन्तर्गत 'इक्ष्वाकुचरित' विषयक पचीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २५ ॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

चन्द्रवंशका वर्णन

सूत उवाच

अथ सोमवंशोद्भवाना भूभुजां संक्षेपेण चरितमुच्यते ॥ १ ॥ आदौ तावत् समस्त त्रैलोक्य कुक्षौ कृत्वा एकार्णवे महाम्भसि नागभोगशयने ॥ २ ॥ ऋङ्मयो यजुर्मय साममयोऽथर्वमयो भगवान्नारायणो योगनिद्रा समारभे। तस्य सुप्तस्य नाभौ महापद्ममजायत। तस्मिन् पद्मे चतुर्मुखो ब्रह्माभवत् ॥ ३ ॥ तस्य ब्रह्मणो मानस पुत्रोऽत्रिरभवत्। अत्रेरनसूयायां सोम'।स तु प्रजापतेर्दक्षस्य त्रयस्त्रिंशत्कन्या रोहिण्याद्या भार्यार्थं गृहीत्वा प्रियायां ज्येष्ठायां विशेषात् प्रसन्नमना रोहिण्यां बुध पुत्रमुत्पादयामास ॥ ४ ॥ बुधोऽपि सर्वशास्त्रज्ञ प्रतिष्ठाने पुरेऽवसत्। इलायां पुरूरवस पुत्रमुत्पादयामास। तस्यातिशयरूपान्वितस्य स्वर्गभोगान् विहाय उर्वशी बहुकाल भार्या बभूव ॥ ५ ॥ पुरूरवस उर्वश्यामायु पुत्रो जज्ञे। स तु राज्यं धर्मत' कृत्वा दिवमारुरोह ॥ ६ ॥ आयो रूपवत्यां नहुष पुत्रोऽभवत्। येनेन्द्रत्व प्राप्तम्। नहुषस्यापि पितृमत्यां ययाति ॥ ७ ॥ यस्य वंशजा वृष्णय। ययाते शर्मिष्ठायां पूरुरभवत् ॥ ८ ॥ पूरोर्वंशदायां संयाति पुत्रोऽभवत्। यस्य पृथिव्यां सम्पन्ना' सर्व कामा ॥ ९ ॥

सूतजी बोले—अब संक्षेपसे चन्द्रवंशी राजाओंके चरित्रका वर्णन किया जाता है। कल्पके आदिकी बात है, ऋक्, यजुः, साम और अथर्ववेदस्वरूप भगवान् नारायण समस्त त्रिभुवनको अपने उदरमें लीन करके एकार्णवकी अगाध जलराशिमें शेषनागकी शय्यापर योगनिद्राका आश्रय ले सो रहे थे। सोते हुए उन भगवान्की नाभिसे एक महान् कमल प्रकट हुआ। उस कमलमें चतुर्मुख ब्रह्माका आविर्भाव हुआ। उन ब्रह्माजीके मानसपुत्र अत्रि हुए। अत्रिसे अनसूयाके गर्भसे चन्द्रमाका जन्म हुआ। उन्होंने दक्ष प्रजापतिकी रोहिणी आदि तैंतीस कन्याओंको पत्नी बनानेके लिये ग्रहण किया और ज्येष्ठ भार्या रोहिणीसे उनके प्रति अधिक प्रसन्न रहनेके कारण, 'बुध' नामक पुत्र उत्पन्न किया। बुध भी समस्त शास्त्रोंके ज्ञाता होकर प्रतिष्ठान पुरमें निवास करने लगे। उन्होंने इलासे गर्भसे पुरूरवा नामक पुत्रको जन्म दिया। पुरूरवा बहुत ही सुन्दर थे, अतः उर्वशी नामक अप्सरा बहुत कालतक स्वर्गके भोगोंको त्यागकर इनकी भार्या बनी रही। पुरूरवाद्वारा उर्वशीके गर्भसे आयु नामक पुत्रका जन्म हुआ। वह धर्मपूर्वक राज्य करके अन्तमें स्वर्गलोकको चला गया। आयुसे रूपवतीसे नहुष नामक पुत्र हुआ, जिसने इन्द्रत्व प्राप्त किया था। नहुषके भी पितृमतीके गर्भसे ययाति हुए, जिनके वंशज वृष्णि कहलाते हैं। ययातिके शर्मिष्ठाके गर्भसे पूरु हुए। पूरुके वंशदासे संयाति नामक पुत्र हुआ, जिसको इस पृथ्वीपर सभी तरहके मनोवाञ्छित भोग प्राप्त थे ॥ १-९ ॥

संयातेर्भानुदत्तायां सार्वभौम'। स तु सर्वां पृथिवीं धर्मेण परिपालयन्नरसिंह भगवन्तमाराध्य यागदानैः सिद्धिमाप ॥ १० ॥ तस्य सार्वभौमस्य वैदेह्यां भोज'। यस्य वंशे पुरा देवासुरसंग्रामे विष्णु चक्रहत, कालनेमिः कंसो भूत्वा वृष्णिवंशजेन वासुदेवेन घातितो निधन गत' ॥ ११ ॥

संयातिसे भानुदत्ताके गर्भसे सार्वभौम नामक पुत्र हुआ। उसने सम्पूर्ण पृथ्वीका धर्मपूर्वक पालन करते हुए यज्ञ-दान आदिके द्वारा भगवान् नृसिंहकी आराधना करके सिद्धि (मुक्ति) प्राप्त कर ली। उस सार्वभौमसे वैदेहीके गर्भसे भोज उत्पन्न हुआ, जिसके वंशमें कालनेमि नामक असुर, जो पहले देवासुर संग्राममें भगवान् विष्णुके चक्रसे मारा गया था, कंस रूपमें उत्पन्न हुआ और वृष्णिवंशी वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णके हाथसे मारा जाकर मृत्युको प्राप्त हुआ ॥ १०-११ ॥

तस्य भोजस्य कलिङ्गायां दुष्यन्त। स तु नरसिंह भगवन्तमाराध्य तत्प्रसादान्निष्कण्टकं राज्यं धर्मेण कृत्वा दिवं प्राप्तवान्। दुष्यन्तस्य

शकुन्तलायां भरतः। स तु धर्मेण राज्यं कुर्वन् क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः सर्वदेवतामयं भगवन्तमाराध्य निवृत्ताधिकारो ब्रह्मध्यानपरो वैष्णवे परे ज्योतिषि लयमवाप ॥ १२ ॥

भोजकी पत्नी कलिङ्गामें दुष्यन्तका जन्म हुआ। वह भगवान् नृसिंहकी आराधना करके उनकी प्रसन्नतासे धर्मपूर्वक निष्कण्टक राज्य भोगकर जीवनके अन्तमें स्वर्गको प्राप्त हुआ। दुष्यन्तको शकुन्तलाके गर्भसे भरत नामक पुत्र प्राप्त हुआ। वह धर्मपूर्वक राज्य करता हुआ प्रचुर दक्षिणावाले यज्ञोंसे सर्वदेवमय भगवान् विष्णुकी आराधना करके कर्माधिकारसे निवृत्त एवं ब्रह्मध्यानपरायण हो परम ज्योतिर्मय वैष्णवधाममें लीन हो गया॥ १२॥

भरतस्य आनन्दायामजमीढः। स च परमवैष्णवो नरसिंहमाराध्य जातपुत्रो धर्मेण कृतराज्यो विष्णुपुरमारुरोह ॥ १३ ॥ अजमीढस्य सुदेव्यां वृष्णि पुत्रोऽभवत्। सोऽपि बहुवर्षं धर्मेण राज्यं कुर्वन् दुष्टनिग्रहं शिष्टपरिपालनं सप्तद्वीपां वशे चक्रे। वृष्णेरुग्रसेनायां प्रत्यञ्चः पुत्रो बभूव ॥ १४ ॥ सोऽपि धर्मेण मेदिनीं पालयन् प्रतिसंवत्सरं ज्योतिष्टोमं चकार। निर्वाणमपि लब्धवान्। प्रत्यञ्चस्य बहुरूपायां शातनुः ॥ १५ ॥ तस्य देवदत्तस्यन्दनारोहणमशक्यं पश्चात् शक्यं च ॥ १६ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे सोमवंशवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

भरतके उसकी पत्नी आनन्दाके गर्भसे अजमीढ नामक पुत्र हुआ। वह परम वैष्णव था। राजा अजमीढ भगवान् नृसिंहकी आराधनासे पुत्रवान् होकर धर्मपूर्वक राज्य करनेके पश्चात् श्रीविष्णुधामको प्राप्त हुए। अजमीढके सुदेवीके गर्भसे वृष्णि नामक पुत्र हुआ। वह भी बहुत वर्षोंतक धर्मपूर्वक राज्य करता रहा। दुष्टोंका दमन और सज्जनोंका पालन करते हुए उसने सातों द्वीपोंसे युक्त पृथ्वीको अपने वशमें कर लिया था। वृष्णिके उग्रसेनाके गर्भसे प्रत्यञ्च नामक पुत्र हुआ। वह भी धर्मपूर्वक पृथ्वीका पालन करता था। उसने प्रतिवर्ष ज्योतिष्टोमयागका अनुष्ठान करते हुए आयुका अन्त होनेपर निर्वाणपद (मोक्ष) प्राप्त कर लिया। प्रत्यञ्चका बहुरूपाके गर्भसे शातनु नामक पुत्र प्राप्त हुआ, जिनमें देवताओंके दिये हुए रथपर चढ़नेकी पहले शक्ति नहीं थी, परंतु पीछे उसपर चढ़नेकी शक्ति हो गयी॥१३-१६॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'सोमवंशवर्णन' नामक सत्ताईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २७ ॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय

शांतनुका चरित्र

भरद्वाज उवाच

स्यन्दनारोहणे पूर्वमशक्तिः शातनोः कथम्।
पश्चाच्छक्तिः कथं चासीत् तस्य वै तद्वदस्व नः॥ १ ॥

भरद्वाजजीने पूछा—शातनुको पहले देवताओंके रथपर चढ़नेकी शक्ति क्यों नहीं थी? और फिर उनमें वह शक्ति कैसे आ गयी? इसे आप हम कहिये ॥ १ ॥

सूत उवाच

भरद्वाज शृणुष्वैतत् पुरावृत्तं वदामि ते।
सर्वपापहरं तद्धि चरितं शातनोर्नृणाम् ॥ २ ॥
बभूव शांतनुर्भक्तो नरसिंहतनौ पुरा।
नारदोक्तविधानेन पूजयामास माधवम् ॥ ३ ॥
नरसिंहस्य देवस्य निर्माल्यं तेन लङ्घितम्।
राज्ञा शांतनुना विप्र तस्मात् स्यन्दनमुत्तमम् ॥ ४ ॥
देवदत्तं तदारोढुमशक्तस्तत्क्षणादभूत्।
किमिदं मे गतिर्भग्ना सहसा वै रथात्तत ॥ ५ ॥
दुःखं चिन्तयतस्तस्य सम्प्राप्तो नारदः किल।
किं विषण्णः स्थितो राजन्निति पृष्टः स शातनुः ॥

सूतजी बोले—भरद्वाजजी! यह पुराना इतिहास

है, इसे मैं कहता हूँ, सुनिये । शान्तनुका चरित्र मनुष्योंके समस्त पापोंका नाश करनेवाला है । शान्तनु पूर्वकालमें नृसिंह रूपधारी भगवान् विष्णुके भक्त थे और नारदजीकी बतायी हुई विधिसे भगवान् लक्ष्मीपतिकी सदा पूजा किया करते थे । विप्रवर ! एक बार राजा शान्तनु भूलसे श्रीनृसिंह देवके निर्माल्यको लाँघ गये, अतः वे उसी क्षण देवताओंके दिये हुए उत्तम रथपर चढ़नेमें असमर्थ हो गये । तब वे सोचने लगे—'यह क्या बात है ? इस रथपर चढ़नेमें हमारी गति सहसा कुण्ठित क्यों हो गयी ?' कहते हैं, इस प्रकार दुखी होकर सोचते हुए उन राजाके पास नारदजी आये और उन्होंने राजा शान्तनुसे पूछा—'राजन् ! तुम क्यों विषादमें डूबे हुए हो ?' ॥ २-६ ॥

नारदैतन्न जानामि गतिभङ्गस्य कारणम् ।
इत्युक्त्वा नारदो ध्यात्वा ज्ञात्वा तत्कारणं ततः ॥ ७ ॥
शान्तनुं प्राह राजानं विनयेन पुरः स्थितः ।
यत्र क्वापि त्वया राजन्नरसिंहस्य वै ध्रुवम् ॥ ८ ॥
निर्माल्यो लङ्घितस्तस्माद्रथारोहणकर्मणि ।
गतिर्भग्ना महाराज श्रूयतामत्र कारणम् ॥ ९ ॥

(राजाने कहा—) 'नारदजी ! मेरी गति कुण्ठित कैसे हुई, इसका कारण मुझे ज्ञात नहीं हो रहा है, इसीसे मैं चिन्तित हूँ ।' उनके यों कहनेपर नारदजीने ध्यान लगाया और उसका कारण जानकर राजा शान्तनुसे, जो विनीतभावसे वहाँ खड़े थे, कहा—"राजन् ! अवश्य ही तुमने कहीं-न-कहीं भगवान् नृसिंहके निर्माल्यका लङ्घन किया है । इसीसे रथपर चढ़नेमें तुम्हारी गति अवरुद्ध हो गयी है । महाराज ! इसका कारण सुनो ॥ ७-९ ॥

अन्तर्वेद्यां पुरा राजन्नासीत्कश्चिन्महामतिः ।
मालाकारो रविर्नाम्ना तेन वृन्दावनं कृतम् ॥ १० ॥
विविधानि च पुष्पार्थं वनानि सुकृतानि वै ।
मल्लिकामालतीजातिबकुलादीनि सर्वशः ॥ ११ ॥
प्राकारमुच्छ्रितं तस्य विस्तीर्णं चापि विस्तृतम् ।
अलङ्घ्यमप्रवेश्यं च कृत्वा चक्रे स्वकं गृहम् ॥ १२ ॥
गृहं प्रविश्य तद्द्वारं भवेन्नान्यत्र सत्तम ।

'राजन् ! पूर्वकालकी बात है, अन्तर्वेदीमें कोई बड़ा बुद्धिमान् माली रहता था । उसका नाम था रवि । उसने फुलवारीका बगीचा लगाया था और उसका नाम 'वृन्दावन' रख दिया था । उसमें फूलोंके लिये सब ओर मल्लिका, मालती, जाती तथा बकुल (मौलसिरी) आदि नाना प्रकारके वृक्षोंके बाग सुंदर ढंगसे लगाये थे । उस वनकी चहारदीवारी बहुत ऊँची और चौड़ी बनाकर, उसे अलङ्घनीय और दुर्गम करके भीतरकी भूमिपर उसने अपने रहनेके लिये घर बनाया था । साधुशिरोमणे ! उसने ऐसा प्रबन्ध किया था कि घरमें प्रवेश करनेके बाद ही उस वाटिकाका द्वार प्राप्त हो सकता था, दूसरी ओरसे उसका मार्ग नहीं था ॥ १०-१२½ ॥

एवं कृत्वा तु वसतो मालाकारस्य धीमतः ॥ १३ ॥
पुष्पितं तद्वनं त्वासीद् गन्धामोदितदिङ्मुखम् ।
भार्यया सह पुष्पाणि समाहृत्य दिने दिने ॥ १४ ॥
कृत्वा माला यथान्यायं नरसिंहस्य नित्यशः ।
ददौ काश्चिद् द्विजेभ्यश्च काश्चिद्विक्रीय पोषणम् ॥ १५ ॥
चक्रे समात्मजीवी च भार्यादेरात्मनस्तथा ।

"ऐसी व्यवस्था करके निवास करते हुए उस मालीका वह वृन्दावन फूलोंसे भरा रहता था और उसकी सुगन्धसे सारी दिशाएँ सुवासित होती रहती थीं । वह प्रतिदिन अपनी पत्नीके साथ फूलोंका संग्रह करके यथोचित मालाएँ तैयार करता था । उनमेंसे कुछ मालाएँ तो वह भगवान् नृसिंहको अर्पण कर देता था, कुछ ब्राह्मणोंको दे डालता था और कुछको बेचकर उससे अपना तथा पत्नी आदिका पालन-पोषण करता था । मालासे जो कुछ प्राप्त होता, उसीके द्वारा वह अपनी जीविका चलाता था ॥ १३-१५½ ॥

अथ स्वर्गादुपागम्य इन्द्रपुत्रो रथेन वै ॥ १६ ॥
अप्सरोगणसंयुक्तो निशि पुष्पाणि संहरन् ।
तद्गन्धलिप्सुः सर्वाणि विचित्याहृत्य गच्छति ॥ १७ ॥
दिने दिने हृते पुष्पे मालाकारोऽप्यचिन्तयत् ।
नान्यद् द्वारं वनस्यास्याप्यलङ्घ्यप्राकारमुन्नतम् ॥ १८ ॥
समस्तपुष्पजातस्य हरणं निशि वै नृणाम् ।
अहं शक्तिं न पश्यामि किमिदं नु परीक्षये ॥ १९ ॥
इति संचिन्त्य मेधावी जाग्रद्रात्रौ वने स्थितः ।
तथैवागत्य पुष्पाणि संगृहीत्वा गतः पुमान् ॥ २० ॥

"कुछ कालके बाद वहाँ इन्द्रका पुत्र जयन्त प्रतिदिन रातमें स्वर्गकी अप्सराओंके साथ रथपर चढ़कर आने और फूलोंकी चोरी करने लगा। उस वनके पुष्पोंकी सुगन्धके लोभसे वह सारे फूल तोड़ लेता और लेकर चल देता था। जब प्रतिदिन फूलोंकी चोरी होने लगी, तब मालाकी बड़ी चिन्ता हुई। उसने मन ही मन सोचा—'इस वनका कोई दूसरा द्वार तो है नहीं। चहारदीवारी भी इतनी ऊँची है कि वह लाँघी नहीं जा सकती। मनुष्योंकी ऐसी शक्ति मैं नहीं देखता कि इसे लाँघकर वे सारे फूल चुरा ले जानेमें समर्थ हों। फिर इन फूलोंके लुप्त होनेका क्या कारण है, आज अवश्य ही इसका पता लगाऊँगा।' यह सोचकर वह बुद्धिमान् माली उस रातमें जागता हुआ बगीचेमें ही बैठा रहा। अन्य दिनोंकी भाँति उस दिन भी वह पुरुष आया और फूल लेकर चला गया ॥ १६–२० ॥

तं दृष्ट्वा दुःखितोऽतीव माल्यजीवी वनेऽभवत्।
ततो निद्रां गतः स्वप्ने दृष्टवांस्तु नृकेसरिम् ॥२१॥
तद्वाक्यं श्रुतवांश्चैव निर्माल्यं मम पुत्रक।
आनीय निष्पवतां क्षिप्रं पुष्पारामसमीपतः ॥२२॥
इन्द्रपुत्रस्य दुष्टस्य नान्यदस्ति निवारणम्।

"उसे देखकर मालाओंसे ही जीविका चलानेवाला वह माली उस उपवनमें बहुत ही दुखी हुआ। तदनन्तर रातको नींद आनेपर उसने स्वप्नमें साक्षात् भगवान् नृसिंहको देखा तथा उन नृसिंहदेवका यह वचन भी सुना—'पुत्र! तुम शीघ्र ही फूलोंके बगीचेके समीप मेरा निर्माल्य लाकर छींट दो। उस दुष्ट इन्द्रपुत्रको रोकनेका कोई दूसरा उपाय नहीं है'॥ २१ २२½ ॥

इति श्रुत्वा हरेर्वाक्यं नरसिंहस्य धीमतः ॥२३॥
बुद्ध्वाऽऽनीय तु निर्माल्यं तथा चक्रे यथोदितम्।
सोऽप्यागत्य यथापूर्वं रथेनालक्षितेन तु ॥२४॥
रथादुत्तीर्य पुष्पाणि विचिन्वंस्तद्भुविस्थितम्।
निर्माल्यं लङ्घयामास इन्द्रसूनुरनिष्टकृत् ॥२५॥
ततस्तस्य न शक्तिः स्याद्रथारोहणकर्मणि।
उक्तः सारथिना चैव रथस्यारोहणे तव ॥२६॥
नरसिंहस्य निर्माल्यलङ्घने नास्ति योग्यता।
गच्छामि दिवमेवाहं त्वं भूम्यां वस माऽऽरुह ॥२७॥

"बुद्धिमान् भगवान् नृसिंहका यह वचन सुनकर माली जाग उठा और उसने निर्माल्य लाकर उनके कथनानुसार वहाँ छींट दिया। जयन्त भी पहलेके ही समान अलक्षित रथसे आया और उससे उतरकर फूल तोड़ने लगा। उसी समय अपना अनिष्ट करनेवाला इन्द्रपुत्र वहाँ भूमिपर पड़े हुए निर्माल्यको लाँघ गया। इससे उसमें रथपर चढ़नेकी शक्ति नहीं रह गयी। तब सारथिने उससे कहा—'नृसिंहका निर्माल्य लाँघ जानेके कारण अब तुममें इस रथपर चढ़नेकी योग्यता नहीं रह गयी है। मैं तो स्वर्गलोकको लौटता हूँ, किंतु तुम यहाँ भूतलपर ही रहो, रथपर न चढ़ो'॥२३–२७॥

तेनैवमुक्तो मतिमांस्तमाह हरिनन्दनः।
पापस्य नोदनं त्वत्र कर्मणा येन मे भवेत् ॥२८॥
तदुक्त्वा गच्छ नाकं त्वं कर्मासान् सारथे द्रुतम्।

"सारथिके इस प्रकार कहनेपर मतिमान् इन्द्रकुमारने उससे कहा—'सारथे! जिस कर्मसे यहाँ मेरे पापका निवारण हो, उसे बताकर तुम शीघ्र स्वर्गलोकको जाओ'॥ २८½ ॥

सारथिरुवाच

रामसत्रे कुरुक्षेत्रे द्वादशाब्दे तु नित्यशः ॥२९॥
द्विजोच्छिष्टापनयनं कृत्वा त्वं शुद्धिमेष्यसि।
इत्युक्त्वासौ गतः स्वर्गं सारथिर्देवसेवितम् ॥३०॥

सारथि बोला—'कुरुक्षेत्रमें परशुरामजीका एक यज्ञ हो रहा है, जो बारह वर्षोंमें समाप्त होनेवाला है। उसमें जाकर तुम प्रतिदिन ब्राह्मणोंका जूठा साफ करो। इससे तुम्हारी शुद्धि होगी।' यों कहकर सारथि देवसेवित स्वर्गलोकको चला गया॥ २९ ३०॥

इन्द्रसूनुः कुरुक्षेत्रं प्राप्य सारस्वतं तटम्।
रामसत्रे तथा कुर्याद्द्विजोच्छिष्टस्य मार्जनम् ॥३१॥
पूर्णे द्वादशमे वर्षे तमूचुः शङ्किता द्विजाः।
कस्त्वं ब्रूहि महाभाग नित्यमुच्छिष्टमार्जक ॥३२॥
न भुञ्जसे च न सत्रे शङ्का नो महती भवत्।
इत्युक्तः कथयित्वा तु यथावृत्तमनुक्रमात् ॥३३॥
जगाम त्रिदिवं क्षिप्रं रथेन तनयो हरेः।

"इस प्रकार इन्द्रपुत्र जयन्त

और परशुरामजीके यज्ञमें ब्राह्मणोंकी जूठन साफ करने लगा। जब बारहवाँ वर्ष पूरा हुआ, तब ब्राह्मणोंने शङ्कित होकर उससे पूछा—'महाभाग! तुम कौन हो? जो नित्य जूठन साफ करते हुए भी हमारे यज्ञमें भोजन नहीं करते। इससे हमारे मनमें महान् संदेह हो रहा है।' उनके इस प्रकार पूछनेपर इन्द्रकुमार क्रमश अपना सारा वृत्तान्त ठीक-ठीक बताकर तुरत रथमें स्वर्गलोकको चला गया॥ ३१—३३ ३॥

तस्मात्त्वमपि भूपाल ब्राह्मणोच्छिष्टमादरात् ॥३४॥
मार्जनं कुरु रामस्य सत्रे द्वादशवार्षिके।
ब्राह्मणेभ्य परं नास्ति सर्वपापहरं परम् ॥३५॥
एव कृते देवदत्तस्यन्दनारोहणे गति।
भविष्यति महीपाल प्रायश्चित्ते कृते तव ॥३६॥
अत ऊर्ध्वं च निर्माल्य मा लङ्घय महामते।
नरसिंहस्य देवस्य तथान्येषां दिवौकसाम् ॥३७॥

"इसलिये, हे भूपाल! तुम भी परशुरामजीके द्वादशवार्षिक यज्ञमें आदरपूर्वक ब्राह्मणोंकी जूठन साफ करो। ब्राह्मणोंसे बढकर दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो पापोंका अपहरण कर सके। महीपाल! इस प्रकार प्रायश्चित्त कर लेनेपर तुम्हें देवताओंके दिये हुए रथपर चढनेकी शक्ति प्राप्त हो जायगी। महामते! आजसे तुम भी श्रीनृसिंहदेवका तथा अन्य देवताओंके भी निर्माल्यका उल्लङ्घन न करना'॥ ३४—३७॥

इत्युक्त शांतनुस्तेन ब्राह्मणोच्छिष्टमार्जनम्।
कृतवान् द्वादशाब्दं तु आरुरोह रथं च तम् ॥३८॥
एवं पूर्वमशक्ति स्याद् रथारोहे महीक्षित।
पश्चात्तस्यैन विप्रेन्द्र शक्तिरेवमजायत ॥३९॥

नारदजीके ऐसा कहनेपर शांतनुने बारह वर्षोंतक ब्राह्मणोंकी जूठन साफ की। इसके बाद वे शक्ति पाकर उस रथपर चढनेमें समर्थ हुए। विप्रवर! इस प्रकार पूर्वकालमें राजाको उस रथपर चढनेकी शक्ति जाती रही और फिर उक्त उपाय करनेसे उनमें पुन वह शक्ति आ गयी॥ ३८ ३९॥

एत ते कथितो विप्र दोषो निर्माल्यलङ्घने।
पुण्य तथा द्विजानां तु प्रोक्तमुच्छिष्टमार्जने ॥४०॥
भक्त्या द्विजोच्छिष्टमिहापमार्जये-
च्छुचिर्नरो यः सुसमाहितात्मा।
स पापबन्ध प्रविहाय भुङ्क्ते
गवा प्रदानस्य फल दिवि स्थित ॥४१॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे शतनुचरित नामाष्टविंशो ऽध्याय ॥ २८ ॥

ब्रह्मन्! इस प्रकार मैंने निर्माल्य लाँघनेमें जो दोष है, वह बताया तथा ब्राह्मणोंका जूठा साफ करनेमें जो पुण्य है, उसका भी वर्णन किया। जो मनुष्य इस लोकमें पवित्र होकर, अपने चित्तको एकाग्र करके, भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंका जूठा साफ करता है, वह पापबन्धनसे मुक्त हो स्वर्गमें निवास करता और गौओंके दानका फल भोगता है॥ ४० ४१॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'शांतनुचरित्र' नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २८॥

उन्तीसवाँ अध्याय

शांतनुकी संतति का वर्णन

श्रीसूत उवाच

शतनोर्योजनगन्धायां विचित्रवीर्य। स तु हस्तिनापुरे स्थित्वा प्रजा स्वधर्मेण पालयन् देवांश्च यागै, पितॄंश्च श्राद्धै सम्पूज्य सतापुत्रो दिवमारुरोह ॥ १॥ विचित्रवीर्यस्याम्बालिकायां पाण्डु पुत्रो जज्ञे। सोऽपि राज्य धर्मत कृत्वा मुनिशापाच्छरीरं विहाय देवलोकमवाप। तस्य पाण्डो कुन्तिदेव्यामर्जुन ॥ २॥ स तु महता तपसा शङ्करं तोषयित्वा पाशुपतमस्त्रमवाप्य त्रिविष्टपाधिपतेः शत्रून् निवातकवचान् दानवान् हत्वा खाण्डववनमग्नेर्यथारुचि निवेद्य तस्मादिनो दिव्यान् वरानवाप्य सुयोधनेन हृतराज्यो धर्मभीम

नकुलसहदेवद्रौपदीसहितो विराटनगरेऽज्ञातवासं चरित्वा गोग्रहे च भीष्मद्रोणकृपदुर्योधनकर्णादीन् जित्वा समस्तगोमण्डलं निवर्तयित्वा भ्रातृभिः सह विराटराजकृतपूजो वासुदेवसहितः कुरुक्षेत्रे धार्तराष्ट्रैर्बहुबलैर्युद्धं कुर्वन् भीष्मद्रोणकृपशल्यकर्णादिभिर्भूरिपराक्रमैः क्षत्रियैर्नानादेशागतैरनेकैश्च राजपुत्रैः सह दुर्योधनादीन् धार्तराष्ट्रान् हत्वा स्वराज्यं प्राप्य धर्मेण राज्यं परिपाल्य भ्रातृभिः सह मुदितो दिवमारुरोह ॥ ३ ॥

श्रीसूतजी कहते हैं—शान्तनुसे योजनगन्धाके 'विचित्रवीर्य' नामक पुत्र हुआ। राजा विचित्रवीर्य हस्तिनापुरमें रहकर धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करते रहे और यज्ञोंद्वारा देवताओंको तथा श्राद्धके द्वारा पितरोंको तृप्त करके पुत्र पैदा होनेपर स्वर्गलोकको प्राप्त हुए। विचित्रवीर्यके अम्बालिकाके गर्भसे 'पाण्डु' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। पाण्डु भी धर्मपूर्वक राज्यपालन करके मुनिके शापसे शरीर त्यागकर देवलोकको चले गये। उन राजा पाण्डुके कुन्तीदेवीके गर्भसे 'अर्जुन' नामक पुत्र हुआ। अर्जुनने बड़ी भारी तपस्या करके शंकरजीको प्रसन्न किया, उनसे 'पाशुपत' नामक अस्त्र प्राप्त किया और स्वर्गलोकके अधिपति इन्द्रके शत्रु 'निवातकवच' नामक दानवोंका वध करके अग्निदेवको उनकी रुचिके अनुसार खाण्डववन समर्पित किया। खाण्डववनको जलाकर, तृप्त हुए अग्निदेवसे अनेक दिव्य वर प्राप्त कर, दुर्योधनद्वारा अपना राज्य छिन जानेपर उन्होंने (अपने भाई) धर्म (युधिष्ठिर), भीम, नकुल, सहदेव और (पत्नी) द्रौपदीके साथ विराटनगरमें अज्ञातवास किया। वहाँ जब शत्रुओंने आक्रमण करके विराटकी गौओंको अपने अधिकारमें कर लिया, तब अर्जुनने भीष्म, द्रोण, कृप, दुर्योधन और कर्ण आदिको हराकर समस्त गौओंको वापस घुमाया। फिर विराटराजके द्वारा भाइयोंसहित सम्मानित होकर कुरुक्षेत्रमें भगवान् वासुदेवको साथ ले अत्यन्त बलशाली धृतराष्ट्र पुत्रोंके साथ युद्ध किया और भीष्म, द्रोण, कृप, शल्य, कर्ण आदि महापराक्रमी क्षत्रियों तथा नाना देशोंसे आये हुए अनेकों राजपुत्रोंसहित दुर्योधनादि धृतराष्ट्रपुत्रोंका उन्होंने भीम आदिके सहयोगसे वध करके अपना राज्य प्राप्त कर लिया। फिर भाइयोंसहित व धर्मके अनुसार (अपने सबसे बड़े भाई धर्मराज युधिष्ठिरका राजाके पदपर अभिषेक करके) राज्यका पालन करके अन्तमें सबके साथ प्रसन्नतापूर्वक स्वर्गलोकमें चले गये ॥ १-३ ॥

अर्जुनस्य सुभद्रायामभिमन्युः। येन भारतयुद्धे चक्रव्यूहं प्रविश्यानेकभूभुजो निधनं प्रापिताः ॥ ४ ॥ अभिमन्योरुत्तरायां परीक्षितः। सोऽप्यभिषिक्तो वनं गच्छता धर्मपुत्रेण राज्यं कृत्वा राजपुत्रो नाकं सम्प्राप्य रेमे ॥ ५ ॥ परीक्षितान्मातृवत्यां जनमेजयः। येन ब्रह्महत्यावारणार्थं महाभारतं व्यासशिष्याद्वैशम्पायनात् साद्यन्तं श्रुतम् ॥ ६ ॥ राज्यं च धर्मतः कृत्वा दिवमारुरोह। जनमेजयस्य पुष्पवत्यां शतानीकः ॥ ७ ॥ स तु धर्मेण राज्यं कुर्वन् संसारदुःखाद्विरक्तः शौनकोपदेशेन क्रियायोगेन सकललोकनाथं विष्णुमाराध्य निष्कामो वैष्णवं पदमवाप। तस्य शतानीकस्य फलवत्यां सहस्रानीकः ॥ ८ ॥ स तु बाल एवाभिषिक्तो नरसिंहेऽत्यन्तं भक्तिमानभवत्। तस्य चरितमुपरिष्टाद् भविष्यति ॥ ९ ॥ सहस्रानीकस्य मृगवत्यामुदयनः। सोऽपि राज्यं कृत्वा धर्मतो नारायणमाराध्य तत्पुरमवाप ॥ १० ॥ उदयनस्य वासवदत्तायां नरवाहनः। स तु यथान्यायं राज्यं कृत्वा दिवमवाप। नरवाहनस्याश्वमेधदत्तायां क्षेमकः ॥ ११ ॥ स च राज्यस्य प्रजाः परिपाल्य म्लेच्छाभिभूते जगति ज्ञानबलात् कलापग्राममाश्रितः ॥ १२ ॥

अर्जुनको सुभद्राके गर्भसे 'अभिमन्यु' नामक पुत्र प्राप्त हुआ, जिसने महाभारत-युद्धमें चक्रव्यूहके भीतर प्रवेश करके अनेक राजाओंको मृत्युके घाट उतारा था। अभिमन्युसे उत्तराके गर्भसे परीक्षितका जन्म हुआ। धर्मनन्दन युधिष्ठिर जब वानप्रस्थ धर्मके अनुसार वनमें जाने लगे, तब उन्होंने परीक्षितको राजाके पदपर अभिषिक्त कर दिया। तब वे भी धर्मपूर्वक राज्यका पालन करके अन्तमें वैकुण्ठधाममें जाकर अक्षय सुखके भागी हुए। परीक्षितसे मातृवतीके गर्भसे जनमेजयका जन्म हुआ, जिन्होंने ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त होनेके लिये व्यासशिष्य वैशम्पायनसे सम्पूर्ण महाभारत आदिसे अन्ततक सुना था। वे भी धर्मपूर्वक राज्यका पालन करके अन्तमें स्वर्गगामी हुए। जनमेजयकी अपनी पत्नी ...

करके अपने पुत्रोंको बाँट दिया। हिमालय पर्वतसे मिला हुआ वर्ष अग्नीध्र (नाभि) को मिला था। इससे अधिपति राजा नाभिसे 'ऋषभ' नामक पुत्र हुआ ॥ २–६ ॥

ऋषभाद् भरतो भरतेन चिरकालं धर्मेण पालित त्वादिद भारत वर्षमभूत्। इलावृतस्य मध्ये मेरुः सुवर्ण-मयश्चतुरशीतिसहस्राणि योजनानि तस्योच्छ्रायः। षोडशसहस्रमप्यधस्तादवगाढः। तद्द्विगुणो मूर्ध्नि विस्तारः ॥ ७ ॥ तन्मध्ये ब्रह्मणः पुरी। पूर्वस्यामिन्द्रस्य चामरावती। आग्नेय्यामग्ने स्तेजोवती। याम्या यमस्य संयमनी। नैर्ऋत्यां नैर्ऋतेर्भयकरी। वारुण्यां वरुणस्य विश्वावती। वायव्यां वायोर्गन्धवती। उदीच्यां सोमस्य विभावरीति। नववर्षान्वितं जम्बूद्वीपं पुण्यपर्वतैः पुण्यनदीभिरन्वितम् ॥८॥ किम्पुरुषादीन्यष्टवर्षाणि पुण्यवतां भोगस्थानानि साक्षाद् भारतवर्षमेकं कर्मभूमिश्चातुर्वर्ण्ययुतम् ॥ ९ ॥

अत्रैव कर्मभिः स्वर्गं कृतैः प्राप्स्यन्ति मानवाः।
मुक्तिश्चात्रैव निष्कामैः प्राप्यते ज्ञानकर्मभिः।
अधोगतिमितो विप्र यान्ति वै पापकारिणः ॥१०॥

ये पापकारिणस्तान् विद्धि पातालतले नरके कोटिसमन्वितान् ॥ ११ ॥

ऋषभसे भरतका जन्म हुआ, जिनके द्वारा चिरकाल-तक धर्मपूर्वक पालित होनेके कारण इस देशका नाम 'भारत वर्ष' पड़ा। इलावृत वर्षके बीचमें मेरु नामक सुवर्णमय पर्वत है। उसकी ऊँचाई चौरासी हजार योजन है। वह सोलह हजार योजनतक नीचे जमीनमें गड़ा है और इससे दूनी (बत्तीस हजार योजन) इसकी चोटीकी चौड़ाई है। इसीके मध्यभागमें ब्रह्माजीकी पुरी है, पूर्वभागमें इन्द्रकी 'अमरावती' है, अग्निकोणमें अग्निकी 'तेजोवती' पुरी है, दक्षिणमें यमराजकी 'संयमनी' है, नैर्ऋत्यकोणमें निर्ऋतिकी 'भयकरी' नामक पुरी है, पश्चिममें वरुणकी 'विश्वावती' है, वायव्यकोणमें वायुकी 'गन्धवती' नगरी है और उत्तरमें चन्द्रमाकी 'विभावरी' पुरी है। नौ खण्डोंसे युक्त यह जम्बूद्वीप पुण्य पर्वतों तथा पुण्य नदियोंसे युक्त है। किम्पुरुष आदि आठ वर्ष पुण्यात्मा ये भोगस्थान हैं, केवल एक भारतवर्ष ही चारों वर्णोंसे युक्त कर्मक्षेत्र है। भारतवर्षमें ही कर्म करनेसे मनुष्य स्वर्ग प्राप्त करेंगे और यहाँ ही ज्ञान-साधकको निष्काम कर्मोंसे मुक्ति भी प्राप्त होती है। विप्रवर! पाप करनेवाले पुरुष यहाँसे अधोगतिको प्राप्त होते हैं। जो पापी हैं, उन करोड़ों मनुष्योंको पातालस्थ नरकमें पड़े हुए समझिये ॥७–११॥

अथ सप्त कुलपर्वताः कथ्यन्ते। महेन्द्रो मलयः शुक्तिमान् ऋष्यमूकः सह्यपर्वतो विन्ध्यः पारियात्रः। इत्येते भारते कुलपर्वताः ॥ १२ ॥ नर्मदा सुरसा ऋषिकुल्या भीमरथी कृष्णा वेणी चन्द्र-भागा ताम्रपर्णी इत्येताः सप्त नद्यः। गङ्गा यमुना गोदावरी तुङ्गभद्रा कावेरी सरयूरित्येता महानद्यः पापघ्न्यः ॥ १३ ॥

अब सात कुलपर्वतोंका वर्णन किया जाता है— महेन्द्र, मलय, शुक्तिमान्, ऋष्यमूक, सह्य, विन्ध्य और पारियात्र। ये ही भारतवर्षमें कुलपर्वत हैं। नर्मदा, सुरसा, ऋषिकुल्या, भीमरथी, कृष्णावेणी, चन्द्रभागा तथा ताम्रपर्णी—ये सात नदियाँ हैं तथा गङ्गा, यमुना, गोदावरी, तुङ्गभद्रा, कावेरी और सरयू—ये छः महानदियाँ सब पापोंको नष्ट करनेवाली हैं ॥ १२-१३ ॥

जम्बुनाम्ना च विख्यातं जम्बुद्वीपमिदं शुभम्।
लक्षयोजनविस्तीर्णमिदं श्रेष्ठं तु भारतम् ॥१४॥

प्लक्षद्वीपादिपुण्या जनपदाः। निष्कामा ये स्वधर्मेण नरसिंहं यजन्ति ते तत्र निवसन्ति। अधिकारक्षयान्मुक्तिं च प्राप्नुवन्ति ॥ १५ ॥ जम्ब्वाद्याः स्वादूदकान्ताः सप्त पयोधयः। ततः परा हिरण्मयी भूमिः। ततो लोकालोकपर्वतः। एष भूर्लोकः ॥ १६ ॥

यह सुन्दर जम्बूद्वीप जम्बू (जामुन) के नामसे विख्यात है। इसका विस्तार एक लाख योजन है। इस द्वीपमें यह भारतवर्ष ही सबसे श्रेष्ठ स्थान है। प्लक्षद्वीप आदि पुण्य देश हैं। जो लोग निष्कामभावसे अपने अपने वर्णधर्मका आचरण करते हुए भगवान् नृसिंहका यजन करते हैं, वे ही उन पुण्य देशोंमें निवास करते

हैं तथा कर्माधिकारका क्षय हो जानेपर मोक्ष भी प्राप्त कर लेते हैं। जम्बूद्वीपसे लेकर शुद्धोदकसागर समुद्रपर्यन्त सात द्वीप और सात समुद्र हैं। उसके बाद स्वर्णमयी भूमि है। उसके आगे लोकालोक पर्वत है—यह सब भूलोकका वर्णन हुआ ॥ १४—१६ ॥

अस्योपरि अन्तरिक्षलोकः।
खेचराणां रम्यस्तदूर्ध्वं स्वर्गलोकः ॥१७॥
स्वर्गस्थानं महापुण्यं प्रोच्यमानं निबोधत।
भारते कृतपुण्यानां देवानामपि चालयम् ॥१८॥
मध्ये पृथिव्यामद्रीन्द्रो भास्वान् मेरुर्हिरण्मयः।
योजनानां सहस्राणि चतुराशीतिमुच्छ्रितः ॥१९॥
प्रविष्टः षोडशाधस्ताद्धरण्यां धरणीधरः।
तावत्प्रमाणा पृथिवी पर्वतस्य समन्ततः ॥२०॥

इसके ऊपर अन्तरिक्षलोक है, जो अन्तरिक्षचारी प्राणियोंके लिये परम रमणीय है। इसके ऊपर स्वर्गलोक है। अब महापुण्यमय स्वर्गलोकका वर्णन किया जाता है, उसे आपलोग मुझसे सुनें। जिन्होंने भारतवर्षमें रहकर पुण्यकर्म किये हैं, उनका तथा देवताओंका वहाँ निवास है। भूमण्डलके बीचमें पर्वतोंका राजा मेरु है, जो सुवर्णमय होनेके कारण अपनी प्रभासे उद्भासित होता रहता है। यह पर्वत चौरासी हजार योजन ऊँचा है और सोलह हजार योजनतक पृथ्वीमें नीचेकी ओर धँसा हुआ है। साथ ही उसके चारों ओर उतने ही प्रमाणवाली पृथिवी है ॥१७—२०॥

तस्य शृङ्गत्रयं मूर्ध्नि स्वर्गो यत्र प्रतिष्ठितः।
नानाद्रुमलताकीर्णं नानापुष्पोपशोभितम् ॥२१॥
मध्यमं पश्चिमं पूर्वं मेरोः शृङ्गाणि त्रीणि वै।
मध्यमं स्फाटिकं शृङ्गं वैदूर्यमणिकामयम् ॥२२॥
इन्द्रनीलमयं पूर्वं माणिक्यं पश्चिमं स्मृतम्।
योजनानां सहस्राणि नियुतानि चतुर्दश ॥२३॥
उच्छ्रितं मध्यमं शृङ्गं स्वर्गो यत्र त्रिविष्टपः।
शृङ्गमान्तरितं शृङ्गं मूर्ध्नि छत्राकृति स्थितम् ॥२४॥
पूर्वमुक्तस्य शृङ्गाणामन्तरं मध्यमस्य च।
त्रिविष्टपे नाकपृष्ठे ह्यप्सरसः सन्ति निर्वृताः ॥२५॥

मेरुगिरिके ऊपरी भागमें तीन शिखर हैं, जहाँ स्वर्गलोक बसा हुआ है। मेरुके वे स्वर्गीय शिखर नाना प्रकारके वृक्ष और लताओंसे आवृत तथा भाँति-भाँतिके पुष्पोंसे सुशोभित हैं। मध्यम, पश्चिम और पूर्व—ये ही तीन मेरुके शिखर हैं। इनमें मध्यम शृङ्ग स्फटिक तथा वैदूर्यमणिमय है, पूर्व शृङ्ग इन्द्रनीलमय और पश्चिम शिखर माणिक्यमय कहा जाता है। इनमेंसे मध्यम शृङ्ग चौदह लाख चौदह हजार योजन ऊँचा है, जहाँ 'त्रिविष्टप' नामका स्वर्गलोक प्रतिष्ठित है। पूर्व शृङ्ग मेरुके ऊपर छत्राकार स्थित है। मध्यम शृङ्ग और उसके बीचका अवकाशका व्यवधान है। यह मध्यम शृङ्ग और उसके बादवाले पश्चिम शिखरके बीचमें स्थित है। नाकपृष्ठ—त्रिविष्टपमें आनन्दमयी अप्सराएँ निवास करती हैं ॥ २१–२५ ॥

आनन्दोऽथ प्रमोदश्च स्वर्गशृङ्गे तु मध्यमे।
श्वेतश्च पौष्टिकश्चैव उपशोभनमन्मथौ ॥२६॥
आह्लादः स्वर्गराजा वै स्वर्गशृङ्गे तु पश्चिमे।
निर्ममो निरहङ्कारः सौभाग्यश्चातिनिर्मलः ॥२७॥
स्वर्गाश्चैव द्विजश्रेष्ठ पूर्वशृङ्गे समाश्रिताः।
एकविंशतिः स्वर्गा वै निविष्टा मेरुमूर्धनि ॥२८॥
अहिंसादानकर्तारो यज्ञानां तपसां तथा।
तेषु निवसन्ति ते जनाः क्रोधविवर्जिताः ॥२९॥

मेरुके मध्यवर्ती शिखरपर विराजमान स्वर्गमें आनन्द और प्रमोदका वास है। पश्चिम शिखरपर श्वेत, पौष्टिक, उपशोभन और काम एवं स्वर्गके राजा आह्लाद निवास करते हैं। द्विजश्रेष्ठ! पूर्व शिखरपर निर्मम, निरहङ्कार, सौभाग्य और अतिनिर्मल नामक स्वर्ग सुशोभित होते हैं। मेरु पर्वतकी चोटीपर कुल इक्कीस स्वर्ग बसे हुए हैं। जो अहिंसाव्रतका पालन करनेवाले और दानी हैं तथा जो यज्ञ और तपका अनुष्ठान करनेवाले हैं, वे क्रोधरहित मनुष्य इन स्वर्गोंमें निवास करते हैं ॥ २६–२९ ॥

जलप्रवेशे चानन्दं प्रमोदं वह्निसाहसे।
भृगुप्रपाते सौख्यं च रणे चैवाप्य निर्मलम् ॥३०॥
अनाशके तु सन्न्यासे मृतो गच्छेत्त्रिविष्टपम्।
क्रतुयाजी नाकपृष्ठमग्निहोत्री च निर्वृतिम् ॥३१॥
तडागकूपकर्ता च लभते पौष्टिकं द्विज।
सुवर्णदायी सौभाग्यं लभन्त्याप तपःफलम् ॥३२॥

अन्तरिक्षके ऊपरी भागमें तीन शिखर हैं, जहाँ

शीतकाले महावह्निं प्रज्वालयति यो नरः ।
सर्वसत्त्वहितार्थाय स्वर्गं सोऽप्सरसं लभेत् ॥३३॥
हिरण्यगोप्रदाने हि निरहंकारमाप्नुयात् ।
भूमिदानेन शुद्धेन लभते शान्तिकं पदम् ॥३४॥
रौप्यदानेन स्वर्गं तु निर्मलं लभते नरः ।
अश्वदानेन पुण्याहं कन्यादानेन मङ्गलम् ॥३५॥
द्विजेभ्यस्तर्पणं कृत्वा दत्त्वा वस्त्राणि भक्तितः ।
श्वेतं तु लभते स्वर्गं यत्र गत्वा न शोचते ॥३६॥

जो धर्मपालनके लिये जलमें प्रविष्ट होकर प्राण त्याग करते हैं, वे 'आनन्द' नामक स्वर्गको प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार जो धर्मरक्षाके ही लिये अग्निमें जलनेका साहस करते हैं, उन्हें 'प्रमोद' नामक स्वर्गकी प्राप्ति होती है और जो धर्मार्थ पर्वतशिखरसे कूदकर प्राण देते हैं, उन्हें 'सौख्य' नामक स्वर्ग प्राप्त होता है। संग्राममें मृत्युसे 'निर्मल' (या अतिनिर्मल) नामक स्वर्गकी उपलब्धि होती है। उपवास-व्रत एवं संन्यासावस्थामें मृत्युको प्राप्त होनेवाले लोग 'त्रिविष्टप' नामक स्वर्गमें जाते हैं। श्रौत यज्ञ करनेवाला 'नाकपृष्ठ' में और अग्निहोत्री 'निर्वृति' नामक स्वर्गमें जाते हैं। द्विज! पोखरा और कुआँ बनवानेवाला मनुष्य 'पौष्टिक' स्वर्गको पाता है, सोना दान करनेवाला पुरुष तपस्याके फलभूत 'सौभाग्य' नामक स्वर्गको जाता है। जो शीतकालमें सब प्राणियोंके हितके लिये लकड़ियोंके ढेरको जलाकर बड़ी भारी अग्निराशि प्रज्वलित करता और उन्हें गरमी पहुँचाता है, वह 'अप्सरा' नामक स्वर्गको उपलब्ध करता है। सुवर्ण और गोदान करनेपर दाता 'निरहंकार' नामवाले स्वर्गको पाता है और शुद्धभावसे भूमिदान करके मनुष्य 'शान्तिक' नामसे प्रसिद्ध स्वर्गधामको उपलब्ध करता है। चाँदी दान करनेसे मनुष्यको 'निर्मल' नामक स्वर्गकी प्राप्ति होती है। अश्वदानसे दाता 'पुण्याह'का और कन्यादानसे 'मङ्गल'का लाभ करता है। ब्राह्मणोंको तृप्त करके उन्हें भक्तिपूर्वक वस्त्र दान करनेसे मनुष्य 'श्वेत' नामक स्वर्गको पाता है, जहाँ जाकर वह कभी शोकका भागी नहीं होता ॥ ३०—३६ ॥

कपिलागोप्रदानेन परमार्थे महीयते ।
गोवृषस्य प्रदानेन स्वर्गं मन्मथमाप्नुयात् ॥३७॥
माघमासे सरित्स्नायी तिलधेनुप्रदस्तथा ।
छत्रोपानहदाता च स्वर्गं यात्युपशोभनम् ॥३८॥
देवतायतनं कृत्वा द्विजशुश्रूषकस्तथा ।
तीर्थयात्रापरश्चैव स्वर्गराजे महीयते ॥३९॥
एकान्नभोजी यो मर्त्यो नक्तभोजी च नित्यशः ।
उपवासी त्रिरात्राद्यैः शान्तः स्वर्गं शुभं लभेत् ॥४०॥
सरित्स्नायी जितक्रोधो ब्रह्मचारी दृढव्रतः ।
निर्मलं स्वर्गमाप्नोति यथा भूतहिते रतः ।
विद्यादानेन मेधावी निरहंकारमाप्नुयात् ॥४१॥

कपिला गौका दान करनेसे दाता 'परमार्थ' नामक स्वर्गमें पूजित होता है और उत्तम साँड़का दान करनेसे उसे 'मन्मथ' नामक स्वर्गकी प्राप्ति होती है। जो माघके महीनेमें नित्य नदीमें स्नान करता, तिलमयी धेनु देता और छत्र तथा जूतेका दान करता है, वह 'उपशोभन' नामक स्वर्गमें जाता है। जिसने देवमन्दिर बनवाया है, जो द्विजोंकी सेवा करता है तथा सदा तीर्थयात्रा करता रहता है, वह 'स्वर्गराज' (आह्लाद) में प्रतिष्ठित होता है। जो मनुष्य नित्य एक ही अन्न भोजन करता, जो प्रतिदिन केवल रातमें ही खाता तथा त्रिरात्र आदि व्रतोंके द्वारा उपवास किया करता है, वह 'शुभ' नामक स्वर्गको पाता है। नदीमें स्नान करनेवाला, क्रोधको जीतनेवाला एवं दृढतापूर्वक व्रतका पालन करनेवाला ब्रह्मचारी सम्पूर्ण जीवोंके हितमें तत्पर रहनेवाले पुरुषके समान 'निर्मल' नामक स्वर्गको पाता है। मेधावी पुरुष विद्यादान करके 'निरहंकार' नामक स्वर्गको प्राप्त होता है ॥ ३७—४१ ॥

येन येन हि भावेन यद्यद्दानं प्रयच्छति ।
तत्तत्स्वर्गमवाप्नोति यद्यदिच्छति मानवः ॥४२॥
चत्वारि अतिदानानि कन्या गौर्भूः सरस्वती ।
नरकादुद्धरन्त्येते जपवाहनदोहनात् ॥४३॥
यस्तु सर्वाणि दानानि ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति ।
सम्प्राप्य न निवर्तेत स्वर्गं शान्तमनामयम् ॥४४॥
शृङ्गे तु पश्चिमे यत्र ब्रह्मा तत्र स्थितः स्वयम् ।
पूर्वशृङ्गे स्वयं विष्णुर्मध्ये चैव शिवः स्थितः ॥४५॥

मनुष्य जिस जिस भावनासे जो-जो दान देता है और उससे जो जो फल चाहता है, तदनुसार ही विभिन्न स्वर्गलोकोंमें पाता है। कन्या, गौ, भूमि इन चारोंका दानको

सुरुच्यामुत्तमो ज्येष्ठः सुनीत्यां तु ध्रुवोऽपरः ।
मध्येसभं नरपतेरुपविष्टस्य चैकदा ॥ ३ ॥
सुनीत्या राजसेवायै नियुक्तोऽलङ्कृतः सुतः ।
ध्रुवो धात्रेयिकापुत्रैः समं विनयतत्परः ॥ ४ ॥
स गत्वोत्तानचरणं क्षोणीशं प्रणनाम ह ।
दृष्ट्वोत्तमं तदुत्सङ्गे निविष्टं जनकस्य वै ॥ ५ ॥
प्राप्य सिंहासनस्थं च नृपतिं बालचापलात् ।
आरुरुक्षुमवेक्ष्याशु सुरुचिर्ध्रुवमब्रवीत् ॥ ६ ॥

सूतजी बोले—विप्रवर ! स्वायम्भुव मनुके एक पुत्र थे राजा उत्तानपाद। उन भूपालके दो पुत्र हुए। एक तो सुरुचिके गर्भसे उत्पन्न हुआ था, जिसका नाम उत्तम था। वह ज्येष्ठ था और दूसरा पुत्र 'ध्रुव' था, जो सुनीतिके गर्भसे उत्पन्न हुआ था। एक दिन जब राजा राजसभामें बैठे हुए थे, सुनीतिने अपने पुत्र ध्रुवको वस्त्राभूषणसे विभूषित करके राजाकी सेवाके लिये भेजा। विनयशील ध्रुवने धायके पुत्रोंके साथ राजसभामें आकर राजा उत्तानपादको प्रणाम किया। वहाँ उत्तमको पिताकी गोदमें बैठा देख ध्रुव सिंहासनपर आसीन राजाके पास जा पहुँचा और बालोचित चपलताके कारण राजाकी गोदमें चढ़नेकी इच्छा करने लगा। यह देख सुरुचिने ध्रुवसे कहा ॥ २–६ ॥

सुरुचिरुवाच

दौर्भाग्येय किमारोढुमिच्छेरङ्के महीपतेः ।
बाल बालिशबुद्धित्वादभाग्याजाठरोद्भवः ॥ ७ ॥
अस्मिन् सिंहासने स्थातुं सुकृतं किं त्वया कृतम् ॥ ८ ॥
यदि स्यात्सुकृतं तत्किं दुर्भाग्योदरगोऽभवः ।
अनेनैवानुमानेन बुध्यस्व स्वल्पपुण्यताम् ॥ ९ ॥
भूत्वा राजकुमारोऽपि नालंकुर्या ममोदरम् ।
सुदृक्षिनमधु पश्य त्वमुत्तममनुत्तमम् ॥१०॥
अधिनाथु धराजानेर्मानेन परिबृंहितम् ।

सुरुचि बोली—अभागिनीके बच्चे ! क्या तू भी महाराजकी गोदमें चढ़ना चाहता है ? बालक ! मूर्खतावश ही ऐसी चेष्टा कर रहा है। तू इसके योग्य कदापि नहीं है, क्योंकि तू एक भाग्यहीना स्त्रीके गर्भसे पैदा हुआ है। बता तो सही, तूने इस सिंहासनपर बैठनेके लिये कौन-सा पुण्यकर्म किया है ? यदि पुण्य ही किया होता तो क्या अभागिनीके गर्भमें जन्म लेता ? राजकुमार होनेपर भी तू मेरे उदरकी शोभा नहीं बढ़ा सका है। इसी बातसे जान ले कि तेरा पुण्य बहुत कम है। उत्तम जो मुझसे पैदा हुआ है—कुमार 'उत्तम' जो सर्वश्रेष्ठ है, देख, वह किस सम्मानके साथ पृथ्वीनाथ महाराजके दोनों घुटनोंपर बैठा है ॥७–१०½॥

सूत उवाच

मध्येराजसभं बालस्तयेति परिभर्त्सितः ॥११॥
निपतन्नेत्रबाष्पाम्बुर्धैर्यात्किंचिन्न चोक्तवान् ।
उचितं नोचितं किंचिन्नोचिवान् सोऽपि पार्थिवः ॥१२॥
नियन्त्रितो महिष्याश्च तस्याः सौभाग्यगौरवात् ।
विसर्जितसभालोकः शोकं संहृत्य चेष्टितैः ॥१३॥
शैशवैः स शिशुर्नत्वा नृपं स्वसदनं ययौ ।

सूतजी कहते हैं—राजसभामें सौत सुरुचिके द्वारा इस प्रकार झिड़के जानेपर बालक ध्रुवकी आँखोंसे अश्रुबिन्दु झरने लगे, किंतु वह धैर्यपूर्वक कुछ भी न बोला। इधर राजा भी रानीके सौभाग्य-गौरवसे आबद्ध हो, उसका कार्य उचित था या अनुचित, कुछ भी न कह सके। जब सभासद्गण विदा हुए, तब अपनी शैशवोचित चेष्टाओंसे शोकको दबाकर वह बालक राजाको प्रणाम करके अपने घरको गया ॥ ११–१३½ ॥

सुनीतिर्नीतिनिलयमवलोक्याथ बालकम् ॥१४॥
मुखलक्ष्म्यैव चाज्ञासीद् ध्रुवं राज्ञापमानितम् ।
अथ दृष्ट्वा सुनीतिं तु रहोऽन्तःपुरगामिनीम् ॥१५॥
आलिङ्ग्य दीर्घं निःश्वस्य मुक्तकण्ठं रुरोद ह ।
सान्त्वयित्वा सुनीतिस्तं वदनं परिमार्ज्य च ॥१६॥
दुकूलाञ्चलसम्पर्कैर्वीज्य तं मृदुपाणिना ।
पप्रच्छ तनयं माता वद रोदनकारणम् ॥१७॥
विद्यमाने नरपतौ शिशो केनापमानितः ।

सुनीतिने अपने नीतिके खजाने बालकको देखकर उसके मुखकी कान्तिसे ही जान लिया कि ध्रुवका राजाके द्वारा अपमान किया गया है। माता सुनीतिको अन्तःपुरमें एकान्त स्थानमें देखकर ध्रुव अपने दुःखके आवेगको न रोक सका। वह गाढ़ालिङ्गन करके लम्बी साँस खींचता हुआ फूट-फूटकर रोने

गया। सुनीतिने उस बालकको देखकर कामना हाथो उसका मुख पाछा और गद्गद अश्रुमें दब करती हुई माता आर्त स्वरमें पूछने लगी—‘बेटा ! अपने रोनेका कारण बताओ। राजाके रहते हुए किसने तुम्हारा अपमान किया है?’॥ १४–१७½ ॥

ध्रुव उवाच

सम्पृच्छे जननि त्वाहं सम्यक् शंस ममाग्रतः ॥१८॥
भार्यात्वेऽपि च सामान्ये कथं सा सुरुचिः प्रिया।
कथं न भवती मातः प्रिया क्षितिपतेरसि ॥१९॥
कथमुत्तमतां प्राप्त उत्तमः सुरुचेः सुतः।
कुमारत्वेऽपि सामान्ये कथं चाहमनुत्तमः ॥२०॥
कथं त्वं मन्दभाग्यासि सुकुक्षिः सुरुचिः कथम्।
कथं नृपासनं योग्यमुत्तमस्य कथं न मे ॥२१॥
कथं मे सुकृतं तुच्छमुत्तमस्योत्तमं कथम्।

ध्रुव बोला—माँ ! मैं तुमसे एक बात पूछता हूँ, मेरे आगे तुम ठीक ठीक बताओ। जैसे सुरुचि राजाकी धर्मपत्नी है, वैसे ही तुम भी हो, फिर उन्हें सुरुचि ही क्यों प्यारी है ? माता ! तुम उन नरेशको क्यों प्रिय नहीं हो ? सुरुचिका पुत्र उत्तम क्यों श्रेष्ठ है ? राजकुमार होनेमें तो हम दोनों एक समान हैं। फिर क्या कारण है कि मैं उत्तम नहीं हूँ ? तुम क्यों मन्दभागिनी हो और सुरुचि क्यों उत्तम कोखवाली है ? राजसिंहासन क्यों उत्तमके ही योग्य है ? मेरे योग्य क्यों नहीं है ? मेरा पुण्य तुच्छ और उत्तमका पुण्य उत्तम कैसे है ? ॥ १८–२१½ ॥

इति श्रुत्वा वचस्तस्य सुनीतिर्नीतिमच्छिशोः ॥२२॥
किंचिदुच्छ्वस्य शनकैः शिशुशोकोपशान्तये।
स्वभावमधुरां वाणीं वक्तुं समुपचक्रमे ॥२३॥

सुनीति अपने पुत्रके इस नीतियुक्त वचनको सुनकर धीरेसे कुछ लंबी साँस खींचकर बालकका दुःख शान्त करनेके लिये स्वभावतः मधुर वाणीमें बोलने लगी ॥ २२–२३ ॥

सुनीतिरुवाच

अयि तात महाबुद्धे विशुद्धेनान्तरात्मना।
निवेदयामि ते सर्वं मावमाने मतिं कृथाः ॥२४॥
तया यदुक्तं तत्सर्वं तथ्यमेव न चान्यथा।
यदि सा महिषी राज्ञो राज्ञीनामतिवल्लभा ॥२५॥
महासुकृतसम्भारैरुत्तमो गोत्तमोदरे।
उवास तस्याः पुण्यायाः नृपसिंहासनोचितः ॥२६॥
आतपत्रं च चन्द्राभं शुभे चापि हि चामरे।
भद्रासनं तथोच्चं च सिन्धुराश्च मदोत्कटाः ॥२७॥
तुरगाश्च तुरगाः अनाधिव्याधि जीवितम्।
निःसपत्नं शुभं राज्यं प्राप्यं विष्णुप्रसादतः ॥२८॥

सुनीति बोली—तात ! तुम बड़े बुद्धिमान् हो। तुमने जो कुछ पूछा है, वह सब शुद्ध हृदयसे मैं निवेदन करती हूँ; तुम अपमानकी बात मनमें न लाओ। सुरुचिने जो कुछ कहा है, वह सब ठीक ही है, अन्यथा नहीं है। यदि वह पटरानी है तो सभी रानियोंसे बढ़कर राजाकी प्यारी है ही। राजकुमार उत्तमने बहुत बड़े पुण्योंका संग्रह करके उस पुण्यवती रानीके उत्तम गर्भमें निवास किया था, अतः वही राजसिंहासनपर बैठनेके योग्य है। चन्द्रमाके समान निर्मल श्वेत छत्र, सुन्दर युगल चँवर, ऊँचा सिंहासन, मदमत्त गजराज, शीघ्रगामी तुरंग, आधि-व्याधियोंसे रहित जीवन, शत्रुरहित सुन्दर राज्य—ये वस्तुएँ भगवान् विष्णुकी कृपासे प्राप्त होती हैं ॥ २४–२८ ॥

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य सुनीत्यास्तन्मातुर्वाक्यमनिन्दितम्।
सौनीतेयो ध्रुवो वाचमाददे वक्तुमुत्तरम् ॥२९॥

सूतजी बोले—माता सुनीतिके इस उत्तम वचनको सुनकर सुनीतिकुमार ध्रुवने यह उत्तर देनेके लिये बोलना आरम्भ किया ॥ २९ ॥

ध्रुव उवाच

जननि श्रृणु सुनीते मे शृणु वाक्यमनाकुलम्।
उत्तानचरणादन्यत्प्राप्स्यामीति मे मतिः शुभे ॥३०॥
सिद्धार्थोऽस्म्यस्य यद्यस्मि कश्चिदाश्रितवाक्यकृत्।
अद्यैव सकलाराध्यं समाराध्य जगत्पतिम् ॥३१॥
तत्पदमाप्स्ये सिद्धिं परमन्यैर्दुरासदम्।
एकमेव हि साहाय्यं मातर्मे कर्तुमर्हसि ॥३२॥
अनुज्ञां देहि मे विष्णुं यथा ह्याराधयाम्यहम्।

ध्रुव बोला—कल्याणमयी माता सुनीते ! आज मेरे व्याकुलतारहित वचन सुनो। शुभे ! आज मैं यही

समझता था कि पिता उत्तानपादसे बढ़कर और कुछ नहीं है। परंतु अम्ब! यदि अपने आश्रितजनोंकी कामना पूर्ण करनेवाला कोई और भी है तो यह जानकर आज मैं कृतार्थ हो गया। माँ! तुम ऐसा समझो कि उन सबाराध्य जगदीश्वरकी आराधना करके जो जो स्थान दूसरोंके लिये दुर्लभ है, वह सब मैंने आज ही प्राप्त कर लिया। माता! तुम्हें मेरी एक ही सहायता करनी चाहिये। केवल आज्ञा दे दो, जिससे मैं भगवान् विष्णुकी आराधना करूँ ॥ ३०–३२½ ॥

सुनीतिरुवाच

अनुज्ञातु न शक्नोमि त्वामुत्तानशयाङ्गज ॥३३॥
सप्ताष्टवर्षदेशीयः क्रीडायोग्योऽसि पुत्रक।
त्वदेकतनया तात त्वदाधारैकजीविता ॥३४॥
लब्धोऽसि कतिभिः कष्टैरिष्टा सम्प्रार्थ्य देवताः।
यदा यदा बहिर्यासि रन्तुं त्रिचतुरं पदम्।
तदा तदा मम प्राणस्तात त्वामुपगच्छति ॥३५॥

सुनीति बोली—बेटा! उत्तानपादनन्दन! मैं तुम्हें आज्ञा नहीं दे सकती। मेरे बच्चे! इस समय तुम्हारी सात आठ वर्षकी अवस्था है। अभी तो तुम खेलने-कूदनेके योग्य हो। तात! एकमात्र तुम्हीं मेरी संतान हो, मेरा जीवन एक तुम्हारे ही आधारपर टिका हुआ है। कितने ही कष्ट उठाकर, अनेक इष्ट देवी-देवताओंकी प्रार्थना करके मैंने तुम्हें पाया है। तात! तुम जब-जब खेलनेके लिये भी तीन-चार कदम बाहर जाते हो, तब-तब मेरे प्राण तुम्हारे पीछे ही पीछे लगे रहते हैं ॥ ३३–३५ ॥

ध्रुव उवाच

अद्य यावत् पिता माता त्वं चोत्तानपदो विभुः।
अद्य प्रभृति मे माता पिता विष्णुर्न संशयः ॥३६॥

ध्रुव बोला—माँ! अबतक तो तुम और राजा उत्तानपाद ही मेरे माता पिता थे, परंतु आजसे मेरे माता और पिता दोनों भगवान् विष्णु ही हैं, इसमें संदेह नहीं है ॥ ३६ ॥

सुनीतिरुवाच

विष्णोराराधने नाहं वारये त्वां सुपुत्रक।
जिह्वा मे शतधा याति यदि त्वां वारयामि भोः ॥३७॥

सुनीति बोली—मेरे सुयोग्य पुत्र! मैं भगवान् विष्णुकी आराधना करनेसे तुम्हें रोकती नहीं। यदि रोकूँ तो मेरी जिह्वाके सैकड़ों टुकड़े हो जायँ ॥ ३७ ॥

इत्यनुज्ञामिव प्राप्य जननीचरणाम्बुजौ।
परिक्रम्य प्रणम्याथ तपसे च ध्रुवो ययौ ॥३८॥
तयापि धैर्यसूत्रेण सुनीत्या परिगुम्फ्य च।
तत्रेन्दीवरजा माला ध्रुवस्योपायनीकृता ॥३९॥
मात्रा तन्मार्गरक्षार्थं तदा तदनुगीकृता।
परैरवार्यप्रसरा स्वाशीर्वादा परश्शताः ॥४०॥

इस प्रकार आज्ञा-सी पाकर ध्रुव माताके चरणकमलोंकी परिक्रमा और उन्हें प्रणाम करके तपस्याके लिये प्रस्थित हुआ। सुनीतिने धैर्यपूर्वक सूत्रमें नील कमलकी माला गूँथकर पुत्रको उपहार दिया। मार्गमें पुत्रकी रक्षाके लिये माताने अपने शत शत आशीर्वाद, जिनका प्रभाव शत्रु भी नहीं रोक सकते थे, उसके पीछे लगा दिये ॥ ३८–४० ॥

सर्वत्रावतु ते पुत्र शङ्खचक्रगदाधरः।
नारायणो जगद्व्यापी प्रभुः कारुण्यवारिधिः ॥४१॥

[वह बोली—] 'पुत्र! शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले दयासागर जगद्व्यापी भगवान् नारायण सर्वत्र तुम्हारी रक्षा करें' ॥ ४१ ॥

सूत उवाच

स्वसौधात् स विनिर्गत्य बालो बालपराक्रमः।
अनुकूलेन मरुता दर्शिताध्वाविशद्वनम् ॥४२॥
स मातृदैवतोऽभिज्ञः केवलं राजवर्त्मनि।
न वेद काननाध्वानं क्षणं दध्यौ नृपात्मजः ॥४३॥

सूतजी बोले—बालोचित पराक्रम करनेवाले बालक ध्रुवने अपने महलसे निकलकर अनुकूल वायुके द्वारा दिखायी हुई राह पकड़कर उपवनमें प्रवेश किया। माताको ही देवता माननेवाला और केवल राजमार्गको ही जाननेवाला वह राजकुमार वनके मार्गको नहीं जानता था, अतः एक क्षणतक आँखें बंद करके कुछ सोचने लगा ॥ ४२–४३ ॥

पुरोपवनमासाद्य चिन्तयामास सोऽर्भकः।
किं करोमि क्व गच्छामि को मे साहाय्यदो भवेत् ॥४४॥
एवमुन्मील्य नयने यावत्पश्यति स ध्रुवः।
तावद्ददर्श सप्तर्षीन् अतर्कितगतीन् वने ॥४५॥

अथ दृष्ट्वा स मरीचीन् सप्तसप्तातितेजस ।
भाग्यसूत्रैरिवाकृष्टोपनीतान् प्रममोद ह ॥४६॥
तिलकाङ्कितमद्भालान् कुशोपग्रहितामुलीन् ।
कृष्णाजिनोपविष्टांश्च ब्रह्मसूत्रैरलंकृतान् ॥४७॥
उपगम्य विनम्रास्य प्रबद्धकरसम्पुटः ।
ध्रुवो विज्ञापयाञ्चक्रे प्रणम्य ललितं वच ॥४८॥

नगरसे उपवनमें आकर बालक ध्रुव इस प्रकार चिन्ता करने लगा—'क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? कौन मुझे सहायता देनेवाला होगा ?' ऐसा विचार करते हुए उसने ज्यों ही आँखें खोलकर देखा, त्यों ही उस उपवनमें अप्रत्याशित अतिशय सातों ऋषि उसे दिखायी दिये। उन सूर्यतुल्य तेजस्वी महर्षियोंको, जो मानो भाग्यसूत्रसे ही खिंचकर वे आये गये थे, देखकर ध्रुव बहुत प्रसन्न हुआ। उनके सुन्दर ललाटमें तिलक लगे थे। उन्होंने अँगुलियोंमें कुशकी पवित्री पहन रखी थी तथा यज्ञोपवीतोंसे विभूषित होकर वे काले मृगचर्मपर बैठे हुए थे। उनके पास आकर ध्रुवने नम्रता धारण की दोनों हाथ जोड़ लिये और प्रणाम करके मधुर वाणीमें उन्हें अपना अभिप्राय निवेदित किया ॥ ४४–४८ ॥

ध्रुव उवाच

अवेत मां मुनिवरा सुनीत्युदरसम्भवम् ।
उत्तानपादतनयं ध्रुवं निर्विण्णमानसम् ॥४९॥

ध्रुव बोला—मुनिवरो ! आप मुझे सुनीतिके गर्भसे उत्पन्न राजा उत्तानपादका पुत्र ध्रुव जानें। इस समय मेरा चित्त अत्यन्त खिन्न है ॥ ४९ ॥

सूत उवाच

तं दृष्ट्वोर्नस्वलं बालं स्वभावमधुराकृतिम् ।
अनर्घ्यनयनेपथ्यं मृदुगम्भीरभाषिणम् ॥५०॥
उपोपवेश्य शिशुकं प्रोचुस्ते विस्मिता भृशम् ।
तवाद्यापि न जानीमो यन्न निर्वेदकारणम् ॥५१॥
अनवाप्ताभिलाषाणां वैराग्यं जायते नृणाम् ।
सप्तद्वीपपते राज्ञ कुमारस्त्वं तथा प्रथम् ॥५२॥
किमस्माभिरिहो कार्यं कस्ते नाम मनोरथ ।

सूतजी कहते हैं—राजा नीति ही जिसका भूषण है—ऐसे मधुर और गम्भीर भाषण करनेवाले उस स्वभावतः मनोहर आकृतिवाले उस बालकको देखकर महर्षिगण अत्यन्त विस्मित हुए। उसे पास बिठाकर और कहा—'वत्स ! अभीतक तुम्हारे वैराग्यका निर्वेद कारण हम नहीं जान सके। वैराग्य तो उन मनुष्योंको होता है, जिनकी मनःकामनाएँ पूर्ण नहीं हो पातीं। तुम तो सातों द्वीपोंके अधीश्वर महाराजके पुत्र हो, तुम भला मनरथ कैसे हो सकते हो ? हमसे तुम्हें क्या काम है ? तुम्हारी मनःकामना क्या है ?' ॥ ५०–५१ ॥

ध्रुव उवाच

मुनयो मम यो बन्धुरुत्तमश्चोत्तमोत्तमः ॥५३॥
पित्रा प्रदत्तं तस्मात्तु तद्भद्रासनमुत्तमम् ।
भवत्कृतं हि माहात्म्य एतदिच्छामि सुव्रता ॥५४॥
अनन्यनृपभुक्तं यद् यदन्येभ्य समुच्छ्रितम् ।
इन्द्राद्यैर्दुरवापं यत् कथं लभ्येत तत्पदम् ॥५५॥
इति श्रुत्वा वचस्तस्य मुनयो बालकस्य तु ।
यथार्थमेव प्रत्यूचुर्मरीच्याद्यास्तदा ध्रुवम् ॥५६॥

ध्रुव बोला—मुनिगण ! मेरे जो उत्तमोत्तम बन्धु उत्तमकुमार हैं—उनके ही लिये पिताजीने दिया हुआ शुभ सिंहासन है। उसका सम्मान पालन करते हुए मुनीश्वरो ! मैं आपलोगोंसे इतनी ही आवश्यकता मानता हूँ कि जिस स्थानका किसी दूसरे राजाने उपभोग न किया हो, जो अन्य सभी स्थानोंसे ऊपर हो और इन्द्रादि देवताओंके लिये भी दुर्लभ हो, वह स्थान मुझे किस उपायसे प्राप्त हो सकता है, यह बतायें। उस बालककी यह बात सुनकर मरीचि आदि महर्षियोंने उसे यथार्थ ही उत्तर दिया ॥ ५३–५६ ॥

मरीचिरुवाच

अनास्वादितगोविन्दपदाम्बुजरजोरस ।
मनोरथपथातीतं स्फीतं नाप्नोति वै फलम् ॥५७॥

मरीचि बोले—जिसने श्रीगोविन्दके चरणारविन्दोंके रजका आस्वादन नहीं किया, वह मनोरथपथसे अतीत (कल्पनामें भी न आ सकनेवाले) महान् फलको नहीं प्राप्त कर सकता ॥ ५७ ॥

अत्रिरुवाच

अनर्चितात्प्युतपदः पद्मानाभादिरेन सम्पदम् ।
इन्द्रादिदुरवापं यन्मानवं [illegible] गुदुरानदम् ॥५८॥

अत्रि बोले—जिसने अच्युतके चरणोंकी अर्चना नहीं की है, वह पुरुष उस पदको, जो इन्द्रादि देवताओंके लिये भी दुर्लभ और मनुष्योंके लिये तो अत्यन्त दुष्प्राप्य है, कैसे पा सकता है ? ॥ ५८ ॥

अङ्गिरा उवाच

न हि दूरे पदं तस्य सर्वासां सम्पदामिह ।
कमलाकान्तकान्ताङ्घ्रिकमलं यः सुशीलयेत् ॥५९॥

अङ्गिरा बोले—जो भगवान् कमलाकान्तके कमनीय चरणकमलोंका अनुशीलन (चिन्तन) करता है, उसके लिये त्रिभुवनकी सारी सम्पदाओंका स्थान दूर (दुर्लभ) नहीं है ॥ ५९ ॥

पुलस्त्य उवाच

यस्य स्मरणमात्रेण महापातकसंततिः ।
परमान्तमवाप्नोति स विष्णुः सर्वदो ध्रुव ॥६०॥

पुलस्त्य बोले—ध्रुव ! जिनके स्मरणमात्रसे महापातकोंकी परम्परा अत्यन्त नाशको प्राप्त हो जाती है, वे भगवान् विष्णु ही सब कुछ देनेवाले हैं ॥ ६० ॥

पुलह उवाच

यमाहुः परमं ब्रह्म प्रधानपुरुषात् परम् ।
यन्मायया कृतं सर्वं स विष्णुः कीर्तितोऽर्थदः ॥६१॥

पुलह बोले—जिन्हें प्रधान (प्रकृति) और पुरुष (जीव) से विलक्षण परमब्रह्म कहते हैं, जिनकी मायासे समस्त प्रपञ्च रचा गया है, उन भगवान् विष्णुका यदि कीर्तन किया जाय तो वे अपने भक्तके अभीष्ट मनोरथको पूर्ण कर देते हैं ॥ ६१ ॥

क्रतुरुवाच

यो यज्ञपुरुषो विष्णुर्वेदवेद्यो जनार्दनः ।
अन्तरात्मास्य जगतः संतुष्टः किं न यच्छति ॥६२॥

क्रतु बोले—जो यज्ञपुरुष भगवान् विष्णु वेदोंके द्वारा जाननेयोग्य हैं तथा जो जनार्दन इस समस्त जगत्के अन्तरात्मा हैं, वे प्रसन्न होनेपर क्या नहीं दे सकते ? ॥ ६२ ॥

वसिष्ठ उवाच

यद्भ्रूनर्तनवर्तिन्यः सिद्धयोऽष्टौ नृपात्मज ।
तमाराध्य हृषीकेशं चतुर्वर्गो न दूरतः ॥६३॥

वसिष्ठ बोले—राजकुमार ! जिनकी भौंहोंके नर्तनमात्रमें आठों सिद्धियाँ वर्तमान हैं, उन भगवान् हृषीकेशकी आराधना करनेसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चारों पुरुषार्थ दूर नहीं रहते ॥ ६३ ॥

ध्रुव उवाच

सत्यमुक्तं द्विजेन्द्रा यो विष्णोराराधनं प्रति ।
कथं स भगवानिज्यः स विधिश्चोपदिश्यताम् ॥६४॥
प्रभूतदो भवेद्यो वै दुराराध्यतमो भवेत् ।
बालोऽहं राजपुत्रोऽहं दुःखं नैव मया क्षमम् ॥६५॥

ध्रुव बोले—द्विजवरो ! भगवान् विष्णुकी आराधनाके सम्बन्धमें आपलोगोंने जो विचार प्रकट किया, वह सत्य है । अब मुझे यह बताइये कि उन भगवान्की पूजा कैसे करनी चाहिये ? उसकी विधिका मुझे उपदेश कीजिये । जो बहुत कुछ दे सकते हैं, उनकी आराधना भी कठिन ही होगी । मैं राजकुमार हूँ और बालक हूँ, मुझसे विशेष कष्ट नहीं सहा जा सकता ॥ ६४-६५ ॥

मुनय ऊचुः

तिष्ठता गच्छता वापि स्वपता जाग्रता तथा ।
शयानेनोपविष्टेन वेद्यो नारायणः सदा ॥६६॥
पुत्रान् कलत्रं मित्राणि राज्यं स्वर्गापवर्गकम् ।
वासुदेवं जपन् मर्त्यः सर्वं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥६७॥
द्वादशाक्षरमन्त्रेण वासुदेवात्मकेन च ।
ध्यायंश्चतुर्भुजं विष्णुं जप्त्वा सिद्धिं न को गतः ॥६८॥
पितामहेन चाप्येष महामन्त्र उपासितः ।
मनुना राज्यकामेन वैष्णवेन नृपात्मज ॥६९॥
त्वमप्येतेन मन्त्रेण वासुदेवपरो भव ।
यथाभिलषितामृद्धिं क्षिप्रं प्राप्स्यसि सत्तम ॥७०॥

मुनिगण बोले—खड़े होते चलते, सोते जागते, लेटते और बैठते हुए प्रतिक्षण भगवान् नारायणका स्मरण करना चाहिये । भगवान् वासुदेवके नामका जप करनेवाला मनुष्य पुत्र, स्त्री, मित्र, राज्य, स्वर्ग तथा मोक्ष—सब कुछ पा लेता है—इसमें संशय नहीं है । वासुदेवस्वरूप द्वादशाक्षर मन्त्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) के द्वारा चार भुजाधारी भगवान् विष्णुका ध्यान और जप करके किसने सिद्धि नहीं प्राप्त की ? राजकुमार ! पितामह

वत्स ! मैं तुम्हारी तपस्या, ध्यान, इन्द्रिय निग्रह और दुस्साध्य मन संयमसे तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ । अतः तुम्हारे मनमें जो अभीष्ट हो, वह उत्तम वर मुझसे माँग लो ॥ ७९ ॥

श‍ृण्वन् वचस्तत्सकलं गभीर-
मुन्मीलिताक्षः सहसा ददर्श ।
स्वे चिन्त्यमानं त्विदमेव मूर्तं
पुरः स्थितं ब्रह्म चतुर्भुजं सः ॥८०॥

भगवान्‌का यह सम्पूर्ण गम्भीर वाणी सुनते ही ध्रुवने सहसा आँखें खोल दीं । उस समय उन्हीं चतुर्भुज ब्रह्मको, जिनका वह अपने हृदयमें चिन्तन कर रहा था, उसने सामने मूर्तिमान् होकर खड़ा देखा ॥८०॥

दृष्ट्वा क्षणं राजसुतः सुपूज्यं
पुरस्त्रयीशं किमिह ब्रवीमि ।
किं वा करोमीति ससम्भ्रमः स तु
न चाब्रवीत् किंचन नो चकार ॥८१॥
हर्षाश्रुपूर्णः पुलकाञ्चिताङ्ग-
स्त्रिलोकनाथेति वदन्नथोच्चैः ।
दण्डप्रणामाय पपात भूमौ
प्रवेपमानश्च हरेः पुरः स हि ॥८२॥
दण्डवत् प्रणिपत्याथ परितः परिलुण्ठ्य च ।
मोदं हर्षेण चिरं दृष्ट्वा तं जगतो गुरुम् ॥८३॥
नारदेन सनन्देन सनकेन च संस्तुतम् ।
अन्यैः सनत्कुमाराद्यैर्योगिभिर्योगिनां वरम् ॥८४॥
कारुण्यबाष्पनीरार्द्रं पुण्डरीकविलोचनम् ।
ध्रुवमुत्थापयाचक्रे चक्री धृत्वा करेण तम् ॥८५॥
हरिस्तु परिपस्पर्श तदङ्गं धूलिधूसरम् ।
कराभ्यां कोमलाभ्यां स परिष्वज्याह तं हरिः ॥८६॥

उन परम पूजनीय त्रिभुवनपतिको सहसा सामने देख वह राजकुमार सकपका गया और 'मैं यहाँ इनसे क्या कहूँ ! क्या करूँ !' इत्यादि बातें सोचता हुआ क्षणभर न तो कुछ बोला और न कुछ कर ही सका । उसके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू भरे थे, शरीरके रोएँ खड़े हो गये थे । वह भगवान्‌के सामने उच्चस्वरसे 'हे त्रिभुवननाथ !' यों कहता हुआ दण्डवत् प्रणाम करनेके लिये पृथ्वीपर पड़ गया । उस समय उसकी भाई काँप रही थीं । दण्डकी भाँति प्रणाम करके जगद्गुरु भगवान्‌की ओर एकटक दृष्टि लगाये वह आनन्दातिरेकसे चारों ओर लोट-पोट होकर देरतक रोता रहा । नारद, सनन्दन, सनक और सनत्कुमार आदि तथा अन्य योगी जिन योगीश्वरका श्रवण-कीर्तन एवं स्तवन किया करते हैं और जिनके नेत्र करुणाके आँसुओंसे भीगे हुए थे, उन्हीं कमललोचन भगवान्‌को आज ध्रुवने प्रत्यक्ष देखा । उस समय चक्रधर भगवान्‌ने अपने हाथसे पकड़कर ध्रुवको उठा लिया । इतना ही नहीं, उन्होंने अपने दोनों कोमल हाथोंसे उसके धूलिधूसरित शरीरको सब ओरसे पोंछा और उसे हृदयसे लगाकर कहा ॥ ८१–८६ ॥

वरं वरय भो बाल यत्ते मनसि वर्तते ।
तद्ददामि न संदेहो नादेयं विद्यते तव ॥८७॥

'बच्चा ! तुम्हारे मनमें जो भी इच्छा है, उसके अनुसार वर माँग लो । मैं निस्संदेह वह सब तुम्हें दे दूँगा । तुम्हारे लिये कोई भी वस्तु अदेय नहीं है' ॥ ८७ ॥

ततो वरं राजशिशुर्ययाचे
विष्णुं वरं ते स्तवशक्तिमेव ।
तं मूर्तविज्ञाननिभेन देवः
पस्पर्श शङ्खेन मुखेऽमलेन ॥८८॥
अथ सुरमुनिदत्तज्ञानचन्द्रेण सम्यग्
विमलितमिव चित्तं पूर्णमेव ध्रुवस्य ।
त्रिभुवनगुरुशङ्खस्पर्शजज्ञानभाना-
वुदयति नितरान्तः साधु तुष्टाव हृष्टः ॥८९॥

तब राजकुमारने भगवान् विष्णुसे यही वर माँगा कि 'मुझे आपकी स्तुति करनेकी शक्ति प्राप्त हो !' यह सुनकर भगवान्‌ने मूर्तिमान् विज्ञानके समान निर्मल शङ्खसे ध्रुवके मुखको छुआ दिया । मरीचि आदि देवर्षियोंके दिये हुए ज्ञानरूपी चन्द्रमाकी किरणोंसे क्षालित होकर ध्रुवका चित्त पूर्णतया निर्मल हो गया था । फिर त्रिभुवनगुरु भगवान्‌के शङ्ख स्पर्शसे उसके अन्तःकरणमें ज्ञानरूपी सूर्यका उदय हो जानेपर उसमें पूर्ण प्रकाश हो गया । इससे वह आनन्दित होकर भगवान्‌की सुन्दर स्तुति करने लगा ॥ ८८-८९ ॥

ध्रुव उवाच

अखिलमुनिजननिवहनमितचरण । खरकदन

(ब्रह्माजी) ने भी इस महामन्त्रकी उपासना की थी। विष्णुभक्त मनुने भी राज्यकी कामनासे इस मन्त्रद्वारा भगवानकी आराधना की थी। सत्पुरुषशिरोमणे ! तुम भी इस मन्त्रद्वारा भगवान् वासुदेवकी आराधनामें लग जाओ। इससे बहुत शीघ्र ही अपनी मनोवाञ्छित समृद्धि प्राप्त कर लोगे ॥ ६६–७० ॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वान्तर्हिता सर्वे महात्मानो मुनीश्वरा ।
वासुदेवमना भूत्वा ध्रुवोऽपि तपसे ययौ ॥७१॥
ध्रुव सर्वार्थद मन्त्र जपन् मधुवने तप ।
स चक्रे यमुनातीरे मुनिदिष्टेन वर्त्मना ॥७२॥
श्रद्धान्वितेन जपता च तप प्रभावात्
साक्षादिवाञ्जनयन ददृशे हृदीशम् ।
दिव्याकृति सपदि तेन तत स एव
हर्षात् पुन स प्रजजाप नृपात्मभूत ॥७३॥
क्षुत्तर्षवर्षघनवातमहोष्णतादि
शारीरदु खकुलमस्य न किंचनाभूत् ।
मग्ने मनस्यनुपमेयसुखाम्बुराशौ
राज्ञ शिशुर्न च विवेद शरीरवार्ताम् ॥७४॥
विघ्नाश्च तस्य किल शङ्कितदेवसृष्टा
बालस्य तीव्रतपसो विफला बभूवु ।
शीतातपादिरिव विष्णुमय मुनिं हि
प्रादेशिका न खलु धर्षयितु क्षमन्ते ॥७५॥

सूतजी कहते हैं—यों कहकर वे सभी महात्मा मुनीश्वर वहीं अन्तर्हित हो गये और ध्रुव भी भगवान् वासुदेवमें मन लगाकर तपस्याके लिये चला गया। द्वादशाक्षर मन्त्र सम्पूर्ण मनोरथोंको देनेवाला है। ध्रुव मधुवनमें यमुनातट मुनियोंकी बतायी हुई पद्धतिसे उस मन्त्रका जप करने लगा। श्रद्धापूर्वक उस मन्त्रका जप करते हुए राजकुमार ध्रुवने तपके प्रभावसे साक्षात् ही हृदयमें भगवान् कमलनयनको प्रत्यक्ष देखा। उनकी आकृति बड़ी दिव्य थी। भगवान्के दर्शनसे बालक हर्षसे भर गया। अब तो वह राजपुत्र पुन बड़े उत्साहसे उस मन्त्रका जप करने लगा। उस समय भूख, प्यास, वर्षा, आँधी और अधिक गर्मी आदि दैहिक दुःखोंमेंसे कुछ भी उसे नहीं व्यापा। उस राजकुमारका मन अनुपम आनन्द-महासागरमें गोता लगा रहा था। अत उस समय उसे अपने शरीरकी भी सुध नहीं रह गयी थी। कहते हैं, उसकी तपस्यासे शङ्कित हुए देवताओंने कितने ही विघ्न खड़े किये, परंतु उस तीव्र तपस्वी बालकके लिये वे सभी निष्फल ही सिद्ध हुए। शीत और धूप आदिकी ही तरह वे एकदेशीय विघ्न भी उस विष्णुस्वरूप मुनिको व्यथित नहीं कर पाते थे ॥ ७१–७५ ॥

अथ भक्तजनप्रिय प्रभु
शिशुना ध्यानबलेन तोषित ।
वरद पतगेन्द्रवाहनो
हरिरागात् स्वजन तमीक्षितुम् ॥७६॥
मणिपिण्डकमौलिराजितो
विलसद्रत्नमहाघनच्छवि ।
स बभावुदयाद्रिमत्सरा
द्धृतबालार्क इवामिताचल ॥७७॥
स राजसूनु तपसि स्थितं त
ध्रुव ध्रुवस्निग्धदृगित्युवाच ।
दन्तांशुसञ्चैरमितप्रवाहै
प्रक्षालयन् रेणुमिवास्य गात्रे ॥७८॥

कुछ समयके बाद भक्तजनोंके प्रियतम वरदाता भगवान् विष्णु बालक ध्रुवके ध्यान-बलसे संतुष्ट होकर पक्षिराज गरुडपर सवार हो, अपने उस भक्तको देखनेके लिये आये। मणिसमूहद्वारा निर्मित मुकुटसे मण्डित और शोभशाली कौस्तुभरत्नसे समलंकृत, महामेघके समान श्यामकान्तिवाले वे भगवान् श्रीहरि ऐसी शोभा पा रहे थे, मानो उदयाचलके प्रति डाह रखनेके कारण अपने शृङ्गपर बालरवि धारण किये साक्षात् कज्जलगिरि प्रकाशित हो रहा हो। निश्चल और स्नेहपूर्ण दृष्टिवाले वे भगवान् अपने दाँतोंकी किरणरूप जलके अमित प्रवाहद्वारा तपस्यामें लगे हुए राजकुमार ध्रुवके शरीरकी धूलिको धोते हुए-से उससे इस प्रकार बोले ॥ ७६–७८ ॥

वर वर वत्स वृणीष्व यस्ते
मनोगतस्त्वत्तपसास्मि तुष्ट ।
ध्यानेन ते चेन्द्रियनिग्रहेण
मनोनिरोधेन च दुष्करेण ॥७९॥

वत्स ! मैं तुम्हारी तपस्या, ध्यान, इन्द्रिय निग्रह और दुस्साध्य मन संयमसे तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ । अतः तुम्हारे मनमें जो अभीष्ट हो, वह उत्तम वर मुझसे माँग लो' ॥ ७९ ॥

शृण्वन् वचस्तत्सकलं गभीरं
उन्मीलिताक्षः सहसा ददर्श ।
स्वं चिन्त्यमानं त्विदमेव मूर्तं
पुरःस्थितं ब्रह्म चतुर्भुजं सः ॥८०॥

भगवान्‌की यह सम्पूर्ण गम्भीर वाणी सुनते ही उसने सहसा आँखें खोल दीं । उस समय उन्हीं चतुर्भुज ब्रह्मको, जिनका वह अपने हृदयमें चिन्तन कर रहा था, उसने सामने मूर्तिमान् होकर खड़ा देखा ॥८०॥

दृष्ट्वा क्षणं राजसुतः सुपूज्यं
पुरस्त्वयीशं किमिह ब्रवीमि ।
किं वा करोमीति ससम्भ्रमः स तु
न चाब्रवीत् किंचन नो चकार ॥८१॥
हर्षाश्रुपूर्णः पुलकाञ्चिताङ्ग-
स्त्रिलोकनाथेति वदन्नथोच्चैः ।
दण्डप्रणामाय पपात भूमौ
प्रवेपमानभ्रु हरेः पुरः स हि ॥८२॥
दण्डवत् प्रणिपत्याथ परितः परिलुण्ठ्य च ।
रोद हर्षेण चिरं दृष्ट्वा तं जगतो गुरुम् ॥८३॥
नारदेन सनन्देन सनकेन च संश्रुतम् ।
अन्यैः सनत्कुमाराद्यैर्योगिभिर्योगिनां वरम् ॥८४॥
कारुण्यबाष्पनीरार्द्रं पुण्डरीकनिलोचनम् ।
ध्रुवमुत्थापयाचक्रे चक्री धृत्वा करेण तम् ॥८५॥
करैस्तु परिपस्पर्श तदङ्गं धूलिधूसरम् ।
हस्ताभ्यां कोमलाभ्यां स परिष्वज्याह तं हरिः ॥८६॥

उन परम पूजनीय त्रिभुवनपतिको सहसा सामने देख वह राजकुमार सकपका गया और 'मैं यहाँ इनसे क्या कहूँ ? क्या करूँ ?' इत्यादि बातें सोचता हुआ क्षणभर न तो कुछ बोला और न कुछ कर ही सका । उसके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू भर थे, शरीरके रोएँ खड़े हो गये थे । वह भगवान्‌के सामने उच्चस्वरसे 'हे त्रिभुवननाथ !' यों कहता हुआ दण्डवत्-प्रणाम करनेके लिये पृथ्वीपर पड़ गया । उस समय उसकी भौंहें काँप रही थीं । दण्डकी भाँति प्रणाम करके जगद्गुरु भगवान्‌की ओर एकटक दृष्टि लगाये वह आनन्दातिरेकसे चारों ओर लोट-पोट होकर देरतक रोता रहा । नारद, सनन्दन, सनक और सनत्कुमार आदि तथा अन्य योगी जिन योगीश्वरका श्रवण कीर्तन एवं स्तवन किया करते हैं और जिनके नेत्र करुणाके आँसुओंसे भीगे हुए थे, उन्हीं कमललोचन भगवान्‌को आज ध्रुवने प्रत्यक्ष देखा । उस समय चक्रधर भगवान्‌ने अपने हाथसे पकड़कर ध्रुवको उठा लिया । इतना ही नहीं, उन्होंने अपने दोनों कोमल हाथोंसे उसके धूलिधूसरित शरीरको सब ओरसे पोंछा और उसे हृदयसे लगाकर कहा ॥ ८१–८६ ॥

वरं वरय भो बाल यत्ते मनसि वर्तते ।
तद्ददामि न संदेहो नादेयं विद्यते तव ॥८७॥

'बच्चा ! तुम्हारे मनमें जो भी इच्छा है, उसके अनुसार वर माँग लो । मैं निस्संदेह वह सब तुम्हें दे दूँगा । तुम्हारे लिये कोई भी वस्तु अदेय नहीं है' ॥ ८७ ॥

ततो वरं राजशिशुर्ययाचे
विष्णुं वरं ते स्तवशक्तिमेव ।
तं मूर्तविज्ञाननिभेन देवः
पस्पर्श शङ्खेन मुखेऽमलेन ॥८८॥
अथ सुरमुनिदत्तज्ञानचन्द्रेण सम्यग्
निर्मलितमिव चित्तं पूर्णमेव ध्रुवस्य ।
त्रिभुवनगुरुशङ्खस्पर्शजज्ञानभाना-
वुदयति नितरान्तं साधु तुष्टाव हृष्टः ॥८९॥

तब राजकुमारने भगवान् विष्णुसे यही वर माँगा कि 'मुझे आपकी स्तुति करनेकी शक्ति प्राप्त हो ।' यह सुनकर भगवान्‌ने मूर्तिमान् विज्ञानके समान निर्मल शङ्खसे ध्रुवके मुखको छुआ दिया । मरीचि आदि देवर्षियोंके दिये हुए ज्ञानरूपी चन्द्रमाकी किरणोंसे क्षालित होकर ध्रुवका चित्त पूर्णतया निर्मल हो गया था । फिर त्रिभुवनगुरु भगवान्‌के शङ्खस्पर्शसे उसके अन्तःकरणमें ज्ञानरूपी सूर्यका उदय हो जानेपर उसमें पूर्ण प्रकाश हो गया । इससे वह आनन्दित होकर भगवान्‌की सुन्दर स्तुति करने लगा ॥ ८८-८९ ॥

ध्रुव उवाच

अखिलमुनिजननिवहनमितचरण । खरकदन

कर॰ । चपलचरित । देवाराधितपादजल । सजलजलधरश्याम शमितभौमपतिशाल्वधामा । अभिरामरामानिनिनयकृतनवरससरसापहृतेन्द्रियसुररमणीविहितान्तःकरणानन्द । अनादिनिधन । अधननिजद्विजमित्रोद्धरणधीर । अवधीरितसुरनाथनाथितविपक्षपक्ष । ऋक्षराजबिलप्रवेशापहृतस्यमन्तकापमार्जितनिजापवाददुरितहृतत्रैलोक्यभार । द्वारकावासनिरत॰ । स्वरितमधुरवेणुनादश्रवणामृतप्रकटितातीन्द्रियज्ञान । यमुनातटचर । द्विजधेनुभृङ्गगणैस्त्यक्तनिजनिजाहार । संसारदुस्तरपारावारसमुत्तारणाङ्घ्रिपोत । स्वप्रतापानलहुतकालयवन । वनमालाधरवरमणिकुण्डलालंकृतश्रवण । नानाप्रसिद्धाभिधान॰ । निगमविबुधमुनिजनवचनमनोऽगोचर॰ । कनकपिशङ्गकौशेयवासो भगवान् भृगुपदकौस्तुभविभूषितोरःस्थल । स्वदयिताक्रूरनिजजननीगोकुलपालक॰ चतुर्भुजशङ्खचक्रगदापद्मतुलसीनवदलदामहारकेयूरकटकमुकुटालंकृत । सुनन्दनादिभागवतोपासितनिजरूपः । पुराणपुरुषोत्तम । उत्तमश्लोक । लोकावासो वासुदेव॰ । श्रीदेवकीजठरसम्भूत । भूतपतिविरिञ्चिनतचरणारविन्द । वृन्दावनकृतकेलिगोपिकाजनश्रमापह । सतत सम्पादितसुजनकाम । कुन्दनिभशङ्खधरमिन्दुनिभवक्त्रं सुन्दरसुदर्शनमुदारतरहासं विद्वज्जननन्दितमिदं ते रूपमतिहृद्यमखिलेश्वरं नतोऽस्मि ।

ध्रुव बोला—समस्त मुनिगण जिनके चरणकमलोंकी वन्दना करते हैं, जो खर नामक अथवा गर्दभरूपधारी धेनुकासुरका संहार करनेवाले हैं, जिनकी बाललीलाएँ चपलतासे पूर्ण हैं, देवगण जिनके चरणोदक (गङ्गाजी) की आराधना करते हैं, सजल मेघके समान जिनका श्याम वर्ण है, भौम विमानके अधिपति शाल्वके धाम (तेज) को जिन्होंने सदाके लिये शान्त कर दिया है, जिन्होंने सुन्दर गोपवनिताओंमें अत्यन्त विनयवश नूतन प्रेमरसमय रासलीलाको प्रकट किया और उससे मोहित होनेवाली देववनिताओंके अन्तःकरणमें भी आनन्दका संचार किया, जिनका आदि और अन्त नहीं है, जिन्होंने अपने निर्धन मित्र सुदामा नामक ब्राह्मणका धीरतापूर्वक दैन्यदुःखसे उद्धार किया, देवराज इन्द्रकी प्रार्थनासे जिन्होंने उनके शत्रुपक्षको पराजित किया, ऋक्षराज जाम्बवान्की गुहामें प्रवेश करके खोयी हुई स्यमन्तक मणिको लाकर जिन्होंने अपने ऊपर लगे हुए कलङ्करूप दुरितको दूर करके त्रिभुवनका भार हल्का किया है, जो द्वारकापुरीमें नित्य निवास करते हैं, जो अपनी मधुर मुरली बजाकर श्रुतिमधुर अतीन्द्रिय ज्ञानको प्रकट करते तथा यमुनातटपर विचरते हैं, जिनके वंशीनादको सुननेके लिये पक्षी, गौ और भृङ्गगण अपना-अपना आहार त्याग देते हैं, जिनके चरणकमल दुस्तर संसार-सागरसे पार करनेके लिये जहाजरूप हैं, जिन्होंने अपनी प्रतापाग्निमें कालयवनको होम दिया है, जो वनमालाधारी हैं, जिनके श्रवण सुन्दर मणिमय कुण्डलोंसे अलंकृत हैं, जिनके अनेक प्रसिद्ध नाम हैं, जो वेदवाणी तथा देवता और मुनियोंके भी मन-वाणीके अगोचर हैं, जो भगवान् सुवर्णके समान पीत रेशमी वस्त्र धारण करते हैं, जिनका वक्षःस्थल भृगुजीके चरणचिह्न तथा कौस्तुभमणिसे अलंकृत है, जो अपने प्रिय भक्त अक्रूर, माता देवकी और गोकुलके पालक हैं तथा जो अपनी चारों भुजाओंमें शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये नूतन तुलसीदलकी माला, मुक्ताहार, केयूर, कड़ा और मुकुट आदिसे विभूषित हैं, सुनन्दन आदि भगवद्भक्त जिन विग्रहरूप हरिकी उपासना करते हैं, जो पुराण पुरुषोत्तम हैं, पुण्ययशवाले हैं तथा समस्त लोकोंके आवास-स्थान वासुदेव हैं, जो देवकीके उदरसे प्रकट हुए हैं, भूतनाथ शिव तथा ब्रह्माजीने जिनके चरणारविन्दोंपर मस्तक झुकाया है, जो वृन्दावनमें की गयी लीलामें थकी हुई गोपियोंके श्रमको दूर करनेवाले हैं, सज्जनोंके मनोरथोंको जो सर्वदा पूर्ण किया करते हैं, ऐसी महिमावाले हे सर्वेश्वर ! जो कुन्दके समान उज्ज्वल शङ्ख धारण करते हैं, जिनका चन्द्रमाके समान सुन्दर मुख है, सुन्दर नेत्र हैं तथा अत्यन्त मनोहर मुसकान है, ऐसे अत्यन्त हृदयहारी आपके इस रूपको, जो ज्ञानियोंद्वारा वन्दित है, मैं प्रणाम करता हूँ ।

स्थानाभिकामी तपसि स्थितोऽहं
त्वां दृष्टवान् साधुमुनीन्द्रगुह्यम् ।
काचं विचिन्वन्निव दिव्यरत्नं
स्वामिन् कृतार्थोऽस्मि वरान्न याचे ॥९०॥

अपूर्वदृष्टे तव पादपद्मे
दृष्ट्वा दृढं नाथ नहि त्यजामि ।
कामान् न याचे स हि कोऽपि मूढो
यः कल्पवृक्षात् तुषमात्रमिच्छेत् ॥९१॥
त्वां मोक्षबीजं शरणं प्रपन्नः
शक्नोमि भोक्तुं न बहिःसुखानि ।
रत्नाकरे देव सति स्वनाथे
विभूषणं काचमयं न युक्तम् ॥९२॥
अतो न याचे वरमीश युष्मत्-
पादाब्जभक्तिं सततं ममास्तु ।
इमं वरं देववर प्रयच्छ
पुनः पुनस्त्वामिदमेव याचे ॥९३॥

मैं उत्तम स्थान प्राप्त करनेकी इच्छासे तपस्यामें प्रवृत्त हुआ और बड़े-बड़े मुनीश्वरोंके लिये भी जिनका दर्शन पाना असम्भव है, उन्हीं आप परमेश्वरका दर्शन पा गया—ठीक उसी तरह, जैसे काँचकी खोज करनेवाला कोई मनुष्य माणिक्यका दिव्य रत्न हस्तगत कर ले। स्वामिन्! मैं कृतार्थ हो गया, अब मैं कोई वर नहीं माँगता। हे नाथ! जिनका दर्शन अपूर्व है—पहले कभी उपलब्ध नहीं हुआ है उन आपके चरणकमलोंका दर्शन पाकर अब मैं इन्हें छोड़ नहीं सकता। मैं अब भोगोंकी याचना नहीं करूँगा, ऐसा कोई मूर्ख ही होगा, जो कल्पवृक्षसे केवल भूसी पाना चाहेगा! देव! आज मैं मोक्षके कारणभूत आप परमेश्वरकी शरणमें आ पड़ा हूँ, अब बाह्य विषय-सुखोंको मैं नहीं भोग सकता। जब रत्नोंकी खान समुद्र अपना मालिक हो जाय, तब काँचका भूषण पहनना कभी उचित नहीं हो सकता। अतः ईश! अब मैं दूसरा कोई वर नहीं माँगता, आपके चरणकमलोंमें मेरी सदा भक्ति बनी रहे, देववर! मुझे यही वर दीजिये। मैं बारंबार आपसे यही प्रार्थना करता हूँ॥ ९०—९३॥

श्रीसूत उवाच

इत्यात्मसंदर्शनलब्धदिव्य-
ज्ञानं वदन्तं भगवाञ्जगाद ॥९४॥

श्रीसूतजी कहते हैं—इस प्रकार अपने दर्शनमात्रसे दिव्य ज्ञान प्राप्त करके स्तुति करते हुए ध्रुवको देखकर भगवान्ने उनसे कहा॥ ९४॥

श्रीभगवानुवाच

आराध्य विष्णुं किमनेन लब्धं
मा भूज्जनेऽपीत्थमसाधुवादः ।
स्थानं परं प्राप्नुहि यन्मतं ते
कालेन मां प्राप्स्यसि शुद्धभावः ॥९५॥
आधारभूतः सकलग्रहाणां
कल्पद्रुमः सर्वजनैश्च वन्द्यः ।
मम प्रसादात्तव सा च माता
ममान्तिके या च सुनीतिरार्या ॥९६॥

श्रीभगवान् बोले—'ध्रुवने विष्णुकी आराधना करके क्या पा लिया?' इस तरहका अपवाद लोगोंमें न फैल जाय। इसके लिये तुम अपने अभीष्ट सर्वोत्तम स्थानको ग्रहण करो, पुनः समय आनेपर शुद्धभाव हो तुम मुझे प्राप्त कर लोगे। मेरे प्रसादसे समस्त ग्रहोंके आधारभूत, कल्पवृक्ष और सब लोगोंके वन्दनीय होकर तुम और तुम्हारी माता आर्या सुनीति मेरे निकट निवास करोगे॥ ९५ ९६॥

श्रीसूत उवाच

तं साधयित्वेति वरैर्मुकुन्दः
स्वमालयं दक्षपुर्जगाम ।
त्यक्त्वा शनैर्दिव्यवपुः स्वभक्तं
मुहुः परावृत्य समीक्षमाणः ॥९७॥
तावच्च सद्यः सुरसिद्धसंघः
श्रीविष्णुतद्भक्तसमागमं तम् ।
दृष्ट्वाथ वर्षन् सुरपुष्पवृष्टिं
तुष्टाव हर्षाद् ध्रुवमच्युतं च ॥९८॥
श्रियाभिमत्या च सुनीतिसूनुः
विभाति देवैरपि वन्द्यमानः ।
योऽयं नृणां कीर्तनदर्शनाभ्यां
मायुर्यशो वर्धयति श्रियं च ॥९९॥

श्रीसूतजी कहते हैं—इस प्रकार भगवान् प्रकट हो, उपर्युक्त वरदानोंसे ध्रुवका मनोरथ पूर्ण करके, भगवान् मुकुन्द धीरेसे अपना वह दिव्य रूप छिपा, बारंबार घूमकर उस भक्तकी ओर देखते हुए अपने वैकुण्ठधामको चले गये। इसी बीचमें देवताओंका समुदाय भगवान् विष्णु और उनके भक्त उस

समागमको देखकर सारे तत्काल दिव्य पुष्प बरसाने और उस अविनाशी ध्रुवका स्तवन भी करने लगा। सुनीतिकुमार ध्रुव आश्चर्य और सम्मान—दोनोंसे सम्पन्न होकर देवताओंका भी वन्दनीय हो, शोभा पा रहा है। यह अपने दर्शन तथा गुणकीर्तनसे मनुष्योंकी आयु, यश तथा लक्ष्मीकी भी वृद्धि करता रहेगा॥ ९७–९९॥

इत्थं ध्रुवः प्राप पदं दुरापं
हरेः प्रसादान्न च चित्रमेतत्।
तस्मिन् प्रसन्ने द्विजराजपत्रे
न दुर्लभं भक्तजनेषु किंचित्॥१००॥
सूर्यमण्डलमानात्तु द्विगुणं सोममण्डलम्।
पूर्णे शतसहस्रे द्वे तस्मान्नक्षत्रमण्डलम्॥१०१॥
द्वे लक्षेऽपि बुधस्यापि स्थानं नक्षत्रमण्डलात्।
तावत्प्रमाणभागे तु बुधस्याप्युशना स्थितः॥१०२॥
अङ्गारकोऽपि शुक्रस्य तावन्माने व्यवस्थितः।
लक्षद्वये तु भौमस्य स्थितो देवपुरोहितः॥१०३॥
सौरिर्बृहस्पतेश्चोर्ध्वं द्विलक्षे तु व्यवस्थितः।
तस्माच्छनैश्चरादूर्ध्वं लक्षे सप्तर्षिमण्डलम्॥१०४॥
सप्तर्षिमण्डलादूर्ध्वमेकलक्षे ध्रुवः स्थितः।
मेढीभूतः समस्तस्य ज्योतिश्चक्रस्य सत्तम॥१०५॥

इस प्रकार ध्रुव भगवान् विष्णुके प्रसादसे दुर्लभ पद पा गया—यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। उन गरुडध्वज भगवान्‌के प्रसन्न हो जानेपर भक्तोंके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं रह जाता। सूर्यमण्डलका जितना मान है, उससे दूना चन्द्रमण्डलका मान है। चन्द्रमण्डलसे पूरे दो लाख योजन दूर ऊपर नक्षत्रमण्डल है, नक्षत्रमण्डलसे दो लाख योजन ऊँचे बुधका स्थान है और बुधसे भी उतने ही दूरीपर शुक्रकी स्थिति है। शुक्रसे भी दो लाख योजन दूर मङ्गल हैं और मङ्गलसे दो लाख योजनपर देवपुरोहित बृहस्पतिका निवास है। बृहस्पतिसे भी दो लाख योजन ऊपर शनैश्चरका स्थान है। उन शनैश्चरसे दो लाख योजन ऊपर सप्तर्षियोंका मण्डल है। सप्तर्षिमण्डलसे एक लाख योजन ऊपर ध्रुव स्थित है। साधुशिरोमणे! यह समस्त ज्योतिर्मण्डलका केन्द्र है॥ १००–१०५॥

स्वभावात् तपति विप्रेन्द्र अधश्चोर्ध्वं च रश्मिभिः।
कालसंख्या त्रिलोकस्य स करोति युगे युगे॥१०६॥
जनस्तपस्तथा सत्यमेताल्लोकान् द्विजोत्तम।
ब्रह्मणा मुनिशार्दूल विष्णुभक्तिविवर्धितः॥१०७॥
ऊर्ध्वगतैर्द्विजश्रेष्ठ रश्मिभिस्तपते रविः।
अधोगतैश्च भूलोकं द्योतते दीर्घदीधितिः॥१०८॥

विप्रवर! सूर्यदेव स्वभावतः अपनी किरणोंद्वारा नीचे तथा ऊपरके लोकोंमें ताप पहुँचाते हैं। वे ही प्रत्येक युगमें त्रिभुवनकी कालसंख्या निश्चित करते हैं। द्विजोत्तम! मुनिश्रेष्ठ! ब्रह्माजीके द्वारा विष्णुभक्तिसे अभ्युदयको प्राप्त होकर सूर्य अपनी ऊर्ध्वगत किरणोंसे ऊपरके जन, तप तथा सत्य लोकोंमें गर्मी पहुँचाते हैं और अधोगत किरणोंसे भूलोकको प्रकाशित करते हैं॥ १०६–१०८॥

सर्वपापहरः सूर्यः कर्ता त्रिभुवनस्य च।
छत्रवत् प्रतिपश्येत मण्डलान्मण्डलं परम्॥१०९॥
आदित्यमण्डलाधस्ताद् भुवर्लोकः प्रतिष्ठितम्।
त्रैलोक्यस्येश्वरत्वं च विष्णुदत्तं शतक्रतोः॥११०॥
लोकपालैः स सहितो लोकान् रक्षति धर्मतः।
वसेत् स्वर्गं महाभाग देवेन्द्रः स तु कीर्तिमान्॥१११॥
ततोऽधस्तान्मुने चेद पातालं विद्धि सप्तमम्।
न तत्र तपते सूर्यो न रात्रिर्न निशाकरः॥११२॥
दिव्यस्वरूपमास्थाय तपन्ति सततं जनाः।
पातालस्था द्विजश्रेष्ठ दीप्यमानाः स्वतेजसा॥११३॥
स्वर्लोकात्तु महर्लोकः कोटिमात्रे व्यवस्थितः।
ततो योजनमात्रेण द्विगुणो मण्डलेन तु॥११४॥
जनलोकः स्थितो विप्र पञ्चमो मुनिसेवितः।
तत्रोपरि तपोलोकश्चतुर्भिः कोटिभिः स्थितः॥११५॥
सत्यलोकोऽष्टकोटीभिस्तपोलोकोपरि स्थितः।
सर्वे छत्राकृतिर्ज्ञेया भुवनोपरिसंस्थिता॥११६॥
ब्रह्मलोकाद्विष्णुलोको द्विगुणश्च व्यवस्थितः।
वाराहे तस्य माहात्म्यं कथितं लोकचिन्तकैः॥११७॥

ततः परं द्विजश्रेष्ठ स्थितः परमपूरुषः ।
ब्रह्माण्डात् परमः साक्षान्निर्लेपः पुरुषः स्थितः ॥११८॥
पशुपाशैर्विमुच्येत तपोज्ञानसमन्वितः ।

समस्त पापोंको हरनेवाले सूर्यदेव त्रिभुवनकी सृष्टि करते हैं। वे छत्रकी भाँति स्थित हो एक मण्डलसे दूसरे मण्डलको दर्शन देते और प्रकाशित करते हैं। सूर्यमण्डलके नीचे भुवर्लोक प्रतिष्ठित है। तीनों भुवनोंका आधिपत्य भगवान् विष्णुने शतक्रतु इन्द्रको दे रखा है। वे समस्त लोकपालोंके साथ धर्मपूर्वक लोकोंकी रक्षा करते हैं। महाभाग! वे यशस्वी देवेन्द्र स्वर्गलोकमें निवास करते हैं। मुने! इन सात लोकोंसे नीचे यह प्रभापूर्ण पाताल-लोक स्थित है, ऐसा आप जानें। वहाँ न सूर्यका ताप है, न चन्द्रमाका प्रकाश, [न दिन है] न रात। द्विजश्रेष्ठ! पातालवासी जन दिव्य रूप धारण करके सदा अपने तेजसे प्रकाशित होते हुए रहते हैं। स्वर्गलोकसे करोड़ योजन ऊपर महर्लोक स्थित है। हे विप्र! उससे दूने दो करोड़ योजनपर मुनिसेवित जनलोक, जो पाँचवाँ लोक है, स्थित है। उससे चार करोड़ योजन ऊपर तपोलोककी स्थिति है। तपोलोकसे ऊपर आठ करोड़ योजनपर सत्यलोक (ब्रह्मलोक) स्थित है। ये सभी भुवन एक-दूसरेके ऊपर छत्रकी भाँति स्थित हैं। ब्रह्मलोकसे सोलह करोड़ योजनपर विष्णुलोककी स्थिति है। लोकचिन्तकोंने वाराहपुराणमें उसके माहात्म्यका वर्णन किया है। द्विजश्रेष्ठ! इसके आगे परम पुरुषकी स्थिति है, जो ब्रह्माण्डसे विलक्षण साक्षात् परमात्मा हैं। इस प्रकार जाननेवाला मनुष्य तप और ज्ञानसे युक्त होकर पशुपाश (अविद्या-बन्धन) से मुक्त हो जाता है ॥ १०९–११८½ ॥

इति ते संस्थितिः प्रोक्ता भूगोलस्य मयानघ ।
यस्तु सम्यगिमां वेत्ति स याति परमां गतिम् ॥११९॥
लोकस्य संस्थानकरोऽप्रमेयो
विष्णुर्नृसिंहो नरदेवपूजितः ।
युगे युगे विष्णुरनादिमूर्तिमा-
नास्थाय विश्वं परिपाति दुष्टहा ॥१२०॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

अनघ! इस प्रकार मैंने तुम्हें भूगोलकी स्थिति बतलायी। जो पुरुष सम्यक् प्रकारसे इसका ज्ञान रखता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है। मनुष्यों और देवताओंसे पूजित नृसिंहस्वरूप अप्रमेय भगवान् विष्णु लोककी रक्षा करनेवाले हैं। वे अनादिमूर्तिमान् परमेश्वर प्रत्येक युगमें शरीर धारण कर दुष्टोंका वध करके विश्वका पालन करते हैं ॥ ११९-१२० ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें इकतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३१ ॥

बत्तीसवाँ अध्याय

सहस्रानीक-चरित्र, श्रीनृसिंह-पूजनका माहात्म्य

भरद्वाज उवाच

सहस्रानीकस्य हरेरवतारांश्च शार्ङ्गिणः ।
साम्प्रतं श्रोतुमिच्छामि तन्मे वद महामते ॥ १ ॥

भरद्वाजजी बोले—सूतजी! अब मैं सहस्रानीकका चरित्र और भगवान् विष्णुके अवतारोंकी कथा सुनना चाहता हूँ, महामते! कृपा करके यह मुझसे कहिये ॥ १ ॥

सूत उवाच

हन्त ते कथयिष्यामि चरितं तस्य धीमतः ।
सहस्रानीकस्य हरेरवतारांश्च मे शृणु ॥ २ ॥

सूतजीने कहा—ब्रह्मन्! बहुत अच्छा, अब मैं बुद्धिमान् सहस्रानीकके चरित्रका और भगवान्‌के अवतारोंका वर्णन करूँगा, सुनिये ॥ २ ॥

सहस्रानीकोऽभिषिक्तो निजराज्ये द्विजोत्तम ।
पालयामास धर्मेण राज्यं स तु नृपात्मजः ॥ ३ ॥
तस्य पालयतो राज्यं राजपुत्रस्य धीमतः ।
भक्तिर्बभूव देवेशे नरसिंहे सुरोत्तमे ॥ ४ ॥
तं द्रष्टुमागतः साक्षाद्विष्णुभक्तो भृगुः पुरा ।
अर्घ्यपाद्यासनै राजा तमभ्यर्च्याब्रवीदिदम् ॥ ५ ॥
पावितोऽहं मुनिश्रेष्ठ साम्प्रतं तव दर्शनात् ।
त्वद्दर्शनमपुण्यानां कलावस्मिन् ...

नरसिंह प्रतिष्ठाप्य देवदेव सनातनम् ।
आराधयितुमिच्छामि विधान तत्र मे वद ॥ ७ ॥
अवतारानशेषाश्च देवदेवस्य चक्रिण ।
श्रोतुमिच्छामि सकलास्तान् पुण्यानपि मे वद ॥ ८ ॥

राजकुमार सहस्रानीकको जब उत्तम ब्राह्मणोंने उसके राज्यपर अभिषिक्त कर दिया, तब वे धर्मपूर्वक राज्यका पालन करने लगे । राज्यके पालनमें लगे हुए बुद्धिमान् राजकुमारकी देवेश्वर, देवश्रेष्ठ भगवान् नृसिंहमें भक्ति हो गयी । पूर्वकालमें एक बार उन विष्णुभक्त नरेशका दर्शन करनेके लिये स्वय भृगुजी आये । राजाने अर्घ्य, पाद्य और आसनादिके द्वारा भृगुजीका सम्मान करके उनसे यह कहा— 'मुनिश्रेष्ठ ! इस समय मैं आपके दर्शनसे पवित्र हो गया । जिन्होंने पुण्य नहीं किया है, ऐसे मनुष्योंके लिये इस कलियुगमें आपका दर्शन परम दुर्लभ है । मैं सनातन देवदेव नरसिंहकी स्थापना करके उनकी आराधना करना चाहता हूँ; आप कृपया मुझे इसका विधान बतावें । तथा मैं देवदेव श्रीहरिके सम्पूर्ण अवतारोंको भी सुनना चाहता हूँ; अत आप उन सभी पुण्यावतारोंकी कथा मुझसे कहिये' ॥ ६–८ ॥

भृगुरुवाच

शृणु भूपालपुत्र त्वं न हि कश्चित् कलौ युगे ।
हरौ भक्तिं करोत्यत्र नृसिंहे चातिभक्तिमान् ॥ ९ ॥
स्वभावाद्यस्य भक्ति स्यान्नरसिंहे सुरोत्तमे ।
तस्यारय प्रणश्यन्ति कार्यसिद्धिश्च जायते ॥१०॥
त्वमतीव हरेर्भक्त पाण्डुवंशेऽपि सत्तम ।
तेन ते निखिलं वक्ष्ये शृणुष्वैकाग्रमानस ॥११॥

भृगुजी बोले—राजकुमार ! सुनो, इस कलियुगमें कोई भी भगवान् नृसिंहके प्रति अत्यन्त भक्तिभाव रखकर उनकी आराधना नहीं कर रहा है । इधर भगवान् नृसिंहमें जिसकी स्वभावत भक्ति हो जाती है, उसके सारे शत्रु नष्ट हो जाते हैं और उसे प्रत्येक कार्यमें सिद्धि प्राप्त होती है । इस पाण्डुवंशमें तुम ही श्रेष्ठ पुरुष और भगवान्‌के अत्यन्त भक्त हो । अत तुमसे मैं तुम्हारी पूछी हुई सब बातें बताऊँगा; एकाग्रचित्त होकर सुनो ॥ ९–११ ॥

य कुर्याच्छोभनं वेश्म नरसिंहस्य भक्तिमान् ।
स सर्वपापनिर्मुक्तो विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥१२॥
प्रतिमां लक्षणोपेतां नरसिंहस्य कारयेत् ।
स सर्वपापनिर्मुक्तो विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥१३॥
प्रतिष्ठां नरसिंहस्य य करोति यथाविधि ।
निष्कामो नरशार्दूल देहबन्धात् प्रमुच्यते ॥१४॥
नरसिंहं प्रतिष्ठाप्य य पूजामाचरेन्नर ।
तस्य कामा प्रसिध्यन्ति परमं पदमाप्नुयात् ॥१५॥
ब्रह्मादय सुरा सर्वे विष्णुमाराध्य ते पुरा ।
स्वं स्वं पदमनुप्राप्ता केशवस्य प्रसादत ॥१६॥
ये ये नृपवरा राजन् मांधातृप्रमुखा नृपा ।
ते ते विष्णुं समाराध्य स्वर्गलोकमितो गता ॥१७॥
यस्तु पूजयते नित्यं नरसिंहं सुरेश्वरम् ।
स स्वर्गमोक्षभागी स्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥१८॥
तस्मादेकमना भूत्वा यावज्जीवं प्रतिज्ञया ।
अर्चनान्नरसिंहस्य प्राप्स्यसे स्वाभिवाञ्छितम् ॥१९॥
विधिनत्स्थापयेद्यस्तु कारयित्वा जनार्दनम् ।
न तु निर्गमनं तस्य विष्णुलोकाद् भवेन्नृप ॥२०॥
नरो नृसिंह तमनन्तविक्रमं
सुरासुरैरर्चितपादपङ्कजम् ।
संस्थाप्य भक्त्या विधिवच्च पूजयेत्
प्रयाति साक्षात् परमेश्वरं हरिम् ॥२१॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे सहस्रानीकचरिते द्वात्रिंशोऽध्याय ॥ ३२ ॥

जो भक्तिपूर्वक नृसिंहदेवका सुन्दर मन्दिर निर्माण कराता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर भगवान् विष्णुके लोकमें स्थान पाता है । जो भगवान् नृसिंहकी सुन्दर लक्षणोंसे युक्त प्रतिमा बनवाता है, वह सब पापोंसे छुटकारा पाकर विष्णुलोकको जाता है । नृपश्रेष्ठ ! जो निष्कामभावसे नृसिंहदेवकी विधिवत् प्रतिष्ठा करता है, वह देहके बन्धनसे मुक्त हो जाता है । जो भगवान् नृसिंहकी स्थापना करके सदा उनकी पूजा करता है, उसके सब मनोरथ पूर्ण होते हैं तथा वह परम पदको प्राप्त कर लेता है । ब्रह्मा आदि सभी देवता पूर्वकालमें भगवान् विष्णुकी आराधना करके उन्हींके प्रसादसे अपने-अपने लोकको प्राप्त हुए थे । राजन् ! मांधाता आदि जो जो प्रधान नरेश हो गये हैं, वे सभी

भगवान् विष्णुकी आराधना करके यहाँसे स्वर्गलोकको चले गये। जो सुरेश्वर नृसिंहका प्रतिदिन पूजन करता है, वह स्वर्ग और मोक्षका भागी होता है—इसमें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। इसलिये तुम भी प्रतिज्ञापूर्वक एकचित्त होकर, जीवनपर्यन्त भगवान् नृसिंहकी पूजा करते हुए अपना मनोरथ प्राप्त करोगे। नृप! जो भगवान् जनार्दनकी प्रतिमा बनवाकर विधिवत् उसकी स्थापना करता है, उसका विष्णुलोकसे कभी निष्क्रमण नहीं होता। यदि मनुष्य उन अनन्त विक्रमशाली भगवान् नरसिंहकी, जिनके चरण-कमलोंकी देवता तथा असुर, दोनों ही पूजा करते हैं, विधिवत् स्थापना करके भक्तिपूर्वक पूजा करे तो वह साक्षात् परमेश्वर भगवान् विष्णुको प्राप्त कर लेता है॥ १२–२१॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें सहस्रानीक चरित्रके अन्तर्गत बत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३२॥

तैंतीसवाँ अध्याय

भगवान्‌के मन्दिरमें झाड़ू देने और उसको लीपनेका महान् फल—राजा जयध्वजकी कथा

राजोवाच

हरेरर्चाविधिं पुण्यं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः।
तत्प्रसादाद्विशेषेण भगवन् प्रब्रवीहि मे॥ १॥
सम्मार्जनकरो यश्च नरसिंहस्य मन्दिरे।
यत्पुण्यं लभते तद्वदुपलेपनकृन्नरः॥ २॥
शुद्धोदकेन यत्पुण्यं स्नापिते केशवे भवेत्।
क्षीरस्नानेन यत्पुण्यं दध्ना च मधुना तथा।
घृतस्नानेन यत्पुण्यं पञ्चगव्येन यद् भवेत्॥ ३॥
क्षालिते चोष्णतोयेन प्रतिमायां च भक्तितः।
कर्पूरागुरुतोयेन मिश्रेण स्नापितेन च॥ ४॥
अर्घ्यदानेन यत्पुण्यं पाद्याचमनदानके।
मन्त्रेण स्नापिते यच्च वस्त्रदानेन यद्भवेत्॥ ५॥

राजा बोले—भगवन्! मैं आपके प्रसादसे भगवान्‌के पूजनकी पावन विधिको विशेषरूपसे यथावत् सुनना चाहता हूँ, कृपया आप मुझे विस्तारसे बतायें। भगवान् नृसिंहके मन्दिरमें जो झाड़ू देता है वह, तथा जो उसे लीपता-पोतता है, वह पुरुष किस पुण्यको प्राप्त करता है? केशवको शुद्ध जलसे स्नान करानेपर कौन-सा पुण्य प्राप्त होता है तथा दूध, दही, मधु, घी एवं पञ्चगव्यद्वारा स्नान करानेसे क्या पुण्य होता है? भगवान्‌की प्रतिमाको गर्म जलसे भक्तिपूर्वक स्नान करानेपर तथा कपूर और अगर मिले हुए जलसे स्नान करानेपर कौन-सा पुण्य प्राप्त होता है? भगवान्‌को अर्घ्य देनेसे, पाद्य और आचमन अर्पण करनेसे, मन्त्रोच्चारणपूर्वक नहलानेसे और वस्त्र-दान करनेसे क्या पुण्य होता है?॥ १–५॥

श्रीखण्डकुङ्कुमाभ्यां तु अर्चिते किं फलं भवेत्।
पुष्पैरभ्यर्चिते यच्च यत्फलं धूपदीपयोः॥ ६॥
नैवेद्यैर्यत्फलं प्रोक्तं प्रदक्षिणकृते तु यत्।
नमस्कारकृते यच्च फलं यत्स्तोत्रगीतयोः॥ ७॥
तालवृन्तप्रदानेन चामरस्य च यद्भवेत्।
ध्वजप्रदाने यद्विष्णोः शङ्खदानेन यद्भवेत्॥ ८॥
एतच्चान्यच्च यत्किंचिदज्ञानान्न प्रचोदितम्।
तत्सर्वं कथय ब्रह्मन् भक्तस्य मम केशवे॥ ९॥

चन्दन और केसरद्वारा पूजा करनेपर तथा फूलोंसे पूजा करनेपर क्या फल होता है? तथा धूप और दीप देनेका क्या फल है? नैवेद्य निवेदन करनेका और प्रदक्षिणा करनेका क्या फल है? इसी प्रकार नमस्कार करनेसे एवं स्तुति और यशोगान करनेसे कौन-सा फल प्राप्त होता है? भगवान् विष्णुके लिये पंखा दान करने, चँवर प्रदान करने, ध्वजारा दान करने और शङ्ख दान करनेसे क्या फल होता है? ब्रह्मन्! मैंने जो कुछ पूछा है, वह तथा अज्ञानवश मैंने जो नहीं पूछा है, वह सब भी मुझसे कहिये, क्योंकि भगवान् केशवके प्रति मेरी हार्दिक भक्ति है॥ ६–९॥

सूत उवाच

इति सम्प्रेरितो विप्रस्तेन राज्ञा भृगुस्तदा।
मार्कण्डेयं नियुज्याथ कथने स गतो मुनिः॥ १०॥
सोऽपि तस्मिन् मुदायुक्तो हरिभक्त्या विशेषतः।
राज्ञे प्रवक्तुमारेभे भृगुणा चोदितो मुनिः॥ ११॥

सूतजी बोले—राजाके इस प्रकार पूछनेपर वे ब्रह्मर्षि

भृगुमुनि मार्कण्डेयजीको उत्तर देनेके लिये नियुक्त करके स्वयं चले गये। भृगुजीकी प्रेरणासे मुनिवर मार्कण्डेयजीने राजापर उनकी हरिभक्तिसे विशेष प्रसन्न होकर उनके प्रति इस प्रकार कहना आरम्भ किया ॥ १०-११ ॥

मार्कण्डेय उवाच

राजपुत्र शृणुष्वेदं हरिपूजाविधिं क्रमात्।
विष्णुभक्तस्य वक्ष्यामि तवाहं पाण्डुवंशज ॥१२॥
नरसिंहस्य नित्यं च यः सम्मार्जनमारभेत्।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके स मोदते ॥१३॥
गोमयेन मृदा तोयैर्यः करोत्युपलेपनम्।
स चाक्षयफलं प्राप्य विष्णुलोके महीयते ॥१४॥
अत्रार्थे यत्पुरावृत्तमितिहासं पुरातनम्।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुक्तिर्भवति सत्तम ॥१५॥

मार्कण्डेयजी बोले—पाण्डुकुलनन्दन राजकुमार! भगवान् विष्णुकी इस पूजा-विधिको क्रमशः सुनो, तुम विष्णुके भक्त हो, अतः मैं तुम्हें यह सब बताऊँगा। जो भगवान् नरसिंहके मन्दिरमें नित्य झाड़ू लगाता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकमें आनन्दित होता है। जो गोबर, मिट्टी तथा जलसे वहाँकी भूमि लीपता है, वह अक्षय फल प्राप्त करके विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। सत्तम! इस विषयमें एक प्राचीन सत्य इतिहास है, जिसे सुननेसे सब पापोंसे मुक्ति मिल जाती है॥१२–१५॥

पुरा युधिष्ठिरो राजा पञ्चभिर्भ्रातृभिर्युतः।
द्रौपद्या सह राजेन्द्र काननं विचचार ह ॥१६॥
शूलकण्टकनिष्क्रान्तास्ततस्ते पञ्च पाण्डवाः।
नारदोऽपि गतो नाकं दृष्ट्वैवं तीर्थमुत्तमम् ॥१७॥
ततो युधिष्ठिरो राजा प्रस्थितस्तीर्थमुत्तमम्।
दर्शनं मुनिमुख्यस्य तीर्थधर्मोपदेशिनः ॥१८॥
चिन्तयति च धर्मात्मा क्रोधपैशुन्यवर्जितः।
दानवो वहुरोमा च तथा स्थूलशिरा नृप ॥१९॥
पाण्डवान् गच्छतो वीक्ष्य दानवो द्रौपदीच्छया।
कृत्वा नृप मुने रूपं वहुरोमाऽऽगतस्तदा ॥२०॥
प्रणिधानं विधायाथ आसीनः कुशविष्टरे।
बिभ्रत् कमण्डलुं पार्श्वे दर्भवर्त्तीं तथा करे ॥२१॥
अक्षमालां जपन्मन्त्रं स्वनासाग्रं निरीक्षयन्।
स दृष्टः पाण्डवैस्तत्र रेवाया वनचारिभिः ॥२२॥

राजेन्द्र! पूर्वकालमें राजा युधिष्ठिर द्रौपदी तथा अपने पाँच भाइयोंके साथ वनमें विचरते थे। घूमते घूमते वे पाँचों पाण्डव शूल और कण्टकमय मार्गको पार करके एक उत्तम तीर्थकी ओर प्रस्थित हुए। उनके पहले भगवान् नारदजी भी उस उत्तम तीर्थका सेवन करके स्वर्गलोकको लौट गये थे। क्रोध और पिशुनतासे रहित धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर उस उत्तम तीर्थकी ओर प्रस्थान करके तीर्थधर्मका उपदेश करनेवाले किसी मुनिवरके दर्शनकी बात सोच रहे थे, इसी बीचमें वहुरोमा तथा स्थूलशिरा नामक दानव वहाँ आये। भूपाल! पाण्डवोंको जाते देख द्रौपदीका अपहरण करनेकी इच्छासे वहुरोमा नामक दानव मुनिका रूप धारण करके वहाँ आया। वह कुशासनपर बैठकर ध्यानमग्न हो गया। उसके पार्श्वमें कमण्डलु था और हाथमें उसने कुशकी पवित्री पहन रखी थी। वह नासिकाके अग्रभागका अवलोकन करता हुआ रुद्राक्षकी मालासे मन्त्र-जप कर रहा था। नर्मदा-तटवर्ती वनमें भ्रमण करते हुए पाण्डवोंने वहाँ उसे देखा ॥१६–२२॥

ततो युधिष्ठिरो राजा तं प्रणम्य सहानुजः।
जगाद वचनं दृष्ट्वा भाग्येनासि महामुने ॥२३॥
तीर्थानि रुद्रदेहाया सुगोप्यानि निवेदय।
मुनीनां दर्शनं नाथ श्रुतं धर्मोपदेशकम् ॥२४॥

तदनन्तर उसे देखकर राजा युधिष्ठिरने भाइयोंसहित प्रणाम करके उससे यह बात कही—"महामुने! भाग्यसे आप यहाँ विद्यमान हैं। इस 'रुद्रदेहा' (रेवा) के समीपवर्ती परम गोपनीय तीर्थोंको हमें बताइये। नाथ! हमने सुना है कि मुनियोंका दर्शन धर्मका उपदेश करनेवाला होता है॥ २३-२४॥

यावन्मुनिमुवाचेदं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः।
तावत्स्थूलशिरा प्राप्तो मुनिरूपधरोऽपरः ॥२५॥
जल्पन्नित्यातुरं वाक्यं को नामास्त्यत्र रक्षकः।
भयातुरं नरो जीवं यो रक्षेच्छरणागतम् ॥२६॥
तस्यानन्तफलं स्याद्वै किं पुनर्मां द्विजोत्तमम्।
मत्कृतो मेदिनीदानं मेरुभूधरदक्षिणम् ॥२७॥

अन्यतो ह्यार्तजीवानां प्राणसंशयवारणम् ।
द्विजं धेनुं स्त्रियं बालं पीड्यमानं च दुर्जनैः ॥२८॥
उपेक्षेत नरो यस्तु स च गच्छति रौरवम् ।
अथ मां हृतसर्वस्वं प्राणत्यागपरायणम् ॥२९॥
को रक्षति नरो वीर पराभूतं हि दानवैः ।
गृहीत्वा चाक्षमालां मे तथा शुभकमण्डलुम् ॥३०॥
निहतोऽहं कराघातैस्तथा खाटो मनोहरः ।
गृहीतं मम सर्वस्वं दानवेन दुरात्मना ॥३१॥

धर्मपुत्र युधिष्ठिर जबतक उस मायावी मुनिसे बात कर रहे थे, तबतक ही स्थूलशिरा नामक दूसरा दानव मुनिरूप धारण किये वहाँ आ पहुँचा। वह बड़े ही आतुरभावसे इस प्रकार पुकार रहा था—'अहो! यहाँ कौन हमारी रक्षा करनेवाला है? जो मनुष्य शरणमें आये हुए किसी भी भय-पीड़ितकी रक्षा करता है, वह अनन्त पुण्यफलका भागी होता है, फिर जो मुझ उत्तम ब्राह्मणकी रक्षा करेगा, उसके पुण्य फलका तो कहना ही क्या है। एक ओर मेरुपर्वतकी दक्षिणापूर्वक सम्पूर्ण पृथिवीका दान और दूसरी ओर पीड़ित प्राणियोंके प्राण-संकटका निवारण—दोनों बराबर हैं। जो पुरुष दुर्जनोंद्वारा सताये जाते हुए ब्राह्मण, गौ, स्त्री और बालकोंकी उपेक्षा करता है, वह रौरव नरकमें पड़ता है। मेरा सर्वस्व लूट लिया गया है। मैं दानवोंसे अपमानित होकर प्राण त्याग देनेको उद्यत हूँ। इस समय कौन ऐसा वीर पुरुष है, जो मेरी रक्षा कर सके? दुष्ट दानवने मेरी स्फटिककी माला, सुन्दर कमण्डलु और मनोहर खाट छीनकर मुझे थप्पड़से मारा है और सर्वस्व लूट लिया है' ॥ २५—३१ ॥

इत्याकर्ण्य वचः क्लीव पाण्डवा जातसम्भ्रमाः ।
यान्ति रोमाञ्चिता भूयो विधायाग्निं च तं मुनिम् ॥३२॥
विमुच्य द्रौपदीं तत्र मुनेः पार्श्वे महात्मनः ।
ततो दूरतरं प्राप्ताः सम्भ्रान्ते च पाण्डवाः ॥३३॥

इस प्रकारके कातर वचन सुनकर पाण्डव हड़बड़ा गये। वे रोमाञ्चित हो, आग जलाकर उस मुनिके पीछे चले। द्रौपदीको उन लोगोंने पहलेवाले महात्मा मुनिके पास ही छोड़ दिया और स्वयं रोषसे भरकर वहाँसे बहुत दूर निकल गये ॥ ३२-३३ ॥

ततो युधिष्ठिरोऽवोचत् किं च नो नात्र दृश्यते ।
कृष्णाभिरक्षणार्थाय व्रज व्यावर्त्य चार्जुन ॥३४॥
ततोऽर्जुनो विनिष्क्रान्तो बन्धुवाक्यप्रणोदितः ।
ततो युधिष्ठिरो राजा सत्यां वाचमकल्पयत् ॥३५॥
निरीक्ष्य मण्डलं भानोस्तदा सुगहने वने ।
मम सत्याच्च सुकृताद् धर्मसम्भाषणात् प्रभो ॥३६॥
तथ्यं शसन्तु त्रिदशा मम संशयभाजिनः ।

तदनन्तर युधिष्ठिरने कहा—हमें तो यहाँ कुछ भी दिखायी नहीं देता। अर्जुन! तुम द्रौपदीकी रक्षाके लिये यहाँसे लौट जाओ। तब भाईके वचनसे प्रेरित होकर अर्जुन वहाँसे चल दिये। राजन्! फिर राजा युधिष्ठिरने उस गहन वनके भीतर सूर्यमण्डलकी ओर देखकर यह सत्य वचन कहा—'मेरी सत्यवादिता, पुण्यकर्म तथा धर्मपूर्वक भाषण करनेसे संतुष्ट होकर देवगण संशयमें पड़े हुए मुझको सत्य बात बतला दें' ॥ ३४—३६½ ॥

ततोऽम्बरेऽभवद्वाणी तदा भूपाशरीरिणी ॥३७॥
दानवोऽयं महाराज मुनिः स्थूलशिराः स्थितः ।
नास्त्युपद्रुतः केन मायैषास्य दुरात्मनः ॥३८॥

राजन्! युधिष्ठिरके यों कहनेपर आकाशमें इस प्रकारका शब्द हुआ, यद्यपि वहाँ बोलनेवाला कोई व्यक्ति नहीं था—'महाराज! यह [जो आपके पास खड़ा है, वह मुनि नहीं] दानव है। 'स्थूलशिरा' नामक मुनि तो सुखपूर्वक हैं, उनपर किसीके द्वारा कोई उपद्रव नहीं है। यह तो इस दुष्टकी माया है' ॥ ३७-३८ ॥

ततो भीमः कराघातैर्नश्यमानं हि दानवम् ।
संरम्भात्कुपितोऽत्यर्थं मौलिदेशे जघान तम् ॥३९॥
सोऽपि रूपं निजं प्राप्य रौद्रं भीममताडयत् ।
तत्र युद्धं प्रववृते दारुणं भीमदैत्ययोः ॥४०॥
कण्ठाद्भङ्क्त्वा भीमोऽपि तस्य स्थूलं शिरो वने ।

तब भीमने अत्यन्त क्रोधसे युक्त हो उस भागते हुए दानवके मस्तकपर बड़े वेगसे मुष्टिप्रहार किया। फिर तो दानवने भी अपना रौद्ररूप धारण किया और भीमसेनको मुक्का मारा। इस प्रकार भीम और दानवमें वहाँ दारुण संग्राम छिड़ गया। भीमने उस वनमें बड़े कष्टसे उसके स्थूल मस्तकका छेदन किया ॥ ३९-४०½ ॥

अर्जुनोऽपि समायातो नैव पश्यति तं मुनिम् ॥४१॥
तथा च द्रौपदीं भूप साध्वीं कान्तां च वल्लभाम् ।
ततो वृक्ष समारुह्य यावत्पश्यति चार्जुनः ॥४२॥
तावद्विधाय तां स्कन्धे शीघ्रं धावति दानवः ।
सहसा याति दुष्टेन रुदती कुररी यथा ॥४३॥
कुर्वती भीमभीमेति धर्मपुत्रेति वादिनी ।
तां दृष्ट्वा स ययौ वीरः शब्दैः सनादयन् दिशः ॥
पादन्यासोरुवेगेन प्रभग्नाः पादपा भृशम् ।
ततो दैत्योऽपि तां तन्वीं विहायाशु पलायितः ॥४५॥
तथापि चार्जुनो तस्य कोपान्मुञ्चति नासुरम् ।
पतितो मेदिनीपृष्ठे तावदेव चतुर्भुजः ॥४६॥
पीते च वाससी बिभ्रत् शङ्खचक्रायुधानि च ।
ततः स विस्मयाक्रान्तो नत्वा पार्थो वचोऽवदत् ॥४७॥

इधर, अर्जुन भी जब मुनिके आश्रमपर पहुँचे, तब वहाँ उन्हें न तो वह मुनि दिखायी दिया और न प्राणप्रिया साध्वी भार्या द्रौपदी ही दीख पड़ी। तब अर्जुनने वृक्षपर चढ़कर ज्यों ही इधर उधर दृष्टि डाली, त्यों ही देखा कि एक दानव द्रौपदीको अपने कंधेपर बिठाकर बड़ी शीघ्रतासे भागा जा रहा है और उस दुष्टके द्वारा हरी गयी द्रौपदी कुररीकी भाँति 'हा धर्मपुत्र! हा भीम!' इत्यादि रटती हुई विलाप कर रही है। द्रौपदीको उस अवस्थामें देखकर वीर अर्जुन अपनी आवाजसे दिशाओंको गुँजाते हुए चले। उस समय उनके बड़े वेगसे पैर रखनेके कारण अनेकानेक वृक्ष गिर गये। तब वह दैत्य भी उस तन्वङ्गीको छोड़कर अकेला ही वेगसे भागा, तथापि अर्जुनने क्रोधके कारण उस असुरका पीछा न छोड़ा। भागते भागते वह दानव एक जगह पृथ्वीपर गिर पड़ा और गिरते ही चार भुजाओंसे युक्त हो, शङ्ख चक्र आदि धारण किये पीताम्बरधारी विष्णुके रूपमें दीख पड़ा। तब कुन्तीनन्दन अर्जुन बड़े ही विस्मित हुए और प्रणाम करके बोले ॥ ४१-४७ ॥

अर्जुन उवाच

कथं कृतेयं भगवंस्त्वया मायात्र वैष्णवी ।
मयाप्यपकृतं नाथ तत्क्षमस्व नमोऽस्तु ते ॥४८॥
नूनमज्ञानभावेन कर्मैतद्दारुणं मया ।
तत्क्षन्तव्यं जगन्नाथ चैतन्यं मानवे कुतः ॥४९॥

अर्जुनने कहा—भगवन्! आपने यहाँ वैष्णवी माया कहाँ फैला रखी थी? मैंने भी जो आपका अपकार किया है, उसके लिये हे नाथ! मेरे अपराधको क्षमा करें, आपको नमस्कार है। हे जगन्नाथ! अज्ञानके कारण ही मैंने यह दारुण कर्म किया है, इसलिये इसे क्षमा कर दें। भला, एक साधारण मनुष्यमें इतनी समझ कहाँ हो सकती है, जिससे आपको अन्य वेषमें भी पहचान ले ॥ ४८-४९ ॥

चतुर्भुज उवाच

नाहं कृष्णो महाबाहो वहुरोमास्मि दानवः ।
उपयातो हरेर्देहं पूर्वकर्मप्रभावतः ॥५०॥

चतुर्भुज बोला—महाबाहो! मैं विष्णु नहीं, वहुरोमा नामक दानव हूँ। मैंने अपने पूर्वकर्मके प्रभावसे भगवान् विष्णुका सारूप्य प्राप्त किया है ॥ ५० ॥

अर्जुन उवाच

वहुरोमन् पूर्वजातिं कर्म मे शंस तत्त्वतः ।
केन कर्मविपाकेन विष्णोः सारूप्यमाप्तवान् ॥५१॥

अर्जुन बोले—वहुरोमन्! तुम अपने पूर्वजन्म और कर्मका ठीक-ठीक वर्णन करो। तुमने किस कर्मके परिणाममें विष्णुका सारूप्य प्राप्त किया है? ॥ ५१ ॥

चतुर्भुज उवाच

शृण्वर्जुन महाभाग सहितो भ्रातृभिर्मम ।
चरितं चित्रमत्यर्थं शृण्वतां मुदवर्धनम् ॥५२॥
अहमासं पुरा राजा सोमवंशसमुद्भवः ।
जयध्वज इति ख्यातो नारायणपरायणः ॥५३॥
विष्णोर्देवालये नित्यं सम्मार्जनपरायणः ।
उपलेपरतश्चैव दीपदाने समुद्यतः ॥५४॥
वीतिहोत्र इति ख्यात आसीत् साधुपुरोहितः ।
मम तच्चरितं दृष्ट्वा विप्रो विस्मयमागतः ॥५५॥

चतुर्भुज बोला—महाभाग अर्जुन! आप भाइयोंके साथ मेरे अत्यन्त विचित्र चरित्रको सुनिये, जो सुननेवालोंके आनन्दको बढ़ानेवाला है। मैं पूर्वजन्ममें चन्द्रवंशमें उत्पन्न जयध्वज नामक विष्णुभक्त राजा था। उस समय सदा ही मैं भगवान् नारायणके भजनमें लगा रहता और उनके मन्दिरमें झाड़ू लगाया करता था। प्रतिदिन उस मन्दिरको लीपता और [रात्रिमें] वहाँ दीप जलाया करता था। उन दिनों वीती

...त नामक एक साधु ब्राह्मण मेरे यहाँ पुरोहित थे । प्रभो ! मैं इस कार्यको देखकर बहुत विस्मित हुए ॥ ५२-५५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

कदाचिदुपविष्टं तं राजानं विष्णुतत्परम् ।
पप्रच्छ वीतिहोत्रस्तु वेदवेदाङ्गपारगः ॥५६॥
राजन् परमधर्मज्ञ हरिभक्तिपरायण ।
विष्णुभक्तिमतां पुंसां श्रेष्ठोऽसि पुरुषर्षभ ॥५७॥
सम्मार्जनपरो नित्यमुपलेपरतस्तथा ।
तन्मे वद महाभाग त्वया किं विदितं फलम् ॥५८॥
कर्माण्यन्यानि सन्त्येव विष्णोः प्रियतराणि वै ।
तथापि त्वं महाभाग एतयोः सततोद्यतः ॥५९॥
सर्वात्मना महापुण्यं जनेश विदितं तव ।
तद्ब्रूहि यद्यगुह्यं च प्रीतिर्मयि तवास्ति चेत् ॥६०॥

मार्कण्डेयजी बोले—एक दिन वेद-वेदाङ्गोंके पूर्ण विद्वान् पुरोहित वीतिहोत्रजीने बैठे हुए उस विष्णुभक्त राजासे इस प्रकार प्रश्न किया—'परम धर्मज्ञ भूपाल ! हरिभक्तिपरायण नरश्रेष्ठ ! आप विष्णुभक्त पुरुषोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं; क्योंकि आप भगवान्‌के मन्दिरमें प्रतिदिन झाड़ू तथा लेप दिया करते हैं । अतः महाभाग ! आप मुझे बताइये कि भगवान्‌के मन्दिरमें झाड़ू देने और वहाँ लीपन पोतनेका कौन-सा उत्तम फल आप जानते हैं । यद्यपि भगवान्‌को अत्यन्त प्रिय लगनेवाले अन्य कर्म भी हैं ही, तथापि महाभाग ! आप इन्हीं दो कर्मोंमें सदा सर्वथा लगे रहते हैं । नरेश ! यदि आपको इनसे होनेवाला महान् पुण्यरूप फल ज्ञात हो और वह छिपाने योग्य न हो तथा यदि आपका मुझपर प्रेम हो तो अवश्य ही उस फलको मुझे बताइये' ॥ ५६-६० ॥

जयध्वज उवाच

शृणुष्व विप्रशार्दूल ममैव चरितं पुरा ॥६१॥
जातिस्मरत्वाज्जानामि श्रोतॄणां विस्मयावहम् ।
पूर्वजन्मनि विप्रेन्द्र रैवतो नाम ब्राह्मणः ॥६२॥
अयाज्ययाजकोऽहं वै सदैव ग्रामयाजकः ।
पिशुनो निष्ठुरश्चैव अपण्यानां च विक्रयी ॥६३॥
निषिद्धकर्माचरणात् परित्यक्तः स्वबन्धुभिः ।
महापापरतो नित्यं ब्रह्मद्वेषरतस्तथा ॥६४॥
परदारपरद्रव्यलोलुपो जन्तुहिंसकः ।
मद्यपानरतो नित्यं ब्रह्मद्वेषरतस्तथा ॥६५॥
एवं पापरतो नित्यं बहुशो मार्गरोधकृत् ।

जयध्वज बोले—विप्रवर ! इस विषयमें आप मेरा ही पूर्वजन्मका चरित्र सुनें । मुझे पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण है, इसीसे मैं सब जानता हूँ । मेरा चरित्र श्रोताओंको आश्चर्यमें डालनेवाला है । विप्रेन्द्र ! पूर्वजन्ममें मैं रैवत नामका ब्राह्मण था । जिनको यज्ञ करनेका अधिकार नहीं है, उनसे भी मैं सदा ही यज्ञ कराता था और अनेकों गाँवोंका पुरोहित था । इतना ही नहीं, मैं दूसरोंकी चुगली खानेवाला, निर्दय और नहीं बेचनेयोग्य वस्तुओंका विक्रय करनेवाला था । निषिद्ध कर्मोंका आचरण करनेके कारण मेरे बान्धवोंने मुझे त्याग दिया था । मैं महान् पापी और सदा ही ब्राह्मणोंसे द्वेष रखनेवाला था । परायी स्त्री और पराये धनका लोभी था, प्राणियोंकी हिंसा किया करता था । सदा ही मद्य पीता और ब्राह्मणोंसे द्वेष रखता था । इस प्रकार मैं प्रतिदिन पापमें लगा रहता और बहुधा लूटपाट भी करता था ॥ ६१-६५½ ॥

कदाचित् कामचारोऽहं गृहीत्वा ब्राह्मणाश्रयम् ॥६६॥
शून्यं पूजादिभिर्विष्णोर्मन्दिरं ग्रामवासिशि ।
स्ववस्त्रप्रान्ततो ब्रह्मन् कियद्देशः स मार्जितः ॥६७॥
प्रदीपः स्थापितस्तत्र सुरतार्थाद् द्विजोत्तम ।
तेनापि मम दुष्कर्म निःशेषं क्षयमागतम् ॥६८॥
एवं स्थिते विष्णुगृहे मया भोगेच्छया द्विज ।
तदैव दीपकं दृष्ट्वा आगता पुरपालकाः ॥६९॥
चौर्यार्थं परदूतोऽयमित्युक्त्वा मामपानयन् ।
खड्गेन तीक्ष्णधारेण शिरश्छित्त्वा च ते गताः ॥७०॥
दिव्यं विमानमारुह्य प्रभुदासमन्वितम् ।
गन्धर्वैर्गीयमानोऽहं स्वर्गलोकं तदा गतः ॥७१॥

एक दिन रातमें स्वेच्छाचारिताके कारण मैं कुछ ब्राह्मण पत्नियोंको पकड़कर एक सूने ठाकुर-मन्दिरमें ले गया । उस मन्दिरमें कभी पूजा नहीं होती थी । [वह ही गाँवके बाहर पड़ा रहता था ।] वहाँ विषयभोग करनेकी इच्छासे मैंने अपने वस्त्रके किनारेसे उस मन्दिरका कुछ भाग झाड़कर साफ किया और हे द्विजोत्तम ! [प्रकाशके लिये] दीप जलाकर रख दिया । [वहाँ मैंने अपनी पापमयी वासना पूर्ण करनेके ...

सूतजी बोले—मार्कण्डेयजीके उपर्युक्त वचन सुनकर पाण्डुवंशमें उत्पन्न राजा सहस्रानीक भगवान्‌के पूजनमें लग्न हो गये। इसलिये विप्रवृन्द! आपलोग यह सुन लें कि अविनाशी भगवान् नारायण जानकर अथवा अनजानमें भी पूजा करनेवाले अपने भक्तोंको मुक्ति प्रदान करते हैं। द्विजो! मैं यह बारंबार कहता हूँ कि यदि आप लोग दुस्तर भवसागरके पार जाना चाहते हैं तो भगवान् जगन्नाथकी पूजा करें। जो भक्त प्रणतजनोंका कष्ट दूर करनेवाले भगवान् विष्णुका पूजन करते हैं, वे वन्दनीय, पूजनीय और विशेषरूपसे नमस्कार करनेयोग्य हैं॥ ८२—८५॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणके अन्तर्गत सहस्रानीक-चरित्रके प्रसङ्गमें मार्कण्डेयमुनिद्वारा उपदिष्ट 'मन्दिरमें झाड़ू देने और उसके लीपनेकी महिमाका वर्णन' नामक तैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३३॥

चौंतीसवाँ अध्याय

भगवान् विष्णुके पूजनका फल

श्रीसहस्रानीक उवाच

पुनरेव द्विजश्रेष्ठ मार्कण्डेय महामते।
निर्माल्यापनयाद्विष्णोर्यत्पुण्यं तद्वदस्व मे॥ १॥

सहस्रानीकने पूछा—महामते द्विजवर मार्कण्डेयजी! अब पुनः यह बताइये कि भगवान् विष्णुके निर्माल्य (चन्दन पुष्प आदि) को हटानेसे कौन-सा पुण्य प्राप्त होता है॥ १॥

मार्कण्डेय उवाच

निर्माल्यमपनीयाथ तोयेन स्नाप्य केशवम्।
नरसिंहाकृतिं राजन् सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ २॥
सर्वतीर्थफलं प्राप्य यानारूढो दिवं व्रजेत्।
श्रीविष्णोः सदनं प्राप्य मोदते कालमक्षयम्॥ ३॥
आगच्छ नरसिंहेति आवाह्याक्षतपुष्पकैः।
एतावतापि राजेन्द्र सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ४॥
दत्त्वाऽऽसनमथार्घ्यं च पाद्यमाचमनीयकम्।
देवदेवस्य विधिना सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ५॥
स्नाप्य तोयेन पयसा नरसिंहं नराधिप।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते॥ ६॥
स्नाप्य दध्ना सकृद्यस्तु निर्मलः प्रियदर्शनः।
विष्णुलोकमवाप्नोति पूज्यमानः सुरोत्तमैः॥ ७॥
यः करोति हरेरर्चां मधुना स्नापयन्नरः।
अग्निलोके स मोदित्वा पुनर्विष्णुपुरे वसेत्॥ ८॥
घृतेन स्नपनं यस्तु स्नानकाले विशेषतः।
नरसिंहाकृते कुर्याच्छङ्खभेरीनिनादितम्॥ ९॥
पापकञ्चुकमुन्मुच्य यथा जीर्णामहिस्त्वचम्।
दिव्यं विमानमास्थाय विष्णुलोके महीयते॥ १०॥

मार्कण्डेयजी बोले—राजन्! नृसिंहस्वरूप भगवान् केशवको निर्माल्य हटाकर जलसे स्नान करानेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा सम्पूर्ण तीर्थोंके सेवनका फल प्राप्तकर, विमानपर आरूढ हो स्वर्गको चला जाता है और वहाँसे श्रीविष्णुधामको प्राप्त होकर अक्षयकालपर्यन्त आनन्दका उपभोग करता है। 'भगवन् नरसिंह! आप यहाँ पधारें'—इस प्रकार अक्षत और पुष्पोंद्वारा यदि भगवान्‌का आवाहन करे तो राजेन्द्र! इतनेसे भी वह मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। देवदेव नरसिंहको विधिपूर्वक आसन, पाद्य (पैर धोनेके लिये जल), अर्घ्य (हाथ धोनेके लिये जल) और आचमनीय (कुल्ला करनेके लिये जल) अर्पण करनेसे भी सब पापोंसे छुटकारा मिल जाता है। नराधिप! भगवान् नृसिंहको दूध और जलसे स्नान कराकर मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो एक बार भी भगवान्‌को दहीसे स्नान कराता है, वह निर्मल एवं सुन्दर शरीर धारणकर देवताओंसे पूजित होता हुआ विष्णुलोकको जाता है। जो मनुष्य मधुसे भगवान्‌को नहलाता हुआ उनकी पूजा करता है, वह अग्निलोकमें आनन्दोपभोग करके पुनः विष्णुपुर (वैकुण्ठधाम) में निवास करता है। जो स्नानकालमें श्रीनरसिंहके निमित्त शङ्ख और नगारेका शब्द कराते हुए विशेषरूपसे घीसे स्नान कराता है, वह पुराने केंचुलको छोड़नेवाले साँपकी भाँति पापरूपी कञ्चुकसे छूटकर, दिव्य विमानपर आरूढ हो, विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है॥ ९-१०॥

पञ्चगव्येन देवेशं य स्नापयति भक्तित ।
मन्त्रपूर्व महाराज तस्य पुण्यमनन्तकम् ॥१२॥
यश्च गोधूमकैश्चूर्णैरुद्वर्त्योष्णेन वारिणा ।
प्रक्षाल्य देवदेवेश वारुण लोकमाप्नुयात् ॥१२॥
पादपीठं तु यो भक्त्या बिल्वपत्रैर्निघर्षितम् ।
उष्णाम्बुना च प्रक्षाल्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१३॥
कुशपुष्पोदकैः स्नात्वा ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ।
रत्नोदकेन सावित्र कौवेर हेमवारिणा ।
नरसिंह तु सस्नाप्य कर्पूरागुरुवारिणा ॥१४॥
इन्द्रलोके स मोदित्वा पश्चाद्विष्णुपुरे वसेत ।
पुष्पोदकेन गोविन्द स्नाप्य भक्त्या नरोत्तम ॥१५॥
सावित्रं लोकमासाद्य विष्णुलोके महीयते ।
वस्त्राभ्यामर्चनं भक्त्या परिधाप्य हरिं हरे ॥१६॥
सोमलोके रमित्वा च विष्णुलोके महीयते ।

महाराज ! जो देवेश्वर भगवान्को भक्तिपूर्वक मन्त्रपाठ करते हुए पञ्चगव्यसे स्नान कराता है, उसका पुण्य अनन्त होता है । जो गेहूँके आटेसे देवदेवेश्वर भगवान्को उबटन लगाकर [illegible] उन्हें नहलाता है, वह वरुणलोकको प्राप्त होता है । [illegible] पादपीठ (पैर रखनेके पीढे) को [illegible] बिल्वपत्रसे [illegible] गरम जलसे धोता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है । कुश और पुष्पमिश्रित जलसे भगवान्को स्नान कराकर मनुष्य ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है, [illegible] जलसे स्नान करानेवाला [illegible] और सुवर्णयुक्त [illegible] कुबेरलोकको प्राप्त करता है । जो कपूर और अगुरुमिश्रित जलसे भगवान् नृसिंहको नहलाता है, वह पहले इन्द्रलोकमें सुखपूर्वक [illegible] फिर विष्णुधाममें निवास करता है । [illegible] पुरुषश्रेष्ठ [illegible] पवित्र जलसे गोविन्दको भक्तिपूर्वक स्नान कराता है, वह [illegible] प्राप्त करके पुनः विष्णुलोकमें पूजित होता है । जो भक्तिपूर्वक भगवान् श्रीहरिको [illegible] वस्त्र पहनाकर उनकी पूजा करता है, वह चन्द्रलोकमें सुख भोगकर फिर विष्णुधाममें सम्मानित होता है ॥ ११–१६½ ॥

कुङ्कुमागुरुश्रीखण्डकर्दमैरच्युतार्चितम् ॥१७॥
आलिप्य भक्त्या राजेन्द्र कल्पकोटिं वसेद्दिवि ।
मल्लिकामालतीजातिकेतकाशोकचम्पकैः ॥१८॥
पुन्नागनागबकुलैः पद्मैरुत्पलजातिभिः ।
तुलसीकरवीरैश्च पालाशैः मातुलुङ्गकैः ॥१९॥
एतैरन्यैश्च कुसुमैः प्रशस्तैरच्युतं नरः ।
अर्चयेद्दशसुवर्णस्य प्रत्येकं फलमाप्नुयात् ॥२०॥
मालां कृत्वा यथालाभमेतेषां विष्णुमर्चयेत् ।
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ॥२१॥
दिव्य विमानमास्थाय विष्णुलोके स मोदते ।
नरसिंह तु यो भक्त्या बिल्वपत्रैरखण्डितैः ॥२२॥
निश्छिद्रैः पूजयेद्यस्तु तुलसीभिः समन्वितम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वभूषणभूषित ॥२३॥
काञ्चनेन विमानेन विष्णुलोके महीयते ।

राजेन्द्र ! जो कुङ्कुम (केसर), अगुरु और चन्दन [illegible] अनुलेपनसे भगवान्के विग्रहको भक्तिपूर्वक अनुलिप्त करता है, वह करोड़ों कल्पोंतक स्वर्गलोकमें निवास करता है । जो मनुष्य मल्लिका, मालती, जूही, केतकी, अशोक, चम्पा, पुन्नाग, नागकेसर, बकुल (मौलसिरी) [illegible] आदि उत्तम पुष्प, [illegible] तथा अन्य उत्तम पुष्पोंसे भगवान्की पूजा करता है, वह प्रत्येक पुष्पके [illegible] दस सुवर्ण [illegible] फल प्राप्त करता है । जो यथाप्राप्त [illegible] माला बनाकर उससे भगवान् विष्णुकी पूजा करता है वह सैकड़ों और हजारों करोड़ कल्पोंतक दिव्य विमानपर आरूढ हो विष्णुलोकमें आनन्दित होता है । जो छिद्ररहित अखण्डित बिल्वपत्रों और तुलसीदलोंसे भक्तिपूर्वक भगवान् नृसिंहका पूजन करता है, वह [illegible] सर्वाभूषणोंसे भूषित हो सुवर्णमय विमानसे आरूढ हो [illegible] विष्णुलोकमें सम्मान पाता है ॥ १७–२३½ ॥

माहिषाख्यं गुग्गुलं च आज्ययुक्तं सशर्करम् ॥२४॥
धूपं ददाति राजेन्द्र नरसिंहस्य भक्तिमान् ।
धूपितः सर्वदिग्भ्यस्तु सर्वपापविवर्जितः ॥२५॥
अप्सरोगणसंकीर्णविमानेन विराजते ।
वायुलोके स मोदित्वा पश्चाद्विष्णुपुरं व्रजेत् ॥२६॥
घृतेन वाथ तैलेन दीपं प्रज्वालयेन्नरः ।
विष्णवे विधिवद्भक्त्या तस्य पुण्यफलं शृणु ॥२७॥

विहाय पापकलिलं सहस्रादित्यसप्रभः ।
ज्योतिष्मता विमानेन विष्णुलोकं स गच्छति ॥२८॥
हवि शाल्योदनं विद्वानाज्ययुक्तं सशर्करम् ।
नैवेद्यं नरसिंहाय यावकं पायसं तथा ॥२९॥
समास्तन्दुलसंख्याया यावतीस्तावतीर्नृप ।
विष्णुलोके महाभोगान् भुञ्जन्नास्ते स वैष्णवः ॥३०॥
तैलिना वैष्णवेनाथ तुष्टाः सन्तो दिवौकसः ।
शान्ति तस्य प्रयच्छन्ति श्रियमारोग्यमेव च ॥३१॥

राजेन्द्र ! जो माहिष गुग्गुल, घी और शक्करसे तैयार की हुई धूपको भगवान् नरसिंहके लिये भक्तिपूर्वक अर्पित करता है, वह सब दिशाओंमें धूप करनेसे पापसे रहित हो अप्सराओंसे पूर्ण विमानद्वारा विष्णुलोकमें विराजमान होता है और वहाँ आनन्दोपभोगके पश्चात् पुन विष्णुधाममें जाता है। जो मनुष्य विधिपूर्वक कार्तिक मास घी अथवा तेलसे भगवान् विष्णुके लिये दीप प्रज्वलित करता है, उस पुण्यका फल सुनिये। वह पाप-पङ्कसे मुक्त होकर हजारों सूर्यके समान कान्ति धारणकर ज्योतिर्मय विमानसे विष्णुलोकको जाता है। जो विद्वान् हविष्य, घी शक्करसे युक्त अगहनीका चावल, जौकी लपसी और खीर भगवान् नरसिंहको निवेदन करता है, वह वैष्णव चावलोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक विष्णुलोकमें महान् भोगोंका उपभोग करता है। भगवान् विष्णु तथा घी चढ़ानेसे सम्पूर्ण देवता तृप्त होकर उस करनेवालेको शान्ति, लक्ष्मी तथा आरोग्य प्रदान करते हैं ॥ २४–३१ ॥

प्रदक्षिणेन चैकेन देवदेवस्य भक्तितः ।
तेन यत्फलं नृणां तच्छृणुष्व नृपात्मज ॥३२॥
पृथ्वीप्रदक्षिणफलं प्राप्य विष्णुपुरे वसेत् ।
नमस्कारः कृतो येन भक्त्या वै माधवस्य च ॥३३॥
धर्मार्थकाममोक्षाख्यं फलं तेनाप्तमञ्जसा ।
स्तोत्रैर्जपैश्च देवाग्रे यः स्तौति मधुसूदनम् ॥३४॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ।
गानवाद्यादिकं नाट्यं शङ्खतूर्यादिनिःस्वनं ॥३५॥
कारयति वै विष्णोः स याति मन्दिरं नरः ।
पर्वकाले विशेषेण कामगः कामरूपवान् ॥३६॥

सुसंगीतविदैश्चैव सेव्यमानोऽप्सरोगणैः ।
महार्हमणिचित्रेण विमानेन विराजता ॥३७॥
स्वर्गात् स्वर्गमनुप्राप्य विष्णुलोके महीयते ।
ध्वजं तु विष्णवे यस्तु गरुडेन समन्वितम् ॥३८॥
दद्यात्सोऽपि ध्वजाकीर्णविमानेन विराजता ।
विष्णुलोकमवाप्नोति सेव्यमानोऽप्सरोगणैः ॥३९॥

राजकुमार ! भक्तिपूर्वक देवदेव विष्णुकी एक बार प्रदक्षिणा करनेसे मनुष्योंको जो फल मिलता है, उसे सुनिये। वह सारी पृथ्वीकी परिक्रमा करनेका फल प्राप्त करके वैकुण्ठ धाममें निवास करता है। जिसने कभी भक्तिभावसे भगवान् लक्ष्मीपतिको नमस्कार किया है, उसने अनायास ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप फल प्राप्त कर लिया। जो स्तोत्र और जपके द्वारा मधुसूदनकी उनके समक्ष होकर स्तुति करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकमें पूजित होता है। जो भगवान्के मन्दिरमें शङ्ख, तुरही आदि बाजोंके शब्दसे युक्त गाना-बजाना और नाटक कराता है, वह मनुष्य विष्णुधामको प्राप्त होता है। विशेषतः पर्वके समय उक्त उत्सव करनेसे मनुष्य कामरूप होकर सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त होता है और सुन्दर संगीत जाननेवाली अप्सराओंसे शोभायमान बहुमूल्य मणियोंसे जड़े हुए देदीप्यमान विमानके द्वारा एक स्वर्गसे दूसरे स्वर्गको प्राप्त होकर विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो भगवान् विष्णुके लिये गरुडचिह्नसे युक्त ध्वजा अर्पण करता है, वह भी ध्वजामण्डित जगमगाते हुए विमानपर आरूढ हो, अप्सराओंसे सेवित होकर विष्णुलोकको प्राप्त होता है ॥३२–३९ ॥

सुवर्णाभरणैर्दिव्यैर्हारकेयूरकुण्डलैः ।
मुकुटाभरणाद्यैश्च यो विष्णुं पूजयेन्नृप ॥४०॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वभूषणभूषितः ।
इन्द्रलोके वसेद्धीमान् यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥४१॥
यो गां पयस्विनीं विष्णोः कपिलां सम्प्रयच्छति।
आराध्य तमथाग्रे तु यत्किंचिद्द्रव्यमुत्तमम् ॥४२॥
तद्दत्त्वा नरसिंहाय विष्णुलोके महीयते ।
पितरस्तस्य मोदन्ते श्वेतद्वीपे चिरं नृप ॥४३॥
एवं यः पूजयेद्राजन् नरसिंहं नरोत्तमः ।
तस्य स्वर्गापवर्गौ तु भवतो नात्र संशयः ॥४४॥

नरेश्वर ! जो सुवर्णके बने हुए दिव्य हार, केयूर, कुण्डल और मुकुट आदि आभरणोंसे भगवान् विष्णुकी पूजा करता है, वह बुद्धिमान् सब पापोंसे मुक्त और सब आभूषणोंसे भूषित होकर जबतक चौदह इन्द्र राज्य करते हैं, तबतक (अर्थात् पूरे एक कल्पतक) इन्द्रलोकमें निवास करता है। जो विष्णुकी आराधना करके उनके लिये दुधार कपिला गौ दान करता है और उन भगवान् नृसिंहके समक्ष उसका उत्तम दूध थोड़ा-सा भी अर्पण करता है, वह विष्णुलोकमें सम्मानित होता है तथा राजन् ! उसके पितर चिरकालतक श्वेतद्वीपमें आनन्द भोगते हैं। भूपाल ! इस प्रकार जो नरश्रेष्ठ नरसिंह स्वरूप भगवान् विष्णुका पूजन करता है, उसे स्वर्ग और मोक्ष दोनों ही प्राप्त होते हैं, इसमें संशय नहीं है ॥४०-४४॥

यत्रैवं पूज्यते विष्णुर्नरसिंहो नरैर्नृप ।
न तत्र व्याधिदुर्भिक्षराजचौरादिकं भयम् ॥४५॥
नरसिंहं समाराध्य विधिनानेन माधवम् ।
नानास्वर्गसुखं भुक्त्वा न भूयः स्तनपो भवेत् ॥४६॥
नित्यं सर्पिस्तिलैर्होमो ग्रामे यस्मिन् प्रवर्तते ।
न भवेत्तस्य ग्रामस्य भयं वा तत्र कुत्रचित् ॥४७॥
अनावृष्टिर्महामारी रोगा नो दाहका नृप ।
नरसिंहं समाराध्य ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥४८॥
कारयेल्लक्षहोमं तु ग्रामे यत्र पुराधिप ।
कृते तस्मिन्यथोक्ते तु आगच्छति न तद्भयम् ॥४९॥
दृष्टोपसर्गमरणं प्रजानामात्मनश्च हि ।
सम्यगाराधनीयं तु नरसिंहस्य मन्दिरे ॥५०॥

नृप ! जहाँ मनुष्योंद्वारा इस प्रकार भगवान् नरसिंहका पूजन होता है, वहाँ रोग, अकाल और राजा तथा चोर आदिका भय नहीं होता। इस विधिसे लक्ष्मीपति नरसिंहकी आराधना करके मनुष्य नाना प्रकारके स्वर्गसुख भोगता है और पुनः [संसारमें जन्म लेकर] माताका दूध नहीं पीता — [वह मुक्त हो जाता है]। जिस गाँवमें [भगवान्‌के मन्दिरमें नित्य] प्रतिदिन घी और तिलसे होम होता है, उस गाँवमें अनावृष्टि, महामारी, रोग, दोष तथा अग्निदाह आदि किसी प्रकारका भय नहीं होता। जिस गाँवमें गाँवका स्वामी भय होनेपर वेदोंके पारगामी ब्राह्मणोंद्वारा नरसिंहकी आराधना कराकर एक लक्ष होम कराता है, वहाँ शास्त्रानुसार यह कार्य सम्पन्न होनेपर महामारी आदि भयका उदय नहीं होता। प्रजाओंका तथा अपने ऊपर मृत्युसूचक उपद्रवको देखकर भी उसे नहीं होता। इसलिये भगवान् नरसिंहके मन्दिरमें भली भाँति आराधना करनी चाहिये ॥४५-५०॥

शंकरायतने चापि कोटिहोमं नराधिप ।
कारयेत् सर्वतन्त्रज्ञैः सभोजनसदक्षिणैः ॥५१॥
कृते तस्मिन्नृपश्रेष्ठ नरसिंहप्रसादतः ।
उपसर्गादिमरणं प्रजानामुपशाम्यति ॥५२॥
दुःस्वप्नदर्शने घोरे ग्रहपीडासु चात्मनः ।
होमं च भोजनं चैव तस्य दोषः प्रणश्यति ॥५३॥
अयने विषुवे चैव चन्द्रसूर्यग्रहे तथा ।
नरसिंहं समाराध्य लक्षहोमं तु कारयेत् ॥५४॥
शान्तिर्भवति राजेन्द्र तस्य तत्स्थानवासिनाम् ।
एवमादिफलोपेतं नरसिंहार्चनं नृप ॥५५॥
कुरु त्वं भूपते पुत्र यदि वाञ्छसि सद्गतिम् ।
अतः परतरं नास्ति स्वर्गमोक्षफलप्रदम् ॥५६॥
नरेन्द्र सुकरं नृणां देवदेवस्य पूजनम् ।
सन्त्यरण्ये ह्यमूल्यानि पत्रपुष्पाणि शाखिनाम् ॥५७॥
तोयं नदीतडागेषु देवः साधारणः स्थितः ।
मनो नियमयेदेकं विधासाधनकर्मणि ॥५८॥
मनो नियमितं येन मुक्तिस्तस्य करे स्थिता ॥५९॥

नरेश ! इसी प्रकार शंकरजीके मन्दिरमें सर्वतन्त्रज्ञ ब्राह्मणोंके द्वारा उन्हें भोजन और दक्षिणा देकर एक करोड़की संख्यामें हवन कराना चाहिये। नृपश्रेष्ठ ! उसके करनेपर भगवान् नरसिंहके प्रसादसे प्रजावर्गका आकस्मिक उपद्रव तथा मृत्युभय शान्त हो जाता है। घोर दुःस्वप्न देखनेपर और अपने ऊपर ग्रहजन्य पीड़ा आनेपर होम और ब्राह्मण-भोजन करानेसे उसका दोष मिट जाता है। दक्षिणायन या उत्तरायण आरम्भ होनेपर, विषुव[1] योगमें, अथवा चन्द्रग्रहण तथा सूर्यग्रहण होनेपर भगवान् नरसिंहकी आराधना करके लक्षहोम कराना चाहिये। राजेन्द्र ! यों करनेसे उस स्थानके निवासियोंके लिये शान्ति हो जाती है। नरेश्वर ! भगवान् नरसिंहके पूजनसे ऐसे अनेकों फल हैं। भूपालनन्दन ! यदि तुम सद्गति चाहते हो तो नरसिंहका पूजन करो। इसके बराबर और भी कुछ ऐसा नहीं है, जो स्वर्ग और मोक्षरूप फल देनेवाला

[1] जिस दिन दिन-रात बराबर हों, वह विषुवकाल कहलाता है। ऐसा समय सालमें दो बार आता है।

है। देवदेव नृसिंहका पूजन राजाओंके लिये तो बहुत ही सुकर है। परंतु जो अरण्यमें रहते हैं, उन्हें भी भगवान्‌की पूजाके लिये वृक्षोंके पत्र पुष्प बिना मूल्य प्राप्त हो सकते हैं। जल नदी और तड़ाग आदिमें सुलभ है ही और भगवान् नृसिंह भी सबके लिये समान हैं, केवल उन उपासनाके साधनभूत कर्ममें मनकी एकाग्रता चाहिये। जिसने मनका नियमन कर लिया है, मुक्ति उसके हाथमें ही है॥ ५१—९॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्येवमुक्तं भृगुचोदितेन
मया तवेहार्चनमच्युतस्य।
दिने दिने त्वं कुरु विष्णुपूजां
वदस्व चान्यत्कथयामि किं ते॥६०॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे सहस्रानीकचरिते श्रीविष्णोः पूजाविधिर्नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३४॥

मार्कण्डेयजी बोले—इस प्रकार भृगुजीकी आज्ञासे मैंने तुमसे यहाँ भगवान् विष्णुके पूजनका वर्णन किया है। तुम प्रतिदिन भगवान् विष्णुका पूजन करो और बोलो, अब मैं तुम्हें और क्या बताऊँ?॥ ६०॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणके अन्तर्गत सहस्रानीक-चरित्रके प्रसङ्गमें 'श्रीविष्णुके पूजनकी विधि' नामक चौंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३४॥

पैंतीसवाँ अध्याय

लक्षहोम और कोटिहोमकी विधि तथा फल

राजोवाच

अहो महत्त्वया प्रोक्तं विष्ण्वाराधनजं फलम्।
सुप्तास्ते मुनिशार्दूल ये विष्णुं नार्चयन्ति वै॥ १॥
त्वत्प्रसादाच्छ्रुतं ह्येतन्नरसिंहार्चनक्रमम्।
भक्त्या तं पूजयिष्यामि कोटिहोमफलं वद॥ २॥

राजा बोले—अहो! आपने श्रीविष्णुकी आराधनासे होनेवाले बहुत बड़े फलका वर्णन किया। मुनिश्रेष्ठ! जो भगवान् विष्णुकी पूजा नहीं करते, वे अवश्य ही [मोहनिद्रामें] सोये हुए हैं। मैंने आपकी कृपासे भगवान् नृसिंहके पूजनका यह क्रम सुना; अब मैं भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करूँगा। आप कृपा करके [लक्षहोम तथा] कोटिहोमका फल बताइये॥ १-२॥

मार्कण्डेय उवाच

इममर्थं पुरा पृष्टः शौनको गुरुणा नृप।
यत्तस्मै कथयामास शौनकस्तद्वदामि ते॥ ३॥
शौनकं तु सुखासीनं पर्यपृच्छद् बृहस्पतिः।

मार्कण्डेयजी बोले—नृप! पूर्वकालमें इसी विषयको बृहस्पतिजीने शौनक ऋषिसे पूछा था, इसके उत्तरमें उनसे शौनकजीने जो कुछ बताया, वही मैं तुमसे कह रहा हूँ। सुखपूर्वक बैठे हुए शौनकजीसे बृहस्पतिजीने इस प्रकार प्रश्न किया॥ ३½॥

बृहस्पतिरुवाच

लक्षहोमस्य या भूमिः कोटिहोमस्य या शुभा॥ ४॥
तां मे कथय विप्रेन्द्र होमस्य चरितं विधिम्।

बृहस्पतिजी बोले—विप्रेन्द्र! लक्षहोम और कोटिहोमके लिये जो भूमि प्रशस्त हो, उसको मुझे बताइये और होम कर्मकी विधिका भी वर्णन कीजिये॥ ४½॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्तो गुरुणा सोऽथ लक्षहोमादिकं विधिम्॥ ५॥
शौनको वक्तुमारेभे यथावन्नृपसत्तम।

मार्कण्डेयजी बोले—नृपवर! बृहस्पतिजीके इस प्रकार कहनेपर शौनकजीने लक्षहोम आदिकी विधिका यथावत् वर्णन आरम्भ किया॥ ५½॥

शौनक उवाच

प्रवक्ष्यामि यथावत्ते शृणु देवपुरोहित॥ ६॥
लक्षहोममहाभूमिं तद्विशुद्धिं विशेषतः।
यज्ञकर्मणि शस्ताया भूमेर्लक्षणमुत्तमम्॥ ७॥

शौनकजी बोले—देवपुरोहित! मैं लक्षहोमके उपयुक्त विस्तृत भूमि और उसकी शुद्धिका विशेषरूपसे यथावत् वर्णन करूँगा, आप सुनें। यज्ञकर्मके लिये प्रशस्त भूमिका उत्तम लक्षण (संस्कार) इस प्रकार है॥ ६-७॥

सुसंस्कृतां समां स्निग्धां पूर्वपूर्वमथोत्तमाम् ।
ऊरुमात्रं खनित्वा च शोधयेत्तां विशेषतः ॥ ८ ॥
बहिरच्छतया तत्र मृदाच्छाद्य प्रलेपयेत् ।
प्रमाणं बाहुमात्रं तु सर्वतः कुण्डलक्षणम् ॥ ९ ॥
चतुरस्रं चतुष्कोणं तुल्यसूत्रेण कारयेत् ।
उपरि मेखलां कुर्याच्चतुरस्रां सुविस्तराम् ॥१०॥
चतुरङ्गुलमात्रं तु उच्छ्रितां सूत्रसूत्रिताम् ।

जो भूमि अच्छी तरह संस्कार की हुई हो, बराबर हो और चिकनी हो [ये सभी बातें हों तो परम उत्तम भूमि है, सभी बातें न संघटित हों तो] पूर्व-पूर्वकी भूमि उत्तम है। [अर्थात् चिकनीकी अपेक्षा बराबर भूमि अच्छी है और उससे भी सुसंस्कृत भूमि उत्तम है।] ऐसी उत्तम भूमिको ऊरु (कमर) पर्यन्त खोदकर उसका विशेषरूपसे [मलामल एवं पत्थर-अस्थ्यादि छिड़ककर] शोधन करे और कुण्डसे बाहर स्वच्छताके लिये मिट्टी [तथा गोबर] डालकर लिपाये। कुण्ड सब ओरसे एक हाथ लंबा और उतना ही चौड़ा होना चाहिये—यही कुण्डका लक्षण है। एक हाथका सूत लेकर उसीसे चार तरफ नापकर बराबर और चौकोर कुण्ड बनाना चाहिये। कुण्डके ऊपर सब ओरसे बराबर और खूब विस्तृत मेखला बनावे। उसकी ऊँचाई भी चार अंगुलकी ही हो और वह सूतसे परिमित हो ॥ ८–१०½ ॥

ब्राह्मणान् वेदसम्पन्नान् ब्रह्मकर्मसमन्वितान् ॥११॥
आमन्त्रयेद् यथान्यायं यजमानो विशेषतः ।
ब्रह्मचर्यव्रतं कुर्युस्त्रिरात्रं ते द्विजातयः ॥१२॥

इसके बाद यजमानको चाहिये कि वह ब्राह्मणोचित कर्मका पालन करनेवाले वेदवेत्ता ब्राह्मणोंको शास्त्रोक्त रीतिसे आमन्त्रित करे। यजमान और उन ब्राह्मणोंको तीन रातितक विशेषरूपसे ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करना चाहिये ॥ ११-१२ ॥

अहोरात्रमुपोष्याथ गायत्रीमयुतं जपेत् ।
ते शुक्लवाससः स्नाता गन्धस्रक्पुष्पधारिणः ॥१३॥
शुचयश्च निराहाराः सतुष्टा संयतेन्द्रियाः ।
कौशमासनमासीना एकाग्रमनसः पुनः ॥१४॥
आरभेयुश्च ते यत्नाद्धोमं सन्ततिका ।
भूमिमालिख्य चाभ्युक्ष्य यत्नादग्निं निधापयेत् ॥१५॥
गृह्योक्तेन विधानेन होमं तत्र च होमयेत् ।
आघारावाज्यभागौ च जुहुयात्पूर्वमेव तु ॥१६॥
यवधान्यतिलैर्मिश्रां गायत्र्या प्रथमाहुतिम् ।
जुहुयादेकचित्तेन स्वाहाकारान्वितां बुधः ॥१७॥
गायत्री छन्दसां माता ब्रह्मयोनिः प्रतिष्ठिता ।
सविता देवता तस्या विश्वामित्रस्तथा ऋषिः ॥१८॥

यजमान एक दिन और एक रात्रि उपवास करके दस हजार गायत्रीका जप करे। [हवन आरम्भ होनेके दिन] विप्रगण भी स्नान करके शुद्ध एवं श्वेत वस्त्र धारण करें। फिर गन्ध, पुष्प और माला धारण करके, पवित्र, संतुष्ट और जितेन्द्रिय होकर, भोजन किये बिना ही कुशके बने हुए आसनपर एकाग्रचित्त बैठें। तदनन्तर वे यत्नपूर्वक निरालस्यभावसे हवन आरम्भ करें। पहले गृह्यसूत्रोक्त विधिसे भूमिपर [कुशोंसे] रेखा करके उसे सींचे और वहाँ यत्नसे अग्नि-स्थापन करे। फिर उस अग्निमें हवनीय पदार्थोंका होम करे। पहले आघार और आज्यभाग—ये दो होम करने चाहिये। फिर बुद्धिमान् पुरुष जौ, चावल और तिल [एवं घृत आदिसे] मिश्रित प्रथम आहुतिका गायत्री-मन्त्रद्वारा [अन्तमें] स्वाहाके उच्चारणपूर्वक एकाग्रचित्तसे हवन करे। गायत्री छन्दोंकी माता और ब्रह्म(वेद)की योनिरूपसे प्रतिष्ठित है। उसके देवता सविता हैं, और ऋषि विश्वामित्रजी हैं। (इस प्रकार गायत्रीका विनियोग बताया गया।) ॥ १३–१८ ॥

ततो व्याहृतिभिः पश्चाज्जुहुयाच्च तिलान्वितम् ।
यावत्प्रपूर्यते संख्या लक्षं वा कोटिरेव वा ॥१९॥
तावद्धोमं तिलैः कुर्यादच्युतार्चनपूर्वकम् ।
दीनानाथजनेभ्यस्तु यजमानः प्रयत्नतः ॥२०॥
तावच्च भोजनं दद्याद् यावद्धोमं समाचरेत् ।
समाप्ते दक्षिणां दद्याद् ऋत्विग्भ्यः श्रद्धयान्वितः ॥२१॥
यथार्हतो न लोभेन ततः शान्त्युदकेन च ।
प्रोक्षयेद् ग्राममध्ये तु व्याधितांस्तु विशेषतः ॥२२॥
एवं कृते तु होमस्य पुरस्य नगरस्य च ।
राष्ट्रस्य च महाभाग राज्ञो जनपदस्य च ।
सर्वबाधाप्रशमनी शान्तिर्भवति सर्वदा ॥२३॥

नरेश्वर! इसके बाद श्रेष्ठ व्याहृति [भूर्भुवः स्वः—इन] तीन व्याहृतियोंके मन्त्रोंसे

घृतके तिलका हवन करे। जबतक हवनकी संख्या एक लाख या एक करोड़ न हो जाय, तबतक भगवान् विष्णुके पूजनपूर्वक तिलद्वारा हवन करते रहना चाहिये और जबतक हवन करे, तबतक यजमानको चाहिये कि वह यत्नपूर्वक दीनों और अनाथोंको भोजन दे। हवन समाप्त होनेपर ऋत्विजोंको श्रद्धापूर्वक लोभ त्यागकर यथोचित दक्षिणा दे। तत्पश्चात् [प्रथम स्थापित किये हुए] शान्ति-कलशके जलसे उस ग्राममें रहनेवाले सभी मनुष्यों— विशेषतः रोगियोंका अभिषेक करे। महाभाग! इस प्रकार विधिवत् होमका अनुष्ठान करनेपर पुर (गाँव), नगर, जनपद (प्रान्त) और समस्त राष्ट्रकी सारी बाधाओंको दूर करनेवाली शान्ति निरन्तर बनी रहती है॥ १९—२३॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्येतच्छौनकप्रोक्तं कथितं नृपनन्दन।
लक्षहोमादिकविधिं कार्यं राष्ट्रे सुशान्तिदम् ॥२४॥

ग्रामे गृहे वा पुरबाह्यदेशे
द्विजैरयं यत्नकृतः पुरोनिधिः।
तत्रापि शान्तिर्भविता नराणां
गवां च भृत्यैः सह भूपतेश्च ॥२५॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे लक्षहोमविधिर्नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—नृपनन्दन! इस प्रकार शौनक मुनिका बताया हुआ लक्षहोम विधिका अनुष्ठान, जो समस्त राष्ट्रमें शुभ शान्ति प्रदान करनेवाला है, मैंने तुम्हें बताया। यदि ब्राह्मणोंद्वारा यह पूर्वोक्त होम विधि ग्राममें, घरमें अथवा पुरके बाहर प्रयत्नपूर्वक करायी जाय तो वहाँ भी मनुष्योंको, गौओंको और अनुचरोंसहित राजाको पूर्णतया शान्ति प्राप्त हो सकती है॥ २४-२५॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'लक्षहोमविधिका वर्णन' नामक पैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३५॥

छत्तीसवाँ अध्याय

अवतार-कथाका उपक्रम

मार्कण्डेय उवाच

अवतारानहं वक्ष्ये देवदेवस्य चक्रिणः।
तान्शृणुष्व महीपाल पवित्रान् पापनाशनान्॥ १॥

मार्कण्डेयजी बोले—महीपाल! अब मैं देवदेव भगवान् विष्णुके पवित्र एवं पापनाशक अवतारोंका वर्णन करूँगा; उन्हें सुनो॥ १॥

यथा मत्स्येन रूपेण दत्ता वेदाः स्वयम्भुवे।
मधुकैटभौ च निधनं प्रापितौ च महात्मना॥ २॥
यथा कौर्मेण रूपेण विष्णुना मन्दरो धृतः।
यथा पृथ्वी धृता राजन् वाराहेण महात्मना॥ ३॥
तेनैव निधनं प्राप्तो यथा राजन् महाबलः।
हिरण्याक्षो महावीर्यो दितिपुत्रो महातनुः॥ ४॥
यथा हिरण्यकशिपुस्त्रिदशानामरिः पुरा।
नरसिंहेन देवेन प्रापितो निधनं नृप॥ ५॥
यथा बद्धो बलिः पूर्वं वामनेन महात्मना।
इन्द्रस्त्रिभुवनाध्यक्षः कृतस्तेन नृपात्मज॥ ६॥
रामेण भूत्वा च यथा विष्णुना रावणो हतः।
सगणाश्चाद्भुता राजन् राक्षसा देवकण्टकाः॥ ७॥
यथा परशुरामेण क्षत्रमुत्सादितं पुरा।
बलभद्रेण रामेण यथा दैत्यः पुरा हतः॥ ८॥
यथा कृष्णेन कंसाद्या हता दैत्याः सुरद्विषः।
कलौ प्राप्ते यथा बुद्धो भवेन्नारायणः प्रभुः॥ ९॥
कल्किरूपं समास्थाय यथा म्लेच्छा निपातिताः।
समाप्ते तु कलौ भूयस्तथा ते कथयाम्यहम्॥१०॥

महात्मा भगवान् विष्णुने जिस प्रकार मत्स्यरूप धारणकर [प्रलयकालीन समुद्रमें लोप हुए] वेद लाकर ब्रह्माजीको अर्पित किये और मधु तथा कैटभ नामक दैत्योंको मौतके घाट उतारा, फिर उन भगवान् विष्णुने जिस प्रकार कूर्मरूपसे मन्दराचल पर्वत धारण किया और महाकाय वराह अवतार लेकर [अपनी दाढ़ोंपर] इस पृथ्वीको उठाया तथा राजन्! उन्हींके हाथों जिस प्रकार महाबली, महापराक्रमी और महाकाय दितिकुमार हिरण्याक्ष मारा गया,

इति सचिन्त्य दुःखार्तो ब्रह्मा लोकपितामहः ।
यत्नतो वेदशास्त्राणि स्मरन्नपि न दृष्टवान् ॥११॥
ततो विषण्णचित्तस्तु त देवं पुरुषोत्तमम् ।
एकाग्रमनसा सम्यक् शास्त्रेण स्तोतुमारभत् ॥१२॥

राजन् ! भगवान् विष्णुने ब्रह्माजीसे कहा—'महामते ! तुम प्रजावर्गकी सृष्टि करो ।' यह सुन उन कमलोद्भव ब्रह्माजीने 'तथास्तु' कहकर भगवान् जगन्नाथकी आज्ञा स्वीकार कर ली तथा वेदों और शास्त्रोंकी सहायतासे वे ज्यों ही सृष्टि रचनाके लिये उद्यत हुए, त्यों ही उनके पास वे दोनों दैत्य—मधु और कैटभ आये । आते ही वे बलाभिमानी घोर दानव क्षणभरमें ब्रह्माजीके वेद और शास्त्र ज्ञानको लेकर चले गये । राजन् ! तब ब्रह्माजी एक ही क्षणमें ज्ञानशून्य हो दुःखी हो गये और सोचने लगे—"हाय ! अब मैं कैसे प्रजाकी सृष्टि करूँगा ? भगवान्ने मुझे आज्ञा दी कि 'तुम प्रजाकी सृष्टि करो ।' परंतु अब तो मैं सृष्टि विज्ञानसे रहित हो गया, अतः किस प्रकार सृष्टि-रचना करूँगा ? अहो ! मुझपर यह बहुत बड़ा कष्ट आ पहुँचा ।" लोकपितामह ब्रह्माजी इस प्रकार चिन्ता करते करते शोकसे कातर हो गये । वे प्रयत्न पूर्वक वेद शास्त्रोंका स्मरण करने लगे, तथापि उन्हें उनकी स्मृति नहीं हुई । तब वे मन-ही-मन अत्यन्त दुःखी हो, एकाग्रचित्तसे भगवान् पुरुषोत्तमकी शास्त्रानुकूल विधिसे स्तुति करने लगे ॥ ६–१२ ॥

ब्रह्मोवाच

ॐ नमो वेदनिधये शास्त्राणां निधये नमः ।
विज्ञाननिधये नित्यं कर्मणां निधये नमः ॥१३॥
विद्याधराय देवाय वागीशाय नमो नमः ।
अचिन्त्याय नमो नित्यं सर्वज्ञाय नमो नमः ॥१४॥
अमूर्तिस्त्वं महाबाहो यज्ञमूर्तिरधोक्षज ।
सामनां मूर्तिस्त्वमेवाद्य सर्वदा सर्वरूपवान् ॥१५॥
सर्वज्ञानमयोऽसि त्वं हृदि ज्ञानमयोऽच्युत ।
देहि मे त्वं सर्वज्ञानं देवदेव नमो नमः ॥१६॥

श्रीब्रह्माजी बोले—जो वेद, शास्त्र, विज्ञान और कर्मोंकी निधि हैं, उन ॐकार प्रतिपाद्य परमेश्वरको मेरा बार बार नमस्कार है । समस्त विद्याओंको धारण करनेवाले वागीश्वर भगवान्को प्रणाम है । अचिन्त्य एवं सर्वज्ञ परमेश्वरको नित्य बारबार नमस्कार है । महाबाहो ! अधोक्षज ! आप निराकार एवं यज्ञस्वरूप हैं । आप ही साममूर्ति एवं सदा सर्वरूपधारी हैं । अच्युत ! आप सर्वज्ञानमय हैं, आप सबके हृदयमें ज्ञानरूपसे विराजमान हैं । देवदेव ! आप मुझे सब प्रकारका ज्ञान दीजिये, आपको बारबार नमस्कार है ॥ १३–१६ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्थं स्तुतस्तदा तेन शङ्खचक्रगदाधरः ।
ब्रह्माणमाह देवेशो दास्ये ते ज्ञानमुत्तमम् ॥१७॥
इत्युक्त्वा तु तदा विष्णुश्चिन्तयामास पार्थिव ।
केनास्य नीतं विज्ञानं केन रूपेण चाद्य वै ॥१८॥
मधुकैटभकृतं सर्वमिति ज्ञात्वा जनार्दनः ।
मात्स्यं रूपं समास्थाय बहुयोजनमायतम् ।
बहुयोजनविस्तीर्णं सर्वज्ञानमयं नृप ॥१९॥
स प्रविश्य जलं तूर्णं क्षोभयामास तद्धरिः ।
प्रविश्य च स पातालं दृष्टवान्मधुकैटभौ ॥२०॥
तौ मोहयित्वा तुमुलं तज्ज्ञानं जगृहे हरिः ।
वेदशास्त्राणि मुनिभिः संस्तुतो मधुसूदनः ॥२१॥
आनीय ब्रह्मणे दत्त्वा त्यक्त्वा तन्मात्स्यकं नृप ।
जगद्धिताय स पुनर्योगनिद्रावशं गतः ॥२२॥

मार्कण्डेयजी बोले—ब्रह्माजीके इस प्रकार स्तुति करनेपर शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले देवेश्वर विष्णुने उनसे कहा—'मैं तुम्हें उत्तम ज्ञान प्रदान करूँगा ।' राजन् ! भगवान् विष्णु यों कहकर तब सोचने लगे—'कौन इसका विज्ञान हर ले गया और किस रूपसे उसने उसे धारण कर रखा है ?' भूपाल ! अन्तमें यह जानकर कि यह सब मधु और कैटभकी करतूत है, भगवान् जनार्दनने अनेकों योजन लंबा-चौड़ा पूर्णज्ञानमय मत्स्यरूप धारण किया । फिर मत्स्यरूपधारी हरिने तुरंत ही जलमें प्रविष्ट होकर उसे क्षुब्ध कर डाला और भीतर-ही भीतर पातालमें पहुँचकर मधु तथा कैटभको देखा । तब मुनियोंद्वारा स्तवन किये जानेपर भगवान् मधुसूदनने मधु और कैटभ—दोनोंको मोहितकर वह वेदशास्त्रमय ज्ञान ले लिया और उसे ला कर ब्रह्माजीको दे दिया । राजन् ! तत्पश्चात् वे भगवान् उस [illegible] त्यागकर जगत्के हितके लिये पुनः [illegible] गये ॥ १७–२२ ॥

ततः प्रबुद्धौ सक्रुद्धौ तावुभौ मधुकैटभौ ।
आगत्य ददृशाते तु शयानं देवमव्ययम् ॥२३॥
अयं स पुरुषो धूर्त आवां सम्मोह्य मायया ।
आनीय वेदशास्त्राणि दत्त्वा शेतेऽत्र साधुवत् ॥२४॥
इत्युक्त्वा तौ महाघोरौ दानवौ मधुकैटभौ ।
बोधयामासतुस्तूर्णं शयानं केशवं नृप ॥२५॥
युद्धार्थमागतावत्र त्वया सह महामते ।
आवयोर्देहि संग्रामं युध्यस्वोत्थाय साम्प्रतम् ॥२६॥

तदनन्तर भेद निद्रा टूटनेपर [वेद चुरानेवाले वे दैत्य] मधु तथा कैटभ—दोनों ही अत्यन्त कुपित हुए और वहाँसे आकर उन्होंने अविनाशी भगवान् विष्णुको सोते देखा । तब वे परस्पर कहने लगे—'यह वही धूर्त पुरुष है, जिसने हम दोनोंको माया (मोहित करके) वेद शास्त्रोंको ले आकर ब्रह्माको दे दिया और अब यहाँ साधुकी भाँति सो रहा है ।' राजन् ! यों कहकर उन महाघोर दानव मधु और कैटभने वहाँ सोये हुए भगवान् केशवको तत्काल जगाया और कहा—'महामते ! हम दोनों यहाँ तुम्हारे साथ युद्ध करने आये हैं, तुम हमें संग्रामकी भिक्षा दो और अभी उठकर हमसे युद्ध करो' ॥ २३—२६ ॥

इत्युक्तो भगवांस्ताभ्यां दैत्याभ्यां नृपोत्तम ।
तथेति चोक्त्वा तौ देवः शार्ङ्गं सज्यमधारयत् ॥२७॥
ज्याघोषतलघोषेण शङ्खशब्देन माधवः ।
स दिशः प्रदिशश्चैव पूरयामास लीलया ॥२८॥

नृपवर ! उनके इस प्रकार कहनेपर दैत्येन्द्र भगवानने 'बहुत अच्छा' कहकर अपने शार्ङ्ग धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी । उस समय भगवान् माधवने लीलापूर्वक धनुषकी टंकार और शङ्खनादसे अवान्तर दिशाओं और सम्पूर्ण दिशाओं (कोनों) को भर दिया ॥ २७-२८ ॥

तौ च राजन् महावीर्यौ ज्याघोषं चक्रतुस्तदा ।
युयुधाते महावीर्यौ हरिणा मधुकैटभौ ॥२९॥
कृष्णश्च युयुधे ताभ्यां लीलया जगतः पतिः ।
मम युद्धमभूद्देवे तेषामस्त्राणि मुञ्चताम् ॥३०॥
केशवः शार्ङ्गनिर्मुक्तैः शरैस्तानि विशेषतः ।
तानि शस्त्राणि मर्माणि निर्बिभेद निरस्तवान् ॥३१॥

तौ युद्ध्वा सुचिरं तेन दानवौ मधुकैटभौ ।
हतौ शार्ङ्गविनिर्मुक्तैः शरैः कृष्णेन दुर्मदौ ॥३२॥
तयोस्तु मेदसा राजन् विष्णुना कल्पिता मही ।
मेदिनीति ततः संज्ञामवापेयं वसुंधरा ॥३३॥

राजन् ! फिर उन महापराक्रमी महाबलवान् मधु और कैटभने भी उस समय अपनी प्रत्यञ्चाकी टंकार दी और वे भगवान् विष्णुके साथ युद्ध करने लगे । जगत्पति भगवान् विष्णु भी लीलासे ही उनके साथ युद्ध करने लगे । इस प्रकार परस्पर अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार करते हुए उन दोनों पक्षोंमें समानरूपसे युद्ध हुआ । भगवान् विष्णुने अपने शार्ङ्ग धनुषद्वारा छोड़े हुए सर्पके समान बाणोंसे उन दैत्योंके समस्त अस्त्र-शस्त्र तिलकी भाँति टुकड़े-टुकड़े कर डाले । वे दोनों उन्मत्त दानव मधु और कैटभ चिरकालतक भगवान्‌के साथ लड़कर अन्तमें उनके शार्ङ्ग धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा मारे गये । राजन् ! तब श्रीविष्णु भगवान्‌ने उन दोनों दैत्योंके मेदेसे इस पृथ्वीका निर्माण किया । इसीसे इस वसुधराका नाम 'मेदिनी' हुआ ॥ २९-३३ ॥

एवं कृष्णप्रसादेन वेदाँल्लब्ध्वा प्रजापतिः ।
प्रजाः ससर्ज भूपाल वेददृष्टेन कर्मणा ॥३४॥
य इदं शृणुयान्नित्यं प्रादुर्भावं हरेर्नृप ।
उषित्वा चन्द्रसदने वेदविद्ब्राह्मणो भवेत् ॥३५॥
मात्स्यं वपुस्तन्महदद्रितुल्यं
विधाय लोकहिताय विष्णुः ।
आम्नाय भीमं जललोकसंस्थं
स्तुतोऽथ यस्तं स्मर भूमिपाल ॥३६॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे मत्स्यप्रादुर्भावो नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

भूपाल ! इस प्रकार भगवान् विष्णुकी कृपासे वेदोंको प्राप्तकर प्रजापति ब्रह्माजीने वेदोक्त विधिसे प्रजाकी सृष्टि की । नृप ! जो भगवान्‌की इस अवतार-कथाका प्रतिदिन श्रवण करता है, वह [शरीर त्यागके बाद] चन्द्रलोकमें निवास करके [पुनः इस लोकमें] वेदज्ञ ब्राह्मण होता है । भूमिपाल ! जो भगवान् विष्णु लोकहितके लिये पर्वतके समान विशाल मत्स्य-शरीर धारणकर जलनिमग्न वेदराशिका उद्धार करके स्तुत हुए थे, उनका ही तुम स्मरण करो ॥ ३४-३६ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'मत्स्यावतार-वर्णन' नामक सैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३७ ॥

अड़तीसवाँ अध्याय

कूर्मावतार, समुद्रमन्थन और मोहिनी-अवतार

मार्कण्डेय उवाच

पुरा देवासुरे युद्धे देवा दैत्यैः पराजिताः ।
सर्वे ते शरणं जग्मुः क्षीराब्धितनयापतिम् ॥ १ ॥
स्तोत्रेण तुष्टुवुः सर्वे समाराध्य जगत्पतिम् ।
कृताञ्जलिपुटा राजन् ब्रह्माद्या देवतागणाः ॥ २ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—पूर्वकालमें देवासुर संग्राममें जब देवगण दैत्योंद्वारा पराजित हो गये, तब वे सभी मिलकर क्षीरसागरनन्दिनी श्रीलक्ष्मीजीके पति भगवान् विष्णुकी शरणमें गये। राजन्! वहाँ ब्रह्मा आदि सभी देवता जगदीश्वरकी आराधना करके हाथ जोड़ निम्नाङ्कित स्तोत्रसे उनकी स्तुति करने लगे ॥ १-२ ॥

देवा ऊचुः

नमस्ते पद्मनाभाय लोकनाथाय शार्ङ्गिणे ।
नमस्ते पद्मनाभाय सर्वदुःखापहारिणे ॥ ३ ॥
नमस्ते विश्वरूपाय सर्वदेवमयाय च ।
मधुकैटभनाशाय केशवाय नमो नमः ॥ ४ ॥
दैत्यैः पराजिता देव वयं युद्धे बलान्वितैः ।
जयोपायं हि नो ब्रूहि करुणाकर ते नमः ॥ ५ ॥

देवगण बोले—जिनकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ है, जो समस्त लोकोंके स्वामी हैं, उन शार्ङ्गधनुषधारी आप परमेश्वरको नमस्कार है। सम्पूर्ण विश्व और सारे देवता जिनके स्वरूप हैं, उन मधुकैटभनाशक केशवको बारंबार प्रणाम है। करुणाकर! भगवन्! हम सभी देवता बलवान् दैत्योंद्वारा युद्धमें हरा दिये गये हैं, हमें विजय प्राप्त करनेका कोई उपाय बतलाइये, आपको नमस्कार है ॥ ३-५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति स्तुतो तदा देवैर्देवदेवो जनार्दनः ।
तानब्रवीद्धरिर्देवांस्तेषामेवाग्रतः स्थितः ॥ ६ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—देवताओंद्वारा इस प्रकार स्तवन किये जानेपर देवदेव भगवान् जनार्दनने उनके समक्ष प्रकट होकर कहा ॥ ६ ॥

श्रीभगवानुवाच

गत्वा तत्र सुराः सर्वे संधिं कुरुत दानवैः ।
मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा च वासुकिम् ॥ ७ ॥
सर्वौषधीः समानीय प्रक्षिप्याब्धौ त्वरान्विताः ।
दानवैः सहिता भूत्वा मथ्नध्वं क्षीरसागरम् ॥ ८ ॥
अहं च तत्र साहाय्यं करिष्यामि दिवौकसः ।
भविष्यत्यमृतं तत्र तत्पानाद्बलवत्तराः ॥ ९ ॥
भविष्यन्ति क्षणाद्देवा अमृतस्य प्रभावतः ।
यूयं सर्वे महाभागास्तेजिष्ठा रणविक्रमाः ॥ १० ॥
इन्द्राद्यास्तु महोत्साहास्तल्लब्ध्वामृतमुत्तमम् ।
ततो हि दानवाञ्जेतुं समर्था नात्र संशयः ॥ ११ ॥

श्रीभगवान् बोले—देवगण! तुम सब लोग वहाँ (समुद्र-तटपर) जाकर दानवोंके साथ संधि कर लो और मन्दराचलको मथानी बनाकर वासुकि नागसे रस्सीका काम लो। फिर शीघ्रतापूर्वक समस्त ओषधियोंको लाकर समुद्रमें डालो और दानवोंके साथ मिलकर ही क्षीरसागरका मन्थन करो। देवताओ! इस कार्यमें मैं भी तुमलोगोंकी सहायता करूँगा। समुद्रसे अमृत प्रकट होगा, जिसको पान करके उसके प्रभावसे देवता क्षणभरमें ही अत्यन्त बलशाली हो जायँगे। महाभागो! उस उत्तम अमृतको प्राप्तकर इन्द्रादि तुम सभी देवता अत्यन्त तेजस्वी, रणमें पराक्रम दिखानेवाले और महान् उत्साहसे सम्पन्न हो जाओगे। तदनन्तर तुमलोग दानवोंको जीतनेमें समर्थ हो सकोगे—इसमें संशय नहीं है ॥ ७-११ ॥

इत्युक्ता देवदेवेन देवाः सर्वे जगत्पतिम् ।
प्रणम्यागत्य निलयं संधिं कृत्वाथ दानवैः ॥ १२ ॥
क्षीराब्धेर्मन्थने सर्वे चक्रुरुद्योगमुत्तमम् ।
बलिना चोद्धृतो राजन् मन्दराख्यो महागिरिः ॥ १३ ॥
क्षीराब्धौ क्षेपितश्चैव तेनैकेन नृपोत्तम ।
सर्वौषधीश्च प्रक्षिप्य देवदैत्यैः पयोनिधौ ॥ १४ ॥
वासुकिश्चागतस्तत्र राजन्नारायणाज्ञया ।
सर्वदेवहितार्थाय विष्णुश्च स्वयमागतः

देवेश्वर भगवान्‌के द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर सभी देवता उन जगदीश्वरको प्रणाम करके अपने स्थानपर आये और दानवोंके साथ संधि करके क्षीरसागरके मन्थनके लिये उत्तम उद्योग करने लगे। राजन्! वरुणने अकेले ही 'मन्दर' नामक महान् पर्वतको उखाड़कर समुद्रमें डाल दिया तथा नरनाथ! ब्रह्मा और ईशानने समस्त ओषधियोंको लाकर समुद्रमें डाला। राजन्! भगवान् नारायणकी आज्ञासे वासुकिनाग वहाँ आये और समस्त देवताओंका हित-साधन करनेके लिये स्वयं भगवान् विष्णु भी वहाँ पधारे॥ १२-१५॥

तत्र विष्णुं समासाद्य तत सर्वे सुरासुराः।
सर्वे ते मैत्रभावेन क्षीराब्धेस्तटमाश्रिताः ॥१६॥
मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वाथ वासुकिम्।
ततो मथितुमारब्धं नृपते तरसामृतम् ॥१७॥
विष्णुना मुखभागे तु योजिता दानवास्तदा।
देवताः पुच्छभागे तु मथनाय नियोजिताः ॥१८॥
एवं च मथनात्तत्र मन्दरोऽधः प्रविश्य च।
आधारेण विना राजन् तं दृष्ट्वा सहसा हरिः ॥१९॥
सर्वलोकहितार्थाय कूर्मरूपमधारयत्।
आत्मानं सम्प्रवेश्याथ मन्दरस्य गिरेरधः ॥२०॥
प्रविश्य धृतवान् शैलं मन्दरं मधुसूदनः।
उपर्याक्रान्तवाञ्छैलं पृथग्रूपेण केशवः ॥२१॥
चकर्ष नागराजं च देवैः सार्धं जनार्दनः।
ततस्ते त्वरया युक्ता ममन्थुः क्षीरसागरम् ॥२२॥
यावच्छक्त्या नृपश्रेष्ठ बलवन्तः सुरासुराः।

तदनन्तर सभी देवता और असुरगण वहाँ भगवान् विष्णुके पास आये और एक साथ मित्रभावसे एकत्र होकर क्षीरसागरके तटपर उपस्थित हुए। नृप! उस समय मन्दराचलको मथानी और वासुकि नागको रस्सी बनाकर अमृत निकालनेके उद्देश्यसे वेगपूर्वक समुद्रका मन्थन आरम्भ हुआ। भगवान् विष्णुने उस समय समुद्र-मन्थनके लिये दानवोंको वासुकिके मुखकी ओर और देवताओंको पुच्छभागकी ओर नियुक्त किया। राजन्! इस प्रकार मन्थन आरम्भ होनेपर पीछे मन्दर आधार न होनेके कारण नीचे धँसने लगा; यह देख सहसा भगवान् मधुसूदन विष्णुने सम्पूर्ण लोकोंके हितके लिये कूर्मरूप धारण किया और उस रूपसे अपनेको मन्दराचलके नीचे प्रविष्ट करके, आधाररूप हो, उस मन्दर पर्वतको धारण किया तथा दूसरे रूपसे वे भगवान् केशव पर्वतको ऊपरसे भी दबाये रहे और एक अन्यरूपसे वे भगवान् जनार्दन देवताओंके साथ रहकर नागराज वासुकिको खींचते भी रहे। इस प्रकार देवता तथा असुर पूर्णशक्ति लगाकर बड़े वेगसे क्षीरसागरका मन्थन करने लगे॥ १६-२२½॥

मथ्यमानात्ततस्तस्मात् क्षीराब्धेरभवन्नृप ॥२३॥
कालकूटमिति ख्यातं विषमत्यन्तदुःसहम्।
तं नागा जगृहुः सर्वं तच्छेषं शंकरोऽग्रहीत् ॥२४॥
नारायणाज्ञया तेन नीलकण्ठत्वमाप्तवान्।
ऐरावतश्च नागेन्द्रो हरिश्चोच्चैःश्रवाः पुनः ॥२५॥
द्वितीयावर्तनाद्राजन्नुत्पन्नाविति नः श्रुतम्।
तृतीयावर्तनाद् राजन्नप्सराश्च सुशोभना ॥२६॥
चतुर्थात् पारिजातश्च उत्पन्नः स महाद्रुमः।
पञ्चमाद्धि हिमांशुस्तु प्रोत्थितः क्षीरसागरात् ॥२७॥
तं भवः शिरसा धत्ते नागवत् स्वस्तिकं नृप।
नानाविधानि दिव्यानि रत्नान्याभरणानि च ॥२८॥
क्षीरोदधेरुत्थिताश्च गन्धर्वाश्च सहस्रशः।
एतान् दृष्ट्वा तथोत्पन्नानन्याश्चर्यसमन्वितान् ॥२९॥
अभवञ्जातहर्षास्ते तत्र सर्वे सुरासुराः।

नृपश्रेष्ठ! तदनन्तर उस मथे जाते हुए क्षीरसागरसे अत्यन्त दुःसह 'कालकूट' नामक विष प्रकट हुआ। उस विषको सभी नागोंने ग्रहण कर लिया। उनसे बचे हुए विषको भगवान् विष्णुकी आज्ञासे शंकरजीने पी लिया। इससे कण्ठमें काला दाग पड़ जानेसे शंकरजीका 'नीलकण्ठ' नाम हुआ। इसके बाद द्वितीय बारके मन्थनसे ऐरावत गजराज और उच्चैःश्रवा घोड़ा—ये दोनों प्रकट हुए, यह बात हमारे सुननेमें आती है। तृतीय आवृत्तिमें परम सुन्दरी अप्सरा (उर्वशी)का आविर्भाव हुआ और चौथी बार महान् वृक्ष पारिजात प्रकट हुआ। पाँचवीं आवृत्तिमें क्षीरसागरसे चन्द्रमा प्रकट हुए। नरेश्वर! चन्द्रमाको भगवान् शिव अपने मस्तकपर धारण करते हैं, ठीक उसी तरह जैसे नाग मस्तकपर स्वस्तिक (मणि या आभूषण) धारण करते हैं। इसी प्रकार नाना प्रकारके दिव्य रत्न, आभूषण और हजारों गन्धर्व प्रकट हुए। इन आश्चर्यजनक सम्पूर्ण

को उस प्रकार उत्पन्न देख सभी देवता और असुर बहुत प्रसन्न हुए ॥ २३-२९½ ॥

देवपक्षे ततो मेघाः स्वल्पं वर्षन्ति संस्थिताः ॥३०॥
कृष्णाज्ञया च वायुश्च सुखं वाति सुरान् प्रति ।
विषनिःश्वासवातेन वासुकेश्चापरे हताः ॥३१॥
निस्तेजसोऽभवन् दैत्या निर्वीर्याश्च महामते ।

तदनन्तर भगवान् विष्णुकी आज्ञासे मेघगण देवताओंके दलमें स्थित हो मन्द-मन्द वर्षा करने लगे और देव-वृन्दको सुख देनेवाली वायु बहने लगी। [इस कारण देवता थके नहीं।] किंतु महामते ! वासुकिके विषमिश्रित श्वासकी वायुसे कितने ही दैत्य मर गये और जो बचे, वे भी तेज एवं पराक्रमसे हीन हो गये ॥ ३०-३१½ ॥

ततः श्रीरुत्थिता तस्मात् क्षीरोदाद्धृतपङ्कजा ॥३२॥
विभ्राजमाना राजेन्द्र दिशः सर्वाः स्वतेजसा ।
ततस्तीर्थोदकैः स्नाता दिव्यवस्त्रैरलंकृता ॥३३॥
दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गी सुमनोभिः सुभूषणैः ।
देवपक्षं समासाद्य स्थित्वा क्षणमरिंदम ॥३४॥
हरिवक्षःस्थलं प्राप्ता ततः सा कमलालया ।

तत्पश्चात् उस समुद्रसे हाथमें कमल धारण किये हुए श्रीलक्ष्मीजी प्रकट हुईं। राजेन्द्र! वे अपने तेजसे सम्पूर्ण दिशाओं को प्रकाशमान कर रही थीं। शत्रुसूदन! उन्होंने तीर्थके जलसे स्नान किया, शरीरमें दिव्य गन्धका अनुलेप लगाया और वे कमलालया लक्ष्मी दिव्य वस्त्र, पुष्पहार और सुन्दर भूषणोंसे विभूषित हो देवपक्षमें आकर क्षणभर खड़ी रहीं; फिर भगवान् विष्णुके वक्षःस्थलमें विराजमान हुईं ॥ ३२-३४½ ॥

ततोऽमृतघटं पूर्णं दुग्ध्वा तु पयसो निधेः ॥३५॥
धन्वन्तरिः समुत्तस्थौ ततः प्रीताः सुरा नृप ।
दैत्याः श्रिया परित्यक्ता दुःखितास्तेऽभवन्नृप ॥३६॥
नीत्वामृतघटं पूर्णं ते च जग्मुर्यथासुखम् ।
ततः स्त्रीरूपमकरोद् विष्णुर्देवहिताय वै ॥३७॥
आत्मानं नृपशार्दूल सर्वलक्षणसंयुतम् ।
ततो जगाम भगवान् स्त्रीरूपेणासुरान् प्रति ॥३८॥
दिव्यरूपां तु तां दृष्ट्वा मोहितास्ते सुरद्विषः ।
सुधापूर्णघटं ते तु मोहात् संस्थाप्य सत्तम ॥३९॥
कामेन पीडिता ह्यासन्नसुरास्तत्र तत्क्षणात् ।
मोहयित्वा तु तानेवमसुरानवनीपते ॥४०॥
अमृतं तु समादाय देवेभ्यः प्रददौ हरिः ।
तत्पीत्वा तु ततो देवा देवदेवप्रसादतः ॥४१॥
बलवन्तो महावीर्या रणे जग्मुस्ततोऽसुरान् ।
जित्वा रणेऽसुरान् देवाः स्वानि राज्यानि चक्रिरे॥४२॥
एतत्ते कथितं राजन् प्रादुर्भावो हरेरयम् ।
कूर्माख्यः पुण्यदो नृणां शृण्वतां पठतामपि ॥४३॥

नरेश्वर! इसके बाद क्षीरसागरसे अमृतपूर्ण घटका दोहन करके हाथमें लिये भगवान् धन्वन्तरि प्रकट हुए। उनके प्राकट्यसे देवता बहुत प्रसन्न हुए। किंतु राजन्! लक्ष्मीद्वारा त्याग दिये जानेके कारण असुरगण बहुत दुःखी हुए और उस भरे हुए अमृतघटको लेकर इच्छानुसार चल दिये। नृपवर! तब भगवान् विष्णुने देवताओंका हित करनेके लिये अपनेको सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे युक्त स्त्रीरूपमें प्रकट किया। इसके बाद भगवान् उस नारीरूपसे ही असुरोंकी ओर गये। उस दिव्य रूपवाली नारीको देख दैत्यगण मोहित हो गये। साधु शिरोमणे! वे असुर तत्काल मोहके वशीभूत हो कामपीड़ित हो गये और उन्होंने मोहवश वह अमृतका घड़ा भूमिपर रख दिया। अवनीपते! इस प्रकार असुरोंको मोहित करके भगवान्ने वह अमृत ले देवताओंको दे दिया। देवदेव भगवान्की कृपासे अमृत पीकर बली और महावीर्यवान् हो देवता संग्राममें आ डटे और असुरोंको युद्धमें जीतकर उन्होंने अपने राज्यपर अधिकार कर लिया। राजन्! भगवान्के इस 'कूर्म' नामक अवतारकी कथा मैंने तुमसे कह दी। यह पढ़ने और सुननेवाले मनुष्योंको पुण्य देनेवाली है ॥ ३५-४३ ॥

आविष्कृतं कौर्ममनन्तवर्चसं
नारायणेनाद्भुतकर्मशार्ङ्गिणा ।
दिवौकसां तु हिताय केवलं
रूपं परं पावनमेव कीर्तितम् ॥४४॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे कूर्मप्रादुर्भावो नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

कि वह रसातलको चली गयी है। राजाधिप! तब उन्होंने वेदमय क्रीडा दिव्य वराह-शरीर धारण किया, जिसके चारों वेद ही चरण थे, यूप (पशु-बन्धनके लिये बना हुआ काष्ठस्तम्भ) ही दाढ़ था और चिति (श्येनचित् आदि) मुख। मुखमण्डल स्थूल और छाती चौड़ी थी, भुजाएँ बड़ी-बड़ी थीं, अग्नि ही जिह्वा और स्रुक् (स्रुवा) ही थूथुन थी। चन्द्रमा और सूर्य विशाल नेत्र थे, पूर्त (बावड़ी आदि खुदवाना) और इष्ट धर्म (यज्ञ-यागादि) उनके कान थे, साम ही स्वर था। प्राग्वंश (पत्नीशाला या यजमान-गृह) ही शरीर था, हवि ही नासिका थी, कुश-दर्भ ही रोमावलियाँ थे। इस प्रकार उनका सम्पूर्ण शरीर वेदमय था, पवित्र वैदिक सूक्त ही उनके बड़े-बड़े अयाल थे। नक्षत्र और तारे उनके हार थे तथा प्रलयकालीन आवर्त (भँवरें) ही उनके दिव्य भूषणका काम दे रहे थे॥ १०–१४॥

इत्थं कृत्वा तु वाराहं प्रविवेश वृषाकपिः।
रसातलं नृपश्रेष्ठ सनकाद्यैरभिष्टुतः॥१५॥
प्रविश्य च हिरण्याक्षं युद्धे जित्वा वृषाकपिः।
दंष्ट्राग्रेण ततः पृथ्वीं समुद्धृत्य रसातलात्॥१६॥
स्तूयमानोऽमरगणैः स्थापयामास पूर्ववत्।
संस्थाप्य पर्वतान् सर्वान् यथास्थानमकल्पयत्॥१७॥
विहाय रूपं वाराहं तीर्थे कोकेति विश्रुते।
वैष्णवानां हितार्थाय क्षेत्रं तद्गुह्यमुत्तमम्॥१८॥
ब्रह्मरूपं समास्थाय पुनः सृष्टिं चकार सः।
विष्णुः पाति जगत्सर्वमेवम्भूतो युगे युगे।
हन्ति चान्ते जगत्सर्वं रुद्ररूपी जनार्दनः॥१९॥

नृपश्रेष्ठ! भगवान् विष्णुने पूर्वोक्त वाराहरूपको धारणकर रसातलमें प्रवेश किया। उस समय सनकादि योगीजन उनकी स्तुति करते थे। वहाँ जाकर भगवान्‌ने युद्धमें हिरण्याक्षको मारकर उसपर विजय पायी और अपनी दाढ़ोंके अग्रभागसे पृथ्वीको उठाकर वे रसातलसे ऊपर ले आये। फिर देवगण उनकी स्तुति करने लगे और उन्होंने पूर्ववत् पृथ्वीको स्थापित किया। पृथ्वीको स्थिर करनेके पश्चात् उसपर यथास्थान पर्वतोंका सन्निवेश किया। तदनन्तर वैष्णवोंके हितके लिये कोकामुख तीर्थमें वाराहरूपका त्याग किया। वह वाराह क्षेत्र उत्तम एवं गुप्त तीर्थ है। फिर ब्रह्माजीका रूप धारणकर उन्होंने सृष्टि रचना की। इस प्रकार भगवान् विष्णु युग-युगमें अवतार लेकर सम्पूर्ण जगत्‌की रक्षा करते हैं। फिर वे जनार्दन रुद्ररूप धारणकर अन्तकालमें समस्त लोकोंका संहार करते हैं॥ १५–१९॥

वेदान्तवेद्यस्य हरेर्वृषाकपेः
कथामिमां यश्च शृणोति मानवः।
दृढां मतिं यज्ञतनौ निवेश्य वै
विहाय पापं च नरो हरिं व्रजेत्॥२०॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे वाराहप्रादुर्भावो नाम
एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ३९॥

जो मनुष्य वेदान्तवेद्य भगवान् विष्णुकी इस कथाको श्रवण करता है, वह भगवान् यज्ञमूर्तिमें अपनी सुदृढ़ बुद्धि लगाकर समस्त पापोंसे मुक्त हो, उन भगवान् हरिको ही प्राप्त करता है॥ २०॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'वाराहावतार' नामक उन्तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३९॥

चालीसवाँ अध्याय

नृसिंहावतार; हिरण्यकशिपुकी वरदान-प्राप्ति और उनसे सताये हुए देवोंद्वारा भगवान्‌की स्तुति

मार्कण्डेय उवाच

वाराहः कथितो देव प्रादुर्भावो हरेस्तव।
साम्प्रतं नारसिंहं तु प्रवक्ष्यामि निबोध मे॥१॥

श्रीमार्कण्डेयजी बोले—राजन्! इस प्रकार मैंने तुमसे भगवान् विष्णुके वराह-अवतारका वर्णन किया। अब 'नृसिंहावतार'का वर्णन करूँगा, सुनो॥ १॥

दितेः पुत्रो महानासीद्धिरण्यकशिपुः पुरा।
तपस्तेपे निराहारो बहुवर्षसहस्रकम्॥२॥
तपान्तस्य सन्तुष्टो ब्रह्मा तं प्राह दानवम्।
वरं वरय दैत्येन्द्र यस्ते मनसि वर्तते॥३॥
इत्युक्तो ब्रह्मणा दैत्यो हिरण्यकशिपुः पुरा।
उवाच नत्वा देवेशं ब्रह्माणं विनयान्वितः॥४॥

नीतिज्ञं सर्वशास्त्रज्ञं पप्रच्छुर्विनयान्विताः ।
हिरण्यकशिपोरस्य विनाशं मुनिसत्तम ॥२२॥
त्रैलोक्यहारिणः शीघ्रं वधोपायं वदस्व नः ।

नरेश्वर! इन्द्रादि देवता, रुद्र तथा ऋषिगण भी उसके भयसे मनुष्यरूप धारणकर पृथ्वीपर विचरते थे। राजेन्द्र! त्रिभुवनका राज्य प्राप्त कर लेनेपर हिरण्यकशिपुने समस्त प्रजाओंको बुलाकर उनसे यह वाक्य कहा—'प्रजागण! तुमलोग देवताओंके लिये यज्ञ, होम और दान न करो। अब मैं ही त्रिभुवनका अधीश्वर हूँ, अतः यज्ञ और दानादि कर्मोंद्वारा मेरी ही पूजा करो।' राजन्! यह सुनकर वे सभी प्रजाएँ उसके भयसे वैसा ही करने लगीं। नृपश्रेष्ठ! वहाँ ऐसा व्यवहार चालू होनेपर चराचर प्राणियोंसहित समस्त त्रिभुवन अधर्मपरायण हो गया। स्वधर्मका लोप हो जानेसे सबकी बुद्धि पापमें प्रवृत्त हो गयी। इस तरह बहुत समय बीतनेपर इन्द्रसहित सब देवताओंने मिलकर समस्त शास्त्रोंके ज्ञाता तथा नीतिवेत्ता बृहस्पतिजीसे विनयपूर्वक पूछा—'मुनिश्रेष्ठ! त्रिलोकीका राज्य छीननेवाले इस हिरण्यकशिपुके विनाशका समय और उसका उपाय हमें शीघ्र बताइये'॥ १६–२२½॥

बृहस्पतिरुवाच

शृणुध्वं मम वाक्यानि स्वपदप्राप्तये सुराः ॥२३॥
प्रायो हिरण्यकशिपुः क्षीणभाग्यो महासुरः ।
शोको नाशयते प्रज्ञां शोको नाशयते श्रुतम् ॥२४॥
शोको मतिं नाशयति नास्ति शोकसमो रिपुः ।
सोढुं शक्योऽग्निसम्बन्धः शस्त्रस्पर्शश्च दारुणः ॥२५॥
न तु शोकभवं दुःखं संसोढुं नृप शक्यते ।
कालान्निमित्ताच्च वयं लक्ष्यामस्तत्क्षयं सुराः ॥२६॥
बुधाश्च सर्वे सर्वत्र स्थिता वक्ष्यन्ति नित्यशः ।
अचिरादेव दुष्टोऽसौ नश्यत्येव परस्परम् ॥२७॥
देवानां तु परामृद्धिं स्वपदप्राप्तिलक्षणाम् ।
हिरण्यकशिपोर्नाशं शकुनानि वदन्ति मे ॥२८॥
यत एवमतो देवाः सर्वे गच्छत माचिरम् ।
क्षीरोदस्योत्तरं तीरं प्रसुप्तो यत्र केशवः ॥२९॥
युष्माभिः संस्तुतो देवः प्रसन्नो भवति क्षणात् ।
स हि प्रसन्नो दैत्यस्य वधोपायं वदिष्यति ॥३०॥

बृहस्पतिजी बोले—देवताओ! तुमलोग अपने स्थानकी प्राप्तिके लिये मेरे ये वाक्य सुनो—'इस महान् असुर हिरण्यकशिपुके पुण्यका अंश प्रायः क्षीण हो चुका है। [इसे अपने भाई हिरण्याक्षकी मृत्युसे बहुत शोक हुआ है।] यह शोक बुद्धिको नष्ट और शास्त्रज्ञानको चौपट कर देता है, विचारशक्तिको भी क्षीण कर डालता है, अतः शोकके समान कोई शत्रु नहीं है। नरेश्वर! अपने शरीरपर अग्निका स्पर्श और दारुण शस्त्रप्रहार भी सहा जा सकता है, परंतु शोकजन्य दुःखका सहन नहीं किया जा सकता। देवताओ! इस शोकसे और कालरूप निमित्तसे हम हिरण्यकशिपुका नाश निकट देख रहे हैं। इसके अतिरिक्त सभी विद्वान् सर्वत्र परस्पर यही कहा करते हैं कि दुष्ट हिरण्यकशिपु अब शीघ्र ही नष्ट होनेवाला है। मेरे शकुन भी यही बताते हैं कि देवताओंको अपने पद—स्वर्ग-साम्राज्यकी प्राप्तिरूप महती समृद्धि मिलनेवाली है और हिरण्यकशिपुका नाश होना चाहता है। चूँकि ऐसा ही होनेवाला है, इसलिये तुम सभी देवता क्षीरसागरके उत्तरतटपर, जहाँ भगवान् विष्णु शयन करते हैं, शीघ्र ही जाओ। तुमलोगोंके भलीभाँति स्तवन करनेपर वे भगवान् क्षणभरमें ही प्रसन्न हो जायँगे और प्रसन्न होनेपर वे ही उस दैत्यके वधका उपाय बतायेंगे॥ २३–३०॥

इत्युक्तास्तेन देवास्ते साधु साध्वित्यथाब्रुवन् ।
प्रीत्या च परया युक्ता गन्तुं चक्रुरथोद्यमम् ॥३१॥
पुण्ये तिथौ शुभे लग्ने पुण्यस्वस्ति च मङ्गलम् ।
कारयित्वा मुनिवरैः प्रस्थितास्ते दिवौकसः ॥३२॥
नाशाय दुष्टदैत्यस्य स्वभूत्यै च नृपोत्तम ।
ते शर्मप्रदं कृत्वा क्षीराब्धेरुत्तरं तटम् ॥३३॥
तत्र गत्वा सुराः सर्वे विष्णुं जिष्णुं जनार्दनम् ।
अस्तुवन् विविधैः स्तोत्रैः पूजयन्तः प्रतस्थिरे ॥३४॥
मनोऽपि भगवान् भक्त्या भगवन्तं जनार्दनम् ।
अस्तुवन्नामभिः पुण्यैरेकाग्रमनसा हरिम् ॥३५॥

श्रीबृहस्पतिजीके इस प्रकार कहनेपर सभी देवता कहने लगे—'भगवन्! आपने बहुत अच्छा कहा, बहुत अच्छा कहा।' और वे अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक वहाँ जानेका उद्योग करने लगे। नृपवर! वे देवगण किसी पुण्यतिथिमें शुभ लग्नमें मुनिवरोंद्वारा पुण्याहवाचन, स्वस्तिवाचन और मङ्गलपाठ कराकर दुष्ट दैत्य (हिरण्यकशिपु) के विनाश और अपनी पदप्राप्तिके

आप सनातन देवदेव भगवान् विष्णुको नमस्कार है। गरुडध्वज! आप प्रमाणोंके अविषय तथा अनन्त हैं ॥ ३६-५२½ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्येतैर्नामभिर्दिव्यैः संस्तुतो मधुसूदन ॥ ५३ ॥
उवाच प्रकटीभूत्वा देवान् सर्वानिदं वचः ।

मार्कण्डेयजी बोले—इन दिव्य नामोंद्वारा स्तुति किये जानेपर भगवान् मधुसूदनने प्रत्यक्ष प्रकट होकर सम्पूर्ण देवताओंसे यह वचन कहा ॥ ५३½ ॥

श्रीभगवानुवाच

युष्माभिः संस्तुतो देवा नामभिः कमलैः शुभैः ॥ ५४ ॥
अत एव प्रसन्नोऽस्मि किमर्थं करवाणि वः ।

श्रीभगवान् बोले—देवगण! तुमलोगोंने केवल कल्याणकारी नामोंद्वारा मेरा स्तवन किया है, अतः मैं तुमपर प्रसन्न हूँ; कहो, तुम्हारा क्या कार्य सिद्ध करूँ? ॥ ५४½ ॥

देवा ऊचुः

देवदेव हृषीकेश पुण्डरीकाक्ष माधव ॥ ५५ ॥
त्वमेव जानासि हरे किं तस्मात् परिपृच्छसि ।

देवता बोले—हे देवदेव! हे हृषीकेश! हे कमलनयन! हे लक्ष्मीपते! हे हरे! आप तो सब कुछ जानते हैं, फिर हमसे क्यों पूछ रहे हैं? ॥ ५५½ ॥

श्रीभगवानुवाच

युष्मदागमनं सर्वं जानाम्यसुरसूदनाः ॥ ५६ ॥
हिरण्यकविनाशार्थं स्तुतोऽहं शंकरेण तु ।
पुण्यनामशतेनैव संस्तुतोऽहं भवेन च ॥ ५७ ॥
एतेन यस्तु मां नित्यं त्वयोक्तेन महामते ।
तेनाहं पूजितो नित्यं भवामीह त्वया यथा ॥ ५८ ॥
प्रीतोऽहं गच्छ देव त्वं कैलासशिखरं शुभम् ।
त्वया स्तुतो हनिष्यामि हिरण्यकशिपुं भव ॥ ५९ ॥
गच्छध्वमधुना देवाः कालं कश्चित् प्रतीक्षताम् ।
यदास्य तनयो धीमान् प्रह्लादो नाम वैष्णवः ॥ ६० ॥
तस्य द्रोहं यदा दैत्यः करिष्यति सुरास्तदा ।
हनिष्यामि वरैर्गुप्तमजेयं देवदानवैः ।
इत्युक्त्वा विष्णुना देवा नत्वा विष्णुं ययुर्नृप ॥ ६१ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे विष्णोर्नामस्तोत्रं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

श्रीभगवान् बोले—असुरनाशक देवताओ! तुमलोगोंके आनेका सारा कारण मुझे ज्ञात है। जगत्‌का कल्याण करनेवाले महादेवजीने तथा तुमने हिरण्यकशिपु दैत्यका नाश करानेके लिये मेरे एक सौ पुण्यनामोंद्वारा मेरा स्तवन किया है। महामते शिव! तुम्हारे कहे हुए इन सौ नामोंसे जो मेरा नित्य स्तवन करेगा, उस पुरुषद्वारा मैं उसी प्रकार प्रतिदिन पूजित होऊँगा, जैसे इस समय तुम्हारेद्वारा हुआ हूँ। देव शम्भो! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ; अब तुम अपने शुभ कैलासशिखरको जाओ। तुमने मेरी स्तुति की है, अतः तुम्हारी प्रसन्नताके लिये मैं हिरण्यकशिपुका वध करूँगा। देवताओ! अब तुम भी जाओ और कुछ कालतक प्रतीक्षा करो। जब इस हिरण्यकशिपुके प्रह्लाद नामक बुद्धिमान् विष्णुभक्त पुत्र होगा और जिस समय यह दैत्य प्रह्लादसे द्रोह करेगा, उस समय वरोंसे रक्षित होकर देवताओं और दानवोंसे भी नहीं जीते जा सकनेवाले इस असुरका मैं अवश्य वध कर डालूँगा। राजन्! भगवान् विष्णुके इस प्रकार कहनेपर देवगण उन्हें प्रणाम करके चले गये ॥ ५६-६१ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'विष्णुका नाममय स्तोत्र' नामक चालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४० ॥

इकतालीसवाँ अध्याय

प्रह्लादकी उत्पत्ति और उनकी हरि भक्तिसे हिरण्यकशिपुकी उद्विग्नता

सहस्रानीक उवाच

मार्कण्डेय महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।
प्रादुर्भावं नृसिंहस्य यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ १ ॥
वद प्रह्लादचरितं विस्तरेण ममानघ ।
धन्या वयं महायोगिंस्त्वत्प्रसादान्महामुने ॥ २ ॥
सुधां पिबामो दुर्लभ्यां धन्यां श्रीरामनामिकाम् ।

और सनातन देवदेव भगवान् विष्णुको नमस्कार है। गरुड ध्वज! आप प्रमाणोंके अविषय तथा अनन्त हैं॥ ३६—५२½॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्येतैर्नामभिर्दिव्यैः संस्तुतो मधुसूदनः ॥५३॥
उवाच प्रकटीभूत्वा देवान् सर्वानिदं वचः।

मार्कण्डेयजी बोले—इन दिव्य नामोंद्वारा स्तुति किये जानेपर भगवान् मधुसूदनने प्रत्यक्ष प्रकट होकर सम्पूर्ण देवताओंसे यह वचन कहा॥ ५३½॥

श्रीभगवानुवाच

युष्माभिः संस्तुतो देवा नामभिः कमलैः शुभैः ॥५४॥
अत एव प्रसन्नोऽस्मि किमर्थं करवाणि वः।

श्रीभगवान् बोले—देवगण! तुमलोगोंने केवल कल्याणकारी नामोंद्वारा मेरा स्तवन किया है, अतः मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, कहो, तुम्हारा क्या कार्य सिद्ध करूँ?॥ ५४½॥

देवा ऊचुः

देवदेव हृषीकेश पुण्डरीकाक्ष माधव ॥५५॥
त्वमेव जानासि हरे किं तस्मात् परिपृच्छसि।

देवता बोले—हे देवदेव! हे हृषीकेश! हे कमलनयन! हे लक्ष्मीपते! हे हरे! आप तो सब कुछ जानते हैं, फिर हमसे क्यों पूछ रहे हैं?॥ ५५½॥

श्रीभगवानुवाच

युष्मदागमनं सर्वं जानाम्यसुरसूदनाः ॥५६॥
हिरण्यकविनाशार्थं स्तुतोऽहं शंकरेण तु।
पुण्यनामशतेनैव संस्तुतोऽहं भवेन च ॥५७॥
एतेन यस्तु मां नित्यं त्वयोक्तेन महामते।
तेनाहं पूजितो नित्यं भवामीह त्वया यथा ॥५८॥
प्रीतोऽहं गच्छ देव त्वं कैलासशिखरं शुभम्।
त्वया स्तुतो हनिष्यामि हिरण्यकशिपुं भव ॥५९॥
गच्छध्वमधुना देवाः कालः कश्चित् प्रतीक्ष्यताम्।
यदास्य तनयो धीमान् प्रह्लादो नाम वैष्णवः ॥६०॥
तस्य द्रोहं यदा दैत्यः करिष्यति सुरास्तदा।
हनिष्यामि वरैर्गुप्तमजेयं देवदानवैः।
इत्युक्त्वा विष्णुना देवा नत्वा विष्णुं ययुर्नृप ॥६१॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे विष्णोर्नामस्तोत्रं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

श्रीभगवान् बोले—असुरनाशक देवताओ! तुमलोगोंके आनेका सारा कारण मुझे ज्ञात है। जगत्का कल्याण करने वाले महादेवजीने तथा तुमने हिरण्यकशिपु दैत्यका नाश करानेके लिये मेरे एक सौ पुण्यनामोंद्वारा मेरा स्तवन किया है। महामते शिव! तुम्हारे कहे हुए इन सौ नामोंसे जो मेरा नित्य स्तवन करेगा, उस पुरुषद्वारा मैं उसी प्रकार प्रतिदिन पूजित होऊँगा, जैसे इस समय तुम्हारेद्वारा हुआ हूँ। देव शम्भो! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ; अब तुम अपने शुभ कैलासशिखरको जाओ। तुमने मेरी स्तुति की है, अतः तुम्हारी प्रसन्नताके लिये मैं हिरण्यकशिपुका वध करूँगा। देवताओ! अब तुम भी जाओ और कुछ कालतक प्रतीक्षा करो। जब इस हिरण्यकशिपुके प्रह्लाद नामक बुद्धिमान् विष्णुभक्त पुत्र होगा और जिस समय यह दैत्य प्रह्लादसे द्रोह करेगा, उस समय वरोंसे रक्षित होकर देवताओं और दानवोंसे भी नहीं जीते जा सकनेवाले इस असुरका मैं अवश्य वध कर डालूँगा। राजन्! भगवान् विष्णुके इस प्रकार कहनेपर देवगण उन्हें प्रणाम करके चले गये॥ ५६—६१॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'विष्णुका नाममय स्तोत्र' नामक चालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४०॥

इकतालीसवाँ अध्याय

प्रह्लादकी उत्पत्ति और उनकी हरि भक्तिसे हिरण्यकशिपुकी उद्विग्नता

सहस्रानीक उवाच

मार्कण्डेय महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद।
प्रादुर्भावं नृसिंहस्य यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ १ ॥
वद प्रह्लादचरितं विस्तरेण ममानघ।
धन्या वयं महायोगिंस्त्वत्प्रसादान्महामुने ॥ २ ॥
सुधां पिबामो दुर्लभ्यां कथां श्रीकेशवाश्रिताम्।

सहस्रानीकने कहा—सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञाता महाप्राज्ञ मार्कण्डेयजी ! आप भगवान् नृसिंहके प्रादुर्भावकी कथा यथोचितरूपसे कहें। अनघ ! भक्तवर प्रह्लादजीका चरित्र मुझे विस्तारपूर्वक सुनायें। महायोगिन् ! महामुने ! हमलोग धन्य हैं; क्योंकि आपकी कृपासे हमें भगवान् विष्णुकी कथारूप दुर्लभ सुधारस पान करनेका अवसर मिल रहा है ॥ १-२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

पुरा हिरण्यकशिपोस्तपोऽर्थं गच्छता वनम् ॥ ३ ॥
दिग्दाहो भूमिकम्पश्च जातस्तस्य महात्मनः ।
वारितो बन्धुभिर्भृत्यैर्मित्रैश्च हितकारिभिः ॥ ४ ॥
शकुना निर्गुणा राजञ्जातास्तच्च न शोभनम् ।
त्रैलोक्याधिपतिस्त्वं हि सर्वे देवाः पराजिताः ॥ ५ ॥
तवास्ति न भयं सौम्य किमर्थं तप्यते तपः ।
प्रयोजनं न पश्यामो वयं बुद्ध्या समन्विताः ॥ ६ ॥
यो भवेन्न्यूनकामो हि तपश्चर्यां करोति सः ।

श्रीमार्कण्डेयजी बोले—पूर्वकालमें एक समय वह महाकाय हिरण्यकशिपु जब तपस्या करनेके लिये वनमें जानेको उद्यत हुआ, उस समय समस्त दिशाओंमें दाह और भूकम्प होने लगा। यह देखकर उसके हितकारी बन्धुओं, मित्रों और भृत्योंने उसे मना किया—'राजन् ! इस समय बुरे शकुन हो रहे हैं। इनका फल अच्छा नहीं है। सौम्य ! आप त्रिभुवनके एकच्छत्र स्वामी हैं, समस्त देवताओंपर आपने विजय प्राप्त की है, आपको किसीसे भय भी नहीं है; फिर किसलिये तप करना चाहते हैं ? हम सभी लोग जब अपनी बुद्धिसे विचारते हैं, तब कोई भी प्रयोजन नहीं दिखायी देता [जिसके लिये आपको तप करनेकी आवश्यकता हो]; क्योंकि जिसकी कामना अपूर्ण होती है, वही तपस्या करता है' ॥ ३—६३ ॥

एवं तैर्वार्यमाणोऽपि दुर्मदो मदमोहितः ॥ ७ ॥
यातः कैलासशिखरं द्वित्रैर्मित्रैः परीवृतः ।
तस्य संतप्यमानस्य तपः परमदुष्करम् ॥ ८ ॥
चिन्ता जाता महीपाल विरिञ्चेः पद्मजन्मनः ।
किं करोमि कथं दैत्यस्तपसो विनिवर्तते ॥ ९ ॥
इति चिन्ताकुलस्यैव ब्रह्मणोऽङ्कसमुद्भवः ।
प्रणम्य प्राह भूपाल नारदो मुनिसत्तमः ॥ १० ॥

अपने बन्धुजनोंके इस प्रकार मना करनेपर भी वह दुर्मद एवं मदमत्त दैत्य अपने दो-तीन मित्रोंके साथ लेकर [तपके लिये] कैलास शिखरको चला ही गया। महीपाल ! वहाँ जाकर जब वह परम दुष्कर तपस्या करने लगा, तब पद्मयोनि ब्रह्माजीको उसके कारण बड़ी चिन्ता हो गयी। वे सोचने लगे—'अहो ! अब क्या करूँ ? यह दैत्य कैसे तपसे निवृत्त हो ?' भूपाल ! इस चिन्तासे ब्रह्माजी जब व्याकुल हो रहे थे, उसी समय उनके अङ्गसे उत्पन्न मुनिवर नारदजीने उन्हें प्रणाम करके कहा ॥ ७—१० ॥

नारद उवाच

किमर्थं खिद्यते तात नारायणपरायण ।
येषां मनसि गोविन्दस्ते वै नार्हन्ति शोचितुम् ॥ ११ ॥
अहं तं वारयिष्यामि तप्यन्तं दितिनन्दनम् ।
नारायणो जगत्स्वामी मतिं मे सम्प्रदास्यति ॥ १२ ॥

नारदजी बोले—पिताजी ! आप तो भगवान् नारायणके आश्रित हैं, फिर आप क्यों खेद कर रहे हैं ? जिनके हृदयमें भगवान् गोविन्द विराजमान हैं, उन्हें इस प्रकार शोच नहीं करना चाहिये। तपस्यामें प्रवृत्त हुए उस दैत्य हिरण्यकशिपुको मैं उससे निवृत्त करूँगा। जगदीश्वर भगवान् नारायण मुझे इसके लिये सुबुद्धि देंगे ॥ ११-१२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वाऽऽनम्य पितरं वासुदेवं हृदि स्मरन् ।
प्रयातः पर्वतेनैव सार्धं स मुनिपुंगवः ॥ १३ ॥
कलविङ्कौ तु तौ भूत्वा कैलासं पर्वतोत्तमम् ।
यत्रास्ते दितिजश्रेष्ठो द्वित्रैर्मित्रैः परीवृतः ॥ १४ ॥
कृतस्नानो मुनिस्तत्र वृक्षशाखासमाश्रितः ।
शृण्वतस्तस्य दैत्यस्य प्राह गम्भीरया गिरा ॥ १५ ॥
नमो नारायणायेति पुनः पुनरुदारधीः ।
त्रिवारं प्रजपित्वा वै नारदो मौनमाश्रितः ॥ १६ ॥
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य कलविङ्कस्य सादरम् ।
हिरण्यकशिपुर्दैत्यः क्रुद्धश्चापं समाददे ॥ १७ ॥
बाणं धनुषि संधाय यावन्मुञ्चति तौ प्रति ।
तावदुड्डीय तौ भूप गतौ नारदपर्वतौ ॥ १८ ॥

सोऽपि क्रोधपरीताङ्गो हिरण्यकशिपुस्तदा ।
त्यक्त्वा तमाश्रमं भूयो नगरं स्वं महीपते ॥१९॥

मार्कण्डेयजी बोले—अपने पिताके इस प्रकार कहकर मुनिश्रेष्ठ नारदजीने उन्हें प्रणाम किया और मन ही मन भगवान् वासुदेवका स्मरण करते हुए वे पर्वत मुनिके साथ वहाँसे चल दिये। वे दोनों मुनि कलविङ्क पक्षीका रूप धारणकर उस उत्तम कैलास पर्वतपर आये, जहाँ दैत्यश्रेष्ठ हिरण्यकशिपु अपने दो-तीन मित्रोंके साथ रहता था। वहाँ स्नान करके नारद मुनि वृक्षकी शाखापर बैठ गये और उस दैत्यके सुनते सुनते गम्भीर वाणीमें भगवन्नामका उच्चारण करने लगे। उदारबुद्धि नारद लगातार तीन बार 'ॐ नमो नारायणाय' इस मन्त्रका उच्चस्वरसे उच्चारण कर मौन हो गये। भूपाल ! कलविङ्कके द्वारा किये गये उस आदरयुक्त नामकीर्तनको सुनकर हिरण्यकशिपुने कुपित हो धनुष उठाया और उसपर बाणका सन्धान करके ज्यों ही उन दोनों पक्षियोंके प्रति छोड़ने लगा, त्यों ही नारद और पर्वत मुनि उड़कर अन्यत्र चले गये। महीपते ! तब हिरण्यकशिपु भी क्रोधमें भर गया और उसी समय वह उस आश्रमको त्यागकर अपने नगरको चला आया ॥ १३–१९ ॥

तथापि भार्या सुश्रोणी कयाधूर्नाम नामतः ।
तदा रजस्वला भूत्वा स्नाताभूद्दैवयोगतः ॥२०॥
रात्रावेकान्तसमये तया पृष्टः स दैत्यराट् ।
स्वामिन् यदा तपश्चर्यां कर्तुं गेहाद्वनं गतः ॥२१॥
तदा त्वयोक्तं वर्षाणामयुतं मे तपस्त्विदम् ।
तत्किमर्थं महाराज साम्प्रतं त्यक्तवान् व्रतम् ॥२२॥
तथ्यं कथय मे नाथ स्नेहात्पृच्छामि दैत्यप ।

वहाँ उसी समय उसकी कयाधू नामकी सुन्दरी पत्नी दैवयोगसे रजस्वला होकर ऋतुस्नाता हुई थी। रात्रिमें एकान्तवासके समय कयाधूने दैत्यराजसे पूछा—"स्वामिन् ! आप जिस समय तप करनेके लिये घरसे वनको गये थे, उस समय तो आपने यह कहा था कि 'मेरी यह तपस्या दस हजार वर्षोंतक चलेगी।' फिर महाराज ! आपने अभी क्यों उस व्रतको त्याग दिया ? स्वामिन् ! दैत्यराज ! मैं प्रेमपूर्वक आपसे यह प्रश्न करती हूँ, इसका मुझे सच-सच बताइये" ॥ २०—२२½ ॥

हिरण्यकशिपुरुवाच

शृणु चार्वङ्गि मे तथ्यां वाचं व्रतविनाशिनीम् ॥२३॥
क्रोधस्यातीव जननीं देवानां मुदवर्द्धनीम् ।
कैलासशिखरे देवि महदानन्दकानने ॥२४॥
व्याहरन्तौ शुभां वाणीं नमो नारायणेति च ।
वारद्वयं त्रयं चेति व्याहृतं वचनं शुभे ॥२५॥
तेन मे मनसि क्रोधो जातोऽतीव वरानने ।
कोदण्डे शरमाधाय यावन्मुञ्चामि भामिनि ॥२६॥
तावत्तौ पक्षिणौ भीतौ गतौ देशान्तरं त्वहम् ।
त्यक्त्वा व्रतं समायातो भाविकार्यबलेन वै ॥२७॥

हिरण्यकशिपु बोला—सुन्दरि ! सुनो, मैं वह बात तुम्हें सच-सच सुनाता हूँ, जिसके कारण मेरे व्रतका भङ्ग हुआ है। वह बात मेरे क्रोधको अत्यन्त बढ़ानेवाली और देवताओंको आनन्द देनेवाली थी। देवि ! कैलास शिखरपर जो महान् आनन्दकानन है, उसमें दो पक्षी 'ॐ नमो नारायणाय' इस शुभवाणीका उच्चारण करते हुए आ गये। शुभे ! उन्होंने [मुझे सुना-सुनाकर] दो बार, तीन बार उक्त वचनको दुहराया। वरानने ! पक्षियोंके उस शब्दको सुनकर मेरे मनमें बड़ा क्रोध हुआ और भामिनि ! उन्हें मारनेके लिये धनुषपर बाण चढ़ाकर ज्यों ही मैंने छोड़ना चाहा, त्यों ही वे दोनों पक्षी भयभीत हो उड़कर अन्यत्र चले गये। तब मैं भी भावीकी प्रबलतासे अपना व्रत त्यागकर यहाँ चला आया ॥ २३—२७ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युच्यमाने वचने वीर्यद्रावोऽभवत्तदा ।
ऋतुकाले तु सम्प्राप्ते जातो गर्भस्तदैव हि ॥२८॥
पुनः प्रवर्धमानस्य गर्भे गर्भस्य धीमतः ।
नारदस्योपदेशेन वैष्णवः समजायत ॥२९॥
तदग्रे कथयिष्यामि नृप श्रद्धापरो भव ।
तस्य वृत्तान्तमुक्तं प्रह्लादो जन्मकारणम् ॥३०॥
सोऽनर्पितागुरुकुले [illegible] गलिनाश्रये ।
यथा फलानि दर्शितानि पाठ्यमानान्यमोर्जितम् ॥३१॥
स वर्धमानो [illegible] पाठैः
[illegible] भक्त्या ।
बालोऽवसद्वहा गाह ॥ महात्मा
[illegible]

यथा चतुर्थं युगमात्मरमं
कामार्थमोक्षं किल कीर्तिदं हि ।
स बाललीलासु महान्त्यडिम्भै
र्महलिकाक्रीडनकेषु नित्यम् ॥३३॥
कथाप्रसङ्गेषु च कृष्णमेव
प्रोवाच यस्मात् स हि तत्स्वभावः ।
इत्थं शिशुत्वेऽपि विचित्रकारी
व्यवर्द्धतेशस्मरणामृताशः ॥३४॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—[हिरण्यकशिपु अपनी पत्नीके साथ] जब इस प्रकार बातें कर रहा था, उसी समय उसका वीर्य स्खलित हुआ। पत्नीका ऋतुकाल तो प्राप्त था ही, तत्काल गर्भ स्थापित हो गया। माताके उदरमें रहते हुए उस गर्भने बुद्धिमान् नारदजीके उपदेशके कारण विष्णुभक्त पुत्र उत्पन्न हुआ। भूप ! इस प्रसङ्गको आगे कहूँगा; इस समय जो प्रसङ्ग चल रहा है, उसे श्रद्धापूर्वक सुनो। हिरण्यकशिपुका वह भक्त पुत्र प्रह्लाद जन्मसे ही वैष्णव हुआ। जैसे पापपूर्ण कलियुगमें संसार-बन्धनसे मुक्त करनेवाली भगवान् श्रीहरिकी भक्ति बढ़ती रहती है, उसी प्रकार उस मलिन कर्म करने वाले असुर-वंशमें भी प्रह्लाद निर्मल भावसे रहकर दिनोंदिन बढ़ने लगा। वह बालक त्रिलोकीनाथ भगवान् विष्णुके चरणोंमें बढ़ती हुई भक्तिके साथ ही स्वयं भी बढ़ता हुआ शोभा पा रहा था। शरीर छोटा होनेपर भी उस बालकका हृदय महान् था, वह विष्णुभक्तिका प्रचार करता हुआ उसी तरह शोभा पाता था, जैसे चौथा युग (कलियुग) [आकारमें सब युगोंसे छोटा होकर भी] भगवद्भजनसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको देनेवाला तथा यशका विस्तार करनेवाला होता है। प्रह्लाद अन्य बालकोंके साथ गेंद, पट्टी बुलाने और खिलौने आदिसे मनोरञ्जन करते समय तथा बातचीतके प्रसङ्गमें भी सदा भगवान् विष्णुकी ही चर्चा करता था; क्योंकि उसका स्वभाव भगवन्मय हो गया था। इस प्रकार शैशवकालमें भी विचित्र कार्य करनेवाला वह प्रह्लाद भगवत्स्मरणरूपी अमृतका पान करता हुआ दिन-दिन बढ़ने लगा ॥ २८-३४ ॥

स एकदा दैत्येन्द्रः पदाति स्वीकृतः खलः ।
बालं गुरुगृहायातं ददर्श स्वायतेक्षणम् ॥३५॥
गृहीत्वा तु करे पुत्र पट्टिका या सुशोभना ।
मूर्ध्नि चक्राङ्किता पट्टी कृष्णनामाङ्किताऽऽदरात् ॥३६॥
तमाहूय मुदानिटा लालयन् प्राह पुत्रकम् ।
पुत्र ते जननी नित्यं सुधीमें त्वां प्रशंसति ॥३७॥
अथ तद्वद यत्किंचिद् गुरुवेश्मनि शिक्षितम् ।
विचार्यानन्दजननं सम्यगायाति तद्वद ॥३८॥

एक दिन बहुत-सी स्त्रियोंके बीचमें बैठे हुए दुष्ट दैत्यराज हिरण्यकशिपुने गुरुजीके घरसे आये हुए कमल-से सुन्दर नेत्रोंवाले अपने बालक पुत्र प्रह्लादको देखा। उसकी आँखें बड़ी-बड़ी और सुन्दर थीं तथा वह हाथमें पट्टी लिये हुए था। उसकी पट्टी बड़ी सुन्दर थी, उसके सिरेपर चक्रका चिह्न बना हुआ था और पट्टीपर आदरपूर्वक श्रीकृष्णका नाम लिखा गया था। उसे देख हिरण्यकशिपुको बड़ी प्रसन्नता हुई और उसने पुत्रको पास बुलाकर उसे प्यार करते हुए कहा—'बेटा ! तुम्हारी बुद्धिमती माता सदा तुम्हारी बड़ी प्रशंसा किया करती है। अतः तुमने गुरुजीके घर जो कुछ सीखा है, वह मुझसे कहो। पहले सोच लो, जो तुम्हें बहुत आनन्ददायी प्रतीत होता हो और भलीभाँति याद हो, वही पाठ सुनाओ' ॥ ३५-३८ ॥

अथाह पितरं हर्षात् प्रह्लादो जन्मवैष्णवः ।
गोविन्दं त्रिजगद्वन्द्यं प्रभुं नत्वा ब्रवीमि ते ॥३९॥
इति शत्रोः स्तवं श्रुत्वा पुत्रोक्तं स्वीकृतं खलः ।
क्रुद्धोऽपि तं वञ्चयितुं जहासोच्चैः प्रहृष्टवत् ॥४०॥
आलिङ्ग्य तनयं प्राह शृणु बाल हितं वचः ।
राम गोविन्द कृष्णेति विष्णो माधव श्रीपते ॥४१॥
एवं वदन्ति ये सर्वे ते पुत्र मम वैरिणः ।
शमितास्तु मयेदानीं त्वयेदं क्व श्रुतं वचः ॥४२॥

यह सुनकर जन्मसे ही विष्णुकी भक्ति करनेवाले प्रह्लादने प्रसन्नतापूर्वक पितासे कहा—'त्रिभुवनके वन्दनीय भगवान् गोविन्दको प्रणाम करके मैं अपना पढ़ा हुआ पाठ आपको सुनाता हूँ।' अपने पुत्रके मुखसे इस प्रकार शत्रुकी स्तुति सुनकर यद्यपि चिढ़ा हुआ वह दुष्ट दैत्य मन-ही-मन बहुत क्रुद्ध हुआ, तथापि प्रह्लादको उस बातको भुलानेके लिये वह प्रसन्न पुरुषकी भाँति जोर-जोरसे हँसने लगा। फिर पुत्रको गले लगाकर बोला—'बच्चा ! मेरी हितकर वचन

सुनो—बेटा ! जो लोग 'राम, कृष्ण, गोविन्द, विष्णो, माधव, श्रीपते !' इस प्रकार कहा करते हैं, वे सभी मेरे शत्रु हैं, ऐसे लोग मेरे द्वारा शासित—दण्डित हुए हैं। तुमने यह हरिनामसंकीर्तन इस अवस्थामें कहाँ सुन लिया ?" ॥ ३९-४२ ॥

पितुर्वचनमाकर्ण्य धीमानभयमयुत ।
प्रह्लादः प्राह हे आर्य मैवं ब्रूयाः कदाचन ॥४३॥
सर्वैश्वर्यप्रदं मन्त्रं धर्मादिपरिवर्धनम् ।
कृष्णेति यो नरो ब्रूयात् सोऽभयं विन्दते पदम् ॥४४॥
कृष्णनिन्दासमुत्थस्य अघस्यान्तो न विद्यते ।
राम माधव कृष्णेति स्मर भक्त्याऽऽत्मशुद्धये ॥४५॥
गुरवेऽपि ब्रवीम्येतद्यतो हितकरं परम् ।
शरणं व्रज सर्वेशं सर्वपापक्षयकरम् ॥४६॥

पिताकी बात सुनकर बुद्धिमान् प्रह्लाद निर्भय होकर बोला—आर्य ! आपको कभी ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये। जो मनुष्य सम्पूर्ण ऐश्वर्योंको देनेवाले तथा धर्म आदिकी वृद्धि करनेवाले 'कृष्ण' इस मन्त्रका उच्चारण करता है, वह अभय पदको प्राप्त कर लेता है। भगवान् कृष्णकी निन्दासे होनेवाले पापका कहीं अन्त नहीं है, अतः अब आप अपनी शुद्धिके लिये भक्तिपूर्वक 'राम, माधव और कृष्ण' इत्यादि नाम लेते हुए भगवान्का स्मरण करें। जो बात मैं आपसे कह रहा हूँ, यह सबसे बढ़कर हितसाधक है, इसीलिये मेरे गुरुजन होनेपर भी आपसे मैं निवेदन करता हूँ कि आप समस्त पापोंका क्षय करनेवाले सर्वेश्वर भगवान् विष्णुकी शरणमें जायँ ॥ ४३-४६ ॥

अथाह प्रकटक्रोधः सुरारिर्भर्त्सयन् सुतम् ।
केनाय बालको नीतो दशामेतां सुमध्यमाम् ॥४७॥
धिग् धिग्याहति दुष्पुत्र किं मे कृतमघं महत् ।
याहि याहि दुराचार पापिष्ठ पुरुषाधम ।
उक्त्वेति परितो वीक्ष्य पुनराह शिशोर्गुरम् ॥४८॥
बद्ध्वा चानीयतां दैत्यैः शूरैः क्रूरपराक्रमैः ।

प्रह्लादके यों कहनेपर देवशत्रु हिरण्यकशिपु अपने रोषको रोक न सका, उसने रोषको प्रकट करके पुत्रको फटकारते हुए कहा—'हाय ! हाय ! किसने इस बालकको अत्यन्त मध्यम कोटिकी अवस्थाको पहुँचा दिया ! रे दुष्ट पुत्र ! तुझे धिक्कार है, धिक्कार है ! तूने क्यों मेरा महान् अपराध किया ! ओ दुराचारी नीच पुरुष ! अरे पापिष्ठ ! तू यहाँसे चला जा, चला जा।' यों कहकर उसने अपने चारों ओर निहारकर फिर कहा—'क्रूरतम पराक्रमी शूर दैत्य जायँ और इसके गुरुको बाँधकर यहाँ ले आयें' ॥४७ ४८½॥

इति श्रुत्वा ततो दैत्यास्तमानीय न्यवेदयन् ।
धीमानूचे खलं भूप देवान्तक परीक्षताम् ॥४९॥
लीलयैव जितं देव त्रैलोक्यं निखिलं त्वया ।
असकृत्त्वं हि रोषेण किं क्रुद्धस्याल्पके मयि ॥५०॥

यह सुन दैत्योंने प्रह्लादके गुरुको वहाँ लाकर उपस्थित कर दिया। बुद्धिमान् गुरुने उस दुष्ट दैत्यराजसे विनयपूर्वक कहा—देवान्तक ! थोड़ा विचार तो कीजिये। आपने समस्त त्रिभुवनको अनायास ही अनेकों बार पराजित किया है, खेल खेलमें ही सबको जीता है, रोषसे कभी काम नहीं लिया। फिर मुझ-जैसे तुच्छ प्राणीपर क्रोध करनेसे क्या लाभ होगा ? ॥ ४९-५० ॥

इति मामवचः श्रुत्वा द्विजोक्तं प्राह दैत्यराट् ।
विष्णुस्तवं मम सुतं पापं बालमपीपठः ॥५१॥
उक्त्वेति तनयं प्राह राजा साम्नामलं सुतम् ।
ममात्मजस्य किं जाड्यं तव चैतद्द्विज कृतम् ॥५२॥
विष्णुपक्षैर्ध्रुवं धूर्तैर्मूढ नित्यं परित्यज ।
त्यज द्विजप्रसङ्गं हि द्विजसङ्गो ह्यशोभनः ॥५३॥
अस्मत्कुलोचितं तेजो यद्द्विजैस्तु तिरोहितम् ।
यस्य यत्सङ्गतिः पुंसो मणिवत्स्यात्स तद्गुणः ॥५४॥
स्वकुलर्द्ध्यै ततो धीमान् स्वयूथानेव संश्रयेत् ।
मत्सुतस्योचितं त्यक्त्वा विष्णुपक्षीयनाशनम् ॥५५॥
स्वयमेव भजन् विष्णुं मन्द किं त्वं न लज्जसे ।
त्रिविनाथस्य मे सूनुर्भूत्वान्यं नाथमिच्छसि ॥५६॥
शृणु वत्स जगच्चक्रं धर्मविद्यानिधिं प्रभुम् ।
यः शूरः स त्रियं भुङ्क्ते स प्रभुः स महेश्वरः ॥५७॥

ब्राह्मणसे इस बातको सुनकर दैत्यराजने [illegible] पापी ! तूने मेरे बालक पुत्रको विष्णुका स्तवन पढ़ा दिया है।' गुरुसे यों कहकर राजा हिरण्यकशिपुने [illegible] पुत्रसे शान्तिपूर्वक कहा—"बेटा ! [illegible]

बयालीसवाँ अध्याय

प्रह्लादपर हिरण्यकशिपुका कोप और प्रह्लादका वध करनेके लिये उसके द्वारा किये गये अनेक प्रयत्न

मार्कण्डेय उवाच

सोऽप्याशु नीतो गुरुवेश्म दैत्य-
दैत्येन्द्रसूनुर्हरिभक्तिभूषणः ।
अशेषविद्यानिवहेन भाक्
कालेन कौमारमवाप योगी ॥ १ ॥
प्रायेण कौमारमवाप्य लोकः
पुष्णाति नास्तिक्यमसद्रतिं च ।
तस्मिन् वयस्यस्य बहिर्विरक्ति-
र्भन्त्र्यद्भुतचित्रमजे च भक्तिः ॥ २ ॥
स सम्पूर्णविद्य त कदाचिद्दितिजेश्वरः ।
आनाय्य प्रणत प्राह प्रह्लाद विदितेश्वरम् ॥ ३ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—भगवान् विष्णुकी भक्ति ही जिसका भूषण है, वे दैत्यराजकुमार योगी प्रह्लादजी शीघ्र ही पाठके साथ गुरुके घर भेजे गये । वहाँ वे कालक्रमसे सम्पूर्ण विद्याओंके ज्ञानके साथ कुमारावस्थाको प्राप्त हुए । साधारण लोग कौमार अवस्थाको पाकर प्रायः नास्तिक विचार और बुरे आचार-व्यवहारके पोषक बन जाते हैं, परंतु उसी उम्रमें प्रह्लादको बाह्य विषयोंसे वैराग्य हुआ और भगवानमें उनकी भक्ति हो गयी—यह अद्भुत बात है । तदनन्तर जब प्रह्लादने गुरुके यहाँ अपनी पढ़ाई समाप्त कर ली, तब एक दिन दैत्यराजने उन्हें अपने पास बुलवाया और ईश्वर-तत्त्वके ज्ञाता प्रह्लादको अपने सामने प्रणाम करके खड़े देख उनसे कहा ॥ १–३ ॥

बाल्यज्ञाननिधेर्बाल्यान्मुक्तोऽसि सुरसूदन ।
इदानीं भ्रानसे भास्वान् नीहारादिव निर्गत ॥ ४ ॥
बाल्ये वय न त्वमिव द्विजैर्जाड्याय मोहिताः ।
वयमा वर्धमानेन पुत्रकैर्वं सुशिक्षिता ॥ ५ ॥
तदद्य त्वयि धुर्येऽहं समकण्टकराज्यम् ।
विन्यस्य त्वां विरधृतो सुखी पश्यन् श्रियं तव ॥ ६ ॥
यदा यदा हि नैपुण्य पिता पुत्रस्य पश्यति ।
तदा तदाऽऽधिं त्यक्त्वा तु महत्सौख्यमवाप्नुयात् ॥ ७ ॥
गुरुश्चातीव नैपुण्य ममाग्रेऽवर्णयत्तव ।
न चित्र पुत्र तच्छ्रोतु किं तु मे वाञ्छित श्रुती ॥ ८ ॥
नेत्रयो शत्रुदारिद्र्य श्रोत्रयो सुतसूक्तयः ।
युद्धरण च गात्रेषु मायिना च महोत्सव ॥ ९ ॥

सुरसूदन ! तुम अज्ञानकी निधिरूपा बाल्यावस्थासे मुक्त हो गये—यह बहुत अच्छा हुआ । इस समय तुम कुहिरेसे निकले हुए सूर्यकी भाँति अपने तेजसे प्रकाशित हो रहे हो । पुत्र ! बचपनमें तुम्हारी ही तरह हमें भी जड-बुद्धि सिखानेके लिये ब्राह्मणोंने मोहित कर रखा था, किंतु अवस्था बढ़नेपर जब हम समझदार हुए, तब इस प्रकार अपने कुलके अनुरूप सुन्दर शिक्षा ग्रहण कर सके थे । अतः शत्रुरूपी काँटोंसे युक्त इस राज्य शासनके भारको, जिसे मैं बहुत दिनोंसे धारण कर रहा हूँ, अब तुझ सामर्थ्यवान् पुत्रपर रखकर मैं तुम्हारी राज्यलक्ष्मीको देखते हुए सुखी होना चाहता हूँ । पिता जब-जब अपने पुत्रकी निपुणता देखता है, तब-तब अपनी मानसिक चिन्ता त्यागकर महान् सुखका अनुभव करता है । तुम्हारे गुरुने भी मेरे सामने तुम्हारी योग्यताका बड़ा बखान किया है । यह तुम्हारे लिये कोई आश्चर्यकी बात नहीं है । आज मेरे कान तुम्हारी कुछ बातें सुनना चाहते हैं । नेत्रोंके सामने शत्रुकी दरिद्रता देखना, कानोंसे पुत्रकी सुन्दर बातोंका पड़ना और अङ्गोंसे युद्धके आघातको धारण होना—यह सब ऐश्वर्यवान् वीरों अथवा मायावी दैत्योंके लिये महान् उत्सवके समान है ॥ ४–९ ॥

श्रुत्वेति निकृतिप्रज्ञ दैत्याधिपतिमन्ततः ।
जगाद योगी निश्शङ्क प्रह्लाद प्रणतो गुरुम् ॥ १० ॥

उस समय दैत्यराजके ये शठतापूर्ण वचन सुनकर योगी प्रह्लादने पिताको प्रणाम करके निःशङ्कभावसे कहा—॥ १० ॥

सत्यमुक्त श्रोत्रयो सत्य महाराज महोत्सव ।
किंतु तद्वैष्णवीर्वाचो मुक्त्वा नान्या निराग्येन ॥ ११ ॥

तुझमें यह जड-बुद्धि कैसे आ सकती है ? यह तो इन ब्राह्मणोंकी ही करतूत है। मूर्ख बालक ! आजसे तू सदा विष्णुके पक्षमें रहनेवाले धूर्त ब्राह्मणोंका साथ छोड़ दे, ब्राह्मणमात्रका सङ्ग त्याग दे, ब्राह्मणोंकी संगति अच्छी नहीं होती, क्योंकि इन ब्राह्मणोंने ही तेरे उस तेजको छिपा दिया, जो हमारे कुलके लिये सर्वथा उचित था। जिस पुरुषको जिसकी संगति मिल जाती है, उसमें उसीके गुण आने लगते हैं—ठीक उसी तरह, जैसे मणि कीचड़में पड़ी हो तो उसमें उसके दुर्गन्ध आदि दोष आ जाते हैं। अतः बुद्धिमान् पुरुषको उचित है कि वह अपने कुलकी समृद्धिके लिये आत्मीय जनोंका ही आश्रय ले। बुद्धिहीन बालक ! मेरे पुत्रके लिये तो उचित कर्तव्य यह है कि वह विष्णुके पक्षमें रहनेवाले लोगोंका नाश करे, परंतु तू इस उचित कार्यको त्यागकर इसके विपरीत स्वयं ही विष्णुका भजन कर रहा है ! अतः तो सही, क्या यों करते हुए तुझे लज्जा नहीं आती ? अरे ! मुझ सम्पूर्ण जगत्‌के सम्राट्‌का पुत्र होकर तू दूसरेको अपना स्वामी बनाना चाहता है ? बेटा ! मैं तुझे संसारका तत्त्व बताता हूँ, सुन, यहाँ कोई भी अपना स्वामी नहीं है। जो शूरवीर है, वही लक्ष्मीका उपभोग करता है तथा वही प्रभु है, वही महेश्वर है ॥ ५१–५७ ॥

स देवः सकलाध्यक्षो यथाहं त्रिजगज्जयी ।
त्यज जाड्यमतः शौर्यं भजस्व स्वकुलोचितम् ॥५८॥
अन्येऽपि त्वां हनिष्यन्ति वदिष्यन्ति जनास्त्विदम् ।
असुरोऽयं सुरान् स्तौति मार्जार इव मूषकान् ॥५९॥
द्वेष्यान् शिखीव फणिनो दुर्निमित्तमिदं ध्रुवम् ।
लब्ध्वापि महदैश्वर्यं लाघवं यान्त्यबुद्धयः ॥६०॥
यथायं मत्सुतः स्तुत्यः स्तावकान् स्तौति नीचवत् ।
रे मूढ दृष्ट्वाप्यैश्वर्यं मम मूर्खे पुरो हरिम् ॥६१॥
अस्मद्दास्य तु हरेः स्तुतिरेषा विडम्बना ।

"वही सबका अध्यक्ष देवता है, जैसा कि तीनों लोकोंपर विजय पानेवाला मैं हूँ। इसलिये तू अपनी यह जड़ता त्याग दे और अपने कुलके लिये उचित वीरताका आश्रय ले। तेरी यह कायरता देखकर दूसरे लोग भी तुझे मारेंगे और कहेंगे कि 'अरे ! यह असुर होकर भी देवताओंकी उसी प्रकार स्तुति करता है, जैसे बिल्ली चूहेकी स्तुति करे और मोर अपने द्वेषपात्र साँपोंकी प्रार्थना करे। ऐसा करना अवश्य ही अनिष्टका सूचक है। मूर्ख प्राणी महान् ऐश्वर्य पाकर भी [अपने खोटे कर्मोंके द्वारा] नीचे गिर जाते हैं, जैसा मेरा पुत्र प्रह्लाद, जो स्वयं स्तुतिके योग्य था, आज नीच जनोंकी भाँति उन लोगोंकी स्तुति कर रहा है, जो स्वयं हमारी स्तुति करनेवाले हैं। रे मूर्ख ! तू मेरा ऐश्वर्य देखकर भी मेरे सामने ही हरिका नाम ले रहा है ? यह हरि हम सम्मानके योग्य नहीं है, उसकी स्तुति विडम्बना मात्र है" ॥ ५८–६१½ ॥

इत्युक्त्वा तनयं भूप जातक्रोधो भयानकः ॥६२॥
जिह्मं निरीक्ष्य च प्राह तद्गुरुं कम्पयन् रुषा ।
याहि याहि द्विजपशो साधु शाधि सुतं मम ॥६३॥

प्रसाद इत्येष वदन् स विप्रो
जगाम गेहं खलराजसेवी ।
विष्णुं विसृज्यान्वमरच्च दैत्यं
किं वा न कुर्युर्भरणाय लुब्धाः ॥६४॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे नृसिंहप्रादुर्भावे एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४१॥

भूप ! अपने पुत्रसे इस प्रकार कहकर वह इतना कुपित हुआ कि उसका स्वरूप भयानक हो गया, फिर प्रह्लादके गुरुको टेढ़ी नजरसे देखकर उन्हें अपने रोषसे कँपाता हुआ बोला—'मूर्ख ब्राह्मण ! यहाँसे चला जा, चला जा। अबकी बार मेरे पुत्रको अच्छी शिक्षा देना।' दुष्ट राजाकी सेवा करनेवाला वह ब्राह्मण 'बड़ी कृपा हुई' यों कहता हुआ घर चला गया और विष्णुका भजन त्यागकर दैत्यराज (हिरण्यकशिपु) का अनुसरण करने लगा। सच है, लोभी मनुष्य अपना पेट पालनेके लिये क्या नहीं कर सकते ! ॥ ६२–६४ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'नरसिंहावतार' नामक इकतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४१ ॥

नीति. सूक्तिः कथा श्राव्याः श्राव्यकाव्यं च तद्वच' ।
यत्र सस्मृतिदु खौघकक्षाग्निर्गीयते हरि. ॥१२॥
अचिन्त्य स्तूयते यत्र भक्त्या भक्तेप्सितप्रदः ।
अर्थशास्त्रेण किं तात यत्र सस्मृतिमतति. ॥१३॥
शास्त्रश्रमेण किं तात येनात्मैव निहस्यते ।
वैष्णवं वाङ्मय तस्माच्छ्राव्य सेव्यं च सर्वदा ॥१४॥
मुमुक्षुभिर्भवक्लेशान्नो चेन्नैव सुखी भवेत् ।

'महाराज ! आपका यह कथन सत्य है कि अच्छी बातें सुनना कानोंके लिये महान् उत्सवके समान है, किंतु व बातें भगवान् विष्णुसे सम्बन्ध रखनेवाली हों, तभी ऐसा होता है। उनको छोड़कर दूसरी बातें सुननेका विचार भी नहीं करना चाहिये । जो ससारके दु'खसमुदायरूपी तृणोंको भस्म करनेके लिये अग्निके समान हैं, उन भगवान् विष्णुका जिसमें गुणगान किया जाता हो, वही वचन नीतियुक्त है, वही सूक्ति (सुन्दर वाक्य) है, वही सुनने योग्य कथा और श्रवण करने योग्य काव्य है । जिसमें भक्तोंको अभीष्ट वस्तु देनेवाले अचिन्त्य परमेश्वरका भक्तिपूर्वक स्तवन किया जाता हो, वही शास्त्र है । तात ! उस अर्थशास्त्रसे क्या लाभ, जिसमें ससार-चक्रमें डालनेवाली ही बातें कही गयी हैं । पिताजी ! उस शास्त्रमें परिश्रम करनेसे क्या सिद्ध होगा, जिससे आत्माका ही हनन होता है, इस लिये मुमुक्षु पुरुषोंको सदा वैष्णव शास्त्रोंका ही श्रवण और सेवन करना चाहिये । अन्यथा सांसारिक कष्टसे छुटकारा नहीं मिलता और न मनुष्य सुखी ही हो पाता है ॥ ११–१४½ ॥

इति तस्य वच' शृण्वन् हिरण्यकशिपुस्तदा ॥१५॥
जज्वाल दैत्यराट् तप्तसर्पिरद्भिरिवाधिकम् ।
प्रह्लादस्य गिर पुण्या जनसंसृतिनाशिनीम् ॥१६॥
नामृष्यतासुर. क्षुद्रो घूको भानुप्रभामिव ।
परितो वीक्ष्य सम्प्राह क्रुद्धो दैत्यभटानिदम् ॥१७॥

जिस प्रकार तपाया हुआ घी जलके छींटे पड़नेसे और अधिक प्रज्वलित हो उठता है, वैसे ही दैत्यराज हिरण्यकशिपु प्रह्लादकी उपर्युक्त बातें सुनकर क्रोधसे जल उठा । जैसे उल्लू सूर्यकी प्रभा नहीं देख सकता, उसी प्रकार वह क्षुद्र असुर जीवके ससार-बन्धनको नष्ट करनेवाली प्रह्लादकी पवित्र वाणी न सह सका । उस क्रोधीने चारों ओर देखकर दैत्य वीरोंसे कहा ॥ १५–१७ ॥

हन्यतामेष कुटिल' शस्त्रपातै' सुभीषणै' ।
उत्कृत्योत्कृत्य मर्माणि रक्षितास्तु हरि. स्वयम् ॥१८॥
पश्यत्विदानीमेवैष हरिसंस्तवजं फलम् ।
काकोलकङ्कगृध्रेभ्यो ह्यस्याङ्ग सविभज्यताम् ॥१९॥

'अरे ! इस कुटिलको शस्त्रोंके भयकर आघातसे मार डालो, इसके मर्मस्थानोंके टुकड़े टुकड़े कर दो। आज इसका भगवान् स्वय आकर इसकी रक्षा करें । विष्णुकी स्तुति करनेका फल यह आज इसी समय अपनी आँखों देखे । इसका अङ्ग-अङ्ग काटकर कौओं, कंकों और गिद्धोंमें बाँट दो' ॥ १८ १९ ॥

अथोद्धृतास्त्रा दैतेयास्तर्जयन्त प्रगर्जितै' ।
अच्युतस्य प्रियं भक्त त जघ्नु. पतिनोदिता.
प्रह्लादोऽपि प्रभु नत्वा ध्यानवर्म समाददे ।
अकृत्रिमरस भक्त तमित्थं ध्याननिश्चलम् ॥२१॥
ररक्ष भगवान् विष्णु प्रह्लादं भक्तदुःखहृत् ।
अथालब्धपदान्यस्य गात्रे शस्त्राणि रक्षसाम् ॥२२॥
नीलाब्जशकलानीव पेतुश्छिन्नान्यनेकधा ।
किं प्राकृतानि शस्त्राणि करिष्यन्ति हरिप्रिये ॥२३॥
तापत्रयमहास्त्रौघ सर्वोऽप्यसाद् निमेति वै ।
पीडयन्ति जनास्तावद् व्याधयो राक्षसा ग्रहा' ॥२४॥
यावद् गुहाशय विष्णु सूक्ष्म चेतो न विन्दति ।
ते तु भग्नास्त्रशकलै प्रतीपोत्थैरितस्तत ॥२५॥
हन्यमाना न्यवर्तन्त सद्य फलदर्दैरिव ।
न चिरं विबुधाना तदवाना निसयाग्रहम् ॥२६॥

तब अपने स्वामी हिरण्यकशिपुद्वारा प्रेरित दैत्यगण अपनी विकट गर्जनासे डराते हुए, हाथमें शस्त्र लेकर भगवान्के प्रिय भक्त उन प्रह्लादजीको मारने लगे। प्रह्लादने भी भगवान्को नमस्कार करके ध्यानरूपी कवच ग्रहण किया । तब भक्तोंके दुःख दूर करनेवाले भगवान् विष्णु स्वभावत प्रेम करनेवाले भक्त प्रह्लादको इस प्रकार ध्यानमें स्थिर देख उसकी रक्षा करने लगे । फिर तो राक्षसोंके चलाये हुए अस्त्र शस्त्र प्रह्लादके शरीरमें स्पर्श किये बिना ही नील-कमलके

[इन]की भाँति खण्ड-खण्ड होकर गिर जाने लगे। भला, [प्रा]कृत शस्त्र भगवान्‌के प्रिय भक्तका क्या कर सकते हैं। [जि]नसे तो सम्पूर्ण त्रितापरूपी महान् अस्त्रसमूह भी भय मानता [है।] व्याधि, ग्रास और ग्रह—ये सभीतक मनुष्योंको पीड़ा [प]हुँचाते हैं, जबतक उनका चित्त हृदय-गुहामें सूक्ष्मरूपसे [स्थि]त भगवान् विष्णुको नहीं प्राप्त कर लेता। भक्तके अपमानका [मा]नो तत्काल फल देनेवाले वे सभी अस्त्र-शस्त्र उलट चलकर [दैत्यों]का प्रहार करने लगे। इनसे पीड़ित होनेके कारण वे [इध]र उधर भाग गये। विद्वानोंकी दृष्टिमें ऐसा होना [को]ई आश्चर्यकी बात नहीं है, अज्ञानी जनोंको ही इस [ब]ातमें विस्मय हो सकता है॥ २०—२६॥

[वैष्ण]व बलमालोक्य राजा नून भयं दधौ।
[प्रह्लाद]स्य वधोपाय चिन्तयन् स सुदुर्मतिः॥२७॥
[सम]ादिशत् समाहूय दन्दशूकान् सुदुर्विषान्।
[अ]शस्त्रवधयोग्योऽयमसयो हरिवोपकृत्॥२८॥
[तस्मा]द् भवद्भिरचिराद् हन्यतां गरलायुधाः।
[हिर]ण्यकशिपोः श्रुत्वा वचनं ते भुजङ्गमाः।
आज्ञां जगृहुर्मूर्ध्ना प्रहर्षादीश्वरवर्तिनः॥२९॥

वैष्णवोंका बल देखकर राजा हिरण्यकशिपुको अवश्य महान् भय हुआ, किंतु उस दुर्बुद्धिने पुनः प्रह्लादके [वध]का उपाय सोचते हुए, अत्यन्त भयंकर विषवाले [सर्पों]को बुलाकर उन्हें आदेश दिया—'गरलायुधो! विष्णुको [प्रिय कर]नेवाला यह निरङ्कुश बालक किसी शस्त्रसे नहीं [मार]ा जा सकता, अतः तुम सभी मिलकर इसे अति शीघ्र [मार] डालो।' हिरण्यकशिपुकी यह बात सुनकर उसकी [आज्ञा]का माननेवाले सभी सर्पोंने उसके आदेशको हर्षपूर्वक [शिरो]धार्य किया॥ २७—२९॥

अथ ज्वलद्दशनकरालदंष्ट्रिण
स्फुटस्फुरद्दशनसहस्रभीषणाः।
अकम्पकं हरिमहिम्यकम्पकं
हरिप्रियं द्रुततरमापतन्रुषा॥३०॥
गरायुधास्त्वचमपि भेत्तुमल्पिकां
वपुष्यजस्मृतिबलदुर्भिदाकृते।
अलं न ते हरिवपुषं तु केवलं
निदश्य तं निजदशनैर्विना कृताः॥३१॥

ततः सवत्क्षतजनिषण्णमूर्तयो
द्विधाकृताद्भुतदशना भुजङ्गमाः।
समेत्य ते दितिजपतिं व्यजिज्ञपन्
निनिःश्वसत्प्रचलफणा भुजङ्गमाः॥३२॥

तदनन्तर जिनके दाँत जिससे जल रहे हैं तथा जिनकी दाढ़ें विकराल हैं, जो स्फुट दिखायी देनेवाले हजारों चमकीले दाँतोंके कारण भयानक जान पड़ते हैं, ऐसे सर्पगण क्रोधसे फुफकारते हुए बड़े वेगसे उस हरिभक्तके ऊपर टूट पड़े। भगवान्‌के स्मरणके बलसे जिनका आकार दुर्भेद्य हो गया था, उन प्रह्लादजीके शरीरका थोड़ा-सा चमड़ा भी काटनेमें वे विषधर सर्प समर्थ न हो सके। इतना ही नहीं, जिनका शरीर भगवन्मय हो गया था, उन प्रह्लादजीको केवल डँसने मात्रसे वे सर्प अपने सारे दाँत खो बैठे। तदनन्तर रक्तकी धारा बहनेसे जिनका आकार विषादग्रस्त हो रहा है, जिनके अद्भुत दाँतोंके दो-दो टुकड़े हो गये हैं तथा बार-बार उच्छ्वास लेनेके कारण जिनके फन चञ्चल हो रहे हैं, उन भुजगोंने परस्पर मिलकर दैत्यराज हिरण्यकशिपुको सूचित किया—॥ ३०—३२॥

प्रभो महीध्रानपि भस्मशेषान्
त्वसिन्नशक्तास्तु तदैव वध्याः।
महानुभावस्य तवात्मजस्य
वधे नियुक्ता दशनैर्विना कृताः॥३३॥
इत्थं द्विजिह्वाः कठिनं निवेद्य
ययुर्विसृष्टाः प्रभुणाकृतार्थाः।
विचिन्तयन्तः पृथुविस्मयेन
प्रह्लादसामर्थ्यनिदानमेव॥३४॥

'प्रभो! हम पर्वतोंको भी भस्म करनेमें समर्थ हैं, यदि उनमें हमारी शक्ति न चले तो आप तत्काल हमारा वध कर सकते हैं। परंतु आपके महानुभाव पुत्रका वध करनेमें लगाये जाकर तो हम अपने दाँतों भी हाथ धो बैठे।' इस प्रकार बड़ी कठिनाईसे निवेदन करके स्वामी हिरण्यकशिपुके आदेश देनेपर भी असफल होनेसे भयभीत हुए वे सर्प अत्यन्त आश्चर्यके साथ प्रह्लादके अद्भुत सामर्थ्यका क्या कारण है, इसका विचार करते हुए चले गये॥ ३३-३४॥

१ विष ही जिनका अस्त्र है उन्हें गरलायुध (सर्प) कहा है।

मार्कण्डेय उवाच

अथासुरेश सचिवैर्विचार्य
निश्चित्य सूनु तमदण्डसाध्यम् ।
आहूय साम्ना प्रणत जगाद
वाक्य सदा निर्मलपुण्यचित्तम्
प्रह्लाद दुष्टोऽपि निजाङ्गजातो
न वध्य इत्यद्य कृपा ममाभून् ॥३५॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—इसके बाद असुरराज हिरण्यकशिपुने मन्त्रियोंके साथ विचारकर अपने पुत्रको दण्डसे अजेय मानकर उसे शान्तिपूर्वक अपने पास बुलाया और जब वह आकर प्रणाम करके खड़ा हो गया, तब उस निर्मल एवं पवित्र हृदयवालेसे अपने पुत्रसे कहा—'प्रह्लाद ! अपने शरीरसे यदि दुष्ट पुत्र भी उत्पन्न हो जाय तो वह वधके योग्य नहीं है, यह सोचकर अब तुझपर मुझे दया आ गयी है' ॥ ३५ ॥

ततस्तूर्णं समागत्य दैत्यराजपुरोहिताः ।
मूढा प्राञ्जलय प्राहुर्द्विजा शास्त्रविशारदा ॥३६॥
त्रैलोक्य कम्पते देव भृशं त्वय्यभिकाङ्क्षिणि ।
प्रह्लादस्त्वा न जानाति क्रुद्ध स्वल्पो महाबलम् ॥३७॥
तदल देव रोषेण दया कर्तुं त्वमर्हसि ।
पुत्र कुपुत्रतामेति न मातापितरौ क्वचित् ॥३८॥

तत्पश्चात् तुरंत ही वहाँ दैत्यराजके पुरोहित आये । शास्त्रविशारद होनेपर भी वे मूढ हो रहे थे । उन ब्राह्मणोंने हाथ जोड़कर कहा—'देव ! तुम्हारी युद्धविषयक इच्छा होने ही सारा त्रिभुवन थरथर काँपने लगता है । यह अल्प बलवाला प्रह्लाद कुपित हुए आप महान् बलशालीको नहीं जानता । अतः देव ! आपको क्रोधका परित्याग करके इसपर दया करनी चाहिये; क्योंकि पुत्र भले ही कुपुत्र हो जाय, परंतु माता पिता कभी कुमाता अथवा कुपिता नहीं होते' ॥ ३६–३८ ॥

उक्त्वेति कुटिलप्रज्ञ दैत्य दैत्यपुरोहिता ।
आदाय तदनुज्ञात प्रह्लाद धीधन ययु ॥३९॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे नरसिंहप्रादुर्भावे

द्विचत्वारिंशोऽध्याय ॥४२॥

दैत्यराजके पुरोहितोंने उस दुर्बुद्धि दैत्य हिरण्यकशिपुसे यों कहकर उसकी आज्ञासे प्रह्लादको साथ लेकर अपने भवनको चले गये ॥ ३९ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'श्रीनरसिंहावतारविषयक' बयालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४२ ॥

तैंतालीसवाँ अध्याय

प्रह्लादजीका दैत्यपुत्रोंको उपदेश देना, हिरण्यकशिपुकी आज्ञासे प्रह्लादका समुद्रमें डाला जाना तथा वहीं उन्हें भगवान्‌का प्रत्यक्ष दर्शन होना

मार्कण्डेय उवाच

अथ स गुरुगृहेऽपि वर्तमान-
सकलविदच्युतसक्तपुण्यचेता ।
जड इव विचचार बाह्यकृत्ये
सततमनन्तमय जगत्प्रपश्यन् ॥ १ ॥
सहगुरुकुलवासिन कदाचि-
च्छ्रुतिविरता ह्यवदन् समेत्य बाला ।
तव चरितमहो विचित्रमेतत्
क्षितिपतिपुत्र यतोऽस्य भोगलुब्ध ।
हृदि किमपि विचिन्त्य हृष्टरोमा
भवसि मदा च वदाद्य यद्यगुह्यम् ॥ २ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—तदनन्तर सकल शास्त्रोंके ज्ञाता प्रह्लादजी गुरुके घरमें रहकर भी अपने पवित्र मनको भगवान् विष्णुमें लगाये रहनेके कारण सम्पूर्ण जगत्‌को नारायणका स्वरूप समझकर बाह्य—लौकिक कर्मोंमें जडकी भाँति व्यवहार करते हुए विचरते थे । एक दिन, उनके साथ ही गुरुकुलमें निवास करनेवाले बालक पाठ-श्रवण बंद करके, एकत्र हो, प्रह्लादसे कहने लगे—'राजकुमार ! अहो ! आपका चरित्र बड़ा ही विचित्र है, क्योंकि आपने विषय भोगोंका लोभ त्याग दिया है । प्रिय ! आप अपने हृदयमें किसी अनिर्वचनीय वस्तुका चिन्तन करके सदा पुलकित रहते हैं । यदि वह वस्तु छिपानेयोग्य न हो तो हमें भी बताइये' ॥ १–२ ॥

इति गदितवत' स मन्त्रिपुत्रा
नवददिद नृप सर्ववत्सलत्वात् ।
शृणुत सुमनस' सुरारिपुत्रा
यदहमनन्यरतिर्वदामि पृष्ट' ॥ ३ ॥

धननगतरुणीविलासरम्यो
भवविभव' किल भाति यस्तमेनम् ।
विमृशत सुबुधैस्तप सेव्यो
द्रुतमथ वा परिवर्ज्य एव दूरात् ॥ ४ ॥

प्रथममिह विचार्यता यदम्बा-
जठरगतैरनुभूयते सुदु खम् ।
सुकुटिलतनुभिस्तदग्नितप्तै-
र्विविधपुराजननानि सस्मरद्भि ॥ ५ ॥

नृप ! प्रह्लादजी सबपर स्नेह करनेवाले थे, अत इस प्रकार पूछते हुए मन्त्रिकुमारोंसे व यों बोले—'हे दैत्यपुत्रो ! एकमात्र भगवान्‌से अनुराग रखनेवाला मैं तुम्हारे पूछनेपर जो कुछ भी कह रहा हूँ, उसे तुमलोग प्रसन्नचित्त होकर सुनो। यह जो धन, जन और स्त्री विलास आदिसे अत्यन्त रमणीय प्रतीत होनेवाला सांसारिक वैभव दृष्टिगोचर हो रहा है, इसपर विचार करो। क्या यह लोक-वैभव विद्वानोंके सेवन करनेयोग्य है या जल्दी-जल्दी दूरसे ही त्याग देनेयोग्य ? अहो ! जिनके अङ्ग गर्भाशयमें टेढ़े-मेढ़े पड़े हैं, जो जठरानलकी ज्वालासे संतप्त हो रहे हैं तथा जिन्हें अपने अनेक पूर्वजन्मोंका स्मरण हो रहा है, वे माताके गर्भमें पड़े हुए जीव जिस महान् कष्टका अनुभव करते हैं, पहले उसपर तो विचार करो ॥३–५॥

कारागृह दस्युरिवास्मि बद्धो
जरायुणा विट्कृमिमूत्रगेहे ।
पश्यामि गर्भेऽपि सकृन्मुकुन्द-
पादाब्जयोरस्मरणेन कष्टम् ॥ ६ ॥

तस्मात्सुख गर्भशयस्य नास्ति
बाल्ये तथा यौवनवार्द्धके वा ।
एव भवो दु खमय सदैव
सेव्य कथ दैत्यसुता प्रबुद्धै ॥

एव भवेऽस्मिन् परिमृग्यमाणा
वीक्षामहे नैव सुखाशलेशम् ॥ ७ ॥

यथा यथा साधु विचारयाम
स्तथा तथा दु खतर च विद्म ।
तस्माद्भवेऽस्मिन् किल चारुरूपे
दु खाकरे नैव पतन्ति सन्त' ॥ ८ ॥

पतन्त्यथोऽतत्त्वविद सुमूढा
वह्नौ पतगा इव दर्शनीये ।
यद्यस्ति नान्यच्छरण सुखाय
युक्त तदैतत्पतन सुखाभे ॥ ९ ॥

अविन्दतामन्नमहो कृशाना
युक्त हि पिण्याकतुषादिभक्षणम् ।
अस्ति त्वज श्रीपतिपादपद्म
द्वन्द्वार्चनप्राप्यमनन्तमायम् ॥१०॥

"गर्भमें पड़ा हुआ दुःखी जीव कहता है—'हाय ! कारागारमें बँधे हुए चोरकी भाँति मैं विष्ठा, कृमियों और मूत्रसे भरे हुए इस [देहरूपी] घरमें जरायु (झिल्ली) से बँधा पड़ा हूँ। मैंने जो एक बार भी भगवान् मुकुन्दके चरणारविन्दोंका स्मरण नहीं किया, उसीके कारण होनेवाले कष्टको आज मैं इस गर्भमें भोग रहा हूँ।' अत गर्भमें रहनेवाले जीवको बचपन, जवानी और बुढ़ापेमें भी सुख नहीं है। दैत्यकुमारो ! जब इस प्रकार यह संसार सदा दुःखमय है, तब विज्ञ पुरुष इसका सेवन कैसे कर सकते हैं ? इस तरह इस संसारमें ढूँढ़नेपर हमें सुखका लेशमात्र भी दिखायी नहीं देता। हम जैसे-जैसे इसपर ठीक विचार करते हैं, वैसे-ही-वैसे इस जगत्‌को अत्यन्त दुःखमय समझते हैं। इसलिये ऊपरसे सुन्दर दिखायी देनेवाले इस दुःखपूर्ण संसारमें साधु पुरुष आसक्त नहीं होते। जो तत्त्वज्ञानसे रहित अत्यन्त मूढ़ लोग हैं, वे ही देखनेमें सुन्दर दीपकपर गिरकर नष्ट होनेवाले पतंगोंकी भाँति सांसारिक भोगोंमें आसक्त होते हैं। यदि सुखके लिये कोई दूसरा सहारा न होता, तब तो सुखमय-सा प्रतीत होनेवाले इस जगत्‌में आसक्त होना उचित था—जैसे अन्न न पानेके कारण जो अत्यन्त दुबले हो रहे हैं, उनके लिये खली-भूसा आदि खा लेना ठीक हो सकता है, परंतु भगवान् लक्ष्मीपतिके युगल चरणारविन्दोंकी [ ] आदि, अविनाशी, अनन्त, [ ]) ।

तो है ही, फिर इस क्षणिक संसारका आश्रय क्यों लिया जाय ? ॥ ६–१० ॥

अक्लेशत प्राप्यमिद विसृज्य
महासुख योऽन्यसुखानि वाञ्छेत् ।
राज्य करस्थ स्वमसौ विसृज्य
भिक्षामटेद्दीनमना सुमूढ ॥११॥
तथार्च्यते श्रीपतिपादपद्म
द्वन्द्व न वस्त्रैर्न धनैं श्रमैर्न ।
अनन्यचित्तेन नरेण किंतु
उच्चार्यते केशव माधवेति ॥१२॥
एव भवं दु खमय विदित्वा
दैत्यात्मजा साधु हरि भजध्वम् ।
एव जनो जन्मफल लभेत
नो चेद्भवाब्धौ प्रपतेदधोऽध ॥१३॥
तस्माद्भवेऽस्मिन् हृदि शङ्खचक्र-
गदाधर देवमनन्तमीड्यम् ।
स्मरन्तु नित्य वरद मुकुन्द
मद्भक्तियोगेन निवृत्तकामा ॥१४॥
अनास्तिकत्वात् कृपया भवद्भ्यो
वदामि गुह्यं भवसिन्धुरस्था ।
सर्वेषु भूतेषु च मित्रभावं
भजन्त्वय सर्वगतो हि विष्णु ॥१५॥

"जो बिना कष्टके ही प्राप्त होनेयोग्य इस महान् सुख (परमेश्वर) को त्यागकर अन्य तुच्छ सुखोंकी इच्छा करता है, वह दीनहृदय मूर्ख पुरुष मानो हाथमें आये हुए अपने राज्यको त्यागकर भीख माँगता है । भगवान् लक्ष्मीपतिके युगल-चरणारविन्दोंका यथार्थ पूजन वस्त्र, धन और परिश्रमसे नहीं होता, किंतु मनुष्य यदि अनन्यचित्त होकर 'केशव' 'माधव' आदि भगवन्नामोंका उच्चारण करे तो वही उनकी वास्तविक पूजा है । दैत्यकुमारो ! इस प्रकार संसारको दु खमय जानकर भगवान्‌का ही भलीभाँति भजन करो । इस प्रकार करनेसे ही मनुष्यका जन्म सफल हो सकता है, नहीं तो (भगवद्भजन न करनेके कारण) अज्ञानी पुरुष भवसागरमें ही नीचेसे और नीचे स्तरमें ही गिरता रहता है । इसलिये इस संसारमें समस्त कामनाओंसे रहित हो तुम सभी लोग अपने हृदयके भीतर विराजमान शङ्ख-चक्र-गदाधारी, वरदाता, अविनाशी स्तवनीय भगवान् मुकुन्दका सच्चे भक्तिभावसे सदा चिन्तन करो । भवसागरमें पड़े हुए दैत्यपुत्रो ! तुमलोग नास्तिक नहीं हो, इसलिये दयावश मैं तुमसे यह गोपनीय बात बतलाता हूँ—समस्त प्राणियोंके प्रति मित्रभाव रक्खो; क्योंकि सबके भीतर भगवान् विष्णु ही विराजमान हैं" ॥ ११–१५ ॥

दैत्यपुत्रा ऊचु

प्रह्लाद त्व वय चापि बालभावान्महामते ।
षण्डामर्कात्पर मित्र गुरुं चान्य न विद्महे ॥१६॥
त्वयैतच्छिक्षित कुत्र तथ्य नो वद निस्तुपम् ।

दैत्यपुत्र बोले—महाबुद्धिमान् प्रह्लादजी ! बचपनसे लेकर आजतक आप और हम भी षण्डामर्कके सिवा दूसरे किसी गुरु तथा मित्रको नहीं जान सके । फिर आपने यह ज्ञान कहाँ सीखा ? हमसे पर्दा न रखकर सच्ची बात बताइये ॥ १६½ ॥

प्रह्लाद उवाच

यदा तात प्रयातो मे तपोऽर्थं कानन महत् ॥१७॥
तदा चेन्द्र समागत्य पुरं तस्य रुरोध ह ।
मृत निज्ञाय दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपु तदा ॥१८॥
इन्द्रो मे जननीं गृह्य प्रयातो मन्मथाग्निना ।
दह्यमानो महाभागा मार्गे गच्छति सत्वरम् ॥१९॥
तदा मा गर्भगं ज्ञात्वा नारदो देवदर्शन ।
आगत्येन्द्र जगादोच्चैर्मूढ मुञ्च पतिव्रताम् ॥२०॥
अस्या गर्भे स्थितो योऽसौ म वै भागवतोत्तम ।
तच्छ्रुत्वा नारदवचो मातर प्रणिपत्य मे ॥२१॥
विष्णुभक्त्या प्रमुच्याथ गत स्व भुवन हरि ।
नारदस्ता समानीय आश्रम स्व शुभव्रत ॥२२॥
मामुद्दिश्य महाभागामेतद्द्वै कथित तदा ।
तथा मे विस्मृत नैव बालभ्यासादनोः सुता ॥२३॥
विष्णोश्चानुग्रहेणैव नारदस्योपदेशत ।

प्रह्लादजी बोले—कहते हैं, जिस समय मेरे पिताजी तपस्या करनेके लिये महान् वनमें चले गये, उसी समय इन्द्रने यहाँ आकर पिता दैत्यराज हिरण्यकशिपुको मरा हुआ

आकर उनके इस नगरको घेर लिया । इन्द्र कामाग्निसे मोहित हो मेरी महाभागा माताजीको पकड़कर यहाँसे चल दिये । वे मार्गमें बड़ी तेजीसे पैर बढ़ाते हुए चले जा रहे थे। इसी समय देवदर्शन नारदजी मुझे माताके गर्भमें स्थित जान वहाँ पहुँचे और चिल्लाकर इन्द्रसे बोले—'मूर्ख! इस पतिव्रताको छोड़ दो । इसके गर्भमें जो बालक है, वह भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ है ।' नारदजीका कथन सुनकर इन्द्रने विष्णुभक्तिके कारण मेरी माताको प्रणाम करके छोड़ दिया और वे अपने लोकको चले गये । फिर शुभ संकल्पवाले नारदजी मेरी माताको अपने आश्रममें ले आये और मेरे उद्देश्यसे मेरी महाभागा माताके प्रति इस पूर्वोक्त ज्ञानका कथन किया । दानवो ! बाल्यकालके अभ्यास, भगवान्‌की कृपा तथा नारदजीका उपदेश होनेसे वह ज्ञान मुझे भूला नहीं है ॥ १७–२३½ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एकदा गुप्तचर्याया गतोऽसौ राक्षसाधिपः ॥२४॥
शृणोति रात्रौ नगरे जय रामेति कीर्तनम् ।
अर्थंपुनकृतं सर्वं बलवान् दानवेश्वरः ॥२५॥
अथाहूयाह दैत्येन्द्रः क्रोधान्धः स पुरोहितान् ।
रे रे क्षुद्रद्विजा यूयमतिमूर्खतां गताः ॥२६॥
प्रह्लादोऽयं मृषालापान् वक्त्यन्यान् पाठयत्यपि ।
इति निर्भर्त्स्य तान् विप्रान् श्वसन् राजाविशद् गृहम् ॥
न च पुत्रवधे चिन्ता जहौ स्ववधकारिणीम् ।
आमन्त्रमरणोऽमर्षात्कृत्यमेकं विमृश्य सः ॥२८॥
अकृत्यमेव दैत्यादीनाहूयोपादिशद्रहः ।
अद्य क्षपायां प्रह्लादं प्रसुप्तं दुष्टमुल्बणैः ॥२९॥
नागपाशैर्दृढं बद्ध्वा मध्ये निक्षिपताम्बुधे ।

मार्कण्डेयजी बोले—एक दिन राक्षसराज हिरण्यकशिपु रात्रिके समय गुप्तरूपसे नगरमें घूम रहा था । उस समय उसे 'जय राम'का कीर्तन सुनायी देने लगा । तब बलवान् दानवराजने यह सब अपने पुत्रकी ही करतूत समझी । तब उस दैत्यराजने क्रोधान्ध होकर पुरोहितोंको बुलाया और कहा—'नीच ब्राह्मणो ! जान पड़ता है, तुमलोग मूर्खतामें सबसे अत्यधिक उत्सुक हो गये हो । तुम्हारे देखते देखते यह प्रह्लाद स्वयं तो व्यर्थकी बातें बकता ही है, दूसरोंको भी यही सिखाता है ।' इस प्रकार उन ब्राह्मणोंको फटकारकर राजा हिरण्यकशिपु लंबी साँसें खींचता हुआ घरमें आया । उस समय भी वह पुत्रवधके विषयमें होनेवाली चिन्ताको, जो उसका ही नाश करनेवाली थी, नहीं छोड़ सका । उसकी मृत्यु निकट थी, अतः उसने अमर्षवश एक ऐसा काम सोचा, जो वास्तवमें न करने योग्य ही था । हिरण्यकशिपुने दैत्यादिकोंको बुलाया और उनसे एकान्तमें कहा—'देखो, आज रातमें प्रह्लाद जब गाढ़ी नींदमें सो जाय, उस समय उस दुष्टको भयंकर नागपाशोंद्वारा खूब कसकर बाँध दो और बीच समुद्रमें फेंक आओ' ॥ २४–२९½ ॥

तदाज्ञां शिरसाऽऽदाय दद्दृशुस्तमुपेत्य ते ॥३०॥
रात्रिप्रियं समाधिस्थं प्रबुद्धं सुप्तवत् स्थितम् ।
सछिन्नरागलोभादिमहाग्रन्थं क्षपाचराः ॥३१॥
बबन्धुस्तं महात्मानं फल्गुभिः सर्परज्जुभिः ।
गरुडध्वजभक्तं तं बद्ध्वाहिभिरबुद्धयः ॥३२॥
जलशायिप्रियं नीत्वा जलराशौ निचिक्षिपुः ।
बलिनस्तेऽचलान् दैत्या तस्योपरि निधाय च ॥३३॥
शशंसुस्तं प्रियं राज्ञे द्रुतं तान् सोऽप्यमानयत् ।

उसकी आज्ञा शिरोधार्य करके उन दैत्योंने प्रह्लादजीके पास जाकर उन्हें देखा । वे रात्रिके ही प्रेमी थे (क्योंकि रातमें ही उन्हें ध्यान लगानेकी सुविधा रहती थी)। प्रह्लादजी समाधिमें स्थित होकर जाग रहे थे, फिर भी खूब सोये हुएके समान स्थित थे । उन्होंने राग और लोभ आदिके महान् बन्धनोंको काट डाला था, तो भी उन महात्मा प्रह्लादको निशाचरोंने तुच्छ नागपाशोंसे बाँध दिया । जिनकी ध्वजामें साक्षात् गरुड़जी विराजमान हैं, उन भगवान्‌के भक्त प्रह्लादको उन मूर्खोंने सर्पोंद्वारा बाँधा और जलशायीके प्रियजनको ले जाकर जलराशि समुद्रमें डाला । तदनन्तर उन बली दैत्योंने प्रह्लादके ऊपर पर्वतकी चट्टानें रख दीं और तुरंत ही जाकर राजा हिरण्यकशिपुको यह प्रिय संवाद कह सुनाया । उसे सुनकर उस दैत्यराजने भी उन सबका सम्मान किया ॥ ३०–३३½ ॥

प्रह्लाद चरित्रमध्यमें

ज्वलन्तं तेजसा विष्णोर्ग्राहा भूरिभियात्यजन् ।
स चाभिन्नचिदानन्दसिन्धुमध्ये समाहितः ॥३५॥
न वेद बद्धमात्मानं लवणाम्बुधिमध्यगम् ।
अथ ब्रह्मामृताम्भोधिमये स्वस्मिन् स्थिते मुनौ ॥३६॥
ययौ क्षोभं द्वितीयाब्धिप्रवेशादिव सागरः ।
क्लेशात् क्लेशानिवोद्धूय प्रह्लादमथ वीचयः ॥३७॥
निन्युस्तीरेऽब्धिनाम्भोधेः गुरूक्तय इवाम्बुनेः ।
ध्यानेन विष्णुभूतं तं भगवान् वरुणालयः ॥३८॥
निन्यस्य तीरे रत्नानि गृहीत्वा द्रष्टुमाययौ ।
तावद् भगवताऽऽदिष्टः प्रहृष्टः पन्नगाशनः ॥३९॥
नम्भनाहीन् समभ्येत्य भक्षयित्वा पुनर्ययौ ।

बीच समुद्रमें पड़े हुए प्रह्लादको भगवान्‌के तेजसे दूसरे बड़वानलकी भाँति प्रज्वलित देख अत्यन्त भयके कारण ग्राहोंने उन्हें दूरसे ही त्याग दिया । प्रह्लाद भी अपनेसे अभिन्न चिदानन्दमय समुद्र (परमेश्वर) में समाहित होनेके कारण यह न जान सके कि 'मैं बाँधकर खारे पानीके सागरमें डाल दिया गया हूँ ।' मुनि (प्रह्लाद) जब ब्रह्मानन्दामृतके समुद्ररूप अपने आत्मामें स्थित हो गये, उस समय समुद्र इस प्रकार क्षुब्ध हो उठा, मानो उसमें दूसरे महासागरका प्रवेश हो गया हो । फिर समुद्रकी लहरें प्रह्लादको धीरे धीरे कठिनाईसे ठेलकर उस नौकारहित सागरके तटकी ओर ले गयीं— ठीक उसी प्रकार, जैसे ज्ञानी गुरुके वचन क्लेशोंका उन्मूलन करके शिष्यको भवसागरसे पार पहुँचा देते हैं । ध्यानके द्वारा विष्णुस्वरूप हुए उन प्रह्लादजीको तीरपर पहुँचाकर भगवान् वरुणालय (समुद्र) बहुत-से रत्न ले उनका दर्शन करनेके लिये आये । इतनेमें ही भगवान्‌की आज्ञा पाकर सर्पभक्षी गरुड़जी वहाँ आ पहुँचे और बन्धनभूत सर्पोंको अत्यन्त हर्षपूर्वक खाकर चले गये ॥ ३४–३९½ ॥

अथाम्भोधिः प्रह्लादं गम्भीरध्वनिनिर्णयः ॥४०॥
प्रणम्य दिव्यरूपः सन् समाधिस्थं हरेः प्रियम् ।
प्रह्लाद भगवद्भक्त पुण्यात्मन्नर्णवोऽस्म्यहम् ॥४१॥
चक्षुर्भ्यामथ मां दृष्ट्वा पावयार्थिनमागतम् ।
इत्यम्बुधिगिरं श्रुत्वा स महात्मा हरेः प्रियः ॥४२॥
उद्वीक्ष्य सहसा दृष्ट्वा तं नत्वाऽऽह्वासुरात्मजः ।
कदाऽऽगतं भगवता तमथाम्बुधिरब्रवीत् ॥४३॥

तत्पश्चात् गम्भीर घोषवाला दिव्यरूपधारी समुद्र समाधिनिष्ठ भगवद्भक्त प्रह्लादको प्रणाम करके यों बोला— 'भगवद्भक्त प्रह्लाद ! पुण्यात्मन् ! मैं समुद्र हूँ । अपने पास आये हुए मुझ प्रार्थीको अपने नेत्रों-द्वारा देखकर पवित्र कीजिये ।' समुद्रके ये वचन सुनकर भगवान्‌के प्रिय भक्त महात्मा असुरनन्दन प्रह्लादने सहसा उनकी ओर देखकर प्रणाम किया और कहा—'श्रीमान् कब पधारे ?' तब उनसे समुद्रने कहा ॥ ४०–४३ ॥

योगिन्नज्ञातवृत्तस्त्वमपराद्धं तवासुरैः ।
बद्धस्त्वमहिभिर्दैत्यैर्मयि क्षिप्तोऽद्य वैष्णव ॥४४॥
ततस्तूर्णं मया तीरे न्यस्तस्त्वं फणिनश्च तान् ।
इदानीमेव गरुडो भक्षयित्वा गतो महान् ॥४५॥
महात्मन्ननुगृह्णीष्व त्वं मां सत्सङ्गमार्थिनम् ।
गृहाणेमानि रत्नानि पूज्यस्त्वं मे हरिर्यथा ॥४६॥
यद्यप्येतैर्न ते कृत्यं रत्नैर्दास्याम्यथाप्यहम् ।
दीपान्निवेदयत्येव भास्करस्यापि भक्तिमान् ॥४७॥
त्वमापत्स्वपि घोरासु विष्णुनैव हि रक्षितः ।
त्वादृशा निर्मलात्मानो न सन्ति बहवोऽर्कवत् ॥४८॥
बहुना किं कृतार्थोऽस्मि यत्तिष्ठामि त्वया सह ।
आलपामि क्षणमपि नेत्रे द्योतत्फलोपमाम् ॥४९॥

'योगिन् ! आपको यह बात ज्ञात नहीं है, असुरोंने आपका बड़ा अपराध किया है । वैष्णव ! आपको साँपोंसे बाँधकर दैत्योंने आज मेरे भीतर फेंक दिया तब मैंने तुरत ही आपको किनारे लगाया और उन साँपोंको अभी-अभी महात्मा गरुड़जी भक्षण करके गये हैं । महात्मन् ! मैं सत्सङ्गका अभिलाषी हूँ, आप मुझपर अनुग्रह करें और इन रत्नोंको भेंटरूपमें स्वीकार करें । मेरे लिये आप भगवान् विष्णुके समान ही पूज्य हैं । यद्यपि आपको इन रत्नोंकी कोई आवश्यकता नहीं है, तथापि मैं तो इन्हें आपको दूँगा ही, क्योंकि भगवान् सूर्यका भक्त उन्हें दीप निवेदन करता ही है । घोर आपत्तियोंमें भी भगवान् विष्णुने ही आपकी रक्षा की है । सूर्यकी भाँति आप-जैसे शुद्ध चित्त महात्मा संसारमें अधिक नहीं हैं । बहुत क्या कहूँ !

आज मैं कृतार्थ हो गया; क्योंकि आज मुझे आपके साथ स्थित होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस समय क्षणभर भी जो आपके साथ बातचीत कर रहा हूँ, इससे प्राप्त होनेवाले सुखकी उपमा मैं कहीं नहीं देखता' ॥ ४४–४९ ॥

इत्यब्धिना स्तुतः श्रीशमाहात्म्यवचनैः स्वयम्।
ययौ लज्जां प्रहर्षं च प्रह्लादो भगवत्प्रियः ॥५०॥
प्रतिगृह्य स रत्नानि वत्सलः प्राह वारिधिम्।
महात्मन् सुतरां धन्यः शेते त्वयि हि स प्रभुः ॥५१॥
कल्पान्तेऽपि जगत्कृत्स्नं ग्रसित्वा स जगन्मयः।
त्वय्येवैकार्णवीभूते शेते किल महात्मनि ॥५२॥
लोचनाभ्यां जगन्नाथं द्रष्टुमिच्छामि वारिधे।
त्वं पश्यसि सदा धन्यस्तत्रोपायं प्रयच्छ मे ॥५३॥

इस प्रकार समुद्रने साक्षात् भगवान् लक्ष्मीपतिके माहात्म्य सूचक वचनोंद्वारा जब उनकी स्तुति की, तब भगवान्‌के प्रिय भक्त प्रह्लादजीको बड़ी लज्जा हुई और हर्ष भी। स्नेही प्रह्लादने समुद्रके दिये हुए रत्न ग्रहणकर उनसे कहा—'महात्मन्! आप विशेष धन्यवादके पात्र हैं, क्योंकि भगवान् आपके ही भीतर शयन करते हैं। यह प्रसिद्ध है कि जगन्मय प्रभु प्रलय कालमें भी सम्पूर्ण जगत्‌को अपनेमें लीन करके एकार्णवरूपमें स्थित आप महात्मा महासागरमें ही शयन करते हैं। समुद्र! मैं इन स्थूल नेत्रोंसे भगवान् जगन्नाथका दर्शन करना चाहता हूँ। आप धन्य हैं, क्योंकि सदा भगवान्‌का दर्शन करते रहते हैं। कृपया मुझे भी उनके दर्शनका उपाय बताइये'॥ ५०–५३॥

उक्त्वेति पादावनतं तूर्णमुत्थाप्य सागरः।
प्रह्लादं प्राह योगीन्द्र त्वं पश्यसि सदा हृदि ॥५४॥
द्रष्टुमिच्छसि यद्यक्षिभ्यां स्तुहि तं भक्तवत्सलम्।
उक्त्वेति सिन्धुः प्रह्लादमात्मनः स जलेऽविशत् ॥५५॥

यों कहकर प्रह्लादजी समुद्रके चरणोंपर गिर पड़े। तब समुद्रने उनको शीघ्र ही उठाकर कहा—'योगीन्द्र! आप तो सदा ही अपने हृदयमें भगवान्‌का दर्शन करते हैं, तथापि यदि इन नेत्रोंसे भी देखना चाहते हैं तो उन भक्तवत्सल भगवान्‌का स्तवन कीजिये।' यों कहकर समुद्रदेव अपने जलमें प्रविष्ट हो गये ॥ ५४-५५ ॥

गते नदीन्द्रे स्थित्वैको हरिं रात्रौ स दैत्यजः।
भक्त्यास्तौदिति मन्वानस्तद्दर्शनमसम्भवम् ॥५६॥

समुद्रके चले जानेपर दैत्यनन्दन प्रह्लादजी रात्रिमें वहाँ अकेले ही रहकर भगवान्‌के दर्शनको एक असम्भव कार्य मानते हुए भक्तिपूर्वक श्रीहरिकी स्तुति करने लगे ॥ ५६ ॥

प्रह्लाद उवाच

वेदान्तवाक्यशतमारुतसम्प्रवृद्ध-
वैराग्यवह्निशिखया परिताप्य चित्तम्।
संशोधयन्ति यदवेक्षणयोग्यतायै
धीराः सदैव स कथं मम गोचरः स्यात् ॥५७॥
मात्सर्यरोषमदलोभमोह-
मदादिभिर्वा सुदृढैः सुपड्भिः।
उपर्युपर्यावरणैः सुनद्ध-
मन्धं मनो मे क्व हरिः क्व वाहम् ॥५८॥
यं धातृमुख्या विबुधा भयेषु
शान्त्यर्थिनः क्षीरनिधेरुपान्तम्।
गत्वोत्तमस्तोत्रकृतः कथंचित्
पश्यन्ति तं द्रष्टुमहो ममाशा ॥५९॥

प्रह्लादजी बोले—धीर पुरुष जिनके दर्शनकी योग्यता प्राप्त करनेके लिये सदा ही सैकड़ों वेदान्त-वाक्यरूप वायुद्वारा अत्यन्त बढ़ी हुई वैराग्यरूप अग्निकी ज्वालासे अपने चित्तको तपाकर भलीभाँति शुद्ध किया करते हैं, वे भगवान् विष्णु, भला, मेरे दृष्टिपथमें कैसे आ सकते हैं। एकके ऊपर एकके क्रमसे ऊपर-ऊपर जिनका आवरण पड़ा हुआ है—ऐसे मात्सर्य, क्रोध, काम, लोभ, मोह, मद आदि सुदृढ़ बन्धनोंसे भलीभाँति बँधा हुआ मेरा मन अन्धा (विवेकशून्य) हो रहा है। कहाँ भगवान् श्रीहरि और कहाँ मैं! भय उपस्थित होनेपर उसकी शान्तिके लिये क्षीरसागरके तटपर जाकर ब्रह्मादि देवता उत्तम रीतिसे स्तवन करते हुए किसी प्रकार जिनका दर्शन कर पाते हैं, उन्हीं भगवान्‌के दर्शनकी मुझ-जैसा दैत्य आशा करे—यह कैसा आश्चर्य है! ॥ ५७–५९ ॥

अयोग्यमात्मानमितीशदर्शने
स मन्यमानस्तन्नातिकातरः।
उद्वेगदुःखार्णवमग्नमानस-

अथ क्षणात्सर्वगतश्चतुर्भुजः
शुभाकृतिर्भक्तजनैकवल्लभः ।
दुःस्थं तमाश्लिष्य सुधामयैर्भुजै-
स्तत्रैव भूपाविरभूद्दयानिधिः ॥६१॥

राजन्! इस प्रकार अपनेको भगवान्‌का दर्शन पानेके योग्य न मानते हुए प्रह्लादजी उनकी अप्राप्तिके दुःखसे कातर हो उठे। उनका चित्त उद्वेग और अनुतापके समुद्रमें डूब गया। वे नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहाते हुए मूर्च्छित होकर गिर पड़े। भूप! फिर तो क्षणभरमें ही भक्तजनोंके एकमात्र प्रियतम सर्वव्यापी कृपानिधान भगवान् विष्णु सुन्दर चतुर्भुज रूप धारणकर दुःखी प्रह्लादको अमृतके समान सुखद स्पर्शवाली अपनी भुजाओंसे उठाकर गोदमें लगाते हुए वहाँ प्रकट हो गये ॥ ६०-६१ ॥

स लब्धसंज्ञोऽथ तदङ्गसङ्गा-
दुन्मीलिताक्षः सहसा ददर्श ।
प्रसन्नवक्त्रं कमलायताक्षं
सुदीर्घबाहुं यमुनासवर्णम् ॥६२॥
उदारतेजोमयमप्रमेयं
गदारिशङ्खाम्बुजचारुचिह्नितम् ।
स्थितं समालिङ्ग्य विभुं स दृष्ट्वा
प्रकम्पितो विस्मयभीतिहर्षैः ॥६३॥
ततः स्वप्नमेवाथ स मन्यमानः
स्वप्नेऽपि पश्यामि हरिं कृतार्थम् ।
इति प्रहर्षार्णवमग्नचेता
स्यानन्दमूर्च्छां स पुनश्च भेजे ॥६४॥
ततः क्षितावेव निविश्य नाथः
कृत्वा तमङ्के स्वजनैकबन्धुः ।
शनैर्विधुन्वन् करपल्लवेन
स्पृशन् मुहुर्मातृवदालिलिङ्ग ॥६५॥

उनके अङ्गस्पर्शसे होशमें आनेपर प्रह्लादने सहसा नेत्र खोलकर भगवान्‌को देखा। उनका मुख प्रसन्न था। नेत्र कमलके समान सुन्दर और विशाल थे। भुजाएँ बड़ी बड़ी थीं और शरीर यमुनाजलके समान श्याम था। वे परम तेजस्वी और अपरिमित ऐश्वर्यशाली थे। गदा, शङ्ख, चक्र और पद्म आदि सुन्दर चिह्नोंसे पहचाने जा रहे थे। इस प्रकार अपनेको अङ्कमें लगाये हुए भगवान्‌को खड़ा देख प्रह्लाद भय, विस्मय और हर्षसे काँप उठे। वे इस घटनाको स्वप्न ही समझते हुए सोचने लगे—'अहा! स्वप्नमें भी मुझे पूर्णकाम भगवानका दर्शन तो मिल गया!' यह सोचकर उनका चित्त हर्षके महासागरमें गोता लगाने लगा और वे पुनः स्वरूपानन्दमयी मूर्च्छाको प्राप्त हो गये। तब अपने भक्तोंके एकमात्र बन्धु भगवान् पृथ्वीपर ही बैठ गये और पाणिपल्लवसे धीरे धीरे उन्हें हिलाने लगे। स्नेहमयी माताकी भाँति प्रह्लादके गात्रका स्पर्श करते हुए उन्हें बार-बार छातीसे लगाने लगे ॥ ६२-६५ ॥

ततश्चिरेण प्रह्लादः सम्मुखोन्मीलितेक्षणः ।
आलुलोके जगन्नाथं विस्मयाविष्टचेतसा ॥६६॥
ततश्चिरात्सम्भाव्य धीरः श्रीशाङ्कशायिनम् ।
आत्मानं सहसोत्तस्थौ सद्यः सभयसम्भ्रमः ॥६७॥
प्रणामायापतच्चोर्व्यां प्रसीदेति वदन्मुहुः ।
सम्भ्रमात् स बहुज्ञोऽपि नान्या पूर्नोक्तिमस्मरत्॥६८॥
तमथाभयहस्तेन गदाशङ्खारिधृक् प्रभुः ।
गृहीत्वा स्थापयामास प्रह्लादं स दयानिधिः ॥६९॥
कराब्जस्पर्शनाह्लादगलदश्रुं सवेपथुम् ।
भूयोऽथाह्लादयन् स्वामी तं जगादेति सान्त्वयन्॥७०॥

कुछ देरके बाद प्रह्लादने भगवान्‌के सामने आँखें खोलकर विस्मितचित्तसे उन जगदीश्वरको देखा। फिर बहुत देरके बाद अपनेको भगवान् लक्ष्मीपतिकी गोदमें सोया हुआ अनुभवकर वे भय और आवेगसे युक्त हो सहसा उठ गये तथा 'भगवन्! प्रसन्न होइये' यों बार-बार कहते हुए उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम करनेके लिये पृथ्वीपर गिर पड़े। बहुज्ञ होनेपर भी उन्हें उस समय घबराहटके कारण अन्य स्तुतिवाक्योंका स्मरण न हुआ। तब गदा, शङ्ख और चक्र धारण करनेवाले दयानिधि भगवान्‌ने प्रह्लादको अपने भक्तभयहारी हाथसे पकड़कर खड़ा किया। भगवान्‌के कर कमलोंका स्पर्श होनेसे अत्यन्त आनन्दके आँसू बहाते और काँपते हुए प्रह्लादको और अधिक आनन्द देनेके लिये प्रभुने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा ॥ ६६-७० ॥

सभयं सम्भ्रमं वत्स मद्गौरवकृतं त्यज ।
नैवं प्रियो मे भक्तेषु स्वाधीनप्रणयी भव ॥७१॥

नित्य सम्पूर्णकामस्य जन्मानि विविधानि मे ।
भक्तसर्वेष्टदानाय तस्मात् किं ते प्रिय वद ॥७२॥

वत्स ! मेरे प्रति गौरव-बुद्धिसे होनेवाले इस भय और सङ्कोचका त्याग दो । मेरे भक्तोंमें तुम्हारे समान कोई भी मुझे प्रिय नहीं है, तुम स्वाधीनप्रणयी हो जाओ [अर्थात् यह समझो कि तुम्हारा प्रेमी मैं तुम्हारे वशमें हूँ] । मैं नित्य पूर्णकाम हूँ, तथापि भक्तोंकी समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेके लिये मेरे अनेक अवतार हुआ करते हैं, अतः तुम भी बताओ, तुम्हें कौन-सी वस्तु प्रिय है ?' ॥ ७१-७२ ॥

अथ व्यजिज्ञपद्विष्णुं प्रह्लादः प्राञ्जलिर्नमन् ।
सलौल्यमुत्फुल्लदृशा पश्यन्नेव च तन्मुखम् ॥७३॥
नाप्ययं वरदानाय कालो नैव प्रसीद मे ।
त्वद्दर्शनामृतास्वादादन्तरात्मा न तृप्यति ॥७४॥
ब्रह्मादिदेवैर्दुर्लक्ष्यं त्वामेव पश्यतः प्रभो ।
तृप्तिं नेष्यति मे चित्तं कल्पायुतशतैरपि ॥७५॥
नैवमेतद्व्यवस्थस्य त्वां दृष्ट्वान्यद् वृणोति किम् ।

तदनन्तर खिले हुए नेत्रोंसे भगवान्‌के मुखको सतृष्ण-भावसे देखते हुए प्रह्लादने हाथ जोड़ नमस्कारपूर्वक उनसे यों निवेदन किया—'भगवन् ! यह वरदानका समय नहीं है, केवल मुझपर प्रसन्न होइये । इस समय मेरा मन आपके दर्शनरूपी अमृतका आस्वादन करनेसे तृप्त नहीं हो रहा है । प्रभो ! ब्रह्मादि देवताओंके लिये भी जिनका दर्शन पाना कठिन है, ऐसे आपका दर्शन करते हुए मेरा मन दस लाख वर्षोंमें भी तृप्त न होगा । इस प्रकार आपके दर्शनसे अतृप्त रहनेवाले मुझ सेवकका चित्त आपके दर्शनके बाद और क्या माँग सकता है ?' ॥ ७३-७५½ ॥

ततः स्मितसुधापूरं पूरयन् स प्रियं प्रियात् ॥७६॥
योजयन् मोक्षलक्ष्म्येव तं जगाद जगत्पतिः ।
सत्यं मद्दर्शनादन्यद् वत्स नैवास्ति ते प्रियम् ॥७७॥
किंचित्ते दातुमिष्टं मे मत्प्रियार्थं वृणीष्व तत् ।

तब मुस्कानमयी सुधाकी धारा बहाते हुए उन जगदीश्वरने अपने परम प्रिय भक्त प्रह्लादको मोक्ष-लक्ष्मीसे संयुक्त-सा करते हुए उनसे कहा—'वत्स ! यह सत्य है कि तुम्हें मेरे दर्शनसे बढ़कर दूसरा कुछ भी प्रिय नहीं है, किंतु मेरी इच्छा तुम्हें कुछ देनेकी है । अतः तुम मेरा प्रिय करनेके लिये ही मुझसे कुछ माँग लो' ॥ ७६-७७½ ॥

प्रह्लादोऽथाब्रवीद्धीमान् देव जन्मान्तरेष्वपि ॥७८॥
दासस्तवाहं भूयासं गरुत्मानिव भक्तिमान् ।
अथाह नाथः प्रह्लादं संकटं खल्विदं कृतम् ॥७९॥
अहं त्वात्मप्रदानेच्छुस्त्वं तु भृत्यत्वमिच्छसि ।
वरानन्यांश्च वरय धीमन् दैत्येश्वरात्मज ॥८०॥

तब बुद्धिमान् प्रह्लादने कहा—'देव ! मैं जन्मान्तरोंमें भी गरुड़जीकी भाँति आपमें ही भक्ति रखनेवाला आपका दास होऊँ !' यह सुनकर भगवान्‌ने कहा—'यह तो तुमने मेरे लिये कठिन समस्या रख दी—मैं तो तुम्हें स्वयं अपने आपको दे देना चाहता हूँ और तुम मेरी दासता चाहते हो ! बुद्धिमान् दैत्यराजकुमार ! दूसरे-दूसरे वर माँगो' ॥ ७८-८० ॥

प्रह्लादोऽपि पुनः प्राह भक्तकामप्रदं हरिम् ।
प्रसीद सास्तु मे नाथ त्वद्भक्तिः सात्त्विकी स्थिरा ॥८१॥
अनयाथ च त्वां नौमि नृत्यामि त्वत्परः सदा ।

तब प्रह्लादने भक्तोंकी कामना पूर्ण करनेवाले भगवान् विष्णुसे पुनः कहा—'नाथ ! आप प्रसन्न हों, मुझे तो यही चाहिये कि आपमें मेरी सात्त्विक भक्ति सदा स्थिर रहे । यही नहीं, इस भक्तिसे युक्त होकर मैं आपका स्तवन किया करूँ और आपके ही परायण रहकर सदा नाचा करूँ' ॥ ८१½ ॥

अथाभितुष्टो भगवान् प्रियमाह प्रियंवदम् ॥८२॥
वत्स यद्यदभीष्टं ते तत्तदस्तु सुखी भव ।
अन्तर्हिते च मय्यत्र मा खिद त्वं महामते ॥८३॥
त्वच्चित्तान्नापयास्यामि क्षीराब्धेरिव सुप्रियात् ।
पुनर्द्वित्रिदिनैस्त्वं मा द्रष्टा दुष्टवधायतम् ॥८४॥
अपूर्वाविष्कृताकारं नृसिंहं पापभीषणम् ।
उक्त्वेत्यतः प्रणमतः पश्यतश्चातिलालसम् ॥८५॥
अतुष्टस्यैव तस्येशो माययान्तर्दधे हरिः ।

भगवान्‌ने संतुष्ट होकर प्रिय भाषण करनेवाले प्रिय भक्त प्रह्लादसे तब कहा—'वत्स ! तुम्हें जो जो अभीष्ट है, वह

प्राप्त हो, तुम सुखी रहो। एक बात और है—महामते! यहाँसे मेरे अन्तर्धान हो जानेपर भी तुम खेद न करना। मैं अपने परमप्रिय स्थान क्षीरसागरकी भाँति तुम्हारे शुद्धचित्तसे कभी अलग न होऊँगा। तुम दो ही-तीन दिनोंके बाद मुझे दुष्ट हिरण्यकशिपुका वध करनेके लिये उद्यत अपूर्व शरीर धारण किये नृसिंहरूपमें, जो पापियोंके लिये भयानक है, पुनः प्रकट देखोगे।' यों कहकर भगवान् हरि, अपनेको प्रणाम करके अत्यन्त लज्जायी हुई दृष्टिसे देखते रहनेपर भी तृप्त न होनेवाले उस भक्त प्रह्लादके सामने ही मायासे अन्तर्धान हो गये ॥ ८२–८५½ ॥

ततो हठाददृष्ट्वा त सर्वतो भक्तवत्सलम् ॥८६॥
हाहेत्यश्रुप्लुतः प्रोच्य ववन्दे स चिरादिति।
श्रूयमाणेऽथ परितः प्रतिबुद्धजनस्वने ॥८७॥
उत्थायान्वितटाद्धीमान् प्रह्लादः स्वपुरं ययौ ॥८८॥

अथ दितिजसुतश्चिरं प्रहृष्ट
स्मृतिवलतः परितस्तमेव पश्यन्।
हरिमनुजगतिं त्वल च पश्यन्
गुरुगृहमुत्पुलकः शनैरवाप ॥८९॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे नरसिंहप्रादुर्भावे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

तत्पश्चात् व सहसा सब ओर दृष्टि डालनेपर भी जब भक्तवत्सल भगवान्‌को न देख सके, तब आँसू बहाते हुए उच्चस्वरसे हाहाकार करके बड़ी देरतक भगवान्‌की वन्दना करते रहे। फिर जब प्रातःकाल जगे हुए जन्तुओंकी वाणी सब ओर सुनायी देने लगी, तब बुद्धिमान् प्रह्लाद समुद्र-तटसे उठकर अपने नगरको चले गये। इसके बाद दैत्यनन्दन प्रह्लादजी परम प्रसन्न होकर अपने स्मरणबलसे सब ओर भगवान्‌को ही देखते हुए तथा भगवान् एवं मनुष्यकी गतिको भलीभाँति समझते हुए रोमाञ्चित होकर धीरे-धीरे गुरुके घर गये ॥ ८६–८९ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें नरसिंहावतारविषयक तैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४३ ॥

चौवालीसवाँ अध्याय

नृसिंहका प्रादुर्भाव और हिरण्यकशिपुका वध

मार्कण्डेय उवाच

आगत ते प्रह्लाद दृष्ट्वा दैत्या सुविस्मिता।
ऊचुर्दैत्यपतये यः क्षिप्तः स महार्णवे ॥ १ ॥
स्थ तमागत श्रुत्वा दैत्यराड्विस्मयाकुल।
हूयता च इत्याह क्रोधान्मृत्युवशे स्थित ॥ २ ॥
असुरैर्दूरानीतः समासीन स दिव्यदृक्।
आसन्नमृत्यु दैत्येन्द्र ददर्शोत्पूर्जितश्रियम् ॥ ३ ॥
नीलांशुमिश्रमाणिक्यद्युतिच्छन्नविभूषणम्।
सधूमाग्निमिव व्याप्तमुच्चासनचितिस्थितम् ॥ ४ ॥
दंष्ट्रोत्कटैर्घोरतरैर्घनच्छविभिरुद्धतैः।
कुमार्गदर्शिभिर्दैत्यैर्यमदूतैरिवावृतम् ॥ ५ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—तदनन्तर प्रह्लादको [कुशलपूर्वक समुद्रसे] लौटा देखकर, जिन्होंने उन्हें महासागरमें डाला था, वे दैत्य बड़े विस्मित हुए और उन्होंने तुरंत यह समाचार दैत्यराज हिरण्यकशिपुको दिया। उन्हें सकुशल लौटा सुन दैत्यराज विस्मयसे व्याकुल हो उठा और क्रोधवश मृत्युके अधीन होकर बोला—'उसे यहाँ बुला लाओ।' असुरोंके द्वारा दूरसे तुरंत पकड़कर लाये जानेपर दिव्यदृष्टिवाले प्रह्लादने सिंहासनपर बैठे हुए दैत्यराज हिरण्यकशिपुको देखा। उसकी मृत्यु निकट थी, उसका तेज बहुत बढ़ा हुआ था। उसके आभूषण नीलप्रभायुक्त माणिक्योंकी कान्तिसे आच्छन्न थे, अतएव वह धूमयुक्त फैली हुई अग्निके समान शोभित हो रहा था। वह ऊँचे सिंहासन-मञ्चपर विराजमान था और उसे मेघके समान काले, दाढ़ोंके कारण विकराल, अत्यन्त भयानक, कुमार्गदर्शी एवं यमदूतोंके समान क्रूर दैत्य घेरे हुए थे ॥ १–५ ॥

दूरात् प्रणम्य पितर प्राञ्जलिस्तु व्यवस्थित।
अथाहाकारणक्रोध स खलो भर्त्सयन् सुतम् ॥ ६ ॥
भगवत्प्रियमत्युच्चैर्मृत्युमेवाश्रयन्निव।
मूढ रे शृणु मद्वाक्यमेतदेवान्तिम ध्रुवम् ॥ ७ ॥

इतान त्वा प्रवक्ष्यामि श्रुत्वा कुरु यथेप्सितम् ।
उक्त्वेति द्रुतमाकृष्य चन्द्रहासासिमद्भुतम् ॥ ८ ॥
सम्भ्रमाद्वीक्षितः सर्वैश्चालयन्नाह तं पुनः ।
क्व चास्ति मूढ ते विष्णुः स त्वामद्य प्ररक्षतु ॥ ९ ॥
त्वयोक्तः स हि सर्वत्र कस्मात्स्तम्भे न दृश्यते ।
यदि पश्यामि तं विष्णुमधुना स्तम्भमध्यगम् ॥१०॥
तर्हि त्वां न वधिष्यामि भविष्यामि द्विधान्यथा।

प्रह्लादजीने दूरसे ही हाथ जोड़कर पिताको प्रणाम किया और खड़े हो गये । तब मृत्युके निकट पहुँचनेवालेकी भाँति अकारण ही क्रोध करनेवाले उस दुष्ट भगवद्भक्त पुत्रको उच्चस्वरसे डाँटते हुए कहा—'अरे मूढ ! तू मेरा यह अंतिम और अटल वचन सुन, इसके बाद मैं तुझसे कुछ न कहूँगा। इसे सुनकर तेरी जैसी इच्छा हो, वही करना ।' यह कहकर उसने शीघ्र ही चन्द्रहास नामक अपनी अद्भुत तलवार खींच ली । उस समय सब लोग उसकी ओर आश्चर्यपूर्वक देखने लगे । उसने तलवार चलाते हुए पुनः प्रह्लादसे कहा—'रे मूढ ! तेरा विष्णु कहाँ है ? आज वह तेरी रक्षा करे । तूने कहा था कि वह सर्वत्र है । फिर इस खंभेमें क्यों नहीं दिखायी देता ? यदि तेरे विष्णुको इस खंभेके भीतर देख लूँगा, तब तो तुझे नहीं मारूँगा; यदि ऐसा न हुआ तो इस तलवारसे तेरे दो टुकड़े कर दिये जायँगे' ॥ ८–१०½ ॥

प्रह्लादोऽपि तथा दृष्ट्वा दध्यौ तं परमेश्वरम् ॥११॥
पूर्वोक्तं तद्वचः स्मृत्वा प्रणनाम कृताञ्जलिः ।
तावत्प्रस्फुटितस्तम्भो वीक्षितो दैत्यसूनुना ॥१२॥
आदर्शरूपो दैत्यस्य खड्गतो यः प्रतिष्ठितः ।
तन्मध्ये दृश्यते रूपं बहुयोजनमायतम् ॥१३॥
अतिरौद्रं महाकायं दानवानां भयंकरम् ।
महानेत्रं महावक्त्रं महादंष्ट्रं महाभुजम् ॥१४॥
महानखं महापादं कालाग्निसदृशाननम् ।
कर्णान्तकृतविस्तारवदनं चातिभीषणम् ॥१५॥

प्रह्लादने भी ऐसी बात देखकर उन परमेश्वरका ध्यान किया और पहले कहे हुए उनके वचनको याद करके हाथ जोड़कर प्रणाम किया । इतनेमें ही दैत्यनन्दन प्रह्लादने देखा कि वह दर्पणके समान स्वच्छ खंभा, जो सभाके भीतर खड़ा था, दैत्यराजकी तलवारके आघातसे फट पड़ा तथा उसके भीतर अनेक योजन विस्तारवाला, अत्यन्त रौद्र एवं महाकाय नरसिंहरूप दिखायी दिया, जो दानवोंको भयभीत करनेवाला था । उसके बड़े बड़े नेत्र, विशाल मुख, बड़ी-बड़ी दाढ़ें और लंबी लंबी भुजाएँ थीं । उसके नख बहुत बड़े और पैर विशाल थे । उसका मुख कालाग्निके समान देदीप्यमान था, जबड़े कानतक फैले हुए थे और वह बहुत भयानक दिखायी देता था ॥ ११–१५ ॥

कृत्वेत्थं नारसिंहं तु वपुर्विष्णुस्त्रिविक्रमः ।
नरसिंहः स्तम्भमध्यान्निर्गत्य प्रणनाद च ॥१६॥
निनादश्रवणाद्दैत्या नरसिंहमवेष्टयन् ।
तान् हत्वा सकलांस्तत्र स्वपौरुषपराक्रमात् ॥१७॥
बभञ्ज च सभां दिव्यां हिरण्यकशिपोर्नृप ।
वारयामासुरभ्येत्य नरसिंहं महाभटाः ॥१८॥
ते तु राजन् क्षणादेव नरसिंहेन वै हताः ।
ततः शस्त्राणि वर्षन्ति नरसिंहे प्रतापिनि ॥१९॥

इस प्रकार नरसिंहरूप धारणकर त्रिविक्रम भगवान् विष्णु खंभेके भीतरसे निकल पड़े और लगे बड़े जोर जोरसे दहाड़ने । नरेश्वर ! यह गर्जना सुनकर दैत्योंने भगवान् नरसिंहको घेर लिया । तब उन्होंने अपने पौरुष एवं पराक्रमसे उन सबको मौतके घाट उतारकर हिरण्यकशिपुका दिव्य सभाभवन नष्ट कर दिया । राजन् ! उस समय जिन महाभटोंने निकट आकर नृसिंहजीको रोका, उन सबको उन्होंने क्षणभरमें मार डाला । तत्पश्चात् प्रतापी नरसिंह भगवान्पर असुर सैनिक अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे ॥ १६–१९ ॥

स तु क्षणेन भगवान् हत्वा तद्बलमोजसा ।
ननाद च महानादं दिशः शब्देन पूरयन् ॥२०॥
तान्मृतानपि विज्ञाय पुनरन्यान्महासुरः ।
अष्टाशीतिसहस्राणि हेतिहस्तान् समादिशत् ॥२१॥
तेऽप्यागत्य नृ तं देवं रुरुधुः सर्वतोदिशम् ।
हत्वा तानखिलान् युद्धे युध्यमानान्नराधिपः ॥२२॥
पुनः सभां बभञ्जासौ हिरण्यकशिपोः शुभाम् ।
तान् हतानपि विज्ञाय क्रोधसंरक्तलोचनः

ततो हिरण्यकशिपुर्निश्चक्राम महानलः ।
उवाच च महीपाल दानवान् बलदर्पितान् ॥२४॥
हन्यतां हन्यतामेष गृह्यतां गृह्यतामयम् ।
इत्येवं वदतस्तस्य प्रमुखे तु महासुरान् ॥२५॥
युध्यमानान् रणे हत्वा नरसिंहो ननाद च ।
ततोऽतिदुद्रुवुर्दैत्या हतशेषा दिशो दश ॥२६॥

भगवान् नृसिंहने क्षणभरमें ही अपने तेजसे समस्त दैत्य सेनाका संहार कर दिया और दिशाओंको अपनी गर्जनासे गुँजाते हुए वे भयंकर सिंहनाद करने लगे। उपर्युक्त दैत्योंको मरा जान महासुर हिरण्यकशिपुने पुनः क्रोधमें शस्त्र लिये हुए अठासी हजार असुर सैनिकोंको नृसिंहदेवसे लड़नेकी आज्ञा दी। उन असुरोंने भी आकर भगवान्‌को सब ओरसे घेर लिया। तब युद्धमें लड़ते हुए भगवान् उन सभीका वध करके पुनः सिंहनाद करने लगे। उन्होंने हिरण्यकशिपुके दूसरे सुन्दर सभाभवनको भी पुनः नष्ट कर दिया। राजन्! अपने भेजे हुए इन असुरोंको भी मारा गया जान क्रोधसे लाल-लाल आँखें करके महाबली हिरण्यकशिपु स्वयं बाहर निकला और बलाभिमानी दानवोंसे बोला—'अरे, इसे पकड़ो, पकड़ो; मार डालो, मार डालो।' इस प्रकार कहते हुए हिरण्यकशिपुके सामने ही युद्ध करनेवाले उन सभी महान् असुरोंका रणमें संहार करके भगवान् नृसिंह गर्जने लगे। तब मरनेसे बचे हुए दैत्य दसों दिशाओंमें भयपूर्वक भाग चले ॥२०—२६॥

तावद्भूता युध्यमाना दैत्याः कोटिसहस्रशः ।
नरसिंहेन यावच्च नभोभागं गतो रविः ॥२७॥
शस्त्रास्त्रवर्षचतुरं हिरण्यकशिपुं जवात् ।
प्रगृह्य तु बलाद्राजन् नरसिंहो महाबलः ॥२८॥
संध्याकाले गृहद्वारि स्थित्वोरौ स्थाप्य तं रिपुम् ।
वज्रतुल्यमहोरस्कं हिरण्यकशिपुं रुषा ।
नखैः कमलपत्रमिव दारयत्याह सोऽसुरः ॥२९॥

जबतक सूर्य अस्ताचलको नहीं चले गये, तबतक भगवान् नृसिंह अपने साथ युद्ध करनेवाले हजारों करोड़ दैत्योंका संहार करते रहे। राजन्! किंतु जब सूर्य डूबने लगे, तब महाबली भगवान् नृसिंहने अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करनेमें कुशल हिरण्यकशिपुको वेगसे पकड़कर बलपूर्वक विवश कर लिया। फिर सन्ध्याके समय घरके दरवाजेपर बैठकर, उस वज्रके समान कठोर विशाल वक्षवाले शत्रु हिरण्यकशिपुको अपनी जाँघोंपर गिराकर जब भगवान् नृसिंह रोषपूर्वक नखोंसे पत्तेकी भाँति उसे विदीर्ण करने लगे, तब उस महान् असुरने बड़े निराश होकर कहा ॥२७—२९॥

यत्राखण्डलदन्तिदन्तमुसला-
न्याखण्डितान्याहवे
धारा यत्र पिनाकपाणिपरशो-
राकुण्ठतामागमत् ।
तन्मे तावदुरो नृसिंहकरजै-
र्व्यादीर्यते साम्प्रतं
दैवे दुर्जनतां गते तृणमपि
प्रायोऽप्यवज्ञायते ॥३०॥

'हाय! युद्धके समय देवराज इन्द्रके वाहन गजराज ऐरावतके मूसल-जैसे दाँत जहाँ टकराकर टुकड़े-टुकड़े हो गये थे, जहाँ पिनाकपाणि महादेवके फरसेकी तीखी धार भी कुण्ठित हो गयी थी, वही मेरा वक्षःस्थल इस समय नृसिंहके नखोंद्वारा फाड़ा जा रहा है। सच है, जब भाग्य खोटा हो जाता है, तब तिनका भी प्रायः अनादर करने लगता है' ॥३०॥

एवं वदति दैत्येन्द्रे ददार नरकेसरी ।
हृदयं दैत्यराजस्य पद्मपत्रमिव द्विपः ॥३१॥
शकले द्वे तिरोभूते नखरन्ध्रे महात्मनः ।
ततः क्व यातो दुष्टोऽसाविति देवोऽतिविस्मितः ॥३२॥
निरीक्ष्य सर्वतो राजन् वृथैतत्कर्म मेऽभवत् ।

दैत्यराज हिरण्यकशिपु इस प्रकार कह ही रहा था कि भगवान् नृसिंहने उसका हृदयदेश विदीर्ण कर दिया—ठीक उसी तरह, जैसे हाथी कमलके पत्तेको अनायास ही छिन्न-भिन्न कर देता है। उसके शरीरके दोनों टुकड़े महात्मा नृसिंहके नखोंके छेदमें घुसकर छिप गये। राजन्! तब भगवान् सब ओर देखकर अत्यन्त विस्मित हो सोचने लगे—'अहो! वह दुष्ट कहाँ चला गया? जान पड़ता है, मेरा यह सारा उद्योग ही व्यर्थ हो गया' ॥३१—३३॥

इति सचिन्त्य राजेन्द्र नरसिंहो महाबलः ॥२३॥
व्यधूनयत्करावुच्चैस्ततस्ते शकले नृप ।
नखरन्ध्राग्निपतिते भूमौ रेणुसमे हरेः ॥२४॥
दृष्ट्वा व्यतीतसरोषो जहास परमेश्वरः ।
पुष्पवर्षं च वर्षन्तो नरसिंहस्य मूर्धनि ॥२५॥
देवा ब्रह्मादयः सर्वे आगताः प्रीतिसंयुताः ।
आगत्य पूजयामासुर्नरसिंहं परं प्रभुम् ॥२६॥

राजेन्द्र ! महाबली नृसिंह इस प्रकार चिन्तामें पड़कर अपने दोनों हाथोंको बड़े जोरसे झाड़ने लगे। राजन् ! फिर तो वे दोनों टुकड़े उन भगवान्‌के नख छिद्रसे निकलकर भूमिपर गिर पड़े और कुचलकर धूलिकणके समान हो गये। यह देख रोषहीन हो वे परमेश्वर हँसने लगे। इसी समय ब्रह्मा आदि सभी देवता अत्यन्त प्रसन्न हो वहाँ आये और भगवान् नरसिंहके मस्तकपर फूलोंकी वर्षा करने लगे। पास आकर उन सबने उन परम प्रभु नरसिंहदेवका पूजन किया ॥ २३-२६ ॥

ब्रह्मा च दैत्यराजानं प्रह्लादमभिषेचयत् ।
धर्मे रतिं समस्तानां जनानामभवत्तदा ॥२७॥
इन्द्रोऽपि सर्वदैवैस्तु हरिणा स्थापितो दिवि ।
नरसिंहोऽपि भगवान् सर्वलोकहिताय वै ॥२८॥
श्रीशैलशिखरं प्राप्य विश्रुतः सुरपूजितः ।
स्थितो भक्तहितार्थाय अभक्तानां क्षयाय च ॥२९॥

तदनन्तर ब्रह्माजीने प्रह्लादका दैत्योंके राजाके पदपर अभिषेक किया। उस समय समस्त प्राणियोंका धर्ममें अनुराग हो गया। सम्पूर्ण देवताओंसहित भगवान् विष्णुने इन्द्रको स्वर्गके राज्यपर स्थापित किया। भगवान् नृसिंह भी सम्पूर्ण लोकोंके हितके लिये श्रीशैलके शिखरपर जा पहुँचे। वहाँ देवताओंसे पूजित हो वे प्रसिद्धिको प्राप्त हुए। वे भक्तोंका हित और अभक्तोंका नाश करनेके लिये वहीं रहने लगे ॥ २७-२९ ॥

इत्येतन्नरसिंहस्य माहात्म्यं यः पठेन्नरः ।
शृणोति वा नृपश्रेष्ठ मुच्यते सर्वपातकैः ॥४०॥
नरो वा यदि वा नारी शृणोत्याख्यानमुत्तमम् ।
वैधव्याद् दुःखशोकाच्च दुष्टसङ्गात् प्रमुच्यते ॥४१॥
दुश्शीलोऽपि दुराचारो दुष्प्रजो दोषकर्मकृत् ।
अधर्मिष्ठोऽन्नभोगी च शृण्वन् शुद्धो भवेन्नरः ॥४२॥

नृपश्रेष्ठ ! जो मनुष्य भगवान् नरसिंहके इस माहात्म्यको पढ़ता अथवा सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। नर हो या नारी—जो भी इस उत्तम आख्यानको सुनता है, वह दुष्टोंका सङ्ग करनेके दोषसे, दुःखसे, शोकसे एवं वैधव्यके कष्टसे छुटकारा पा जाता है। जो दुष्ट स्वभाववाला, दुराचारी, दुष्ट संतानवाला, दूषित कर्मोंका आचरण करनेवाला, अधमात्मा और विषयभोगी हो, वह मनुष्य भी इसका श्रवण करनेसे शुद्ध हो जाता है ॥४०-४२॥

हरिः सुरेशो नरलोकपूजितो
हिताय लोकस्य चराचरस्य ।
कृत्वा निरूपं च पुराऽऽत्ममायया
हिरण्यकं दुःखकरं नखैश्छिनत् ॥४३॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे नरसिंहप्रादुर्भावो नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

मनुष्यलोकपूजित देवेश्वर भगवान् हरिने पूर्वकालमें चराचर जगत्‌के हितके लिये अपनी मायासे भयानक स्वरूप—नरसिंह रूप धारण करके दुःखदायी दैत्य हिरण्यकशिपुका नखोंद्वारा नाश कर दिया था ॥ ४३ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'नरसिंहका प्रादुर्भाव' नामक चौवालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४४ ॥

पैंतालीसवाँ अध्याय

वामन-अवतारकी कथा

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन् समासेन वामनस्य पराक्रमम् ।
बलियागे हता येन पुरा दैत्याः सहस्रशः ॥ १ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—राजेन्द्र ! जिन्होंने पूर्वकालमें राजा बलिके यज्ञमें हजारों दैत्योंका नाश किया था, उन भगवान् वामनका चरित्र संक्षेपसे सुनो ॥

विरोचनसुतं पूर्वं महाबलपराक्रमः ।
त्रैलोक्यं बुभुजे जित्वा देवानिन्द्रपुरोगमान् ॥ २ ॥
ततः कृशतरा देवा बभूवुस्तेन खण्डिताः ।
इन्द्रं कृशतरं दृष्ट्वा नष्टराज्यं नृपोत्तम ॥ ३ ॥
अदितिर्देवमाता या सातप्यत्परमं तपः ।
तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिः प्रणिपत्य जनार्दनम् ॥ ४ ॥
ततः स्तुत्याभिसंतुष्टो देवदेवो जनार्दनः ।
स्थित्वा तत्पुरतो वाचमुवाच मधुसूदनः ॥ ५ ॥
तव पुत्रो भविष्यामि सुभगे बलिबन्धनः ।
इत्युक्त्वा तां गतो विष्णुः स्वगृहं सा ममायर्या ॥ ६ ॥

पहलेकी बात है, विरोचनका पुत्र बलि महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न हो, इन्द्र आदि समस्त देवताओंको जीतकर त्रिभुवनका राज्य भोग रहा था। नृपवर! उसके द्वारा खण्डित हुए देवतालोग बहुत दुबले हो गये थे। राज्य नष्ट हो जानेसे इन्द्र और अधिक कृश हो गये थे। उन्हें इस दशामें देखकर देवमाता अदितिने बहुत बड़ी तपस्या की। उन्होंने भगवान् जनार्दनको प्रणाम करके अभीष्ट वाणीद्वारा उनका स्तवन किया। अदितिकी स्तुतिसे प्रसन्न हो देवाधिदेव मधुसूदन जनार्दन उनके सम्मुख उपस्थित हो बोले— 'सौभाग्यशालिनि! मैं बलिको बाँधनेके लिये तुम्हारा पुत्र होऊँगा।' उनसे यों कहकर भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गये और अदिति भी अपने घर चली गयीं ॥ २—६ ॥

ततः कालेन सा गर्भमवाप नृप कश्यपात् ।
अजायत स विश्वेशो भगवान् वामनाकृतिः ॥ ७ ॥
तस्मिञ्जाते समागत्य ब्रह्मा लोकपितामहः ।
जातकर्मादिकाः सर्वाः क्रियास्तत्र चकार वै ॥ ८ ॥
कृतोपनयनो देवो ब्रह्मचारी सनातनः ।
अदितिं चाप्यनुज्ञाप्य यज्ञशालां बलेर्ययौ ॥ ९ ॥
गच्छतः पादविक्षेपाच्चचाल सकला मही ।
यज्ञभागांश्च गृह्णन्ति दानवाश्च बलेर्मखात् ॥ १० ॥
प्रशान्ताश्चाग्नयस्तत्र ऋत्विजो मन्त्रतश्च्युताः ।
विपरीतमिदं दृष्ट्वा शुक्रमाह महाबलः ॥ ११ ॥

न गृह्णन्ति मुने कस्माद्धविर्भागं महासुराः ।
कस्माच्च वह्नयः शान्ताः कस्माद्भूश्चलति द्विज ॥ १२ ॥
कस्माच्च मन्त्रतो भ्रष्टा ऋत्विजः सकला अमी ।
इत्युक्तो बलिना शुक्रो दानवेन्द्रं वचोऽब्रवीत् ॥ १३ ॥

राजन्! तदनन्तर समय आनेपर अदितिने कश्यपजीसे गर्भ धारण किया। उस गर्भसे वामनरूपमें साक्षात् भगवान् जगन्नाथ ही प्रकट हुए। वामनजीका अवतार होनेपर लोकपितामह ब्रह्माजी वहाँ आये। उन्होंने उनके जातकर्मादि सम्पूर्ण समयोचित संस्कार सम्पन्न किये। उपनयन संस्कारके बाद वे सनातन भगवान् ब्रह्मचारी होकर अदितिकी आज्ञा ले राजा बलिकी यज्ञशालामें गये। चलते समय उनके चरणोंके आघातसे पृथ्वी काँप उठती थी। दानवगण बलिके यज्ञसे हविष्य ग्रहण करनेमें असमर्थ हो गये। वहाँकी आग बुझ गयी। ऋत्विक्गण मन्त्रोच्चारणमें त्रुटि करने लगे। यह विपरीत कार्य देखकर महाबली बलिने शुक्राचार्यसे कहा—'मुने! ये महान् असुरगण यज्ञका भाग क्यों नहीं ग्रहण कर रहे हैं? अग्नि क्यों शान्त हो रहा है? विप्रवर! यह पृथ्वी क्यों डगमगा रही है? तथा ये सम्पूर्ण ऋत्विक् मन्त्रभ्रष्ट क्यों हो रहे हैं?' बलिके इस प्रकार पूछनेपर शुक्राचार्यने उस दानवराजसे कहा ॥ ७—१३ ॥

शुक्र उवाच

हे बले शृणु मे वाक्यं त्वया देवा निराकृताः ।
तेषां राज्यप्रदानाय अदित्यामच्युतोऽसुर ॥ १४ ॥
देवदेवो जगद्योनिः संजातो वामनाकृतिः ।
स त्वागच्छति ते यज्ञं तत्पादन्यासकम्पिता ॥ १५ ॥
चलतीयं मही सर्वा तेनाद्यासुरभूपते ।
तत्सांनिध्यानादसुरा न गृह्णन्ति हविर्मखे ॥ १६ ॥
तवाग्नयोऽपि वै शान्ता वामनागमनाद्विभो ।
ऋत्विजश्च न भासन्ते होममन्त्रो बलेऽधुना ॥ १७ ॥
असुराणां श्रियो हन्ति सुराणां भूतिरुत्तमा ।

शुक्र बोले—असुरराज बलि! तुम ... सुनो! तुमने देवताओंको जीतकर स्वर्ग ... उनका राज्य देनेके ... भगवान् विष्णु ...

असुरराज ! वे ही तुम्हारे यज्ञमें आ रहे हैं, अतः उन्हींके पादविन्यास (पाँव रखने) से कम्पित हो यह सारी पृथ्वी आज हिलने लगी है तथा उनके निकट आ जानेके कारण असुरगण आज यज्ञमें हविष्य ग्रहण नहीं कर रहे हैं। बले ! वामनके आगमनसे ही तुम्हारे यज्ञकी आग भी बुझ गयी है और ऋत्विज् भी श्रीहीन हो गये हैं। इस समयका होममन्त्र असुरोंकी सम्पत्तिको नष्ट कर रहा है और देवताओंका उत्तम वैभव बढ़ रहा है ॥ १४–१७½ ॥

इत्युक्तः स बलिः प्राह शुक्रं नीतिमतां वरम् ॥१८॥
शृणु ब्रह्मन् वचो मे त्वमागते वामने मखे ।
यन्मया चाद्य कर्तव्यं वामनस्यास्य धीमतः ॥१९॥
तन्मे वद महाभाग त्वं हि नः परमो गुरुः ।

उनके इस प्रकार कहनेपर बलिने नीतिज्ञोंमें श्रेष्ठ शुक्राचार्यजीसे कहा—‘ब्रह्मन् ! महाभाग ! आप मेरी बात सुनें। यज्ञमें वामनजीके पधारनेपर उन बुद्धिमान् वामनजीके लिये मुझे क्या करना चाहिये, यह हमें बताइये; क्योंकि आप मेरे परम गुरु हैं’ ॥ १८-१९½ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति सञ्चोदितः शुक्रः स राज्ञा बलिना नृप ॥२०॥
तमुवाच बलिं वाक्यं ममापि शृणु साम्प्रतम् ।
देवानामुपकाराय भवतां मक्षयाय च ॥२१॥
स नूनमायाति बले तव यज्ञे न संशयः ।
आगते वामने देवे त्वया तस्य महात्मनः ॥२२॥
प्रतिज्ञा नैव कर्तव्या ददाम्येतत्तवेति वै ।

मार्कण्डेयजी बोले—नरेश्वर ! राजा बलिके इस प्रकार पूछनेपर शुक्राचार्यजीने उनसे कहा—‘राजन् ! अब मेरी भी बात सुनो। बले ! वे देवताओंका हित करने और तुमलोगोंके विनाशके लिये ही तुम्हारे यज्ञमें पधार रहे हैं, इसमें संदेह नहीं है। अतः जब भगवान् वामन यहाँ आ जायँ, तब उन महात्माके लिये ‘मैं आपको यह वस्तु देता हूँ’ यों कहकर कुछ देनेकी प्रतिज्ञा न करना’ ॥ २०–२२½ ॥

इति श्रुत्वा वचस्तस्य बलिर्वदतां वरः ॥२३॥
उवाच तां शुभां वाणीं गुरुमात्मपुरोहितम् ।
आगते वामने शुक्र यज्ञे मे मधुसूदने ॥२४॥
न शक्यते प्रतिख्यातुं दानं प्रति मया गुरो ।
अन्येषामपि जन्तूनामित्युक्तं ते मयाधुना ॥२५॥
किं पुनर्वासुदेवस्य आगतस्य तु शार्ङ्गिणः ।
त्वया विघ्नो न कर्तव्यो वामनेऽभ्यागते द्विज ॥२६॥
यद्यद्द्रव्यं प्रार्थयते तत्तद्द्रव्यं ददाम्यहम् ।
कृतार्थोऽहं मुनिश्रेष्ठ यद्यागच्छति वामनः ॥२७॥

उनकी यह बात सुनकर वक्ताओंमें श्रेष्ठ बलिने अपने पुरोहित शुक्राचार्यजीसे यह सुन्दर बात कही—‘गुरुदेव शुक्र ! यज्ञमें मधुसूदन भगवान् वामनके पधारनेपर मैं उन्हें कुछ भी देनेसे इनकार नहीं कर सकता। अभी अभी मैं आपसे कह चुका हूँ कि दूसरे प्राणी भी यदि मुझसे कुछ याचना करेंगे तो मैं उन्हें वह वस्तु देनेसे इनकार नहीं कर सकता, फिर शार्ङ्ग-धनुष धारण करनेवाले साक्षात् भगवान् विष्णु (वासुदेव) मेरे यज्ञमें पधारें और मैं उनकी मुँहमाँगी वस्तु उन्हें देनेसे इनकार कर दूँ, यह कैसे सम्भव होगा ? ब्राह्मणदेव ! यहाँ भगवान् वामनके पदार्पण करनेपर आप उनके कार्यमें विघ्न न डालियेगा। वे जो-जो द्रव्य माँगेंगे, वही-वही मैं उन्हें दूँगा। मुनिश्रेष्ठ ! यदि सचमुच ही यहाँ भगवान् वामन पधार रहे हैं तो मैं कृतार्थ हो गया’ ॥ २३–२७ ॥

इत्येवं वदतस्तस्य यज्ञशालां स वामनः ।
आगत्य प्रविवेशाथ प्रशशंस बलेर्मखम् ॥२८॥
तं दृष्ट्वा सहसा राजन् राजा दैत्याधिपो बलिः ।
उपचारेण सम्पूज्य वाक्यमेतदुवाच ह ॥२९॥
यद्यत्प्रार्थयसे मां त्वं देवदेव धनादिकम् ।
तत्सर्वं तव दास्यामि मां याचस्वाद्य वामन ॥३०॥

राजा बलि जब इस प्रकार कह रहे थे, उसी समय वामनजी आ गये और यज्ञशालामें प्रवेश किया और वे उनके उस यज्ञकी प्रशंसा करने लगे। राजन् ! उन्हें देखकर ही दैत्याधिपति राजा बलिने सहसा उठकर पूजन-सामग्रियोंद्वारा उनकी पूजा की, फिर इस प्रकार कहा—‘देवदेव ! आप धन आदि जो जो वस्तु मुझसे माँगेंगे, वह सब मैं आपको दूँगा। वामनजी ! आप आज मुझसे याचना कीजिये’ ॥ २८–३० ॥

इत्युक्तो वामनस्तत्र प्रेक्ष्य बलिनोदितम् ॥३१॥
[illegible] देवेशो [illegible] ॥३१॥

ममाग्निशरणार्थाय न मेऽर्थोऽस्ति प्रयोजनम् ।

नृपेन्द्र ! बलिके यों कहनेपर उस समय द्विजवर भगवान् वामनने उनसे यही याचना की कि 'मुझे अग्निशालाके लिये केवल तीन पग भूमि दीजिये—मुझे धनकी आवश्यकता नहीं है' ॥ ३१ ॥

इत्युक्तो वामनेनाथ बलिः प्राह च वामनम् ॥३२॥
पदत्रयेण चेत्तृप्तिर्मया दत्तं पदत्रयम् ।

भगवान् वामनके यों कहनेपर बलिने उनसे कहा—'यदि तीन पग भूमिसे ही आपको संतोष है तो तीन पग भूमि मैंने आपको दे दी' ॥ ३२ ॥

एवमुक्ते तु बलिना वामनो बलिमब्रवीत् ॥३३॥
दीयतां मे करे तोयं यदि दत्तं पदत्रयम् ।

बलिके द्वारा यों कहे जानेपर भगवान् वामन उनसे बोले—'यदि आपने मुझे तीन पग भूमि दे दी तो मेरे हाथमें संकल्पका जल दीजिये' ॥ ३३ ॥

इत्युक्तो देवदेवेन तदा तत्र स्वयं बलिः ॥३४॥
सजलं हेमकलशं गृहीत्वोत्थाय भक्तितः ।
यावत्स वामनकरे तोयं दातुमुपस्थितः ॥३५॥
तावच्छुक्रः कलशगो जलधारां न्यरोधयत् ।
ततश्च वामनः क्रुद्धः पवित्राग्रेण सत्तम ॥३६॥
उदकं फलकद्वारि तच्छुक्राक्षिमवेधयत् ।
ततो व्यपगते शुक्रे निर्द्विकाक्षो नरोत्तम ॥३७॥

यह देख, उस समय वहाँ देवदेव भगवान् वामनजीके इस प्रकार कहनेपर स्वयं राजा बलि जलसे भरे हुए सुवर्ण-कलशको लेकर भक्तिपूर्वक खड़े हो गये और ज्यों ही वामनजीके हाथमें जल देनेको उद्यत हुए, त्यों ही शुक्राचार्य [योग-बलसे] कलशमें घुसकर गिरती हुई जलधारा रोकने लगे। सत्तम ! तब वामनजीने क्रुद्ध होकर पवित्र (कुश) के अग्रभागसे कलशके छेदमें जल निकलनेके मार्गपर स्थित हुए शुक्राचार्यकी एक आँख छेद डाली। नरोत्तम ! एक आँख छिद जानेपर शुक्राचार्य कलशसे निकल भागे ॥ ३४—३७ ॥

तोयधारा निपतिता वामनस्य करे पुनः ।
करे निपतिते तोये वामनो ववृधे क्षणात् ॥३८॥
पादेनैकेन विक्रान्ता तेनैव सकला मही ।
अन्तरिक्षं द्वितीयेन द्यौस्तृतीयेन सत्तम ॥३९॥
अनेकान् दानवान् हत्वा हृत्वा त्रिभुवनं बलेः ।
पुरंदराय त्रैलोक्यं दत्त्वा बलिमुवाच ह ॥४०॥
यस्मात्ते भक्तितो दत्तं तोयमद्य करे मम ।
तस्मात्ते साम्प्रतं दत्तं पातालतलमुत्तमम् ॥४१॥
तत्र गत्वा महाभाग भुङ्क्ष्व त्वं मत्प्रसादतः ।
वैवस्वतेऽन्तरेऽतीते पुनरिन्द्रो भविष्यसि ॥४२॥

तत्पश्चात् वामनजीके हाथमें जलकी धारा गिरी। हाथपर जल पड़ते ही वामनजी क्षणभरमें ही बढ़ गये। सत्तम ! उन्होंने एक पगमें यह सम्पूर्ण पृथ्वी नाप ली, द्वितीय पगसे अन्तरिक्ष लोक तथा तृतीय पगसे स्वर्गलोकको आक्रान्त कर लिया। फिर अनेक दानवोंका संहार करके बलिसे त्रिभुवनका राज्य छीन लिया और यह त्रिलोकी इन्द्रको अर्पित कर पुनः बलिसे कहा—'तुमने भक्तिपूर्वक आज मेरे हाथमें संकल्पका जल अर्पित किया है, इसलिये इस समय मैंने तुम्हें उत्तम पाताल-लोकका राज्य दिया। महाभाग ! वहाँ जाकर तुम मेरे प्रसादसे राज्य भोगो। वैवस्वत मन्वन्तर व्यतीत हो जानेपर तुम पुनः इन्द्र-पदपर प्रतिष्ठित होओगे' ॥ ३८—४२ ॥

प्रणम्य च ततो गत्वा तले भोगमवाप्तवान् ॥४३॥
शक्रोऽपि स्वर्गमारुह्य प्रसादाद्वामनस्य वै ।
समागतस्त्रिभुवनं राजन् देवसमन्वितः ॥४४॥
यः स्मरेत्प्रातरुत्थाय वामनस्य कथामिमाम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ॥४५॥
इत्थं पुरा वामनरूपमास्थितो
हरिर्बलेर्हृत्य जगत्त्रयं नृप ।
कृत्वा प्रसादं च दिवौकसां पते
र्दत्त्वा त्रिलोकं स ययौ महोदधिम् ॥४६॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे वामनप्रादुर्भावे पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

तब बलि भगवान्को प्रणाम करके पातालतलमें जाकर वहाँ उत्तम भोग प्राप्त किया। राजन् ! भगवान् वामनकी कृपासे इन्द्र भी स्वर्गमें आकर देवताओंके साथ त्रिभुवनका उपभोग करने लगे। जो मनुष्य

प्रातःकाल उठकर भगवान् वामनकी इस कथाका स्मरण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। नृप! इस प्रकार पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने वामनरूप धारणकर त्रिभुवनका राज्य बलिसे ले लिया और उसे कृपापूर्वक देवराज इन्द्रको अर्पित कर दिया। तत्पश्चात् वे क्षीरसागरको चले गये ॥ ४३–४६ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'वामनावतार' विषयक पैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४५ ॥

छियालीसवाँ अध्याय

परशुरामावतारकी कथा

मार्कण्डेय उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रादुर्भावं हरेः शुभम्।
जामदग्न्यं पुरा येन क्षत्रमुत्सादितं शृणु ॥ १ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—राजन्! अब मैं भगवान् विष्णुके जामदग्न्य (परशुराम) नामक शुभ अवतारका वर्णन करता हूँ, जिसने पूर्वकालमें क्षत्रियवंशका उच्छेद किया था, उस प्रसङ्गको सुनो ॥ १ ॥

पुरा देवगणैर्विष्णुः स्तुतः क्षीरोदधौ नृप।
ऋषिभिश्च महाभागैर्जमदग्नेः सुतोऽभवत् ॥ २ ॥
परशुराम इति ख्यातः सर्वलोकेषु स प्रभुः।
दुष्टानां निग्रहं कर्तुमवतीर्णो महीतले ॥ ३ ॥
कृतवीर्यसुतः श्रीमान् कार्तवीर्योऽभवत् पुरा।
दत्तात्रेयं समाराध्य चक्रवर्तित्वमाप्तवान् ॥ ४ ॥
स कदाचिन्महाभागो जमदग्न्याश्रमं ययौ।
जमदग्निस्तु तं दृष्ट्वा चतुरङ्गबलान्वितम् ॥ ५ ॥
उवाच मधुरं वाक्यं कार्तवीर्यं नृपोत्तमम्।
मुच्यतामत्र ते सेना अतिथिस्त्वं समागतः।
वन्यादिकं मया दत्तं भुक्त्वा गच्छ महामते ॥ ६ ॥

नरेश्वर! पहलेकी बात है, 'क्षीरसागरके' तटपर देवताओं और महाभाग ऋषियोंने भगवान् विष्णुकी स्तुति की, इससे वे जमदग्नि मुनिके पुत्रके रूपमें अवतीर्ण हुए। वे भगवान् सम्पूर्ण लोकोंमें 'परशुराम' नामसे विख्यात थे और दुष्ट राजाओंका नाश करनेके लिये ही इस भूतलपर अवतीर्ण हुए थे। उनके आनेसे पूर्व राजा कृतवीर्यका पुत्र 'कार्तवीर्य' हुआ था, जिसने दत्तात्रेयजीकी आराधना करके सार्वभौम राज्य प्राप्त कर लिया था। एक समय वह महाभाग राजा जमदग्नि ऋषिके आश्रमपर गया। उसके साथ चतुरङ्गिणी सेना थी। उस राजाको चतुरङ्गिणी सेनाके साथ आश्रमपर आया देख जमदग्निने नृपवर कार्तवीर्यसे मधुर वाणीमें कहा—'महामते! आप मेरे अतिथि होकर यहाँ पधारे हैं, अतः आज अपनी सेनाका पड़ाव यहीं डालिये और मेरे दिये हुए वन्य फल आदिका भोजन करके कल यहाँसे जाइयेगा' ॥ २–६ ॥

प्रमुच्य सेनां मुनिवाक्यगौरवात्
स्थितो नृपस्तत्र महानुभावः।
आमन्त्र्य राजानमलङ्घ्यकीर्तिं
मुनिः स धेनुं च दुदोह दोग्ध्रीम् ॥ ७ ॥
हस्त्यश्वशाला विविधा नराणां
गृहाणि चित्राणि च तोरणानि।
सामन्तयोग्यानि शुभानि राजन्
समिच्छता यानि सुशोभनानि ॥ ८ ॥
गृहं वरिष्ठं बहुभूमिकं पुनः
समन्वितं साधुगुणैरुपस्करैः।
दुग्ध्वा प्रकल्प्य मुनिराह पार्थिवं
गृहं त्वमेतत् प्रविशेह राजन् ॥ ९ ॥
इमे च मन्त्रिप्रवरा जनास्त्वं
गृहेषु दिव्येषु विशन्तु शीघ्रम्।
हस्त्यश्वनान्यश्च विशन्तु [illegible]
भृत्याश्च नीचेषु गृहेषु सन्तु ॥ १० ॥

महानुभाव राजा कार्तवीर्य मुनिके वाक्यका गौरव मानकर अपनी सेनाका पड़ाव डालकर वहीं ठहर गया। इधर अलङ्घ्य यशवाले उस राजाको आमन्त्रित करके मुनिने अपनी कामधेनुसे दोहन किया। राजन्! उन्होंने

अनेकानेक गजशाला, अश्वशाला, मनुष्योंके रहनेयोग्य विचित्र गृह और तारण (द्वार) आदिका दोहन किया । सामन्त नरेशोंके रहनेयोग्य सुन्दर भवन, जिनमें बगीचे आदिका इच्छा रखनेवालोंके लिये सुन्दर उद्यान थे, दोहनद्वारा प्रस्तुत किये । फिर अनेक मंजिलोंका श्रेष्ठ महल, जिसमें सुन्दर एवं उपयोगी सामान सचित थे, गोदोहनके द्वारा उपलब्ध करके मुनिने भूपालसे कहा —'राजन् ! आपके लिये महल तैयार है । आप इसमें प्रवेश कीजिये । आपके ये श्रेष्ठ मन्त्री तथा और लोग भी शीघ्र ही इन दिव्य गृहोंमें प्रवेश करें । विभिन्न जातियोंके हाथी और घोड़े आदि भी गजशाला और अश्वशालामें रहें तथा भृत्यगण भी इन छोटे घरोंमें निवास करें' ॥ ७–१० ॥

इत्युक्तमात्रे मुनिना नृपोऽसौ
गृहं वरिष्ठं प्रविवेश राजा ।
अन्येषु चान्येषु गृहेषु सत्सु
मुनिः पुनः पार्थिवमाबभाषे ॥११॥
स्नानप्रदानार्थमिदं मया ते
प्रकल्पितं स्त्रीशतमुत्तमं नृप ।
स्नाहि त्वमद्यात्र यथाप्रकामं
यथा सुरेन्द्रो दिवि नृत्यगीतैः ॥१२॥

मुनिके इस प्रकार कहते ही राजा कार्तवीर्यने उस उत्तम गृहमें प्रवेश किया । फिर दूसरे लोग दूसरे-दूसरे गृहोंमें प्रविष्ट हुए । इस प्रकार सबके यथास्थान स्थित हो जानेपर मुनिने पुनः राजा कार्तवीर्यसे कहा—'नरेश्वर ! आपको स्नान करानेके लिये मैंने इन सौ उत्तम स्त्रियोंको नियत किया है । जैसे स्वर्गमें देवराज इन्द्र अप्सराओंके नृत्य-गीत सुनते हुए स्नान करते हैं, उसी प्रकार आप भी इन स्त्रियोंके नृत्य-गीतसे आनन्दित हो इच्छानुसार स्नान कीजिये' ॥ ११-१२ ॥

स स्नातवांस्तत्र सुरेन्द्रवन्नृपो
गीत्यादिशब्दैर्मधुरैश्च वाद्यैः ।
स्नातस्य तस्याशु शुभे च वस्त्रे
ददौ मुनिर्भूप विभूषिते द्वे ॥१३॥
परिधाय वस्त्रं च कृतोत्तरीयः
कृतक्रियो विष्णुपूजां चकार ।
मुनिश्च दुग्धान्नमयं महागिरिं
नृपाय भृत्याय च दत्तवानसौ ॥१४॥
यावत्स राजा बुभुजे सभृत्य-
स्तावच्च सूर्यो गतवान् नृपास्तम् ।
रात्रौ च गीतादिविनोदयुक्तः
शेते स राजा मुनिनिर्मिते गृहे ॥१५॥

भूप ! (मुनिकी आज्ञासे) वहाँ राजा कार्तवीर्यने इन्द्रकी भाँति मधुर बाजों और गीत आदिके शब्दोंसे आनन्दित होते हुए स्नान किया । स्नान कर लेनेपर मुनिने उन्हें दो सुन्दर सुशोभित वस्त्र दिये । धोतवस्त्र पहन और ऊपरसे चादर ओढ़कर राजाने नित्य नियम करनेके बाद भगवान् विष्णुकी पूजा की । फिर उन मुनिवरने खीर अन्नमय महान् पर्वतका दोहन करके राजा तथा उनके भृत्यवृन्दको अर्पित किया । राजन् ! राजा तथा उनके भृत्यगणोंने जबतक भोजनका कार्य सम्पन्न किया, तबतक सूर्यदेव अस्ताचलको चले गये । तब उन राजाने रातको भी मुनिके बनाये हुए उस भवनमें गीत आदि विनोदोंसे आनन्दित हो शयन किया ॥ १३–१५ ॥

ततः प्रभाते विमले स्वप्नलब्धमिवाभवत् ।
भूमिभागं ततः कंचिद् दृष्ट्वासौ चिन्तयन्नृप ॥१६॥
किमियं तपसः शक्तिर्मुनेरस्य महात्मनः ।
सुरभ्या वा महाभाग ब्रूहि मे त्वं पुरोहित ॥१७॥
इत्युक्तः कार्तवीर्येण तमुवाच पुरोहितः ।
मुनेः सामर्थ्यमप्यस्ति सिद्धिश्चैव हि गौर्नृप ॥१८॥
तथापि सा न हर्तव्या त्वया लोभान्नराधिप ।
यस्त्वेतां हर्तुमिच्छेद् वै तस्य नाशो ध्रुवं भवेत् ॥१९॥

तदनन्तर निर्मल प्रभातकाल होते ही स्वप्नमें मिली हुई सम्पत्तिके समान वह सब कुछ लुप्त हो गया । फिर वहाँ केवल कोई भूभागमात्र ही अवशिष्ट देखकर राजाने मन-ही-मन विचार किया और अपने पुरोहितसे पूछा—'महाभाग पुरोहितजी ! यह महात्मा जमदग्नि मुनिके तपकी शक्ति थी या कामधेनु गौकी ? इस बातको मुझे बताइये ।' कार्तवीर्यके इस प्रकार पूछनेपर पुरोहितने उनसे कहा—'राजन् ! मुनिमें भी सामर्थ्य है, परंतु यह सिद्धि तो गौकी ही थी । तो भी

अनेकानेक गजशाला, अश्वशाला, मनुष्योंके रहनेयोग्य विचित्र गृह और तोरण (द्वार) आदिका दोहन किया । सामन्त नरेशोंके रहनेयोग्य सुन्दर भवन, जिनमें बगीचे आदिकी इच्छा रखनेवालोंके लिये सुन्दर उद्यान थे, दोहनद्वारा प्रस्तुत किये । फिर अनेक मंजिलोंका श्रेष्ठ महल, जिसमें सुन्दर एवं उपयोगी सामान सञ्चित थे, गोदोहनके द्वारा उपलब्ध करके मुनिने भूपालसे कहा—'राजन् ! आपके लिये महल तैयार है । आप इसमें प्रवेश कीजिये । आपके ये श्रेष्ठ मन्त्री तथा और लोग भी शीघ्र ही इन दिव्य गृहोंमें प्रवेश करें । विभिन्न जातियोंके हाथी और घोड़े आदि भी गजशाला और अश्वशालामें रहें तथा भृत्यगण भी इन छोटे घरोंमें निवास करें' ॥ ७–१० ॥

इत्युक्तमाने मुनिना नृपोऽसौ
गृहं वरिष्ठं प्रविवेश राजा ।
अन्येषु चान्येषु गृहेषु सत्सु
मुनिः पुनः पार्थिवमाबभाषे ॥११॥
स्नानप्रदानार्थमिदं मया ते
प्रकल्पितं स्त्रीशतमुत्तमं नृप ।
स्नाहि त्वमद्यात्र यथाप्रकामं
यथा सुरेन्द्रो दिवि नृत्यगीतैः ॥१२॥

मुनिके इस प्रकार कहते ही राजा कार्तवीर्यने उस उत्तम गृहमें प्रवेश किया । फिर दूसरे लोग दूसरे-दूसरे गृहोंमें प्रविष्ट हुए । इस प्रकार सबके यथास्थान स्थित हो जानेपर मुनिने पुनः राजा कार्तवीर्यसे कहा—'नरेश्वर ! आपको स्नान करानेके लिये मैंने इन सौ उत्तम स्त्रियोंको नियत किया है । जैसे स्वर्गमें देवराज इन्द्र अप्सराओंके नृत्य-गीत सुनते हुए स्नान करते हैं, उसी प्रकार आप भी इन स्त्रियोंके नृत्य-गीतसे आनन्दित हो इच्छानुसार स्नान कीजिये' ॥ ११-१२ ॥

स स्नातवांस्तत्र सुरेन्द्रवन्नृपो
गीत्यादिशब्दैर्मधुरैश्च वाद्यैः ।
स्नातस्य तस्याशु शुभे च वस्त्रे
ददौ मुनिर्भूप विभूषिते द्वे ॥१३॥
परिधाय वस्त्रं च कृतोत्तरीयः
कृतक्रियो विष्णुपूजां चकार ।
मुनिश्च दुग्ध्वान्नमयं महागिरिं
नृपाय भृत्याय च दत्तवानसौ ॥१४॥
यावत्स राजा बुभुजे सभृत्य-
स्तावच्च सूर्यो गतवान् नृपास्तम् ।
रात्रौ च गीतादिविनोदयुक्तः
शेते स राजा मुनिनिर्मिते गृहे ॥१५॥

नृप ! (मुनिकी आज्ञासे) वहाँ राजा कार्तवीर्यने इन्द्रकी भाँति मधुर वाद्यों और गीत आदिके शब्दसे आनन्दित होते हुए स्नान किया । स्नान कर लेनेपर मुनिने उन्हें दो सुन्दर सुशोभित वस्त्र दिये । धौतवस्त्र पहनकर और ऊपरसे चादर ओढ़कर राजाने नित्य नियम करनेके बाद भगवान् विष्णुकी पूजा की । फिर उन मुनिवरने दोहनद्वारा अन्नमय महान् पर्वतका दोहन करके राजा तथा उनके भृत्यवृन्दको अर्पित किया । नृप ! राजा तथा उनके भृत्यगणोंने जबतक भोजनका कार्य सम्पन्न किया, तबतक सूर्यदेव अस्ताचलको चले गये । तब उन्होंने रातको भी मुनिके बनाये हुए उस भवनमें गीत आदि विनोदोंसे आनन्दित हो शयन किया ॥ १३–१५ ॥

ततः प्रभाते विमले स्वप्नलब्धमिवाभवत् ।
भूमिभागं ततः कंचिद् दृष्ट्वासौ चिन्तयन्नृपः ॥१६॥
किमियं तपसः शक्तिर्मुनेरस्य महात्मनः ।
सुरभ्या वा महाभाग ब्रूहि मे त्वं पुरोहित ॥१७॥
इत्युक्तः कार्तवीर्येण तमुवाच पुरोहितः ।
मुने सामर्थ्यमप्यस्ति सिद्धिश्चेयं हि गोर्नृप ॥१८॥
तथापि सा न हर्तव्या त्वया लोभान्नराधिप ।
यस्त्वेतां हर्तुमिच्छेद् वै तस्य नाशो ध्रुवं भवेत् ॥१९॥

तदनन्तर निर्मल प्रभातकाल होते ही स्वप्नमें मिली हुई सम्पत्तिके समान सब कुछ लुप्त हो गया । फिर वहाँ केवल खाली भूभागमात्र ही अवशिष्ट देख राजाने मन-ही-मन विचार किया और अपने पुरोहितसे पूछा—'महाभाग पुरोहितजी ! यह महात्मा जमदग्नि मुनिकी तपस्याकी शक्ति थी या कामधेनु गौकी ? यह आप मुझे बताइये ।' कार्तवीर्यके इस प्रकार पूछनेपर पुरोहितने उससे कहा—'राजन् ! मुनिमें भी सामर्थ्य है, परंतु यह सिद्धि तो गौकी ही थी । तो भी

नरश्रेष्ठ! आप लोभवश उस गौका अपहरण न करें, क्योंकि जो उसे हर लेनेकी इच्छा करता है, उसका निश्चय ही विनाश हो जाता है'॥ १६-१९ ॥

अथ मन्त्रिवर प्राह ब्राह्मणो ब्राह्मणप्रियः।
राजकार्यं न पश्येद्वै स्वपक्षस्यैव पोषणात्॥२०॥
हे राजंस्त्वयि तिष्ठन्ति गृहाणि निनिधानि च।
तथा सुवर्णपात्राणि शयनादीनि च स्त्रियः॥२१॥
तां धेनुं प्राप्य राजेन्द्र लीयमानानि तत्क्षणात्।
अस्माभिस्तत्र दृष्टानि नीयतां धेनुरुत्तमा॥२२॥
तवेयं योग्या राजेन्द्र यदीच्छसि महामते।
गत्वाहमानयिष्यामि आज्ञां मे देहि भूभुज॥२३॥

यह सुनकर राजाके प्रधानमन्त्रीने कहा—'महाराज! ब्राह्मण ब्राह्मणका ही प्रेमी होता है, वह अपने पक्षका पोषण करनेके कारण राजाके कार्यकी कोई परवा नहीं करता। राजन्! उस गौको पाकर आपके पास तत्काल गुप्त हो जानेवाले नाना प्रकारके घर, खानेके पात्र, शय्यादि तथा सुन्दरी स्त्रियाँ—ये सब सामान प्रस्तुत रहेंगे, जिन्हें हमलोगोंने वहाँ प्रत्यक्ष देखा है। इस उत्तम धेनुको आप अवश्य ले चलें। महामते राजेन्द्र! यह गौ आपके ही योग्य है। भूपाल! यदि आपकी इच्छा हो तो मैं स्वयं जाकर इसे ले आऊँगा। आप केवल मुझे आज्ञा दीजिये'॥ २०-२३ ॥

इत्युक्तो मन्त्रिणा राजा तथेत्याह नृपोत्तम।
सचिवस्तत्र गत्वाथ सुरभिं हर्तुमारभत्॥२४॥
वारयामास सचिवं जमदग्निः समन्ततः।
राजयोग्यामिमां ब्रह्मन् देहि राज्ञे महामते॥२५॥
त्वं तु शाकफलाहारी किं धेन्वा ते प्रयोजनम्।
इत्युक्त्वा तां बलाद्धृत्वा नेतुं मन्त्री प्रचक्रमे॥२६॥
पुनः सभार्यः स मुनिर्वारयामास तं नृपम्।
ततो मन्त्री सुदुष्टात्मा मुनिं हत्वा तु तं नृप॥२७॥
ब्रह्महा नेतुमारेभे वायुमार्गेण सा गता।
राजा च क्षुब्धहृदयो ययौ माहिष्मतीं पुरीम्॥२८॥

नृपवर! मन्त्रीके इस प्रकार कहनेपर राजाने 'बहुत अच्छा' कहकर अनुमति दे दी। फिर राजमन्त्री आश्रममें जाकर गौका अपहरण करने लगा। तब जमदग्निमुनिने उसे सब ओरसे मना किया, किंतु उसने उनकी बात न मानते हुए कहा—'महाबुद्धिमान् ब्राह्मण! यह गौ राजाके योग्य है, अतः इसे राजाको ही दे दीजिये। आप तो साग और फल खानेवाले हैं, आपको इस गायसे क्या काम है?' यों कहकर मन्त्री उस गौको बलपूर्वक ले जाने लगा। राजन्! तब उस मुनिने स्त्रीसहित आकर उसे पुनः रोका। इसपर उस दुरात्मा और ब्रह्महत्यारे मन्त्रीने उस मुनिका वध करके गौको ज्यों ही ले जाना चाहा, त्यों ही वह दिव्य गौ आकाशमार्गसे चली गयी और राजा मन-ही-मन क्षुब्ध होकर माहिष्मती नगरीको लौट आया॥ २४-२८ ॥

मुनिपत्नी सुदुःखार्ता रोदयन्ती भृशं तदा।
त्रिस्सप्तकृत्वः सा कुक्षिं ताडयामास पार्थिव॥२९॥
तच्छ्रुत्वाऽऽगतो रामो गृहीतपरशुस्तदा।
पुष्पादीनि गृहीत्वा तु वनान्मातरमब्रवीत्॥३०॥
अलमम्ब प्रहारेण निमित्ताद् विदितं मया।
हनिष्यामि दुराचारमर्जुनं दुष्टमन्त्रिणम्॥३१॥
त्वयैकविंशवारेण यस्मात् कुक्षिश्च ताडिता।
त्रिस्सप्तकृत्वस्तस्मात्तु हनिष्ये भुवि पार्थिवान्॥३२॥

राजन्! उस समय मुनिकी पत्नी दुःखसे पीड़ित होकर अत्यन्त विलाप करने लगी और प्राणत्याग देनेकी इच्छासे अपनी कुक्षि (उदर) में इक्कीस बार मुक्का मारा। माताका विलाप सुनकर परशुरामजी वनसे फूल आदि लेकर हाथमें कुठार लिये उसी समय आये और माताको देखकर बोले—'मा! इस प्रकार छाती पीटनेकी आवश्यकता नहीं है। मैं सब दुःख दूर किये देता हूँ। उस दुष्ट मन्त्रीके साथ दुराचारी राजा अर्जुनको मैं मार डालूँगा। माता! चूँकि तुमने अपनी कुक्षिमें इक्कीस बार प्रहार किया है, इसलिये मैं इस भूमण्डलके क्षत्रियोंका इक्कीस बार संहार करूँगा'॥ २९-३२ ॥

इति कृत्वा प्रतिज्ञां स गृहीत्वा परशुं करे।
माहिष्मतीं पुरीं प्राप्य कार्तवीर्यमथाह्वयत्॥३३॥
युद्धार्थमागतं सोऽथ क्षत्रियैर्बहुभिर्वृतम्।
तयोर्युद्धमभूद् घोरं भैरवं लोमहर्षणम्॥३४॥
पिशिताशिजनानन्दं [illegible]।

तत परशुरामोऽभून्महाबलपराक्रम ॥३५॥
परं ज्योतिरचिन्त्यात्मा विष्णुः कारणमूर्तिमान् ।
कार्तवीर्यबलं सर्वमनेकैः क्षत्रियैः सह ॥३६॥
हत्वा निपात्य भूमौ तु परमाद्भुतविक्रम ।
कार्तवीर्यस्य बाहूना वनं चिच्छेद रोषवान् ।
छिन्ने बाहुवने तस्य शिरश्चिच्छेद भार्गव ॥३७॥

इस प्रकार प्रतिज्ञा करके फरसा लेकर वे वहाँसे चल दिये और माहिष्मती पुरीमें जाकर उन्होंने राजा कार्तवीर्य अर्जुनको ललकारा। तब वह अनेक अक्षौहिणी सेनाके साथ युद्धके लिये आया। वहाँ उन दोनोंमें महाभयानक रोमाञ्चकारी युद्ध हुआ, जो गैकड़ों अस्त्र शस्त्रोंके प्रहारसे व्याप्त तथा मांस खानेवाले प्राणियोंको आनन्द देनेवाला था। उस समय परशुरामजी अपनेमें अचिन्त्यस्वरूप, परम ज्योतिर्मय, कारण मूर्ति भगवान् विष्णुकी भावना करके महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न हो गये। उन्होंने परम आश्चर्यमय पौरुष प्रकट करते हुए कार्तवीर्यकी असंख्य क्षत्रियोंसे युक्त सम्पूर्ण सेनाको मारकर भूमिपर गिरा दिया और रोषसे भरकर कार्तवीर्यकी समस्त भुजाएँ काट डालीं। उसके बाहुवनका उच्छेद हो जानेपर भृगुनन्दन परशुरामने उसका मस्तक भी धड़से अलग कर दिया ॥ ३३—३७ ॥

विष्णुहस्ताद्वधं प्राप्य चक्रवर्ती स पार्थिव ।
दिव्यरूपधर श्रीमान् दिव्यगन्धानुलेपन ॥३८॥
दिव्यं विमानमारुह्य विष्णुलोकमवाप्तवान् ।
क्रोधात्परशुरामोऽपि महाबलपराक्रम ॥ ३९॥
त्रिस्सप्तकृत्वो भूम्या वै पार्थिवाञ्जिघान स ।
क्षत्रियाणां वधात्तेन भूमेर्भारोऽवतारित ॥४०॥
भूमिश्च सकला दत्ता कश्यपाय महात्मने ।

इस प्रकार वह चक्रवर्ती राजा कार्तवीर्य श्रीमान् विष्णुके हाथसे वधको प्राप्त होकर दिव्यरूप धारण करके, श्रीसम्पन्न एवं दिव्य चन्दनोंसे अनुलिप्त होकर, दिव्य विमानपर आरूढ़ हो, विष्णुधामको प्राप्त हुआ। फिर महान् बल और पराक्रमशाली परशुरामजीने भी इस पृथ्वीपर क्षत्रियोंका इक्कीस बार संहार किया। इस प्रकार क्षत्रियोंका वध करके उन्होंने भूमिका भार उतारा और सम्पूर्ण पृथ्वी महात्मा कश्यपजीको दान कर दी ॥ ३८—४०½ ॥

इत्येष जामदग्न्याख्य प्रादुर्भावो मयोदित ॥४१॥
यश्च तच्छृणुयाद्भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४२॥
अवतीर्य भूमौ हरिरेष साक्षात्
त्रिस्सप्तकृत्व क्षितिपान्निहत्य स ।
क्षात्रं च तेजो प्रविभज्य राजन्
राम स्थितोऽद्यापि गिरौ महेन्द्रे ॥४३॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे परशुरामप्रादुर्भावो नाम षट्चत्वारिंशोऽध्याय ॥४६॥

इस प्रकार मैंने तुमसे यह 'जामदग्न्य' (परशुराम) नामक अवतारका वर्णन किया। जो भक्तिपूर्वक इसका श्रवण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। राजन् ! इस तरह पृथ्वीपर अवतीर्ण होनेके बाद ये साक्षात् भगवान् विष्णुस्वरूप परशुरामजी इक्कीस बार क्षत्रियोंको मारकर, क्षत्रियतेजका छिन्न भिन्न करके आज भी महेन्द्र पर्वतपर विराजमान हैं ॥ ४१—४३ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'परशुरामावतार' नामक छियालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४६ ॥

सैंतालीसवाँ अध्याय

श्रीरामावतारकी कथा—श्रीरामके जन्मसे लेकर विवाहतकके चरित्र

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि प्रादुर्भावं हरे शुभम् ।
निहतो रावणो येन सगणो देवकण्टक ॥ १ ॥

श्रीमार्कण्डेयजी बोले—राजन् ! अब मैं भगवान् विष्णुके उस शुभ अवतारका वर्णन करूँगा, जिसके द्वारा देवताओंके लिये कण्टकस्वरूप रावण अपने गणोंसहित मारा गया। तुम [ध्यान देकर] सुनो ॥ १ ॥

ब्रह्मणो मानसः पुत्रः पुलस्त्योऽभून्महामुनिः ।
तस्य वै विश्रवा नाम पुत्रोऽभूत्तस्य राक्षसः ॥ २ ॥
तस्माज्जातो महावीरो रावणो लोकरावणः ।
तपसा महता युक्तः स तु लोकानुपाद्रवत् ॥ ३ ॥
सेन्द्रा देवा जितास्तेन गन्धर्वाः किंनरास्तथा ।
यक्षाश्च दानवाश्चैव तेन राजन् विनिर्जिताः ॥ ४ ॥
स्त्रियश्चैव सुरूपिण्यो हृतास्तेन दुरात्मना ।
देवादीनां नृपश्रेष्ठ रत्नानि विविधानि च ॥ ५ ॥
रणे कुबेरं निर्जित्य रावणो बलदर्पितः ।
तत्पुरीं जगृहे लङ्कां विमानं चापि पुष्पकम् ॥ ६ ॥

ब्रह्माजीके मानस पुत्र जो महामुनि पुलस्त्यजी हैं, उनसे 'विश्रवा' नामक पुत्र हुआ । विश्रवाका पुत्र राक्षस रावण हुआ। समस्त लोकोंको रुलानेवाला महावीर रावण विश्रवासे ही उत्पन्न हुआ था। वह महान् तपसे युक्त होकर समस्त लोकोंपर धावा करने लगा । राजन् ! उसने इन्द्रसहित समस्त देवताओं, गन्धर्वों और किंनरोंको जीत लिया तथा यक्षों और दानवोंको भी अपने वशीभूत कर लिया। नृपश्रेष्ठ! उस दुरात्माने देवता आदिकी सुन्दरी स्त्रियों और नाना प्रकारके रत्न भी हर लिये। बलाभिमानी रावणने युद्धमें कुबेरको जीतकर उनकी पुरी लङ्का और पुष्पक विमानपर भी अधिकार जमा लिया ॥ २–६ ॥

तस्यां पुर्यां दशग्रीवो रक्षसामधिपोऽभवत् ।
पुत्राश्च बहवस्तस्य बभूवुरमितौजसः ॥ ७ ॥
राक्षसाश्च तमाश्रित्य महाबलपराक्रमाः ।
अनेककोटयो राजन् लङ्कायां निवसन्ति ये ॥ ८ ॥
देवान् पितॄन् मनुष्यांश्च विद्याधरगणानपि ।
यक्षांश्चैव ततः सर्वे घातयन्ति दिवानिशम् ॥ ९ ॥
सत्रस्तं तद्भयादेव जगदासीच्चराचरम् ।
दुःखाभिभूतमत्यर्थं सम्बभूव नराधिप ॥ १० ॥

उस लङ्कापुरीमें दशमुख रावण राक्षसोंका राजा हुआ । उसके अनेक पुत्र उत्पन्न हुए, जो अपरिमित बलसे सम्पन्न थे। राजन् ! लङ्कामें जो कई करोड़ महाबली और पराक्रमी राक्षस निवास करते थे, वे सभी रावणका सहारा लेकर देवता, पितर, मनुष्य, विद्याधर और यक्षोंका दिन-रात संहार किया करते थे । नराधिप ! समस्त चराचर जगत् उसके भयसे भीत और अत्यन्त दुःखी हो गया था ॥ ७–१० ॥

एतस्मिन्नेव काले तु देवाः सेन्द्रा महर्षयः ।
सिद्धा विद्याधराश्चैव गन्धर्वाः किंनरास्तथा ॥ ११ ॥
गुह्यका भुजगा यक्षा ये चान्ये स्वर्गगामिनः ।
ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा शंकरं च नराधिप ॥ १२ ॥
ते ययुर्हतविक्रान्ताः क्षीराब्धेस्तटमुत्तमम् ।
तत्राराध्य हरिं देवास्तस्थुः प्राञ्जलयस्तदा ॥ १३ ॥
ब्रह्मा च विष्णुमाराध्य गन्धपुष्पादिभिः शुभैः ।
प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा वासुदेवमथास्तुवत् ॥ १४ ॥

नरेश्वर ! इसी समय जिनका पुरुषार्थ प्रतिहत हो गया था, वे इन्द्रसहित समस्त देवता, महर्षि, सिद्ध, विद्याधर, गन्धर्व, किंनर, गुह्यक, सर्प, यक्ष तथा जो अन्य स्वर्गवासी थे, वे ब्रह्मा और शंकरजीको आगे करके क्षीरसागरके उत्तम तटपर गये । वहाँ उस समय देवतालोग भगवान्की आराधना करके हाथ जोड़कर खड़े हो गये । फिर ब्रह्माजीने गन्ध-पुष्प आदि सुन्दर उपचारोंद्वारा भगवान् वासुदेव विष्णुकी आराधना की और हाथ जोड़, प्रणाम करके, वे उनकी स्तुति करने लगे ॥ ११–१४ ॥

ब्रह्मोवाच

नमः क्षीराब्धिवासाय नागपर्यङ्कशायिने ।
नमः श्रीकरसंस्पृष्टदिव्यपादाय विष्णवे ॥ १५ ॥
नमस्ते योगनिद्राय योगान्तर्भाविताय च ।
तार्क्ष्यासनाय देवाय गोविन्दाय नमो नमः ॥ १६ ॥
नमः क्षीराब्धिकल्लोलस्पृष्टमात्राय शार्ङ्गिणे ।
नमोऽरविन्दपादाय पद्मनाभाय विष्णवे ॥ १७ ॥
भक्तार्चितसुपादाय नमो योगप्रियाय वै ।
शुभाङ्गाय सुनेत्राय माधवाय नमो नमः ॥ १८ ॥
सुकेशाय सुनेत्राय सुललाटाय चक्रिणे ।
सुवक्त्राय सुकर्णाय श्रीधराय नमो नमः ॥ १९ ॥

सुवक्षसे सुनाभाय पद्मनाभाय वै नमः ।
सुभ्रुवे चारुदेहाय चारुदन्ताय शार्ङ्गिणे ॥२०॥
चारुनह्याय दिव्याय केशवाय नमो नमः ।
सुनखाय सुशान्ताय सुविद्याय गदाभृते ॥२१॥
धर्मप्रियाय देवाय वामनाय नमो नमः ।
असुरघ्नाय चोग्राय रक्षोघ्नाय नमो नमः ॥२२॥
देवानामार्तिनाशाय भीमकर्मकृते नमः ।
नमस्ते लोकनाथाय रावणान्तकृते नमः ॥२३॥

ब्रह्माजी बोले—जो क्षीरसागरमें निवास करते हैं, सर्पकी शय्यापर सोते हैं, जिनके दिव्य चरण भगवती श्री लक्ष्मीजीके कर-कमलोंद्वारा सहलाये जाते हैं, उन भगवान् विष्णुको नमस्कार है। योग ही जिनकी निद्रा है, योगके द्वारा अन्तःकरणमें जिनका ध्यान किया जाता है और जो गरुडजीके ऊपर आसीन होते हैं, उन आप भगवान् गोविन्दको नमस्कार है। क्षीरसागरकी लहरें जिनके शरीरका स्पर्श करती हैं, जो 'शार्ङ्ग' नामक धनुष धारण करते हैं, जिनके चरण कमलके समान हैं तथा जिनकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ है, उन भगवान् विष्णुको नमस्कार है। जिनके सुन्दर चरण भक्तों द्वारा पूजित हैं, जिन्हें योग प्रिय है तथा जिनके अङ्ग और नेत्र सुन्दर हैं, उन भगवान् लक्ष्मीपतिको बारंबार नमस्कार है। जिनके केश, नेत्र, ललाट, मुख और कान बहुत ही सुन्दर हैं, उन चक्रपाणि भगवान् श्रीधरको प्रणाम है। जिनके वक्षःस्थल और नाभि मनोहर हैं, उन भगवान् पद्मनाभको नमस्कार है। जिनकी भौंहें सुन्दर, शरीर मनोहर और दाँत उज्ज्वल हैं, उन भगवान् शार्ङ्गधन्वाको प्रणाम है। रुचिर पिंडलियोंवाले दिव्यरूपधारी भगवान् केशवको नमस्कार है। जो सुन्दर नखोंवाले परमशान्त और सद्विद्याओंके आश्रय हैं, उन भगवान् गदाधरको नमस्कार है। धर्मप्रिय भगवान् वामनको बारंबार प्रणाम है। असुर और राक्षसोंके हन्ता उग्र (नृसिंह) रूपधारी भगवानको नमस्कार है। देवताओंकी पीड़ा हरनेके लिये भयंकर कर्म करनेवाले तथा रावणके संहारक आप भगवान् जगन्नाथको प्रणाम है ॥ १९–२३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति स्तुतो हृषीकेशस्तुतोष परमेष्ठिना ।
स्वरूपं दर्शयित्वा तु पितामहमुवाच ह ॥२४॥
किमर्थं तु सुरैः सार्धमागतस्त्वं पितामह ।
यत्कार्यं ब्रूहि मे ब्रह्मन् यदर्थं संस्तुतस्त्वया ॥२५॥
इत्युक्तो देवदेवेन विष्णुना प्रभविष्णुना ।
सर्वदेवगणैः सार्धं ब्रह्मा प्राह जनार्दनम् ॥२६॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—ब्रह्माजीके द्वारा इस प्रकार स्तुति की जानेपर भगवान् हृषीकेश प्रसन्न हो गये और अपना स्वरूप प्रत्यक्ष दिखाकर वे भगवान् ब्रह्माजीसे बोले—'पितामह ! तुम देवताओंके साथ किसलिये यहाँ आये हो ? ब्रह्मन् ! जो कार्य आ पड़ा हो और जिसके लिये तुमने मेरी स्तुति की है, वह बताओ !' समस्त लोकोंको उत्पन्न करनेवाले भगवान् विष्णुके द्वारा इस प्रकार प्रश्न किये जानेपर सम्पूर्ण देवगणोंके साथ विराजमान ब्रह्माजीने उन जनार्दनसे कहा ॥ २४–२६ ॥

ब्रह्मोवाच

नाशितं तु जगत्सर्वं रावणेन दुरात्मना ।
सेन्द्राः पराजितास्तेन बहुशो रक्षसा विभो ॥२७॥
राक्षसैर्भक्षिता मर्त्या यज्ञाश्चापि विदूषिताः ।
देवकन्या हृतास्तेन बलाच्छतसहस्रशः ॥२८॥
त्वामृते पुण्डरीकाक्ष रावणस्य वधं प्रति ।
न समर्था यतो देवास्त्वमतस्तद्वधं कुरु ॥२९॥

ब्रह्माजी बोले—विभो ! दुरात्मा रावणने समस्त जगत्में भीषण संहार मचा रक्खा है। उस राक्षसने इन्द्रसहित देवताओंको कई बार परास्त किया है। रावणके पार्श्ववर्ती राक्षसोंने असंख्य मनुष्योंको खा लिया और उनके यज्ञोंको दूषित कर दिया है। स्वयं रावणने सैकड़ों हजारों देवकन्याओंका अपहरण किया है। कमलनयन ! चूँकि आपको छोड़कर दूसरे देवता रावणका वध करनेमें समर्थ नहीं हैं, अतः आप ही उसका वध करें ॥ २७–२९ ॥

इत्युक्तो ब्रह्मणा विष्णुर्ब्रह्माणमिदमब्रवीत् ।
शृणुष्वावहितो ब्रह्मन् यद्वदामि हितं वचः ॥३०॥
सूर्यवंशोद्भवः श्रीमान् राजाऽऽसीद्भुवि वीर्यवान् ।
नाम्ना दशरथस्त्वासीत्तस्य पुत्रो भवाम्यहम् ॥३१॥
रावणस्य वधार्थाय चतुर्धांशेन सत्तम ।
स्वांशैर्वानररूपेण सकला देवतागणाः ॥३२॥

वतार्यन्ता विश्वकर्त स्वादेन रावणक्षय ।
इत्युक्तो देवदेवेन ब्रह्मा लोकपितामह ॥३३॥
दनाश्च ते प्रणम्याथ मेरुपृष्ठ तदा ययु ।
स्वांशैर्वानररूपेण अवतेरुश्च भूतले ॥३४॥

ब्रह्माजीके इस प्रकार कहनेपर भगवान् विष्णु उनसे यों बोले—'ब्रह्मन्! मैं तुमलोगोंके हितके लिये जो बात कहता हूँ, उसे ध्यान देकर सुनो। पृथ्वीपर सूर्यवंशमें उत्पन्न श्रीमान् दशरथ नामसे प्रसिद्ध जो पराक्रमी राजा हैं, मैं उन्हींका पुत्र होऊँगा। सत्तम! रावणका वध करनेके लिये मैं अपने चार स्वरूपोंमें प्रकट होऊँगा। विश्वस्रष्टा ब्रह्माजी! आप सभी देवताओंको आदेश दें कि वे अपने-अपने अंशसे वानररूपमें अवतीर्ण हों। इस प्रकार करनेसे ही रावणका संहार होगा।' देवदेव भगवान्‌के यों कहनेपर लोकपितामह ब्रह्माजी तथा अन्य देवता उनको प्रणाम करके मेरुशिखरपर चले गये और पृथ्वीतलपर अपने-अपने अंशसे वानररूपमें अवतीर्ण हुए॥ ३०—३४॥

अथापुत्रो दशरथो मुनिभिर्वेदपारगैः ।
इष्टिं तु कारयामास पुत्रप्राप्तिकरीं नृप ॥३५॥
ततः सौवर्णपात्रस्थ हविरादाय पायसम् ।
वह्नि कुण्डात् समुत्तस्थौ नूनं देवेन नोदित ॥३६॥
आदाय मुनयो मन्त्राच्चक्रु पिण्डद्वय शुभम् ।
दत्ते कौशल्यकैकेय्योर्द्वे पिण्डे मन्त्रमन्त्रिते ॥३७॥
ते पिण्डप्राशने काले सुमित्रायै महामते ।
पिण्डाभ्यामल्पमल्पं तु सुभागिन्यै प्रयच्छत ॥३८॥
ततस्ता प्राशयामासु राजपत्न्यो यथाविधि ।
पिण्डान् देवकृतान् प्राश्य प्रापुर्गर्भाननिन्दितान ॥

तदनन्तर पुत्रहीन राजा दशरथने वेदके पारगामी मुनियोंद्वारा पुत्रकी प्राप्ति करानेवाले 'पुत्रेष्टि' नामक यज्ञका अनुष्ठान कराया। तब भगवान्‌की प्रेरणासे अग्निदेव सुवर्ण पात्रमें रक्खी हुई होमकी खीर हाथमें लिये कुण्डसे प्रकट हुए। मुनियोंने वह खीर ले ली और मन्त्र पढ़ते हुए उसके दो सुन्दर पिण्ड बनाये। उन्हें मन्त्रसे अभिमन्त्रितकर उन दोनों पिण्डोंको कौसल्या तथा कैकेयीके हाथोंमें दे दिया। महामते! पिण्ड भोजनके समय उन दोनों रानियोंने दोनों पिण्डोंमेंसे थोड़ा थोड़ा निकालकर सौभाग्यवती सुमित्राको दे दिया। फिर उन तीनों रानियोंने विधिपूर्वक उन देवनिर्मित पिण्डोंका भोजन किया। उन देवनिर्मित पिण्डोंका भोजन करनेके कारण उन सभी रानियोंने उत्तम गर्भ धारण किये॥ ३५—३९॥

एवं विष्णुर्दशरथाज्जातस्तत्पत्निषु त्रिषु ।
स्वांशैर्लोकहितार्थाय चतुर्धा जगतीपते ॥४०॥
रामश्च लक्ष्मणश्चैव भरत शत्रुघ्न एव च ।
जातकर्मादिकं प्राप्य संस्कारं मुनिसंस्कृतम् ॥४१॥
मन्त्रपिण्डवशाद्योगं प्राप्य चेरुर्यथार्भका ।
रामश्च लक्ष्मणश्चैव सह नित्य विचेरतु ॥४२॥
जन्मादिकृतसंस्कारौ पितु प्रीतिकरौ नृप ।
सद्वृत्तौ महावीर्यौ श्रुतिशब्दातिलक्षणौ ॥४३॥
भरत कैकयो राजन् भ्रात्रा सह गृहेऽवसत् ।
वेदशास्त्राणि बुबुधे शस्त्रशास्त्रं नृपोत्तम ॥४४॥

पृथ्वीनाथ! इस प्रकार भगवान् विष्णु लोकहितके लिये ही राजा दशरथसे उनकी तीनों रानियोंके गर्भसे अपने चार अंशोंद्वारा वे राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न नामके चार रूप धारण करके प्रकट हुए। मुनियोंद्वारा जातकर्मादि संस्कार हो जानेपर वे मन्त्रयुक्त पिण्डके अनुसार दो-दो एक साथ रहते हुए सामान्य बालकोंकी भाँति विचरने लगे। इनमें राम और लक्ष्मण सदा एक साथ रहते थे। नरपाल! जातकर्मादि संस्कारोंसे सम्पन्न हो, वे दोनों महान् शक्तिशाली भाई पिताकी प्रसन्नता बढ़ाते हुए रहते थे। उनके शुभ लक्षण अश्रुतपूर्व एवं वर्णनातीत थे। अथवा वे वेद और व्याकरणादि शास्त्रोंमें पारंगत होनेसे शुभ लक्षण सुशोभित थे। राजन्! कैकेयीनन्दन भरत अपने अनुज शत्रुघ्नके साथ प्रायः घरपर ही रहते थे। नृपोत्तम! उन्होंने वेद, शास्त्र और अस्त्र विद्या भी सीख ली थी॥ ४०—४४॥

एतस्मिन्नेव काले तु विश्वामित्रो महातपाः ।
यागेन यष्टुमारेभे विधिना मधुसूदनम् ॥४५॥
स तु विघ्नेन यागोऽभूद्राक्षसैर्बहुश प्रभो ।
नेतुं स यागरक्षार्थं सम्प्राप्तो रामलक्ष्मणौ ॥४६॥
विश्वामित्रो नृपश्रेष्ठ तत्पितुर्मन्दिरं शुभम् ।
दशरथस्तु त दृष्ट्वा प्रत्युत्थाय महामति ॥४७॥
अर्घ्यपाद्यादिविधिना विश्वामित्रमपूजयत् ।
स पूजितो मुनि प्राह राजान राममनिशौ ॥४८॥

कर्म करनेवाले रामसे कहा—'महाबाहो राम ! इस महान् वनमें रावणकी आज्ञासे 'ताड़का' नामकी एक राक्षसी रहती है । उसने बहुत-से मनुष्यों, मुनिपुत्रों और मृगोंको मारकर अपना आहार बना लिया है, अतः सत्तम ! तुम उसका वध करो' ॥ ७६-७७½ ॥

इत्येवमुक्तो मुनिना रामस्तं मुनिमब्रवीत् ॥७८॥
कथं हि स्त्रीवधं कुर्यामहमद्य महामुने ।
स्त्रीवधे तु महापापं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥७९॥
इति रामवचः श्रुत्वा विश्वामित्र उवाच तम् ।
तस्यास्तु निधनाद्राम जनाः सर्वे निराकुलाः ॥८०॥
भवन्ति सततं तस्मात्तस्याः पुण्यप्रदो वधः ।

मुनिवर विश्वामित्रके इस प्रकार कहनेपर रामने उनसे कहा—'महामुने ! आज मैं स्त्रीका वध कैसे करूँ ? क्योंकि बुद्धिमान् लोग स्त्रीवधमें महान् पाप बतलाते हैं ।' श्रीरामकी यह बात सुनकर विश्वामित्रने उनसे कहा—'राम ! उस ताड़काको मारनेसे सभी मनुष्य सदाके लिये निर्भय हो जायँगे, इसलिये उसका वध करना तो पुण्यदायक है' ॥ ७८-८०½ ॥

इत्येवं वादिनि मुनौ विश्वामित्रे निशाचरी ॥८१॥
आगता सुमहाघोरा ताटका विवृतानना ।
मुनिना प्रेरितो रामस्तां दृष्ट्वा विवृताननाम् ॥८२॥
उद्यतैकभुजयष्टिमायतीं
श्रोणिलम्बिपुरुषान्त्रमेखलाम् ।
तां विलोक्य वनितावधे घृणां
पत्रिणा सह मुमोच राघवः ॥८३॥
शरं संधाय वेगेन तेन तस्या उरःस्थलम् ।
विपाटितं द्विधा राजन् सा पपात ममार च ॥८४॥

मुनिवर विश्वामित्र इस प्रकार कह ही रहे थे कि वह महाघोर राक्षसी ताड़का मुँह फैलाये वहाँ आ पहुँची । तब मुनिकी प्रेरणासे रामने उसकी ओर देखा । वह मुँह बाये आ रही थी । उसकी एक बाँह ऊपरको ओर उठी थी । कटिप्रदेशमें मनुष्योंकी (कटकर) ही करधनी [illegible] हुई [illegible] लटक रही थी । इस रूपमें आती हुई उस निशाचरीको देखकर श्रीरामने स्त्रीवध [illegible] घृणा और [illegible] एक साथ ही छोड़ दिया । राजन् ! उन्होंने धनुषपर बाण रखकर [illegible] वेगसे छोड़ा । उस बाणने ताड़काकी छातीके दो टुकड़े कर दिये । फिर तो वह धरतीपर गिरी और मर गयी ॥ ८१-८४ ॥

घातयित्वा तु तामेवं तावानीय मुनिस्तु तौ ।
प्रापयामास तं तत्र नानाऋषिनिषेवितम् ॥८५॥
नानाद्रुमलताकीर्णं नानापुष्पोपशोभितम् ।
नानानिर्झरतोयाढ्यं विन्ध्यशैलान्तरस्थितम् ॥८६॥
शाकमूलफलोपेतं दिव्यं सिद्धाश्रमं स्वकम् ।
रक्षार्थं तावुभौ स्थाप्य शिक्षयित्वा विशेषतः ॥८७॥
ततश्चारब्धवान् यागं विश्वामित्रो महातपाः ।

इस प्रकार ताड़काका वध करवाकर मुनि श्रीराम और लक्ष्मण दोनोंको अपने उस दिव्य सिद्धाश्रमपर ले आये, जो बहुतसे मुनियोंद्वारा सेवित था । वह आश्रम विन्ध्य पर्वतकी मध्यवर्तिनी उपत्यकामें विद्यमान था । वहाँ नाना प्रकारके वृक्ष और लतासमूह फैले हुए थे और भाँति-भाँतिके फूल उसकी शोभा बढ़ा रहे थे । वह आश्रम अनेकानेक झरनोंके जलसे सुशोभित तथा शाक एवं मूल-फलादिसे सम्पन्न था । वहाँ उन दोनों राजकुमारोंको विशेषरूपसे शिक्षा देकर उन्हें यज्ञकी रक्षाके लिये नियुक्त कर दिया । तदनन्तर महातपस्वी विश्वामित्रने यज्ञ आरम्भ किया ॥ ८५-८७½ ॥

दीक्षां प्रविष्टे च मुनौ विश्वामित्रे महात्मनि ॥८८॥
यज्ञे तु वितते तत्र कर्म कुर्वन्ति ऋत्विजः ।
मारीचश्च सुबाहुश्च बहवश्चान्यराक्षसाः ॥८९॥
आगता यागनाशाय रावणेन नियोजिताः ।
तानागतान् स विज्ञाय रामः कमललोचनः ॥९०॥
शरेण पातयामास सुबाहुं धरणीतले ।
असृक्प्रवाहं वर्षन्तं मारीचं भल्लकेन तु ॥९१॥
प्रताड्य नीतवानब्धिं यथा पर्णं तु वायुना ।
शेषांस्तु हतवान् रामो लक्ष्मणश्च निशाचरान् ॥९२॥

महात्मा विश्वामित्र ज्यों ही यज्ञकी दीक्षामें प्रविष्ट हुए और उस यज्ञका कार्य चालू हो गया । उसमें ऋत्विग्गण अपना-अपना कार्य करने लगे । तब रावणके द्वारा नियुक्त मारीच, सुबाहु तथा अन्य बहुत-से राक्षसगण यज्ञका नाश करनेके लिये वहाँ आये । उन्हें वहाँ आया जान कमलनयन [illegible]

बाण मारकर 'सुबाहु'नामक राक्षसको तो यमलोकगामी कर दिया। वह अपने शरीरसे रक्तको वर्षा-सी करने लगा। इसके बाद 'भल्ल'नामक बाणका प्रहार करके श्रीरामने मारीचको उसी तरह समुद्रके तटपर फेंक दिया, जैसे वायु पत्तेको उड़ाकर दूर फेंक दे। तदनन्तर श्रीराम और लक्ष्मण दोनोंने मिलकर शेष सभी राक्षसोंका वध कर डाला ॥ ८८—९२ ॥

रामेण रक्षितमखो विश्वामित्रो महायशाः ।
समाप्य यागं विधिवत् पूजयामास ऋत्विजान् ॥९३॥
सदस्यानपि सम्पूज्य यथार्हं च द्दरिंदम ।
रामं च लक्ष्मणं चैव पूजयामास भक्तितः ॥९४॥
ततो देवगणस्तुष्टो यज्ञभागेन सत्तम ।
ववर्ष पुष्पवर्षं तु रामदेवस्य मूर्धनि ॥९५॥

इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा यज्ञकी रक्षा होती रहनेसे महायशस्वी विश्वामित्रने उस यज्ञको विधिवत् पूर्ण करके ऋत्विजोंका दक्षिणादिसे पूजन किया। शत्रुदमन! उस यज्ञके सदस्योंका भी यथोचित समादर करके विश्वामित्रजीने श्रीराम और लक्ष्मणकी भी भक्तिपूर्वक पूजा एवं प्रशंसा की। सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ महाराज! तदनन्तर उस यज्ञमें मिले हुए भागसे संतुष्ट देवताओंने भगवान् रामके मस्तकपर पुष्पोंकी वर्षा की ॥ ९३—९५ ॥

निवार्य राक्षसभयं कारयित्वा तु तन्मखम् ।
श्रुत्वा नानाकथाः पुण्या रामो भ्रातृसमन्वितः ॥९६॥
तेन नीतो विनीतात्मा अहल्या यत्र तिष्ठति ।
व्यभिचारान्महेन्द्रेण भर्त्रा शप्ता हि सा पुरा ॥९७॥
पाषाणभूता राजेन्द्र तस्य रामस्य दर्शनात् ।
अहल्या मुक्तशापा च जगाम गौतमं प्रति ॥९८॥

इस प्रकार भाई लक्ष्मणके साथ विनयशील श्रीरामचन्द्रने राक्षसोंसे प्राप्त भयका निवारण करके, विश्वामित्रका यज्ञ पूर्ण कराकर, नाना प्रकारकी पावन कथाएँ सुनते हुए मुनिके द्वारा उस स्थानपर लाये गये जहाँ शिला बनी हुई अहल्या थी। राजेन्द्र! पूर्वकालमें इन्द्रके साथ व्यभिचार करनेसे अपने पति गौतमका शाप पाकर अहल्या पत्थर हो गयी थी। उस समय श्रीरामका दर्शन पाते ही [illegible] मुक्त हो पुनः अपने पति गौतमके पास चली गयी ॥ ९६—९८ ॥

विश्वामित्रस्ततस्तत्र चिन्तयामास वै क्षणम् ।
कृतदारो मया नेयो रामः कमललोचनः ॥९९॥
इति सचिन्त्य तौ गृह्य विश्वामित्रो महातपाः ।
शिष्यैः परिवृतोऽनेकैर्जगाम मिथिलां प्रति ॥१००॥

तदनन्तर विश्वामित्रजीने वहाँ क्षणभर विचार किया कि मुझे कमललोचन श्रीरामचन्द्रजीका विवाह करके इन्हें अयोध्या ले चलना चाहिये। यह सोचकर अनेक शिष्योंसे घिरे हुए महातपस्वी विश्वामित्रजी श्रीराम और लक्ष्मणको साथ ले मिथिलाकी ओर चल दिये ॥ ९९-१०० ॥

नानादेशादथायाता जनकस्य निवेशनम् ।
राजपुत्रा महावीर्याः पूर्वं सीताभिकाङ्क्षिणः ॥१०१॥
तान् दृष्ट्वा पूजयित्वा तु जनकश्च यथार्हतः ।
यत्सीतायाः समुत्पन्नं धनुर्माहेश्वरं महत् ॥१०२॥
अर्चितं गन्धमालाभी रम्यशोभासमन्विते ।
रङ्गे महति विस्तीर्णे स्थापयामास तद्धनुः ॥१०३॥

इससे पहलेसे ही यहाँ सीताके विवाह करनेकी इच्छावाले अनेक महान् पराक्रमी राजकुमार नाना देशोंसे जनकके यहाँ पधारे थे। उन सबको आया देख राजा जनकने उनका यथोचित सत्कार किया तथा जो सीताके स्वयंवरके लिये ही प्रकट हुआ था, उस महान् माहेश्वर धनुषको चन्दन और पुष्प आदिसे पूजन करके उसे रमणीय शोभासे सम्पन्न सुविस्तृत रङ्गमण्डपमें रखवाया ॥ १०१—१०३ ॥

उवाच च नृपान् सर्वांस्तदोच्चैर्जनको नृपः ।
आकर्षणादिदं येन धनुर्भग्नं नृपात्मना ॥१०४॥
तस्येयं धर्मतो भार्या सीता सर्वाङ्गशोभना ।
इत्येवं श्राविते तेन जनकेन महात्मना ॥१०५॥
क्रमादादाय तं तत्तु सर्वास्तुरथाभवन् ।
धनुषा ताडिता सर्वे क्रमात्तेन महीपते ॥१०६॥
विधूय पतिता राजन् विलज्जास्तत्र पार्थिवाः ।
तेषु भग्नेषु जनकस्तद्धनुस्त्वम्बरे नृप ॥१०७॥
संस्थाप्य स्थितवान् धीरो रामागमनकाङ्क्षया ।
विश्वामित्रस्ततः प्राप्तो मिथिलाधिपतेर्गृहम् ॥१०८॥

तदनन्तर [illegible] राजाओंके प्रति [illegible] कहा—[illegible]

मिथिलेशके आज्ञा देनेपर [illegible] श्रीराम उठे और ब्राह्मणों तथा देवताओंको प्रणाम करके उन्होंने वह धनुष उठा लिया। फिर उन महाबाहुने धनुषकी डोरी चढ़ाकर उसकी टंकार की। रामके द्वारा बलपूर्वक खींचे जानेसे वह महान् धनुष सहसा टूट गया। तब सीताजी सुन्दर माला लेकर आयीं और उन सम्पूर्ण क्षत्रियोंमें निकट भगवान् रामके गलेमें वह माला डालकर उन्होंने उनका विधिपूर्वक पतिरूपमें वरण किया। इससे वहाँ आये हुए सभी महाबली क्षत्रिय कुपित हो गये और श्रीरामचन्द्रजीपर सब ओरसे आक्रमण एवं गर्जना करते हुए उनपर बाण मारने लगे। उन्हें यों करते देख श्रीरामने भी वेगपूर्वक हाथमें धनुष ले प्रत्यञ्चाकी टंकारसे उन सभी नरेशोंको कम्पित कर दिया और अपने अस्त्रोंसे उन सबके बाण तथा रथ काट डाले। इतना ही नहीं, श्रीरामने लीलापूर्वक ही उनके धनुष तथा पताकाएँ भी काट डालीं। तदनन्तर मिथिलानरेश भी अपनी सारी सेना तैयार करके उस संग्राममें जामाता श्रीरामकी रक्षा करते हुए उनके पृष्ठपोषक हो गये। इधर, महावीर लक्ष्मणने भी युद्धमें उन राजाओंको मार भगाया तथा उनके हाथी, घोड़े और बहुतसे रथ अपने अधिकारमें कर लिये। अपने वाहन छोड़कर भागे जाते हुए उन राजाओंको मार डालनेके लिये लक्ष्मण उनके पीछे दौड़े। तब उन्हें मिथिलानरेश जनक और विश्वामित्रने मना कर दिया ॥ ११६–१२६ ॥

जितसेनं महावीरं रामं भ्रात्रा समन्वितम् ।
आदाय प्रविवेशाथ जनकः स्वगृहं शुभम् ॥१२७॥
दूतं च प्रेषयामास तदा दशरथाय सः ।
श्रुत्वा दूतमुखात् सर्वं विदितार्थः स पार्थिवः ॥१२८॥
सभार्यः ससुतः श्रीमान् हस्त्यश्वरथवाहनः ।
मिथिलामाजगामाशु स्वबलेन समन्वितः ॥१२९॥
जनकोऽप्यस्य सत्कारं कृत्वा स्वां च सुतां ततः ।
विधिवत्कृतशुल्कां तां प्रादाद् रामाय पार्थिवः ॥१३०॥
अपराश्च सुतास्तिस्रो रूपवत्यः स्वलंकृताः ।
तिस्रस्तु लक्ष्मणादिभ्यः स्वकन्या विधिवद्ददौ ॥१३१॥

राजाओंको [illegible] जीत [illegible] हुए [illegible] भाईके साथ ले राजा जनकने अपने सुन्दर [illegible] प्रवेश किया। उस समय [illegible] दशरथके पास दूत

भेजा। दूतके मुखसे सारी बात सुनकर राजाको सब वृत्तान्त ज्ञात हुआ। तब श्रीमान् राजा दशरथ अपनी रानियों और पुत्रोंको साथ ले, हाथी, घोड़े और रथ आदि वाहनों। सबल हो, सेनाके साथ तुरंत ही मिथिलामें पधारे। राजा जनकने भी राजा दशरथका भलीभाँति सत्कार किया। फिर विधिपूर्वक जिसके पाणिग्रहणकी शर्त पूरी की जा चुकी थी, उस अपनी कन्या सीताको रामके हाथमें दे दिया। तत्पश्चात् अपनी अन्य तीन कन्याओंको भी, जो परमसुन्दरी और आभूषणोंसे अलंकृत थीं, लक्ष्मण आदि तीन भाइयोंके साथ विधिपूर्वक ब्याह दिया ॥ १२७–१३१ ॥

एवं कृतविवाहोऽसौ रामः कमललोचनः ।
भ्रातृभिर्भ्रातृभिः सार्धं पित्रा वलयता सह ॥१३२॥
दिनानि कतिचित्तत्र स्थितो विविधभोजनैः ।
ततोऽयोध्यापुरीं गन्तुमुत्सुकः ससुतं नृपम् ।
दृष्ट्वा दशरथं राजा सीतायाः प्रददौ वसु ॥१३३॥
रत्नानि दिव्यानि बहूनि दत्त्वा
रामाय वस्त्राण्यतिशोभनानि ।
हस्त्यश्वदासानपि कर्मयोग्यान्
दासीजनांश्च प्रवराः स्त्रियश्च ॥१३४॥
सीतां सुशीलां बहुरत्नभूषितां
रथं समारोप्य सुतां सुरूपाम् ।
चदाग्निघोषैर्बहुमङ्गलैश्च
सम्प्रेषयामास स पार्थिवो बली ॥१३५॥
प्रेषयित्वा सुतां दिव्यां नत्वा दशरथं नृपम् ।
विश्वामित्रं नमस्कृत्य जनकः संनिवृत्तवान् ॥१३६॥
तस्य पत्न्यो महाभागा [illegible] यित्वा सुतां तदा ।
भर्तृभक्तिं कुरु शुभे श्वश्रूणां शुश्रूषां च ॥१३७॥
श्वश्रूणामर्पयित्वा तां निवृत्ता विविशुः पुरम् ।

[illegible]

सुन्दर वस्त्र, नियायुक्त हाथी, घोड़े और दास दिये एवं प्रणाम रूपमें बहुत सी सुन्दरी स्त्रियाँ भी अर्पित कीं। उन रत्नमय भूषणोंसे बहुत से रत्नमय आभूषणोंद्वारा विभूषित सुन्दरी साध्वी पुत्री सीताका उपहार चढ़ाकर घंटध्वनि तथा अन्य माङ्गलिक शब्दोंके साथ विदा किया। अपनी दिव्य कन्या सीताको विदा कर राजा जनक दशरथजी तथा विश्वामित्र [एवं वसिष्ठ] मुनिको प्रणाम करके लौट आये। तब जनककी अति सामाग्यशालिनी रानियाँ भी अपनी कन्याओंको यह शिक्षा देकर कि 'पुत्रि! तुम पतिकी भक्ति तथा सास-ससुरकी सेवा करना' उन्हें उनकी सासुओंको सौंप, नगरमें लौट आयीं॥ १३२—१३७ ॥

ततस्तु राम गच्छन्तमयोध्यां प्रबलान्वितम् ॥१३८॥
श्रुत्वा परशुरामो वै पन्थानं समरोध ह ।
तं दृष्ट्वा राजपुत्राः सर्वे ते दीनमानसाः ॥१३९॥
आसीद्दशरथश्चापि दुःखशोकपरिप्लुतः ।
सभार्यः सपरीवारो भार्गवस्य भयान्नृप ॥१४०॥
ततोऽब्रवीज्जनान् सर्वान् राजानं च सुदुःखितम् ।
वसिष्ठश्चोर्जिततपा ब्रह्मचारी महामुनिः ॥१४१॥

कहते हैं, तदनन्तर यह सुनकर कि 'राम अपनी प्रबल सेनाके साथ अयोध्यापुरीको लौट रहे हैं', परशुरामने उनका मार्ग रोक लिया। उन्हें देखकर सभी राजपुत्रोंका हृदय कातर हो गया। नरेश्वर! परशुरामके भयसे राजा दशरथ भी अपनी स्त्री तथा परिवारके साथ दुःखी और शोकमग्न हो गये। तब उग्र तपस्वी ब्रह्मचारी महामुनि वसिष्ठजी दुःखी राजा दशरथ तथा अन्य सब लोगोंसे बोले॥ १३८—१४१ ॥

वसिष्ठ उवाच

युष्माभिरत्र रामार्थं न कार्यं दुःखमण्वपि ॥१४२॥
पित्रा वा मातृभिर्वापि अन्यैर्भृत्यैर्नरैरपि ।
अयं हि नृपते रामः साक्षाद्विष्णुस्तु ते गृहे ॥१४३॥
जगतः पालनार्थाय जन्मप्राप्तो न संशयः ।
यस्य संकीर्त्य नामापि भवभीतिः प्रणश्यति ॥१४४॥
तत्र मूर्तः स्वयं यत्र भयादीनां कथा कुतः ।
यत्र संकीर्त्यते रामकथामात्रमपि प्रभो ॥१४५॥
नोपसर्गभयं तत्र नाकालमरणं नृणाम् ।

वसिष्ठजीने कहा—तुमलोगोंको यहाँ श्रीरामके लिये तनिक भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। पिता, माता, भाई अथवा अन्य भृत्यजन थोड़ा-सा भी खेद न करें। नरपाल! ये श्रीरामचन्द्रजी साक्षात् भगवान् विष्णु हैं। समस्त जगत्की रक्षाके लिये ही इन्होंने तुम्हारे घरमें अवतार लिया है, इसमें संदेह नहीं है। जिनके नाममात्रका कीर्तन करनेसे संसाररूपी भय निवृत्त हो जाता है, वे परमेश्वर ही जहाँ साक्षात् मूर्तिमान् होकर विराजमान हैं, वहाँ भय आदिकी चर्चा भी कैसे की जा सकती है। प्रभो! जहाँ श्रीरामचन्द्रजीकी कथामात्रका भी कीर्तन होता है, वहाँ मनुष्योंके लिये उपद्रव, बीमारी और अकालमृत्युका भय नहीं होता॥ १४२—१४५ ॥

इत्युक्ते भार्गवो रामो राममाहाग्रतः स्थितम् ॥१४६॥
त्यज त्वं रामसंज्ञां तु मया वा समरं कुरु ।
इत्युक्ते राघवः प्राह भार्गवं तं पथि स्थितम् ॥१४७॥
रामसंज्ञा कुतस्त्याज्या त्वया योत्स्ये स्थिरो भव ।
इत्युक्त्वा तं पृथक् स्थित्वा रामो राजीवलोचनः ॥१४८॥
ज्याघोषमकरोद्वीरो वीरस्यैवाग्रतस्तदा ।
ततः परशुरामस्य देहान्निष्क्रम्य वैष्णवम् ॥१४९॥
पश्यतां सर्वभूतानां तेजो राममुखेऽविशत् ।
दृष्ट्वा तं भार्गवो रामः प्रसन्नवदनोऽब्रवीत् ॥१५०॥
राम राम महाबाहो रामस्त्वं नात्र संशयः ।
विष्णुरेव भवाञ्जातो ज्ञातोऽस्यद्य मया विभो ॥१५१॥
गच्छ वीर यथाकामं देवकार्यं च वै कुरु ।
दुष्टानां निधनं कृत्वा शिष्टांश्च परिपालय ॥१५२॥
याहि त्वं स्वेच्छया राम अहं गच्छे तपोवनम् ।

वसिष्ठजी इस प्रकार कह ही रहे थे कि भृगुवंशी परशुरामजीने सामने खड़े हुए श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'राम! तुम अपना यह 'राम' नाम त्याग दो, अथवा मेरे साथ युद्ध करो।' उनके यों कहनेपर रघुकुलनन्दन श्रीरामने मार्गमें खड़े हुए उन परशुरामजीसे कहा—'मैं 'राम' नाम कैसे छोड़ सकता हूँ? तुम्हारे साथ युद्ध ही करूँगा, स्थिर हो जाओ।' यों कहकर कमललोचन श्रीराम अलग खड़े हो गये और उन धीरशिरोमणिने उस समय वीर परशुरामके सामने धनुषकी प्रत्यञ्चाकी टंकार की। तब परशुरामजीके शरीरसे वैष्णव तेज निकलकर सब प्राणियोंके देखते-देखते श्रीराम-

सुखसे सभा गया। उस समय भृगुवंशी परशुरामने श्रीरामकी ओर देखकर प्रसन्नमुख होकर कहा—"महाबाहु श्रीराम! आप ही 'राम' हैं, अब इस विषयमें मुझे संदेह नहीं है। प्रभो! आज मैंने आपको पहचाना, आप साक्षात् विष्णु ही इस रूपमें अवतीर्ण हुए हैं। वीर! अब आप अपनी इच्छानुसार जाइये, देवताओंका कार्य सिद्ध कीजिये और दुष्टोंका नाश करके साधु पुरुषोंका पालन कीजिये। श्रीराम! अब आप इच्छानुसार चले जाइये, मैं भी तपोवनको जाता हूँ" ॥ १४६-१५३ ॥

इत्युक्त्वा पूजितस्तैस्तु मुनिभावेन भार्गवः ॥१५३॥
महेन्द्राद्रिं जगामाथ तपसे धृतमानसः ।
ततस्तु जातहर्षास्ते जना दशरथश्च ह ॥१५४॥
पुरीमयोध्यां सम्प्राप्य रामेण सह पार्थिवः ।
दिव्यशोभां पुरीं कृत्वा सर्वतो भद्रशालिनीम्॥१५५॥
प्रत्युत्थाय ततः पौरा शङ्खतूर्यादिभिः स्वनैः ।
निशान्तं राममागत्य कृतदारं रणेऽजितम् ॥१५६॥
तं वीक्ष्य हर्षिताः सन्तो विविशुस्तेन वै पुरीम् ।

यों कहकर परशुरामजी उन दशरथ आदिके द्वारा मुनिभावसे पूजित हुए और तपस्याके लिये मनमें निश्चय करके महेन्द्राचलको चले गये। तब समस्त बरातियों तथा महाराज दशरथको महान् हर्ष प्राप्त हुआ और वे (वहाँसे चलकर) श्रीरामचन्द्रजीके साथ अयोध्यापुरीके निकट पहुँचे। उधर सम्पूर्ण पुरवासी मङ्गलमयी अयोध्या नगरीको सब ओरसे दिव्य सजावटसे सुसज्जित करके शङ्ख और दुन्दुभि आदि बाजे-बाजेके साथ उनकी अगवानीके लिये निकले। नगरके बाहर आकर वे समस्त रणमें विजयी श्रीरामजीको पत्नीसहित नगरमें प्रवेश करते हुए देखकर आनन्दमग्न हो गये और उन्हींके साथ अयोध्यामें प्रविष्ट हुए ॥ १५३-१५६ ॥

तौ दृष्ट्वा स मुनिः प्राप्तौ रामलक्ष्मणमन्तिके॥१५७॥
दशरथाय तत्पित्रे मातृभ्यश्च निवेदयत् ।
तौ समर्प्य मुनिश्रेष्ठस्तेन राज्ञा च पूजितः ।
विश्वामित्रश्च सहसा प्रतिगन्तुं मनो दधे ॥१५८॥
समर्प्य रामं स मुनिः सहानुजं
सभार्यमग्रे पितुरेकवल्लभम् ।
पुनः पुनः श्लाघ्य हसन्महामति-
र्जगाम सिद्धाश्रममेव मात्मनः ॥१५९॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे रामप्रादुर्भावे
सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

तत्पश्चात् मुनिवर विश्वामित्रने श्रीराम और लक्ष्मण—दोनों भाइयोंको अपने निकट आया हुआ देखकर उन्हें उनके पिता दशरथ तथा विशेषरूपसे उनकी माताओंको समर्पित कर दिया। तब राजा दशरथद्वारा पूजित होकर मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र सहसा लौट जानेके लिये उद्यत हुए। इस प्रकार महामति मुनि विश्वामित्रजीने छोटे भाई लक्ष्मण तथा भार्या सीताके साथ श्रीरामजीको, जो अपने पिताको एकमात्र प्रिय थे, समर्पित कर दिया और उनके समक्ष बारंबार उनका गुणगान करके हँसते हुए वे अपने श्रेष्ठ सिद्धाश्रमको चले गये ॥ १५७-१५९ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें रामावतारविषयक सैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४७ ॥

—•—

अड़तालीसवाँ अध्याय

श्रीराम-वनवास, राजा दशरथका निधन तथा वनमें राम भरतकी भेंट

मार्कण्डेय उवाच

कृतदारो महातेजा रामः कमललोचनः ।
पित्रे सुमहतीं प्रीतिं जनानामुपपादयन् ॥ १ ॥
अयोध्यायां स्थितो रामः सर्वभोगसमन्वितः ।
प्रीत्या नन्दत्ययोध्यायां रामे रघुपतौ नृप ॥ २ ॥
भ्राता शत्रुघ्नसहितो भरतो मातुलं ययौ ।
ततो दशरथो राजा प्रसमीक्ष्य गुणाधिकम् ॥ ३ ॥
युवानं पश्चिने यांय मुरामिदर्शं सुता रतिम् ।
अभिषिच्य राज्यभारं राममन्वाप्य [illegible]
परं प्राप्तुं महमनं [illegible]

मार्कण्डेयजी कहते हैं—विवाह करनेके पश्चात् महाराजस्वरूप कमललोचन श्रीराम अयोध्यावासियोंको आनन्द देते हुए सब प्रकारके भोगोंसे सम्पन्न हो, पिताके सन्तोषके लिये अयोध्यामें ही रहने लगे। तदनन्तर जब रघुकुलनायक श्रीराम प्रसन्नतापूर्वक अयोध्यामें सानन्द निवास करने लगे, तब उनके भाई भरत शत्रुघ्नको साथ लेकर अपने मामाके यहाँ चले गये। तदनन्तर राजा दशरथने अपने ज्येष्ठ पुत्र श्रीरामको अप्रतिम सुन्दर, स्निग्ध, नवयुवक, विद्वान् और राजा बनाये जानेके योग्य समझकर सोचा कि 'अब श्रीरामको राजपदपर अभिषिक्त करके राज्यका भार इन्हें सौंप दूँ और स्वयं भगवान् विष्णुके धामको प्राप्त करनेके लिये महान् यत्न करूँ' ॥ १-४½ ॥

संचिन्त्य तत्परो राजा सर्वदिक्षु समादिशत् ॥ ५ ॥
प्राज्ञान् भृत्यान् महीपालान्मन्त्रिणश्च त्वरान्वित'।
रामाभिषेकद्रव्याणि ऋषिप्रोक्तानि यानि वै ॥ ६ ॥
तानि भृत्याः समाहृत्य शीघ्रमागन्तुमर्हथ।
दूतामात्या' समादेशात्सर्वदिक्षु नराधिपान् ॥ ७ ॥
आहूय तान् समाहृत्य शीघ्रमागन्तुमर्हथ।
अयोध्यापुरमत्यर्थं सर्वशोभासमन्वितम् ॥ ८ ॥
जना कुरुत सर्वत्र नृत्यगीतादिनन्दितम्।
पुरवासिजनानन्द देशवासिमन प्रियम् ॥ ९ ॥
रामाभिषेक विपुल श्वो भविष्यति जानथ।

यह सोचकर राजा इस कार्यमें तत्पर हो गये और समस्त दिशाओंमें रहनेवाले बुद्धिमान् भृत्यों, अधीनस्थ राजाओं तथा मन्त्रियोंको तुरत आज्ञा दी—'भृत्यगण! श्रीरामचन्द्रजीके राज्याभिषेकके लिये जो जो सामान मुनियोंने बताये हैं, उन सबको एकत्र करके शीघ्र ही आओ। दूतो और मन्त्रियो! तुमलोग भी मेरी आज्ञासे सब दिशाओंके राजाओंको बुलाकर, उन्हें साथ ले, शीघ्र यहाँ आ जाओ। पुरवासी नरो! तुम इस अयोध्यानगरीको उत्तम रीतिसे सजाकर सब प्रकारकी शोभासम्पन्न बना दो तथा सर्वत्र नृत्य-गीत आदि उत्सवका ऐसा प्रबन्ध करो, जिससे यह नगर समस्त पुरवासियोंके आनन्द देनेवाला हो जाय और समस्त देशके निवासियोंको मनोहर प्रतीत होने लगे। तुम सब लोग यह जान लो कि कल बड़े समारोहके साथ श्रीरामचन्द्रजीका राज्याभिषेक होगा' ॥ ५-९½ ॥

श्रुत्वेत्थं मन्त्रिण प्राहुस्त नृप प्रणिपत्य च ॥ १० ॥
शोभन ते मत राजन् यदिद परिभाषितम्।
रामाभिषेकमस्माक सर्वेषां च प्रियकरम् ॥ ११ ॥

यह सुनकर मन्त्रियोंने राजाको प्रणाम करके उनसे कहा—'राजन्! आपने हमारे समक्ष अपना जो यह विचार व्यक्त किया है, बहुत ही उत्तम है। श्रीरामका अभिषेक हम सबके लिये प्रियकारक है' ॥ १०-११ ॥

इत्युक्तो दशरथस्तैस्तान् सर्वान् पुनरब्रवीत्।
आनीयन्ता द्रुत सर्वे सम्भारा मम शासनात् ॥ १२ ॥
सर्वत सारभूता च पुरी चेय समन्तत'।
अद्य शोभान्विता कार्या कर्तव्यं यागमण्डलम् ॥ १३ ॥

उनके यों कहनेपर राजा पुन उन सब लोगोंसे बोले—'अच्छा, अब मेरी आज्ञासे अभिषेकके सभी सामान शीघ्र लाये जायँ और समस्त वस्तुओंकी सारभूता इस अयोध्यापुरीको भी आज ही सब ओरसे सुसज्जित कर देना चाहिये। साथ ही एक यज्ञमण्डपकी रचना भी परम आवश्यक है' ॥ १२-१३ ॥

इत्येवमुक्ता राज्ञा ते मन्त्रिण' शीघ्रकारिण।
तथैव चक्रुस्ते सर्वे पुन पुनरुदीरिता ॥ १४ ॥
प्राप्तहर्ष स राजा च शुभ दिनमुदीक्षयन्।
कौशल्या लक्ष्मणश्चैव सुमित्रा नागरो जन ॥ १५ ॥
रामाभिषेकमाकर्ण्य मुद प्राप्यातिहर्षित।
श्वश्रूश्वशुरयो सम्यक् शुश्रूषणपरा तु सा ॥ १६ ॥
मुदान्विता सिता सीता भर्तुराकर्ण्य शोभनम्।

राजाके यों कहने और बार बार प्रेरणा करनेपर उन सब शीघ्रकारी मन्त्रियोंने उनके कथनानुसार सब कार्य पूर्ण कर दिये। राजा इस शुभ दिनकी प्रतीक्षा करते हुए बड़े ही आनन्दित हुए। कौशल्या, सुमित्रा, लक्ष्मण तथा अन्य पुरवासी श्रीरामचन्द्रजीके राज्याभिषेकका शुभ समाचार सुनकर आनन्दके मारे फूले नहीं समाये। सास-ससुरकी सेवामें भलीभाँति लगी रहनेवाली सीता भी अपने पतिके लिये इस शुभ संवादको सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुई ॥ १४-१६½ ॥

श्वोभाविन्यभिषेक तु रामस्य विदितात्मन ॥ १७ ॥
दासी तु मन्थरानाम्नी कैकेय्या कुरूपिणी।

स्वा स्वामिनीं तु कैकयीमिदं वचनमब्रवीत् ॥१८॥
शृणु राज्ञि महाभागे वचनं मम शोभनम्।
त्वत्पतिस्तु महाराजस्तव नाशाय चोद्यतः ॥१९॥
रामोऽसौ कौशलीपुत्रः श्वो भविष्यति भूपतिः।
वसुवाहनकोशादि राज्यं च सकलं शुभे ॥२०॥
भविष्यत्यद्य रामस्य भरतस्य न किंचन।
भरतोऽपि गतो दूरं मातुलस्य गृहं प्रति ॥२१॥
हा कष्टं मन्दभाग्यासि सापत्न्याद् दुःखिता भृशम्।

आत्मतत्त्वके ज्ञाता अथवा सबके मनकी बात जाननेवाले भगवान् श्रीरामका अभिषेक दूसरे ही दिन होनेवाला था। इसी बीचमें कैकेयीकी कुबड़ी दासी मन्थरा अपनी स्वामिनी कैकयीके पास जाकर यह बात कही—'महाभागिनी रानी! मैं एक बहुत अच्छी बात सुनाती हूँ, सुनो। तुम्हारे पति महाराज दशरथ अब तुम्हारा नाश करनेपर तुले हुए हैं। शुभे! ये जो कौसल्या पुत्र राम हैं, कल ही राजा होंगे। धन, वाहन और कोष आदिके साथ यह सारा राज्य अब रामका हो जायगा, भरतका कुछ भी नहीं रहेगा। देखो, भाग्यकी बात! इस अवसरपर भरत भी बहुत दूर—अपने मामाके घर गये हैं। हाय! यह कितने कष्टकी बात है! तुम मन्दभागिनी हो। अब तुम्हें सौतका आरम्भसे बहुत ही कष्ट उठाना पड़ेगा' ॥ १७–२१½ ॥

सैवमाकर्ण्य कैकेयी कुब्जामिदमथाब्रवीत् ॥२२॥
पश्य मे दक्षतां कुब्जे अद्यैव त्वं विचक्षणे।
यथा तु सकलं राज्यं भरतस्य भविष्यति ॥२३॥
रामस्य वनवासश्च तथा यत्नं करोम्यहम्।

ऐसी बात सुनकर कैकेयीने कुब्जासे कहा—'बुद्धिमति कुब्जे! तू मेरी दक्षता तो देख—आज ही मैं ऐसा यत्न करती हूँ, जिससे यह सारा राज्य भरतका हो जाय और रामको वनवास हो' ॥ २२–२३½ ॥

इत्युक्त्वा मन्थरां सा तु उन्मुच्य स्वाङ्गभूषणम् ॥२४॥
वस्त्रं पुष्पाणि चोन्मुच्य स्थूलवासोऽपरावृत।
निर्माल्यपुष्पधृग्भस्मा नष्टमलाङ्गी विरूपिणी ॥२५॥
भस्मधूल्यादिनिर्दिग्धा भस्मधूल्या तथा श्रिते।
भूभागे शान्तदीपे सा मध्याह्ने सुदुःखिता ॥२६॥
ललाटे श्वेतचैलं तु बद्ध्वा सुष्वाप भामिनी।

मन्थरासे यों कहकर कैकेयीने अपने अङ्गोंके आभूषण उतार दिये। सुन्दर वस्त्र और फूलोंके हार भी उतार फेंके और मोटा वस्त्र पहन लिया। फिर निर्माल्य (पहलेसे उतरे हुए) पुष्पोंको धारण किया, बदनमें राख और धूल लपेट ली और [illegible] शरीरमें [illegible] और [illegible] अनुभव करने लगी। वह भामिनी ललाटमें श्वेत वस्त्र बाँध, मध्याह्नके समय [illegible] और धूलसे [illegible] भूभागमें अत्यन्त दुःखित [illegible] ॥ २४–२६½ ॥

मन्त्रिभिः सह कार्याणि सम्मन्त्र्य सकलानि तु ॥२७॥
पुण्याहं स्वस्तिमाङ्गल्यं स्थाप्य रामं तु मण्डले।
ऋषिभिस्तु वसिष्ठाद्यैः सार्धं सम्भारमण्डपे ॥२८॥
वृद्धिजागरणीमथ सर्वतः कृयेनान्विते।
गीतनृत्यसमाकीर्णे शङ्खकाहलनिःस्वनैः ॥२९॥
स्वयं दशरथस्तत्र स्थित्वा प्रत्यागतः पुनः।
कैकेय्या वेश्मनो द्वारं जरद्भिः परिरक्षितम् ॥३०॥
रामाभिषेकं कैकेय्यै वक्तुकामः स पार्थिवः।
कैकेयीभवनं वीक्ष्य सान्धकारमथाब्रवीत् ॥३१॥

इधर मन्त्रियोंके साथ सारे कार्योंके विषयमें सलाह करके, वसिष्ठ आदि ऋषियोंद्वारा पुण्याहवाचन, स्वस्तिवाचन और मङ्गलपाठादि करवाकर, श्रीरामको यज्ञ-[illegible] युक्त मण्डपमें बिठाया और वृद्धि (नान्दी श्राद्ध) एवं रात्रि-जागरणकी [illegible] तथा गीत और नृत्य एवं शङ्ख, [illegible] ॥ निश्चिन्त [illegible] [illegible] ॥ २७–३१ ॥

[illegible] रामाभिषेकं हनाय [illegible] अपि मानिनि ॥३२॥
गृहान्तरे [illegible] सहसा मनोरमम्।
त्यजाद्य न [illegible] पुनरत्र न मन्दिरे ॥३३॥
ज्वालयित्वा गृहे दीपान् प्रविश्य गृह [illegible]

अशोभनाङ्गीं कैकयीं स्वपन्तीं पतितां भुवि ॥३४॥
दृष्ट्वा दशरथः प्राह तस्याः प्रियमिदं त्विति ।
आश्लिष्योत्थाय तां राजा शृणु मे परमं वचः ॥३५॥
समातुरधिकां नित्यं यस्ते भक्तिं करोति वै ।
तस्याभिषेकः रामस्य श्वो भविष्यति शोभने ॥३६॥

'प्रिये ! आज तुम इस मलिन अवस्थामें क्यों हो ? आज तो इस नगरमें चाण्डालतक भी श्रीरामचन्द्रके अभिषेकको आनन्दजनक मानते हैं। सभी लोग अपने घरको सुन्दर ढंगसे सजा रहे हैं। तुमने अपने भवनको क्यों नहीं सुसज्जित किया ?'—यों कहकर राजाने परम दीप्त प्रज्वलित कराये, फिर उसके भीतर प्रवेश किया। वहाँ कैकेयी धरतीपर पड़ी सो रही थी। उसका प्रत्येक अङ्ग अशोभन जान पड़ता था। उस रूपमें उसको देख राजाने उठाकर हृदयसे लगाया और उससे प्रिय लगनेवाले ये वचन कहे—'प्रिये ! मेरी उत्तम बात सुनो। सुन्दरि ! जो तुम्हारे प्रति अपनी माताले भी अधिक प्रेम रखते हैं, उन श्रीरामचन्द्रका कल राज्याभिषेक होगा' ॥ ३४–३६ ॥

इत्युक्ता पार्थिवेनापि किञ्चिन्नोवाच सा शुभा ।
मुञ्चन्ती दीर्घमुष्णं च रोषोच्छ्वासं मुहुर्मुहुः ॥३७॥
तस्यावाश्लिष्य हस्ताभ्यां पार्थिवः प्राह रोषिताम् ।
किं ते कैकयि दुःखस्य कारणं वद शोभने ॥३८॥
वस्त्राभरणरत्नादि यद्यदिच्छसि शोभने ।
तत्तद् गृहीत्वा निश्शङ्कं भाण्डारात् सुखिनी भव ॥३९॥
भाण्डारेण मम शुभे श्वोऽर्थसिद्धिर्भविष्यति ।
यदाभिषेकः सम्प्राप्ते रामे राजीवलोचने ॥४०॥
भाण्डागारस्य मे द्वारं मया मुक्तं निरर्गलम् ।
भविष्यति पुनः पूर्णं रामे राज्यं प्रशासति ॥४१॥
बहु मानय रामस्य अभिषेकं महात्मनः ।

राजाके इस प्रकार कहनेपर वह सुन्दरी कुछ भी न बोली। बारबार क्रोधपूर्वक गरम लंबी-लंबी साँस छोड़ती रही। राजा अपनी भुजाओंसे उसका आलिङ्गन करके बैठ गये और उस रूठी हुई कैकेयीसे बोले—'सुन्दरी कैकेयि ! बताओ, तुम्हारे दुःखका क्या कारण है ? शुभे ! वस्त्र, आभूषण और रत्न आदि जिन जिन वस्तुओंकी तुम्हें इच्छा हो, उन सबको बिना किसी आशङ्काके खजानेसे लेकर प्रसन्न हो जाओ। वरवर्णिनि ! कल जब श्रीरामका राज्याभिषेक सम्पन्न हो जायगा, उस समय उस भण्डारसे मेरे मनोरथकी सिद्धि हो जायगी। इस समय तो मैंने भण्डारका द्वार उन्मुक्त कर रखा है। श्रीरामके राज्य शासन करते समय यह फिर पूर्ण हो जायेगा। प्रिये ! महात्मा श्रीरामके राज्याभिषेकको तुम इस समय अधिक महत्त्व और सम्मान दो' ॥ ३७–४१½ ॥

इत्युक्ता राजवर्येण कैकयी पापलक्षणा ॥४२॥
कुमतिर्निर्घृणा दुष्टा कुब्जया शिक्षिताब्रवीत् ।
राजानं स्वपतिं वाक्यं क्रूरमत्यन्तनिष्ठुरम् ॥४३॥
रत्नादि सकलं यत्ते तन्ममैव न संशयः ।
देवासुरमहायुद्धे प्रीत्या यन्मे वरद्वयम् ॥४४॥
पुरा दत्तं त्वया राजंस्तदिदानीं प्रयच्छ मे ।

महाराज दशरथके इस प्रकार कहनेपर कुबरीके द्वारा पढ़ायी गयी पापिनी, दुर्बुद्धि, दयाहीना और दुष्टा कैकेयीने अपने पति महाराज दशरथसे अत्यन्त क्रूरतापूर्वक निष्ठुर वचन कहा—'महाराज ! इसमें संदेह नहीं कि आपके जो रत्न आदि हैं, वे सब मेरे ही हैं; किंतु पूर्वकालमें देवासुर संग्रामके अवसरपर आपने प्रसन्न हो मुझे जो दो वर दिये थे, उन्हें ही इस समय दीजिये' ॥ ४२–४४½ ॥

इत्युक्तः पार्थिवः प्राह कैकयीमशुभां तदा ॥४५॥
अदत्तमप्यहं दास्ये तव नान्यस्य वा शुभे ।
किं मे प्रतिश्रुतं पूर्वं दत्तमेव मया तव ॥४६॥
शुभाङ्गी भव कल्याणि त्यज कोपमनर्थकम् ।
रामाभिषेकजं हर्षं मनोज्ञे सुखी भव ॥४७॥

यह सुनकर राजाने उस अशुभा कैकेयीसे कहा—'शुभे ! और किसीकी बात तो मैं नहीं कहता, परंतु तुम्हारे लिये तो जिसे नहीं देनेको कहा है, वह वस्तु भी दे दूँगा। फिर जिसके देनेके लिये मैंने पहले प्रतिज्ञा कर ली है, वह वस्तु तो दी हुई ही समझो। कल्याणि ! अब सुन्दर वेष धारण करो और यह व्यर्थ कोप छोड़ दो। उठो, श्रीरामके राज्याभिषेकसे आनन्दोत्सवका भोग करो और सुखी हो जाओ' ॥ ४५–४७ ॥

इत्युक्ता राजवर्येण कैकेयी कलहप्रिया ।
उवाच परुषं वाक्यं राज्ञो मरणकारणम् ॥४८॥
वरद्वयं पूर्वदत्तं यदि दास्यसि मे विभो ।
श्वोभूते गच्छतु वनं रामोऽयं कोशलात्मजः ॥४९॥
द्वादशाब्दं निवसतु त्वद्वाक्याद्दण्डके वने ।
अभिषेकं च राज्यं च भरतस्य भविष्यति ॥५०॥

नृपश्रेष्ठ दशरथके यों कहनेपर कलहप्रिया कैकेयीने ऐसी कठोर बात कही, जो आगे चलकर राजाकी मृत्युका कारण बन गयी। उसने कहा—'प्रभो! यदि आप पहलेके दिये हुए दोनों वर मुझे देना चाहते हों तो (पहला वर मैं यही माँगती हूँ कि) ये कौसल्यानन्दन श्रीराम कल सबेरा होते ही वनको चले जायँ और आपकी आज्ञासे ये बारह वर्षोंतक दण्डकारण्यमें निवास करें तथा मेरा दूसरा अभीष्ट वर यह है कि अब राज्य और राज्याभिषेक भरतका होगा' ॥ ४८—५० ॥

इत्याकर्ण्य स कैकेय्या वचनं घोरमप्रियम् ।
पपात भुवि निस्संज्ञो राज्ञा सापि विभूषिता ॥५१॥
रात्रिशेषं नयित्वा तु प्रभाते सा मुदान्वती ।
दूतं सुमन्त्रमाहेदं राम आनीयतामिति ॥५२॥
रामस्तु कृतपुण्याहः कृतस्वस्त्ययनो द्विजैः ।
यागमण्डपमध्यस्थः शङ्खतूर्यरवान्वितः ॥५३॥

कैकेयीके इस घोर अप्रिय वचनको सुनकर राजा दशरथ मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिर पड़े और कैकेयीने (प्रसन्नतापूर्वक) अपने आपको सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे विभूषित कर लिया। शेष रात बिताकर प्रातःकाल कैकेयीने आनन्दित हो राजदूत सुमन्त्रसे कहा—'श्रीरामको यहाँ बुलाकर लाया जाय।' उस समय राम ब्राह्मणोंद्वारा पुण्याहवाचन और स्वस्तिवाचन कराकर, शङ्ख और तूर्य आदि बाजोंका शब्द सुनते हुए यज्ञमण्डपमें विराजमान थे ॥ ५१—५३ ॥

तमासाद्य ततो दूतः प्रणिपत्य पुरःस्थितः ।
राम राम महाबाहो आज्ञापयति ते पिता ॥५४॥
द्रुतमुत्तिष्ठ गच्छ त्वं यत्र तिष्ठति ते पिता ।
इत्युक्तस्तेन दूतेन शीघ्रमुत्थाय राघवः ॥५५॥
अनुज्ञाप्य द्विजान् सर्वान् कैकेय्या भवनं प्रति ।

दूत सुमन्त्र उस समय श्रीरामचन्द्रजीके पास पहुँचकर उन्हें प्रणाम करके सामने खड़े हो गये और बोले—'राम! महाबाहु श्रीराम! तुम्हारे पिताजीका आदेश है, उठो और जहाँ तुम्हारे पिता विद्यमान हैं, वहाँ चलो।' दूतके यों कहनेपर श्रीरामचन्द्रजी शीघ्र ही उठे और ब्राह्मणोंसे आज्ञा ले कैकेयीके भवनमें जा पहुँचे ॥ ५४—५५ ॥

प्रविशन्तं गृहं रामं कैकेयी प्राह निर्घृणा ॥५६॥
पितुस्तव मतं वत्स इदं ते प्रब्रवीम्यहम् ।
वने वस महाबाहो गत्वा त्वं द्वादशाब्दकम् ॥५७॥
अद्यैव गम्यतां वीर तपसे धृतमानसः ।
न चिन्त्यमन्यथा वत्स आदरात् कुरु मे वचः ॥५८॥

श्रीरामको अपने भवनमें प्रवेश करते देख दयाहीना कैकेयीने कहा—'वत्स! तुम्हारे पिताका यह विचार मैं तुम्हें बता रही हूँ। महाबाहो! तुम बारह वर्षोंतक वनमें जाकर रहो। वीर! वहाँ तपस्या करनेका निश्चय मनमें लिये तुम आज ही चले जाओ। वत्स! तुम्हें अपने मनमें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। मेरे वचनका आदरपूर्वक पालन करो' ॥ ५६—५८ ॥

एतच्छ्रुत्वा पितुर्वाक्यं रामः कमललोचनः ।
तथेत्याज्ञां गृहीत्वासौ नमस्कृत्य च तावुभौ ॥५९॥
निष्क्रम्य तद्गृहाद्रामो धनुरादाय वेश्मतः ।
कौसल्यां च नमस्कृत्य सुमित्रां गन्तुमुद्यतः ॥६०॥

कैकेयीके मुखसे पिताका यह वचन सुनकर कमललोचन श्रीरामने 'बहुत अच्छा' कहकर पिताकी आज्ञा शिरोधार्य की और उन दोनों—माता-पिताको प्रणाम करके उनके भवनसे निकलकर उन्होंने अपना धनुष सँभाला। फिर कौसल्या और सुमित्राको प्रणाम करके वे वनमें जानेको तैयार हो गये ॥ ५९—६० ॥

तच्छ्रुत्वा तु ततः पौरा दुःखशोकपरिप्लुताः ।
विव्यथुश्चाथ सौमित्रिः कैकेयीं प्रति रोषितः ॥६१॥
ततस्तं राघवो दृष्ट्वा लक्ष्मणं क्रुद्धमानसम् ।
वारयामास धर्मात्मा धर्मवाक्यैर्महामतिः ॥६२॥
ततस्तु तत्र वै वृद्धांस्तान् प्रणम्य मुनीश्वरान् ।
रामो ऽथ विप्रगणान् प्रस्थानायोद्यतोऽ[illegible]

आत्मीय सकल द्रव्य ब्राह्मणेभ्यो नृपात्मज ।
श्रद्धया परया दत्त्वा वस्त्राणि विविधानि च ॥६४॥

यह समाचार सुनते ही समस्त पुरवासी-जन दुःख-शोकमें डूब गये और बड़ी व्यथाका अनुभव करने लगे। इधर सुमित्राकुमार लक्ष्मण कैकेयीके प्रति कुपित हो उठे। परम बुद्धिमान् धर्मज्ञ श्रीरामने लक्ष्मणको क्रोधसे लाल आँखें किये देख धर्मयुक्त वचनोंद्वारा उन्हें शान्त किया। तत्पश्चात् वहाँ जो बड़े-बूढ़े उपस्थित थे, उनको तथा मुनियोंको प्रणाम करके श्रीरामचन्द्रजी वनको जानेके लिये रथपर आरूढ़ हुए। उस रथका सारथि बहुत दुःखी था। उस समय राजकुमार श्रीरामने अपने पासके समस्त द्रव्य और नाना प्रकारके वस्त्र अत्यन्त श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणोंको दान कर दिये ॥ ६१—६४ ॥

तिस्र श्वश्रूः समामन्त्र्य श्वशुर च विसञ्जितम्।
मुञ्चन्तमश्रुधाराणि नेत्रयो शोकजानि च ॥६५॥
पश्यती सर्वत सीता चारुरोह तथा रथम् ।
रथमारुह्य गच्छन्त सीतया सह राघवम् ॥६६॥
दृष्ट्वा सुमित्रा वचन लक्ष्मण चाह दु खिता ।
राम दशरथ विद्धि मा विद्धि जनकात्मजाम् ॥६७॥
अयोध्यामटवीं विद्धि व्रज ताभ्या गुणाकर ।

तदनन्तर सीताजी भी अपनी तीनों सासुओंसे तथा नेत्रोंसे शोकाश्रुकी धारा बहाते हुए सशोकपूर्ण श्वशुर महाराज दशरथसे आज्ञा ले सब ओर देखती हुई रथपर आरूढ हुईं। सीताके साथ श्रीरामचन्द्रको रथपर चढ़कर वनमें जाते देख सुमित्रा अत्यन्त दुःखित हो लक्ष्मणसे बोलीं—'सद्गुणों-की खान बेटा लक्ष्मण! तुम आजसे श्रीरामको ही पिता दशरथ समझो, सीताको ही मेरा स्वरूप मानो तथा वनको ही अयोध्या जानो। उन दोनोंके साथ ही सेवाके लिये तुम भी जाओ' ॥ ६५—६७½ ॥

मात्रैवमुक्तो धर्मात्मा स्तनक्षीरार्द्रहृदया ॥६८॥
ता नत्वा चारुयान तमारुरोह स लक्ष्मण ।
गच्छतो लक्ष्मणो भ्राता सीता चैव पतिव्रता ॥६९॥
रामस्य पृष्ठतो यातौ पुराद्वीरौ महामते ।

स्नेहवश जिनके स्तनोंसे दूध बहकर समस्त शरीरको भिगो रहा था, उन माता सुमित्राके इस प्रकार कहनेपर लक्ष्मण उन्हें प्रणाम करके स्वय भी उस सुन्दर रथपर जा बैठे। महामते! इस प्रकार नगरसे वनमें जाते हुए श्रीरामचन्द्रजीके पीछे धीर-वीर भ्राता लक्ष्मण तथा सुस्थिर हृदया पतिव्रता सीता—दोनों ही चले ॥ ६८-६९½ ॥

विधिच्छिन्नाभिषेकं त राम राजीवलोचनम् ॥
अयोध्याया विनिष्क्रान्तमनुयाता' पुरोहिता'।
मन्त्रिण पौरमुख्याश्च दु खेन महतान्विता' ॥७
तं च प्राप्य हि गच्छन्त राममूचुरिद वच ।
राम राम महाबाहो गन्तुं नार्हसि शोभन ॥७२
राजन्न! निवर्तस्व विहायास्मान् क्व गच्छसि।

दुर्दैवने जिनके राज्याभिषेकको बीचमें ही छिन्न भिन्न कर दिया था, वे कमलनयन श्रीराम जब अयोध्या पुरीसे निकले, उस समय पुरोहित, मन्त्री और प्रधान-प्रधान पुरवासी भी बहुत दुःखी होकर उनके पीछे-पीछे चले तथा वनकी ओर जाते हुए श्रीरामके निकट पहुँचकर उनसे यों बोले—'राम! राम! महाबाहो! तुम्हें वनमें नहीं जाना चाहिये। शोभाशाली नरेश्वर! नगरको लौट चलो; हमें छोड़कर कहाँ जा रहे हो?' ॥ ७०–७२½ ॥

इत्युक्तो राघवस्तैस्तु तानुवाच दृढव्रत ॥७३॥
गच्छध्व मन्त्रिण पौरा गच्छध्वं च पुरोधस'।
पित्रादर्शं मया कार्यमभियास्यामि नँ वनम् ॥७४॥
द्वादशाब्द व्रत चैतन्नीत्वाह दण्डके वने ।
आगच्छामि पितु पादं मातॄणा द्रष्टुमञ्जसा ॥७५॥

उनके यों कहनेपर दृढप्रतिज्ञ श्रीराम उनसे बोले—'मन्त्रियो! पुरवासियो! और पुरोहितगण! आप लोग लौट जायँ। मुझे अपने पिताजीकी आज्ञाका पालन करना है, इसलिये मैं वनमें अवश्य जाऊँगा। वहाँ दण्डकारण्यमें बारह वर्षोंतक व्रताचरण नियमको पूर्ण करनेके पश्चात् मैं पिता और माताओंके चरण-कमलोंका दर्शन करनेके लिये शीघ्र ही यहाँ लौट आऊँगा' ॥ ७३–७५ ॥

इत्युक्त्वा तान्नगामाथ राम सत्यपरायण ।
त गच्छन्त पुनर्याता पृष्ठतो दु खिता जना' ॥७६॥

पुन प्राह स काकुत्स्थो गच्छध्वं नगरीमिमाम् ।
मातृश्च पितरं चैव शत्रुघ्न नगरीमिमाम् ॥७७॥
प्रजा॰ समस्तास्तत्रस्था राज्य भरतमेव च ।
पालयध्वं महाभागास्तपसे याम्यहं वनम् ॥७८॥

नगर निवासियोंसे यों कहकर सत्यपरायण श्रीराम आगे चल गये । उन्हें जाते देख पुन सब लोग दुखी हो उनके पीछे पीछे चलने लगे । तब ककुत्स्थनन्दन श्रीरामने फिर कहा—'महाभागगण ! आपलोग इस अयोध्यापुरीको लौट जाइये और मेरे पिता माताओंकी, भरत शत्रुघ्नकी, इस अयोध्यानगरीकी, यहाँके समस्त प्रजाजनोंकी तथा इस राज्यकी भी रक्षा कीजिये । मैं वनमें तपस्याके लिये जाता हूँ' ॥ ७६—७८ ॥

अथ लक्ष्मणमाहेदं वचन राघवस्तदा ।
सीतामर्पय राजान जनकं मिथिलेश्वरम् ॥७९॥
पितृमातृवशे तिष्ठ गच्छ लक्ष्मण याम्यहम् ।
इत्युक्त प्राह धर्मात्मा लक्ष्मणो भ्रातृवत्सल ॥८०॥
मैवमाज्ञापय विभो मामद्य करुणाकर ।
गन्तुमिच्छसि यत्र त्वमनघ्य तत्र याम्यहम् ॥८१॥
इत्युक्तो लक्ष्मणेनासौ सीता तामाह राघव॰ ।
सीते गच्छ ममादेशात्पितर प्रति शोभने ॥८२॥
सुमित्राया गृहे चापि कौशल्याया सुमध्यमे ।
निवर्तस्व हि तावत्त्व यावदागमन मम ॥८३॥

तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने उस समय लक्ष्मणसे यह बात कही—'लक्ष्मण ! तुम सीताको ले जाकर मिथिलापति राजा जनकको सौंप आओ और स्वय पिता-माताके अधीन रहो । लौट जाओ, लक्ष्मण ! मैं वनको अकेला ही जाऊँगा ।' उनके यों कहनेपर भ्रातृवत्सल धर्मात्मा लक्ष्मणने कहा—'प्रभो ! करुणानिधान ! आज मुझे ऐसी कठोर आज्ञा न दीजिये । आप जहाँ भी जाना चाहते हैं, वहाँ मैं अवश्य चलूँगा ।' लक्ष्मणके यों कहनेपर श्रीरामचन्द्रजीने सीतासे कहा—'शोभने सीते ! तुम मेरी आज्ञासे अपने पिताके यहाँ चली जाओ अथवा माता कौसल्या और सुमित्राके भवनमें जाकर रहो । सुन्दरि ! तुम तबतकके लिये वहाँ लौट जाओ, जबतक कि मैं वनसे फिर वहाँ न आऊँ' ॥ ७९—८३ ॥

इत्युक्ता राघवेनापि सीता प्राह कृताञ्जलि ।
यत्र गत्वा वने वासं त्वं करोषि महाभुज ॥८४॥
तत्र गत्वा त्वया सार्धं वसाम्यहमरिंदम ।
वियोग नो सहे राजंस्त्वया सत्यव्रता क्वचित् ॥८५॥
अतस्त्वा प्रार्थयिष्यामि दया कुरु मम प्रभो ।
गन्तुमिच्छसि यत्र त्वमनघ्य तत्र याम्यहम् ॥८६॥

श्रीरामचन्द्रजीके इस प्रकार आदेश देनेपर सीता भी हाथ जोड़कर बोली—'महाबाहो ! हे शत्रुदमन ! आप वनमें जहाँ जाकर निवास करेंगे, वहाँ चलकर मैं भी आपके ही साथ रहूँगी । राजन् ! सत्यव्रतका पालन करनेवाले आप पतिदेवका वियोग मैं क्षणभरके लिये भी नहीं सह सकती, इसलिये प्रभो ! मैं प्रार्थना करती हूँ, मुझपर दया करें । प्राणनाथ ! आप जहाँ जाना चाहते हैं, वहाँ मैं भी अवश्य ही चलूँगी' ॥ ८४—८६ ॥

नानायानैरुपगताञ्जनान् वीक्ष्य स पृष्ठत॰ ।
योषिता च गणान् रामो वारयामास धर्मवित् ॥८७॥
निवृत्य स्त्रीयना स्वैरमयोध्याया जना स्त्रिय॰ ।
गत्वाहं दण्डकारण्यं तपसे धृतमानस ॥८८॥
कतिपयान्दिनान्यास्ये नान्यथा सत्यमीरितम् ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वैदेह्या च स्वभार्यया ॥८९॥

इसके बाद श्रीरामचन्द्रजीने देखा कि मेरे पीछे बहुत-से पुरुष नाना प्रकारके वाहनोंपर चढ़कर आ गये हैं तथा झुंड-की-झुंड स्त्रियाँ भी आ गयी हैं, तब धर्मज्ञ श्रीरामने उन सबको साथ [illegible] मना किया और कहा—'पुरुषो ! और स्त्रियो ! आप सब लोग लौटकर अयोध्यामें [illegible] हैं । मैं तपस्याके लिये [illegible] दण्डकारण्यको जा रहा हूँ । [illegible] कुछ ही दिनोंतक वहाँ [illegible] अपनी पत्नी सीता और भाई लक्ष्मणके साथ रहूँगा, फिर लौट आऊँगा, यह [illegible] सत्य है । इसे अन्यथा नहीं मानना चाहिये' ॥ ८७—८९ ॥

ततान्निवर्त्य रामोऽसौ जगाम च गुहाश्रमम् ।
गुहस्तु रामभक्तोऽसौ स्वभावादेव वैष्णवः ॥९०॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा [illegible]

इस प्रकार अयोध्यावासी लोगोंको लौटाकर श्रीरामने गुहके आश्रमपर पदार्पण किया। गुह स्वभावसे ही वैष्णव तथा श्रीरामचन्द्रजीका परम भक्त था। भगवान् रामको देखते ही वह उनके सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और बोला—'भगवन्! मैं क्या सेवा करूँ?' ॥ ९०३ ॥

महता तपसाऽऽनीता गुरुणा या हि व. पुरा ॥९१॥
भगीरथेन या भूमि सर्वपापहरा शुभा।
नानामुनिजनैर्जुष्टा कूर्ममत्स्यसमाकुला ॥९२॥
गङ्गा तुङ्गोर्मिमालाढ्या स्फटिकाभजलावहा।
गुहोपनीतनावा तु तां गङ्गा स महाद्युति. ॥९३॥
उत्तीर्य भगवान् रामो भरद्वाजाश्रम शुभम्।

[यों कहकर गुहने सीता, और लक्ष्मणसहित श्रीरामका सादर पूजन एव सत्कार किया। इसके बाद सबेरे सारथि और रथको लौटाकर वे गङ्गाजीके तटपर गये और पुन कहने लगे—] राजन्! जिन्हें आपके पूर्वज महाराज भगीरथ पूर्वकालमें बड़ी तपस्या करके पृथ्वीपर ले आये थे, जो समस्त-पापहारिणी और कल्याणकारिणी हैं, अनेकानेक मुनिजन जिनका सेवन करते हैं, जिनमें कूर्म और मत्स्य आदि जल-जन्तु भरे रहते हैं, जो ऊँची ऊँची लहरोंसे सम्पन्न एव स्फटिकमणिके समान स्वच्छ जल बहानेवाली हैं, उन पुण्यसलिला गङ्गाजीको गुहके द्वारा लायी हुई नावसे पार करके महान् कान्तिमान् भगवान् श्रीराम भरद्वाज मुनिके शुभ आश्रमपर गये ॥ ९१—९३३ ॥

प्रयागे तु ततस्तस्मिन् स्नात्वा तीर्थे यथाविधि ॥९४॥
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा राघव सीतया सह।
भरद्वाजाश्रमे तत्र विश्रान्तस्तेन पूजितः ॥९५॥
तत प्रभाते विमले तमनुज्ञाप्य राघव।
भरद्वाजोक्तमार्गेण चित्रकूट शनैर्ययौ ॥९६॥
नानाद्रुमलताकीर्णं पुण्यतीर्थमनुत्तमम्।
तापस वेषमास्थाय जह्नुकन्यामतीत्य वै ॥९७॥

वह आश्रम प्रयागमें था। श्रीरामचन्द्रजीने सीता तथा भाई लक्ष्मणके साथ उस प्रयागतीर्थमें विधिवत् स्नान करके, वहीं भरद्वाज ऋषिके आश्रममें उनसे सम्मान प्राप्तकर रात्रिमें विश्राम किया। फिर निर्मल प्रभातकाल होनेपर [तपस्वी]का वेष धारणकर, भरद्वाज मुनिसे आज्ञा ले, उन्हींके [बताये] मार्गसे गङ्गाके पार हो, धीरे धीरे नाना प्रकारके वृक्ष और लताओंसे आच्छन्न परम उत्तम पावन तीर्थ चित्रकूटको गये ॥ ९४—९७ ॥

गते रामे सभार्ये तु सह भ्रात्रा ससारथौ।
अयोध्यामवसन् भूप नष्टशोभां सुदु:खिताः ॥९८॥
नष्टसंज्ञो दशरथः श्रुत्वा वचनमप्रियम्।
रामप्रवासजननं कैकय्या मुखनिःसृतम् ॥९९॥
लब्धसंज्ञः क्षणाद्राजा रामरामेति चुक्रुशे।
कैकय्युवाच भूपाल भरतं चाभिषेचय ॥१००॥
सीतालक्ष्मणसंयुक्तो रामचन्द्रो वनं गतः।
पुत्रशोकाभिसंतप्तो राजा दशरथस्तदा ॥१०१॥
विहाय देह दु:खेन देवलोक गतस्तदा।

राजन्! इधर सीता-लक्ष्मण और सारथिके सहित रामचन्द्रजीके चले जानेपर अयोध्यावासी जन बहुत दुखी होकर शोभाशून्य अयोध्यानगरीमें रहने लगे। राजा दशरथ तो कैकेयीके मुखसे निकले श्रीरामको वनवास देनेवाले अप्रिय वचनको सुनते ही मूर्च्छित हो गये थे। कुछ देर बाद जब राजाको होश हुआ, तब वे उच्चस्वरसे 'राम! राम!' पुकारने लगे। तब कैकेयीने भूपालसे कहा—'राम तो सीता और लक्ष्मणके साथ वनमें चले गये, अब आप भरतका राज्याभिषेक कीजिये।' यह सुनते ही राजा दशरथ पुत्रशोकसे संतप्त हो, दु:खसे मारे शरीर त्यागकर देवलोकको चले गये ॥ ९८—१०१३ ॥

ततस्तस्य महापुर्य्यामयोध्यायामरिंदम ॥१०२॥
रुरुदुर्दु:खशोकार्त्ता जनाः सर्वे च योषित.।
कौशल्या च सुमित्रा च कैकेयी कष्टकारिणी ॥१०३॥
परिवार्य मृत तत्र रुरुदुस्ता: पतिं तत:।

शत्रुदमन! तब उनकी महानगरी अयोध्यामें रहनेवाले सभी स्त्री पुरुष दु:ख और शोकसे पीड़ित हो विलाप करने लगे। कौसल्या, सुमित्रा तथा कष्टकारिणी कैकेयी भी अपने मृत पतिको चारों ओरसे घेरकर रोने लगीं ॥ १०२ १०३३ ॥

तत: पुरोहितस्तत्र वसिष्ठ सर्वधर्मवित् ॥१०४॥
तैलद्रोण्या विनिक्षिप्य मृत राजकलेवरम्।
दूतं वै प्रेषयामास सहमन्त्रिगणैः स्थित: ॥१०५॥

स गत्वा यत्र भरतः शत्रुघ्नेन सह स्थितः ।
तत्र प्राप्य तथा वार्तां सन्निवर्त्य नृपात्मजौ ॥१०६॥
तावानीय ततः शीघ्रमयोध्यां पुनरागतः ।
क्रूराणि दृष्ट्वा भरतो निमित्तानि च वै पथि ॥१०७॥
विपरीतं त्वयोध्यायामिति मेने स पार्थिवः ।
निःशोभां निर्गतश्रीकां दुःखशोकान्वितां पुरीम् ॥
कैकेय्यग्निविनिर्दग्धामयोध्यां प्रविवेश सः ।
दुःखान्विता जनाः सर्वे तं दृष्ट्वा रुरुदुर्भृशम् ॥१०९॥
हा तात राम हा सीते लक्ष्मणेति पुनः पुनः ।
रुरोद भरतस्तत्र शत्रुघ्नश्च सुदुःखितः ॥११०॥

तब सब धर्मोंके जाननेवाले पुरोहित वसिष्ठजीने वहाँ आकर सबको शान्त किया और राजाके मृत शरीरको तेलसे भरी हुई नौकामें रखवाकर, मन्त्रियोंके साथ विचार करके, भरत-शत्रुघ्नको बुलानेके लिये दूत भेजा। वह दूत, जहाँ शत्रुघ्नके साथ भरतजी थे, वहाँ गया और जितना उसे बताया गया था, उतना ही संदेश सुनाकर, उन दोनों राजकुमारोंको वहाँसे लौटाकर, उन्हें साथ ले, शीघ्र ही अयोध्यामें लौट आया। राजा भरत मार्गमें घोर अपशकुन देखकर मन-ही-मन यह जान गये कि 'अयोध्यामें कोई विपरीत घटना घटित हुई है।' फिर जो कैकेयीरूपी अग्निसे दग्ध होकर शोभाहीन, निस्तेज और दुःख-शोकसे परिपूर्ण हो गयी थी, उस अयोध्यापुरीमें भरतजीने प्रवेश किया। उस समय भरत और शत्रुघ्नको देख सभी लोग दुःखी हो 'हा तात! हा राम! हा सीते! हा लक्ष्मण!' इस प्रकार बारंबार पुकारते हुए बहुत विलाप करने लगे। यह देख भरत और शत्रुघ्न भी दुःखी होकर रोने लगे ॥१०४—११०॥

कैकेय्यास्तत्क्षणाच्छ्रुत्वा चुक्रोध भरतस्तदा ।
दुष्टा त्वं दुष्टचित्ता च यया रामः प्रवासितः ॥१११॥
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा राघवः सीतया वनम् ।
साहसं किं कृतं दुष्टे त्वया सद्योऽल्पभाग्यया ॥११२॥
उद्वास्य सीतया रामं लक्ष्मणेन महात्मना ।
ममैव पुत्रं राजानं करोत्विति मतिस्तव ॥११३॥
दुष्टाया नष्टभाग्यायाः पुत्रोऽहं भाग्यवर्जितः ।
भ्रात्रा रामेण रहितो नाहं राज्यं करोमि वै ॥११४॥
यत्र रामो नरव्याघ्रः पद्मपत्रायतेक्षणः ।
धर्मज्ञः सर्वशास्त्रज्ञो मतिमान् बन्धुवत्सलः ॥११५॥
सीता च यत्र वैदेही नियमव्रतचारिणी ।
पतिव्रता महाभागा सर्वलक्षणसंयुता ॥११६॥
लक्ष्मणश्च महावीर्यो गुणवान् भ्रातृवत्सलः ।
तत्र यास्यामि कैकेयि महत्पापं त्वया कृतम् ॥११७॥
राम एव मम भ्राता ज्येष्ठो मतिमतां वरः ।
स एव राजा दुष्टात्मे भृत्योऽहं तस्य वै सदा ॥११८॥

उस समय कैकेयीके मुखसे तत्काल सारा वृत्तान्त सुनकर भरतजी उसके ऊपर बहुत ही कुपित हुए और बोले—'अरी! तू तो बड़ी दुष्ट है। तेरे चित्तमें दुष्टतापूर्ण विचार भरा हुआ है। हाय! जिसने श्रीरामको वनवास दे दिया, जिसके कारण भाई लक्ष्मण और देवी सीताके साथ श्रीरघुनाथजीको वनमें जानेको विवश होना पड़ा, उससे बढ़कर दुष्ट कौन स्त्री होगी? अरी दुष्टे! ओ मन्दभागिनी! तूने तत्काल ऐसा दुस्साहस कैसे किया? तूने सोचा होगा कि महात्मा लक्ष्मण और साध्वी सीताके साथ रामको घरसे निकालकर महाराज दशरथ मेरे ही पुत्रको राजा बना देंगे। (धिक्कार है तेरी इस कुबुद्धिको!) आह! मैं कितना भाग्यहीन हूँ, जो तुझ जैसी अभागिनी स्त्रीका पुत्र हुआ। किंतु तू निश्चय जान, मैं अपने ज्येष्ठ भ्राता श्रीरामसे अलग रहकर राज्य नहीं करूँगा। जहाँ मनुष्योंमें श्रेष्ठ, धर्मज्ञ, सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञाता, बुद्धिमान् तथा भाइयोंपर स्नेह रखनेवाले कमलदललोचन श्रीरामचन्द्रजी गये हैं, जहाँ नियम और व्रतका आचरण करनेवाली, समस्त शुभलक्षणोंसे युक्त, अत्यन्त सौभाग्यशालिनी पतिव्रता विदेहराजकुमारी सीताजी विराजमान हैं और जहाँ भाईके भक्त, गुणवान्, महान् पराक्रमी लक्ष्मणजी गये हैं, वहीं मैं भी जाऊँगा। कैकेयि! तूने रामको वनवास देकर महान् पाप किया है। दुष्टात्मन्! बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ श्रीराम ही मेरे ज्येष्ठ भ्राता हैं, वे ही राजा होनेके अधिकारी हैं। मैं तो उनका दास हूँ ॥ १११—११८ ॥

इत्युक्त्वा मातरं तत्र रुरोद भृशदुःखितः ।
हा राजन् पृथिवीपाल मां विहाय सुदुःखितम् ॥११९॥
क्व गतोऽस्यद्य वै तात किं करोमीह सङ्कटे ।

भ्राता पित्रा सम क्वास्ते ज्येष्ठो मे करुणाकर ॥१२०
सीता च मातृतुल्या मे क्व गतो लक्ष्मणश्च ह।

मातामें यों कहकर भरतजी अत्यन्त दुखी हो, वहाँ फूट फूटकर रोने लगे और विलाप करने लगे—हा राजन्! हा वसुधाप्रतिपालक! हा तात! मुझ अत्यन्त दुखी बालकको छोड़कर आप कहाँ चले गये? बताइये, मैं अब यहाँ क्या करूँ? पिताके तुल्य दया करनेवाले मेरे ज्येष्ठ भ्राता श्रीराम कहाँ हैं? माताके समान पूजनीया सीता कहाँ हैं और मेरा प्यारा भाई लक्ष्मण कहाँ चला गया? ॥ ११९-१२०½ ॥

इत्येव विलपन्तं तं भरत मन्त्रिभि सह ॥१२१॥
वसिष्ठो भगवानाह कालकर्मविभागवित्।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ वत्स त्वं न शोक कर्तुमर्हसि ॥१२२॥
कर्मकालवशादेव पिता ते स्वर्गमास्थित।
तस्य संस्कारकार्याणि कर्माणि कुरु शोभन ॥१२३॥
रामोऽपि दुष्टनाशाय शिष्टाना पालनाय च।
अवतीर्णो जगत्स्वामी स्वांशेन भुवि माधव ॥१२४॥
प्रायस्तत्रास्ति रामेण कर्तव्य लक्ष्मणेन च।
यत्रासौ भगवान् वीर कर्मणा तेन चोदित ॥१२५॥
तत्कृत्वा पुनरायाति राम कमललोचन।

भरतको इस प्रकार विलाप करते देख काल और कर्मके विभागको जाननेवाले भगवान् वसिष्ठजी मन्त्रियोंके साथ वहाँ आकर बोले—'बेटा! उठो, उठो, तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये। भद्र! काल और कर्मके वशीभूत होकर ही तुम्हारे पिता स्वर्गवासी हुए हैं; अब तुम उनके अन्त्येष्टि संस्कार आदि कर्म करो। भगवान् श्रीराम साक्षात् लक्ष्मीपति नारायण हैं। वे जगदीश्वर दुष्टोंका नाश और साधुपुरुषोंका पालन करनेके लिये ही अपने अंशसे इस पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए हैं। वनमें श्रीराम और लक्ष्मणके द्वारा बहुत-से कार्य होनेवाले हैं। वहाँ वीरवर कमललोचन श्रीरामचन्द्रजी उन्हीं कर्तव्यकर्मोंसे प्रेरित होकर गये हैं और उन्हें पूर्ण करके यहाँ लौट आयेंगे' ॥ १२१—१२५½ ॥

इत्युक्तो भरतस्तेन वसिष्ठेन महात्मना ॥१२६॥
संस्कारं लम्भयामास विधिदृष्टेन कर्मणा।
अग्निहोत्राग्निना दग्ध्वा पितुर्देहं विधानत ॥१२७॥
स्नात्वा सरय्वाः सलिले कृत्वा तस्योदकक्रियाम्।
शत्रुघ्नेन सह श्रीमान्मातृभिर्बान्धवै सह ॥१२८॥

उन महात्मा वसिष्ठजीके यों कहनेपर भरतजीने शास्त्रीय विधिके अनुसार पिताका और्ध्वदैहिक संस्कार किया। उस समय उन्होंने अग्निहोत्रकी अग्निसे पिताके शवका विधिपूर्वक दाह किया। फिर सरयूके जलमें स्नान करके श्रीमान् भरतने भाई शत्रुघ्न, सब माताओं तथा अन्य बन्धुजनोंके साथ परलोकगत पिताके लिये तिलसहित जलाञ्जलि दी ॥ १२६—१२८ ॥

तस्यौर्ध्वदैहिकं कृत्वा मन्त्रिणा मन्त्रिनायक।
हस्त्यश्वरथपत्तीभि सह प्रायान्महामति ॥१२९॥
भरतो राममन्वेष्टुं राममार्गेण सत्तम।
तमायान्त महासेन रामस्यानुनिरोधिनम् ॥१३०॥
मत्वा त भरत शत्रुं रामभक्तो गुहस्तदा।
स्व सैन्य वर्तुलं कृत्वा सनद्ध कवची रथी ॥१३१॥
महाबलपरीवारो रुरोध भरत पथि ॥१३२॥
सभ्रातृकं सभार्यं मे राम स्वामिनमुत्तमम्।
प्रापयस्त्वं वन दुष्ट साम्प्रत हन्तुमिच्छसि ॥१३३॥
गमिष्यसि दुरात्मस्त्व सेनया सह दुर्मते।

इस प्रकार पिताका और्ध्वदैहिक संस्कार करके मन्त्रियोंके अधिपति साधुश्रेष्ठ महाबुद्धिमान् भरतजी अपने मन्त्रियों तथा हाथी, घोड़े, रथ एवं पैदल, सेनाओंके साथ (माताओं तथा बन्धुजनोंको भी साथ ले) श्रीरामचन्द्रजीका अन्वेषण करनेके लिये, जिस मार्गसे वे गये थे, उसी मार्गसे चले। उस समय भरत (और शत्रुघ्न) को इतनी बड़ी सेनाके साथ आते देख, उन्हें श्रीरामचन्द्रजीका विरोधी शत्रु समझकर रामभक्त गुहने युद्धके लिये सुसज्जित हो, अपनी सेना गोलाकार खड़ी की और कवच धारणकर, रथारूढ हो, उस विशाल सेनासे घिरे हुए उसने मार्गमें भरतको रोक दिया। उसने कहा—'दुष्ट! दुरात्मन्! दुर्बुद्धे! तूने मेरे श्रेष्ठ स्वामी श्रीरामको भाई और पत्नीसहित वनमें तो भिजवा ही दिया; क्या अब उन्हें मारना भी चाहते हो, जो (इतनी बड़ी) सेनाके साथ वहाँ जा रहे हो?' ॥ १२९—१३३½ ॥

इत्युक्तो भरतस्तत्र गुहेन नृपनन्दन ॥१३४॥
तमुवाच विनीतात्मा रामायाथ कृताञ्जलि।

यथा त्वं रामभक्तोऽसि तथाहमपि भक्तिमान् ॥१३५॥
प्रोषिते मयि कैकेय्या कृतमेतन्महामते ।
रामस्यानयनार्थाय व्रजाम्यद्य महामते ॥१३६॥
सत्यपूर्वं गमिष्यामि पन्थानं देहि मे गुह ।

गुहके यों कहनेपर राजकुमार भरत श्रीरामके उद्देश्यसे हाथ जोड़कर विनययुक्त होकर उससे बोले—'गुह ! जैसे तुम श्रीरामचन्द्रजीके भक्त हो, वैसे ही मैं भी उनमें भक्ति रखता हूँ। महामते ! मैं नगरसे बाहर (मामाके घर) चला गया था, उस समय कैकेयीने यह अनर्थ कर डाला। महाबुद्धे ! आज मैं श्रीरामचन्द्रजीको लौटा लानेके लिये जा रहा हूँ। तुमसे यह सत्य बात बताकर वहाँ जाना चाहता हूँ। तुम मुझे मार्ग दे दो' ॥ १३४–१३६½ ॥

इति विश्वासमानीय जाह्नवीं तेन तारितः ॥१३७॥
नानाप्रकारैरनेकैस्तु स्नात्वासौ जाह्नवीजले।
भरद्वाजाश्रमं प्राप्तो भरतस्तं महामुनिम् ॥१३८॥
प्रणम्य शिरसा तस्मै यथावृत्तमुवाच ह ।

इस प्रकार विश्वास दिलानेपर गुह उन्हें गङ्गातटपर ले आया और छोटी-बड़ी नौकाएँ मँगाकर उनके द्वारा उन सबको पार कर दिया। फिर गङ्गाजीके जलमें स्नान करके भरतजी भरद्वाजमुनिके आश्रमपर पहुँचे और उन महामुनिके चरणोंमें मस्तक झुका, प्रणाम करके, उन्होंने उनसे अपना यथार्थ वृत्तान्त कह सुनाया ॥ १३७–१३८½ ॥

भरद्वाजोऽपि तं प्राह कालेन कृतमीदृशम् ॥१३९॥
दुःखं न तावत् कर्तव्यं रामार्थेऽपि त्वयाधुना।
वर्तते चित्रकूटेऽसौ रामः सत्यपराक्रमः ॥१४०॥
त्वयि तत्र गते नापि प्रायोऽसौ नागमिष्यति।
तथापि तत्र गच्छ त्वं यदसौ वक्ति तत्कुरु ॥१४१॥
रामस्तु सीतया सार्धं वनखण्डे स्थितः शुभे।
लक्ष्मणस्तु महावीर्यो रक्षालोकनतत्परः ॥१४२॥

भरद्वाजजीने भी उनसे कहा—'भरत ! कालके ही प्रभावसे ऐसा काण्ड घटित हुआ है। अब तुम्हें श्रीरामके लिये भी खेद नहीं करना चाहिये। सत्यपराक्रमी वे श्रीरामचन्द्रजी इस समय चित्रकूटमें हैं। वहाँ तुम्हारे जानेपर भी वे प्रायः नहीं आ सकेंगे, तथापि तुम वहाँ जाओ और जैसे वे कहें, वैसे ही करो। श्रीरामचन्द्रजी सीताके साथ एक सुन्दर वनखण्डमें निवास करते हैं और महान् पराक्रमी लक्ष्मण हुए जीवोंपर दृष्टि रखते हैं—उनकी रक्षामें तत्पर रहते हैं' ॥ १३९–१४२ ॥

इत्युक्तो भरतस्तत्र भरद्वाजेन धीमता।
उत्तीर्य यमुनां यातश्चित्रकूटं महानगम् ॥१४३॥
स्थितोऽसौ दृष्टवान्दूरात्स धूलीं चोत्तरां दिशम्।
रामाय कथयित्वाऽऽस तदादेशात्तु लक्ष्मणः ॥१४४॥
वृक्षमारुह्य मेधावी वीक्षमाणः प्रयत्नतः ।
स ततो दृष्टवान् दृष्टामायान्तीं महतीं चमूम् ॥१४५॥
हस्त्यश्वरथसंयुक्तां दृष्ट्वा राममथाब्रवीत् ।
हे भ्रातस्त्वं महाबाहो सीतापार्श्वे स्थिरो भव ॥१४६॥
भूपोऽस्ति बलवान् कश्चिद्धस्त्यश्वरथपत्तिभिः।

बुद्धिमान् भरद्वाजजीके यों कहनेपर भरतजी यमुना पार करके महान् पर्वत चित्रकूटपर गये। वहाँ खड़े हुए लक्ष्मणजीने दूरसे उत्तर दिशामें धूल उड़ती देख श्रीरामचन्द्रजीको सूचित किया। फिर उनकी आज्ञासे वृक्षपर चढ़कर बुद्धिमान् लक्ष्मणजी प्रयत्नपूर्वक उधर देखने लगे। तब उन्हें वहाँ बहुत बड़ी सेना आती दिखायी दी, जो हृष्ट एवं उत्साहसे भरी जान पड़ती थी। हाथी, घोड़े और रथोंसे युक्त उस सेनाको देखकर लक्ष्मणजी श्रीरामसे बोले—'भैया ! तुम सीताके पास स्थिरतापूर्वक बैठे रहो। महाबाहो ! कोई महाबली राजा हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिकोंसे युक्त चतुरङ्गिणी सेनाके साथ आ रहा है' ॥ १४३–१४६½ ॥

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य लक्ष्मणस्य महात्मनः ॥१४७॥
रामस्तमब्रवीद्धीरो वीरः सत्यपराक्रमः ।
प्रायेण भरतोऽस्माकं द्रष्टुमायाति लक्ष्मण ॥१४८॥
इत्येवं वदतस्तस्य रामस्य विदितात्मनः ।
आरात्संस्थाप्य सेनां तां भरतो विनयान्वितः ॥१४९॥
ब्राह्मणैर्मन्त्रिभिः सार्धं रुदन्नागत्य पादयोः ।
रामस्य निपपाताथ वैदेह्या लक्ष्मणस्य च ॥१५०॥
मन्त्रिणो मातृवर्गश्च स्निग्धबन्धुसुहृज्जनाः ।
परिवार्य ततो रामं रुरुदुः शोककातराः ॥१५१॥

भ्राता पित्रा मम क्वास्ते ज्येष्ठो मे करुणाकरः ॥१२०
सीता च मातृतुल्या मे क्व गतो लक्ष्मणश्च ह।

माताओंसे यों कहकर भरतजी अत्यन्त दुःखी हो, वहाँ फूट फूटकर रोने लगे और विलाप करने लगे—'हा राजन्! हा वसुधाप्रतिपालक! हा तात! मुझ अत्यन्त दुःखी बालकको छोड़कर आप कहाँ चले गये? बताइये, मैं अब यहाँ क्या करूँ? पिताके तुल्य दया करनेवाले मेरे ज्येष्ठ भ्राता श्रीराम कहाँ हैं? माताके समान पूजनीया सीता कहाँ हैं और मेरा प्यारा भाई लक्ष्मण कहाँ चला गया?' ॥ ११९-१२०½ ॥

इत्येवं विलपन्तं तं भरतं मन्त्रिभिः सह ॥१२१॥
वसिष्ठो भगवानाह कालकर्मविभागवित्।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ वत्स त्वं न शोकं कर्तुमर्हसि ॥१२२॥
कर्मकालवशादेव पिता ते स्वर्गमास्थितः।
तस्य संस्कारकार्याणि कर्माणि कुरु शोभन ॥१२३॥
रामोऽपि दुष्टनाशाय शिष्टानां पालनाय च।
अवतीर्णो जगत्स्वामी स्वांशेन भुवि माधवः ॥१२४॥
प्रायस्तत्रास्ति रामेण कर्तव्यं लक्ष्मणेन च।
यत्रासौ भगवान् वीरः कर्मणा तेन चोदितः ॥१२५॥
तत्कृत्वा पुनरायाति रामः कमललोचनः।

भरतको इस प्रकार विलाप करते देख काल और कर्मके विभागको जाननेवाले भगवान् वसिष्ठजी मन्त्रियोंके साथ वहाँ आकर बोले—'बेटा! उठो, उठो, तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये। भद्र! काल और कर्मके वशीभूत होकर ही तुम्हारे पिता स्वर्गगामी हुए हैं; अब तुम उनके अन्त्येष्टि संस्कार आदि कर्म करो। भगवान् श्रीराम साक्षात् लक्ष्मीपति नारायण हैं। वे जगदीश्वर दुष्टोंका नाश और साधुपुरुषोंका पालन करनेके लिये ही अपने अंशसे इस पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए हैं। वनमें श्रीराम और लक्ष्मणके द्वारा बहुत-से कार्य होनेवाले हैं। वहाँ वीरवर कमललोचन श्रीरामचन्द्रजी उन्हीं कर्तव्यकर्मोंसे प्रेरित होकर गये हैं और उन्हें पूर्ण करके यहाँ लौट आयेंगे' ॥ १२१—१२५½ ॥

इत्युक्तो भरतस्तेन वसिष्ठेन महात्मना ॥१२६॥
संस्कारं लम्भयामास विधिदृष्टेन कर्मणा।
अग्निहोत्राग्निना दग्ध्वा पितुर्देहं विधानतः ॥१२७॥
स्नात्वा सरय्वाः सलिले कृत्वा तस्योदकक्रियाम्।
शत्रुघ्नेन सह श्रीमान्मातृभिर्बान्धवैः सह ॥१२८॥

उन महात्मा वसिष्ठजीके यों कहनेपर भरतजीने शास्त्रोक्त विधिके अनुसार पिताका और्ध्वदैहिक संस्कार किया। उस समय उन्होंने अग्निहोत्रकी अग्निसे पिताके शरीरका विधिपूर्वक दाह किया। फिर सरयूके जलमें स्नान करके श्रीमान् भरतने भाई शत्रुघ्न, सब माताओं तथा अन्य बन्धुजनोंके साथ परलोकगत पिताके लिये तिलसहित जलकी अञ्जलि दी ॥ १२६—१२८ ॥

तस्यौर्ध्वदैहिकं कृत्वा मन्त्रिणा मन्त्रिनायकः।
हस्त्यश्वरथपत्तीभिः सह प्रायान्महामतिः ॥१२९॥
भरतो राममन्वेष्टुं राममार्गेण सत्तम।
तमायान्तं महासेनं रामस्यानुनिरोधिनम् ॥१३०॥
मत्वा तु भरतं शत्रुं रामभक्तो गुहस्तदा।
स्वं सैन्यं वर्तुलं कृत्वा सन्नद्धः कवची रथी ॥१३१॥
महाबलपरीवारो रुरोध भरतं पथि ॥१३२॥
सभ्रातृकं सभार्यं मे रामं स्वामिनमुत्तमम्।
प्रापयस्त्वं वनं दुष्ट साम्प्रतं हन्तुमिच्छसि ॥१३३॥
गमिष्यसि दुरात्मंस्त्वं सेनया सह दुर्मते।

इस प्रकार पिताका और्ध्वदैहिक संस्कार करके मन्त्रियोंके अधिपति साधुश्रेष्ठ महाबुद्धिमान् भरतजी अपने मन्त्रियों तथा हाथी, घोड़े, रथ एवं पैदल, सेनाओंके साथ (माताओं तथा वधुजनोंको भी साथ ले) श्रीरामचन्द्रजीका अन्वेषण करनेके लिये, जिस मार्गसे वे गये थे, उसी मार्गसे चले। उस समय भरत (और शत्रुघ्न) को इतनी बड़ी सेनाके साथ आते देख, उन्हें श्रीरामचन्द्रजीका विरोधी शत्रु समझकर, रामभक्त गुहने युद्धके लिये सुसज्जित हो, अपनी सेना गोलाकार खड़ी की और कवच धारणकर, रथारूढ हो, उस विशाल सेना। घिरे हुए उसने मार्गमें भरतको रोक लिया। उसने कहा—'दुष्ट! दुरात्मन्! दुर्बुद्धे! तूने मेरे श्रेष्ठ स्वामी श्रीरामको भाई और पत्नीसहित वनमें तो भिजवा ही दिया, पर अब उन्हें मारना भी चाहता है, जो (इतनी बड़ी) सेनाके साथ यहाँ आ रहे हो'॥ १२९—१३३½ ॥

इत्युक्तो भरतस्तत्र गुहेन नृपनन्दन ॥१३४॥
तमुवाच विनीतात्मा रामायाथ कृताञ्जलिः।

यथा त्व रामभक्तोऽसि तथाहमपि भक्तिमान्॥१३५॥
प्रोषिते मयि कैकेय्या कृतमेतन्महामते।
रामस्यानयनार्थाय व्रजाम्यद्य महामते ॥१३६॥
सत्यपूर्वं गमिष्यामि पन्थान देहि मे गुह।

गुहके यों कहनेपर राजकुमार भरत श्रीरामके उद्देश्यसे हाथ जोड़कर विनययुक्त होकर उनसे बोले—'गुह! जैसे तुम श्रीरामचन्द्रजीके भक्त हो, वैसे ही मैं भी उनमें भक्ति रखता हूँ। महामते! मैं नगरसे बाहर (मामाके घर) चला गया था, उस समय कैकेयीने यह अनर्थ कर डाला। महाबुद्धे! आज मैं श्रीरामचन्द्रजीको लौटा लानेके लिये जा रहा हूँ। तुमसे यह सत्य बात बताकर वहाँ जाना चाहता हूँ। तुम मुझे मार्ग दे दो'॥ १३४–१३६½॥

इति विश्वासमानीय जाह्नवीं तेन तारित ॥१३७॥
नौकावृन्दैरनेकैस्तु स्नात्वासौ जाह्नवीजले।
भरद्वाजाश्रम प्राप्तो भरतस्त महामुनिम् ॥१३८॥
प्रणम्य शिरसा तस्म यथावृत्तमुवाच ह।

इस प्रकार विश्वास दिलानेपर गुह उन्हें गङ्गातटपर ले आया और छोटी-छोटी बहुत नौकाएँ मँगाकर उनके द्वारा उन सबको पार कर दिया। फिर गङ्गाजीके जलमें स्नान करके भरतजी भरद्वाजमुनिके आश्रमपर पहुँचे और उन महामुनिके चरणोंमें मस्तक झुका, प्रणाम करके, उन्होंने उनसे अपना यथार्थ वृत्तान्त कह सुनाया॥ १३७–१३८½॥

भरद्वाजोऽपि त प्राह कालेन कृतमीदृशम् ॥१३९॥
दु:ख न तावत् कर्तव्य रामार्थेऽपि त्वयाधुना।
वर्तते चित्रकूटेऽसौ राम सत्यपराक्रम ॥१४०॥
त्वयि तत्र गते नापि प्रायोऽसौ नागमिष्यति।
तथापि तत्र गच्छ त्व यदसौ वक्ति तत्कुरु ॥१४१॥
रामस्तु सीतया सार्धं वनखण्डे स्थित शुभे।
लक्ष्मणस्तु महावीर्यो दुष्टालोकनतत्पर ॥१४२॥

भरद्वाजजीने भी उनसे कहा—'भरत! कालके ही प्रभावसे ऐसा काण्ड घटित हुआ है। अब तुम्हें श्रीरामके लिये भी खेद नहीं करना चाहिये। सत्यपराक्रमी वे श्रीरामचन्द्रजी इस समय चित्रकूटमें हैं। वहाँ तुम्हारे जानेपर भी वे प्रायः नहीं आ सकेंगे, तथापि तुम वहाँ जाओ और जैसे वे कहें, वैसे ही करो। श्रीरामचन्द्रजी सीताके साथ एक सुन्दर वनखण्डमें निवास करते हैं और महान् पराक्रमी लक्ष्मण दुष्ट जीवोंपर दृष्टि रखते हैं—उनकी रक्षामें तत्पर रहते हैं'॥ १३९–१४२॥

इत्युक्तो भरतस्तत्र भरद्वाजेन धीमता।
उत्तीर्य यमुना यातश्चित्रकूट महानगम् ॥१४३॥
स्थितोऽसौ दृष्टवान्दूरात्सधूलीं चोत्तरा दिशम्।
रामाय कथयित्वाऽऽस तदादेशात्तु लक्ष्मण ॥१४४॥
वृक्षमारुह्य मेधावी वीक्षमाण प्रयत्नत।
स ततो दृष्टवान् हृष्टामायान्तीं महतीं चमूम् ॥१४५॥
हस्त्यश्वरथसयुक्ता दृष्ट्वा राममथाब्रवीत्।
हे भ्रातस्त्व महाबाहो सीतापार्श्वे स्थिरो भव ॥१४६॥
भूपोऽस्ति बलवान् कश्चिद्धस्त्यश्वरथपत्तिभि।

बुद्धिमान् भरद्वाजजीके यों कहनेपर भरतजी यमुना पार करके महान् पर्वत चित्रकूटपर गये। वहाँ खड़े हुए लक्ष्मणजीने दूरसे उत्तर दिशामें धूल उड़ती देख श्रीरामचन्द्रजीको सूचित किया। फिर उनकी आज्ञासे वृक्षपर चढ़कर बुद्धिमान् लक्ष्मणजी प्रयत्नपूर्वक उधर देखने लगे। तब उन्हें वहाँ बहुत बड़ी सेना आती दिखायी दी, जो हर्ष एवं उत्साहसे भरी जान पड़ती थी। हाथी, घोड़े और रथोंसे युक्त उस सेनाको देखकर लक्ष्मणजी श्रीरामसे बोले—'भैया! तुम सीताके पास स्थिरतापूर्वक बैठे रहो। महाबाहो! कोई महाबली राजा हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिकोंसे युक्त चतुरङ्गिणी सेनाके साथ आ रहा है'॥ १४३–१४६½॥

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य लक्ष्मणस्य महात्मन ॥१४७॥
रामस्तमब्रवीद्वीरो वीर सत्यपराक्रम।
प्रायेण भरतोऽस्माक द्रष्टुमायाति लक्ष्मण ॥१४८॥
इत्येव वदतस्तस्य रामस्य विदितात्मन।
आरात्संस्थाप्य सेना ता भरतो विनयान्वित ॥१४९॥
ब्राह्मणैर्मन्त्रिभि सार्धं रुदन्नागत्य पादयो।
रामस्य निपपाताथ वैदेह्या लक्ष्मणस्य च ॥१५०॥
मन्त्रिणो मातृवर्गश्च स्निग्धबन्धुसुहृज्जना।
परिवार्य ततो राम रुरुदु शोककातरा ॥१५१॥

महात्मा लक्ष्मणके ऐसे वचन सुनकर सत्यपराक्रमी वीरवर श्रीराम अपने उस वीर भ्राताले बोले—'लक्ष्मण ! मुझे तो प्राय यही जान पड़ता है कि भरत ही हमलोगोंसे मिलनेके लिये आ रहे हैं।' विदितात्मा भगवान् श्रीराम जिस समय यों कह रहे थे, उसी समय विनयशील भरतजी वहाँ पहुँचे और सेनाको कुछ दूरीपर ठहराकर स्वयं ब्राह्मणों और मन्त्रियोंके साथ निकट आ, सीता और लक्ष्मणसहित भगवान् श्रीरामके चरणोंपर रोते हुए गिर पड़े। फिर मन्त्री, माताएँ, स्नेही बन्धु तथा मित्रगण श्रीरामको चारों ओरसे घेरकर शोकमग्न हो रोने लगे ॥ १४७–१५१ ॥

स्वर्यात पितर ज्ञात्वा ततो रामो महामति' ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वैदेह्याथ समन्वित' ॥१५२॥
स्नात्वा मलापहे तीर्थे दत्त्वा च सलिलाञ्जलिम्।
मात्रादीनभिवाद्याथ रामो दु.खसमन्वित ॥१५३॥
उवाच भरत राजन् दु खेन महतान्वितम् ।
अयोध्या गच्छ भरत इत शीघ्र महामते ॥१५४॥
राज्ञा विहीनां नगरीं अनाथा परिपालय ।
इत्युक्तो भरत' प्राह राम राजीवलोचनम् ॥१५५॥
त्वामृते पुरुषव्याघ्र न यास्येऽहमितो ध्रुवम्।
यत्र त्व तत्र यास्यामि वैदेही लक्ष्मणो यथा ॥१५६॥

तदनन्तर महामति श्रीरामने अपने पिताके स्वर्गगामी होनेका समाचार पाकर भ्राता लक्ष्मण और जानकीके साथ वहाँके पापनाशक तीर्थमें स्नान करके जलाञ्जलि दी। राजन् ! फिर माता आदि गुरुजनोंको प्रणाम करके रामचन्द्रजी दुखी हो अत्यन्त खेदमें पड़े हुए भरतसे बोले—'महामते भरत ! तुम अब यहाँसे शीघ्र अयोध्याको चले जाओ और राजासे हीन हुई उस अनाथ नगरीका पालन करो।' उनके यों कहनेपर भरतने कमललोचन रामसे कहा—'पुरुषश्रेष्ठ ! यह निश्चय है कि मैं आपको साथ लिये बिना यहाँसे नहीं जाऊँगा। जहाँ आप जायँगे, वहीं सीता-लक्ष्मणकी भाँति मैं भी चलूँगा' ॥ १५२–१५६ ॥

इत्याकर्ण्य पुन प्राह भरत पुरत' स्थितम् ।
नृणा पितृसमो ज्येष्ठ स्वधर्ममनुवर्तिनाम् ॥१५७॥
यथा न लङ्घ्य वचन मया पितृमुखेरितम् ।
तथा त्वया न लङ्घ्य स्याद्वचन मम सत्तम ॥१५८॥
मत्समीपादितो गत्वा प्रजास्त्वं परिपालय ।
द्वादशाब्दिकमेतन्मे व्रत पितृमुखेरितम् ॥१५९॥
तदरण्ये चरित्वा तु आगमिष्यामि तेऽन्तिकम्।
गच्छ तिष्ठ ममादेशे न दु'ख कर्तुमर्हसि ॥१६०॥

यह सुनकर श्रीरामने अपने सामने खड़े हुए भरतसे पुन कहा—'साधुश्रेष्ठ भरत ! अपने धर्मका पालन करनेवाले मनुष्योंके लिये ज्येष्ठ भ्राता पिताके समान पूज्य है। जिस प्रकार मुझे पिताके मुखसे निकले हुए वचनका उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये, वैसे ही तुम्हें भी मेरे वचनोंका उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये। अब तुम यहाँ मेरे निकटसे जाकर प्रजाजनका पालन करो। पिताके मुखसे कहा हुआ जो यह बारह वर्षोंके वनवासका व्रत मैंने स्वीकार किया है, उसका वनमें पालन करके मैं पुन तुम्हारे पास आ जाऊँगा। जाओ, मेरी आज्ञाके पालनमें लग जाओ, तुम्हें खेद नहीं करना चाहिये' ॥ १५७–१६० ॥

इत्युक्तो भरत. प्राह बाष्पपर्याकुलेक्षण ।
यथा पिता तथा त्वं मे नात्र कार्या विचारणा ॥१६१॥
तवादेशान्मया कार्यं देहि त्व पादुके मम ।
नन्दिग्रामे वसिष्येऽह पादुके द्वादशाब्दिकम् ॥१६२॥
त्वद्वेषमेव मद्वेष त्वद्व्रत मे महाव्रतम् ।
त्वं द्वादशाब्दिकादूर्ध्वं यदि नायासि सत्तम ॥१६३॥
ततो हुतवहे चाग्नौ प्रधक्ष्यामि कलेवरम्।
इत्येव शपथ कृत्वा भरतो हि सुदु खित' ॥१६४॥
बहु प्रदक्षिण कृत्वा नमस्कृत्य च राघवम् ।
पादुके शिरसा स्थाप्य भरत प्रस्थित' शनै. ॥१६५॥

उनके यों कहनेपर भरतने आँखोंमें आँसू भरकर कहा—'भैया ! इसके सम्बन्धमें मुझे कोई विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है कि मेरे लिये जैसे पिताजी थे, वैसे ही आप हैं। अब मैं आपके आदेशके अनुसार ही कार्य करूँगा; किंतु आप अपनी दोनों चरणपादुकाएँ मुझे दे दें। मैं इन्हीं पादुकाओंका आश्रय ले नन्दिग्राममें निवास करूँगा और आपकी ही भाँति बारह वर्षोंतक व्रतका पालन करूँगा। अब आपके वेषके समान ही मेरा वेष होगा और आपका जो व्रत है, वही मेरा भी महान् व्रत होगा। साधुशिरोमणे ! यदि आप बारह वर्षोंके

व्रतका पालन करनेके बाद तुरंत नहीं पधारेंगे तो मैं अग्निमें हविष्यकी भाँति अपने शरीरको होम दूँगा।' अत्यन्त दुःखी भरतजीने इस प्रकार शपथ करके भगवान् रामकी अनेक बार प्रदक्षिणा की, बारंबार उन्हें प्रणाम किया और उनकी चरण-पादुकाएँ अपने सिरपर रखकर व वहाँसे धीरे-धीरे चल दिये ॥ १६१–१६५ ॥

स तु तेन भ्रातुरादेशं नन्दिग्रामे स्थितो वशी।
तपस्वी नियताहारः शाकमूलफलाशनः ॥१६६॥
जटाकलापं शिरसा च बिभ्रत्
त्वचश्च वार्क्षी स्ति वन्यभोजी।
रामस्य वाक्यादरतो हृदि स्थितं
बभार भूभारमनिन्दितात्मा ॥१६७॥
इति श्रीनरसिंहपुराणे श्रीरामप्रादुर्भावे अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

भरतजी अपनी इन्द्रियोंको वशमें करके, शाक और मूल-फलादिका नियमित आहार करते हुए, तपोनिष्ठ हो, भ्राताके आदेशका पालन करते हुए नन्दिग्राममें रहने लगे। विशुद्ध हृदयवाले भरतजी अपने सिरपर जटा धारण किये और अङ्गोंमें वल्कल पहने, वन्य फलोंका ही आहार करते थे। वे मन-ही-मन श्रीरामचन्द्रजीके वचनोंमें श्रद्धा रखनेके कारण अपने ऊपर पड़े पृथ्वीके शासनका भार ढोने लगे ॥ १६६-१६७ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें श्रीरामावतारविषयक अड़तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४८ ॥

उन्चासवाँ अध्याय

श्रीरामका जयन्तको दण्ड देना, शरभङ्ग, सुतीक्ष्ण और अगस्त्यसे मिलना, शूर्पणखाका अनादर, सीताहरण, जटायुवध और शबरीको दर्शन देना

मार्कण्डेय उवाच

गतेऽथ भरते तस्मिन् रामः कमललोचनः।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा भार्यया सीतया सह ॥ १ ॥
शाकमूलफलाहारो विचचार महावने।
कदाचिल्लक्ष्मणमृते रामदेवः प्रतापवान् ॥ २ ॥
चित्रकूटवनोद्देशे वैदेह्युत्सङ्गमाश्रितः।
सुष्वाप स मुहूर्तं तु ततः काको दुरात्मवान् ॥ ३ ॥
सीताभिमुखमभ्येत्य विददार स्तनान्तरम्।
विदार्य वृक्षमारुह्य स्थितोऽसौ वायसाधमः ॥ ४ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—भरतजीके अयोध्या लौट जानेपर कमललोचन श्रीरामचन्द्रजी अपनी भार्या सीता और भाई लक्ष्मणके साथ शाक और मूल-फल आदिके आहारसे ही जीवन-निर्वाह करते हुए उस महान् वनमें विचरने लगे। एक दिन परम प्रतापी भगवान् राम लक्ष्मणको साथ न ले जाकर चित्रकूट पर्वतके वनमें सीताजीकी गोदमें कुछ देरतक सोये रहे। इतनेमें ही एक दुष्ट कौएने सीताके सम्मुख आ उनके स्तनोंके बीच चोंच मारकर घाव कर दिया। घाव करके वह अधम काक वृक्षपर जा बैठा ॥ १—४ ॥

ततः प्रबुद्धो रामोऽसौ दृष्ट्वा रक्तं स्तनान्तरे।
शोकाविष्टां तु सीतां तामुवाच कमलेक्षणः ॥ ५ ॥
वद स्तनान्तरे भद्रे तव रक्तस्य कारणम्।
इत्युक्ता सा च तं प्राह भर्तारं विनयान्विता ॥ ६ ॥
पश्य राजेन्द्र वृक्षाग्रे वायसं दुष्टचेष्टितम्।
अनेनैव कृतं कर्म सुप्ते त्वयि महामते ॥ ७ ॥

तदनन्तर जब कमलनयन श्रीरामचन्द्रजीकी नींद खुली, तब उन्होंने देखा, सीताके स्तनोंसे रक्त बह रहा है और वे शोकमें डूबी हुई हैं। यह देख उन्होंने सीतासे पूछा—'कल्याणि! बताओ, तुम्हारे स्तनोंके बीचमें रक्त बहनेका क्या कारण है?' उनके यों कहनेपर सीताने अपने स्वामीसे विनयपूर्वक कहा—'राजेन्द्र! महामते! वृक्षकी शाखापर बैठे हुए इस दुष्ट कौएको देखिये। आपके सो जानेपर इसीने यह दुस्साहसपूर्ण कार्य

रामोऽपि दृष्टवान् काकं तस्मिन् क्रोधमथाकरोत्।
इषीकास्त्रं समाधाय ब्रह्मास्त्रेणाभिमन्त्रितम् ॥ ८ ॥
काकमुद्दिश्य चिक्षेप सोऽप्यधावद्भयान्वित ।
स त्विन्द्रस्य सुतो राजन्निन्द्रलोकं विवेश ह ॥ ९ ॥
रामास्त्रं प्रज्वलद्दीप्तं तस्यानु प्रविवेश वै ।
विदितार्थश्च देवेन्द्रो देवै. सह समन्वित ॥१०॥
निष्कामयच्च त दुष्टं राघवस्यापकारिणम् ।
ततोऽसौ सर्वदेवैस्तु देवलोकाद्बहिः कृत ॥११॥
पुन सोऽप्यपतद्राम राजान शरण गतः ।
पाहि राम महाबाहो अज्ञानादपकारिणम् ॥१२॥

रामचन्द्रजीने भी उस कौएको देखा और उसपर बहुत ही क्षोभ किया। फिर सींकका बाण बनाकर उसे ब्रह्मास्त्र मन्त्रसे अभिमन्त्रित किया और उस कौएको लक्ष्य करके चला दिया। यह देख वह भयभीत होकर भागा। राजन्! कहते हैं, वह काक वास्तवमें इन्द्रका पुत्र जयन्त था, अत भागकर इन्द्रलोकमें घुस गया। उसके साथ ही श्रीरामचन्द्रजीके उस प्रज्वलित एव देदीप्यमान बाणने भी उसका पीछा करते हुए इन्द्रलोकमें प्रवेश किया। यह सब वृत्तान्त जान, देवराज इन्द्रने देवताओंके साथ मिलकर विचार किया तथा श्रीरामचन्द्रजीका अपराध करनेवाले उस दुष्ट पुत्रको वहाँसे निकाल दिया। जब सब देवताओंने उसे देवलोकसे बाहर कर दिया, तब वह पुन राजा श्रीरामचन्द्रजीकी ही शरणमें आया और बोला—'महाबाहो श्रीराम! मैंने अज्ञानवश अपराध किया है, मुझे बचाइये' ॥ ८–१२ ॥

इति ब्रुवन्त त प्राह राम कमललोचन' ।
अमोघ च ममैवास्त्रमङ्गमेक प्रयच्छ वै ॥१३॥
ततो जीवसि दुष्ट त्वमपकारो महान् कृत. ।
इत्युक्तोऽसौ स्वकं नेत्रमेकमस्त्राय दत्तवान् ॥१४॥
अस्त्र तन्नेत्रमेकं तु भस्मीकृत्य समाययौ ।
तत' प्रभृति काकाना सर्वेषामेकनेत्रता ॥१५॥
चक्षुषैकेन पश्यन्ति हेतुना तेन पार्थिव ।

इस प्रकार कहते हुए जयन्तसे कमललोचन श्रीरामने कहा—'अरे दुष्ट! मेरा अस्त्र अमोघ है, अत इसके लिये अपना कोई एक अङ्ग दे दे। तभी तू जीवित रह सकता है, क्योंकि तूने बहुत बड़ा अपराध किया है।' उनके यों कहनेपर उसने श्रीरामके उस बाणके लिये अपना एक नेत्र दे दिया। उसके एक नेत्रको भस्म करके वह अस्त्र लौट आया। उसी समयसे सभी कौए एक नयनवाले हो गये। राजन्! इसी कारण वे एक आँखसे ही देखते हैं ॥ १३—१५½ ॥

उषित्वा तत्र सुचिर चित्रकूटे स राघव ॥१६॥
जगाम दण्डकारण्य नानामुनिनिषेवितम् ।
सभ्रातृक सभार्यश्च तापस वेषमास्थितः ॥१७॥
धनु पर्णसुपाणिश्च सेषुधिश्च महाबल ।
ततो ददर्श तत्रस्थानम्बुभक्षान्महामुनीन् ॥१८॥
अश्मकुट्टाननेकाश्च दन्तोलूखलिनस्तथा ।
पञ्चाग्निमध्यगानन्यानन्यानुग्रतपश्चरान् ॥१९॥
तान् दृष्ट्वा प्रणिपत्योच्चै रामस्तैश्चाभिनन्दित ।

श्रीरामचन्द्रजी अपने भाई और पत्नीके साथ चिरकालतक चित्रकूटपर निवास करनेके अनन्तर वहाँसे अनेक मुनिजनों-द्वारा सेवित दण्डकारण्यको चल दिये। उस समय वे तपस्वी वेषमें थे, उनके हाथमें धनुष और बाण थे तथा पीठपर तरकस बँधा था। वहाँ जानेपर महाबलवान् श्रीरामने उस वनमें रहनेवाले बड़े-बड़े मुनियोंका दर्शन किया, जिनमेंसे कई लोग केवल जलका आहार करनेवाले थे। कितने ही दन्तहीन होनेसे पत्थरपर कूट-पीसकर आहार ग्रहण करते, इसलिये 'अश्मकुट्ट' कहलाते थे। कुछ तपस्वी दाँतोंसे ही ओखलीका काम लेनेवाले होनेसे 'दन्तोलूखली' कहे जाते थे। कुछ पाँच अग्नियोंके बीचमें बैठकर तप करते थे और कुछ महात्मा इससे भी उग्र तपस्यामें तत्पर थे। उनका दर्शन करके श्रीरामने उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया और उन्होंने भी उनका अभिनन्दन किया ॥ १६–१९½ ॥

ततोऽखिल वन दृष्ट्वा राम साक्षाज्जनार्दन ॥२०॥
भ्रातृभार्यासहायश्च सम्प्रतस्थे महामति. ।
दर्शयित्वा तु सीतायै वनं कुसुमित शुभम् ॥२१॥
नानाश्चर्यसमायुक्त शनैर्गच्छन् स दृष्टवान् ।
कृष्णाङ्ग रक्तनेत्र तु स्थूलशैलसमानकम् ॥२२॥
शुभ्रदंष्ट्र महाबाहु सध्याघनशिरोरुहम् ।
मेघस्वन सापशार्थ शर सधाय राघव ॥२३॥

विराधं राक्षसं क्रोधाल्लक्ष्मणेन सह प्रभुः ।
अन्यैरवध्यं हत्वा तं गिरिगर्ते महातनुम् ॥२४॥
शिलाभिश्छाद्य गतवाञ्शरभङ्गाश्रमं ततः ।
तं नत्वा तत्र विश्रम्य तत्कथातुष्टमानसः ॥२५॥

तत्पश्चात् साक्षात् विष्णुस्वरूप महामति भगवान् श्रीराम वहाँके समस्त वनोंका अवलोकन करके अपनी भार्या और भाईके साथ आगे बढ़े । वे सीताजीको फूलोंसे सुशोभित तथा नाना आश्चर्योंसे युक्त सुन्दर वन दिखाते हुए जिस समय धीरे-धीरे जा रहे थे, उसी समय उन्होंने सामने एक राक्षस देखा, जिसका शरीर काला और नेत्र लाल थे । वह पर्वतके समान स्थूल था । उसकी दाढ़ें चमकीली, भुजाएँ बड़ी-बड़ी और केश सन्ध्याकालिक मेघके समान लाल थे । वह घनघोर गर्जना करता हुआ सदा दूसरोंका अपकार किया करता था । उसे देखते ही लक्ष्मणके साथ श्रीरामचन्द्रजीने धनुषपर बाण चढ़ाया तथा उस घोर राक्षसको, जो दूसरोंसे नहीं मारा जा सकता था, खींचकर मार डाला । इस प्रकार उसका वध करके उन्होंने उस महाकाय राक्षसकी लाशको पर्वतके खड्डमें डाल दिया और शिलाओंसे ढँककर वे वहाँसे शरभङ्गमुनिके आश्रमपर गये । वहाँ उन मुनिको प्रणाम करके उनके आश्रमपर कुछ देरतक विश्राम किया और उनके साथ कथा-वार्ता करके वे मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुए ॥ २०—२५ ॥

सुतीक्ष्णाश्रममुपागम्य दृष्ट्वास्तं महामुनिम् ।
तेनादिष्टेन मार्गेण गत्वागस्त्यं ददर्श ह ॥२६॥
खड्गं तु विमलं तस्मादवाप रघुनन्दनः ।
इषुधिं चाक्षयशरं चापं चैव तु वैष्णवम् ॥२७॥
ततोऽगस्त्याश्रमाद्रामो भ्रातृभार्यासमन्वितः ।
गोदावर्याः समीपे तु पञ्चवट्यामुवास सः ॥२८॥
ततो जटायुरभ्येत्य रामं कमललोचनम् ।
नत्वा स्वकुलमाख्याय स्थितवान् गृध्रनायकः ॥२९॥
रामोऽपि तत्र तं दृष्ट्वा आत्मवृत्तं विशेषतः ।
कथयित्वा तु तं प्राह सीतां रक्ष महामते ॥३०॥

वहाँसे सुतीक्ष्णमुनिके आश्रमपर जाकर श्रीरामने उन महर्षिका दर्शन किया और, कहते हैं, उन्हींके बताये हुए मार्गसे जाकर वे अगस्त्यमुनिसे मिले । वहाँ श्रीरघुनाथजीने उनसे एक निर्मल खड्ग तथा वैष्णव धनुष प्राप्त किये और जिसमें रक्खा हुआ बाण कभी समाप्त न हो—ऐसा तरकस भी उपलब्ध किया । तत्पश्चात् सीता और लक्ष्मणके साथ वे अगस्त्य-आश्रमसे आगे जाकर गोदावरीके निकट पञ्चवटीमें रहने लगे । वहाँ जानेपर कमललोचन श्रीरामचन्द्रजीके पास गृध्रराज जटायु आये और उनसे अपने कुलका परिचय देकर खड़े हो गये । उन्हें वहाँ उपस्थित देख श्रीरामने भी अपना सारा वृत्तान्त विशेषरूपसे बताया और कहा—'महामते ! तुम सीताकी रक्षा करते रहो' ॥ २६—३० ॥

इत्युक्तोऽसौ जटायुस्तु राममालिङ्ग्य सादरम् ।
कार्यार्थं तु गते रामे भ्रात्रा सह वनान्तरम् ॥३१॥
अहं रक्ष्यामि ते भार्यां स्थीयतामत्र शोभन ।
इत्युक्त्वा गतवान्राम गृध्रराजः स्वमाश्रमम् ॥३२॥
समीपे दक्षिणे भागे नानापक्षिनिषेविते ।

श्रीरामके यों कहनेपर जटायुने आदरपूर्वक उनका आलिङ्गन किया और कहा—'श्रीराम ! जब कभी कार्यवश अपने भाई लक्ष्मणके साथ आप किसी दूसरे वनमें चले जायँ, उस समय मैं ही आपकी भार्याकी रक्षा करूँगा; अतः सुन्दर ! आप निश्चिन्त होकर यहाँ रहिये ।' श्रीरामसे यों कहकर गृध्रराज पास ही दक्षिण भागमें स्थित अपने आश्रमपर चले आये, जो नाना पक्षियोंद्वारा सेवित था ॥ ३१-३२½ ॥

वसन्तं राघवं तत्र सीतया सह सुन्दरम् ॥३३॥
मन्मथाकारसदृशं कथयन्तं महाकथाः ।
कृत्वा मायामयं रूपं लावण्यगुणसंयुतम् ॥३४॥
मदनाक्रान्तहृदया कदाचिद्रावणानुजा ।
गायन्ती सुस्वरं गीतं शनैरागत्य राक्षसी ॥३५॥
ददर्श राममासीनं कानने सीतया सह ।
अथ शूर्पणखा घोरा मायारूपधरा शुभा ॥३६॥
निरशङ्का दुष्टचित्ता सा राघवं प्रत्यभाषत ।
भज मां कान्त कल्याणी भजन्तीं कामिनीमिह ॥३७॥
भजमानां त्यजेद्यस्तु तस्य दोषो महान् भवेत् ।

एक बार यह सुनकर कि कामदेवके समान सुन्दर श्रीरामचन्द्रजी नाना प्रकारकी महत्त्वपूर्ण कथाएँ कहते हुए

अपनी भार्या सीताके साथ पञ्चवटीमें निवास कर रहे थे, रावणकी छोटी बहिन राक्षसी शूर्पणखा मन-ही-मन कामसे पीड़ित हो गयी और लावण्य आदि गुणोंसे युक्त मायामय सुन्दर रूप बनाकर, मधुर स्वरमें गीत गाती हुई धीरे-धीरे वहाँ आयी। उसने वनमें सीताजीके साथ बैठे हुए श्रीरामचन्द्रजीको देखा। तब मायामय सुन्दर रूप धारण करनेवाली भयंकर राक्षसी दुष्टहृदया शूर्पणखाने निडर होकर श्रीरामसे कहा—'प्रियतम! मैं आपको चाहनेवाली सुन्दरी दासी हूँ। आप मुझ भगिनीको स्वीकार करें। जो पुरुष स्वयं उपस्थित हुई रमणीका त्याग करता है, उसे बड़ा दोष लगता है' ॥ ३३—३७½ ॥

इत्युक्तः शूर्पणखया रामस्तामाह पार्थिव ॥३८॥
कलत्रवानहं बाले कनीयांसं भजस्व मे।
इति श्रुत्वा ततः प्राह राक्षसी कामरूपिणी ॥३९॥
अतीव निपुणा चाहं रतिकर्मणि राघव।
त्यक्त्वैनामनभिज्ञां त्वं सीतां मां भज शोभनाम् ॥४०॥

शूर्पणखाके यों कहनेपर पृथ्वीपति श्रीरामचन्द्रजीने उससे कहा—'बाले! मेरे तो स्त्री है। तुम मेरे छोटे भाईके पास जाओ।' उनकी बात सुनकर इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली उस राक्षसीने कहा—'राघव! मैं रतिकर्ममें बहुत निपुण हूँ और यह सीता अनभिज्ञ है, अतः इसे त्यागकर मुझ सुन्दरीको ही स्वीकार करें' ॥ ३८—४० ॥

इत्याकर्ण्य वचः प्राह रामस्तां धर्मतत्परः।
परस्त्रियं न गच्छेऽहं त्वमितो गच्छ लक्ष्मणम् ॥४१॥
तस्य नात्र वने भार्या त्वामसौ संग्रहीष्यति।
इत्युक्ता सा पुनः प्राह रामं राजीवलोचनम् ॥४२॥
यथा स्याल्लक्ष्मणो भर्ता तथा त्वं देहि पत्रकम्।
तथैवमुक्त्वा मतिमान् रामः कमललोचनः ॥४३॥
छिन्ध्यस्या नासिकामिति मोक्तव्या नात्र संशयः।
इति रामो महाराजो लिख्य पत्रं प्रदत्तवान् ॥४४॥

उसकी यह बात सुनकर धर्मपरायण श्रीरामने कहा—'मैं परायी स्त्रीके साथ कोई सम्पर्क नहीं रखता। तुम यहाँसे लक्ष्मणके निकट जाओ। यहाँ वनमें उसकी स्त्री नहीं है, अतः शायद वह तुम्हें स्वीकार कर लेगा।' उनके यों कहनेपर शूर्पणखा पुनः कमलनयन श्रीरामसे बोली—'अच्छा, आप एक ऐसा पत्र लिखकर दें, जिससे लक्ष्मण मेरा भर्ता (भरण-पोषणका भार लेनेवाला) हो सके।' तब बुद्धिमान् कमलनयन महाराज श्रीरामने 'बहुत अच्छा' कहकर एक पत्र लिखा और उसे दे दिया। उसमें लिखा था—'लक्ष्मण! तुम इसकी नाक काट लो, निस्संदेह ऐसा ही करना। यों ही न छोड़ना' ॥ ४१—४४ ॥

सा गृहीत्वा तु तत्पत्रं गत्वा तस्मान्मुदान्विता।
गत्वा दत्तवती तद्वल्लक्ष्मणाय महात्मने ॥४५॥
तां दृष्ट्वा लक्ष्मणः प्राह राक्षसीं कामरूपिणीम्।
न लङ्घ्यं राघववचो मया लिखितमत्र मे ॥४६॥
तां प्रगृह्य ततः खड्गमुद्यम्य विमलं सुधीः।
तेन तत्कर्णनासां तु चिच्छेद तिलकाण्डवत् ॥४७॥

शूर्पणखा वह पत्र लेकर प्रसन्नतापूर्वक वहाँसे गयी। जाकर उसने महात्मा लक्ष्मणको उसी रूपमें वह पत्र दे दिया। उस कामरूपिणी राक्षसीको देखकर लक्ष्मणने उससे कहा—'लम्बकर्णी! ठहर, मैं श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं कर सकता।' यों कहकर बुद्धिमान् लक्ष्मणने उसे पकड़ लिया और एक चमचमाती हुई तलवार उठाकर तिलस्तम्भ काण्ड (पोरवे) के समान उसकी नाक और कान काट लिये ॥ ४५—४७ ॥

छिन्ननासा ततः सा तु रुरोद भृशदुःखिता।
हा दशास्य मम भ्रातः सर्वदेवविमर्दक ॥४८॥
हा कष्टं कुम्भकर्णाद्यायाता मे चापदा परा।
हा हा कष्टं गुणनिधे विभीषण महामते ॥४९॥

नाक कट जानेपर वह बहुत दुःखी हो रोने तथा विलाप करने लगी—'हा! समस्त देवताओंका मान-मर्दन करनेवाले मेरे भाई रावण! आज मुझपर महान् कष्ट आ गया। हा भाई कुम्भकर्ण! मुझपर बड़ी भारी विपत्ति आ पड़ी। हा गुणनिधे महामते विभीषण! मुझे महान् दुःख देखना पड़ा' ॥ ४८-४९ ॥

इत्येवमार्ता रुदती सा गत्वा खरदूषणौ।
त्रिशिरसं च सा दृष्ट्वा निवेद्यात्मपराभवम् ॥५०॥
राममाह वनस्थाने भ्राता सह महाबलम्।
ज्ञात्वा ते राघवं क्रुद्धाः प्रेषयामासुरूर्जितान् ॥५१॥

चतुर्दशसहस्राणि राक्षसानां बलीयसाम् ।
अग्रे निजग्मुस्तेनैव रक्षसा नायकास्त्रयः ॥५२॥
रावणेन नियुक्तास्ते पुरैव तु महाबला ।
महाबलपरीवारा जनस्थानमुपागता ॥५३॥
न महताऽऽविष्टा दृष्ट्वा तां छिन्ननासिकाम् ।
[अ]श्रुदिग्धाङ्गीं भगिनीं रावणस्य तु ॥५४॥

इस प्रकार आर्तभावसे रोदन करती हुई वह [खर]-दूषण और त्रिशिराके पास गयी तथा उनसे [अप]ने अपमानकी बात निवेदन करके बोली—'महाबली श्रीराम इस समय जनस्थानमें अपने भाई लक्ष्मणके साथ रहते हैं।' श्रीरामका पता पाकर वे तीनों बहुत ही कुपित हुए और उनके साथ युद्धके लिये उन्होंने चौदह हजार प्रतापी एवं बलवान् राक्षसोंको भेजा तथा वे तीनों निशाचर-नायक स्वयं भी उस सेनाके साथ आगे आगे चले। उन महाबलवान् राक्षसोंको रावणने वहाँ पहलेसे ही नियुक्त कर रखा था। वे बहुत बड़ी सेनाके साथ जनस्थानमें आये। रावणकी बहिन शूर्पणखा नाक कट जानेसे बहुत रो रही थी। उसके सारे अङ्ग आँसुओंसे भीग गये थे। उसकी यह दुर्दशा देख वे खर-दूषण आदि राक्षस अत्यन्त कुपित हो उठे थे ॥ ५०–५४ ॥

रामोऽपि तद्बलं दृष्ट्वा राक्षसानां बलीयसाम् ।
स्थाप्य लक्ष्मणं तत्र सीताया रक्षणं प्रति ॥५५॥
गत्वा तु प्रहितैस्तत्र राक्षसैर्बलदर्पितैः ।
चतुर्दशसहस्रं तु राक्षसानां महाबलम् ॥५६॥
शरैरग्निशिखोपमैः ।
क्षणेन निहतं तेन महाबलः ॥५७॥
खरश्च निहतस्तेन दूषणश्च पातितः ।
त्रिशिराश्च महारोपाद् रणे रामेण
हत्वा तान् राक्षसान्दुष्टान् रामश्चाश्रममाविशत् ॥५८॥

श्रीरामने भी बलवान् राक्षसोंकी उस सेनाको देख लक्ष्मणको सीताकी रक्षामें उसी स्थानमें रोक दिया और अपने साथ युद्धके लिये वहाँ भेजे गये उन बलाभिमानी राक्षसोंके साथ युद्ध आरम्भ कर दिया। अग्निकी ज्वालाके समान दीप्तिमान् बाणोंद्वारा उन्होंने चौदह हजार राक्षसोंकी प्रबल सेनाको क्षणभरमें मार गिराया। साथ ही खर और महाबली दूषणका भी वध किया। इसी प्रकार त्रिशिराको भी श्रीरामने अत्यन्त रोषपूर्वक रणक्षेत्रमें मार गिराया। इस तरह उन सभी दुष्ट राक्षसोंका वध करके श्रीरामचन्द्रजी अपने आश्रममें लौट आये ॥ ५५–५८ ॥

शूर्पणखा च रुदती रावणान्तिकमागता ।
छिन्ननासा च तां दृष्ट्वा रावणो भगिनीं तदा ॥५९॥
मारीचं प्राह दुर्बुद्धिः सीताहरणकर्मणि ।
पुष्पकेण विमानेन गत्वाहं त्वं च मातुल ॥६०॥
जनस्थानसमीपे तु स्थित्वा तत्र ममाज्ञया ।
सौवर्णमृगरूपं त्वमास्थाय तु शनैः शनैः ॥६१॥
गच्छ त्वं तत्र कार्यार्थं यत्र सीता व्यवस्थिता ।
दृष्ट्वा सा मृगपोतं त्वां सौवर्णं त्वयि मातुल ॥६२॥
स्पृहां करिष्यते रामं प्रेषयिष्यति बन्धने ।
तद्वाक्यात्तत्र गच्छन्तं धावस्व गहने वने ॥६[३]॥
लक्ष्मणस्यापकर्षार्थं वक्तव्यं वागुदीरणम् ।
ततः पुष्पकमारुह्य मायारूपेण चाप्यहम् ॥६४॥
तां सीतामहमानेष्ये तस्यामासक्तमानसः ।
त्वमपि स्वेच्छया पश्चादागमिष्यसि शोभन ॥६५॥

तब शूर्पणखा रोती हुई रावणके पास आयी। दुर्बुद्धि रावणने अपनी बहिनकी नाक कटी देख सीताको हर लानेके उद्देश्यसे मारीचसे कहा—'मामा! हम और तुम पुष्पक विमानसे चलकर जनस्थानके पास ठहरें। वहाँसे तुम मेरी आज्ञाके अनुसार सोनेके मृगका रूप धारणकर धीरे धीरे मेरा कार्य सिद्ध करनेके लिये उस स्थानपर जाना, जहाँ सीता रहती है। मामा! वह जब तुम्हें सुवर्णमय मृगछौनेके रूपमें देखेगी, तब तुम्हें लेनेकी इच्छा करेगी और श्रीरामको तुम्हें बाँध लानेके लिये भेजेगी। जब सीताकी बात मानकर वे तुम्हें बाँधने चलें, तब तुम उनके सामनेसे गहन वनमें भाग जाना। फिर लक्ष्मणको भी उधर ही खींचनेके लिये उच्चस्वरसे [हा भाई लक्ष्मण! इस प्रकार] कातर वचन बोलना। तत्पश्चात् मैं भी मायामय वेष बनाकर, पुष्पक विमानपर आरूढ हो, उस असहाया सीताको हर लाऊँगा, क्योंकि मेरा मन उसमें आसक्त हो गया है। फिर भद्र! तुम भी इच्छानुसार चले आना' ॥ ५९–६५ ॥

इत्युक्ते रावणेनाथ मारीचो वाक्यमब्रवीत् ।
गच्छ पापिष्ठ नाहं गच्छामि तत्र वै ॥

पुरैवानेन रामेण व्यथितोऽहं मुनेर्मखे ।
इत्युक्तवति मारीचे रावणः क्रोधमूर्च्छितः ॥६७॥
मारीचं हन्तुमारेभे मारीचोऽप्याह रावणम् ।
तव हस्तवधाद्वीर रामेण मरणं वरम् ॥६८॥
अहं गमिष्यामि तत्र यत्र त्वं नेतुमिच्छसि ।

रावणके यों समझानेपर मारीचने कहा—'अरे पापिष्ठ! तुम्हीं जाओ, मैं वहाँ नहीं जाऊँगा। मैं तो विश्वामित्रमुनिके यज्ञमें पहले ही श्रीरामके हाथों भारी कष्ट उठा चुका हूँ।' मारीचके यों कहनेपर रावण क्रोधसे मूर्च्छित हो उसे मार डालनेको उद्यत हो गया। तब मारीचने उससे कहा—'वीर! तुम्हारे हाथसे वध हो, इसकी अपेक्षा तो श्रीरामके हाथसे ही मरना अच्छा है। तुम मुझे जहाँ ले चलना चाहते हो, वहाँ अब मैं अवश्य चलूँगा' ॥६७-६८½॥

अथ पुष्पकमारुह्य जनस्थानमुपागतः ॥६९॥
मारीचस्तत्र सौवर्णं मृगमास्थाय चाग्रतः ।
जगाम यत्र सा सीता वर्तते जनकात्मजा ॥७०॥
सौवर्णं मृगपोतं तु दृष्ट्वा सीता यशस्विनी ।
भाविकर्मवशाद्राममुवाच पतिमात्मनः ॥७१॥
गृहीत्वा देहि सौवर्णं मृगपोतं नृपात्मज ।
अयोध्यायां तु मद्गेहे क्रीडनार्थमिदं मम ॥७२॥

यह सुनकर वह पुष्पक विमानपर आरूढ़ हो उसके साथ जनस्थानके निकट आया। वहाँ पहुँचकर मारीच सुवर्णमय मृगका रूप धारणकर, जहाँ जनकनन्दिनी सीता विद्यमान थीं, वहाँ उनके सामने गया। उस सुवर्णमय मृगकिशोरको देखकर यशस्विनी सीता भावी कर्मके वशीभूत हो अपने पति भगवान् श्रीरामसे बोलीं—'राजपुत्र! आप उस सुवर्णमय मृगछौनेको पकड़कर मुझे लिये ला दीजिये। यह अयोध्यामें मेरे महलके भीतर क्रीडा-विनोदके लिये रहेगा' ॥६९-७२॥

तथेत्युक्तो रामस्तु लक्ष्मणं स्थाप्य तत्र वै ।
रक्षणार्थं तु सीताया गतोऽसौ मृगपृष्ठतः ॥७३॥
रामेण चानुयातोऽसौ अभ्यधावद्वने मृगः ।
ततः शरेण विव्याध रामस्तं मृगपोतकम् ॥७४॥
हा लक्ष्मणेति चोक्त्वासौ निपपात महीतले ।
मारीचः पर्वताकारस्तेन नष्टो बभूव सः ॥७५॥

आकर्ण्य रुदतः शब्दं सीता लक्ष्मणमब्रवीत् ।
गच्छ लक्ष्मण पुत्र त्वं यत्रायं शब्द उत्थितः ॥
भ्रातुर्ज्येष्ठस्य तत्र वै रुदतः श्रूयते ध्वनिः ।
प्रायो रामस्य संदेहं लक्षयेऽहं महात्मनः ॥

सीताके यों कहनेपर श्रीरामचन्द्रजीने उनकी रक्षाके लिये लक्ष्मणको वहाँ रख दिया और स्वयं ... चले। श्रीरामके पीछा करनेपर वह मृग ... तब श्रीरामने उस मृगशावकको बाणसे बींध डाला। 'हा! लक्ष्मण!'—यों कहकर पर्वताकार ... और प्राणहीन हो गया। रोते हुए मारीचके ... को सुनकर सीताने लक्ष्मणसे कहा—'वत्स लक्ष्मण! ... यह आवाज आयी है, वहाँ तुम भी जाओ। तुम्हारे ज्येष्ठ भ्राताके रोदनका शब्द कानोंमें ... है, मुझे प्रायः महात्मा श्रीरामका जीवन संशयमें दिखायी देता है' ॥ ७३-७७ ॥

इत्युक्तः स तथा प्राह लक्ष्मणस्तामनिन्दिताम् ।
न हि रामस्य संदेहो न भयं विद्यते क्वचित् ।
इति ब्रुवाणं तं सीता भाविकर्मबलाद्भृतम् ।
लक्ष्मणं प्राह वैदेही निरुद्धवचनं तदा ॥
मृते रामे तु मामिच्छन्नतस्त्वं न गमिष्यसि ।
इत्युक्तः स विनीतात्मा असहन्नप्रियं वचः ॥
जगाम राममन्वेष्टुं तदा पार्थिवनन्दनः ।

सीताकी यह बात सुनकर उन अनिन्दिता ... लक्ष्मणने कहा—'देवि! श्रीरामके लिये कोई ... बात नहीं है, उन्हें कहीं भी भय नहीं है।' यों कहते हुए लक्ष्मणसे उस समय विदेहकुमारी सीताने कुछ विरुद्ध ... कहा, जो भवितव्यताकी प्रेरणासे उनके मुखसे सहसा निकल पड़ा था। वे बोलीं—'मैं जानती हूँ, तुम श्रीरामके ... जानेपर मुझे अपनी बनाना चाहते हो। इसीसे इस समय नहीं जा रहे हो।' सीताके यों कहनेपर विनयशील राजकुमार लक्ष्मण उस अप्रिय वचनको न सह सके और वनमें श्रीरामचन्द्रजीकी खोजमें चल पड़े ॥ ७८-८०½ ॥

सन्न्यासवेषमास्थाय रावणोऽपि दुरात्मवान् ॥
स सीतापार्श्वमासाद्य वचनं चेदमुक्तवान् ।
आगतो भरतः श्रीमानयोध्याया महामतिः ॥

रामेण सह सम्भाष्य स्थितस्तत्र च कानने ।
मां च प्रेषितवान् रामो विमानमिदमारुह ॥८३॥
अयोध्यां याति रामस्तु भरतेन प्रसादितः ।
मृगबालं तु वैदेहि क्रीडार्थं ते गृहीतवान् ॥८४॥
क्लेशितासि महारण्ये बहुकालं त्वमीदृशम् ।
सम्प्राप्तराज्यस्ते भर्ता रामः स रुचिराननः ॥८५॥
लक्ष्मणश्च विनीतात्मा विमानमिदमारुह ।

इसी समय दुरात्मा रावण भी सन्यासीका वेष त्यागकर सीताके पास आया और यों बोला—'देवि ! अयोध्यासे महाबुद्धिमान् भरतजी आये हैं। वे श्रीरामचन्द्रजीसे बातचीत करके यहीं वनमें ठहरे हुए हैं। श्रीरामचन्द्रजीने मुझे तुम्हें बुलानेके लिये यहाँ भेजा है। तुम इस विमानपर चढ़ चलो। भरतजीने मनाकर श्रीरामको अयोध्या चलनेके लिये राजी कर लिया है, अतः वे अयोध्या जा रहे हैं। वैदेहि ! तुम्हारी क्रीडा—विनोदके लिये उन्होंने उस मृगशावकको भी पकड़ लिया है। अहो ! तुमने इस विशाल वनमें बहुत दिनोंतक ऐसा महान् कष्ट उठाया है। अब तुम्हारे स्वामी सुन्दर मुखवाले श्रीरामचन्द्रजी तथा उनके विनयशील भाई लक्ष्मण भी राज्यग्रहण कर चुके हैं। अतः तुम उनके पास चलनेके लिये इस विमानपर चढ़ जाओ' ॥ ८१—८५ ॥

इत्युक्ता सा तथा मत्वा सीता तेन महात्मना ॥८६॥
आरुरोह विमानं तु छद्मना प्रेरिता सती ।
तज्जगाम ततः शीघ्रं विमानं दक्षिणां दिशम् ॥८७॥
ततः सीता सुदुःखार्ता विललाप सुदुःखिता ।
विमाने खेऽपि रुदन्त्याश्चक्रे स्पर्शं न राक्षसः ॥८८॥
रावणः स्वेन रूपेण बभूवाथ महातनुः ।
दशग्रीवं महाकायं दृष्ट्वा सीता सुदुःखिता ॥८९॥
हा राम वञ्चिताद्याहं केनापिच्छद्मरूपिणा ।
रक्षसा घोररूपेण त्रायस्वेति भयार्दिता ॥९०॥
हे लक्ष्मण महाबाहो मां हि दुष्टेन रक्षसा ।
द्रुतमागत्य रक्षस्व नीयमानामथाकुलाम् ॥९१॥

उसके यों कहनेपर उसकी कपटपूर्ण बातोंसे प्रेरित हो सती सीता वह सब सत्य मानकर उस तथाकथित महात्माके साथ विमानके निकट गयीं और उसपर आरूढ हो गयीं। तब वह विमान शीघ्रतापूर्वक दक्षिण दिशाकी ओर चल पड़ा। यह देख सीता अत्यन्त शोकसे पीड़ित हो, अत्यन्त दुःखसे विलाप करने लगीं। यद्यपि सीता आकाशमें उसके अपने ही विमानपर बैठी थीं, तथापि रावणने वहाँ रोती हुई सीताका स्पर्श नहीं किया। अब रावण अपने असली रूपमें आ गया। उसका शरीर बहुत बड़ा हो गया। दस मस्तकवाले उस विशालकाय राक्षसपर दृष्टि पड़ते ही सीता अत्यन्त दुःखमें डूब गयीं और विलाप करने लगीं—'हाय राम ! किसी कपटरूपधारी भयानक राक्षसने आज मुझे धोखा दिया है, मैं भयसे पीड़ित हो रही हूँ, मुझे बचाओ। हे महाबाहु लक्ष्मण ! मुझे दुष्ट राक्षस हरकर लिये जा रहा है। मैं भयसे व्याकुल हूँ, तुम जल्दी आकर मुझ असहायाकी रक्षा करो' ॥ ८६—९१ ॥

एवं प्रलपमानायाः सीतायास्तन्महत्स्वनम् ।
आकर्ण्य गृध्रराजस्तु जटायुस्तत्र चागतः ॥९२॥
तिष्ठ रावण दुष्टात्मन्मुञ्च मुञ्चाद्य मैथिलीम् ।
इत्युक्त्वा युयुधे तेन जटायुस्तत्र वीर्यवान् ॥९३॥
पक्षाभ्यां ताडयामास जटायुस्तस्य वक्षसि ।
ताडयन्तं तु तं मत्वा बलवानिति रावणः ॥९४॥
तुण्डचञ्चुप्रहारैस्तु भृशं तेन प्रपीडितः ।
ततः उत्थाप्य वेगेन चन्द्रहासमसिं महत् ॥९५॥
जघान तेन दुष्टात्मा जटायुं धर्मचारिणम् ।
निपपात महीपृष्ठे जटायुः क्षीणचेतनः ॥९६॥

इस प्रकार उच्चस्वरसे विलाप करती हुई सीताके उस महान् आर्तनादको सुनकर गृध्रराज जटायु वहाँ आ पहुँचे (और बोले—) 'अरे दुष्टात्मा रावण ! ठहर जा, तू सीताको छोड़ दे, छोड़ दे !' यह कहकर पराक्रमी जटायु उसके साथ युद्ध करने लगे। उन्होंने अपने दोनों पंखोंसे रावणकी छातीमें चोट की। उनको इस प्रकार प्रहार करते देख रावणने समझ लिया कि 'यह पक्षी बड़ा बलवान् है'। तब जटायुके मुख और चोंचकी मारसे वह बहुत पीड़ित हो गया, तब उस दुष्टने बड़े वेगसे 'चन्द्रहास' नामक विशाल खड्ग उठाया और उससे धर्मात्मा जटायुपर घातक प्रहार किया। इससे उनकी चेतना क्षीण हो गयी और वे पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ९२—९६ ॥

उवाच च दशग्रीवं दुष्टात्मन्न त्वया हतः ।
चन्द्रहासस्य वीर्येण हतोऽहं राक्षसाधम ॥९७॥

निरायुधं को हनेन्मूढ सायुधस्त्वामृते जन ।
सीतापहरणं विद्धि मृत्युस्ते दुष्ट राक्षस ॥९८॥
दुष्ट रावण रामस्त्वां वधिष्यति न संशय ।

उस समय उन्होंने रावणसे कहा—'अरे दुरात्मन्! ओ नीच रावण! मुझे तूने नहीं मारा है। मैं तो तेरे 'चन्द्रहास' नामक खड्गके प्रभावसे मारा गया हूँ। अरे मूढ! तेरे सिवा दूसरा कौन शस्त्रधारी योद्धा होगा, जो किसी निहत्थेपर हथियार चलायेगा? अरे दुष्ट राक्षस! तू यह जान ले कि सीताका हर ले जाना तेरी मौत है। दुरात्मा रावण! निस्सन्देह श्रीरामचन्द्रजी तेरा वध कर डालेंगे' ॥ ९७-९८½ ॥

रुदती दु खशोकार्ता जटायुं प्राह मैथिली ॥९९॥
मत्कृते मरण यस्मात्त्वया प्राप्त द्विजोत्तम ।
तस्माद्रामप्रसादेन विष्णुलोकमवाप्स्यसि ॥१००॥
यावद्रामेण सङ्गस्ते भविष्यति महाद्विज ।
तावत्तिष्ठन्तु ते प्राणा इत्युक्त्वा तु खगोत्तमम्॥१०१॥
ततस्तान्यर्पितान्यङ्गाद्भूषणानि विमुच्य सा ।
शीघ्र निबध्य वस्त्रेण रामहस्त गमिष्यथ ॥१०२॥
इत्युक्त्वा पातयामास भूमौ सीता सुदु खिता ।

जटायुके मारे जानेसे अत्यन्त दुःख और शोकसे पीडित हुई मिथिलेशकुमारी सीता उनसे रोकर बोलीं—'हे पक्षिराज! तुमने मेरे लिये मृत्युका वरण किया है, इसलिये तुम श्रीरामचन्द्रजीकी कृपासे विष्णुलोकको प्राप्त होओगे। जबतक श्रीरामचन्द्रजीसे तुम्हारी भेंट न हो, तबतक तुम्हारे प्राण शरीरमें ही रहें।' उन पक्षिराजसे यों कहकर अत्यन्त दुःखिनी सीताने अपने शरीरसे धारण किये हुए समस्त आभूषणोंको उतारा और शीघ्रतापूर्वक वस्त्रमें बाँधकर कहा—'तुम सब-के-सब श्रीरामके हाथमें पहुँच जाओगे।' और तब उन्हें भूमिपर गिरा दिया ॥ ९९-१०२½ ॥

एवं हृत्वा स सीतां तु जटायुं पात्य भूतले ॥१०३॥
पुष्पकेण गत शीघ्रं लङ्कां दुष्टनिशाचर ।
अशोकवनिकामध्ये स्थापयित्वा स मैथिलीम् १०४
इमामत्रैव रक्षध्वं राक्षसो विकृतानना ।
इत्यादिश्य गृह यातो रावणो राक्षसेश्वर ॥१०५॥
लङ्कानिवासिनश्चोचुरेकान्ते च परस्परम् ।
अस्या पुर्या विनाशार्थं स्थापितेयं दुरात्मना ॥१०६॥

इस प्रकार सीताको हरकर तथा जटायुको धराशायी करके वह दुष्ट निशाचर पुष्पक विमानद्वारा शीघ्र ही लङ्कामें आ पहुँचा। वहाँ मिथिलेशकुमारी सीताको अशोकवाटिकामें रखकर राक्षसियोंसे बोला—'भयंकर मुखवाली निशाचरियो! तुमलोग यहीं सीताकी रखवाली करो।' यह आदेश देकर राक्षसराज रावण अपने भवनमें चला गया। उस समय लङ्कानिवासी एकान्तमें परस्पर मिलकर बातें करने लगे—'दुरात्मा रावणने इस नगरीका विनाश करनेके लिये सीताको यहाँ ला रखा है' ॥ १०३-१०६ ॥

राक्षसीभिर्विरूपाभी रक्ष्यमाणा समन्तत ।
सीता च दु खिता तत्र स्मरन्ती राममेव सा ॥१०७॥
उवास सा सुदु खार्ता दु खिता रुदती भृशम् ।
यथा ज्ञानबले देवी हंसयाना सरस्वती ॥१०८॥

विकट आकारवाली राक्षसियोंद्वारा सब ओरसे सुरक्षित हुई सीता वहाँ दुःखमग्न हो केवल श्रीरामचन्द्रजीका ही चिन्तन करती हुई रहने लगीं। वे सदा अत्यन्त शोकार्त हो बड़े दुःखके साथ बहुत रोदन किया करती थीं। रावणके वशमें पड़ी हुई सीता ज्ञानके अपनयसे ही शमित रहनेवाले कृपणके अधीन हुई हंसवाहिनी सरस्वतीके समान वहाँ शोभा नहीं पाती थीं ॥ १०७-१०८ ॥

सुग्रीवभृत्या हरयश्चतुरश्च यदृच्छया ।
वस्त्रबद्धं तयोत्सृष्टं गृहीत्वा भूषणं द्रुतम् ॥१०९
स्वभर्त्रे निनिवेद्याशु सुग्रीवाय महात्मने ।
अरण्येऽभून्महायुद्धं जटायो रावणस्य च ॥११०॥
अथ रामश्च त हत्वा मारीचं माययाऽऽगतम् ।
निवृत्तो लक्ष्मणं दृष्ट्वा तेन गत्वा स्वमाश्रमम् ॥१११
सीतामपश्यन्दु खार्त प्ररुरोद स राघव ।
लक्ष्मणश्च महातेजा रुरोद भृशदु खित ॥११२॥
बहुप्रकारमस्वस्थं रुदन्त राघवं तदा ।
भूतले पतितं धीमानुत्थाप्याश्वास्य लक्ष्मण ॥११३॥

सीताने वस्त्रमें बँधे हुए अपने जिन आभूषणोंको नीचे गिरा दिया था, उन्हें अकस्मात् घूमनेके लिये आये हुए चा

वानरोंने, जो पातालमें गुफाके भीतर गये थे, पाया और शीघ्रतापूर्वक ले जाकर अपने नाथ भगवान् श्रीरामको अर्पित करके यह बतलाया कि 'आज वनके भीतर जटायु और रावणमें बड़ा भारी युद्ध हुआ था।' इधर, जब श्रीरामचन्द्रजी मायामय वेष बनाकर आये हुए उस मारीचको मारकर लौटे, तब आश्रमपर लक्ष्मणको देखकर उनके साथ आश्रमपर आये, किंतु वहाँ सीताको न देखकर वे दुःखसे व्यथित हो फूट-फूटकर रोने लगे। महायशस्वी लक्ष्मण भी अत्यन्त दुःखी होकर रोदन करने लगे। उस समय श्रीरामचन्द्रजीको सर्वथा निश्चेष्ट होकर रोते और पृथ्वीपर गिरा देख बुद्धिमान् लक्ष्मणने उन्हें उठाकर धीरज बँधाया ॥ १०९-११३ ॥

उवाच वचनं प्राप्तं तदा राजन् शृणुष्व मे ।
अतिवेलं महाराज न शोकं कर्तुमर्हसि ॥११४॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ शीघ्रं त्वं सीतां मृगयितुं प्रभो ।
इत्येवं वदता तेन लक्ष्मणेन महात्मना ॥११५॥
उत्थापितो नरपतिर्दुःखितो दुःखितेन तु ।
भ्रात्रा सह जगामाथ सीतां मृगयितुं वनम् ॥११६॥

राजन्! उस समय लक्ष्मणने उनसे जो समयोचित बात कही थी, वह तुम मुझसे सुनो। (लक्ष्मण बोले—) 'महाराज! आप अधिक शोक न करें। प्रभो! अब सीताकी खोज करनेके लिये आप शीघ्रतापूर्वक उठिये, उठिये।' इत्यादि बातें कहते हुए दुःखी महात्मा लक्ष्मणने अपने शोकमग्न भाई राजा रामचन्द्रजीको उठाया और उनके साथ स्वयं सीताकी खोज करनेके लिये वनमें चले ॥ ११४-११६ ॥

वनानि सर्वाणि विशोध्य राघवो
गिरीन् समस्तान् गिरिसानुगोचरान् ।
तथा मुनीनामपि चाश्रमान् बहू-
स्तृणादिवल्लीगहनेषु भूमिषु ॥११७॥
नदीतटे भूविवरे गुहायां
निरीक्षमाणोऽपि महानुभावः ।
प्रियामपश्यन् भृशदुःखितस्तदा
जटायुषं वीक्ष्य च घातितं नृप ॥११८॥

अहो भवान् केन हतस्त्वमीदृशीं
दशामवाप्तोऽसि मृतोऽसि जीवसि ।
समागतं मां ममदुःखितस्य भोः
पत्नीवियोगादिह चागतस्य वै ॥११९॥

उस समय श्रीरामचन्द्रजीने सारे वनोंको छान डाला, समस्त पर्वतों तथा उनकी चोटियोंपर जानेवाले मार्गोंका भी निरीक्षण कर लिया। इसी प्रकार उन्होंने मुनियोंके बहुत-से आश्रम भी देखे, तृण एवं लताओंसे आच्छादित वनस्थलियों तथा गुफाओं, मैदानों, नदीके किनारे, गड्ढों और कन्दराओंमें देखनेपर भी जब उन महानुभावको अपनी प्रिया सीताका पता नहीं लगा, तब वे बहुत दुःखी हुए। उसी समय राजा रामचन्द्रजीने रावणद्वारा मारे गये जटायुको देखा और कहा—'अहो! आपको किसने मारा? आह! आप ऐसी दुर्दशाको पहुँच चुके हैं? पता नहीं, जीवित हैं या मर गये। पत्नीके वियोगसे आपके समान ही दुःखी होकर यहाँ आये हुए मुझ रामके लिये आजकल आप ही सब कुछ थे' ॥ ११७-११९ ॥

इत्युक्तमात्रे विहगोऽथ कृच्छ्रा-
दुवाच वाचं मधुरां तदानीम् ।
शृणुष्व राजन् मम वृत्तमत्र
वदामि दृष्टं च कृतं च सर्वम् ॥१२०॥
दशाननस्तामपनीय मायया
सीतां समारोप्य विमानमुत्तमम् ।
जगाम खे दक्षिणदिङ्मुखोऽसौ
सीता च माता विललाप दुःखिता ॥१२१॥
आकर्ण्य सीतास्वनमागतोऽहं
सीतां विमोक्तुं स्वबलेन राघव ।
युद्धं च तेनाहमतीव कृत्वा
हतः पुनः खड्गबलेन रक्षसा ॥१२२॥
वैदेहिवार्त्तामिह जीवता मया
दृष्टो भवान् स्वर्गमितो गमिष्ये ।
मा राम शोकं कुरु भूमिपाल
जह्यद्य दुःखं न ...

भगवान् रामके इतना कहते ही वह पक्षी उस समय बड़े करुण मधुर वाणीमें बोला—'राजन्! इस समय मैंने जो कुछ देखा है और तत्काल ही उसके लिये जो कुछ किया है, वह सब आप वृत्तान्त आप सुनें। दशमुख रावणने मायासे सीताका अपहरण करके उसे उत्तम विमानपर चढ़ा लिया और आकाशमार्गसे वह दक्षिण दिशाकी ओर चल दिया। उस समय माता सीता बड़े दुःखके साथ विलाप कर रही थीं। रघुनन्दन! सीताकी आवाज सुनकर मैंने उन्हें अपने ही बलसे छुड़ानेके लिये रावणके साथ महान् युद्ध छेड़ दिया। फिर उस राक्षसने अपनी तलवारसे बलसे मुझे मार डाला। निष्पापकुमार! सीताके ही आशीर्वादसे मैं अभीतक जीवित था, अब यहाँसे स्वर्गलोकको जाऊँगा। पृथ्वीपालक राम! आप शोक न कीजिये, अब तो उस दुष्ट राक्षसको उसके गणोंसहित मार ही डालिये' ॥ १२०-१२३ ॥

रामो जटायुषेत्युक्तः पुनस्तं चाह शोकतः ।
स्वस्त्यस्तु ते द्विजवर गतिस्तु परमास्तु ते ॥१२४॥
ततो जटायुः स्वं देहं विहाय गतवान्दिवम् ।
विमानेन तु रम्येण सेव्यमानोऽप्सरोगणैः ॥१२५॥
रामोऽपि दग्ध्वा तद्देहं स्नातो दत्त्वा जलाञ्जलिम् ।
आश्रमं गच्छन् दुःखार्तो राक्षसीं पथि दृष्टवान् ॥१२६॥
उद्वमन्तीं महोल्काभां विवृतास्यां भयङ्करीम् ।
क्षयं नयन्तीं जन्तून् वै पातयित्वा गतो रुषा ॥१२७॥
गच्छन् वनान्तरं रामः स कबन्धं ददर्श ह ।
विरूपं जठरमुखं दीर्घबाहुं घनस्तनम् ॥१२८॥
रुन्धानं राममार्गं तु दृष्ट्वा तं दग्धवान्नृप ।
दग्धोऽसौ दिव्यरूपी तु खस्थो राममभाषत ॥१२९॥

जटायुके यों कहनेपर श्रीरामने पुनः शोकपूर्वक उससे कहा—'पक्षिराज! आपका कल्याण हो और आपको उत्तम गति मिले।' तदनन्तर जटायु अपना शरीर त्यागकर एक सुन्दर विमानपर आरूढ़ हुए और अप्सरागणोंसे सेवित हो स्वर्ग चले गये। श्रीरामचन्द्रजीने भी उनके शरीरका दाह करके स्नानके पश्चात् उनके निमित्त जलाञ्जलि दी। फिर वे लक्ष्मणके साथ आश्रमको लौटने लगे ... राक्षसी सदा दिखायी दी

वह मुँहसे बड़ी भारी उल्काके समान आगकी ... रही थी। उसका मुँह फैला हुआ था। वह ... थी और पास आये हुए अनेकानेक जीवोंका संहार कर रही थी। श्रीरामने उसे रोषपूर्वक मार गिराया। फिर वे ... चले गये। जब श्रीराम दूसरे वनमें जाने लगे, तब ... कबन्धको देखा, जो बहुत ही कुरूप था। उसका मुख पेटमें ही था, बाँहें बड़ी-बड़ी थीं और स्तन घने थे। श्री... उसे अपना मार्ग रोकते देख उसे बाणसमूहद्वारा मार... जला दिया। जल जानेपर वह दिव्यरूप धारण करके ... हुआ और आकाशमें स्थित होकर श्रीरामसे बोला ॥१२४-१...

राम राम महाबाहो त्वया मम महामते ।
विरूपं नाशितं वीर मुनिशापाच्चिरागतम् ॥१...
त्रिदिवं यामि धन्योऽस्मि त्वत्प्रसादान्न संशयः ।
त्वं सीताप्राप्तये सख्यं कुरु सूर्यसुतेन भो ॥१३...
वानरेन्द्रेण गत्वा तु सुग्रीवे स्वं निवेद्य वै ।
भविष्यति नृपश्रेष्ठ ऋष्यमूकगिरिं व्रज ॥१...

'महाबाहु श्रीराम! महामते वीरवर! एक शापवश चिरकालसे प्राप्त हुई मेरी कुरूपताको आपने ... दिया; अब मैं स्वर्गलोकको जा रहा हूँ। इसमें सन्देह नहीं कि आज मैं आपकी कृपासे धन्य हो गया। रघुनन्दन! आप सीताकी प्राप्तिके लिये सूर्यकुमार वानरराज सुग्रीवके साथ मित्रता कीजिये। उनके यहाँ जाकर सुग्रीवसे अपना निवेदन कर देनेपर आपका कार्य सिद्ध हो जायगा। नृपश्रेष्ठ! आप यहाँसे ऋष्यमूक पर्वतपर जाइये' ॥१३०-१...

इत्युक्त्वा तु गते त... लक्ष्मणसंयुतः ।
... प्रविवेश ...
सिद्धस्तु मुनि...
तत्रस्था तापसी ...

किया, जो सिद्धों और मुनियोंसे पूजित था। उसमें उन्होंने एक शबरी नामकी तपस्विनी देखी, जो बड़े-बड़े मुनियोंकी सेवा-पूजा करनेमें तत्पर हो गयी थी। उसके साथ वार्तालाप करके वे वहाँ ठहर गये। शबरीने बेर आदि फलोंके द्वारा भगवान् रामका भलीभाँति सत्कार किया। आतिथ्यग्रहणके पश्चात् उसने अपनी भक्ति निवेदन की और यह कहकर कि 'आप मेरा मान रख लेंगे' वह शबरी भी उनके सामने ही अग्निमें प्रवेश करके स्वर्गको चली गयी। उस भी स्थानसे हटकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अन्यत्र चले गये॥ १३३-१३६ ॥

ततो विनीतेन गुणान्वितेन
भ्रात्रा समेतो जगदेकनाथः।
प्रियावियोगेन सुदुःखितात्मा
जगाम याम्यां स तु रामदेवः ॥१३७॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे रामप्रादुर्भावे एकोनपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

तदनन्तर विनयशील और गुणी भाई लक्ष्मणके साथ जगदीश्वर भगवान् राम प्रियाके वियोगसे अत्यन्त दुःखी हो वहाँसे दक्षिणकी ओर चल दिये॥ १३७ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें श्रीरामावतारविषयक उनचासवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४९ ॥

पचासवाँ अध्याय

सुग्रीवसे मैत्री, वालिवध, सुग्रीवका प्रमाद और उसकी भर्त्सना, सीताकी खोज और हनुमान्‌का लङ्कागमन

मार्कण्डेय उवाच

वालिना कृतवैरोऽथ दुर्गवर्ती हरीश्वरः।
सुग्रीवो दृष्टवान् दूरादृष्ट्वाऽऽह पवनात्मजम् ॥१॥
कस्येमौ सुधनुष्पाणी चीरवल्कलधारिणौ।
पश्यन्तौ सरसीं दिव्यां पद्मोत्पलसमावृताम् ॥ २ ॥
नानारूपधरावेतौ तापसं वेषमास्थितौ।
वालिदूताविह प्राप्ताविति निश्चित्य सूर्यज ॥ ३ ॥
उत्पपात भयत्रस्त ऋष्यमूकाद्वनान्तरम्।
वानरैः सहितः सर्वैरगस्त्याश्रममुत्तमम् ॥ ४ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—वालीसे वैर हो जानेके कारण उसके लिये दुर्गम स्थानमें रहनेवाले वानरराज सुग्रीवने दूरसे ही श्रीराम और लक्ष्मणको आते देखा और देखकर पवनकुमार हनुमान्‌जीसे कहा—'ये दोनों किसके पुत्र हैं, जो हाथमें सुन्दर धनुष लिये, चीर एवं वल्कल-वस्त्र धारण किये, कमलों एवं उत्पलोंसे आच्छन्न इस दिव्य सरोवरको देख रहे हैं। जान पड़ता है, ये दोनों वालीके भेजे हुए बहुरूपधारी दूत हैं, जो इस समय तपस्वीका वेष धारण किये यहाँ आ पहुँचे हैं।' यह निश्चय करके सूर्यकुमार सुग्रीव भयभीत हो गये और समस्त वानरोंके साथ ऋष्यमूक पर्वतसे कूदकर दूसरे वनमें स्थित अगस्त्यमुनिके उत्तम आश्रमपर चले गये॥ १-४ ॥

तत्र स्थित्वा स सुग्रीवः प्राह वायुसुतं पुनः।
हनूमन् पृच्छ शीघ्रं त्वं गच्छ तापसवेषधृक् ॥ ५ ॥
कौ हि कस्य सुतौ जातौ किमर्थं तत्र संस्थितौ।
ज्ञात्वा सत्यं मम ब्रूहि वायुपुत्र महामते ॥ ६ ॥

वहाँ स्थित होकर सुग्रीवने पुनः पवनकुमारसे कहा—"हनूमन्! तुम भी तपस्वीका वेष धारण करके शीघ्र जाओ और पूछो कि 'ये कौन हैं? किसके पुत्र हैं? और किस लिये वहाँ ठहरे हुए हैं?' महाबुद्धिमान् वायुनन्दन! ये सब बातें सच-सच जानकर मुझसे बताओ"॥ ५-६ ॥

इत्युक्तो हनुमान् गत्वा पम्पातटमनुत्तमम्।
भिक्षुरूपी स तं प्राह रामं भ्रात्रा समन्वितम् ॥ ७ ॥
को भवानिह सम्प्राप्तस्तथ्यं ब्रूहि महामते।
अरण्ये निर्जने घोरे कुतस्त्वं किं प्रयोजनम् ॥ ८ ॥

उनके इस प्रकार कहनेपर हनुमान्‌जी संन्यासीके रूपमें पम्पासरके उत्तम तटपर गये और भाई लक्ष्मणके साथ विद्यमान श्रीरामचन्द्रजीसे बोले—'महामते! आप कौन हैं? यहाँ कैसे आये हैं? इस जनशून्य घोर वनमें आप कहाँसे आ गये? यहाँ आनेका क्या प्रयोजन है?—ये सब बातें मुझसे ठीक-ठीक बताइये'॥ ७-८ ॥

इत्युक्तः कृतचिह्नोऽथ युद्धं चक्रेऽथ वालिना ।
रामोऽपि तत्र गत्वाथ शरेणैकेन वालिनम् ॥२५॥
बिभ्याध वीर्यवान् वाली पपात च ममार च ।
विभ्रस्तं वालिपुत्रं तु अङ्गदं विनयान्वितम् ॥२६॥
रणशौण्डं यौवराज्ये नियुक्त्वा राघवस्तदा ।
तां च तारां तथा दत्त्वा रामश्च रविनन्दने ॥ २७॥
सुग्रीवं प्राह धर्मात्मा रामः कमललोचनः ।
राज्यमन्वेषय स्वं त्वं कपीनां पुनराव्रज ॥२८॥
त्वं सीतान्वेषणे यत्नं कुरु शीघ्रं हरीश्वर ।

[यह सुनकर] श्रीमान् रामचन्द्रजीने भी सुग्रीवका प्रिय करनेके लिये आधे खींचे हुए बाणसे ही उन सात महावृक्षोंको एक ही साथ मार डाला । उन महावृक्षोंका भेदन करके श्रीरामने राजा सुग्रीवसे कहा—'सूर्यनन्दन सुग्रीव ! मेरे पहचाननेके लिये अपने शरीरमें कोई चिह्न धारण करके तुम जाओ और वालीके साथ युद्ध करो ।' उनके यों कहनेपर सुग्रीवने चिह्न धारणकर वालीके साथ युद्ध किया और श्रीरामने भी वहाँ जाकर एक ही बाणसे वालीको बींध दिया । इससे पराक्रमी वाली पृथ्वीपर गिरा और मर गया । तब श्रीरामचन्द्रजीने अत्यन्त डरे हुए वालिकुमार अङ्गदको, जो बहुत ही विनयी और संग्राममें कुशल था, युवराजपदपर अभिषिक्त करके ताराको सुग्रीवकी सेवामें अर्पित कर दिया । तत्पश्चात् कमलनयन धर्मात्मा श्रीराम सुग्रीवसे बोले—'तुम वानरोंके राज्यकी देख-भाल कर लो, फिर मेरे पास आना और कपीश्वर ! सीताकी खोज करानेका शीघ्र ही यत्न करना' ॥ २८-२८½ ॥

इत्युक्तः प्राह सुग्रीवो रामं लक्ष्मणसंयुतम् ॥२९॥
प्रावृट्कालो महान् प्राप्तः साम्प्रतं रघुनन्दन ।
वानराणां गतिर्नास्ति वने वर्षति वासवे ॥३०॥
गते वर्षासु राजेन्द्र प्राप्ते शरदि निर्मले ।
चारान् सम्प्रेषयिष्यामि वानरान्दिक्षु राघव ॥३१॥
इत्युक्त्वा रामचन्द्रं स तं प्रणम्य कपीश्वरः ।
पम्पापुरं प्रविश्याथ रेमे तारासमन्वितः ॥३२॥

उनके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर सुग्रीवने लक्ष्मण सहित श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'रघुनन्दन ! इस समय महान् वर्षाकाल आ पहुँचा है। इन्द्रके वर्षा करते रहनेपर इस वनमें वानरोंका जाना-आना नहीं हो सकता । राजेन्द्र ! वर्षा बीतने और शरत्काल आ जानेपर मैं समस्त दिशाओंमें अपने वानर दूतोंको भेजूँगा ।' यह कहकर वानरराज सुग्रीवने श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम किया और पम्पापुरमें प्रवेश करके वे ताराके साथ रमण करने लगे ॥ २९-३२ ॥

रामोऽपि विधिवद्भ्राता शैलमानौ महावने ।
निनाय कृतवान् शैले नीलकण्ठे महामतिः ॥३३॥
प्रावृट्काले गते क्रान्त्वा प्राप्ते शरदि राघवः ।
सीतावियोगाद्व्यथितः सौमित्रिं प्राह लक्ष्मणम् ॥३४॥
उल्लङ्घितस्तु समयः सुग्रीवेण ततो रुषा ।
लक्ष्मणं प्राह काकुत्स्थो भ्रातरं भ्रातृवत्सलः ॥३५॥
गच्छ लक्ष्मण दुष्टोऽसौ नागतः कपिनायकः ।
गते तु वर्षाकालेऽहमागमिष्यामि तेऽन्तिकम् ॥३६॥
अनेकैर्वानरैः सार्धमित्युक्त्वासौ तदा गतः ।
तत्र गच्छ त्वरायुक्तो यत्रास्ते कपिनायकः ॥३७॥
तं दुष्टमग्रतः कृत्वा हरिसेनासमन्वितम् ।
रमन्तं तारया सार्धं शीघ्रमानय मां प्रति ॥३८॥
नात्रागच्छति सुग्रीवो यद्यसौ प्राकृतिकः ।
तदा त्वयैव वक्तव्यः सुग्रीवोऽनृतभाषकः ॥३९॥
वालिहन्ता शरो दुष्ट करे मेऽद्यापि तिष्ठति ।
स्मृत्वैतदाचर त्वं पे रामवाक्यं हितं तव ॥४०॥

इधर महामति श्रीरामचन्द्रजी भी अपने भाई लक्ष्मणके साथ उस महावनमें 'नीलकण्ठ' नामक पर्वतकी चोटीपर विधिपूर्वक रहने लगे । (सीताके वियोगमें) उनका वर्षाकाल बड़ी कठिनाईसे बीता । जब शरत्काल उपस्थित हुआ, तब श्रीरामचन्द्रजीने सीताके वियोगसे व्यथित हो सुमित्रानन्दन लक्ष्मणसे इस विषयमें वार्तालाप किया । उस समयतक वहाँ न आकर सुग्रीवने अपनी पूर्व प्रतिज्ञाका उल्लङ्घन किया था । अतः भ्रातृवत्सल ककुत्स्थनन्दन श्रीरामने लक्ष्मणसे क्रोधपूर्वक कहा—'लक्ष्मण ! तुम पम्पापुरमें जाओ । देखो, क्या कारण है कि वह दुष्ट वानरराज अभीतक नहीं आया । पहले तो वह यही कहकर गया था कि वर्षाकाल बीतनेपर मैं अनेक वानरोंके साथ आपके पास आऊँगा । अब तुम जहाँ वह वानरराज रहता है, वहाँ शीघ्रतापूर्वक जाओ । ताराके

रामं च लक्ष्मणं चैव सुग्रीवं मारुतात्मजम् ।
एकतः स्थाप्य तानाह नीतिमान्नीतिमद्वचः ॥८८॥
श्रूयतां वचनं मेऽद्य सीतान्वेषणकर्मणि ।
श्रुत्वा च तद्गृहाण त्वं रोचते यन्नृपात्मज ॥८९॥
रावणेन जनस्थानान्नीयमाना तपस्विनी ।
जटायुषा तु सा दृष्टा शक्त्या युद्धं प्रकुर्वता ॥९०॥
भूषणानि च दृष्टानि तया क्षिप्तानि तेन वै ।
तान्यस्माभिः प्रदृष्टानि सुग्रीवायार्पितानि च ॥९१॥
जटायुवाक्याद्राजेन्द्र सत्यमित्यवधारय ।
एतस्मात्कारणात्सीता नीता तेनैव रक्षसा ॥९२॥
रावणेन महाबाहो लङ्कायां वर्तते तु सा ।
त्वां स्मरन्ती तु तत्रस्था त्वद्दुःखेन सुदुःखिता ॥९३॥
रक्षन्ती यत्नतो वृत्तं तत्रापि जनकात्मजा ।
त्वद्ध्यानेनैव स्वान् प्राणान्धारयन्ती शुभानना ॥९४॥
स्थिता प्रायेण ते देवी सीता तु त्वत्परायणा ।
हितमेव च ते राजन्नुदधेर्लङ्घने क्षमम् ॥९५॥
वायुपुत्रं हनूमन्तं त्वमत्रादेष्टुमर्हसि ।
त्वं चाप्यर्हसि सुग्रीव प्रेषितुं मारुतात्मजम् ॥९६॥
तमृते सागरं गन्तुं वानराणां न विद्यते ।
बलं कस्यापि वा वीर इति मे मनसि स्थितम् ॥९७॥
क्रियतां मद्वचः क्षिप्रं हितं पथ्यं च नः सदा ।

अपने चाचा महात्मा सुग्रीवके इस प्रकार आदेश देनेपर अङ्गदने तुरंत उठकर उनकी आज्ञा शिरोधार्य की। सुग्रीवकी पूर्वोक्त आज्ञा सुनकर नीतिज्ञ जाम्बवान्ने सब वानरोंको कुछ दूर खड़ा कर दिया और श्रीराम, लक्ष्मण, सुग्रीव तथा हनुमान्‌जीको एक जगह करके उनसे यह नीतियुक्त बात कही—'नृपनन्दन श्रीरामचन्द्रजी! सीताका अन्वेषण करनेके विषयमें इस समय आप मेरी एक बात सुनें और सुननेके बाद यदि वह अच्छी लगे तो उसे स्वीकार करें। जटायुने तपस्विनी सीताको जनस्थानसे रावणद्वारा ले जायी जाती हुई देखा था तथा उन्होंने उसके साथ यथाशक्ति युद्ध भी किया था। साथ ही, सीताजीने उस समय अपने आभूषण उतार फेंके थे, जिनको जटायुने और हमलोगोंने भी देखा था। उन आभूषणोंको हमने सुग्रीवको अर्पित कर दिया है। इस कारण राजेन्द्र! जटायुके कथनानुसार आप इस बातको सत्य समझें कि सीताजीको वही दुष्ट राक्षस रावण ले गया है और महाबाहो! वे इस समय लङ्कामें ही हैं। वहाँ रहकर भी वे आपका ही स्मरण करती हुई आपके दुःखसे अत्यन्त दुःखी हो निरन्तर आपका ही स्मरण किया करती हैं। जनकनन्दिनी सीता लङ्कामें रहकर भी अपने सदाचारकी यत्नपूर्वक रक्षा कर रही हैं। वे सुमुखी सीतादेवी आपके ही ध्यानसे अपने प्राणोंको धारण करती हुई प्रायः आपके ही वियोग-दुःखमें डूबी रहती हैं। इसलिये राजन्! इस समय आपके हितकी ही बात कह रहा हूँ, आप इस कार्यके लिये वायुपुत्र हनुमान्‌जीको आज्ञा दें, क्योंकि ये ही समुद्र लाँघनेमें समर्थ हैं और सुग्रीव! आपको भी चाहिये कि पवनकुमार हनुमान्‌जीको ही वहाँ भेजें। क्योंकि वानरोंमें उनके अतिरिक्त कोई भी ऐसा नहीं है, जो समुद्रके पार जा सके तथा हे वीर! इनके बराबर किसीका बल भी नहीं है। बस, मेरे मनमें यही विचार है। मेरे कथनका शीघ्र पालन किया जाय; क्योंकि यह हमारे लिये सदा ही हितकर और लाभकारी होगा' ॥ ८६–९७½ ॥

उक्ते जाम्बवतैवं तु नीतिस्वल्पाक्षरान्विते ॥९८॥
वाक्ये वानरराजोऽसौ शीघ्रमुत्थाय चासनात् ।
वायुपुत्रसमीपं तु तं गत्वा वाक्यमब्रवीत् ॥९९॥

जाम्बवान्के इस प्रकार थोड़े अक्षरोंमें नीतियुक्त वचन कहनेपर वानरराज सुग्रीव शीघ्र ही अपने आसनसे उठे और वायुनन्दन हनुमान्‌जीके निकट आकर उनसे बोले ॥ ९८-९९ ॥

शृणु मद्वचनं वीर हनुमन्मारुतात्मज ।
अयमिक्ष्वाकुतिलको राजा रामः प्रतापवान् ॥१००॥
पितुरादेशमादाय भ्रातृभार्यासमन्वितः ।
प्रविष्टो दण्डकारण्यं साक्षाद्धर्मपरायणः ॥१०१॥
सर्वात्मा सर्वलोकेशो विष्णुर्मानुषरूपवान् ।
अस्य भार्या हृता तेन दुष्टेनापि दुरात्मना ॥१०२॥
तद्वियोगजदुःखार्तो विचिन्वंस्तां वने वने ।
त्वया दृष्टो नृपः पूर्वमयं वीर प्रतापवान् ॥१०३॥
एतेन सह सङ्गम्य समयं चापि कारितम् ।
अनेन निहतः शत्रुर्मम वाली महाबलः ॥१०४॥

रामं च लक्ष्मणं चैव सुग्रीवं मारुतात्मजम् ।
एकतः स्थाप्य तानाह नीतिमान्नीतिमद्वचः ॥८८॥
श्रूयतां वचनं मेऽद्य सीतान्वेषणकर्मणि ।
श्रुत्वा च तद्गृहाण त्वं रोचते यन्नृपात्मज ॥८९॥
रावणेन जनस्थानान्नीयमाना तपस्विनी ।
जटायुषा तु सा दृष्टा शक्त्या युद्धं प्रकुर्वता ॥९०॥
भूषणानि च दृष्टानि तया क्षिप्तानि तेन वै ।
अन्यैरस्माभिः प्रदृष्टानि सुग्रीवायार्पितानि च ॥९१॥
जटायुवाक्याद्राजेन्द्र सत्यमित्यवधारय ।
एतस्मात्कारणात्सीता नीता तेनैव रक्षसा ॥९२॥
रावणेन महाबाहो लङ्कायां वर्तते तु सा ।
त्वां स्मरन्ती तु तत्रस्था त्वद्दुःखेन सुदुःखिता ॥९३॥
रक्षन्ती यत्नतो वृत्तं तत्रापि जनकात्मजा ।
त्वद्ध्यानेनैव स्वान् प्राणान्धारयन्ती शुभानना ॥९४॥
स्थिता प्रायेण ते देवी सीता दुःखपरायणा ।
हितमेव च ते राजन्नुदधेर्लङ्घने क्षमम् ॥९५॥
वायुपुत्रं हनूमन्तं त्वमत्रादेष्टुमर्हसि ।
त्वं चाप्यर्हसि सुग्रीव प्रेषितुं मारुतात्मजम् ॥९६॥
तमृते सागरं गन्तुं वानराणां न विद्यते ।
बलं कस्यापि वा वीर इति मे मनसि स्थितम् ॥९७॥
क्रियतां मद्वचः क्षिप्रं हितं पथ्यं च नः सदा ।

अपने चाचा महात्मा सुग्रीवके इस प्रकार आदेश देनेपर अङ्गदने तुरंत उठकर उनकी आज्ञा शिरोधार्य की। सुग्रीवकी पूर्वोक्त आज्ञा सुनकर नीतिज्ञ जाम्बवान्‌ने सब वानरोंको कुछ दूर खड़ा कर दिया और श्रीराम, लक्ष्मण, सुग्रीव तथा हनुमान्‌जीको एक जगह करके उनसे यह नीतियुक्त बात कही—'नृपनन्दन श्रीरामचन्द्रजी! सीताके अन्वेषण करनेके विषयमें इस समय आप मेरी एक बात सुनें और सुननेके बाद यदि वह अच्छी लगे तो उसे स्वीकार करें। जटायुने तपस्विनी सीताको जनस्थानसे रावणद्वारा ले जायी जाती हुई देखा था तथा उन्होंने उसके साथ यथाशक्ति युद्ध भी किया था। साथ ही, सीताजीने उस समय अपने आभूषण उतार फेंके थे, जिनको जटायुने और हमलोगोंने भी देखा था। उन आभूषणोंको हमने सुग्रीवको अर्पित कर दिया है। इस कारण राजेन्द्र! जटायुके कथनानुसार आप इस बातको सत्य समझें कि सीताजीको वही दुष्ट राक्षस रावण ले गया है और महाबाहो! वे इस समय लङ्कामें ही हैं। वहाँ रहकर भी वे आपके ही दुःखसे अत्यन्त दुःखी हो निरन्तर आपका ही स्मरण किया करती हैं। जनकनन्दिनी सीता लङ्कामें रहकर भी अपने सदाचारकी यत्नपूर्वक रक्षा कर रही हैं। वे सुमुखी सीतादेवी आपके ही ध्यानसे अपने प्राणोंको धारण करती हुई प्रायः आपके ही वियोग दुःखमें डूबी रहती हैं। इसलिये राजन्! इस समय आपके हितकी ही बात बता रहा हूँ, आप इस कार्यके लिये वायुपुत्र हनुमान्‌जीको आज्ञा दें, क्योंकि ये ही समुद्र लाँघनेमें समर्थ हैं और सुग्रीव! आपको भी चाहिये कि पवनकुमार हनुमान्‌जीको ही वहाँ भेजें; क्योंकि वानरोंमें उनके अतिरिक्त कोई भी ऐसा नहीं है, जो समुद्रके पार जा सके तथा हे वीर! इनके बराबर किसीका बल भी नहीं है। बस, मेरे मनमें यही विचार है। मेरे कथनका शीघ्र पालन किया जाय, क्योंकि यह हमारे लिये सदा ही हितकर और लाभकारी होगा' ॥ ८६–९७½ ॥

उक्ते जाम्बवतैवं तु नीतिस्वल्पाक्षरान्विते ॥९८॥
वाक्ये वानरराजोऽसौ शीघ्रमुत्थाय चासनात् ।
वायुपुत्रसमीपं तु तं गत्वा वाक्यमब्रवीत् ॥९९॥

जाम्बवान्‌के इस प्रकार थोड़े अक्षरोंमें नीतियुक्त वचन कहनेपर वानरराज सुग्रीव शीघ्र ही अपने आसनसे उठे और वायुनन्दन हनुमान्‌जीके निकट जाकर उनसे बोले ॥ ९८-९९ ॥

शृणु मद्वचनं वीर हनुमन्मारुतात्मज ।
अयमिक्ष्वाकुतिलको राजा रामः प्रतापवान् ॥१००॥
पितुरादेशमादाय भ्रातृभार्यासमन्वितः ।
प्रविष्टो दण्डकारण्यं साक्षाद्धर्मपरायणः ॥१०१॥
सर्वात्मा सर्वलोकेशो विष्णुर्मानुषरूपवान् ।
अस्य भार्या हृता तेन दुष्टेनापि दुरात्मना ॥१०२॥
तद्वियोगजदुःखार्तो विचिन्वंस्तां वने वने ।
त्वया दृष्टो नृपः पूर्वमयं वीर प्रतापवान् ॥१०३॥
एतेन सह सङ्गम्य समयं चापि कारितम् ।
अनेन निहतः शत्रुर्मम वाली महाबलः ॥१०४॥

इससे इस प्रकार वानरोग बहुत ही प्रसन्न हुए, उन्हें बड़ा उत्साह मिला। फिर वे उस तपस्विनीको प्रणाम करके वहाँसे प्रस्थित हुए। सम्पातिको देखनेकी इच्छासे वे वीर कपीश्वर महेन्द्रपर्वतपर गये तथा वहाँ बैठे हुए सम्पातिको उन्होंने देखा। तब पक्षिराज सम्पातिने वहाँ आये हुए वानरोंसे कहा—'आपलोग कौन हैं? किसके दूत हैं? कहाँसे आये हैं? शीघ्र बतायें'॥ १४९—१५१॥

इत्युक्ते वानरा ऊचुर्यथावृत्तमनुक्रमात्।
रामदूता वयं सर्वे सीतान्वेषणकर्मणि॥१५२॥
प्रेषिता कपिराजेन सुग्रीवेण महात्मना।
त्वां द्रष्टुमिह सम्प्राप्ताः सिद्धाया वचनाद्‌द्विज॥१५३॥
सीतास्थानं महाभाग त्वं नो वद महामते।
इत्युक्तो वानरैः श्येनो वीक्षाचक्रे सुदक्षिणाम्॥१५४॥
सीतां दृष्ट्वा स लङ्कायामशोकाख्ये महावने।
स्थितेति कथितं तेन जटायुस्तु मृतस्तव॥१५५॥
भ्रातेति चोक्तु स स्नात्वा दत्त्वा तस्योदकाञ्जलिम्।
योगमास्थाय स्वं देहं निससर्ज महामतिः॥१५६॥

सम्पातिके यों पूछनेपर वानरोंने सारा समाचार यथार्थ रूपसे क्रमशः बताना आरम्भ किया—'पक्षिराज! हम सब श्रीरामचन्द्रजीके दूत हैं। कपिराज महात्मा सुग्रीवने हमें सीताजीकी खोजके लिये भेजा है। पक्षिवर! एक सिद्धाके कहनेसे हम आपका दर्शन करनेके लिये यहाँ आये हैं। महामते! महाभाग! सीताके स्थानका पता आप हमें बता दें।' वानरोंके इस तरह अनुरोध करनेपर गृध्र सम्पातिने अपनी दृष्टि दक्षिण दिशाकी ओर दौड़ायी और पतिव्रता सीताको देखकर बताया—'सीताजी लङ्कामें अशोकवनके भीतर ठहरी हुई हैं।' तब वानरोंने कहा—'आपके भ्राता जटायुने सीताजीकी रक्षाके लिये ही प्राणत्याग किया है।' यह सुनकर महामति सम्पातिने स्नान करके जटायुको जलाञ्जलि दी और योग धारणाका आश्रय ले अपने शरीरको त्याग दिया॥१५२—१५६॥

ततस्तं वानरा दग्ध्वा दत्त्वा तस्योदकाञ्जलिम्।
गत्वा महेन्द्रशृङ्गं ते तमारुह्य क्षणं स्थिताः॥१५७॥
सागरं वीक्ष्य ते सर्वे परस्परमथाब्रुवन्।
रावणेनैव भार्या सा नीता रामस्य निश्चितम्॥१५८॥
सम्पातिवचनादद्य संज्ञातं सकलं हि तत्।
वानराणां तु कश्चात्र उत्तीर्य लवणोदधिम्॥१५९॥
लङ्कां प्रविश्य दृष्ट्वा तां रामपत्नीं यशस्विनीम्।
पुनश्चोदधितरणे शक्तिं कृत हि शोभनाः॥१६०॥

तदनन्तर वानरोंने सम्पातिके शवका दाह-संस्कार किया और उन्हें जलाञ्जलि दे, महेन्द्रपर्वतपर जाकर तथा उसके शिखरपर आरूढ़ हो, क्षणभर खड़े रहे। फिर समुद्रकी ओर देखकर वे सभी परस्पर कहने लगे—'रावणने ही भगवान् श्रीरामकी भार्या सीताका अपहरण किया है, यह बात निश्चित हो गयी। सम्पातिके वचनसे आज सब बातें ठीक-ठीक ज्ञात हो गयीं। शोभाशाली वानरो! अब आप सब लोग सोचकर बतायें कि यहाँ वानरोंमें कौन ऐसा वीर है, जो इस क्षार समुद्रके पार जा लङ्कामें घुसे और परम यशस्विनी श्रीरामपत्नी सीताजीका दर्शन करके पुनः समुद्रके पार लौट आनेमें समर्थ हो सके'॥ १५७—१६०॥

इत्युक्तो जाम्बवान् प्राह सर्वे शक्तास्तु वानराः।
सागरोत्तरणे किंतु कार्यमन्यस्य सम्भवेत्॥१६१॥
तत्र दक्षोऽयमेवात्र हनूमानिति मे गतिः।
कालक्षेपो न कर्तव्यो मासार्धमधिकं गतम्॥१६२॥
यद्यदृष्ट्वा तु गच्छामो वैदेहीं वानरर्षभाः।
कर्णनासादि नः स्वाङ्गं निकृन्तति कपीश्वरः॥१६३॥
तस्मात् प्रार्थ्यः स चास्माभिर्वायुपुत्रस्तु मे मतिः।

वानरोंकी यह बात सुनकर जाम्बवान्‌ने कहा—'समुद्रको पार करनेमें तो सभी वानर समर्थ हैं, परंतु यह कार्य एक अन्यतम वानरसे ही सिद्ध होगा। मेरे विचारसे तो यह आता है कि इस कार्यको सिद्ध करनेमें यहाँ हनूमानजी ही समर्थ हैं। अब समय नहीं खोना चाहिये। हमारे लौटनेकी जो नियत अवधि थी, उससे पंद्रह दिन अधिक बीत गये हैं। वानरेन्द्रगण! यदि हमलोग सीताको देखे बिना ही लौट जायँगे तो कपिराज सुग्रीव हमारा नाक और कान काट लेंगे। इसलिये मेरी राय यह है कि हम सब लोग इस कार्यके लिये वायुनन्दन हनुमान्‌जीसे ही प्रार्थना करें'॥ १६१—१६३½॥

इत्युक्तास्ते तथेत्यूचुर्वानरा वृद्धवानरम्॥१६४॥

कहा—'प्रिये ! मैं कामपीड़ित हूँ, मुझे स्वीकार करो। वैदेहि ! अब शृङ्गार धारण करो और श्रीरामकी ओरसे मन हटा लो।' इस प्रकार कहते हुए रावणसे भयसे काँपती हुई सीताने बीचमें तिनकेकी आड़ रखकर धीरे-धीरे कहा—'पापबुद्धि दुष्ट रावण ! तू चला जा। मैं शाप देती हूँ—भगवान् श्रीरामके बाण शीघ्र ही रणभूमिमें तुम्हारा रक्त पीयेंगे'॥ १९—२४॥

तथेत्युक्तो भर्त्सितश्च राक्षसीराह राक्षसः।
द्विमासाभ्यन्तरे चैनां वशीकुरुत मानुषीम् ॥२५॥
यदि नेच्छति मां सीता ततः खादत मानुषीम्।
इत्युक्त्वा गतवान् दुष्टो रावणः स्वं निकेतनम्॥२६॥
ततो भयेन तां प्राहू राक्षस्यो जनकात्मजाम्।
रावणं भज कल्याणि सधना सुखिनी भव ॥२७॥
इत्युक्ता प्राह ताः सीता राघवोऽलघुविक्रमः।
निहत्य रावणं युद्धे सगणं मां नयिष्यति ॥२८॥
नाहमन्यस्य भार्या स्यामृते रामं रघूत्तमम्।
स आगत्य दशग्रीवं हत्वा मां पालयिष्यति ॥२९॥

पतिव्रताका यह उत्तर और फटकार पाकर राक्षसराज रावणने राक्षसियोंसे कहा—'तुमलोग इस मानव-कन्याको दो महीनेके भीतर समझाकर मेरे वशीभूत कर दो। यदि इसने स्वीकार न किया, इसका मन मेरी ओर न झुका तो इस मानुषीको तुम खा डालना।' यों कहकर दुष्ट रावण अपने महलमें चला गया। तब रावणके डरसे डरी हुई राक्षसियोंने जनकनन्दिनीसे कहा—'कल्याणि ! रावणको भजो; धनी होओ और सुखसे रहो।' राक्षसियोंके यों कहनेपर सीताने उनसे कहा—'महापराक्रमी भगवान् श्रीराम युद्धमें रावणको उसके गणोंसहित मारकर मुझे ले जायँगे। मैं रघुकुलश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीके सिवा दूसरेकी भार्या नहीं हो सकती। वे ही आकर रावणको मारकर मेरी रक्षा करेंगे'॥ २५—२९॥

इत्याकर्ण्य वचस्तस्या राक्षस्यो दुःखसंभवम्।
हन्यतां हन्यतामेषा भक्ष्यतां भक्ष्यतामियम् ॥३०॥
ततस्त्रिजटा प्राह स्वप्ने दृष्टमनिन्दिता।
शृणुध्वं दुष्टराक्षस्यो रावणस्य विनाशनम् ॥३१॥
रक्षोभिः सह सर्वैस्तु रावणस्य मृतिप्रदः।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा रामस्य विजयप्रदः ॥३२॥
स्वप्नः शुभो मया दृष्टः सीतायाश्च पतिप्रदः।
त्रिजटावाक्यमाकर्ण्य सीतापार्श्वे विसृज्य ताः ॥३३॥
राक्षस्यस्ता ययुः सर्वाः सीतामाहाञ्जनीसुतः।
कीर्तयन् रामवृत्तान्तं सकलं पवनात्मजः ॥३४॥
तस्या विश्वासमानीय दत्त्वा रामाङ्गुलीयकम्।
सम्भाष्य लक्षणं सर्वं रामलक्ष्मणयोस्तदा ॥३५॥
महत्या सेनया युक्तः सुग्रीवः कपिनायकः।
तेन सार्धमिहागत्य रामस्तव पतिः प्रभुः ॥३६॥
लक्ष्मणश्च महावीरो देवरस्ते शुभानने।
रावणं सगणं हत्वा त्वामितोऽऽदाय गच्छति ॥३७॥

सीताकी यह बात सुनकर राक्षसियोंने उन्हें भय दिखाते हुए कहा—'अरी ! इसे मार डालो, मार डालो; खा जाओ, खा जाओ।' उन राक्षसियोंमें एकका नाम त्रिजटा था। वह उत्तम विचार रखनेवाली—अच्छी राक्षसी थी। उसने उन सभी राक्षसियोंको स्वप्नमें देखी हुई बात बतायी। वह बोली—'अरी दुष्टा राक्षसियो ! सुनो, मैंने एक शुभ स्वप्न देखा है, जो रावणके लिये विनाशकारी है, समस्त राक्षसोंके साथ रावणको मौतके मुँहमें डालनेवाला है, भाई लक्ष्मणके साथ श्रीरामचन्द्रजीको विजय देनेवाला है और सीताको पतिसे मिलानेवाला है।' त्रिजटाकी बात सुनकर वे सभी राक्षसियाँ सीताके पाससे हटकर दूर चली गयीं। तब अञ्जनीनन्दन हनुमान्‌जीने आकर सीताके सामने प्रकट किया और श्रीराम-नामका कीर्तन करते हुए उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीका सम्पूर्ण वृत्तान्त उनसे कह सुनाया। इस प्रकार सीताके मनमें विश्वास उत्पन्न करके उन्हें श्रीरामचन्द्रजीकी अँगूठी दी। फिर उनसे श्रीराम और लक्ष्मणके शरीरके सारे चिह्न बताये और कहा—'सुमुखि ! वानरोंके राजा सुग्रीव बहुत बड़ी सेनाके साथ हैं। उनके साथ आपके पतिदेव भगवान् श्रीरामचन्द्रजी तथा आपके देवर महावीर लक्ष्मणजी यहाँ पधारेंगे और रावणको मारकर आपको यहाँसे ले जायँगे'॥ ३०—३७॥

इत्युक्ता सा तु विश्वस्ता वायुपुत्रमभाषत।
कथमत्रागतो वीर त्वमुत्तीर्य महोदधिम् ॥३८॥

इत्याकर्ण्य वचस्तस्या पुनस्तामाह वानरः ।
गोष्पदवन्मयोत्तीर्णः समुद्रोऽयं वरानने ॥३९॥
जपतो रामरामेति सागरो गोष्पदायते ।
दुःखमग्नासि वैदेहि स्थिरा भव शुभानने ॥४०॥
क्षिप्रं पश्यसि रामं त्वं सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ।
इत्याश्वास्य सतीं सीतां दुःखितां जनकात्मजाम्॥४१॥
ततश्चूडामणिं प्राप्य श्रुत्वा काकपराभवम् ।
नत्वा तां प्रस्थितो वीरो गन्तुं कृतमतिः कपिः ॥४२॥

हनुमान्जीके यह कहनेपर सीताजीका उनपर विश्वास हो गया। वे बोलीं—'वीर ! तुम किस तरह महासागरको पार करके यहाँ चले आये ?' उनका यह वचन सुनकर हनुमान्जीने पुनः उनसे कहा—''वरानने ! मैं इस समुद्रको उसी प्रकार लाँघ गया जैसे कोई गौके खुरसे बने हुए गड्ढेको लाँघ जाय। जो 'राम-राम' का जप करता है, उसके लिये समुद्र गौके खुरके चिह्नके समान हो जाता है। शुभानने वैदेहि ! आप दुःखमग्न दिखायी देती हैं, अब धैर्य धारण कीजिये। मैं आपसे सत्य-सत्य कह रहा हूँ, आप बहुत शीघ्र श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करेंगी।'' इस प्रकार दुःखमें डूबी हुई पतिव्रता जनकनन्दिनी सीताको आश्वासन दे, उनसे पहचानके लिये चूडामणि पाकर और श्रीरामके प्रभावसे काकरूपी जयन्तके पराभवकी कथा सुनकर, वहाँसे चल देनेका विचार करके हनुमान्जीने सीताको नमस्कार करनेके पश्चात् प्रस्थान किया ॥ ३८–४२ ॥

ततो निःसृत्य तद्भङ्क्त्वा क्रीडावनमशेषतः ।
तोरणस्थो ननादोच्चै रामो जयति वीर्यवान् ॥४३॥
अनेकान् राक्षसान् हत्वा सेनां सेनापतींश्च सः ।
तदा त्वक्षकुमारं तु हत्वा रावणमन्त्रिकम् ॥४४॥
साश्वं ससारथिं हत्वा इन्द्रजिच्च गृहीतवान् ।
रावणस्य पुरः स्थित्वा रामं सङ्कीर्त्य लक्ष्मणम् ॥४५॥
सुग्रीवं च महावीर्यं दग्ध्वा लङ्कामशेषतः ।
निर्भर्त्स्य रावणं दुष्टं पुनः सम्भाष्य जानकीम्॥४६॥
भूयः सागरमुत्तीर्य ज्ञातीनासाद्य वीर्यवान् ।
सीतादर्शनमावेद्य हनूमांश्चैव पूजितः ॥४७॥

तत्पश्चात् कुछ सोचकर पराक्रमी हनुमान्जीने रावणके उस सम्पूर्ण क्रीडावन (अशोकवाटिका) को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला और वनके द्वारपर स्थित हो, उच्चस्वरसे सिंहनाद करते हुए बोले—'भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो !' फिर वहाँ युद्धके लिये सामने आये हुए अनेक राक्षसोंको मारकर सेना और सेनापतियोंका संहार किया। इसके बाद रावणके सेनापति अक्षकुमारको अश्व तथा सारथिसहित यमलोक पहुँचा दिया। इसपर रावणपुत्र इन्द्रजित्ने ब्रह्मास्त्रके प्रभावसे उन्हें बंदी बना लिया। इसके बाद वे रावणके सम्मुख उपस्थित किये गये। वहाँसे छूटकर उन्होंने श्रीराम, लक्ष्मण और महाबली सुग्रीवके यशका कीर्तन करते हुए सम्पूर्ण लङ्कापुरीको जलाकर भस्म कर दिया। तदनन्तर दुरात्मा रावणको डाँट बताकर पुनः सीताजीसे वार्तालाप किया। फिर पराक्रमी हनूमान्जी समुद्रके इस पार आकर अपने वानर बन्धुओंसे मिले और सीताजीके दर्शनका समाचार सुनाकर सबसे सम्मानित हुए ॥ ४३–४७ ॥

वानरैः सार्धमागत्य हनुमान्मधुवनं महत् ।
निहत्य रक्षपालांस्तु पाययित्वा च तन्मधु ॥४८॥
सर्वे दधिमुखं पात्य हर्षितो हरिभिः सह ।
खमुत्पत्य च सम्प्राप्य रामलक्ष्मणपादयोः ॥४९॥
नत्वा तु हनुमांस्तत्र सुग्रीवं च विशेषतः ।
आदितः सर्वमावेद्य समुद्रतरणादिकम् ॥५०॥
कथयामास रामाय सीता दृष्टा मयेति वै ।
अशोकवनिकामध्ये सीता देवी सुदुःखिता ॥५१॥
राक्षसीभिः परिवृता त्वां स्मरन्ती च सर्वदा ।
अश्रुपूर्णमुखी दीना तव पत्नी वरानना ॥ ५२॥
शीलवृत्तसमायुक्ता तत्रापि जनकात्मजा ।
सर्वत्रान्वेषमाणेन मया दृष्टा पतिव्रता ॥५३॥
मया सम्भाषिता सीता विश्वस्ता रघुनन्दन ।
अलङ्कारश्च सुमणिस्तया ते प्रेषितः प्रभो ॥५४॥

तत्पश्चात् हनुमान्जी सभी वानरोंके साथ मधुवनमें आये। उसके रक्षवालोंको मारकर उन्होंने वहाँ सब साथियोंको मधुपान कराया और स्वयं भी पीया। इस कार्यमें बाधा देनेवाले दधिमुख नामके वानरको सबने धरतीपर दे मारा। इसके बाद हनुमान्जी सब वानरोंके साथ आनन्दित हो, आकाशमें उछलते हुए श्रीराम और लक्ष्मणके निकट आ पहुँचे। वहाँ उन दोनोंके चरणोंमें प्रणाम कर, विशेषतः सुग्रीवको मस्तक झुकाकर उन्होंने समुद्र लाँघनेसे

ततः किं वक्तव्यं तिलकयति सूत्रार्थपदवीम् ॥२६॥

ऐसा विचार प्रकट करके लक्ष्मणने उसी समय भगवान् श्रीरामके कानमें मुँह लगाकर कहा—'अब इस समय इस बालककी परीक्षा तथा जानकारीके लिये कि यह अङ्गद अपने पिता वालीके वैर-जनित वधका स्मरण करके भी आपमें कितनी भक्ति रखता है, इसमें कितना पराक्रम है तथा इसके अब कैसे लक्षण (रंग ढंग) हैं, आप अङ्गदको पुनः दूत-कर्म करनेका आदेश दीजिये।' श्रीरामचन्द्रजी 'बहुत अच्छा' कहकर अङ्गदकी ओर बड़े आदरसे देखकर उन्हें आदेश देने लगे—'अङ्गद! तुम्हारे पिता वालीने दशकण्ठ रावणके प्रति जो पुरुषार्थ किया था, उसका हम भी वर्णन नहीं कर सकते। उसकी याद आते ही हर्षके कारण हमारे शरीरमें रोमाञ्च हो आता है। वही वाली आज तुम्हारे रूपमें प्रकट है। तुम पुत्ररूपमें उत्पन्न हो, अपने पुरुषार्थसे पिताको भी पीछे छोड़ रहे हो; अतः तुम्हारे विषयमें क्या कहना है। तुम पुत्र-पदवीको मस्तकका तिलक बना रहे हो' ॥ २५-२६ ॥

अङ्गदो मौलिमण्डलमिलत्करयुगलेन प्रणम्य यदाज्ञापयति देव । अवधार्यताम् ॥ २७ ॥

किं प्राकारविहारतोरणवतीं लङ्कामिहैवानये
किं वा सैन्यमहं द्रुतं रघुपते तत्रैव सम्पादये ।
अत्यल्पं कुलपर्वतैरविरलैर्बध्नामि वा सागरं
देवादेशय किं करोमि सकलं दोर्दण्डसाध्यं मम ॥२८॥

अङ्गदने अपने मस्तकपर दोनों हाथ जोड़ भगवान्को प्रणाम करके कहा—'जैसी आज्ञा, भगवान् इधर ध्यान दें। रघुपते! क्या मैं चहारदीवारी, विहार-स्थल और नगरद्वार सहित लङ्कापुरीको यहीं उठा लाऊँ? या अपनी सारी सेनाको ही उस पुरीमें आक्रमणके लिये पहुँचा दूँ? अथवा इस अत्यन्त तुच्छ सागरको अविरल कुलाचलोंद्वारा पाट दूँ? भगवन्! आज्ञा दीजिये, क्या करूँ? मेरे भुजदण्डोंद्वारा सब कुछ सिद्ध हो सकता है' ॥ २७-२८ ॥

श्रीरामस्तद्वचनमात्रेणैव तद्भक्तिं सामर्थ्यं चावेक्ष्य वदति ॥ २९ ॥

अज्ञानादथवाधिपत्यरभसाद्वास्मत्परोक्षे हृता
सीतेयं प्रविमुच्यतामिति वचो गत्वा दशास्यं वद ।
नो चेल्लक्ष्मणमुक्तमार्गणगणच्छेदोच्छलच्छोणित-
च्छत्रच्छन्नदिगन्तमन्तकपुरीं पुत्रैर्वृतो यास्यसि ॥

भगवान् रामने अङ्गदके कथनसे ही उनकी भक्ति और शक्तिका अनुमान लगाकर कहा—'वीर! तुम दशमुख रावणके पास जाकर कहो—'रावण! तुम अज्ञानसे या प्रभुत्वके अभिमानमें आकर हमलोगोंके पीठ-पीछे चोरकी भाँति जिस सीताको ले गये हो, उसे छोड़ दो, नहीं तो लक्ष्मणके छोड़े हुए बाणोंद्वारा बेधे जाकर छलकते हुए रक्तकी धाराओंसे छत्रकी भाँति दिगन्तको आच्छादित करके तुम अपने पुत्रोंके साथ ही यमपुरीको प्रस्थान करोगे'' ॥ २९-३० ॥

अङ्गदः ॥ ३१ ॥ देव !

सन्धौ वा विग्रहे वापि मयि दूते दशाननौ ।
अक्षता वाक्षता वापि क्षितिपीठे लुठिष्यति ॥३२॥
तदा श्रीरामचन्द्रेण प्रशस्य प्रहितोऽङ्गदः ।
उक्तिप्रत्युक्तिचातुर्यैः पराजित्यागतो रिपुम् ॥३३॥

अङ्गदने कहा—'देव! मुझ दूतके रहते हुए रावण सन्धि करे या विग्रह, दोनों ही अवस्थाओंमें उसके दसों मस्तक पृथ्वीतलपर गिरकर लोटेंगे। हाँ, इतना अन्तर अवश्य होगा कि सन्धि कर लेनेपर उसके मस्तक बिना कटे ही (आपके सामने प्रणामके लिये) गिरेंगे और विग्रह करनेपर कट-कर गिरेंगे।' तब श्रीरामचन्द्रजीने अङ्गदकी प्रशंसा करके उन्हें भेजा और वे भी वहाँ जा, वाद-प्रतिवादकी चातुरीसे शत्रुको हराकर लौट आये ॥ ३१-३३ ॥

राघवस्य बलं ज्ञात्वा चारैस्तदनुजस्य च ।
वानराणां च भीतोऽपि निर्भीरिव दशाननः ॥३४॥
लङ्कापुरस्य रक्षार्थमादिदेश स राक्षसान् ।
आदिश्य सर्वतो दिक्षु पुत्रानाह दशाननः ॥३५॥
धूम्राक्ष धूम्रपान च राक्षसा यात मे ...
पाशैर्घ्नीत तौ मर्त्यौ ...

महोदरमहापार्श्वौ सार्धमेतैर्महाबलौ ।
संग्रामेऽस्मिन् रिपून् हन्तु युवां व्रजतमुद्यतौ ॥६६॥

तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजीने रणमें सब ओर युद्ध करते हुए बहुसंख्यक राक्षसाधिपतियोंको चारों ओरसे वानरोंद्वारा मरवाकर अपने तीखे बाणोंसे कुम्भकर्णका भी गला काट लिया। फिर वहाँ आये हुए साक्षात् गरुडके द्वारा इन्द्रजित्को भी जीतकर वानरोंसे घिरे हुए श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणसहित बड़ी शोभा पाने लगे। इन्द्रजित्का उद्योग व्यर्थ होने और कुम्भकर्णके मारे जानेपर लङ्कापति रावणने क्रुद्ध हो अपने पुत्र त्रिशिरा, अतिकाय, महाकाय, देवान्तक और नरान्तकसे कहा—'पुत्रगो ! तुम उन दोनों मनुष्यों—राम और लक्ष्मणको युद्धमें मार डालो !' इस प्रकार उन पुत्रोंको ऐसी आज्ञा दे दशकण्ठ रावणने पुनः महोदर और महापार्श्व नामक राक्षसोंसे कहा—'तुम दोनों इस संग्राममें शत्रुओंका वध करनेके लिये उद्यत हो बहुत बड़ी सेनाओंके साथ जाओ' ॥ ६१–६६ ॥

दृष्ट्वा तानागतांश्चैव युध्यमानान् रणे रिपून् ।
अनयल्लक्ष्मणः षड्भिः शरैस्तीक्ष्णैर्यमालयम् ॥६७॥
वानराणां समूहश्च शिष्टांश्च रजनीचरान् ।
सुग्रीवेण हतः कुम्भो राक्षसो बलदर्पितः ॥६८॥
निकुम्भो वायुपुत्रेण निहतो देवकण्टकः ।
विरूपाक्षं युध्यमानं गदया तु विभीषणः ॥६९॥
भीममैन्दौ च श्वपतिं वानरेन्द्रौ निजघ्नतुः ।
अङ्गदो जाम्बवांश्चाथ हरयोऽन्यान्निशाचरान्॥७०॥
युध्यमानस्तु समरे महालक्षं महाचलम् ।
जघान रामोऽथ रणे बाणवृष्टिकरं नृप ॥७१॥

रणभूमिमें उपर्युक्त शत्रुओंको आकर युद्ध करते देख लक्ष्मणने छः तीखे बाणोंसे मारकर उन्हें यमलोक भेज दिया। इसके बाद वानरगणने शेष राक्षसोंको मार डाला। सुग्रीवने बलाभिमानी कुम्भ नामक राक्षसको मारा, हनुमान्‌जीने देवताओंके लिये कण्टकरूप निकुम्भका वध किया। युद्ध करते हुए विरूपाक्षको विभीषणने गदासे मार डाला। वानरश्रेष्ठ भीम और मैन्दने श्वपतिका संहार किया, अङ्गद और जाम्बवान् तथा अन्य वानरोंने दूसरे निशाचरोंका संहार किया। नरेश्वर ! युद्धमें लगे हुए श्रीरामचन्द्रजीने भी संग्रामभूमिमें बाणोंकी वर्षा करनेवाले महालक्ष और महाचल नामक राक्षसोंको मौतके घाट उतार दिया ॥ ६७–७१ ॥

इन्द्रजिन्मन्त्रलब्धं तु रथमारुह्य वै पुनः ।
वानरेषु च सर्वेषु शरवर्षं ववर्ष सः ॥७२॥
रात्रौ तद्बाणभिन्नं तु बलं सर्वं च राघवम् ।
निश्चेष्टमखिलं दृष्ट्वा जाम्बवत्प्रेरितस्तदा ॥७३॥
वीर्यादौषधमानीय हनूमान् मारुतात्मजः ।
भूम्यां शयानमुत्थाप्य रामं हरिगणांस्तथा ॥७४॥
तैरेव वानरैः सार्धं ज्वलितोल्काकरैर्निशि ।
दाहयामास लङ्कां तां हस्त्यश्वरथरक्षसाम् ॥७५॥
वर्षन्तं शरजालानि सर्वदिक्षु घनो यथा ।
स भ्रात्रा मेघनादं तं घातयामास राघवः ॥७६॥

तत्पश्चात् इन्द्रजित् मन्त्रशक्तिसे प्राप्त हुए रथपर आरूढ हो समस्त वानरोंपर बाण वृष्टि करने लगा। रात्रिके समय समस्त वानर-सेना तथा श्रीरामचन्द्रजीको मेघनादके बाणोंसे विद्ध हो सर्वथा निश्चेष्ट पड़े देख पवनकुमार हनुमान्‌जी जाम्बवान्‌के द्वारा प्रेरित हो अपने पराक्रमसे औषध ले आये। उन्होंने उस औषधके प्रभावसे भूमिपर पड़े हुए श्रीरामचन्द्रजी तथा वानरगणोंको उठाया और प्रज्वलित उल्का हाथमें लिये उन्हीं वानरोंके साथ रातमें जाकर हाथी, रथ और घोड़ोंसे युक्त राक्षसोंकी लङ्कामें आग लगा दी। तदनन्तर भगवान् रामने बादलके समान समस्त दिशाओंमें बाणोंकी वर्षा करते हुए मेघनादका अपने भाई लक्ष्मणके द्वारा वध करा दिया ॥ ७२–७६ ॥

घातितेष्वथ रक्षस्सु पुत्रमित्रादिबन्धुषु ।
कारितेष्वथ विघ्नेषु होमजप्यादिकर्मणाम् ॥७७॥
ततः क्रुद्धो दशग्रीवो लङ्काद्वारे विनिर्गतः ।
क्वासौ राम इति ब्रूते मानुषस्तापसाकृतिः ॥७८॥
योद्धा कपिबलीत्युच्चैर्व्याहरद्राक्षसाधिपः ।
वेगवद्भिर्विनीतैश्च अश्वैश्चित्ररथे स्थितः ॥७९॥

अथायान्तं तु तं दृष्ट्वा रामः प्राह दशाननम् ।
रामोऽहमत्र दुष्टात्मन्नेहि रावण मां प्रति ॥८०॥

इस प्रकार जब पुत्र मित्रादि समस्त बान्धव मारे गये तथा होम जप आदि अभिचार कर्मोंमें वानरोंद्वारा विघ्न डाल दिया गया, तब कुपित हो दशानन रावण चमकीली सुशोभित अश्वोंसे युक्त विचित्र स्वर्णमय रथपर सवार हो लङ्काके द्वारपर निकल आया और कहने लगा—'तपस्वीका वेष धारण किये वह मनुष्य राम कहाँ है, जो वानरोंका अगुआ योद्धा बना हुआ है?' रावणने यह बात बड़े जोरसे कही। यह सुन भगवान् रामने दशानन रावणको आते देख उससे कहा—'दुरात्मा रावण! मैं ही राम हूँ और यहाँ खड़ा हूँ, तू मेरी ओर चला आ' ॥ ७७-८० ॥

इत्युक्ते लक्ष्मणः प्राह रामं राजीवलोचनम् ।
अनेन रक्षसा योत्स्ये त्वं तिष्ठेति महाबल ॥८१॥
ततस्तु लक्ष्मणो गत्वा रुरोध शरवृष्टिभिः ।
निःशङ्कबाहुनिसृष्टैस्तु शस्त्रास्त्रैर्लक्ष्मणं युधि ॥८२॥
रुरोध स दशग्रीवस्तयोर्युद्धमभून्महत् ।
देवा व्योम्नि विमानस्था वीक्ष्य तस्थुर्महाहवम् ॥८३॥

उनके यों कहनेपर लक्ष्मणने कमलनयन श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'महाबल! आप अभी ठहरें, मैं इस राक्षसके साथ युद्ध करूँगा।' तदनन्तर लक्ष्मणने आगे बढ़कर बाणोंकी वृष्टिसे रावणको ढक दिया। फिर दशग्रीव रावणने भी अपनी बीस भुजाओंद्वारा छोड़े हुए शस्त्रास्त्रोंसे लक्ष्मणको रणभूमिमें आच्छादित कर दिया। इस प्रकार उन दोनोंमें महान् युद्ध हुआ। विमानपर आरूढ़ देवतागण इस महान् संग्रामको देख [कौतूहलवश] आकाशमें स्थित हो गये ॥ ८१-८३ ॥

ततो रावणशस्त्राणि च्छित्त्वा स्वैस्तीक्ष्णसायकैः ।
लक्ष्मणः सारथिं हत्वा तस्याश्वानपि भल्लकैः ॥८४॥
रावणस्य धनुश्छित्त्वा ध्वजं च निशितैः शरैः ।
रथस्थलं महावीर्यो विव्याध परवीरहा ॥८५॥
ततो रथान्निपत्याथ क्षिप्रं राक्षसनायकः ।
शक्तिं जग्राह कुपितो घण्टानादविनादिनीम् ॥८६॥
अग्निज्वालाज्वलज्जिह्वां महोल्कासदृशद्युतिम् ।
दृढमुष्ट्या तु निक्षिप्ता शक्तिः सा लक्ष्मणोरसि ॥८७॥
विदार्यान्तः प्रविष्टाथ देवास्त्रस्तास्ततोऽम्बरे ।
लक्ष्मणं पतितं दृष्ट्वा रुदद्भिर्वानरेश्वरैः ॥८८॥
दुःखितः शीघ्रमागम्य तत्पार्श्वं प्राह राघवः ।
क्व गतो हनुमान् वीरो मित्रो मे पवनात्मजः ॥८९॥
यदि जीवति मे भ्राता कथंचित्पतितो भुवि ।

तत्पश्चात् लक्ष्मणने अपने तीखे बाणोंद्वारा रावणके अस्त्र-शस्त्र काटकर उसके सारथिको मार डाला और भल्लनामक बाणोंसे उसके घोड़ोंको भी नष्ट कर दिया। फिर तीखे बाणोंसे रावणका धनुष और उसकी ध्वजा काटकर शत्रुवीरोंका नाश करनेवाले महान् पराक्रमी लक्ष्मणजीने उसके वक्षःस्थलको बेध दिया। तब राक्षसराज रावण रथसे नीचे गिर पड़ा। किंतु शीघ्र ही उठकर कुपित हो उसने हाथमें शक्ति उठायी, जो सैकड़ों घड़ियालोंके समान आवाज करनेवाली थी। उसकी धार अग्निकी ज्वालाके समान प्रज्वलित थी तथा उसकी कान्ति महती उल्काके समान प्रतीत होती थी। उसने दृढ़तापूर्वक मुट्ठी बाँधकर उस शक्तिको लक्ष्मणकी छातीपर फेंका। वह शक्ति उनकी छाती छेदकर भीतर घुस गयी। इससे आकाशमें स्थित देवतागण भयभीत हो गये। लक्ष्मणको गिरा देख रोते हुए वानरशिरोमणियोंके साथ दुःखी हो भगवान् श्रीराम शीघ्र ही उनके पास आये और कहने लगे—'मेरे मित्र पवनकुमार हनुमान् कहाँ चले गये? पृथ्वीपर पड़ा हुआ मेरा भाई लक्ष्मण जिस किसी प्रकार भी जीवित हो सके, यह उपाय होना चाहिये' ॥ ८४-८९ ॥

इत्युक्ते हनुमान् राजन् वीरो विख्यातपौरुषः ॥९०॥
बद्ध्वाञ्जलिं बभाषेदं देह्याज्ञां स्थितोऽस्मि भो ।

राजन्! उनके इस प्रकार कहनेपर, विख्यात पराक्रमी वीर हनुमान्‌जी हाथ जोड़कर बोले—'प्रभो! आज्ञा दें, मैं सामने उपस्थित हूँ' ॥ ९०½ ॥

कि 'श्रीसीताजी निष्कलङ्क और शुद्ध चरित्रवाली हैं' — भगवान् शङ्कर चले गये ॥ ११८½ ॥

ततो वायुसुतप्राप्तं विमानं पुष्पकं शुभम् ॥११९॥
पूतामारोप्य सीतां तामादिष्टः पवनात्मजः ।
ततस्तु जानकीं देवीं विशोकां भूषणान्विताम् ॥१२०॥
नन्दितां वानरेन्द्रैस्तु सार्धं भ्रात्रा महाबलः ।
प्रतिष्ठाप्य महादेवं सेतुमध्ये स राघवः ॥१२१॥
लब्धवान् परमां भक्तिं शिवे शम्भोरनुग्रहात् ।
रामेश्वर इति ख्यातो महादेवः पिनाकधृक् ॥१२२॥
तस्य दर्शनमात्रेण सर्वहत्या व्यपोहति ।

तदनन्तर पवित्रात्मा माताजीको अपने वायुपुत्रसे प्राप्त सुन्दर पुष्पकविमानपर चढ़ाकर भगवान्ने हनुमान्जीको चलनेका आदेश दिया। तब समस्त वानरेन्द्रोंद्वारा नन्दित शोकरहित जानकीदेवीको आभूषणोंसे विभूषितकर महाबली रामचन्द्रजी अपने भाई लक्ष्मणके साथ चले। लौटती बार श्रीरामचन्द्रजीने समुद्रके पुलपर महादेवजीकी स्थापना की और शङ्करजीकी कृपासे उन्होंने उन शिवजीमें परमभक्ति प्राप्त की। वहाँ स्थापित हुए पिनाकधारी महादेवजी 'रामेश्वर' नामसे विख्यात हुए। उनके दर्शनमात्रसे शिवजी सब प्रकारके हत्यादि दोषोंको दूर कर देते हैं ॥११९–१२२½॥

रामस्तीर्णप्रतिज्ञोऽसौ भरतासक्तमानसः ॥१२३॥
ततोऽयोध्यापुरीं दिव्यां गत्वा तस्यां द्विजोत्तमैः ।
अभिषिक्तो वसिष्ठाद्यैर्भरतेन प्रसादितः ।
अकरोद्धर्मतो राज्यं चिरं रामः प्रतापवान् ॥१२४॥
यज्ञादिकं कर्म निजं च कृत्वा
पौरैस्तु रामो दिवमारुरोह ।
राजन्मया ते कथितं समासतो
रामस्य भूम्यां चरितं महात्मनः ।
इदं सुभक्त्या पठतां च शृण्वतां
ददाति रामः स्वपदं जगत्पतिः ॥१२५॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे रामप्रादुर्भावे द्विपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

इस प्रकार प्रतिज्ञा पूर्ण करके श्रीरामचन्द्रजी अपना चित्त भरतजीकी ओर लगा रहनेके कारण वहाँसे दिव्यपुरी अयोध्याको गये। फिर भरतजीके मनानेपर श्रीरामचन्द्रजीने वसिष्ठ आदि उत्तम ब्राह्मणोंके द्वारा अपना राज्याभिषेक कराया। तत्पश्चात् प्रतापी भगवान् श्रीरामने चिरकालतक धर्मपूर्वक राज्य किया तथा राजोचित यागादि कर्मोंका अनुष्ठान करके वे पुरवासीजनोंके साथ ही स्वर्गलोक (साकेतधाम) को चले गये। राजन्! पृथ्वीपर महात्मा श्रीरामचन्द्रजीके किये हुए चरित्रोंका मैंने तुमसे संक्षेपतः वर्णन किया। जो लोग इसको भक्तिपूर्वक पढ़ते और सुनते हैं, उन्हें जगत्पति भगवान् श्रीराम अपना धाम प्रदान करते हैं ॥ १२३—१२५ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें श्रीरामावतारकी कथाविषयक बावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५२ ॥

क्षमा प्रार्थना और नम्र निवेदन

गत वर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी 'कल्याण'के विशेषाङ्कके प्रकाशनमें अत्यधिक विलम्ब हो गया, जिसके लिये मनमें बड़ी ग्लानि और दु:खका अनुभव हो रहा है। 'कल्याण'के प्रेमी ग्राहकों और पाठकोंको इस विलम्बके कारण मानसिक क्लेश, क्षोभ, विरक्ति एवं झुंझलाहट होना स्वाभाविक है। 'कल्याण'के प्रेमी पाठक सदा ही हमपर कृपा और छोह रखते आये हैं। उन्हींकी सहज दयालुताके ऊपर हम आशा करते हैं कि इस बार भी वे कृपापूर्वक हमें इसके लिये क्षमा करेंगे। साधारण अङ्कोंके प्रकाशनमें भी इस वर्ष गड़बड़ी रही। विशेषाङ्कके प्रकाशनमें इसका भी कुछ प्रभाव अवश्य पड़ा। इस असाधारण विलम्बका मुख्य हेतु तो हमारे प्रधान सम्पादक भाई श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी अस्वस्थता ही है। गत वर्ष ही उनका स्वास्थ्य गड़बड़ रहा। पिछले नवम्बर मासमें वह और अधिक खराब हो गया और इधर एक माससे तो विशेष चिन्तनीय हो गया है। भगवान् सब मङ्गल करेंगे।

इस अङ्कमें अग्निपुराणके शेष एक सौ तिरसठ अध्यायों तथा श्रीगर्गसंहिताके अन्तिम अश्वमेधखण्डके उत्तरार्ध एवं गर्ग-संहितामाहात्म्यके चार अध्यायोंका अनुवाद देनेकी बात थी। सोचा गया था कि इतनेमें विशेषाङ्कके ७०० पृष्ठ पूरे हो जायँगे। परंतु हम लोगोंका अनुमान ठीक नहीं निकला। अङ्कोंको छपाईके बीचमें पता चला कि उक्त दोनों ग्रन्थोंके अवशिष्ट अंशोंका अनुवाद लगभग ५०० पृष्ठोंमें ही पूरा हो जायगा, शेष दो सौ पृष्ठोंकी पूर्तिके लिये कुछ और सामग्री हमें आवश्यक होगी। सौभाग्यसे हमारे पास श्रीनरसिंहपुराणका अनुवाद पहलेका किया हुआ तैयार था। नरसिंहपुराणकी गणना कुछ लोगोंके मतसे अठारह पुराणोंमें है और वैष्णव जगत्‌में उसकी बड़ी मान्यता है। उसमें अन्य पुराणोंकी भाँति सृष्टि, प्रलय, मन्वन्तरोंका वर्णन तथा प्रसिद्ध राजवंशोंके संक्षिप्त वर्णन, वर्णाश्रमधर्मनिरूपण तथा कलियुगका वर्णन आदि-आदि प्रसङ्गोंके साथ-साथ चिरजीवी मार्कण्डेय मुनिके दिव्य चरित्र तथा भगवान् विष्णुके विभिन्न अवतार-चरित्रोंका बड़ा ही मनोरम वर्णन है, जिसके अनुशीलनसे मनमें पवित्रता आती है और भगवच्चिन्तनमें सहायता मिलती है। परंतु नरसिंहपुराण बहुत छोटा ग्रन्थ है। उसका अविकल अनुवाद देनेपर भी विशेषाङ्ककी सामग्री पूरी नहीं होती। इसलिये उसका मूल भी साथ देनेकी बात सोची गयी। नरसिंहपुराणका प्रचार बहुत कम होनेसे उसका प्रामाणिक पाठ भी नहीं मिलता। इसलिये भी मूल पाठ साथ देना आवश्यक समझा गया। किंतु पूरा अनुवाद मूलसहित विशेषाङ्कमें देना सम्भव नहीं था। पूरा अनुवाद देनेसे अङ्कका आकार ७०० पृष्ठोंसे अधिक हो जाता, फलतः डाकखर्च अधिक बढ़ जाता। डाकविभागके नियमानुसार विशेषाङ्कका बोझ एक किलोग्रामसे अधिक नहीं होना चाहिये। अधिक होनेपर डाकखर्च अधिक देना पड़ता है। अतएव नरसिंहपुराणके केवल ५२ अध्यायोंका मूल एवं अनुवाद ही इस अङ्कमें दिया जा रहा है। शेष १६ अध्यायोंका मूल एवं अनुवाद फरवरीके अङ्कमें देनेका विचार है, जो इस अङ्कका परिशिष्टाङ्क होगा। किंतु परिशिष्टाङ्क तो आठ फर्मोंसे अधिक दिया नहीं जा सकता। इसलिये मैटर पूरा करनेके लिये विशेषाङ्कमें ही पन्ने बढ़ाने पड़े। इधर कागजकी कमीके कारण कागज भी कुछ पतला देना पड़ा, इसका परिणाम यह हुआ कि विशेषाङ्कका बोझ न चाहनेपर भी एक किलोसे अधिक हो ही गया, जिसके कारण अङ्कके बाहर भेजनेमें डाकखर्च बढ़ जायगा। देर हो जानेके कारण फरवरीका अङ्क भी साथ ही जा रहा है।

अग्निपुराणका जो अंश इस अङ्कमें दिया गया है, उसमें पुराणके अन्य विषयोंके साथ-साथ विविध दानोंके स्वरूप तथा महिमा, राजधर्म, शकुन-विचार, राजनीति, रत्नपरीक्षण, धनुर्वेद एवं युद्धविद्या, अश्वशास्त्र, गजशास्त्र, देवपूजा, आयुर्वेद एवं पशुचिकित्सा आदि-आदि उपयोगी विषयोंके साथ, जिनका ज्ञान इस युगमें भारतीय संस्कृतिके साथ-साथ लुप्त होता जा रहा है, छन्दःशास्त्र (जिसमें लौकिक छन्दोंके साथ-साथ वैदिक छन्दोंका भी विशद वर्णन है)

शिक्षा, काव्य-साहित्य-मीमांसा, व्याकरण, योगदर्शन आदि विविध शास्त्रोंका भी संक्षिप्त किंतु प्रामाणिक वर्णन है, जिसको पढ़कर साधारण पढ़े-लिखे लोगोंको भी इन विषयोंका सामान्य ज्ञान सुलभ हो जाता है। इन अंशोंका अनुवाद करनेमें भी उक्त विषयोंके अन्यान्य ग्रन्थों एवं मनीषियोंकी सहायता ली गयी है, जिसके लिये हम उन विद्वानोंके प्रति आभार प्रदर्शन करते हैं। नरसिंहपुराणका सम्पादन एवं अनुवाद भी हमारे आत्मीय तथा कल्याण-पाठकोंके सुपरिचित साहित्याचार्य पाण्डेय श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री (वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी) का ही किया हुआ है, जिसके लिये हम उनके आभारी हैं। पाठसंशोधन एवं अनुवादमें भरसक पूरी सावधानी बरतनेपर भी दृष्टिदोषके कारण त्रुटियोंका रह जाना सम्भव है। उनके लिये हम पाठकोंसे करबद्ध क्षमा-याचना करते हैं।

'कल्याण'का काम वास्तवमें भगवान्‌का काम है। हम लोग तो निमित्तमात्र हैं। हम तो इस कार्यके करनेमें अनायास जो थोड़ी-बहुत भगवत्स्मृति हो जाती है, वही हमारे लिये परम लाभ है और इसे हम भगवान्‌की कृपा मानते हैं। त्रुटियोंके लिये दोषी हम हैं और उनके लिये तथा अन्य अपराधोंके लिये हम पाठकोंसे बार-बार क्षमा प्रार्थना करते हैं।

संसारके अन्य देशोंकी भाँति भारत भी पाश्चात्य सभ्यताकी चकाचौंधमें आकर अपने वास्तविक लक्ष्यको भूलता जा रहा है और क्रमशः भोगप्राप्तिको ही जीवनका ध्येय मानकर तथा अनेक भ्रान्तवादोंका शिकार बनकर विपथगामी हो रहा है। यदि इस विशेषाङ्कके अध्ययनसे हमारे देशवासियोंको मनुष्यजीवनके वास्तविक ध्येयको हृदयंगम करने तथा उसकी ओर बढ़नेमें कुछ भी सहायता मिली तो इसे हम अपना सौभाग्य मानेंगे। भगवान् सबको सुबुद्धि दें।

निवेदक—

चिम्मनलाल गोस्वामी, सम्पादक

श्रीगीता और रामायणकी परीक्षाएँ

हिंदूवाङ्मयके दिव्यतम रत्न हैं—श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस, जिनमें श्रेय प्रेयका पूर्ण विवेचन है। ये वास्तवमें सार्वभौम तथा सर्वकल्याणकारी पवित्र ग्रन्थ हैं। इन ग्रन्थोंका आश्रय लेनेसे लोक, परलोक और परमार्थ—सभी सुधरते हैं। भारत ही नहीं, भारतके बाहर भी इन ग्रन्थोंकी गौरवपूर्ण तथा मङ्गलमयी श्रेष्ठताका समादर है। इन ग्रन्थोंका दिव्यालोक जन जनतक पहुँच सके तथा उनकी आत्मिक या आध्यात्मिक उन्नतिके पथको आलोकित किया जा सके, एतदर्थ गीता और रामायण-परीक्षाकी व्यवस्था की गयी थी। परीक्षामें उत्तीर्ण छात्र पुरस्कृत भी होते हैं। सैकड़ों स्थानोंपर परीक्षा-केन्द्र हैं। विशेष विवरणकी जानकारी नियमावलीसे हो सकती है। परीक्षा-सम्बन्धी सभी बातोंकी जानकारीके लिये नीचे लिखे पतेपर पत्र-व्यवहार करें—

व्यवस्थापक—गीता-रामायण-परीक्षा-समिति, गीताभवन, पत्रालय स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश होकर) जनपद पौड़ी गढ़वाल (उ० प्र०)

साधक-संघ

उसी मानवका जीवन श्रेष्ठ है, जो भगवत्परायणता, दैवीसम्पत्तिके गुण, सदाचार, आस्तिकता और सात्त्विकतासे सम्पन्न है। मानवमात्रका जीवन ऐसे दिव्य भावोंसे परिपूर्ण हो, एतदर्थ 'साधक-संघ' की स्थापना की गयी। कोई भी व्यक्ति, चाहे वह किसी वर्णका या आश्रमका हो, नारी या पुरुष हो, हिंदू या अहिंदू हो, बिना कोई शुल्क दिये इस संघका सदस्य बन सकता है। इस संघके सदस्यको कुल २८ नियमोंका पालन करना होता है, जिनका स्पष्टीकरण एक प्रपत्रपर छपा है। प्रत्येक सदस्यको ३० पैसे मनीआर्डरसे अथवा डाकटिकटके रूपमें भेजकर 'साधक-दैनंदिनी' मँगवा लेनी चाहिये तथा प्रतिदिन उसमें नियमपालनका विवरण लिख लेना चाहिये। इस संघके सदस्योंका यह एक अनुभूत तथ्य है कि जो श्रद्धा एवं तत्परतापूर्वक नियम पालनमें संलग्न रहता है, उसके जीवनका स्तर श्रेष्ठसे श्रेष्ठतर होता चला जाता है। इस समय इसके लगभग दस हजार (१०,०००) सदस्य हैं। लोगोंको स्वयं इसका सदस्य बनना तथा अपने सगे सम्बन्धियों-स्वजनों-सुपरिचितोंको सदस्य बनाना चाहिये। इससे सम्बन्धित किसी भी प्रकारका पत्र-व्यवहार नीचे लिखे पतेपर करना चाहिये—संयोजक, साधक-संघ, पत्रालय—गीतावाटिका, जनपद गोरखपुर (उ० प्र०)

श्रीगीता रामायण प्रचार-संघ

श्रीमद्भगवद्गीता और रामचरितमानस हिंदूसमाजके ऐसे दिव्य ग्रन्थ-रत्न हैं, जिनके अध्ययनसे तथा प्रतिपाद्य सिद्धान्तोंके मननसे अन्तरमें अचिन्त्य अलौकिक ज्योति प्रस्फुटित हो उठती है। एक ओर व्यक्तिका व्यक्तिगत जीवन समुन्नत होता है तो दूसरी ओर समाजका सम्पूर्ण वातावरण श्रेष्ठ गुणोंसे सुवासित होता है। आजके तमसाच्छन्न समाजमें तो ऐसे दिव्य ग्रन्थोंके अधिकाधिक पाठ और स्वाध्यायकी आवश्यकता है, जिससे इनके आदर्शोंका अधिकाधिक प्रचार हो तथा उनकी जन मानसमें प्रतिष्ठा हो। इसी उद्देश्यसे 'गीता-रामायण प्रचार-संघ'की स्थापना हुई। इसके सदस्यको नियमितरूपसे गीता और मानसका पाठ-स्वाध्याय करना होता है। गत वर्ष सदस्योंकी संख्या '५',००० से अधिक थी। इस संस्थाके द्वारा श्रीगीताके ६ प्रकारके और श्रीरामायणके ३ प्रकारके एवं उपासना विभागमें नित्य इष्टदेवके नामका जप, ध्यान और मूर्तिकी या मानसिक पूजा करनेवाले सदस्य बनाकर श्रीगीता और श्रीरामायणके अध्ययन एवं उपासनाके लिये प्रेरणा की जाती है। विशेष जानकारीके लिये पत्रव्यवहार करना चाहिये। पता इस प्रकार है—

मन्त्री, श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघ, 'गीताभवन', पत्रालय—स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश होकर) जनपद पौड़ी गढ़वाल (उ० प्र०)

गीताभवन, स्वर्गाश्रमके सत्सङ्गकी सूचना

गीताभवन, स्वर्गाश्रममें सदाकी भाँति इस वर्ष भी सत्सङ्गका आयोजन होने जा रहा है। आगामी चैत्र शुक्ल पूर्णिमाके आसपास स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजके पहुँच जानेकी बात है। दुःखकी बात यह है कि हमारे परम श्रद्धेय भाईजी (श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) इस जगत्‌में नहीं रहे, गत वर्ष भी वे अस्वस्थ होनेके कारण सत्सङ्गमें सम्मिलित नहीं हो पाये थे। इस वर्ष तो उनका शरीर छूट जानेके कारण (जिसकी सूचना) अन्यत्र दी जा रही है—सत्सङ्गी भाई-बहन उनके पावन एवं कल्याणकारी उपदेशोंसे सदाके लिये वञ्चित हो गये हैं। अन्य साधु महात्माओंके पधारनेकी सम्भावना तो है ही।

स्वर्गीय परमपूज्य श्रीसेठजीने इस सत्सङ्गका आयोजन इसलिये किया था कि अध्यात्म-पथके सच्चे पथिक भगवती भागीरथीके पावन तटपर महात्मा सन्तोंकी पवित्र सन्निधिमें रहते हुए अपने जीवनको साधन-निष्ठ बनाकर तथा भगवान्‌के मार्गपर अग्रसर हो सकें। स्वर्गाश्रमस्थित गीताभवन ऐश-आराम, जलवायु-परिवर्तन या आमोद-विहारका स्थान नहीं है। अतः इस सत्सङ्गमें भाग लेनेवाले भाई-बहनोंसे यह विनीत प्रार्थना है कि गीताभवनमें रहते समय वे साधक-जीवन व्यतीत करें, व्यवहार तथा दिनचर्यामें संयम नियमको महत्त्व दें, सत्सङ्गमें उपस्थित होकर लाभ उठायें तथा अपने भजनयुक्त साधकोचित आचारसे गीताभवनके वातावरणकी श्रेष्ठताको बनाये रखें।

स्वर्गाश्रममें नौकर-रसोइया नहीं मिलते, अतः लोगोंको आवश्यकतानुसार नौकर-रसोइया साथ लाने चाहिये। यहाँ यथाशक्ति व्यवस्था रखनेपर भी चोरी हो जाती है, अतः गहने आदि जोखिमकी चीजें साथ नहीं लानी चाहिये। स्त्रियोंको पीहर या ससुरालवालोंके अथवा अन्य किन्हीं सम्बन्धीके साथ ही वहाँ आना चाहिये, अकेले नहीं। भरसक बालकोंको साथ नहीं लाना चाहिये। बालकोंके कारण बड़ी अव्यवस्था होती है तथा सत्सङ्गमें विघ्न होता है। सर्वथा लाचारी हो तो वे ही लोग बच्चोंको साथ ले जायँ, जो अपने डेरेपर उन्हें अलग रखनेकी व्यवस्था कर सकते हों।

भीड़ बढ़ जानेपर कभी-कभी स्थानकी इतनी तंगी हो जाती है कि एक कमरेमें दो-दो या तीन-तीन परिवार ठहराने पड़ते हैं। सभी भाइयोंसे प्रार्थना है कि ऐसी स्थितिमें सहयोग-सहिष्णुता, स्नेह-सद्भावपूर्वक साथ-साथ रहते हुए सत्सङ्गका लाभ उठायें।

यद्यपि कठिनाई बहुत है, फिर भी सत्सङ्गी भाइयोंके खान-पानका शुद्ध सात्त्विक प्रबन्ध करनेकी चेष्टा की जा रही है, परन्तु इसका प्रबन्ध होना बहुत ही कठिन है—यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)